Printed & Published by Pt. Ramchandr Sharma at the Sanatan Dharm Press Moradabad.

* श्रीहरिः *

महाभारत-अनुशासनपर्वकी विषयसूची

॥ अनुशासनपर्वकी विषयसूची समाप्त ॥

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

अनुशासन-पर्व

आनुशासनिक-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच । शमो बहुविधाकारः सूक्ष्म उक्तः पितामह ! न च मे हृदये शांतिरस्ति श्रुत्वेदमीदृशम् ॥ २ ॥ अस्मिन्नर्थे

॥ श्रीः ॥ नारायण, नरोंमें श्रेष्ठ नर, वाणीकी अधिष्ठात्रीदेवी सरस्वती और व्यासजीको प्रणाम करके इतिहास पुराण आदिका आरंभ करे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–हे पितामह ! शोकके शमन होनेका साधन शम (काल, अदृष्ट और ईश्वरके अधीन होनेसे मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है, इसप्रकार) अनेक प्रकारका है और (सर्वसंकल्प संन्यास आदि) बहुतसे आकार वाला है, परन्तु इस शमके सूक्ष्म स्वरूपको सुनकर भी (उसका साक्षात्कार न होनेसे) मुझे शांति नहीं मिलती है (क्योंकि–गोत्रवधका पाप अब भी मुझे सन्ताप देरहा है, अतः मुझमेंसे कर्तृत्वके दोष अभिमानको दूर करनेके लिये और निदिध्यासन आदिका अधिकारी बनानेके लिये, चित्तको शुद्ध करनेवाले धर्मोंका वर्णन करिये, क्योंकि–चित्तशुद्धि न होनेसे आपका दिया हुआ (मोक्षधर्म पर्वका) उपदेश मेरे हृदयमें नहीं बैठता ॥ २ ॥ हे पितामह ! इस विषयमें

बहुविधा शांतिरुक्ता पितामह । स्वकृते का नु शांतिः स्याच्छ-
माद्बहुविधादपि ॥ ३ ॥ शराचितशरीरं हि तीव्रव्रणमुदीक्ष्य च ।
शर्म नोपलभे वीर दुष्कृतान्येव चिंतयन्॥४॥ रुधिरेणावसिक्तांगं
प्रस्रवंतं यथाऽचलम्।त्वां दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्र सीदे वर्षास्विवांबुजम्५
अतः कष्टतरं किं नु मत्कृते यत्पितामहः । इमामवस्थां गमितः
प्रत्यमित्रै रणाजिरे ॥ ६ ॥ तथा चान्ये नृपतयः सह पुत्रा सबां-
धवाः । मत्कृते निधनं प्राप्ताः किं नु कष्टतरं ततः ॥ ७ ॥ वयं हि

आपने बहुतसी शान्ति देने वाली बातें कहीं, परन्तु इस नाना प्रकारके शमको जानने पर भी अपने आप (जानकर) पाप करने वालेको शांति कैसे मिल सकती है अर्थात् विद्वान् पुरुष अचिन्तित कामके होजाने पर उसको काल आदिका कियाहुआ मानकर शोक नहीं करते हैं, परन्तु बुद्धिपूर्वक कियाहुआ पाप हमसे आस्तिक पुरुषोंको केवल शब्दमात्रके विचारसे सन्ताप कैसे न देसकेगा, प्रत्यक्षमें कर्तापनके अभिमानसे कियाहुआ पाप, परोक्षके (आत्मा के) अकर्तृत्व आदि ज्ञानसे कैसे दूर होसकता है ॥ ३ ॥ आपके शरीरको बाणोंसे और गहरे घावोंसे भराहुआ देखकर, हे वीर-पुरुष! अपने दुष्कर्मोंकी ओर ध्यान जाने पर मुझे शांति नहीं मिलती है हे पुरुषव्याघ्र! आपके शरीरमेंसे झरनेकी समान रुधिरको निकलताहुआ देखकर मैं वर्षाकालके कमलकी समान दुःखी होरहा हूँ ॥ ४ ॥ मेरे कारण रणभूमिमें पितामह की शत्रुओंके हाथसे ऐसी अवस्था होगई, हाः इससे अधिक और क्या दुःख होगा ॥ ५ ॥ और मेरे कारण ही दूसरे राजे भी पुत्र और बाँधवों सहित मर गए हैं, इससे अधिक और क्या दुःख होगा ? ॥ ६ ॥ और हे राजन्! हम पाण्डवोंने और धृतराष्ट्रके पुत्रोंने भी काम तथा क्रोधके वशमें होकर ऐसा निन्दित कर्म किया है, न जाने इससे हमारी क्या गति होगी ॥ ७ ॥ हे राजन्!

धार्तराष्ट्राश्च कालमन्युवशं गताः।कृत्वेदं निंदितं कर्म प्राप्स्यामः कां गतिं नृप ॥ ८ ॥ इदं तु धार्तराष्ट्रस्य श्रेयो मन्ये जनाधिप । इमामवस्थां संप्राप्तं यदसौ त्वां न पश्यति ॥९॥ सोऽहं तव ह्यंत-करः सुहृद्वधकरस्तथा । न शांतिमधिगच्छामि पश्यंस्त्वां दुःखितं क्षितौ ॥१०॥ दुर्योधनो हि समरे सहसैन्यः सहानुजः । निहतः क्षत्रधर्मेऽस्मिन्दुरात्मा कुलपांसनः ॥११॥ न स पश्यति दुष्टात्मा त्वामद्य पतितं क्षितौ।अतः श्रेयो मृतं मन्ये नेह जीवितमात्मनः१२ अहं हि समरे वीर गमितः शत्रुभिः क्षयम् । अभविष्यं यदि पुरा सहभ्रातृभिरच्युत ॥ १३ ॥ न त्वामेवं सुदुःखार्तमद्राक्षं सायका-

दुर्योधन आपकी ऐसी दशाको देखनेके लिये नहीं रहा, यह मैं उसका पुण्य समझता हूँ अर्थात् हमारा अपयशसे कलंकित होनेके कारण यह लोक भी नष्ट होगया और शत्रुओंका नहीं ॥ ८ ॥ परन्तु हे राजन् ! मैं आपका नाश करनेवाला हूँ और मित्रोंका वध करनेवाला हूँ, ऐसे मुझको पृथ्वीमें आपको दुःखित पड़ा हुआ देखकर शान्ति नहीं मिलती है ॥ ९ ॥ परन्तु दुष्टात्मा और कुलको कलंक लगाने वाला दुर्योधन इस क्षत्रियोंके धर्मयुद्धमें अपनी सेना और अपने छोटे भाइयों सहित मारा गया ॥ १० ॥ और वह दुरात्मा आपको पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखनेको नहीं रहा है, अतः मैं उसके मरणको अच्छा समझता हूँ और अपने जीवनको अच्छा नहीं समझता ॥११॥ हे अपनी प्रतिज्ञामें दृढ़ रहने वाले राजन् ! यदि पहिले शत्रुओंके साथ युद्धमें मेराभी नाश होजाता, यदि मैं भी भाइयों सहित मर जाता ॥ १२ ॥ तो मैं आप को इस प्रकार बाणोंसे और दुःखसे पीड़ा पाते हुए नहीं देखता परन्तु हे राजन् ! विधाताने हमको पाप कर्म करनेके लिये ही रचा होगा ॥१३॥ अब हे राजन् ! यदि आपको मेरा कल्याण करनेकी इच्छा हो

र्दितम् । नूनं हि पापकर्माणो धात्रा सृष्टाः स्म हे नृप ॥ १४ ॥ अन्यस्मिन्नपि लोके वै यथा मुच्येम किल्बिषात् । तथा प्रशाधि मां राजन् मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥ भीष्म उवाच । परतन्त्रं कथं हेतुमात्मानमनुपश्यसि । कर्मणां हि महाभाग सूक्ष्मं ह्येतदतींद्रियम् ॥ १६ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । संवादं मृत्युगौतम्योः काललुब्धकपन्नगैः ॥ १७ ॥ गौतमी नाम कौंतेय स्थविरा शमसंयुता । सर्पेण दष्टं स्वं पुत्रमपश्यद्गतचेतनम् ॥ १८ ॥ अथ तं स्नायुपाशेन बध्वा सर्पममर्षितः । लुब्धकोऽर्जुनको नाम गौतम्याः समुपानयत् ॥ १९ ॥ स चाब्रवीदयं ते स पुत्रहा पन्नगाधमः । ब्रूहि क्षिप्रं महाभागे वध्यतां केन

तो मैं दूसरे जन्ममें इस पाप (राग आदि दोष) से जिसप्रकार छूट सकूँ; तैसा उपदेश मुझको दीजिये ॥ १४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–जो आत्मा दूसरेके अर्थात् काल, अदृष्ट अथवा ईश्वर के आधीन है, उसको तू हेतुरूप (कर्मका कर्तारूप) क्यों मानता है (यदि तू यह शंका करे, कि–मैं कर्ता हूँ, ऐसा अनुभव क्यों होता है) तो हे महाभाग्यवान् राजन्! आतमाका अकर्तृत्व सूक्ष्म है (इस लिये उसका मानस प्रत्यक्ष नहीं होता, क्योंकि–मनभी इन्द्रिय है और उसका प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय है) ॥ १५ ॥ इस विषयमें एक पुरातन इतिहासका दृष्टांत दिया करते हैं उसमें मृत्यु, गौतम, व्याध और सर्पका संवाद है ॥१६॥ एक गौतमी नामवाली शमपरायण वृद्ध स्त्री थी, उसने एक दिन अपने पुत्र को सर्पके काटनेसे अचेत हुआ देखा ॥ १७ ॥ फिर अर्जुनक नामक एक व्याध उस सर्पको चर्मपाशसे बाँधकर गौतमीके पास ले आया ॥ १८ ॥ और कहने लगा, कि–हे महाभागे! यह तेरे पुत्रको मारनेवाला अधम सर्प है, बता मैं इसका किसप्रकार वध करूँ ॥१९॥ इसको अग्निमें डाल दूँ, या इसके

हेतुना ॥ २० ॥ अग्नौ प्रक्षिप्यतामेष च्छिद्यतां खण्डशोऽपि वा। न ह्ययं बालहा पापश्चिरं जीवितुमर्हति ॥ २१ ॥ गौतम्युवाच। विसृजैनमबुद्धिस्त्वमवध्योऽर्जुनक त्वया । को ह्यात्मानं गुरुं कुर्यात् प्राप्तव्यमविचिंतयन् ॥ २२ ॥ प्लवंते धर्मलघवो लोकेंऽभसि यथा प्लवाः। मज्जन्ति पापगुरवः शस्त्रं स्कन्नमिवोदके ॥२३॥ हत्वा चैनं नामृतः स्यादयं मे जीवत्यस्मिन्कोऽत्ययः स्यादयं ते।अस्योत्सर्गे प्राणयुक्तस्य जंतोर्मृत्योर्लोकं को नु गच्छेदनंतम् ॥२४॥ लुब्धक उवाच। जानाम्यहं देवि गुणागुणज्ञे सर्वार्तियुक्ता गुरवो

टुकड़े २ कर डालूँ, बालककी हत्या करनेवाला यह सर्प बहुत समय तक जीवित नहीं रहना चाहिये ॥ २० ॥ गौतमीने कहा, कि हे अर्जुनक! तुझमें बुद्धि नहीं है (तू मूर्ख है) तुझे इसको नहीं मारना चाहिये, कर्मका फल अवश्य मिलता है, इसका विचार न कर कौन पुरुष पाप करके अपनी आत्माको पापमें डुबावेगा ॥ २१ ॥ नौकाएँ जैसे समुद्रके पार हो जाती हैं, ऐसे ही धर्माचरणसे लघु (हलके) आत्मा वाले पुरुष संसारसागर के पार पहुँच जाते हैं और तीर जैसे जलमें डूबजाता है,ऐसे ही पाप कर्म करनेसे भारी हुए संसाररूपी समुद्रमें डूब जाते हैं २२ इस सर्पको मारनेसे मेरा पुत्र जीवित नहीं होजायगा और इस सर्पके जीवित रहनेसे (अब) उसकी कुछ हानि भी नहीं होगी इस एक जीवित प्राणीको मारकर कौन यमके अन्तरहित लोक (नरक) में जाय ॥ २३ ॥ व्याधने कहा, कि-हे गुण और अवगुणको न जानने वाली देवि! महात्मा पुरुष संपूर्ण जगत् की पीड़ाको देखकर दुःखी होते हैं, यह बात मैं भी जानता हूँ, परन्तु यह उपदेश तो सत्पुरुषोंके लिये है (ऐसे अधमके लिये नहीं है) अतः मैं इस क्षुद्र सर्पको अवश्य मार डालूँगा२४शान्ति चाहने वाले पुरुष इसको कालकी गति कहते हैं और अर्थशास्त्रवेत्ता

भवन्ति। स्वस्थस्यैते तूपदेशा भवन्ति तस्मात्क्षुद्रं सर्पमेनं हनिष्ये२५
शमार्थिनः कालगतिं वदन्ति सद्यःशुचं त्वर्थविदस्त्यजन्ति । श्रेयः
क्षयं शोचति नित्यमोहात्तस्माच्छोचं मुंच हते भुजंगे ॥२६॥ गौत-
म्युवाच ।आर्तिर्नैवं विद्यतेऽस्मद्विधानां धर्मात्मानः सर्वदा सज्जना
हि। नित्यायस्तो बालकोऽप्यस्य तस्मादीशे नाहं पन्नगस्य प्रमाथे२७
न ब्राह्मणानां कोपोऽस्ति कुतः कोपाच्च यातनाम् । मार्दवात्क्ष-
म्यतां साधो मुच्यतामेष पन्नगः ॥२८॥ लुब्धक उवाच । हत्वा
लाभः श्रेय एवाव्ययः स्याल्लभ्यो लाभ्यः स्याद्बलिभ्यः प्रशस्तः।

पुरुष (शत्रुका नाश करके) तुरत ही शोकको त्याग देते हैं और सदा मोहमें पड़े रहने वाले पुरुष लाभ हानिका शोक करते हैं, इस लिये सर्पके नाशसे होने वाले शोकको त्याग दे ॥२५॥ गौतमीने कहा, कि–हमसे व्यक्तियोंको (पुत्रमरणकी समान अव-सर पड़ने पर) दुःख नहीं होता है, क्योंकि–सज्जन पुरुष सदा धर्मनिष्ठ होते हैं,इस पुत्रका मरण इसप्रकार पहिले ही रचा हुआ था, इसलिये मैं सर्पको मारनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ २६ ॥ ब्राह्मण कोप नहीं करते हैं क्योंकि–कोप करनेसे पीड़ा भोगनी पड़ती है अतः हे सत्पुरुष ! तू कोमलताको धारण कर इस साँप पर क्षमा कर इसको छोड़ दे ॥ २७ ॥ व्याधने कहा, कि–(शत्रुको) मारनेमें लाभ है (क्योंकि–उससे परलोकमें) अविनाशी श्रेय मिलता है (इससे यह) करने योग्य है और लाभ पानेवाला पुरुष बलवानोंमें श्रेष्ठ माना जाता है, कालसे जो लाभ होता है वह ही सत्य और श्रेयोमय लाभ है, यह लाभ निन्दित (सर्प हत्या) कर्म न करनेसे तुझको नहीं मिलेगा ॥ २८ ॥ गौतमीने कहा, कि शत्रुको पकड़ कर मार डालनेसे क्या लाभ है ? और शत्रुको पकड़कर न छोड़नेमें क्या लाभ है ? हे सौम्य ! मैं अपने शत्रुरूप साँपके ऊपर क्षमा क्यों न करूँ ? उसको छोड़ कर

कालाल्लाभो यस्तु सत्यो भवेत श्रेयोलाभः कुत्सितेऽस्मिन्न ते स्यात् ॥ २६ ॥ गौतम्युवाच । का नु प्राप्तिर्गृह्य शत्रुं निहत्य का कामाप्तिः प्राप्य शत्रुं न मुक्त्वा । कस्मात्सौम्याहं न क्षमे नो भुजंगे मोक्षार्थं वा कस्य हेतोर्न कुर्याम् ॥ ३० ॥ लुब्धक उवाच । अस्मादेकाद्बहवो रक्षितव्या नैको बहुभ्यो गौतमि रक्षितव्यः । कृतागसं धर्मविदस्त्यजन्ति सरीसृपं पापमिमं जहि त्वम् ॥ ३१ ॥ गौतम्युवाच । नास्मिन् हते पन्नगे पुत्रको मे संप्राप्स्यते लुब्धक जीवितं वै । गुणं चान्यं नास्य वधे प्रपश्ये तस्मात्सर्पं लुब्धक मुञ्च जीवम् ॥ ३२ ॥ लुब्धक उवाच । वृत्रं हत्वा देवराट् श्रेष्ठभाग्वै यज्ञं हत्वा भागमवाप चैवाशूली देवो देववृत्तं चर त्वं क्षिप्रं सर्पं जहि मा भूत्ते विशंका ॥ ३३ ॥ भीष्म उवाच । असकृत्प्रोच्यमानापि गौतमी भुजगंप्रति । लुब्धकेन महाभागा पापे नैवा-

---

पुण्यसञ्चय क्यों न करूँ ? ॥२६॥ व्याधने कहा, कि-हेगौतमि! इस एक साँपसे बहुतोंकी रक्षा करनी चाहिये, बहुतोंके सामने इस एक की रक्षा करना उचित नहीं है, धर्मको जानने वाले पुरुष अपराधीको त्यागदेते हैं,अतः तू भी इस पापी साँपको मार डाल ॥३०॥ गौतमीने कहा, कि—हे व्याध ! इस साँपको मारने से मेरा पुत्र जीवित नहीं होजायगा और इसको मारनेसे और भी कुछ लाभ नहीं है, अतः हे व्याध ! तू इस साँपको जीवित ही छोड़ दे ॥ ३१॥ व्याधने कहा, कि-देवराज इन्द्र वृत्रासुरको मार कर सुखी हुआ था, शूलधारी शिवने दक्षको मारकर यज्ञ का भाग पाया था,अतः तू देवताकी समान कर्म कर और इस साँपको शीघ्र ही मारडाल, अपने मनमें कुछ विचार न कर ॥३२॥ भीष्मजीने कहा, कि—व्याधने गौतमीसे वारंवार इसप्रकार कहा, तो भी उस महाभागा स्त्रीने सर्प-वधका पापमय विचार किया ही नहीं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर पाशकी पीड़ासे कष्टके कारण धीरे २

करोन्मतिम् ॥३४॥ ईषदुच्छ्वसमानस्तु कृच्छ्रात्संस्तभ्य पन्नगः । उत्ससर्ज गिरं मन्दां मानुषीं पाशपीडितः ॥३५॥ सर्प उवाच । को न्वर्जुनक दोषोऽत्र विद्यते मम बालिश।अस्वतंत्रं हि मां मृत्युर्विवशं यदचूचुदत् ॥ ३६ ॥ तस्यायं वचनादष्टो न कोपेन न काम्यया । तस्य तत्किल्बिषं लुब्ध विद्यते यदि किल्बिषम् ३७ लुब्धक उवाच । यद्यन्यवशगेनेदं कृतं ते पन्नगाशुभम् । कारणं वै त्वमप्यत्र तस्मात्त्वमपि किल्बिषी ॥ ३८ ॥ मृत्पात्रस्य क्रियायां हि दण्डचक्रादयो यथा । कारणत्वे प्रकल्प्यन्ते तथा। त्वमपि पन्नग ॥३९॥ किल्बिषी चापि मे वध्यः किल्बिषी चासि पन्नग। आत्मानं कारणं ह्यत्र त्वमाख्यासि भुजङ्गम ॥४०॥ सर्प उवाच।

साँस लेता हुआ वह साँप धीरे २ मनुष्य वाणीमें कहने लगा ३४ साँपने कहा,कि-मैं पराधीन हूँ,मुझै भी मृत्युने प्रेरणाकी थी, तब हे मूर्ख अर्जुनक ! इसमें मेरा क्या दोष है ? ॥३५॥ मैंने कोपसे अथवा इच्छा करके इसको नहीं डसा, किंतु मृत्युके वचनसे ही मैंने इसको डसा था, यदि इसमें कुछ अपराध है तो वह मृत्युका ही है, मेरा क्या अपराध है ॥ ३६ ॥ व्याधने कहा कहा, कि-हे साँप ! तूने दूसरेके वशमें होकर अशुभ कर्म किया है अतः तू इस अशुभ कर्मका कारणरूप है, इसलिये तू भी अपराधी है ॥ ३७ ॥ मट्टीके पात्रको बनानेमें जैसे दण्ड, चाक आदि भी कारण हैं, ऐसे ही तू भी इस अशुभ कर्मका कारण है ॥ ३८ ॥ हे साँप ! जो अपराधी होता है उसको मैं मार डालता हूँ, और तू अपराधी है, क्योंकि-तू इसमें स्वयं ही अपनेको अपराधी बता रहा है ३९ साँपने कहा, कि-मृत्तिकाके एक पात्रको बनानेमें जैसे दण्ड, चक्र आदि (कुंभकारके आधीन) पराधीन हैं, ऐसे ही मैं भी पराधीन हूँ, अतः तुझै इसमें मेरा अपराध न समझना चाहिये ॥ ४० ॥ और तू यह समझता हो, कि दण्ड, चक्र,

सर्वे एते ह्यस्ववशा दण्डचक्रादयो यथा । तथाहमपि तस्मान्मे नैष दोषो मतस्तव ॥४१॥ अथवा मतमेतत्ते तेऽप्यन्योऽन्यप्रयोजकाः । कार्यकारणसन्देहो भवत्यन्योऽन्यचोदनात् ॥ ४२ ॥ एवं सति न दोषो मे नास्मि वध्यो न किल्वषी । किल्विषं समवाये स्यान्मन्यसे यदि किल्विषम् ॥४३॥ लुब्धक उवाच । कारणं यदि न स्याद्वै न कर्ता स्यास्त्वमप्युत । विनाशकारणं त्वं च तस्माद्वध्योऽसि मे मतः ॥ ४४ ॥ असत्यपि कृते कार्ये नेह पन्नग लिप्यते । तस्मान्नात्रैव हेतुः स्याद्वध्यः किं बहु मन्यसे॥४५॥ सर्प उवाच । कार्याभावे क्रिया न स्यात्सत्यसत्यपि कारणे । तस्मात्समेऽस्मिन्

कुम्हार आदि परस्परके प्रयोजक हैं, तब उनमें अमुक ही कारण है इसमें संदेहही रहता है॥४१॥ ऐसेही इसमें मेरा दोष नहीं है और मैं वध करने योग्य और पापी भी नहीं हूँ, यदि तू मारने वालेको पापी समझता हो तो सबको ही पापी समझना चाहिये ॥ ४२ ॥ व्याधने कहा, कि-तू कर्ता अथवा कारण न हो तब भी तू इसके विनाशका तो कारण है ही अतः तू मारने योग्य है, ऐसा मेरा मत है४३ हे साँप ! (तेरे मतानुसार) पाप कर्म करने परभी कर्ता को पाप नहीं लगता है तो क्या तू अपने को (इस गौतमीके पुत्रके वधरूप कर्ममें) प्रायश्चित्ती नहीं समझता है॥४४॥ साँपने कहा, कि-कर्ता हो अथवा न हो तो भी कारणके विना क्रिया नहीं होती है अर्थात् बढईके कुल्हाड़ेके द्वारा वृक्षोंका नाश होजाता है अथवा वृक्षोंकी डालियोंके परस्पर रगड़नेपर अग्नि उत्पन्न होनेपर वृक्षोंका नाश होजाता है,इस प्रकार विना कारणके क्रिया नहीं होती है,अतएव तुझे इस विषयमें कारणपनका विशेषरूपसे विचार करना चाहिये अर्थात् डालियोंकी समान मैं भी कर्ता नहीं हूँ४५हे व्याध ! इसके वधमें तू मुझे ही वास्तवमें कर्ता मानता है परन्तु इस प्राणिनाशन कर्ममें प्रकृत कर्ता

हेतौ मे वाच्यो हेतुर्विशेषतः ॥ ४६ ॥ यद्यहं कारणत्वेन मतो लुब्धक तत्त्वतः । अन्यः प्रयोगे स्यादत्र किल्बिषी जंतुनाशने ४७ लुब्धक उवाच । वध्यस्त्वं मम दुर्बुद्धे बालघाती नृशंसकृत् । भाषसे किं बहु पुनर्वध्यः सन् पन्नागाधम ॥४८॥ सर्प उवाच । यथा हवींषि जुह्वाना मखे वै लुब्धकर्त्विजः । न फलं प्राप्नुवंत्यत्र फलयोगे तथा ह्यहम् ॥४९॥ भीष्म उवाच। तथा ब्रुवति तस्मिंस्तु पन्नगे मृत्युचोदिते।आजगाम ततो मृत्युः पन्नगं चाब्रवीदिदम्५०

(अपराधी) तो और ही है अर्थात् शाखाओंका जैसे वायु कर्ता है, तैसे ही मेरा भी कर्ता और है और वास्तवमें तो वायुकी समान वह भी दोषी नहीं है ४६ व्याधने कहा, कि-हे दुर्बुद्धि ! तू बालहत्यारा है, खोटा कर्म करनेवाला है, अतः तू मारने योग्य है (तू बुद्धिपूर्वक हिंसा करके अपनेको वृत्तशाखाकी समान निरपराध बताता है)अतः हे अधम साँप ! मैं तुझे मार डालूँगा, तू बड़बड़ न कर ?॥४७॥ साँपने कहा, कि-हे व्याध ! ऋत्विज अग्निमें हविको होमते हैं,परन्तु उनको उसका फल नहीं मिलता है, इसीप्रकार मैं भी इस कर्ममें फलका भोक्ता नहीं हूँ अर्थात् मृत्यु ही इसका अपराधी है ॥ ४८ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-मृत्युका प्रेरित सर्प इसप्रकार बातें कर रहा था, इतनेमें ही तहाँ मृत्यु आपहुँचा और कहने लगा, कि-॥ ४९ ॥ हे सर्प ! काल (स्वरूप ईश्वर) के प्रेरणा करने पर मैंने तुझे प्रेरित किया था, इस बालकको मारनेमें तू भी कारण नहीं है और मैं भी कारण नहीं हूँ (अर्थात् जैसे हाथी चोरके ऊपर धँस कर उसको मार डालता है इस काममें महावत हाथीको प्रेरित करता है, महावतको राजा प्रेरित करता है और राजाको चोरका अपराध प्रेरित करता है, इसप्रकार जैसे चोर अपने ही अपराधसे मरण पाता है और इसमें राजा महावत और हाथी कोई भी दोष-

प्रचोदितोऽहं कालेन पन्नग त्वामचूचुदम् । विनाशहेतुर्नास्य त्वमहं नः प्राणिनःशिशोः५१यथा वायुर्जलधरान्विकर्षति ततस्ततः। तद्वज्जलदवत् सर्प कालस्याहं वशानुगः ॥५२॥ सात्विका राजसाश्चैव तामसा ये च केचन। भावाः कालात्मकाः सर्वे प्रवर्ततेह जन्तुषु ॥ ५३ ॥ जङ्गमाः स्थावराश्चैव दिवि वा यदि वा भुवि । सर्वे कालात्मकाः सर्प कालात्मकमिदं जगत् ॥ ५४ ॥ प्रवृत्तयश्च लोकेऽस्मिंस्तथैव च निवृत्तयः । तासां विकृतयो याश्च सर्वं कालात्मकं स्मृतम् ॥ ५५ ॥ आदित्यश्चन्द्रमा विष्णुरापो वायुः शतक्रतुः । अग्निः खं पृथिवी मित्रः पर्जन्यो वसवोदितिः॥५६॥ सरितः सागराश्चैव भावाभावौ च पन्नग । सर्वे कालेन सृज्यंते

भागी नहीं होता है, ऐसे ही मैं काल या तू इस बालकके वधमें दोषी नहीं है । तात्पर्य यह है, कि–भीष्म आदिको मारनेसे तू भी दोषका भागी नहीं है)॥५०॥जैसे वायुमेघोंकोजहाँ चाहे तहाँ पटक देता है ऐसे ही हे सर्प !बादलोंके अनुसार मैं भी कालकी आज्ञामें रहता हूँ ॥ ५१ ॥ सात्विक, राजस और तामस भाव ये सब कालके आत्मस्वरूप हैं और सब प्राणी कालकी आज्ञानुसार ही उनमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ५२ ॥ हे सर्प ! स्वर्गमें और पृथ्वीमें जितने स्थावर और जंगम पदार्थ हैं,वे सब कालस्वरूप हैं और यह जगत् भी कालका ही स्वरूप है ॥ ५३ ॥ इस जगत्में जितनी प्रवृत्ति निवृत्ति और विकृतियें हैं,वे सब कालात्मक कहलाती हैं ॥ ५४ ॥ हे सर्प ! आदित्य, चन्द्रमा, विष्णु, जल, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, सूर्य, वर्षा, वसु, अदिति, नदी, समुद्र, भाव और अभाव इन सबको काल ही वारंवार रचता है और वारम्वार उनका संहार करता है५५-५६ हे सर्प ! यह जानने पर भी तू मुझे अपराधी क्यों समझता है, कि–अब भी तू मुझे अपराधी समझता हो तो तू भी अपराधी

ह्रियंते च पुनः पुनः ॥ ५७ ॥ एवं ज्ञात्वा कथं मां त्वं सदोषं सर्प मन्यसे । अथ चैवं गते दोषे मयि त्वमपि दोषवान् ॥५८॥ सर्प उवाच । निर्दोषं दोषवन्तं वा न त्वां मृत्यो ब्रवीम्यहम् । त्वयाहं चोदित इति ब्रवीम्येतावदेव तु ॥ ५९ ॥ यदि काले तु दोषोऽस्ति यदि तत्रापि नेष्यते । दोषो नैव परीक्ष्यो मे नह्यत्राधिकृता वयम् ॥ ६० ॥ निर्मोक्षस्त्वस्य दोषस्य मया कार्यो यथा तथा । मृत्योरपि न दोषः स्यादिति मेऽत्र प्रयोजनम् ॥ ६१ ॥ भीष्म उवाच । सर्पोऽथार्जुनकं प्राह श्रुतं ते मृत्युभाषितम् । नानागसं मां पाशेन संतापयितुमर्हसि ॥६२॥लुब्धक उवाच । मृत्योः श्रुतं मे वचनं तव चैव भुजङ्गम । नैव तावददोषत्वं भवति त्वयि पन्नगः ॥ ६३ ॥ मृत्युस्त्वं चैव हेतुर्हि बालस्यास्य विनाशने ।

है ॥ ५७ ॥ सर्पने कहा, कि-हे मृत्यो ! मैं तुझे अपराधी वा निरपराधी नहीं मानता, परन्तु मैं तो यही कहता हूँ, कि-तूने मुझे प्रेरणा की थी ॥ ५८ ॥ काल भी दोषी हो या न हो, तो भी मुझे इसका निर्णय नहीं करना है, क्योंकि-हम इसके अधिकारी नहीं है ५९ ॥ परन्तु मुझे तो अपने ऊपर लगा हुआ यह दोष जिसप्रकार हो, तिसप्रकार दूर करना चाहिये, मेरे कहनेका प्रयोजन यही है और मृत्युका भी इसमें अपराध नहीं है ॥ ६० ॥ भीष्मजीने कहा, कि-तदनन्तर सर्पने अर्जुनकसे कहा, कि-तूने मृत्युकी बात सुन ली, अतः अब तू मुझ निरपराधको चर्मपाशसे दुःख न दे ॥ ६१ ॥ व्याधने कहा, कि-हे सर्प! मैंने मृत्युकी और तेरी दोनोंकी बातें सुनी, परन्तु हे सर्प! इनसे तू निर्दोष प्रमाणित नहीं होता ॥ ६२ ॥ इस बालकको मारनेमें तुम दोनों कारण हो, मैं तुम दोनोंको कारण समझता हूँ और निरपराध नहीं मानता ॥ ६३ ॥ दुरात्मा, क्रूर और सत्पुरुषोंको कष्ट देने वाले मृत्युको धिक्कार है, पापके कारण

उभयं कारणं मन्ये न कारणमकारणम् ॥ ६४ ॥ धिङ् मृत्युं च दुरात्मानं क्रूरं दुःखकरं सताम् । त्वां चैवाहं वधिष्यामि पापं पापस्य कारणम् ॥६५॥ मृत्युरुवाच । विवशौ कालवशगावावां निर्दिष्टकारिणौ । नावां दोषेण गन्तव्यौ यदि सम्यक्प्रपश्यसि ॥६ लुब्धक उवाच । युवामुभौ कालवशौ यदि मे मृत्युपन्नगौ । हर्ष-क्रोधौ यथा स्यातामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ६७ ॥ मृत्युरुवाच । या काचिदेव चेष्टा स्यात्सर्वा कालप्रचोदिता । पूर्वमेवैतदुक्तं हि मया लुब्धक कालतः ॥६८॥ तस्मादुभौ कालवशावावां निर्दिष्ट-कारिणौ । नावां दोषेण गन्तव्यौ त्वया लुब्धक कर्हिचित्॥६९॥ भीष्म उवाच । अथोपगम्य कालस्तु तस्मिन् धर्मार्थसंशये । अब्र-

रूप तुझ पापीको मैं मारडालूँगा ॥ ६४ ॥ मृत्युने कहा, कि-हम दोनों पराधीन हैं, कालके वशमें हैं और उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करते हैं, अतः तू यथार्थरीतिसे जाँचेगा, तो हम दोषी नहीं प्रतीत होंगे ॥६५॥ व्याधने कहा, कि-हे मृत्यु और सर्प ! यदि तुम दोनों कालके अधीन हो तो हर्ष और शोक क्यों होता है यह मैं जानना चाहता हूँ ॥ ६६ ॥ मृत्युने कहा, कि-हे व्याध ! इस जगत्में (प्राणिमात्र) जो कुछ चेष्टा करते हैं वे सब कालकी प्रेरणासे होती हैं, यह बात मैंने पहिले ही कह दी है, कि-जो कुछ होता है, वह सब कालकी प्रेरणासे होता है ॥ ६७ ॥ अतः हे व्याध ! हम दोनों कालके अधीन हैं और उसकी आज्ञाके अनुसार काम करने वाले हैं अतः तुझे हमको किसीप्रकार अपराधी नहीं समझना चाहिये ॥ ६८ ॥ भीष्म-जीने कहा, कि-जब इसप्रकार धर्मसंबन्धी सन्देह होनेलगा, तब तहाँ पर काल आगया और उसने सर्प, मृत्यु और व्याध अर्जुनकसे कहा ॥ ६९ ॥ कालने कहा कि-हे व्याध ! मैं मृत्यु अथवा यह सर्प इनमेंसे कोई भी हत्याका अपराधी नहीं है,

वीतपन्नगं मृत्युं लुब्धं चार्जुनकं तथा ॥ ७० ॥ काल उवाच । न ह्यहं नाप्ययं मृत्युर्नायं लुब्धक पन्नगः । किल्बिषी जन्तुमरणे न वयं हि प्रयोजकाः ॥ ७१ ॥ अकरोद्यदयं कर्म तन्नोऽर्जुनकचोदकम् । विनाशहेतुर्नान्योस्य वध्यतेयं स्वकर्मणा ॥ ७२ ॥ यदनेन कृतं कर्म तेनायं निधनं गतः । विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम् ॥७३॥ कर्मदायादवांल्लोकः कर्मसंवन्धलक्षणः । कर्माणि चोदयंतीह यथान्योन्यं तथा वयम् ॥ ७४ ॥ यथा मृत्पिंडतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति । एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥७५॥ यथाच्छायातपौ नित्यं सुसंवद्धौ निरन्तरम् । तथा कर्म च कर्ता संवद्धावात्मकर्मभिः ॥ ७६ ॥ एवं नाहं न वै मृत्युर्न सर्पो न

क्योंकि-प्राणिमात्रके मरणमें हम प्रयोजक नहीं हैं ॥७०॥ परन्तु हे अर्जुनक ! इस वालकने जो कर्म किया था, उसने ही हमको प्रेरित किया था,यह वालक अपने कर्मसे ही मरा है,इसका और कोई कारण नहीं है ॥ ७१ ॥ इस वालकने जो कर्म किया था उससे इसका मरण होगया है; इसके विनाशमें इसका कर्म ही कारण है और हम सव कर्मके आधीन हैं७२कर्म ही पुत्रकी समान तारने वाला है,और कर्मसे ही पुण्य और पाप जाने जाते हैं,कर्म ही जैसे दूसरे कर्मको प्रेरित करते हैं,ऐसे हीहमभी परस्परके प्रेरक हैं७३जैसे कुम्हार मट्टीके डलेसे इच्छानुसार पदार्थ वनाता है,इसी प्रकार मनुष्य भी कर्मानुसार फल पाता है ॥७४॥ जैसे परछाई और धूप सदा परस्पर मिले रहते हैं तैसे ही कर्म और कर्ता भी अपने कर्मोंसे वँधे हुए हैं॥७५॥ इसप्रकार विचार करने पर इस वालककी मृत्युमें मैं कारण नहीं हूँ, मृत्यु और साँप भी कारण नहीं है और तू भी कारण नहीं है तथा यह वृद्धा ब्राह्मणी भी कारण नहीं है परन्तु यह वालक ही कारण है ॥७६॥ हे राजन्! काल इसप्रकार कहरहा था, तव गौतमी ब्राह्मणी-"मनुष्योंको

तथा भवान् । न चेयं ब्राह्मणी वृद्धा शिशुरेवात्र कारणम् ७७
तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु ब्राह्मणी गौतमी नृप । स्वकर्मप्रत्ययाँल्लो-
कान्मत्वार्जुनकमब्रवीत् ॥ ७८ ॥ गौतम्युवाच । नैव कालो न
भुजगो न मृत्युरिह कारणम् । स्वकर्मभिरयं बालः कालेन निधनं
गतः ॥ ७९ ॥ मया च तत्कृतं कर्म येनायं मे मृतः सुतः । यातु
कालस्तथा मृत्युर्मुञ्चार्जुनक पन्नगम् ॥ ८० ॥ भीष्म उवाच ।
ततो यथागतं जग्मुर्मृत्युः कालोऽथ पन्नगः । अभूद्विशोकोऽर्जु-
नको विशोका चैव गौतमी ॥ ८१ ॥ एतच्छ्रुत्वा शमं गच्छ मा
भूः शोकपरो नृप । स्वकर्मप्रत्ययाँल्लोकान् सर्वे गच्छन्ति वै
नृप ॥ ८२ ॥ नैव त्वया कृतं कर्म नापि दुर्योधनेन वै । काले-

अपने कर्मानुसार फल मिलता है" यह समझकर अर्जुनकसे कहनेलगी, ॥ ७७ ॥ गौतमीने कहा, कि-इस बालकके मरणमें काल भी कारण नहीं है, साँप भी कारण नहीं है और मृत्यु भी कारण नहीं है,परन्तु यह बालक अपने कर्मोंसे ही मरा है७८ तथा मैंने भी कोई ऐसा कर्म किया है, जिससे मेरा पुत्र मरगया है अतः काल और मृत्यु अपने २ स्थानको चलेजाँय और हे अर्जुनक ! तू इस साँपको छोड़दे ॥ ७९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-फिर काल, मृत्यु और साँप जैसे आये थे, तैसे ही चलेगए और गौतमीका शोक भी दूर हुआ ॥८०॥ हे राजन् ! तू भी इसप्रकार कथाको सुनकर शान्तिको प्राप्त हो शोक न कर, हे राजन् ! सब मनुष्य अपने २ कर्मोंके अनुसार स्वर्ग नरक,मृत्यु आदि फलको पाते हैं ॥८१॥ तूने कुछ काम नहीं किया है तथा दुर्योधनने भी कोई काम नहीं किया परन्तु यह सब कालने किया है और कालने ही राजाओंका संहार किया है ॥ ८२ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-महातेजस्वी और धर्मज्ञ राजा युधि-

नैतत्कृतं विद्धि निहता येन पार्थिवाः॥८३॥ वैशम्पायन उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा बभूव विगतज्वरः । युधिष्ठिरो महातेजाः पप्रच्छेदं च धर्मवित् ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते आनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि दानधर्मे गौतमीलुब्धकव्यालमृत्युकालसंवादे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

युधिष्ठिर उवाच । पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । श्रुतं मे महदाख्यानमिदं मतिमतां वर ॥ १ ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मार्थसहितं नृप।कथ्यमानं त्वया किंचित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२॥ केन मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः। इत्येतत्सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेनापि च पार्थिव ॥३॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यथा मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ॥४॥ मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत्सुतः । तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ॥ ५ ॥ दशमस्तस्य पुत्रस्तु

ष्ठिरका भीष्मजीकी इस बातको सुनकर सन्ताप दूर होगया, तब वह इस प्रकार प्रश्न करने लगे ॥ ८३ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त

राजा युधिष्ठिरने कहा, कि-हे पितामह ! हे बुद्धिमान् ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! मैंने आपसे यह लम्बी कथा सुनी ॥ १ ॥ हे पृथ्वीपति ! फिर भी मैं आपसे धर्मरूपी प्रयोजन वाला कोई आख्यान सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे कोई धार्मिक आख्यान कहिये ॥ २ ॥ हे राजन् ! क्या किसी गृहस्थने धर्माचरण करके मृत्युका पराजय किया है यह बात आप मुझसे यथार्थरीतिसे कहिये ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-एक गृहस्थने धर्माचरण करके मृत्युको जिसप्रकार जीता था उस प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त इसप्रकार दिया जाता है ॥४॥ हे राजन् ! मनु नामक प्रजापतिके इक्ष्वाकु नामक पुत्र था, और सूर्यकी समान प्रतापी राजा इक्ष्वाकुके सौ पुत्र थे ५

दशाश्वो नाम भारत।माहिष्मत्यामभूद्राजा धर्मात्मा सत्यविक्रमः६
दशाश्वस्य सुतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः । सत्ये तपसि दाने च
यस्य नित्यं रतं मनः ॥ ७ ॥ मदिराश्व इति ख्यातः पृथिव्यां
पृथिवीपतिः। धनुर्वेदे च वेदे च निरतो योऽभवत्सदा॥८॥मदिरा-
श्वस्य पुत्रस्तु द्युतिमान्नाम पार्थिवः। महाभागो महातेजा महा-
सत्त्वो महाबलः ॥९॥ पुत्रो द्युतिमतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः।
सर्वलोकेषु विख्यातः सुवीरो नाम नामतः ॥ १० ॥ धर्मात्मा
कोपवांश्चापि देवराज इवापरः। सुवीरस्य तु पुत्रोऽभूत्सर्वसंग्राम-
दुर्जयः॥११॥ स दुर्जय इति ख्यातः सर्वशस्त्रभृतां वरः। दुर्ज-
यस्येन्द्रवपुषः पुत्रोऽश्विसदृशद्युतिः॥ १२ ॥ दुर्योधनो नाम महान्
राजा राजर्षिसत्तमः। तस्येन्द्रसमवीर्यस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः १३

उनमें दशवें पुत्रका नाम दशाश्व था, वह सत्यपराक्रमी धर्मात्मा राजा माहिष्मती नगरीमें राज्य करता था ॥ ६ ॥ दशाश्वका पुत्र पृथ्वीमें राजा मदिराश्व नामसे प्रसिद्ध था, वह पृथ्वीपति परमधार्मिक था, उसका मन सत्य, तप और दान करनेमें बहुत लगता था और वह सदा धनुर्वेद और वेदमें प्रीति रक्खा करता था ॥ ७-८ ॥ मदिराश्वके पुत्रका नाम द्युतिमान् था, वह राजा महाभाग्यवान्, परमतेजस्वी, महासत्त्व और महाबली था ॥९॥ द्युतिमान्के सब लोकोंमें प्रसिद्ध सुवीर नामक पुत्र था, वह परम धार्मिक था ॥ १० ॥ धर्मात्मा, धनी और दूसरे इन्द्रकी समान राजा सुवीरका सब संग्रामोंमें कठिनता से जीतनेमें आने वाला एक पुत्र था ॥ ११ ॥ वह सुदुर्जय नाम से प्रसिद्ध था और सब सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ था, इन्द्र की समान दिव्य शरीर वाले सुदुर्जयके अश्विनीकुमारकी समान कान्ति वाला एक पुत्र था ॥ १२॥ उसका नाम दुर्योधन था वह महाराजा राजर्षियोंमें श्रेष्ठ था, इन्द्रकी समान पराक्रमी और

विषये वासवस्तस्य सम्यगेव प्रवर्षति । रत्नैर्धनैश्च पशुभिः सस्यै-
श्चापि पृथग्विधैः ॥ १४ ॥ नगरं विषयश्चास्य प्रतिपूर्णस्तदाऽ-
भवत् । न तस्य विषये चाभूत् कृपणो नापि दुर्गतः ॥ १५ ॥
व्याधितो वा कृशो वाऽपि तस्मिन्नाभून्नरः क्वचित् । सुदक्षिणो
मधुरवागनसूयुर्जितेन्द्रियः । धर्मात्मा चानृशंसश्च विक्रान्तोऽथा-
विकत्थनः ॥ १६ ॥ यज्वा च दान्तो मेधावी ब्रह्मण्यः सत्य-
संगरः । न चावमन्ता दाता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १७ ॥ तं
नर्मदा देवनदी पुण्या शीतजला शिवा । चकमे पुरुषव्याघ्रं
स्वेन भावेन भारत ॥ १८ ॥ तस्यां जज्ञे तदा नद्यां कन्या
राजीवलोचना । नाम्ना सुदर्शना राजन् रूपेण च सुद-
र्शना ॥ १९ ॥ तादृग्रूपा न नारीषु भूतपूर्वा युधिष्ठिर । दुर्योधन-

संग्राममें पीछेको न हटनेवाले उस राजाके देशमें मेघ भलीभाँति वर्षा करते थे और उस राजाका राज्य नाना प्रकारके रत्नोंसे, धनोंसे, पशुओंसे, धान्योंसे और नगरोंसे भरा हुआ था, उस राजाके देशमें कोई भी पुरुष कृपण अथवा दुःखी नहीं था१३-१५ उस राजाके राज्यमें कहीं रोगी अथवा दुर्बल नहीं था, राजा दुर्योधन अतिचतुर, मधुर बोलनेवाला था, ईर्षारहित, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, अक्रूर और पराक्रमी था तथा अपनी प्रशंसा नहीं करता था ॥ १६ ॥ वह यज्ञ करने वाला, इन्द्रियोंको वशमें रखने वाला, बुद्धिमान्, ब्राह्मणोंका पालन करने वाला और सत्य प्रतिज्ञा वाला था, वह किसीका अपमान नहीं करता था और वेद वेदांगोंमें पारंगत दाता था ॥ १७ ॥
हे राजन्! कल्याणकारिणी, पवित्र तथा शीतल जलवाली देवनदी नर्मदा उस पुरुषव्याघ्र राजा पर अपनी इच्छासे आसक्त होगई १८
तब हे राजन्! उस नदीके कमलकी समान नेत्रवाली सुदर्शना नामवाली रूप और दर्शनमें भी सुदर्शना कन्या उत्पन्न हुई॥१९॥

सुता यादृगभवद्वरवर्णिनी ॥ २० ॥ तामग्निश्चकमे साक्षाद्राज-
कन्यां सुदर्शनाम् । भूत्वा च ब्राह्मणो राजन्वरयामास तं नृपम् २१
दरिद्रश्चासवर्णश्च ममायमिति पार्थिवः । न दित्सति सुतां
तस्मै तां विप्राय सुदर्शनाम् ॥ २२ ॥ ततोऽस्य वितते यज्ञे नष्टो-
ऽभूद्धव्यवाहनः । ततः सुदुःखितो राजा वाक्यमाह द्विजांस्तदा २३
दुष्कृतं मम किं नु स्याद्भवतां वा द्विजर्षभाः । येन नाशं जगा-
माग्निः कृतं कुपुरुषेष्विव ।।२४॥ न ह्यल्पं दुष्कृतं नोऽस्ति येना-
ग्निर्नाशमागतः । भवतां चाथवा मह्यं तत्त्वेनैतद्विमृश्यताम् ।।२५॥
तत्र राज्ञो वचः श्रुत्वा विप्रास्ते भरतर्षभ। नियता वाग्यताश्चैव
पावकं शरणं ययुः ॥ २६ ॥ तान् दर्शयामास तदा भगवान्

हे युधिष्ठिर ! उस समय दुर्योधनकी पुत्रीकी समान और, कोई रूपवती स्त्री नहीं थी ॥ २० ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! साक्षात् अग्निदेव उस राजकन्या सुदर्शना पर आसक्त होगए और ब्राह्मण का रूप धारण करके राजासे उस कन्याको माँगा ॥ २१ ॥ परन्तु राजाने उस ब्राह्मणको दरिद्र और अपनी जातिका न समझकर अपनी सुदर्शना कन्या देना न चाही ॥ २२ ॥ तव उसके यज्ञमेंसे हव्यको ग्रहण करनेवाले अग्नि अन्तर्धान होगए, यह देखकर राजाको वड़ा दुःख हुआ, और उसने उस समय ब्राह्मणोंसे बूझा, कि-॥ २३ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! मुझसे या आपसे ऐसा कौनसा दुष्कर्म वनगया, कि-जिससे यह अग्निदेव दुष्पुरुष पर कियेहुए उपकारकी समान नष्ट होगए हैं ॥ २४ ॥ आपका या मेरा थोड़ा अपराध नहीं है,तभी तो यह अग्नि लुप्त होगए हैं, इसका यथार्थ विचार करिये॥२५॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वे ब्राह्मण राजाकी बात सुनकर वाणीको नियममें रखकर और नियमोंको ग्रहण करके अग्निकी शरणमें गए ॥२६॥ उस समय शरद ऋतुके सूर्यकी समान कान्तिवाले भगवान्

हव्यवाहनः। स्वं रूपं दीप्तिमत्कृत्वा शरदर्कसमद्युतिः ॥ २७ ॥ ततो महात्मा तानाह दहनो ब्राह्मणर्षभान्। वरयाम्यात्मनोऽर्थाय दुर्योधनसुतामिति ॥ २८ ॥ ततस्ते कल्यमुत्थाय तस्मै राज्ञे न्यवेदयन्। ब्राह्मणा विस्मिताः सर्वे यदुक्तं चित्रभानुना ॥२९॥ ततः स राजा तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मवादिनाम्। अवाप्य परमं हर्षं तथेति प्राह बुद्धिमान् ॥ ३० ॥ अयाचत च तं शुल्कं भगवन्तं विभावसुम्। नित्यं सान्निध्यमिह ते चित्रभानो भवेदिति ॥३१॥ तमाह भगवानग्निरेवमस्त्वित्यति पार्थिवम्। ततः सान्निध्यमद्यापि माहिष्मत्यां विभावसोः ॥ ३२ ॥ दृष्टं हि सहदेवेन दिशं विजयता तदा। ततस्तां समलंकृत्य कन्यामाहतवाससम् ॥ ३३ ॥

हव्यवाहनने अपने स्वरूपको तेजस्वी बनाकर ब्राह्मणोंको दर्शन दिये ॥ २७ ॥ फिर महात्मा अग्निने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे कहा, कि–मैं अपने लिये दुर्योधनकी पुत्रीको माँगना चाहता हूँ ॥२८॥ तदनन्तर उन सब ब्राह्मणोंने विस्मित होकर प्रातःकालके समय राजा दुर्योधनसे अग्निकी कहीहुई बात कही ॥ २९ ॥ राजा उन ब्रह्मवादियोंके कथनको सुनकर परम हर्षित हुआ और उस राजाने ब्राह्मणोंसे "तथास्तु" कहा ॥ ३० ॥ फिर उस राजाने भगवान् अग्निसे कन्याके शुल्करूपमें (वर) माँगा, कि–हे अग्नि! आपको सदा यहाँ रहना पड़ेगा ॥ ३१ ॥ भगवान् अग्निने उस राजासे कहा "तथास्तु" तबसे अबतक माहिष्मती नगरीके पास अग्निदेव रहा करते हैं ॥ ३२ ॥ सहदेवने भी दक्षिण दिशाको जीतते समय वहाँ अग्निके दर्शन किये थे, फिर राजा दुर्योधनने उस कन्याको गहने और वस्त्रोंसे भूपित कर अग्निको देदिया और अग्निने भी यज्ञमें घृतकी धाराको ग्रहण करनेकी समान राजकन्या सुदर्शनाको अपनी पत्नीरूपमें वेदविधिसे ग्रहण किया और उस कन्याके रूप, शील, शारीरिकबल और शोभासे उसके

ददौ दुर्योधनो राजा पावकाय महात्मने। प्रतिजग्राह चाग्निस्तु राजकन्यां सुदर्शनाम् ॥ ३४ ॥ विधिना वेददृष्टेन वसोर्धारामिवाध्वरे। तस्या रूपेण शीलेन कुलेन वपुषा श्रिया ॥ ३५ ॥ अभवत्प्रीतिमानग्निर्गर्भे चास्या मनो दधे। तस्याः समभवत्पुत्रो नाम्नाग्नेयः सुदर्शनः ॥ ३६ ॥ सुदर्शनस्तु रूपेण पूर्णेन्दुसदृशोपमः। शिशुरेवाध्यगात् सर्वं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३७॥ अथौघवान्नाम नृपो नृगस्यासीत्पितामहः। तस्याथौघवती कन्या पुत्रश्चौघरथोऽभवत् ॥ ३८ ॥ तामोघवान् ददौ तस्मै स्वयमोघवतीं सुताम्। सुदर्शनाय विदुषे भार्यार्थे देवरूपिणीम् ॥ ३९ ॥ स गृहस्थाश्रमरतस्तया सह सुदर्शनः। कुरुक्षेत्रेऽवसद्राजन्नोघवत्या समन्वितः ॥ ४० ॥ गृहस्थश्चावजेष्यामि मृत्युमित्येव स प्रभो। प्रतिज्ञामकरोद्धीमान् दीप्ततेजा विशांपते ॥ ४१ ॥ तामथौघवतीं राजन् स पावकसुतोऽब्रवीत। अतिथेः प्रतिकूलं ते न

ऊपर प्रसन्न रहने लगे और उसमें गर्भाधान करनेका विचार किया, तब उसमेंसे अग्निवंशका सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३३-३६ ॥ सुदर्शन रूपमें पूर्ण चन्द्रमाकी समान था और बाल्यावस्थासे ही उसने सनातन ब्रह्मके स्वरूपको जान लिया था ॥ ३७॥ राजा ओघवान् राजा नृगका पितामह था, उसके ओघवती नामकी एक कन्या और ओघरथ नामक एक पुत्र था ॥३८॥ राजा ओघवान्ने अपने आप अपनी ओघवती नामक देवकन्याकी समान रूपवती पुत्री विद्वान् सुदर्शन को भार्यारूपमें दी ॥ ३९ ॥ राजा सुदर्शन भी ओघवतीके साथ कुरुक्षेत्रमें रह कर गृहस्थाश्रमको चलाने लगा ॥४०॥ हे प्रभो ! प्रकाशवान् कान्ति वाले और बुद्धिमान् सुदर्शनने गृहस्थाश्रममें रह कर ही मृत्युको जीतनेकी प्रतिज्ञाकी ४१ हे राजन् ! उस अग्निपुत्र सुदर्शनने ओघवतीसे कह रक्खा था, कि-"तू अतिथिकी

कर्तव्यं कथञ्चन ॥ ४२ ॥ येन येन च तुष्येत नित्यमेव त्वयाऽतिथिः । अप्यात्मनः प्रदानेन न ते कार्या विचारणा ॥ ४३ ॥ एतद्व्रतं मम सदा हृदि संपरिवर्तते । गृहस्थानां च सुश्रोणि नातिथेर्विद्यते परम् ॥४४॥ प्रमाणं यदि वामोरु वचस्ते मम शोभने । इदं वचनमव्यग्रा हृदि त्वं धारयेः सदा ॥ ४५ ॥ निष्क्रान्ते मयि कल्याणि तथा संनिहितेऽनघे । नातिथिस्तेऽवमन्तव्यः प्रमाणं यद्यहं तव ॥ ४६ ॥ तमब्रवीदोघवती तथा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः । न मे त्वद्वचनात्किंचिन्नकर्तव्यं कथंचन ॥४७॥ जिगीषमाणस्तु गृहे तदा मृत्युः सुदर्शनम् । पृष्ठतोऽन्वगमद्राजन्रन्ध्रान्वेषी तदा सदा ॥ ४८ ॥ इध्मार्थं तु गते तस्मिन्नग्निपुत्रे सुदर्शने ।

इच्छाके प्रतिकूल कुछ न करना ॥४२॥ जिस २ वस्तुसे अतिथि प्रसन्न हो वह २ वस्तु अतिथिको सदा देना और अपने शरीर देनेका अवसर आजाय, तब भी कुछ विचार न करना ॥४३॥ इस व्रतकी बात सदा मेरे हृदयमें समाई रहती है, क्योंकि—हे सुश्रोणि! गृहस्थोंका अतिथिसेवासे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है ॥४४॥ हे वामोरु ! हे सुन्दरि ! तुझे यदि मेरा वचन प्रमाण हो, तो तू मेरे इस वचनको सदा अपने हृदयमें रखना ॥४५॥ हे कल्याणि ! हे निर्दोष स्त्री ! मैं बाहर चला जाऊँ अथवा तेरे समीपमें उपस्थित होऊँ तब यदि तू मुझे मान्य समझती हो तो अतिथिका अपमान कभी न करना "४६ ॥" तब ओघवतीने अपने दोनों हाथोंको जोड़ मस्तकसे लगाकर कहा, कि—" आपकी आज्ञा होनेपर ऐसा कोई काम नहीं है जो मेरे लिये अकर्तव्य हो॥४७॥ हे राजन्! तदनन्तर सुदर्शनको जीतनेकी इच्छावाला मृत्यु उसका छिद्र देखनेकी इच्छासे सदा उसके पीछे २ घूमनेलगा ॥ ४८ ॥ एक समय अग्निपुत्र सुदर्शन यज्ञकी समिधा लेनेके लिये बाहर गया था तब ओघवतीके पास एक श्रीमान् ब्राह्मण अतिथिके

अतिथिर्ब्राह्मणः श्रीमांस्तामाहौघवतीं तदा ॥ ४९ ॥ आतिथ्यं कृतमिच्छामि त्वयाद्य वरवर्णिनि । प्रमाणं यदि धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसम्मतः ॥ ५० ॥ इत्युक्ता तेन विप्रेण राजपुत्री यशस्विनी । विधिना प्रतिजग्राह वेदोक्तेन विशाम्पते ॥ ५१ ॥ आसनं चैव पाद्यं च तस्मै दत्वा द्विजातये । प्रोवाचौघवती विप्रं केनार्थः किं ददामि ते ॥ ५२ ॥ तामब्रवीत्ततो विप्रो राजपुत्रीं सुदर्शनाम् । त्वया ममार्थः कल्याणि निर्विशंकैतदाचर ॥ ५३ ॥ यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसम्मतः । प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥५४॥ स तया छंद्यमानोऽन्यैरीप्सितैर्नृपकन्यया । नान्यमात्मप्रदानात् स तस्या वव्रे वरं द्विजः ॥५५ ॥ सा तु राजसुता

रूपमें आया, और कहने लगा, कि-॥ ४९ ॥ हे सुन्दरांगि ! आज मैं तुझसे अतिथिसत्कार पाना चाहता हूँ, यदि तू गृहस्थाश्रमसम्मत अतिथिसत्कार धर्मको माननती हो,तो तू मेरा अतिथिसत्कार कर, यह मैं चाहता हूँ ॥५०॥ हे राजन् ! उस ब्राह्मणने यशस्विनी राजपुत्रीसे इसप्रकार कहा, तब उस राजपुत्रीने वेदोक्त विधिसे उसको स्वीकार किया ॥ ५१ ॥ और उस ब्राह्मणको आसन और पाद्य दिये, फिर ओघवतीने ब्राह्मणसे बूझा, कि-आपको किस पदार्थकी इच्छा है, मैं आपको क्या पदार्थ दूँ ५२ तब ब्राह्मणने राजपुत्री सुदर्शनासे कहा, कि-हे कल्याणि ! मेरा प्रयोजन तो तेरे ही साथ है, अतः तू शंकारहित होकर इस वस्तुको मुझे दे ॥ ५३ ॥ हे रानी ! यदि तुझे गृहस्थाश्रमका सम्मत धर्म मान्य हो तो तू मुझे अपनी आत्मा अर्पण करके मेरा प्रिय कार्य कर ॥ ५४ ॥ तब उस राजकन्याने दूसरे इष्ट वर मांगनेके लिये उस ब्राह्मणको ललचाया, परन्तु उस ब्राह्मणने उस राजकन्यासे उसके शरीरके अतिरिक्त और कोई वर नहीं माँगा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उस राज-

स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः । तथेति लज्जमाना सा तमुवाच द्विज-
र्षभम् ॥ ५६ ॥ ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवाथ विवेश ह ।
संस्मृत्य भर्तुर्वचनं गृहस्थाश्रमकांक्षिणः ॥ ५७ ॥ अथेध्मानमुपा-
दाय स पावकिरुपागमत् । मृत्युना रौद्रभावेन नित्यं बन्धुरिवा-
न्वितः ॥ ५८ ॥ ततस्त्वाश्रममागम्य स पावकसुतस्तदा । तां
व्याजहारौघवतीं क्वासि यातेति चासकृत् ॥ ५९ ॥ तस्मै प्रति-
वचः सा तु भर्त्रे न प्रददौ तदा । कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा
भर्तृव्रता सती । ६० ॥ उच्छिष्टास्मीति मन्वाना लज्जिता भर्तु-
रेव च । तूष्णींभूताभवत् साध्वी न चोवाचाथ किंचन ॥ ६१ ॥
अथ तां पुनरेवेदं प्रोवाच स सुदर्शनः । क्व सा साध्वी क्व सा

कन्याने अपने पतिके पहिले वचनोंका स्मरण किया, फिर उसने लजाते २ उस महात्मा ब्राह्मणसे कहा, कि-"तथास्तु" ५६ तदनन्तर वह ब्राह्मण हँसा और गृहस्थाश्रमके धर्मसे मृत्युको जीतनेकी इच्छावाले अपने पतिके वचनका स्मरण करने वाली उस राजपुत्रीके साथ भीतर गया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर अग्निपुत्र सुदर्शन ईंधन लेकर घरको लौटा, रौद्रस्वभाव वाला मृत्यु भी सगे भाईकी समान उसके पीछे सदा लगा ही रहता था ॥५८॥ तदनन्तर आश्रममें आकर अग्निपुत्र वारम्वार ओघवतीको बुलाता हुआ कहने लगा, कि-अरे ! तू कहाँ गई है ! ॥५९॥ परन्तु उस समय उसने अपने स्वामीको कुछ उत्तर नहीं दिया, क्योंकि-पतिव्रत पालने वाली सुदर्शनाको ब्राह्मण दोनों हाथोंसे स्पर्श कर रहा था ॥ ६० ॥ और वह सद्गुणी स्त्री "मैं अब उच्छिष्ट-अपवित्र होगई हूँ" यह विचार कर अपने भर्तासे कुछ न बोली ॥ ६१ ॥ उस समय सुदर्शन फिर अपनी स्त्रीको बुलाता हुआ कहने लगा, कि-वह साध्वी स्त्री कहाँ गई ? वह साध्वी स्त्री कहाँ गई ! मुझे उससे अधिक और कौन (प्रिय)

याता गरीयः किमतो मम ॥ ६२ ॥ पतिव्रता सत्यशीला नित्यं चैवार्जवे रता । कथं न प्रत्युदेत्यद्य स्मयमाना यथा पुरा ॥६३॥ उटजस्थस्तु तं विप्रः प्रत्युवाच सुदर्शनम् । अतिथिं विद्धि संप्राप्तं ब्राह्मणं पावके च माम् ॥ ६४ ॥ अनया छन्द्यमानोऽहं भार्यया तव सत्तम । तैस्तैरतिथिसत्कारैर्ब्रह्मन्नेषा वृता मया ॥ ६५ ॥ अनेन विधिना सेयं मामर्च्छति शुभानना । अनुरूपं यदत्रान्यत्तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥ ६६ ॥ कूटमुद्गरहस्तस्तु मृत्युस्तं वै समन्वगात् । हीनप्रतिज्ञमत्रैनं बधिष्यामीति चिंतयन् ॥ ६७ ॥ सुदर्शनस्तु मनसा कर्मणा चक्षुषा गिरा । त्यक्तेर्ष्यस्त्यक्तमन्युश्च स्मयमानोऽब्रवीदिदम् ॥ ६८ ॥ सुरतं तेऽस्तु विप्राग्र्य प्रीतिर्हि परमा मम । गृहस्थस्य हि धर्मोऽग्र्यः संप्राप्तातिथिपूजनम् ॥ ६९॥ अतिथिः

है ? ॥६२॥ पतिव्रता, सच्चे शील वाली, नित्य सरलता रखने वाली मेरी स्त्री जैसे मुझे हँसते २ उत्तर देती थी, तैसे ही आज उत्तर क्यों नहीं देती है ? ॥६३॥ उस समय झोंपड़ीमेंसे उस ब्राह्मणने सुदर्शनसे कहा, कि–हे अग्निके पुत्र ! मैं अतिथि ब्राह्मण आया हूँ, यह तू जान ॥६४॥ हे ब्राह्मणर्षभ ! भिन्न २ अतिथिसत्कारोंसे तेरी स्त्रीने मुझे ललचाया था, परन्तु अब वह मुझसे आवृत है ॥ ६५ ॥ और इस शुभानना स्त्रीने मुझे अङ्गसङ्ग दिया है, अतः अब तू जो कुछ दण्ड देना चाहे सो दे ॥ ६६ ॥ उस समय मृत्यु "यह विचारता हुआ कि–इसके प्रतिज्ञा भङ्ग करने पर मैं इसका वध करूँगा" हाथमें लोहेका मुद्गर लेकर तहाँ आगया ॥६७॥ परन्तु मन, वाणी, कर्म और नेत्रसे भी ईर्षा और क्रोध न करने वाले सुदर्शनने हँसते २ कहा, कि–॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मणर्षभ ! आये हुए अतिथिकी पूजा करना गृहस्थका परमधर्म है, अतः आप सुरतक्रीड़ा करिये, मैं परम-प्रसन्न हूँ ॥ ६९ ॥ जिस गृहस्थके घरसे अतिथि पूजा पाकर

पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति । नान्यस्तस्मात्परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ७० ॥ प्राणा हि मम दाराश्च यच्चान्यद्विद्यते वसु । अतिथिभ्यो मया देयमिति मे व्रतमाहितम् ॥७१॥ निःसंदिग्धं यथा वाक्यमेतन्मे समुदाहृतम् । तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे ॥ ७२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम् । बुद्धिरात्मा मनः कालो दिशश्चैव गुणा दश ॥ ७३ ॥ नित्यमेव हि पश्यन्ति देहिनां देहसंश्रिताः । सुकृतं दुष्कृतं चापि कर्म धर्मभृतां वर ॥ ७४ ॥ यथैषा नानृता वाणी मयाद्य समुदीरिता । तेन सत्येन मां देवाः पालयन्तु दहन्तु वा ॥७५॥ ततो नादः समभवद्दिक्षु सर्वासु भारत । असकृत् सत्यमित्येवं नैतन्मिथ्येति सर्वतः ॥ ७६ ॥ उटजात्तु ततस्तस्मान्निश्चक्राम स वै

जाता है, (उसको बड़ा पुण्य होता है) इससे अधिक और कोई धर्म नहीं है, ऐसा धर्मज्ञ कहते हैं ॥७०॥ मेरे प्राण, मेरी स्त्री, और जो कुछ भी मेरे पास धन है,वह सब अतिथिके लिये ही है, ऐसा मेरा व्रत है ॥ ७१ ॥ मैंने यह वाक्य निःशंक होकर कहा है, अतः हे विप्र ! इस सत्यसे मुझे आत्मज्ञान होगा ।७२। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और पाँचवाँ तेज, बुद्धि, आत्मा, मन, काल, और दिशायें, ये दश गुण (इन्द्रियाधिष्ठात्री देवता) हैं ॥ ७३ ॥ हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण ! ये दश गुण देहधारियोंके देहमें रहते हैं और वे सदा प्राणियोंके किये हुए पुण्य और पापको देखते रहते हैं ॥७४॥ मैं यह सच्ची वाणी बोल रहा हूँ, इस सत्यभाषणसे देवता मेरी रक्षा करें अथवा मुझे भस्म कर डालें ॥ ७५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तदनन्तर सब दिशाओंमें गर्जना करती हुई आकाशवाणी हुई, कि-तुम्हारा कहना सत्य है, मिथ्या नहीं है ॥ ७६ ॥ तदनन्तर वह ब्राह्मण झोंपडीमेंसे बाहर निकला और वायुकी समान अपने शरीरको

द्विजः । वपुषा द्यां च भूमिं च व्याप्य वायुरिवोद्यतः ॥ ७७ ॥ स्वरेण विप्रः शैक्षेण त्रींल्लोकाननुनादयन् । उवाच चैनं धर्मज्ञं पूर्वमामन्त्र्य नामतः ॥७८॥ धर्मोहमस्मि भद्रन्ते जिज्ञासार्थं तवानघ। प्राप्तः सत्यं च ते ज्ञात्वा प्रीतिर्मे परमा त्वयि ॥ ७९ ॥ विजितश्च त्वया मृत्युर्योऽयं त्वामनुगच्छति।रंध्रान्वेषी तव सदा त्वया धृत्या वशीकृतः ॥ ८० ॥ न चास्ति शक्तिस्त्रैलोक्ये कस्यचित्पुरुषोत्तम । पतिव्रतामिमां साध्वीं तवोद्वीक्षितुमप्युत ॥ ८१ ॥ रक्षिता त्वद्गुणैरेषा पतिव्रतगुणैस्तथा। अधृष्या यदियं ब्रूयात्तथा तन्नान्यथा भवेत्८२ एषा हि तपसा स्वेन संयुक्ता ब्रह्मवादिनी। पावनार्थं च लोकस्य सरिच्छ्रेष्ठा भविष्यति ॥ ८३ ॥ अर्धेनौघवती नाम त्वामर्धेनानुयास्यति । शरीरेण महाभागा

आकाश और पृथ्वीमें व्याप्त करता हुआ खड़ा होगया ॥७७॥ फिर शिक्षाके अनुकूल स्वरसे तीनों लोकोंको प्रतिध्वनित करता हुआ वह ब्राह्मण धर्मज्ञ सुदर्शनका नाम लेता हुआ कहने लगा, कि-॥७८ ॥ हे निर्दोष ब्राह्मण ! मैं धर्म हूँ, तेरा कल्याण हो ! मैं तेरे धर्मको जाननेकी इच्छासे यहाँ आया हूँ और तेरे सत्यकी परीक्षा कर मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ ॥७९॥ तूने अपने पीछे २ फिरने वाले मृत्युको जीत लिया है, यह सदा तेरा छिद्र ढूँढा करता था, इसको तूने अपने धैर्यसे वशमें कर लिया है ॥८०॥ हे पुरुषोत्तम ! तीनों लोकोंमें कोई भी तेरी इस पतिव्रता स्त्रीके सामने नहीं देख सकता ॥ ८१ ॥ यह अपने पातिव्रत्यसे और तेरे गुणोंसे सदा रक्षित रहती है, इसका कोई तिरस्कार नहीं करसकता और इस स्त्रीकी बात मिथ्या नहीं होसकती॥८२॥ अपने ही तपोबलसे यह ब्रह्मवादिनी स्त्री लोकोंको पवित्र करने के लिये एक श्रेष्ठ नदीका रूप धारण करेगी ॥८३॥ यह आधे शरीरसे ओघवती नामक नदी बनेगी और आधे शरीरसे यह

योगो ह्यस्या वशे स्थितः ॥८४॥ अनया सह लोकांश्च गन्तासि तपसार्जितान् । यत्र नावृत्तिमभ्येति शाश्वतांस्तान्सनातनान् ८५ अनेन चैव देहेन लोकांस्त्वमभिपत्स्यसे । निर्जितश्च त्वया मृत्यु-रैश्वर्यं च तवोत्तमम् ॥ ८६ ॥ पंचभूतान्यतिक्रान्तः स्ववीर्याच्च मनोजवः । गृहस्थधर्मेणानेन कामक्रोधौ च ते जितौ॥८७॥ स्नेहो रागश्च तंद्री च मोहो द्रोहश्च केवलः । तव शुश्रूषया राजन् राज-पुत्र्या विनिर्जिताः ॥ ८८ ॥ भीष्म उवाच । शुक्लानां तु सह-स्रेण वाजिनां रथमुत्तमम् । युक्तं प्रगृह्य भगवान् वासवोऽप्याज-गाम तम् ॥८९॥ मृत्युरात्मा च लोकाश्च जिता भूतानि पंच च । बुद्धिः कालो मनो व्योम कामक्रोधौ तथैव च ॥ ९० ॥ तस्माद्ग गृहाश्रमस्थस्य नान्यदैवतमस्ति वै । ऋतेऽतिथिं नरव्याघ्र मनसै-

---

महाभाग्यवती स्त्री तेरे पास रहेगी, क्योंकि-योग इसके वशमें है ॥ ८४ ॥ तू भी इस स्त्रीके साथ तप करके सनातन और अविनाशी लोकोंको पावेगा, तहाँ जाने पर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता है ॥ ८५ ॥ तू आज सदेह ही स्वर्गको जावेगा, क्योंकि-तूने मृत्युको जीत लिया है और तेरा ऐश्वर्य भी श्रेष्ठ है ॥८६॥ तेरा वेग मनकी समान है और तू अपने पराक्रमसे पाँच महा-भूतोंका उल्लंघन कर गया है और इस गृहस्थाश्रमके धर्मसे तूने काम और क्रोधको जीत लिया है ॥८७॥ और हे राजन् ! इस राजपुत्रीने तेरी सेवा करके स्नेह, राग, तन्द्रा, मोह और द्रोहको जीत लिया है ॥८८॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजा युधिष्ठिर ! फिर भगवान् इन्द्र भी एक सहस्र श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम रथको लेकर उसके पास आये थे ॥ ८९ ॥ (इस प्रकार) सुदर्शनने मृत्यु, आत्मा, सब लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, व्योम, काम और क्रोधको जीत लिया था ॥ ९० ॥ इस लिये हे नरव्याघ्र ! तू मनमें समझ, कि-गृहस्थाश्रमीके लिये अतिथि

तद्विचारय ॥९१॥ अतिथिः पूजितो यद्धि ध्यायते मनसा शुभम्। न तत्क्रतुशतेनापि तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ९२ ॥ पात्रं त्वतिथिमासाद्य शीलाढ्यं यो न पूजयेत् । स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥९३॥ एतत्ते कथितं पुत्र मयाख्यानमनुत्तमम् । यथा हि विजितो मृत्युर्गृहस्थेन पुराभवत् ॥ ९४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यमिदमाख्यानमुत्तमम् । बुभूषताभिमंतव्यं सर्वदुश्चरितापहम् ॥ ९५ ॥ इदं यः कथयेद्विद्वानहन्यहनि भारत । सुदर्शनस्य चरितं पुण्यांल्लोकानवाप्नुयात् ॥ ९६ ॥

इति श्रीमहाभारते आनुशासनिकेपर्वणि अनुशासनपर्वणि दानधर्मे सुदर्शनोपाख्याने द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच । ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप ।

से बढ कर और कोई देवता नहीं है ॥९१॥ अतिथि पूजा पाकर मनमें (पूजकका) जो कल्याण चाहता है, वह सौ यज्ञ करनेसे भी नहीं होसकता, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ९२ ॥ जो पुरुष शीलवान् सत्पात्र अतिथिके आने पर उसकी पूजा नहीं करता है, तब अतिथि उसको अपना दुष्कर्म देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है ॥ ९३ ॥ हे पुत्र ! पहिले एक गृहस्थने जिस प्रकार मृत्युको जीता था, उसका यह सर्वोत्तम आख्यान मैंने तुझसे कहा ॥९४॥ तुझे कल्याणकी कामनासे, धन और यश देने वाले, आयु बढाने वाले और सब प्रकारके पापोंको नष्ट करने वाले इस आख्यानका अनुमोदन करना चाहिये ९५ जो विद्वान् पुरुष इस सुदर्शनके चरित्रको प्रतिदिन कहता है, वह पवित्र लोकोंमें जाता है ॥ ९६ ॥ (यह दिव्य पुरुषोंके चरित्र हैं साधारण मनुष्योंको इनका अनुकरण न करना चाहिये) दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने कहा, कि हे पितामह ! यदि तीनों वर्णोंको

कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥१॥ विश्वामित्रेण धर्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ । श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥ तेन ह्यमितवीर्येण वशिष्ठस्य महात्मनः । हतं पुत्रशतं सद्यस्तपसापि पितामह ॥ ३ ॥ यातुधानाश्च बहवो राक्षसास्तिग्मतेजसः । मन्युनाविष्टदेहेन सृष्टाः कालांतकोपमाः ॥४॥ महान् कुशिकवंशश्च ब्रह्मर्षिशतसंकुलः । स्थापितो नरलोकेऽस्मिन्विद्वद्ब्राह्मणसंस्तुतः ॥ ५ ॥ ऋचीकस्यात्मजश्चैव शुनःशेपो महातपाः । विमोक्षितो महासत्रात् पशुतामप्युपागतः ॥ ६ ॥ हरिश्चन्द्रक्रतौ देवांस्तोषयित्वात्मतेजसा पुत्रतामनुसंप्राप्तो विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ७ ॥ नाभिवादयते ज्येष्ठं देवरातं नराधिप । पुत्राः

ब्राह्मणत्व मिलना कठिन है तो फिर हे महाराज! क्षत्रियजातिके महात्मा विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व किसप्रकार पाया था, हे धर्मात्मा नरश्रेष्ठ पितामह! मैं इस बातको यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ, अतः आप कहिये ॥ १–२ ॥ हे पितामह ! अपने तपसे अमित वीर्यवाले विश्वामित्रजीने महात्मा वशिष्ठके सौ पुत्रोंको शीघ्र ही मार डाला था ॥ ३ ॥ उनका शरीर क्रोधसे भरगया था, तब उन्होंने काल और यमराजकी समान बहुतसे तीखे तेजवाले यातुधान–राक्षसोंको उत्पन्न किया था ॥ ४ ॥ और उन्होंने इस लोकमें सैंकड़ों ब्रह्मर्षियोंसे संयुक्त और विद्वान् ब्राह्मणोंसे पूजित बड़ेभारी कुशिक नामक वंशकी स्थापना की थी ॥ ५ ॥ ऋचीक (अजीगर्त) के महातपस्वी शुनःशेफ नामक एक पुत्र था, वह यज्ञमें पशु बनाया गया था, उसको उस यज्ञमेंसे विश्वामित्रने छुड़ाया था ॥६॥ वह शुनःशेफ हरिश्चन्द्रके यज्ञमें अपने तेजसे देवताओंको प्रसन्न करके बुद्धिमान् विश्वामित्रका पुत्ररूप होगया था ॥७ ॥हे नराधिप ! अपने बड़ेभाई देवरातको प्रणाम न करनेके कारण (विश्वामित्रने) अपने पचास पुत्रोंको

पंचाशदेवापि शप्ताः श्वपचतां गताः ॥ ८ ॥ त्रिशंकुर्बन्धुभिर्मुक्त
ऐक्ष्वाकः प्रीतिपूर्वकम्।अवाक्शिरा दिवं नीतो दक्षिणामाश्रितो
दिशम् ॥९॥ विश्वामित्रस्य विपुला नदी देवर्षिसेवता। कौशिकी
च शिवा पुण्या ब्रह्मर्षिसुरसेविता ॥१०॥ तपोविघ्नकरी चैव पंच-
चूडासु सम्मता। रम्भा नामाप्सराः शापाद्यस्य शैलत्वमागता ११
तथैवास्य भयाद्बध्वा वसिष्ठः सलिले पुरा। आत्मानं मज्जयन्
श्रीमान् विपाशः पुनरुत्थितः॥१२॥तदा प्रभृति पुण्या हि विपाशा-
ऽभून्महानदी। विख्याता कर्मणा तेन वसिष्ठस्य महात्मनः १३
वाग्भिश्च भगवान् येन देवसेनाग्रगः प्रभुः। स्तुतः प्रीतमनाश्चा-

---

शाप दे दिया और वे चांडाल होगए ॥ ८ ॥ इक्ष्वाकु वंशके त्रिशंकुको उसके भाइयोंने (वशिष्ठजीके शापसे चांडाल होने पर) त्याग दिया था, तब (विश्वामित्रने उसको यज्ञ कराकर) स्वर्गमें भेजा था (तहाँसे इन्द्रने उसको निकाल दिया तब वह) नीचेको शिर करके लटकने लगा तब (विश्वामित्रने) उसको दक्षिण दिशामें स्थापित किया था ॥ ९ ॥ विश्वामित्रके आश्रमके पास कौशिकी नामकी एक बड़ीभारी नदी थी, उसके किनारे पर देवर्षि और ब्रह्मर्षि रहते थे, वह कल्याणकारिणी और पवित्र थी ॥ १० ॥ विश्वामित्रजीके तपमें पञ्चचूड़ाओंमें माननीय रंभा नामक अप्सराने विघ्न डाला था, तब विश्वामित्रजीने उसको शाप देकर पत्थरकी बना दिया था ॥११॥ और इन्हींके भयसे वशिष्ठजी अपने शरीरको रस्सियोंसे जकड़कर नदीमें कूद पड़े थे, परन्तु श्रीमान् वशिष्ठजीकी उस नदीमें सब रस्सियें (पाश) अपने आप खुलगईं और वह उस नदीमेंसे निकल आये थे १२ महात्मा वशिष्ठजीके साथ ऐसा कार्य करनेसे उस दिनसे वह पुण्यमयी महानदी विपाशा नामसे प्रसिद्ध होगई है ॥ १३ ॥ देवसेनाके आगे चलनेवाले इन्द्रकी विश्वामित्रजीने वाणीसे स्तुति

सोच्छापाच्चैनममुञ्चत ॥१४॥ ध्रुवस्यौत्तानपादस्य ब्रह्मर्षीणां तथैव च। मध्ये ज्वलति यो नित्यमुदीचीमाश्रितो दिशम्॥१५॥ तस्यैतानि च कर्माणि तथान्यानि च कौरव। क्षत्रियस्येत्यतो जातमिदं कौतूहलं मम ॥ १६ ॥ किमेतदिति तत्त्वेन प्रब्रूहि भरतर्षभ। देहान्तरमनासाद्य कथं स ब्राह्मणोभवत् ॥ १७ ॥ एतत्तत्त्वेन मे तात सर्वमाख्यातुमर्हसि। मतंगस्य यथातत्त्वं तथैवैतद्ब्रवस्व मे १८

की थी, तब प्रभु इन्द्रने प्रसन्न होकर विश्वामित्रजीको शापसे छुड़ाया था (नीलकण्ठने लिखा है, कि-विश्वामित्रजी त्रिशंकुको यज्ञ करारहे थे, तब वशिष्ठके पुत्रोंने उनको शाप दिया था, कि-तुम श्वपच चाण्डालको यज्ञ करारहे हो अतः तुम भी चाण्डाल होजाओगे उस शापको सत्य करनेके लिये विश्वामित्रजी एक समय काल पड़ने पर कुत्तेकी जाँघको चुराकर पका रहे थे, इतनेमें ही इन्द्र बाजका रूप धारणकर उस जाँघको उठाकर लेगया, इससे ही विश्वामित्रजी शापसे छूटगए फिर इन्द्रने वर्षाकी) १४ और यह विश्वामित्र उत्तानपादके पुत्र ध्रुव और सप्तर्षियोंके मध्यमें तारेके रूपमें दमकते रहते हैं ॥१५॥ हे कुरुवंशके राजन् ! उस क्षत्रिय राजाके इन कर्मोंको तथा दूसरे कर्मोंको सुनकर मुझे कूतूहल उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! उनके ऐसे महत्वका क्या कारण है ? यह मुझसे यथार्थ रीतिसे कहिये, विश्वामित्र दूसरे देहको प्राप्त हुए विना किस प्रकार ब्राह्मण होगए थे ॥ १७ ॥ हे तात ! यह सब बात आपको मुझसे यथार्थरीतिसे कहनी चाहिये, आपने मुझसे मत्तंग ऋषिकी कथा जिस प्रकार यथार्थरीतिसे कही थी, उस प्रकार यह कथा भी मुझसे यथार्थरीतिसे कहिये ॥१८॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! मत्तंग नामक पुरुष (शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेके कारण) ब्राह्मणत्वको प्राप्त नहीं हुआ था, यह तो उचित

स्थाने मतंगो ब्राह्मण्यं नालभतभरतर्षभ । चंडालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मण्यमाप्तवान् ॥ १९ ॥

इति श्र महाभारते अनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि विश्वामित्रोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

भीष्म उवाच । श्रूयतां पार्थ तत्त्वेन विश्वामित्रो यथा पुरा । ब्राह्मणत्वं गतस्तात ब्रह्मर्षित्वं तथैव च ॥ १ ॥ भरतस्यान्वये चैवाजमीढो नाम पार्थिवः । बभूव भरतश्रेष्ठ यज्वा धर्मभृतां वरः २ तस्य पुत्रो महानासीज्जन्हुर्नाम नरेश्वरः । दुहितृत्वमनुप्राप्ता गङ्गा यस्य महात्मनः ॥ ३ ॥ तस्यात्मजस्तुल्यगुणः सिन्धुद्वीपो महायशाः । सिन्धुद्वीपाच्च राजर्षिर्बलाकाश्वो महाबलः ॥ ४ ॥ बल्लभस्तस्य तनयः साक्षाद्धर्म इवापरः । कुशिकस्तस्य तनयः सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ५ ॥ कुशिकस्यात्मजः श्रीमान् गाधिर्नाम जनेश्वरः । अपुत्रः प्रसवेनार्थी वनवासमुपावसत् ॥ ६ ॥ कन्या

हुआ था, परन्तु क्षत्रिययोनिमें उत्पन्न हुए विश्वामित्र ब्राह्मणत्व को किस प्रकार प्राप्त हुए थे ॥१९॥ तीसरा अध्याय समाप्त ३

भीष्मजीने कहा, कि-हे पृथाके पुत्र ! विश्वामित्रजीने पहिले जिसप्रकार ब्राह्मणत्व और ब्रह्मर्षिपन पाया था, उसको हे तात ! तू यथार्थरीतिसे सुन ॥१॥ हे भरतर्षभ राजन् ! पहिले भरतवंशमें श्रेष्ठ और यज्ञ करनेवाला अजमीढ़ नामक एक राजा था ॥ २ ॥ उसका उदार पुत्र जन्हु नामक राजा हुआ, गंगाजी उस महात्मा राजाकी पुत्री बनी थीं ॥ ३ ॥ उसके उसकी समान गुणोंवाला महायशस्वी सिन्धुद्वीप नामक पुत्र था सिन्धुद्वीपका पुत्र महाबली राजर्षि बलाकाश्व था ॥ ४ ॥ उसका पुत्र बल्लभ हुआ वह साक्षात् दूसरा धर्म ही था, उसके यहाँ इन्द्रकी समान कान्तिवाला कुशिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ५ ॥ कुशिकके श्रीमान् पुत्रका नाम राजागाधि था उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तब वह

जज्ञे सुतास्तस्य वने निवसतः सतः । नाम्ना सत्यवती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ७ ॥ तां वव्रे भार्गवः श्रीमांश्च्यवनस्यात्मसंभवः । ऋचीक इति विख्यातो विपुले तपसि स्थितः ॥८॥ स तां न प्रददौ तस्मै ऋचीकाय महात्मने । दरिद्र इति मत्वा वै गाधिः शत्रुनिवर्हणः ॥९॥ प्रत्याख्याय पुनर्यातमब्रवीद्राजसत्तमः। शुल्कं प्रदीयतां मह्यं ततो वत्स्यसि मे सुताम् ॥ १० ॥ ऋचीक उवाच । किं प्रयच्छामि राजेन्द्र तुभ्यं शुल्कमहं नृप । दुहितुर्ब्रूह्यसंसक्तो मा भूत्तत्र विचारणा ॥ ११ ॥ गाधिरुवाच । चन्द्ररश्मिप्रकाशानां हयानां वातरंहसाम् । एकतः श्यामकर्णानां सहस्रं देहि भार्गव ॥ १२ ॥ भीष्म उवाच । ततः स भृगुशार्दूलश्च्य-

---

सोमाभिपवसे पुत्रकी इच्छासे वनमें रहनेलगा ॥६॥ जब गाधि वनमें रहता था, तब उसके यज्ञमेंसे एक पुत्री उत्पन्न हुई, गाधिने उसका नाम सत्यवती रक्खा, वह पृथ्वी पर अनुपम रूपवती थी ॥ ७ ॥ भृगुवंशमें उत्पन्न हुए च्यवनके पुत्र श्रीमान् ऋचीक नामक प्रसिद्ध ऋषि वनमें बड़ाभारी तप कर रहे थे, उन्होंने (गाधिसे) उस कन्याको माँगा ॥ ८ ॥ परन्तु शत्रुनाशक राजा गाधिने महात्मा ऋचीकको दरिद्र समझकर अपनी कन्या नहीं दी ॥ ९ ॥ परन्तु मना करने पर भी जब ऋचीक फिर कन्या माँगनेको आये, तब राजसत्तम गाधिने कहा, कि-' तुम मुझे शुल्क देकर मेरी कन्याके साथ विवाह कर सकते हो । " ॥१०॥ ऋचीकने कहा, कि-हे राजन् ! मैं तुम्हारी कन्याका क्याशुल्क दूं, इस बातको आप संकोचरहित होकर कहिये, कुछ विचार न करिये ॥ ११ ॥ राजा गाधिने कहा, कि-हे भृगुकुलोत्पन्न ! आप मुझे चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले और पवनकी समान वेगवाले एक ओरसे श्यामवर्णके कानवाले एक सहस्र घोड़े दीजिये ॥ १२ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर

वनस्थात्मजः प्रभुः । अब्रवीद्वरुणं देवमादित्यं पतिमम्भसाम् ॥१३॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् । सहस्रं वातवेगानां
भिक्षे त्वां देवसत्तम ॥ १४ ॥ तथेति वरुणो देव आदित्यो भृगु-
सत्तमम् । उवाच यत्र तेच्छन्दस्तत्रोत्थास्यन्ति वाजिनः ॥१५॥
ध्यातमात्रे ऋचीकेन हयानां चन्द्रवर्चसाम् । गङ्गाजलात्समुत्तस्थौ
सहस्रं विपुलौजसाम् ॥ १६ ॥ अदूरे कान्यकुब्जस्य गङ्गाया-
स्तीरमुत्तमम् । अश्वतीर्थं तदद्यापि मानवैः परिचक्ष्यते ॥ १७ ॥
ततो वै गाधये तात सहस्रं वाजिनां शुभम् । ऋचीकः प्रददौ
प्रीतः शुल्कार्थं जपतां वरः ॥ १८ ॥ ततः स विस्मितो राजा
गाधिः शापभयेन च । ददौ तां समलंकृत्य कन्यां भृगुसुताय
वै ॥ १९ ॥ जग्राह विधिवत्पाणिं तस्या ब्रह्मर्षिसत्तमः । सा च

भृगुकुलमें सिंहसमान और च्यवनके समर्थ पुत्र ऋचीकने जलके देवता और अदितिके पुत्र वरुणदेवके पास जाकर कहा, कि–१३ हे देवसत्तम ! एक ओर श्यामवर्णके कानवाले, चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले और पवनकी समान वेगवाले एक सहस्र घोड़ोंकी मैं आपसे भिक्षा माँगता हूँ ॥ १४ ॥ यह सुनकर अदितिके पुत्र वरुणदेवने भृगुकुलोत्पन्न श्रेष्ठ ऋचीकसे कहा, कि–" तथास्तु " आपकी जहाँ इच्छा होगी, तहाँ पर ये घोड़े उपस्थित होजावेंगे१५ तदनन्तर ऋचीकके ध्यान करते ही गंगाजीके जलमेंसे महाबली और चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले एक सहस्र घोडे बाहर निकले ॥ १६ ॥ कान्यकुब्जके पास वह स्थल अब भी अश्वतीर्थ कहलाता है ॥ १७ ॥ हे तात ! तदनन्तर तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ऋचीकने प्रसन्न होकर राजा गाधिको एक सहस्र घोडे शुल्करूपमें दिये ॥ १८ ॥ तब तो राजा गाधिको आश्चर्य हुआ और उसने शापके भयसे भृगुके पुत्रको अपनी कन्या शृङ्गार करके देदी ॥ १९ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ ऋचीक ऋषिने वेदविधि

तं पतिमासाद्य परं हर्षमवाप ह ॥ २० ॥ स तुतोष च ब्रह्मर्षि-
स्तस्या वृत्तेन भारत । छन्दयामास चैवैनां वरेण वरवर्णिनीम् २१
मात्रे तत्सर्वमाचख्यौ सा कन्या राजसत्तम । अथ तामब्रवीन्माता
सुतां किंचिदवाङ्मुखी ॥ २२ ॥ ममापि पुत्रि भर्त्ता ते प्रसादं
कर्त्तुमर्हति । अपत्यस्य प्रदानेन समर्थश्च महातपाः ॥ २३ ॥
ततः सा त्वरितं गत्वा तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् । मातुश्चिकीर्षितं
राजन् ऋचीकस्तामथाब्रवीत् ॥ २४ ॥ गुणवन्तमपत्यं सा अचि-
राज्जनयिष्यति । मम प्रसादात्कल्याणि मा भूत्ते प्रणयोऽन्यथा २५
तव चैव गुणश्लाघी पुत्र उत्पत्स्यते महान् । अस्मद्वंशकरः श्री-
मान्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २६ ॥ ऋतुस्नाता च साश्वत्थं त्वं च

से उस कन्याका पाणिग्रहण किया और वह कन्या भी ऋषिके साथ विवाह होनेसे परमहर्षित हुई॥२०॥हे राजन् ! उस कन्या के वर्तावसे वह ब्रह्मर्षि सन्तुष्ट रहने लगे और सुन्दररूपवाली उस कन्याको वर देनेकी इच्छा प्रकट की ॥ २१ ॥ हे राजन् ! यह सब कथा कन्याने अपनी मातासे कही, तब माताने अपने मुखको कुछ झुकाकर अपनी पुत्रीसे कहा, कि—॥२२॥ हे पुत्रि ! तेरा पति समर्थ और महातपस्वी है,अतः उसे मुझे भी पुत्र देकर मेरे ऊपर भी कृपा करनी चाहिये ॥२३॥ तब राजपुत्री शीघ्रता से अपने पतिके पास गई और उनसे अपनी माताकी सब इच्छा प्रकट की, तब हे राजन ! ऋचीकने उससे कहा, कि—॥ २४ ॥ हे कल्याणि ! तेरी माता थोड़े ही दिनोंमें मेरी कृपासे एक गुण-वान्पुत्रको उत्पन्न करेगी तेरा प्रीतिपूर्वक कहना निष्फल नहीं जायगा ॥ २५ ॥ और तेरे भी प्रशंसनीय गुणोंवाला एक उदार पुत्र उत्पन्न होगा, वह श्रीमान् पुत्र हमारे वंशको चलावेगा, यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ ॥ २६ ॥ तेरी माता ऋतुका स्नान करके पीपलके वृक्षका आलिङ्गन करे

वृक्षमुदुंबरम् । परिष्वजेथाः कल्याणि तत एनमवाप्स्यथः ॥२७॥ चरुद्वयमिदं चैव मन्त्रपूतं शुचिस्मिते । त्वं च सा चोपभुंजीतं ततः पुत्रावनाप्स्यथः ॥ २८ ॥ ततः सत्यवती हृष्टा मातरं प्रत्यभाषत । यदृचीकेन कथितं तच्चाख्ययौ चरुद्वयम् ॥ २९ ॥ तामुवाच ततो माता सुतां सत्यवतीं तदा । पुत्रि पूर्वोपपन्नायाः कुरुष्व वचनं मम ॥३०॥ भर्त्रा य एष दत्तस्ते चरुर्मंत्रपुरस्कृतः । एनं प्रयच्छ मह्यं त्वं मदीयं त्वं गृहाण च ॥ ३१ ॥ व्यत्यासं वृक्षयोश्चापि करवाम शुचिस्मिते । यदि प्रमाणं वचनं मम मातुरनिन्दिते ॥ ३२ ॥ स्वमपत्यं विशिष्टं हि सर्वे इच्छत्यनाविलम् । व्यक्तं भगवता चात्र कृतमेवं भविष्यति ॥ ३३ ॥ ततो मे त्वच्चरौ

और तू ऋतुस्नान करके गूलड़के वृक्षका आलिंगन करना, तब तुम दोनोंको पुत्रप्राप्ति होगी ॥ २७ ॥ हे शुचिस्मिते ! ये दोनों चरु मंत्रोंसे अभिमंत्रित किये हुए हैं, इनको तुम दोनों खाना। इससे तुझे और तेरी माताको पुत्र मिलेंगे ॥ २८ ॥ यह सुन कर सत्यवती प्रसन्न हुई और ऋचीककी सब बात अपनी मातासे कही और चरुकी बात भी कही ॥ २९ ॥ यह सुन कर माताने अपनी पुत्री सत्यवतीसे कहा, कि-हे पुत्रि ! मेरा तेरे साथ सम्बन्ध तेरे पतिसे पहिलेका है, अतः मैं तेरी (पतिसे) अधिक गुरु हूँ, अतः तुझे मेरा कहना करना चाहिये ॥ ३० ॥ तेरे स्वामीने मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके जो चरु मुझे दिया है, उसको तू लेले और और अपने चरुको मुझे देदे ॥ ३१ ॥ हे पवित्र हास्यवाली पुत्रि ! और हम वृक्षोंमें भी लौट फेर करलें यदि तू मुझे मानती हो तो ऐसा कर ॥ ३२ ॥ हमारा पुत्र सर्वगुणसम्पन्न और शुद्ध चरित्र वाला हो, ऐसा सब चाहते हैं, भगवान् ऋचीकने भी ऐसा ही किया होगा, यह बात स्पष्ट है ॥ ३३ ॥ इस लिये हे सुमध्यमे ! मुझे तेरे चरु और

भावः पादपे च सुमध्यमे। कथं विशिष्टो भ्राता मे भवेदित्येव चिन्तय ॥ ३४ ॥ तथा च कृतवत्यौ ते माता सत्यवती च सा। अथ गर्भावनुप्राप्ते उभे ते वै युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा गर्भमनुप्राप्तां भार्यां स च महानृषिः। उवाच तां सत्यवतीं दुर्मना भृगुसत्तमः ॥ ३६ ॥ व्यत्यासेनोपयुक्तस्ते चरुर्व्यक्तं भविष्यति। व्यत्यासः पादपे चापि सुव्यक्तं ते कृतः शुभे ॥ ३७ ॥ मया हि विश्वं यद्ब्रह्म त्वच्चरौ सन्निवेशितम्। क्षत्रवीर्यश्च सकलं चरौ तस्या निवेशितम् ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यविख्यातगुणं त्वं विप्रं जनयिष्यसि। सा च क्षत्रं विशिष्टं वै तत एतत्कृतं मया ॥ ३९ ॥ व्यत्यासस्तु कृतो यस्मात्त्वया मात्रा च ते शुभे। तस्मात् सा ब्राह्मणश्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति ॥ ४० ॥ क्षत्रियं तूग्रकर्माणं

वृक्षको लेनेका भाव उत्पन्न हुआ है, अब तुझे यही विचारना चाहिये, कि-मेरा भाई किस प्रकार उत्तम गुणों वाला हो" ३४ तदनन्तर उन दोनों माता पुत्रियोंने चरुमें और वृक्षोंमें लौट बदल करलिया, फिर हे युधिष्ठिर! उन दोनोंके गर्भ रह गया ॥३५॥ तब तो भृगुकुलके श्रेष्ठ महर्षि ऋचीक अपनी स्त्री को गर्भवती देख कर मनमें खिन्न हुए और कहने लगे. कि-॥ ३६ ॥ "तूने चरुमें लौट बदल करली है, यह स्पष्ट प्रतीत होरहा है और हे शुभ स्त्रि! तूने वृक्षोंमें भी लौट बदल कर लिया है यह भी स्पष्ट प्रतीत होरहा है ॥ ३७ ॥ मैंने तेरे चरुमें व्यापक ब्रह्मका निवेश किया था और तेरी माताके चरुमें क्षत्रियके सारे पराक्रमको भर दिया था ॥ ३८ ॥ "तू तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध गुण वाले ब्राह्मणको उत्पन्न करे और तेरी माता श्रेष्ठ क्षत्रियको उत्पन्न करे" यह विचार कर मैंने ऐसा किया था ॥ ३९ ॥ परन्तु हे कल्याणि! तूने और तेरी माताने चरुमें लौटफेर कर लिया है, अतः तेरी माता श्रेष्ठ गुण वाले

त्वं भद्रे जनयिष्यसि। न हि ते तत्कृतं साधु मातृस्नेहेन भाविनि ४१
सा श्रुत्वा शोकसंतप्ता पपात वरवर्णिनी । भूमौ सत्यवती राजंश्छिन्नेव रुचिरा लता ॥ ४२ ॥ प्रतिलभ्य च सा संज्ञां शिरसा प्रणिपत्य च । उवाच भार्या भर्त्तारं गाधेयी भार्गवर्षभम् ॥४३॥ प्रसादयंत्यां भार्यायां मयि ब्रह्मविदां वर । प्रसादं कुरु विप्रर्षे न मे स्यात्क्षत्रियः सुतः ॥ ४४ ॥ कामं ममोग्रकर्मा वै पौत्रो भवितुमर्हति । न तु मे स्यात्सुतो ब्रह्मन्नेष मे दीयतां वरः ॥ ४५ ॥ एवमस्त्विति होवाच स्वां भार्यां सुमहातपाः । ततः सा जनयामास जमदग्निं सुतं शुभम् ॥ ४६ ॥ विश्वामित्रं चाजनयद्गाधिभार्या यशस्विनी । ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मवादिनम् ४७

पुत्रको उत्पन्न करेगी ॥ ४० ॥ और हे कल्याणि ! तू उग्र कर्म करने वाले क्षत्रियको उत्पन्न करेगी, हे स्त्रि ! तूने माताके स्नेह वश जो काम किया है, वह उचित नहीं है ॥ ४१ ॥ ऋषिकी इस बातको सुन कर सुन्दरांगी सत्यवती काटी हुई सुन्दर लता की समान शोकसे सन्तप्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ४२ ॥ जब उसको चेत हुआ, तब वह गाधिराजकी पुत्री भार्गवकुलमें उत्तम अपने स्वामी ऋचीकके चरणोंमें अपना मस्तक रख कर उनसे बोली, कि-॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! मैं आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ, हे विप्रर्षे ! आप मुझ पर कृपा करिये मुझे क्षत्रिय-पुत्र नहीं चाहिये ॥४४॥ मेरे पुत्रका पुत्र भले ही उग्र कर्म करने वाला होजाय, परन्तु मेरा पुत्र उग्र कर्म करनेवाला न हो, हे ब्रह्मन् ! मुझे ऐसा वर दीजिये ॥ ४५ ॥ महातपस्वी ऋचीकने अपनी भार्यासे कहा, "तथास्तु" तब सत्यवतीने जमदग्नि नामक श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ और हे राजेन्द्र ! गाधिकी यशस्विनी भार्याने ब्रह्मर्षिकी कृपासे विश्वामित्र नामक ब्रह्मवादी पुत्रको उत्पन्न किया ॥४७॥ इस कारण

ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः । क्षत्रियः सोऽप्यथ
तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः ॥ ४८ ॥ तस्य पुत्रा महात्मानो ब्रह्म-
वंशविवर्धनाः । तपस्विनो ब्रह्मविदो गोत्रकर्त्तार एव च ॥ ४६ ॥
मधुच्छन्दश्च भगवान् देवरातश्च वीर्यवान् । अक्षीणश्च शकुंतश्च
बभ्रुः कालपथस्तथा ॥ ५० ॥ याज्ञवल्क्यश्च विख्यातस्तथा
स्थूणो महाव्रतः । उलूको यमदूतश्च तथर्षिः सैन्धवायनः ॥५१॥
वल्गुजंघश्च भगवान् गालवश्च महानृषिः । ऋषिर्वज्रस्तथा ख्यातः
सालंकायन एव च ॥ ५२ ॥ लीलाढयो नारदश्चैव तथा कूर्चा-
मुखः स्मृतः । वादुलिर्मुसलश्चैव वक्षोग्रीवस्तथैव च ॥ ५३ ॥
आंघ्रिको नैकदृक्चैव शिलायूपः शितः शुचिः । चक्रको मारुतं-
तव्यो वातघ्नोऽथाश्वलायनः ॥ ५४ ॥ श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च
जाबालिः सुश्रुतस्तथा । कारीषिरथ संश्रुत्यः परपौरवतंतवः ५५
महानृषिश्च कपिलस्तथर्षिस्ताडकायनः । तथैव चोपगहनस्तथर्षि-

महातपस्वी विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व पाया था और वह क्षत्रिय
होने पर भी ब्रह्मवंशके कर्ता हुए थे ॥ ४८ ॥ उनके महात्मा
पुत्र ब्राह्मणके वंशको बढ़ाने वाले थे, तपस्वी थे, ब्रह्मवेत्ता थे,
और गोत्रके प्रवर्तक हुए थे ॥ ४६ ॥ विश्वामित्रके नीचे लिखे
पुत्र थे, भगवान् मधुच्छन्द, वीर्यवान् देवरात, अक्षीण, शकुन,
बभ्रु, कालपथ ॥ ५० ॥ प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य, महाव्रत पालने
वाले स्थूण, उलूक, यमदूत, ऋषि सैंधवायन ॥ ५१ ॥ भगवान्
वल्गुजंघ, महर्षि गालव, वज्र, ऋषि, प्रसिद्ध सांकलायन, ५२
लीलाढय, नारद कूर्चामुख, वादुलि, मुसल और वक्षोग्रीव ५३
आंघ्रिक और कद्दक, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य,
वातघ्न और आश्वालायन ॥ ५४ ॥ श्यामायन, गार्ग्य जाबालि
संश्रुत, कारीपि संश्रुत्य, परपौरव, सुश्रुत्य, कारीषि, संश्रुत्य पर-
पौरव और तन्तव ॥ ५५ ॥ महर्षि कपिल, ऋषि ताडकायन,

श्चासुरायणः ॥ ५६ ॥ मार्दवर्षिर्हिरण्याक्षो जङ्गारिर्बाभ्रवायणिः । भूतिर्विभूतिः सूतश्च सुरकृत्त तथैव च ॥ ५७ ॥ अरालिर्नाचिकश्चैव चांपेयोज्जयनौ तथा । नवतंतुर्बकनखः सेयनो यतिरेव च ॥५८॥ अम्भोरुहश्चारुमत्स्यः शिरीषीचाथ गार्दभिः। ऊर्जयोनिरुदापेक्षी नारदी च महानृषिः ॥ ५९ ॥ विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः । तथैव क्षत्रियो राजन् विश्वामित्रो महातपाः ॥ ६० ॥ ऋचीकेनाहितं ब्रह्म परमेतद्युधिष्ठिर । एतत्ते सर्वमाख्यातं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ६१ ॥ विश्वामित्रस्य वै जन्म सोमसूर्याग्नितेजसः। यत्र यत्र च संदेहो भूयस्ते राजसत्तम। तत्र तत्र च मां ब्रूहि च्छेतास्मि तव संशयान् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि दानधर्मे विश्वामित्रोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

उपगहन, ऋषि आसुरायण ॥ ५६ ॥ ऋषि मार्दव, हिरण्याक्ष, जंगारि, बाभ्रायणि, भूति, विभूति, सूत, सुरकृत, ॥ ५७ ॥ अरालि, नाचिक, चाम्पेय उज्जयन, नवतन्तु, वकनख सेयन और यति ॥५८॥ अम्भोहर, चारुमत्स्य शिरीषि और गार्दभि, ऊर्जयोनि, उदापेक्षी और महर्षि नारदी ॥ ५९ ॥ ये सब ब्रह्मवादी ऋषि विश्वामित्रके पुत्र थे और हे राजन ! क्षत्रिय होने पर भी विश्वामित्रजी महातपस्वी थे ॥६० ॥ क्योंकि—हे राजा युधिष्ठिर ! ऋचीक ऋषिने उनमें परब्रह्मका गुणाधान किया था हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! चन्द्रमा, सूर्य और अग्निकी समान विश्वामित्रजीके जन्मकी यह कथा मैंने तुमसे सच्ची २ कही है हे राजश्रेष्ठ ! यदि तुझे अब भी कुछ सन्देह हो तो तू मुझसे फिर बूझ लेना मैं तेरे सन्देहको दूर करदूँगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

आनृशंस्यस्य धर्मज्ञ गुणान् भक्तजनस्य च। श्रोतुमिच्छामि धर्मज्ञ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीम-मितिहासं पुरातनम् । वासवस्य च संवादं शुकस्य च महात्मनः॥२ विषये काशिराजस्य ग्रामान्निष्क्रम्य लुब्धकः । सविषं काण्डमा-दाय मृगयामास वै मृगम् ॥ ३ ॥ तत्र चामिषलुब्धेन लुब्धकेन महावने । अविदूरे मृगान् दृष्ट्वा बाणः प्रतिसमाहितः ॥ ४ ॥ तेन दुर्वारितास्त्रेण निमित्तचपलेषुणा । महान्वनतरुस्तत्र विद्धो मृग-जिघांसया ॥ ५ ॥ स तीक्ष्णविषदिग्धेन शरेणातिबलात्ततः उत्सृज्य फलपत्राणि पादपः शोषमागतः ॥६॥ तस्मिन्वृक्षे तथा भूते कोटरेषु चिरोषितः । न जहाति शुको वासं तस्य भक्त्या वनस्पतेः ॥ ७ ॥ निष्प्रचारो निराहारो ग्लानः शिथिलवागपि ।

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे धर्मज्ञ! दयालु और भक्तोंके गुण सुनने की मुझे इच्छा हुई है, अतः हे धर्मज्ञ पितामह ! उनका आप मुझसे वर्णन करिये भीष्मजीने कहा, कि-इस विषयमें भी प्राचीन इतिहासवेत्ता एक इतिहासका दृष्टान्त दिया करते हैं, उसमें इन्द्र और महात्मा शुकका सम्वाद है कि-॥२॥ काशिराजके देशमें एक बहेलिया विषसे बुझा हुआ बाण लेकर ग्रामसे बाहर निकल हिरनको ढूढने लगा ॥ ३ ॥ और तहाँ महावनमें उस मांसके लोभी बहेलियेंने मृगोंको पासमें देख बाण छोड़ा ॥ ४ ॥ परन्तु उसके कठिनसे पीछेको हटनेवाले बाणका निशाना चूकगया और मृगको मारनेकी इच्छासे छोड़ा हुआ वह बाण एक बड़े भारी जंगली पेडमें जाकर लगा ॥ ५ ॥ तीक्ष्ण विषवाले उस बाणसे वह वृक्ष बडी जोरसे विंधगया, तब (विषके प्रभावसे) उसके फल और पत्ते गिरने लगे और वह वृक्ष सूखने लगा ॥ ६ ॥ एक तोता उस वृक्षकी खखोड़लमें बहुत दिनोंसे रहता था, परन्तु उसने उस वृक्षके ऊपर भक्ति होनेसे उस वृक्षकी ऐसी दशा होने पर

कृतज्ञः सह वृक्षेण धर्मात्मा सोऽप्यशुष्यत ॥ ८ ॥ तमुदारं महा-
सत्वमतिमानुपचेष्टितम् । समदुःखसुखं दृष्ट्वा विस्मितः पाक-
शासनः ॥ ९ ॥ ततश्चिंतामुपगतः शक्रः कथमयं द्विजः । तिर्य-
ग्योनावसंभाव्यमानृशंस्यमवस्थितः ॥ १० ॥ अथवा नात्र चिंत्यं
हि अभवद्वासवस्य तु । प्राणिनामपि सर्वेषां सर्वं सर्वत्र दृश्यते ११
ततो ब्राह्मणवेषेण मानुषं रूपमास्थितः । अवतीर्य महीं शक्रस्तं
पक्षिणमुवाच ह ॥ १२ ॥ शुक भो पक्षिणां श्रेष्ठ दाक्षेयी सुप्रजा
त्वया । पृच्छे त्वां शुकमेनं त्वं कस्मान्न त्यजसि द्रुमम् ॥ १३ ॥
अथ पृष्टः शुकः प्राह मूर्ध्ना समभिवाद्य तम् । स्वागतं देवराज
त्वं विज्ञातस्तपसा मया ॥ १४ ॥ ततो दशशताक्षेण साधु

भी उसको नहीं छोड़ा ॥७॥ उस तोनेने बाहर जाना बन्द कर दिया, आहार त्यागदिया, खिन्न रहने लगा और उसकी वाणी भी शिथिल होगयी, इसप्रकार दूसरेके किये हुए उपकारको जाननेवाला वह धर्मात्मा तोता भी वृक्षके साथ २ अपने शरीर को क्षीण करनेलगा ॥८॥ तोतेकी उदारता मनस्वीपन,मनुष्योंसे भी उत्तम चरित्र और सुख दुःखमें समान रहनेकी वृत्तिकों देख कर इन्द्रको आश्चर्य हुआ ॥ ९ ॥ वह मनमें विचारनेलगा,कि-पक्षियोंमें तो परदुःखकातरता होती नहीं है, इसमें यह क्यों है ? ॥ १० ॥ फिर इन्द्रने मनमें विचारा, कि-इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि-सब योनियोंमें सब प्रकारके प्राणी होते हैं ॥ ११ ॥ फिर इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारण कर पृथ्वीमें आ उस पक्षीसे कहने लगा, कि-॥ १२ ॥ हे तोते ! हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ ! तुझसे दक्षकी धेवत संतान धन्य है,हे तोते ! मैं तुझसे बूझता हूँ,कि-तू इस वृक्षको छोड़ क्यों नहीं देता है१३ इसप्रकार इन्द्रने तोतेसे बूझा,तब तोतेने इन्द्रको मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा, कि-हे देवराज ! आइये ! २ मैंने तपो-

साध्विति भाषितम् । अहो विज्ञानमित्येवं मनसा पूजितस्ततः १५
तमेवं शुभकर्माणं शुकं परमधार्मिकम् । विजानन्नपि तां प्रीतिं
पप्रच्छ बलसूदनः ॥ १६ ॥ निष्पत्रमफलं शुष्कमशरण्यं पति-
त्रिणाम् । किमर्थं सेवसे वृक्षं यदा महदिदं वनम् ॥१७॥ अन्येऽपि
बहवो वृक्षाः पत्रसंछन्नकोटराः । शुभाः पर्याप्तसंचारा विद्यंतेऽ-
स्मिन् महावने ॥१८॥ गतायुषमसामर्थ्यं क्षीणसारं हतश्रियम् ।
विमृश्य प्रज्ञया धीर जहीमं स्थविरं द्रुमम् ॥१९॥ भीष्म उवाच ।
तदुपश्रुत्य धर्मात्मा शुकः शक्रेण भाषितम् । सुदीर्घमतिनिःश्वस्य
दीनो वाक्यमुवाच ह ॥ २० ॥ अनतिक्रमणीयानि दैवतानि
शचीपते । यत्राभवत्तव प्रश्नस्तन्निबोध सुराधिप ॥२१॥ अस्मि-

बलसे आपको पहिचान लिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर सहस्राक्ष इन्द्रने बहुत अच्छा २ कहकर "अहो ! इसका कैसा विज्ञान है" यह अपने मनमें विचार कर उसकी प्रशंसा की ॥१५॥ इन्द्र यह जानता था, कि यह तोता पवित्र कर्म करनेवाला और परमधर्मनिष्ठ है तब भी दैत्यहन्ता इंद्रने उस वृक्षकी प्रीतिके विषयमें उससे बूझा कि-१६ यह बड़ाभारी वन पड़ाहुआ है, तब भी तू इस पत्ते और फलरहित और सूखेहुए तथा पक्षियोंके न रहने योग्य वृक्ष पर किसलिये रहता है १७ इस महावनमें ऐसे और भी बहुतसे वृक्ष हैं, जिनके कोटर पत्तोंसे ढके हुए हैं, जिनका दृश्य सुन्दर है और जिनमें सुखसे रहा जासकता है और घूमा जासकता है ॥१८॥ अतः हे धीर शुक ! तू इस वृक्षको बुद्धिपूर्वक विचारकर त्यागदे, क्योंकि-इसकी आयु पूर्ण होगई है, यह सामर्थ्यरहित है, इसका सार जातारहा है, इसकी शोभा भी नष्ट होगई और यह वृद्ध होगया है ॥ १९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-धर्मात्मा शुक इन्द्रकी इस बातको सुन गहरा साँस ले खिन्न होकर कहनेलगा, कि-२० हे शचीपति ! देवताओंके वचनका उल्लंघन नहीं करना चाहिये

न्नहं द्रुमे जातः साधुभिश्च गुणैर्युतः । बालभावेन संगुप्तः शत्रुभिश्च न धर्षितः ॥ २२ ॥ किमनुक्रोशय वैफल्यमुत्पादयसि मेऽनघ । आनृशंस्याभियुक्तस्य भक्तस्यानन्यगस्य च ॥ २३ ॥ अनुक्रोशो हि साधूनां महद्धर्मस्य लक्षणम् । अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति ॥ २४ ॥ त्वमेव दैवतैः सर्वैः पृच्छ्यसे धर्मसशंयात् । अतस्त्वं देवदेवानामाधिपत्ये प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥ नार्हसे मां सहस्राक्ष द्रुमं त्याजयितुं चिरात् । समर्थमुपजीव्येमं त्यजेयं कथमद्य वै ॥ २६ ॥ तस्य वाक्येन सौम्येन हर्षितः पाकशासनः । शुकं प्रोवाच धर्मात्मा आनृशंस्येन तोषितः ॥२७॥ वरं वृणीष्वेति तदा स च वव्रे वरं शुकः । आनृशंस्यपरो नित्यं

अतः हे देवराज ! तुमने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनिये२१ इस वृक्षपर मेरा जन्म हुआ है, मैंने यहाँ रहकर ही अच्छे २ गुण पाये हैं, इसने मेरी अपने बालककी समान रक्षा की है और यहाँ (रहनेसे) शत्रु भी मुझे न दवा सके ॥ २२ ॥ फिर भी हे पापरहित इन्द्र ! तुम मुझ सरीखे दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेवाले, कुलीन, एकभक्त और दूसरे स्थान पर न जानेवाले पर दया करके मेरे जन्मको निष्फल क्यों करते हो ॥ २३ ॥ क्योंकि-यह कहा है, कि-दूसरोंके दुःखसे दुःखी होना सत्पुरुषोंका महाधर्म है, पराये दुःखसे दुःखी होना ही सत्पुरुषोंको छाजता है ॥२४॥ सब देवता जब धर्ममें सन्देह पड़जाता है तब तुमसे ही बूझते हैं और इसलियेही तुम्हारी देवताओंके अधिपतिरूपसे प्रतिष्ठा की गई है ॥ २५ ॥ हे सहस्रनेत्र ! तुम सरीखे व्यक्तियोंको मुझसे इस वृक्षको छुड़वाना उचित नहीं है, क्योंकि-जब यह वृक्ष समर्थ था उस समय मैं इसपर चिरकाल तक अपनी आजीविका चलाता रहा, फिर अब इसको मैं कैसे त्याग दूँ? ॥२६॥ उसके सुन्दर वचनोंसे पाक शासन इन्द्रको हर्ष हुआ तथा उस

तस्य वृक्षस्य संभवम् ॥२८॥ विदित्वा च दृढां भक्तिं तां शुके शील-संपदम् । प्रीतः क्षिप्रमथो वृक्षममृतेनावसिक्तवान् ॥ २६ ॥ ततः फलानि पत्राणि शाखाश्चापि मनोहराः । शुकस्य दृढभक्तित्व-श्लीमत्तां प्राप स द्रुमः ॥ ३० ॥ शुकश्च कर्मणा तेन आनृशंस्य-कृतेन वै । आयुषोऽन्ते महाराज प्राप शक्रसलोकताम् ॥ ३१ ॥ एवमेव मनुष्येन्द्र भक्तिमन्तं समाश्रितः । सर्वार्थसिद्धिं लभते शुकं प्राप्य यथा द्रुमः ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते आनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि दान-धर्मे शुकवासवसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच । पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । दैवे पुरुषकारे च किंस्विच्छ्रेष्ठतरं भवेत् ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ।

के दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेके धार्मिक स्वभावसे धर्मात्मा इन्द्र सन्तुष्ट हुआ तब उसने शुकसे कहा, कि–॥२७॥ हे शुक ! तू वर माँगले ! तब दूसरेके दुःखसे दुःखी होते हुए शुकनेवर माँगा, कि–"यह वृक्ष सदा हरा भरा रहा करे" यह वर मुझे दीजिये२८ तोतेकी वृक्षकी ओर ऐसी दृढ भक्तिको और उसकी शील-संपत्तिको देखकर इन्द्रने सन्तुष्ट होकर तत्काल ही वृक्ष पर अमृतकी वर्षाकी ॥ २६ ॥ तब तोतेकी दृढ भक्तिके कारण उस वृक्षमें फिर नये २ पत्ते, फल और मनोहर शाखायें निकल आईं ॥ ३० ॥ तोता भी इसप्रकार पराये दुःखसे दुःखी होनेके धर्मके फलसे हे महाराज ! आयु पूर्ण होने पर इन्द्रके लोकमें गया३१ हे मनुष्येन्द्र! वृक्ष जैसे शुकके समागमसे सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ था, इसीप्रकार मनुष्य भी भक्तिमान् पुरुषके सहवास से सब कामोंमें सिद्धि पाता है ॥ ३२ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे बुद्धिमान् सर्वशास्त्रज्ञ पितामह ! प्रारब्ध और पुरुषार्थमें कौन श्रेष्ठ है ? यह मुझे बतलाइये ॥१॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। वसिष्ठस्य च संवादं ब्रह्मणश्च युधिष्ठिर ॥२॥ दैवमानुषयोः किंस्वित्कर्मणोः श्रेष्ठ-मित्युत। पुरा वसिष्ठो भगवान् पितामहमपृच्छत ॥ ३ ॥ ततः पद्मोद्भवो राजन् देवदेवपितामहः। उवाच मधुरं वाक्यमर्थवद्धेतु-भूषितम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच। नाबीजं जायते किंचिन्न बीजेन बिना फलम्। बीजाद्बीजं प्रभवति बीजादेव फलं स्मृतम् ॥ ५ ॥ यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः। सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ॥६॥ यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्। तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥७॥ क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम्। क्षेत्रबीजसमायोगात्ततः सस्यं समृध्यते ॥ ८॥

भीष्मजीने कहा, कि—हे युधिष्ठिर! इस विषयमें भी शास्त्रवेत्ता पुरुष ब्रह्माजी और वशिष्ठजीके सम्वादरूप एक प्राचीन इति-हासका इस प्रकार दृष्टांत दिया करते हैं, कि—॥ २ ॥ पहिले भगवान् वशिष्ठजीने पितामह ब्रह्माजीसे बूझा था, कि—दैव अर्थात् पूर्वजन्मका कर्म और पुरुषार्थ अर्थात् मनुष्यका प्रयत्न, इन दोनों कर्मोंमें श्रेष्ठ कर्म कौनसा है? ॥३॥ तदनन्तर हे राजन्! कमलमेंसे उत्पन्न हुए देवदेव पितामहने प्रयोजन भरा युक्तियुक्त एक वचन कहा ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले, कि—कोई भी पदार्थ बीजके विना उत्पन्न नहीं होता है और बीजके विना फल भी उत्पन्न नहीं होता है, एक बीजमेंसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है और बीजसे ही फल भी उत्पन्न होता है ॥५॥ जैसे किसान खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है, इसी प्रकार पुण्यका अथवा पापका उचित फल कर्ताको मिलता है ॥ ६ ॥ जैसे बीजके बिना खेतको जोतना निष्फल जाता है, ऐसे ही पुरुषार्थके बिना प्रारब्ध भी कुछ फल नहीं देता है ॥ ७ ॥ क्षेत्रको पुरुषार्थ और बीजको प्रारब्ध कहते हैं, क्षेत्र और बीज

कर्मणा फलनिर्वृत्तिं स्वयमश्नाति कारकः । प्रत्यक्षं दृश्यते लोके कृतस्यापकृतस्य च ॥ ९ ॥ शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा । कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् ॥१०॥ कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यसंयुताम् । अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम् ॥ ११ ॥ तपसा रूपसौभाग्यं रत्नानि विविधानि च । प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मना ॥ १२ ॥ तथा स्वर्गश्च भोगश्च निष्ठा या च मनीषिता। सर्वं पुरुषकारेण कृतेनेहोपलभ्यते ॥ १३ ॥ ज्योतींषि त्रिदशा नागा यक्षाश्चन्द्रार्कमारुताः । सर्वे पुरुषकारेण मानुष्याद्देवतां गताः ॥ १४ ॥ अर्थो वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम् । श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं

इन दोनोंके मेलसे ही बहुतसा धान्य उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ कर्म करने वाला कर्मफलको स्वयं भोगता है और जगत्में अच्छे बुरे कर्मका फल प्रत्यक्ष दिखाई देता है ॥९॥ शुभ कर्म करनेसे सुख मिलता है और खोटा कर्म करनेसे दुःख मिलता है, किया हुआ कर्म सर्वत्र फल देता है, विना कर्म किये हुए किसी दिन भी कुछ भी भोगनेको नहीं मिल सकता ॥ १० ॥ कर्म करने वाला पुरुष सर्वत्र भाग्यानुसार प्रतिष्ठा पाता है परन्तु जो कर्म नहीं करता है वह कुछ भी फल नहीं पाता है और वह घाव भरं नमक छिड़कनेकी समान दुःख पाता है ॥ ११ ॥ तप करनेसे रूप, सौभाग्य और नानाभाँतिके रत्न मिलते हैं इस प्रकार कर्म करनेसे सब मिल सकता है, परन्तु जो कर्म नहीं करता है उसको दैवसे कुछ नहीं मिलता है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार स्वर्ग, भोग, धर्ममें स्थिति तथा उत्तम प्रकारकी बुद्धिमत्ता यह सब पुरुषार्थ करनेसे ही लोकमें मिलती हैं ॥ १३॥ नक्षत्र, देवता, नाग, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य, ये सब पुरुषार्थ करनेसे ही मनुष्यसे देवता बने हैं ॥ १४ ॥ जो कुछ कर्म नहीं करते हैं, वे धन नहीं

तथैवाकृतकर्मभिः ॥ १५ ॥ शौचेन लभते विप्रः क्षत्रियो विक्रमेण तु । वैश्यः पुरुषकारेण शूद्रः शुश्रूषया श्रियम् ॥ १६ ॥ नादातारं भजंत्यर्था न क्लीवं नापि निष्क्रियम् । नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम् ॥ १७ ॥ येन लोकास्त्रयः सृष्टा दैत्याः सर्वाश्च देवताः । स एष भगवान्विष्णुः समुद्रे तप्यते तपः॥१८॥ स्वं चेत्कर्मफलं न स्यात्सर्वमेवाफलं भवेत् । लोको दैवं समालम्ब्य उदासीनो भवेन्ननु ॥ १९ ॥ अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्त्तते । वृथा श्राम्यति संप्राप्य पतिं क्लीबमिवाङ्गना २० न तथा मानुषे लोके भयमस्ति शुभाशुभे । यथा त्रिदशलोके हि

पासकते, मित्र नहीं पासकते, उत्तम कुलमें जन्म नहीं पासकते और ऐश्वर्य भी नहीं भोग सकते तथा कठिनतासे मिलने वाली लक्ष्मीको भी नहीं पासकते ॥ १५ ॥ ब्राह्मण पवित्र रह कर लक्ष्मी पाता है, क्षत्रिय पराक्रम करके लक्ष्मी पाता है, वैश्य प्रयत्न करनेसे लक्ष्मी पाता है और शूद्र सेवा करके लक्ष्मी पाता है ॥ १६ ॥ जो दाता नहीं है, धन उनके पास नहीं रह सकता ऐसे ही नपुंसक और कर्महीन पुरुषके पास भी धन नहीं रहता है, डरपोक और तप न करने वालेको भी धन नहीं मिलता है ॥१७॥ जिन्होंने तीनों लोक, सब दैत्य और दानवों को रचा है वह विष्णु भगवान् भी समुद्रमें सदा तपस्या करते रहते हैं १८ अपने कर्मका फल मनुष्योंको न मिला करे तो सब कर्म निष्फल हो जावें और मनुष्य दैवके आसरे रहकर कर्म करनेसें उदासीन रहने लगें१९जो पुरुष प्रयत्न न करके (केवल) दैवके ही भरोसे पर बैठा रहता है वह पुरुष नपुंसक पतिकी स्त्रीकी समान वृथा ही दुःख पाता रहता है २० मनुष्य प्रारब्ध विपरीत होने पर तो इसी लोकमें भय (हानि) उठाता है, परन्तु पुरुषार्थ न करने पर तो उसका यह लोक और परलोक

भयमन्येन जायते ॥ २१ ॥ कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्त्तते । न दैवमकृते किंचित्कस्यचिद्दातुमर्हति ॥ २२ ॥ यथा स्थानान्यनित्यानि दृश्यन्ते दैवतेष्वपि । कथं कर्म विना दैवं स्थास्यति स्थापयिष्यतः ॥ २३ ॥ न दैवतानि लोकेऽस्मिन् व्यापारं यांति कस्यचित् । व्यासंगं जनयंत्युग्रमात्माभिभवशंकया॥२४॥ ऋषीणां देवतानां च सदा भवति विग्रहः । कस्य वाचा ह्यदैवं स्याद्यतो दैवं प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥ कथं तस्य समुत्पत्तिर्यतो दैवं प्रवर्त्तते । एवं त्रिदशलोकेऽपि प्राप्यन्ते बहवो गुणाः ॥ २६ ॥ आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः । आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्य

ये दोनों बिगड़ जाते हैं२१ पुरुषार्थ करनेपर पुरुष अपने प्रारब्धानुसार फलपाता है, परन्तु कर्म न करने पर पुरुषार्थ किसीको कुछ नहीं देता है२२ इन्द्रादि लोकभी देवलोकोंमें नाशवान् दीखते हैं, फिर देवताभी अपने पुण्यकर्मके विना अपने और दूसरेके स्थानोंको किस प्रकार स्थिर करसकते हैं ?२३और देवता भी इस जगत् में किसीके पुण्यकर्मका अनुमोदन नहीं करते हैं परन्तु वे "ये मनुष्य पुण्यकर्म करके हमारा पराभव करेंगे" ऐसी शंकासे उनके पुण्यकर्मोंमें भयंकर विघ्न डाला करते हैं २४ ऋषि और देवताओंमें सदा विग्रह होता रहता परन्तु इसमें कोई यह न समझे कि-दैव कुछ है ही नहीं, क्यों कि-यह सब जगत् की प्रवृत्ति दैवके आधीन है २५ अब यदि कोई कहे कि-यदि दैवसे ही सब काय होते हैं,तो फिर कर्मकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है,यह एक प्रश्न होता है, इसका उत्तर यह है,कि-इस लोक में जैसे कर्मका फल मिलता है, ऐसे ही स्वर्गलोकमें भी धर्म कर्म करनेसे बहुतसा लाभ होता है २६ अपना आत्मा ही अपना बंधु है और अपना आत्मा ही अपना शत्रु है, तैसेही अपने किये और न किये हुए कर्मका साक्षीभी अपना आत्मा ही है२७

कृतस्य च॥२७॥ कृतं चाप्यकृतं किंचित् कृते कर्मणि सिद्ध्यति। सुकृतं दुष्कृतं कर्म न यथार्थं प्रपद्यते ॥ २८ ॥ देवानां शरणं पुण्यं सर्वं पुण्यैरवाप्यते। पुण्यशीलं नरं प्राप्य किं दैवं प्रकरिष्यति ॥ २९ ॥ पुरा ययातिर्विभ्रष्टश्च्यावितः पतितः क्षितौ। पुनरारोपितः स्वर्गं दौहित्रैः पुण्यकर्मभिः ॥ ३० ॥ पुरूरवाश्च राजर्षिर्द्विजैरभिहितः पुरा। ऐल इत्यभिविख्यातः स्वर्गं प्राप्तो महीपतिः ॥ ३१ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैः सत्कृतः कोसलाधिपः। महर्षिशापात्सौदासः पुरुषादत्वमागतः ॥ ३२ ॥ अश्वत्थामा च रामश्च मुनिपुत्रौ धनुर्धरौ। न गच्छतः स्वर्गलोकं सुकृतेनेह

पुण्य और पापकर्म थोड़ासा भी बनजाता है तो उसका फल निश्चित होजाता है और पुण्य पापका फल यथार्थ रीतिसे नहीं मिलता है अर्थात् पुण्य और पापकर्म करनेपर ही उसका फल मिलता है और पापकर्म करनेपर यदि पुण्यकर्म किया जाता है तो पाप नष्ट होजाता है, इससे पहिले पापका फल न मिलकर पिछले पुण्यका फल मिलता है तथा पुण्यकर्म करने पर भी यदि उग्रकर्म कियाजाता है तो पुण्यका नाश होजाता है और पापका फल मिलता है अर्थात् अन्तिमकर्म सर्वोपरि है)॥ २८ ॥ देवता भी पुण्यकी शरण लेते हैं, सब पदार्थ पुण्यसे ही मिलते हैं, पुण्यात्मा, पुरुषका दैव क्या करसकता है? ॥ २९ ॥ पहिले राजा ययाति (दैववश स्वर्गमेंसे) भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था, परन्तु उसके धेवतोंने पुण्यकर्मके प्रभावसे उसको फिर स्वर्गमें भेज दिया था॥ ३० ॥ इलाका पुत्र प्रसिद्ध राजर्षि पुरूरवा भी ब्राह्मणोंके भेजनेसे स्वर्गमें गया था ३१ कोसलराज सौदासने अश्वमेध आदि व्रत करके सत्कार पाया था, परन्तु वह महर्षिके शापसे पुरुषोंको खानेवाला राक्षस बनगया था ३२ अश्वत्थामा और परशुराम ये दोनों मुनिपुत्र धनुर्धारी थे, परन्तु वे अपने

कर्मणा ॥ ३३ ॥ वसुर्यज्ञशतैरिष्ट्वा द्वितीय इव वासवः । मिथ्याभिधानेनैकेन रसातलतलं गतः ॥ ३४ ॥ बलिर्वैरोचनिर्बद्धो धर्मपाशेन दैवतैः । विष्णोः पुरुषकारेण पातालसदनः कृतः ३५ शक्रस्योद्गम्य चरणं प्रस्थितो जनमेजयः । द्विजस्त्रीणां वधं कृत्वा किं दैवेन न वारितः ॥ ३६ ॥ अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा स्पृष्टो बालवधेन च । वैशम्पायनविप्रर्षिः किं दैवेन न वारितः ॥ ३७ ॥ गोप्रदानेन मिथ्या च ब्राह्मणेभ्यो महामखे । पुरा नृगश्च राजर्षिः कृकलासत्वमागतः ॥ ३८ ॥ धुन्धुमारश्च राजर्षिः सत्रेष्वेव जरां गतः । प्रीतिदायं परित्यज्य सुष्वाप स गिरिव्रजे ॥३९॥ पांडवानां हृतं राज्यं धार्त्तराष्ट्रैर्महाबलैः । पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद्भुजसंश्रयात् ॥ ४० ॥ तपोनियमसंयुक्ता मुनयः संशित-

---

कर्मोंके कारण स्वर्गमें न जासके ३३ दूसरे इन्द्रकी समान राजा वसुने सौ यज्ञ किये थे, परन्तु एक असत्यभाषण करनेसे ही स्वर्गमेंसे पातालमें जाना पड़ा था ३४ विरोचनके पुत्र बलिको देवताओंने धर्मके बंधनमें बाँध रक्खा था और विष्णुके पुरुषार्थसे उसको पातालनिवासी बनादिया ३५ पहिले ब्राह्मणियोंकी हत्या करके इन्द्रके चरणोंकी शरण लेनेवाले जनमेजयको दैवने क्यों नहीं रोका था ३६ वैशम्पायन नामक ब्रह्मर्षिने अनजानमें ब्राह्मण का वध किया था और बालहत्या की थी, उनको दैवने क्यों नहीं रोका था (फल दिया था ३७ और पहिले राजा नृगने एक महायज्ञमें ब्राह्मणको मिथ्या ही गौका दान दिया था, तब उस राजाको गिरगट बनना पड़ा था ३८ धुन्धु मार नामक राजर्षि यज्ञ करते ही वृद्ध होगया था और उसको और वह देवताओंके प्रीतिपूर्वक दिये हुए वरको न लेनेके कारण गिरिव्रजमें सोया था ३९ धृतराष्ट्रके महाबलवान् पुत्रोंने पाण्डवोंका राज्य छीन लिया था, उसको पाण्डवोंने दैवसेही फिर नहीं पाया है, किन्तु

व्रताः । किं ते दैवबलाच्छापमुत्सृजन्ते न कर्मणा ॥ ४१ ॥ पापमुत्सृजते लोके सर्वं प्राप्य सुदुर्लभम् । लोभमोहसमापन्नं न दैवं त्राय ते नरम् ॥ ४२ ॥ यथाग्निः पवनोद्धूतः सुसूक्ष्मोऽपि महान् भवेत् । तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्धते ॥ ४३ ॥ यथा तैलक्षयाद्द दीपः महासमुपगच्छति । तथा कर्मक्षयाद्दैवं महासमुपगच्छति ॥ ४४ ॥ विपुलमपि धनौघं प्राप्य भोगान् स्त्रियो वा पुरुष इह न शक्तः कर्महीनो हि भोक्तुम् । सुनिहितमपि चार्थं दैवतै रक्ष्यमाणं पुरुष इह महात्मा प्राप्नुते नित्ययुक्तः॥४५ व्ययगुणमपि साधुं कर्मणा संश्रयन्ते भवति मनुजलोकाद्देवलोको विशिष्टः।

भुजबलसे कर्म करके ही पाया है ४० तप और नियममें परायण रहने वाले और उत्तम व्रतका आचरण करने वाले मुनि क्या दैवबलसे शाप देसकते हैं ? वे तो कर्मके प्रभावसे ही शाप दे सकते हैं ४१ इस जगत्में बड़े भारी परिश्रमसे मिलनेवाली सब वस्तुएँ पापीके पास आते ही जाती रहती हैं लोभी और मूढ़बने हुए पुरुषकी दैवभी रक्षा नहीं करता ४२ सूक्ष्मसे सूक्ष्म अग्नि पवनसे उद्धूत होकर बहुत होजाती है,ऐसेही छोटेसे छोटा प्रारब्ध भी कर्मकी सहायतासे बड़ा होजाता है ४३ जैसे तैल समाप्त हो जाने पर दीपक शान्त होजाता है ऐसे ही कर्म न करनेसे दैव भी नष्टहोजाता है ४४ इसलोकमें कर्म न करनेवाले पुरुष प्रारब्धवश बड़े २ धनभण्डारोंको, भोगोंको और स्त्रियोंको पाकर भी नहीं भोग सकते, परन्तु कर्म करने वाले महात्मा पुरुष देवताओं से रक्षित (पातालके) धनको भी सदा उद्योग करनेसे (अञ्जन आदि लगाकर) पाजाते हैं ४५ दानकरनेके स्वभाववाले सत्पुरुष को उसके कर्मके कारण देवता भी उसको ढूँढते ही रहते हैं और मनुष्यलोकमें ही उस साधु पुरुष का घर देवलोकसे भी अच्छा लगता है अर्थात् इस लोक में ही वह अपने घर को देवलोक

वहुतरसुसमसमृद्ध्या मानुषाणां गृहाणि पितृवनभवनाभं दृश्यते चामराणाम् ॥ ४६ ॥ न च फलति विकर्मा जीवलोकेन दैवं व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम् । गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवं नयति पुरुषकारः संचितस्तत्र तत्र ॥ ४७ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै मुनिसत्तम । फलं पुरुषकारस्य सदा संदृश्य तत्त्वतः ॥४८॥ अभ्युत्थानेन दैवस्य समारब्धेन कर्मणा । विधिना कर्मणा चैव स्वर्गमार्गं मवाप्नुयात् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि दानधर्मे दैवपुरुषकारनिर्देशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच । कर्मणां च समस्तानां शुभानां भरतर्षभ ।

की समान बना लेता है और कृपण मनुष्यों के सकल समृद्धियोंसे भरेहुए घरको भी देवता श्मशानकी समान मानते हैं ४६ इस मनुष्यलोकमें जो मनुष्य कर्म नहीं करता है उसको फल नहीं मिलता है, ऐसे ही कुमार्गमें चलनेवाले पुरुषको दैव सन्मार्गमें नहीं लेजासकता क्योंकि-अकेले दैवमें कुछ प्रभुत्व नहीं है, दैव तो गुरुके पीछे चलनेवाले शिष्यकी समान कर्मके पीछे २ चलता है ४७ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने तत्त्वदृष्टिसे पुरुषार्थके फलको सदा यथार्थ देखकर तुमसे यह बात कही है ४८ पूर्वसञ्चित कर्मफलको भोगना और बात है तथा कर्म करतेजाना और उसके फलको भोगना और बात है (अर्थात् कृषिमें वर्षारूप दैवके अधीन कर्मसिद्धि है, अतः कर्मप्रधान नहीं है, यह नहीं समझना चाहिये, क्योंकि-कृषि आदिमें भी वर्षाकी बाट देखना कापुरुषका काम है, क्योंकि-सेचन आदि कर्मसे ही कृषि होसकती है) इस प्रकार कर्म इस लोकमें फल देता है और विधिपूर्वक कियेहुए कर्मसे स्वर्गका मार्ग मिलजाता है ४९ छठा अध्याय समाप्त ६

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! हे सत्पुरुषों

फलानि महतां श्रेष्ठ प्रब्रूहि परिपृच्छतः ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । हन्त ते कथयिष्यामि यन्मां पृच्छसि भारत । रहस्यं यदृषीणां तु तच्छृणुष्व युधिष्ठिर । यागतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे चिरेप्सिता ॥ २ ॥ येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः । तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३ ॥ यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम् । तस्यां तस्यामवस्थायां भुंक्ते जन्मनिजन्मनि ॥ ४ ॥ न नश्यति कृतं कर्म सदा पंचेन्द्रियैरिह । ते ह्यस्य साक्षिणो नित्यं षष्ठ आत्मा तथैव च ॥ ५ ॥ चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम् । अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पंचदक्षिणः ॥६॥ यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वंनि वर्त्तते । श्रांत-

में श्रेष्ठ ! सकल शुभ कर्मोंका फल किसप्रकार मिलता है, यह मैं आपसे बूझता हूँ १ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! तूने मुझसे जो प्रश्न किया है उसका उत्तर मैं तुझको दूँगा, हे युधिष्ठिर ! ऋषियोंकी गुप्त बातको तू सुन, और बहुत समयसे जिस गतिकी अभिलाषा होती है, वह गति किसप्रकार मिलती है,उसको भी सुन २ प्राणी जिस २ शरीर से जो २ कर्म करता है, उसकर्मके फलको उस २ शरीरसे ही पाता है अर्थात् मनसे किये हुए कर्मके फलको मनसे ही स्वप्न आदिमें भोगता है और शरीरसे किये हुए कर्मको जाग्रत् अवस्थामें शरीरसे ही भोगता है ३ मनुष्य जिस २ अवस्थामें जो२शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है,जन्म जन्मान्तरमें उसकर्मके फलको उस२ (बाल्य, युवा, वृद्ध) अवस्थामें ही भोगता है ४ मनुष्य सदा पञ्चेन्द्रियों से जिन २ कर्मों को करता है, उसके वे कर्म नष्ट नहीं होते हैं पाँच इन्द्रियें और छटा आत्मा उनकर्मोंके साक्षी होते हैं ५ स्थिर दृष्टिसे कार्य करे, मन लगा कर काम करे, सच्ची बात कहे, घर आये हुएके पीछे २ जाये और उसकी सेवाकरे यह पञ्चदक्षिण

यादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ७ ॥ स्थंडिलेषु शयानानां गृहाणि शयनानि च । चीरवल्कलसंवीते वासांस्याभरणानि च ॥ ८ ॥ वाहनानि च यानानि योगात्मनि तपोधने । अग्नी-नुपशयानस्य राज्ञः पौरुषमेव च ॥९॥ रसानां प्रतिसंहारे सौभा-ग्यमनुगच्छति । आमिषप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विन्दति ॥ १० ॥ अवाकशिरास्तु यो लम्बेदुदवासं च यो वसेत् । सततं चैकशायी यः स लभतेऽप्सितां गतिम् ॥ ११ ॥ पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयम् । दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पंचदक्षिणः ॥ १२ ॥ वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपागतः । अक्षयास्तस्य वै

यज्ञ कहलाता है ६ मार्गमें चलनेसे थकेहुए, पहिले कभी न देखे हुए पुरुषको जो पुरुष उत्तम प्रकारका अन्न देता है, उसको बड़े भारी पुण्यका फल मिलता है ७ जो पुरुष कर्मरूप यज्ञभूमिमें शयन करता है,उस पुरुषको उत्तम घर और उत्तम पर्यंक मिलते हैं,जो पुरुष चीथडे और वल्कल वस्त्र पहर कर कर्म करता है उस-को दूसरे जन्ममें वस्त्र और आभूषण मिलते हैं८ जो पुरुष योग करता है तप करता है, उस पुरुषको दूसरे जन्ममें उत्तम घोड़े आदि वाहन तथा पालकी आदि उत्तम यान मिलते हैं और अग्निके समीप शयन करनेवाला राजबल पाता है ९ छः रसों को त्यागनेसे पुरुषको सौभाग्य मिलता है मांसका त्याग करने से पशु और पुत्रोंका लाभ होता है ॥ १० ॥ जो पुरुष नीचेको मस्तक करके लटकता रहता है और जो पुरुष जलमें बैठकर जप आदि करता है तथा जो सदा ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह पुरुष मनोऽभिलषित गति पाता है ११ अतिथिकी पूजाके लिये पाद्य, आसन, दीपक, अन्न और आश्रय देना पञ्चदक्षिणा यज्ञ कहलाता है १२ जो वीर पुरुष रणांगणमें मरकर दीर्घ निद्रामें पड़ जाते हैं, वे वीरपुरुषोंके योग्य स्थान स्वर्गमें

लोकाः सर्वकामगमास्तथा ॥ १३ ॥ धनं लभते दानेन मौनेनाज्ञां विशांपते । उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १४ ॥ रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते । फलमूलाशिनो राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत् ॥ १५ ॥ प्रायोपवेशिनो राजन् सर्वत्र सुखमुच्यते । गवाढ्यः शाकदीक्षायां स्वर्गगामी तृणाशनः ॥ १६ ॥ स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् । स्वर्गं सत्येन लभते दीक्षया कुलमुत्तमम् ॥ १७ ॥ सलिलाशी भवेद्यस्तु सदाग्निः संस्कृतो द्विजः । मन्त्रं साधयतो राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥ १८ ॥ उपवासं च दीक्षायामभिषेकं च पार्थिव । कृत्वा द्वादशवर्षाणि

जाते हैं और उन पुरुषोंको और २ कामना पूर्ण करनेवाले अविनाशी लोक मिलते हैं १३ हे राजन् ! दान देनेसे धनका लाभ होता है, मौन रहनेसे दूसरे आज्ञापालन करते हैं, तप करनेसे भोग भोगनेको मिलते हैं और ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे आयु बढ़ती है ॥ १४ ॥ अहिंसारूपी धर्मका पालन करनेसे ऐश्वर्य और आरोग्य मिलता है, फल और मूलका भक्षण करनेवाले राज्य पाते हैं, पत्तोंका भोजन करनेसे स्वर्ग मिलता है १५ हे राजन् ! उपवास करनेवाले सर्वत्र सुख पाते हैं, शाक न खानेका व्रत पालनेवाले बहुतसी गौएँ पाते हैं, तिनकोंका आहार करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं ॥ १६ ॥ जो स्त्री-सेवनको त्यागकर तीनों समय स्नान करते हैं और केवल वायुको ही पीते हैं उन पुरुषोंको यज्ञ संकल्पका फल मिलता है, सत्य बोलनेसे स्वर्ग मिलता है और यज्ञ करनेसे उत्तमकुलमें जन्म होता है ॥ १७ ॥ जो द्विज सदा जल पीकर रहता है तथा वैदिक-संस्कारोंसे संस्कृत होकर नित्य अग्निहोत्रमें होम करता है तथा गायत्री आदि मंत्रोंकी उपासना करता है, उसको राज्य मिलता है और जो निराहार रहता है वा नियमित आहार करता है उसको स्वर्ग मिलता है ॥ १८ ॥

वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥१९॥ अधीत्य सर्ववेदान् वै सद्यो दुःखा-
द्विमुच्यते । मानसं हि चरन् धर्मं स्वर्गलोकमुपाश्नुते ॥२०॥ या
दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः । योऽसौ प्राणान्तिको
रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥२१॥ यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो
विन्दति मातरम् । एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥ २२ ॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च । स्वकालं नाति-
वर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम् ॥ २३ ॥ जीर्यन्ति जीर्यतः केशा
दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः । चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका न तु

हे राजन् ! जो पुरुष बारह वर्षके व्रतकी दीक्षा लेकर व्रतका आहार करताहुआ तीर्थमें अभिषेक करता है, उसको रणमें मृत्युपानेवालोंके लोकोंसे भी उत्तम लोक मिलते हैं (इस व्रतमें ब्राह्मणको दूधका, क्षत्रियको यवागूका और वैश्योंको आमिक्षा का पान करना चाहिये) ॥ १९ ॥ जो पुरुष सब वेदोंका स्वाध्याय करता है, वह पुरुष दुःखसे छूट जाता है, मानसिक धर्म का आचरण करनेवाला पुरुष अर्थात् मनको निर्मल रखनेवाला पुरुष स्वर्गलोकको पाता है॥२०॥दुर्मति पुरुषोंको जिसका छोडना कठिन है,जो पुरुषके वृद्ध होने पर भी जीर्ण नहीं होती है और जो तृष्णारूपी रोग प्राण जाने तक रहता है, उसको त्यागने वालेको ही सुख मिलता है ॥ २१ ॥ जैसे बछड़ा सहस्रों गौओं मेंसे अपनी माताको ढूँढ लेता है, इसीप्रकार पूर्वजन्मका कर्म भी अपने कर्ताको (ढूँढ़ कर) उसके पीछे लग जाता है ॥ २२ ॥ पुष्प और फल किसीकी प्रेरणा न होने पर भी अपने समय पर उत्पन्न होजाते हैं,ऐसे ही पहिले किया हुआ कर्म भी समय आते ही फल देता है ॥ २३ ॥ पुरुषके वृद्ध (जीर्ण) होने पर उसके केश भी जीर्ण होजाते हैं, और उसके जीर्ण होने पर उसके दाँत भी जीर्ण होजाते हैं तथा उसके नेत्र और कर्ण भी

जीर्यते॥२४॥येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः । प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता । येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद्ब्रह्म पूजितम् ॥२५॥ सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच । भीष्मस्यैतद्वचः श्रुत्वा विस्मिताः कुरुपुङ्गवाः । आसन् प्रहृष्टमनसः प्रीतिमन्तोऽभवंस्तदा ॥ २७ ॥ यन्मन्त्रे भवति वृथोपयुज्यमाने यत्सोमे भवति वृथाभिषूयमाणे । यच्चाग्नौ भवति वृथाभिहूयमाने तत्सर्वं भवति वृथाभिधीयमाने ॥ २८ ॥ इत्येतदृषिणा प्रोक्तमुक्तवानस्मि यद्विभो । शुभाशुभफलप्राप्तौ किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥ २९ ॥कर्मफलिकोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः॥७॥

जीर्ण होजाते हैं, परन्तु एक तृष्णा ही जीर्ण नहीं होती है २४ जिस कार्यसे पिता प्रसन्न होते हैं, उससे प्रजापति प्रसन्न होते हैं, जिस कर्मसे माता प्रसन्न होती है,उससे पृथ्वीकी पूजा की हुई मानी जाती है और उपाध्यायके प्रसन्न होनेसे ब्रह्माजी प्रसन्न हुए माने जाते हैं ॥२५॥ जो पुरुष इन तीनका सत्कार करता है, वह सब धर्मोंका आदर करता है और जो पुरुष इन तीनोंका सत्कार नहीं करता है,उसके यज्ञ आदि सब धर्म निष्फल होजाते हैं ॥२६॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-भीष्मजीकी इस बातको कुरुवंशके महापुरुष पाण्डव सुनकर विस्मित और प्रसन्न हुए ॥२७॥ विजय आदिकी इच्छासे वेदमन्त्रोंका प्रयोग करनेसे जो पाप लगता है,सोमयाग करके ऋत्विजोंको दक्षिणा न देनेसे जो पाप लगता है, मन्त्र न पढकर होम करनेसे जो पाप लगता है,वह सब पाप एक असत्य बोलनेसे लगता है२८ हे विभो ! इसप्रकार ऋषिने शुभाशुभ फलकी प्राप्तिके सम्बन्ध में जो कुछ कहा था,वह मैंने तुमसे कहदिया,अब तू और क्या सुनना चाहता है ॥ २९ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । के पूज्याः के नमस्कार्याः कान्नमस्यसि भारत । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व येभ्यः स्पृहयसे नृप ॥ १ ॥ उत्तमापद्गतस्यापि यत्र ते वर्त्तते मनः । मनुष्यलोके सर्वस्मिन् यदमुत्रेह चाप्युत ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । स्पृहयामि द्विजातिभ्यो येषां ब्रह्म परं धनम् । येषां स्वप्रत्ययः स्वर्गस्तपःस्वाध्यायसाधनम् ३ येषां बालाश्च वृद्धाश्च पितृपैतामहीं धुरम् । उद्वहन्ति न सीदन्ति तेभ्यो वै स्पृहयाम्यहम् ॥ ४ ॥ विद्यास्वभिविनीतानां दांतानां मृदुभाषिणाम् । श्रुतवृत्तोपपन्नानां सदाक्षरविदां सताम् ॥ ५ ॥ संसत्सु वदतां तात हंसानामिव संघशः । मंगल्यरूपा रुचिरा दिव्यजीमूतनिःस्वनाः ॥ ६ ॥ सम्यगुच्चरिता वाचः श्रूयन्ते हि

राजा युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! पूजने योग्य कौन हैं, नमस्कार करने योग्य कौन हैं और आप किन को प्रणाम करते हैं और हे राजन् ! तुम किनको चाहते हो, यह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! ब्रह्मको ही परमधन मानने वाले, आत्मज्ञानको ही स्वर्ग मानने वाले और तपको स्वाध्यायका साधन मानने वाले द्विजोंको मैं प्रिय समझता हूँ ॥ ३ ॥ जिनके कुलमें बालक, वृद्ध पिता तथा पितामहकी धर्म-प्रणालीका पालन करते हैं और दुःखी नहीं होते हैं उनकी मैं स्पृहा करता हूँ ॥ ४ ॥ जो सब विद्याओं को पढ़नेमें विनीत रहते हैं, इन्द्रियोंको नियममें रखते हैं, मृदु-भाषण करते हैं, शास्त्राभ्यास और सदाचारमें परायण रहते हैं, अक्षर ब्रह्मको जानते हैं और सदा सज्जनताका वर्ताव करते हैं (उनसे मैं प्रेम करता हूँ) ॥ ५ ॥ हे तात ! जो (क्षीरनीरका विवेक करने वाले) हंसोंको समान सभाओं में (आत्मा अनात्मा का विवेचन करते हुए) बोलते हैं और जिनकी दिव्य मेघोंके गर्जने की समान शब्द वाली मंगल करने वाली मनोहर वाणी सदा

युधिष्ठिर । शुश्रूषमाणे नृपतौ प्रेत्य चेह सुखावहाः ॥ ७ ॥ ये चापि तेषां श्रोतारः सदा सदसि सम्मताः । विज्ञानगुणसम्पन्नास्तेभ्यश्च स्पृहयाम्यहम् ॥ ८ ॥ सुसंस्कृतानि प्रयताः शुचीनि गुणवन्ति च । ददत्यन्नानि तृप्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ॥९॥ ये चापि सततं राजंस्तेभ्यश्च स्पृहयाम्यहम् । शक्यं ह्येवाहवे योद्धुं न दातुमनसूयितम् ॥ १० ॥ शूरा वीराश्च शतशः सन्ति लोके युधिष्ठिर । येषां संख्यायमानानां दानशूरो विशिष्यते ॥ ११ ॥ धन्यः स्यां यद्यहं भूयः सौम्य ब्राह्मणकोऽपि वा । कुले जातो धर्मगतिस्तपोविद्यापरायणः ॥१२॥ न मे त्वत्तः प्रियतरो लोकेऽस्मिन् पाण्डुनन्दन । त्वत्तश्चापि प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ १३

सुननेमें आती हैं और जिनकी इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करने वाली वाणीको राजे भी सुनते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ और जिनकी वार्तोंकी सुनने वालोंकीभी सम्मतिका सभामें आदर होता है, ऐसे विज्ञानगुण-सम्पन्न पुरुषोंसे मैं स्पृहा करता हूँ ८ और हे युधिष्ठिर।जो ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके लिये प्रयत्न करके उनको पवित्र और अनुकूल पड़ने वाला संस्कृत (मसाला आदि डालकर स्वादिष्ट बनाया हुआ) किया हुआ अन्न जिमाते हैं ९ उनको भी हे राजन् ! मैं सदा चाहा करता हूँ, क्योंकि-रणमें युद्ध तो किया जासकता है, परन्तु अभिमान किये विना दान नहीं दिया जासकता ॥१०॥ हे युधिष्ठिर ! जगत्में सैंकड़ों और सहस्रों शूर वीर हैं, उन सबकी तुलना करने पर दानशूर ही श्रेष्ठ समझा जाता है॥११॥हे सौम्य ! यदि मैं साधारण ब्राह्मण के यहाँ भी उत्पन्न होऊँ तो अपनेको भाग्यवान समझूँगा फिर धर्मात्मा और तप और विद्यापरायण ब्राह्मणके श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होनेकी तो बात ही क्या है ? ॥१२॥ हे पाण्डुनन्दन ! मुझे इस जगत्में तुझसे अधिक और कोई प्रिय नहीं है, परन्तु

यथा मम प्रियतमास्त्वत्तो विप्राः कुरूत्तम । तेन सत्येन गच्छेयं लोकान् यत्र स शान्तनुः ॥ १४ ॥ न मे पिता प्रियतरो ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽभवत् । न मे पितुः पिता वापि ये चान्येऽपि सुहृज्जनाः ॥ १५ ॥ न हि मे वृजिनं किंचिद्विद्यते ब्राह्मणेष्विह । अणु वा यदि वा स्थूलं विद्यते साधु कर्मसु ॥ १६ ॥ कर्मणा मनसा वापि वाचा वापि परंतप । यन्मे कृतं ब्राह्मणेभ्यस्तेनाद्य न तपाम्यहम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मण्य इति मामाहुस्तया वाचास्मि तोषितः । एतदेव पवित्रेभ्यः सर्वेभ्यः परमं स्मृतम् ॥१८॥ पश्यामि लोकानमलाञ्छुचीन् ब्राह्मणयायिनः । तेषु मे तात गन्तव्यमह्नाय च चिराय च ॥ १९ ॥ यथा भर्त्राश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके

हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! ब्राह्मण मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं ॥ १३ ॥ हे कुरूत्तम ! ब्राह्मण मुझे तुमसे अधिक प्रिय हैं, यदि यह सत्य है तो मैं इस पुण्यसे अपने पिता शान्तनुके लोकोंमें जाऊँगा ॥१४॥ मैं अपने पिताको भी ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं समझता था और अपने पिताके पिता तथा दूसरे मित्रोंको भी मैं ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं समझता ॥ १५ ॥ इस लोकमें मैं ब्राह्मणोंसे कुछ आशा रखकर उनकी पूजा नहीं करता हूँ, मैंने छोटा या बड़ा जो कुछ भी कर्म किया है, वह सब कर्तव्य समझकर ही किया है ॥ १६ ॥ हे शत्रुतापन राजन ! मैंने मनसे, वाणीसे और कर्मसे ब्राह्मणोंकी जो पूजाकी है, (उसके प्रभाव) से ही आज मुझे (बाण) पीड़ा नहीं देते हैं ॥१७॥ मुझे मनुष्य ब्रह्मण्य कहा करते थे, इस वाणीसे मैं प्रसन्न हुआ करता था, शास्त्रमें कहा है, कि ब्राह्मणत्व सब पवित्र वस्तुओंसे भी परम-पवित्र है ॥१८॥ ब्राह्मणोंका अनुसरपना करनेवाला मैं अपने लिये (रचेहुए) पवित्र और निर्मल लोकोंको देख रहा हूँ, हे तात ! मैं इन लोकोंमें बहुत समयके लिये जाऊँगा १९

युधिष्ठिर । स देवः सा गतिर्नान्या क्षत्रियस्य तथा द्विजाः ॥२०॥ क्षत्रियः शतवर्षी च दशवर्षी द्विजोत्तमः । पितापुत्रौ च विज्ञेयौ तयोर्हि ब्राह्मणो गुरुः॥ २१ ॥ नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम् । पृथिवी ब्राह्मणालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम् ॥ २२ ॥ पुत्रवच्च ततो रक्ष्या उपास्या गुरुवच्च ते । अग्निवच्चोपचर्या वै ब्राह्मणाः कुरुसत्तम । ऋजून्सतः सत्यशीलान् सर्वभूतहिते रतान् । आशीविषानिव क्रुद्धान् द्विजान्परिचरेत् सदा ॥ २४ ॥ तेजसस्तपसश्चैव नित्यं बिभ्येद्युधिष्ठिर । उभे चैते परित्याज्ये तेजश्चैव तपस्तथा॥२५॥व्यवसायस्तयोः शीघ्रमुभयोरेव विद्यते ।

हे युधिष्ठिर ! जैसे जगत्में पतिका आश्रय करना ही स्त्रियोंका धर्म मानाजाता है, वही उनका देवता और मोक्ष मानाजाता है, ऐसे ही क्षत्रियका धर्म, देवता और गति ब्राह्मणसेवा ही है २० दश वर्षके ब्राह्मणको और सौ वर्षके क्षत्रियको भी पिता-पुत्र ही समझना चाहिये, क्योंकि-दोनोंमें ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है ।२१॥ स्त्री जैसे पतिकी अनुपस्थितिमें देवरको रक्षक बनालेती है, ऐसे ही पृथ्वी ब्राह्मणोंकी प्राप्ति न होनेसे ही अर्थात् ब्राह्मणोंके राजापन स्वीकार न करनेसे ही क्षत्रियको रक्षक बनाती है ॥ २२ ॥ अतः हे कुरुवंशके उत्तम पुत्र ! ब्राह्मणोंकी पुत्रकी समान रक्षा करनी चाहिये, गुरुकी समान उपासना करनी चाहिये और अग्निकी समान सेवा करनी चाहिये ॥ २३ ॥ सरल वर्ताव करने वाले, सत्यभाषी, सब प्राणियोंके हितमें परायण रहने वाले, विषैले सर्पकी समान क्रोध करने वाले सज्जन ब्राह्मणों की क्षत्रियोंको सदा ही उपासना करनी चाहिये २४ हे युधिष्ठिर ! मनुष्य तेज और तपसे सदा डरता रहे और तेज (क्रोधबल) तथा तप (योगबल) इन दोनोंसे सदा दूर रहे ॥ २५ ॥ इन दोनों का अर्थात् क्षत्रियमें स्थित तेजका और ब्राह्मणमें स्थित

हन्युः क्रुद्धा महाराज ब्राह्मणा ये तपस्विनः ॥ २६ ॥ भूयः स्या-
दुभयं दत्तं ब्राह्मणाच्चदकोपनात् । कुर्यादुभयतः शेषं दत्तशेषं न
शेषयेत् ॥ २७ ॥ दण्डपाणिर्यथा गोषु पालो नित्यं हि रक्षयेत् ।
ब्राह्मणा ब्रह्म च तथा क्षत्रियः परिपालयेत् ॥ २८ ॥ पितेव
पुत्रान् रक्षेथा ब्राह्मणान् धर्मचेतसः । गृहे चैषामवेक्षेथाः किंस्वि-
दस्तीति जीवनम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच । ब्राह्मणानां तु ये लोकाः प्रतिश्रुत्य पिता-

तपका फल शीघ्र ही होता है, परन्तु तपस्वी ब्राह्मण यदि क्रोध में भर जाते हैं तो वे (अपराधी को) मार डालते हैं ॥ २६ ॥ यदि क्रोध न करने वाले ब्राह्मण पर तेजका प्रयोग किया जाता है तो दोनों बाकी रहजाते हैं अर्थात् क्षमावाले ब्राह्मण पर बहुतसा तेज (क्रोध) करने पर भी वह रुई के ढेरकी समान तत्क्षण नष्ट होजाता है (और ब्राह्मण क्षत्रिय) दोनों सकुशल रहते हैं और यदि दोनों क्रोधमें भरजाते हैं तो तपस्वी ब्राह्मण तेज (क्षत्रिय) का नाश कर डालता है (परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया था, परन्तु वसिष्ठका विश्वामित्रके तेजसे नाश नहीं होसका था) ॥२७॥ जैसे हाथमें दण्डा लेकर ग्वालिया सदा गौओंकी रक्षा करता है, ऐसे ही ब्राह्मण और वेदकी क्षत्रियको सदा रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥ पिता जैसे पुत्रोंकी रक्षा करता है, इसी प्रकार क्षत्रियको भी धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी चाहिये और उनके घरमें जीवननिर्वाहकी सामग्री है या नहीं इस लिये उनके घरको भी देखते रहना चाहिये॥२९॥

अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! जो पुरुष ब्राह्मणोंको

मह । न प्रयच्छन्ति मोहात्ते के भवन्ति महाद्युते ॥ १ ॥ एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि धर्मं धर्मभृताम्वर । प्रतिश्रुत्य दुरात्मानो न प्रयच्छन्ति ये नराः ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । यो न दद्यात् प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु । आशा तस्य हताः सर्वाः क्लीवस्येव प्रजाफलम् ॥ ३ ॥ यां रात्रिं जायते जीवो यां रात्रिं च विनश्यति । एतस्मिन्नन्तरे यद्यत् सुकृतं तस्य भारत ॥ ४ ॥ यच्च तस्य हुतं किंचिद्दत्तं वा भरतर्षभ । तपस्तप्तमथो वापि सर्वं तस्योपहन्यते ॥ ५ ॥ अथैतद्वचनं प्राहुर्धर्मशास्त्रविदो जनाः । निशम्य भरतश्रेष्ठ बुद्ध्या परमयुक्तया ॥ ६ ॥ अपि चोदाहरन्तीमं धर्मशास्त्रविदो जनाः । अश्वानां श्यामकर्णानां सहस्रेण स मुच्यते७

दान देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर मोहवश दान नहीं देते हैं हे महायशस्विन् ! (मरणके अनन्तर) उन पुरुषोंकी क्या गति होती है ॥ १ ॥ हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! इस धार्मिक बातको आप मुझसे यथार्थ रीतिसे कहिये, जो दुरात्मा पुरुष दान देनेकी प्रतिज्ञा करके भी दान नहीं देते हैं (उनकी क्या गति होती है ?) २ भीष्मजीने कहा, कि-जो थोड़ा या बहुत देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देता है, उस पुरुषकी सब आशायें नपुंसक पुरुषकी सन्तान पानेकी आशाकी समान निष्फल ही रहती हैं ॥ ३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! ऐसा जीव जिस रात्रिसे उत्पन्न होता है और जिस रात्रिमें मरता है इन दोनों रात्रियोंके मध्यमें जो २ पुण्यकर्म करता है और हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! जो कुछ होम, दान तथा तप आदि करता है उस सबका फल नष्ट होजाता है ॥ ४-५ ॥ हे भरतर्षभ ! धर्म शास्त्रको जाननेवाले पुरुषोंने बुद्धिपूर्वक विचार करके और (शास्त्र) सुनकर यह बात कही है ॥६॥ धर्मशास्त्रको जाननेवाले पुरुष कहते हैं, कि-एक सहस्र श्यामकर्णवाले घोड़ोंका दान करनेसे प्रतिज्ञाभंगके पापसे छूट

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । शृगालस्य च सम्वादं वानरस्य च भारत ॥ ८ ॥ तौ सखायौ पुरा ह्यास्तां मानुषत्वे परन्तप । अन्यां योनिं समापन्नौ शार्गालीं वानरीं तथा ॥ ९ ॥ ततः परासून् खादन्तं शृगालं वानरोऽब्रवीत् । श्मशानमध्ये संप्रेक्ष्य पूर्वजातिमनुस्मरन् ॥ १० ॥ किं त्वया पापकं पूर्वं कृतं कर्म सुदारुणम् । यस्त्वं श्मशाने मृतकान् पूतिकानत्सि कुत्सितान् ११ एवमुक्तः प्रत्युवाच शृगालो वानरं तदा । ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य न मया तदुपाहृतम् ॥ १२ ॥ तत्कृते पापकीं योनिमापन्नोऽस्मि प्लवंगम । तस्मादेवं विधं भक्ष्यं भक्षयामि बुभुक्षितः ॥ १३ ॥ भीष्म उवाच । शृगालो वानरं प्राह पुनरेव नरोत्तम । किं त्वया

जाता है ॥ ७ ॥ हे भारत! इस विषयमें भी शृगाल और वानरके सम्वादरूपी एक प्राचीन इतिहासका इस प्रकार उदाहरण दिया करते हैं ॥ ८ ॥ हे शत्रुतापन राजन्! एक गीदड़ और शृगाल पहिले-मनुष्य जन्म में मित्र २ थे, दूसरे जन्ममें वे गीदड़ और वानरकी योनिमें उत्पन्न हुए थे ॥ ९ ॥ एक दिन श्मशानमें गीदड़को मरे हुए प्राणियोंको खाते हुए देख कर वानरको अपने मनुष्यजन्मका स्मरण आगया, तब वह गीदड़से बूझने लगा, कि—॥ १० ॥ तूने पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा दारुण पापकर्म किया है, (जिसके फलसे) तू श्मशानमें सड़े हुए और कुत्सित मुरदोंको खारहा है ॥ ११ ॥ वानरने शृगालसे इस प्रकार बूझा तब शृगालने उससे कहा, कि—"मैंने ब्राह्मणको दान देने की प्रतिज्ञा करके उसको दान नहीं दिया था ॥१२॥ इससे हे वानर! मैं इस पापी योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और भूखा होनेके कारण इस प्रकारका भोजन कर रहा हूँ" ॥ १३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि—हे नरोत्तम! तदनन्तर गीदड़ने वानरसे बूझा, कि—तूने ऐसा कौनसा पापकर्म किया है, जिससे तुझे वानरकी योनिमें जन

पातकं कर्म कृतं येनासि वानरः ॥ १४ ॥ वानर उवाच । सदा चाहं फलाहारो ब्राह्मणानां प्लवंगमः । तस्मान्न ब्राह्मणस्वं तु हर्त्तव्यं विदुषा सदा । समं विवादो मोक्तव्यो दातव्यं च प्रतिश्रुतम् ॥ १५ ॥ भीष्म उवाच । इत्येतद्ब्रुवतो राजन् ब्राह्मणस्य मया श्रुतम् । कथां कथयतः पुण्यां धर्मज्ञस्य पुरातनीम् ॥१६॥ श्रुतश्चापि मया भूयः कृष्णस्यापि विशाम्पते । कथां कथयतः पूर्वं ब्राह्मणं प्रति पांडवः ॥ १७ ॥ न हर्त्तव्यं विप्रधनं क्षंतव्यं तेषु नित्यशः । बालाश्च नावमन्तव्या दरिद्राः कृपणा अपि॥१८॥ एवमेव च मां नित्यं ब्राह्मणाः सन्दिशन्ति वै । प्रतिश्रुत्य भवेद्देयं नाशा कार्या द्विजोत्तमे ॥ १९ ॥ ब्राह्मणो ह्याशया पूर्वं कृतया

लेना पड़ा है ॥ १४ ॥ वानरने कहा, कि मैं ब्राह्मणोंके फलोंको सदा खाजाया करता था, इससे मैं वानर होगया हूँ, इसलिये विद्वान्‌को कभी भी ब्राह्मणोंके धनको काममें न लाना चाहिये तथा ब्राह्मणोंके साथ विवाद भी नहीं करना चाहिये और जो ब्राह्मणोंको देनेके लिये कहा हो, उसको(तुरत)देदेना चाहिये१५ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन्! पहिले इस विषयमें बातचीत चलनेपर मैंने अपने धर्मवेत्ता गुरुके मुखसे यह प्राचीन और पवित्र कथा सुनी थी ॥ १६ ॥ ऐसे ही हे राजन्! हे पाण्डुपुत्र! पहिले ब्राह्मणोंको दान देनेकी बात करतेहुए श्रीकृष्णसे भी यही बात सुनी थी १७ कि-ब्राह्मणोंका धन नहीं छीनना चाहिये,उनसे अपराध होजाय तब भी उनको सदा क्षमा करना चाहिये, और ब्राह्मण बालक हो, दरिद्री हो अथवा कृपण हो तब भी उसका अपमान नहीं करना चाहिये ॥१८॥ ब्राह्मण मुझसे यही कहते रहते हैं,कि-ब्राह्मणको आशा नहीं देनी चाहिये और आशा देदी हो तो उसीप्रकार देदेना चाहिये ॥१९॥ हे भूमिपाल! ब्राह्मण पहिले आशा पाने पर समिधाओंसे प्रदीप्त अग्निकी समान होजाता

पृथिवीपते । सुसमिद्धो यथा दीप्तः पावकस्तद्विधः स्मृतः ॥ २० ॥ यं निरीक्षेत संक्रुद्ध आशया पूर्वजातया । प्रदहेच्च हि तं राजन् कक्षमक्षय्यभुग्यथा ॥ २१ ॥ स एव हि यदा तुष्टो वचसा प्रतिनन्दति । भवत्यगदसंकाशो विषये तस्य भारत ॥ २२ ॥ पुत्रान् पौत्रान् पशूंश्चैव बान्धवान् सचिवांस्तथा । पुरं जनपदं चैव शान्तिरिष्टेन पोष्येत् ॥ २३ ॥ एतद्धि परमं तेजो ब्राह्मणस्येह दृश्यते । सहस्रकिरणस्येव सवितुर्धरणीतले ॥ २४ ॥ तस्माद्दातव्यमेवेह प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिर । यदीच्छेच्छोभनां जातिं प्राप्तुं भरतसत्तम ॥ २५ ॥ ब्राह्मणस्य हि दत्तेन ध्रुवं स्वर्गो ह्यनुत्तमः । शक्यः प्राप्तुं विशेषेण दानं हि महती क्रिया ॥ २६ ॥ इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा । तस्माद्दानानि देयानि ब्राह्म-

---

हैं, ऐसा (शास्त्रमें) कहा है ॥२०॥ हे राजन् ! अक्षय भोजन करनेवाला अग्नि जैसे फूंसको जला डालता है, ऐसे ही पहिले दीहुई आशाके पूर्ण न होनेसे क्रोधमें भराहुआ ब्राह्मण जिसकी ओर देखता है, उसको भस्म करडालता है ॥ २१ ॥ परन्तु हे भारत! वही ब्राह्मण जब सन्तुष्ट होकर(दातासे)अभिनन्दनके वचन कहता है, तब वह दाताके लिये औषधसा होजाता है २२ और (दाताके)पुत्रोंका, पौत्रोंका, पशुओंका, बाँधवोंका, मंत्रियोंका, नगरका और देशका हित और क्षेम करके पोषण करता है॥ २३ ॥ सहस्र किरणोंवाले सूर्यका तेज जैसे पृथ्वीमें दिखाई देता है ऐसे ही ब्राह्मणका परमतेज भी पृथ्वी पर दिखाई देता है ॥ २४ ॥ इसलिये हे युधिष्ठिर ! हे भरतर्षभ राजन् ! मनुष्य यदि उत्तम योनिमें उत्पन्न होना चाहे तो उसको प्रतिज्ञाकी हुई वस्तु अवश्य देदेनी चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि–ब्राह्मणको दान देनेसे सर्वोत्कृष्ट स्वर्ग अधिकतर अवश्य ही मिलसकता है,क्योंकि–दान एक बड़ीभारी क्रिया है ॥ २६ ॥ इसलोकमें ब्राह्मणोंको

णेभ्योऽवजानता ॥२७॥ महद्धि भरतश्रेष्ठ ब्राह्मणस्तीर्थमुच्यते। वेलायां न तु कस्यांचिद्गच्छेद्विप्रो ह्यपूजितः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शृगालवानरसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच। मित्रसौहार्दयोगेन उपदेशं करोति यः। जात्याऽधरस्य राजर्षे दोषस्तस्य भवेन्न वा ॥१॥ एतदिच्छामि तत्त्वेन व्याख्यातुं वै पितामह। सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य यत्र मुह्यंति मानवाः ॥ २ ॥ भीष्म उवाच। अत्र ते वर्तयिष्यामि शृणु राजन् यथाक्रमम्। ऋषीणां वदतां पूर्वं श्रुतमासीद्यथा पुरा ॥ ३ ॥ उपदेशो न कर्त्तव्यो जातिहीनस्य कस्यचित्। उपदेशे महान् दोष उपाध्यायस्य भाष्यते ॥ ४ ॥ निदर्शनमिदं राजन् शृणु मे

दान देनेसे देवता और पितर तृप्त होते हैं,अतः धर्मवेत्ता पुरुषोंको ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये ॥ २७ ॥ हे भरतर्षभ राजन्! विप्र महातीर्थ मानेजाते हैं, अतः विप्र(अपने घरसे) कभी पूजा पाये विना न जाना चाहिये ॥ २८ ॥ नवम अध्याय समाप्त ९

राजा युधिष्ठिरने बूझा, कि–यदि कोई मित्र (अपने ऊपर किये हुए उपकारका ध्यान आने पर उपकार करनेके) भावसे अथवा सुहृद (उपकारकी अपेक्षा न कर लोभ वा कृपासे उपकार करनेके) भावसे अधम जातिके पुरुषको उपदेश दे,तो उसको पाप लगेगा, या नहीं ?॥१॥हेपितामह! इस बातको मैं आपसे यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ, क्यों कि धर्मकी गति सूक्ष्म है और मनुष्य उसको समझनेमें मोहमें पड़ जाते हैं ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–मैंने पहिले परस्पर वार्तालाप करते हुए ऋषियोंके मुखसे इस विषयमें जो कुछ सुना है, उसको मैं अनुक्रमसे कहता हूँ, सुन ॥३॥ किसी भी हीन जाति वाले पुरुषको उपदेश नहीं देना चाहिये, क्योंकि–कहाहै, कि–(अधम वर्ण वाले पुरुष को)

भरतर्षभ । दुरुक्तवचने राजन् यथा पूर्वं युधिष्ठिर ॥ ५ ॥ ब्रह्मा-श्रमपदे वृत्तं पार्श्वे हिमवतः शुभे । तत्राश्रमपदं पुण्यं नानावृक्ष-गणायुतम् ॥६॥ नानागुल्मलताकीर्णं मृगद्विजनिषेवितम् । सिद्ध-चारणसंयुक्तं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥ ७ ॥ व्रतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपसेवितम् । ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ८ नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः । दीक्षितैर्भरतश्रेष्ठ यता-हारैः कृतात्मभिः ॥ ९ ॥ तपोध्ययनघोषैश्च नादितं भरतर्षभ । वालखिल्यैश्च बहुभिर्यतिभिश्च निषेवितम् ॥ १० ॥ तत्र कश्चित् समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः । आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च

उपदेश देनेसे उपाध्यायको बडा भारी दोष होता है ॥ ४ ॥ हे भरतर्षभ राजा युधिष्ठिर ! दुःखमें पड़े हुए एक नीच जातिके पुरुषको पहिले एक ब्राह्मणने उपदेश दिया था, उस दृष्टान्त को तू मुझ से सुन ॥ ५ ॥ यह वृत्तान्त हिमालयके समीपमें ब्राह्मणोंके एक पवित्र आश्रममें हुआ था. हिमाचलके निकट वह आश्रमस्थान परम-पवित्र था, उसमें अनेक प्रकारके वृक्षोंके गण (बाग) लग रहे थे ॥ ६ ॥ वह अनेक प्रकारकी लता और गुल्मोंसे छा रहा था, पशु और पक्षियोंसे सेवित था, सिद्ध और चारणोंसे भरपूर था रमणीय था, उसका वन पुष्पित रहता था ७ बहुतसे व्रतधारी मनुष्योंसे भरा रहता था, तपस्वी महाभाग्यवान् तथा सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी ब्राह्मणोंसे सेवित था ८ नियम और व्रत पालनेवाले मुनियोंसे भराहुआ था और हे राजन् ! नियमानुसार आहार करनेवाले और मनको नियममें रखनेवाले दीक्षित पुरुष भी तहाँ रहते थे ॥ ९ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! तप और वेदाध्ययनके घोषसे वह आश्रम गुंजारता रहता था और तहाँ पर बहुतसे वालखिल्य और संन्यासी रहते थे ॥१०॥ उस आश्रममें एक (सब प्राणियोंपर अभयदानरूपी)

तपस्विभिः ॥ ११ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा मुनिगणान् देवकल्पान् महौजसः। विविधां वहतो दीक्षां संप्राहृष्यत भारत ॥१२॥ अथास्य बुद्धिरभवत्तपस्ये भरतर्षभ। ततोऽब्रवीत् कुलपतिं पादौ संगृह्य भारत ॥ १३ ॥ भवत्प्रसादादिच्छामि धर्मं वक्तुं द्विजर्षभ। तन्मां त्वं भगवन्वक्तुं प्रव्राजयितुमर्हसि ॥ १४ ॥ वर्णावरोऽहं भगवन् शूद्रो जात्यास्मि सत्तम। शुश्रूषां कर्त्तुमिच्छामि प्रपन्नाय प्रसीद मे ॥ १५ ॥ कुलपतिरुवाच। न शक्यमिह शूद्रेण लिंगमाश्रित्य वर्त्तितुम्। आस्यतां यदि ते बुद्धिः शुश्रूषानिरता भव ॥ १६ ॥ शुश्रूषया परांल्लोकानवाप्स्यसि न संशयः ॥ १७ ॥ भीष्म उवाच। एवमुक्तस्तु मुनिना स शूद्रोऽचिंतयन्नृप। कथमत्र मया

दया करनेवाला शूद्र उत्साहसे आया, तब तपस्वियोंने उसका सत्कार किया ॥ ११॥ हे भरतवंशी राजन्! वह शूद्र महाबली मुनियोंको अनेक प्रकारकी दीक्षा लेकर कर्म करते देख बड़ा प्रसन्न हुआ १२तदनंतर हे भरतर्षभ राजन्! उस आगन्तुक शूद्र को तप करनेकी इच्छा हुई,तब उसने कुलपति (आश्रममें रहने वाले ऋषियोंके गुरु)के दोनों चरणोंको छूकर कहा, कि१३हे श्रेष्ठ ब्राह्मण!मैं आपकी कृपासे धर्म जानना चाहता हूँ, अतः हे भगवन्! आपको मुझे धर्मका उपदेश देना और मेरे कर्मोंको मुझसे छुडाना उचित है॥१४॥हे भगवन्! हे श्रेष्ठ ऋषे! मैं चारों वर्णों में निकृष्ट शूद्र जातिका हूँ,और आपकी सेवा करना चाहता हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ,अतः आप मुझ पर प्रसन्न हूजिये१५ कुलपतिने कहा, कि-इस आश्रममें संन्यासियोंका वेश धारण करके कोई शूद्र यहीं रह सकता (क्योंकि-उसको संन्यास का अधिकार नहीं है) यदि तेरी इच्छा हो तो तू इस आश्रममें रह और तेरी समझमें आवे तो तू सेवा कर ॥१६॥ सेवा करने से तुझे उत्तम लोक मिलेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥

कार्यं श्रद्धा धर्मपरा च मे ॥ १८ ॥ विज्ञातमेवं भवतु करिष्ये प्रियमात्मनः । गत्वाश्रमपदाद्दूरमुटजं कृतवांस्तु सः ॥ १९ ॥ तत्र वेदीं च भूमिं च देवतायतनानि च । निवेश्य भरतश्रेष्ठ नियमस्थोऽभवन्मुनिः ॥ २० ॥ अभिषेकांश्च नियमान् देवतायतनेषु च । बलिं च कृत्वा हुत्वा च देवताश्चाप्यपूजयत ॥२१॥ संकल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः । नित्यं सन्निहिताभिस्तु ओषधिभिः फलैस्तथा ॥ २२ ॥ अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् । एवं हि सुमहान् कालो व्यत्यक्रामत तस्य वै ॥२३॥ अथास्य मुनिरागच्छत् संगत्या वै तमाश्रमम् । संपूज्य स्वागते-

भीष्मजीने कहा, कि हे राजन् ! मुनिने शूद्रसे इसप्रकार कहा, तब वह विचारमें पडगया, और विचारने लगा, कि—अब मैं क्या करूँ ? मेरी श्रद्धा तो धर्म पर है ॥ १८ ॥ मैं अपने आत्माका ही प्रिय करूँगा, भले ही इसको (दूसरे) जान जाँय (यह विचार कर) उसने आश्रमसे दूर जाकर एक कुटी बनाई १९ यज्ञके लिये) वेदी बनाकर और (सोनेके लिये) भूमिको स्वच्छ करके और मन्दिर बना कर हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वह शूद्र नियममें रहकर मुनिके धर्मका पालन करने लगा॥२०॥ वह तीनों समय स्नान करने लगा नियमोंका पालन करने लगा और देवताओंके मन्दिरमें बलिदान देकर और होम करके देवताओं का पूजन करनेलगा ॥२१॥ वह शूद्र मनके संकल्पोंका निरोध करने लगा, फलका आहार करने लगा, इन्द्रियोंको वशमें रखने लगा और अपने आश्रममें आनेवाले अतिथियोंकी, आश्रमके पासमें उत्पन्न होनेवाले धान्यों और फलोंसे विधिपूर्वक पूजा करने लगा, ऐसा करते २ उसे बहुत समय बीतगया ॥ २३ ॥ फिर एक मुनि उस शूद्रसे मिलनेके लिये उसके आश्रममें आये, तब उस शूद्रने उन ऋषिका विधिपूर्वक स्वागत करके उनको

नर्षिं विधिवत्समतोषयत् ॥ २४ ॥ अनुकूलाः कथाः कृत्वा यथागतमपृच्छत । ऋषिः परमतेजस्वी धर्मात्मा संशितव्रतः॥२५॥एवं सुबहुशस्तस्य शूद्रस्य भरतर्षभ । सोगच्छदाश्रममृषिः शूद्रं द्रष्टुं नरर्षभ ॥ ६ ॥ अथ तं तापसं शूद्रः सोऽब्रवीद्भरतर्षभ । पितृकार्यं करिष्यामि तत्र मेऽनुग्रहं कुरु ॥ २७ ॥ बाढमित्येव तं विप्र उवाच भरतर्षभ । शुचिर्भूत्वा स शूद्रस्तु तस्यर्षेः पाद्यमानयत्२८ अथ वन्यांश्च दर्भांश्च ओषधीर्भरतर्षभ । पवित्रमासनं चैव बृसीं च समुपानयत् ॥ २६ ॥ अथ दक्षिणमावृत्य बृसीं चरमशीर्षिकीम् । कृतामन्यायतो दृष्ट्वा तं शूद्रमृषिरब्रवीत् ॥ ३० ॥ कुरुष्वैतां पूर्वशीर्षां भवांश्चोदङ्मुखः शुचिः । स च तत्कृतवान् शूद्रः सर्वं

सन्तुष्ट किया ॥ २४ ॥ और उनसे अनुकूल बातें कहकर उनके आनेका वृत्तान्त बूझा,हे भरतर्षभ!इसके अनन्तर वह धर्मात्मा और पूजनीय व्रत पालने वाले परमतेजस्वी ऋषि उस शूद्रको देखनेके लिये उसके आश्रममें वारम्वार आनेलगे ॥२५॥२६॥ तदनन्तर हे पुरुषश्रेष्ठ ! एक समय उस शूद्रने उस तपस्वीसे कहा, कि–मैं पितरोंका श्राद्ध करना चाहता हूँ, अतः आप मेरे ऊपर अनुग्रह करिये ॥ २७ ॥ तब हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! उस ब्राह्मणने कहा, कि–" बहुत अच्छा " तब उस शूद्रने शुद्ध होकर उन ऋषिको पाद्य दिया ॥ २८ ॥ फिर हे भरतर्षभ राजन् ! वह श्राद्धोपयोगी दर्भ, वनकी ओषधियें, पवित्र आसन तथा वृषी आदि ले आया ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह शूद्र स्वयं दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके बैठगया और वृषी अर्थात् दर्भके अग्रभागको पश्चिमकी ओर रक्खा, इसप्रकार वेद विधिके विरुद्ध आसनको बिछा हुआ देखकर ऋषिने उस शूद्रसे कहा, कि–।३०॥ इस दर्भासनके अग्रभाग को पूर्वदिशाकी ओर रख और तू स्नान आदिसे पवित्र होकर

महर्षिरब्रवीत् ॥३१॥ यथोपदिष्टं मेधावी दर्भार्घादि यथातथम् । हव्यकव्यविधिं कृत्स्नमुक्तं तेन तपस्विना ॥ ३२ ॥ ऋषिणा पितृकार्ये च स च धर्मपथे स्थितः । पितृकार्ये कृते चापि विसृष्टः स जगाम ह ॥ ३३ ॥ अथ दीर्घस्य कालस्य स तप्यन् शूद्र-तापसः । वने पंचत्वमगमत्सुकृतेन च तेन वै । अजायत महाराज वंशे स च महाद्युतिः ॥३५॥ तथैव स ऋषिस्तात कालधर्ममवाप ह ॥ ३६ ॥ पुरोहितकुले विप्र आजातो भरतर्षभ । एवं तौ तत्र सम्भूतावुभौ शूद्रमुनी तदा ॥३७॥ क्रमेण वर्धितौ चापि विद्यासु कुशलावुभौ । अथर्ववेदे वेदे च बभूवर्षिः सुनिष्ठितः । कल्पप्रयोगे चोत्पन्ने ज्योतिषे च परङ्गतः ॥ ३८ ॥ सांख्ये चैव परा प्रीति-

---

उत्तर दिशाकी ओर मुख करके बैठ" तब उस शूद्रने ऋषिके कथनानुसार सब किया ॥ ३१ ॥ उस बुद्धिमान् शूद्रने तपस्वी ऋषिके कथनानुसार दर्भ अर्घ तथा हव्य कव्य देने की सब विधि की ॥ ३२ ॥ ऋषिके पितृकार्य कराने पर वह धर्ममार्गमें स्थित होगया, पितृकार्य पूर्ण होने पर शूद्रके कहने पर वह ऋषि चले गए ॥ ३३ ॥ इसके अन्तर वह शूद्र तपस्वी बहुत समय तक तप करके उस वनमें मर गया और श्राद्धकर्मके पुण्य के प्रतापसे एक बड़े भारी राजाके वंशमें उत्पन्न हुआ और महाकान्तिमान् हुआ इसी प्रकार हे राजन् ! वह ऋषि भी मर गए ॥ ३४ ॥ ३६ ॥ और हे श्रेष्ठ राजन् ! वह एक पुरोहितके कुलमें ब्राह्मण होकर उत्पन्न हुए, इस प्रकार वे दोनों शूद्र और मुनि उस समय तहाँ उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ धीरे २ वे दोनों बड़े हुए और विद्याओंमें कुशल होगए, वह ऋषि अथर्ववेद और ऋग्वेद आदि वेदोंको पढ़ कर कुशल हो गए, सूत्रोक्त यज्ञोंके प्रयोगमें तथा ज्योतिःशास्त्रमें भी पारंगत होगए ॥ ३८ ॥ और सांख्यशास्त्र पर भी उनका प्रेम सदा बढ़ने लगा, उधर पिता

स्तस्य चैवं व्यवर्धत । पितर्युपरते चापि कृतशौचस्तु पार्थिवः ३९ अभिषिक्तः प्रकृतिभी राजपुत्रः स पार्थिवः । अभिषिक्तेन स ऋषिरभिषिक्तः पुरोहितः ॥ ४० ॥ स तं पुरोधाय सुखमवसद्भरतर्षभ । राज्यं शशास धर्मेण प्रजाश्च परिपालयन् ॥ ४१ ॥ पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकार्येषु चासकृत् । उत्स्मयन् प्राहसच्चापि दृष्ट्वा राजा पुरोहितम् ॥ ४२ ॥ एवं स बहुशो राजन् पुरोधसमुपाहसत् । लक्षयित्वा पुरोधास्तु बहुशस्तं नराधिपम् ॥४३॥ उत्स्मयंतं च सततं दृष्ट्वासौ मन्युमाविशत् । अथ शून्ये पुरोधास्तु सह राज्ञा समागतः॥४४॥ कथाभिरनुकूलाभी राजानं चाभ्यरोचयत् । ततोऽब्रवीन्नरेन्द्रं स पुरोधा भरतर्षभ ॥ ४५ ॥ वरमिच्छाम्यहं त्वेकं त्वया दत्तं महाद्युते ॥ ४६ ॥ राजोवाच । वराणां

का देहान्त होने पर राजकुमार भी स्नान करके पवित्र होगया ३९ फिर प्रकृतिमण्डलने उस राजपुत्रका उसके पिताके राज्यासन पर अभिषेक किया, अपना अभिषेक होने पर उसने उन ऋषि का अपने पुरोहितके पद पर अभिषेक कर दिया ॥ ४० ॥ हे भरतर्षभ राजन् ! वह राजा मुनिको पुरोहित बना कर सुखपूर्वक राज्यकार्य चलाने लगा और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा ॥ ४१ ॥ राजा सदा पुण्याहवाचनकी क्रिया करते समय तथा दूसरे धार्मिक कार्य करते समय पुरोहितके सामने देखकर मुस्कराया करता था अथवा खिलखिलाकर हँसा करता था४२ हे राजन् ! इस प्रकार राजा बहुत समय तक पुरोहितका उपहास करता रहा, राजाको अनेक बार अधिकाधिक अपना उपहास करते देखकर पुरोहितको क्रोध आगया, तब एक दिन पुरोहित ने एकान्तमें राजासे भेंट की ॥४३॥४४॥और बहुतसी अनकूल बातें कह कर राजाको प्रसन्न किया, फिर हे भरतर्षभ राजन् ! पुरोहितने राजासे कहा, कि ॥४५॥ हे महाकांति वाले राजन् !

ते शतं दद्यां किं वतैकं द्विजोत्तम । स्नेहाच्च वहुमान्नाच्च नास्त्यदेयं हि मे तव ॥ ४७ ॥ पुरोहित उवाच । एकं वै वर-मिच्छामि यदि तुष्टोऽसि पार्थिव । प्रतिजानीहि तावत्त्वं सत्यं यद्वद नानृतम् ॥ ४८ ॥ भीष्म उवाच । वाढमित्येव तं राजा प्रत्युवाच युधिष्ठिर । यदि ज्ञास्यामि वक्ष्यामि अजानन्न तु संवदे ॥४९॥ पुरोहित उवाच । पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकृत्येषु चासकृत् । शान्तिहोमेषु च सदा किं त्वं हससि वीक्ष्य माम् ॥५०॥ सव्रीडं वै भवति हि मनो मे हसता त्वया । कामया शापितो राजन्नान्-यथा वक्तुमर्हसि ॥ ५१ ॥ सुव्यक्तं कारणं ह्यत्र न ते हास्यम-कारणम् । कौतूहलं मे सुभृशं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥५२॥ राजो-

---

मैं आपसे एक वर माँगना चाहता हूँ ॥४६॥ राजाने कहा, कि-हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं एक क्या आपको सैंकड़ों वर देसकता हूँ, मेरा आपके ऊपर स्नेह है और मैं आपका मान करता हूँ, इस लिये ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसको मैं आपको न दे सकूँ ४७ पुरोहितने कहा, कि-हे राजन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो मैं आपसे एक वर माँगना चाहता हूँ, परन्तु आप प्रतिज्ञा करिये, कि-आप मुझसे वास्तविक बात कहेंगे, झूँठी नहीं ४८ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजा युधिष्ठिर ! उस राजाने उत्तर दिया, कि-बहुत अच्छा ! यदि वह बात मुझे ज्ञात होगी, तब मैं आपसे कहूँगा और यदि ज्ञात नहीं होगी तो नहीं कहूँगा ४९ पुरोहित ने कहा, कि-आप सदा पुण्याहवाचनके कर्ममें, दूसरे धार्मिक-कृत्योंमें और शान्तिके होमोंमें मेरी ओर देख कर क्यों हँसा करते हैं५०आपके हँसने पर मुझे लज्जा आया करती है, हे राजन् ! मैं अपनी कामनाकी शपथ देकर आपसे कहता हूँ,कि आप असत्य न बोलियेग़ ?आपके हँसनेका(कोई)कारण है,वह बात स्पष्ट प्रतीत होरही है, आपका हँसना निष्कारण नहीं होसकता अतः आप

वाच । एवमुक्ते त्वया विप्र यदवाच्यं भवेदपि। अवश्यमेव वक्तव्यं शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५३ ॥ पूर्वदेहे यथा वृत्तं तन्निबोध द्विजोत्तम । जातिं स्मराम्यहं ब्रह्मन्नवधानेन मे शृणु ॥ ५४ ॥ शूद्रोऽहमभवं पूर्वं तापसो भृशसंयुतः । ऋषिरुग्रतपास्त्वं च तदाभूर्द्विजसत्तम ॥ ५५ ॥ प्रीयता हि तदा ब्रह्मन् ममानुग्रहबुद्धिना । पितृकार्ये त्वया पूर्वमुपदेशः कृतोऽनघ ॥ ५६ ॥ बृस्यां दर्भेषु हव्ये च कव्ये च मुनिसत्तम । एतेन कर्मदोषेण पुरोधास्त्वमजायथा ॥ ५७ ॥ अहं राजा च विप्रेन्द्र पश्य कालस्य पर्ययम् । मत्कृतस्योपदेशस्य त्वयावाप्तमिदं फलम् ॥ ५८ ॥ एतस्मात् कारणाद्ब्रह्मन् महसे त्वां द्विजोत्तम । न त्वां परिभवन् ब्रह्मन् मह-

---

मुझसे स्पष्ट बात कहिये ॥५२॥ राजाने कहा, कि हे ब्राह्मण ! तुमने मुझसे प्रश्न किया है अतः जो बात मुझै तुमसे न कहने योग्य हो, वह भी अवश्य कहनी चाहिये अतः हे द्विज ! तुम चित्तको एकाग्र करके इस बातको सुनो ॥ ५३ ॥ हे द्विज ! मेरे पहिले जन्ममें जो घटना घटी थी उसको तुम सुनो, हे ब्राह्मणर्षभ ! मुझै अपने पहिले जन्मका स्मरण है, अतः उसको तुम सावधान होकर सुनो ॥५४॥ हे विप्रेन्द्र ! मैं पहिले जन्ममें शूद्र था और उग्र तपस्या कररहा था तथा उस समय आप भी उग्र तपस्या करनेवाले एक ऋषि थे ॥५५॥ हे निर्दोष ब्राह्मण ! उस समय आपने मुझपर प्रसन्न होकर मेरे ऊपर अनुग्रह करतेहुए मुझै श्राद्धकर्मका उपदेश दिया था ॥ ५६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दर्भके आसन, दर्भ और हव्य कव्यकी विधि आपने बताई थी, उस दोषसे आप पुरोहित बनकर उत्पन्न हुए हैं ॥ ५७ ॥ और हे विप्रेन्द्र ! मैं राजा बनकर उत्पन्न हुआ हूँ, कालके इस लौट फेरको तो देखो ! तुमने मुझे उपदेश दिया था, उसका फल तुमको यह मिला ॥५८॥ अतएव हे द्विजोत्तम ! मैं तुमको देखकर

सामि गुरुर्भवान् ॥ ५९॥ विपर्ययेण मे मन्युस्तेन संतप्यते मनः । जातिं स्मराम्यहं तुभ्यमतस्त्वां प्रहसामि वै ॥ ६० ॥ एवं तवोग्रं हि तप उपदेशेन नाशितम् । पुरोहितत्वमुत्सृज्य यतस्व त्वं पुनर्भवे ॥६१॥ इतस्त्वमधमामन्यां मा योनिं प्राप्स्यसे द्विज । गृह्यतां द्रविणं विप्र पूतात्मा भव सत्तम ॥ ६२ ॥ भीष्म उवाच । ततो विसृष्टो राज्ञा तु विप्रो दानान्यनेकशः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं भूमिं ग्रामांश्च सर्वशः ॥ ६३ ॥ कृच्छ्राणि चीर्त्वा च ततो यथोक्तानि द्विजोत्तमैः । तीर्थानि चापि गत्वा वै दानानि विविधानि च ॥ ६४ ॥ दत्त्वा गाश्चैव विप्रेभ्यः पूतात्माभवदात्मवान् । तमेव चाश्रमं गत्वा चचार विपुलं तपः ॥ ६५ ॥ ततः सिद्धिं

हँसा करता हूँ, परन्तु हे द्विज ! मैं आपका अपमान करनेकी इच्छासे नहीं हँसा करता हूँ, क्योंकि-आप मेरे गुरु हैं ॥ ५९ ॥ इसप्रकार विपरीत परिणाम होनेसे मेरा मन खिन्न और सन्तप्त हुआ करता है, मुझै अपनी पूर्वजन्मकी जातिका स्मरण है, अतएव मैं आपकी ओर देखकर हँसा करता था ॥ ६० ॥ इसप्रकार आपका तप उग्र था, परन्तु वह मुझै उपदेश-देनेसे निष्फल होगया, अतः अब आप पुरोहितके कामको छोड़कर दूसरे जन्मके लिये प्रयत्न करिये ॥६१॥ कि-जिससे आपको इससे भी अधम कोई दूसरी योनि न मिले, हे विप्रेन्द्र ! तुम धन लो और अपनी आत्माको पवित्र करो ॥ ६२ ॥ भीष्मजीने कहा, कि इसप्रकार कहकर राजाने उस ब्राह्मणको जानेकी आज्ञा दी, तब उसने अपना सब धन, भूमि और ग्राम ब्राह्मणोंको दानकरके देदिये ६३ तदनन्तर विद्वान् ब्राह्मणोंने जिसप्रकार कृच्छ्र व्रत करनेको कहा, उसीप्रकार कृच्छ्र व्रत किये, तीर्थयात्राएँ की और नानाप्रकारके दान तथा गौए विप्रोंको दीं तब वह आत्मज्ञानी ब्राह्मण पवित्र होकर अपने पहिले आश्रममें जाकर महातप करनेलगा ॥६४-६५॥

परां प्राप्तो ब्राह्मणो राजसत्तम । सम्मतश्चाभवत्तेषामाश्रमे तन्निवासिनाम् ॥६६॥ एवंप्राप्तो महत्कृच्छ्रमृषिः सन्नृपसत्तम । ब्राह्मणेन न वक्तव्यं तस्माद्वर्णो वरेजने॥६७॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः । एतेषु कथयन्राजन् ब्राह्मणो न प्रदुष्यति ॥ ६८ ॥ तस्मात्सद्भिर्न वक्तव्यं कस्यचित्किंचिदग्रतः। सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुर्ज्ञेया ह्यकृतात्मभिः ॥६९॥ तस्मान्मौनेन मुनयो दीक्षां कुर्वंति चादृताः । दुरुक्तस्य भयाद्राजन्नाभाषन्ते च किंचन ॥ ७० ॥ धार्मिका गुणसम्पन्नाः सत्यार्जवसमन्विताः । दुरुक्तवाचाभिहितैः प्राप्नुवन्तीह दुष्कृतम् ॥ ७१ ॥ उपदेशो न कर्त्तव्यः कदाचिदपि कस्यचित् । उपदेशाद्धि तत्पापं ब्राह्मणः

हे नरर्षभ ! तप करते २ उस ब्राह्मणको परम-सिद्धि मिली, और उस आश्रममें रहनेवाले ऋषि उसका सन्मान करनेलगे ॥ ६६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! ऋषि होनेपर भी शूद्रको वैदिक-कर्मका उपदेश देनेसे उन्होंने महाकष्ट पाया था, अतः ब्राह्मणको शूद्रको (वैदिक) कर्मका उपदेश देना अनुचित है ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और और वैश्य ये तीन वर्ण ही द्विज हैं, हे राजन् ! इन तीन वर्णों को उपदेश देनेसे ब्राह्मणको दोष नहीं लगता है ॥ ६८ ॥ इसलिये सज्जनोंको किसीसे कुछ न कहना चाहिये, क्योंकि-धर्मकी गति सूक्ष्म है और अज्ञानी पुरुष उसको कठिनतासे समझसकते हैं ॥६९॥ इसलिये मुनि मौनव्रतको धारण करते हैं और पुरुष उनका आदर करते हैं परन्तु वह कुछ न कहनेयोग्य बात न निकल जाय, इसलिये मौन रहा करते हैं ॥ ७० ॥ धर्मनिष्ठ सद्गुणी, सत्य और सरलता रखनेवाले पुरुष न कहनेयोग्य बात कहकर पापमें फँसजाते हैं ॥ ७१ ॥ इसलिये कभी भी किसीको भी किसीको उपदेश नहीं देना चाहिये, क्योंकि-उपदेश देनेसे यदि कुछ पाप होता है, तो वह उपदेशकको ही लगता है ॥ ७२ ॥

समवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ विमृश्य तस्मात्प्राज्ञेन वक्तव्यं धर्ममिच्छता । सत्यानृते न हि कृत उपदेशो हिनस्ति हि ॥ ७३ ॥ वक्तव्यमिह पृष्टेन विनिश्चित्य विनिश्चयम् । स चोपदेशः कर्त्तव्यो येन धर्ममवाप्नुयात् ॥७४॥ एतत्ते सर्वमाख्यातमुपदेशकृते मया । महान् क्लेशो हि भवति तस्मान्नोपदिशेदिह ॥ ७५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शूद्रमुनिसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच । कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतर्षभ । श्रीः पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥ भीष्म उवाच । अत्र ते वर्णयिष्यामि यथा वृत्तं यथा श्रुतम् । रुक्मिणी देवकीपुत्रसन्निधौ पर्यपृच्छत ॥ २ ॥ नारायणस्यांकगतां ज्वलन्तीं

अतः धर्म संपादन करनेकी इच्छा रखनेवाले विद्वान् पुरुषको विचार करनेके पीछे दूसरेको उपदेश देना चाहिये यदि उपदेश रोजगारकी दृष्टिसे दिया जाता है, तो वह उपदेश देने वालेको हानि पहुँचाता है ॥७३॥ कोई धर्मविषयक प्रश्न करे तो उसका निर्णय करके निश्चित उत्तर देना चाहिये और ऐसा उपदेश देना चाहिये,जिससे वह धर्मको पावे ॥७४॥ उपदेश देनेके संबन्धकी यह सब बात मैंने तुमसे कह दी, चाहे जिसको उपदेश देनेसे बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ता है अतः इस जगत्में उपदेश नहीं देना चाहिये ॥ ७५ ॥ दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! हे पितामह! पद्मा (लक्ष्मी) कैसे पुरुषमें और कैसी स्त्रीमें निवास करती है, यह मुझसे कहिये।।१॥ भीष्मजीने कहा, कि—हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें जिस प्रकारकी कथा है और जिस प्रकार मैंने सुनी है, उसी प्रकार तुमसे कहूँगा (पहिले) देवकीपुत्र श्रीकृष्णके सामने रुक्मिणीने यह प्रश्न बूझा था॥२॥ कमलकी समान नेत्रों वाली

दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानवर्णां । कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥ कानीह भूतान्युपसेवसे त्वं संतिष्ठसे कानिव सेवसे त्वम् । तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकल्पे ॥ ४ ॥ एवं तदा श्रीरभिभाष्यमाणा देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य । उवाच वाक्यं मधुराभिधानं मनोहरं चंद्रमुखी प्रसन्ना ॥ ५ ॥ श्रीरुवाच । वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्त्तमाने । अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६ ॥ नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने । न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे न चापि चौरे न गुरुष्वसूये ॥७॥ ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः क्लिश्यन्ति कुप्यंति

लक्ष्मीको नारायणकी गोदमें बैठी हुई, देख प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणीके नेत्र विस्मयके कारण सुन्दर दीखने लगे और उन्होंने लक्ष्मीसे बूझा, कि-॥ ३ ॥ हे लक्ष्मी ! तू कैसे प्राणियोंकी सेवा करती है और कैसे पुरुषोंमें निवास करके रहती है ? हे तीनों लोकोंके ईश्वरकी कान्ता ! हे महर्षिकी समान लक्ष्मी ! इन सब प्राणियोंका मुझसे यथार्थ रीतिसे वर्णन कर ॥ ४ ॥ इस प्रकार गरुड़ध्वजके सामने देवी रुक्मिणीने लक्ष्मीसे कहा, तब चन्द्रमुखी लक्ष्मी प्रसन्न होकर मनोहर और मधुर वाक्य कहने लगी ॥५॥ लक्ष्मीने कहा, कि-मैं सौभाग्यवान्, बोलनेमें चतुर, आलस्यरहित, कार्यकुशल, क्रोधरहित, देवताओंकी आराधना करनेवाले, कियेहुए कार्यको जाननेवाले, जितेन्द्रिय और महाबली पुरुषमें सदा रहती हूँ ॥ ६ ॥ परन्तु जो कर्मशील नहीं होते हैं, उनमें मैं नहीं रहती हूँ ऐसे ही नास्तिक, वर्णसंकर, कृतघ्न, दुराचारी, कठोरवाणी बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंसे ईर्षा करनेवालोंमें भी मैं नहीं रहती हूँ ॥७॥ और जिनमें शूरता, बल, बुद्धि और मान थोड़ा होता है, जो जाति वालोंके साथ

च यत्र तत्र । न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु ८
यश्चात्मनि प्रार्थयते न किंचिद्यश्च स्वभावोपहतांतरात्मा । तेष्व-
ल्पसंतोषपरेषु नित्यं नरेषु नाहं निवसामि सम्यक् ॥९॥ स्वधर्म-
शीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दांते । कृतात्मनि क्षांति-
परे समर्थे क्षांतासु दांतासु तथाऽबलासु ॥ १० ॥ सत्यस्वभावा-
र्जवसंयुतासु वसामि देवद्विजपूजिकासु । प्रकीर्णभांडामनपेक्ष्य-
कारिणीं सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम् ॥ ११ ॥ परस्य
वेश्माभिरतामलज्जामेवं विधां तां परिवर्जयामि । पापामचोक्षा-
मवलेहिनीं च व्यपेतधैर्यां कलहप्रियां च ॥ १२ ॥ निद्राभिभूतां

क्लेश और क्रोध करते हैं और जो अपने मनके भावको छिपा रखते हैं अर्थात् जिनके मनमें कुछ और होता है, तथा बाहरसे कुछ और दिखाते हैं, ऐसे पुरुषोंमें मैं निवास नहीं करती हूँ ॥८॥ और जो पुरुष अपने लिये कुछ नहीं चाहता और जो जिस स्थितिमें होता है, उस स्थितिमें ही स्वभावतः पडा रहना चाहता है तथा जो थोड़ी वस्तुसे ही सन्तोष मानता है ऐसे पुरुषोंमें भी मैं भलीप्रकार सदा नहीं रहती हूँ ॥ ९ ॥ परन्तु जो स्वधर्ममें परायण रहने हैं, धर्मको जानते हैं, वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें लगे रहते हैं, इन्द्रियोंका निग्रह करते हैं, आत्माको जाननेवाले हैं, क्षमावान् और समर्थ होते हैं, ऐसे पुरुषोंमें और क्षमावान् और इन्द्रियोंका निग्रह करनेवाली स्त्रियोंमें मैं सदा निवास करती हूँ ॥ १० ॥ और मैं सत्यभाषिणी, सरलस्वभाव तथा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाली स्त्रियोंमें रहती हूँ, परन्तु जिस स्त्रीके घरके वर्तन इधर उधर पड़े रहते हैं और जो विना विचारे काम करडालती हैं, जो सदा पतिके विरुद्ध वोलती रहती है, दूसरेके घर जाकर वैठे रहनेके स्वभाव वाली होती है लज्जाको त्यागदेती है, पापकर्म करती रहती है, मलिन रहा करती है

संततं शयानामेवंविधां तां परिवर्जयामि । सत्यासु नित्यं प्रिय-
दर्शनासु सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु ॥ १३ ॥ वसामि नारीषु
पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु । यानेषु कन्यासु विभू-
षणेषु यज्ञेषु मेघेषु च वृष्टिमत्सु ॥ १४ ॥ वसामि फुल्लासु च
पद्मिनीषु नक्षत्रवीथीषु च शारदीषु । गजेषु गोष्ठेषु तथासनेषु
सरःसु फुल्लोत्पलपंकजेषु ॥ १५ ॥ नदीषु हंसस्वननादितासु
क्रौंचावघुष्टस्वरशोभितासु । विकीर्णकूलद्रुमराजितासु तपस्वि-
सिद्धद्विजसेवितासु ॥१६। वसामि नित्यं सुबहूदकासु सिंहैर्गजै-
श्चाकुलितोदकासु। मत्ते गजे गोवृषभे नरेन्द्रे सिंहासने सत्पुरुषेषु
नित्यम् ॥ १७ ॥ यस्मिन् जनो हव्यभुजं जुहोति गोब्राह्मणं

अपने दोनों जबाड़ोंको चाटती रहती है, धैर्यरहित होती है और
जिसको कलह प्रिय लगता है,ऐसी स्त्रीको मैं त्यागदेती हूँ११।१२
और सदा ऊँघनेवाली तथा बिछोनेमें ही पड़ी रहनेवाली स्त्री-
को मैं त्यागदेती हूँ,और जो स्त्रियें सदा सत्य बोलती हैं,जिनका
दर्शन प्रिय लगता है, जो सौभाग्यवती और सद्गुणी होती
हैं ॥ १३ ॥ और जो स्त्रियें उत्तम शीलवाली, पतिव्रता और
उत्तम गुणोंसे भूषित होती हैं, उन स्त्रियोंमें मैं वास करती हूँ;
और मैं यानोंमें, कन्याओंमें, आभूषणोंमें, यज्ञोंमें, जल बरसाने
वाले मेघोंमें, प्रफुल्लित कमलवाली बावड़ियोंमें, शरद् ऋतुकी
नक्षत्रवीथियोंमें, हाथियोंमें,गौओंके गोष्ठोंमें, आसनोंमें,प्रफुल्लित
कमलवाले सरोवरोंमें तथा हंसोंके शब्दोंसे गुञ्जारती हुई,क्रौंच
पक्षियोंके शब्दसे शोभायमान, किनारे पर वृक्षोंकी लंगारवाली
और सिद्ध, तपस्वी और ब्राह्मणोंसे सेवित तटवाली नदियोंमें,
और जिनमें अधिक जल होता है तथा जिनके जलको हाथी
और सिंह हिलोड़ा करते हैं ऐसी नदियोंमें, मदमत्त हाथी,बैल,
राजा, सिंहासन और सत्पुरुषमें मैं सदा रहा करती हूँ१४-१७

चार्चति देवताश्च । काले च पुष्पैर्बलयः क्रियन्ते तस्मिन् गृहे नित्यमुपैमि वासम् ॥ १८ ॥ स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव । वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते१९नारायणे त्वेकमना वसामि सर्वेण भावेन शरीरभूता । तस्मिन् हि धर्मः सुमहान्निविष्टो ब्रह्मण्यता चात्र तथा प्रियत्वम् ॥ २० ॥ नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम् । भावेन यस्मिन्निवसामि पुंसि स वर्धते धर्मयशोर्थकामैः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि
दानधर्मे श्रीरुक्मिणीसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

युधिष्ठिर उवाच । स्त्रीपुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको

और जहाँ पुरुष अग्निहोत्र करते हैं,गौ ब्राह्मणोंका पूजन करते हैं तथा प्रसंग पड़ने पर पुष्पोंसहित बलिदान करते हैं, ऐसे घरोंमें सदा निवास करा करती हूँ ॥१८॥सदा वेदका स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मणोंमें, धर्म पर प्रीति रखनेवाले क्षत्रियोंमें, कृषि पर प्रीति रखनेवाले वैश्योंमें और सदा तीनों वर्णोंकी सेवामें मग्न रहनेवाले शूद्रोंमें भी रहती हूँ ॥ १९ ॥ परन्तु नारायणमें तो मैं शरीर धारण करके सर्वतो-भावसे एकाग्र चित्तसे निवास करती हूँ,क्योंकि-इनमें बड़ा भारी धर्म, ब्रह्मण्यता तथा प्रियता भरी हुई है ॥ २० ॥ परन्तु हे रुक्मिणि ! मैं नारायणके अतिरिक्त और किसीका भी शरीर धारण करके आश्रय नहीं लेती हूँ इसका कारण भी मैं बताना नहीं चाहती, मैं जिस पुरुषमें प्रीतिपूर्वक रहती हूँ, उस पुरुषके धर्म,अर्थ,काम और यशकी सदा वृद्धि होती रहती है॥२१॥ एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

राजा युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! स्त्री और पुरुष

भवेत्। एतस्मिन् संशये राजन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ भीष्म उवाच। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। भङ्गास्वनेन शक्रस्य यथा वैरमभूत्पुरा ॥ २ ॥ पुरा भङ्गास्वनो नाम राजर्षिरतिधार्मिकः। अपुत्रः पुरुषव्याघ्र पुत्रार्थं यज्ञमाहरत् ॥ ३ ॥ अग्निष्टुतं स राजर्षिरिन्द्रद्विष्टं महाबलः। प्रायश्चित्तेषु मर्त्यानां पुत्रकामेषु चेष्यते ॥ ४ ॥ इन्द्रो ज्ञात्वा तु तं यज्ञं महाभागः सुरेश्वरः। अन्तरं तस्य राजर्षेरन्विच्छन्नियतात्मनः ॥ ५ ॥ न चैवास्यांतरं राजन् स ददर्श महात्मनः। कस्यचित्त्वथ कालस्य मृगयां गतवान्नृपः ॥ ६ ॥ इदमन्तरमित्येव शक्रो नृपममोहयत। एकाश्वेन च राजर्षिर्भ्रान्त इन्द्रेण मोहितः ॥ ७ ॥ न दिशोऽ-

इन दोनोंके समागममें स्पर्शसुख किसको अधिक होता है, इस विषयका मुझे सन्देह है अतः आप इसका निर्णय करिये ॥१॥ भीष्मने कहा कि -इस बातका भी एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है, जिसमें राजा भंगास्वनके साथ इन्द्रका वैर होगया था२ हे पुरुषव्याघ्र ! पहिले भंगास्वन नामक एक परमधार्मिक राजा था, उस के कोई पुत्र नहीं था, इससे उसने पुत्रके लिये यज्ञ किया ॥३॥ उस महाबली राजर्षिने जिससे इन्द्र द्वेष करता है (क्योंकि— उसमें अग्निको ही भाग मिलता है, इन्द्रको नहीं मिलता) ऐसे अग्निष्टुत नामक यज्ञको किया था, इस यज्ञको मनुष्य प्रायश्चित्त करनेके लिये अथवा पुत्रप्राप्तिके लिये किया करते हैं॥४॥ महाभाग्यशाली सुरेश्वर इन्द्रको जब उस यज्ञका समाचार ज्ञात हुआ, तब वह नियमोंका पालन करनेवाले उस राजाका छिद्र ढूँढनेलगा ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन् ! इन्द्र उस महात्मा राजामें किसी प्रकारका छिद्र (दोष) न पासका, फिर एक समय वह राजा शिकार खेलनेके लिये गया ॥ ६ ॥ उस समय यह एक अवसर है, यह विचार कर इन्द्रने राजाकी बुद्धिको गड़बड़ कर

विन्दत नृपः क्षुत्पिपासार्दितस्तदा । इतश्चेतश्च वै राजन् श्रम-
तृष्णान्वितो नृप ॥ ८ ॥ सरोऽपश्यत् सुरुचिरं पूर्णं परम-
वारिणा । सोऽवगाह्य सरस्तात पाययामास वाजिनम् ॥९॥ अथ
पीतोदकं सोश्वं वृक्षे बध्वा नृपोत्तमः । अवगाह्य ततः स्नातस्तत्र
स्त्रीत्वमवाप्तवान् ॥ १० ॥ आत्मानं स्त्रीकृतं दृष्ट्वा व्रीडितो नृप-
सत्तमः । चिंतानुगतसर्वात्मा व्याकुलेन्द्रियचेतनः ॥११॥ आरो-
हिष्ये कथं त्वश्वं कथं यास्यामि वै पुरम् । इष्टेनाग्निष्टुता चापि
पुत्राणां शतमौरसम् ॥ १२ ॥ जातं महाबलानां मे तान् प्रव-
क्ष्यामि किं त्वहम् । दारेषु चात्मकीयेषु पौरजानपदेषु च ॥१३॥
मृदुत्वं च तनुत्वं च विक्लवत्वं तथैव च । स्त्रीगुणा ऋषिभिः

दिया, तब वह अकेला ही घोड़े पर सवार हो वनमें घूमनेलगा७
उस समय वह राजा दिशाओंको भूलगया और उसको भूँख
और प्यास पीड़ा देने लगीं और वह थकान और क्षुधासे पीड़ित
हो वनमें भटकने लगा ॥ ८ ॥ हे तात ! इतनेमें ही उसको जल
भराहुआ एक सुन्दर सरोवर दीखा, तब वह उस सरोवरपर
जा घोड़ेको जल पिलाने लगा ॥ ९ ॥ और जब घोडा जल
पीचुका तब वह उसको एक वृक्षसे बाँधकर उस तालाबमें स्वयं
स्नान करनेको उतरा, परन्तु वह स्नान करते २ ही स्त्री बन
गया ॥ १० ॥ वह महाराज अपनेको स्त्री बना हुआ देखकर
शरमा गया, उसका मन चिन्तासे भरगया तथा उसकी इन्द्रियें
और चित्त व्याकुल होगए ॥११॥ तब वह राजा विचार करने
लगा, कि-अब मैं घोड़े पर किसप्रकार चढ़ सकूँगा और नगरमें
कैसे जाऊँगा मैंने अग्निष्टुत नामक यज्ञ करके सौ पुत्र पाये हैं१२
वे सब महाबली हैं उनको मैं क्या उत्तर दूँगा ? और मैं अपनी
स्त्रियोंसे, नगरवासी और देशवासी पुरुषोंसे भी क्या कहूँगा? १३
धर्मके तत्त्वको जानने वाले ऋषि कहते हैं, कि-मृदुता, तनुता और

प्रोक्ता धर्मतत्त्वार्थदर्शिभिः ॥ १४ ॥ व्यायामे कर्कशत्वं च वीर्यं च पुरुषे गुणाः । पौरुषं विप्रनष्टं वै स्त्रीत्वं केनापि मेऽभवत् १५ स्त्रीभावात्पुनरश्वं तं कथमारोढुमुत्सहे । महता त्वथ यत्नेन आरुरोहाश्वं नराधिपः ॥१६॥ पुनरायात्पुरं तात स्त्रीकृतो नृपसत्तमः । पुत्रा दाराश्च भृत्याश्च पौरजानपदाश्च ते ॥ १७ ॥ किंत्विदं त्विति विज्ञाय विस्मयं परमं गताः । अथोवाच स राजर्षिः स्त्रीभूतो वदतां वरः ॥ १८ ॥ मृगयामस्मि निर्यातो बलैः परिवृतो दृढम् । उद्भ्रान्तः प्राविशं घोरामटवीं दैवचोदितः ॥ १९ ॥ अटव्यां च सुघोरायां तृष्णार्त्तो नष्टचेतनः । सरः सुरुचिरप्रख्यमपश्यं पक्षिभिर्वृतम्॥२०॥तत्रावगाढः स्त्रीभूतो दैवेनाहं कृतः पुरा ।

विक्लवता (घबड़ाजाना) स्त्रियोंके गुण हैं ॥१४॥ और कसरत करना, कर्कशता और वीर्य यह पुरुषोंके गुण हैं, न जाने किस कारणसे मुझमेंसे पुरुषके गुण दूर होगए हैं और मैं स्त्री होगया ? ॥१५॥ अरे ! अब मुझमें स्त्रीत्व आजानेसे मैं इस घोड़े पर चढ़नेका उत्साह कैसे कर सकता हूँ, इस प्रकार सोच विचार करता हुआ वह राजा बड़ी कठिनतासे घोड़े पर चढ़ा ॥१६॥ और हे तात ! स्त्री बना हुआ वह महाराज नगरमें आया(उसको स्त्रीके आकारमें देख कर) उसके पुत्र, स्त्री, सेवक और देशनिवासी और नगरनिवासी पुरुष बड़े भारी आश्चर्यमें पड़ "यह क्या हुआ"२ इस प्रकार कहने लगे,तदनन्तर स्त्रीरूप बना हुआ वह राजर्षि बोला, कि-॥ १७-१८ ॥ मैं सेनाको साथमें लेकर (नगरसे) बाहर निकल कर (वनमें) गया था, तहाँ मैं प्रारब्धवश घूमता २ एक भयंकर वनमें पहुँच गया ॥१९॥ उस अतिभयंकर वनमें प्यास लगनेसे मैं भान-रहित होगया, इतनेमें ही तहाँ मैंने अति उत्तम और पक्षियोंसे व्याप्त एक सरोवर देखा ॥ २० ॥ उस सरोवरमें मैं जैसे ही नहानेके लिये उतरा,कि-दैवयोगसे मैं

नामगोत्राणि चाभाषद् दाराणां मन्त्रिणां तथा ॥ २१ ॥ आह पुत्रांस्ततः सोऽथ स्त्रीभूतः पार्थिवोत्तमः । संप्रीत्या भुज्यतां राज्यं वनं यास्यामि पुत्रकाः ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा पुत्रशतं वनमेव जगाम ह । गत्वा चैवाश्रमं सा तु तापसं प्रत्यपद्यत ॥ २३ ॥ तापसेनास्य पुत्राणामाश्रमेष्वभवच्छतम् । अथ सादाय तान् सर्वान् पूर्वपुत्रानभाषत ॥ २४ ॥ पुरुषत्वे सुता यूयं स्त्रीत्वे चेमे शतं सुता । एकत्र भुज्यतां राज्यं भ्रातृभावेन पुत्रकाः ॥२५॥ सहिता भ्रातरस्तेऽथ राज्यं बुभुजिरे तदा । तान् दृष्ट्वा भ्रातृभावेन भुञ्जानान् राज्यमुत्तमम् ॥ २६ ॥ चिन्तयामास देवेन्द्रो मन्युनाथ परिप्लुतः । उपकारोऽस्य राजर्षेः कृतो नापकृतं मया॥२७॥ततो ब्राह्मणरूपेण

(पुरुषसे) स्त्री होगया" फिर उस राजाने अपनी स्त्रियोंके और मंत्रियोंके नाम और गोत्र बताये (इससे सबको निश्चय होगया, कि-यह राजा ही है) ॥२१॥ तदनन्तर स्त्री बनेहुए उस महाराजने पुत्रोंसे कहा, कि-"हे पुत्रो! अब मैं वनमें जाऊँगा, तुम सुखपूर्वक राज्य करो" ॥ २२ ॥ इसप्रकार सौ पुत्रोंसे कहकर वह राजा वनमें चलागया और तहाँ किसी आश्रममें एक तपस्वीके आश्रयसे रहनेलगा ॥ २३ ॥ उस तपस्वीके समागमसे राजाके और भी सौ-पुत्र हुए, राजा उन सब पुत्रोंको साथमें लेकर अपने पहिले पुत्रोंके पास गया और उनसे कहा, कि-॥ २४ ॥ हे पुत्रो ! तुम मेरी पुरुषावस्थाके पुत्र हो और ये पुत्र मेरे स्त्री होनेपर उत्पन्न हुए हैं, अतः हे पुत्रो ! तुम सब भ्रातृभावसे मेल रखते हुए राज्यको भोगो ॥ २५ ॥ (पिताकी आज्ञा होने पर) वे सब इकट्ठे होकर राज्यको भोगने लगे, इसप्रकार भाइयोंको भ्रातृभावसे उत्तम राज्यको भोगते देखकर इन्द्रको क्रोध आगया और वह विचार करनेलगा, कि-"मैंने तो इस राजर्षि पर यह उपकार ही किया, इसका अपकार क्या किया ?" ॥ २६-२७ ॥

देवराजः शतक्रतुः। भेदयामास तान् गत्वा नगरं वै नृपात्मजाः २८ भ्रातॄणां नास्ति सौभ्रात्रं येप्येकस्य पितुः सुताः। राज्यहेतोर्विवदिताः कश्यपस्य सुरासुराः ॥ २९ ॥ यूयं भंगास्वनापत्यास्तापसस्येतरे सुताः। कश्यपस्य सुराश्चैव असुराश्च सुतास्तथा ॥ ३० ॥ युष्माकं पैतृकं राज्यं भुज्यते तापसात्मजैः। इन्द्रेण भेदितास्ते तु युद्धेऽन्योन्यमपातयन् ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा तापसी चापि संतप्ता प्ररुरोद ह। ब्राह्मणच्छद्मनाभ्येत्य तामिन्द्रोऽथान्वपृच्छत ॥ ३२ ॥ केन दुःखेन सन्तप्ता रोदिषि त्वं वरानने। ब्राह्मणं तं ततो दृष्ट्वा सा स्त्री करुणमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ पुत्राणां द्वे शते ब्रह्मन् कालेन विनिपातिते। अहं राजाभवं विप्र तत्र पूर्वं शतं मम ॥ ३४ ॥ समु-

तब देवराज शतक्रतु ब्राह्मणका रूप धारण करके उसके नगरमें गया और उन राजपुत्रोंमें भेदभाव डालनेलगा ॥२८॥ (उसने राजपुत्रोंसे कहा, कि-) जो एक पिताके पुत्र होते हैं, उन भाइयोंमें भी सदा भ्रातृभाव नहीं रहता है, राज्यके कारण कश्यप ऋषिके पुत्र सुर और असुर इन दोनों भाइयोंमें विवाद होगया था २९ सुर और असुर ये दोनों कश्यपके ही तो पुत्र थे, परन्तु तुम तो भङ्गास्वनके पुत्र हो और ये किसी दूसरे तपस्वीके पुत्र हैं ॥३०॥ तुम्हारे बापके राज्यको तपस्वीके पुत्र भोगें ? (यह क्या उचित है ?) इसप्रकार इन्द्रने उन राजपुत्रोंमें भेद डाल दिया, तब उन्होंने युद्धमें एक दूसरेका नाश करडाला ॥३१॥ यह सुनकर तपस्विनी संतप्त होकर रोनेलगी, तब इन्द्र ब्राह्मणका वेश धारण कर उसके पास आकर बूझनेलगा ॥ ३२ ॥ कि हे वरानने ! तू किस दुःखसे संतप्त होकर रोरही है, तब वह स्त्री ब्राह्मणकी ओर देखकर करुणाजनक रीतिसे कहनेलगी, कि-३३ हे ब्राह्मण ! मेरे दो सौ पुत्र थे, उनका कालने नाश कर दिया है, हे विप्र ! पहिले मैं राजा था, उस समय मेरे सौ पुत्र हुए थे ३४ हे ब्राह्मणो-

रान्नं स्वरूपाणां पुत्राणां ब्राह्मणोत्तम । कदाचिन्मृगयां यात
उद्भ्रान्तो गहने वने ॥३५॥ अवगाढश्च सरसि स्त्रीभूतो ब्राह्म-
णोत्तम । पुत्रान् राज्ये प्रतिष्ठाप्य वनमस्मि ततो गतः ॥ ३६ ॥
स्त्रियाश्च मे पुत्रशतं तापसेन महात्मना । आश्रमे जनितं ब्रह्म-
न्नीतं तन्नगरं मया ॥ ३७ ॥ तेषां च वैरमुत्पन्नं कालयोगेन वै
द्विज । एतच्छोचाम्यहं ब्रह्मन् दैवेन समभिप्लुता ॥ ३८ ॥ इन्द्रस्तां
दुःखितां दृष्ट्वा अब्रवीत् परुषं वचः । पुरा सुदुःसहं भद्रे मम दुःखं
त्वया कृतम् ॥ ३९ ॥ इन्द्रद्विष्टेन यजता मामनाहूय धिष्ठितम् ।
इन्द्रोऽहमस्मि दुर्बुद्धे वैरं ते पातितं मया ॥ ४० ॥ इन्द्रं दृष्ट्वा तु
राजर्षिः पादयोः शिरसा गतः । प्रसीद त्रिदशश्रेष्ठ पुत्रकामेन स

त्तम ! वे मेरे सौ पुत्र मेरेही समान रूपवान् थे, फिर मैं एक समय
मृगया करने गया और एक गहन वनमें मार्ग भूल गया ॥३५॥
तहाँ पर हे उत्तम ब्राह्मण! एक सरोवरमें स्नान करने पर मैं स्त्री
होगया, तब मैं अपने पुत्रोंको राज्यासन पर स्थापित करके वनमें
चला आया ॥ ३६ ॥ तहाँ एक तपस्वी महात्माके समागमसे
आश्रममें ही मेरे सौ पुत्र हुए थे, हे ब्राह्मण ! मैं उन पुत्रोंको
नगरमें लेगया ॥ ३७ ॥ हे द्विज ! फिर कालयोगसे उन पुत्रोंमें
वैर होगया (और वे लड़कर मारेगए) हे विप्र ! प्रारब्धका
माराहुआ मैं यही शोक कररहा हूँ ॥३८॥ इन्द्रने उसको दुःखित
देखकर भी उससे कड़ी बात कही, कि-हे भद्रे ! तूने मुझे पहिले
असह्य दुःख दिया है ॥ ३९ ॥ तूने इन्द्रसे द्वेष करनेवाला यज्ञ
किया था और मैं पासमें था, तब भी मेरा आवाहन नहीं किया
था, हे दुर्बुद्धे ! मैं वही इन्द्र हूँ और मैंने अपने वैरका बदला
लेलिया है ॥ ४० ॥ इन्द्रको देखकर उस राजर्षिने इन्द्रके दोनों
चरणोंमें अपना मस्तक रखदिया और, कहा, कि हे देवराज !
आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, मैं पुत्रकी कामनासे अग्निष्टुत यज्ञ

क्रतुः ॥ ४१ ॥ इष्टस्त्रिदशशार्दूल तत्र मे क्षन्तुमर्हसि । प्रणिपातेन तस्येन्द्रः परितुष्टो वरं ददौ ॥ ४२ ॥ पुत्रास्ते कतमे राजन् जीवन्त्वेतत् प्रचक्ष्व मे। स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः पुरुषस्याथ येऽभवन् ॥ ४३ ॥ तापसी तु ततः शक्रमुवाच प्रयताञ्जलिः। स्त्रीभूतस्य हि ये पुत्रास्ते मे जीवन्तु वासव ॥ ४४ ॥ इन्द्रस्तु विस्मितो दृष्ट्वा स्त्रियं पप्रच्छ तां पुनः। पुरुषोत्पादिता ये ते कथं द्वेष्याः सुतास्तव ॥ ४५ ॥ स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः स्नेहस्तेभ्योऽधिकः कथम्। कारणं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वक्तुमिहार्हसि ४६ स्त्र्युवाच । स्त्रियास्त्वभ्यधिकः स्नेहो न तथा पुरुषस्य वै। तस्मात्ते शक्र जीवन्तु ये जाताः स्त्रीकृतस्य वै ॥ ४७ ॥ भीष्म

किया था४१अतः हे देवराज ! आपको मुझे क्षमा प्रदान करना चाहिये" जब इसप्रकार राजाने प्रणाम किया, तब इन्द्र उसको वरदेने लगा४२ और कहनेलगा कि-हे राजन् ! तेरे कौनसे पुत्र जीवित हो जाँय ? बता, तेरे स्त्रीभावमें जो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वे जीवित होजाँय अथवा जो पुरुषभावमें पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वे जीवित होजाँय ? ॥४३॥ तब उस तपस्विनीने हाथ जोड़ कर इन्द्रसे कहा, कि-हे इन्द्र ! मेरे स्त्री अवस्थामें जो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वे ही जीवित होजाँय ॥४४॥ तब इन्द्रने आश्चर्यमें होकर उस स्त्रीसे फिर बूझा, कि-तूने जिन पुत्रोंको पुरुषावस्थामें उत्पन्न किया था उनसे तू द्वेष क्यों करती है ? ॥ ४५ ॥ और स्त्री-अवस्थामें तेरे जो पुत्र हुए हैं उनके ऊपर तेरा अधिक स्नेह क्यों है ? मैं इसका कारण सुनना चाहता हूँ, अतः तुझे इसका कारण बतलाना चाहिये ॥ ४६ ॥ स्त्रीने कहा, कि-स्त्रीजातिमें स्नेह अधिक होता है, पुरुषमें इतना स्नेह नहीं होता है, अतः हे इन्द्र ! मेरे स्त्री होने पर जो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वे ही जीवित होजाँय ॥ ४७ ॥ भीष्मजीने कहा, कि स्त्रीके इस प्रकार कहने

उवाच । एवमुक्तस्ततस्त्विन्द्रः प्रीतो वाक्यमुवाच ह । सर्वे एवेह जीवन्तु पुत्रास्ते सत्यवादिनि ॥४८॥ वरं च वृणु राजेन्द्र यत्त्वमिच्छसि सुव्रत । पुरुषत्वमथ स्त्रीत्वं मत्तो यदभिकांक्षसे ॥४९॥ स्त्र्युवाच । स्त्रीत्वमेव वृणे शक्र पुंस्त्वं नेच्छामि वासव । एवमुक्तस्तु देवेन्द्रस्तां स्त्रियं प्रत्युवाच ह ॥ ५० ॥ पुरुषत्वं कथं त्यक्त्वा स्त्रीत्वं चोदयसे विभो । एवमुक्तः प्रत्युवाच स्त्रीभूतो राजसत्तमः ॥ ५१ ॥ स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्यधिका सदा॥ एतस्मात्कारणाच्छक्र स्त्रीत्वमेव वृणोम्यहम् ॥ ५२ ॥ रमिताभ्यधिकं स्त्रीत्वे सत्यं वै देवसत्तम । स्त्रीभावेन हि तुष्यामि गम्यतां त्रिदशाधिप ॥ ५३ ॥ एवमस्त्विति चोक्त्वा तामापृच्छ्य त्रिदिवं गतः । एवं स्त्रिया महाराज अधिका प्रीतिरुच्यते ।५४।

पर इन्द्रने प्रसन्न होकर कहा, कि–हे सत्यवादिनि स्त्रि ! तेरे सब पुत्र जीवित होजावेंगे ॥ ४८ ॥ हे सुव्रत राजेन्द्र ! तू मुझसे वर माँगले, तू स्त्रीत्व चाहे तो स्त्रीत्व माँगले और पुरुष बनना चाहे तो तो पुरुषत्व माँग ले॥४९॥स्त्रीने कहा, कि–हे इन्द्र ! मैं स्त्री बनी रहना ही चाहती हूँ, मैं पुरुष बनना नहीं चाहती, यह सुन कर इन्द्रने उस स्त्रीसे बूझा, कि–॥५०॥ हे समर्थ राजन् ! तू पुरुषत्वको त्याग कर स्त्री क्यों बनना चाहता है यह सुनकर स्त्री बने हुए उस राजसत्तमने कहा,कि –॥ ५१ ॥ जब स्त्री और पुरुष समागम करते हैं, तब स्त्रीको ही अधिक सुख मिलता है इससे हे इन्द्र!मैं स्त्री ही बना रहना चाहती हूँ ॥५२॥ हे देवराज! स्त्रीत्वमें आनन्द अधिक आता है, इस लिये हे देवेन्द्र ! मैं स्त्रीत्वमें ही सन्तोष मानती हूँ, अब आप जाइये ॥५३॥ तब इन्द्र तथास्तु कह कर और उसकी आज्ञा लेकर स्वर्गमें चला गया, हे महाराज! इस प्रकार पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीको अधिक प्रीति (विषयसुख) होती है ॥ ५४ ॥ द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच किं कर्तव्यं मनुष्येण लोकयात्राहितार्थिना। कथं वै लोकयात्रां तु किंशीलश्च समाचरेत् ॥१॥ भीष्म उवाच। कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम्। मनसा त्रिविधं चैव दश कर्मपथांस्त्यजेत् ॥ २ ॥ प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदारानथापि च। त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥ असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा। चत्वारि वाचा राजेन्द्र न

राजा युधिष्ठिरने बूझा, * कि-लोकयात्रा और परलोकका हित सम्पादन करनेकी इच्छा वाले मनुष्यको क्या करना चहिये तथा मनुष्यको कैसा स्वभाव रख कर किस प्रकार लौकिक व्यवहार चलाने चहियें, यह वात मुझसे कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन युधिष्ठिर! शरीरसे तीन प्रकारके कर्मोंका, वाणीसे चार प्रकारके कर्मोंका और मनसे तीन प्रकारके कर्मोंका इस प्रकार दश प्रकारके कर्ममार्गोंका त्याग करना चाहिये २ हिंसा करना, चोरी और परस्त्रीहरण ये तीन शारीरिक पाप कहलाते हैं, इनको सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥३॥ असत्प्रलाप (वकवाद) कठोर भाषण, दूसरेकी चुगली लगाना तथा असत्य भाषण करना हे राजेन्द्र! ये चार वाणीके पातक हैं, इनसे दूर

* गौतमी, सुदर्शन तथा शुक आदिकी कथाएँ कहकर यह बता दिया कि-दैवेच्छासे कष्ट आ पड़ने पर प्राणीको घवडाना न चाहिये, अतिथिकी भक्ति करने वालेको और दया करने वालेको लक्ष्मी मिलती है और धनसे इन्द्रियोंको प्रसन्न-सन्तुष्ट करना रूपी कामसुख भोगा जा सकता है, परन्तु पुरुषको कामसुख कम मिलता है और स्त्रियोंको अधिक होता है, अतः इस कामसुखको तुच्छ समझ कर परमेश्वरकी आराधना करने वाले पुरुषको कौनसे दोषोंको त्याग देना चाहिये? यही वात इस अध्यायमें कही है।

जल्पेन्नानुचिंतयेत् ।४। अनभिध्या परस्वेषु सर्वसत्वेषु सौहृदम् । कर्मणां फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत् ॥५॥ तस्माद्वाक्काय-मनसा नाचरेदशुभं नरः । शुभाशुभान्याचरन् हि तस्य तस्याश्नुते फलम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे लोकयात्राकथने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर उवाच । त्वयापगेय नामानि श्रुतानीह जगत्पतेः । पितामहेशाय विभो नामान्याचक्ष्व शंभवे ॥ १ ॥ बभ्रवे विश्व-रूपाय महाभाग्यं च तत्त्वतः । सुरासुरगुरौ देवे शङ्करेऽव्यक्तयो-नये ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । अशक्तोहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य

रहना चाहिये और इनका मनमें भी विचार न लाना चाहिये ४ दूसरेके धनका लालच न करना, सब प्राणियोंको स्नेहभावसे देखना और इन कर्मोंका फल मिलता है, ऐसा मानना ये मनके धर्म हैं अर्थात् पराये धनको ताकना, दूसरेका बुरा चाहना, इस कर्मका कुछ फल नहीं है वेद मिथ्या हैं, ये तीन मनके पाप हैं इनको न करना चाहिये ॥५॥ इस प्रकार मनुष्य वाणी, शरीर और मनसे किसीका भी अशुभचिंतवन न करे, क्योंकि मनुष्य शुभ या अशुभ जैसे २ कर्म करता है, उस २ कर्मका फल भोगना पड़ता है ॥ ६ ॥ त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा, कि-हे गंगापुत्र भीष्मपितामह ! आपने जगत्पति-महेश्वरके नाम सुने हैं अतः हे विभो ! पितामहके भी ईश शंभुके नाम मुझसे कहिये ॥१॥ बभ्रु अर्थात् जो विशाल हैं, जिनका रूप विश्वमय है, जो सुर और असुरोंके गुरु हैं, जो एक देव हैं, जो शंकर हैं, और जिनका उत्पत्तिस्थान अप्रसिद्ध है उनको जिन २ नामोंसे पहिचाना जाता है, उन नामोंको मुझसे अर्थसहित कहिये ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर !

धीमतः । यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥ ३ ॥ ब्रह्म-
विष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च । ब्रह्मादयः पिशाचांता यं हि
देवा उपासते ॥ ४ ॥ प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः ।
चिंत्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अक्षरं परमं ब्रह्म
असच्च सदसच्च यः ॥ ५ ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षोभयित्वा स्व-
तेजसा । ब्रह्माणमसृजत्तस्माद्देवदेवः प्रजापतिः॥६॥ को हि शक्तो
गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः । गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्यु-
समन्वितः ॥ ७ ॥ को हि शक्तो भर्गं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्

जो देवता सर्वत्र व्याप्त हैं, तब भी सर्वत्र देखनेमें नहीं आते हैं, ऐसे बुद्धिमान् महादेवके गुणोंका वर्णन करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ३ जो देव विराट (ब्रह्मा), सूत्रात्मा (विष्णु) और प्राज्ञ (सुरेश) के स्रष्टा (उपादान कारणरूप) हैं और जो प्रभु (निमित्त कारणरूप) हैं और ब्रह्मासे लेकर पिशाच तक जिनकी उपासना करते हैं ४ प्रकृतिसे तथा प्रकृतिके भोक्ता पुरुषसे भी जो पर हैं, योगको जाननेवाले और तत्त्ववेत्ता ऋषि जिनका चिन्तवन करते हैं, जो अक्षर (अपरिणामी) हैं परब्रह्म हैं, अव्याकृत कारणरूप हैं और रज्जु तथा सर्पकी समान भासनेपर भी अनिर्वचनीय हैं अर्थात् जो सत् हैं, न असत् हैं ५ प्रकृति मायाको तथा (मायामें प्रतिबिंबरूपसे पड़ेहुए) पुरुष (चैतन्य) को क्षुब्ध करके (प्राणियोंको कर्मानुसार साम्या-वस्थामें स्थापित करके) अपने तेज (के प्रभाव) से अपनी सत्ता की स्फूर्ति उसमें रखकर उसमेंसे जिन्होंने ब्रह्माजी (महत्तत्त्व) को उत्पन्न किया है और ब्रह्मदेवमेंसे देवदेव प्रजापतिको जिन्होंने उत्पन्न किया है ६ उन देवदेव महादेवके गुणोंको गिनानेवाला कौन है मनुष्य तो गर्भ, जन्म, वृद्धावस्थावाला और मरणधर्मा है ७ हे पुत्र ! शंख, चक्र और गदाधारी भगवान् नारायणके

ऋते नारायणात् पुत्र शंखचक्रगदाधरात् ॥ ८ ॥ एष विद्वान् गुणश्रेष्ठो विष्णुः परमदुर्जयः। दिव्यचक्षुर्महातेजा वीक्ष्यते योगचक्षुषा ॥ ९ ॥ रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना। तं प्रसाद्य तदा देवं बदर्यां किल भारत ॥ १० ॥ अर्थात्प्रियतरत्वं च सर्वलोकेषु वै तदा। प्राप्तवानेव राजेन्द्र सुवर्णाक्षान् महेश्वरात् ॥११॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु तप्तवानेष माधवः। प्रसाद्य वरदं देवं चराचरगुरुं शिवम् ॥१२॥ युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः। भक्त्या परमया चैव प्रीतश्चैव महात्मनः ॥१३॥ ऐश्वर्यं यादृशं तस्य जगद्योनेर्महात्मनः। तदयं दृष्टवान् साक्षात् पुत्रार्थे हरिरच्युतः ॥ १४ ॥ यस्मात् परतरं चैव नान्यं पश्यामि

अतिरिक्त, मुझ सरीखा पुरुष उन परमेश्वर शंकरके गुण को किस प्रकार जान सकता है ? ॥८॥ भगवान् नारायण ज्ञानी हैं, गुणश्रेष्ठ हैं विष्णु (व्यापक) हैं, परम दुर्जय हैं, दिव्य नेत्रों वाले हैं. महातेजस्वी हैं. वह दिव्यनेत्रसे महादेवका दर्शन किया करते हैं९हे भरतवंशी राजन् ! बदरिकाश्रममें रुद्रको नारायणने प्रसन्न किया था तब शिवकी भक्ति करनेके प्रभावसे महात्मा श्रीकृष्णने जगत्को व्याप्त कर लिया है१०तथा हेराजेन्द्र ! दिव्य दृष्टि वाले महेश्वरके द्वारा श्रीकृष्णने सब लोकोंके चाहने योग्य, भोग्य वस्तुसे भी अधिक प्रिय (अन्तर्यामी) पद पाया है ११ इन ही माधवने देवताओंके एक सहस्र वर्ष तक तप करके जंगम तथा स्थावरके गुरु और वर देने वाले शंकरको प्रसन्न किया था ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णने प्रत्येक युगमें महेश्वरको प्रसन्न किया था और महात्मा शंकर उनकी परमभक्तिसे उन पर प्रसन्न हुआ करते हैं ॥ १३ ॥ जगत्को उत्पन्न करने वाले महात्मा शंकरके ऐश्वर्यको, अच्युत (शिवभक्तिसे भ्रष्ट न होने वाले) श्रीहरिने साम्बको पानेके लिये तप किया था, तब प्रत्यक्ष देखा

भारत । व्याख्यातुं देवदेवस्य शक्तो नामान्यशेषतः ॥ १५ ॥ एष शक्तो महाबाहुर्वक्तुं भगवतो गुणान् । विभूतिं चैव कार्त्स्न्येन सत्यां माहेश्वरीं नृप ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तदा भीष्मो वासुदेवं महायशाः । भवमाहात्म्यसंयुक्तमिदमाह पितामहः ॥ १७ ॥ भीष्म उवाच । सुरासुरगुरोर्देव विष्णो त्वं वक्तुमर्हसि । शिवाय विष्णुरूपाय यन्मां पृच्छद् युधिष्ठिरः ॥१८॥

था ॥ १४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! मैं देवदेव शंकरके सम्पूर्ण नामोंको कहनेकी शक्ति (श्रीकृष्णके अतिरिक्त) और किसीमें नहीं देखता ॥ १५ ॥ ये महाभुज श्रीकृष्ण भगवान् महादेवके सकल गुणोंको तथा महेश्वरकी विभूतिको पूर्णरीतिसे कहनेमें समर्थ हैं । १६ । वैशम्पायनने कहा, कि—महायशस्वी पितामह भीष्म उस समय यह कहकर शिवके माहात्म्यको जानने वाले वासुदेवका स्मरण करके शंकरके माहात्म्यके सम्बन्धमें इस प्रकार कहने लगे १७ भीष्मजीने कहा, कि हे देव दानवोंके गुरु ! हे देव ! हे विष्णो ! युधिष्ठिरने विष्णुस्वरूप शिवके नामोंके सम्बन्धमें जो प्रश्न किया है, उसे आपको कहना चाहिये * ॥१८॥ पहिले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए तंडी

* शान्तिपर्वके मोक्षधर्म-पर्वमें भी शिवसहस्रनाम कहा है, अतः उसका यहां फिर कहना दुरुक्तिदोष प्रतीत होगा, परन्तु यह बात नहीं है, क्योंकि—तहाँ शिवजीके ६०४ नाम संहिता में कहे हैं और बाकीकी गिनती पूर्ण करनेके लिये तहाँ मूलमें लिखा है, कि—त्रिसुपर्ण और शतरुद्रीमें कहे नामोंसे पूर्ति कर लेना चाहिये इसलिये शान्तिपर्वका शिवसहस्रनाम वैदिक है, अतएव उसके पाठ करनेका अधिकार शूद्रको नहीं है, परन्तु ब्रह्मलोक तक जानेकी इच्छा करनेवालोंको ही है । और यहाँ जो शिवसहस्र नाम है, वह दानधर्मके प्रसंगमें आनेके कारण

नाम्नां सहस्रं देवस्य तंडिना ब्रह्मयोनिना । निवेदितं ब्रह्मलोके ब्रह्मणो यत्पुराभवत् ॥ १९ ॥ द्वैपायनप्रभृतयस्तथा चेमे तपोधनाः । ऋषयः सुव्रता दांताः शृण्वन्तु गदतस्तव ॥ २० ॥ ध्रुवाय नंदिने होत्रे गोप्त्रे विश्वसृजेऽग्नये । महाभाग्यं विभोर्ब्रूहि मुण्डिनेऽथ कपर्दिने ॥ २१ ॥ वासुदेव उवाच । न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः । हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेंद्रा महर्षयः ॥ २२ ॥ न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः । स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः ॥ २३ ॥ तस्याहमसु-

नामक एक ऋषिने ब्रह्माजीके सामने ही शिवजीके सहस्र नाम कहे थे ॥ १९ ॥ आपके मुखसे ही शिवजीके उन सहस्र नामोंको ये तपोधन उत्तम व्रतधारी और इन्द्रियोंको नियममें रखनेवाले ऋषि और व्यासजी सुनें (यह मेरी इच्छा है) ॥२०॥ध्रुव (कूटस्थ)आनन्दमय,कर्तारूप विज्ञानमय,कर्मफल देकर रक्षा करनेवाले,दक्ष आदिरूपसे विश्वकी सृष्टि करनेवाले, गार्हपत्य आदि अग्निस्वरूप,निश्चूड(वास्तवमें उपाधिरहित होनेसे मुंडीरूप,उपाधिरूप चूडा वाले कपर्दी, शंकरके माहात्म्यको हे विभो ! आप कहिये ॥ २१ ॥ वासुदेवने कहा, कि-इन्द्र सहित ब्रह्मा आदि प्रधान २ देवता और महर्षि भी श्रीशंकरके कर्मोंकी गतिको यथार्थरीतिसे नहीं जान सकते ॥ २२ ॥ सूक्ष्मदर्शी आदित्य देवता (इन्द्रियें) भी जब शंकरके भवन (हार्दाकाश) को नहीं

काम्य भी है, "ब्राह्मणको इसका पाठ करनेसे सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान होता है, क्षत्रियको समस्त पृथ्वीका स्वामित्व मिलता है, वैश्यको धन और निपुणता मिलती है तथा शूद्रको सुख और मोक्ष मिलता है" इस प्रकारकी फलश्रुति इस अध्यायके अन्तमें लिखी है, अतः सिद्ध होता है, कि-चारों वर्णोंको इस स्तोत्रके पाठ करनेका अधिकार है। -नीलकण्ठ

रहस्य कांश्चिद्भगवतो गुणान् । भवतां कीर्त्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम् ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु भगवान गुणांस्तस्य महात्मनः । उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः ॥ २५ ॥ वासुदेव उवाच । शुश्रूषध्वं ब्राह्मणेंद्रास्त्वं च तात युधिष्ठिर । त्वं चापगेय नामानि शृणुष्वेह कपर्दिने २६ यदवाप्तं च मे पूर्वं सांबहेतोः सुदुष्करम् । यथावद्भगवान् दृष्टो मया पूर्वं समाधिना ॥ २७ ॥ शंबरे निहते पूर्वं रौक्मिणेयेन धीमता । अतीते द्वादशे वर्षे जांबवत्यब्रवीद्धि माम् ॥ २८ ॥ प्रद्युम्नचारुदेष्णादीन् रुक्मिण्या वीक्ष्य पुत्रकान् । पुत्रार्थिनी मामुपेत्य वाक्यमाह युधिष्ठिर ॥ २९ ॥ शूरं बलवतां श्रेष्ठं कांतरूप-

---

जानते तो फिर सत्पुरुषोंकी गतिरूप शंकरको मनुष्य तो जान ही कैसे सकते हैं ? (श्रुतिमें भी कहा है, कि-"शम्भुराकाशमध्ये" शम्भु हृदयाकाशमें रहते हैं) ॥ २३ ॥ उन असुरोंका संहार करनेवाले और यज्ञ तथा व्रत करने वालोंको फल देनेवाले महात्मा शंकरके कुछ गुणोंको मैं तुमसे जैसे तैसे कहूँगा२४ वैशम्पायनने कहा, कि-इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण आचमन करके शुद्ध हुए और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित बुद्धिमान् महात्मा शंकरके गुणोंको कहनेलगे ॥ २५ ॥ वासुदेवने कहा, कि-हे ब्राह्मणेन्द्रों ! हे तात! हे युधिष्ठिर ! और हे गङ्गापुत्र भीष्म ! तुम जटाजूटधारी श्रीशंकरके नामोंको सुनो ॥ २६ ॥ पहिले साम्ब नामक पुत्रको प्राप्त करनेके लिये मैंने महाकठिन तप किया था और समाधिमें भगवान् शंकरके दर्शन किये थे ॥ २७ ॥ जब रुक्मिणीके बुद्धिमान् पुत्र प्रद्युम्नके शम्बरासुरका वध करने पर बारह वर्ष बीत गए, तब एक दिन जाम्बवतीने मुझसे पुत्रके लिये कहा ॥ २८ ॥ हे युधिष्ठिर ! रुक्मिणीके प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि पुत्रोंको देखकर जाम्बवतीको भी पुत्रकी इच्छा हुई

मकल्मषम् । आत्मतुल्यं मम सुतं प्रयच्छाच्युत मा चिरम् ॥३०॥
न हि तेऽप्राप्यमस्तीह त्रिषु लोकेषु किंचन । लोकान् सृजेस्त्वम-
परानिच्छन्यदुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥ त्वया द्वादशवर्षाणि व्रतीभूतेन
शुष्यता । आराध्य पशुभर्त्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः ३२
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेशो यशोधरः । चारुश्रवाश्चारुयशाः
प्रद्युम्नः शंभुरेव च ॥ ३३ ॥ यथा ते जनिताः पुत्रा रुक्मिण्यां
चारुविक्रमाः । तथा ममापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन ॥ ३४ ॥
इत्येवं चोदितो देव्या तामवोचं सुमध्यमाम् । अनुजानीहि मां
राज्ञि करिष्ये वचनं तव ॥ ३५ ॥ सा च मामब्रवीद्गच्छ शिवाय
विजयाय च । ब्रह्मा शिवः काश्यपश्च नद्यो देवा मनोनुगाः३६

और वह मेरे पास आकर कहने लगी, कि-॥२९॥ हे अच्युत ! तुम मुझे भी एक ऐसा पुत्र दो, कि-जो शूरवीर बलवानोंमें श्रेष्ठ, कमनीय रूपवाला, निर्दोष और आपकी समान हो, इसमें विलंब न करिये ।३०॥ हे यदुकुलोत्पन्न ! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो आपको न मिलसके, यदि आप चाहें तो दूसरे लोकोंको भी रचसकते हैं३१आपने पहिले बारह वर्षतक व्रतधारण करके शरीरको सुखातेहुऐ पशुपतिका आराधन कर रुक्मिणीमें चारुदेष्ण,सुचारु,चारुवेश,यशोधर,चारुश्रवा,चारुयश, प्रद्युम्न और शंभु नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया है ॥३२-३३॥ हे मधुसूदन ! आपने जिस प्रकार रुक्मिणीमें सुन्दर और पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न किया है, उसी प्रकार मुझे भी एक पुत्र दीजिये३४ इस प्रकार उस देवीने कहा, तब मैंने सुन्दर कटि वाली उस स्त्रीसे कहा, कि-हे देवि ! मुझै आज्ञा दो, तब मैं तुम्हारे कथनानुसार करूँ ॥३५॥ तब उस देवीने कहा, कि-जाइये ! आपका कल्याण और विजय हो,और ब्रह्मा, शिव, काश्यप, नदियें, मनकी समान वेग वाले देवता, क्षेत्र, औषधियें, यज्ञको पूर्ण करने वाले वेद,

13246

क्षेत्रौषध्यो यज्ञवाहाश्छन्दांस्यृषिगणाध्वराः । समुद्रा दक्षिणाः स्तोभा ऋक्षाणि पितरो ग्रहाः ॥ ३७ ॥ देवपत्न्यो देवकन्या देवमातर एव च । मन्वन्तराणि गावश्च चन्द्रमाः सविता हरिः ३८ सावित्री ब्रह्मविद्या च ऋतवो वत्सरास्तथा क्षणा लवा मुहूर्त्ताश्च निमेषा युगपर्ययाः ॥ ३९ ॥ रक्षन्तु सर्वत्र गतं त्वां यादवसुखाय च । अरिष्टं गच्छ पन्थानमप्रमत्तो भवानघ ॥ ४० ॥ एवं कृतस्वस्त्यनस्तयाऽहं ततोऽभ्यनुज्ञाय नरेन्द्रपुत्रीम् । पितुः समीपं नरसत्तमस्य मातुश्च राज्ञश्च तथाहुकस्य ॥ ४१ ॥ गत्वा समावेद्य यदब्रवीन्मां विद्याधरेन्द्रस्य सुता भृशार्त्ता । तानभ्यनुज्ञाय तदातिदुःखाद्गदं तथैवातिबलं च रामम् । अथोचतुः प्रीतियुतौ तदानीं तपः समृद्धिर्भवतोऽस्त्वविघ्नम् ॥ ४२ ॥ प्राप्यानुज्ञां गुरु-

ऋषि, अध्वर, समुद्र, दक्षिणायें, सामवेदमें सामको पूर्ण करने वाले हुँ, मा आदि अक्षर, नक्षत्र, पितर, नवग्रह, देवताओंकी स्त्रियें, देवकन्याएँ, मन्वन्तर, गौ, चन्द्रमा, सविता, हरि, सावित्री ब्रह्मविद्या, छः ऋतुएँ, वर्ष, क्षण, लव, मुहूर्त, निमेष, युगके लौट फेर ये सब हे यादव ! तुम जहाँ हो तहाँ तुम्हारी रक्षा करें और तुमको सुख दें तथा हे निर्दोष स्वामिन! तुम सावधान होकर जाओ! तुम्हारा मार्ग कल्याणप्रद हो! और निर्विघ्न हो! ३६–४० इस प्रकार देवीने मंगलात्मक बातें कह कर स्वास्तिवाचन किया, तब मैं राजपुत्रीकी अनुमति लेकर अपने सर्वश्रेष्ठ पिता, माता और राजा आहुकके पास गया ॥४१॥ और मुझसे विद्याधरराजकी पुत्री जाम्बवतीने अति-आतुरतासे जो पुत्रकी प्रार्थना की थी, वह सब बात उनसे कही, तब उन्होंने दुःखित हृदयसे आज्ञा दी, तब मैं गद और महाबली बलदेवके पास गया और उनसे भी यह बात कह कर उनसे जानेकी आज्ञा माँगी, तब उन दोनोंने भी प्रसन्न होकर मुझसे कहा, कि तुम्हारा तप निर्विघ्न

जनादहं तात्पर्यमचिन्तयम् ।सोऽवहद्धिमवन्तं मां प्राप्य चैनं व्यसर्जयम् ॥ ४३ ॥ तत्राहमद्भुतान् भावानपश्यं गिरिसत्तमे । क्षेत्रं च तपसां श्रेष्ठं पश्याम्यद्भुतमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ दिव्यं वैयाघ्रपद्यस्य उपमन्योर्महात्मनः ॥ पूजितं देवगन्धर्वैर्ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् ४५ धवककुभकदंबनारिकेलैः कुरवककेतकजंबुपाटलाभिः । वटवरुणकवत्सनाभबिल्वैः सरलकपित्थपियालसालतालैः ॥४६॥ बदरीकुन्दपुन्नागैरशोकाम्रातिमुक्तकैः। मधूकैः कोविदारैश्च चम्पकैः पनसैस्तथा ॥ ४७ ॥ वन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युतम् । पुष्पगुल्मलताकीर्णं कदलीषण्डशोभितम् ॥ ४८ ॥ नानाशकुनिसंभोज्यैः फलैर्वृक्षैरलंकृतम् । यथास्थानविनिक्षिप्तैर्भूषितं भस्म-

---

सफल हो ४२ इसप्रकार अपने गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर मैंने गरुड़का स्मरण किया (तब वह उपस्थित होकर) मुझे हिमालय पर्वतपर लेगया, तब मैंने उसको जानेकी आज्ञादेदी ४३ मैंने तहाँ पर्वतोत्तम हिमालयपर अनेक अद्भुत दृश्य देखे, और मैंने अद्भुत उत्तम और तपस्वियोंके आश्रमोंमें श्रेष्ठ एक क्षेत्र (आश्रम) देखा ॥ ४४ ॥ वह आश्रम व्याघ्रपादके पुत्र महात्मा उपमन्युका दिव्य आश्रम था, उस ब्राह्मी शोभासे सुशोभित आश्रमको देवता और गंधर्व भी सन्मानकी दृष्टिसे देखते थे ॥ ४५ ॥ वह आश्रम धव, ककुभ, कदम्ब, नारियल, कुरवक, केवड़ा, जम्बीरीनीबू, पाटल, वड, वरुण, वत्सनाभ, वेल, सरल, कैथ, पियाल, साल, ताल, वेर, कुंद, पुन्नाग, अशोक, आम अतिमुक्तक, महुआ, कोविदार, चम्पक, कटहल और भी बहुतसे जंगली वृक्षोंसे तथा नाना प्रकारके फल और पुष्प देनेवाले वनके वृक्षोंसे छारहा था, पुष्प, गुल्म और लताओंसे आच्छादित था, और केलोंके वनोंसे शोभायमान था ॥ ४६-४८ ॥ नानाप्रकारके पक्षियोंके खाने योग्य फलवाले वृक्षोंसे अलंकृत था, भिन्न २ स्थानोंमें भस्मसे ढकी

राशिभिः ॥ ४९ ॥ रुरुवानरशार्दूलसिंहद्वीपिसमाकुलम् । कुरं-
गबर्हिणाकीर्णं मार्जारभुजगावृतम् । पूगैश्च मृगजातीनां महिषं-
र्क्षनिषेवितम् ॥ ५० ॥ सकृत्प्रभिन्नैश्च गजैर्विभूषितं प्रहृष्टनाना-
विधपक्षिसेवितम् । सुपुष्पितैरम्बुधरप्रकाशैर्महीरुहाणां च वनै-
र्विचित्रैः ॥ ५१ ॥ नानापुष्परजोमिश्रो गजदानाधिवासितः ।
दिव्यस्त्रीगीतबहुलो मारुतोऽभिमुखो ववौ ॥ ५२ ॥ धारानिना-
नादैर्विहगप्रणादैः शुभैस्तथा बृंहितैः कुञ्जराणाम् । गीतैस्तथा
किन्नराणामुदारैः शुभैः स्वनैः सामगानां च वीर ॥ ५३ ॥
अचिंत्यं मनसाप्यन्यैः सरोभिः समलंकृतम् । विशालैश्चाग्निशर-
णैर्भूषितं कुसुमावृतैः ॥५४॥ विभूषितं पुण्यपवित्रतोयया सदा

हुई अग्नियोंसे भूषित था ॥४९॥ और तहाँ रुरु, वानर, सिंह
शेर, बघेरे, भेड़िये और हाथी घूमरहे थे, वह कुरंग और मोरोंसे
भराहुआ था, तहाँ बिलाव और सर्प भररहे थे तथा मृग, भैंसे
और रीछ भी उस आश्रमके समीपमें रहते थे ॥ ५० ॥ जिनमें
पहिली वार ही मद झरना आरंभ हुआ था,ऐसे हाथियोंसे वह
भराहुआ था तथा बड़ेभारी हर्षमें भरेहुए अनेक प्रकारके पक्षी
तहाँ रहा करते थे और उस आश्रमके समीप मेघकी समान श्याम
कांति वाले पुष्पित वृक्षोंके विचित्र वन थे ॥ ५१ ॥ और तहाँ
अनेक प्रकारके पुष्पोंकी परागसे मिला हुआ और हाथियोंके
मदकी सुगंध वाला और देवांगनाओंके गीतोंसे गुञ्जारता हुआ
पवन भी सामने ही चल रहा था ॥५२॥ और हे वीर ! जलकी
धाराके शब्दोंसे, पक्षियोंकी मधुरध्वनिसे हाथियोंकी शुभ चिंघा-
ड़ोंसे, किन्नरोंके उदार गीतोंसे तथा सामवेदको पढ़ने वालोंकी
मधुर-ध्वनियोंसे वह आश्रम शोभा पा रहाथा ॥ ५३ ॥ दूसरे
जिनकी मनसे भी कल्पना न कर सकें ऐसा वह आश्रम सरोवरों
से अलंकृत था, बड़ी अग्निहोत्रकी शालाओंसे और पुष्पित वृक्षों

च जुष्टं नृप जन्हुकन्यया । विभूषितं धर्मभृतां वरिष्ठैर्महात्मभिर्वन्हिसमानकल्पैः ॥ ५५ ॥ वाय्वाहारैरंबुपैर्जप्यनित्यैः संप्रक्षालैर्योगिभिर्ध्याननित्यैः धूमप्राशैरूष्मपैः चीरपैश्च संजुष्टं च ब्राह्मणेन्द्रैः समन्तात् ॥ ५६ ॥ गोचारिणोथाश्मकुट्टा दन्तोलूखलिकास्तथा । मरीचिपाः फेनपाश्च तथैव मृगचारिणः ॥ ५७ ॥ अश्वत्थफलभक्षाश्च तथा ह्युदकशायिनः । चीरचर्माम्बरधरास्तथा वल्कलधारिणः॥५८॥ सुदुःखान्नियमांस्तांस्तांन्वहतः सुतपोधनान् । पश्यन् मुनीन् बहुविधान् प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ५९ ॥

से शोभायमान था ॥ ५४ ॥ और वह आश्रम राजा जन्हुकी कन्या गंगाजीके पुण्यमय और पवित्र जलसे सुशोभित था और अग्निकी समान तेजस्वी बड़े २ धर्मनिष्ठ पुरुषोंसे दिप रहा था ॥५५॥ और वायुका आहार करने वाले,जलको पीकर रहने वाले, नित्य जप करने वाले, सदा मैत्री मुदिता आदि गुणोंसे चित्तको शुद्ध रखने वाले और सदा ध्यान करने वाले योगी, धूमका पान करने वाले, भाफको पीकर रहने वाले और दुग्ध पान करके रहने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण उस आश्रमके चारों ओर रहते थे ॥ ५६ ॥ उस आश्रममें बहुतसे गौकी समान मुखसे आहार करते थे (हाथसे काम नहीं लेते थे) बहुतसे पत्थरोंसे फलोंको फोड़ कर खाते थे, बहुतसे दाँतोंसे काट कर खाते थे, बहुतसे सूर्यकी किरणोंका पान करते थे, बहुतसे झाग ही पीते थे और बहुतसे मृगकी समान आहार करके (चर कर) जीवन विताते थे ॥५७॥ बहुतसे पीपलके फल खाकर ही जीवन विताते थे, बहुतसे जलमें शयन करते थे और बहुतसे चीथड़े और चमड़े ही पहिर रहे थे और बहुतसे वल्कल वस्त्र पहर कर ही रहते थे ॥ ५८ ॥ इसप्रकार मैंने आश्रममें बहुतसे तपोधन मुनियोंको अनेक प्रकारके कष्टप्रद नियम पालतेहुए देखा, तब

सुपूजितं देवगणैर्महात्मभिः शिवादिभिर्भारत पुण्यकर्मभिः । रराज तच्चाश्रममण्डलं सदा दिवीव राजन् शशिमण्डलं यथा ॥६०॥ क्रीडन्ति सर्पैर्नकुला मृगैर्व्याघ्राश्च मित्रवत् । प्रभावाद्दीप्ततपसां सन्निकर्षान्महात्मनाम् ॥६१॥ तत्राश्रमपदे श्रेष्ठे सर्वभूतमनोरमे । सेविते द्विजशार्दूलैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ६२ ॥ नानानियमविख्यातैर्ऋषिभिः सुमहात्मभिः । प्रविशन्नेव चापश्यं जटाचीरधरं प्रभुम् ॥ ६३ ॥ तेजसा तपसा चैव दीप्यमानं यथाऽनलम् । शिष्यैरनुगतं शान्तं युवानं ब्राह्मणर्षभम् ॥ ६४ ॥ शिरसा वंदमानं मामुपमन्युरभाषत ॥६५॥ स्वागतं पुण्डरीकाक्ष सफलानि

उसमें प्रवेश करनेकी मुझे इच्छा हुई ॥ ५९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! देवता और पवित्र कर्म करनेवाले मंगलमय महात्माभी उस आश्रमका भलीभाँति पूजन करते थे, वह आश्रम आकाशमें चन्द्रमण्डलकी समान शोभा पारहा था ॥ ६० ॥ और उस आश्रममें तपसे प्रकाशमान महात्मा रहते थे उनके प्रभावसे और सांनिध्यसे सर्पोंके साथ नौले और मृगोंके साथ सिंह मित्रकी समान क्रीड़ा करते थे ॥६१॥ वह आश्रम सब प्रकारके प्राणियोंको अच्छा लगता था और उसमें वेद वेदांगके पढ़नेवाले उत्तम ब्राह्मण रहते थे ॥ ६२ ॥ और अनेक नियमोंका पालनकर प्रसिद्ध हुए महात्मा ऋषिभी उस आश्रममें रहते थे, मैंने उस आश्रममें प्रवेश करते ही जटावाले और वल्कल वस्त्र-धारी एक तेजस्वी पुरुषको देखा ॥ ६३ ॥ वह तपसे और तेजसे अग्निकी समान प्रकाशवान् दीखते थे, शिष्य उनके पीछे २ चल रहे थे, वह शान्त थे, युवा थे, और ब्राह्मणके पुत्र थे ॥६४॥ मैंने उनको देखकर प्रणाम किया, तब उन उपमन्यु ऋषिने मुझसे कहा, कि-॥६५॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! आप भले आये, मेरा तप आज सफल होगया, क्योंकि-आप पूज्य होकर भी मेरी पूजा कररहे

तपांसि नः। यः पूज्यः पूजयसि मां द्रष्टव्यो द्रष्टुमिच्छसि ॥६६॥ तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मृगपक्षिष्वथाग्निषु। धर्मे च शिष्यवर्गे च समपृच्छमनामयम् ॥ ६७ ॥ ततो मां भगवानाह साम्ना परमवल्गुना। लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यमसंशयम् ॥ ६८ ॥ तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमीश्वरम्। इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षज ॥ ६९ ॥ इहैनं दैवतश्रेष्ठं देवाः सर्षिगणाः पुरा। तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥७०॥ तोषयित्वा शुभान् कामान् प्राप्नुवन्तो जनार्दन। तेजसां तपसां चैव निधिः स भगवानिह ॥ ७१ ॥ शुभाशुभान्वितान् भावान्विसृजन् संक्षिपन्नपि। आस्ते देव्या सदाऽचिंत्यो यं प्रार्थयसि शत्रुहन् ॥७२॥

हैं और दर्शन करने योग्य होकर भी मेरा दर्शन करना चाहते हैं ६६ तब मैंने दोनों हाथ जोड़कर उपमन्युसे बूझा, कि-इस आश्रमके मृग और पक्षी तो सकुशल हैं, तथा शिष्य तो आनन्दित हैं और धर्म तो आनन्दसे चलरहा है ॥ ६७ ॥ तदनन्तर भगवान्ने मुझसे शान्ति भरेहुए परम-मधुर-वचनसे कहा, कि-हे कृष्ण ! तुम अपनी समान पुत्रको अवश्य पाओगे ॥ ६८ ॥ हे इन्द्रियोंसे जाननेमें न आने वाले कृष्ण ! तुम महातप करके ईशान शंकरको संतुष्ट करो, भगवान् शंकर अपनी पत्नीके साथ यहाँ ही विहार करते हैं ॥६९॥ हे जनार्दन ! पहिले देवता और ऋषियोंने यहाँ ही देवश्रेष्ठ शंकरको तप, ब्रह्मचर्य, सत्य और दमसे सन्तुष्ट करके शुभ कामनाएँ पाई थीं, यह भगवान् शंकर तपके और तेजके भण्डार हैं ॥ ७१ ॥ हे शत्रुहन्ता कृष्ण ! तुम जिनसे प्रार्थना कर रहे हो वह अचिन्त्य भगवान् शंकर देव शुभ और अशुभ भावोंको उत्पन्न करते हुए और फिर अपनेमें ही उनको लीन करते हुए देवी पार्वतीके साथ सदा यहाँ रहते हैं ॥७२॥ पहिले मेरुको कँपाने वाला हिरण्यकशिपु नामक एक

हिरण्यकशिपुर्योऽभूद्दानवो मेरुकम्पनः । तेन सर्वामरैश्वर्यं शर्वात् प्राप्तं समार्बुदम् ॥७३॥ तस्यैव पुत्रप्रवरो मंदारो नाम विश्रुतः । महादेववराच्छक्रं वर्षार्बुदमयोधयत् ॥७४॥ विष्णोश्चक्रं च तद्घोरं वज्रमाखण्डलस्य च ॥ शीर्णं पुराभवत्तात ग्रहस्यांगेषु केशव ७५ यत्तद्भगवता पूर्वं दत्तं चक्रं तवानघ । जलांतरचरं हत्वा दैत्यं च बलगर्वितम् ॥ ७६ ॥ उत्पादितं वृषांकेन दीप्तज्वलनसन्निभम् । दत्तं भगवता तुभ्यं दुर्धर्षं तेजसाद्भुतम् ॥ ७७ ॥ न शक्यं द्रष्टुमन्येन वर्जयित्वा पिनाकिनम् । सुदर्शनं भवत्येवं भवेनोक्तं तदा तु तत् ॥ ७८ ॥ सुदर्शनं तदा तस्य लोके नाम प्रतिष्ठितम् । तज्जीर्णमभवत्तात ग्रहस्यांगेषु केशव ॥७९॥ ग्रहस्यातिबलस्यांगे

दैत्य हुआ था, उसने शंकरसे एक अब्ज वर्ष तक सब देवताओं पर प्रभुत्व करनेका वर पाया था ॥७३॥ उसका श्रेष्ठ पुत्र मंदार नामसे प्रसिद्ध था, वह महादेवजीके वरसे इन्द्रके साथ एक अब्ज वर्ष तक लड़ा था ॥ ७४ ॥ हे केशव ! पहिले विष्णुने भयंकर चक्र और वज्र मंदारके मारे थे, परन्तु हे तात ! पापग्रह मंदारके शरीरसे टकराते ही उनका चूरा २ होगया था ॥ ७५ ॥ और हे निर्दोष केशव ! पहिले भगवान्‌ने तुमको जो चक्र दिया था उससे पहिले (उन्होंने) जलचारी बलगर्वित दैत्यका संहार किया था ॥७६॥ उस प्रज्वलित अग्निकी समान चक्रको पहिले वृषांक शंकरने उत्पन्न किया था उस दुराधर्ष और तेजसे अद्भुत दीखते हुए चक्रको तुमको दिया था ॥ ७७ ॥ (प्रकाशके कारण) पिनाकी शंकरके अतिरिक्त और कोई भी उस चक्रकी ओर नहीं देखसकता था, परन्तु उससमय शंकरने उस उस चक्रको देख कर कहा, कि-यह चक्र सुदर्शन (सहजमें देखा जा सके ऐसा) होजाय ॥ ७८ ॥ तबसे जगत्‌में उसका सुदर्शन नाम पड़ा है, परन्तु हे तात केशव ! यह चक्र भी (पाप) ग्रहरूप

वरदत्तस्य धीमतः । न शस्त्राणि वहंत्यंगे चक्रवज्रशतान्यपि ८०
अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुरशीयसा । शिवदत्तवरान् जघ्नुर-
सुरेन्द्रान् सुरा भृशम् ॥ ८१ ॥ तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रिलोके-
श्वरतां ददौ । शतं वर्षसहस्राणां सर्वलोकेश्वरोऽभवत् ॥ ८२ ॥
ममैवानुचरो नित्यं भवितासीति चाब्रवीत् । तथा पुत्रसहस्राणा-
मयुतं च ददौ प्रभुः ॥ ८३ ॥ कुशद्वीपं च स ददौ राज्येन भग-
वानजः । तथा शतमुखो नाम धात्रा सृष्टो महासुरः ॥ ८४ ॥
येन वर्षशतं साग्रमात्ममांसैर्हुतोऽनलः । तं प्राह भगवांस्तुष्टः किं
करोमीति शंकरः ॥ ८५ ॥ तं वै शतमुखः प्राह योगो भवतु
मेऽद्भुतः । बलं च दैवतश्रेष्ठ शाश्वतं संप्रयच्छ मे ॥८६॥ तथेति

मन्दारके महाबली शरीर पर पड़ते ही जीर्ण होगया था ॥७९॥
क्यों कि–शंकरसे वर पानेके कारण बुद्धिमान् और अतिबलवान्
ग्रहरूप मन्दारके शरीर पर सैंकड़ों शस्त्र, चक्र और वज्र भी
कुछ असर नहीं करते थे ॥ ८० ॥ महाबली इस ग्रहने देवताओं
को दुःख देना आरंभ कर दिया, तब देवता शिवसे वरदान पाने
वाले दैत्योंसे खूब लड़े थे ॥८१॥ एक विद्युत्प्रभ नामक दानव
को शंकरने प्रसन्न होकर तीनों लोकोंका राजा बना दिया था
और उसने एक लाख वर्ष तक तीनों लोकों पर राज्य किया
था ॥८२॥ शंकरने उससे कहा, कि तू सदा मेरा अनुचर रहेगा
और प्रभुने उसे एक लाख पुत्र दिये थे॥८३॥फिर अजन्मा भग-
वान्से उसको राज्यके साथ कुशद्वीप भी मिला था, और ब्रह्माजीने
शतमुख नामक एक महा-असुरको उत्पन्न किया था ॥ ८४ ॥
उसने बराबर सौ वर्ष तक अपने मांससे अग्निमें होम किया था,
तब शंकरने उस पर प्रसन्न होकर उससे कहा, कि–बता मैं तेरा
क्या करूँ ॥ ८५ ॥ तब शतमुखने कहा, कि–मुझे अद्भुत योग
दीजिये और हे देवोत्तम ! कभी भी नष्ट न होने वाला बल

भगवानाह तस्य तद्वचनं प्रभुः । स्वायंभुवः क्रतुश्चापि पुत्रार्थम-
भवत्पुरा ॥ ८७ ॥ आविश्य योगेनात्मानं त्रीणि वर्षशतान्यपि ।
तस्य चोपददौ पुत्रान्सहस्रं क्रतुसंमितान् ॥ ८८ ॥ योगेश्वरं
देवगीतं वेत्थ कृष्ण न संशयः । याज्ञवल्क्य इति ख्यात ऋषिः
परमधार्मिकः ॥ ८६ ॥ आराध्य स महादेवं प्राप्तवानतुलं यशः ।
वेदव्यासश्च योगात्मा पराशरसुतो मुनिः ॥६०॥ सोऽपि शंकर-
माराध्य प्राप्तवानतुलं यशः । बालखिल्या मघवता ह्यवज्ञाताः
पुरा किल ॥६१॥ तैः क्रुद्धैर्भगवान् रुद्रस्तपसा तोषितो ह्यभूत् ।
तांश्चापि दैवतश्रेष्ठः प्राह प्रीतो जगत्पतिः ॥ ६२ ॥ सुपर्णं सोम-
हर्तारं तपसोत्पादयिष्यथ । महादेवस्य रोषाच्च आपो नष्टाः
पुराभवन् ॥६३॥ ताश्च सप्तकपालेन देवैरन्याः प्रवर्चिताः । ततः

दीजिये ॥ ८६ ॥ उसकी बात सुन कर भगवान् शंकरने उससे
कहा, कि-"तथास्तु" पहिले क्रतु नामक स्वायंभुव मनुने पुत्रके
लिये तीनसौ वर्ष तक योग साधा था, उसको भी शंकरने क्रतुकी
समान ही एक सहस्र पुत्र दिये थे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे कृष्ण !
देवता जिनकी महिमा गाते हैं,ऐसे योगेश्वरको तुम जानते ही हो
पहिले परमधर्मिष्ठ याज्ञवल्क्य नामक एक प्रसिद्ध ऋषि हुए
थे ॥ ८६ ॥ उन्होंने महादेवकी आराधना करके अतुलयश पाया
था और योगस्वरूप पराशरके पुत्र वेदव्यासने भी शंकरकी
आराधना करके अतुल यश पाया था,पहिले इन्द्रने बालखिल्योंका
अपमान किया था॥६०॥६१॥तब कोपमें भरे हुए बालखिल्यों ने
तप करके भगवान् शंकरको प्रसन्न किया था, तब देवश्रेष्ठ जगत्-
पति शंकरने प्रसन्न होकर बालखिल्योंसे कहा, कि-॥ ६२ ॥
तुम तप करके (स्वर्गमेंसे) अमृत लानेवाले सुपर्णको उत्पन्न
करोगे, पहिले महादेवजीके क्रोधसे जल सूखगया था ॥ ६३ ॥
तब देवताओंने जिसके अधिष्ठात्री देवता सप्तकपाल हैं, ऐसे यज्ञसे

पानीयमभवत्प्रसन्ने त्र्यंबके भुवि ॥ ९४ ॥ अत्रेर्भार्यापि भर्त्तारं संत्यज्य ब्रह्मवादिनी । नाहं तस्य मुनेर्भूयो वशगा स्यां कथञ्चन ९५ इत्युक्त्वा सा महादेवमगच्छच्छरणं किल । निराहारा भयादत्रे-स्त्रीणि वर्षशतान्यपि ॥९६॥ अशेत मुसलेष्वेव प्रसादार्थं भवस्य सा । तामब्रवीद्धसन् देवो भविता वै सुतस्तव ॥ ९७ ॥ विना भर्त्रा च रुद्रेण भविष्यति न संशयः । वंशे तवैव नाम्ना तु ख्यातिं यास्यति चेप्सिताम् ॥ ९८ ॥ विकर्णश्च महादेवं तथा भक्तसुखावहम् । प्रसाद्य भगवान् सिद्धिं प्राप्तवान् मधुसूदन ९९ शाकल्यः संशितात्मा वै नववर्षशतान्यपि । आराधयामास भवं मनोयज्ञेन केशव ॥ १०० ॥ तं चाह भगवांस्तुष्टो ग्रंथकारो भवि-

श्रीशंकरका पूजन किया था, तब पृथ्वीमें जल आया, इसप्रकार भगवान् शंकरके प्रसन्न होनेपर जल आया था ॥ ९४ ॥ और पहिले अत्रिकी ब्रह्मवादिनी स्त्री अनसूयाने अपने स्वामी अत्रि ऋषिको त्यागदिया था और कहा, कि—अब मैं किसीप्रकार भी अत्रि ऋषिके आधीन नहीं रहूँगी ॥ ९५ ॥ इसप्रकार कहकर वह महादेवकी शरणमें गई और अत्रि ऋषिके भयसे तीनसौ वर्षतक निराहार रहीं ॥ ९६ ॥ और शंकरको प्रसन्न करनेके लिये अग्रभागमें लोहा जड़ीहुई काष्ठकी कीलोंपर, सोती थीं । यह देखकर शंकर हँसे और उससे कहा, कि—"रुद्रकी कृपासे भर्ताकी सहायता न होनेपर भी (यज्ञके चरुका रस पीने मात्रसे ही) तुम्हारे पुत्र होगा और वह तुम्हारे वंशमें तुम्हारे ही (आनसूयच) नामसे मन चाही प्रसिद्धि पावेगा" ॥९७–९८॥ पहिले भगवान् विकर्णने भी भक्तोंको सुख देनेवाले महादेवको प्रसन्न करके सिद्धि पाई थी ॥ ९९ ॥ हे केशव ! उदारमना शाकल्यने भी नौसौ वर्ष तक मनोयज्ञसे शंकरकी आराधनाकी थी ॥ १०० ॥ तब भगवान् उनपर प्रसन्न हुए थे और उनसे

ष्यसि । वत्साक्षया च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये वै भविष्यति ॥ १ ॥ अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम् । भविष्यति द्विजश्रेष्ठः सूत्रकर्त्ता सुतस्तव ॥२॥ सावर्णिश्चापि विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे । इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतान्यथ ॥ ३ ॥ तमाह भगवान् रुद्रः साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ । ग्रंथकृल्लोकविख्यातो भविताऽस्यजरामरः ॥ ४ ॥ शक्रेण तु पुरा देवो वाराणस्यां जनार्दन । आराधितोऽभूद्भक्तेन दिग्वासा भस्मगुण्ठितः ॥५॥ आराध्य स महादेवं देवराजमवाप्तवान् । नारदेन तु भक्त्यासौ भव आराधितः पुरा ॥ ६ ॥ तस्य तुष्टो महादेवो जगौ देवगुरुर्गुरुः । तेजसा तपसा कीर्त्या त्वत्समो न भविष्यति ॥ ७ ॥ गीतेन वादितव्येन

कहा था, कि-तू ग्रंथकार होगा और हे वत्स ! तेरी अक्षय-कीर्ति तीनों लोकोंमें फैल जावेगी ॥ १०१ ॥ और हे उत्तम ब्राह्मण ! तेरा कुल अक्षय होगा और महर्षियोंको उत्पन्न करके अलंकृत होगा और द्विजश्रेष्ठ तेरा पुत्र सूत्रकर्ता होगा ॥ १०२ ॥ कृतयुगमें सावर्णि नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, उन्होंने इस आश्रममें छःसौ वर्षतक तपकिया था ॥ १०३ ॥ उनसे भगवान् रुद्रने प्रत्यक्ष होकर कहा, कि-हे निर्दोष सावर्णि ! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूँ, तू लोकोंमें प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता और अजर अमर होगा ४ हे जनार्दन ! पहिले भक्त इन्द्रने भी वाराणसीमें दिगंबर और भस्मसे आच्छन्न शंकरकी आराधनाकी थी ॥ ५ ॥ और शंकर का पूजनकर उसने देवताओंपर राजपद पाया था, नारदजीने भी पहिले भक्तिपूर्वक शंकरकी आराधना की थी ॥ ६ ॥ तब देवगुरु बृहस्पतिके भी गुरुरूप श्रीमहादेवजीने उनसे प्रसन्न होकर कहा, कि-तेजमें, तपमें और कीर्तिमें तुम्हारी समान और कोई नहीं होगा ॥ ७ ॥ तुम भी सदा गीत गाकर और वादित्र बजाकर मेरा अनुसरण करोगे हे तात ! इसीप्रकार मुझै

नित्यं मामनुयास्यसि । मयापि च यथा दृष्टो देवदेवः पुरा विभो ८
साक्षात्पशुपतिस्तात तच्चापि शृणु माधव । यदर्थं च मया देवः
प्रयतेन तथा विभो ॥ ६ ॥ प्रबोधितो महातेजास्तं चापि शृणु
विस्तरम् । यदवाप्तं च मे पूर्वं देवदेवान्महेश्वरात् ॥ ११० ॥
तत्सर्वं निखिलेनाद्य कथयिष्यामि तेऽनघ । पुरा कृतयुगे तात
ऋषिरासीन्महायशाः ॥११। व्याघ्रपाद इति ख्यातो वेदवेदाङ्ग-
पारगः । तस्याहमभवं पुत्रो धौम्यश्चापि ममानुजः ॥ १२ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य धौम्येन सह माधव । आगच्छमाश्रमं क्री-
डन्मुनीनां भावितात्मान् ॥१३॥ तत्रापि च मया दृष्टा दुह्यमाना
पयस्विनी । लक्षितं च मया क्षीरं स्वादुतो ह्यमृतोपमम् ॥१४॥
ततोऽहमब्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तथा । क्षीरोदनसमायुक्तं भो-
जनं हि प्रयच्छ मे ॥१५॥ अभावाच्चैव दुग्धस्य दुःखिता जननी

भी पहिले देवदेव पशुपति श्रीशंकरके प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे, इस बातको भी सुनिये, और मैंने भी जिस कामको साधनेके लिये सावधान होकर महातेजस्वी शंकरको जाग्रत किया था उस वृत्तान्तको भी विस्तारसे सुनिये, पहिले मुझै देवदेव शंकरसे जो पदार्थ मिला था, वह सब हे निर्दोष कृष्ण ! मैं तुमसे आज कहूँगा हे तात ! पहिले कृतयुगमें एक महायशस्वी ऋषि थे, वह व्याघ्रपाद नामसे प्रसिद्ध थे, वह वेद वेदांगोंमें पारङ्गत थे, मैं उनका पुत्र था और मेरे छोटे भाईका नाम धौम्य था ॥ ८–१२ ॥ एक समय मैं धौम्यके साथ खेलता २ महात्मा मुनियोंके एक आश्रममें जा पहुँचा ॥ १३ ॥ तहाँ मैंने एक दुधेर गौ दुही जाती हुई देखी और उसका दूध पिया तो उसका दूध अमृतकी समान स्वादिष्ट लगा ॥ १४ ॥ फिर मैंने घर आकर बालक स्वभावके अनुसार अपनी मातासे कहा, कि–तू मुझै दूध और भात मिला भोजन दे ॥ १५ ॥ उस समय दूध नहीं

तदा । ततः पिष्टं समालोड्य तोयेन सह माधव ॥१६॥ आवयोः क्षीरमित्येव पानार्थं समुपानयत् । अथ गव्यं पयस्तात कदाचित् प्राशितं मया ॥१७॥ पित्राहं यज्ञकाले हि नीतो ज्ञातिकुलं महत् । तत्र सा क्षरते देवी दिव्या गौः सुरनन्दिनी ॥ १८ ॥ तस्याहं तत्पयः पीत्वा रसेन ह्यमृतोपमम् । ज्ञात्वा क्षीरगुणांश्चैव उपलभ्य हि सम्भवम् ॥ १९॥ स च पिष्टरसस्तात न मे प्रीतिमुपावहत् । ततोऽहमब्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तदा ॥ १२० ॥ नेदं क्षीरोदनं मातर्यत्त्वं मे दत्तवत्यसि । ततो मामब्रवीन्माता दुःखशोकसमन्विता ॥ २१ ॥ पुत्रस्नेहात् परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय माधव । कुतः क्षीरोदनं वत्स मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २२॥ वने निवसतां नित्यं कन्दमूलफलाशिनाम् । आस्थितानां नदीं दिव्यां

था, इससे मेरी माताको दुःख हुआ और हे माधव! उसने जलमें आटा घोल कर ॥ १६ ॥ हम दोनों भाइयोंको दूध बतला कर दिया, परन्तु हे तात ! मैंने पहिले एक वार गौका दूध पिया था ॥ १७ ॥ और मेरे पिता अपने एक संबन्धीके घर यज्ञके अवसर पर मुझे लेगए थे, तहाँ देवताओंको आनन्द देने वाली एक दिव्य गौ दूध देरही थी ॥ १८ ॥ उसका अमृतकी समान दूध मैंने पिया था, इससे मैं दूधके गुण (स्वाद) को जानता था और उसकी उत्पत्तिको भी जानता था॥१९॥ इससे हे तात! मुझे आटेका जल पीने पर प्रीति नहीं हुई, उस समय बालस्वभावके अनुसार मैंने अपनी मातासे कहा, कि—॥१२०॥ तूने जो वस्तु मुझे दी है, इसमें दूध नहीं है, तब मेरी माताने दुःख और शोकमें मग्न होकर मुझसे कहा, ॥२१॥ हे माधव ! मेरी माता पुत्रके स्नेहानुसार मेरे मस्तकको सूँघ कर कहने लगी, कि—हे वत्स ! परमात्माके ध्यानमें परायण रहने वाले मुनियोंके यहाँ दूध कहाँसे हो सकता है२२जो मुनि सदा बनमें रहते हैं, जो

वालखिल्यैर्निषेविताम् ॥ २३ ॥ कुतः क्षीरं वनस्थानां मुनीनां गिरिवासिनाम् । पावनानां वनाशानां वनाश्रमनिवासिनाम् ॥ २४ ग्राम्याहारनिवृत्तानामारण्यफलभोजिनाम् । नास्ति पुत्र पयोऽरण्ये सुरभीगोत्रवर्जिते ॥२५॥ नदी गह्वरशैलेषु तीर्थेषु विविधेषु च । तपसा जप्यनित्यानां शिवो नः परमा गतिः ॥ २६ ॥ अप्रसाद्य विरूपाक्षं वरदं स्थाणुमव्ययम् । कुतः क्षीरोदनं वत्स सुखानि वसनानि च ॥ २७ ॥ तं प्रपद्य सदा वत्स सर्वभावेन शंकरम् । तत्प्रसादाच्च कामेभ्यः फलं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥ २८ ॥ जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदा प्रभृति शत्रुहन् । प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा इदमंबामचोदयम् ॥ २९ ॥ कोऽयमंब महादेवः स कथं च प्रसो-

कन्द और मूलका आहार करते हैं और जो वालखिल्योंसे सेवित दिव्य नदीके तटपर रहते हैं२३हे पुत्र! जो मुनि वनमें और पर्वतों में निवास करते हैं,जो पवित्र हैं जो वनके फल मूलका आहार करते हैं और वनमें आश्रमोंमें रहते हैं उनके यहाँ क्षीर कहाँ?२४नगर के मादक आहारोंका त्याग कर वनमें फलमूलका आहार करने वालोंके (यहाँ दूध कहाँसे आया ?) हे पुत्र!इस वनमें सुरभिका वंश नहीं है, अतः दूध कहाँसे हो ? ॥२५॥ हम सदा नदियोंके तट पर, गुफाओंमें, पर्वतों पर तथा नाना प्रकारके तीर्थोंमें रह कर सदा तप करते हुए जप करते रहते हैं और शिव हमारे परम आश्रय हैं॥२६॥ हे वत्स!वर देने वाले, कूटस्थ, अविकारी विरूपाक्षको प्रसन्न किये विना दूध भात और सुखकारक वस्त्र कैसे मिल सकते हैं २७ अतः हे वत्स ! तू श्रद्धा रख कर शिव की शरण ले, हे पुत्र ! उनकी कृपासे तेरी सारी कामनाएँ सफल होजावेंगी२८हे शत्रुहन्ता केशव!अपनी माताकी वात सुनकर मैंने दोनों हाथ जोड़कर उसको प्रणाम किया और उससे बूझाकि २९ हे मातः!यह महादेव कौन हैं,तथा यह किसप्रकार प्रसन्न होते हैं?

दति । कुत्र वा वसते देवो द्रष्टव्यो वा कथंचन ॥ १३० ॥ तुष्यते वा कथं शर्वो रूपं तस्य च कीदृशम् । कथं ज्ञेयः प्रसन्नो वा दर्शयेज्जननी मम ॥ ३१ ॥ एवमुक्ता तदा कृष्ण माता मे सुतवत्सला । मूर्ध्न्युपाघ्राय गोविन्द सबाष्पाकुललोचना ॥ ३२ ॥ प्रमार्जंती च गात्राणि मम वै मधुसूदन । दैन्यमालंब्य जननी इदमाह सुरोत्तम ॥३३ ॥ अम्बोवाच । दुर्विज्ञेयो महादेवो दुराधारो दुरन्तकः । दुराबाधश्च दुर्ग्राह्यो दुर्दृश्यो ह्यकृतात्मभिः ३४ यस्य रूपाण्यनेकानि प्रवदन्ति मनीषिणः । स्थानानि च विचित्राणि प्रसादाश्चाप्यनेकशः ॥३५॥ को हि तत्त्वेन तद्वेद ईशस्य

तथा यह देव कहाँ रहते हैं? और मुझे उनका दर्शन किसप्रकार मिलसकता है? १३०वह देव किसप्रकार प्रसन्न होते हैं? उनका स्वरूप कैसा है?और हे मा!उनको किस प्रकार जाना जा सकता है तथा वह किस प्रकार प्रसन्न होकर मुझे दर्शन देंगे ? ३१ हे कृष्ण! हे गोविन्द ! इस भाँति कहने पुत्र पर वत्सलता रखने वाली मेरी माताने मेरा मस्तक सूँघा और उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये३२हे मधुसूदन!उसने मेरे शरीरपर हाथ फेरा और हे सुरोत्तम ! वह दीन बनकर कहनेलगी३३माताने कहा, कि-जिनको आत्मज्ञान नहीं हुआ ऐसे पुरुष महादेवको दुःखसे जान सकते हैं,ये शास्त्रसे ज्ञात होनेपर भी मनसे धारण नहीं किये जासकते, कदाचित् उनको मनमें धारण कियाजाता है तो लय,विक्षेप आदि विघ्न उनको धारण करनेमें बाधा डालते हैं,विघ्न न पड़नेपर भी उनके स्वरूपको कठिनतासे ही ग्रहण कियाजासकता है और जाना जासकता है३४तत्त्ववेत्ता पुरुष उनके अनेकरूप बतलाते हैं अनेक अनेक विचित्र स्थानोंका वर्णन करते हैं और उनकी प्रसन्नता भी नानाप्रकारकी है, यह कहते हैं ॥३५॥ शिवके शुभ-चरित्र को यथार्थ रीतिसे कौन जानसकता है और पहिले देवदेव शिवने

चरितं शुभम् । कृतवान् यानि रूपाणि देवदेवः पुरा किल ।
क्रीडते च तथा शर्वः प्रसीदति यथा च वै ॥३६॥ हृदिस्थः सर्व-
भूतानां विश्वरूपो महेश्वरः । भक्तानामनुकंपार्थं दर्शनं च यथा
श्रुतम् ॥ ३७ ॥ मुनीनां ब्रुवतां दिव्यमीशानचरितं शुभम् । कृत-
वान्यानि रूपाणि कथितानि दिवौकसैः॥३८॥अनुग्रहार्थं विप्राणां
शृणु वत्स समासतः । तानि ते कीर्त्तयिष्यामि यन्मां त्वं परि-
पृच्छसि ॥ ३९ ॥ अम्बोवाच । ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्या-
श्विनामपि । विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ॥ १४० ॥
नराणां देवनारीणां तथा प्रेतपिशाचयोः । किरातशबराणां च
जलजानामनेकशः ॥ ४१ ॥ करोति भगवान् रूपमाटव्यशबरा-
ण्यपि । कूर्मो मत्स्यस्तथा शंखः प्रवालाङ्कुरभूषणः ॥४२॥ यक्ष-

जो रूप धारण किये हैं तथा शिव जिसप्रकार प्रकार क्रीड़ा करते हैं और जिसप्रकार प्रसन्न होते हैं उन सब लीलाओंको कौन जानसकता है ? ३६ यह महेश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले हैं, विश्वरूप हैं, और यह भक्तोंपर दया करनेके लिये शास्त्रानुसार दर्शन दिया करते हैं ? ॥ ३७ ॥ मुनियोंके कहनेसे मैंने भगवान शिवको शुभ–चरित्र सुना है, उन्होंने जिन २ रूपों को धारण किया है,देवता ब्राह्मणोंपर अनुग्रह करनेके लिये उस का वर्णन किया करते हैं हे वत्स ! जिन स्वरूपोंके विषयमें तूने मुझसे प्रश्न किया है उनको मैं तुझसे क्षण भरमें कहूँगी, सुन ३८–३९ माताने कहा, कि शिव ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और विश्वेदेवताओंके शरीरको धारण किया करते हैं ॥ ४० ॥ और यह शिव मनुष्योंके, देवाङ्गनाओंके, प्रेतोंके पिशाचोंके, किरातोंके शबरोंके और अनेक जलचर प्राणियोंके रूप धारण करते हैं ॥ ४१ ॥ भगवान् शंकर वनवासी भीलोंके, कछुओंके, मछलियोंके, शंख

राक्षससर्पाणां दैत्यदानवयोरपि । वपुर्धारयते देवो भूयश्च विलवासिनाम् ॥ ४३ ॥ व्याघ्रसिंहमृगाणाञ्च तरक्ष्वृक्षपतत्रिणाम् । उलूकश्वशृगालानां रूपाणि कुरुतेऽपि च ॥ ४४ ॥ हंसकाकमयूराणां कृकलासकसारसाम् । रूपाणि च बलाकानां गृध्रचक्राङ्गयोरपि ॥ ४५ ॥ करोति चासरूपाणि धारयत्यपि पर्वतम् । गोरूपं च महादेवो हस्त्यश्वोष्ट्रखराकृतिः ॥ ४६ छागशार्दूलरूपश्च अनेकमृगरूपधृत् । अण्डजानाश्च दिव्यानां वपुर्धारयते भवः ४७ दण्डी छत्री च कुण्डी च द्विजानाम्वारणस्तथा। षण्मुखो वै बहुमुखस्त्रिनेत्रो बहुशीर्षकः॥४८॥अनेककटिपादश्च अनेकोदरवक्त्रधृत् । अनेकपाणिपार्श्वश्च अनेकगणसंवृतः ॥ ४९॥ ऋषि-

के, और वसन्त आदि ऋतुओंके स्वरूपको धारण करते हैं ४२ शंकर सर्प, राक्षस, यक्ष, दैत्य, दानव और बिलमें रहने वाले प्राणियोंके स्वरूपको भी धारण करते हैं ॥ ४३ ॥ व्याघ्र, सिंह, मृग, तरक्षु, रीछ, पक्षी, उल्लू, कुत्ते और गीदड़के रूपोंको भी धारण करते हैं ॥ ४४ ॥ हंस, काक, मयूर, गिरघट, सारस, बगले, बगली, गिद्ध और चक्रवाक आदिके रूपोंको भी धारण करते हैं ॥ ४५ ॥ और महादेव घासके तथा पर्वतके स्वरूपको भी धारण करते हैं और बैलके, हाथीके, घोड़ेके, ऊँटके और गधेके स्वरूपको भी धारण करते हैं ॥ ४६ ॥ और यह शंकर बकरेके, सिंहके, अनेक पशुओंके तथा दिव्य पक्षियोंके स्वरूपको भी धारण करते हैं ॥ ४७ ॥ वह ब्राह्मणोंमें संन्यासीका, क्षत्रियोंमें राजाका और ब्राह्मणोंमें कुण्डीवाले भिक्षुकका स्वरूप धारण करते हैं और छः मुख वाले, अनेक मुख वाले तीन नेत्रों वाले और अनेक मस्तक वाले स्वरूपको धारण करते हैं ॥४८॥ शंकर अनेक कटि, अनेक चरण, अनेक पेट, अनेक मुख, अनेक हाथ, और अनेक पार्श्वोंको धारण करते हैं और अनेक

गन्धर्वरूपश्च सिद्धचारणरूपधृक् । भस्मपाण्डुरगात्रश्च चन्द्रार्धकृत-भूषणः १५० अनेकरावसंघुष्टश्चानेकस्तुतिसंस्कृतः । सर्वभूतान्तकः शर्वः सर्वलोकप्रतिष्ठितः ५१ सर्वलोकान्तरात्मा च सर्वगः सर्ववाद्यपि । सर्वत्र भगवान् ज्ञेयो हृदिस्थः सर्वदेहिनाम् ॥ ५२ ॥ यो हि यं कामयेत् कामं यस्मिन्नर्थेऽर्च्यते पुनः । तत्सर्वं वेत्ति देवस्तं प्रपद्य यद्द यदीच्छसि ॥५३॥ नन्दते कुप्यते चापि तथा हुंकारयत्यपि । चक्री शूलगदापाणिर्मुसली खड्गपट्टिशी ॥५४ ॥ भूधरो नाम मौञ्जी च नागकुण्डलकुण्डली । नागयज्ञोपवीती च नाग-

गणोंसे घिरे रहते हैं ॥ ४६ ॥ वह ऋषियोंके और गन्धर्वोंके स्वरूपको धारण करते हैं और सिद्ध और चारणोंके स्वरूपको धारण करते हैं, शंकरका शरीर भस्मकी समान श्वेत-वर्णका है, वह अपने शरीर पर अर्धचन्द्रको आभूषणकी समान धारण करते हैं ॥ १५० ॥ अनेक प्रकारके स्वरोंसे उनके नामका घोष होता है, अनेक ऋषि उनकी स्तुति करते हैं वह सब प्राणियोंके संहारकर्ता हैं, सब लोक उनके आधारसे रहते हैं ॥ ५१ ॥ वह सब लोकोंके अन्तरात्मारूप हैं, सर्वत्र व्यापक हैं, सब शास्त्रोंके और कर्मोंके वक्ता हैं, तथा वह भगवान् सब देहधारियोंके हृदय में और सर्वत्र निवास करते हुए प्रतीत होते हैं ॥ ५२ ॥ और मनुष्य जो कामना करता है और जिस कार्यके लिये परमात्माकी उपासना करता है, उस सबको देवेश्वर शंकर जानते हैं, अतः यदि तेरी इच्छा हो तो तू देवताओंके ईश्वर शंकरकी शरणमें जा ॥ ५३ ॥ भगवान शिव भक्तों पर प्रसन्न होते हैं, दुष्टों पर कोप करते हैं तथा हुंकार भी करते हैं और चक्र, शूल, गदा, मूसल, तलवार और पट्टिशको धारण करते हैं ॥ ५४ ॥ और शिव पृथ्वीको धारण करने वाले हैं, सर्पकी कटि-मेखलाको धारण करते हैं, सर्पके कुण्डलोंको धारण करते हैं सर्पके यज्ञो-

चर्मोत्तरच्छदः ॥ ५५ ॥ हसते गायते चैव नृत्यते च मनोहरम्। वादयत्यपि वाद्यानि विचित्राणि गणैर्युतः॥५६॥ वल्गते जृम्भते चापि रुदते रोदयत्यपि। उन्मत्तमत्तरूपं च भाषते चापि सुस्वरः ॥५७॥ अतीव हसते रौद्रस्त्रासयन्नयनैर्जनम्। जागर्त्ति चैव स्वपिति जृम्भते च यथासुखम् ॥ ५८ ॥ जपते जप्यते चैव तपते तप्यते पुनः। ददाति प्रतिगृह्णाति युञ्जते ध्यायतेऽपि च ॥ ५९ ॥ वेदीमध्ये तथा यूपे गोष्ठमध्ये हुताशने। दृश्यतेऽदृश्यते चापि बालो वृद्धो युवा तथा ॥ १६० ॥ क्रीडते ऋषिकन्याभिर्ऋषिपत्नीभिरेव च। ऊर्ध्वकेशो महाशेफो नग्नो विकृतलोचनः ॥६१॥ गौरः

पवीतको पहिरते हैं और सर्पकी कैंचलीके उत्तरीय वस्त्रको धारण करते हैं ॥ ५५ ॥ मनको हरने वाला हास करते हैं गाते हैं और नृत्य करते हैं तथा अपने गणोंके साथ नाना प्रकारके बाजे बजाते हैं ॥ ५६ ॥ शब्द करते हैं, जँभाई लेते हैं, रोते हैं, दूसरोंको भी रुलाते हैं, उन्मत्तरूपको धारण करते हैं, मदमत्तरूपको धारण करते हैं, मधुर-स्वरसे भाषण करते हैं ॥ ५७ ॥ बहुत हँसते हैं, भयङ्कर वन नेत्रोंके द्वारा दूसरोंको त्रास देते हैं, जिस प्रकार सुख मिले तिस प्रकार जागते हैं, निद्रा लेते हैं और जँभाई लेते हैं ॥ ५८ ॥ वह स्वयं मन्त्रोंका जप करते हैं तथा मन्त्रोंके इष्टदेवकी समान पूजा पाते हैं, वह स्वयं तप करते हैं और उनको पानेके लिये भी तप किया जाता है, वह दान देते हैं, लेते हैं, योगसाधन करते हैं और दूसरे उनका ध्यान करते हैं ॥ ५९ ॥ यज्ञकी वेदीमें, यज्ञके स्तंभमें, गोष्ठमें, अग्निमें इस प्रकार वह सर्वत्र दर्शन देते हैं और वह बालक, वृद्ध तथा युवा की समान भी दर्शन देते हैं ॥१६०॥ वह ऋषियोंकी कन्याओं के साथ क्रीड़ा करते हैं, ऋषिपत्नियोंके साथ विहार करते हैं, उनके केश खड़े हुए हैं, वह महाशेफ हैं, नग्न रहते हैं, उनके

श्यामस्तथा कृष्णः पाण्डुरो धूमलोहितः । विकृताक्षो विशालाक्षो दिग्वासाः सर्ववासकः ॥६२॥ अरूपस्याद्यरूपस्य अतिरूपाद्यरूपिणः । अनाद्यं तमजस्यान्तं वेत्स्यते कोऽस्य तत्त्वतः ६३ हृदि प्राणो मनो जीवो योगात्मा योगसंज्ञितः । ध्यानं तत्परमात्मा च भावग्राह्यो महेश्वरः ॥ ६४ ॥ वादको गायनश्चैव सहस्रशतलोचनः । एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रोऽनेकवक्त्रकः ॥ ६५ ॥ तद्भक्तस्तद्गतो नित्यं तन्निष्ठस्तत्परायणः । भज पुत्र महादेवं ततः प्राप्स्यसि चेप्सितम् । ६६ । जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदा प्रभृति शत्रुहन् । मम भक्तिर्महादेवे नैष्ठिकी समपद्यत । ६७ । ततोऽहं तप आस्थाय तोषयामास शंकरम् । एकं वर्षसहस्रन्तु वामाङ्गुष्ठाग्र-

नेत्र भयङ्कर हैं ॥ ६१ ॥ वह शरीरसे गौर, श्याम, कृष्णवर्णके पाण्डुरवर्ण, धूमकी समान लोहितवर्ण, भयङ्कर नेत्र वाले, विशाल नेत्र वाले, दिगम्बर और सबको ढकने वाले हैं ॥६२॥ वह महादेव निष्कल हैं, मायाके ईश्वर हैं, अनेक कार्यरूप हैं, हिरण्यगर्भरूप हैं आदि अन्त और जन्मरहित हैं,इनके स्वरूपको यथार्थरीतिसे कौन जानसकता है६३वह महादेव सबके हृदयोंमें विराजमान हैं, प्राणरूप, मनोरूप, जीवरूप और योगके आत्मारूप हैं, उनका नाम योगरूप, ध्यानरूप, परमात्मारूप और महेश्वर है और उनके स्वरूपका ज्ञान भक्तिसे होसकता है । ६४ । भगवान् महादेव वादित्र बजानेवाले हैं, गान गानेवाले हैं उनके एक लाख नेत्र हैं, वह एक मुखवाले, दो मुख वाले हैं तीन मुख वाले हैं अनेक मुख वाले हैं । ६५ । हे पुत्र ! तू उनका भक्त होजा, उनमें मन लगा, सदा उनमें निष्ठा रख, उनमें परायण रहकर महादेवका भजन कर, ऐसा करनेसे तू इच्छित वर पावेगा । ६६ । हे शत्रुहन् कृष्ण ! माताकी बात सुनकर उस दिनसे महादेवजीके ऊपर मेरी निष्ठावाली भक्ति होगई । ६७ ।

धिष्ठितः ॥६८॥ एकं वर्षशतं चैव फलाहारस्ततोऽभवम् । द्वितीयं शीर्णपर्णाशी तृतीयं चांबुभोजनः ॥ ६९ ॥ शतानि सप्त चैवाहं वायुभक्षस्तदाऽभवम् । एकं वर्षसहस्रं तु दिव्यमाराधितो मया १७० ततस्तुष्टो महादेवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । एकभक्त इति ज्ञात्वा जिज्ञासां कुरुते तदा ॥ ७१ ॥ शक्ररूपं स कृत्वा तु सर्वैर्देवगणैर्वृतः । सहस्राक्षस्तदा भूत्वा वज्रपाणिर्महायशाः ॥७२॥ सुधावदातं रक्ताक्षं स्तब्धकर्णं मदोत्कटम् । आवेष्टितकरं घोरं चतुर्दंष्ट्रं महागजम् ॥ ७३ ॥ समास्थितः स भगवान् दीप्यमानः स्वतेजसा । आजगाम किरीटी तु हारकेयूरभूषितः ॥ ७४ ॥ पांडुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि । सेव्यमानोऽप्सरोभिश्च दिव्य-

तदनन्तर मैंने एक सहस्र वर्ष तक दाहिने चरणके अँगूठेके अग्रभाग पर खड़े होकर तप करके शंकरको सन्तुष्ट किया ॥ ६८ ॥ इनमें एक सौ वर्ष मैंने फलोंका आहार किया था, दूसरे सौ वर्ष तक वृक्षोंमेंसे गिरे हुए पत्तोंका आहार करके जीवन विताया था, तीसरे सौ वर्ष तक जलका आहार किया था ॥ ६९ ॥ और बाकी सात सौ वर्ष तक मैंने वायुका आहार किया था, इस प्रकार मैंने एक सहस्र दिव्य वर्षों तक महादेवजीकी आराधना की थी॥१७०॥ तब सब लोकोंके ईश्वर प्रभु महादेव मुझ पर प्रसन्न हुए थे और मुझको अनन्य भक्त जान कर उस समय बूझने लगे, ॥७१॥ उस समय महादेव महायशस्वी वज्रपाणि सहस्राक्ष इन्द्रके स्वरूपको धारण कर सब देवताओंको साथमें ले, अमृतकी समान श्वेत, लाल नेत्रों वाले, स्थिर कानवाले, मदसे प्रचण्ड, टेढ़ी सूँड वाले, भयंकर दृश्य वाले और चार डाढ़ वाले एक महाहस्ती पर बैठ कर, हार और बाजूबन्दोंसे सज कर, मस्तक पर मुकट धारण कर अपने तेजसे दिपते हुए मेरे पास आये थे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उस समय उनके मस्तक पर श्वेत वर्णका छत्र

गन्धर्वनादितैः ॥ १७५ ॥ ततो मामाह देवेन्द्रस्तुष्टस्तेऽहं द्विजोत्तम । वरं वृणीष्व मत्तस्त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ७६ ॥ शक्रस्य तु वचः श्रुत्वा नाहं प्रीतमनाऽभवम् । अब्रुवंश्च तदा हृष्टो देवराजमिदं वचः ॥७७॥ नाहं त्वत्तो वरं कांक्षे नान्यस्मादपि दैवतात् । महादेवादृते सौम्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥७८॥सत्यं सत्यं हि नः शक्र वाक्यमेतत् सुनिश्चितम् । न यन्महेश्वरं मुक्त्वा कथान्या मम रोचते ॥ ७९ ॥ पशुपतिवचनाद्भवामि सद्यः कृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः । अपशुपतिवरप्रसादजा मे त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥ १८० ॥ जन्म श्वपाकमध्येऽपि मेऽस्तु हरचरणवन्दनरतस्य । मावानीश्वरभक्तो भवानि भवनेऽपि

लग रहा था, अप्सराएँ और दिव्य गन्धर्व मधुरध्वनिसे उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ७५ ॥ तदनन्तर देवेन्द्रने मुझसे कहा, कि-हे ब्राह्मण ! मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ, अतः तुझे जो इच्छा हो उसके लिये वर माँग ले ॥७६॥ शक्ररूपधारी देवके वचनको सुन कर मैं मनमें प्रसन्न नहीं हुआ तब भी मैंने इन्द्रसे कहा, कि-॥ ७७ ॥ मैं तुमसे वर पाना नहीं चाहता, ऐसे ही किसी दूसरे देवतासे भी वर पाना नहीं चाहता, मैं तो एक महादेवजीसे वर पाना चाहता हूँ हे सौम्य इन्द्र ! मैं तुमसे यह बात सत्य कहता हूँ ॥ ७८ ॥ हे इन्द्र ! मेरा यह कथन सत्य है!सत्य है !! यह तुम निश्चय समझो, मुझे महेश्वरकी कथाके अतिरिक्त और कोई कथा अच्छी नहीं लगती ॥७९॥ मैं पशुपतिके वचनसे तुरत कीड़ा बन जाऊँ अथवा अनेक शाखावाला वृक्ष बन जाऊँ, परन्तु पशुपतिके अतिरिक्त और किसी देवतासे मुझे तीनों लोकोंके राज्यकी विभूति मिलती हो,तब भी वह मुझे इष्ट नहीं है८०शिवके चरणोंमें वन्दना करनेकी प्रीति रखने वाला मैं चाण्डालयोनिमें चाहे उत्पन्न होजाऊँ, परन्तु इन्द्रकेसे वरमें शिवका अभक्त होकर

शक्रस्य ॥ ८१ ॥ वाय्वंबुभुजोपि सतो नरस्य दुःखक्षयः कुत-स्तस्य । भवति हि सुरासुरगुरौ यस्य न विश्वेश्वरे भक्तिः ८२ अलमन्याभिस्तेषां कथाभिरप्यन्यधर्मयुक्ताभिः। येषां न क्षणमपि रुचितो हरचरणस्मरणविच्छेदः ॥ ८३ ॥ हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य । संसारभयं न भवति हरभक्तिरसा-यनं पीत्वा ॥८४॥ दिवसं दिवसार्धं वा मुहूर्तं वा क्षणं लवम् । न ह्यलब्धप्रसादस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥ ८५ ॥ अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयं शंकराज्ञया । न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्य-मपि कामये ॥ ८६ ॥ श्वापि महेश्वरवचनाद्भवामि स हि नः परः कामः । त्रिदशगणराज्यमपि खलु नेच्छाम्यहं महेश्वराज्ञ-प्तम् ॥ ८७ ॥ न नाकपृष्ठं न च देवराज्यं न ब्रह्मलोकं न च

उत्पन्न होना मुझे रुचता नहीं हैं ॥८१॥ यदि मनुष्य वायु और जलका भक्षण करके भी सुरअसुरके गुरु विश्वेश्वरकी भक्ति न करे तो उस मनुष्यके दुःखका नाश कैसे होसकता है ८२ जो क्षण भरभी श्रीहरके चरणकमलोंके वियोगको नहीं सहसकते, उनसे दूसरे धर्मवाली और कथाएँ कहना ही व्यर्थ है ॥ ८३ ॥ इस कुटिल कलियुगमें उत्पन्न होनेपर मनुष्यको अपनी बुद्धि श्रीशिवजीके चरणोंमें लगानी चाहिये, श्रीशिवकी चरणकमल-रूपी रसायनका पान करनेसे मनुष्यको संसार अर्थात् जन्ममरण का भय नहीं रहता है ॥ ८४ ॥ शंकरका अनुग्रह न पानेवाला पुरुष दिन, आधादिन, मुहूर्त, क्षण, अथवा एक लवको भी श्रीशंकरकी भक्ति नहीं करसकता ॥ ८५ ॥ शंकरकी आज्ञासे चाहे मैं कीड़ा होजाऊँ चाहे सूर्य होजाऊँ, परन्तु हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे दियेहुए तीनों लोकोंको भी नहीं चाहता ॥८६॥ शिवके कहनेसे मैं कुत्ताभी बनना अच्छा समझता हूँ, परन्तु शिवको छोड़कर और किसीसे मैं देवताओंका राज्य लेना भी अच्छा नहीं

निष्कलत्वम् । न सर्वकामानखिलान् वृणोमि हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ॥८८॥ यावच्छशांकधवलामलबद्धमौलिर्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् ममेशः । तावज्जरामरणजन्मशताभिघातैर्दुःखानि देहविहितानि समुद्वहामि ॥ ८९ ॥ दिवसकरशशांकवन्हिदीप्तं त्रिभुवनसारमसारमाद्यमेकम् । अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम् ॥ १९० ॥ यदि नाम जन्मभूयो भवति मदीयैः पुनर्दोषैः । तस्मिंस्तस्मिन् जन्मनि भवेन्मेऽक्षया भक्तिः॥९१॥शक्रउवाच । कः पुनर्भवने हेतुरीशे कारणकारणे । येन शर्वादृतेऽन्यस्मात्प्रसादं नाभिकांक्षसि ॥९२॥ उपमन्युरुवाच।

समझता॥८७॥मुझे स्वर्गकी इच्छा नहीं है, देवताओंके राज्यकी इच्छा नहीं है, ब्रह्मलोककी इच्छा नहीं है, निष्कलताकी इच्छा नहीं है और भी मैं किसी प्रकारकी इच्छा नहीं करता, मैं तो हरका दासत्व चाहता हूँ ॥ ८८ ॥ चन्द्रमारूपी श्वेत और निर्मल मुकटको धारण करनेवाले, पशुओं (जीवों) के स्वामी शंकर जबतक प्रसन्न न होंगे, तबतक मैं जरा, जन्म और मरणरूपी देहके धर्मरूप सैंकड़ों दुःखोंको सहूँगा ॥ ८९ ॥ सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी समान कान्तिमान्, तीनों भुवनोंके सारभूत, जिनके सिवाय और कोई भी वस्तु सार नहीं है, सबके आदि पुरुष, एक पुरुष, जरा और मृत्युरहित रुद्रको प्रसन्न कियेविना जगत्में कौन पुरुष शान्ति पासकता है ॥ १९० ॥ यदि मेरे दोषोंके कारण मेरा फिर जन्म हो तो उस २ जन्ममें भी श्रीशिवमें मेरी अक्षय भक्ति रहै ॥ ९१ ॥ इन्द्रने कहा, कि-ईश्वरके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है ? तथा उनके कारणके भी कारण होनेमें क्या प्रमाण है ? कि-जिसकारण तू शर्व अर्थात् सर्वसंहारकारक शिवके अतिरिक्त और किसीसे वर पाना नहीं चाहता? तात्पर्य यह है, कि-शंकरके अस्तित्वमें कोई भी युक्ति दिखाई नहीं देती,

सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः। नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ६३ ॥ अनादिमध्यपर्यन्तं ज्ञानैश्वर्यमचिन्ति-

यदि तू कहे, कि-शंकर तो कारणके भी कारण हैं, तो इसका प्रमाण क्या है ? क्योंकि-एक घटके जैसे कपाल, कुम्हार और मृत्तिका आदि निमित्त और उपादान कारण हैं और जगत्की उत्पत्तिमें भी जगत्रूपी कार्यसे परमाणु, महेश्वर, और त्रिगुणात्मक प्रधान आदि कारणोंके होनेका अनुमान किया जा सकता है, परन्तु कहीं भी कारणका कारण प्रसिद्ध नहीं है तथा उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि-कारणके कारणकी कल्पना करनेसे अर्थापत्तिका नाश होजायगा और जो शत्रु हैं अर्थात् प्रलय कालमें सबका संहार करते हैं उनसे तू दाहकी शांतिके लिये प्रार्थना करता है अतः तू मूर्ख है ॥६२॥ उपमन्युने कहा,कि-जिनको वेदवेत्ता पुरुष सत् और असत् रूप कहते हैं, जिनको व्यक्त और अव्यक्त कहते हैं जो नित्य हैं,एक हैं और अनेक रूप भी हैं, हम उन ईश्वरसे वर पाना चाहते हैं, तात्पर्य यह है,कि-उपमन्यु इन्द्रके मतका खण्डन करते हुए कहते हैं,कि-मीमांसक सत् अर्थात् कर्मको जगत्का कारण मानते हैं, एक कर्म का कारण दूसरा कर्म और दूसरे कर्मका कारण तीसरा कर्म और तीसरे कर्मका कारण चौथा कर्म इस प्रकार कर्मप्रवाह अनादि काल से चला आता है। बौद्ध असत् अर्थात् शून्यको जगत्का कारण मानते हैं। तर्कमतानुयायी व्यक्त अर्थात् परमाणुको जगत्का कारण मानते हैं। सांख्य मत वाले अव्यक्त अर्थात् प्रधानको जगत्का कारण मानते हैं। परन्तु ये चारों कारण भी जिनसे अभिन्न हैं वह नित्य अर्थात् अविनाशी हैं वह एक अर्थात् अनेक तत्त्वोंके समुदायरूप नहीं किन्तु एक-रूप माने जाते हैं, उनसे हम वर माँगते हैं। इस श्लोकका भाव यह है, कि-एक

तम् । आत्मानं परमं यस्माद्वरं तस्माद्वृणीमहे ॥९४॥ ऐश्वर्यं सकलं यस्मादनुत्पादितमव्ययम् । अबीजाद्बीजसंभूतं वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९५ ॥ तपसः परमं ज्योतिस्तपस्तद्वृत्तिनां परम् । यं ज्ञात्वा नानुशोचन्ति वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ ९६ ॥ भूतभावनभावज्ञं सर्वभूताभिभावनम् । सर्वगं सर्वदं देवं पूजयामि पुरन्दर ॥ ९७ ॥ हेतुवादैर्विनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदम्परम् । यमु-

---

वृक्षके अङ्कुर, तना, गुद्दे, डालियें, शाखा, पत्ते, पुष्प, फल और बीज तक जो बीजशक्तिका विलास है उसकी प्रकृति मृत्तिका है और वह एक ही है, नित्य है और सब प्रकारके विशेषोंसे रहित है, वह मृत्तिका बीजशक्तिका स्पर्श होनेसे अनेक रूपोंका धारण करती है, इसी प्रकार अव्यक्त आदि सब बीजरूप हैं, ये सब जिसमें लीन होते हैं उस तत्त्वका नाम परमशिव है, वह कारण का भी कारण है, इसको कोई नकार नहीं सकता ॥ ९३ ॥ जो आदि मध्य और अन्तरहित हैं जो ज्ञेय और ईशितव्य इन दो भावोंसे रहित है और स्वरूपभूत ज्ञान और ऐश्वर्य रूप हैं तथा जो परमात्मस्वरूप हैं (इस प्रकार ब्रह्मवादी जिनका वर्णन करते हैं) उनसे हम वर माँगना चाहते हैं ॥ ९४ ॥ जिनसे सब ऐश्वर्य (मायाविशिष्ट चैतन्य) उत्पन्न होता है, जो स्वयं किसीसे उत्पन्न नहीं होते हैं, जो विकार (उपाधि) रहित हैं और जिनका कोई कारण नहीं है और जो सबके बीजभूत हैं, उन ईश्वरसे हम वर माँगते हैं ॥ ९५ ॥ जो तम अर्थात् मायासे पर हैं जो परमज्योतिःस्वरूप हैं, जो सकल तपोंके सारभूत हैं, पुरुषोंमें जो सकल वृत्तियें हैं और जिनका उपयोग मनुष्य उनको जाननेमें करता है, उन सबसे भी जो पर हैं और जिसको जानने पर जीवोंको शोक नहीं करना पडता है, उन परमात्मासे हम वर पाना चाहते हैं ९६ पञ्चमहाभूत और प्राणियोंकी उत्पत्तिको

पासन्ति तत्त्वज्ञा वरं तस्माद्द्वृणीमहे ॥ ९८ ॥ मघवन्मघवात्मानं यं वदन्ति सुरेश्वरम् । सर्वभूतगुरुं देवं वरं तस्माद्द्वृणीमहे ॥९९॥ यत्पूर्वमसृजद्देवं ब्रह्माणं लोकभावनम् । अण्डमाकाशमापूर्य वरं तस्माद्द्वृणीमहे ॥ २०० ॥ अग्निरापोनिलः पृथ्वी खं बुद्धिश्च मनो महान् । सृष्टा चैषां भवेद्योन्यो ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ १ ॥ मनोमतिरहंकारस्तन्मात्राणींद्रियाणि च । ब्रूहि चैषां भवेच्छक्र कोऽन्योऽस्ति परमं शिवात् ॥ २ ॥ सृष्टारं भुवनस्येह वदन्तीह पितामहम् । आराध्य स तु देवेशमश्नुते

जाननेवाले, सब प्राणियोंका संहार करनेवाले, सर्वत्र गतिवाले और सब वस्तु देनेवाले देवकी हे पुरन्दर ! मैं पूजा करता हूँ९७ जो प्रमाणवादोंसे रहित हैं, सांख्य अर्थात् सम्यक् ज्ञान और योग अर्थात् चित्तवृत्तिका निरोध इन दोनों तत्त्वोंका जिनसे साक्षात्कार होता है जो सबसे पर हैं ! और जिस पुरुषकी तत्त्वज्ञानी उपासना करते हैं उससे हम वर माँगते हैं ॥ ९८ ॥ मघवन् ! महेश्वर ! जिनको महात्मा इन्द्रका भी आत्मा बतलाते हैं और जिनको सब प्राणियोंके गुरु और देव कहते हैं उनसे हम वर पाना चाहते हैं ॥९९॥ जिन्होंने पहिले (अपनी सत्तासे) आकाशको भर कर (उसमें पञ्चमहाभूतका) एक अण्डा उत्पन्न करके उसमेंसे जगत्‌को उत्पन्न करने वाले ब्राह्माको उत्पन्नकिया था, उन देवसे हम वर पाना चाहते हैं ॥ २०० ॥ अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, मन और महत्तत्त्व इन सबको परमेश्वरके अतिरिक्त और कौन उत्पन्न कर सकता है, यह मुझै बता ॥ १ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच तन्मात्राएँ और दश इन्द्रियें इन सबका हे इन्द्र ! शिवके अतिरिक्त और कौन परमकारणरूप है अर्थात् उत्पन्न करने वाला है, यह मुझे बताइये ॥ २ ॥ इस जगत्‌में विद्वान् पितामह भी देवेश्वरकी

महतीं श्रियम् ॥ ३ ॥ भगवत्युत्तमैश्वर्यं ब्रह्मविष्णुपुरोगमम् । विद्यते वै महादेवाद्ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥४॥ दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनात् । कोऽन्यः शक्नोति देवेशाद्दितेः संपादितुं सुतान् ॥ ५ ॥ दिक्कालसूर्यतेजांसि ग्रहवाय्विंदुतारकाः । विद्धि त्वेते महादेवाद्ब्रूहि कः परमेश्वरात्॥६॥ अथोत्पत्तिविनाशे वा यज्ञस्य त्रिपुरस्य वा । दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनः ७ किं चात्र बहुभिः सूक्तैर्हेतुवादैः पुरन्दर । सहस्रनयनं दृष्ट्वा त्वामेव सुरसत्तम ॥८॥ पूजितं सिद्धगन्धर्वैर्देवैश्च ऋषिभिस्तथा । देवदेवप्रसादेन तत्सर्वं कुशिकोत्तम ९ अव्यक्तमुक्तकेशाय सर्व-

आराधना करके बड़ी भारी लक्ष्मीको भोगते हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये प्रत्येक एक एक गुणके (सृष्टि, रक्षा और संहारके) अनुक्रमसे प्रधान देवता हैं, परन्तु उन तीनोंको रचनेवाले भगवान् महादेवमें उत्तम ऐश्वर्य हैं, अतः बताओ कि-कौन देवता परमेश्वर महादेवसे उत्तम है ॥ ४ ॥ दैत्यों और दानवोंके मुख्य पुरुषोंको आधिपत्य देनेवाले तथा उनके शत्रुओं का संहार करनेवाले देवेश्वर शंकरके अतिरिक्त और कौन दिति के पुत्रोंको राज्य आदि ऐश्वर्य देसकता है॥ ५॥ दिशायें, काल, सूर्य, तेजस्वी पदार्थ, ग्रह, वायु, चन्द्र और तारे इन सबको परमात्मा से उत्पन्नहुआ समझो, तो फिर उनसे बड़ा कौन है ॥६॥ यज्ञ पुरुषकी उत्पत्ति और त्रिपुरका नाश भी उन्होंने ही किया है तथा दैत्य और दानवोंको आधिपत्य भी वह ही देते हैं तथा वह शत्रुओंका नाश भी करते हैं७हे इन्द्र ! जिनमें प्रमाण मुख्यमाना जाता है, ऐसे बहुतसे सूक्त कहनेसे क्या प्रयोजन है,हे देवश्रेष्ठ ! सहस्र नेत्रवाले तुमको देखकर८सिद्धोंने,गंधर्वोंने,देवताओंने और ऋषियोंने तेरी जो पूजाकी थी, हे कुशिकोत्तम ! वह सब देवदेव महादेवके प्रसादसे ही हुई है ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! यह चेतनमय

गम्येदमात्मकम् । चेतनाचेतनाद्येषु शक्र विद्धि महेश्वरात् १०
भवाग्र्येषु महांतेषु लोकालोकान्तरेषु च । द्वीपस्थानेषु मेरोश्च
विभवेष्वन्तरेषु च ॥११॥ भगवन् मघवन्देवं वदन्ते तत्त्वदर्शिनः।
यदि देवाः सुराः शक्र पश्यन्त्यन्यां भवाकृतिम् ॥१२॥ किं न
गच्छन्ति शरणमर्दिताश्चासुरैः सुराः । अभिघातेषु देवानां स-
यक्षोरगरक्षसाम् ॥१३॥ परस्परविनाशेषु स्वस्थानैश्वर्यदो भवः।
अन्धकस्याथ शुक्रस्य दुन्दुभेर्महिषस्य च ॥ १४ ॥ यक्षेन्द्रबलर-
क्षःसु निवातकवचेषु च । वरदानावघाताय ब्रूहि कोऽन्यो महेश्वरात्
सुरासुरगुरोर्वक्रे कस्य रेतः पुरा हुतम् १५ कस्य वान्यस्य रेतस्तद्येन

और अचेतनमय, परोक्ष और अपरोक्ष जो कुछ विश्वमें है वह, और जिनका आत्मा विश्वव्यापक ईश है, वह सब वस्तु महेश्वरमेंसे उत्पन्न हुई हैं और उनको "अव्यक्तमुक्तकेश" अर्थात् जीवके उपभोगके लिये (महेश्वरकी) उत्पन्न की हुई जानना चाहिये ॥ २१० ॥ भूलोकसे महर्लोक तकके लोकोंमें, लोक और परलोकके मध्य स्थानमें द्वीपोंके मध्यमें, मेरुपर्वत पर, वैभवोंमें और सब प्राणियोंके हृदयमें शंकर रहते हैं, इस प्रकार हे इंद्र! यदि देवता शिवकोसी दूसरी मूर्तिको जानते होते तो ११॥१२ तब असुर जब उनको दुःख देते हैं, तब वे किसी औरकी शरणमें क्यों नहीं जाते हैं, देवता, यक्ष, सर्प और राक्षसोंमें जब युद्ध होता है और उनका नाश होजाता है तब महादेव उनको उनका स्थान और ऐश्वर्य देते हैं। अन्धकको, शुक्रको, दुन्दुभिको, महिषको, यक्षेन्द्रको, बलको, राक्षसोंको और निवातकवचोंको वरदान देनेके लिये और उनको दण्ड देनेमें महेश्वरके अतिरिक्त और कौन समर्थ था, यह तो मुझे बता॥२१३॥देवदानवोंके गुरु महादेवके वीर्यके अतिरिक्त और किसका वीर्य अग्निके मुखमें होमा गया है और ऐसा किसका वीर्य था, जिससे हेम-

हैमो गिरिः कृतः १६ दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्ध्व-
रेतसः । कस्य चार्धे स्थिता कांता अनंगः केन निर्जितः ॥१७॥
ब्रूहीन्द्र परमं स्थानं कस्य देवैः प्रशस्यते । श्मशाने कस्य क्रीडार्थं
नृत्ये वा कोभिभाष्यते ॥ १८ ॥ कस्यैश्वर्यं समानं च भूतैः को
वापि क्रीडते । कस्य तुल्यबला देव गणाश्चैश्वर्यदर्पिताः ॥१९॥
घुष्यते ह्यचलं स्थानं कस्य त्रैलोक्यपूजितम् । वर्षते तपते कोऽन्यो
ज्वलते तेजसा च कः ॥ २२० ॥ कस्मादोषधिसंपत्तिः को वा
धारयते वसु । प्रकामं क्रीडते को वा त्रैलोक्ये सचराचरे ॥२१॥
ज्ञानसिद्धिक्रियायोगैः सेव्यमानश्च योगिभिः । ऋषिगन्धर्वसिद्धैश्च
विहितं कारणं परम् ॥ २२ ॥ कर्मयज्ञक्रियायोगैः सेव्यमानः

गिरि होसकता था ॥ १६॥ उनके अतिरिक्त जगत्में और कौन दिगम्बर कहलाता है, इस जगत्में उनके सिवाय और कौन ऊर्ध्वरेता है, किसके अर्धांगमें स्त्री स्थिर रही है, अनङ्गको किसने जीता है ? ॥ १७ ॥ और हे इन्द्र ! मुझे बताओ, कि देवता और किस उत्तम स्थानकी प्रशंसा करते हैं ? उनके अतिरिक्त और कौन देवता क्रीड़ा करनेके लिये श्मशानमें जाता है, नृत्य में उनके अतिरिक्त और किसकी प्रशंसा होती है ? ॥ १८ ॥ उनका सा ऐश्वर्य और किसका है ? तथा कौन भूतों के साथ क्रीडा करता है और हे देव ! किस देवताके गण अपने स्वामीकी समान बलवाले और ऐश्वर्यसे गर्वित रहनेवाले हैं ॥ १९ ॥ तीनों लोकोंमें पूज्य अचल स्थान किसका है तथा और कौन बरसता है, तपता है और तेजसे प्रदीप्त होता है ॥ २२० ॥ और किसमेंसे औषधरूप सम्पत्ति मिलती है और धनको कौन धारण करता है और स्थावरजङ्गमात्मक जगत्में और कौन क्रीड़ा करता है ॥२१॥ ज्ञान, सिद्धि तथा योगक्रिया-ओंसे सेवित और कौन है ? उनके अतिरिक्त योगी, ऋषि, गन्धर्व

सुरासुरैः । नित्यं कर्मफलैर्हीनं तमहं कारणं वदे ॥ २३ ॥ स्थूलं सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम् । गुणहीनं गुणाध्यक्षं परं माहेश्वरं पदम् ॥ २४ ॥ विश्वेशं कारणगुरुं लोकालोकान्तकारणम् । भूताभूतभविष्यच्च जनकं सर्वकारणम् ॥ २५ ॥ अक्षराक्षरमव्यक्तं विद्याविद्ये कृताकृते । धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं ब्रुवे ॥ २६ ॥ प्रत्यक्षमिह देवेन्द्र पश्य लिंगं भगांकितम् । देवदेवेन रुद्रेण सृष्टिसंहारहेतुना ॥२७॥ मात्रापूर्वं ममाख्यातं कारणं लोकलक्षणम् । नास्ति चेशात् परं शक्र तं प्रपद्य यदीच्छसि २८

और सिद्धोंका और शरणस्थान कौन है ॥ २२ ॥ देवता और असुर कर्मयज्ञोंसे और क्रियायोगोंसे जिनकी सेवा करते हैं, जो नित्य हैं, कर्मका फल जिनको नहीं लगता है उनको मैं कारण कहता हूँ ॥ २३ ॥ और जो स्थूल हैं सूक्ष्म हैं, उपमासे रहित हैं, इन्द्रियोंसे नहीं जाने जासकते, गुणोंसे युक्त हैं और गुणोंसे रहित भी हैं और जो स्वयं गुणोंके नियन्ता हैं उनमें माहेश्वर नामक उत्तम पद है २४ जो विश्वके ईश्वर हैं, कारणोंके गुरु हैं. लोकालोकका संहार करने वाले हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमानके कारणरूप हैं, सबके जनक हैं, सबके कारणरूप हैं, २५ जीवरूप हैं, शिवरूप हैं, प्रधान (अव्यक्त) रूप हैं विद्या और अविद्या (माया) रूप हैं, कर्म और अकर्मरूप हैं, धर्म और अधर्मरूप हैं, हे इन्द्र! उनको मैं कारण कहता हूँ २६ हे देवेन्द्र! देवदेव और सृष्टि और संहारके हेतुरूप रुद्रने अपनी ही मूर्तिरूप लिंगको भगरूप जलहरीसे चिन्हित किया है, इसको तू प्रत्यक्ष देख २७ संयोगसे उत्पन्नहुआ यह जगत्रूप लक्षण जिनसे प्रतीत होता है, उसमेंसे ही इसका कारण प्रतीत होता है इसप्रकार मेरी माताने मुझसे पहिले कहा था, हे इन्द्र! शिवसे बड़ा और कोई देवता नहीं है, अतः तेरी इच्छा हो तो तू उनकी शरण

प्रत्यक्षं ननु ते सुरेश विदितं संयोगलिंगोद्भवम्। त्रैलोक्यं सविकारनिर्गुणगणं ब्रह्मादिरेतोद्भवम्। यद्ब्रह्मेन्द्रहुताशविष्णुसहिता देवाश्च दैत्येश्वराः नान्यत्कामसहस्रकल्पितधियः शंसन्ति ईशात् परम्। तं देवं सचराचरस्य जगतो व्याख्यातवेद्योत्तमं कामार्थी वरयामि संयतमना मोक्षाय सद्यः शिवम्॥ २९ ॥ हेतुभिर्वा किमन्यैस्तैरीशः कारणकारणम्। न शुश्रुम यदन्यस्य लिंगमभ्यर्चितं सुरैः॥ २३०॥ कस्यान्यस्य सुरैः सर्वैर्लिङ्गं मुक्त्वा महेश्वरम्। अर्च्यतेऽर्चितपूर्वं वा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः॥ ३१॥ यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः। अर्चयध्वं सदा

ले २८ हे सुरेश! विकार (माया-संयोगरूप) और निर्गुण (चैतन्य) इन दोनोंके गण (समुदाय अर्थात् ईश्वर) वाला और ब्रह्मा आदि देवताओंके रेतस् वीर्य)मेंसे उत्पन्न हुआ त्रिलोक लिङ्ग और भगके संयोगसे उत्पन्न हुआ है। यह प्रत्यक्ष है और सर्वजनविदित है, अपनी बुद्धिसे सहस्रों कामनाओंकी कल्पना करनेवाले ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, विष्णुसहित देवता और दैत्यराज भी यही कहते हैं, कि-शिवसे अधिक और कोई देवता श्रेष्ठ नहीं है, सचराचर जगत्के जाने हुए उत्तम देवतारूपसे प्रसिद्ध और कल्याण करनेवाले देवतारूपसे प्रसिद्ध देवकी मैं मोक्षकी इच्छासे मनको नियममें रखकर प्रार्थना करता हूँ।२९। दूसरे-बहुतसे प्रमाण देनेकी वृथा आवश्यकता क्या है ईश्वर कारणके भी कारणरूप हैं, हमने यह कभी नहीं सुना, कि-देवताओंने किसी दूसरेके लिंगकी पूजा की हो २३० सब देवता महादेवके अतिरिक्त और किसके लिंगकी पूजा करते हैं, महादेवके अतिरिक्त और किसकी पूजा होती है अथवा पहिले होती थी? यह यदि तेरे सुननेमें आया हो तो तू मुझसे कह॥३१॥ उनके लिंगकी ब्रह्मा, विष्णु और देवताओंसहित तू भी पूजा करता है,

लिंगं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥ ३२ ॥ न पद्मांका न चक्रांका न वज्रांका यतः प्रजाः । लिंगांका च भगांका च तस्मान्माहेश्वरी प्रजाः ॥ ३३ ॥ देव्याः कारणरूपभावजनिताः सर्वा भगांकाः स्त्रियो लिंगेनापि हरस्य सर्वपुरुषाः प्रत्यक्षचिह्नीकृताः । योऽन्यत् कारणमीश्वरात् प्रवदते देव्या च यन्नांकितन्त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान् बाह्यो भवेद्व दुर्मतिः ॥ ३४ ॥ पुल्लिंगं सर्वमीशानं स्त्रीलिंगं विद्धि चाप्युमाम् । द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥ ३५ ॥ तस्माद्वरमहं कांक्षे निधनं वापि कौशिक । गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन॥३६॥काममेष वरो मेऽस्तु

अतः वह देवता सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥ पद्म ब्रह्माका शस्त्र है चक्र विष्णुका शस्त्र है और वज्र इन्द्रका शस्त्र है परन्तु इनमेंसे एकके शस्त्रके चिन्ह वाली भी प्रजा नहीं दीखती, परन्तु सारी प्रजा लिंग और भगके चिन्ह वाली ही दीखती है, इससे सब प्रजा महादेवसे उत्पन्न हुई सिद्ध होती है ॥ ३३ ॥ सब स्त्रियें देवी उमा के कारणरूप भावमेंसे उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि—सब स्त्रियें भगरूपी चिन्ह वाली हैं, सब पुरुष महादेवके लिंगके प्रत्यक्ष चिन्ह वाले हैं (अतः महादेवसे उत्पन्न हुए हैं) जो ईश्वरके अतिरिक्त दूसरेको कारण बताता है और स्त्रियोंको देवी उमाके अतिरिक्त और किसीके चिन्हसे अंकित बताता है उस पुरुषको स्थावरजङ्गमरूप तीनों लोकोंसे बाह्य और दुर्बुद्धि समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ जिसमें पुरुषका चिन्ह है, उसको ईशानरूप-शिवरूप समझना चाहिये और जिनमें स्त्रियोंका चिन्ह है उनको उमादेवीरूप समझना चाहिये, क्योंकि—महादेव और पार्वती इन दो मूर्त्तियोंसे यह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् व्याप्त है ॥ ३५ ॥ इस लिये हे कुशिकवंशोत्पन्न इन्द्र ! उनसे मेरा मरण होजाय तब भी अच्छा है, हे बलदैत्यको मारनेवाले इन्द्र ! तेरी इच्छामें

शापो वाथ महेश्वरात् । न चान्यां देवतां कांक्षे सर्वकामफलान्यपि ॥३७॥ एवमुक्त्वा तु देवेन्द्रं दुःखादाकुलितेन्द्रियः । न प्रसीदति मे देवः किमेतदिति चिंतयन् ॥ ३८ ॥ अथापश्यं क्षणेनैव तमेवैरावतं पुनः । हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालरजतप्रभम् ॥ ३९ ॥ वृषरूपधरं साक्षात् क्षीरोदमिव सागरम् । कृष्णपुच्छं महाकायं मधुपिंगललोचनम् ॥२४०॥ वज्रसारमयैः शृङ्गैर्निष्टप्तकनकप्रभैः । सुतीक्ष्णैर्मृदुरक्ताग्रैरुत्किरन्तमिवावनिम् ॥ ४१ ॥ जाम्बूनदेन दाम्ना च सर्वतः समलंकृतम् । सुवक्त्रखुरनासं च सुकर्णं सुकटीतटम् ॥ ४२ ॥ सुपार्श्वं विपुलस्कन्धं सुरूपं चारुदर्शनम् । ककुदं तस्य चाभाति स्कन्धमापूर्य धिष्ठितम् ॥ ४३ ॥ तुषारगिरिकूटाभं

आवे तो तू चला जा और तेरी इच्छा हो तो खड़ा रह ।२३६। महेश्वरसे ही मैं वर या शाप पाना चाहता हूँ, मैं सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाले किसी भी देवताको नहीं चाहता ३७ इस प्रकार इन्द्रसे कह कर मैंने यह विचारा, कि-शंकर मुझ पर प्रसन्न क्यों नहीं होते हैं; इस प्रकार विचारते २ दुःखसे मेरी इन्द्रियें व्याकुल होगई ॥ ३८ ॥ इतनेमें ही मैंने उस ऐरावत हाथीको हंस, कुन्द, और चन्द्रमाकी समान श्वेतकमल और चाँदीकी प्रभाकी समान कान्ति वाले वृषका रूप धारण करते हुए देखा, उसकी पूँछ काले रङ्गकी थी, शरीर बड़ा था और नेत्र मधुकी समान पीत वर्ण थे ॥ ३९-२४० ॥ वह पत्थरकी समान दृढ़, तपे हुए सोनेकी समान प्रभा वाले, अग्रभागमें हलके लाल वर्ण वाले सींगसे पृथ्वीको कुरेद रहा था ॥ ४१ ॥ उसका सारा शरीर-सुवर्णकी मेखलाओंसे सज रहा था उसका मुख, खुरी और नासिका सुन्दर थी, कान मनोहर थे और कमर भी सुन्दर थी ॥ ४२ ॥ उसके दोनों खम्भे रमणीय थे, कन्धे विशाल थे, स्वरूप सुन्दर तथा दर्शन मनोहर था,

सिताभ्रशिखरोपमम् । तमास्थितश्च भगवान् देवदेवः सहोमया ॥ ४४ ॥ अशोभत महादेवः पौर्णमास्यामिवोडुराट् । तस्य तेजोभवो वन्हिः समेघः स्तनयित्नुमाम् ॥ ४५ ॥ सहस्रमिव सूर्याणां सर्वमापूर्य धिष्ठितः । ईश्वरः सुमहातेजाः संवर्त्तक इवानलः ॥ ४६॥ युगान्ते सर्वभूतानां दिधक्षुरिव चोद्यतः । तेजसा तु तदा व्याप्तं दुर्निरीक्ष्यं समन्ततः ॥ ४७ ॥ पुनरुद्विग्नहृदयः किमेतदिति चिन्तयम् । मुहूर्तमिव तत्तेजो व्याप्य सर्वा दिशो दश ॥ ४८ ॥ प्रशान्तं दिक्षु सर्वासु देवदेवस्य मायया । अथापश्यं स्थितं स्थाणुं भगवन्तं महेश्वरम् ॥ ४९ ॥ नीलकण्ठम्महात्मानमसक्तं तेजसां निधिम् । अष्टादशभुजं स्थाणुं सर्वाभरण-

उसका ककुद सारे कन्धे पर फैल कर शोभा देरहा था ॥४३॥ वह हिमालय अथवा श्वेतपर्वतके शिखरकी समान दीखता था, ऐसे वृषभ पर भगवान् शिव उमाके साथ बैठे हुए थे ॥४४॥ उस समय महादेव पूर्णिमाके दिन उदित हुए चन्द्रमाकी समान शोभा पारहे थे, उनके तेजमेंसे उत्पन्न हुआ अग्नि गरजते हुए मेघमें चमकती हुई बिजलीके समान था४५ वह सहस्रों सूर्यकी समान सर्वत्र व्याप्त होगया था और महातेजस्वी शिव संवर्तक नामक अग्निकी समान दीखते थे ॥ ४६ ॥ तथा प्रलयकालमें सब प्राणियोंको भस्म करनेकी इच्छा वालेसे शोभा पारहे थे, उस समय शिवके तेजसे सब दिशाएँ भर गई थीं और चारों ओर कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ४७ तब मैं (फिर) मनमें उद्विग्न होकर विचार करने लगा, कि-"यह क्या ?" इतनेमें ही शिवका तेज दशों दिशाओंमें व्याप्त होगया ॥४८॥ और तुरत ही महादेवकी कृपासे सब दिशाओंमें शान्ति फैल गई, तब मैंने कूटस्थ, नीलकण्ठ, महात्मा, विषयोंसे दूर रहने वाले, तेजोनिधि, अठारह भुजा वाले, स्थाणु और सब प्रकार

भूषितम् ॥ २५० ॥ शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमाल्यानुलेपनम् । शुक्लध्वजमनाधृष्यं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ५१ ॥ गायद्भिर्नृत्यमानैश्च वादयद्भिश्च सर्वशः । वृतं पार्श्वचरैर्दिव्यैरात्मतुल्यपराक्रमैः ॥ ५२ ॥ बालेन्दुमुकुटं पाण्डुं शरच्चन्द्रमिवोदितम् । त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतं त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २५३ ॥ अशोभतास्य देवस्य माला गात्रेसितप्रभे । जातरूपमयैः पद्मैर्ग्रथिता रत्नभूषिता ॥५४॥ मूर्त्तिमन्ति तथास्त्राणि सर्वतेजोमयानि च । मया दृष्टानि गोविन्द भवस्यामिततेजसः ॥ ५५ ॥ इन्द्रायुधसवर्णाभं धनुस्तस्य महात्मनः।पिनाकमिति विख्यातमभवत्पन्नगो महान्५६ सप्तशीर्षो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो विषोल्बणः । ज्यावेष्टितमहाग्रीवः स्थितः पुरुषविग्रहः ॥ ५७ ॥ शरश्च सूर्यसंकाशः कालानलसमद्युतिः । एतदस्त्रं महाघोरं दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ ५८ ॥

के आभूषणोंसे सजे हुए, श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला पहिरने वाले, चन्दनचर्चित, श्वेत वर्णकी ध्वजा वाले, श्वेत यज्ञोपवीतको धारण करने वाले और अपनी समान पराक्रम करने वाले गाते, बजाते और नाचते हुए दिव्य पार्श्वचरोंसे चारों ओरसे घिरे हुए, श्वेत बालचन्द्ररूप मुकुटको धारण करने वाले, उदय होते हुए शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी समान दीखते हुए, तीनों नेत्रोंसे उदय होते हुए तीन सूर्योंकी समान शोभायमान, गौर शरीर पर सुवर्णके कमलोंसे गुँथी हुई और रत्नोंसे जड़ी हुई मालासे शोभायमान महादेवको, (वृषभ पर) विराजमान देखा ॥ ४९-५४ ॥ हे गोविन्द ! मैंने अपार तेज वाले शिवके जो अस्त्र देखे, वे सब मूर्तिमान् थे और सब प्रकारके तेजसे तेजस्वी थे ॥ ५५ ॥ महात्मा शिवका धनुष इन्द्रधनुषकी समान वर्ण वाला है, और वह पिनाक नामसे प्रसिद्ध है ॥ २५६ ॥ वह एक बड़े भारी सर्पकी समान था,

अद्वितीयमनिर्देश्यं सर्वभूतभयावहम् । सस्फुलिंगं महाकायं विसृजन्तमिवानलम् ॥ ५९ ॥ एकपादं महादंष्ट्रं सहस्रशिरसोदरम् । सहस्रभुजजिह्वाक्षमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥२६० ॥ ब्राह्मान् नारायणाच्चैन्द्रादाग्नेयादपि वारुणात् । यद्विशिष्टं महाबाहो सर्वशस्त्रविघातनम् ॥ ६१ ॥ येन तत्त्रिपुरं दग्ध्वा क्षणाद्भस्मीकृतं पुरा । शरेणैकेन गोविन्द महादेवेन लीलया ॥ ६२ ॥ निर्दहेत च यत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् । महेश्वरभुजोत्सृष्टं निमेषार्धान्न संशयः ॥ ६३ ॥ नावध्यो यस्य लोकेऽस्मिन् ब्रह्मविष्णुसुरेष्वपि ।

उसके सात मस्तक थे, वह महाकाय था, उसके दाँत तेज थे, उसका विष मारक था, वह गलेमें मत्यश्चा डाले हुए था और पुरुषके शरीरको धारण करके खड़ा हुआ था॥५७॥ महादेवका पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र महाभयंकर था, सूर्य और संवर्तक अग्निकी समान कान्तिवाला था ॥ ५८ ॥ यह कहा जासकता है, कि-उसके समान और कोई भी अस्त्र नहीं है, वह सब प्राणियोंको भय देने वाला, वड़ेभारी शरीर वाला, चिनगारियोंसे युक्त अग्निको उगलता हुआसा है ॥ ५९ ॥ वह एक चरण बड़ी २ डाढ़ें, सहस्रों उदर, सहस्रों भुजा, सहस्रों जिव्हा और सहस्रों नेत्र वाला था और अग्निको उगलता हुआसा दीखता है ॥२६०॥ हे महाभुज कृष्ण ! वह अस्त्र ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र ऐन्द्रास्त्र, आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्रसे भी श्रेष्ठ है और सब प्रकार के शस्त्रोंका नाश करने वाला है ॥६१॥ हे गोविंद! महादेवजीने पहिले इस अकेले अस्त्रसे एक ही क्षणमें त्रिपुरासुरको क्रीड़ा करते २ भस्म कर डाला था ॥ ६२ ॥ महेश्वरकी भुजाओंमेंसे छूटा हुआ यह बाण आधे निमेषमें ही इस स्थावरजंगमरूप सम्पूर्ण जगत्को निःसन्देह भस्म कर सकता है ॥ ६३ ॥ इस लोकमें ब्रह्मा, विष्णु अथवा और भी कोई ऐसा देवता नहीं है, जो इस

तदहं दृष्टवांस्तत्र आश्चर्यमिदमुत्तमम् ॥६४॥ गुह्यमस्त्रवरं नान्य त्तत्तुल्यमधिकं हि वा । यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः ॥६५॥ दारयेद्यु यां महीं कृत्स्नां शोषयेद्वा महोदधिम् । संहरेद्वा जगत्कृत्स्नं विसृष्टं शूलपाणिना ॥ ६६ ॥ यौवनाश्वो हतो येन मांधाता सबलः पुरा । चक्रवर्ती महातेजास्त्रिलोक-विजयी नृपः ॥ ६७ ॥ महाबलो महावीर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः । करस्थेनैव गोविन्द लवणस्येह रक्षसः ॥ ६८ ॥ तच्छूलमति-तीक्ष्णाग्रं सुभीमं लोमहर्षणम् । त्रिशिखां भृकुटीं कृत्वा तर्जमा-नमिव स्थितम् ॥ ६९ ॥ विधूमं सार्चिषं कृष्णं कालसूर्यमिवो-दितम् । सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ २७० ॥

बाणसे अवध्य हो, मैंने उसको तहाँ शिवके हाथमें देखा था, यह एक उत्तम आश्चर्य था ॥ ६४ ॥ और शूलधारी शंकरका शूल नामक एक शस्त्र सब लोकोंमें प्रसिद्ध है, वह एक गुह्य अस्त्र है और अस्त्रोंमें श्रेष्ठ है, क्योंकि तैसा या उससे अधिक बली और कोई शस्त्र नहीं है॥६५॥ शूलपाणि यदि उस शूलको छोड़े तो वह सारी पृथ्वीको और आकाशको विदीर्ण कर सकता है समुद्रको सोख सकता है और अखिल विश्वका भी संहार कर सकता है६६ इस शूलने पहिले चक्रवर्ती,महातेजस्वी,तीनों लोकोंको जीतने वाले युवनाश्वके,पुत्र राजा मांधाताका सेना सहित संहारकरडालाथा६७ हे गोविंद ! लवणासुरके हाथमें स्थित इस त्रिशूलने महाबली और महावीर्यवान् इन्द्रकी समान पराक्रमी मान्धाताका नाश किया था ॥ ६८ ॥ इस शूलकी अनी बहुत तेज है, यह बड़ा भयंकर है, रोम खड़े करने वाला है और तीनों नोकरूप भ्रुकुटि बना कर सबका तिरस्कार करता हुआसा (शिवके हाथमें) था ॥ ६९ ॥ वह धूमरहित अग्निकी समान था, कृष्णवर्णका, उदय होते हुए कालसूर्यकी समान था; वह पाशधारी यमराजकी

दृष्टवानस्मि गोविन्द तदस्त्रं रुद्रसन्निधौ। परशुस्तीक्ष्णधारश्च दत्तो रामस्य यः पुरा ॥ ७१ ॥ महादेवेन तुष्टेन क्षत्रियाणां क्षयंकरः। कार्त्तवीर्यो हतो येन चक्रवर्ती महामृधे ॥ ७२ ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथ्वी येन निःक्षत्रिया कृता। जामदग्न्येन गोविंद रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ७३ ॥ दीप्तधारास्तु रौद्रास्यः सर्पकण्ठाग्रधिष्ठितः। अभवच्छूलिनोऽभ्याशे दीप्तवन्हिशतोपमः ॥ ७४ ॥ असङ्ख्येयानि चास्त्राणि तस्य दिव्यानि धीमतः। प्राधान्यतो मयैतानि कीर्त्तितानि तवानघ ॥७५॥ सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः। दिव्यं विमानमास्थाय हंसयुक्तं मनोजवम् ।७६। वामपार्श्वगतश्चापि तथा नारायणः स्थितः। वैनतेयं समारुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७७ ॥ स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः

समान हाथमें सर्प लिये हुए था॥ ७०॥ और हे गोविंद ! मैंने रुद्रके पास परशु नामक एक दूसरा अस्त्र भी देखा था, उसकी धार तेज थी, शिवने प्रसन्न होकर इसको क्षत्रियोंका क्षय करनेवाले परशुरामको दिया था तब परशुरामने युद्धमें चक्रवर्ती कार्तवीर्यका नाश कर डाला था ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे गोविंद ! जमदग्निके पुत्र उत्तम कर्म करनेवाले परशुरामने इक्कीस वार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था ॥ ७३ ॥ शूलधारी शंकरके पास जो परशु था, उसकी धार तेज थी, उसका रूप महा भयंकर था, सर्परूप कण्ठवाले शिवके कण्ठाग्र पर वह रक्खा हुआ था और सहस्रों प्रदीप्त अग्नियोंकी समान झलझला रहा था ॥ ७४ ॥ बुद्धिमान् शंकरके पास और भी बहुतसे दिव्य अस्त्र थे, हे कृष्ण ! मैंने तो मुख्य २ अस्त्रोंका वर्णन किया है ७५ शिवके दाहिनी ओर लोकोंके पितामह ब्रह्मा हँसोंसे जुतेहुए और मनकी समान वेगवाले दिव्य विमानमें बैठे थे ॥ ७६ ॥ उनके दाहिने पार्श्वपर शङ्ख, चक्र और गदाको धारणकर गरुड़के ऊपर

समीपतः । शक्तिघण्टे समादाय द्वितीय इव पावकः ॥ ७८ ॥ पुरस्ताच्चैव देवस्य नन्दि पश्चाम्यवस्थितम् । शूलं विष्टभ्य तिष्ठन्तं द्वितीयमिव शंकरम् ॥ ७९ ॥ स्वायम्भुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा । शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समभ्ययुः ८० सर्वभूतगणाश्चैव मातरो विविधाः स्थिताः । तेऽभिवाद्य महात्मानं परिवार्य समन्ततः ॥ ८१ ॥ अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं सुरास्तदा । ब्रह्मा भवं तदास्तौषीद्रथन्तरमुदीरयन् ॥ ८२ ॥ ज्येष्ठं साम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा ॥ ८३ ॥ गृणन् ब्रह्म परं शक्रः शतरुद्रियमुत्तमम् । ब्रह्मा नारायणश्चैव देवराजश्च कौशिकः ॥ ८४ ॥ अशोभन्त महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाग्नयः । तेषां मध्यगतो देवो रराज भगवाञ्छिवः ॥ ८५ ॥ शरदभ्रविनिर्मुक्तः परिधिस्थ इवांशुमान् । अयुतानि च चन्द्रार्कानपश्यं दिवि

चढ़कर नारायण खड़े हुए थे ॥ ७७ ॥ स्वामी कार्तिकेय मयूर पर बैठकर हाथमें शक्ति और घण्टेको लेकर पार्वतीके समीप खड़े थे ॥ ७८ ॥ शंकरके सामने दूसरे शंकरकी समान नन्दी शूलको टेककर खड़े हुए थे ॥७९॥ स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि ऋषि, इन्द्र आदि देवता ये सब तहाँ आये थे ॥ ८० ॥ और सब भूतगण, अनेक प्रकारकी मातृकायें भी महात्मा शंकरको प्रणामकर उनके आसपास खड़ी थीं ॥८१॥ उस समय देवता अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे महादेवकी स्तुति कररहे थे, ब्रह्माजी रथंतर नामक सामका गानकर भवकी स्तुति कररहे थे ॥ ८२ ॥ नारायण ज्येष्ठ सामका गानकरके देवेशकी स्तुति कररहे थे ८३ इन्द्र उत्तम शतरुद्रिय स्तोत्रसे परब्रह्मकी स्तुति कर रहे थे, उस समय ब्रह्मा, नारायण और कुशिकवंशमें उत्पन्न हुआ इन्द्र, ये तीनों महात्मा तीन अग्नियोंकी समान शोभायमान लगते थे और उनके मध्यमें विराजमान शिव शरद ऋतुके बादलोंसे छूटे हुए

केशव ॥ ८६ ॥ ततोऽहमस्तुवं देवं विश्वस्य जगतः पतिम् । उपमन्युरुवाच । नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः ॥ ८७ ॥ शक्ररूपाय शक्राय शक्रवेषधराय च । नमस्ते वज्रहस्ताय पिङ्गलायारुणाय च ॥ २८८ ॥ पिनाकपाणये नित्यं शङ्खशूलधराय च । नमस्ते कृष्णवासाय कृष्णकुञ्चितमूर्धजे ॥ २८९ ॥ कृष्णाजिनोत्तरीयाय कृष्णाष्टमिरताय च । शुक्लवर्णाय शुक्लाय शुक्लाम्बरधराय च ॥ २९० ॥ शुक्लभस्मावलिप्ताय शुक्लकर्मरताय च । नमोऽस्तु रक्तवर्णाय रक्ताम्बरधराय च ॥९१॥ रक्तध्वजपताकाय रक्तस्रगनुलेपिने । नमोऽस्तु पीतवर्णाय पीताम्बर-

---

और परिधियें विराजमान सूर्यकी समान शोभा पा रहे थे, हे केशव उस समय मैंने आकाशमें सहस्र चन्द्रमा और सूर्य देखे ८४-८६ फिर मैं सम्पूर्ण विश्वके स्वामी शिवकी स्तुति करने लगा, उपमन्युने कहा, कि-हे महादेव ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, हे देवाधिदेव ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, ॥ ८७ ॥ शक्ररूप, शक्र, शक्रके वेषको धारण करने वाले, हाथमें वज्र धारण करने वाले, पीले और रक्त वर्ण वालेको मैं नमस्कार करता हूँ ॥८८॥ जिनके हाथमें पिनाक है और शंख तथा शूलको धारण करने वालेको मैं नमस्कार करता हूँ, कृष्ण-वस्त्रको धारण करने वाले काले वर्णके कुञ्चित केशों वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ८९ शरीर पर कृष्ण-मृगचर्मको धारण करने वाले कृष्णाष्टमीके अधिष्ठाता देवको मैं नमस्कार करता हूँ, श्वेत वर्णवालेको श्वेतमूर्तिको और श्वेत वस्त्र धारण करने वालेको मैं प्रणाम करताहूँ९० श्वेत वर्णकी भस्मका अवगुंठन करने वाले उत्तम कर्म करने वाले, रक्त वर्ण वाले और रक्त वस्त्र पहिरने वालेको मैं प्रणाम करता हूँ ॥९१ ॥ लालवर्णकी ध्वजावाले और रक्त वर्णकी पुष्पमाला तथा चन्दनको लगानेवाले, और पीतवर्णवाले तथा पीतवर्ण वस्त्र

धराय च ॥ ६२ ॥ नमोऽस्तूच्छ्रितच्छत्राय किरीटवरधारिणे ।
अर्धहारार्धकेयूर अर्धकुण्डलकर्णिने ॥ ६३ ॥ नमः पवनवेगाय
नमो देवाय वै नमः । सुरेन्द्राय मुनीन्द्राय महेन्द्राय नमोऽस्तु ते६४
नमः पद्मार्धमालाय उत्पलैर्मिश्रिताय च । अर्धचन्दनलिप्ताय
अर्धस्रगनुलेपिने ॥ ६५ ॥ नम आदित्यवक्त्राय आदित्यनय-
नाय च । नम आदित्यवर्णाय आदित्यप्रतिमाय च ॥ ६६ ॥
नमः सोमाय सौम्याय सौम्यवक्त्रधराय च । सौम्यरूपाय मुख्याय
सौम्यदंष्ट्राविभूषणे ॥ ६७ ॥ नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्ध-
पाण्डवे । नारीनरशरीराय स्त्रीपुंसाय नमोऽस्तु ते ॥ ६८ ॥

धारण करनेवालेको मैं नमस्कार करता हूँ॥६२॥जिनके शिरपर राजछत्र रक्खाजाता है उनको, उत्तम मुकुट धारण करनेवाले, अर्ध बाजूबन्द और अर्धकुण्डल धारण करनेवालेको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६३॥ पवनकी समान वेगवालेको मैं नमस्कार करता हूँ, देवरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ, सुरोंके राजा, मुनियोंके राजा और महेन्द्ररूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६४॥ कमल की अर्धमालाको धारण करनेवाले, उत्पल कमलोंको धारण करनेवाले, अर्धभागमें चन्दनसे चर्चित, आधे पुष्पोंकी माला धारण करके शरीरको ढकनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६५ ॥ सूर्यकी समान प्रज्वलित मुखवाले, सूर्यकी समान झलझलातेहुए नेत्रोंवाले, सूर्यकी समान वर्णवाले और सूर्यकी समान तेजस्वी आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६६ ॥ सोमरूप, सौम्य, सौम्यमुखधारी, सौम्यस्वरूप, सबमें मुख्य माने जाने वाले, सुन्दर दाढ़ और सुन्दर आभूषणोंवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६७॥ श्यामवर्ण, गौरवर्ण और आधे भागमें पीत-वर्ण, आधे भागमें पाण्डुवर्ण, अर्ध भागमें नारीके तथा अर्ध भागमें पुरुषके रूपको धारण करनेवाले स्त्री और पुरुषरूप आपको मैं

नमो वृषभवाहाय गजेन्द्रगमनाय च । दुर्गमाय नमस्तुभ्यमगम्यागमनाय च ॥ ९९ ॥ नमोस्तु गणगीताय गणवृन्दरताय च । गणानुपातमार्गाय गणनित्यव्रताय च ॥ ३०० ॥ नमः श्वेताभ्रवर्णाय सन्ध्यारागप्रभाय च । अनुद्दिष्टाभिधानाय स्वरूपाय नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ नमो रक्ताग्रवासाय रक्तसूत्रधराय च । रक्तमालाविचित्राय रक्ताम्बरधराय च ॥ २ ॥ मणिभूषितमूर्द्धाय नमश्चन्द्रार्धभूषिणे । विचित्रमणिमूर्द्धाय कुसुमाष्टधराय च ॥ ३०३ ॥ नमोग्निमुखनेत्राय सहस्रशशिलोचने । अग्निरूपाय कान्ताय नमोस्तु गहनाय च ४ खचराय नमस्तुभ्यं गोचराभिरताय च । भूचराय भुवनाय शिवाय अनन्ताय च ॥४॥ नमोदिग्वाससे नित्यमधिवासमुवाससे । नमो जगन्निवासाय प्रति-

---

प्रणाम करता हूँ ॥ ९८ ॥ वृषवाहन, गजेन्द्रकी समान गतिवाले, दुःखसे प्राप्त होनेवाले, अगम्यागमनरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥९९॥ गण जिनके गीत गाते हैं,जो गणोंके समूहपर प्रीति रखनेवाले हैं,गण जिनके पीछे जाते हैं,गण जिनका नित्य अनुकरण करते हैं, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ, ३०० श्वेत शिखरकी समान वर्णवाले, सन्ध्याकालीन रक्त कान्तिवाले, अव्यक्त नामवाले स्वरूपमें ही रहनेवाले आपको मैं नमन करता हूँ ॥ १ ॥ जिनके वस्त्रका किनारा रक्तवर्ण है, रक्तसूत्रधारी, रक्तमालासे विचित्र दीखते हुए और रक्त वस्त्रको धारण करने वाले, मणिसे सजे हुए मस्तक वाले, मस्तक पर अर्धचन्द्रको धारण करने वाले, मस्तक पर विचित्र मणि और आठ पुष्पोंको धारण करने वाले, अग्निकी समान मुख तथा नेत्रों वाले, सहस्र चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल नेत्रों वाले, अग्निरूप, सुन्दर, और गहनमूर्तिरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ आकाशमें विचरने वाले, प्रत्यक्ष पर प्रीति

पत्तिसुखाय च ॥ ६ ॥ नित्यमुद्धद्धमुकुटे महाकेयूरधारिणे । सर्प-
कण्ठोरुहाराय विचित्राभरणाय च ॥ ७ ॥ नमस्त्रिनेत्रनेत्राय
सहस्रशतलोचने । स्त्रीपुंसाय नपुंसाय नमः सांख्याय योगिने८
शंयोरभिस्रवन्ताय अथर्वाय नमो नमः । नमः सर्वार्त्तिनाशाय
नमः शोकहराय च ॥ ९ ॥ नमो मेघनिनादाय बहुमायाधराय
च । बीजक्षेत्राभिपालाय स्रष्टाराय नमो नमः ॥ ३१० ॥ नमः
सुरासुरेशाय विश्वेशाय नमोः नमः । नमः पवनवेगाय नमः
पवनरूपिणे ॥ ११ ॥ नमः कांचनमालाय गिरिमालाय वै नमः ।
नमः सुरारिमालाय चण्डवे गायवे नमः ॥ १२ ॥ ब्रह्मशिरो-

रखने वाले, भूमि पर घूमने वाले, भूमिकी रक्षा करने वाले, अनन्त और शिवरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥ दिशा-रूपी वस्त्रधारी, सदा पुष्पोंकी सुगन्धिसे बसे हुए वस्त्रों वाले, जगत्के वासस्थान और ज्ञान तथा सुखरूप आपको प्रणाम है६ नित्य मुकुटधारी, बड़ेभारी शूलधारी, कण्ठमें सर्परूपी आभूषण-धारी और विचित्र आभूषणों वाले आपको नमस्कार है । ७ । त्रिनेत्र, एक लाख नेत्र वाले अर्धनारीपुरुषरूप नपुंसकमूर्तिधारी उपनिषदमें गाये हुए योगिस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥ यज्ञको पूर्ण करने वाले देवताओंके प्रसादरूप, अथर्वरूप, सब पीड़ाओंका हरण करने वाले और शोकहर आपको प्रणाम है ॥९॥ मेघकी समान शब्द करने वाले, अनेक रीतिकी माया के धारक, बीज और क्षेत्रके पालक, तथा जगत्के स्रष्टा आपको नमस्कार है ॥ ३१० ॥ देवता और असुरोंके स्वामीको प्रणाम है, विश्वके परमात्माको वारम्वार प्रणाम है, पवनवेगीको प्रणाम है पवनरूपको प्रणाम है॥११॥सुवर्णकी माला धारण करने वाले आपको नमस्कार है, पर्वत पर क्रीड़ा करने वाले आपको नमस्कार है दैत्योंके मस्तककी माला धारण करने वाले आपको नमस्कार है

पहर्त्ताय महिषघ्नाय वै नमः । नमः स्त्रीरूपधाराय यज्ञविध्वंस-
नाय च ॥ १३ ॥ नमस्त्रिपुरहर्त्ताय यज्ञविध्वंसनाय च । नमः
कामाङ्गनाशाय कालदण्डधराय च ॥१४॥ नमः स्कन्दविशाखाय
ब्रह्मदण्डाय वै नमः । नमो भवाय शर्वाय विश्वरूपाय वै नमः१५
ईशानाय भवघ्नाय नमोऽस्त्वंधकघातिने । नमो विश्वाय मायाय
चिंत्याचिन्त्याय वै नमः ॥१६॥ त्वन्नो गतिश्च श्रेष्ठश्च त्वमेव हृदयं
तथा । त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ॥१७॥आत्मा
च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यते ।, ऋषभस्त्वं पवित्राणां
योगिनां निष्कलः शिवः ॥ १८ ॥ गृहस्थस्त्वमाश्रमिणामीश्व-
राणां महेश्वरः । कुबेरः सर्वयक्षाणां क्रतूनां विष्णुरुच्यते ।१६।
पर्वतानां भवान् मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः । वसिष्ठस्त्वमृषीणां च

प्रचण्ड वेग वाले आपको नमस्कार है१२ब्रह्माका शिर काटने वाले और महिषासुरका संहार करने वाले आपको नमस्कार है, स्त्रीरूपधारी और दक्षयज्ञविध्वंसकको नमस्कार है ॥१३॥ त्रिपुरनाशक और यज्ञविध्वंसकको प्रणाम है, कामके अङ्गके नाशक कालको भी दण्ड देने वाले आपको प्रणाम है१४ स्कन्द और विशाखरूपको नमस्कार है, ब्रह्मदण्डरूपको नमस्कार है, भवको नमस्कार है, शर्व और विश्वरूपको प्रणाम है ॥ १५ ॥ ईशान, संसारके नाशक, अन्धकके नाशक, विश्वरूप, मायापति, चिन्त्य और अचिन्त्यरूप आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ आप हमारी गति हैं, श्रेष्ठ हैं, हृदयरूप हैं, सब देवताओंके ब्रह्मा हैं और रुद्रोंमें नीललोहित हैं ॥१७॥ आप सब प्राणियोंके आत्मा हैं, साङ्ख्यमें आपको पुरुष कहा है, पवित्र पुरुषोंमें आप ऋषभ हैं और योगियोंमें विभागोंसे रहित शिव हैं ॥ १८ ॥ आप तीनों आश्रमवासियोंमें गृहस्थ हैं, ईश्वरोंमें महेश्वर हैं, सब यक्षों में कुबेर हैं, क्रतुओंमें विष्णु कहलाते हैं ॥ १९ ॥ आप पर्वतोंमें

ग्रहाणां सूर्य उच्यते ॥ ३२० ॥ आरण्यानां पशूनाञ्च सिंहस्त्वं परमेश्वरः । ग्राम्याणाङ्गोवृषश्चासि भवाँल्लोकप्रपूजितः ॥२१॥ आदित्यानां भवान्विष्णुर्वसूनां चैव पावकः । पक्षिणां वैनतेयस्त्वमनन्तो भुजगेषु च ॥ २२ ॥ सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम् । सनत्कुमारो योगानां साङ्ख्यानां कपिलो ह्यसि ॥२३॥ शक्रोसि मरुतां देव पितॄणां हव्यवाडसि । ब्रह्मलोकश्च लोकानां गतीनाम्मोक्ष उच्यसे ॥ २४ ॥ क्षीरोदः सागराणाञ्च शैलानां हिमवान् गिरिः।वर्णानां ब्राह्मणश्चासि विप्राणान्दीक्षितो द्विजः२५ आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्त्ता काल एव च । यच्चान्यदपि लोके वै सर्वतेजोऽधिकं स्मृतम् ॥ २६ ॥ तत्सर्वं भगवानेव इति मे निश्चिता मतिः । नमस्ते भगवन् देव नमस्ते भक्तवत्सल ॥२७॥ योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसम्भव । प्रसीद मम भक्तस्य

मेरु, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, ऋषियोंमें वशिष्ठ और नवग्रहोंमें सूर्य कहलाते हैं, आप जङ्गली पशुओंमें सिंह हैं, परमेश्वर हैं, ग्राम्य-पशुओंमें वृषभ और लोकोंमें पूज्य हैं ॥ ३२०-३२१ ॥ आप आदित्योंमें विष्णु, वसुओंमें पावक, पक्षियोंमें गरुड़ और सर्पोंमें अनन्त हैं ॥ २२ ॥ आप वेदोंमें सामवेद यजुषोंमें शतरुद्रिय, योगियोंमें सनत्कुमार और साङ्ख्योंमें कपिल हैं ॥ २३ ॥ आप मरुतोंमें इन्द्र, पितरोंमें हव्यवाह,लोकोंमें ब्रह्मलोक और गतियोंमें मोक्ष कहलाते हैं ॥ २४ ॥ आप सागरोंमें क्षीरसागर पर्वतोंमें हिमालय, वर्णोंमें ब्राह्मण और ब्राह्मणोंमें दीक्षित ब्राह्मण हैं २५ आप ही लोकोंके आदिकर्ता संहारकर्ता और काल है इस संसार में और भी जो कुछ सबसे अधिक तेजस्वी माना जाता है हे भगवन् ! वह आप ही हैं, ऐसा मेरा निश्चित मत है हे भगवन् मैं आपको प्रणाम करता हूँ हे भक्तवत्सल!आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे योगेश्वर ! आपको नमस्कार है!विश्वको

दीनस्य कृपणस्य च ॥ २८ ॥ अनैश्वर्येण युक्तस्य गतिर्भव सनातन । यच्चापराधं कृतवानज्ञात्वा परमेश्वर ॥ २९ ॥ मद्भक्त इति देवेश तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । मोहितश्चास्मि देवेश त्वया रूप-विपर्ययात् ॥ ३३० ॥ नार्घं तेन मया दत्तं पाद्यं चापि महेश्वर । एवं स्तुत्वाहमीशानं पाद्यमर्घं च भक्तितः ॥ ३१ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयम् । ततः शीताम्बुसंयुक्ता दिव्यगन्धसमन्विता ॥३२॥ पुष्पवृष्टिः शुभा तात पपात मम मूर्धनि । दुन्दुभिश्च तदा दिव्यस्ताडितो देवकिंकरैः । ववौ च मारुतः पुण्यः शुचिगन्धसुखावहः ॥ ३३ ॥ ततः प्रीतो महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः । अब्रवीत्त्रिदशांस्तत्र हर्षयन्निव मां तदा ३४ पश्यध्वं त्रिदशाः सर्वे उपमन्योर्महात्मनः। मयि भक्तिं परां नित्यमेकभावादवस्थिताम् ॥३५॥ एवमुक्तास्तदा कृष्ण सुरास्ते शूल-

---

उत्पन्न करने वाले आपको नमस्कार है ! इस दीन और कृपण भक्त पर आप प्रसन्न हूजिये ॥ २८ ॥ हे सनातन ! मैं ऐश्वर्य-रहित हूँ,उसको आप गति (मोक्ष) दीजिये और हे परमेश्वर ! हे देवेश ! मुझसे अनजानमें जो अपराध होगए हों उनको अपना भक्त जानकर क्षमा करिये, हे देवेश ! आपने अपने रूपको बदल कर मुझे मोहमें डाल दिया था,इससे हे महेश्वर ! मैं आपको न अर्घ न देसका, न पाद्य देसका, इसप्रकार मैंने ईशान की स्तुति करके उनको भक्तिपूर्वक पाद्य और अर्घ दिया २९-३१ इसप्रकार उनसे सब कहकर मैं हाथ जोड़कर खड़ा होगया, फिर हे तात ! मेरे शिर पर शीतल जलवाले दिव्य सुगन्धित पुष्पोंकी वृष्टि होनेलगी, देवकिंकर दुदुभि बजानेलगे और पवित्र सुगन्धित, सुखदायक पवन चलनेलगा ३२-३३ फिर जिनकी ध्वजामें वृषभका चिन्ह है वह शंकर और पार्वती प्रसन्नहुए उन्होंने मुझे आनन्द देतेहुए देवताओंसे कहा, कि-॥ ३४ ॥ हे देवताओं !

पाणिना । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा वृषध्वजम् । ३६ ।
भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्पते । लभतां सर्वकामेभ्यः फलं
त्वत्तो द्विजोत्तमः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तस्ततः शर्वः सुरैर्ब्रह्मादिभि-
स्तथा । आह मां भगवानीशः प्रहसन्निव शंकरः३८भगवानुवाच।
वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि पश्य मां मुनिपुङ्गव । दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे
मया जिज्ञासितो ह्यसि ॥ ३९ ॥ अनया चैव भक्त्या ते अत्यर्थं
प्रीतिमानहम् । तस्मात् सर्वान् ददाम्यद्य कामांस्तव यथेप्सि-
तान् ॥ ३४० ॥ एवमुक्तस्य चैवाथ महादेवेन धीमता । हर्षाद-
श्रूण्यवर्त्तन्त रोमहर्षस्त्वजायत ४१ अब्रुवञ्च तदा देवं हर्षगद्ग-
दया गिरा । जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः॥४२॥
अद्य जातो ह्यहं देव सफलं जन्म चाद्य मे । सुरासुरगुरुर्देवो यत्ति-

तुम सब महात्मा उपमन्युकी मुझमें अनन्य भक्तिको देखो ॥३५॥
हे कृष्ण ! शूलपाणिने देवताओंसे इसप्रकार कहा, तब सब देवता
वृषभध्वजको प्रणाम कर कहनेलगे कि–३६ हे देवदेव हे लोक
नाथ ! हे जगत्पते ! हे भगवन् ! यह उत्तम ब्राह्मण आपसे सब
कामनाओंका फल पावे३७शिवसे ब्रह्माजीने और सब देवताओं
ने इसप्रकार कहा तब भगवान् शिव हँसते हुएसे इसप्रकार कहने
लगे ॥ ३८ ॥ भगवान्ने कहा, कि–हे वत्स मुनिपुङ्गव उपमन्यु !
मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ, तू मेरी ओरको देख ! हे विप्रर्षे !
तू मेरा दृढ़ भक्त है, मैंने तेरी परीक्षा करके देख लिया है ३९
मैं तेरी भक्तिसे तुझ पर परमप्रसन्न हुआ हूँ, अतः आज तेरी
इच्छानुसार तेरी सब कामनाओंको पूर्ण करूँगा ॥ ३४० ॥ इस
प्रकार मुझसे बुद्धिमान् महादेवने कहा तब हर्षसे मेरे नेत्रोंमें आँसू
भर आये और शरीर रोमाञ्चित होगया ॥ ४१ ॥ उस समय
मैं घुटनोंको पृथ्वीमें झुका कर वारम्वार प्रणाम करता हुआ
हर्षसे गद्गद होती हुई वाणीमें शिवसे कहने लगा, कि–।४२।

इति ममाग्रतः ४३ यं न पश्यन्ति चैवाद्धा देवा ह्यमितविक्रमम् । तमहं दृष्टवान् देवं कोऽन्यो धन्यतरो मया ४४ एवं ध्यायन्ति विद्वांसः परं तत्त्वं सनातनम् । तद्विशेषमतिव्याप्तं यदजं ज्ञानमक्षरम् ४५ स एष भगवान् देवः सर्वसत्त्वादिरव्ययः । सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानः पुरुषः परः ४६ योऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद्ब्रह्माणं लोकसम्भवम् । वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥ ४७ ॥ युगान्ते चैव संप्राप्ते रुद्रमीशोऽसृजत् प्रभुः । स रुद्रः संहरन् कृत्स्नं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ४८ ॥ कालो भूत्वा महातेजाः सम्वर्तक इवानलः । युगान्ते सर्वभूतानि ग्रसन्निव व्यवस्थितः ॥ ४६ ॥ एष देवो महादेवो जगत् सृष्ट्वा चराचरम् । कल्पान्ते चैव सर्वेषां

हे देव ! आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है, आज मेरा जन्म सफल हुआ है, देवता और दानवोंके गुरु आप मेरे सामने खड़े हैं ४३ देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते, ऐसे अपार पराक्रमी देवके मुझे साक्षात् दर्शन हुए हैं, तब मुझसे अधिक भाग्यशाली और कौन होगा ? ॥ ४४ ॥ विद्वान् भी आपका परमतत्त्वरूपसे, सनातनरूपसे, अजन्मारूपसे, ज्ञानरूपसे, अक्षररूपसे तथा अतिप्रसिद्ध बड़े भारी विद्वान् रूपसे ध्यान करते हैं ४५ वे ही भगवान् शंकर सब प्राणियोंके आदिदेवता हैं, अविकारी हैं, सब तत्वोंके विधानको जाननेवाले हैं तथा उत्तम प्रधानपुरुष हैं ॥४६॥ वह अपने दाहिने अङ्गसे लोकोंको उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजीको रचते हैं और वामपार्श्वसे लोकोंकी रक्षा करनेके लिये विष्णुको उत्पन्न करते हैं ॥ ४७ ॥ और जब जगत्का प्रलयकाल आता है तब प्रभु शंकर रुद्रको उत्पन्न करते हैं, वह रुद्र स्थावर जंगमात्मक सब जगत्का संहार करते हैं ॥ ४८ ॥ वह कालरूप बनकर महातेजस्वी संवर्तक अग्निकी समान प्रलयके समय सब प्राणियोंको ग्रस जाते हैं ॥ ४६ ॥ यह महादेव

स्मृतिमाक्षिप्य तिष्ठति ॥ ३५० ॥ सर्वगः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः । आस्ते सर्वगतो नित्यमदृश्यः सर्वदैवतैः ॥ ५१ ॥ यदि देयो वरो मह्यं यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो । भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥ ५२ ॥ अतीतानागतं चैव वर्त्तमानं च यद्विभो । जानीयामिति मे बुद्धिः प्रसादात् सुरसत्तम ॥५३॥ क्षीरोदनं च भुंजीयामक्षयं सह बान्धवैः । आश्रमे च सदास्माकं सान्निध्यं परमस्तु ते ॥५४॥ एवमुक्तः स मां प्राह भगवांल्लोकपूजितः । महेश्वरो महातेजाश्चराचरगुरुः शिवः ॥ ५५ ॥ श्रीभगवानुवाच । अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः । यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥५६॥ ऋषीणामभिगम्यश्च

स्थावर जंगमात्मक जगत्को रचते हैं और युगक्षयके अवसर पर सब प्राणियोंकी स्मृतिका नाश करडालते हैं ॥ ३५० ॥ वह सर्वत्र व्याप्त हैं, सब प्राणियोंके आत्मस्वरूप हैं, सब प्राणियोंके उत्पन्न कर्ता हैं और सर्वत्र गति हैं तब भी सब देवता उनको सदा नहीं देखसकते॥ ५१ हेप्रभो। यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो हे देव ! हे सुरेश्वर ! "आपके ऊपर मेरी सदा भक्ति रहे"॥५२॥ हे विभो ! हे सुरसत्तम! आपकी कृपासे मैं भूत,भविष्यत् और वर्तमानको जानने वाली बुद्धिको पाऊँ॥५३॥और मैं अपने भाइयोंके साथ सदा दूध भात खाता रहूँ और मेरे आश्रममें सदा आपका परमसांनिध्य रहे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार मैंने कहा; तब लोकपूजित, महेश्वर, महातेजस्वी, स्थावर और जङ्गमोंके गुरु भगवान् शिवने मुझसे कहा, ॥ ५५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-तू जरा और मरणसे रहित होजावेगा, तेरा दुःख दूर हो तू यशस्वी, तेजस्वी और दिव्यज्ञान वाला होगा ॥ ५६ ॥ और मेरे प्रसादसे तू ऐसी योग्यता वाला होजायगा, कि ऋषि तेरे पास आया करेंगे !

मत्प्रसादाद्भविष्यसि । शीलवान् गुणसम्पन्नः सर्वज्ञः प्रियदर्शनः ॥ ५७ ॥ अक्षयं यौवनं तेऽस्तु तेजश्चैवानलोपमम् । क्षीरोदः सागरश्चैव यत्र यत्रेच्छसि प्रियम् ॥५८॥ तत्र ते भविता कामं सान्निध्यं पयसो निधेः । क्षीरोदनं च भुंक्ष्व त्वममृतेन समन्वितम् ॥ ५९ ॥ बन्धुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि । अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा ॥ ३६० ॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती । सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम ॥६१॥ तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कंठां च करिष्यसि । स्मृतस्त्वया पुनर्विप्र करिष्यामि च दर्शनम् ।६२। एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः । ईशानः स वरान् दत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६३ ॥ एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना । तदवाप्तं च मे सर्वं यदुक्तं तेन धीमता ॥६४॥प्रत्यक्षं

तू शीलसम्पन्न, गुणसम्पन्न, सर्वज्ञ और सुन्दर रूप वाला होजायगा ॥ ५७ ॥ तेरा यौवन अखण्ड रहेगा तू अग्निकी समान तेजस्वी होजायगा और तू जहाँ चाहेगा तहाँ क्षीरसागर तेरे सामने आजाया करेगा और तू अमृतके साथ मिले हुए दूध भातको एक कल्प तक अपने भाइयोंके साथ खाता रहेगा फिर तू मेरे पास आवेगा, तेरे बान्धव, तेरा कुल और तेरा गोत्र अक्षय रहे ॥ ३६० ॥ और हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तेरी मुझमें अचल भक्ति रहेगी, हे द्विजोत्तम ! मैं तेरे आश्रममें सदा उपस्थित रहा करूँगा ॥ ६१ ॥ हे वत्स ! तू अपनी इच्छानुसार यहाँ रह, तुझे उत्कण्ठित होनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, हे विप्र ! जब तू मेरा स्मरण करेगा, तब तुझे मेरा दर्शन होगा ॥६२॥ करोड़ों सूर्योंकी समान कान्तिमान् भगवान् शिव इस प्रकार वरदान देकर अन्तर्हित होगए ॥ ६३ ॥ हे कृष्ण ! इस प्रकार मैंने समाधिस्थ होकर देवदेव श्रीशङ्करके दर्शन किये

चैव ते कृष्ण पश्य सिद्धान् व्यवस्थितान् । ऋषीन् विद्याधरान् यक्षान् गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ६५ ॥ पश्य वृक्षलतागुल्मान् सर्व-पुष्पफलप्रदान् । सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान् सुखपत्रान् सुगन्धिनः ६६ सर्वमेतन्महाबाहो दिव्यभावसमन्वितम् । प्रसादाद्देवदेवस्य ईश्वरस्य महात्मनः ६७ वासुदेव उवाच । एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यक्षमिव दर्शनम् । विस्मयं परमं गत्वा अब्रुवन्तं महामुनिम् ।.६८॥ धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वदन्योऽस्ति पुण्यकृत् । यस्य देवाधिदेवस्ते सान्निध्यं कुरुतेऽश्रमे ६९ अपि तावन्ममाप्येवं दद्यात् स भगवाञ्छिवः । दर्शनं मुनिशार्दूल प्रसादं चापि शंकरः ।३७०। उपमन्युरुवाच । द्रक्ष्यसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः । अचि-

हैं और बुद्धिमान् शङ्करने जो कुछ कहा था वह सब मुझे मिला है ॥ ६४ ॥ हे कृष्ण ! इन सिद्ध, पुरुष, ऋषि, विद्याधर, यक्ष गन्धर्व तथा अप्सराओंको कार्य करते हुए तुम प्रत्यक्ष देखो ६५ इन सब प्रकारके पुष्प और फलोंको देने वाले वृक्ष, गुल्म और लताओंको आप देखिये, इन पर सब ऋतुओंके पुष्प आते हैं, इनके पत्ते सुन्दर और सुगन्धित हैं, हे महाभुज कृष्ण ! यह सब दिव्यभावसम्पन्न दृश्य देवदेव महात्मा ईशानके प्रसादका फल है ॥ ६६-६७ ॥ वासुदेव बोले कि-उनकी इस बातको सुन कर जानो मैं सब प्रत्यक्ष देख रहा हूँ इस प्रकार परम-विस्मित हुआ और उन महामुनिसे कहने लगा, कि-॥ ६८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! आप धन्य हैं; आपसे अधिक पुण्यशाली और कौन है, क्योंकि-देवताओंके भी महादेव आपके आश्रममें निवास करते हैं । ६९ । हे मुनिसिंह ! (क्या) भगवान् शङ्कर मुझे भी इसी प्रकार दर्शन देंगे ? (क्या) मुझ पर भी कृपा करेंगे ३७० उपमन्युने कहा, कि-हे निर्दोष पुण्डरीकाक्ष ! मैंने जिस प्रकार महादेवजीके दर्शन किये हैं, थोड़े ही समयमें उसी

रेणैव कालेन यथादृष्टो मयानघ ॥ ७१ ॥ चक्षुषा चैव दिव्येन पश्याम्यमितविक्रमम् । षष्ठे मासि महादेवं द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम ७२ षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात् । सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥७३॥अतीतानागतं चैव वर्त्तमानं च नित्यशः। विदितं मे महाबाहो प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ ७४ ॥ एतान् सहस्रशश्चान्यान् समनुध्यातवान् हरः । कस्मात् प्रसादं भगवान्न कुर्यात्तव माधव ॥७५॥ त्वादृशेन हि देवानां श्लाघनीयः समागमः । ब्रह्मण्येनानृशंसेन श्रद्दधानेन चाप्युत ॥ ७६ ॥ जप्यं तु ते प्रदास्यामि येन द्रक्ष्यसि शंकरम् । श्रीकृष्ण उवाच । अब्रुवन्तमहं ब्रह्मन् त्वत्प्रसादान्महामुने ॥७७॥ द्रक्ष्ये दितिजसंघानां मर्दनं त्रिदशेश्वरम् । एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रितां कथाम्७८

प्रकार आपको भी महादेवजीका दर्शन मिलेगा ७१ हे पुरुषोत्तम ! मैं दिव्य नेत्रसे अपार पराक्रमी महादेवजीके दर्शन कर रहा हूँ और तुमको भी आजसे छठे महीने महादेवजीके दर्शन होंगे ॥७२॥ हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण ! तुमको सपत्नीक महादेवजीसे सोलह और आठ वर मिलेंगे ! यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ७३ ॥ हे महाभुज कृष्ण ! नित्य और बुद्धिमान् शिवके प्रसादसे भूत, भविष्य और वर्तमान कालका मुझे ज्ञान रहता है७४ हे माधव! हरने जब यहाँ दूसरे सहस्रों मनुष्यों पर अनुग्रह किया है तब वह भगवान् शिव आपके ऊपर अनुग्रह क्यों न करेंगे ७५ क्योंकि-आप ब्राह्मणोंके रक्षक, दयालु और श्रद्धावान् हैं ऐसे पुरुषोंके साथ देवताओंका समागम होना श्लाघनीय समझा जाता है ॥ ७६ ॥ मैं आपको शिवका मन्त्र दूँगा, उसको जपनेसे आप शिवका दर्शन पावेंगे. श्रीकृष्णने कहा; कि-तदनन्तर मैंने उनसे कहा. कि-हे ब्राह्मण ! हे महामुने ! आपकी कृपासे (ही) मुझे दितिके पुत्रोंकी टोलीका संहार करनेवाले देवेश्वरके दर्शन

दिनान्यष्टौ ततो जग्मुर्मुहूर्तमिव भारत । दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथा विधि ॥ ७९ ॥ दण्डी मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखली कृतः । मासमेकं फलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः॥३८०॥ तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं चानिलाशनः । एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः ॥ ८१ ॥ तेजःसूर्यसहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत । तस्य मध्यगतं चापि तेजसः पाण्डुनन्दनः ॥ ८२ ॥ इन्द्रायुधपिनद्धांगं विद्युन्मालागवाक्षकम् । नीलशैलचयप्रख्यं बलाकाभूषिताम्बरम् ॥८३॥ तत्र स्थितश्च भगवान् देव्या सह महाद्युतिः।तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भार्यया ॥८४॥ रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः ।सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा८५

होंगे, हे भारत ! इसप्रकार महादेवजीकी कथा कहते २ उनको आठदिन एक मुहूर्तकी समान वीतगए आठवें दिन उन महात्माने मुझे विधि विधानसे दीक्षा दी॥७७-७९॥तब मैंने दण्ड धारण किया, शिरका मुण्डन करवाया कुश धारण किये शरीर पर वल्कल वस्त्र पहिरे, घी मला और कटिमेखला धारणकी,इसप्रकार दीक्षा लेकर मैंने एक मासतक फलाहार, किया, फिर दूसरे महीने केवल जल पीकर रहा और तीसरे, चौथे तथा पाँचवे महीने केवल वायु पीकर ही रहा और दोनों भुजाएँ ऊपरको उठा कर एक पैरसे खड़ा रहा ॥ ३८० ॥ ८१ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय मैंने आकाशमें सहस्रों सूर्योंके तेजके दर्शन किये हे पाण्डुपुत्र ! उस तेजके मध्यभागमें एक (और) तेज देखनेमें आया ।८२। वह इन्द्रधनुषोंसे भरपूर था, विजलियोंकी लडी और अग्निरूपी नेत्र वाला था और श्यामवर्णके पर्वतोंकी श्रेणिसा दीख रहा था और वगलियोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान दीखता था ।८३॥ उसमें महाकन्तिमान् भगवान् देवीके साथ विराजमान थे, तप, तेज, कान्ति,प्रकाश तथा भार्या उमाके साथ

संहृष्टरोमा कौन्तेय विस्मयोत्फुल्ललोचनः । अपश्यं देवसंघानां गतिमार्त्तिहरं हरम् ॥८६॥ किरीटिनं गदिनं शूलपाणिं व्याघ्राजिनं जटिलं दण्डपाणिम् । पिनाकिनं वज्रिणं तीक्ष्णदंष्ट्रं शुभांगदं व्यालयज्ञोपवीतम् ॥ ८७ ॥ दिव्यां मालामुरसानेकवर्णां समुद्वहन्तं गुल्फदेशावलम्बाम् । चन्द्रं यथा परिविष्टं ससन्ध्यं वर्षात्यये तद्वदपश्यमेनम् ॥ ८८ ॥ प्रमथानां गणैश्चैव समन्तात्परिवारितम् । शरदीव सुदुष्प्रेक्ष्यं परिविष्टं दिवाकरम् ॥८९॥ एकादश शतान्येवं रुद्राणां वृषवाहनम् । अस्तुवं नियतात्मानं कर्मभिः शुभकर्मिणम् ॥१९०॥ आदित्या वसवः साध्या विश्वे-

भगवान् महेश्वर तहाँ दिप रहे थे, वह मेघमण्डलमें चन्द्रमाके साथ निकलते हुए सूर्यकी समान शोभा पारहे थे ॥८४-८५॥ हे केशव ! उस समय मेरे रोम २ में हर्ष भर गया, विस्मयसे मेरे नेत्र प्रफुल्लित होगए इस प्रकार मैंने देवताओंके समुदायकी गतिरूप तथा उनकी पीड़ाको हरने वाले हरके दर्शन किये८६ शिवके मस्तक पर मुकुट था, हाथमें गदा और शूल थे, शरीर पर बाघाम्बर पड़ा हुआ था और मस्तक पर जटायें थीं हाथमें दण्ड, पिनाक और वज्र था, उनकी डाढें तीक्ष्ण थीं, वह सुन्दर बाजूबन्द पहर रहे थे, सर्पोंका यज्ञोपवीत पहर रहे थे ॥८७॥ वे घुटनों तक लटकती हुई अनेक वर्णोंकी दिव्य मालाओंको अपने वक्षःस्थल पर धारण कर रहे थे, वर्षा ऋतुमें सन्ध्याके समय मण्डलमें विराजमान चन्द्रमाकी समान मुझे शिवके दर्शन हुए ॥ ८८ ॥ नानाप्रकारके प्रमथ नामक गणोंसे चारों ओरसे घिरे हुए शिव शरद ऋतुमें मण्डलमें स्थित सूर्य जैसे, दुष्प्रेक्ष्य होते हैं, इसी प्रकार दुष्प्रेक्ष्य (कठिनतासे देखने योग्य) होरहे थे।॥८९॥ अपनी आत्माको नियममें रखने वाला और अपने कर्मोंसे शुभकर्म करने वाला बना हुआ वृषभ जिनका वाहन

देवास्तथाश्विनौ ।विश्वाभिः स्तुतिभिर्देवं विश्वदेवं समस्तुवन्९१
शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ । ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके ॥ ९२ ॥ योगीश्वराः सुबहवो योगदं पितरं गुरुम् । ब्रह्मर्षयश्च ससुतास्तथा देवर्षयश्च वै ॥९३॥ पृथिवी चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा । मासार्धमासा ऋतवो रात्रिः सम्वत्सराः क्षणाः॥९४॥मुहूर्त्ताश्च निमेषाश्च तथैव युगपर्ययाः। दिव्या राजन्नमस्यन्ति विद्याः सत्वविदस्तथा ॥ ९५ ॥ सनत्कुमारो देवाश्च इतिहासास्तथैव च । मरीचिरंगिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥९६॥ मनवः सप्तसोमश्च अथर्वा सबृहस्पतिः। भृगुर्दक्षः कश्यपश्च वसिष्ठः काश्य एव च ॥ ९७ ॥ छन्दांसि दीक्षा यज्ञाश्च दक्षिणाः पावको हविः । यज्ञोपगानि द्रव्याणि

है उन शिवकी ग्यारह सौ रुद्र स्तुति कर रहे थे ॥ ३९० ॥ उस समय आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेवता और अश्विनीकुमार उन विवेश्वरकी अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे ९१ अदितिके पुत्र भगवान् इन्द्र, विष्णु और ब्रह्मा शिवके पास रथन्तर सामका गान कर रहे थे ॥ ९२ ॥ बहुतसे योगेश्वर, ब्रह्मर्षि और देवर्षि अपने पुत्रोंके साथ योगका ज्ञान देने वाले पिता और गुरुरूप शिवकी स्तुति कर रहे थे ॥ ९३ ॥ पृथ्वी, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, ग्रह, महीने, पक्ष, ऋतुएँ, रात्रियें, सम्वत्सर और क्षण, मुहूर्त, निमेषयुगके लौट फेर, दिव्य विद्याएँ तथा तत्त्ववेत्ता ऋषि हे राजन्! (योगदाता पिता शिवको) नमस्कार कर रहे थे ॥९४ ॥ ९५॥ सनत्कुमार, देव, इतिहास, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, सात मनु, सोम, अथर्व, बृहस्पति, भृगु, दक्ष, कश्यप, वसिष्ठ और काश्य, छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणायें, पावक, हवि, और हे युधिष्ठिर! यज्ञकी सब मूर्तिमान् सामग्रियें, सब प्रजापाल, नदियोंके समुदाय

मूर्त्तिमन्ति युधिष्ठिरः ॥ ६८ ॥ प्रजानां पालकाः सर्वे सरितः
पन्नगा नगाः। देवानां मातरः सर्वा देवपत्न्यः सकन्यकाः ६६
सहस्राणि मुनीनां च अयुतान्यर्बुदानि च । नमस्यन्ति प्रभुं
शान्तं पर्वताः सागरा दिशः ॥४००॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीत-
वादित्रकोविदाः । दिव्यतालेषु गायन्तः स्तुवन्ति भवमद्भुतम् १
विद्याधरा दानवाश्च गुह्यका राक्षसास्तथा । सर्वाणि चैव भूतानि
स्थावराणि चराणि च । नमस्यन्ति महाराज वाङ्मनःकर्मभि-
र्विभुम् ॥ २ ॥ पुरस्तोत्स्थितः शर्वो ममासीत्त्रिदशेश्वरः। पुर-
स्ताद्धिष्ठितं दृष्ट्वा ममेशानं च भारत ॥ ३ ॥ सप्रजापतिशक्रान्तं
जगन्मामभ्युदैक्षत । ईक्षितुं तु महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा ४
ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च । त्वया ह्याराधितश्चाहं
शतशोथ सहस्रशः ॥५॥ त्वत्समो नास्ति मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु

सर्प, नाग, सब देवमातृकाएँ, सब देवपत्नियें, सब देवकन्याएँ, सहस्रों मुनि और लाखों अर्बुद मेघ और पर्वत, सागर और दिशाएँ शान्त प्रभुको नमस्कार कररहीं थी ॥३६६-४००॥ गीत गाने और बाजे बजानेमें चतुर गन्धर्व और अप्सराएँ ताल देकर गानेलगे और अद्भुत (स्वरूपवाले) शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ विद्याधर, दानव, गुह्यक, राक्षस, सकल स्थावर और जंगमात्मक प्राणी हे महाराज! मन, वाणी और शरीरसे व्यापक शंकरको नमस्कार कररहे थे ॥२॥ और देवेश्वर शर्व मेरे सामने खड़े थे, हे भारत! मेरे सामने शंकरको खड़ेहुए देखकर प्रजापतिसे लेकर इन्द्र तक सब जगत् मेरी ओर देखने लगा, परन्तु उससमय महादेवका दर्शन करनेकी मुझमें शक्ति नहीं थी ॥ ३-४ ॥ उस समय देवने मुझसे कहा, कि- हे कृष्ण! मेरे दर्शन कर और मेरे साथ बात चीतकर, तूने सैंकड़ों और सहस्रों बार मेरी आराधना की है ॥ ५ ॥ मुझे तेरी समान तीनों लोकोंमें और कोई भी

नौ प्रियः । शिरसा वन्दिते देवे देवी प्रीतां ह्युमा तदा । ततोहम-
जुगं स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः॥६॥कृष्ण उवाच । नमोऽस्तु
ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति । तपश्च सत्वं च
रजस्तमश्च त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः ॥७। त्वं वै ब्रह्मा च
रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः । धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः
सर्वतोमुखः ॥ ८ ॥ त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि
च । त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ९ ॥ यानीं-
द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः ।ये देव-
संस्थास्तव देवताश्च तस्मात्परं त्वामृषयो वदन्ति ॥ ४१० ॥
वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः । यज्ञोपगं च
यत्किंचिद्भगवांस्तदसंशयम् ॥ ११ ॥ इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि

प्रिय नहीं है, तदनन्तर मैंने मस्तक नमा देवताको प्रणामकिया
तब देवी उमा प्रसन्न हुई, तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी
स्तुति करते हैं, ऐसे स्थाणु भगवान्से मैंने कहा ॥ ६ ॥ कृष्णने
कहा कि–हे सबके सनातन योगिरूप ! आपको नमस्कार है,
ऋषि आपको ब्रह्माका अधिपति कहते हैं तथा सत्पुरुष कहते हैं,
कि–तप, सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण और सत्य भी आप
ही हैं ७ आप ही ब्रह्मा हैं, रुद्र हैं, वरुण हैं, अग्नि हैं, मनु हैं,
भव हैं, धाता हैं, त्वष्टा हैं, विधाता हैं और सबके व्यापक प्रभु
हैं८ स्थावरजंगमात्मक सब प्राणी आपसे उत्पन्न हुए हैं और इन
स्थावरजङ्गमात्मक सब लोकोंको आपने रचा है ९ सब इन्द्रियें,
सम्पूर्ण मन, पञ्चप्राण, सात अग्नियें (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि,
आहवनीय, सभ्य, और आवसथ्य ये पाँच श्रौत, छठा स्मार्त
और सातवाँ लौकिक अग्नि) सूत्रात्मामें लय पानेवाले देव और
स्तुति करनेवाले इन सबसे तुम श्रेष्ठ देवता हो, इसप्रकार ऋषि
कहते हैं १० देवता, यज्ञ, सोम,दक्षिणा, अग्नि, हविष् तथा यज्ञ

नियमाश्च ये ह्रीः कीर्त्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी १२ कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोथ मत्सरः । आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव ॥ १३ ॥ कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम् । मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः १४ अव्यक्तः पावनोऽचिंत्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः । आदिर्गणानां सर्वेषां भवान्वै जीविताश्रयः ॥ १५ ॥ महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः । बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संविख्यातिधृतिः स्मृतिः ॥ १६ ॥ पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते । त्वां बुध्वा ब्राह्मणो वेदात्प्रमोहं विनियच्छति ॥ १७ ॥ हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः। सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्व-

की सब सामग्रियें आप भगवानके ही रूप हैं इसमें सन्देह नहीं है ११ यज्ञादिका फल, वेदाध्ययन, व्रत, नियम, लज्जा, कीर्त्ति, श्री, द्युति, तुष्टि और योगकी सिद्धि ये सब आपके स्वरूपको प्राप्त करानेवाले हैं ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! काम क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तम्भ, मत्सर, आधियें व्याधियें, ये सब आपके बालक हैं ॥ १३ ॥ आप क्रियारूप सुख दुःखादिरूप, सुख दुःखके अभावरूप, वासनाके अविनाशी बीजरूप अज्ञान, मनके परम कारण, ऐश्वर्यरूप, तथा शाश्वतरूप हैं ॥ १४ ॥ आप अव्यक्तरूप, पावनरूप, अचिंत्यरूप, सहस्रों किरणोंवाले सूर्यरूप, सुवर्णमय, सब अव्यक्त आदि तत्वोंके आदिकारण तथा सब जीवोंके आश्रयरूप हैं ॥ १५ ॥ महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, विश्व, शंभु, स्वायम्भुव, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, सम्वित्, ख्याति, धृति और स्मृति, इन पर्यायवाचक शब्दोंसे महान् आत्मारूप आपका विचार वेदार्थको जाननेवाले विद्वान् करते हैं और परब्रह्मके स्वरूपको जाननेवाले पुरुष वेदमेंसे आपके स्वरूपको जानकर संसारके मूलभूत अज्ञानका पूर्णरीतिसे नाश करते हैं ॥ १७ ॥

तोऽक्षिशिरोमुखः ॥ १८ ॥ सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि । फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु ॥ १९ ॥ त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः । अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ ४२० ॥ त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये । ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः२१यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम् । हिरण्मयं बुद्धिमतां पराङ्गतिं स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥ २२ ॥ विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडंगं त्वां च मूर्तितः । प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः ॥२३॥ एव-

आप सब प्राणियोंके हृदयरूप, क्षेत्रज्ञ हैं, ऋषि आपकी स्तुति करते हैं, आपके चरण और हाथ सर्वत्र व्याप्त हैं. और आपके नेत्र, मस्तक और मुख भी सर्वत्र समाये हुए हैं ॥ १८ ॥ जगत् में आपके कान सर्वत्र हैं आप सबको व्याप्त कर रहते हैं, तथा सूर्यके निमेष आदि सब कामोंमें आप ही फलरूप हैं १९ आप चैतन्यकी ज्वालारूप, सबके हृदयमें रहनेवाले, योगकी अणिमा, महिमा, सब कामनाओंको प्राप्त करनेकी शक्तिरूप, ईशान, ज्योतिःस्वरूप और अविकारी हैं ॥ ४२० ॥ आपमें बुद्धि और मति निवास करके रहती हैं आपका ध्यान करने वाले, नित्य योगका आचरण करने वाले, सत्य संकल्पवाले और इन्द्रियोंको जीतने वाले पुरुष आपको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष आपको विशिष्ट अनुभव-बुद्धिमें बसे हुए, प्रभु, पुराण, पुरुषरूप, हिरण्य-मय, बुद्धिमानोंकी परम-गतिरूप समझते हैं, वह बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिका उल्लंघन करके परब्रह्ममें स्थिति करते हैं२२ ज्ञानी पुरुष महत्तत्त्व, अहंकार तथा पञ्चतन्मात्रा इन सात सूक्ष्म पदार्थोंको तथा आपके मूर्तिमान् छः अङ्गोंको जानते हैं और प्रधा-नविधि कहलाने वाली आत्मारूपसे ज्ञात होने वाली योगविधिका

मुक्ते मया पार्थ भवेनार्त्तिविनाशने। चराचरं जगत्सर्वं सिंहनादं तदाकरोत् ॥ २४ ॥ तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च नागाः पिशाचाः पितरो वयांसि। रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे महर्षयश्चैव तदा प्रणेमुः ॥२५॥ मम मूर्ध्नि च दिव्यानां कुसुमानां सुगन्धिनाम्। राशयो निपतन्ति स्म वायुश्च सुसुखो ववौ ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य भगवान् देवीं ह्युमां मां च जगद्धितः। शतक्रतुं चाभिवीक्ष्य स्वयं मामाह शंकरः ॥२७॥ विद्मः कृष्ण परां भक्तिमस्मासु तव शत्रुहन्। क्रियतामात्मनः श्रेयः प्रीतिर्हि त्वयि मे परा ॥२८॥ वृणीष्वाष्टौ वरान् कृष्ण दातास्मि तव सत्तम। ब्रूहि यादवशार्दूल यानिच्छसि सुदुर्लभान् ॥ ४२९ ॥ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सेवन करके आपके स्वरूपमें ही प्रवेश करते हैं ॥ ४२३ ॥ हे पार्थ ! मैंने पीडानाशक शंकरसे इस प्रकार कहा उस समय स्थावरजङ्गमात्मक सारे जगत्‌ने सिंहकी समान गर्जना की ४२४ उस समय ब्राह्मणोंके मण्डलोंने, देवताओंने, असुरोंने, नागोंने, पिशाचोंने, पितरोंने, पक्षियोंने, राक्षसोंके गणोंने, भूतोंके गणोंने और सब महर्षियोंने शंकरको प्रणाम किया ॥ ४२५ ॥ उस समय मेरे मस्तक पर सुगन्धित दिव्य पुष्पोंकी बौछारें पडने लगीं, तथा सुखदायक पवन चलने लगा ॥२६ ॥ जगत्‌का हित करनेवाले भगवान् शंकर उमादेवीको मुझको और इन्द्रको देख कर मुझसे कहने लगे, कि-॥ २७ ॥ हे कृष्ण ! हे शत्रुओंका संहार करनेवाले ! तुम्हारी मेरे ऊपर परमभक्ति है, यह सब जानते हैं, तुम अपना कल्याण करो, क्योंकि तुम्हारे ऊपर मेरा परम-स्नेह है ॥ २८ ॥ हे सत्पुरुष कृष्ण ! तुम मुझसे आठ वर माँग लो, मैं तुमको आठ वर दूँगा, हे यादवसिंह ! तुम जिन दुर्लभ वरोंको माँगना चाहते हो उनको मुझसे माँगलो ४२९ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

कृष्णउवाच। मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजः सन्निचये ततः। परमं हर्षमागत्य भगवन्तमथाब्रुवम् ॥ १ ॥ धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं यशस्तथाग्र्यं परमं बलं च। योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥ २ ॥ एवमस्त्विति तद्वाक्यं मयोक्तः प्राह शंकरः। ततो मां जगतो माता धारिणी सर्वपावनी ॥३॥ उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः। दत्तो भगवता पुत्रः साम्बो नाम तवानघ ॥४॥ मत्तोऽप्यष्टौ वरानिष्टान् गृहाण त्वं ददामि ते। प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पांडुनन्दन ५ द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं शतं सुतानां परमं च भोगम्। कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं शमप्राप्तिं प्रवणे चापि दाक्ष्यम् ॥ ६ ॥ उमोवाच। एवं भविष्यत्यमरप्रभाव नाहं मृषा जातु वदे कदा-

कृष्णने कहा, कि-तदनंतर मैंने अपने मनको नियममें रख, मस्तक झुका परमहर्षमें भर तेजके निधिरूप भगवान्से कहा कि -१ मैं आपसे धर्मपर दृढ़ता, युद्धमें शत्रुओंका संहार करना, यश और उत्तम तथा परम बल, योगमें प्रेम, आपकी समीपता और सैंकड़ों पुत्रोंको माँगता हूँ २ इसप्रकार शंकरसे मैंने कहा तब शंकरने मुझसे कहा 'तथास्तु' फिर मुझसे जगत्की माता, सबका पोषण करने वाली, सबको पवित्र करने वाली ॥ ३ ॥ तप की भण्डाररूप, शिवकी पत्नी भगवती उमा सावधान होकर कहने लगीं, कि-हे निर्दोष कृष्ण! तुमको भगवान्ने साम्ब नामक श्रेष्ठ पुत्र दिया है ॥ ४ ॥ अब तुम मुझसे आठ वर माँग लो, मैं तुमको वर दूँगी, फिर हे पाण्डुपुत्र! मैंने उनको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके कहा, कि-॥ ५ ॥ ब्राह्मणों पर अक्रोध पितासे प्रसन्नता, सौ पुत्र, उत्तम वैभव, कुल पर प्रेम, माताकी कृपा, शान्तिका लाभ और कर्ममें कुशलता (इतने वर आपसे माँगता हूँ)६ उमाने कहा, कि-हे देवताओंकी समान प्रभाववाले

चित् । भार्यासहस्राणि च षोडशैव तासु प्रियत्वं च तथाक्षयं च प्रीतिं चाग्र्यां बान्धवानां सकाशाद्ददामि तेहं वपुषः काम्यतां च । भोक्ष्यन्ते वै सप्तति वै शतानि गृहे तुभ्यमतिथीनां च नित्यम् ८ वासुदेव उवाच । एवं दत्वा वरान् देवो मम देवी च भारत । अन्तर्हितः क्षणे तस्मिन् सगणो भीमपूर्वज॥९॥एतदत्यद्भुतं पूर्वं ब्राह्मणायातितेजसे । उपमन्यवे मया कृत्स्नं व्याख्यातं पार्थिवोत्तम । नमस्कृत्वा तु स प्राह देवदेवाय सुव्रत ॥ १० ॥ उपमन्युरुवाच । नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः । नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिकेपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कृष्ण ! तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार सब होगा, मैं किसी दिन भी असत्यभाषण नहीं करती हूँ, तुम्हारी सोलह सहस्र स्त्रियें होंगी, उन सब पर तुम्हारा अखण्ड प्रेम रहेगा ।७। और तुम्हारे बांधव भी तुमसे प्रेम करेंगे, तथा मैं तुमको शरीरकी सुन्दरता देतीहूँ तथा तुम्हारे घरमें सदा सात सहस्र अतिथि भोजन करते रहेंगे ।८। वासुदेवने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार मुझे देव और देवीने वर दिये, फिर हे भीमके बड़े बंधु ! उसी समय शंकर अपने गणोंके साथ अन्तर्धान हो गए ॥ ९ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! यह अति-अद्भुत-सम्पूर्ण चरित्र मैंने महातेजस्वी उपमन्यु नामक ब्राह्मणसे कहा था, यह सुनकर हे सदाचार-सम्पन्न राजन् ! देवदेव शंकरको प्रणाम करके उपमन्यु कहने लगे, कि-॥ १० ॥ शिवकी समान कोई देवता नहीं है, शिवको समान कोई गति नहीं है, शिवकी समान दाता नहीं है और शिवकी समान रणमें युद्ध करनेवाला भी कोई नहीं है ११

पन्द्रहवा अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

उपमन्युरुवाच । ऋषिरासीत्कृते तात तण्डिरित्येव विश्रुतः ।
दशवर्षसहस्राणि तेन देवः समाधिना ॥ १ ॥ आराधितोऽभूद्
भक्तेन तस्योदर्कं निशामय । स दृष्टवान्महादेवमस्तौपीच्च स्तवै-
र्विभुम् ॥ २ ॥ इति तण्डिस्तपोयोगात् परमात्मानमव्ययम् ।
चिंतयित्वा महात्मानमिदमाह सुविस्मितः ॥३॥ यं पठन्ति सदा
सांख्याश्चिन्तयन्ति च योगिनः । परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातार-
मीश्वरम् ॥ ४ ॥ उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः ।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते ॥ ५ ॥ अजन्तमहमीशा-
नमनादिनिधनं प्रभुम् । अत्यन्तसुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे॥६॥
एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम् । तमव्ययमनौपम्यम-
चिंत्यं शाश्वतं ध्रुवम् ॥ ७ ॥ निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुण-

---

उपमन्युने कहा, हे तात कृष्ण ! सत्ययुगमें तण्डि नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, उन शिवभक्तने दश सहस्र वर्ष तक समाधि लगाकर महादेवजीकी आराधना की थी, उस आराधनाके फल को तुम सुनो, तण्डिने महादेवजीके दर्शन पाये थे और उनकी स्तुति की थी ॥ १ ॥ २ ॥ तण्डि ऋषिने तप करके अवि- नाशी परमात्मसम्बन्धी विचार किया, उन महात्माने अतिविस्मित होकर यह कहा, कि-॥ ३ ॥ जिन पर, प्रधान, पुरुष, अधि- ष्ठाता और ईश्वरका साङ्ख्यवेत्ता सदा पाठ करते हैं और योगी सदा चिन्तवन करते हैं ॥ ४ ॥ विद्वान् जिनको जगत्की उत्पत्ति का और विनाशका कारण समझते हैं और देवता, असुर, तथा मुनि भी जिनसे अधिक और किसीको श्रेष्ठ नहीं मानते हैं ।५। उन अजन्मा, ईशान आदि तथा अन्तरहित, प्रभु, अतिसुखी, पातकरहित देवकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ६ ॥ ऋषि इस प्रकार कह रहे थे, इतनेमें ही तपोनिधि परमात्माके उनको दर्शन हुए अविकारी, उपमारहित, अचिंत्य, शाश्वत, ध्रुव, कलारहित,

गोचरम् । योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम् ॥ ८ ॥ मनो-रिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम् । अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम् ॥ ६ ॥ दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः । योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम् ॥ १० ॥ यः प्राणवन्तमात्मानं ज्योतिर्जीवस्थितं मनः । तं देवं दर्शनकांक्षी बहून् वर्षगणानृषिः । तपस्युग्रे स्थितो भूत्वा दृष्ट्वा तुष्टाव चेश्वरम् ॥ ११ ॥ तण्डिरुवाच । पवित्राणां पवित्रस्त्वं गतिर्गतिमतांवर ॥ १२ ॥ अत्युग्रं तेजसां तेजस्तपसां परमं तपः । विश्वावसुहिरण्याक्षपुरुहूतनमस्कृत ॥ १३ ॥ भूरिकल्याणद विभो परं सत्यं नमोऽस्तु ते । जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो १४

सम्पूर्ण, ब्रह्मरूप, गुणरहित, गुणवान्, योगियोंके परमानन्दरूप अक्षर, मोक्ष नामवाले, मनु, इन्द्र, अग्नि, पवन, विश्व और ब्रह्माकी गतिरूप (इन्द्रियोंसे और मनसे) अग्राह्य, अचल, शुद्ध, बुद्धिसे ग्रहण करने योग्य, मनोमय, कठिनतासे भी जानने में न आनेवाले, असंख्य ज्ञानियोंको भी दुष्प्राप्य, सकल विश्व के कारणरूप, जगत् और तमसे भी पर, जो स्वयं जीवरूप बन जाते हैं और जीवमें भी ज्योतिःस्वरूपमें मनरूपसे स्थिति करते हैं उनका दर्शन करनेकी इच्छासे बहुत दिनों तक उग्र तप करके दर्शन पानेपर ऋषि उन ईश्वरकी स्तुति करनेलगे ७-११ तण्डिने कहा, कि हे देवश्रेष्ठ ! आप पवित्रसे भी पवित्र हैं, गति वालोंकी गति हैं १२ आप तेजोंमें अति उग्र तेज हैं तपोंमें परमतपरूप हैं, आपकी विश्वावसु, हिरण्याक्ष और इन्द्रने स्तुति की थी ॥ १३ ॥ हे व्यापक ! हे बड़ेभारी कल्याण करनेवाले ! हे परम-सत्य ! आपको नमस्कार है ! हे विभो ! जन्म और मरणसे डरनेवाले और आत्मकल्याणके लिये प्रयत्न करनेवाले संन्यासियोंको आप ही मोक्ष देते हैं हे सहस्र किरणोंवाले ! हे सुखाश्रय !

निर्वाणद सहस्रांशो नमस्तेऽस्तु सुखाश्रय। ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः ॥१५॥ न विदुस्त्वान्तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्यामहे वयम्। त्वत्तः प्रवर्त्तते सर्वं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।१६।कालाख्यः पुरुषाख्यश्च ब्रह्माख्यश्च त्वमेव हि। तनवस्ते स्मृतास्तिस्रः पुराणज्ञैः सुरर्षिभिः ॥ १७ ॥ अधिपौरुषमध्यात्ममधिभूताधिदैवतम्। अधिलोकाधिविज्ञानमधियज्ञस्त्वमेव हि ॥ १८ ॥ त्वां विदित्वात्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि। विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः

आपको नमस्कार है, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र विश्वदेवता और महर्षि भी आपके स्वरूपको यथार्थरीतिसे नहीं जानते, फिर हम तो जान ही कैसे सकते हैं? यह सब जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है और यह सब आपके ही आधार पर टिका हुआ है१५।१६ क्योंकि आप ही कालनामधारी अर्थात् रुद्रस्वरूप हैं पुरुषनामधारी अर्थात् विष्णुरूप हैं आप ही ब्रह्मनामधारी हैं, पुराणको जाननेवाले देवर्षि इस प्रकार आपके शास्त्रोक्त तीन शरीरोंको जानते हैं१७आप ही अधिपौरुष,अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवत, अधिलोक और अधिविज्ञान तथा अधियज्ञ भी हैं (मस्तक, हाथ, पैर आदि अवयवों वाला देह पुरुष कहलाता है और उससे सम्बन्ध रखनेवाला विज्ञान अधिपौरुष—विज्ञान कहलाता है। देहकी उत्पत्तिमें माता पूर्वरूप है, पिता उत्तररूप है, प्रजा सन्धिरूप है और प्रजनन सन्धानरूप है, यही श्रुतिमें कहा है, "तत्र च माता पूर्वरूपं, पितोत्तररूपं प्रजा सन्धिः, प्रजननँ सन्धानम्" क्षेत्र और बीजरूप माता पिताका परस्पर समागम होनेसे अङ्कुररूपसे प्रजा उत्पन्न होती है, अतः यदि मिथुनभाव का अभाव होजाय और ब्रह्मचर्य पाला जाय तो प्रजा उत्पन्न न होवे और प्रजाके उत्पन्न न होनेसे जगत् भी नहीं चलसकता अतः पुरुष और प्रकृतिका विवेक करनेवालेको उपस्थका निग्रह

परं भावमनामयम् ॥ १९ ॥ अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युर-
नेकतः । द्वारं तु स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च ॥२०॥ त्वं

करना चाहिये,इसीका नाम अधिपौरुष है । अध्यात्मको इसप्रकार समझना चाहिये, कि-इस शरीरमें ऊपरका ओठ पूर्वरूप कहलाता है और नीचेका ओठ उत्तररूप कहलाता है, वाणी संधिरूप है और जिह्वा सन्धानरूप है, अतः जिह्वाका निग्रह करके प्रकृति पुरुषके विवेकके लिये मौन रहना चाहिये, यही श्रुतिमें कहा है, कि-'अधराहनुः पूर्वरूपं उत्तराहनुरुत्तररूपं वाक् संधिः जिह्वा सन्धानम्' अतः वाणीको नियममें न रखकर इच्छानुसार बोलते रहनेसे प्रकृति पुरुषका ज्ञान नहीं होता है और कभी विच्छिन्न न होनेवाला संसार चलता रहता है । अधिभूत शब्द से देहको उत्पन्न करनेवाले पञ्च महाभूत और अधिदैवत शब्द से पञ्चप्राण तथा इन्द्रियें समझनी चाहियें, ये जब परस्पर संयुक्त होते हैं तब ही संसार उत्पन्न होता है । यदि पंचमहाभूत न हों तो उनको जानने वाली प्रज्ञा भी न हो और उनको जाननेवाली प्रज्ञा न हो तो पंचभूत भी सिद्ध नहीं होसकते,यदि ब्रह्मचर्यका पालन कर वाणी आदिका निग्रह किया जाता है तो जीव और ब्रह्मके भेदमें कारणभूत अधिभूत आदिकी उत्पत्ति ही नहीं होती है और घटके नष्ट होते ही जैसे घटाकाश महाकाशमें मिल जाता है ऐसे ही यज्ञ पुरुषका ज्ञान होने पर पाञ्चभौतिक शरीर छूटने पर जीव और ब्रह्मकी एकता हो जाती है अधिलोक शब्दसे शब्द आदि दश भूतमात्रायें लेनी चाहिये और अधिविज्ञान शब्दसे श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियें समझनी चाहियें और अधियज्ञ शब्दसे मोक्ष समझना चाहिये)१८ देवताओंसे भी कठिनतासे जाननेमें आनेवाले आपको अपनेमें स्थित जानकर विद्वान् मुक्त होकर दुःखरहित परमभाव (मुक्ति)

वै स्वर्गश्च मोक्षश्च कामः क्रोधस्त्वमेव च । सत्वं रजस्तमश्चैव अधश्चोर्ध्वं त्वमेव हि ॥ २१ ॥ ब्रह्मा भवश्च विष्णुश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः । वरुणेन्दू मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः२२ भूर्वायुः सलिलाग्निश्च खं वाग्बुद्धिस्थितिर्मतिः । कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति च नास्ति च ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम् । विश्वाविश्वपरो भावश्चिंत्याचिंत्यस्त्वमेव हि ॥ २४ ॥ यच्चैतत् परमं ब्रह्म यच्च तत्परमं पदम् । या गतिः सांख्ययोगानां स भवान्नात्र संशयः२५नूनमद्य कृतार्थाः स्म नूनं प्राप्ता सताङ्गतिम् । यां गतिं प्रार्थयन्तीह ज्ञाननिर्मलबुद्धयः॥२६॥ अहो मूढाः स्म सुचिरमिमं कालमचेतसा । यन्न विद्मः परं देवं

को पाते हैं ॥१६॥ हे विभो ! यदि पुरुष दोषोंसे रहित आपके परमस्वरूपको जानना न चाहे तो उस पुरुषके बहुतसे जन्ममरण होते रहते हैं, आप ही मोक्षके द्वारको खोलनेवाले और बन्द करने वाले हैं ॥ २० ॥ आप ही स्वर्ग, मोक्ष, काम और क्रोध हैं, आप ही सत्व, रज,तम और ऊर्ध्वलोकरूप तथा अधोलोक-रूप है ॥ २१ ॥ आप ही ब्रह्मा, भव, विष्णु, स्वामिकार्त्तिकेय, इन्द्र, सविता, यम, वरुण, चन्द्र, मनु, धाता, विधाता और धन के अधिपति कुबेर भी हैं ॥२२॥ आप ही भूमि, वायु, आकाश, जल, अग्नि, वाणी, बुद्धि, स्थिति, मति, कर्म, सत्य और असत्य तथा नास्ति और अस्ति हैं ॥ २३ ॥ आप ही इन्द्रियें और इन्द्रियोंके विषय हैं और आप ही प्रकृतिसे पर ध्रुव मूर्त्ति, विश्व तथा उससे भिन्नरूप, चिंत्य और अचिंत्यरूप हैं ॥२४॥ जो परब्रह्म है, जो परमपदरूप है, जो साङ्ख्य तथा योगकी परमगति है, वह आप ही हैं ॥२५। आज हम वास्तवमें कृतार्थ हुए हैं आज हमें निश्चय ही सत्पुरुषोंकी गति मिली है इस गतिको पानेके लिये ज्ञानसे निर्मल हुई बुद्धिवाले पुरुष प्रार्थना

शाश्वतं यं विदुर्बुधाः ॥ २७ ॥ सेयमासदिता साक्षात्त्वद्भक्ति-
र्जन्मभिर्मया । भक्तानुग्रहकृद्देवो यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥ २८ ॥
देवासुरमुनीनान्तु यच्च गुह्यं सनातनम् । गुहायान्निहितं ब्रह्म
दुर्विज्ञेयं मुनेरपि ॥ २९ ॥ स एष भगवान् देवः सर्वकृत् सर्वतो-
मुखः । सर्वात्मा सर्वदर्शी च सर्वगः सर्ववेदिता ॥ ३० ॥ देह-
कृद्देहभृद्देही देहभुग्देहिनाङ्गतिः । प्राणकृत्प्राणभृत्प्राणी प्राणदः
प्राणिनाङ्गतिः ॥३१॥ अध्यात्मगतिरिष्टानां ध्यायिनामात्मवेदि-
नाम् । अपुनर्भवकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः ॥३२॥ अयं
च सर्वभूतानां शुभाशुभगतिप्रदः । अयञ्च जन्ममरणे विदध्यात्

करते रहते हैं ॥ २६ ॥ जिन सनातन-देवको विद्वान् जानते हैं उनको हम अज्ञानके कारण बहुत समय तक न जान सके थे अतः हम मूढ़ हैं ॥ २७ ॥ बहुत जन्मोंके बाद मैंने यह आपकी साक्षात् (वास्तविक) भक्ति पाई है, आप भक्तों पर अनुग्रह करने वाले देवता हैं आपको जान कर मनुष्य अमृतको पाता है २८ देवता, असुर और मुनियोंसे भी छिपे हुए, सनातनरूप, मुनियोंसे भी जाननेमें न आने वाले हृदयाकाशमें विराजने वाले ब्रह्म आप ही हैं ॥ २९ ॥ भगवान् देव सबके उत्पन्न-कर्ता हैं, सर्वत्र व्यापक हैं, सबके आत्मा हैं, सर्वदर्शी हैं, सर्वत्र जाने वाले हैं और सर्वज्ञ हैं ॥ ०३ ॥ देहके उत्पन्नकर्ता हैं, पोषणकर्ता हैं, देहधारी हैं, देहके संहारकर्ता हैं, देहधारियोंकी गतिरूप हैं प्राणको उत्पन्न करने वाले हैं, प्राणको धारण करने वाले हैं, प्राणी हैं, प्राण देने वाले हैं और प्राणियोंकी गतिरूप हैं ॥ ३१ ॥ आप अपना ध्यान करने वाले आत्मज्ञ महात्माओंकी अध्यात्मगतिरूप हैं और हे ईश्वर ! आप पुनर्जन्मकी कामना न करने वाले पुरुषों की गति आप ही हैं, ॥ ३२॥ सब प्राणियोंको शुभ और अशुभ गति देने वाले आप ही हैं, सब प्राणियोंका जन्म मरण करने

सर्वजन्तुषु । अयं संसिद्धिकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः ३३
भूराद्यान् सर्वभुवनानुत्पाद्य सदिवौकसः । दधाति देवस्तनुभिर-
ष्टाभिर्यो बिभर्त्ति च ॥ ३४ ॥ अतः प्रवर्त्तते सर्वमस्मिन् सर्वं
प्रतिष्ठितम् । अस्मिंश्च प्रलयं याति अयमेकः सनातनः ॥ ३५ ॥
अयं स सत्यकामानां सत्यलोकाः परं सताम् अपवर्गश्च मुक्तानां
कैवल्यं चात्मवेदिनाम् ३६ अयं ब्रह्मादिभिः सिद्धैर्गुहायां गोपितः
प्रभुः। देवासुरमनुष्याणामप्रकाशो भवेदिति ३७ तं त्वां देवासुर-
नरास्तत्त्वेन न विदुर्भवम् मोहिताः खल्वनेनैव हृदिस्थेनाप्रकाशिना॥
ये चैनं प्रतिपद्यन्ते भक्तियोगेन भाविताः । तेषामेवात्मनात्मानं
दर्शयत्येष हृच्छयः ३९यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते ।

वाले भी आप ही हैं, मोक्षकी कामनावाले पुरुषोंकी गति भी आप ही ईश्वर हैं ॥ ३३ ॥ और आप ही देवताओंसहित भू आदि सब भुवनोंको उत्पन्न करके (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यजमान इन) आठ मूर्तियोंको धारण करके उनका पोषण करते हैं ॥ ३४ ॥ यह जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है और इस सब जगत्का आपमें ही प्रलय होता है और आप ही एक सनातनरूप हैं ॥ ३५ ॥ और सत्यकी कामना वाले सत्पुरुषोंके उत्तम लोक भी आप ही हैं, आप ही मुक्त पुरुषोंके अपवर्गरूप हैं और आप ही आत्मज्ञानियोंके कैवल्य-रूप हैं ॥३६॥ देवता, असुर और मनुष्य इनको जानने न पावे यह विचार कर ब्रह्मा आदि सिद्ध पुरुषोंने जिन प्रभुको अपनी हृदयरूपी गुफामें गुप्त रख छोड़ा है, वह आप ही हैं ॥ ३७ ॥ देवता और असुर भी आपको यथार्थ रीतिसे नहीं जानसकते क्योंकि-आपने हृदयमें गुप्त रहकर उनको मोहित कररक्खा है ३८ जो श्रद्धालु पुरुष भक्तियोगका आश्रय लेकर उनकी शरण लेता है, उसको हृदयमें रहनेवाले परमात्मा स्वयं दर्शन देते हैं ॥३९॥

यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते ॥४०॥ यं लब्धा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः । यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयाम् ॥ ४१ ॥ यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः । सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः ॥ ४२ ॥ यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् । प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च ॥४३॥ ओंकाररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम् । अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते ॥ ४४ ॥ अयं च पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते । एष काष्ठा दिशश्चैव संवत्सरयुगादि च ॥४५॥ दिव्यादिव्यः परो लाभ अयने दक्षिणोत्तरे । एनं प्रजापतिः पूर्वमाराध्य बहुभिः स्तवैः ॥४६॥ प्रजार्थं

जिसको जानकर पुनर्जन्म और मरण नहीं होता है तथा जिसको जानकर फिर कुछ जानने योग्य नहीं रहता है, वह भी आप ही हैं ॥ ४० ॥ जिसको पानेसे अधिक विद्वान् पुरुष और किसी वस्तुके लाभको अधिक नहीं समझते और जिस सूक्ष्म तथा उत्तम गतिरूप ईश्वरको जानकर अविकारी और अविनाशी ईश्वरको पाते हैं ॥ ४१ ॥ गुणोंके स्वरूपको जाननेवाले सांख्य शास्त्रमें कुशल पुरुष सूक्ष्मज्ञानके ज्ञाता होते हैं और वे सूक्ष्म ईश्वरको जानकर बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥४२॥ वेदान्तमें प्रतिपादन किये हुए आपको वेदको जाननेवाले देखते हैं, तथा प्राणायाममें परायण रहने पुरुष जिस परमात्माका सदा जपकरते हैं और जिसमें अन्तमें लीन होजाते हैं वह आप ही हैं ॥४३॥ वे पुरुष ॐ काररूपी रथमें चढ़कर जिस महेश्वरके स्वरूपमें लीन होते हैं वह आप ही हैं और देवयानके द्वाररूप आदित्य भी आप ही हैं ॥४४॥ और पितृयानके द्वाररूप चन्द्रमा भी आप ही हैं, आप ही काष्ठारूप हैं, दिशारूप हैं, सम्वत्सररूप हैं, युगादिरूप हैं ॥४५॥ और आप ही इन्द्रलोकके ऐश्वर्यरूप हैं और पृथ्वी परका सार्वभौमपदरूप

वरयामास नीललोहितसंज्ञितम् । ऋग्भिर्यमनुशासन्ति तत्त्वे कर्मणि बह्वृचाः ॥ ४७ ॥ यजुर्भिर्यत्त्रिधा वेद्यं जुह्वत्यध्वर्यवोऽध्वरे । सामभिर्यं च गायन्ति सामगाः शुद्धबुद्धयः ॥४८॥ ऋतं सत्यं परं ब्रह्म स्तुवन्त्याथर्वणा द्विजाः । यज्ञस्य परमा योनिः पतिश्चायं परः स्मृतः ॥ ४९ ॥ रात्र्यहःश्रोत्रनयनः पक्षमासशिरोभुजः । ऋतुवीर्यस्तपोधैर्यो ह्यब्दगुह्योरुपादवान् ॥ ५० ॥ मृत्युर्यमो हुताशश्च कालः संहारवेगवान् । कालस्य परमा योनिः कालश्चायं सनातनः ॥ ५१ ॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ ग्रहाश्च सह

भी आप ही हैं, आप ही उत्तरायण और दक्षिणायनरूप दोनों अयन हैं पहिले प्रजापतिने बहुतसी स्तुतिकरके नीललोहित नामक शंकरकी आराधना करके प्रजाको रचनेके लिये प्रार्थना की थी, ऋग्वेदको जाननेवाले ऋचाओंसे आपकी स्तुति करते हैं और आपका स्वरूप अनारोपित शुद्ध ब्रह्मरूप है ॥ ४६-४७ ॥ अध्वर्यु यज्ञमें यजुर्वेदके मंत्र पढ़कर तीन (श्रौत, स्मार्त और ध्यान नामक तीन प्रकारके पाक यज्ञोंके) प्रकारसे जानने योग्य जिनके उद्देश्यसे होम करते हैं तथा शुद्ध बुद्धि वाले गान करने वाले ऋषि जिनकी सामगान गाकर स्तुति करते हैं, वह आप ही हैं ॥ ४८ ॥ अथर्ववेदको जानने वाले ब्राह्मण आपका ही परब्रह्मरूपसे, ऋतरूपसे, यज्ञरूपसे और सत्यरूपसे वर्णन करते हैं आप यज्ञकी परमयोनिरूप अर्थात् श्रद्धारूप हैं तथा उत्तम पति भी हैं, यह शास्त्रोंमें कहा है ।४९। आप रात्रिरूप कर्ण वाले हैं, दिनरूप नेत्र वाले हैं, पक्षरूप मस्तक वाले हैं, मासरूपी भुजाएँ वाले हैं, ऋतुरूप वीर्य वाले हैं, तपोरूप धैर्यवाले हैं, वर्षरूप गुह्येन्द्रिय, जंघा और चरण वाले हैं, ।५०। मृत्यु, यम, अग्नि, संहार करने वाला और वेग वाला काल, कालका परमकारण और सनातन काल ये सब आप ही हैं, ५१

वायुना । ध्रुवः सप्तर्षयश्चैव भुवनाः सप्त एव च ॥५२॥ प्रधानं महदव्यक्तं विशेषांतं सवैकृतम् । ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं भूतादि सदसच्च यत् ॥५३॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव प्रकृतिभ्यश्च यः परः । अस्य देवस्य यद्भागं कृत्स्नं संपरिवर्त्तते ॥ ५४ ॥ एतत्परममानन्दं यत्तच्छाश्वतमेव च । एषा गतिर्विरक्तानामेष भावः परः सताम् ॥ ५५ ॥ एतत्पदमनुद्विग्नमेतद्ब्रह्म सनातनम् । शास्त्रवेदांगविदुषामेतद्ध्यानं परं पदम् ।५६॥इयं सा परमा काष्ठा इयं सा परमा कला। इयं सा परमा सिद्धिरियं सा परमा गतिः५७इयं सा परमा शान्तिरियं सा निर्वृतिः परा । यां प्राप्य कृतकृत्याः स्म इत्यमन्यन्त योगिनः ॥५८॥ इयं तुष्टिरियं सिद्धिरियं श्रुतिरियं स्मृतिः । अध्यात्मगतिरिष्टानां विदुषां प्राप्तिरव्यया ॥५९॥

चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, वायु, ध्रुव, सप्तर्षि, सप्तलोक ॥५२। प्रधान महत्तत्त्व, अव्यक्त, विशेष, कार्य, ब्रह्मसे लेकर स्तंबतक सब, प्राणियोंके आदि कारण सत् (कारणरूप) और असत् (कार्यरूप) भी (आप ही हैं) ॥ ५३ ॥ (पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) इन आठ प्रकृतियोंसे पर तथा मायावान् परमात्माके एक भागरूपमें परिवर्तित होने वाला सम्पूर्ण संसार भी शंकररूप है ॥५४॥ यह ईश्वर परमानन्दरूप है, सनातनरूप है, विरक्त पुरुषोंकी गतिरूप है और सत्पुरुषोंका परमभावरूप है५५और वह उद्वेगरहित उत्तमस्थान, सनातन ब्रह्म, और शास्त्र तथा वेदांगको जानने वाले पुरुषोंके ध्यान करने योग्य परमपदरूप है। ५६॥यही परमकाष्ठा परमकला, परमसिद्धि,और परमगतिरूप है५७वही परमशान्ति,परमनिर्वृत्ति हैं, योगी जिनको पाकर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं,वह आपही हैं५८ आप ही तुष्टिरूप, सिद्धिरूप, श्रुतिरूप और स्मृतिरूप हैं और अध्यात्मगतिरूप इष्ट गतिको पानेवाले विद्वानोंकी अविनाशी गति

यजतां कामयानानां मखैर्विपुलदक्षिणैः । या गतिर्यज्ञशीलानां सा गतिस्त्वं न संशयः ॥ ६० ॥ सम्यक् योगजपैः शान्तैर्नियमैर्देहतापनैः । तप्यतां या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥६१॥ कर्मन्यासकृतानां च विरक्तानां ततस्ततः । या गतिर्ब्रह्मसदने सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६२ ॥ अपुनर्भवकामानां वैराग्ये वर्ततां च या । प्रकृतीनां लयानां च सा गतिस्त्वं सनातन ॥६३॥ ज्ञानविज्ञानयुक्तानां निरुपाख्या निरञ्जना । कैवल्या या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥ ६४ ॥ वे दशास्त्रपुराणोक्ताः पञ्चैता गतयः स्मृताः । त्वत्प्रसादाद्धि लभ्यन्ते लभ्यन्ते नान्यथा विभो ॥६५ ॥ इति तण्डिस्तपोराशिस्तुष्टावेशानमात्मना । जगौ

आप ही हैं ॥ ५९ ॥ यजन करने वालोंको, कामेष्टि करनेवालों को तथा कराने वालोंको यज्ञ करनेसे और बड़ी २ दक्षिणा देनेसे जो स्थान मिलता है, वह आप ही हैं ॥ ६० ॥ भली भाँति योग करनेसे, जप जपनेसे, शांतिदायक नियमोंका पालन करनेसे तथा देहको ताप देनेवाले नियमोंका पालन करनेसे हे देव ! तपस्वियों को जो स्थान मिलता है, वह आप ही हैं ॥६१॥ हे सनातनदेव ! कर्मत्यागी संन्यासियोंको और विरक्त पुरुषोंको जो ब्रह्मलोकरूप गति मिलती है, वह भी आप ही हैं ॥ ६२ ॥ और हे सनातन ! पुनर्जन्मकी कामनारहित और वैराग्यका वर्ताव करनेवाले पुरुषोंको तथा प्रकृति (कारण) में लयका अभ्यास करनेवाले अर्थात् हृदय-कमलमें रहनेवाले ब्रह्मकी उपासना करनेवाले पुरुषों को जो गति मिलती है, वह आप ही हैं ॥ ६३ ॥ ज्ञान विज्ञानवान् पुरुषोंको रूपरहित और जो निरञ्जन कैवल्य गति मिलती है, वह परमगति कहलाती है, वह भी आप ही हैं॥६४॥ये पाँचों गतिएँ वेद शास्त्र और पुराणोंमें कहीं हैं हे विभो!ये गतिएँ आपकी कृपासे मिलती हैं और आपकी कृपा न होनेपर नहीं मिलती हैं ६५

च परमं ब्रह्म यत् पुरा लोककृज्जगौ ॥ ६६ ॥ उपमन्युरुवाच । एवं स्तुतो महादेवस्तण्डिना ब्रह्मवादिना । उवाच भगवान् देव उमया सहितः प्रभुः ॥६७॥ ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः । न विदुस्त्वामितिततस्तुष्टः प्रोवाच तं शिवः ॥ ६८ ॥ भगवानुवाच । अक्षयश्चाव्ययश्चैव भविता दुःखवर्जितः । यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ६९ ॥ ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्त्ता सुतस्तव । मत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥ ७० ॥ कं वा कामं ददाम्यद्य ब्रूहि यद्वत्स काङ्क्षसे प्राञ्जलिः स उवाचेदं त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ॥ ७१ ॥ उपमन्युरुवाच । एतान् दत्वा वरान् देवो वन्द्यमानः सुरर्षिभिः। स्तूयमानश्च विबुधैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥७२॥ अन्तर्हिते भगवति सानुगे

इस प्रकार तपके भण्डाररूप तण्डिने ईशानकी स्तुतिकी और पहिले जगत्को रचने वाले ब्रह्मानेभी परब्रह्मकी इसी प्रकार स्तुतिकी थी ॥ ६६ ॥ उपमन्युने कहा, कि–इस प्रकार ब्रह्मको जानने वाले तण्डिने देवकी स्तुतिकी तब उमासहित शिव बोले ॥६७॥ (तण्डिने इस प्रकार शिवकी स्तुति की थी, कि–) "आपको ब्रह्मा, इन्द्र विष्णु, विश्वेदेवा और महर्षि भी नहीं जानते हैं, तब शिवने उन पर प्रसन्न होकर कहा, ॥ ६८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि तू अक्षय, अविकारी, दुःखरहित यशस्वी तेजस्वी और दिव्य ज्ञानवाला होगा ॥ ६९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरी कृपासे ऋषि तेरे पुत्रके पास आया करेंगे और तेरा पुत्र यजुर्वेदकी (तण्डि–शाखाका) कल्पसूत्र करेगा, इसमें तू सन्देह न रख ॥ ७० ॥ हे वत्स ! बोल ! तुझे किस वरकी इच्छा है जो मैं तुझे आज दूँ, तब तण्डिने दोनों हाथ जोड़ कर कहा, कि–मेरी आप पर दृढ़ भक्ति हो ॥ ७१ ॥ उपमन्युने कहा, कि–तदनन्तर देवर्षिवन्दित शंकर ऊपर कहे अनुसार वर देकर

यादवेश्वर । ऋषिराश्रममागम्य ममैतत्प्रोक्तवानिह ॥७३॥ यानि च प्रथितान्यादौ तण्डिराख्यातवान्मम । नामानि मानवश्रेष्ठ तानि त्वं शृणु सिद्धये ॥ ७४ ॥ दश नाम सहस्राणि देवेष्वाह पितामहः । सर्वस्य शास्त्रेषु तथा दशनामशतानि च ॥ ७५ ॥ गुह्यानीमानि नामानि तण्डिर्भगवतोऽच्युत । देवप्रसादाद्देवेशः पुरा प्राह महात्मने ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वासुदेव उवाच । ततः स प्रयतो भूत्वा मम तात युधिष्ठिर । प्राञ्जलिः प्राह विप्रर्षिर्नामसंग्रहमादितः ॥ १ ॥ उपमन्युरुवाच। ब्रह्मप्रोक्तैर्ऋषिप्रोक्तैर्वेदवेदाङ्गसंभवैः । सर्वलोकेषु विख्यातं स्तुत्यं

देवताओंसे स्तुति किये जाते हुए तहाँ ही अन्तर्धान होगए ७२ हे यादवराज ! भगवान्के अपने गणोंके साथ अन्तर्धान होजाने पर ऋषि आश्रममें आए और मुझसे यही बात कही ॥ ७३ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ कृष्ण ! शंकरके जो नाम पहिले प्रसिद्ध थे और जिन नामोंका मुझसे तण्डिने वर्णन किया था उन नामोंको तू मोक्ष पानेके लिये सुन ॥ ७४ ॥ ब्रह्माजीने देवताओंमें शिवके एक लाख नामोंका वर्णन किया था और शास्त्रोंमें शंकरके एक सहस्र नाम प्रसिद्ध हैं ॥७५॥ हे अच्युत कृष्ण! पहिले ब्रह्माजीने देवके जो गुह्य नाम महात्मा उपमन्युसे कहे थे वे भगवान्के गुह्य नाम देवकी कृपसे तण्डिने मुझसे कहे थे ७६ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

वासुदेवने कहा, कि—हे तात युधिष्ठिर ! तदनन्तर वह ब्रह्मर्षि सावधान होकर दोनों हाथ जोड़कर शंकरके नामोंका संग्रह मुझसे कहनेलगे ॥ १ ॥ उपमन्युने कहा, कि ब्रह्माजीके कहे हुए ऋषियोंके कहेहुए वेद और वेदांगोंमें कहेहुए नामोंके उच्चारण

स्तोष्यामि नामभिः ॥ २ ॥ महद्भिर्विहितैः सत्यैः सिद्धैः सर्वार्थसाधकैः । ऋषिणा तण्डिना भक्त्या कृतैर्वेदकृतात्मना ॥ ३ ॥ यथोक्तैः साधुभिः ख्यातैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। प्रवरं प्रथमं स्वर्ग्यं सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ४ ॥ श्रुतैः सर्वत्र जगति ब्रह्मलोकावतारितैः । सत्यैस्तत्परमं ब्रह्म ब्रह्मप्रोक्तं सनातनम् ॥ ५ ॥ वक्ष्ये यदुकुलश्रेष्ठ शृणुष्वावहितो मम । वरयैर्नं भवं देवं भक्तस्त्वं परमेश्वरम् ॥ ६ ॥ तेन ते श्रावयिष्यामि यत्तद् ब्रह्म सनातनम् । न शक्यं विस्तरात्कृत्स्नं वक्तुं सर्वस्य केनचित् ॥ ७ ॥ युक्तेनापि विभूतीनामपि वर्षशतैरपि । यस्यादिर्मध्यमन्तं च सुरैरपि न गम्यते ॥ ८ ॥ कस्तस्य शक्नुयाद्वक्तुं गुणान् कार्त्स्न्येन

से सब। लोकोंमें विख्यात और स्तुति करनेयोग्य (शिव) की मैं स्तुति करूँगा ॥ २ ॥ क्योंकि-महापुरुषोंने जिनका मान किया है, वे नाम सत्य हैं, सिद्ध हैं सर्वार्थसाधक हैं और वैदिकज्ञानसे शुद्धात्मा तण्डिऋषिने इन नामोंकी रचना की है ॥३॥ साधु पुरुषोंके यथार्थ रीतिसे वर्णन कियेहुए और तत्त्वदर्शी मुनियोंके प्रसिद्ध कियेहुए हैं सर्वोत्तम हैं प्रथम हैं, स्वर्गमें ले जानेवाले हैं, सब प्राणियोंका हित करनेवाले हैं और शुभ हैं ॥ ४ ॥ यह इस जगत्में ब्रह्मलोकसे आकर-प्रसिद्ध हुए हैं, ये नाम सत्यसे भरे हुए हैं इन नामोंसे मैं परब्रह्म ब्रह्मकथित सनातनकी स्तुति करूँगा ॥ ५ ॥ हे यदुकुलमें श्रेष्ठ कृष्ण ! तू उनको सावधान होकर सुन, तू भक्त है अतः परमेश्वर भवकी प्रार्थना कर ॥६॥ जिस ब्रह्मका स्वरूप सनातन है,उसके नामोंको मैं तुझसे कहूँगा कोई आदमी सौ वर्षमें भी शंकरके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन नहीं कर सकता तथा शंकरके आदि, मध्य तथा अन्तको देवता भी नहीं जानते हैं ॥ ७-८ ॥ हे माधव ! शंकरके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है, किंतु मैं बुद्धिमान् महादेवके अनुग्रह

साधक । किन्तु देवस्य महतः संक्षिप्तार्थपदाक्षरम् ॥ ९ ॥ शक्तितश्चरितं वक्ष्ये प्रसादात्तस्य धीमतः । अप्राप्य तु ततोऽनुज्ञां न शक्यः स्तोतुमीश्वरः ॥ १० ॥ यदा तेनाभ्यनुज्ञातः स्तुतो वै स तदा मया । अनादिनिधनस्याहं जगद्योनेर्महात्मनः ॥ ११ ॥ नाम्नां कञ्चित्समुद्देशं वक्ष्याम्यव्यक्तयोनिनः । वरदस्य वरेण्यस्य विश्वरूपस्य धीमतः ॥ १२ ॥ शृणु नाम्नां चयं कृष्ण यदुक्तं पद्मयोनिना । दशनामसहस्राणि यान्याह प्रपितामहः॥१३ तानि निर्मथ्य मनसा दध्नो घृतमिवोद्धृतम् । गिरेः सारं यथा हेम पुष्पसारं यथा मधु ॥ १४ ॥ घृतात्सारं यथा मण्डस्तथैत्सारद्धुमुद्धृतम् । सर्वपापापहमिदं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ १५ ॥ प्रयत्नेनाधिगन्तव्यं धार्यं च प्रयतात्मना । मांगल्यं पौष्टिकं चैव

से अपनी शक्तिके अनुसार संक्षिप्त पद और अर्थ तथा अक्षर वाले उनके चरित्रको कहूँगा, महादेवजीकी अनुज्ञा पाये विना कोई भी उनकी स्तुति नहीं कर सकता ॥९-१०॥ जब शंकरने मुझे आज्ञा दी थी तब मैंने उनकी स्तुति की थी, उन आदि अन्तरहित, जगत्के कारणभूत, महात्माके नामोंको मैं कुछ २ कहूँगा, हे कृष्ण ! पहिले पद्मयोनि ब्रह्माजीने उन मायाके भी कारणरूप, वरदान देने वाले, वरेण्यरूप, विश्वरूप बुद्धिमान्के नाम कहे हैं, उनके संग्रहको तुम सुनो, ब्रह्माजीने जो दश हजार नाम कहे हैं ॥ ११-१३ ॥ उन सबका मनसे मंथन करके, जैसे दही विलो कर घी निकाला जाता है, पर्वतमेंसे जैसे सुवर्णरूपी सार निकाला जाता है, पुष्पोंमेंसे जैसे मधुरूपी सार निकाला जाता है तैसे ही, मैंने उनमेंसे सारभूत नामोंको नितार लिया है । यह स्तोत्र सब पापोंका हरने वाला है, चार वेदोंसे संयुक्त है ॥ १४-१५ ॥ इस स्तोत्रको प्रयत्नपूर्वक पाना चाहिये, और मनको नियममें रख कर मुखसे इसका पाठ करना चाहिये,क्योंकि-

रक्षोघ्नं पावनं महत् ॥ १६ ॥ इदं भक्ताय दातव्यं श्रद्दधानाऽऽस्तिकाय च । नाश्रद्दधानरूपाय नास्तिकायाजितात्मने ॥ १७ ॥ यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम् । स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मजैः ॥ १८ ॥ इदं ध्यानमिदं योगमिदं ध्येयमनुत्तमम् । इदं जप्यमिदं ज्ञानं रहस्यमिदमुत्तमम् ॥ १६ ॥ यं ज्ञात्वा अन्तकालेपि गच्छेत परमां गतिम् । पवित्रं मङ्गलं मेध्यं कल्याणमिदमुत्तमम् ॥ २० ॥ इदं ब्रह्मा पुरा कृत्वा सर्वलोकपितामहः । सर्वस्तवानां राजत्वे दिव्यानां समकल्पयत् ॥२१॥ तदा प्रभृति चैवायमीश्वरस्य महात्मनः । स्तवराज इति ख्यातो जगत्यमरपूजितः ॥ २२ ॥ ब्रह्मलोकादयं स्वर्गे स्तवराजोऽव-

यह मङ्गल करने वाला है, पुष्टिप्रद है, रक्षोघ्न है और महापवित्र है ॥ १६ ॥ इस स्तोत्रका अजितात्मा,-नास्तिक और श्रद्धाहीन पुरुषको उपदेश नहीं देना चाहिये, इसका उपदेश तो श्रद्धावान्, भक्त और आस्तिकपुरुषको ही देना चाहिये ॥१७॥ जो इन कारणात्मा ईश्वर देवसे द्वेष करता है, हे कृष्ण ! वह अपने पूर्वपुरुषों और पुत्रोंके साथ नरकमें पड़ता है ॥ १८ ॥ यह शंकरके नामोंका जप ध्यान, जप और योगरूप है अर्थात् जप, ध्यान और योगका फल देने वाला है और सर्वश्रेष्ठ है और यह जप करने योग्य, ज्ञानरूप और श्रेष्ठ रहस्यरूप है १६ प्राणी अन्तिम समयमें भी इस स्तोत्रको जान कर परमगतिको पाता है, शंकरका यह स्तोत्र पवित्र, मङ्गलप्रद, बुद्धि बढ़ाने वाला और कल्याणस्वरूप है ॥ २० ॥ पहिले सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने इस स्तोत्रको रच कर, इसको सब दिव्य स्तोत्रोंका राजा बनाया था ॥२१॥ उस दिनसे महात्मा शंकरका यह स्तोत्र जगत्में स्तवराजके नामसे प्रसिद्ध है और देवताओंमें इसकी पूजा होती है ॥२२॥ यह स्तवराज पहिले ब्रह्मलोकमें

तारितः । यतस्तण्डिः पुरा प्राप तेन तण्डिकृतोऽभवत् ॥ २३ ॥ स्वर्गाच्चैवात्र भूर्लोकं तण्डिना ह्यवतारितः । सर्वमङ्गलमांगल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २४ ॥ निगदिष्ये महाबाहो स्तवानामुत्तमं स्तवम् । ब्रह्मणामपि यद्ब्रह्म पराणामपि यत्परम् ॥ २५ ॥ तेजसामपि यत्तेजस्तपसामपि यत्तपः । शान्तानामपि यः शान्तो द्युतीनामपि या द्युतिः ॥ २६ ॥ दान्तानामपि यो दान्तो धीमतामपि या च धीः। देवानामपि यो देव ऋषीणामपि यस्त्वृषिः २७ यज्ञानामपि यो यज्ञः शिवानापि यः शिवः । रुद्राणामपि यो रुद्रः प्रभा प्रभवतामपि ॥ २८ ॥ योगिनामपि यो योगी कारणानां

था उसको ब्रह्मलोकमेंसे स्वर्गलोकमें लाया गया था और तहाँ यह स्तवराज पहिले तण्डिको प्राप्त हुआ था, इससे यह तण्डिका रचा हुआ कहलाता है ॥ २३ ॥ इस स्तवराजको स्वर्गलोकसे तण्डि भूलोकमें लाये थे, यह स्तोत्र सब मङ्गलोंमें भी मङ्गलरूप है और सब प्रकारके पातकोंका नाश करने वाला है ॥ २४ ॥ हे महाभुज कृष्ण ! मैं तुमसे स्तोत्रोंमें सर्वोत्तम इस शंकरके स्तोत्रको कहूँगा, जो शंकर वेदोंके भी वेदरूप हैं, परसे भी पर हैं (अर्थात् जो इन्द्रियोंके विषय मन, बुद्धि, महत्तत्त्व और अव्यक्तोंसे भी पर हैं) ॥२५॥ जो (चक्षु आदि) तेजके तेजोरूप हैं, जो तपके भी तप हैं,जो शान्त चित्त वालोंकी भी शांति हैं, जो द्युति अर्थात् ज्ञानोंके भी द्युति-ज्ञान हैं ॥ २६ ॥ जो जितेन्द्रियोंके भी जितेन्द्रिय हैं, जो बुद्धिमानोंमें बुद्धिरूप हैं जो देवताओंके भी देवता हैं, और जो ऋषियोंके भी ऋषि हैं २७ जो यज्ञों (यज्ञभोक्ताओं) के भी यज्ञ (आराधनाके भोक्ता) हैं, जो कल्याणोंके भी कल्याण हैं, जो रुद्रोंकेभी रुद्र हैं और जो प्रभा वालोंकी प्रभारूप हैं ॥२८॥ जो ब्रह्मा आदि योगियों के भी योगी हैं अर्थात् ध्यान करते ही संकल्पमात्रसे रचने

च कारणम् । यतो लोकाः सम्भवन्ति न भवन्ति यतः पुनः २९
सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नां
शर्वस्य मे शृणु। यच्छ्रुत्वा मनुजव्याघ्र सर्वान्कामानवाप्स्यसि ३०
स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो वरः । सर्वात्मा सर्ववि-

वाले हैं, जो अव्यक्त आदि कारणोंके भी कारण हैं अर्थात् निष्कल हैं जिनसे संपूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिनमें लीन होकर प्राणी फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ २९ ॥ जो सब प्राणियोंके आत्मरूप हैं, जो अपार तेजस्वी हैं, ऐसे शंकरके एक सहस्र आठ नामोंको तू सुन ! हे मनुष्यव्याघ्र ! उन नामोंको सुनकर तू सब कामनाओंको प्राप्त करेगा ३० (इकतीसवें श्लोकसे शिवके एक सहस्र आठ नामोंका आरम्भ होता है, इन नामोंमें बहुतसे नाम दुबारा वैसे ही आते हैं और बहुतसोंके अर्थ भी एक ही हैं, परन्तु इससे किसीको पुनरुक्तिका सन्देह नहीं करना चाहिये, क्योंकि-एक ही प्रकारके अर्थ होनेपर भी भिन्न २ शब्द पढ़े हुए हैं और कहीं पर भिन्न २ अर्थ होनेपर भी एक ही प्रकारके शब्द हैं, इससे पुनरुक्ति नहीं समझनी चाहिये, क्योंकि-प्रत्येक शब्दसे अपूर्व पुण्यका लाभ होता है। इसप्रकार भिन्न २ शब्द और भिन्न २ अर्थोंका पाठ करनेवाले को भिन्न २ अपूर्व (पुण्य) मिलता है । यथा-सर्वात्मा पदका पाठ करनेसे जो पुण्य मिलता है, वह विश्वात्मा शब्दके पाठ करनेसे नहीं मिलता है । यदि सर्वात्मा पदके पाठसे विश्वात्मा पदके पाठका फल मिलजाय तो फिर वेदमें "अग्नये जुष्टं त्वा निर्वपामि" इसके स्थानमें " वन्हये त्वां जुष्टं निर्वपामि" इसका उच्चारण करनेसे भी वही पुण्य हो और शब्द तथा उसके भावका कुछ महत्व ही न रहे, इसलिये विधिपूर्वक कहेहुए शब्दका ही प्रयोग करना चाहिये, ऐसा न करनेसे भी

ख्यातः शर्वः सर्वकरो भवेत् ॥ ३१ ॥ जटी चर्मी शिखण्डी च

मांसकोंका नियम भंग होजायगा, अतः जो शब्द कहे हैं उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये, अर्थ भिन्न होनेपर यदि शब्द एक ही हो, तो उसको पुनरुक्ति नहीं माना जासकता। इन्द्र शब्दका अग्नि अर्थ नहीं है, तब भी 'ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते' ऐन्द्री ऋचासे गार्हपत्य नामक अग्निकी उपासना करनी चाहिये। इसप्रकार श्रुतिने विनियोग करके ऐन्द्री ऋचाका अग्निपरत्व दिखाया है। इसप्रकार शब्दके एक होनेपर भी अर्थ भिन्न २ होते हैं, यह बात इस शिवस्तोत्रकी व्याख्यामें दिखाई है यह बात हमने नीलकण्ठकी टीकाके आधार पर लिखी है। अब पाठकोंको प्रतीत होगा, कि–शब्द और अर्थका सम्बन्ध जानने की अति आवश्यकता है, असुरको राक्षस कहना और दैत्यको दानव कहना, यह भाषानुवाद नहीं माना जासकता, क्योंकि इन शब्दोंका भाव भिन्न २ होता है) १ स्थिर–चञ्चलता-रहित, कूटस्थ, नित्य २ स्थाणु–घरके खम्भकी समान सबके आश्रयभूत,इस संसारमण्डपके मूलस्तम्भ ३प्रभु–ईश्वर अन्तर्यामी, "प्रकृष्टं भवनं सत्ता यस्य" अर्थात् जिसकी सत्ता प्रकृष्ट(अतिश्रेष्ठ) है,उनका नाम प्रभु है,परमार्थसत्य अथवा "प्रकर्षेण भावयति विश्वं रचयति जानाति वा विश्वकर्ता" प्रकर्षसे भावना करने वाले, विश्वको रचने वाले अथवा जानने वाले विश्वकर्ता अथवा सर्वज्ञ ४ भीम–संहारकर्ता अर्थात् जिससे जगत् भयभीत होता है ५ प्रवर–श्रेष्ठ, भोग तथा मोक्षकी कामना वालोंके अति वरने योग्य ६ वरद–वर अर्थात् इष्ट वस्तुको देने वाले ७ वर–सबका आच्छादन करने वाले, श्रेष्ठ ८ सर्वात्मा सबका आत्मारूप, व्यापक, प्रत्यक्रूप,प्राणिमात्रका अन्तर्यामीरूप,आत्मा 'आप्नोति सर्वभोग्यं स्वार्थत्वेन लभते आदत्ते स्वीकरोति, अत्ति, भुंक्ते,

सर्वाङ्गः सर्वभावनः । हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ३२
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो ध्रुवः । श्मशानवासी भग-

अतति सततमेकरूपेण वर्तते इति आत्मा" जो सब भोग्य पदार्थों को स्वार्थभावसे दूसरोंसे ग्रहण करता है, पाता है, किसीके आश्रयसे पाता है, स्वीकार करता है,खाता है, उसका उपभोग करता है अथवा सदा एकरूप रहता है, वह आत्मा कहलाता है स्मृतिमें भी कहा है, कि-"यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानयम् । यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति गीयते" जो सब भोग्य पदार्थोंको प्राप्त करता है, जो भोग्य पदार्थोंको ग्रहण करता है;जो विषयोंका उपभोग करता है,वह सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण आत्मा कहलाता है ६ सर्वविख्यात-सब देशोंमें, सब प्राणियोंमें प्रत्यक्षरूपसे प्रसिद्ध१०सर्व-व्यापक,गीतामें भी कहा है,कि-सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः"११सर्वकर-विश्वके कर्ता,सर्व और सर्वकर इन दो नामोंसे शिवका उपादानत्व और निमित्तत्व सूचित किया है)१२भव-सबके उत्पत्तिस्थान तथा सबके प्रलयस्थानरूप॥३१॥ १३ जटी-जटाधारी १४ चर्मी-बाघका अथवा हाथीका चर्म ओढ़ने वाले १५ शिखण्डी-मयूरकी शिखाकी समान अपने मस्तक पर जटाजूटके अग्रभागको गूँद कर शिखाको धारण करने वाले १६ सर्वाङ्ग-सब जगत् जिनका अवयवरूप है ऐसे विराट रूप १७ सर्वभावन-विश्वके कर्ता१८हर-सबके संहारक १६ हरिणाक्ष-मृगके समान नेत्रों वाले २० सर्वभूतहर-सब प्राणियोंका संहार करने वाले २१ प्रभु-विश्वका पूर्णरीतिसे उपभोग करने वाले ॥ ३२ ॥ २२ प्रवृत्ति-उद्यमपूर्वक वर्ताव २३ निवृत्ति-निरुद्यमताका व्यवहार २४ नियत इन्द्रियोंको नियम में रखने वाले अर्थात् तपस्वी २५ शाश्वत-नित्य २६ ध्रुव अचल २७ श्मशानवासी-श्म अर्थात् शव जिसका आश्रय लेते हैं और

वान् खचरो गोचरोऽर्दनः ॥३३॥ अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः । उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ महारूपो महाकायो वृषरूपो महायशाः । महात्मा सर्वभूतात्मा

तहाँ जिसमें फिर उठना न पड़े इस प्रकार शयन करते हैं, वहां श्मशानमें जड़ देहकी राख होजाती है, और तहाँ आत्मा सुषुप्ति अवस्था अथवा विश्रामको नहीं भोगता, अतः यहाँ श्मशानशब्द से काशीका ग्रहण करना चाहिये, उसमें रहने वाले अर्थात् काशीवासी (अतः इस नाममें श्मशान शब्द गौण है और लक्षणासे काशीपुरीका वाचक है) क्योंकि-यह प्रसिद्ध है,कि-तहाँ मरण पाने वालोंका फिर जन्म नहीं होता है) २८ भगवान्-छः प्रकारके ऐश्वर्यों वाले,छः प्रकारके ऐश्वर्य इस प्रकार हैं "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्य च धर्मस्य षण्णां भग इतीरणा" अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म छः भग जिसमें होते हैं वह भगवान् कहलाता है २९ खचर-हृदयाकाशमें रहने वाले ३० गोचर-इन्द्रियोंमें घूमने वाले अथवा इन्द्रियोंके विषयोंका उपभोग करने वाले ३१ अर्दन-पापीको पीड़ा देने वाले ॥३३॥ ३२ अभिवाद्य-सबके नमस्कार करने योग्य अथवा स्तुति करने योग्य ३३ महाकर्मा-सृष्टि आदि महाकर्म करने वाले ३४ तपस्वी तपको धन मानने वाले ३५ भूतभावन-आकाश आदि भूतोंको संकल्पमात्रसे रचने वाले ३६ उन्मत्तवेशप्रच्छन्न-दिगम्बर आदि गुप्तवेशसे जाननेमें न आने वाले ३७ सर्वलोकप्रजापति-सब लोकोंके तथा प्रजाके पति ॥३४॥ ३८अपरिच्छेद्य रूपवाले३९महाकाय स्थूलरूप वाले,विराटरूपधारी ४० वृषरूप-वृष अर्थात् धर्मस्वरूप४१ महायशाः-महायश वाले, श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"यस्य नाम महद्यशः"४२महात्मा-महामन वाले४३सर्वभूतात्मा-

विश्वरूपो महाहनुः ॥३५॥ लोकपोलोन्तर्हितात्मा प्रसादो हय-गर्दभिः । पवित्रं च महांश्चैव नियमो नियमाश्रितः ॥ ३६ ॥ सर्वकर्मा स्वयंभूत आदिरादिकरो निधिः । सहस्राक्षो विशा-

सब प्राणी जिनके संकल्परूप हैं ४४ विश्वरूप-व्यापक रूप वाले अथवा सर्वत्र प्रकट होने वाले ४५ महाहनु-विश्वका ग्रास करनेनेके लिये बड़े बड़े ओंठों वाले ॥ ३५ ॥ ४६ लोकपाल-इन्द्र आदि लोकपालरूप ४७ अन्तर्हितात्मा-अविद्याकल्पित अहंकार आदिसे तिरोहित होगया है अखण्ड एकरसस्वभाव जिनका ऐसे ४८ प्रसाद-आनन्दस्वरूप ४९ हयगर्दभि-रथमें जुती हुईं खच्चरियें जिनको वहन करती हैं ऐसे अग्निस्वरूप। हय अर्थात् घोड़ा और गर्दभी-अर्थात् गधैया इन दोनोंके समागमसे उत्पन्न सन्तान हयगर्दभि अर्थात् खच्चर कहलाती है, वेदमें लिखा है, कि-"रुद्रो वा एष यदग्निः" यह रुद्र अग्निस्वरूप हैं। और "अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्" अग्नि खच्चरोंसे जुते हुए रथमें बैठ कर युद्धस्थलको चले, इन दो श्रुतियोंसे हयगर्दभि नामकी पुष्टि होती है ५० पवित्र-संसार-रूपी वज्रके घावसे बचाने वाले ५१ महान्-पूज्य ५२ नियम-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नामक नियमोंसे प्राप्त होने योग्य ५३ नियमाश्रित-नियमोंके आश्रयरूप, नारायण,दक्षिणामूर्ति आदि रूप धारण करके नियमोंका आश्रय लेने वाले ॥३६॥ ५४ सर्वकर्मा-सब शिल्पोंके आचार्य विश्वकर्मा ५५ स्वयंभूत-नित्यसिद्ध ५६ आदि-सबसे प्रथम ५७ आदिकर हिरण्यगर्भको उत्पन्न करने वाले, श्रुतिमें भी कहा है कि "स वै शरीरी प्रथमः," यह हिरण्यगर्भ ही प्रथम शरीर धारण करने वाला है ५८ निधिः-पद्म, शंख आदि अक्षय ऐश्वर्यरूप ५९ सहस्राक्ष-अनेक, नेत्र, हाथ पैर वाले अथवा इन्द्रस्वरूप ६०

लाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः ॥ ३७॥ चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः । अत्रिरत्र्या नमस्कर्त्ता मृगबाणार्पणोऽनघः॥ ३८ ॥ महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः । सम्वत्सरकरो मन्त्रः प्रमाणं परमं तपः ॥३९॥ योगी योज्यो महाबीजो महारेता महा-

विशालाक्ष-भूत आदि पदार्थोंको प्रकाशित करने वाली विशाल इन्द्रियों वाले अथवा विशाल नेत्रों वाले ६१ सोम-सोमलतारूप अथवा चन्द्ररूप ६२ नक्षत्रसाधक-नक्षत्रोंके साधकरूप अर्थात् यज्ञ आदि करने वालोंको सोमलोकमें नक्षत्रोंकी समान दिव्य शरीर देने वाले ॥ ३७ ॥ ६३ चन्द्र-चन्द्रस्वरूप ६४ सूर्य-सूर्यस्वरूप ६५ शनि-शनिरूप ६६ केतु-केतुरूप ६७ ग्रह राहु रूप ६८ ग्रहपति-अतिक्रूर ग्रह होनेसे ग्रहपति मंगल ६९ वर-वरण करने योग्य, पूज्य, बृहस्पति अथवा शुक्र, बृहस्पति शुक्रके अवतार हैं, मैत्रायणीय श्रुतिमें कहा है, कि-"बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वा" बृहस्पतिने शुक्रका अवतार लिया था ७० अत्रि-बुध ७१ अत्र्या नमस्कर्ता-अत्रिकी पत्नी अनुसूयाको दुर्वासारूपसे नमस्कार करने वाले ७२ मृगबाणार्पण-मृगका रूप धारण करने वाले, मृगरूप यज्ञ पर बाण फेंकने वाले ७३ अनघ-यज्ञका नाश करने पर भी दोषरहित ॥ ३८ ॥ ७४ महातपा-जगत्की रचना करनेमें समर्थ महान् अवलोकनरूप तप करने वाले ७६ अदीन-महामना सुग्रीव विभीषण आदिको प्रणाममात्रमें राज्य देने वाले ७७ दीनसाधक-शरणागतोंका भला करने वाले ७८ संवत्सरकर-ध्रुव आदि ज्योतिर्गणरूपसे संवत्सर आदि कालकी प्रवृत्ति करनेवाले ७९ मंत्र-मनन करने वालोंकी रक्षा करनेवाले प्रणवादिरूप ८० प्रमाण-वेद शास्त्र आदि प्रमाणरूप ८१ परमं तप-परमंतपो रूप, आत्म-ज्ञान देनेवाले योगधर्मरूप ॥ ३९ ॥ ८२ योगी योगनिष्ठ ८३

बलः। सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो बीजवाहनः ॥ ४० ॥ दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः । विश्वरूपः स्वयं श्रेष्ठो बलवीरो बलो गणः ॥४१॥ गणकर्त्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम

योज्य-परब्रह्ममें प्रविलाप करनेयोग्य ८४ महाबीज-कारणके भी कारणरूप ८५ महारेता-जड़ और मिथ्या अव्यक्तको महास्फूर्ति तथा सत्ता देनेवाले वीर्यवाले ८६ महाबल-श्रेष्ठ सामर्थ्यवाले ८७ सुवर्णरेता-सुवर्णरूप वीर्यवाले अग्निस्वरूप अथवा हिरण्मय ब्रह्माण्डको रचनेवाले ८८ सर्वज्ञ-मायाकी वृत्तिसे सबको जानने वाले ८९ सुबीज-सबके अविकारी बीजरूप ९० बीजवाहन-इस लोकमें तथा परलोकमें फिरनेके लिये अविद्या, काम और कर्म रूप बीजको वहन करनेवाले जीवरूप (आत्मा रथी है, शरीर रथ है अविद्या, काम, कर्म इस लोकमें और परलोकमें फिरनेके वाहन हैं)।४०।९१ दशबाहु-दश भुजावाले ९२ अनिमिष-पलक न मारनेवाले सदा जागृत ९३ नीलकंठ-तीनों लोकोंका संहार करने वाले; विषको कण्ठमें धारण करनेसे श्याम कण्ठवाले ९४ उमापति-ब्रह्मविद्याके पति अथवा ९५ विश्वरूप-जिनमेंसे बहुतसे रूप उत्पन्न होते हैं ९६ स्वयंश्रेष्ठ-स्वाभाविकरीतिसे श्रेष्ठ ९७ बलवीर पराक्रमसे त्रिपुर आदिकका नाश जैसे दूसरोंसे सिद्ध न हो सकने वाले कामोंको करने वाले ९८ अबलोगण-सामर्थ्य रहित-चेतनके विना चलन क्रियाको सहन न करने वाले, गणरूप अर्थात् पच्चीस जड़ तत्त्वरूप ॥ ४१ ॥ ९९ गणकर्ता-पच्चीस तत्त्वोंके गणोंके छब्बीसवें कर्तारूप तथा १०० गणपति-पच्चीस तत्त्वके नियन्ता १०१ दिग्वासाः-दिशारूपी वस्त्रको धारण करने वाले, नग्न रहने वाले, वास्तवमें अनन्त दिशा रूपी वस्त्र वाले,दारुक वनमें मुनियोंकी पत्नियोंको मोहमें डालने के लिये नग्न स्वरूपको धारण करने वाले, ईशावास्यरूप अर्थात्

एव च । मन्त्रवित् परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः ॥ ४२ ॥
कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान् । अशनी शतघ्नी

दिशाओंको अपने वस्त्रकी समान धारण कर सकने वाले १०२ काम-कामदेव अथवा अभिलाषारूप १०३ मन्त्रवित्-"इषे त्वोर्जे-त्वा" आदि मन्त्रोंके अर्थको जानने वाले अथवा इन मन्त्रोंसे जाननेमें आने वाले १०४ परममन्त्र-आत्मरूपी तत्त्वको देखने और जाननेके उत्तम विचाररूप (ऊपरके दोनों नाम अध्यारोप तथा अपवादरूप होनेसे) १०५ सर्वभावकर-जगत्के कारण-रूप १०६ हर-सम्पूर्ण जगत्को लय करनेके स्थान (पहिले जो हर शब्द आया है वह कालरूप सबके संहारकर्ता अर्थमें आया है और यहाँ जो हर शब्द आया है वह ज्ञानदृष्टिसे पढ़ा गया है शास्त्रमें चार प्रलय कहे हैं, ब्रह्माका अन्त होने पर महत् पर्यन्त सब कार्योंके नाशको प्राकृत लय कहते हैं, ब्रह्माके दिन के सायंकालमें तीनों लोकोंका नाश होजाता है वह दैनंदिन प्रलय कहलाता है, हम सबोंकी सुषुप्तिमें जो सबका नाश होता है वह नित्य प्रलय कहलाता है यह तीनों प्रलय सबीज अर्थात् उत्पत्ति गुण वाले हैं परन्तु तत्त्वज्ञान होने पर कारणके साथ कार्यका नाश होजाता है, और वह फिर उत्पन्न नहीं होता है यह आत्यन्तिकनाश नामक प्रलय कहलाता है और शास्त्रमें यह मोक्षके नामसे प्रसिद्ध है ॥४२॥ १०७ कमण्डलुधर-कमण्डलुको धारण करनेवाले १०८ धन्वी-धनुर्धारी १०९ बाणहस्त-हाथमें बाण धारण करने वाले ११० कपालवान्-कपालको धारण करने वाले, ब्रह्माके मस्तकको छेद कर उनका कपाल धारण करने वाले ११२ शतघ्नी-शक्तिको धारण करने वाले १११ अशनी-वज्रको धारण करने वाले ११३ खड्गी-खड्धारी ११४ पट्टिशी-पट्टिशधारी ११५ आयुधी-शूलरूपी आयुधधारी ११६ महान्-

खड्गी पट्टिशी चायुधी महान् ॥ ४३ ॥ स्रुवहस्तः सुरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः।उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा ४४ दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च । शृगालरूपः सिद्धार्थो

पूज्य ॥ ४३ ॥ ११७ स्रुवहस्त-हाथमें यज्ञपात्र स्रुवको धारण करने वाले ११८ सुरूप-सुन्दर रूपधारी ११६ तेज-तेजस्वी १२० तेजस्करोनिधि-भक्तोंको भण्डारकी समान अनन्त कान्ति देनेवाले १२१ उष्णीषी-पगड़ीधारी १२२ सुवक्त्र-सुन्दर मुख वाले १२३ उदग्र-तेजस्वी रूप वाले १२४ विनत-विनयवान् ॥४४॥ १२५ दीर्घ-अति ऊँचे १२६ हरिकेश-हरि अर्थात् इन्द्रियरूपी केश अर्थात् किरणों वाले अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा भिन्न २ विषयों के प्रकाशक अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन मूर्तियों वाले १२७ सुतीर्थ-शुभतीर्थरूप अर्थात् महागुरुरूप, भगवान् पतञ्जलि कहते हैं "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" क्लेश, कर्म, विपाक और आशयसे अलिप्त पुरुष ईश्वर कहलाता है और "तस्य वाचकः प्रणवः" प्रणव (ओंकार) उसका वाचक है और वह ओंकार पूर्वपुरुषोंका भी गुरु है १२८ कृष्ण-आनन्द और सत्तारूप 'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकस्तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते' कृषि-भूमिको कहने वाला शब्द है और ण निर्वृत्तिको कहने वाला शब्द हैं इन दोनोंके ऐक्यका नाम परब्रह्म है और उसको कृष्ण कहते हैं, और ब्रह्मोत्तरखण्डमें गोपशिशुको महादेवने वर दिया था कि मैं तुम्हारे वंशमें सातवीं पीढ़ीमें होऊँगा इससे कृष्ण का जो अवतार है वह महादेवजीका ही अवतार है ऐसा प्रतीत होता है १२९ शृगालरूप-वैश्यके अपमान करने पर उपवास करने वाले ब्राह्मणको शान्ति देनेके लिये इन्द्रने गीदड़का रूप धारण किया था यह बात मोक्षधर्मपर्वमें कही है वह शृगाल-

मुण्डः सर्वशुभंकरः ॥ ४५ ॥ अजश्च बहुरूपश्च गन्धधारी कपर्द्यपि । ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिंग ऊर्ध्वशायी नभःस्थलः ॥ ४६ ॥ त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः । अहश्चरो नक्तंच-

रूप इन्द्र और शिव अभिन्न हैं १३० सिद्धार्थ-जिनके सब प्रयोजन सिद्ध हैं १३१ मुण्ड-संन्यासी १३२ सर्वशुभंकर-सब प्राणियोंका शुभ करने वाले ॥ ४५ ॥ १३३ अज-अजन्मा (ब्रह्मा भी अज कहलाते हैं-और विष्णु भी अजन्मा कहलाते हैं वह मनुष्योंकी अपेक्षा अजन्मा हैं स्वयं अजन्मा नहीं हैं "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्, विष्णु रित्था परममस्य विद्वान् जातो बृहन्नाभपाति तृतीयं" इस श्रुति में ब्रह्मा विष्णु आदिको जन्मा हुआ बताया है इससे सिद्ध होता है कि-वे मनुष्य आदिकी अपेक्षा अजन्मा हैं वास्तवमें अजन्मा तो एक परमात्मा रुद्र ही हैं क्योंकि श्रुतिमें कहा है "अजात इत्येनं कश्चित् भीरुः प्रपद्यते रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन माम् पाहि", १३४ बहुरूप-अनेक रूपधारी १३५ गन्धधारी-केसर कस्तूरी आदिसुगन्धके धारक १३६ कपर्दी क अर्थात् जलको पिबति पीने वाले कप कहलाते हैं,ऋत अर्थात् ऐश्वर्यको ददाति देने वाले ऋद कहलाते हैं, जल पीने वाले और ऐश्वर्य देने वाले कपर्दी कहलाते हैं महादेवकी जटाजूटने आकाशमेंसे गिरती हुई गङ्गाजीको पहिले पिया था और पीछेसे भगीरथके प्रार्थना करने पर गङ्गाको निकलनेकी सामर्थ्य (ऐश्वर्य) दी थी अर्थात् शंकर ऐश्वर्य और सामर्थ्य देने वाले हैं १३७ ऊर्ध्व-रेता-जिनका वीर्य सदा ऊपरको चढ़ा रहता है अर्थात् जो अखण्ड ब्रह्मचर्यके पालक हैं जो मनुष्य ब्रह्मचर्य नहीं पालता है और ब्रह्मचर्यको त्याग देता है उसका वीर्य नीचेको गिर पड़ता है और ऊर्ध्वगामी नहीं होता और वीर्य शिथिल पड़ने

रस्तिग्मन्युः सुवर्चसः ॥ ४७ ॥ गजहा दैत्यहा कालो लोक-

से नीचेको रहता है और उसका लिङ्ग भी वीर्यके गिर जानेसे नीचेको गिर जाता है १३८, ऊर्ध्वलिङ्ग-जिनका लिङ्ग नित्य-ऊर्ध्व रहता है अर्थात् जिनमें सदा काम जाग्रत रहता है- अर्थात् नित्य ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे उनकी इन्द्रिय शिथिल नहीं होती सदा शंकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे इससे उनको ऊर्ध्वलिङ्ग कहा है १३९ ऊर्ध्वशायी-चित्त शयन करने वाले अर्थात् संयोगके समय पुरुषको अधोमुख होना पड़ता है परन्तु शंकर सदा ऊपरको मुख करके शयन करते थे अर्थात् वह स्त्रीसङ्गसे दूर रहते थे अनत ब्रह्मचर्य वाले थे इन तीन नामों से उमाने शिवको नहीं ग्रसा था और स्पर्श भी नहीं किया, शंकर असङ्ग कहलाते हैं, इसके तीन कारण हैं और वही तीन कारण इन तीनों अर्थोंमें दिखाये हैं १४० नभःस्थल-आकाशरूपी शक्तिके निवास स्थान; कहा भी है "शक्तिः शरीरमपि दैवतमन्त-रात्मा। ज्ञानं क्रिया करणमासनजालमिच्छा ॥ ऐश्वर्यमायतन-मावरणानि च त्वं। किं किं न यद्व भवसि देवि शशांकमौले ॥" १४१ जटी-तीन जटाओंको धारण करने वाले १४२ चीरवासाः चीथड़े पहिरने वाले १४३ रुद्र-सबके रुद्र अर्थात् प्राणरूप १४४ सेनापति-सेनापति १४५ विभु-व्यापक १४६ अहश्चर-दिनमें फिरने वाले देव आदिरूप १४७ नक्तञ्चर-रात्रिमें फिरने वाले राक्षसरूप १४८ तिग्ममन्यु-तीक्ष्ण क्रोध वाले १४९ सुवर्चस-अध्ययन तप आदिके तेजसे भरपूर ॥ ४७ ॥ १५० गजहा-गजासुरके मारने वाले (स्कन्दपुराणमें लिखा है, कि-वाराण-स्यां पुरा जातो गजरूपी महासुरः। जघ्ने तं कुञ्जरं भीममधृष्य-मपि शंकरः ॥,, अर्थात् बनारसमें गजासुर नामक एक महा-असुर था, वह भयंकर और अधृष्य था, तब भी उसको शंकरने

धाता गुणाकरः । सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्माम्बरावृतः ॥४८॥ कालयोगी महानादः सर्वकामश्चतुष्पथः । निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ॥ ४९ ॥ बहुभूतो बहुधरः स्वर्भानुरमितो गतिः नृत्यप्रियो नृत्यनर्तो नर्तकः सर्वलालसः ५० घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिरुहो नभः । सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो

मार डाला था) १५१ दैत्यहा-दैत्यसंहारक १५२ काल-मृत्यु अथवा सम्वत्सर आदिरूप १५३ लोकधाता-लोकोंके ईश्वर १५४ गुणाकर-दीनदयालुत्व, ज्ञान और ऐश्वर्य आदिकी खानरूप १५५ सिंहशार्दूलरूप-सिंह शार्दूल आदि हिंस्र पशु १५६ आर्द्रचर्माम्बरावृत-गजचर्मरूपी वस्त्रसे आवृत ॥ ४८ ॥ १५७ कालयोगी-कालको ठगने वाले योगी १५८ महानाद-हंसोपनिषद्‌में प्रसिद्ध अनाहत ध्वनिरूप १५९ सर्वकाम-सब कामनाओंके स्थानरूप १६० चतुष्पथ-जिनकी उपासनाके विश्व, तैजस, प्राज्ञ और शिवध्यान ये चार मार्ग हैं १६१ निशाचर-बेताल आदिरूप १६२ प्रेतचारी-प्रेतोंके साथ घूमने वाले १६३ भूतचारी-भूतोंके साथ घूमने वाले १६४ महेश्वर इन्द्र आदि ईश्वरोंसे भी बड़े ॥ ४९ ॥ १६५ बहुभूत-अस्ति नास्ति आदि अनेक प्रकारसे अवतार लेने वाले १६६ बहुधर-बड़े भारी प्रपञ्चके धारक १६७ स्वर्भानु-मूलाज्ञानरूप तम शब्दसे कहा जाने वाला राहु १६८ अमित-अनन्त व्यापक १६९ गति-मुक्त पुरुषोंके प्राप्त करने योग्य गति १७० नृत्यप्रिय ताण्डवनृत्यसे प्रेम करने वाले १७२ नर्तक-नचाने वाले १७३ सर्वलालस-सबके ऊपर प्रीति रखने वाले विश्वके बन्धु ॥५०॥ १७४ घोर-शिवके दो शरीर हैं घोर और अघोर । क्षुधा तृषा आदिसे घोर शरीर वाले हैं और सन्तोष दया आदिसे वह अघोर मूर्ति वाले हैं १७५ महातप-सृष्टिका संहार करनेमें समर्थ

ह्यतन्द्रितः ॥ ५१ ॥ अधर्षणो धर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशकः । दक्षयागापहारी च सुसहो मध्यमस्तथा ॥ ५२ ॥ तेजोपहारी बलहा मुदितोर्थो जितो वरः । गम्भीरघोषो गम्भीरो गम्भीर

महातप करनेवाले ७६ पाश अपनी मायासे दूसरोंको बाँधने वाले ७७ नित्य-ध्वंसरहित ७८ गिरिरुह—पर्वत पर आरूढ़ कैलासवासी ७९ नभ-आकाशकी समान संगरहित १८० सहस्रहस्त-हजारों हाथ वाले ८१ विजय-विजयरूप ८२ व्यवसाय-निश्चयात्मक उद्योग अथवा जयके हेतु ८३ अतन्द्रित तन्द्रारहित,तमोमयी वृत्तिप्रवृत्तिरहित॥५१॥८४अधर्षण-किसीसे तिरस्कृत न होने वाले ८५ धर्षणात्मा-भय देने वाले ८६ यज्ञहा-बलिके यज्ञका नाश करने वाले अथवा बुद्धका अवतार लेकर यज्ञोंका नाश करने वाले"विश्वं भुवनं चित्रं बहुधाजातं जायमानं च यत्, सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु" इस मंत्रके अनुसार विष्णु आदि सबको रुद्र मान कर यह कहा है ८७ कामनाशक कामको भस्म करने वाले ८८ दक्षयागापहारी-दक्षके यज्ञके नाशक८९ सुसह-अतिसहनशील शान्तगुणी१९०मध्यम-किञ्चित् सौम्य ॥५२॥ ९१तेजोपहारी-तेजका हरण करने वाले अतिक्रूर ९२ बलहा-इन्द्ररूपसे बल दैत्यके नाशक ९३ मुदित-कारणरूप से नित्य आनन्द पाने वाले ९४अर्थ-धनकी समान चाहने योग्य ९५ अजित-किसीसे जीतनेमें न आने वाले बाणासुरके साथ युद्धमें श्रीकृष्णने शिवकी आज्ञासे ही शिवको जीता था, अपने बलसे नहीं, जैसे श्रीकृष्णने अपने भक्त भीष्मकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये ही अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी थी ९६ अवर-जिनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ऐसे ९७ गम्भीरघोष-गम्भीर ध्वनि वाले ९८ गम्भीर-पहिचाने न जा सके ऐसे गम्भीर९९ गम्भीरबलवाहन-शत्रुओंको जिस सामर्थ्यका पताही नहीं लगता

बलवाहनः ॥ ५३ ॥ न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो वृक्षकर्णस्थितिर्विभुः ॥

ऐसी शक्ति वाले अथवा गम्भीर बलवाले नन्दि नामक वाहन वाले ॥५३॥ २०० न्यग्रोधरूप ऊर्ध्वभागमें मूल और नीचेको शाखावाले पीपलरूप अथवा संसारवृक्षस्वरूप १ न्यग्रोध-बटके नीचे दक्षिणामूर्तिरूपसे विराजमान अथवा वटपत्रमें शयन करने वाले विष्णुरूप २ वृक्षकर्णस्थिति-वटवृक्षके कानकी समान एक देश, पत्तेमें स्थिति करनेवाले, कितने ही यहाँपर वृक्षकल्पस्थिति नाम पढ़ते हैं उसका अर्थ यह है, कि-एक बीजमेंसे एक बटवृक्ष निकलता है और उसमेंसे बहुतसे बीज और उतने ही बटवृक्ष निकलते हैं इसप्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है इस प्रकार कार्य अनंत है, यह कार्य जबतक चलतारहता है तब तक के समयको कल्प कहते हैं, अर्थात् वृक्षकल्परूप स्थिति वाले संसार वृक्षका पालन करना जिनका कार्य है ऐसे शिव, परन्तु वह (कार्य) जब तक ज्ञान कम रहता है तब तक ही रहता है जब तक बीज ज्ञानाग्निसे नहीं भुनता है तब तक ही उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है यह कार्य अनिवार्य है और इससे ही उसको कल्प कहा है भुने हुए बीजमेंसे उत्पत्ति नहीं होती जब तक उत्पत्ति होती है तब तकके समयका नाम कल्प है, भगवान्ने मार्कण्डेयको जलप्रलयके समय संसाररूपी वटकल्प छोटा होने पर भी उसकी अनेक शाखायें हैं यह बात मायावी वटके बहानेसे अपनेमें दिखाई है जो नाम ब्रह्माके और विष्णुके हैं वे ही नाम शिवके भी हैं, शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, ब्रह्मा, संसारबन्धु, सर्वज्ञ और परमात्मा यह आठ नाम एक ही वस्तुका प्रतिपादन करते हैं विष्णु और ब्रह्मा शिवसे भिन्न नहीं हैं, अतः उन दोनोंके नामोंको शिवके ही नाम समझना चाहिये, हरिवंशमें कैलाशयात्राके वर्णनमें कहा है, कि-

सुतीक्ष्णदशनश्चैव महाकायो महाननः ॥ ५४ ॥ विष्वक्सेनो

"नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च। तान्येव मम मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥" हे गोविन्द ! तुम्हारे बड़े २ नाम जगत्में प्रसिद्ध हैं वे ही नाम मेरे भी हैं इसमें आपको कुछ विचार नहीं करना चाहिये, अतः सब पुराणोंमें शिव अथवा विष्णुके नामसे एक ईश्वर ही कहे जाते हैं शिव और विष्णुमें भेद माननेवाले और उनमें उत्तम और अनुत्तमभावकी कल्पना करनेवाले पाखण्डियोंके शिरपर वज्र गिरपड़े। सूतसंहितामें कहा भी है, कि—"ब्रह्माणं केशवं विष्णुं भेदभावेन मोहिताः। पश्यन्त्येकं न जानन्ति पाषण्डोपहता जनाः॥" अर्थात् क्या ब्रह्मा क्या केशव और क्या विष्णु इनमें जो भेद मानते हैं वे पुरुष मोहमें पड़ेहुए हैं और वे पाखण्डी हैं वे एकको ही देखते हैं और सबको नहीं जानते अर्थात् यह नहीं समझते कि—सब नाम ईश्वरके ही हैं, अतएव "माता धाता पितामहः रुद्रो बहुशिरा बभ्रुः" इन विष्णुके नामोंमें ब्रह्मा और रुद्रके नाम पढ़ेगये हैं तथा "महादेवोऽव्ययो हरिः गणनाथः प्रजापतिः" इन शिवके नामोंमें विष्णु और प्रजापतिके नाम पढ़ेहुए हैं इसप्रकार औरोंके नाम और जगह क्यों पढ़े हैं और उनमें गौण और मुख्य-भेदकी कल्पना ही नहीं उठ सकती इसका विशेष वर्णन आदिपर्वके उपोद्घातमें लिखा हुआ है ३ विभु-भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये हरि, हर, दुर्गा, गणेश, सूर्य, अग्नि और वायु आदि रूप धारण करनेवाले ४ सुतीक्ष्णदशन-अनेक ब्रह्माण्डरूपी चनोंको चाबनेमें समर्थ तीक्ष्ण दांतवाले ५ महाकाय-बड़ेभारी शरीरवाले महानन बड़ेभारी मुखवाले ॥ ५४ ॥ ७ विश्वक्सेन अपने प्रयाणके समय दैत्योंकी सेनाको चारों ओर भगा देनेवाले अथवा पूजनीय सेनावाले ८ हरि-गजेन्द्रका मोक्ष करके आपत्तिको हरनेवाले

हरिर्यज्ञः संयुगापीडवाहनः । तीक्ष्णतापश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित् ।। ५५ । विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः। हुताशनसहायश्च प्रशांतात्मा हुताशनः।५६उग्रतेजा महातेजा जन्यो

अथवा सर्वसंहारक ९ यज्ञ-सृष्टिको उत्पन्न करनेमें बीजरूप यज्ञ करनेसे जगत्की उत्पत्ति होती है यह बात कही भी है "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ अर्थात् अग्निमें दीहुई आहुति भली भाँति सूर्यके पास पहुँचती है और सूर्यसे वर्षा होती है और वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है फिर उससे प्रजाकी उत्पत्ति होती है २१० संयुगापीडवाहन-संग्राममें वृषभ वाहनके चिन्हसे चिन्हित ध्वजा वाले ११ तीक्ष्णताप-तीखे ताप वाले अर्थात् अग्निस्वरूप १२ हर्यश्व-हरि अर्थात् बड़े वेगवान् घोड़ों वाले सूर्य नारायणरूप १३ सहाय-जीवके मित्ररूप, यह बात "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,, इस मंत्रको लक्ष्य करके कही है १४ कर्मकालवित् दर्श आदि कर्मके कालको जानने वाले ॥ ५५ ॥ १५ विष्णुप्रसादित-विष्णुने चक्र पानेके लिये आपको प्रसन्न किया था १६ यज्ञ-विष्णुरूपी यज्ञस्वरूप, श्रुतिमें भी कहा है कि-"यज्ञो वै विष्णुः,, १७ समुद्र-समुद्रवेशी १८ वड़वामुख-समुद्रके जलको सोखने वाले वड़वानलरूप १९ हुताशनसहाय-वायु २० प्रशान्तात्मा-तरङ्गरहित समुद्रकी समान २१ हुताशन-अग्नि ॥५६॥ २२ उग्रतेजाः-दुःसह स्पर्श वाले २३ महातेजाः-महातेजस्वी २४ जन्य-संग्राममें उत्तम २५ विजयकालवित्--विजय के समयको जानने वाले (जो इतना भी नहीं जानता वह वीर होने पर भी पराजय पाता है)२६ज्योतिषामयनं-जिसमें ग्रहोंका तथा नक्षत्रोंका गमन वर्णित है ऐसे ज्योतिःशास्त्रके स्थान अर्थात् कालवेत्ता और काल २७ सिद्धि-जयरूप २८ सर्वविग्रह-काला-

विजयकालवित् । ज्योतिषामयनं सिद्धिः सर्वविग्रह एव च ॥ ५७ ॥
शिखी मुण्डी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्द्धगो बली । वेणवी पणवी
ताली खली कालकटंकटः ॥ ५८ ॥ नक्षत्रविग्रहमतिर्गुणबुद्धि-
र्लयोगमः । प्रजापतिर्विश्वबाहुर्विभागः सर्वगोमुखः ॥ ५९ ॥
विमोचनः सुसरणो हिरण्यकवचोद्भवः । मेढ्रजो बलचारी च

दिक सबके शरीरको धारण करने वाले ॥ ५७ ॥ २९ शिखी-शिखा वाले (गृहस्थ) २३० मुण्डी-संन्यासीका वेश धारण करने वाले, मुँडे हुए, शिखारहित, नैष्ठिक ब्रह्मचारी ३१ जटी-जटा धारण करने वाले वानप्रस्थ ३२ ज्वाली-अर्चिरादि मार्ग (गृहस्थी आदिके प्रार्थना करने योग्य) ३३ मूर्तिज-शरीरमें आविर्भाव पाने वाले ३४ मूर्धग-मस्तक अथवा सहस्रारमें रहने वाले ३५ बली-बलवान् ३६ वेणवी-वीन नामक बाजे वाले ३७ पणवी-पणव नामक बाजेको धारण करने वाले ३८ तली-ताली बजाने वाले ३९ खली-धान्यके स्थानस्वरूप ४० काल-कटंकट-यमको आवृत करने वाली ईश्वरीय मायाका भी आवरण करने वाले ॥५८॥ ४१ नक्षत्रविग्रहमति-ग्रह आदिके शरीररूप कालचक्रका अनुसरण करनेकी बुद्धि वाले अर्थात् ज्योतिषी ४२ गुणबुद्धि-गुणोंके कार्योंमें बुद्धिको आसक्त रखने वाले जीव-रूप ४३ लय-जिनमें सबका लय होता है ऐसे ईश्वर ४४ अगम-निश्चल, कूटस्थ, चैतन्यमात्र, गमनक्रियारहित ४५ प्रजापति-विराट ४६ विश्वबाहु संसार भरकी भुजाएँ उनकी ही भुजा हैं ४७ विभाग-व्यष्टिकार्यरूप ४८ सर्वग-समष्टिकार्यरूप ४९ अमुख-भोग के साधनरहित अभोक्ता॥५९॥२५० विमोचन संसारसे छुड़ाने वाले ५१ सुसरण-सुखसे प्राप्त करने योग्य ५२ हिरण्यकवचोद्भव-मायोपाधिक शरीरमें प्रकट होनेवाले ५३ मेढ्रज-उपस्थेन्द्रियमें प्रकट होने वाले ५४ वनचारी-वनमें फिरने वाले ५५ महीचारी-पृथ्वी

महोचारी स्र तस्तथा ॥ ६० ॥ सर्वतूर्यनिनादी च सर्वातोद्यपरिग्रहः । व्यालरूपो गुहावासी गुहो माली तरङ्गवित् ॥६१॥ त्रिदशस्त्रिकालधृत् कर्मसर्वबन्धविमोचनः । बन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां युधिशत्रुविनाशनः ॥ ६२ ॥ सांख्यप्रसादो दुर्वासाः सर्वसाधुनिषेवितः । प्रस्कन्दनो विभागज्ञो अतुल्यो यज्ञभागवित् ॥ ६३ ॥

पर घूमने वाले ५६ स्र त–सर्वत्र गति वाले ॥६०॥ ५७ सर्वतूर्यनिनादी–सब प्रकारके बाजे बजाने वाले ५८ सर्वतोद्यपरिग्रह–ताड़ने योग्य सब पशु (जीव) ही जिनका कुटुम्ब हैं ऐसे पशुपति ५६ व्यालरूप–शेषनाग २६० गुहावासी–गुफामें रहने वाले ६१ गुह–स्वामि कार्तिकेय ६२ माली–वनमालाधारी ६३ तरंगवित्–जलकी तरंगोंकी समान विषयसुख पाने वाले ॥६१॥ ६४ त्रिदश जिनसे प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश ये तीनों अवस्था होती हैं ऐसे ६५ त्रिकालधृक्–भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालकी वस्तुओंको धारण करने वाले ६६ कर्मसर्वबंधविमोचन–सञ्चित और क्रियमाण कर्मोंसे तथा अविद्या और काम इन सबके बन्धनोंसे छुटाने वाले ६७ असुरेन्द्राणांवन्धनः–असुरराज बलिको वामनावतार धर कर बाँधने वाले ६८ युधि शत्रुविनाशनः–युद्धमें शत्रुओंका संहार करने वाले ६६ सांख्यप्रसाद आत्मा अनात्माके विवेकज्ञानसे जाननेमें आने वाले अथवा सांख्यज्ञान देने वाले दत्तात्रेय २७० दुर्वासा–दुर्वासा ७१ सर्वसाधुनिषेवित–सब सत्पुरुषोंसे सेवित अथवा ब्राह्मणोंके राजा सोम ७२ प्रस्कन्दन–ब्रह्मा आदिको भी स्थानसे भ्रष्ट करने वाले ७३ विभागज्ञ–प्राणियोंको उनके कर्मानुसार यथोचित फलका विभाग करके देने वाले ७४ अतुल्य–जिनके समान कोई नहीं है, ऐसे ७५ यज्ञभागवित्–यज्ञके भाग हविषको जानने वाले ।६३। ७६ सर्ववास–सबमें निवास करने वाले ७७ सर्वचारी–सर्वत्र

सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः । हैमो हेमकरो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ॥ ६४ ॥ लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः । संग्रहो निग्रहः कर्त्ता सर्पचीरविवासनः ॥ ६५ ॥ मुख्यो मुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः । सर्वकालप्रसादश्च सुबलो बलरूपधृत् ॥ ६६ ॥ सर्वकामवरश्चैव सर्वदः सर्वतो-

फिरने वाले ७८ दुर्वासा-हाथीके रक्तसे सने हुए दूषित चमड़ेके वस्त्रको पहिरने वाले ७६ वासव-इन्द्र ८० अमर-देवता ८१ हैम-हिमालयवेशी ८२ हेमकर- सुवर्णके कर्ता ८३ अयज्ञ-कर्मरहित-८४ सर्वधारी-सब कर्मफलोंके धारणकर्ता ८५ धरोत्तम-पृथ्वीको धारण करने वाले दिग्गज, शेष ॥ ६४ ॥ ८६ लोहिताक्ष-रक्त नेत्रों वाले ८७ महाक्ष-विश्वव्यापक इन्द्रियोंको धारण करने वाले ८८ विजयाक्ष विजयधुरी वाले रथको हाँकने वाले ८६ विशारद-पण्डित ६० संग्रह - दासोंको स्वीकृत करनेवाले ६१ निग्रह -उद्धत इन्द्र आदिको दण्ड देनेवाले ६२ कर्ता-सबके कर्ता ६३ सर्पचीर निवासन-सर्पके वस्त्रको जाननेवाले ॥ ६५ ॥ ६४ मुख्य-प्रधान ६५ अमुख्य-देवताओंमें उत्तम अथवा सर्वदेवतामय ६६ देह-अत्यंत पुष्ट ६७ काहलि- काहल नामक वादित्रवाले ६८ सर्वकामद-सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ६६ सर्वकालप्रसाद-सब समय प्रसन्न रहनेवाले ३०० सुबल-दूसरेको पीड़ित न करनेवाले उत्तम बलवाले, दयालु १ बलरूपधृक्-बलरामका वेश धारण करने वाले ।६६। २ सर्वकामवर-सब काम्य पदार्थोंमें श्रेष्ठ अर्थात् मोक्ष ३ सर्वद-सब वस्तु देने वाले ४ सर्वतोमुख-चारों ओर मुख वाले ५ आकाशनिर्विरूप-आकाशकी समान जिनके शरीरमेंसे अनेक प्रकारके वर्ण बाहर निकलते हैं, आकाशमेंसे जैसे वायु, तेज, जल पृथ्वी आदि भूत निकलते हैं, ऐसे ही शंकरके शरीरमेंसे ज्योतिरात्मक सब निकला है, अतः आकाश और शिव एक हैं ६

मुखः । आकाशनिर्विरूपश्च निपाती ह्यवशः खगः ॥ ६७ ॥ रौद्र-
रूपोंऽशुरादित्यो बहुरश्मिः सुवर्चसी । वसुवेगो महावेगो मनो-
वेगो निशाचरः ॥ ६८ ॥ सर्ववासी श्रियावसी उपदेशकरो

निपाती--देहरूप गढ़ेमें प्रवेश करनेके स्वभाव वाले जीव ७ अवश देहका संबंध होनेसे अपरिहार्य दुःख आदिके साथ संबंध रखने वाले ८ खग-हृदयाकाशमें रहने वाले ॥६७॥ ६ रौद्ररूप--भयंकर आकार वाले १० अंशु--एक देवता ११ आदित्य- उसके सहचारी भग उपनाम वाले, ब्राह्मणमें लिखा भी है, कि--"तस्या अंशुश्च भगश्च जायेताम्,, १२ बहुरश्मि--सूर्य १३ सुवर्चसी--सुंदर तेजस्वी १४ वसुवेग–वायुकी समान वेगवाले १५ महावेग–वायुसेभी अधिक वेगवान् १६ मनोवेग मनसे भी अधिक वेगवान् श्रुतिमें भी कहा है, कि–मनसो जवीयः १७ निशाचर–अविद्या आदि विषयोंका उपभोगकरने वाले।६८। १८ सर्ववासी- सब शरीरोंमें वसनेवाले १९ श्रियावासी -ऋक्, यजु, साम आदि विद्याओंके निवासी २० उपदेशकर- वेदोंके उपदेशक २१ अकर--मौन रहनेका उपदेश देने वाले । शास्त्रमें दक्षिणामूर्ति शंकरका वर्णन करते हुए कहा है, कि--"चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा । गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः । बटवृक्षके नीचे आश्चर्य जनक दृश्य देखनेमें आया, कि--शिष्य वृद्ध थे और गुरु तरुण थे, गुरुका व्याख्यान मौनरूप ही था, तब भी शिष्योंका सन्देह दूर होगया था,, और पहिले वाष्कलिने वाध्वसे वारम्वार प्रश्न किया था, परन्तु वाध्व मौन ही बैठे रहे, और तीसरे प्रश्न पर बोले कि--तुझे खबर नहीं है, कि--यह आत्मा शान्त पदार्थ है, इस सब बातको ध्यानमें रख कर शंकरको (अकर) मौन रह कर उपदेश देनेवाले कहा है २२ मुनि मौन रहने वाले २३ आत्म-निरालोक--देहमेंसे अथवा उपाधिमेंसे बाहर निकलकर अवलोकन

करः । मुनिरात्मनिरालोकः संभग्नश्च सहस्रदः ॥ ६९ ॥ पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो विशां पतिः । उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः ॥ ७० ॥ वामदेवश्च वामश्च प्राग्दक्षिणश्च वामनः । सिद्धयोगी महर्षिश्च सिद्धार्थः सिद्धसाधकः ॥ ७१ ॥ भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विपणो मृदुरव्ययः महासेनो विशाखश्च

करनेवाले २४ संभग्न-भलीप्रकार सेवित २५ सहस्रद-अनन्त पदार्थ देनेवाले ॥६९॥ २६ पक्षी-गरुड़पक्षी २७ पक्षरूप-मित्ररूप से सहायता देने वाले २८ अतिदीप्त-अतिप्रकाशमान २९ विशांपति-सब प्रजाके पति सार्वभौम ३० उन्माद उन्माद कराने वाले ३१ मदन-मदमत्त करने वाले ३२ काम -इष्ट स्त्री आदि विषयाकार ३३ अश्वत्थ-संसारवृक्षरूप अथवा कामनाको पूर्ण करने वाले वृक्षस्वरूप ३४ अर्थकर-धनादि देने वाले ३५ यश-कीर्ति ३६ वामदेव-कर्मफलके दाता ३७ वाम-कर्मफलरूप अर्थात् विषयोंके संबन्धसे होने वाले आनन्दस्वरूप ३८ प्राक्-सबके आदिरूप ३९ दक्षिण-तीनों लोकोंका उल्लंघन करनेमें समर्थ ४० वामन-बलिके बन्धनकर्ता ४१ सिद्धयोगी-सनत्कुमारादिकरूप ४२ महर्षि-वसिष्ठ आदि आकार वाले ४३ सिद्धार्थ-ऋषभ दत्तात्रेय आदि आकार वाले ४४ सिद्धसाधक-ज्ञान होने पर संन्यासकी इच्छा करने वाले याज्ञवल्क्य आदि ॥ ७१ ॥ ४५ भिक्षु-वेशधारी भिक्षुक ४६ भिक्षुरूप-परमहंसरूप ४७ विपण-धनादिरहित होने के कारण व्यवहाररहित ४८ मृदु-सब भूतोंको अभय देने वाले कोमलस्वभाव ४९ अव्यय-विकाररहित ५० महासेन-देवताओंके सेनापति ५१ विशाख-देवसेनापतिके सहायक ५२ षष्टिभाग-साठ तत्त्वोंका उपभोगकरनेवाले, माण्डूक्य आदि उपनिषद्में ये साठ तत्त्व इसप्रकार दिखाए हैं, जाग्रत अवस्थामें जो प्रज्ञान बाहरसे प्रतीत होता है, वह सात प्रकारका है शब्द,

पृष्ठिभागो गवां पतिः॥७२॥वज्रहस्तश्च विष्कंभी चमूस्तंभन एव च । वृत्तावृत्तकरस्तालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ७३ ॥ वाचस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः । ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी

रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श तथा मन्तव्य और बोद्धव्य और अपने संकल्पमेंसे जो विषय उत्पन्न होते हैं वे उन्नीस हैं पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, और चित्त स्थूल, भोग्य, शब्दादि आश्रय भूत यह सब कुल उनतीस प्रकारका प्रज्ञान जाग्रत अवस्थाका है इसीप्रकार स्वप्नावस्थाका भी अन्तर्मुख प्रज्ञान उनतीस प्रकारका है और सुषुप्ति तथा चित्त यह दो मिलकर साठ विषय होते हैं इन साठ भोग्य विषयोंका परमात्मा उपभोग करता है और वह साक्षीरूप है इसलिये वह षष्टिभाग कहलाता है ५३ गवाम्पतिः-इन्द्रियोंका पालक ॥७२॥ ५४ वज्रहस्त-हाथमें वज्रको धारण करनेवाला इन्द्र ५५ विष्कंभी—विस्तारवान् ५६ चमूस्तम्भन-दैत्यकी सेना के स्तम्भक५७वृत्तावृत्तकर—युद्धमें रथको मण्डलाकार घुमानेवाले तथा शत्रुकी सेनाका नाश करके अक्षत शरीरसे लौटने वाले५८ ताल-संसारसिन्धुके तल अर्थात् आधारस्थानको जाननेवालेअर्थात् शुद्ध ब्रह्मवेत्ता ५९ मधु—वसन्तरूप३६०मधुकलोचन-कोयलकी समान नेत्रवाले अथवा पीले नेत्रवाले ॥७३॥ ३६१ वाचस्पत्य देवगुरोहित वाचस्पतिके पुत्र अथवा पुरोहितका काम करने वाले ३६२वाजसन-बाजसनेयी शाखाके प्रवर्त्तक और अध्वर्युके कामके कर्त्ता ३६३ नित्यमाश्रमपूजित—सदा चारों आश्रमोंमें पूजित ३६४ ब्रह्मचारी-ब्रह्मनिष्ठ ३६५ लोकचारी-ब्राह्मणादिकोंमें भिक्षाके लिये घूमनेवाले ३६६ सर्वचारी—सर्वत्र व्यापक निम्न लिखित श्रुतिसे आत्मज्ञान होनेके कारण सार्वात्म्य भावको प्राप्त हुए "य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवतीति"३६७ विचार-

विचारवित् ॥ ७४ ॥ ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकवान् । निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नंदिकरो हरिः ॥ ७५ ॥ नन्दीश्वरश्च नन्दी च नन्दनो नन्दिवर्द्धनः । भगहारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहः ॥ ७६ ॥ चतुर्मुखो महालिंगश्चारुलिंगस्तथैव च । लिंगाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः ७७

वित्-अन्तर्मुख होकर विहार करना जानने वाले अर्थात् विषयों से विरक्त ॥ ७४ ॥ ३६८ ईशान-अन्तर्यामी ३६९ ईश्वर-सर्वत्र व्यापक ३७०काल-सबके पुण्य तथा पापकी गिनती करने वाले चित्रगुप्तरूप ७१ निशाचारी-महाप्रलयरूप ब्रह्माकी रात्रिमें भी घूमकर प्रत्यगानन्दका अनुभव करने वाले ७२ पिनाकवान् पालन करनेवाले पिनाक नामक धनुषके धारणकर्त्ता ७३ निमित्तस्थ लक्ष्य रूपदैत्योंमें रहनेवाले अर्थात् अंतर्यामी ७४ निमित्त निमित्तकारणरूप ७५ नन्दि ज्ञानरूपी सम्पत्तिरूप ७६ नन्दिकर-सम्पत्ति देने वाले ७७ हरि-हनुमान्, रामके सहायक ॥ ७५ ॥ ७८ नन्दीश्वर-नन्दी नामक शिवके गणोंके ईश्वर ७९ नन्दी-नन्दीगणरूप ८० नन्दन-आनन्द देने वाले ८१ नन्दिवर्धन-अपनी दीहुई सम्पत्तिका भी नाश करने वाले ८२ भगहारी-इन्द्रियोंके ऐश्वर्य को हरने वाले ८३ निहन्ता-मृत्युरूप ८४ काल-चौंसठ कलाओं के निवासरूप ८५ ब्रह्मा-ब्रह्मास्वरूप ८६ पितामह-विष्णुके भी पितारूप ॥ ७६ ॥ ८७ चतुर्मुख—चार मुख वाले विधातारूप ८८ महालिंग-देवोंसे पूजित उत्तम लिंग (मूर्त्ति) वाले ८९ चारुलिंग-सुन्दर वेशको धारण करने वाले ९० लिंगाध्यक्ष-लीन अर्थात् गुप्त अर्थको जताने वाले प्रत्यक्ष आदिक लिंगोंके अर्थात् प्रमाणोंके अध्यक्ष, प्रवृत्ति और निवृत्तिके नियामक ९१ सुराध्यक्ष चक्षु आदिक प्रमाणोंके अधिष्ठाता देवताओंके भी अध्यक्ष (स्वामी) ९२ योगाध्यक्ष-इन इन्द्रिय देवताओंके हार्द-

बीजाध्यक्षो बीजकर्त्ता अध्यात्मानुगतोबलः । इतिहासः सकल्पश्च गौतमोऽथ निशाकरः ॥ ७८ ॥ दम्भो ह्यदम्भो वैदम्भो वश्यो वशकरः कलिः । लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्त्ता ह्यनौषधः ७९ अक्षरं परमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च । नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा

काशमें एकीकरणका नाम योग है श्रुतिमें भी लिखा है कि-"यत्र ह्येते सर्वे एकं भवन्ति" उस योगके भी अध्यक्ष अर्थात् शिवकी कृपासे ही योग प्राप्त होसकता है ९३ युगावह-पुण्य-पापकी न्यूनाधिकता वाले सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलिनामक युगोंके प्रवर्त्तक ॥ ७७ ॥ ९४ बीजाध्यक्ष अर्थात् फलदाता ९५ बीजकर्ता-धर्म और अधर्मके प्रवर्त्तक ९६ अध्यात्मानुगत-आत्मा का उपदेश देने वाले शास्त्रका अनुसरण करने वाले ९७ बल-धृति आदिक बल वाले ९८ इतिहास-महाभारत आदि स्वरूप ९९ सकल्प-प्रयोग विधिके विचार वाले मीमांसाशास्त्ररूप ४०० गौतम-तर्कशास्त्रके रचने वाले १ निशाकर-चान्द्रव्याकरणके बनाने वाले २ दम्भ शत्रुओंको दबाने वाले ३ अदम्भ-दम्भ-रहित ४ वैदम्भ-धर्मध्वजीपना दम्भ कहलाता है उससे रहित पुरुष विदम्भ कहलाते हैं उनके सर्वस्वरूप ५ वश्य-भक्ताधीन ६ वशकर-दूसरेको वशमें करनेकी सामर्थ्य वाले ७ कलि-देवताओंमें आपसमें विरोध डालने वाले ८ लोककर्त्ता-चौदह भौतिक-भुवनोंके रचने वाले ९ पशुपति-ब्रह्मासे लेकर स्तंभ पर्यन्त जीवरूपी पशुओंके पालक १० महाकर्ता पञ्चमहाभूतोंके भी रचयिता ११ अनौषध ब्रीहि आदिक धान्योंसे रहित अर्थात् अभोक्ता॥७९॥ १२ अक्षर-अव्यय १३ परब्रह्म-अन्न आदिके निकृष्ट आनन्दकी अपेक्षा श्रेष्ठ आनन्दरूप १४ बलवत् बलके अभिमानी देवता ४१५ शक्र शक्तिवान् अथवा इन्द्र १६ नीति-दण्ड आदि नीति १७ अनीति-अन्यायरूप १८ शुद्धात्मा-शुद्ध

शुद्धो मान्यो गतागतः ॥ ८० ॥ बहुप्रसादः सुस्वप्नो दर्पणोऽथ त्वमित्रजित् । वेदकारो मन्त्रकारो विद्वान् समरमर्दनः ॥ ८१ ॥ महामेघनिवासी च महाघोरो वशीकरः। अग्निज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो हविः ॥ ८२ ॥ वृषणः शंकरो नित्यं वर्चस्वी धूमकेतनः । नीलस्तथांगलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः ॥ ॥८३॥ स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः । उत्संगश्च

अन्तःकरण वाले १९ शुद्ध-दोपरहित २० मान्य-पूजनीय २१ गतागत-गमनागमनरूप संसार ॥ ८० ॥ २२ बहुप्रसाद-बड़ी कृपा करने वाले २३ सुस्वप्न-स्वप्नावस्थाके अभिमानी २४दर्पण-विश्वप्रतिबिम्बके दर्शनस्थानरूप २५ अमित्रजित्-भीतरी और बाहरी शत्रुओंको जीतने वाले २६ वेदकार-वेदोंके प्रकटकर्ता २७ मन्त्रकार-वेदके अतिरिक्त तन्त्र और पुराणोंके मंत्रों को रचने वाले२८विद्वान् -चतुर २९समरमर्दन-संग्राममें रगड़नेवाले ॥८१॥ ३० महामेघनिवासी-प्रलयकालके मेघोंमें अधिष्ठाता रूपसे निवास करनेवाले ३१ महाघोर-प्रलयकर्ता होनेसे महाभयंकर ३२ वशी-सबको वशमें रखनेवाले ३३ कर-संहारकर्ता ३४ अग्निज्वाल-अग्निकी समान ज्वालावाले ३५ महाज्वाल-अग्निसे भी अधिक तेजस्वी ३६ अतिधूम-प्रलयके अग्निका रूप धारणकरके सबको प्रज्वलित करते सघन धूमसे घिरेहुए ३७ हुत-होम करनेसे प्रसन्न होनेवाले अग्निस्वरूप ३८हविष्-दूध घी आदि हविरूप॥८२॥३९ वृषण-कर्म फलकी वर्षा करनेवाला धर्म जिनमें रहता है ऐसे ४० शंकर-सुख देनेवाले ४१ वर्चस्वी-तेजस्वी ४२धूमकेतन-धुएँकी ध्वजावाले अग्निस्वरूप ४३नील-मरकतवर्णवाले ४४ अङ्गलुब्ध-अपने अङ्ग शिवलिंगमें रहनेवाले ४५ शोभन-कल्याणकर्ता ४६ निरवग्रह-मनोरथको पूर्ण करनेवाले, प्रतिबन्धरहित ॥ ८३ ॥ ४७ स्वस्तिद-कल्याणप्रद ४८ स्वस्तिभाव-अच्छे अस्तित्व

महांगश्च महागर्भपरायणः ॥८४॥ कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियं सर्वदेहिनाम् । महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः ॥८५॥ महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो निशालयः । महान्तको महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः ॥८६॥ महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानभाक् । महावक्षा महोरस्को ह्यन्तरात्मा मृगालयः॥८७॥ लंबनो

वाले ४६ भागी—यज्ञमें भाग लेनेवाले ५० भागकर—यज्ञके हविष्के भाग करनेवाले ५१ लघु-फुर्तीले ५२ उत्संग—संगरहित ५३ महांग—बड़े अङ्गवाले ५४ महागर्भपरायण—गर्भकी उत्पत्ति में अवश्य शरण लेनेयोग्य कामदेवरूप ॥ ८४ ॥ ५५ कृष्णवर्ण-विष्णुरूप कृष्णवर्ण ५६ सुवर्ण-साम्बरूप श्वेत वर्ण ५७ सर्वदेहिनामिन्द्रियम्-सब देहधारियोंकी इन्द्रियरूप ५८ महापाद-बड़े चरणों वाले ५९ महाहस्त-बड़े हाथोंवाले ६० महाकाय-बड़े शरीरवाले ६१ महायशाः-अतितेजस्वी ॥ ८५ ॥ ६२ महामूर्धा-बड़े मस्तक वाले ६३ महामात्र-लम्बे तडंगे ६४ महानेत्र-विशालनेत्र ६५ महालय अविद्याके लयस्थान ६६ महान्तक-मृत्युकी भी मृत्यु ६७ महाकर्ण-बड़े कानवाले ॥ ८६ ॥ ६८ महोष्ठ-बड़े ओठ वाले ६९ महाहनु-मोटी ठोडीवाले ४७० महानास-बड़ी नासिकावाले ७१ महाकम्बु-मोटे कण्ठवाले ७२ महाग्रीव-मोटी ग्रीवा वाले ७३ श्मशानभाक्-देहबन्धनके काटनेवाले ७४ महवक्षाः विशाल वक्षःस्थलवाले ७५ महोरस्क-चौड़ी छातीवाले ७६ अन्तरात्मा-सबके अन्तरात्मारूप ७७ मृगालय-गोदीमें मृग को बैठानेवाले ॥ ८७ ॥ ७८ लम्बन-अनेक ब्रह्माण्ड जिनका अवलम्बन लेते हैं ७९ लम्बितोष्ठ प्रलयके समय जगत्को निगलनेके लिये ओठोंको लम्बे करनेवाले हैं ४८० महामाय-विशाल मायावाले ८१ पयोनिधि-क्षीरसमुद्ररूप ८२ महादन्त-बड़े २ दाँत वाले । ८३ महादंष्ट्र-बड़ी डाढ़ों वाले ८४ महजिह्व लम्बी जिह्वा

लम्बितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः । महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः ॥ ८८ ॥ महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः । प्रसन्नश्च प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः ॥८९॥ स्नेहनोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः । वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः। गण्डली मेरुधामा च देवाधिपतिरेव च । अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ॥ ९१ ॥ यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशो जंगमस्तथा।अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यःसुदर्शनः९२ उपकारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनच्छविः । नाभिर्नंदिकरो

वाले ८५ महामुख-महामुखवाले॥८८॥८६महानख-नृसिंहस्वरूप महारोमा-विशालरोम वराहरूप ८८ महाकोश-विशाल उदर वाले ८६ महाजट-विशाल जटाधारी ४६० प्रसन्न—प्रसन्नस्वरूप ४६१ प्रसाद —प्रसन्नतास्वरूप ४६२ प्रत्यय-अनुभवरूप ६३ गिरिसाधन युद्धमें विजयके साधनभूत पर्वतरूप धनुषधारी ॥८९॥ ६४ स्नेहन-पिताकी समान प्रजा पर दयालु ६५ अस्नेहन-रागरहित ६६ अजित-अपराजित ६७ महामुनि मननशील ६८ वृक्षाकार संसारवृक्षके आकारमें रहने वाले ६६ वृक्षकेतु-संसारवृक्षकी ध्वजासे ज्ञात होने वाले५००अनल-भोजन करने पर भी अतृप्त,अग्निस्वरूप१वायुवाहन-पवनवाहन॥९०॥२गण्डलीछोटे२ पर्वतों पर विहार करने वाले ३मेरुधामा-मेरुपर्वत पर रहने वाले ४ देवाधिपति-इन्द्र ५ अथर्वशीर्ष-अथर्वशीर्षस्वरूप ६ सामास्य-सामरूपी मुख वाले ७ ऋक्सहस्रामितेक्षण-सहस्रों ऋचारूपी अपार नेत्र वाले ॥९१॥ ८ यजुःपाद भुज-यजुर्वेदरूपी चरण और भुजाधारी ६ यह्य-उपनिषदरूप ५१० प्रकार-कर्म काण्डस्वरूप ११ जङ्गम-मनुष्य पशु आदिरूप १२ अमोघार्थयाचनाको सफल करने वाले १३ प्रसाद दयालु १४ अभिग्म्य सुखसे प्राप्त होने योग्य १५ सुदर्शन-सुन्दर दृश्यवाले॥ ९२ ॥

आश्रमस्थः क्रियावस्थो विश्वकर्ममतिर्वरः। विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः सुनिश्चलः ॥ ६७ ॥ कपिलः कपिशः शुक्ल आयुश्चैव परोऽपरः । गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यः सुविज्ञेयः सुशारदः॥६८ परश्वधायुधो देव अनुकारी सुबान्धवः । तुम्बवीणो महाक्रोध ऊर्ध्वरेता जलेशयः ॥६९॥ उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः । सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोनलः॥१००॥बंधनो

पूर्वाचार्योंसे सेवित ॥ ६६ ॥ ५३ आश्रमस्थ-चारों आश्रमोंमें धर्मरूपसे रहने वाले५४क्रियावस्थ-धर्मके पूर्णरूप, यागादिकरूप ५५विश्वकर्ममति-विश्वकर्माकी बुद्धिरूप ५६ वर लक्ष्मी आदिके वरने योग्य५७विशालशाख-दीर्घभुज५८ताम्रोष्ठरक्त ओष्ठ वाले५९ अम्बुजाल-समुद्ररूप६० सुनिश्चित-अतिनिश्चल पर्वतरूप॥६७॥ ६१ कपिल-कपिलस्वरूप ६२कपिश-पीलेवर्णवाले ६३ शुक्ल-शुक्लवर्ण त्रिपर्णस्वरूप ६४ आयु-आयुःस्वरूप ६५ पर-प्राचीन मूर्त्ति ६६ अपर-अर्वाचीनरूप ६७ गन्धर्व-गन्धर्वस्वरूप ७० सुविज्ञेय-सुखसे जाननेयोग्य ७१ सुशारद-सुंदर वाणीवाले६८ ७२ परश्वायुध-परशुरूप आयुधधारी ७३ देव-देवता ७४ अनुकारी--अनुकरणकरनेवाले ७५ सुबांधव-अर्जुन के मित्र, अच्छे बान्धववाले ७६ तुम्बवीण-तुम्बीनामक वीणा वाले ७७ महाक्रोध-प्रलयकालमें महाक्रोध करनेवाले ७८ ऊर्ध्वरेता-देवता और मनुष्योंसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मा विष्णु आदिरूप वीर्य वाले ७९ जलेशय-विष्णुरूपसे जलमें शयन करनेवाले ॥६९॥ ८० उग्र-भयंकररीतिसे सबको निगलनेवाले ८१ वंशकर-वंशके स्थापक ८२ वंशनाद-वंशी बजानेवाले ८३ वंश-वंशस्वरूप ८४ अनिन्दित-निन्दारहित ८५ सर्वाङ्गरूप-सर्वाङ्गसुन्दर ८६ मायावी-मायावान८७सुहृद्-दूसरेसे उपकार पानेकी आशा न रखकर भी उपकार करनेवाले८८ अनिल-वायुरूप८९अनल-

बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः । सयज्ञारिः सकामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः॥१०१॥ बहुधा निन्दितः शर्वः शंकरोशंकरोऽधनः । अमरेशो महादेवोः विश्वदेवः सुरारिहा ॥ १०२ ॥ अहिर्बुध्न्योनि-

अग्निस्वरूप॥१००॥ ५६० बन्धन संसाररूपी पाशसे बाँधनेवाले ६१ बन्धकर्ता-संसारके रचयिता ६२सुबन्धनविमोचन-मायारूपी पाशसे भलीप्रकार छुडानेवाले ६३ सयज्ञारि-दैत्योंके साथ रहनेवाले ६४ सकामारि-कामके शत्रु योगियोंके साथ रहनेवाले६५ महादंष्ट्र-बडी-डाढवाले ६६ महायुध-बड़े आयुधवाले ॥ १०१ ॥ ६७ बहुधानिन्दित-शंकर अतिमनोहर रूप धारण करके नग्न वेशसे दारुकवनमें गए थे, उस समय ऋषियोंने कि-यह पापी हमारी स्त्रियोंको मोहित करनेके लिये मोहकर रूप धारण करके आया है, यह समझ कर उनकी बहुत प्रकारसे निंदाकी थी ६८ शर्व-दारुकवनमें मुनियोंको मोहित करने बाले ६९ शंकर-सब जगत्की कुशल जिनके हाथमें है ऐसे ६०० शंकर-सब प्रकार की शङ्काओंका नाश करने बाले। दारुकवनमें जिन मुनियोंने शंकरकी निन्दाकी थी उनका भी करुणाके कारण कल्याण करनेवाले और तत्त्वज्ञानसे उनके संदेहोंको दूर करने वाले ६०१ अधन—दिगम्बर होनेसे धनरहित ६०२ अमरेश—देवराज महादेव-देवता और इन्द्रके पूज्य। साम्बपुराणमें कहा है, कि-"पूज्यते यः सुरैः सर्वैर्महांश्चैव प्रमाणतः। महेति धातुः पूजायां महादेवस्ततः स्मृतिः॥ सब देवताओंसे जो पूजा पाते हैं और जो प्रमाणमें महान् हैं तथा मह धातु पूजाके अर्थमें है,इससे शिव महादेव कहलाते हैं ४ विश्वदेव—विष्णुके भी आराधना करने योग्य देव ५ सुरारिहा-देवताओंके शत्रुओंके नाशक ॥ १०२ ॥ ६ अहिर्बुध्न्य-शेषस्वरूप ७ अनिलाभ-अप्रत्यक्ष वायु जसे स्पर्श से जाननेमें आता है,ऐसे ही विषयोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए अनु-

लाभश्च चेकितानो हविस्तथा । अजैकपाच्च कापाली त्रिशंकुरजितः शिवः ॥ १०३ ॥ धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा । धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः ।१०४। प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः । उषंगुश्च विधाता च मान्धाता भूतभावनः ॥ १०५ ॥ विभुर्वर्णविभावी च सर्वकाम-

भवरूप ८ चेकितान—एक समय ही सम्पूर्ण विशेषज्ञानवाले ९ हवि-हविरूप अथवा भोक्ताकी भोग्यवस्तु १० अजैकपाद्-ग्यारह रुद्रोंमेंके एक ११ कापाली-कपालरूप ब्रह्माण्डके अधीश १२ त्रिशंकु—तीन गुण शंकुकी समान जिनको अटकाये रखते हैं ऐसे जीवस्वरूप "न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं य एभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः" अर्थात् इस पृथिवीमें अथवा स्वर्गमें देवताओंमें भी ऐसा कोई सत्त्व(जीव) नहीं है जो इन तीनों गुणोंसे अछूता हो १३ अजित—तीनों गुणोंसे अजित १४ शिव—उपाधिरहित—शुद्ध ॥ १०३ ॥ १५ धन्वन्तरि-महावैद्यरूप १६ ॥ धूमकेतु उत्पात करनेवाले धूमकेतु रूप १७ स्कन्द-स्वामि कार्तिकेय १८ वैश्रवण—कुवेर १९ धाता-ब्रह्मा २० शक्र—इन्द्र २१ विष्णु—विष्णु २२ मित्र—सूर्य २३ त्वष्टा-विश्वकर्मा २४ ध्रुव—ध्रुव २५ धर—धारण करनेवाले॥१०४॥ २६ प्रभाव-प्रभाव नामक वसुरूप २७ सर्वगवायु-सर्वत्र व्यापक वायुरूप अर्थात् सूत्रात्मा, यह नाम सर्वग और वायु इन दो पदोंसे मिल कर बना है २८ अर्यमा—सूर्य २९ उपंगु—सर्वदाहक किरणों वाले सूर्यरूप ३० सविता—सूर्य ३१ रवि—सूर्य ३२ विधाता—नाना प्रकारसे पोषण करने वाले ३३ मांधाता—मां अर्थात् जीवको तृप्त करने वाले ३४ भूतभावन—प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले और प्राणियोंका कल्याण करने वाले॥१०५॥ ३५ विभु-अनेकरूपसे अस्तित्व भोगने वाले (श्वेत, पीत

गुणावहः। पद्मनाभो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रोनिलोनलः॥१०६॥बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचंचुरी। कुरुकर्त्ता कुरुवासी कुरुभूतो गुणौषधः॥१०७॥ सर्वाशयो दर्भचारी सर्वेषां प्राणिनां

आदि अनेक वर्णोंके प्रकाशक, श्रुतिमें कहा है, कि–"तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः" उस ब्रह्ममें श्वेत और नीलवर्ण दीखते हैं। योगसाधनाके समय अन्तर्मुख हुए योगी नाड़ियोंके मार्गमें रहने वाले ब्रह्मको भिन्न २ आकारमें देखते हैं। श्रुतिमें कहा भी है कि–"नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनां। एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥"योगमें नीहार,धूम,सूर्य,वायु,अग्नि,तारे, बिजली, स्फटिक, चन्द्रमा आदिके रूप दीखते हैं, वे ब्रह्मके स्वरूपको प्रकट करनेवाले हैं) ३६–वर्णविभागी–काले,श्वेत आदि अनेक रूप धारण करनेवाले३७सर्वकामगुणावह-ध्यान करने वालोंको उनकी कामनाके अनुसार सब विषय देनेवाले३८पद्मनाभ—पद्म अर्थात् विश्वके आयतनस्थान नाभिको मणिपूर चक्र कहते हैं,उनकी नाभिमें विश्वायतन है ३९ महागर्भ -जिनके गर्भमें ब्रह्मा आदि महापुरुष विराजते हैं, ऐसे ४० चन्द्रवक्त्र-सुन्दर मुखवाले ४१ अनिल-पवनरूप ४२ अनल-अग्निस्वरूप। पहिले वायु और अग्निके जो नाम कहे हैं वह द्रव्यरूप कहे हैं और यहाँ दुबारा जो उनके नाम पढ़े हैं वे उनके अभिमानी देवताके रूपमें कहे हैं॥ १०६॥ ४३ बलवान्-बली ४४ उपशान्त-उपशान्त४५ पुराण-पुराण स्वरूप ४६ पुण्यचञ्चु—पुण्यसे जाननेमें आनेवाले ४७ ई-लक्ष्मीरूप ४८ कुरुकर्ता-कर्म तथा उपासनाके स्थानरूप और कुरुक्षेत्रके कर्ता ४९ कुरुवासी—कर्म तथा उपासनामें निवास करनेवाले५० कुरुभूत-कुरुक्षेत्ररूप५१गुणौषध-ऐश्वर्य,ज्ञान,वैराग्य और धर्म आदिकी औषधकी समान उत्पत्ति करनेवाले॥१०७॥

पतिः । देवदेवः सुखासक्तः सद्सत्सर्वरत्नवित् ॥१०८॥ कैला-
सगिरिवासी च हिमवद्गिरिसंश्रयः । कूलहारी कूलकर्त्ता बहु-
विद्यो बहुप्रदः ॥ १०९ ॥ वणिजो वर्धकी वृक्षो बकुलश्चन्दन-
श्छदः । सारग्रीवा महाजत्रुरलोलश्च महौषधः ॥ ११० ॥
सिद्धार्थकारी सिद्धार्थश्छन्दोव्याकरणोत्तरः । सिंहनादः सिंह-
दंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः ॥ १११ ॥ प्रभावात्मा जगत्का-

५२सर्वाशय-सबके सुषुप्तिस्थानरूप अथवा सबके अन्तःकरणरूप ५३ दर्भचारी—दर्भ पर रक्खेहुए हविष्का भोजन करनेवाले ५४ सर्वप्राणिपति सब प्राणियोंके स्वामी ५५ देवदेव—देवेश्वर ५६ सुखासक्त—सुखमें आसक्ति न रखनेवाले ६५७सत्-कारण रूप ५८ असत्—कार्यरूप ५९ सर्वरत्नवित्रत्नरूप उत्तम वस्तु को पाने वाले ॥ १०८ ॥ ६६० कैलासगिरिवासी—कैलास पर्वत पर रहने वाले ६१ हिमवद्गिरिसंश्रय हिमाचल पर आश्रय लेने वाले ६२ कूलहारी—महाप्रवाहसे तटों परके वृक्षोंको उखाड़ने वाले ६३ कूलकर्ता—महातालाबको बाँधने वाले ६४ बहुविद्य—अनेक विद्याओंके ज्ञाता ६५ बहुप्रद भक्तोंको बहुत देने वाले ॥ १०९ ॥ ६६ वणिज—वैश्यरूप ६७ वर्धकी बढ़ई ६८ वृक्ष संसारवृक्षस्वरूप ६९ बकुल—बकुलनामक वृक्षस्वरूप ७० चन्दन चन्दनरूप ७१ छद—सप्तपर्णरूप ७२ सारग्रीव—दृढ़ गर्दन वाले ७३ महाजत्रु-मोटी हँसली वाले ७४ अलोल-चञ्चलता रहित ७५ महौषध—व्रीहि यव आदि महौषधरूप ॥११०॥ ७६ सिद्धार्थकारी सिद्ध अर्थके कर्ता ७७ छन्दोव्याकरणोत्तर-वेदके व्याख्यानोंसे पुष्ट,सिद्धार्थ—सिद्धान्त अर्थरूप७८सिंहनाद-सिंहकी समान गर्जना करने वाले ७९ सिंहदंष्ट्र - सिंहकी समान डाढ़ वाले ६८० सिंहग—सिंह पर सवार ८१ सिंहवाहन—सिंह के वाहनवाले ॥ १११ ॥ ६८२ प्रभवात्मा—उत्तम सत्ता वाले

लस्थालो लोकहितस्तरुः । सारंगो नवचक्राङ्गः केतुमाली सभावनः ॥ १२ ॥ भूतालयो भूतपतिरहोरात्रमनिंदितः ॥ १३ ॥ वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः। अमोघः संयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारणः ॥१४॥ धृतिमान् मतिमान् दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः। गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरिः ॥ १५ ॥ हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम्। प्रकृष्टारिर्महाहर्षो

८३ जगत्कालस्थाल—जगत्का ग्रास करने वाले कालरूपी पात्रमें भोजन करनेवाले ८४ लोकहित-लोकका कल्याण करने वाले ८५ तरु-तारक ८६ सारंग-पक्षिस्वरूप ८७ नवचक्राङ्ग-नवीन हंसस्वरूप ८८ केतुमाली-शिखारूप ध्वजासे शोभायमान मयूर अथवा कुक्कुटरूप ८९ सभावन-सभास्थानकी रक्षा करने वाले ॥ ११२ ॥ ९० भूतालय-प्राणिमात्रके निवासस्थान ९१ भूतपति-भूतोंके अध्यक्ष ९२ अहोरात्र-दिवसरात्रिस्वरूप ९३ अनिन्दित-शुद्धचैतन्यस्वरूप ॥११३॥ ९४ सर्वभूतानां वाहिता-सब प्राणियोंका वहन करने वाला ९५ सर्वभूतानां निलय-सब प्राणियोंके आश्रयस्थानरूप ९६ विभु-व्यापक ९७ भव-तीनों कालमें अस्तित्व वाले ९८ अमोघ-निष्फलतारहित ९९ संयत-धारणा, ध्यान और समाधिवाले ७०० अश्व-उच्चैःश्रवा १ भोजन-अन्नदाता २ प्राणधारण-सबके प्राण धारण करने वाले ॥ ११४ ॥ ३ धृतिमान्-धैर्यधारी ४ मतिमान्—बुद्धिमान् ५ दक्ष-उत्साही ६ सत्कृत-आदरणीय ७ युगाधिप-धर्म और अधर्म का फल देने वाले ८ गोपालि-इन्द्रियोंके पालक ९ गोपति-किरणोंके स्वामी १० ग्राम-समुदायरूप ११ गोचर्मवसन-गोचर्म ओढ़ने वाले १२ हरि-भक्तोंके दुःख हरने वाले ॥११५ ॥ १३ हिरण्यबाहु-सुवर्णसरीखी सुन्दर भुजा वाले १४ प्रवेशिनां गुहापाल-बहुत समय तक काष्ठकी समान स्थिर बैठने वाले योगियों

जितकामो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥ गांधारश्च सुवासश्च तपःसक्तो रतिर्नरः । महागीतो महानृत्यो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ १७ ॥ महाकेतुर्महाधातुर्नैकसानुचरश्चलः । आवेदनीय आदेशः सर्वगन्धसुखावहः ॥१८॥ तोरणस्तारणो वातः परिधीपति खेचरः । संयोगो वर्धनो वृद्धो अतिवृद्धो गुणाधिकः ॥ १९ ॥ नित्य

के शरीरकी रक्षा करने वाले १५ मकृष्टारि-बलपूर्वक काम आदि शत्रुओंका संहार करने वाले १६ महाहर्ष-परमप्रीतिरूप १७ जितकाम-कामको जीतने वाले १८ जितेन्द्रिय-इन्द्रियोंको जीतने वाले ॥ ११६ ॥ १९ गांधार-स्वरविशेष २० सुवास कैलास नामक सुन्दर धाम वाले २१ तपःसक्त-तपमें आसक्ति रखने वाले २२ रति-प्रेमस्वरूप २३ नर-ब्रह्माण्डको प्राप्त कराने वाले विराट्रूप २४ महागीत-उत्तम रीतिसे वेदमें गाये हुए २५ महानृत्य-महानृत्य करने वाले २६ अप्सरोगणसेवित-अप्सराओंके गणोंसे सेवित॥ ११७॥ २७ महाकेतु -वृषभरूपी बड़ी भारी ध्वजा वाले ७२८ महाधातु -मेरुपर्वतरूप ७२९ नैकसानुचर-अनेक शिखरों पर घूमने वाले ७३० चल-दुष्टग्रहरूप ३१ आवेदनीय-वाणीसे अगोचर होने पर भी गुरुओंसे उपदेश पाने योग्य ३२ आदेश साक्षात् उपदेशरूप ३३ सर्वगन्धसुखावह-एक ही समय सब गन्धोंके अर्थात् विषयोंके सुखको भोगने वाले ॥१८॥ ३४ तोरण नगरके द्वाररूप ३५ तारण-जीतने वालोंको खाई आदि तराने वाले ३६ वात-पवनरूप ३७परिधि-खाई आदिरूप ३८ पतिखेचर-पक्षिराजगरुड़रूप ३९ संयोग—संसार वृद्धिके लिये स्त्रीपुरुषोंका संयोग कराने वाले कामरूप ७४० वृद्ध-ज्ञान ऐश्वर्य आदिसे वृद्ध" विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु शौर्यतः । वैश्यानां धनबाहुल्याच्छूद्राणां वयसाधिकः" विप्र ज्ञानसे बड़े माने जाते हैं, क्षत्रिय शौर्यसे बड़े माने जाते हैं, वैश्य

आत्मसहायश्च देवासुरपतिः पतिः । युक्तश्च युक्तबाहुश्च देवो दिवि सुपर्वणः ॥ १२० ॥ आषाढश्च सुषाढश्च ध्रुवोऽथ हरिणो हरः । वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः ॥ २१ ॥ शिरोहारी विमर्शश्च सर्वलक्षणलक्षितः । अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः ॥ २२ ॥ समाम्नायोऽसमाम्नायस्तीर्थदेवो महारथः ।

धनसे बड़े माने जाते हैं और शूद्र अवस्थासे बड़े माने जाते हैं ४१ अतिवृद्ध-सबमें वृद्ध ४२ गुणाधिक-गुणोंसे श्रेष्ठ ॥११९॥ ४३ नित्य आत्मसहाय—सदा आत्माकी सहायता वाले ४४ देवासुरपति - देवता और असुरोंके स्वामी ४५ पति-सब के स्वामी ४६ युक्त-संग्राम आदिमें युक्त ४७ युक्तबाहु-शत्रुके मर्दन करने योग्य दो भुजावाले ४८ दिवि सुपर्वणदेव-स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रके आराध्यदेव ॥ १२० ॥ ४९ आषाढ़-सबके सहने करने योग्य सामर्थ्यवाले ५० सुषाढ़-सुखसे सबके सहन करने योग्य सामर्थ्यवाले ५१ ध्रुव-चञ्चलतारहित ५२ हरिण-शुद्ध ५३ हर-शत्रुओंका नाश करनेवाले शूलधारी ५४ आवर्तमानोऽन्यो वपुः-स्वर्गमेंसे भ्रष्ट होने वालोंको शरीर देनेवाले ५५ वसुश्रेष्ठ-धनसे भी श्रेष्ठ ५६ महापथ-शिष्टाचाररूप उत्तममार्ग ॥१२१॥ ५७ शिरोहारी ब्रह्माके मस्तकके छेदनकर्ता ५८ विमर्श—विचारशील अर्थात् ब्रह्माके मस्तकको विचार करके काटने वाले ५८ सर्वलक्षणलक्षित—सामुद्रिकशास्त्रोंमें कहे सब शुभ लक्षणोंसे युक्त ५९ रथयोगी अक्ष—रथमें लगी हुई धुरीरूप ६० सर्वयोगी—सबका स्पर्श करनेवाले ६१ महाबल महाबली ॥१२२॥ ६२ समाम्नाय-वेदस्वरूप ६३ असमाम्नाय-स्मृति, इतिहास पुराणादिशास्त्रस्वरूप ६४ तीर्थदेव-तीर्थरूप तथा देवरूप अथवा तीर्थोंके देवरूप ६५ महारथ-पृथ्वीरूपी रथ वाले ६६ निर्जीव-अचेतन प्रपञ्च ६७ जीवन-अचेतन देहादिको

निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो बहुकर्कशः ॥ २३ ॥ रत्नप्रभूतो रत्नाङ्गो महार्णवनिपातवित् । मूलं विशालो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः ॥ २४ ॥ आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महायशाः । सेनाकल्पो महाकल्पो योगो युगकरो हरिः ॥ १२५ ॥ युगरूपो महारूपो महानागहनो वधः । न्यायनिर्वपणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः ॥ २६ ॥ बहुमालो महामालः शशि हरसुलोचनः ।

चैतन्य देने वाले ६८ मंत्र--प्रणवरूप अथवा मरे हुओंको जीवित करने वाले मंत्र ६९ शुभाक्ष-शान्त दृष्टि वाले ७७० बहुकर्कश-महाकठिन ॥१२३॥ ७१ रत्नभूत अनेक रत्नोंके भण्डाररूप ७२ रत्नांग--रत्नमय अंगों वाले ७३ महार्णवनिपानविद्-समुद्रसरीखे निपानोंको जानने वाले ७४ मूलभूः-संसारवृक्षके मूल ७५ विशाल-अतिशोभायमान ७६ अमृत-अमृत ७७ व्यक्ताव्यक्त-कार्यकारणाकार ७८ तपोनिधि-तपके भण्डार ॥ १२४ ॥ ७९ आरोहण-परमपद पर चढ़ना चाहनेवाले ८० अधिरोह-परमपदमें आरूढ़ ८१ शीलधारी-सदाचारी ८२ महायशाः-महायशस्वी ८३ सेनाकल्प-सेनाके आभूषण पराक्रम ८४ महाकल्प-दिव्य आभूषणों वाले ८५ योग-चित्तवृत्तिनिरोध ८६ युगकर-कल्पादि युगोंको अपने हाथमें रखनेवाले ८७ हरि-शरीरको एक देशसे दूसरे देशमें ले जानेवाले अर्थात् चरणाभिमानी अथवा त्रिविक्रम ॥ १२५ ॥ ८८ युगरूप-युगका वेश धारण करनेवाले ८९ महारूप-महान् होने पर भी अरूप अर्थात् निराकार ९० महानागहन-गजासुरका नाश करनेवाले ९१ वध-मृत्युस्वरूप ९२ न्यायनिर्वपण-धर्मानुसार मनोरथ पूर्ण करनेवाले ९३ पाद-शरणलेने योग्य ९४ पण्डित-परोक्षज्ञानी ९५ अचलोपम-तत्त्वज्ञानी ९६ बहुमाल-अनन्त माला वाले ९७ महामाल-चरणों तक लटकने वाली मालाको धारण करने वाले ९८ शशिहरसुलोचन-चन्द्रमाकी समान सुन्दर दृष्टि-

विस्तारो लवणः कूपस्त्रियुगः सफलोदयः ॥ २७ ॥ त्रिलोचनो विषण्णांगो मणिविद्धो जटाधरः । बिन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरः सर्वायुधः सहः ॥ २८ ॥ निवेदनः सुखाजातः सुगन्धारो महाधनुः । गन्धपाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम् ॥ २९ ॥ मन्थानो बहुलो वायुः सकलः सर्वलोचनः । तलस्तालः करस्थाली

वाले हर ९९ विस्तारो लवणः कूपः लवणके आच्छादन वाले कूपरूप, महाक्षीरसमुद्र स्वरूप ८०० त्रियुग-कलियुगसे बहिर्भूत १ सफलोदय-सफल अवतारको धारण करने वाले ॥ २७ ॥ २-त्रिलोचन शास्त्र, नेत्र तथा आचार्याकार तीन नेत्रोंसे देखे जासकने वाले ३ विषण्णांग-आठ प्रकारकी भूमि आदि मूर्ति रहित अर्थात् शुद्धभूमारूप, निराकार ईश्वरमें भी सूक्ष्मरूपसे मूर्तियोंका अन्वय है, उससे भी शिव अन्तरंग (पर) हैं, इससे शुद्धभूमा कहलाते हैं ४ मणिविद्ध-कानमें छिद्र वाले अर्थात् कुण्डल पहिरने वाले ५ जटाधर-जटाधारी ६ बिन्दु-अनुस्वार ७ विसर्ग-विसर्ग ८ सुमुख-सुन्दर मुख वाले ९ शर-बाण १० सुर्वायुध-सबके आयुधरूप ११ सह-सबको सहने वाले ॥१२८॥ १२ निवेदन-सब प्रकारकी वृत्तिसे रहित ज्ञान वाले १३ सुखाजात-सब वृत्तियोंका लय होने पर प्रकट होने वाले १४ सुगन्धार सुन्दर गन्धार देशमें उत्पन्न हुए १५ महाधनु-पिनाक नामक महाधनुषको धारण करने वाले १६ गन्धपाली-गन्ध अर्थात् सब सूक्ष्म प्रपञ्च वासनाओंका पालन करने वाले, सब प्राणियोंकी बुद्धिकी वासनारूप १७ भगवान्-षडैश्वर्यसम्पन्न, सर्वकर्मणामुत्थान-सब कर्मोंके उत्पत्तिस्थान ॥१२९॥ १८ मंथान-मंथानो बहुलो वायुः-संपूर्णजगत्का मथनकरनेमें समर्थ प्रलयकालके पवन रूप १९ सकल-सम्पूर्ण २० सर्वलोचन-सबके द्रष्टा २१ तलस्ताल हाथकी तलियोंसे उत्पन्न हुए ताल नामक वादित्ररूप २२ करस्था-

ऊर्ध्वसंहननो महान् ॥ १३० ॥ छत्रं सुच्छत्रो विख्यातो लोकः सर्वाश्रयः क्रमः । मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः ॥ ३१ ॥ हर्यक्षः ककुभो वज्री शतजिह्वः सहस्रपात् । सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः ॥३२॥ सहस्रबाहुः सर्वांगः शरण्यः सर्वलोककृत् । पवित्रं त्रिककुन्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः ॥३३॥ ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नी पाशशक्तिमान् । पद्म-

ली-थालियोंकी समान हाथ वाले २३ ऊर्ध्वसंहनन-दृढ़ शरीर वाले २४ महान् – अति ऊँची कायावाले ॥१३०॥२५ छत्र -छत्र २६सुच्छत्र-सुंदर छत्रवाले२७विख्यातो लोकः-प्राणिमात्रमें प्रसिद्ध २८ सर्वाश्रयः क्रमः-सबके आधारभूत २९ मुण्ड-मुण्डी ३० विरूप-भयंकर रूपवाले ३१ विकृत-जिनमें सब विक्रियायें सहज हैं ऐसे ३२ दण्डी-दण्डधारी ३३ कुण्डी-खप्परधारी ३४ विकुर्वण-कर्मसे प्राप्त न हो सकनेवाले ॥१३१॥ ३५ हर्यक्ष-सिंहकी समान नेत्रोंवाले ३६ ककुभ दिशाकार ३७ वज्री-वज्रधारी इन्द्र ३८ शतजिह्व सौ जिह्वावाले ३९ सहस्रपात् सहस्र चरणोंवाले तथा सहस्रमूर्धा- हजार मस्तकवाले४० देवेन्द्र-देवराज ४१ सर्वदेवमय-सर्वदेवतामय- ४२ गुरु-गुरुरूप ४३ सहस्रबाहु-सहस्र भुजाओंवाले ४४ सर्वांग-सर्वत्रव्यापक ४५ शरण्य-शरणागतकी रक्षा करनेवाले ४६सर्वलोककृत्-सब लोकोंको उत्पन्न करनेवाले४७पवित्र-पवित्र तीर्थ आदि ४८ त्रिककुत्मंत्र-तीन ककुद्की समान शक्ति,कीलक और बीज ये तीन जिनमें उच्चस्थानमें रहते हैं,ऐसे मन्त्राकार४९ कनिष्ठ-अदितिके पुत्रोंमें कनिष्ठपुत्र वामनस्वरूप८५०कृष्णपिंगल-कृष्ण हरि और पिंगलवर्णसे हर इसप्रकार हरिहररूपधारी ५१ ब्रह्मदण्ड-विनिर्माता-ब्रह्मदण्डके निर्माणकर्ता, वज्र प्रत्यक्ष का नाश करता है और ब्रह्मदण्ड तो अगोचर वस्तुका भी नाश कर डालता है, शंकर उस ब्रह्माण्डके रचने वाले हैं

गर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः ३४ गभस्तिर्ब्रह्मकृद्ब्रह्मी ब्रह्मविद्ब्राह्मणो गतिः। अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयम्भुवः ३५ ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातरंहा मनोजवः। चन्दनी पद्मनालाग्रः सुरभ्युत्तरणो नरः ॥ ३६ ॥ कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः

५२ शतघ्नीपाशशक्तिमान्-शतघ्नी, पाश और शक्तिको धारण करने वाले ५३ पद्मगर्भ-ब्रह्मा ५४ महागर्भ-विशाल उदर वाले ५५ ब्रह्मगर्भ-वेदको उदरमें धारण करने वाले ५६ जलोद्भव-एकाकार हुए समुद्रमेंसे प्रकट हुए ॥ १३४ ॥ ५७ ॥ गभस्ति-किरण वाले ५८ ब्रह्मकृत्-वेदके कर्ता ५९ ब्रह्मी-वेदका अध्ययन करने वाले ६० ब्रह्मवित्-वेदका अर्थ जानने वाले ६१ ब्राह्मण-ब्रह्मनिष्ठ ६२गति-ब्रह्मनिष्ठकी गति ६३ अनन्तरूप अपाररूपधारी ६४नैकात्मा-अनेक आकारोंको धारण करनेवाले६५स्वयंभुवस्तीक्ष्णतेजाः ब्रह्माका मस्तक काटनेसे ब्रह्माकी दृष्टिमें तेजस्वी ।१३५। ६६ ऊर्ध्वगात्मा-तीन प्रकारकी उपाधिसे रहित आत्मा वाले६७ पशुपति-जीवोंके ईश्वर ६८ वातरंहा-पवनकी समान वेग वाले ६९ मनोजव-मनकी समान वेग वाले ८७० चन्दनी-चन्दनसे चर्चित शरीर वाले ७१ पद्मनालाग्र-कमलनाल जिनका अग्रभाग है ऐसे अर्थात् कमलनालके मूलभूत (एक समय ब्रह्माजीने विचारा कि मैं अपनेको उत्पन्न करने वाले कमलनालकी तलीको देखूँ, तब वह कमलनालमार्गसे नीचेको उतरने लगे, परन्तु उसका अन्त उन्हें नहीं मिला, तब उन्हें पद्मनालके उत्पत्ति स्थान (शिव) का तो पता ही कैसे लग सकता है ७२ सुरभ्युत्तरण-सुरभि (कामधेनु) को उतारनेवाले एक समय (ब्रह्माजीने कहा, कि शिवके शिरको मैंने देखा है तब विष्णुने उनसे कहा, कि यदि तुमने देखा हो तो किसीकी साक्षी दो, तदनन्तर ब्रह्माने कामधेनु से कहा, कि तू मेरी गवाही देना, तब कामधेनुने ब्रह्माजीके भयसे

पिनाकधृत् । उमापतिरुमाकान्तो जान्हवीधृदुमाधवः ॥ ३७ ॥
वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः । महाप्रसादो दमनः

गवाही देदी, तव महादेवजीने कामधेनुको शाप दिया कि-तूने असत्य बोला है इससे तेरी सन्तान (अपवित्र) वस्तुको खावेगी इसप्रकार महादेवजीने सुरभिको उतारदयिा था, इससे महादेव सुरभ्युत्तरण कहलाते हैं) ७३ नर—जिनके अन्तका कोई भी पता नहीं लगा सका है ऐसे ७४ कर्णिकारमहास्रग्वी-कनेरके पुष्पोंकी मालाको धारण करने वाले ७५ नीलमौलि-मस्तक पर नीलमणिजटित किरीट वाले ७६ पिनाकधृत्-पिनाक नामक धनुषको धारण करने वाले, (पिताः प्राप्तः नाकः स्वर्गो येन स पिनाकः) स्वर्गको प्राप्त करने वाला पिनाक कहलाता है त्रिपुरासुर स्वर्गका राजा बन बैठा था, उस समय देवताओंने शिवके धनुषसे स्वर्गको फिर छीन लिया था, वह पर्वतरूप पिनाक नामक शंकरका धनुष था उसको धारण करने वाले शंकर पिनाकधृत् कहलाते हैं इन्द्रने जिस समय समुद्रके फेन मार कर नमुचिका नाश किया था, उस समय फेनमें वज्रने प्रवेश किया था, इसी प्रकार पर्वतमें भी पिनाकने प्रवेश किया था ७७ उमापति ब्रह्मविद्याके स्वामी ७८ उमाकान्त-ब्रह्मविद्याके वशीभूत ७९ जान्हवीधृक्—जन्हुकी पुत्री गङ्गाके धारण करने वाले ८० उमाधव—उमाके पति ॥ १३७ ॥ ८१—बराह पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहका अवतार धारण करने वाले ८२ वरद—वर देने वाले अथवा उत्तम अवतारोंसे जगत्का पालन करने वाले ८३ वरेण्य वरने योग्य ८४ सुमहास्वन-वेदमंत्रोंकी महागर्जना करने वाले हयग्रीवस्वरूप ८५ महाप्रसाद-भक्तों पर बड़ी दया करने वाले ८६ दमन दुष्टोंको दण्ड देने वाले ८७ शत्रुहा—शत्रुओंका संहार करने वाले ८८ श्वेतपिंगल-

शत्रुहा श्वेतपिंगलः ॥ ३८ ॥ पीतात्मा परमात्मा च प्रयतात्मा प्रधानधृत् । सर्वपार्श्वमुखस्त्र्यक्षो धर्मसाधारणो वरः ॥ ३९ ॥ चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा अमृतो गोवृषेश्वरः । साध्यर्षिर्वसुरादित्यो

श्वेत और पीले वर्ण वाले (शंकर अर्धनारीनटेश्वरका स्वरूप धारण करते हैं, तब उनका दाहिनी ओरका अर्धभाग श्वेत वर्ण का होता है और बाईं ओरका अर्धभाग पीला होता है) ॥ ३८ ॥ ८९ पीतात्मा-सुवर्णकी समान पीले वर्ण वाले ९० परमात्मा-आनन्दमात्रस्वरूप वाले अर्थात् अन्नमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशोंमें आनन्दमयकोशरूप ९१ प्रयतात्मा-शुद्ध चित्त वाले ९२ प्रधानधृक्-जगत्के कारणभूत प्रधानके अधिष्ठानरूप ९३ सर्वपार्श्वमुख-सब ओर मुख वाले अर्थात् पञ्चमुख ९४ त्र्यक्ष-सोम, सूर्य और अग्निरूप तीन नेत्र वाले ९५ धर्मसाधारणो वरः-पुण्यका अनुसरण कर प्रसन्न होने वाले ॥ ३९ ॥ ९६ चराचरात्मा-कर्ममार्गरूप और प्रसाद-मार्गरूप अथवा आवृत्तिमार्गरूप अर्थात् जन्म मरण देने वाले कर्ममार्गरूप और अनावृत्तिमार्गरूप अर्थात् मोक्षस्वरूप ९७ सूक्ष्मात्मा-ऊपर कहे हुए दोनों मार्गोंसे जाननेमें न आने वाले ९८ अमृत-मरणरहित अमर तथा गोवृषेश्वर-निष्काम धर्मके ईश्वर अर्थात् मोक्ष फल देने वाले ९९ साध्यर्षि-साध्य अर्थात् देवताओंके भी देव और उनके ऋषि अर्थात् आचार्य १०० आदित्यो वसुः-अदितिके पुत्र वसुरूप, उपरिचर नामक राजा वसुका ग्रहण न हो, इस लिये यहाँ वसुका आदित्य विशेषण दिया है १ विवस्वान्-जगत्को आच्छादित करने वाली किरणों के समूह वाले, जगत्को ढकने वाली किरणें विव कहलाती हैं, उन किरणोंके जालसे जगत्को ढकने वाले, जगत्को कर्ममें प्रेरित करने वाले अथवा जगत्को उत्पन्न करने वाले तथा यज्ञ

विवस्वान् सवितामृतः ॥१४०॥ व्यासः सर्गः सुसंक्षेपो विस्तरः पर्ययो नरः । ऋतुसम्वत्सरो मासः पक्षः संख्यासमापनः ॥४१॥ कला काष्ठा लवा मात्रा मुहूर्ताहःक्षपाः क्षणाः । विश्वक्षेत्रं प्रजा-बीजं लिंगमाद्यस्तु निर्गमः ॥ १४२ ॥ सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः । स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥४३॥

में जिसका रस काढ़नेमें आता है ऐसे सोमरूप २ व्यास-पुराण और इतिहासोंके रचयिता व्यास ३ सर्ग-पुराण आदिरूप, सुसंक्षेप-सूत्ररूप तथा विस्तार-भाष्यस्वरूप विस्तारवान् भी शिव ही हैं (यहाँ इन तीनों पदोंको एक माना गया है, होममें भी ऐसे मंत्र आते हैं "ओं सर्गाय सुसंक्षेपाय विस्तराय स्वाहा" ५ पर्ययः,नरः-समष्टि जीवरूप और वैश्वानररूप ४ ऋतु-यज्ञ ६ सम्वत्सर-वर्ष ७ मास-महीना ८ पक्ष-पखवाड़ारूप ६ संख्यासमापन-ऋतु आदिकी संख्याकी समाप्तिरूप अर्थात् संक्रान्ति और दर्श पौर्णमास आदिरूप ॥ १४१ ॥ १० कला-कलारूप ११ काष्ठा-काष्ठास्वरूप १२ लव-लवस्वरूप १३ मात्रा-मात्रा १४ मुहूर्तक्षपा-मुहूर्त,दिवस और रात्रिरूप १५ क्षण-कालके ऋतु आदि अवयवरूप १६ विश्वक्षेत्र-ब्रह्माण्डवृक्षके क्षेत्ररूप चिदात्मा १७ प्रजाबीज प्रजाके बीजरूप अर्थात् माया विशिष्ट चैतन्यरूप अव्यक्तरूप १८ लिंग-महत्त्वस्वरूप १६ आद्यो निर्गमः-प्रथम अङ्कुर अर्थात् अहमात्मक प्रथम अध्यासस्वरूप ॥ १४२ ॥ २० सत्-कारण २१ असत्-कार्य २२ व्यक्त इन्द्रियगम्य २३ अव्यक्त अहं न जानामि-अनुभवसे जाननेमें न आने वाले अज्ञानस्वरूप २४ पिता-पिता २५ माता-माता २६ पितामह-और पितामह-रूप २७ स्वर्गद्वार-स्वर्गके द्वार तपोरूप २८ प्रजाद्वार-प्रजाके द्वार रागाकार २६ मोक्षद्वार-वैराग्य ३० त्रिविष्टप-स्वर्गके साधन धर्म ॥ १४३ ॥ ३१ निर्वाण-मोक्षरूप ३२ ब्रह्मलोक-

निर्वाणं ह्लादनश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः। देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः ॥ ४४ ॥ देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः। देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः ॥४५॥ देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः। देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः॥ ४६ ॥ देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः। सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः ॥ ४७ ॥ उद्भिस्त्रिविक्रमो वैद्यो विरजो

सत्यलोक ३३ ह्लादन-आनन्दप्रद ३४ परागति-सत्यलोकसे भी उत्तम गति ३५ देवासुरविनिर्माता-देवता और असुरोंके उत्पादक ३६ देवासुरपरायण-देवता और असुरोंमें परायण रहने वाले ॥ १४४ ॥ ३७ देवासुरगुरु-देवता और दैत्योंके गुरु अर्थात् शुक्र और बृहस्पति रूप ३८ देव-विजयेच्छुरूप ३९ देवासुरनमस्कृत—देवता और दैत्योंसे नमस्कृत ४० देवासुरमहामात्र—देवता और असुरोंमें बड़े ४१ देवासुर-गणाश्रय-देवता और असुरोंके गणोंके आश्रयणीय ॥१४५॥ ४२ देवासुरगणाध्यक्ष-देवता और असुरोंके गणोंके स्वामी अर्थात् इन्द्र और विरोचनस्वरूप ४३ देवासुरगणाग्रणी-देवताओंके टोलोंके सेनापति स्वामि कार्तिकेयस्वरूप तथा दैत्याधिपति केशीरूप४४देवातिदेव-इन्द्रियोंका उल्लंघन करके प्रकाशवान् ४५ देवर्षि-नारद ४६ देवासुरवरप्रसाद-ब्रह्मा,रुद्र आदि देवताओंको और असुरोंको वर देने वाले॥१४६॥४७देवासुरेश्वर-देव और असुरोंके अन्तर्यामी ४८ विश्व-जगत्में निवास करने वाले अर्थात् जगत् गर्भस्वरूप ४९ देवासुरमहेश्वर—अन्तर्यामी ईश्वरके भी अधिष्ठान होनेसे महेश्वर ९५० सर्वदेवमय-सर्वदेवतामय ५१ अचिन्त्य—जिनके अतिरिक्त और कोई ध्यान करने योग्य नहीं है ऐसे ५२ देवतात्मा—देवताओंके अन्तरात्मारूप ५३ आत्मसंभव—स्वतः सिद्ध ॥ १४७ ॥ ५४ उद्भित्-फलको प्रकट

नीरजोऽमरः । ईड्यो हस्तीश्वरो व्याघ्रो देवसिंहो नरर्षभः ॥४८॥ विबुधोऽग्रवरः सूक्ष्मः सर्वदेवस्तपोमयः । सुयुक्तः शोभनो वज्री प्रासानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ४६ ॥ गुहाकान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्वपावनः । भृङ्गी भृङ्गप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः ॥१५०॥ अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः । ललाटाक्षो विश्वदेवो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ॥ ५१ ॥ स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रिय-

करने वाले अथवा उद्भिद् नामक यज्ञस्वरूप ५५ त्रिविक्रम-तीन चरणोंसे पृथ्वीको नापने वाले वामनस्वरूप ५६ वैद्य–विद्यावान् ५७ विरज–निर्मल ५८ नीरज–रजोगुणरहित ५६ अमर–नाशरहित ६० ईड्य–स्तुत्य ६१ हस्तीश्वर–काल हस्तीश्वरनामक वायव्य-लिंगरूप ६२ व्याघ्र—व्याघ्रेश्वर नामधारी, कलिंगदेशमें इस नामका एक लिंग है ६३ देवसिंह–देवताओंमें पराक्रमी ६४ नरर्षभ-मनुष्योंमें श्रेष्ठ ॥ १४८ ॥ ६५ विबुध–विशेष बुद्धिमान् ६६ अग्रवर–यज्ञके भागोंको पहिले ग्रहण करने वाले ६७ सूक्ष्म-दुर्लक्ष्य ६८ तपोमय तपःप्रधान ६६ सर्वदेवः-सर्वदेवतामय ७० सुयुक्त-उद्यत ७१ शोभन–कल्याणात्मक ७२ वज्री–वज्रधारी ७३ प्रासानां प्रभवः–प्रास नामक आयुधोंके उत्पत्ति स्थान ७४ अव्यय-एकाग्र चित्तसे प्राप्त करने योग्य ॥ १४६ ॥ ७५ गुह-स्वामि कार्तिकेय ७६ कान्त -क अर्थात् सुख आनन्द और अन्त अर्थात् सीमा अर्थात् आनन्द की पराकाष्ठारूप ७७ निजः–सर्ग अपनेसे अभिन्न ७८ पवित्र–पवि अर्थात् मृत्युसरीखे दुःखसे त्राण अर्थात् रक्षण करनेवाले ७६ सर्व पावन-ब्रह्मा आदि सबको पवित्र करनेवाले ८० भृंगी वृषभादि रूप ८१ भृंगप्रिय-पर्वतके शिखरपर प्रीति रखनेवाले ८२ बभ्रु-शनैश्चरस्वरूप ८३ राजराज-कुबेररूप ८४ निरामय-निर्दोष ॥ १५० ॥ ८५ अभिराम-प्रीति उत्पन्न करनेवाले ८६ सुरगण-देवताओंके समुदायरूप ८७ विराम-सबके उपरामस्थान ८८ सर्वसाधन-जिनको

वर्धनः । सिद्धार्थः सिद्धभूतार्थोऽचिन्त्यः सत्यव्रतः शुचिः ॥५२॥ व्रताधिपः परं ब्रह्म भक्तानां परमा गतिः । विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमान् श्रीवर्धनो जगत् ॥५३॥ यथा प्रदानं भगवानिति भक्त्या

पानेके लिये आश्रमोंके सब साधन आश्रयभूत हैं ऐसे ८९ ललाटाक्ष-मस्तकमें नेत्रवाले ९० विश्वदेव-ब्रह्माण्डमय गेंदोंसे खेलनेवाले ९१ हरिण-मृगस्वरूप ९२ ब्रह्मवर्चस-विद्या और तपसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मतेजको धारण करनेवाले ॥ १५१ ॥ ९३ स्थावराणां पतिः-स्थावरोंके स्वामी हिमाचलात्मक ९४ नियमेन्द्रियवर्धन-मन और इन्द्रियोंका निग्रह करके नाश करनेवाले अर्थात् मनरहित होकर समाधि लगानेवाले ९५ सिद्धार्थ-नित्यसिद्ध, अर्थात् मोक्षके अर्थी अर्थात् तत्त्वज्ञानार्थी ९६ सिद्धभूतार्थ-प्रथमसे सिद्ध मोक्षरूपी पदार्थको साधनेवाले ९७ अचिन्त्य-उपासनासे विचारमें न आनेवाले प्रत्यगात्मारूप ९८ सत्यव्रत-सत्य अर्थात् ब्रह्मके लिये व्रत अर्थात् तपस्या करनेवाले ९९ शुचिःनिर्मलचित्तः-निर्मल चित्तवाले १००० व्रताधिप व्रतके अधिपति, भिन्न २ व्रतों के फल देनेवाले १ पर-विश्व तैजस और प्राज्ञ इन अपर ब्रह्मसे पर अर्थात् तुरीयतत्त्व कहलानेवाले चौथे अद्वैत तत्त्वरूप २ ब्रह्म-देश, काल और वस्तुसे न नापे जा सकनेवाले ३ भक्तानां परमा गतिः भक्तोंकी कैवल्यगतिरूप ४ विमुक्त-देहान्त होनेपर विशेषण से मुक्त ५ मुक्ततेजाः लिंग शरीरसे रहित ६ श्रीमान्-योगरूपी लक्ष्मीसे सम्पन्न, भीष्मकी समान योगी मृत्युको जीतकर इच्छानुसार इस लोकमें ही रहते हैं अथवा मस्तककी नाडीसे ब्रह्मलोकमें जाते हैं और इस लोकमें ही लिंगशरीरको कवचकी समान त्यागकर विशुद्ध कैवल्यको पाते हैं ७ श्रीवर्धन-वेदत्रयीमें कही हुई कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्डरूप लक्ष्मीकी वृद्धि करने वाले ८ जगत्-अव्याकृतसे घटपर्यन्त सब नाशवान् वस्तुरूप "गच्छतीति

स्तुतो मया । यन्न ब्रह्मादयो देवा विदुस्तत्त्वेन नर्षयः ॥ ५४ ॥
स्तोतव्यमर्च्यं वंद्यं च कः स्तोष्यति जगत्पतिम् । भक्त्या त्वेवं
पुरस्कृत्य मया यज्ञपतिर्विभुः ॥ ५५ ॥ ततोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य स्तुतो
मतिमतां वरः । शिवमेभिः स्तुवन् देवं नामभिः पुष्टिवर्धनैः ॥ ५६ ।
नित्ययुक्तो शुचिर्भक्तः प्राप्नोत्यात्मानमात्मना ॥ ५७ ॥ एतद्धि
परमं ब्रह्म परं ब्रह्माधिगच्छति । ऋषयश्चैव देवाश्च स्तुवन्त्येतेन

जगत्" जो चला करता है अर्थात् रूपान्तरको प्राप्त होता रहता है, वह जगत् कहलाता है, अतः प्रधान आदि सब जगत् शब्दसे कहा जासकता है। कपिल मुनिके सिद्धान्तानुसार परब्रह्म पहिले स्थिर था फिर वह जगत्रूप होगया, इस प्रकार स्थिर भूआ ब्रह्ममें जगत्की कल्पना की गई है, इसी लिये-श्रुतिमें कहा है, कि-"आत्मैवेदं सर्वम्-यह सब आत्मारूप है" "ब्रह्मैवेदं सर्वम्-यह सब ब्रह्मस्वरूप है" "तत्त्वमसि-वह तू है" "अयमात्मा ब्रह्म-यह आत्मा ब्रह्मरूप है" इस प्रकार शास्त्रप्रसिद्ध अद्वैत ब्रह्मको जगत् शब्दसे कहा है ॥ १५३ ॥ इस प्रकार भगवान्के बहुतसे नामोंमेंसे एक सहस्र मुख्य२नामोंसे भक्तिपूर्वक मैंने, ब्रह्मा देवता और ऋषि भी जिनके स्वरूपको यथार्थरीतिसे नहीं जान सकते ऐसे भगवान्की स्तुति की है ।१५४॥ उन स्तुति करने योग्य, पूजनीय, तथा वन्दनीय जगत्पति शंकरकी स्तुति कौन करसकता है मैंने भक्तिभावपूर्वक शिवसे आज्ञा पाकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, यज्ञपति व्यापक शंकरकी स्तुति की है, पुष्टि अर्थात् पवित्रताको बढ़ाने वाले इन नामोंसे भगवान् शिवकी स्तुति करने वाला और सदा सावधान रह कर भीतर बाहरसे पवित्र रहने वाला पुरुष आत्म-रूप शिवको प्राप्त होता है१५५-१५७क्योंकि यह शिवसहस्रनाम परब्रह्मको प्राप्त करनेमें साधनभूत ब्रह्मविद्यारूप है, इन नामोंका पाठ करनेसे पुरुष परब्रह्मको प्राप्त करता है, ऋषि और देवता

तत्परम् ॥ ५८ ॥ स्तूयमानो महादेवस्तुष्यते नियतात्मभिः । भक्तानुकम्पी भगवानात्मसंस्थाकरो विभुः ॥ ५६ ॥ तथैव च मनुष्येषु ये मनुष्याः प्रधानतः । आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च बहुभिर्जन्मभिः स्तवैः ॥ १६० ॥ भक्त्या ह्यनन्यमीशानं परं देवं सनातनम् । कर्मणा मनसा वाचा भावेनामिततेजसः ॥६१॥ शयाना जाग्रमाणाश्च व्रजन्नुपविशंस्तथा । उन्मिषन्निमिषंश्चैव चिन्तयन्तः पुनः पुनः ॥६२॥ शृण्वन्तः श्रावयन्तश्च कथयन्तश्च ते भवम् । स्तुवन्तः स्तूयमानाश्च तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ६३ ॥ जन्मकोटिसहस्रेषु नानासंसारयोनिषु । जन्तोर्विगतपापस्य भवे भक्तिः प्रजायते॥६४॥ उत्पन्ना च भवे भक्तिरनन्या सर्वभावतः ।

इन नामोंसे परब्रह्म शिवकी स्तुति करते हैं ॥१५८॥पुरुष यदि अपने मनको नियममें रख कर महादेवकी स्तुति करता है, तो महादेव उस पर प्रसन्न होते हैं और भक्तों पर कृपा करने वाले व्यापक भगवान् उसको अपने आत्मामें स्थित कर लेते हैं अर्थात् मोक्ष देते हैं ॥ १५६ ॥ इसी प्रकार मनुष्योंमें उत्तम आस्थावान् और श्रद्धालुपुरुष आगेको प्रत्येक जन्ममें सर्वश्रेष्ठ परब्रह्मरूप सनातन ईशान देवकी भक्तिभावसे मन, वाणी तथा कायासे प्रीतिपूर्वक स्तुति करते २ महातेजस्वी होजाते हैं ॥ १६१ ॥ और वे पुरुष सोतेमें, जागतेमें, चलतेमें, बैठतेमें, पलक खोलतेमें, पलक मारतेमें तथा वारम्वार विचारतेमें शंकर की ही बात सुनते हैं, सुनाते हैं और कहते हैं तथा शंकरकी स्तुति करतेहुए स्वयं स्तुतिके पात्र बनते हैं और सन्तोप मानते हैं और आनन्दमें रहते हैं ॥ १६२-१६३ ॥ संसारमें अनेक योनियोंमें करोड़ोंवार जन्म लेते २ पापरहित होनेपर प्राणी शंकरकी भक्ति करसकता है ॥ ६४ ॥ यदि उसका प्रारब्ध अच्छा होता है, तो उसको सब साधन मिलजाते हैं और उसकी पूर्ण भावसे

भाविनः कारणे चास्य सर्वयुक्तस्य सर्वथा ॥ ६५ ॥ एतद्देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते । निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ ६६ ॥ तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम् । येन यान्ति परां सिद्धिं तद्भावगतचेतसः ॥ ६७ ॥ ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम् । प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात्तान्समुद्धरेत् ॥ ६८ ॥ एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम् । मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम् ॥६९॥ इति तेनेन्द्रकल्पेन भगवान् सदसत्पतिः । कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्ण तण्डिना शुभबुद्धिना ॥ १७० ॥ स्तवमेतं भगवतो ब्रह्मा स्वयमधारयत् । गीयते च स बुद्ध्येन ब्रह्मा शंकरसन्निधौ ॥ ७१ ॥ इदं पुण्यं

सब प्रकार जगत्के कारणभूत शंकरमें अनन्य भक्ति होजाती है अर्थात् उसकी "शिवोऽहम् स्वरूप अभेद-भावनावाली" भक्ति होजाती है ॥ ६५ ॥ रुद्रके ऊपर निश्चल, निर्विघ्न और अनन्य भक्ति होना यह बात देवताओंके लिये भी दुर्लभ है और मनुष्योंमें तो यह बात मिलती ही नहीं॥६६॥शंकरकी कृपा होने पर मनुष्योंकी शिव पर भक्ति होती है,शंकरकी कृपाहुए विना शंकररूप चैतन्यवाले पुरुष परमसिद्धिको नहीं पासकते६७जो पुरुष सवप्रकारसे महादेवकी शरण लेते हैं,वे ही महेश्वरको प्राप्त होते हैं और शरणागतवत्सल भगवान् शंकर उनको संसारसे छुड़ादेते हैं६८ (संसारमेंसे मुक्ति देने वाले शिवके अतिरिक्त) दूसरे देवता संसारमें से मुक्ति दिलाने वाले कार्योंका नाश कर डालते हैं, क्योंकि-तपोबलही मनुष्योंकी सबसे श्रेष्ठ शक्ति है ॥ १६९ ॥ हे कृष्ण ! इस प्रकार शुभ बुद्धिवाले इन्द्रकी समान तेजस्वी तण्डि ऋषिने कारण और कार्योंके पति, हाथीके चर्मको ओढ़ने वाले भगवान्की स्तुतिकी थी ॥१७०॥ ब्रह्माजीने शिवका यह स्तोत्र स्वयंभगवान् (शिव) से पाया था और शिवके सामने ही इस

पवित्रं च सर्वदा पापनाशनम् । योगदं मोक्षदं चैव स्वर्गदं तोषदं तथा ॥ ७२ ॥ एवमेतत् पठन्ते य एकभक्त्या तु शंकरम् । या गतिः सांख्ययोगानां व्रजन्त्येतां गतिं तदा ॥७३॥ स्तवमेतं प्रयत्नेन सदा रुद्रस्य सन्निधौ । अब्दमेकं चरेद्भक्तः प्राप्नुयां दीप्सितं फलम् ॥७४॥ एतद्रहस्यं परमं ब्रह्मणो हृदि संस्थितम् । ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय शक्रः प्रोवाच मृत्यवे ॥७५॥ मृत्युः प्रोवाच रुद्रेभ्यो रुद्रेभ्यस्तण्डिमागतम् । महता तपसा प्राप्तस्तण्डिना ब्रह्मसद्मनि ॥७६॥ तण्डिः प्रोवाच शुक्राय गौतमाय च भार्गवः । वैवस्वताय मनवे गौतमः प्राह माधवः ॥ ७७ ॥ नारायणाय साध्याय समाधिष्ठाय धीमते । यमाय प्राह भगवान् साध्यो नारायणोऽच्युतः ॥ ७८ ॥ नाचिकेताय भगवानाह वैवस्वतो

स्तोत्रको गाकर उस समय कहा था ॥ १७१ ॥ कि-यह स्तोत्र पुण्यरूप है, पवित्र है,सर्वदा पापका नाश करने वाला है मोक्षप्रद स्वर्गप्रद और सन्तोष देने वाला है॥१७२॥जो पुरुष अनन्यभक्ति के साथ शिवके इस स्तोत्रका पाठ करता है उसको सांख्यवेत्ता और योग-वेत्ताओंकी गति मिलती है ॥ १७३ ॥ शिवभक्त यदि एक वर्ष तक सदा रुद्रके सामने इस स्तोत्रका प्रयत्नपूर्वक पाठ करता है तो उसको इच्छित फल मिलता है ॥१७४॥ यह शिव-सहस्र नामक स्तोत्र परम रहस्यमय है, ब्रह्माजीके हृदयमें स्थित है, इस स्तोत्रको ब्रह्माजीने इन्द्रसे कहा था और इन्द्रने मृत्युसे कहा था ॥१७५॥ मृत्युने रुद्रोंसे कहा था, रुद्रोंने तण्डिसे कहा था, तण्डिने महातप करके ब्रह्मलोकमें इस स्तोत्रको पाया था।७६। तण्डिने शुक्रसे कहा था, शुक्रने गौतमसे कहा था और हे माधव ! गौतमने वैवस्वत मनुसे कहा था ॥१७७॥ तथा मनुने समाधिमें बैठे हुए बुद्धिमान् साध्यदेव नारायणसे कहा था, अपने स्वरूप में रहने वाले साध्यदेव भगवान् नारायणने यमसे कहा था ७८

यमः । मार्कण्डेयाय वार्ष्णेय नाचिकेतोऽभ्यभाषत ॥ ७९ ॥ मार्कण्डेयान्मया प्राप्तो नियमेन जनार्दनः। तवाप्यहममित्रघ्न स्तवं दद्यां ह्यविश्रुतम् ॥ ८० ॥ स्वर्ग्यमारोग्यमायुष्यं धन्यं वेदेन संमितम् । नास्य विघ्नं विकुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः ॥ ८१ ॥ पिशाचा यातुधाना वा गुह्यका भुजगा अपि । यः पठेत शुचिः पार्थ ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । अभग्नयोगो वर्षं तु सोऽश्वमेधफलं लभेत ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते आनुशासनिके पर्वणि अनुसाशनपर्वणि दान-
धर्मे महादेवसहस्रनामस्तोत्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच । महायोगी ततः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः । पठस्व पुत्र भद्रं ते प्रीयतां ते महेश्वरः ॥ १ ॥ पुरा पुत्र

विवस्वान्के पुत्र भगवान यमने नचिकेतासे कहा था और हे वृष्णिकुलोत्पन्न कृष्ण! नचिकेताने मार्कण्डेयसे कहा था॥ ७९॥ हे जनार्दन ! मार्कण्डयसे नियम पालकर मैंने इसे प्राप्त किया था और हे शत्रुनाशक ! आज मैं दूसरेका न सुनाहुआ वह स्तोत्र आपको देता हूँ ॥८०॥ यह शिवस्तोत्र स्वर्गप्रद, आरोग्यप्रद, आयुष्यप्रद और धन देनेवाला तथा वेदकी समान उत्तम है, इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले पुरुषके कामर्मे दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच, यातुधान, गुह्यक और सर्प भी विघ्न नहीं डालसकते, हे पार्थ ! जो पुरुष एक वर्ष तक अखण्डरीतिसे नियम पालकर ब्रह्मचर्य व्रत पालताहुआ जितेन्द्रिय और पवित्र होकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ८२ ॥ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ छ छ

वैशम्पायनने कहा, कि—तदनन्तर महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनि कहने लगे, कि –हे पुत्र ! तू शिवस्तोत्रका पाठ कर, तेरा कल्याण हो और तुझ पर शिव प्रसन्न हों ॥१॥ हे पुत्र !

मया मेरौ तप्यता परमं तपः । पुत्रहेतोर्महाराज स्तव एषो नु कीर्तितः ॥ २ ॥ लब्धवानीप्सितान् कामानहं वै पाण्डुनन्दन । तथा त्वमपि शर्वाद्धि सर्वान् कामानवाप्स्यसि ॥ ३ ॥ कपिलश्च ततः प्राह सांख्यर्षिर्देवसम्मतः । मया जन्मान्यनेकानि भक्त्या चाराधितो भवः ॥ ४ ॥ प्रीतश्च भगवान् ज्ञानं ददौ मम भवांतकम् । चारुशीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः सखा । आलंबायन इत्येवं विश्रुतः करुणात्मकः ॥ ५ ॥ मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः । अयोनिजानां दान्तानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम् ॥ ६ अजराणामदुःखानां शतवर्षसहस्रिणाम् । लब्धं पुत्रशतं शर्वात् पुरा पाण्डुनृपात्मज ॥७॥ वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः । विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति ॥८॥ उक्तः

पहिले मैंने पुत्रके लिये मेरुपर्वत पर महातप किया था, उस समय हे महाराज ! इस स्तोत्रका पाठ किया था॥२॥इससे हे पाण्डपुत्र ! मुझे मनोवाञ्छित कामनाएँ मिली थीं ऐसेही तू भी शिवसे सब कामनाएँ पावेगा ३ तदनन्तर सांख्यशास्त्रकेआचार्य और देवताओंमें मान्य कपिल बोले,कि-मैंने भी अनेक जन्मोंतक भक्तिपूर्वक शंकर की आराधना की थी४तब भगवान्ने मुझपर प्रसन्न होकर मुझे संसारनाशक ज्ञान दिया था, तदनन्तर इन्द्रके प्रियमित्र दयालु, आलम्बायन चारुशीर्ष कहने लगे, कि- ५ मैंने पहिले गोकर्णमें जाकर सौ वर्षतक तप किया था और अयोनिज स्वयंभू इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले, धर्मज्ञ, सुन्दर कान्तिवाले, वृद्धावस्था और दुःखरहित करोड़ों वर्षकी आयु वाले सौ पुत्र हे पाण्डुपुत्र ! शंकरसे मैंने पाये थे ॥ ६ ॥ ७॥ तदनन्तर भगवान् वाल्मीकिने युधिष्ठिरसे यह बात कही, कि-मुझसे वेदसम्बंधी विवाद होने पर अग्निहोत्री मुनियोंने मुझे शाप दिया, कि-"तू ब्रह्महत्यारा है" ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उनके इस प्रकार शाप देतेही

त्वगेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत । सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः ॥ ९ ॥ मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः । आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति ॥ १० ॥ जामदग्न्यश्च कौन्तेयमिदं धर्मभृतां वरः । ऋषिमध्ये स्थितः प्राह ज्वलन्निव दिवाकरः ॥११॥ पितृविप्रवधेनाहमार्तो वै पाण्डवाग्रज । शुचिर्भूत्वा महादेवं गतोऽस्मि शरणं नृप ॥ १२ ॥ नामभिश्चास्तुवं देवं ततस्तुष्टोऽभवद्भवः । परशुं च ततो देवो दिव्यान्यस्त्राणि चैव मे ॥ १३ ॥ पापं च ते न भविता अजेयश्च भविष्यसि । न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि ॥ १४ ॥ आह मां भगवानेवं शिखण्डी शिवविग्रहः । तदवाप्तं च मे सर्वं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥ विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदा-

ब्रह्महत्याका अधर्म मेरे शरीरमें घुस गया, तब मैं निर्दोष और भक्तका मनोरथ पूर्ण करने वाले भगवान् शंकरकी शरणमें गया।९ तब मैं पापमेंसे मुक्त होगया, उस समय दुःखनाशक त्रिपुरविदारक शंकरने मुझसे कहा, कि–तेरा उत्तम यश चारों ओर फैलेगा।१०। फिर ऋषियोंमें बैठे हुए अपने तेजसे सूर्यकी समान प्रकाशित होने वाले धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ जमदग्निपुत्र परशुराम कहने लगे, कि ॥ ११ ॥ हे पाण्डवोंके बड़े भाई ! मैं अपने पिताकी तुल्य ब्राह्मणजातिके अपने बड़े भाइयोंको पिताजीकी आज्ञासे मार कर बड़ा दुःखी हुआ हे नृप ! तब मैं पवित्र होकर महादेवजीकी शरणमें गया ॥ १२ ॥ और (सहस्र) नामोंसे शंकरकी स्तुति की तब भगवान् शंकर प्रसन्न हुए उस समय जटाजूटधारी और शिवके शरीरमें स्थित भगवान् शंकरने मुझसे कहा, कि–अब तुझै पाप नहीं लगेगा तू (संसारमें) अजेय होजावेगा और तेरी मृत्यु न होगी तथा तू (कभी) वृद्ध नहीं होगा (इस प्रकार-कह कर उन्होंने मुझै) परशु और दिव्य अस्त्र दिये और उन

भवम् । ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितो भवः ॥ १६ ॥ तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत् । असितो देवलश्चैव प्राह पाण्डुसुतं नृपम् ॥ १७ ॥ शापाच्छक्रस्य कौन्तेय विभो धर्मोऽनशत्तदा । तन्मे धर्मं यशश्चाग्र्यमायुश्चैवाददत् प्रभुः ॥१८॥ ऋषिर्गृत्समदो नाम शक्रस्य दयितः सखा । प्राहाजमीढं भगवान् बृहस्पतिसमद्युतिः॥ १६ ॥ वसिष्ठो नाम भगवांश्चाक्षुषस्य मनोः सुतः । शतक्रतोरचिन्त्यस्य सत्रे वर्षसहस्रिके ॥ २० ॥ वर्तमानेऽब्रवीद्वाक्यं साम्नि ह्युच्चारिते मया । रथन्तरे द्विजश्रेष्ठ न सम्यगिति वर्तते ।२१॥ समीक्षस्व पुनर्बुद्ध्या पापं त्यक्त्वा द्विजोत्तम । अयज्ञवाहिनं पापमकार्षीस्त्वं सुदुर्मते ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा महा-

---

बुद्धिमान्की कृपासे वे सब मुझे मिले हैं ॥ १३ ॥ १५ ॥ फिर विश्वामित्रजीने कहा, कि—मैं पहिले क्षत्रिय था उस समय मैंने मैं ब्राह्मण होजाऊँ इस इच्छासे शिवकी आराधना की थी ॥ १६ ॥ और उनकी कृपासे मैंने दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया है फिर असित और देवलने पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरसे कहा कि—॥१७॥ हे कुन्तीपुत्र राजन् युधिष्ठिर ! इन्द्रके शापसे हमारा धर्म नष्ट होगया था, तब प्रभुने हमको धर्म, उत्तम यश और आयुष्य दिया था ॥ १८ ॥ तदनन्तर बृहस्पतिकी समान कांति वाले इन्द्रके मित्र गृत्समद नामक ऋषिने अजमीढ़वंशी राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि ॥ १६ ॥ अचिंत्य इन्द्र सहस्र वर्षमें पूर्ण होने वाले यज्ञको कर रहे थे, उस समय मैं रथन्तर सामका उच्चारण कर रहा था, तब चाक्षुष मनुके पुत्र भगवान् वसिष्ठने मुझसे कहा, कि—हे द्विजश्रेष्ठ ! रथंतर सामका उच्चारण ठीक रीतिसे नहीं होरहा है ॥ २० ॥ २१ ॥ अतः तुम मिथ्या आग्रहको त्याग कर बुद्धिपूर्वक फिर विचार, करो हे हे सुदुर्मते ! तुम ऐसा पाप कररहे हो, जिससे यज्ञका फल ही

क्रोधः प्राह मां स पुनर्वचः । प्रज्ञया रहितो दुःखी नित्यभीतो वनेचरः ॥ २३ ॥ दशवर्षसहस्राणि दशाष्टौ च शतानि च । नष्टपानीयपवने मृगैरन्यैश्च वर्जिते ॥ २४ ॥ अयज्ञीयद्रुमे देशे रुरुसिंहनिषेविते । भविता त्वं मृगः क्रूरो महादुःखसमन्वितः २५ तस्य वाक्यस्य निधने पार्थ जातो ह्यहं मृगः । ततो मां शरणं प्राप्तं प्राह योगी महेश्वरः ॥ २६ ॥ अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः । साम्यं ममास्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः २७ अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान् विभुः । परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा ॥ २८ ॥ अचिन्त्य एष भगवान् कर्मणा मनसा गिरा । न मे तात युधि श्रेष्ठ विद्यया पण्डितः समः॥२९।

नहीं मिलेगा ॥२२॥ इसप्रकार कहकर वरिष्ठ ऋषि बड़े क्रोधमें भरगए, फिर उन्होंने क्रोधको शान्त करनेके लिये कहा, कि-"तू बुद्धिरहित, दुःखी और सदा दूसरोंसे डरता हुआ वनमें घूमेगा२३ और ग्यारह सहस्र आठ सौ वर्षतक पवन और जलरहित, मृग तथा दूसरे प्राणियोंसे रहित, यज्ञोंके काममें न आनेवाले वृक्षोंसे भरेहुए, रुरु और सिंहोंसे सेवित वनमें तू क्रूर और महादुःखी मृग होकर अवतार लेगा" ॥ २४-२५ ॥ हे पार्थ ! उनके यह बात कहते ही मैं मृग बनगया, तब मैं भगवान् शिवकी शरणमें गया, उससमय योगी शिवने मुझसे कहा, कि-॥ २६ ॥ तू अजर अमर और दुःखरहित होगा तथा तुझे मेरी समान सुख मिलेगा और तुम दोनोंका अर्थात् इन्द्रका और तेरा यज्ञ सफल होगा ॥ २७ ॥ भगवान् शंकर इसप्रकार अनुग्रह किया करते हैं और यही सुख तथा दुःखके धाता विधाता हैं ॥ २८ ॥ कर्म, मन और वाणीसे भी ये महेश्वर अचिन्त्य हैं हे तात ? हे युद्धमें श्लाघनीय युधिष्ठर ! विद्यामें मेरी समान कोई पण्डित नहीं है ॥ २९ ॥ उस समय बुद्धिमानोंमें चतुर भगवान् वासुदेव फिर

वासुदेवस्तदोवाच पुनर्मतिमतां वरः । सुवर्णाक्षो महादेवस्तपसा तोषितो मया ॥ ३० ॥ ततोऽथ भगवानाह प्रीतो मां वै युधिष्ठिर । अर्थात्प्रियतरः कृष्ण मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ ३१ ॥ अपराजितश्च युद्धेषु तेजश्चैवानलोपमम् । एवं सहस्रशश्चान्यान् महादेवो वरं ददौ ॥३२॥ मणिमन्थेऽथ शैले वै पुरा संपूजितो मया । वर्षायुतसहस्राणां सहस्रं शतमेव च ॥ ३३ ॥ ततो मां भगवान् प्रीत इदं वचनमब्रवीत् । वरं वृणीष्व भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३४ ॥ ततः प्रणम्य शिरसा इदं वचनमब्रुवम् । यदि प्रीतो महादेवो भक्त्या परमया प्रभुः ॥३५॥ नित्यकालं तवेशान भक्तिर्भवतु मे स्थिरा । एवमस्त्विति भगवांस्तत्रोक्त्वान्तरधीयत ३६ जैगीषव्य उवाच । ममाष्टगुणमैश्वर्यं दत्तं भगवता पुरा । यत्नेनान्येन

कहनेलगे, कि मैंने सुवर्णकी समान नेत्रवाले भगवान् शिवको प्रसन्न किया था ॥ ३० ॥ तव हे युधिष्ठिर ! भगवान् महादेवने मुझपर प्रसन्न होकर मुझसे कहा था, कि हे कृष्ण ! तू मेरी कृपासे मनुष्योंमें धनसे भी अधिक प्रिय होजायगा ॥ ३१ ॥ तू युद्धमें अजित रहेगा, तेरा तेज अग्निकी समान झलझलाता रहेगा, इसप्रकार महादेवजीने और भी सहस्रों वर मुझे दिये थे ॥ ३२ ॥ मैंने पहिले दूसरे अवतारमें मणिमंथ नामक पर्वत पर शिवकी लाखों वर्षतक पूजाकी थी ॥३३॥ तव भगवान्ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा था, कि 'तेरा कल्याण हो' तेरे मनमें जिन वरोंका माँगनेकी इच्छा हो उनको तू माँगले ॥३४॥ उससमय मैंने उनको शिर झुका प्रणाम करते हुए कहा, कि "यदि प्रभु महादेव मेरी भक्तिसे मुझपर प्रसन्न हुए हों तो ॥ ३५ ॥ हे ईशान ! मेरी आपमें सदा अचल भक्ति रहे," तव भगवान् "तथास्तु" कहकर अन्तर्धान होगए ॥३६॥ जैगीषव्यने कहा, कि हे राजा युधिष्ठिर ! पहिले वाराणसी नगरीमें

बलिना वाराणस्यां युधिष्ठिर ॥ ३७ ॥ गर्ग उवाच । चतुःषष्ट्यं-
गमददत् कलाज्ञानं ममाद्भुतम् । सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन
पाण्डव ॥ ३८ ॥ तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम् ।
आयुश्चैव सपुत्रस्य सम्वत्सरशतायुतम् ॥३९॥ पराशर उवाच ।
प्रसाद्येह पुरा शर्वं मनसा चिन्तयं नृप । महातपा महातेजा महा-
योगी महायशाः ॥ ४० ॥ वेदव्यासः श्रियावासो ब्राह्मणः
करुणान्वितः । अप्यसावीप्सितः पुत्रो मम स्याद्वै महेश्वरात् ॥४१॥
इति मत्वा हृदि मतं प्राह मां सुरसत्तमः । मयि सम्भावनायास्याः
फलात् कृष्णो भविष्यति ॥४२॥ सावर्णस्य मनोः सर्गे सप्तर्षिश्च
भविष्यति । वेदानां च स वै वक्ता कुरुवंशकरस्तथा ॥ ४३ ॥

बली भगवान् शंकरने विना प्रयत्न किये ही मुझे आठ गुण
वाला ऐश्वर्य दिया था ॥३७॥ गर्गने कहा, कि—हे पाण्डुपुत्र !
मैंने सरस्वती नदीके तटपर मानसिक यज्ञ करके शिवजीको
प्रसन्न किया था और उन्होंने मुझे चौंसठ अंगवाली कलाका
अद्भुत ज्ञान दिया था ॥ ३८ ॥ और मुझे वेद जाननेवाले एक
सहस्र पुत्र भी दिये थे और मेरी तथा मेरे पुत्रोंकी दशलाख
वर्षकी आयु होनेका वर दिया था ॥ ३९ ॥ पराशरसे कहा, कि-
हे राजन्! मैंने पहिले शिवको प्रसन्न किया था और मनमें विचारा,
कि—महातपस्वी, महायोगी, महायशस्वी वेदका विस्तार करने
वाले, लक्ष्मीके निवासरूप, ब्रह्मवेत्ता और कृपालु पुत्र मुझे
महेश्वरसे मिले।४०॥४१॥देवश्रेष्ठ शंकर मेरे मनकी बात जानगए
और उन्होंने मुझसे कहा, कि—"तेरे मनमें मुझसे जिस वरको
पानेकी इच्छा है,उसको मैं जानगया हूँ,तेरे यहाँ कृष्ण नामक पुत्र
होगा ॥ ४२ ॥ और वह सावर्णि नामक मनुके समयमें सप्तर्षि
होगा, यह वेदोंका विभाग करेगा और कुरुवंशको स्थापित
करेगा४३वह इतिहासकर्ता होगा तथा जगत्का हित करेगा,इन्द्रका

इतिहासस्य कर्ता च पुत्रस्ते जगतो हितः । भविष्यति महेन्द्रस्य दयितः स महामुनिः ॥४४॥ अजरश्चामरश्चैव पराशरसुतस्तव । एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥४५॥ युधिष्ठिर महायोगी वीर्यवानक्षयोऽव्ययः । माण्डव्य उवाच । अचौरश्चौरशंकायां शूले भिन्नो ह्यहं तदा ॥ ४६ ॥ तत्रस्थेन स्तुतो देवः प्राह मां वै नरेश्वर । मोक्षं प्राप्स्यसि शूलाच्च जीविष्यसि समार्बुदम् ४७ रुजा शूलकृता चैव न ते विप्र भविष्यति । आधिभिर्व्याधिभिश्चैव वर्जितस्त्वं भविष्यसि ॥ ४८ ॥ पादाच्चतुर्थात् संभूत आत्मा यस्मान्मुने तव । त्वं भविष्यस्यनुपमो जन्म वै सफलं कुरु ॥४६॥ तीर्थाभिषेकं सकलं त्वमविघ्नेन चाप्स्यसि । स्वर्गं चैवाक्षयं विप्र विदधामि तवोर्जितम् ॥ ५० ॥ एवमुक्त्वा तु भगवान् वरेण्यो

प्रिय मित्र होगा, महामुनि होगा॥४४॥और हे पराशर ! तेरा पुत्र अजर अमर होगा, इस प्रकार मुझे वर देकर महायोगी, पराक्रमी, अक्षय और अविनाशी भगवान् शंकर तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ ४५ ॥ माण्डव्यने कहा, कि-मैं चोर नहीं था, तब भी मुझे चोर होनेके सन्देहवश शूली पर चढ़ा दिया था ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! तब मैंने शूली परसे ही भगवान् शंकरकी स्तुति की थी, तब उन्होंने मुझसे कहा था, कि-तू शूलीसे छूट जायगा और एक अब्ज वर्ष तक जीवित रहेगा ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मण ! तुझे इस शूलीकी पीड़ा नहीं व्यापेगी और तुझे आधि व्याधि भी नहीं होगी ॥ ४८ ॥ हे मुने ! तेरा यह शरीर धर्मके चौथे चरणमेंसे अर्थात् सत्यमेंसे उत्पन्न हुआ है इससे तू सर्वश्रेष्ठ होगा अब तू अपने जन्मको सफल कर॥४६॥तू बिना रोक टोक सब तीर्थोंमें स्नान करेगा और मैं तुझे अविनाशी और प्रकाशित स्वर्गलोक भी दूँगा ॥ ५० ॥ इस प्रकार कह कर हे महाराज! बैल बैठे हुए, हाथीका चर्म ओढ़ने वाले महाकांतिमान्

वृषवाहनः । महेश्वरो महाराज कृत्तिवासा महाद्युतिः ॥ ५१ ॥
सगणो दैवतश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत । गालव उवाच । विश्वामि-
त्राभ्यनुज्ञातो ह्यहं पितरमागतः ॥ ५२ ॥ अब्रवीन्मां ततो माता
दुःखिता रुदती भृशम् । कौशिकेनाभ्यनुज्ञातं पुत्रं वेदविभूषि-
तम् ॥५३॥ न तात तरुणं दान्तं पिता त्वां पश्यतेऽनघ । श्रुत्वा
जनन्या वचनं निराशो गुरुदर्शने ॥ ५४ ॥ नियतात्मा महादेव-
मपश्यं सोऽब्रवीच्च माम् । पिता माता च ते त्वं च पुत्र मृत्यु-
विवर्जिताः ॥ ५५ ॥ भविष्यथ विश क्षिप्रं द्रष्टासि पितरं क्षये ।
अनुज्ञातो भगवता गृहं गत्वा युधिष्ठिर ॥ ५६ ॥ अपश्यं पितरं
तात इष्टिं कृत्वा विनिःसृतम् । उपस्पृश्य गृहीत्वेध्मं कुशांश्च

देवश्रेष्ठ पूजनीय भगवान् शंकर अपने गणोंसहित तहाँ ही अंतर्धान होगए ॥ ५१ ॥ गालवने कहा, कि-मैं विश्वामित्रकी आज्ञा लेकर पिताके दर्शन करनेके लिये घर गया था उस समय मेरी माता (विधवा होनेके कारण) दुःख मान कर बहुत रोने लगी और मुझसे कहने लगी कि हे निर्दोष तात!कौशिक के द्वारा भेजे हुए, वेद पढे हुए, तरुण और जितेंद्रिय तुझ पुत्रको पिता न देख सके, माताकी बात सुन कर मैं पिता के दर्शनसे निराश होगया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तदनन्तर मैंने अपने मनको नियममें रख कर महादेवका दर्शन किया, तब उन्होंने मुझसे कहा, कि-हे पुत्र ! तेरे पिता माता तथा तू इस प्रकार तीनों जनें मृत्युरहित होंगे तू अपने घरको जा तब तुझे अपने पिताके दर्शन होंगे,हे युधिष्ठिर ! भगवानकी आज्ञा पाने पर मैं अपने घरको गया ॥ ५६ ॥ और अपने पिताके दर्शन किये, उस समय मेरे पिता इष्टि करके घरमेंसे बाहर निकले थे और वह भोजन करके आचमन कर निवटेहों इस प्रकार दीखतेथे, वह यज्ञके लिये काष्ठ, दर्भ, वृक्षोंमेंसे गिरे हुए

शरणं कुरून् ॥ ५७ ॥ तान्विसृज्य च मां प्राह पिता सास्राविलेक्षणः । प्रणमन्तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डव ॥ ५८ ॥ दिष्ट्या दृष्टोऽसि मे पुत्र कृतविद्य इहागतः । वैशम्पायन उवाच । एतान्यत्यद्भुतान्येव कर्माण्यथ महात्मनः ॥ ५९ ॥ प्रोक्तानि मुनिभिः श्रुत्वा विस्मयामास पाण्डवः । ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं पुनर्मतिमतां वरः ॥६०॥ युधिष्ठिरं धर्मनिधिं पुरुहूतमिवेश्वरः । वासुदेव उवाच । उपमन्युर्मयि प्राह तपन्निव दिवाकरः ॥६१॥ अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः । ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः ॥ ६२ ॥ ईश्वरं संप्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः । सर्वथा वर्त्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे ॥ ६३ ॥ स-

---

फल तथा श्यामाक आदि अन्न लेकर आ रहे थे ॥ ५७ ॥ उनको उन्होंने हाथमेंसे नीचे रखदिया और आँखोंमें आँसू भर कर प्रणाम करतेहुए मुझे पिताने दोनों भुजाओंसे आलिंगन किया, मेरे मस्तकको सूँघा और कहा, कि-॥ ५८ ॥ हे पुत्र ! बड़े आनन्दकी बात है, कि-तू यहाँ पढ़ लिखकर आगया और मैंने तुझको देखा, वैशम्पायनने कहा, कि-ऋषियोंके कहेहुए उन महात्माके अति-अद्भुत कर्मको सुनकर पाण्डवको विस्मय हुआ, तदनन्तर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कृष्ण युधिष्ठिरसे फिर कहने लगे, ॥ ५९-६० ॥ विष्णु जैसे इन्द्रको उपदेश देते हों, इसप्रकार श्रीकृष्ण धर्मके भण्डाररूप युधिष्ठिरसे कहनेलगे, वासुदेवने कहा, कि-तपतेहुए सूर्यकी समान तेजस्वी उपमन्युने मुझसे कहा था कि-॥ ६१ ॥ पापकर्म करनेवाले मनुष्य और जो अशुभ कर्म करके पापी बनजाते हैं वे रजोगुणी और तमोगुणी होते हैं और वे ईशानको नहीं पाते हैं ॥ ६२ ॥ और उनमें शंकरका स्मरण करनेवाले द्विज मनुष्य शंकरको प्राप्त होते हैं, जो भक्त अपने मनको सर्वथा परमेश्वरमें ही लगाते हैं ॥६३॥

दृशोऽरण्यवासीनां मुनीनां भावितात्मनाम् । ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा शक्रत्वं वा सुरैः सह ॥६४॥ त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति । मनसापि शिवं तात ये प्रपद्यन्ति मानवाः ॥ ६५ ॥ विधूय सर्वपापानि देवैः सह वसन्ति ते । भित्वा भित्वा च कूलानि हुत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६६ ॥ यजेद्देवं विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते । सर्वलक्षणहीनोपि युक्तो वा सर्वपातकैः ॥६७॥ सर्वं तुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मनः । कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव ॥६८॥ महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित् । एवमेव महादेवं भक्ता ये मानवा भुवि ॥६९॥ न ते संसारवशगा इति मे निश्चिता मतिः । ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मपुत्र युधि-

वे वनमें रहनेवाले मुनियोंकी समान मानेजाते हैं, जिनपर रुद्र प्रसन्न होजाते हैं उनको वह ब्रह्मा केशव अथवा इन्द्र बना देते हैं और त्रिलोकीका अधिपतिपना तक देसकते हैं। हे तात! जो मनुष्य मनसे भी शंकरकी शरण लेते हैं वे अपने सब पापों का नाश करके देवताओंके साथ निवास करते हैं। जो पुरुष दूसरेके घरोंको नष्ट भ्रष्ट कर डालते हैं तालाब बावडी और कुओंको नष्टभ्रष्ट कर डालते हैं तथा इस सब जगत्को अग्निमें होम देते हैं ॥ ६६ ॥ वे यदि विरूपपाक्ष शंकरका यजन करते हैं तो वे पापमेंसे मुक्त होजाते हैं मनुष्य यदि सब प्रकारके उत्तम लक्षणोंसे रहित हों अथवा सब पापोंसे भरपूर हों तब भी यदि वे मनमें शिवका ध्यान करते हैं, तो उनके सब पाप दुःखित होते हैं अर्थात् नष्ट होजाते हैं, हे केशव ! कीड़े, जन्तु, पङ्गे और पक्षी भी यदि महादेवजीकी शरण लेते हैं तो उनको कहीं भय नहीं रहता है, इस प्रकार जो मनुष्य पृथ्वी पर महादेवजी की भक्ति करते हैं ॥ ६९ ॥ वे संसारके वशमें नहीं होते, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है, तदनन्तर श्रीकृष्णाने धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे इस

ष्ठिरम् ॥ ७० ॥ विष्णुरुवाच । आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो वसवोथ विश्वे । धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च रुद्राः ससाध्या वरुणोथ गोपः ॥७१॥ ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः । सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च रक्षा दीक्षा संयमा ये च केचित् ॥७२॥ स्वाहा वौषट् ब्राह्मणाः सौरभेयी धर्मं चाग्र्यं कालचक्रं बलं च । यशो दमो बुद्धिमतां स्थितिश्च शुभाशुभं ये मनवश्च सप्त ॥ ७३ ॥ अग्र्या बुद्धिर्मनसा दर्शने च स्पर्शश्चाग्र्यः कर्मणां या च सिद्धिः । गणा देवानामूष्मपाः सोमपाश्च लेखाः सुयामास्तुषिता ब्रह्मकायाः ॥ ७४ ॥ आभासुरा गन्धपा धूमपाश्च वाचा विरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः । शुद्धाश्च निर्माणरताश्च देवाः स्पर्शाशना दर्शनपा आज्यपाश्च ७५

प्रकार कहा ॥७०॥ विष्णुने कहा, कि-आदित्य चन्द्रमा, पवन, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, वसु विश्वेदेव, धाता, अर्यमा, शुक्र, बृहस्पति, रुद्र, साध्यदेव, वरुण, गोप ॥७१॥ ब्रह्मा, इन्द्र, पवन, ब्रह्म, सत्य, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेदपाठक, सोम, यजमान, हव्य, हविष्, रक्षा, दीक्षा, और सब प्रकारके संयम, स्वाहा, वौषट्, ब्राह्मण, गौ, उत्तम प्रकारका धर्म, कालचक्र और बल, यश, दम, बुद्धिमानोंकी स्थिति, शुभ, अशुभ और सप्तर्षि, उत्तम बुद्धि, मन, दर्शन उत्तम प्रकारके स्पर्श कर्मकी सिद्धि, देवताओं के गण, ऊष्मप (भापको पीने वाले) सोमप (सोम पीने वाले) लेख, सुयामा, तुषित, ब्रह्मकाय (मंत्ररूपी शरीर वाले) आभासुर, गंधका पान करने वाले, धूपका पान करने वाले, वाणीको नियममें रखने वाले, मनको नियममें रखने वाले, शुद्ध मन वाले, अपने बलसे अनेक प्रकारके शरीर धारण करने वाले, स्पर्शका भोजन करने वाले, दृष्टिसे भोजन करने वाले, घृतका भोजन करने वाले, मनःसंकल्पित वस्तुको तुरत ही पानेकी शक्ति वाले,

चिन्त्यद्योता ये च देवेषु मुख्या ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ़ ।
सुपर्णगन्धर्वपिशाचदानवा यक्षास्तथा चारणपन्नगाश्च ॥ ७६ ॥
स्थूलं सूक्ष्मं मृदु चाप्यसूक्ष्मं दुःखं सुखं दुःखमनन्तरं च । सांख्यं
योगं तत्पराणां परं च शर्वाज्जातं विद्धि यत्कीर्तितं मे ॥ ७७ ॥
तत्संभूता भूतकृतो वरेण्याः सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः ।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन् पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम् ७८
विचिन्वन्तस्तपसा तत्स्थवीयः किञ्चित्तत्त्वं प्राणहेतोर्नतोस्मि ।
ददातु देवः स वरानिहेष्टानभिष्टुतो नः प्रभुरव्ययः सदा ॥७९॥
इमं स्तवं सन्नियतेन्द्रियश्च भूत्वा शुचिर्यः पुरुषः पठेत् । अभग्न-
योगो नियतो मासमेकं संप्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत् ॥ ८० ॥

मुख्य २ देवता तथा हे अजमीढ़वंशी राजन्! दूसरे देवता, गरुड़ गंधर्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण, सर्प, सूक्ष्म, स्थूल, सुख, दुःख सुखके पीछेका दुःख और दुःखके पीछेका सुख सांख्य योग उत्तमोत्तम वस्तु, इस प्रकार जितने पदार्थ कहे, इन सबको शंकरसे उत्पन्न हुए समझना चाहिये ॥ ७१ ॥ ७७ ॥ भूमिमेंसे बीज आदिकी समान अपनेमेंसे उत्पन्न होने वाले ईश्वर आदिक के कर्ता, पञ्च महाभूतोंके उत्पादक और वरणीय सब लोकोंकी रक्षा करने वाले देवता भी शंकरसे उत्पन्न होते हैं और वे प्रकट होकर महादेवकी पुरातन सृष्टिकी रक्षा करते हैं ॥ ७८ ॥ महर्षि तप करके जिनको खोजते हैं, उनकी अपेक्षा सब देवता स्थूल हैं और वह अनिर्वचनीय तत्त्व प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला है, उस परब्रह्मरूपी तत्त्वको मैं मोक्षके लिये प्रणाम करता हूँ, जिनकी मैंने स्तुतिकी है वे अविकारी प्रभु मुझे अभीष्ट वर दें ॥७९॥ जो पुरुष स्नान करके पवित्र हो, इन्द्रियों को नियममें रखताहुआ अखण्डरीतिसे एक मास तक इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ८० ॥

वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु जयेन्नृपः पार्थ महीं च कृत्स्नाम् । वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च ॥ ८१ ॥ स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः । सर्व-दोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनः ॥८२॥ यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि भारत । तावन्त्यब्दसहस्राणि स्वर्गे वसति मानवः ८३

इति श्रीमहाभारते आनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि दान-धर्मे मेत्रवाहनपर्वाख्याने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच । यदिदं सहधर्मेति प्रोच्यते भरतर्षभ । पाणि-ग्रहणकाले तु स्त्रीणामेतत् कथं स्मृतम् ॥१॥ आर्ष एष भवेद्धर्मः

(भीष्मने कहा, कि–) हे पृथापुत्र अर्जुन ! ब्राह्मण यदि इस स्तोत्रका पाठ करता है, तो उसको सब वेदोंके पाठका फल मिलता है और राजा इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सब पृथ्वीको जीतसकता है वैश्यको इस स्तोत्रका पाठ करनेसे व्यापारमें लाभ होता है और वह अपने कर्ममें चतुर होजाता है और शूद्रको इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मरणके पीछे परलोकमें उत्तम गति तथा सुख मिलता है ॥ ८१ ॥ यशस्वी पुरुष सब दोषोंको हरनेवाले इस पुण्यमय पवित्र स्तवराजका पाठ करके अपने मनको रुद्रमें लीन करते हैं ॥ ८२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करता है, उस मनुष्यके शरीरमें जितने रोम होते हैं उतने सहस्र वर्षोंतक वह स्वर्गमें रहता है ॥ ८३ ॥ अठारवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ ॥ छ ॥ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे भरतवंशी राजन् ! सहधर्म अर्थात् "सहोभौ धर्मं चरताम्" अर्थात् तुम दोनों साथमें रहकर धर्माचरण करो–यह बात स्त्रियोंके पाणिग्रहणके समय क्यों स्मरणकी जाती है ॥ १ ॥ यह सहधर्मका धर्म आर्ष है (वेदोक्त होनेसे श्रौत स्मार्तोंके करने योग्य है) अथवा प्राजापत्य है (अर्थात् अपुत्र

प्राजापत्योऽथवासुरः । यदेतत् सहधर्मेति पूर्वमुक्तं महर्षिभिः २
सन्देहः सुमहानेष विरुद्ध इति मे मतिः । इह यः सहधर्मो वै
प्रेत्यायं विहितः क्व नु ॥ ३ ॥ स्वर्गो मृतानां भवति सहधर्मः
पितामह । पूर्वमेकस्तु म्रियते क्व चैकस्तिष्ठते वद ॥४॥ नाना-
धर्मफलोपेता नानाकर्मनिवासिताः । नाना निरयनिष्ठान्ता मानुषा
बहवो यदा ॥ ५ ॥ अनृताः स्त्रिय इत्येवं सूत्रकारो व्यवस्यति ।
यदानृताः स्त्रियस्तात सहधर्मः कुतः स्मृतः ॥ ६ ॥ अनृताः स्त्रिय
इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते । धर्मोऽयं पूर्विकासंज्ञा उपचारः क्रिया-

की किसीप्रकार मुक्ति नहीं होसकती अतः सन्तानकी उत्पत्ति करना उचित है) या आसुरी (इन्द्रियोंपर प्रीति रूप) है, अथवा सहधर्मको पहिले महर्षि कहगए हैं ? ॥ २ ॥ इसमें मुझे बड़ा सन्देह है मुझे तो यह उपदेश विपरीत ही लगता है, क्योंकि-सहधर्मका उपदेश जिनको दियाजाता है, वह तो उसको मरण पर्यन्तही पाल सकते हैं (परलोकमें उसका पालन कैसे होसकता है ?) हे पितामह ! सहधर्माचरण मरने वालोंको स्वर्ग देता है, परन्तु जगत्में एक पहिले मरजाता है तो दूसरा कहाँ रहता है (अर्थात् एक इस लोकमें होता है और दूसरा परलोकमें होता है, तो वे एक साथ धर्माचरण कैसे कर सकते हैं?)यह मुझसेकहिये४ क्योंकि-नाना प्रकारके धर्म पालनेसे तदनुसार उसके अनुसार मनुष्योंको फल भी नानाप्रकारके मिलते हैं, मनुष्योंकी नाना-प्रकारकी कर्मवासनाएँ होती हैं (अतः) बहुतसे मनुष्य नाना प्रकारके नरकोंको भोगते हैं ॥ ५ ॥ और सूत्रकार कहते हैं,कि-"स्त्रियोऽनृताः"स्त्रियें असत्यसे भरी हुई हैं,तो हे तात ! असत्य बोलने वाली स्त्रियोंके साथ धर्माचरण किस प्रकार होसकता है (अर्थात् प्रजाके लिये सहधर्म भी ठीक नहीं है क्योंकि-कुण्ड और गोलकोंकी भी उत्पत्ति देखनेमें आती है) ॥ ६ ॥ और

विधिः ॥७॥ गह्वरं प्रतिभात्येतन्मम चिन्तयतोऽनिशम् । निःसन्देहमिदं सर्वं पितामह यथाश्रुति ॥ ८ ॥ यदेतद्यादृशं चैतद्यथा चैतत्प्रवर्तितम् । निखिलेन महाप्राज्ञ भवानेतद्ब्रवीतु मे॥९॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । अष्टावक्रस्य संवादं दिशया सह भारत ॥१०॥ निर्वेष्टुकामस्तु पुरा अष्टावक्रो

वेदोंमें भी लिखा है कि-"अनृताः स्त्रियः स्त्रियें असत्यरूप हैं(अतः स्त्रियोंके साथ जो कर्म किया जाता है वह अधर्मरूप है अतः मेरे मतके अनुसार) यहाँ धर्मशब्दसे सामान्य धर्म ही समझना चाहिये विशेष नहीं इसकी क्रियाविधि तो उपचारमात्र है (अर्थात्-"भिक्षुकाणामयं धर्मो धूलिः परगृहादिव" पराये घरसे धूल भी लाना भिक्षुकोंका धर्म है । इस श्लोकमें जैसे अधर्म पदके स्थानमें धर्म पद लिखा है, ऐसे ही यहाँ भी अधर्मके स्थान में धर्मपदका प्रयोग किया है, ऐसे ही पाणिग्रहणकी जो विधि वेदमें कही है, वह श्येनादि यागकी समान पुरुषकी इच्छानुसार ही कही है, परन्तु वस्तुतः वह धर्मरूप नहीं है;इसी लिये विवाह विधि एक उपचाररूप है; धर्म शब्दका प्रयोग यहाँ केवल इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करनेके अर्थमें है अर्थात् सहधर्माचरण आसुरी है यह आक्षेप इस श्लोकमें किया है) ॥ ७ ॥ रात दिन विचार करने पर भी मुझे यह वात गहन ही प्रतीत होती है अतः हे पितामह ! अपने इस विषयमें जिस प्रकार सुना हो उस प्रकार सुना कर मेरे सारे संदेहको दूर करिये ॥८॥ यह जिस प्रकार का हो तथा जिस प्रकार प्राचीन ऋषियोंने इसको चलाया हो उस प्रकार हे महाबुद्धिमान् ! आप मुझसे पूर्णरीतिसे कहिये ।९। भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! इस विषयमें भी अष्टावक्र और दिशाके सम्वादरूपी एक प्राचीनइतिहासका प्राचीन पुरुष इस प्रकार उदाहरण दिया करते हैं१०कि-पहिले महातपस्वी

महातपाः । ऋषेरथ वदान्यस्य वव्रे कन्यां महात्मनः ॥ ११ ॥ सुप्रभां नाम वै नाम्ना रूपेणाप्रतिमां भुवि । गुणप्रभावशीलेन चारित्रेण च शोभनाम्॥१२॥ सा तस्य दृष्ट्वैव मनो जहार शुभलोचना । वनराजी यथा चित्रा वसन्ते कुसुमाचिता ॥ १३ ॥ ऋषिस्तमाह देया मे सुता तुभ्यं हि तच्छृणु । गच्छ तावद्दिशं पुण्यामुत्तरां द्रक्ष्यसे ततः ॥१४॥ अष्टावक्र उवाच । किं द्रष्टव्यं मया तत्र वक्तुमर्हति मे भवान् । तथेदानीं मया कार्यं यथा वक्ष्यति मां भवान् ॥ १५ ॥ वदान्य उवाच । धनदं समतिक्रम्य हिमवन्तं च पर्वतम् । रुद्रस्यायतनं दृष्ट्वा सिद्धिचारणसेवितम् १६ संहृष्टैः पार्षदैर्जुष्टं नृत्यद्भिर्विविधाननैः । दिव्याङ्गरागैः पैशाचैर-

अष्टावक्रको विवाह करनेकी इच्छा हुई,तब उन्होंने वदान्य ऋषि की कन्याको माँगा ११उसकन्याका नाम सुप्रभा था, पृथ्वी भरमें उसकी समान रूपवती और कोई कन्या नहीं थी,वह कन्या गुण, शील, प्रभाव और चरित्रसे शोभायमान थी ॥१२॥ जैसे वसन्त ऋतुमें पुष्पोंसे भर पूर विचित्र प्रतीत होती हुई वनराजि प्रेक्षकों के मनको हरण करती है, ऐसे ही शुभ नेत्रों वाली उसकन्याने भी देखते ही ऋषिके मनको हर लिया ॥ १३ ॥ तव वदान्य ऋषिने अष्टावक्रसे कहा, कि मैं तुमको ही अपनी कन्या दूँगा, परन्तु तुम पहिले पवित्र उत्तर दिशामें जाओ तहाँ (एक वस्तुको) देखना॥१४॥अष्टावक्रने कहा, कि मुझे तहाँ क्या देखना होगा, यह आप मुझे बताइये, आप जिस प्रकार कहेंगे मैं उसी प्रकार करूँगा१५वदान्यने कहा,कि-कुबेरके स्थानका उल्लंघन करके तू हिमाचल पर्वतपर जाना,तहाँ तुझे सिद्ध चारणोंसे सेवित रुद्रके मंदिरका दर्शन मिलेगा॥१६॥उस स्थानमें अनेक प्रकारके मुख वाले शंकरके पार्षद महाहर्षमें भरकर नृत्य करते हैं तथा अनेक प्रकारके पिशाच भी शरीरपर दिव्य अंगराग लगाकर तहाँ

न्यैर्नानाविधैः प्रभो ॥ १७ ॥ पाणितालसुतालैश्च शंपातालैः समैस्तथा । सम्प्रहृष्टैः प्रनृत्यद्भिः शर्वस्तत्र निषेव्यते ॥ १८ ॥ इष्टं किल गिरौ स्थानं तद्दिव्यमिति शुश्रुम । नित्यं संनिहितो देवस्तथा ते पार्षदाः स्मृताः ॥ १९ ॥ तत्र देव्या तपस्तप्तं शंकरार्थं सुदुश्चरम् । अतस्तदिष्टं देवस्य तथोमाया इति श्रुतिः ।२०। पूर्वे तत्र महापार्श्वे देवस्योत्तरतस्तथा । ऋतवः कालरात्रिश्च ये दिव्या ये च मानुषाः ॥२१॥ देवं चोपासते सर्वे रूपिणः किल तत्र ह । तदतिक्रम्य भवनं त्वया यातव्यमेव हि ॥ २२ ॥ ततो नीलं वनोद्देशं द्रक्ष्यसे मेघसन्निभम् । रमणीयं मनोग्राहि तत्र वै द्रक्ष्यसे स्त्रियम् ॥ २३ ॥ तपस्विनीं महाभागां वृद्धां दीक्षामनुष्ठिताम् । द्रष्टव्या सा त्वया तत्र सम्पूज्या चैव यत्नतः २४

रहते हैं ॥ १७ ॥ और वे सब हाथमें काँसीके बजनेवाले पात्र, करताल बिजलीकी समान शीघ्रतासे नीचे ऊपर घुमानेमें आने वाले, वाजोंको बजातेहुए बड़े हर्षमें भर नाच २ कर शंकरकी सेवा करते हैं ॥१८॥ और उस पर्वतपर शिव पार्वतीका प्यारा एक दिव्य स्थान है, ऐसा हमने सुना है तहाँ सदा शिव रहते हैं और उनके पार्षद भी तहाँ रहते हैं । १९ ॥ तहाँ देवी पार्वतीने शंकरको पानेके लिये महाकठिन तप किया था इसलिये वह स्थान महादेवको और उमाको इष्ट हैं ऐसा शास्त्रमें कहा है ॥२०॥ महादेवके प्रिय स्थानकी उत्तर दिशामें महापार्श्व नामक एक पर्वत है उस पर्वत पर पहिले ऋषि कालरात्रि देवता तथा मनुष्य ये सब मूर्तिमान् होकर महादेव की उपासना करते थे उस पर्वतका उल्लंघन करके तू आगेको जाना२१-२२तब मेघकी समान श्याम वर्णका एक वन आयेगा वह वन रमणीय और मनोहर है उस वनमें तू एक स्त्रीको देखेगा ॥ २३ ॥ वह स्त्री तपस्विनी महाभाग्यवती और वृद्ध है और दीक्षित है तू तहाँ जाकर उस

तां दृष्ट्वा विनिवृत्तस्त्वं ततः पाणिं ग्रहीष्यसि । यद्येष समयः सर्वः साध्यतां तत्र गम्यताम् ॥२५॥ अष्टावक्र उवाच । तथास्तु साधयिष्यामि तत्र यास्याम्यसंशयम्। यत्र त्वं वदसे साधो भवान् भवतु सत्यवाक् ॥ २६ ॥ भीष्म उवाच । ततोऽगच्छत् स भगवानुत्तरामुत्तरां दिशम् । हिमवन्तं गिरिश्रेष्ठं सिद्धिचारणसेवितम् ॥२७॥ स गत्वा द्विजशार्दूलो हिमवन्तं महागिरिम्। अभ्यगच्छन्नदीं पुण्यां बाहुदां धर्मशालिनीम् ॥२८॥ अशोके विमले तीर्थे स्नात्वा वै तर्प्य देवताः । तत्र वासाय शयने कौशे सुखमुवास ह ॥२९॥ ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय स द्विजः । स्नात्वा प्रादुश्चकाराग्निं स्तुत्वा चैनं प्रधानतः ॥ ३० ॥ रुद्राणीं रुद्रमासाद्य ह्रदे तत्र समाश्वसत् । विश्रान्तश्च समुत्थाय कैलासम-

स्त्रीको देखकर उसकी प्रयत्न पूर्वक पूजा करना ॥ २४ ॥ उसका दर्शन करके जब तू लौट कर आवेगा तब तू मेरी पुत्री के साथ विवाह कर सकेगा, तू यदि इस नियमको पाल सकता हो तो तू तहाँ जा ॥ २५ ॥ अष्टावक्रने कहा, कि-"तथास्तु" जहाँ आप कहेंगे तहाँ मैं अवश्य जाऊँगा और अपने कामको साधूँगा हे साधु पुरुष!आप भी अपने वचनको सत्यकरना ।२६। भीष्मजीने कहा, कि–तदनन्तर वह सिद्ध और चारणोंसे सेवित गिरश्रेष्ठ हिमवान् पर्वत पर जानेके लिये उत्तर दिशाकी ओर चले ॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंमें सिंहकी समान अष्टावक्रजी हिमाचल पर्वत पर पहुँच गए, तहाँ पर बाहुदा नामक एक धर्मप्रद पवित्र नदी पर पहुँचे ॥२८॥ तहाँ अशोक नामक निर्मल तीर्थ(घाट) पर स्नान करके देवताओंका तर्पण कर कुशकी शय्या बना उस पर सुखसे सोने लगे ॥२९॥ रात्रि बीत कर जब प्रातःकाल होगया तब वह ब्राह्मण उठे और नदीमें स्नान करके अग्निको प्रकट किया और वेदके मुख्य २ मंत्र पढ़ कर स्तुति की॥३०॥

भितो ययौ॥३१॥ सोपश्यत् काञ्चनद्वारं दीप्यमानमिव श्रिया।
मन्दाकिनीं च नलिनीं धनदस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥ अथ ते
राक्षसाः सर्वे येऽभिरक्षन्ति पद्मिनीम्। प्रत्युत्थिता भगवन्तं मणि-
भद्रपुरोगमाः ॥ ३३ ॥ स तान् प्रत्यर्चयामास राक्षसान् भीम-
विक्रमान्। निवेदयत मां क्षिप्रं धनदायेति चाब्रवीत् ॥ ३४ ॥
ते राक्षसास्तथा राजन् भगवन्तमथाब्रुवन्। असौ वैश्रवणो राजा
स्वयमायाति तेऽन्तिकम् ॥ ३५ ॥ विदितो भगवानस्य कार्यमा-
गमनस्य यत्। पश्यैनं त्वं महाभागं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥३६॥
ततो वैश्रवणोऽभ्येत्य अष्टावक्रमनिन्दितम्। विधिवत् कुशलं पृष्ट्वा
ततो ब्रह्मर्षिमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ सुखं प्राप्तो भवान् कच्चित् किं

तदनन्तर रुद्र और रुद्राणीकी आराधना कर तट पर विश्राम करने लगे फिर कैलासकी ओर जाने लगे॥३१॥फिर उन्होंने सौंदर्यसे दिपता हुआ सुवर्णका एक द्वार तथा महात्मा कुवेरकी मन्दाकिनी नामक बावड़ी देखी ॥ ३२ ॥ उस बावड़ीकी मणिभद्र आदि चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे वे भगवान् अष्टावक्रको देख कर खड़े होगए ॥ ३३ ॥ तब अष्टावक्रने भी उन भयंकर पराक्रमी राक्षसोंकी पूजाकी और उनसे कहा, कि–तुम शीघ्र ही कुवेरको मेरे आनेकी सूचना दो ॥ ३४ ॥ (यह सुन कर) हे राजन् ! उन यक्षोंने (भगवान् अष्टावक्रके आनेका समाचार कुवेरसे कहा, फिर उन्होंने) भगवान् अष्टावक्रसे कहा, कि–महाराज कुवेर आपके पास स्वयं आरहे हैं ॥३५॥ आपके आगमनका समाचार उनको मालूम होगया है अब तेजसे प्रकाशित महाभाग्यवान् कुवेर आरहे हैं आप उनका दर्शन करिये ॥ ३६ ॥ इतनेमें ही कुवेर तहाँ आगए और उत्तम कर्म करने वाले अष्टावक्रसे विधिपूर्वक कुशल-समाचार बूझ कर ब्रह्मर्षि अष्टावक्रसे कहने लगे ॥ ३७ ॥ आप सुखपूर्वक तो यहाँ पर आये हैं, बताइये आप मुझसे क्या

वा मत्तश्चिकीर्षति । ब्रूहि सर्वं करिष्यामि यन्मां वक्ष्यसि वै द्विज ॥ ३८ ॥ भवनं प्रविश त्वं मे यथाकामं द्विजोत्तम । सत्कृतः कृतकार्यश्च भवान् यास्यत्यविघ्नतः ॥ ३९ ॥ प्राविशद्भवनं स्वं वै गृहीत्वा तं द्विजोत्तमम् । आसनं स्वं ददौ चैव पाद्यमर्घ्यं तथैव च ॥ ४० ॥ अथोपविष्टयोस्तत्र मणिभद्रपुरोगमाः । निषेदुस्तत्र कौवेरा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥४१॥ ततस्तेषां निषण्णानां धनदो वाक्यमब्रवीत्। भवच्छन्दं समाज्ञाय नृत्येरन्नप्सरोगणाः॥४२ आतिथ्यं परमं कार्यं शुश्रूषा भवतस्तथा । सम्वर्ततामित्युवाच मुनिर्मधुरया गिरा ॥ ४३ ॥ अथोर्वरा मिश्रकेशी रंभा चैवोर्वशी तथा । मलम्बुषा घृताची च चित्रा चित्रांगदा रुचिः ॥ ४४ ॥

चाहते हैं ? हे द्विज ! बताइये आप जो कुछ कहेंगे, वह मैं सब करूँगा॥३८॥ हे ब्राह्मण ! आप इच्छानुसार मेरे घरमें विराजिये आप मुझसे सत्कार पाकर कृतकार्य हो निर्विघ्नरीतिसे अपने घर जा सकेंगे ॥ ३९ ॥ इस प्रकार कह कर उन द्विजोत्तमको साथ लेकर कुबेरने अपने राजमन्दिरमें प्रवेश किया और तहाँ उनको अपने आसन पर बैठाला तथा उनको पाद्य और अर्घ दिये॥४०॥ तदनन्तर अष्टावक्र और कुबेर ये दोनों आसनों पर बैठ गए और उनके सामने मणिभद्र आदि कुबेरके यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नर सेवक भी बैठ गए॥ ४१ ॥ वे सब तहाँ बैठे थे, तब कुबेरने अष्टावक्रजीसे कहा, कि–यदि आपकी इच्छा हो तो अप्सरायें नृत्य करें॥ ४२ ॥ हमें तो आपका बड़ा सत्कार और आतिथ्य करना चाहिये, यह सुनकर मुनि मधुरवाणीमें कहने

नदी

–तथास्तु ॥ ४३ ॥ तब उर्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशी,

पर स्नान

घृताची, चित्रा, चित्रांगदा, रुचि, मनोहरा सुकेशी

उस पर सुखसे

प्रभा विद्युता प्रशमी दान्ता विद्योता और रति

होगया तब वह

तथा और भी बहुतसी उत्तम अप्सरायें नृत्य

प्रकट किया और

मनोहरा सुकेशी च सुमुखी हासिनी प्रभा । विद्युता प्रशमी दांता विद्योता रतिरेव च ॥ ४५ ॥ एताश्चान्याश्च वै बह्व्यः प्रनृत्ताप्सरसः शुभाः । अवादयंश्च गन्धर्वा वाद्यानि विविधानि च ४६ अथ प्रवृत्ते गान्धर्वे दिव्ये ऋषिरुपाविशत् । दिव्यं सम्वत्सरं तत्रारमतैष महातपाः ॥ ४७ ॥ ततो वैश्रवणो राजा भगवन्तमुवाच ह । साग्रः सम्वत्सरो जातो विप्रेह तव पश्यतः ॥ ४८ ॥ हार्योऽयं विषयो ब्रह्मन् गान्धर्वो नाम नामतः । छन्दतो वर्ततां विप्र यथा वदति वा भवान् ॥ ४९ ॥ अतिथिः पूजनीयस्त्वमिदं च भवतो गृहम् । सर्वमाज्ञाप्यतामाशु परवन्तो वयं त्वयि ॥५०॥ अथ वैश्रवणं प्रीतो भगवान् प्रत्यभाषत । अर्चितोऽस्मि यथा न्यायं गमिष्यामि धनेश्वर ॥ ५१ ॥ प्रीतोस्मि सदृशं चैव तव सर्वं धनाधिप । तव प्रसादाद्भगवन् महर्षेश्च महात्मनः ॥ ५२ ॥

करनेलगीं और गन्धर्व नाना प्रकारके बाजे बजानेलगे ४४-४६ इस दिव्य गान्धर्व ज्ञानके चलनेपर ऋषि तहां एक वर्षतक आनन्द में मग्न रहे ॥४७॥ तदनन्तर कुबेरने भगवान् अष्टावक्रसे कहा, कि-हे विप्र ! आपको देखते २ एक वर्ष वीत गया है ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मण ! यह (गायन और नृत्यका) विषय गान्धर्व नामसे प्रसिद्ध है और मनुष्योंके मनको हरनेवाला है अथवा हे विप्र ! आप कहें तो इस सङ्गीतको चलता रहने दूं ॥ ४९ ॥ आप अतिथि हैं अतः हमारे पूज्य हैं, यह घर आपका है अतः आप शीघ्र आज्ञा दीजिये हम आपके अधीन हैं ॥५०॥ यह सुनकर भगवान् अष्टावक्र प्रसन्न हुए और उन्होंने कुबेरसे कहा कि-हे धनेश्वर ! आपने हमारी विधिपूर्वक पूजा की है अब मैं यहाँसे जाऊँगा ॥ ५१ ॥ हे धनाधिप ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ आपने मेरा जो आतिथ्य किया है वह आपको शोभा देता है, हे भगवन् ! मैं आपकी कृपासे और महात्मा महर्षिकी आज्ञासे आज यहाँसे

नियोगादद्य यास्यामि वृद्धिमानृद्धिमान् भव । अथ निष्क्रम्य भगवान् प्रययावुत्तरामुखः५३ कैलासं मन्दरं हैमं सर्वाननुचार ह । तानतीत्य महाशैलान् कैरातस्थानमुत्तमम् ५४ प्रदक्षिणं तथा चक्रे प्रयतः शिरसानतः। धरणीमवतीर्याथ पूतात्मासौ तदाभवत् ५५ स तं प्रदक्षिणं कृत्वा त्रिःशैलं चोत्तरामुखः । समेन भूमिभागेन ययौ प्रीतिपुरस्कृतः ॥५६॥ ततोऽपरं वनोद्देशं रमणीयमपश्यत । सर्वर्तुभिर्मूलफलैः पक्षिभिश्च समन्वितैः ॥ ५७ ॥ रमणीयै-र्वनोद्देशैस्तत्र तत्र विभूषितम् । तत्राश्रमपदं दिव्यं ददर्श भग-वानथ ॥ ५८॥ शैलांश्च विविधाकारान् कांचनान् रत्नभूषितान् । मणिभूमौ निविष्टांश्च पुष्करिण्यस्तथैव च ॥ ५९ ॥ अन्यान्यपि

आगेको जाऊँगा आपके धनकी वृद्धि हो आप सम्पत्तिमान् हो इसप्रकार (कहकर) भगवान् अष्टावक्र तहाँसे विदा होकर उत्तर दिशाकी ओर जानेलगे ॥ ५३ ॥ उन्होंने कैलास मन्दराचल और हिमाचल नामक महापर्वतोंको लाँघा उन महा पर्वतोंको लाँघकर कैरात नामक शिवके उत्तम स्थानपर गए ॥ ५४ ॥ और उनकी प्रदक्षिणा करके सावधान होकर उनको मस्तक नमा प्रणाम किया इसके पीछे वे पृथ्वी (तलैटी) पर उतरे उनका आत्मा भी पवित्र तीर्थोंमें घूमनेसे पवित्र होयगा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अष्टावक्र इन तीनों पर्वतोंकी प्रदक्षिणाकर प्रीतिपूर्वक उत्तर दिशाकी ओर सपाट भूमि पर प्रवास करनेलगे ॥ ५६ ॥ चलते २ एक रमणीय वन उनके सामने पड़ा सब प्रकारकी ऋतुओंसे सब प्रकारके फलोंसे और कन्दोंसे और अनेक प्रकारके पक्षियोंसे और स्थान २ पर रमणीय वनभूमियोंसे वह वनप्रदेश शोभा पारहा था तहाँ भग-वान् अष्टावक्रने एक दिव्य आश्रम देखा ॥५८॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान सुवर्णमय और विविध आकारवाले पर्वतों को देखा मणिमय भूमियोंमें अनेक बावड़ियोंको देखा ॥ ५९ ॥

सुरम्याणि पश्यतः सुबहून्यथ । भृशं तस्य मनो रेमे महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६० ॥ स तत्र काञ्चनं दिव्यं सर्वरत्नमयं गृहम् । ददर्शाद्भुतसंकाशं धनदस्य गृहाद्वरम् ॥ ६१ ॥ महान्तो यत्र विविधा मणिकांचनपर्वताः । विमानानि च रम्याणि रत्नानि विविधानि च ॥६२॥ मन्दारपुष्पैः संकीर्णां तथा मन्दाकिनीं नदीम् । स्वयंप्रभाश्च मणयो वज्रैर्भूमिश्च भूषिता ॥ ६३ ॥ नानाविधैश्च भवनैर्विचित्रमणितोरणैः । मुक्ताजालविनिक्षिप्तैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ ६४ ॥ मनोदृष्टिहरैः रम्यैः सर्वतः संवृतं शुभैः । ऋषिभिश्चावृतं तत्र आश्रमं तं मनोहरम् ॥ ६५ ॥ ततस्तस्याभवच्चिन्ता कुत्र वासो भवेदिति । अथ द्वारं समभितो गत्वा स्थित्वा

तथा और भी बहुतसे रमणीय स्थलोंको देखा यह देखकर उन भावितात्मा महर्षिका मन अतिप्रसन्न हुआ ॥ ६० ॥ अष्टावक्रने तहाँ एक दिव्य घर देखा वह घर सारे सुवर्णका और रत्नोंसे भर पूर था अति आश्चर्यजनक था और कुवेरके घरसे भी उत्तम था६१ तहाँ मणि और सुवर्णके बड़े २ विविध प्रकारके पर्वत थे रमणीय विमान थे अनेक प्रकारके रत्न थे६२और मन्दारके पुष्पोंसे भरीहुई मन्दाकिनी नदी वहरहीथी मणियें अपने प्रकाशसे प्रकाशित होरहीं थीं और भूमि हीरोंसे जड़रही थी६३तहाँ अनेक प्रकारकी मणियोंके विचित्र तोरणों वाले अनेक मन्दिर थे और उनमें रत्नोंसे अलंकृत मोतियोंकी चिकें पड़ी हुई थीं, इससे वह भूमि शोभा पारही थी ॥ ६४ ॥ मनको और दृष्टिको खैंचने वाले उत्तम पदार्थोंसे वह स्थान छा रहा था और ऋषियोंसे भर पूर वह आश्रम मनोहर दीखता था ॥६५॥ तदनन्तर अष्टावक्रने विचार किया, कि-वह स्त्री कहाँ रहती होगी, यह विचार कर वह ऋषि द्वार पर गए और तहाँ खड़े होकर कहने लगे, कि-तुम्हारे यहाँ एक अतिथि आया है अतः जो कोई यहाँ रहता हो, वह इस

ततोऽब्रवीत् ॥ ६६ ॥ अतिथं समनुप्राप्तमभिजानंतु येऽत्र वै । अथ कन्याः परिवृता गृहात्तस्माद्विनिर्गताः ॥ ६७ ॥ नानारूपाः सप्त विभो कन्याः सर्वामनोहराः । यां यामपश्यत् कन्यां वै सा सा तस्य मनोऽहरत् ॥६८॥ न च शक्तो वारयितुं मनोस्याथावसीदति । ततो धृतिः समुत्पन्ना तस्य विप्रस्य धीमतः ॥६९॥ अथ तं प्रमदाः प्राहुर्भगवान् प्रविशत्विति । स च तासां सुरूपाणां तस्यैव भवनस्य हि ॥ ७० ॥ कौतूहलं समाविष्टः प्रविवेश गृहं द्विजः । तत्रापश्यज्जरायुक्तामरजोऽम्बरधारिणीम् ॥७१॥ वृद्धां पर्यंकमासीनां सर्वाभरणभूषिताम् । स्वस्तीति तेन चैवोक्ता सा स्त्री प्रत्यवदत्तदा ॥७२॥ प्रत्युत्थाय च तं विप्रमास्यतामित्युवाच ह । अष्टावक्र उवाच । सर्वाः स्वानालयान् यान्तु एका मामुप-

---

बातको सुन ले यह सुन कर उस घरमेंसे एक कन्यापरिवार बाहर निकला ॥६७॥ हे राजन् ! उसमें नाना प्रकारके रूपवाली सात कन्याएँ थीं, वे सब मनोहर थीं, ऋषि जिस २ कन्याको देखते थे वह २ ही उनके मनको हर लेती थी ॥ ६८ ॥ अपने मनका निग्रह करनेमें अशक्त होनेके कारण ऋषिके मनमें खेद हुआ, फिर उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने धैर्य धारण किया ॥६९॥ तब वह तरुण कन्याएँ उनसे कहने लगीं, कि-आप इस घरमें पधारिये तदनन्तर उन सुन्दरियोंकी और सुन्दर भवनकी शोभा से आश्चर्यमें हुए उन ऋषिने घरमें प्रवेश किया और भीतर एक वृद्ध स्त्रीको निर्मल वस्त्र पहिरे हुए देखा ॥ ७१ ॥ वह वृद्धा स्त्री पलंग पर बैठी थी और सब प्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान थी ऋषिने उस स्त्रीको आशीर्वाद दिया, कि-तेरा कल्याण हो उस स्त्रीने उसी प्रकार उनका सत्कार किया॥७२॥ वह स्त्री उठ कर खड़ी होगई और उन ब्राह्मणसे कहने लगी कि आप आसन पर विराजिये तब (आसन पर) बैठ कर अष्टा-

तिष्ठतु ॥ ७३ ॥ प्रज्ञाताया प्रशान्ताया शेषा गच्छन्तु च्छन्दतः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य कन्यास्तास्तमृषिं तदा ॥ ७४ ॥ निश्चक्रमुर्गृहात्तस्मात्सा वृद्धाथ व्यतिष्ठत । अथ तां संविशन् प्राह शयने भास्वरे तदा ॥ ७५ ॥ त्वयापि सुप्यतां भद्रे रजनी ह्यतिवर्तते । संलापात्तेन विप्रेण तथा सा तत्र भाषिता ॥७६॥ द्वितीये शयने दिव्ये संविवेश महाप्रभे । अथ सा वेपमानांगी निमित्तं शीतजं तदा ॥ ७७ ॥ व्यपदिश्य महर्षेर्वै शयनं व्यवरोहत । स्वागतेनागतां तां तु भगवानभ्यभाषत ॥ ७८ ॥ सोपागूहद्भुजाभ्यां तु ऋषिं प्रीत्या नरर्षभ । निर्विकारमृषिं चापि काष्ठकुड्योपमं तदा ॥७९॥ दुःखिता प्रेक्ष्य संजल्पमकार्षीदृषिणा सह । ब्रह्मन्न

वक्रजी कहने लगे, यह सब, स्त्रियें अपने २ घरको जावें केवल एक स्त्री ही मेरी सेवामें रहे ॥ ७३ ॥ तुममेंसे जो अतिज्ञानी हों और जिसने मनको जीता हो वही यहाँ रहे, बाकी सब यहाँसे इच्छानुसार चली जाओ ! तब वे कन्याएँ उसी समय ऋषिकी प्रदक्षिणा करके उस घरमें से चली गईं, केवल एक बुढ़िया ही तहाँ रह गई, तब ऋषि एक सुशोभित पलंग पर पौढ़े और उस वृद्ध स्त्रीसे कहा, कि-॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे भद्रे ! तू भी विश्राम कर, क्यों कि-रात्रि बीत रही है, ब्राह्मणने इस प्रकार उस वृद्धासे कहा ॥ ७६ ॥ तब वह स्त्री एक दूसरे दिव्य और महाकांतिमान् पलंग पर लेट गई, तदनन्तर वह स्त्री शीतका वहाना करके अंगोंको कँपाती हुई ऋषिके पलंग पर जा बैठी, तब भगवान् अष्टावक्र भी उस स्त्रीका स्वागत करके कहने लगे, कि-तू भले आई ॥ ७८ ॥ तदनन्तर हे पुरुषर्षभ ! उस स्त्रीने अपनी दोनों भुजाओंसे उन ऋषिको आलिंगन किया परन्तु वह उस समय उन मुनिको लकड़ीकी और दीवारकी समान निश्चेष्ट देखकर खिन्न होगई और ऋषिसे कहने

कामतोऽन्यास्ति स्त्रीणां पुरुषतो धृतिः ॥ ८० ॥ कामेन मोहिता चाहं त्वां भजन्तीं भजस्व माम् । प्रहृष्टो भव विप्रर्षे समागच्छ मया सह ॥ ८१ ॥ उपगूह च मां विप्र कामार्ताहं भृशं त्वयि । एतद्धि तव धर्मात्मंस्तपसः पूज्यते फलम् ॥ ८२ ॥ प्रार्थितं दर्शनादेव भजमानां भजस्व माम् । मम चेदं धनं सर्वं यच्चान्यदपि पश्यसि ॥८३॥ प्रभुस्त्वं भव सर्वत्र मयि चैव न संशयः । सर्वान् कामान्विधास्यामि रमस्व सहितो मया ॥ ८४ ॥ रमणीये वने विप्र सर्वकामफलप्रदे । त्वद्वशाहं भविष्यामि रंस्यसे च मया सह ॥ ८५ ॥ सर्वान कामानुपाश्नीमो ये दिव्या ये च मानुषाः । नातः परं हि नारीणां विद्यते च कदाचन ॥ ८६ ॥ यथा पुरुष-

---

लगी कि–हे ब्रह्मन् ! स्त्रियोंका धैर्य पुरुषके पास जानेपर अपने अधीन नहीं रहता है ८० कामके कारण मैं मोहित होगई हूँ और आपकी सेवा करनेके लिये आई हूँ, अतः आप मुझे भोगिये हे ब्रह्मर्षे ! अब आप मुझे भोगनेके लिये हर्षमें भर जाइये और मेरे साथ समागम करिये ॥ ८१ ॥ हे विप्र ! मैं कामसे मोहित होगई हूँ,मुझ भजन करने वालीका आप सेवन करिये,हे धर्मात्मन् ! आपके तपका फल भी यही है ॥ ८२ ॥ हे धर्मात्मन् ! आपको देखते ही मैं आप पर आसक्त होगई हूँ, अतः अब आप मुझे भोगिये, यह सब धन और जो कुछ आप देख रहे हैं, यह मेरा है ॥ ८३ ॥ इन सबके और मेरे भी आप स्वामी बनिये, इसमें कुछ सन्देह न करिये, मैं आपकी सब कामनाओंको पूर्ण करूँगी, आप मेरे साथ रमण करिये ॥ ८४ ॥ हे विप्र ! इस सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले रमणीय वनमें मैं आपके वशमें होकर रहूँगी (परन्तु) आप मेरे साथ रमण करिये ॥ ८५ ॥ जितने दिव्य भोग हैं और जितने मानवी भोग हैं, वे सब आपको इस वनमें मिलेंगे, क्योंकि–स्त्रियोंको इससे अधिक सुख और

संसर्गः परमेतद्धि नः फलम् । आत्मच्छन्देन वर्तन्ते नार्यो मन्मथ-
चोदिताः ॥ ८७ ॥ न च दह्यन्ति गच्छन्त्यः सुतप्तैरपि पांसुभिः ।
अष्टावक्र उवाच । परदारानहं भद्रे न गच्छेयं कथञ्चन ॥ ८८ ॥
दूषितं धर्मशास्त्रज्ञैः परदाराभिमर्शनम् । भद्रे निर्वेष्टुकामं मां विद्धि
सत्येन वै शपे ॥८९॥ विषयेष्वनभिज्ञोऽहं धर्मार्थं किल सन्ततिः ।
एवं लोकान् गमिष्यामि पुत्रैरिति न संशयः ॥ ९० ॥ भद्रे धर्मं
विजानीहि ज्ञात्वा चोपरमस्व ह । स्त्र्युवाच । नानिलोऽग्निर्न
वरुणो न चान्ये त्रिदशा द्विजः ॥ ९१ ॥ प्रियाः स्त्रीणां यथा
कामो रतिशीला हि योषितः । सहस्रे किल नारीणां प्राप्येतैका

किसी बातसे नहीं मिलता है, कि जैसा सुख पुरुषके संगसे मिलता है, क्योंकि–पुरुषसंसर्ग ही परमफल(सुख) है, (कामदेव) से प्रेरित हुई नारियें इच्छानुसार वर्ताव करती हैं ॥ ८७ ॥ कामातुर स्त्रियें तपती हुइ रेतीमें भी पैर जलनेकी पीड़ाका भी अनुभव न कर चली ही जाती हैं, अष्टावक्रने उत्तर दिया ,कि-हे कल्याणि ! मैं परस्त्रीको किसी प्रकार नहीं भोगता हूँ॥८८॥ धर्मशास्त्रको जानने वाले विद्वानोंने परस्त्रीके स्पर्शको दूषित माना है हे कल्याणि ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-तू मुझे विवाह करनेकी इच्छा वाला समझ अर्थात् मैं विवाह करके ही स्त्रीको भोग सकता हूँ ॥ ८९ ॥ मैं विषयोंसे सर्वथा अजान हूँ, परन्तु धर्मके लिये सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा मुझे अवश्य है,मैं पुत्रोंको उत्पन्न करके स्वर्गमें जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥९०॥हे कल्याणि! तू धर्मको समझ और धर्मको जान कर शान्त हो, स्त्रीने कहा, कि–हे द्विज ! हमको न ऐसा वायु प्यारा है, न अग्नि प्यारा है और न कोई दूसरी वस्तु प्यारी है ॥९१॥ कि-जैसा हम स्त्रियोंको काम प्यारा है, क्योंकि-स्त्रियें रतिसुखसे प्रेम करती हैं, सहस्रों स्त्रियोंमें कोई स्त्री पतिव्रता

कदाचन ॥ ६२ ॥ तथा शतसहस्रेषु यदि काचित् पतिव्रता ।
नैता जानन्ति पितरं न कुलं न च मातरम् ॥ ६३ ॥ न भ्रातॄन्न
च भर्तारं न च पुत्रान्न देवरान् । लीलायन्त्यः कुलं घ्नन्ति कूला-
नीव सरिद्वराः । दोषान् सर्वांश्च मत्वाशु प्रजापतिरभाषत ॥६४॥
भीष्म उवाच । ततः स ऋषिरेकाग्रस्तां स्त्रियं प्रत्यभाषत । आ-
स्यतां रुचितश्छन्दः किं च कार्यं ब्रवीहि मे ॥ ६५ ॥ सा स्त्री
प्रोवाच भगवन् द्रक्ष्यसे देशकालतः । वस तावन्महाभाग कृत-
कृत्यो भविष्यसि ॥ ६६ ॥ ब्रह्मर्षिस्तामथोवाच स तथेति युधि-
ष्ठिर । वत्स्येऽहं यावदुत्साहो भवत्या नात्र संशयः ॥ ६७ ॥
अथर्षिरभिसंप्रेक्ष्य स्त्रियं तां जरयार्दिताम् । चिन्तां परमिकां

होगी ॥ ६२ ॥ अथवा लाखोंमें एक निकलेगी वे पिता, कुल अथवा भाईकी प्रतिष्ठाका ध्यान नहीं रखती हैं, माता, पुत्र देवर और पतियोंकी प्रतिष्ठाको भी नहीं विचारती हैं, जैसे बड़ी २ नदियें अपने रक्षक किनारोंको तोड़ डालती है, ऐसे ही काम-क्रीड़ामें मस्त स्त्रियें अपने कुलका नाश कर डालती हैं, प्रजापतिने उन सब दोषोंको शीघ्र ही विचारकर यह बात कही थी ६३-६४ भीष्मजीने कहा, कि तदनन्तर उन ऋषिने स्त्रीके दोषोंका ध्यान करके उस स्त्रीसे कहा, कि-हे स्त्री ! तू चुप चाप बैठी रह, क्यों कि—इच्छा रुचिमेंसे उत्पन्न होती है मुझे तू रुचती नहीं है अतः मुझे तेरी इच्छा नहीं है और बता मैं तेरा क्या प्रिय कार्य करूँ ॥६५॥ तब उस स्त्रीने कहा, कि-हे भगवन् ! देश-कालानुसार आपको सब स्पर्शसुख मिलेगा हे महाभाग! आप यहाँ रहिये आप कृतकृत्य ही होंगे६६ हे युधिष्ठिर ! यह बात सुनकर उन ऋषिने कहा, कि-तू जब तक चाहेगी तब तक मैं यहाँ रहूँगा इससे तू निश्चित रह ॥६७॥ फिर वह ब्रह्मर्षि उस स्त्रीको वृद्धा-वस्थासे पीड़ित देखकर बड़ी चिंतामें पड़गए और सन्तप्तसे हो

भेजे सन्तप्त इव चाभवत् ॥ ९८ ॥ यद्यदङ्गं हि सोऽपश्यत्तस्या विप्रर्षभस्तदा । नारमत्तत्र तत्रास्य दृष्टी रूपविरागिता ॥ ९९ ॥ देवतेयं गृहस्यास्य शापात्किं नु विरूपिता । अस्याश्च कारणं वेत्तुं न युक्तं सहसा मया ॥१००॥ इति चिन्ताविविक्तस्य तमर्थं ज्ञातुमिच्छतः । व्यगच्छत्तदहः शेषं मनसा व्याकुलेन तु ॥१०१॥ अथ सा स्त्री तथोवाच भगवन्पश्य वै रवेः । रूपं सन्ध्याभ्रसंरक्तं किमुपस्थाप्यतां तव ।१०२॥ स उवाच ततस्तां स्त्रीं स्नानोदकमिहाय । उपासिष्ये ततः सन्ध्यां वाग्यतो नियतेन्द्रियः १०३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

भीष्म उवाच । अथ सा स्त्री तमुवाच बाढमेवं भवत्विति ।

गए ॥ ९८ ॥ क्योंकि-उन विप्रर्षभकी उसके जिस २ अंगपर दृष्टि पड़ी, उस २ अङ्गके रूपरहित होनेसे उनको उसका कोई अङ्ग उसकी दृष्टिमें अच्छा ही प्रतीत नहीं हुआ ॥ ९९ ॥ यह यह स्त्री इस घरकी देवता होगी किसी शापवश इसका स्वरूप बिगड़ गया होगा, परन्तु इसका कारण जाननेका साहस मुझे न करना चाहिये ॥१००॥ इसप्रकार चिन्तासे व्याकुल मनवाले उन ऋषिका वह बाकी दिनका कुछ भाग और रात्रि इस बात को सोचते २ ही बीत गई ॥१॥ तब वह स्त्री उनसे कहने लगी, कि-हे भगवन् ! आप सूर्यनारायणके सन्ध्याकालीन बादलोंमें रक्तवर्णवाले रूपको देखिये बताइये, मैं आपके सामने क्या वस्तु उपस्थित करूँ ॥१०२॥ तब उन ऋषिने उस स्त्रीसे कहा कि-तू तहाँ स्नान करनेके लिये जल लेआ, तब मैं वाणी और इन्द्रियों को नियममें रखकर सन्धया करूँगा॥१०३॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ छ छ ॥

भीष्मजीने कहा, कि-तदनन्तर वह स्त्री बहुत अच्छा कह

तैलं दिव्यमुपादाय स्नानशाटीमुपानयत् ॥ १ ॥ अनुज्ञाता च मुनिना सा स्त्री तेन महात्मना । अथास्य तैलेनांगानि सर्वाण्येवाभ्यमृक्षत ॥ २ ॥ शनैश्चोत्सादितस्तत्र स्नानशालामुपागमत् । भद्रासनं ततश्चित्रं ऋषिरन्वगमन्नवम् ॥ ३ ॥ अथोपविष्टश्च यदा तस्मिन् भद्रासने तदा । स्नापयामास शनकैस्तमृषिं सुखहस्तवत् ॥ ४ ॥ दिव्यं च विधिवच्चक्रे सोपचारं मुनेस्तदा । स तेन सुसुखोष्णेन तस्या हस्तसुखेन च ॥५॥ व्यतीतां रजनीं कृत्स्नां नाजानत् स महाव्रतः । तत उत्थाय स मुनिस्तदा परमविस्मितः ६ पूर्वस्यां दिशि सूर्यं च सोऽपश्यदुदितं दिवि । तस्य बुद्धिरियं किन्तु मोहस्तत्त्वमिदं भवेत् ॥७॥ अथोपास्य सहस्रांशुं किंकरो-

कर दिव्य तेल और स्नान करनेके लिये धोती ले आई ॥१॥ तदनन्तर उन महात्मा मुनिके आज्ञा देनेपर उस स्त्रीने मुनिके सब अङ्गोंमें मर्दन किया ॥ २ ॥ फिर वह स्त्री उनको धीरेसे उठाकर स्नानशालामें लेगई, तहाँ एक नवीन विचित्र भद्रासन पड़ाहुआ था, ऋषि उसके समीप गए ॥ ३ ॥ उस आसन पर उनके बैठ जानेपर वह स्त्री जिसप्रकार सुख मिले, इसप्रकार धीरे २ हाथ फेरती हुई उन ऋषिको स्नान करानेलगी ॥ ४ ॥ इसप्रकार उस स्त्रीने उन ऋषिकी दिव्य सेवाकी, उस स्त्रीने ऋषिको गुनगुने जलसे स्नान कराया और सुख पहुँचानेके लिये धीमे हाथसे उनके शरीरपर मर्दन किया, इन्हीं वातोंमें उन महाव्रतधारी मुनिकी सारी रात्रि वीतगई और वह इस वातको जान भी नहीं सके, तदन्तर पूर्वदिशामें आकाशमें सूर्यनारायणको निकलते देख वह ऋषि आश्चर्यमें हो उठ खड़ेहुए और विचारने लगे, कि-क्या मुझे मोह (भ्रम) होगया है, या यह वात सच्ची है ? ॥५-७॥ तदनन्तर ऋषिने सूर्यकी उपासनाकी और सन्ध्या वन्दन किया, तदनन्तर उस स्त्रीसे मुनिने कहा, कि-अब मैं क्या

मीत्युवाच ताम् । सा चामृतरसप्रख्यं ऋषेरन्नमुपाहरत् ॥ ८ ॥ तस्य स्वादुतयान्नस्य न प्रभूतं चकार सः । व्यगमच्चाप्यहःशेषं ततः सन्ध्यागमत् पुनः ॥ ९ ॥ अथ सा स्त्री भगवन्तं सुप्यतामित्यचोदयत् । तत्र वै शयने दिव्ये तस्य तस्याश्च कल्पिते १० पृथक् चैव तथा सुप्तौ सा स्त्री स च मुनिस्तदा । तथार्धरात्रे सा स्त्री तु शयनं तदुपागमत् ॥ ११ ॥ अष्टावक्र उवाच । न भद्रे परदारेषु मनो मे संप्रसज्जति । उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते स्वयं वै विरमस्व च ॥१२॥ भीष्म उवाच । सा तदा तेन विप्रेण तथा तेन निवर्तिता । स्वतन्त्रास्मीत्युवाचर्षिं न धर्मच्छलमस्ति ते १३ अष्टावक्र उवाच । नास्ति स्वतन्त्रता स्त्रीणामस्वतन्त्रा हि योषितः । प्रजापतिमतं ह्येतन्न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥ १४ ॥ स्त्र्यु-

करूँ तब उस स्त्रीने अमृतकी समान स्वादिष्ट भोजन लाकर ऋषिके सामने रक्खा ॥ ८ ॥ उस अन्नकी स्वादिष्टताके कारण उनका भोजन करना पूर्ण ही नहीं हुआ और उसमें ही सारा दिन बीतगया और सांयकाल होगया ॥ ९ ॥ यह देखकर उस स्त्रीने उनसे कहा, अब आप शयन करिये उस समय उस स्त्रीके लिये और उन मुनिके लिये दो दिव्य पलँग बिछायेगए १० और यह स्त्री तथा वह ऋषि अलग २ सोगए, परन्तु आधी रात बीतने पर वह स्त्री अष्टावक्रजीके पलंग पर जा बैठी ११ उस स्त्रीको देखकर अष्टावक्रजीने कहा, कि-हे कल्याणि ! मेरा मन परस्त्री के ऊपर आसक्त नहीं होता है, हे कल्याणि ! उठ खड़ी हो, तेरा कल्याण हो और इस कर्मसे तू स्वयं ही अलग हो जा १२ भीष्मजीने कहा, कि-अष्टावक्र नामक ब्राह्मणने इसप्रकार कह कर उस स्त्रीको रोका तब वह स्त्री उन ऋषिसे कहनेलगी, कि-मैं तो स्वतन्त्र हूँ, अतः आपको परस्त्री गमनका दोष नहीं लगेगा १३ अष्टावक्रने कहा, कि-स्त्रियें स्वतंत्र नहीं है, पराधीन हैं, प्रजापति

वाच। बाधते मैथुनं विप्र मम भक्तिं च पश्य वै। अधर्मं प्राप्स्यसे विप्र यन्मां त्वं नाभिनन्दसि ॥१५॥ अष्टावक्र उवाच। हरन्ति दोषजातानि नरं जातं यथेच्छकम्। प्रभवामि सदा धृत्या भद्रे स्वशयनं व्रज ॥ १६ ॥ स्त्र्युवाच। शिरसा प्रणमे विप्र प्रसादं कर्तुमर्हसि। भूमौ निपतमानायाः शरणं भव मेऽनघ ॥ १७ ॥ यदि वा दोषजातं त्वं परदारेषु पश्यसि। आत्मानं स्पर्शयाम्यद्य पाणिं गृह्णीष्व मे द्विज ॥ १८ ॥ न दोषो भविता चैव सत्येनैतद्ब्रवीम्यहम्। स्वतन्त्रां मां विजानीहि योऽधर्मः सोऽस्तु वै मयि। त्वय्यावेशितचित्ता च स्वतन्त्रास्मि भजस्व माम्॥१९॥ अष्टावक्र

ने भी कहा है, कि-"न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ स्त्रीने कहा, कि-हे ब्राह्मण! मुझे काम पीडित कर रहा है,आप मेरी भक्तिको देखिये, हे ब्राह्मण! आप मुझे आनन्द नहीं देते हैं इससे आपको अधर्मका दोष लगेगा ॥ १५ ॥ अष्टावक्रने कहा, कि-हे कल्याणि! अपनी इच्छानुसार वर्ताव करने वाले मनुष्योंको ही दोष अपनी ओर घसीटते हैं, मैं तो सदा धैर्यसे सबका पराभव करता हूँ, अतः हे कल्याणि! तू अपने पलँग पर जा ॥१६॥ स्त्रीने कहा, कि-हे ब्राह्मण!मैं आपको मस्तक नमा कर प्रणाम करती हूँ,आपको मुझ पर कृपा करनी चाहिये, हे निर्दोष ब्राह्मण! इस भूमि पर लोट कर प्रार्थना करने वाली पर आप कृपा करिये ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! यदि आप पराई स्त्रीके साथ समागम करनेमें दोष समझते हों, तो मैं स्वयं आपका स्पर्श करती हूँ आप मेरा पाणिग्रहण करिये ॥ १८ ॥ इससे आपको दोष नहीं लगेगा मैं यह बात ठीक कह रही हूँ, आप मुझे स्वतन्त्र समझिये और इस प्रकार पाणिग्रहण करनेमें कुछ अधर्म होता हो तो वह मुझे लगे; मेरा मन आपमें लगा हुआ है और मैं स्वतन्त्र हूँ, अतः

उवाच । स्वतन्त्रा त्वं कथं भद्रे ब्रूहि कारणमत्र वै । नास्ति त्रिलोके स्त्री काचिद्या वै स्वातंत्र्यमर्हति ॥ २० ॥ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्राश्च स्थाविरे काले नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥ २१ ॥ स्त्र्युवाच । कौमारं ब्रह्मचर्य्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः । पत्नीं कुरुष्व मां विप्र श्रद्धां विजहि मा मम ॥२२॥ अष्टावक्र उवाच । यथा मम तथा तुभ्यं यथा तुभ्यं तथा मम । जिज्ञासेयमृषेस्तस्य विघ्नः सत्यं न किं भवेत् ॥ २३ ॥ आश्चर्यं परमं हीदं किन्तु श्रेयो हि मे भवेत् । दिव्याभरणवस्त्रा हि कन्येयं मामुपस्थिता ॥ २४ ॥ किं त्वस्याः परमं रूपं जीर्णमासीत् कथं

आप मुझे भागिये ॥ १९ ॥ अष्टावक्रने कहा, कि-हे कल्याणी स्त्री ! तू स्वतंत्र किस प्रकार होसकती है, तीनों लोकोंमें ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है जो स्वतंत्र हो ॥२०॥ (शास्त्रोंमें कहा है कि -) कुमोरावस्थामें पिता कन्याकी रक्षा करता है और यौवन में स्वामी स्त्रीकी रक्षा करता है और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं, स्त्रियें स्वतंत्र नहीं होसकतीं ॥ २१ ॥ स्त्रीने कहा, कि—मैं कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्यका पालन कर रही हूँ, कन्या ही हूँ, इसमें सन्देह नहीं है हे ब्राह्मण ! आप मुझे अपनी पत्नी बनाइये, मेरी श्रद्धाको आप नष्ट न करिये ॥ २२ ॥ अष्टावक्रने कहा कि-मुझे जैसे काम पीड़ा देता है तैसे ही तुमको भी काम पीड़ा देता होगा और तुझे जैसे काम पीडित करता है तैसे ही मुझे भी काम पीडित करता है, परन्तु जिन वदान्य ऋषिकी कन्याको मैंने माँगा है, उनकी भी यदि ऐसी इच्छा हो अर्थात् वह मेरी परीक्षा लेना चाहते हों तो यह काम एक विघ्नस्वरूप ही होजावेगा ॥ २३ ॥ वास्तवमें यह एक आश्चर्यजनक घटना है, मेरा कल्याण किसमें है, यह कन्या दिव्य आभूषण पहर कर आई है ॥२४॥ परन्तु इस कन्याका यह उत्तम रूप पहिले वृद्धा-

पुनः । कन्या रूपमिहाद्यैवं किमिवाग्रोत्तरं भवेत् ॥ २५ ॥ यथा परं शक्तिधृतेर्न व्युत्थास्ये कथञ्चन । न रोचते हि व्युत्थानं सत्येनासादयाम्यहम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आनुशासनिके पर्वणि अनुशासनपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच । न बिभेति कथं सा स्त्री शापाच्च परमद्युतेः । कथं निवृत्तो भगवांस्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अष्टावक्रोऽन्वपृच्छत्तां रूपं विकुरुषे कथम् । न चानृतं ते वक्तव्यं ब्रूहि ब्राह्मणकाम्यया ॥ २ ॥ स्त्र्युवाच । द्यावापृथिव्योर्यत्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम । शृणुष्वावहितः सर्वं यदिदं सत्यविक्रम ३

वस्थासे क्यों ढका हुआ था, अब इस कन्याका ऐसा रूप है, कौन जाने आगेको कैसा होगा ॥ २५ ॥ शक्ति अर्थात् मनका दमन करनेकी सामर्थ्य और धृति अर्थात् पहिले प्राप्त हुई वस्तु का अत्याग—इन दोनोंको मैं कभी नहीं त्यागूँगा, क्यों कि-धर्मको त्यागना मुझे अच्छा नहीं लगता, मैं तो सत्य अर्थात् धर्मापूर्वक ही स्त्रीको ग्रहण करूँगा॥२६॥बीसवाँ अध्याय समाप्त।२०।

युधिष्ठिरने कहा, कि-यह स्त्री उन महाकान्तिवाले ऋषिके शापसे डरती क्यों नहीं थी ? और भगवान् अष्टावक्र उस स्त्रीके (पञ्जेसे) किसप्रकार छूटे थे यह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने उत्तरदिया, कि-तदन्तर अष्टावक्रजीने बूझा, कि-तू अपने स्वरूपको किसलिये बदला करती है ? तू असत्य न बोलना, किन्तु ब्राह्मणका मान रखतीहुई सत्य बात बतलाना २ स्त्रीने कहा, कि-हे उत्तम ब्राह्मण ! स्वर्गमें अथवा पृथ्वीमें यह काम्या सर्वत्र ही है अर्थात् स्त्री पुरुषोंको समागम की इच्छा तो सर्वत्र हो रहती है (मोक्षके अतिरिक्त कामनारहित कोई स्थान है ही नहीं,) हे सत्यविक्रम ! इस विषयकी सब बात

जिज्ञासेयं प्रयुक्ता मे स्थिरीकर्तुं तवानघ । अभ्युत्थानेन ते लोका जिताः सत्यपराक्रम ॥४॥ उत्तरां मां दिशं विद्धि दृष्टं स्त्रीचापलं च ते । स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः ॥ ५ ॥ तुष्टः पितामहस्तेऽद्य तथा देवाः सवासवाः । स त्वं येन च कार्येण संप्राप्तो भगवानिह ॥६॥ प्रेषितस्तेन विप्रेण कन्यापित्रा द्विजर्षभ । तवोपदेशं कर्तुं वै तच्च सर्वं कृतं मया ॥७॥ क्षेमैर्गमिष्यसि गृहं श्रमश्च न भविष्यति । कन्यां प्राप्स्यसि तां विप्र पुत्रिणी च भविष्यति ॥ ८ ॥ काम्यया पृष्टवांस्त्वं मां ततो व्याहृतमुत्तमम् । अनतिक्रमणीया सा कृत्स्नलोकैस्त्रिभिः सदा ॥ ९ ॥ गच्छस्व सुकृतं कृत्वा किं चान्यच्छ्रोतुमिच्छसि । यावद्ब्रवीमि विप्रर्षे

को आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ हे निर्दोष ब्राह्मण ! आपको दृढ़ करनेके लिये आपकी परीक्षा करनेकी जिज्ञासासे मैंने यह काम किया है, परन्तु हे सत्यपराक्रमी ! आपने अपने मनोबलसे तीनों लोकोंको जीत लिया है ॥ ४ ॥ आप मुझे उत्तरदिशा समझिये, आपने स्त्रीकी चपलता देखी कामज्वर वृद्धा स्त्रियोंको भी दुःखी करता है, (यह आपने देखा) ॥५॥ आज पितामह आप पर प्रसन्न हुए हैं, ऐसे ही इन्द्रसहित देवता भी आप पर प्रसन्न हुए हैं और जिस कार्यके लिये आप यहाँ आये हैं, वह कार्य भी पूर्ण होगया है ॥ ६ ॥ और हे उत्तम ब्राह्मण ! कन्याके पिता ब्राह्मणने आपको उपदेश लेनेके लिये यहाँ भेजा था और वह सब काम मैंने कर दिया है ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मण ! अब तुम कुशलपूर्वक घर पहुँच सकोगे, तुमको परिश्रम नहीं मालूम होगा, उस ब्राह्मणकी कन्या आपको मिलेगी और उस कन्यासे पुत्र उत्पन्न होगा ॥८॥ मेरे कामनासे किये हुए प्रश्नोंका आपने उचित उत्तर दिया है, तीनों लोकोंके प्राणी इस कामना (समागमेच्छा) का उल्लंघन नहीं कर सकते॥ ९ ॥

अष्टावक्र यथातथम् ॥ १० ॥ ऋषिणा प्रसादिता चास्मि तव हेतोर्द्विजर्षभ । तस्य संमाननार्थं मे त्वयि वाक्यं प्रभाषितम् ॥११॥ भीष्म उवाच । श्रुत्वा तु वचनं तस्याः स विप्रः प्राञ्जलिः स्थितः । अनुज्ञातस्तया चापि स्वगृहं पुनराव्रजत् ॥ १२ ॥ गृहमागत्य विश्रान्तः स्वजनं परिपृच्छ्य च । अभ्यगच्छच्च तं विप्रं न्यायतः कुरुनन्दन ॥ १३ ॥ पृष्टश्च तेन विप्रेण दृष्टं त्वेतन्निदर्शनम् । प्राह विप्रं तदा विप्रः सुप्रीतेनांतरात्मना ॥ १४ ॥ भवता समनुज्ञातः प्रस्थितो गन्धमादनम् । तस्य चोत्तरतो देशे दृष्टं मे दैवतं महत् ॥ १५ ॥ तया चायमनुज्ञातो भवांश्चापि प्रकीर्तितः। श्रावितश्चापि तद्वाक्यं गृहं चाभ्यागतः प्रभो ॥ १६ ॥ तमुवाच तदा

इस पुण्यको सञ्चित कर अब आप घरको जाइये, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं,हे विप्रर्षे अष्टावक्र!मेरे उत्तर देने योग्य यदि कोई बात हो तो कहिये ॥१०॥ हे उत्तम ब्राह्मण ! वदान्य ऋषिने आपके कारण मुझे प्रसन्न किया था और ऋषिका मान रखनेके लिये मैंने आपसे इतनी बात की हैं ॥११॥ भीष्मजीने कहा, कि-उत्तर दिशाकी बात सुन कर वह ब्राह्मण दोनों हाथ जोड़ कर खड़े होगए और उस दिशाने जब आज्ञा दी तब अपने घर लौट आए ॥ १२ ॥ और अपने घर विश्राम लेनेके अनन्तर हे कुरुनन्दन ! वह अपने सम्बंधियोंकी आज्ञा लेकर नीतिके अनुसार वदान्य नामक ब्राह्मणके पास गए ॥ १३ ॥ तब वदान्यने बूझा, कि-प्रवासमें आपने क्या देखा,तब उन्होंने उनसे सब बात कही ॥ १४ ॥ कि-आपके आज्ञा देने पर मैं गन्धमादन नामक पर्वत पर गया, उस पर्वतके उत्तरप्रदेशमें मुझे महादेवीके दर्शन हुए॥१५॥उस उत्तर दिशाने मेरा स्वागत किया और आपकी कीर्ति गाई और मुझसे कुछ बातें कीं, हे प्रभो ! उसके पीछे मैं घरको लौट आया ॥१६॥ तब वदान्य ब्राह्मणने

विप्रः सुतां प्रतिगृह्णाण मे । नक्षत्रविधियोगेन पात्रं हि परमं भवान् ॥ १७ ॥ भीष्म उवाच । अष्टावक्रस्तथेत्युक्त्वा प्रतिगृह्य च तां प्रभो । कन्यां परमधर्मात्मा प्रीतिमांश्चाभवत्तदा ॥ १८ ॥ कन्यां तां प्रतिगृह्यैव भार्यां परमशोभनाम् । उवास मुदितस्तत्र स्वाश्रमे विगतज्वरः ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि अनुशासनिके पर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर उवाच । किमाहुर्भरतश्रेष्ठ पात्रं विप्राः सनातनाः । ब्राह्मणं लिंगिनं चैव ब्राह्मणं वाप्यलिंगिनम् ॥१॥ भीष्म उवाच । स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिंगिने चेतराय च । देयमाहुर्महाराज उभावेतौ तपस्विनौ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच । श्रद्धया परयाऽपूतो यः प्रयच्छेद्द्विजातये । हव्यं कव्यं तथा दानं को दोषः स्यात्

कहा कि-आप नक्षत्र देख कर वेदविधिसे मेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करिये, क्योंकि-आप उत्तम पात्र हैं ॥ १७ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे प्रभो ! तदनन्तर अष्टावक्रजीने तथास्तु कह कर उनकी पुत्रीको स्वीकार किया और परम प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ और अतिशोभावाली ब्राह्मणकी कन्याको भार्याकी रीतिसे विवाह कर सन्तापरहित हो अपने आश्रममें आनन्दसे रहने लगे ॥ १९ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ छ

युधिष्ठिरने कहा, कि-हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! प्राचीन ब्राह्मण वेदवेत्ता ब्रह्मचारी ब्राह्मणको और संन्यासके दण्ड आदि चिन्हों को धारण करनेवाले संन्यासीको पात्र (योग्य) क्यों कहते हैं ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे महाराज ! आजीविकाके लिये अपने योग्य वृत्तिका अवलम्बन लेनेवाले दण्ड आदि चिन्हधारी संन्यासीको और अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले ब्राह्मण को दान देना लिखा है, क्योंकि-वे तपस्वी हैं ॥२॥ युधिष्ठिरने

पितामह ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । श्रद्धापूतो नरस्तात दुर्दान्तोऽपि न संशयः । पूता भवति सर्वत्र किमुत त्वं महाद्युते ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवेषु सततं नरः । कव्यप्रदाने तु बुधाः परीक्ष्यं ब्राह्मणं विदुः ॥ ५ ॥ भीष्म उवाच । न ब्राह्मणः साधयते हव्यं दैवात् प्रसिद्ध्यति । देवप्रसादादिज्यन्ते यजमानैर्न संशयः ॥६॥ ब्राह्मणान् भरतश्रेष्ठ सततं ब्रह्मवादिनः ।

बूझा, कि-हे पितामह ! अपवित्र पुरुष भी यदि परम श्रद्धासे द्विजातिको हव्य कव्य तथा दान देता है तो उसको क्या दोष लगता है यह मुझसे कहिये ॥३॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे महाकान्तिमान् तात ! आत्मसंयम करनेमें असमर्थ पुरुष भी श्रद्धा करनेसे निर्मल होजाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, श्रद्धा उसको सर्वथा पवित्र करदेती है और तुम्हारी तो बात ही क्या है ? ४ युधिष्ठिरने बूझा, कि-विद्वान् कहते हैं, कि-मनुष्यको देवकार्योंमें और यज्ञोंमें ब्राह्मणोंकी सदा परीक्षा नहीं करनी चाहिये परन्तु कव्यमें अर्थात् पितृकार्यमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये ॥ ५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-यज्ञ होम आदि कर्म उत्तम ब्राह्मणोंके कारण ही फल नहीं देते हैं, किन्तु देवताओंकी कृपासे ही फल देते हैं, यजमान देवताओंकी कृपासे ही यज्ञ करसकते हैं, यह बात निर्विवाद है (यज्ञ होम आदि कर्मोंको श्रद्धासे करने पर ही उनका फल मिलता है, ये कर्म तो देवताओंके अनुग्रह और श्रद्धासे ही पूर्ण होते हैं) ॥ ६ ॥ परन्तु हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! पितृकर्ममें वेद पढ़ेहुए ब्राह्मणोंको ही सदा निमंत्रण देना चाहिये इसप्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषिने पहिले सब लोकोंके सामने कहा था (पितृकर्म ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे ही पूर्ण होता है अतः श्राद्धकर्ममें निमंत्रित ब्राह्मणमें तपोबल अवश्य होना चाहिये, आश्वलायन श्रुतिमें कहा है कि-"अग्निमुखा वै देवाः

मार्कण्डेयः पुरा प्राह इति लोकेषु बुद्धिमान् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच । अपूर्वोऽप्यथवा विद्वान् सम्बन्धी वा यथा भवेत् । तपस्वी यज्ञशीलो वा कथं पात्रं भवेत्तु सः॥८॥ भीष्म उवाच । कुलीनः कर्मकृद्वैद्यस्तथैवाप्यानृशंस्यवान् । ह्रीमानृजुः सत्यवादी पात्रं पूर्वे च ये त्रयः ॥ ९ ॥ तत्रेमं शृणु मे पार्थ चतुर्णां तेजसां मतम् । पृथिव्याः काश्यपस्याग्नेर्मार्कण्डेयस्य चैव हि॥१०॥पृथिव्युवाच । महार्णवे यथा क्षिप्तः क्षिप्रं लेष्टुर्विनश्यति । तथा दुश्चरितं सर्वं त्रिवृत्त्यां च निमज्जति ॥ ११ ॥ काश्यप उवाच । सर्वे च वेदाः

देवताओंका मुख अग्नि है ' और " पाणिमुखाः पितरः-पितरों का मुख ब्राह्मणोंका हाथ है" श्रौत स्मार्त अथवा उदरका स्वतः शुद्ध अग्नि देवताओंको तृप्त करता है, परन्तु हाथ तो सत्कर्म वाला होनेपर ही पितरोंको तृप्त करसकता है अतः पितृकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये ॥ ७ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-पहिले जिसका (सत्कर्मी अथवा दुष्कर्मी होनेका) परिचय न मिला हो और विद्वान्, सम्बन्धी, तपस्वी और यज्ञशील पुरुष किसप्रकार दानपात्र होसकते हैं ॥ ८ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-पहिले तीन अर्थात् अपरिचित,विद्वान् और सम्बन्धी ये यदि कुलीन, कर्म करनेवाले, वेदवेत्ता, दयालु, लज्जावान, सरल और सत्यवादी होते हैं, तो वे सुपात्र कहलाते हैं (और तपस्वी तथा यज्ञशील पुरुष कुलीन दयालु लज्जावान् सरल और सत्यवादी होनेपर अवश्य सुपात्र कहलाते हैं) ॥ ९ ॥ हे पार्थ ! इस विषयमें पृथ्वी काश्यप अग्नि और मार्कण्डेय इन चार तेजस्वी पुरुषोंके मतको मुझसे सुनो ॥१०॥ पृथ्वी कहती है, कि जैसे महासमुद्रमें फैंका हुआ मट्टीका ढेला शीघ्र ही नष्ट होजाता है, ऐसे ही जो याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह इन तीन वृत्तियोंसे आजीविका चलाता

सह षड्भिरंगैः सांख्यं पुराणं च कुले च जन्म । नैतानि सर्वाणि गतिर्भवन्ति शीलव्यपेतस्य नृप द्विजस्य ॥ १२ ॥ अग्निरुवाच । अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम् । प्रभ्रश्यतेऽसौ चरते न सत्यं लोकास्तस्य ह्यन्तवन्तो भवन्ति ॥ १३ ॥ मार्कण्डेय उवाच । अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । नाभिजानामि यद्यस्य सत्यस्यार्धमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ भीष्म उवाच । इत्युक्त्वा ते जग्मुराशु चत्वारोऽमिततेजसः । पृथिवी काश्यपोऽग्निश्च प्रकृष्टायुश्च भार्गवः ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । यदि ते ब्राह्मणा लोके व्रतिनो भुञ्जते हविः । दत्तं ब्राह्मणकामाय

हैं उसके साथसे सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥११॥ काश्यपने कहा है, कि- राजन् ! चारों वेद, छः अंग, सांख्य और पुराणका अभ्यास और उत्तम कुलमें जन्म ये सब भी शीलरहित द्विजको गति नहीं देते हैं॥१२॥अग्निने कहा है, कि-यदि कोई अध्ययन करके विचार करने वाला पुरुष अपनेको पण्डित मान कर विद्याके द्वारा दूसरेके यशका नाश करता है, तो वह चरित्रभ्रष्ट होजाता है और सत्य अर्थात् यज्ञ आदि कर्मोंको नहीं कर सकता तथा उस पुरुषको अन्त वाले लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयने कहा है,कि-तराजूके एक ओर हजार अश्वमेधोंको रक्खा जाय और दूसरी ओर सत्यको रक्खा जाय तब भी वह शायद ही सत्यके आधे भागकी समान हो ॥१४॥ भीष्मजीने कहा, कि-इस प्रकार कह कर अपार तेज वाले पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और बड़ी आयु वाले भार्गव मार्कण्डेय ये चारों चले गए ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-इस लोकमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले ब्राह्मण यदि श्राद्धकर्ममें भोजन करते हैं तो ब्रह्मकी कामना रखने वालेको दिया हुआ यह भोजन सुकृत कैसे हो सकता है (अर्थात् युधिष्ठिरने प्रश्न किया, कि-श्राद्धमें

कथं तत् सुकृतं भवेत् ॥ १६ ॥ भीष्म उवाच । आदिष्टिनो ये राजेन्द्र ब्राह्मणा वेदपारगाः। भुञ्जते ब्रह्मकामाय व्रतलुप्ता भवंति

भोजन करनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका नाश होजाता है, परन्तु श्राद्धकर्ताका कर्म भी दूषित होता है या नहीं ?) ॥ १६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे राजेन्द्र! गुरुकी आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य व्रत पालने वाले वेदपारंगत ब्राह्मण यदि श्राद्धमें भाजन करते हैं तो उनका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजाता है और यजमानकी कोई हानि नहीं होती है, जिसको गुरुने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत पालनेकी आज्ञा दी हो वह आदिष्टी कहलाता है, ऐसा व्रतधारी यदि श्राद्धमें भोजन करता है तो उसका व्रत नष्ट होजाता है परन्तु दाताको दोष नहीं लगता है शास्त्रने श्राद्धमें जिमाने योग्य निम्न लिखित ब्राह्मण गिनाये हैं । " कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्नि-ब्रह्मचारिणः । पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः" कर्म और तप पर निष्ठा रखनेवाले पञ्चाग्निके साधक ब्रह्मचारी और पिता तथा माताकी सेवा करनेवाले ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करने के पात्र हैं, व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्" अपना धेवता ब्रह्मचारी हो तब भी उसको यत्नपूर्वक श्राद्धमें जिमाना चाहिये । यह शास्त्रमें लिखा है, इससे श्राद्धकर्ताको पुण्य मिलता है, परन्तु श्राद्धके अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लोभ आदि देकर जो दूसरेके व्रतको भंगकर देता है, उसको दानका फल अल्प ही मिलता है इसलिये शास्त्रमें लिखा है, कि–यदि दाता किसी व्रतधारीको दान देना चाहे तो "मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् । दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक् ॥" जिस पात्रको दान देना हो उसका मनमें ध्यान करे, फिर हाथमें जल लेकर उस पात्रके उद्देश्यसे जलको जलमें डाल देय, फिर दान देदेय, ऐसा करनेसे दाता

ते ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर उवाच । अनेकान्तं बहुद्वारं धर्ममाहुर्मनीषिणः । किं निमित्तं भवेदत्र तन्मे ब्रूहि पितामह । भीष्म उवाच । अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा । आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम् ॥१९॥ ये तु धर्मं प्रशंसन्तश्चरन्ति पृथिवीमिमाम् । अनाचरंतस्तद्धर्मं संकरेऽभिरताः प्रभो ॥ २० ॥ तेभ्यो हिरण्यं रत्नं वा गामश्वं वा ददाति यः । दशवर्षाणि विष्ठां स भुंक्ते निरयमास्थितः ॥२१॥ मेदानां पुल्कसानां च तथैवांतेऽवसायिनाम् । कृतं कर्माकृतं वापि रागमोहेन जल्पताम् ॥ २२ ॥ वैश्वदेवं च ये मूढा विप्राय ब्रह्मचारिणे । ददते नेह राजेन्द्र ते

को दानका फल मिल जाता है और दान लेने वाले को भी दोष नहीं लगता है । यह विधि सुपात्रका आदर सत्कार करने के लिये कही है, इसके विपरीत वर्ताव करनेसे दोष लगता है, यही बात युधिष्ठिरने बूझी है) ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! विद्वान् कहते हैं कि–धर्मके अनेक द्वार हैं और वे अनेक प्रकारका फल देते हैं ? ऐसा होनेका क्या कारण है ? और धर्मका मुख्य लक्षण क्या है, यह आप मुझसे कहिये।१८। भीष्मजीने कहा, कि–हे राजेन्द्र ! अहिंसा, सत्य, अक्रोध अक्रूरता, दम और सरलता इतने धर्मके निश्चित लक्षण हैं।१९। जो पुरुष धर्मकी प्रशंसा करते हुए पृथ्वी पर घूमते हैं, परन्तु स्वयं धर्माचरण नहीं करते हैं, ऐसे पुरुष हे राजन् ! संकर कर्म पर प्रीति करने वाले होते हैं ॥ २० ॥ ऐसे पुरुषोंको जो पुरुष सुवर्ण, रत्न, गौ अथवा घोड़े देता है, वह पुरुष दश वर्ष तक नरकोंमें रह कर विष्ठाका भोजन करता है ॥ २१ ॥ मरे हुए गौ और भैंस आदिका मांस खाने वालोंकी, ब्रह्महत्याकरने वाले चाण्डालोंकी, चमारोंकी तथा दूसरोंके कर्मकी प्रीतिसे अथवा मोहसे चुगली खाने वालोंकी विष्ठाको खाता है ॥ २२ ॥ और

लोकान् भुञ्जतेऽशुभान् ॥२३॥ युधिष्ठिर उवाच । किं परं ब्रह्मचर्यं च किं परं धर्मलक्षणम् । किं च श्रेष्ठतमं शौचं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २४ ॥ भीष्म उवाच । ब्रह्मचर्यात् परं तात मधुमांसस्य वर्जनम् । मर्यादायां स्थितो धर्मः शमश्चैवास्य लक्षणम् २५ युधिष्ठिर उवाच । कस्मिन् काले चरेद्धर्मं कस्मिन् कालेऽर्थमाचरेत् । कस्मिन् काले सुखी च स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२६॥ भीष्म उवाच । कल्यमर्थं निषेवेत ततो धर्ममनन्तरम् । पश्चात् कामं निषेवेत न च गच्छेत् प्रसङ्गिताम् ॥ २७ ॥ ब्राह्मणांश्चैव मन्येत गुरूंश्चाप्यभिपूजयेत् । सर्वभूतानुलोमश्च मृदुशीलः प्रियं-

---

हे राजेन्द्र ! जो मूढ़ पुरुष वैश्वदेवके समय आये हुए ब्रह्मचारी ब्राह्मणको भोजन नहीं कराते हैं, उनको अशुभ लोक मिलते हैं ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे पितामह ! सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य, सर्वोत्कृष्ट धर्म तथा श्रेष्ठतम शौच क्या है, यह आप मुझसे कहिये ॥२४॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे तात ! मद्य और मांसका त्याग करना ब्रह्मचर्यसे भी श्रेष्ठ है, मर्यादामें रहनेका नाम सर्वोत्कृष्ट धर्म है और विषयोंसे इन्द्रियोंको निवृत्त करना शौच धर्मका लक्षण है ॥ २५ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-किस समय धर्माचरण करना चाहिये, किससमय अर्थ सम्पादन करना चाहिये, किस समय काम सेवन करना चाहिये यह सब बातें हे पितामह ! आप मुझे बतलाइये ॥ २६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-दिनके पहिले भागमें धन इकट्ठा करना चाहिये, फिर धर्म सम्पादन करना चाहिये और फिर कामका सेवन करना चाहिये अर्थात् सुख भोगना चाहिये, परन्तु एकमें ही आसक्त हो कर सारा दिन न बिताना चाहिये ॥२७॥ ब्राह्मणोंका सत्कार करना गुरुओंकी पूजा करना, सब प्राणियोंके अनुकूल रहना, कोमलस्वभाव रहना और प्रिय-भाषण करना ये सब धर्म

वदः ॥ २८ ॥ अधिकारे यदनृतं यच्च राजसु पैशुनम् । गुरोश्चालीककरणं तुल्यं तद्ब्रह्महत्यया ॥ २९ ॥ प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न हन्याद्गां तथैव च । भ्रूणहत्यासमं चैव उभयं यो निषेवते ॥३०॥ नाग्निं परित्यजेज्जातु न च वेदान् परित्यजेत् । न च ब्राह्मणमाक्रोशेत् समं तद्ब्रह्महत्यया ॥३१॥ युधिष्ठिर उवाच । कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम् । कीदृशानां च भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३२ ॥ भीष्म उवाच । अक्रोधना धर्मपराः सत्यनित्या दमे रताः । तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३३ ॥ अमानिनः सर्वसहा दृढार्था विजितेन्द्रियाः । सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३४ ॥ अलुब्धाः

हैं ॥ २८ ॥ अधिकार पानेपर झूठ बोलना, राजाओंसे चुगली खाना और गुरुकी झूठी निन्दा करना ये सब पातक ब्रह्महत्या की समान हैं ॥ २९ ॥ राजाओं पर प्रहार न करना चाहिये तथा गौको भी मारना न चाहिये, जो पुरुष इन दोनों कामों को करता है उसको भ्रूणहत्याका पातक लगता है ॥ ३० ॥ किसी भी दिन अग्निका और वेदोंका त्याग न करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंकी निन्दा न करनी चाहिये क्योंकि-ये ब्रह्महत्याकी समान मानेजाते हैं ॥३१॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! कैसे पुरुषको सत्पुरुष समझना चाहिये, कैसे पुरुषको देवताओंसे महाफल मिलता है और कैसे पुरुषके यहाँ भोजन करना चाहिये यह आप मुझसे कहिये ॥३२॥ भीष्मजीने कहा, कि-क्रोधरहित धर्मपरायण, सत्यवादी और इन्द्रियनिग्रह करने वाले ब्राह्मणों को सत्पुरुष समझना चाहिये, और उनको दान देनेसे बड़ा फल होता है ॥ ३३ ॥ जो अभिमानरहित, सबको सहने वाले अपने विचारमें दृढ़ रहने वाले, जितेन्द्रिय, सब प्राणिओंका हित करने वाले तथा सबके साथ मित्रता रखने वाले होते हैं उनको

शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः । स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३५ ॥ साङ्गांश्च चतुरो वेदानधीते यो द्विजर्षभः । षड्भ्यः प्रवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः ॥ ३६ ॥ ये त्वेवं गुणजातीयास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् । सहस्रगुणमाप्नोति गुणार्हायप्रदायकः ॥३७॥ प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च समन्वितः । तारयेत कुलं सर्वमेकोपीह द्विजर्षभः ॥ ३८ ॥ गामश्वं वित्तमन्नं वा तद्विधे प्रतिपादयेत् । द्रव्याणि चान्यानि तथा प्रेत्यभावे न शोचति ॥३९॥ तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजोत्तमः । किमङ्ग पुनरेवैते तस्मात् पात्रं समाचरेत् ॥ ४० ॥ निशम्य च

दान देनेसे महाफल मिलता है ॥३४॥ लोभशून्य, पवित्र चित्त वाले वेदज्ञ लज्जाशील सत्यभाषी और स्वकर्मपरायण ब्राह्मणों को भी दान देनेसे महाफल मिलता है ॥३५॥ जो उत्तम ब्राह्मण अंगोंसहित चारों वेदोंको पढ़ते हैं और जो ब्राह्मण मधुमांसका त्याग करते हैं, मर्यादाका पालन करते हैं, इन्द्रियोंका निग्रह करते हैं, वेदाध्ययन करते हैं, यज्ञ याग करते हैं और दान देते हैं ऐसे ब्राह्मणोंको ऋषि पात्र कहते हैं ॥ ३६ ॥ उपरोक्त गुण वाले ब्राह्मणोंको दान देनेसे महाफल मिलता है, गुणवान् पुरुष को दान देनेसे दाताको सहस्रगुणा फल मिलता है ॥ ३७ ॥ एक भी उत्तम ब्राह्मण यदि सदाचार, बुद्धि, शास्त्र, श्रवण और शील संपन्न होता है, तो वह सारे कुलको तार देता है ॥३८॥ गुणी ब्राह्मणको गौ, घोड़ा, धन, अन्न तथा दूसरे पदार्थ देनेसे दाताको मरणके पीछे शोक नहीं करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ एक उत्तम ब्राह्मण सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर सकता है, फिर उपर्युक्त गुण वाले पुरुषकी तो बात ही क्या ! अतः सुपात्रको दान देना चाहिये॥४०॥गुणी और सज्जनोंमें प्रतिष्ठित ब्राह्मण का पता पाकर दूरसे बुलाकर उसका सत्कार करना चाहिये

गुणोपेतं ब्राह्मणं साधुसम्मतम् । दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्वतश्चापि पूजयेत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि बहुप्राश्निके द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । श्राद्धकाले च दैवे च पित्र्येऽपि च पितामह । इच्छामीह त्वया ख्यातं विहितं यत्सुरर्षिभिः ॥१॥ भीष्म उवाच । दैवं पौर्वाह्णिकं कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम् । मङ्गलाचारसम्पन्नः कृतशौचः प्रयत्नवान् ॥ २ ॥ मनुष्याणां तु मध्याह्ने प्रदद्यादुपपत्तिभिः । कालहीनं तु यद्दानं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ३ ॥ लंघितं चावलीढं च कलिपूर्वं च यत्कृतम् । रजस्वलाभिदृष्टं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥४॥ अवघुष्टं च यद्भुक्तमव्रतेन च भारत ।

और उसकी भली भाँति पूजा करनी चाहिये ॥४१॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! श्राद्धके दिन जो पितृकर्म किया जाता है और जो देवसम्बन्धी यज्ञ किया जाता है, इस विषयमें देवर्षियोंने जो कहा हो, वह मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-पुरुष स्नान आदिसे पवित्र हो मांगलिक कर्म कर प्रयत्नपूर्वक दिनके प्रथमभागमें देवकर्म करे और दोपहरके बाद पितृकर्म करे ॥ २ ॥ मनुष्योंको आदरपूर्वक मध्यान्हके समय देना चाहिये, असमयके दानको विद्वान् पुरुष राक्षसोंका भाग कहते हैं, अर्थात् उसको राक्षस हर कर ले जाते हैं ॥ ३ ॥ जिस अन्नको लाँघा गया हो जिसको चाट लिया हो जो कलहपूर्वक दिया हो और जिस अन्नको रजस्वलाने देखा, उस अन्नको राक्षसोंका अन्न समझना चाहिये ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जो अन्न चिल्ला २ कर जिमाया जाय, जिसको व्रतका पालन न करनेवालेने खाया हो

परामृष्टं शुना चैव तं भागं रक्षसां विदुः ॥५॥ केशकीटावपतितं क्षुतं श्वभिरवेक्षितम् । रुदितं चावधूतं च तं भागं रक्षसां विदुः ६ निरोंकारेण यद्भुक्तं सशस्त्रेण च भारत । दुरात्मना च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ७ ॥ परोच्छिष्टं च यद्भुक्तं परिभुक्तं च यद्भवेत् । दैवे पित्र्ये च सततं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ८ ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यच्छ्राद्धं परिविष्यते । त्रिभिर्वर्णैर्नरश्रेष्ठ तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ९ ॥ आज्याहुतिं विना चैव यत्किंचित् परिविष्यते । दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ १० ॥

जिस अन्नको कुत्तेने छू दिया हो उसको विद्वान् राक्षसोंका भाग समझते हैं ॥ ५ ॥ जिस अन्नमें केश और कीड़े पड़े हों, जिस अन्न पर छींक दिया हो, जिसको कुत्तेने देखा हो, जिस पर रोया गया हो तथा जिस अन्नका तिरस्कार कियागया हो उस अन्नको विद्वान् राक्षसोंका भाग समझते हैं ६ हे भारत ! ओंकारका उच्चारण न करनेवाले पुरुषका भक्षण कियाहुआ शस्त्र को साथमें लेकर भोजन करनेवाले पुरुषका भक्षण कियाहुआ और दुरात्माओंका भक्षण कियाहुआ अन्न राक्षसी भाग कहलाता है॥७॥दूसरेका उच्छिष्ट,देवता तथा पितर और बालकोंको न देकर भक्षण कियाहुआ अन्न राक्षसोंका भाग कहलाता है, ऐसे अन्नको देवता और पितर स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि—वह राक्षसोंका भाग मानाजाता है ॥ ८ ॥ यदि श्राद्धमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्र न पढ़ कर क्रिया-रहित हो अन्नको परोसते हैं, उस अन्नको हे नरश्रेष्ठ ! विद्वान् राक्षसोंका भाग समझते हैं ॥ ९ ॥ और श्राद्धमें घीकी आहुति दिये विना अर्थात् पात्राभिघारणके विना जो अन्न परोसा जाता है उसको और दुराचारियोंके भक्षण किये हुए अन्नको विद्वान् राक्षसोंका भाग समझते हैं ॥ १० ॥ हे भरतवंशी राजन् !

ये भागा रक्षसां प्राप्तास्त उक्ता भरतर्षभ । अत ऊर्ध्वं विसर्गस्य परीक्षां ब्राह्मणे शृणु ॥ ११ ॥ यावन्तः पतिता विप्रा जडोन्मत्तास्तथैव च । दैवे वाप्यथवा पित्र्ये राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥१२॥ श्वित्री क्लीवश्च कुष्ठी च तथा यक्ष्महतश्च यः । अपस्मारी च यश्चान्धो राजन्नार्हति केतनम् ॥ १३ ॥ चिकित्सका देवलका वृथा नियमधारिणः । सोमविक्रयिणश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् १४ गायका नर्तकाश्चैव प्लवका वादकास्तथा । कथका योधकाश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १५ ॥ होतारो वृषलानां च वृषलाध्यापकास्तथा । तथा वृषलशिष्याश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥१६॥ अनुयोक्ता च यो विप्रो अनुयुक्तश्च भारत । नार्हतस्तावपि

जिस अन्नका भाग राक्षसोंको प्राप्त होता है, उसको मैंने तुमसे कहा, अब दान देने योग्य ब्राह्मणकी परीक्षाके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ, सुन ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मण पतित होते हैं, मूर्ख होते हैं और उन्मत्त होते हैं ऐसे ब्राह्मणोंको दैव और पितृकर्ममें निमन्त्रण नहीं देना चाहिये ॥ १२ ॥ श्वेत कुष्टीको, नपुंसकको, राजयक्ष्माके रोगीको गो शकृति कोढ़ियोंको, अपस्मारके रोगीको और अन्धोंको हे राजन् ! निमन्त्रण न देना चाहिये ॥ १३ ॥ वैद्यकका धन्धा करने वाले, पुजारी, ढोंगपूर्वक नियम पालने वाले और सोमलताको बेचने वालोंको हे राजन् ! निमन्त्रण न देना चाहिये ॥ १४ ॥ और हे राजन् ! गवैयोंको, नाचने वालोंको, कूदने वालोंको, बाजे बजाने वालोंको, कथकड़ोंको अर्थात् मिथ्या बातें बनाने वालोंको और योधाओंको भी निमन्त्रण देना अनुचित है १५ शूद्रोंको, यज्ञ करानेवालोंको, शूद्रोंको पढ़ाने वालोंको तथा शूद्रोंके शिष्योंको भी हे राजन्! निमन्त्रण न देना चाहिये॥१६॥हे भरतवंशी राजन् ! वेतन लेकर पढ़ाने वालेको, वेतन देकर पढ़ने वाले ब्राह्मणको भी श्राद्धमें

श्राद्धं ब्रह्मविक्रयिणौ हि तौ ॥१७॥ अग्रणीर्यः कृतः पूर्वं वर्णा-
वरपरिग्रहः । ब्राह्मणः सर्वविद्योऽपि राजन्नार्हति केतनम् ॥१८॥
अनग्नयश्च ये विप्रा मृतनिर्यातकाश्च ये । स्तेनाश्च पतिताश्चैव
राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १९ ॥ अपरिज्ञातपूर्वाश्च गणपूर्वाश्च
भारत । पुत्रिकापूर्वपुत्राश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम्॥२०॥ ऋण-
कर्ता च यो राजन् यश्च वार्धुषिको नरः । प्राणिविक्रयवृत्तिश्च
राजनार्हति केतनम् ॥ २१ ॥ स्त्रीपूर्वाः काण्डपृष्ठाश्च यावन्तो
भरतर्षभ । अजपा ब्राह्मणाश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥२२॥
श्राद्धे दैवे च निर्दिष्टो ब्राह्मणो भरतर्षभ । दातुः प्रतिग्रहीतुश्च

जिमाना अनुचित है,क्योंकि-ये दोनों वेदको वेचने वाले हैं॥१७॥
जिस पुरुषको एक स्थानसे निमंत्रण आगया हो ऐसा ब्राह्मण
और शूद्रकन्याका पति ब्राह्मण यदि सब विद्याओंको पढ़ा हो,
तब भी हे राजन् ! उसको निमंत्रण देना अनुचित है ॥ १८ ॥
अग्निहोत्र न करनेवाले, शवको उठानेका व्यापार करनेवाले
और चोर तथा पतित पुरुषोंको निमंत्रण देना अनुचित है १९
हे भरतवंशी राजन ! जिनका पहिला चरित्र विदित न हो,
जिनके पूर्वज दूषित हों, जो पुत्रिकापुत्र हों (अर्थात् मातामहने
अपनी कन्याका विवाह करते समय,यह प्रतिज्ञा करवा ली हो,कि-
इस पुत्रीमें जो पुत्र होगा,वह मेरा पुत्र माना जायगा ऐसा गोद
लिया हुआ धेवता पिताके गोत्रसे भ्रष्ट होजाता है)उनको श्राद्धमें
निमन्त्रण न देना चाहिये ॥ २० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष कर्ज
लेते हैं, व्याज खाते हैं और प्राणियोंके वेचनेका व्यापार करते
हैं उनको श्राद्धमें निमन्त्रण न देना चाहिये २१और हे राजन् !
स्त्रीजित,स्त्रियोंकी प्रशंसाकर आजीविका चलानेवाले और गायत्री
का जप न करनेवाले विप्रको श्राद्धमें निमंत्रण न देना चाहिये२२
हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! पितृकर्म और देवकर्ममें कैसे ब्राह्मण

शृणुष्वानुग्रहं पुनः ॥ २३ ॥ चीर्णव्रता गुणैर्युक्ता भवेयुर्येऽपि कर्षकाः । सावित्रीज्ञाः क्रियावन्तस्ते राजन् केतनक्षमाः ॥२४॥ क्षात्रधर्मिणमप्याजौ केतयेत् कुलजं द्विजम् । न त्वेव वणिजं तात श्राद्धे च परिकल्पयेत् ॥२५॥ अग्निहोत्री च यो विप्रो ग्रामवासी च यो भवेत् । अस्तेनश्चातिथिज्ञश्च स राजन् केतनक्षमः ॥२६॥ सावित्रीं जपते यस्तु त्रिकालं भरतर्षभ । भिक्षावृत्तिः क्रियावांश्च स राजन् केतनक्षमः ॥ २७ ॥ उदितास्तमितो यश्च तथैवास्त-

को निमन्त्रण देना चाहिये, यह मैं अब कहता हूँ शास्त्रोंमें निषिद्ध दाता और प्रतिगृहीता भी कितने ही गुणोंके कारण योग्य अयोग्य माने जाते हैं, इस विषयमें जो बात मैं तुमसे कहता हूँ, उसको तू सुन ॥ २३ ॥ जो ब्राह्मण कृषक होने पर भी व्रत करने वाले हों, विद्यारहित होने पर भी गुणवान् हों गायत्री-मन्त्रको जानने वाले हों और अपने कर्मोंका पालन करते हों वे श्राद्धकर्ममें निमन्त्रण पानेके योग्य हैं ॥ २४ ॥ युद्धमें क्षत्रिय के धर्मका अनुसरण करने वाले ब्राह्मण यदि कुलीन हों तो उनको निमन्त्रण देना चाहिये और हे राजन् ! जो ब्राह्मण होने पर भी व्यापार करते हों उनको श्राद्धमें निमन्त्रण न देना चाहिये ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्री हों एकग्रामके निवासी हों, चोर न हों और जो ब्राह्मण अतिथिको पहिचानने वाले हों अर्थात् अतिथिका सत्कार करने वाले हों, वे हे राजन् ! निमन्त्रणके पात्र माने जाते हैं ॥ २६ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! जो ब्राह्मण तीनों समय गायत्रीका जप करता हो, भिक्षा माँग कर आजीविका चलाता हो तथा अपने कर्ममें परायण रहता हो, हे राजन् ! वह विप्र निमन्त्रणके योग्य माना जाता है ॥२७॥ जो विप्र धन पाने पर अमीर और तत्काल ही उसका व्यय करके दरिद्र बन जाता है और जो सूर्योदयके समय दरिद्र और

मितोदितः । अहिंसश्चाल्पदोषश्च स राजन् केतनक्षमः ॥२८॥ अकल्कको ह्यतर्कश्च ब्राह्मणो भरतर्षभ । संसर्गे भैक्ष्यवृत्तिश्च स राजन् केतनक्षमः ॥ २९ ॥ अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयिको वणिक् । पश्चाच्च पीतवान् सोमं स राजन् केतनक्षमः ३० अर्जयित्वा धनं पूर्वं दारुणैरपि कर्मभिः । भवेत् सर्वातिथिः पश्चात् स राजन् केतनक्षमः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया यच्चार्जितं धनम् । अदेयं पितृविप्रेभ्यो यच्च क्लैब्यादुपार्जितम् ३२ क्रियमाणेऽपवर्गे च यो द्विजो भरतर्षभ । न व्याहरति यद्युक्तं तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ३३ ॥ श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः प्राप्तं

मध्यान्हकालमें धनवान होता है तथा जिसमें दोष थोड़े होते हैं, वह विप्र श्राद्धमें जिमानेका पात्र माना जाता है॥ २८ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! जो विप्र कपटरहित, व्यर्थ तर्क न करने वाला तथा योग्य पुरुषोंसे भिक्षा माँग कर आजीविका चलाता है, वह विप्र निमन्त्रणका पात्र होता है ॥ २९ ॥ व्रत न पालने वाला, धूर्त, चोर, प्राणियोंको वेचने वाला तथा व्यापारी विप्र भी सोमपान करके श्राद्धमें निमन्त्रणका पात्र होजाता है ॥३०॥ हे राजन् ! दारुण कर्म करके धन संग्रह करने वाला विप्र भी देवता तथा पितर और ऋषियोंको तृप्त करके श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका पात्र होजाता है ॥ ३१ ॥ जिस धनको वेदको वेच कर पाया हो जिस धनको स्त्रीने पाया हो और जो धन दीनताके साथ मिला हो उस धनको देवविप्रकार्यमें व्यय करना करना अनुचित है ॥ ३२ ॥ हे भरतर्षभ राजन् ! जो विप्र श्राद्ध कर्म समाप्त होने पर उचित वाक्य नहीं कहता है (अर्थात् जो विप्र यजमानके "स्वधा उच्यताम्" कहने पर "अस्तु स्वधा" आदि उचित वाक्य नहीं कहता है) उसको झूठी गौकी शपथ खानेका दोष लगता है ॥ ३३ ॥ हे युधिष्ठिर ! सुपात्र विप्र, दही, घी,

दधि घृतं तथा । सोमक्षयश्च मांसं च यदारण्यं युधिष्ठिर ॥३४॥
श्राद्धापवर्गे विप्रस्य स्वधा वै मुदिता भवेत् । क्षत्रियस्यापि यो
ब्रूयात् प्रीयन्तां पितरस्त्विति ॥३५॥ अपवर्गे तु वैश्यस्य श्राद्ध-
कर्मणि भारत । अक्षय्यमभिधातव्यं स्वस्ति शूद्रस्य भारत ३६
पुण्याहवाचनं दैवं ब्राह्मणस्य विधीयते । एतदेव निरोंकारं क्षत्रि-
यस्य विधीयते ॥ ३७ ॥ वैश्यस्य दैवे वक्तव्यं प्रीयन्तां देवता
इति । कर्मणामानुपूर्व्येण विधिपूर्वं कृतं शृणु ॥३८॥ जातकर्मा-
दिकाः सर्वास्त्रिषु वर्णेषु भारत । ब्रह्मक्षत्रे हि मन्त्रोक्ता वैश्यस्य

अमावास्या और मृग आदिका मांस जिस दिन मिले उसी दिन को श्राद्धका दिन समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ विप्रके घर श्राद्ध कर्म होचुकने पर विप्र यजमानके "स्वधास्तु" कहनेपर (पुरोहित) के "अस्तु स्वधा" कहने पर पितर तृप्त होजाते हैं, क्षत्रियके घर श्राद्धके अन्तमें विप्रको "प्रीयन्तां पितरः-पितर प्रसन्न हों" कहना चाहिये ॥ ३५ ॥ और हे भारत ! वैश्यके घर श्राद्ध-समाप्तिमें विप्रको "अक्षय्यमस्तु-तुम्हारा श्राद्धकर्म अक्षय हो" कहना चहिये और शूद्रके यहाँ स्वस्ति कहना चाहिये ॥ ३६ ॥ श्राद्धके आरम्भमें और अन्तमें देवकर्म किया जाता है, तहाँ देवकर्ममें ब्राह्मण यजमान कहे, कि-" पुण्याहं भवन्तो ब्रुवंतु-आप पुण्याह कहिये" उसके उत्तरमें ब्राह्मणोंको कहना चाहिये, कि-" ओं पुण्याहम्" क्षत्रियके यहाँ देवकर्ममें ब्राह्मणोंको ओंकाररहित केवल "पुण्याहं" का उच्चारण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ और वैश्यके यहाँ देवकर्ममें ब्राह्मणोंको "प्रीयन्तां देवताः पुण्याहमस्तु-देवता प्रसन्न हों और पुण्याह हो" कहना चाहिये, सब कर्म क्रमानुसार करने चाहियें उनको तू सुन ॥ ३८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जातकर्म आदि सब संस्कार तीनों वर्णोंको करने चाहियें, हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यको वेदके मंत्रोंसे जात-

च युधिष्ठिर ॥ ३९ ॥ विप्रस्य रशना मौंजी मौर्वी राजन्य-गामिनी । वाल्वजी ह्येव वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर ॥४०॥ दातुः प्रतिग्रहीतुश्च धर्माधर्माविमौ शृणु । ब्राह्मणस्यानृतेऽधर्मः प्रोक्तः पातकसंज्ञितः । चतुर्गुणः क्षत्रियस्य वैश्यस्याष्टगुणः स्मृतः ॥४१॥ नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्नीयात् पूर्वं विप्रेण केतितः । यवीयान् पशु-हिंसायां तुल्यधर्मो भवेत् स हि ॥ ४२ ॥ तथा राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्नीयात्तु केतितः । यवीयान् पशुहिंसायां भागार्धं समवा-प्नुयात् ॥४३॥ दैवं वाप्यथवा पित्र्ये योऽश्नीयाद्ब्राह्मणादिषु । अस्नातो ब्राह्मणो राजंस्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४४ ॥ आशौचो ब्राह्मणो राजन् योऽश्नीयाद्ब्राह्मणादिषु । ज्ञानपूर्वमथो लोभात्तस्या

कर्म आदि संस्कार करने चाहिये ॥ ३९ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! ब्राह्मणको मूँजकी कटिमेखला पहिरनी चाहिये, क्षत्रियको धनुष की प्रत्यञ्चाकी मेखला पहिरनी चाहिये और वैश्यको बल्वज नामक तृणोंकी मेखला पहिरनी चाहिये ॥४०॥ अब तुम दाता और प्रतिग्रहीताके धर्म तथा अधर्मको सुनो विप्रको मिथ्या बोलने से अधर्म-पातक लगता है और क्षत्रियको मिथ्या बोलनेपर विप्रकी अपेक्षा चौगुना पाप लगता है तथा वैश्यको आठगुना पाप लगता है ॥४१॥ किसी विप्रके घरसे पहिले निमन्त्रण आगया हो, फिर भी जो दूसरेके यहाँ भोजन करता है उसको यवीयान् अर्थात् ओछा समझना चाहिये और यज्ञ प्रसङ्गके विनाकी हुई पूर्ण पशुहिंसाका उसको पाप लगता है ४२ इसीप्रकार क्षत्रिय और वैश्यके यहाँसे निमन्त्रण आनेर भी जो दूसरेके यहाँ चला जाता है उसको पशुहिंसाका आधा पाप लगता है ॥ ४३ ॥ और हे राजन् ! विप्र, क्षत्रिय तथा वैश्यके घर यज्ञमें अथवा श्राद्धमें जो विप्र विना स्नान किये भोजन करलेता है उसको गौकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है ॥ ४४ ॥ जननाशौच

धर्मो गवानृतम् ॥ ४५ ॥ अर्थेनान्येन यो लिप्सेत् कर्मार्थं चैव भारत । आमन्त्रयति राजेन्द्र तस्याधर्मोऽनृतं स्मृतम् ॥ ४६ ॥ अवेदव्रतचारित्रास्त्रिभिर्वर्णैर्युधिष्ठिर । मन्त्रवत्परिविष्यन्ते तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४७ ॥ युधिष्ठिर उवाच । पित्र्यं वाप्यथवा दैवं दीयते यत्पितामह । एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं दत्तं केषु महाफलम् ॥४८॥ भीष्म उवाच । येषां दाराः प्रतीक्षन्ते सुवृष्टिमिव कर्षकाः । उच्छेषपरिशेषं हि तान् भोजय युधिष्ठिर ॥ ४९ ॥ चारित्रनिरता राजन् ये कृशाः कृशवृत्तयः । अर्थिनश्चोपगच्छंति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५० ॥ तद्भक्तास्तद्गृहा राजंस्तद्बलास्तद-

---

और मरणाशौचवाला जो विप्र जान बूझकर अथवा लोभसे विप्र क्षत्रिय आदिके घर यज्ञ और श्राद्ध आदिमें भोजन करता है उसको गौकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है ॥४५॥ हे भरतवंशी राजन् ! जो विप्र (तीर्थयात्रा, पुत्रका यज्ञोपवीत और कन्याके विवाहका झूठा) बहाना कर दातासे भिक्षा माँगता है, हे राजन् ! उसको झूँठ बोलनेका पाप लगता है ॥ ४६ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर वेद न पढ़नेवाले सदाचारभ्रष्ट ब्राह्मणोंको यदि तीनों वर्णोंके पुरुष श्राद्धमें वेदके मन्त्र पढ़कर भोजन परोसते हैं तो उनको गौकी मिथ्या शपथ खानेका पाप लगता है४७ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! पितृकर्म और देवकर्ममें कैसे ब्राह्मणोंको (दान) देनेसे महाफल मिलता है, यह मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४८ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! किसान जैसे वर्षाकी बाट देखते हैं, ऐसे ही जिनके घरकी स्त्रियें अपने पतियोंकी थालियोंके उच्छिष्टकी बाट देखती रहती हैं उनको तू भोजन करा ॥ ४९ ॥ हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष सदाचारी, (भोजन न मिलनेसे) दुर्बल शरीरवाले, अल्प आजीविकावाले और धनकी याचना करनेको

पाश्रयाः । अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५१ ॥ तस्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर । अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५२ ॥ अकल्ककस्य विप्रस्य रौद्यात् करकृतात्मनः । बटवो यस्य भिक्षन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५३ ॥ हृतस्वा हृतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे । अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥५४॥ व्रतिनो नियमस्थाश्च ये विप्राः श्रुतसम्मताः । तत्समाप्त्यर्थमिच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥५५॥ अत्युत्क्रांताश्च धर्मेषु पाषण्डसमयेषु च । कृशप्राणाः कृशधनास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥५६॥ कृतसर्वस्वहरणा निर्दोषाः

आये हों उनको देनेसे महाफल होता है॥ ५० ॥ हे राजन् ! जो सदाचारको ही बल मानते हैं, सदाचारको ही घर मानते हैं, सदाचारका ही आश्रय लेते हैं, सदाचारको ही भोजन समझते हैं और कोई काम पड़नेपर ही धनकी याचना करते हैं, उनको दान देनेसे महाफल मिलता है५१ हे राजन् ! जो चोर और शत्रुओंसे भयभीत होरहे हों तथा जो भोजन करना चाहते हों ऐसे पुरुषोंको देनेसे महाफल मिलता है ५२ निष्कपट और जिसके हाथमें अन्न पहुँचते ही उसके वालक "मुझे खानेको दो" २ कहनेलगें ऐसे विप्रको दान देनेसे महाफल होता है ५३ देशमें विप्लवके समय जिस विप्रके धन और स्त्री तकको डाँकू लूटकर लेगए हों, ऐसा विप्र यदि धन माँगनेको आवे तो उसको दान देनेसे महापुण्य होता है जो विप्र व्रत करते हैं, नियमोंका पालन करते हैं, शास्त्रानुसार बर्ताव करते हैं और नियम तथा कर्मोंको पूर्ण करनेके लिये धन पाना चाहते हैं उनको धन देनेसे महाफल मिलता है ॥ ५५ ॥ पाखण्डियोंके धर्मकी मर्यादासे अतिदूर रहने वाले, अन्न न मिलनेके कारण जो दुर्बल रहते हैं ऐसे निर्धन पुरुषोंको देनेसे महाफल मिलता है ॥ ५६ ॥ निर्दोष होने पर भी समर्थ पुरुष

प्रभविष्णुभिः । स्पृहयन्ति च भुक्तवान्नं तेषु दत्तं महाफलम् ५७
तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तेषां भैक्षचराश्च ये । अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति
तेषु दत्तं महाफलम् ॥५८॥ महाफलविधिर्दाने श्रुतस्ते भरतर्षभ ।
निरयं येन गच्छन्ति स्वर्गं चैव हि तच्छृणु ॥५९॥ गुर्वर्थमभयार्थं
वा वर्जयित्वा युधिष्ठिर । येऽनृतं कथयन्ति स्म ते वै निरयगा-
मिनः ॥ ६० ॥ परदाराभिहर्तारः परदाराभिमर्शिनः । परदार-
प्रयोक्तारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ६१ ॥ ये परस्वापहर्तारः पर-
स्वानां च नाशकाः । सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः ६२
प्रपाणां च सभानां च संक्रमाणां च भारत । अगाराणां च

जिसके सब धनको लूट कर लेगए हों और जो (स्वादिष्ट अस्वादिष्टकी अपेक्षा न रख पेटकी ज्वाला बुझानेके लिये ही)अन्नकी इच्छा करते हों ऐसे पुरुषोंको अन्न देनेसे महाफल मिलता है ॥५७॥ जो तपस्वी, तपोनिष्ठ, और तपस्वियोंके लिये भिक्षा माँगते हैं उन पुरुषोंको अन्न देनेसे महाफल मिलता है ॥ ५८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कैसे पुरुषोंको दान देनेसे महाफल होता है उसकी विधि तूने मुझसे सुनी अब प्राणी किस कर्मको करनेसे नरकमें जाता है और किस कर्मको करनेसे स्वर्गमें जाता है, इस विषयको तू सुन ॥ ५९ ॥ जो पुरुष गुरु (बड़ों) के और किसी भयको दूर करनेके अतिरिक्त और किसी बातमें असत्य बोलता है तो वह नरकमें पड़ता है ॥ ६० ॥ परस्त्रीका हरण करने वाले परस्त्रीकी प्रतिष्ठा लेने वाले और परस्त्रीके लिये दूतका काम करने वाले पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥६१॥ जो पुरुष दूसरेके धनको छीन कर लेजाते हैं दूसरेके धनकी रेड़ मार देते हैं और जो दूसरेके दोषको उघाड़ते हैं वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥ ६२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जो पुरुष पानीकी पौंको, नागरिकोंके बैठनेकी सभाको, पुल आदि संक्रमोंको अखाड़े धर्म-

भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥६३॥ अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम् । वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः ६४ वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत । मित्रच्छेदं तथाशायास्ते वै निरयगामिनः ॥६५॥ सूचकाः सेतुभेत्तारः परवृत्त्युपजीवकाः । अकृतज्ञाश्च मित्राणां ते वै निरयगामिनः ॥ ६६ ॥ पाषण्डा दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः । ये प्रत्यवसिताश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ६७ ॥ विषमव्यवहाराश्च विषमाश्चैव वृद्धिषु । लाभेषु विषमाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ६८ ॥ दूतसंव्यवहाराश्च निष्परीक्षाश्च मानवाः । प्राणिहिंसाप्रवृत्ताश्च ते वै

शाला आदिके भवनोंको तोड़ डालते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं ।६३। जो पुरुष निराधार स्त्रीको, तरुण स्त्रीको, बालस्त्रीको, वृद्ध स्त्रीको, भयभीत स्त्रीको तथा तपस्विनी स्त्रीको छल लेते हैं, वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥६४॥हे भरतवंशी राजन् ! जो पुरुष आजीविकाका नाश करते हैं, घरको तोड़ डालते हैं, स्त्रीको हर लेते हैं, मित्रोंमें भेदभाव डाल देते हैं तथा आशाको भंग कर देते हैं, वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥६५॥ जो पुरुष चुगली खाते हैं, नदीके पुलोंको तोड़ डालते हैं, दूसरोंकी आजीविकासे आजीविका चलाते हैं और किये हुए उपकारको नहीं जानते हैं वे नरकमें पड़ते हैं ॥६६॥ जो वेदसे द्वेष करते हैं, जो सत्पुरुषोंकी निंदा करते हैं, जो धार्मिकनियमोंकी निंदा करते हैं और आरूढ़-पतित हैं अर्थात् संन्यासी होकर गृहस्थाश्रममें आगए हैं वे नरकमें पड़ते हैं ॥६७॥ जो मनुष्यताके प्रतिकूल बर्ताव करते हैं, जो दूसरेकी वृद्धिको नहीं देख सकते और जो पुरुष दूसरोंके लाभके समय विषम व्यवहार करते हैं वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥ ६८ ॥ जो पुरुष दूतका काम करते हैं, जो पुरुष किसी प्रकारकी परीक्षा नहीं करसकते और जो प्राणियोंकी हिंसामें

निरयगामिनः ॥ ६९ ॥ कृताशं कृतनिर्देशं कृतभक्तं कृतश्रमम् । भेदैर्ये व्यपकर्षन्ति ते वै निरयगामिनः ॥७०॥ पर्यश्नन्ति च ये दारानग्निभृत्यातिथींस्तथा । उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः ॥७१॥ वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव दूषकाः । वेदानां लेखकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७२ ॥ चातुराश्रम्यबाह्याश्च श्रुतिबाह्याश्च ये नराः । विकर्मभिश्च जीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७३ ॥ केशविक्रयिका राजन् विषविक्रयिकाश्च ये । क्षीरविक्रयिकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर । येऽन्तरं यान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ।७५॥ शस्त्रविक्रयिकाश्चैव कर्तारश्च युधिष्ठिर । शल्यानां धनुषां चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७६ ॥ शिलाभिः शंकुभिर्वापि श्वभ्रैर्वा भरतर्षभ । ये मार्गमनुरुन्धन्ति ते वै निरय-

---

प्रवृत्त रहते हैं वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ६९ जो पुरुष आशा देकर और सेवकको किसी वस्तुके देनेकी प्रतिज्ञा करके देनेके समय उसको निराश कर देता है वह नरकमें पड़ता है ॥ ७० ॥ जो पुरुष स्त्री, अग्नि, सेवक और अतिथियोंको त्यागकर भोजन करते हैं और जो पुरुष पितरोंकी और देवताओंकी सेवाको त्यागदेते हैं वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ७१ वेदविक्रेता, वेदनिन्दक और वेदोंको लिखनेवाले नरकमें पड़ते हैं ७२ जो पुरुष चारों आश्रमोंसे बाहर हैं, वेदबाह्य हैं, अधर्मसे आजीविका चलाते हैं वे नरकमें पड़ते हैं ७३ जो केश अर्थात् चँवर कम्बल आदिको वेचते हैं, जो विष वेचते हैं और जो दूध वेचते हैं वे नरकमें पड़ते हैं॥ ७४ ॥हे राजा युधिष्ठिर ! जो ब्राह्मणोंके और गौओंके कन्याओंके काममें विघ्न डालते हैं, वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं।७५। हे राजा युधिष्ठिर ! शस्त्र वेचने वाले, शस्त्र बनाने वाले और फलके तथा धनुष बनाने वाले पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥ ७६ ॥

गामिनः ॥ ७७ ॥ उपाध्यायांश्च भृत्यांश्च भक्तांश्च भरतर्षभ । ये त्यजन्त्यविकारांं स्त्रींस्ते वै निरयगामिनः ॥ ७८ ॥ अप्राप्तदमकाश्चैव नासानां वेधकाश्च ये । बन्धकाश्च पशूनां ये ते वै निरयगामिनः ॥७९॥ अगोप्तारश्च राजानो बलिषड्भागतस्कराः । समर्थाश्चाप्यदातारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ८० ॥ क्षान्तान् दान्तांस्तथा प्राज्ञान् दीर्घकालं सहोषितान् । त्यजन्ति कृतकृत्या ये ते वै निरयगामिनः ॥ ८१ ॥ बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः । अदत्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः ॥८२॥ एते पूर्वं विनिर्दिष्टाः प्रोक्ता निरयगामिनः । भागिनः स्वर्गलोकस्य वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥८३॥ सर्वेष्वेव तु कार्येषु दैवपूर्वेषु भारत ।

हे भरतर्षभ राजन् ! पत्थरकी शिलाओंसे, काँटोंसे और गड्ढे खोद कर मार्गको रोकने वाले नरकमें पड़ते हैं ॥७७॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! जो पुरुष शुद्ध अन्तःकरण वाले उपाध्यायों को, सेवकोंको, भक्तोंको तथा निष्पापा स्त्रीको त्याग देते हैं वे पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥७८। जो पुरुष वृषभोंके अण्डकोशों को कुचल कर उनको बधिया बनाते हैं और जो बैल आदि पशुओंको नाथते हैं और पशुओंको कैद करते हैं वे नरकमें पड़ते हैं ७९जो राजे प्रजाकी रक्षा नहीं करते और अपना छठा भाग लेलेते हैं तथा जो समर्थ होने पर भी दान नहीं करते हैं वे नरकमें पड़ते हैं॥८०॥ जो पुरुष क्षमाशील, दान्त, बुद्धिमान् तथा बहुत समय तक एक साथ रहनेवाले पुरुषोंको अपना काम निकालनेके पीछे त्याग देते हैं,वे नरकमें पड़ते हैं ॥८१॥ जो पुरुष बालकों को,वृद्धोंको और दासोंको जिमाये विना उनसे पहिले ही अपने आप जीम लेते हैं वे नरकमें पड़ते हैं ॥८२॥ इसप्रकार पहिले नरकमें पड़ने वालोंका वर्णन किया अब हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! स्वर्गलोकमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन मैं आपसे करता

हन्ति पुत्रान् पशून् कृत्स्नान् ब्राह्मणातिक्रमः कृतः ॥ ८४ ॥ दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर । ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८५ ॥ शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च विद्यामादाय भारत । ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८६ ॥ भयात् पापात् तथा बाधाद्दारिद्र्याद्व्याधिधर्षणात् । यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥८७॥ क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः । मङ्गलाचारसम्पन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ८८ ॥ निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च । निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८९ ॥ आश्रमाणां च कर्तारः कुलानां चैव भारत । देशानां नगराणां च ते नराः

हूँ ॥ ८३ ॥ हे भरतवंशके पुत्र ! जिनमें मुख्यतया देवताओंकी पूजा की जाती है ऐसे सब धार्मिक कृत्योंमें यदि ब्राह्मणका अपमान कियाजाता है तो अपमान करने वालोंके पुत्रोंका और पशुओं का नाश होजाता है (अर्थात् जो ब्राह्मणोंको मान देते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं)॥ ८४ ॥ हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष दान, तप तथा सत्यभाषण करतेहुए धर्माचरण करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं ८५ हे भरतवंशी राजन् ! जो पुरुष गुरुकी सेवा और तपस्या करते हुए विद्या पढ़ते हैं और प्रतिग्रह पर प्रेम नहीं रखते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ८६ ॥ जो पुरुष मनुष्योंको भयमेंसे पापमेंसे संकटमेंसे, दरिद्रतामेंसे तथा रोगके संकटमेंसे बचा देते हैं वह पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ८७ ॥ जो पुरुष क्षमाशील धीर धर्मके कार्यमें तत्पर और मांगलिक आचारोंका पालन करने वाले होते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं।८८।जो पुरुष मधु और मांसको त्याग देते हैं, जो परस्त्रीको त्याग देते हैं और जो मदिराको त्याग देते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं८९जो पुरुष आश्रमोंकी रक्षा करते हैं, कुलोंकी रक्षा करते हैं देशोंकी रक्षा करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते

स्वर्गगामिनः ॥ ६० ॥ वस्त्राभरणदातारो भक्तपानान्नदास्तथा।
कुटुम्बानां च दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ६१ ॥ सर्वहिंसा-
निवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये। सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः
स्वर्गगामिनः ॥ ६२ ॥ मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः।
भ्रातृणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥६३॥ आढ्याश्च
बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत। ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः
स्वर्गगामिनः ॥ ६४ ॥ अपराधिषु सस्नेहा मृदवो मृदुवत्सलाः।
आराधनसुखाश्चापि पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ६५ ॥ सहस्रपरि-
वेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः। त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्ग-
गामिनः ॥ ६६ ॥ सुवर्णस्य च दातारो गवां च भरतर्षभ।
यानानां वाहनानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ६७ ॥ वैवाहि-
कानां द्रव्याणां प्रेष्याणां च युधिष्ठिर। दातारो वाससां चैव ते

हैं ६० वस्त्र और आभूषण देनेवाले, भोजन पान तथा अन्नका दान
देनेवाले और दूसरोंका विवाह कर देनेवाले स्वर्गमें जाते हैं ६१
जो पुरुष किसी प्रकारकी हिंसा नहीं करते हैं, जो सुख और दुःख
सबको सहते है और जो सबको आश्रय देते हैं वे स्वर्गमें जाते
हैं ॥६२॥ जो पुरुष माता पिताकी सेवा करते हैं, जो जितेन्द्रिय
हैं तथा जो भाइयोंसे स्नेह रखते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं ॥ ६३ ॥
हे भरतवंशी राजन्! धनाढ्य बलवान् युवा तथा जितेन्द्रिय
पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ६४ ॥ जो पुरुष अपराधियों पर भी
दया करते हैं, मृदु रहते हैं, कोमल पुरुषोंसे स्नेह रखते हैं और
सेवा करने वालोंको सुखी रखते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं ॥ ६५ ॥
जो पुरुष सदा सहस्रोंको अन्न परोसते हैं, सहस्रोंको दान देते
हैं, सहस्रोंको रक्षा करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ६६ ॥
हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन्! सुवर्ण, गौ, पालकी तथा वाहनोंका
दान देने वाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं। ६७। हे राजा युधिष्ठिर!

नराः स्वर्गगामिनः ॥६८॥ विहारावसथोद्यानान् कूपारामसभाः
प्रपाः । वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥६६॥ निवे-
शनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत । दातारः प्रार्थितानां च
ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१००॥ रसानां चाथ बीजानां धान्यानां
च युधिष्ठिर । स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ।१०१।
यस्मिंस्तस्मिन् कुले जाता बहुपुत्राः शतायुषः । सानुक्रोशा
जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥१०२॥ एतदुक्तममुत्रार्थं दैवं
पित्र्यं च भारत । दानधर्मं च दानस्य यत्पूर्वमृषिभिः कृतम् १०३
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे स्वर्गनरकगामिवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
युधिष्ठिर उवाच । इदं मे तत्त्वतो राजन् वक्तुमर्हसि भारत ।

विवाहोपयोगी स्त्रियोंके अलंकारोंका दान देने वाले दास दासी का दान करने वाले तथा वस्त्रोंका दान देने वाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ६८ ॥ जो पुरुष विहार, घर, उद्यान, कुआ, बगीचे सभास्थान पौ, निपान और किलोंको बनवाते हैं उनको स्वर्ग मिलता है६६हे भरतवंशी राजन्! जो पुरुष याचकोंको घर,खेत, और वासस्थान देते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं १००हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष नानाप्रकारके रसोंको बीजोंको तथा धान्योंको इकट्ठा कर उनका दान करदेते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं॥१०१॥चाहे जिस कुलमें उत्पन्न हुए पुरुष बहुतसे पुत्रों वाले और सौ वर्षकी आयु वाले दयालु और क्रोधजित् होने पर स्वर्गमें जाते१०२ हे भरतवंशी पुत्र ! देवकर्म और पितृकर्म परलोकमें किस प्रकार फल देता है यह बात तुमसे कही और प्राचीन ऋषियोंकी कही हुई दानधर्म की महिमा भी तुमसे कही ॥१०३॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त२३।

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! हत्या न करने पर भी मनुष्यको किसप्रकार ब्रह्महत्या लगती है, यह बात आप

अहिंसयित्वापि कथं ब्रह्महत्या विधीयते ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ।
व्यासमामंत्र्य राजेन्द्र पुरा यत् पृष्टवाहनम् । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि
तदिहैकमनाः शृणु ॥ २ ॥ चतुर्थस्त्वं वसिष्ठस्य तत्त्वमाख्याहि
मे मुने । अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते॥३॥ इति पृष्टो
मया राजन् पराशरशरीरजः । अब्रवीन्निपुणो धर्मे निःसंशय-
मनुत्तमम् ॥ ४ ॥ ब्राह्मणं स्वयमाहूय भिक्षार्थे कृशवृत्तिनम् ।
ब्रूयान्नास्तीति यः पश्चात्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥५॥ मध्यस्थस्येह
विप्रस्य योऽनूचानस्य भारत । वृत्तिं हरति दुर्बुद्धिस्तं विद्याद्ब्रह्म-
घातिनम् ॥६॥ गोकुलस्य तृषार्तस्य जलार्थे वसुधाधिप । उत्पा-
दयति यो विघ्नं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ७ ॥ यः प्रवृत्तां श्रुतिं

मुझसे यथार्थ रीतिसे कहिये १ भीष्मजीने कहा, कि—हे राजेन्द्र ! पहिले मैंने व्यासजीको बुलाकर जो बात बूझी थी, वह बात मैं तुझसे कहता हूँ, तू चित्तको एकाग्र करके सुन ॥ २ ॥ (मैंने व्यासजीसे कहा था, कि–) हे मुने ! वसिष्ठके वंशमें आप चौथे पुरुष हैं अतः हे मुने ! आप मुझे यह बात स्पष्ट बतलाइये, कि- हिंसा किये विना भी किन कामोंसे ब्रह्महत्याका पातक लगता है३ इसप्रकार हे राजन् ! मैंने पराशरके पुत्र व्यासजीसे प्रश्नकिया तब धर्मनिपुण व्यासजीने यह सन्देहहीन बात मुझसे कही, कि–।४।अल्प आजीविकावाले ब्राह्मणको जो भिक्षा देनेके लिये बुलाकर फिर जो उससे कहदेता है, कि-"नहीं है" उस पुरुष को ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! मध्यस्थ रहनेवाले और शास्त्रका अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणोंकी आजीविकाको जो दुष्ट पुरुष छीनलेते हैं, उनको ब्रह्महत्यारा सम- चाहिये ॥ ६ ॥ हे वसुधाधिप ! पिपासी गौओंके झुण्डको जल पीते समय जो दिक करता है उसको ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये ॥७॥ जो अच्छीप्रकार प्रचलित श्रुतिको और मुनिप्रणीत

सम्यक् शास्त्रं वा मुनिभिः कृतम् । दूषयत्यनभिज्ञाय तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम् ॥ ८ ॥ आत्मजां रूपसम्पन्नां महतीं सदृशे वरे । न प्रयच्छति यः कन्यां तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम् ॥ ९ ॥ अधर्मनिरतो मूढो मिथ्या यो वै द्विजातिषु । दद्यान्मर्मातिगं शोकं तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम् ॥ १० ॥ चक्षुषा विप्रहीणस्य पंगुलस्य जडस्य वा । हरेत यो वै सर्वस्वं तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम् ॥ ११ ॥ आश्रमे वा वने वापि ग्रामे वा यदि वा पुरे । अग्निं समुत्सृजेन्मोहात्तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्रह्मघ्नकथने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच । तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ । श्रवणं च महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥ पृथिव्यां यानि

धर्मशास्त्रोंको यथार्थ रीतिसे समझे विना उनमें दोष लगाते हैं उन पुरुषोंको ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये ॥ ८ ॥ जो अपनी रूपवती बड़ी कन्याका समान वरके साथ विवाह नहीं करता है उसको ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये ॥ ९ ॥ अधार्मिक कार्योंमें परायण और वृथा ही ब्राह्मणोंको मर्मभेदी दुःख देनेवाले पुरुष ब्रह्महत्यारे कहलाते हैं ॥ १० ॥ लूले, अन्धे और मूर्ख मनुष्योंके सर्वस्वका हरण करनेवाले पुरुषको ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये ॥ ११ ॥ जो पुरुष मोहवश आश्रम, वन, ग्राम अथवा नगरमें आग लगा देता है उस पुरुषको ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये ॥ १२ ॥ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि- हे महाबुद्धिमान् भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! तीर्थदर्शन, तीर्थस्नान और तीर्थमाहात्म्यका सुनना अतिकल्याणकारक है अतः मैं आपसे इस विषयको यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ हे प्रभो ! हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! पृथ्वी

तीर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ । वक्तुमर्हसि मे तानि श्रोतास्मि नियतं प्रभो ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । इममंगिरसा प्रोक्तं तीर्थवंशं महाद्युते । श्रोतुमर्हसि भद्रं ते प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ॥३॥ तपोवनगतं विप्रमभिगम्य महामुनिम् । पप्रच्छांगिरसं धीरं गौतमः संशितव्रतः ॥ ४ ॥ अस्ति मे भगवन् कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे शंस महामुने ॥ ५ ॥ उपस्पृश्य फलं किं स्यात्तेषु तीर्थेषु वै मुने । प्रेत्यभावे महाप्राज्ञ तद्यथास्ति तथा वद ॥ ६ ॥ अङ्गिरा उवाच । सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तामूर्मिमालिनीम् । विगाह्य वै निराहारो निर्मलो मुनिवद्भवेत् ॥ ७ ॥ काश्मीरमण्डले नद्यो याः पतन्ति महानदम् । ता नदीः सिन्धु-

पर जितने पवित्र तीर्थ हैं, उन सबका ही मैं सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे यह बात कहिये २ भीष्मजीने कहा, कि हे महाकान्तिवान् राजन् ! अङ्गिराने तीर्थोंका यह इतिहास पहिले मुझसे कहा था, उसका सुननेका तू पात्र है, इसको सुननेसे तुझे उत्तम धर्मका लाभ होगा, तेरा कल्याण हो ॥ ३ ॥ उत्तम आचरणवाले गौतम तपोवनमें रहने वाले धीर और महामुनि अंगिरासे बूझने लगे, कि- ॥४॥ हे महामुने ! तीर्थ पवित्र हैं (अथवा नहीं) इस विषयमें मुझे संदेह है अतः मैं तीर्थविषयक सब वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे कहिये ५ हे मुने ! तीर्थोंमें स्नान करनेसे मरणके पीछे क्या फल मिलता है हे महाबुद्धिमान् ऋषे ! उसका मुझसे यथावत् वर्णन करिये ६ अंगिराने कहा, कि-उपवास करने वाला चन्द्रभागा (चुनाव) अथवा तरंगोंकी माला वाली वितस्ता (झेलम) नदीमें स्नान करके सात दिन तक निराहार रहने पर मुनिकी समान निर्मल होजाता है ७ काश्मीर देशमें जो नदियें हैं वे महानदी सिंधुमें मिलती हैं, अतः उस सिंधु नदीमें स्नान करनेसे पुरुष शीलवान्

मासाद्य शीलवान् स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ८ ॥ पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदकम् । देविकामिंद्रमार्गं च स्वर्णबिन्दुं विगाह्य च ॥ ९ ॥ विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सरोभिरभिष्टुतः। हिरण्य-बिन्दुं विक्षोभ्य प्रयतश्चाभिवाद्य च ॥ १० ॥ कुशेशयं च देवं तं धूयते तस्य किल्बिषम् । इन्द्रतोयां समासाद्य गन्धमादनसन्निधौ ११ करतोयां कुरङ्गे च त्रिरात्रोपोषितो नरः । अश्वमेधमवाप्नोति विगाह्य प्रयतः शुचिः ॥ १२ ॥ गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नील-पर्वते । तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ॥ १३ ॥ अपां ह्रद उपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत् । ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यसन्धस्त्वहिंसकः ॥ १४ ॥ यत्र भागीरथी गङ्गा पतते दिश-

हो स्वर्गमें जाता है ॥ ८ ॥ पुष्कर, प्रभास, नैमिषारण्य, साग-रोदक (समुद्रका जल) देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिंदु इन तीर्थोंमें स्नान करने वाला पुरुष विमानोंमें बैठ अप्सराओंसे स्तुति पाता हुआ ज्ञान पाता है, जो पुरुष इस प्रकार सावधान होकर हिरण्यबिन्दु नामक तीर्थमें स्नान करता है तथा तीर्थको प्रणाम करता है ॥ ९ ॥ १० ॥ और कुशेशय तीर्थमें उसके अधिष्ठाता देवको प्रणाम करता है उस पुरुषके पापोंका नाश होजाता है जो पुरुष गन्धमादन पर्वतके समीपकी इंद्रतोया नामक नदीमें स्नान करके तथा कुरंग नामक क्षेत्रमें करतोया नदीमें स्नान करके जो पुरुष तीन रात्रिका उपवास करता है और नियमोंका पालन कर शुद्ध होजाता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलको पाता है ११-१२। जो पुरुष गङ्गाद्वारमें, कुशावर्तमें, बिल्वकतीर्थमें, नीलपर्वतमें और कनखल तीर्थमें स्नान करता है वह पुरुष पापरहित हो स्वर्गमें जाता है ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी क्रोधको जीतने वाला सत्यवादी और अहिंसक पुरुष अपां ह्रद नामक तीर्थमें स्नान करके अश्व-मेध यज्ञके फलको पाता है ॥ १४ ॥ जिस स्थानमें भागीरथी

मुत्तराम् । महेश्वरस्य! त्रिस्थाने यो नरस्त्वभिषिच्यते ॥ १५ ॥ एकमासं निराहारः स पश्यति हि देवताः । सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च इन्द्रमार्गे च तर्पयन् ॥ १६ ॥ सुधां वै लभते भोक्तुं यो नरो जायते पुनः । महाश्रम उपस्पृश्य योऽग्निहोत्रपरः शुचि ॥१७॥ एकमासं निराहारः सिद्धिं मासेन स व्रजेत् । महाह्रद उपस्पृश्य भृगुतुङ्गे त्वलोलुपः॥ १८ ॥ त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा मुच्यते ब्रह्म-हत्यया । कन्याकूप उपस्पृश्य बलाकायां कृतोदकः ॥ १९ ॥ देवेषु लभते कीर्तिं यशसा च विराजते ॥ २० ॥ देविकायामुप-स्पृश्य तथा सुन्दरिकाह्रदे । अश्विन्यां रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते नरः ॥ २१ ॥ महागङ्गामुपस्पृश्य कृत्तिकाङ्गारके तथा । पक्षमेकं

गङ्गा उत्तर दिशाकी ओर पड़ती है उस महेश्वरके स्वर्गमृत्यु-पाताल नामक स्थानमें जो पुरुष स्नान करके एक मास तक निराहार रहता है उस पुरुषको देवताओंके दर्शन होते हैं, सप्तगङ्गा नामक तीर्थमें, त्रिगङ्ग नामक तीर्थमें तथा इन्द्रमार्ग नामक तीर्थमें पितरोंका तर्पण करने वाला॥१६॥ पुरुष जब फिर जन्म लेता है तब उसको अमृतका भोजन मिलता है, महालयतीर्थमें स्नान करके जो पुरुष अग्निहोत्रके कर्ममें परायण रहता है तथा पवित्र रहता है ॥ १७ ॥ तथा एक मास तक निराहार रहता है, उस पुरुषको एक मासमें सिद्धि मिलती है, जो पुरुष निष्कामभावसे भृगुतुङ्ग नामक तीर्थमें स्नान कर तीन रात्रि तक उपवास करता है वह पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होजाता है, कन्याकूप नामक तीर्थमें स्नान करके बलाका नामक तीर्थमें पितृतर्पण करने वाले पुरुषकी देवताओंमें कीर्ति फैलती है और वह यशस्वी होता है ॥ १८ ॥ २० ॥ देविका, सुन्दरिका-सरोवर तथा अश्विनी-कुमार क्षेत्रमें स्नान करने वाला पुरुष मरणके अनन्तर दूसरे जन्ममें रूपवान् और तेजस्वी होता है ॥ २१ ॥ महागङ्गामें तथा

निराहारः स्वर्गमाप्नोति निर्मलः ॥ २२ ॥ वैमानिक उपस्पृश्य किङ्कणीकाश्रमे तथा । निवासेऽप्सरसां दिव्ये कामचारी महीयते ॥ २३ ॥ कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदकः । ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्र्या मुच्यते भवात् ॥ २४ ॥ आश्रमे कृत्तिकानां तु स्नात्वा यस्तर्पयेत्पितॄन् । तोषयित्वा महादेवं निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ महापुर उपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः । त्रसानां स्थावराणां च द्विपदानां भयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ देवदारुवने स्नात्वा धूतपाप्मा कृतोदकः । देवलोकमवाप्नोति सप्तरात्रोपितः शुचिः ॥ २७ ॥ शरस्तम्बे कुशस्तम्बे द्रोणशर्मपदे तथा । अपां

कृत्तिकांगारक नामक तीर्थमें स्नान करके एक पक्ष तक निराहार रहने वाला पुरुष निर्मल होकर स्वर्गमें जाता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष वैमानिक नामक आश्रममें स्नान करता है तथा किंकिणी-काश्रममें स्नान करता है वह पुरुष अप्सराओंके दिव्य लोकमें जाता है तहाँ अप्सरायें उसका पूजन करतीं हैं और वह इच्छा-नुसार विचरा करता है ॥ २३ ॥ कालिकाश्रममें स्नान करके विपाशामें पितरोंका तर्पण करने वाला ब्रह्मचारी क्रोधको जीतने वाला और तीन रात्रितक व्रत पालने वाला पुरुष जन्ममरणसे मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ जो पुरुष कृत्तिकाके आश्रममें स्नान करके पितरोंको तृप्त करता है तथा महादेवको सन्तुष्ट करता है वह पुरुष निर्मल होकर स्वर्गमें जाता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य महापुर नामक तीर्थमें स्नान कर पवित्र हो तीन रात्रिका उपवास करता है उस मनुष्यको स्थावरजङ्गमात्मक तथा दो चरण वाले प्राणियों का भय नहीं रहता है ॥ २६ ॥ जो मानुष देवदारु नामक वनमें स्नान करता है तथा पितृतर्पण करता है और सात रात्रि तक उपवास कर शुद्ध रहता है, वह मनुष्य पापमुक्त हो स्वर्गमें जाता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य शरस्तंब नामक तीर्थमें, कुशस्तंब नामक

प्रपतनासेवि सेव्यते सोऽप्सरोगणैः ॥२८॥ चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले । विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते ॥२९॥ श्यामायास्त्वाश्रमं गत्वा उषित्वा चाभिषिच्य च । एकपक्षं निराहारस्त्वन्तर्धानफलं लभेत् ॥ ३० ॥ कौशिकीं तु समासाद्य वायुभक्षस्त्वलोलुपः । एकविंशतिरात्रेण स्वर्गमारोहते नरः ॥ ३१ ॥ मतंगवाप्यां यः स्नायादेकरात्रेण सिध्यति । विगाहति ह्यनालम्बमन्धकं वै सनातनम् ३२ नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः । फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः ३३ गंगाह्रद उपस्पृश्य तथा चैवोत्पलावने । अश्वमेधमवाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः ३४ गंगायमुनयोस्तीर्थे तथा

तीर्थमें तथा द्रोणशर्मपद नामक तीर्थके जलप्रवाहमें स्नान करता है अप्सरायें उस मनुष्यकी सेवा करती हैं २८ जो मनुष्य निराहार रह चित्रकूटमें और मन्दाकिनीके जलमें स्नान करता है राजलक्ष्मी उस मनुष्यकी सेवा करती है २९ जो मनुष्य श्यामातीर्थमें प्रतिदिन स्नान कर एक पक्ष तक निराहार रहता है वह गन्धर्वोंके वैभवोंको भोगता है ३० जो मनुष्य कौशिकीमें स्नान कर निष्कामभावसे इकीस दिन तक वायुभक्षण करता है वह मनुष्य स्वर्गमें जाता है ३१ मतंगवापीमें एक रात्रि स्नान करने वालेको भी सिद्धि मिलती है,जो मनुष्य अनालम्ब तथा सनातन अंधकतीर्थमें स्नान करता है ३२ तथा जो मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर नैमिष नामक तीर्थमें स्नान करता है और एक मास तक पितृतर्पण करता है उस मनुष्यको पुरुषमेध नामक यज्ञका फल मिलता है ३३ गङ्गाह्रद नामक तीर्थमें तथा उत्पला वनमें एक मास तक स्नान कर पितृतर्पण करने वाले मनुष्यको अश्वमेधका फल मिलता है ३४ गङ्गा और यमुनाके तीर्थमें स्नान करके तथा कालञ्जर नामक पर्वत पर एक मास तक निवास कर

कालंजरे गिरौ। दशाश्वमेधानाप्नोति तत्र मासः कृतोदकः ३५
षष्टिह्रद उपस्पृश्य चान्नदानाद्विशिष्यते । दशतीर्थसहस्राणि
तिस्रः कोव्यस्तथापराः ॥ ३६ ॥ समागच्छंति माघ्यां तु प्रयागे
भरतर्षभ । माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ॥ ३७ ॥
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् । मरुद्गण उपस्पृश्य
पितृणामाश्रमे शुचिः ॥ ३८ ॥ वैवस्वतस्य तीर्थे च तीर्थभूतो
भवेन्नरः । तथा ब्रह्मसरो गत्वा भागीरथ्यां कृतोदकः ॥ ३९ ॥
एकमासं निराहारः सोमलोकमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥ उत्पातके
नरः स्नात्वा अष्टावक्रे कृतोदकः । द्वादशाहं निराहारो नरमेध-
फलं लभेत् ॥ ४१ ॥ अश्मपृष्ठे गयायां च निरविंदे च पर्वते ।

पितृतर्पण करने वाले मनुष्यको दश अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है ३५ षष्ठीह्रदमें स्नान करनेसे अन्नदानसे भी अधिक फल मिलता है और हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष! माघमासमें प्रयाग-राजमें तीन करोड़ दश सहस्र तीर्थ इकट्ठे होते हैं, अतः माघ मासमें प्रयागतीर्थमें सदाचारसम्पन्न हो नियमको ग्रहण करने वाले स्नान करके निर्मल हो स्वर्गको जाते हैं और जो मनुष्य मरुद्गण नामक तीर्थमें, पितृ–आश्रय नामक तीर्थमें, और वैवस्वत नामक तीर्थमें स्नान करता है वह तीर्थरूप होजाता है और जो मनुष्य ब्रह्मचर नामक तीर्थमें जा भागीरथी नदीमें तर्पण करता है ॥ ३६ ॥ ३९ ॥ तथा एक मास तक निराहार रह कर स्नान करता है वह मनुष्य सोमलोकमें जाता है ॥ ४० ॥ जो मनुष्य उत्पातक नामक तीर्थमें स्नान करके अष्टावक्र नामक तीर्थमें पितृ तर्पण करता है और बारह दिन तक निराहार रहता है उसको नरमेधका फल मिलता है ४१ जो मनुष्य गयातीर्थके अश्मपृष्ठ नामक अर्थात् प्रेतशिला नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें, निरविंद अर्थात् सुखके लेशसे भी रहित प्रेतपर्वतरूपसे प्रसिद्ध तीर्थमें और क्रौञ्च-

तृतीयां क्रौंचपद्यां च ब्रह्महत्यां विमुच्यते ॥ ४२ ॥ कलविंक उपस्पृश्य विन्द्याच्च बहुशो जलम् । अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा अग्निकन्यापुरे वसेत् ॥ ४३ ॥ करवीरपुरे स्नात्वा विशालायां कृतोदकः ॥ देवहृद उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते ॥ ४४ ॥ पुनरावर्तनन्दां च महानन्दां च सेव्य वै । नन्दने सेव्यते दांतस्त्वप्सरोभिरहिंसकः ॥४५॥ उर्वशीं कृत्तिकायोगे गत्वा चैव समाहितः । लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ४६ ॥ रामहृद उपस्पृश्य विपाशायां कृतोदकः । द्वादशाहं निराहारः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ महाहृद उपस्पृश्य शुद्धेन मनसा नरः । एकमासं निराहारो जमदग्निगतिं लभेत् ॥ ४८ ॥ विंध्ये संताप्य चात्मानं सत्यसंधस्त्वहिंसकः । विनयात्तप आस्थाय

पदी नामक तीर्थ अर्थात् विष्णुपुरी नामक तीर्थमें स्नान करता है है वह तीन ब्राह्महत्याओंसे छूट जाता है ॥ ४२ ॥ कलविंक तीर्थ में स्नान करनेसे मनुष्य बहुतसे तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पाता है, अग्निपुरमें स्नान करनेसे पुरुष अग्निकन्यापुरमें वास करता है ॥४३॥ करवीरपुरमें स्नान करनेसे, विशालमें पितृतर्पण करने से और देवहृदमें स्नान करनेसे पुरुष ब्रह्मरूप होकर विराजता है ॥४४॥इन्द्रियोंका निग्रह करने वाले और सब प्रकारकीहिंसाको त्याग देने वाले पुरुष यदि आवर्तनन्दा और महानन्दामें स्नान करते हैं तो नन्दनवनमें अप्सरायें उनकी सेवा करती हैं ॥ ४५ ॥ जो सावधानीके साथ कार्तिकी पूर्णमाके दिन उर्वशीतीर्थमें और लौहित्यतीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करता है,उसको पुण्डरीक नामक यज्ञका फल मिलता है ॥४६॥ जो रामहृदमें स्नान कर विपाशामें तर्पण कर बारह दिन तक निराहार रहता है वह पापोंसे छूट जाता है ॥४७॥ महाहृदमें शुद्ध मनसे स्नान कर एक मास तक निराहार रहने वाले पुरुषको जमदग्निकी गति मिलती है ॥ ४८ ॥विंध्या-

मासेनैकेन सिध्यति ॥ ४९ ॥ नर्मदायामुपस्पृश्य तथा शूर्पारकोदके। एकपक्षं निराहारो राजपुत्रो विधीयते ॥ ५० ॥ जम्बूमार्गे त्रिभिर्मासैः संयतः सुसमाहितः । अहोरात्रेण चैकेन सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ५१ ॥ कोकामुखे विगाह्याथ गत्वा चांजलिकाश्रमम् । शाकभक्षश्चीरवासाः कुमारीर्विन्दते दश । वैवस्वतस्य सदनं न स गच्छेत् कदाचन । यस्य कन्याह्रदे वासो देवलोकं स गच्छति ॥ ५३ ॥ प्रभासे त्वेकरात्रेण अमावास्यां समाहितः । सिध्यते तु महाबाहो यो नरो जायतेऽमरः ॥ ५४ ॥ उज्जानक उपस्पृश्य आर्ष्टिषेणस्य चाश्रमे । पिंगायाश्चाश्रमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥ कुल्यायां समुपस्पृश्य जप्त्वा चैवाघमर्षणम् ।

चलमें अपने आत्माको अर्थात् शरीरसे तप कर जो पुरुष सत्य पालता है, हिंसाको त्याग देता है नियमपूर्वक तपस्या करता है उसको एक मासमें सिद्धि मिलती है ॥४९॥ नर्मदा नामक तीर्थमें तथा शूर्पारकोदक नामक तीर्थमें स्नान कर एक पक्ष निराहार रहने वाला पुरुष दूसरे जन्ममें राजपुत्र होता है ॥ ५० ॥ जम्बूमार्ग नामक तीर्थमें तीन मास तक इन्द्रियोंको नियममें रखने वाले और आत्माको संयत रखने वाले एक ही दिन रातमें सिद्धि मिलती है ॥ ५१ ॥ जो कोकामुख नामक तीर्थमें स्नान करता है अञ्जलिकाश्रम तीर्थमें निवास करके शाकपत्रका अहार करता है और चीथड़े पहिरता है, वह दश कुमारियोंका स्वामी होता है ॥५२॥ जो पुरुष कन्याह्रदमें रहता है उसको कभी यमलोकमें जाना नहीं पड़ता है और वह देवलोकमें जाता है ॥ ५३ ॥ हे महाभुज ! जो पुरुष प्रभासतीर्थमें अमावस्याके दिन एकाग्रचित्तसे स्नान करता है वह पुरुष सिद्धि होजाता है और मरणके पीछे स्वर्गमे देवता होजाता है ॥ ५४ ॥ जो उज्जनक तीर्थमें स्नान करके आर्ष्टिषेणके आश्रममें तथा पिंगाके आश्रममें स्नान करके

अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥५६॥ पिंडारक उपस्पृश्य एकरात्रोषितो नरः। अग्निष्टोममवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ॥ ५७ ॥ तथा ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोभितम्। पुण्डरीकमवाप्नोति उपस्पृश्य नरः शुचिः ॥५८॥ मैनाके पर्वते स्नात्वा तथा संध्यामुपास्य च। कामं जित्वा च वै मासं सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥५६॥ कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम्। अभ्येत्य योजनशताद्भ्रूणहा विप्रमुच्यते॥६०॥ नन्दीश्वरस्य मूर्तिं तु दृष्ट्वा मुच्यते किल्विषैः। स्वर्गमार्गे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ६१ ॥ विख्यातो हिमवान्पुण्यः शङ्करश्वशुरो गिरिः। आकरः सर्वरत्नानां सिद्धचारणसेवितः ॥ ६२ ॥

सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ५५ ॥ जो कुल्या नदीमें स्नान करके तीन रात्रिका उपवास करता है और अघमर्षण मन्त्रका जप करता है उस मनुष्यको अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है।५६। जो पिण्डारक नामक तीर्थमें स्नान करके एक रात्रि उपवास करता है, वह मनुष्य दूसरे दिन प्रभातमें पवित्र होजाता है और अग्निष्टोम नामक यज्ञके फलको पाता है ॥५७॥ धर्मारण्यसे अलंकृत ब्रह्मसर नामक तीर्थमें स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य पुण्डरीक यज्ञके फलको पाता है ॥५८॥ मैनाक पर्वत पर स्नान और सन्ध्या करता हुआ जो एक मास तक कामको वशमें रखता है, उसको सब यज्ञोंका फल मिलता है ५६ भ्रूणहत्यारा मनुष्य यदि सौ योजन चल कर कालोदक, नन्दिकुण्ड तथा उत्तरमानस नामक तीर्थमें जाता है तो पापसे छूट जाता है६०मनुष्य नन्दीश्वरके दर्शन करके पापोंसे छूट जाता है और स्वर्गमें स्नान कर ब्रह्मलोकको जाता है ६१हिमालय नामक पर्वत पवित्र है वह शिवका श्वसुर है और सकल रत्नोंका भण्डार है, उस पर सिद्ध और चारण रहते हैं ॥६२॥ वेदान्त शास्त्रको जाननेवाला जो द्विजाति पुरुष

शरीरमुत्सृजेत्तत्र विधिपूर्वमनाशके । अध्रुवं जीवितं ज्ञात्वा यो वै वेदान्तगो द्विजः ॥ ६३ ॥ अभ्यर्च्य देवतास्तत्र नमस्कृत्य मुनींस्तथा । ततः सिद्धो दिवं गच्छेद् ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ६४ ॥ कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत् । न तेन किंचिन्नप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत् ॥६५॥ यान्यगम्यानि तीर्थानि दुर्गाणि विषमाणि च । मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमीक्षया ॥६६॥ इदं मेध्यमिदं पुण्यमिदं स्वर्ग्यमनुत्तमम् ॥ इदं रहस्यं वेदानामाप्लाव्यं पावनं तथा ॥६७॥ इदं दद्याद् द्विजातीनां साधोरात्महितस्य च । सुहृदां च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ॥ ६८ ॥ दत्तवान् गौतमस्यैतदंगिरा वै महातपाः । अङ्गिराः समनुज्ञातः काश्यपेन च धीमता ॥ ६९ ॥ महर्षीणामिदं जप्यं पावनानां

जीवनको नाशवान् जानकर ऊपर कहे हुए हिमाचल पर्वत पर अनशन व्रतकर देवताओंकी पूजा और मुनियोंको नमस्कार करता हुआ अपने शरीरको त्याग देता है,वह पुरुष शुद्ध होकर सनातन ब्रह्मलोकमें जाता है॥६३-६४॥जो पुरुष काम,क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थोंमें निवास करता है उस पुरुषको कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती है ॥ ६५ ॥ सब तीर्थोंके दर्शन करनेकी इच्छा होनेपर उन तीर्थोंके दुर्गम और विषम होनेके कारण उनमें न जाया जासके तो मानसिक तीर्थयात्रा करनी चाहिये॥ ६६ ॥ तीर्थसेवा पवित्र, पुण्यप्रद और स्वर्गप्रद, सर्वश्रेष्ठ, स्नान करने योग्य और वेदोंकी रहस्यरूप है ॥६७॥ यह तीर्थस्नानका माहात्म्य द्विजाति पुरुषके,सत्पुरुषके,अपनी हितैषीके, स्नेही पुरुषके और अपनी सेवा करनेवाले शिष्यके कानमें कहना चाहिये ॥६८॥ महा तपस्वी अंगिराने यह तीर्थमाहात्म्य गौतमके अर्पण किया था और बुद्धिमान काश्यपने यह माहात्म्य अङ्गिराके प्रार्थना करनेपर अङ्गिरासे कहा था ॥६९॥ यह तीर्थमाहात्म्य ऋषियोंके

तथोत्तमम् । जपंश्चाभ्युत्थितः शश्वन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥७०॥ इदं यश्चापि शृणुयाद्रहस्यं त्वंगिरोमतम् । उत्तमे च कुले जन्म लभेज्जातीश्च संस्मरेत् ॥ ७१ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे आंगिरसतीर्थयात्रायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच । बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया ब्रह्मणः समम् । पराक्रमे शक्रसममादित्यसमतेजसम् ॥ १ ॥ गांगेयमर्जुनेनाजौ निहितं भूरितेजसम् ॥ भ्रातृभिः सहितोऽन्यैश्च पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ २ ॥ शयानं वीरशयने कालाकांक्षिणमच्युतम् । आजग्मुर्भरतश्रेष्ठं द्रष्टुकामा महर्षयः ॥ ३ ॥ अत्रिर्वसिष्ठोऽथ भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिः संयतात्मवान् ॥ ४ ॥ विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तः प्रमतिर्दमः ।

पाठ करनेयोग्य है, पवित्र करनेवाली वस्तुओंमें भी पवित्र है, जो पुरुष सावधान होकर इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है वह निर्मल होकर स्वर्गमें जाता है७० जो पुरुष अङ्गिराके कहेहुए इस गुप्त तीर्थमाहात्म्यको सुनता है वह उत्तम कुलमें जन्म पाता है और पहिले अनेक जन्मोंका उसको स्मरण होजाता है ॥७१॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा कि-बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान, क्षमामें ब्रह्माकी समान, पराक्रममें इन्द्रकी समान, तेजमें सूर्यकी समान गङ्गाजीके महातेजस्वी पुत्रको अर्जुनने युद्धमें शस्त्रोंसे घायल कर डाला था और अपने भाई तथा दूसरे मनुष्योंके साथ युधिष्ठिर उनसे प्रश्न कररहे थे ॥२॥ मरणकी बाट देखतेहुए वीरशय्यामें विराजमान ऐसे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष भीष्मजीके पास उनसे मिलनेके लिये अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, भलीप्रकार नियमोंका पालन करनेवाले सुमति,

बृहस्पत्युशनोव्यासाश्च्यवनः काश्यपो ध्रुवः ॥५॥ दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कंडेयोऽथ गालवः । भरद्वाजोथ रैभ्यश्च यवक्री तस्त्रितस्तथा ॥ ६ ॥ स्थूलाक्षः शबलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः कृशः । नारदःपर्वतश्चै व सुधन्वाथैकतो द्विजः ॥ ७ ॥ नितंभूर्भुवनो धौम्यः शतानन्दो कृतव्रणः । जामदग्न्यस्तथा रामः कचश्चेत्येवमादयः ॥ ८ ॥ समागता महात्मानो भीष्मं द्रष्टुं महर्षयः । तेषां महात्मनां पूजामागतानां युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ भ्रातृभिः सहितश्चक्रे यथावदनुपूर्वशः । ते पूजिता सुखासीनाः कथाश्चक्रुर्महर्षयः ॥ १० ॥ भीष्माश्रिताः सुमधुराः सर्वेंद्रियमनोहराः । भीष्मस्तेषां कथाः श्रुत्वा ऋषीणां भावितात्मनांम् ॥ ११॥ मेने दिविष्ठमात्मानं तुष्ट्या परमया युतः । ततस्ते भीष्ममामंत्र्य पांडवांश्च महर्षयः ॥१२॥ अन्तर्धानं गताः सर्वे सर्वेषामेव पश्यतां । तानृषीन्सुमहाभागानंतर्धानगतानपि १३ पाण्डवास्तुष्टुवुः सर्वे-

विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त,प्रमति,दम,बृहस्पति,उशना,व्यास, च्यवन, काश्यप,ध्रुव,दुर्वासा,जमदग्नि,मार्कण्डेय गालव भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीत, त्रित, स्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि,कृश, नारद, पर्वत, सुधन्वा, एकत, द्वित, नितभू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, जमदग्निपुत्र परशुराम तथा कच ये सब महात्मा महर्षि उनका दर्शन करनेके लिये आये, तब युधिष्ठिरने और उनके भाइयोंने तहाँ आयेहुए उन महात्माओंकी अनुक्रमसे विधि पूर्वक पूजा की,पूजा होनेपर वे महर्षि सुखपूर्वक बैठकर कथाएँ कहने लगे ३-१० वे सब मधुर वातें भीष्मजीसे सम्बन्ध रखती थीं और सब इन्द्रियोंको आनन्द देती थीं, भीष्म भी उन शुद्ध मन वाले ऋषियोंकी कथाको सुन कर अपनेको स्वर्गमें स्थित मानने लगे और परमसन्तुष्ट हुए, तदनन्तर वे सब महर्षि भीष्मजीकी और पाण्डवोंकी आज्ञा लेकर सबके देखते २ अन्तर्धान

प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः । प्रसन्नमनसः सर्वे गांगेयं कुरुसत्तमं १४
उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मंत्रकोविदाः । प्रभावात्तपसस्तेषामृषीणां
वीक्ष्य पाण्डवः १५ प्रकाशंतो दिशः सर्वा विस्मयंपरमं ययुः ।
महाभाग्यं परं तेषामृषीणामनुचिंत्य ते । पाण्डवाः सह भीष्मेण
कथाश्चक्रुस्तदाश्रयाः १६ वैशम्पायन उवाच । कथांते शिरसा
पादौ स्पृष्ट्वा भीष्मस्य पाण्डवः। धर्म्यं धर्मसुतः प्रश्नं पर्यपृच्छद्
युधिष्ठिरः १७ युधिष्ठिर उवाच । के देशाः के जनपदा आश्रमाः
के च पर्वताः । प्रकृष्टाः पुण्यतः कांश्च ज्ञेया नद्यः पितामह १८
भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । शिलोञ्छं-
वृत्तेः सम्वादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर १६ इमां कश्चित्परिक्रम्य

होगए ११ १३ सब पाण्डव उनकी स्तुति करने लगे तथा वारम्वार प्रणाम करने लगे तथा कुरुकुलोत्तम गङ्गापुत्र भीष्मकी प्रसन्न मन वाले वे सब पाण्डव, वेदवेत्ता ब्राह्मण जैसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान करते हैं, तैसे सेवा करने लगे, उस समय उन ऋषियोंके तपः प्रभावसे दशों दिशाओंको प्रकाशित होते देख कर पाण्डव विस्मित होगए उन ऋषियोंको महाभाग्य-शाली मानने लगे और भीष्मजीसे उन ऋषियोंकी कथा बूझने लगे १४-१६ वैशम्पायनने कहा, कि-ऋषियोंकी बात चीतके अन्तमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर भीष्मके दोनों चरणोंमें मस्तक नमा कर धर्मविषयक प्रश्न बूझने लगे १७ युधिष्ठिरने बूझा, कि हे पितामह! भूमिके किन विभागोंको, कौनसे महादेशोंको, कौनसे आश्रमोंको कौनसे पर्वतोंको और कौनसी नदियोंको अधिक पुण्यमय समझना चाहिये १८ भीष्मपितामहने कहा, कि-हे राजा युधिष्ठिर ! इस विषयमें भी शिलोञ्छवृत्ति वाले पुरुषका और एक सिद्धपुरुषका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास इस प्रकार प्रसिद्ध है १६ कि-मनुष्यश्रेष्ठ एक सिद्ध मनुष्य पर्वतोंसे शोभायमान इस पृथ्वी

पृथिवीं शैलभूषणाम् । असकृद्द्विपदां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्य गृहमेधिनः २०
शिलवृत्तेर्गृहं प्राप्तः स तेन विधिनार्चितः । उवास रजनीं तत्र
सुमुखः सुखभागृषिः २१ शिलवृत्तिस्तु यत् कृत्यं प्रातस्तत्कृत्वा
ऽन्शुचिः । नित्यकृत्यमुपातिष्ठत् सिद्धं तमतिथिं तदा २२ तौ समेत्य
महात्मानौ सुखासीनौ कथाः शुभाः । चक्रतुर्वेदसंबद्धास्तच्छेष-
कृतलक्षणाः ॥ २३ ॥ शिलवृत्तिः कथान्ते तु सिद्धमामन्त्र्य
यत्नतः । प्रश्नं पप्रच्छ मेधावी यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २४ ॥
शिलवृत्तिरुवाच । के देशाः के जनपदाः केऽश्रमाः के च पर्वताः ।
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम् ॥ २५ ॥ सिद्ध
उवाच । ते देशास्ते जनपदास्तेऽश्रमास्ते च पर्वताः । येषां भागीरथी

की परिक्रमा करता हुआ शिलोञ्छवृत्तिसे आजीविका करने वाले एक श्रेष्ठ गृहस्थके घर पहुँचा. तब उस गृहस्थने उसकी विधि-पूर्वक पूजाकी, तदनन्तर सुन्दर मुख वाले वे ऋषि वहाँ रात भर सुखपूर्वक रहे २०–२१ शिलोञ्छवृत्तिसे आजीविका करने वाला ब्राह्मण प्रातःकालमें उठा, स्नान कर पवित्र हुआ और प्रातःकालीन धर्मकृत्य किये और धार्मिक कृत्योंसे निवट कर सिद्ध अतिथिकी सेवामें पहुचा २२ तदनन्तर वे दोनों महात्मा सुखपूर्वक बैठ कर वेदसम्बन्धी और उसके शेषभाग अर्थात् उपनिषद्सम्बन्धी कथाएँ कहने लगे ॥ २३ ॥ कथाके अन्तमें शिलोञ्छवृत्तिसे आजीविका करने वाले ब्राह्मणने प्रयत्न-पूर्वक सिद्ध पुरुषकी आज्ञा लेकर, तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसीप्रकार सिद्धसे प्रश्न किया २४ शिलोञ्छवृत्तिने बूझा, कि–किन देशोंको, किन जनपदोंका, किन आश्रमोंको, किन पर्वतोंको और किन नदियोंको अधिक पुण्यवाली समझना चाहिये, यह मुझसे कहिये २५ सिद्धने कहा कि-जिनके बीचमें होकर नदियोंमें श्रेष्ठ भागीरथी गङ्गा बहती है वे देश, महादेश,

गंगामध्ये नैति सरिद्वरा ॥ २६ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः । गतिं तां न लभेज्जंतुर्गंगां संसेव्य यां लभेत् ॥२७॥ स्पृष्टानि येषां गांगेयैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम् । न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद्विधीयते ॥२८॥ सर्वाणि येषां गांगेयैस्तोयैः कार्याणि देहिनाम् । गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठन्ति ते जनाः ॥ २९ ॥ पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः । पश्चाद्गङ्गां निषेवन्ते तेपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥ ३० ॥ स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गांगेयैः प्रयतात्मनाम् । व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ३१ ॥ यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२ ॥ अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः । तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गा-

आश्रम और पर्वत महापवित्र मानेजाते हैं२६मनुष्यको गङ्गाजीमें स्नान करनेसे जो गतिसे मिलती है, वह गति तप करनेसे, ब्रह्मचर्य पालनेसे, यज्ञ करनेसे तथा दान करनेसे भी नहीं मिल सकती २७ जिन मनुष्योंके शरीर गङ्गाजीके जलसे भीजजाते हैं और जिनकी अस्थियें गङ्गाजीमें डाली जाती हैं, वे पुरुष सदा स्वर्गमें रहते हैं २८हे ब्राह्मण ! जिन मनुष्योंके सब कार्य गङ्गाजलसे होते हैं वे मनुष्य पृथ्वीको त्यागनेपर तुरत ही स्वर्गमें निवास करने लगते हैं २९ जिन मनुष्योंने पहिली अवस्थामें पाप किया होता है, तब भी वे यदि गङ्गाजीमें स्नान करते हैं तो उत्तम गति पाते हैं ३० जो मनुष्य सावधान होकर गङ्गाजलसे स्नान करते हैं उनके पुण्यमें जितनी वृद्धि होती है,उतनी पुण्यवृद्धि सौ यज्ञ करने पर भी नहीं होसकती ॥ ३१ ॥ मनुष्यकी अस्थियें जब तक गङ्गाजलमें पड़ी रहती हैं, उतने सहस्र वर्ष तक वह स्वर्ग लोकमें पूजा पाता है ॥३२॥ जैसे उदय होनेके समय सूर्य अन्धकारका नाश करके प्रकाशित होने लगता है, ऐसे ही

जलोक्षितः ॥ ३३ ॥ विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा ।
तद्वद्देशा दिशश्चैव हीना गंगाजलैः शिवैः ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमा
यथा सर्वे धर्मज्ञानविवर्जिताः । क्रतवश्च यथाऽसोमास्तथा गंगां
विना जगत् ॥ ३५ ॥ यथा हीनं नभोऽर्केण भूः शैलैः खं च
वायुना । तथा देशा दिशश्चैव गंगाहीना न संशयः ॥३६॥ त्रिषु
लोकेषु ये केचित् प्राणिनः सर्व एव ते । तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं
यान्ति गंगाजलैः शुभैः ॥३७॥ यस्तु सूर्येण निष्टप्तं गांगेयं पिबते
जलम् । गवां निर्हारनिर्मुक्ताद्यावकाचद्विशिष्यते ॥ ३८ ॥ इन्दु-
व्रतसहस्रं तु यश्चरेत् कायशोधनम् । पिबेद्यश्चापि गंगांभः समौ
स्यातां न वा समौ ॥ ३९ ॥ तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पदेनैकेन यः

पुरुष गंगाके जलसे स्नान करके पापोंको नष्ट कर शोभा पाने लगता है ॥ ३३ ॥ गंगाजल रहित देश और दिशायें चन्द्रहीन रात्रियोंकी समान और पुष्परहित वृक्षोंकी समान शोभा नहीं पाती हैं॥ ३४॥ जैसे सब वर्ण तथा आश्रम धर्मके ज्ञानसे रहित होने पर और यज्ञ जैसे सोमरहित होने पर शोभा नहीं पाते ऐसे ही यह जगत् भी गङ्गारहित होने पर शोभा नहीं पासकता ।३५। जैसे सूर्यरहित आकाश शोभा नहीं पासकता, पर्वतरहित पृथ्वी शोभा नहीं पासकती तथा वायुरहित आकाश जैसे शोभा नहीं पासकता तैसे ही गंगारहित देश और दिशायें शोभा नहीं पासकतीं ॥३६॥ तीनों लोकोंमें जितने प्राणी हैं उन सबका यदि गंगाजलसे तर्पण किया जाता है तो वे परमतृप्त होते हैं ॥३७॥ जो पुरुष सूर्यसे तपेहुए गंगाजलको पीता है वह गौके जुगालमेंसे बचेहुए यवोंको खाकर व्रत पालनेवाले पुरुषसे भी उत्तम माना जाता है ॥३८॥ जो पुरुष शरीरकी शुद्धि करनेवाले एक सहस्र चान्द्रायण व्रतोंको करता है और जो पुरुष गंगाजलका पान करता है वे दोनों पुरुष भी समान तो शायद ही हों ३९ एक सहस्र

पुमान् । मासमेकं तु गंगायां समौ स्यातां न वा समौ ॥ ४० ॥ लम्बतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् । तिष्ठेद्यथेष्टं यश्चापि गंगायां स विशिष्यते ॥ ४१ ॥ अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम । तथा गंगावगाढस्य सर्वपापं प्रधूयते ॥ ४२ ॥ भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् । गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः ॥ ४३ ॥ भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् । गङ्गाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥ अप्रतिष्ठाश्च ये केचिदधर्मशरणाश्च ये । तेषां प्रतिष्ठा गङ्गेह शरणं शर्म वर्म च४५प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्ताननेकैः पुरुषाधमान् । पततो नरके गङ्गा संश्रितान् प्रेत्य तारयेत् ॥ ४६ ॥ ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं

युगतक एक चरणसे खड़े होकर तप करनेवाला और एक मासतक गंगामें स्नान करनेवाला ये दोनों समान हों अथवा नहीं अर्थात् इनमें गंगास्नान करनेवाला श्रेष्ठ है ॥४०॥ जो पुरुष दश सहस्र युगतक अधःशिर होकर लटकता है और जो पुरुष अपनी इच्छानुसार गंगामें खड़ा रहता है, इन दोनोंमें गंगामें खड़े रहनेवाला उत्तम माना जाता है ॥४१॥ हे द्विजोत्तम ! जैसे अग्निमें डाली हुई रुई भस्म हो जाती है और उसकी भस्म भी नहीं प्रतीत होती, ऐसे ही गङ्गामें स्नान करने वालेके पाप भी सर्वथा नष्ट होजाते हैं ॥ ४२ ॥ जगत्में दुःखसे जिनका मन खिन्न होगया है ऐसे प्राणी जब आश्रयको खोजते हैं तब उनको गंगाकी समान और कोई आश्रय नहीं मिलता ॥ ४३ ॥ सर्प जैसे गरुड़को देखकर निर्विष होजाते हैं, ऐसे ही गंगाके दर्शनसे मनुष्य भी सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥४४॥ इस जगत्में प्रतिष्ठारहित अधर्मात्मा पुरुषोंकी भी गंगा ही प्रतिष्ठा है अर्थात् आश्रय देनेवाली है ४५ जो अधम पुरुष अनेक पापोंमें मग्न होनेके कारण नरकमें पड़नेको उद्यत हों यदि वे भी गंगाजीका सहारा ले लेते हैं तो गंगाजी

दैवैः सवासवैः। येऽभिगच्छन्ति सततं गङ्गां मतिमतां वर॥४७॥ विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः। ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गामुपाश्रिताः॥४८॥ यथा सुराणाममृतं पितॄणां च यथा स्वधा। सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम्॥४९॥ उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयार्दिताः। श्रेयस्कामास्तथा गङ्गामुपासंतीह देहिनः॥ ५०॥ स्वायम्भुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते। स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते॥५१॥ यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता। तथोपजीविनां गङ्गा सर्वप्राणभृतामिह॥५२॥ देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा सत्रादिभिर्मुखैः। अमृतान्युपजीवन्ति तथा गङ्गाजलं नराः॥ ५३॥

उनको भी मरणके अनन्तर तार देती है॥४६॥ हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! जो सदा गंगाके तट पर जाते हैं, उनके ऊपर मुनि, देवता और इन्द्रको प्रसन्न हुआ समझना चाहिये॥ ४७॥ जो पुरुष विनय और आचारसे भ्रष्ट होजाते हैं, अपवित्र होनेके कारण अधम होजाते हैं हे ब्राह्मण! गंगाका आश्रय लेनेसे वे भी पवित्र होजाते हैं॥ ४८॥ देवताओंको जैसे अमृत हितकर है, पितरोंको जैसे स्वधा हितकारक है ऐसे ही गङ्गाजल मनुष्योंका हित करनेवाला है॥ ४९॥ क्षुधासे दुःखी हुए बालक जैसे माताकी सेवा करते हैं, इसीप्रकार कल्याण चाहनेवाले प्राणी भी गङ्गाकी उपासना करते हैं॥ ५०॥ जैसे सब स्थानोंमें ब्रह्माजीका स्थान श्रेष्ठ कहलाता है तैसे ही स्नान करने योग्य नदियोंमें गङ्गा नदी श्रेष्ठ कहलाती है ५१ जैसे देवता आदि गौ और पृथ्वीसे आजीविका चलाते हैं, तैसेही इस जगत्में दूसरेके आश्रयसे जीनेवाले सब प्राणी गङ्गानदीसे आजीविका चलाते हैं ५२ देवता जैसे सत्र आदि यज्ञ करके चन्द्रमा और सूर्यमेंके अमृत पर आजीविका चलाते हैं, तैसे ही मनुष्य गङ्गाजलसे आजीविका चलाते

जान्हवीपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितम् । आत्मानं मन्यते लोको दिविष्ठमिव शोभितम् ॥ ५४ ॥ जान्हवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना विभर्ति यः। विभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय निर्मलम्॥५५ गङ्गोर्मिभिरथो क्लिन्नः पुरुषं पवनो यदा । स्पृशते सोऽस्य पाप्मानं सद्य एवापकर्षति ॥ ५६ ॥ व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य विनशिष्यतः । गङ्गादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति ॥ ५७ ॥ हंसारावैः कोकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम् । पस्पर्ध गङ्गा गन्धर्वान् पुलिनैश्च शिलोच्चयान्॥५८॥हंसादिभिः सुबहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्वृताम् । गङ्गागोकुलसम्बाधां दृष्ट्वा स्वर्गोऽपि विस्मृतः ॥ ५९ ॥ न सा प्रीतिर्दिविष्ठस्य सर्वकामानुपाश्नतः । सम्भवेद्या परा

हैं ॥५३॥ गङ्गानदीके तट परसे उड़तीहुई रेतीसे अटेहुए अपने शरीरको ज्ञानी पुरुष स्वर्गमें स्थित और शोभायमान मानते हैं ॥ ५४ ॥ जो पुरुष गङ्गानदीके तट परकी मृत्तिकाको अपने मस्तक पर लगाता है वह पुरुष अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यके निर्मल स्वरूपका धारण करता है ॥ ५५ ॥ गङ्गाकी तरंगमालाओंसे सिक्त हुआ पवन जब पुरुषका स्पर्श करता है, तब उस पुरुषके सकल पापोंका तत्काल ही नाश होजाता है॥५६॥ द्यूत पान आदि विषयोंसे सन्तप्त और नष्ट होतेहुए पुरुषको यदि गङ्गाके दर्शन करनेका प्रेम उत्पन्न होजाता है, तो गङ्गा उसके दुःखोंको नष्ट करदेती है ॥ ५७ ॥ गङ्गानदी हंसोंके शब्दोंसे, कोक पक्षियोंकी ध्वनियोंसे तथा दूसरे पक्षियोंकी ध्वनियोंसे गन्धर्वोंके साथ स्पर्धा करती है तथा अपने तटोंसे पर्वतोंके साथ स्पर्धा करती है ॥ ५८ ॥ बहुतसे हंसोंसे तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे भरीहुई और गौओंके झुण्डोंसे व्याप्त गंगाजीको देखकर मैं स्वर्गको भी भूल जाता हूँ ॥ ५९ ॥ मनुष्योंको गंगाजीके तट पर पर जैसी प्रसन्नता मिलती है, तैसी प्रसन्नता स्वर्गमें रहकर

प्रीतिर्गंगायाः पुलिने नृणाम् ॥६०॥ वाङ्मनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह । वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतो अत्र मे नास्ति संशयः ६१ सप्तावरान् सप्त वरान् पितॄंस्तेभ्यश्च ये परे । पुमांस्तारयते गङ्गा वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥ ६२ ॥ श्रुताभिलषिता पीता स्पृष्टा दृष्टावगाहिता । गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः ॥ ६३ ॥ दर्शनात् स्पर्शनात् पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् । पुनात्यपुण्यान् पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥६४॥ य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च । स पितॄंस्तर्पयेद्गंगामभिगम्य सुरांस्तथा॥६५॥ न सुतैर्न च वित्तेन कर्मणा न च तत्फलम् । प्राप्नुयात्पुरुषोऽत्यन्तं गङ्गां प्राप्य यदाप्नुयात् ॥ ६६ ॥ जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः

सब सुख भोगने पर भी नहीं मिलसकती६०इस लोकमें मन वाणी और शरीरसे कियेहुए पापोंसे ग्रसाहुआ मनुष्य गंगाका दर्शन करके निःसन्देह पवित्र होजाता है ६१ पुरुष गंगाका दर्शन करके,गंगाका स्पर्श करके और गंगामें स्नान करके अपने सात पिछले, सात अगले और उनसे भी पहिले पितरोंका उद्धार करता है भागीरथी का माहात्म्य सुननेसे उसके तट पर जानेकी इच्छा करनेसे, उसके जलका पान करनेसे, स्पर्श करनेसे और उसमें स्नान करनेसे गङ्गाजी मनुष्योंके दोनों वंशोंको विशेषतः तार देती हैं ।६३। गङ्गाका दर्शन करनेसे, गङ्गाका स्पर्श करनेसे गङ्गाजलका पान करनेसे तथा गङ्गा गङ्गा इस प्रकार कीर्तन करनेसे सैंकड़ों और सहस्रों पापी पुरुषोंको गङ्गा पवित्र कर देती है ६४॥ जिस पुरुषको अपना जन्म, अपना जीवन तथा अपना शास्त्राभ्यास सफल करनेकी इच्छा हो उस पुरुषको गङ्गाजीके तट पर जाकर पितरोंको और देवताओंको तृप्त करना चाहिये ॥ ६५ ॥ पुरुष गङ्गाजी पर जाकर जिस फलको पाता है उस फलको पुत्र उत्पन्न करके, धन पाकर, तैसे ही किसी कर्मका करके भी नहीं

पंगुभिरेव च । समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम् ६७
भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम् । देवैः सेन्द्रैश्च को गङ्गां नोपसेवेत मानवः ॥ ६८ ॥ वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः । विद्यावद्भिः श्रितां गङ्गां पुमान् को नाम नाश्रयेत् ।६९।
उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः प्रयतः शिष्टसम्मतः । चिन्तयेन्मनसा गङ्गां स गतिं परमां लभेत् ॥ ७० ॥ न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः । आदेहपतनाद्गंगामुपास्ते यः पुमानिह ।७१।
महापुण्यां च गगनात् पतन्तीं वै महेश्वरः । दधार शिरसा गङ्गां तामेव दिवि सेवते ॥ ७२ ॥ अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः । यस्तु तस्या जलं सेवेत् कृतकृत्यः पुमान्

पा सकता ॥ ६६ ॥ जो पुरुष समर्थ होने पर भी पवित्र जलवाली कल्याण करने वाली गङ्गा नदीका दर्शन नहीं करते हैं, उनको जन्मान्धकी समान, मरे हुओंकी समान तथा लंगड़ोंकी समान समझना चाहिये ६७ भूत, भविष्य और वर्तमान कालको जानने वाले महर्षि, देवता और इन्द्रभी जिनकी सेवा करते हैं, ऐसी गङ्गाजी की सेवा कौन न करेगा ? ॥ ६८ ॥ विद्वान् वानप्रस्थ, संन्यासी और ब्रह्मचारी भी जिसका सेवन करते हैं ऐसी गङ्गाजीका कौन आश्रय न लेगा ? ॥ ६९ ॥ प्राणके उत्क्रमणके समय (अर्थात् प्राण जाते समय) शिष्ट पुरुषोंका मान्य जो पुरुष सावधानीके साथ गङ्गाका स्मरण करता है, वह परमगतिको पाता है ॥७०॥ जो पुरुष इस लोकमें शरीरपात होने तक गङ्गाजीकी उपासना करता है उसको भय देने वाले(ब्रह्महत्या आदि) से कोई भय नहीं होता, इसी प्रकार राजासे भी कोई भय नहीं होता है ॥ ७१ ॥ महापुण्यमयी आकाशमेंसे नीचेको आती हुई भागीरथीको महादेवजीने अपने मस्तक पर धारण किया था और वह स्वर्गमें उसका सेवन करते हैं । ७२ । भागीरथीजीने तीन विमलमार्गोंसे

भवेत् ॥ ७३ ॥ दिवि ज्योतिर्यथादित्यः पितॄणां चैव चन्द्रमाः । देवेशश्च तथा नृणां गङ्गा च सरितां तथा ॥ ७४ ॥ मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्वियुक्तस्य धनेन वा । न भवेद्धि तथा दुःखं यथा गङ्गावियोगजम् ॥ ७५ ॥ नारण्यैर्नेष्टविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः । तथा प्रसादो भवति गङ्गां वीक्ष्य यथा भवेत् ॥७६॥ पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति । तथा त्रिपथगां दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ॥ ७७ ॥ तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः । गंगा योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत् ॥ ७८ ॥ भूस्थैः खस्थैर्दिविष्ठैश्च भूतैरुच्चावचैरपि । गङ्गां विगाह्यासततमेवव्रत्

बह कर तीनों लोकोंको अलङ्कृत कर रक्खा है, जो इन भागीरथीजीके जलका सेवन करता है, वह पुरुष कृतकृत्य होजाता है ॥७३॥स्वर्गवासी देवताओंमें जैसे सूर्यका तेज श्रेष्ठ है, पितरोंमें जैसे चन्द्रमा श्रेष्ठ है, मनुष्योंमें जैसे राजा श्रेष्ठ है, तैसे ही नदियोंमें भागीरथीजी श्रेष्ठ हैं॥ ७४ ॥ माता, पिता, पुत्र और स्त्रीका वियोग होने पर तथा धनका नाश होने पर ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख गंगाका वियोग होने पर होता है ॥ ७५ ॥ गङ्गाका दर्शन मिलनेपर जैसी प्रसन्नता होती है,तैसी प्रसन्नता ब्रह्मलोकके विषयोंका उपभोग करनेसे, स्वर्गके वैभवसे पुत्रोंसे और धनके मिलनेसे भी नहीं होती७६पूर्णिमाके चन्द्रमाको देख कर मनुष्योंकी दृष्टि जिसप्रकार प्रसन्न होजाती है,इसीप्रकार तीनों मार्गोंमें दहनेवाली गंगाजीको देखकर मनुष्योंकी दृष्टि प्रसन्न होजाती है७७जिस पुरुषकी गंगापर श्रद्धा होती है, जिसका मन गंगामें लगा होता है,जिसकी भागीरथी पर ही निष्ठा होती है और जो भागीरथीकी सेवामें ही परायण रहता है तथा जो भक्तिपूर्वक भागीरथीका अनुसरण करता है,वह पुरुष भागीरथीका प्रिय होजाता है७८पृथ्वीमें रहनेवाले,आकाशमें रहनेवाले और स्वर्गमें

कार्यतमं सताम् ॥ ७६ ॥ विश्वलोकेषु पुण्यत्वाद्गंगायाः प्रथितं यशः । यत् पुत्रान् सगरस्येतो भस्माख्याननयद्दिवम् ॥ ८० ॥ वाय्वीरिताभिः सुमनोहराभिर्द्रुताभिरत्यर्थसमुत्थिताभिः । गंगोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धाः सहस्ररश्मिप्रतिमा भवन्ति ॥ ८१ ॥ पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम् । गंगां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं गता धीरास्ते विबुधैः समत्वम् ॥८२॥ अन्धान् जडान्द्रव्यहीनांश्च गंगा यशस्विनी बृहती विश्वरूपा । देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च निषेविता सर्वकामैर्युनक्ति ॥८३॥ ऊर्जावतीं महापुण्यां मधुमन्तीं त्रिवर्त्मगाम् त्रिलोकगोप्त्रीं ये गंगां संश्रितास्ते

रहनेवाले उत्तम तथा मध्यम प्रकारके जीवोंको सदा भागीरथीमें स्नान करना चाहिये, क्योंकि-भागीरथीस्नान सत्पुरुषोंका उत्तम कार्य माना जाता है ७६ भागीरथीका यश पवित्र होनेके कारण सब लोकोंमें प्रसिद्ध है, कि-भागीरथीने राजा सगरके भस्महुए पुत्रोंको इस लोकमेंसे स्वर्गलोकमें भेजा है ॥ ८० ॥ वायुसे प्रेरित अतिमनोहर, लहरातीहुई और उछाल खातीहुई कान्तिमती भागीरथीकी लहरोंसे भलीप्रकार दिपता हुआ पुरुष सहस्र किरणोंवाले सूर्यकी समान शोभा पाता है ॥ ८१ ॥ दुग्ध और घृत स्वरूप हविकी समृद्धिवाले यज्ञके फलको देनेवाली, अति उदार, वेगसे वहनेवाली, कठिनतासे आलोड़न करनेयोग्य भागीरथी पर जाकर जो पुरुष अपने,शरीरको त्यागदेते हैं, वे देवता की समान माने जाते हैं ॥८२॥ यशस्वी, श्रेष्ठ और सेवा करनेसे देवताओंको भी सौभाग्य देनेवाली भागीरथीकी देवता, इन्द्र, मुनि तथा मनुष्य सेवा करते हैं, ऐसी भागीरथी सेवा करनेपर अन्धे, मूर्ख और निर्धन पुरुषोंकी भी सब कामनाओंको पूर्ण करती हैं ॥ ८३ ॥ अन्न और पशु आदि देनेवाली महापवित्र, कर्मफलप्रदायिनी, स्वर्ग मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकोंकी

दिवं गताः ॥ ८४ ॥ यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्यस्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः । तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति ॥ ८५ ॥ दक्षां पृश्निं बृहतीं विप्रकृष्टां शिवामृद्धां भागिनीं संप्रसन्नाम् । विभावरीं सर्वभूतप्रतिष्ठां गंगां गता ये त्रिदिवं गतास्ते ॥ ८६ ॥ ख्यातिर्यस्याः खं दिवं गां च नित्यं पुरा दिशो विदिशश्चावतस्थे । तस्यां जलं सेव्य सरिद्वराया मर्त्याः सर्वे कृतकृत्या भवन्ति ॥ ८७ ॥ इयं गंगेति नियतं प्रतिष्ठा गुहस्य रुक्मस्य च गर्भयोषा । प्रातस्त्रिवर्गा घृतवहा विपाप्मा गङ्गावतीर्णा वियतो विश्वतोया ॥८८॥ सुतावनीध्रस्य

रक्षा करनेवाली भागीरथीका आश्रय लेनेवाले स्वर्गमें जाते हैं ८४ जो पुरुष भागीरथीके तट पर निवास करते हैं अथवा भागीरथीका दर्शन करते हैं उन पुरुषोंको भागीरथीके दर्शन और स्पर्श करनेसे महत्त्वको प्राप्त हुए देवता सुख देते हैं तथा इच्छित गति देते हैं ॥८५॥ जो पुरुष तारण करने में समर्थ, विष्णुकी माता वाणीस्वरूप, सर्वश्रेष्ठ, कल्याणकारिणी, समृद्धिमती, षडैश्वर्यसम्पन्न, प्रकाशस्वरूप सब प्राणियोंकी आधाररूप भागीरथीजी पर जाते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं ॥ ८६ ॥ भागीरथीजीकी पवित्र कीर्ति आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, दिशा और विदिशाओंमें व्याप्त है इस उत्तम नदीके जलका सेवन करके सब मनुष्य कृतकृत्य हो जाते हैं ॥ ८७ ॥ जो पुरुष भागीरथीजीके दर्शन करके दूसरे पुरुषको " यह भागीरथी है" इस प्रकार नियमानुसार भागीरथीके दर्शन करवाता है, उस पुरुषको भागीरथीजी मोक्ष देती हैं, भागीरथीजी स्वामिकार्तिकेयको और सुवर्णको उत्पन्नकरने वाली हैं, भागीरथीका प्रातःकालका स्नान धर्म, अर्थ और कामको देने वाला है, वह जलरूप घृतको धारण करती हैं, पापियोंके पातकोंको नष्ट करती हैं उनका जल सम्पूर्ण जगत्को प्रिय

हरस्य भार्या दिवो भुवश्चापि कृतानुरूपा । भव्या पृथिव्यां भागिनी चापि राजन् गङ्गा लोकानां पुण्यदा वै त्रयाणाम् ८९
मधुस्रवा घृतधारा घृतार्चिर्महोर्मिभिः शोभिता ब्राह्मणैश्च । दिवश्च्युता शिरसाप्ता शिवेन गङ्गावनीध्रास्त्रिदिवस्य माता ॥ ९० ॥
योनिर्वरिष्ठा विरजा वितन्वी शय्याचिरा वारिवहा यशोदा । विश्वावती चाकृतिरिष्टसिद्धा गंगोक्षितानां भुवनस्य पंथाः॥९१॥
क्षान्त्या मह्या गोपने धारणे च दीप्त्या कृशानोस्तपनस्य चैव । तुल्या गंगा सम्मता ब्राह्मणानां गुहस्य ब्रह्मण्यतया च नित्यम्॥९२

लगता है और वह स्वर्गमेंसे पृथ्वी पर उतरी है ॥ ८८ ॥ भागीरथी हिमाचलकी पुत्री हैं, हरकी भार्या हैं, स्वर्ग और पृथ्वीकी अलंकारस्वरूप हैं, पृथ्वी पर सब प्राणियोंका कल्याण करती हैं, ऐश्वर्यमयी हैं और हे राजन् ! तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं॥८९॥ पृथ्वी पर धर्मरूपी मधुको प्रवाहित करने वाली पृथ्वी पर जलकी वेगवती धाराको चलानेवाली, घृतकी ज्वाला की समान कान्तिमती और शक्तिसम्पन्न हैं, महातरंगोंसे और स्नान तथा सन्ध्या करनेवाले ब्राह्मणोंसे सुशोभित हैं, स्वर्गमेंसे नीचे गिरती हैं और इनको शंकरने अपने मस्तक पर धारण किया है, यह स्वर्गकी माता हैं और पर्वत परसे पृथिवी पर उतर कर मनुष्यों को पवित्र कर रही हैं ॥ ९० ॥ भागीरथी सबकी परमकारणरूप हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, निर्मल हैं, ब्रह्मकी समान अतिसूक्ष्म हैं, मरे हुए प्राणियोंकी पवित्र शय्यारूप हैं, फुर्तीसे जलको बहानेवाली हैं, यश देनेवाली हैं, सम्पूर्ण विश्वका पालन करनेवाली, सत्ता सामान्यस्वरूप हैं, सिद्ध पुरुषोंको प्रिय हैं तथा स्नान करनेवाले पुरुषोंको स्वर्गमें पहुँचानेकी मार्गरूप हैं ॥९१॥ मनुष्योंकी रक्षा करनेवाली, क्षमामूर्त्ति हैं, धारण करनेमें पृथिवीमूर्त्ति हैं, अग्नि और सूर्यकी कान्तिवाली हैं, ब्राह्मणोंकी माननीय हैं और ब्रह्मण्यतामें

ऋषिष्टुतां विष्णुपदीं पुराणां सुपुण्यतोयां मनसापि लोके ।
सर्वात्मना जान्हवीं ये प्रपन्नास्ते ब्रह्मणः सदनं संप्रयाताः ।९३।
लोकानवेक्ष्य जननीव पुत्रान् सर्वात्मना सर्वगुणोपपन्नान् ।
तत्स्थानकं ब्राह्ममभीप्समानैर्गंगा सदैवात्मवशैरुपास्या ॥ ९४ ॥
उस्त्रां पुष्टां मिषतीं विश्वभोज्यामिरावतीं धारिणीं भूधराणाम् ।
शिष्टाश्रयाममृतां ब्रह्मकान्तां गङ्गाश्रयेदात्मवान् सिद्धिकामः ९५
प्रसाद्यः देवान् सविभून् समस्तान् भगीरथस्तपसोग्रेण गंगाम् ।
गामानयत्तामभिगम्य शश्वत् पुंसां भयं नेह चामुत्र विद्यात्॥९६॥
उदाहृतः सर्वथा ते गुणानां मयैकदेशः प्रसमीक्ष्य बुद्ध्या । शक्तिर्न

स्वामी कार्तिकेयकी समान हैं९२ऋषि भागीरथीकी सेवा करते हैं और ये विष्णुके चरणोंमेंसे उत्पन्न हुई हैं,अति प्राचीन समयकी हैं उनका जल अतिपवित्र है, जिन्होंने इस जगत्में सर्वात्मभावसे भागीरथीजीकी शरण ली है वे ब्रह्मलोकमें गए हैं ॥ ९३ ॥ परब्रह्म पदको पानेकी इच्छा वाले मनुष्योंको सकल गुणोंसे व्याप्त सब लोकोंको नाशवान् समझ कर अपने मनको वशमें कर माताकी समान भागीरथीजीकी सेवा करनी चाहिये ॥ ९४ ॥ भागीरथी अमृत देने वाली गौरूप, लक्ष्मीरूप, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण, जगत्की भोग्य और अन्नसे भरी पुरी हैं, पर्वतोंकी माता हैं,उत्तम पुरुप इनका आश्रय लेते हैं वह अमृतस्वरूप हैं ब्रह्माजीके भी चित्तको हरने वाली हैं, सिद्धिकी कामना वाले ज्ञानी पुरुषोंको भागीरथीजीका आश्रय लेना चाहिये॥९५॥ भगीरथ महाभयंकर तप कर शंकरसहित सब देवताओंको प्रसन्न कर भागीरथीको पृथ्वी पर लाये हैं, ऐसी भागीरथीकी शरणमें जाने पर पुरुषोंको इस लोकमें और परलोकमें किसी दिन भय नहीं रहता है।९६। मैंने बुद्धिपूर्वक विचार करके तुमसे उनके गुणोंका एक भाग कहा है, परन्तु भागीरथीके सब गुणोंका वर्णन करनेकी मुझमें शक्ति

मे काचिद्दिहास्ति वक्तुं गुणान् सर्वान् परिमातुं तथैव ॥९७॥
मेरोः समुद्रस्य च सर्वयत्नैः संख्योपलानामुदकस्य चापि। शक्यं
वक्तुं नेह गंगाजलानां गुणाख्यानं परिमातुं तथैव ॥ ९८ ॥
तस्मादेतान् परया श्रद्धयोक्तान् गुणान् सर्वान् जान्हवीयान् सदैव।
भवेद्वाचा मनसा कर्मणा च भक्त्या युक्तः श्रद्धया श्रद्दधानः ॥९९॥
लोकानिमांस्त्रीन् यशसा वितत्य सिद्धिं प्राप्य महतीं तां दुरापाम्।
गंगाकृतानचिरेणैव लोकान् यथेष्टमिष्टान् विहरिष्यसि त्वम् १०० ॥
तव मम च गुणैर्महानुभावा जुषतु मतिं सततं स्वधर्मयुक्तैः।
अभिमतजनवत्सला हि गंगा जगति युनक्ति सुखैश्च भक्तिमन्तम् ॥ १०१ ॥ भीष्म उवाच । इति परममतिर्गुणानशेषान्
शिलरतये त्रिपथानुयागरूपान् । बहुविधमनुशास्य तथ्यरूपान्

नहीं है ॥ ९७ ॥ मेरुपर्वतके पाषाणोंकी गिनती और समुद्रके जलका नाप चाहे कोई सब प्रकारका प्रयत्न करके कर ले परन्तु प्रत्येक प्रकारका प्रयत्न करने पर भी भागीरथीके सब गुण नहीं गाये जासकते ९८ इसी लिये मैंने बड़ी श्रद्धाके साथ भागीरथीके गुण कहे हैं, इन गुणोंको जान कर भक्तिपूर्वक श्रद्धाके साथ गङ्गास्तोत्रका पाठ करना चाहिये, मनसे उनका ध्यान करना चाहिये तथा कर्म अर्थात् स्नान करना चाहिये ॥९९॥ तू गङ्गाकी भक्तिसे तीनों लोकोंमें अपने यशको फैला सकेगा दुर्लभ महासिद्धिको पावेगा और भागीरथीकी सेवा करनेसे प्राप्त होने वाले सङ्कल्पसिद्ध पुण्यमय लोकोंमें अपनी इच्छानुसार विहार करेगा ॥ १०० ॥ महाप्रभाववाली गङ्गा मेरी और तेरी बुद्धिको सदा धर्ममय गुणोंवाली करे, क्योंकि-गङ्गा अपने मान्य पुरुषों पर सदा वत्सलता रखती है और भक्त पुरुषको सुखी करती है॥१०१॥भीष्मजीने कहा, कि-वह उदारबुद्धि श्रेष्ठ कान्तिवाला सिद्ध इसप्रकार शिलोञ्छवृत्ति पर प्रेम रखनेवाले गृहस्थसे स्वर्ग,

गगनतलं द्युतिमान् विवेश सिद्धः॥१०२॥ शिलवृत्तिस्तु सिद्धस्य वाक्यैः संबोधितस्तदा। गंगामुपास्य विधिवत्सिद्धिं प्राप दुर्लभाम् ॥ १०३ ॥ तथा त्वमपि कौन्तेय भक्त्या परमया युतः। गंगामभ्येहि सततं प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम् ॥१०४॥ वैशम्पायन उवाच। श्रुत्वेतिहासं भीष्मोक्तं गङ्गायाः स्तवसंयुतम्। युधिष्ठिरः परां प्रीतिगच्छद्भ्रातृभिः सह॥१०५॥इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाद्यः पठेत वा। गङ्गायाः स्तवसंयुक्तं स मुच्येत सर्वकिल्विषैः।१०६।

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गङ्गामाहात्म्यकथने षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

युधिष्ठिर उवाच। प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च यथा भवान्। गुणैश्च विविधैः सर्वैर्वयसा च समन्वितः ॥१॥ भवान् विशिष्टो

मृत्यु और पाताललोकके अनुरूप गङ्गाजीके सम्पूर्ण सत्य गुणोंका वर्णन करके आकाशमें अन्तर्धान होगया ॥ १०२ ॥ उस समय सिद्ध पुरुषके वचनोंसे शिलवृत्तिको ज्ञान हुआ और वह गंगाकी विधिपूर्वक उपासना करके अतिदुर्लभ सिद्धिको प्राप्त हुआ ॥ १०३ ॥ तू भी इसीप्रकार परम भक्तिमान् हो गङ्गाकी नित्य उपासना कर, उपासना करनेसे तुझको उत्तम सिद्धि मिलेगी ॥ १०४ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-भीष्मजीने गङ्गाका इतिहास और स्तुति कही, उसको सुनकर युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित अति प्रसन्न हुए ॥ १०५ ॥ जो पुरुष गंगाकी स्तुति सहित इस इतिहासको सुनता है अथवा पाठ करता है तो वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १०६ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ छ छ

राजा युधिष्ठिरने बूझा, कि-आप बुद्धि, चरित्र, शील, सब प्रकारके विविधगुण और बलसम्पन्न हैं ॥ १ ॥ आपमें बुद्धि और तप दूसरोंसे अधिक है, अतः हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! मैं

बुद्ध्या च प्रज्ञया तपसा तथा । तस्माद्भवन्तं पृच्छामि धर्मं धर्मभृतां वर ॥ २ ॥ नान्यस्त्वदन्यो लोकेषु प्रष्टव्योऽस्ति नराधिप । क्षत्रियो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ॥ ३ ॥ ब्राह्मण्यं प्राप्नुयाद्येन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि । तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा । ब्राह्मण्यमथ चेदिच्छेत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४ ॥ भीष्म उवाच । ब्राह्मण्यं तात दुष्प्राप्यं वर्णैः क्षत्रादिभिस्त्रिभिः । परं हि सर्वभूतानां स्थानमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५ ॥ बह्वीस्तु संसरन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः । पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मणो नाम जायते ॥ ६ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । मतंगस्य च संवादं गर्दभ्याश्च युधिष्ठिर ॥ ७ ॥ द्विजातेः कस्यचित्तात तुल्यवर्णः सुतस्त्वभूत् । मतंगो नाम नाम्ना वै सर्वैः समुदितो

आपसे धर्मविषयक सन्देह बूझता हूँ ॥ २ ॥ हे राजन् ! सब लोकोंमें आपकी समान दूसरा ऐसा कोई नहीं है जो आपकी समान प्रश्नोंका उत्तर देसके हे नृपश्रेष्ठ ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किस प्रकार ब्राह्मणत्व पासकते हैं यह मुझे बताइये, कौनसा महातप करनेसे अथवा कौनसा महान् कर्म करनेसे अथवा कौनसे शास्त्रका अभ्यास करनेसे वे ब्राह्मणत्वको पासकते हैं ? यह बात आप मुझसे कहिये ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ भीष्मने कहा, कि-हे तात युधिष्ठिर ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंके पुरुषोंको ब्राह्मणत्व मिलना दुर्लभ है, क्योंकि-यह पद सब प्राणियोंमें परम श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ हे तात ! जीव बारम्बार जन्म लेता है और बहुतसी योनियोंको पाता है, हे राजन् ! इसप्रकार अनेक जन्मोंकी आवृत्ति होनेपर किसी जन्म में वह ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें मतंग और गर्दभीका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास इसप्रकार है ॥ ७ ॥ कि-हे तात ! एक ब्राह्मणके अपनी

गुणैः ॥ ८ ॥ स यज्ञकारः कौन्तेय पित्रोत्सृष्टः परन्तप । प्रायाद्गर्दभयुक्तेन रथेनाप्याशुगामिना ॥ ९ ॥ स बालं गर्दभं राजन् वहन्तं मातुरन्तिके । निरविध्यत्प्रतोदेन नासिकायां पुनः पुनः १० तत्र तीव्रं व्रणं दृष्ट्वा गर्दभी पुत्रगृद्धिनी । उवाच मा शुचः पुत्र चाण्डालस्त्वधितिष्ठिति ॥ ११ ॥ ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । आचार्यः सर्वभूतानां शास्ता किं प्रहरिष्यति १२ अयं तु पापप्रकृतिर्बाले न कुरुते दयाम् । स्वयोनिं मानयत्येष भावो भावं नियच्छति ॥ १३ ॥ एतच्छ्रुत्वा मतंगस्तु दारुणं

समान जातिका (अर्थात् दूसरी जातिके पुरुषसे उत्पन्न होनेपर भी जातकर्म आदि संस्कार होनेके कारण ब्राह्मणरूपसे प्रसिद्ध) पुत्र था उसका नाम मतंग था और वह सर्वगुणसम्पन्न था ८ हे कौन्तेय ! हे शत्रुतापन ! वह यज्ञमें ऋत्विक बना था, उसको उसके पिताने यज्ञका कुण्ड बनानेके लिये ईंटें लेनेको भेजा था इसलिये वह एक गधैया और उसके बच्चेको रथमें जोतकर शीघ्रतासे जारहा था ॥ ९ ॥ माँकी समान उसका बच्चा भी रथको शक्तिके अनुसार खेंच रहा था, तब भी वह ब्राह्मण उस बच्चेकी नाकपर आर चुभो रहा था ॥ १० ॥ इस कारण उसकी नाकमें एक बड़ा घाव होगया, यह देखकर गधैयाको अपने बच्चे पर करुणा आई और वह रोतेहुए अपने बच्चेसे कहने लगी कि ओ पुत्र ! तू शोक न कर, क्योंकि इस रथमें चाण्डाल बैठा है ११ क्योंकि-ब्राह्मणमें निर्दयपना नहीं होता, ब्राह्मण सबका मित्र होता है और वह सब प्राणियोंका आचार्य है और सब प्राणियोंको उपदेश देनेवाला है, वह क्या (निर्दयतासे) प्रहार करसकता है ? ॥ १२ ॥ इसका स्वभाव तो पापी है, इससे ही यह तुझ बालक पर दया नहीं करता है, यह पुरुष अपनी उत्पत्तिके अनुसार ही वर्ताव कर रहा है, जातिका स्वभाव मनुष्यकी बुद्धिको

रासभीवचः । अवतीर्य रथात्तूर्णं रासभीं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ ब्रूहि रासभि कल्याणि माता मे येन दूषिता । कथं मां वेत्सि चण्डालं क्षिप्रं रासभि शंस मे ॥१५॥ कथं मां वेत्सि चण्डालं ब्राह्मण्यं येन नश्यते । तत्त्वेनैतन्महाप्राज्ञे ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥१६॥ गर्दभ्युवाच । ब्राह्मण्यां वृषलेन त्वं मत्तायां नापितेन ह । जातस्त्वमसि चाण्डालो ब्राह्मण्यं तेन तेऽनशत् ॥ १७ ॥ एवमुक्तो मतंगस्तु प्रतिमायाद्गृहं प्रति । तमागतमभिप्रेक्ष्य पिता वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १८ ॥ मया त्वं यज्ञसंसिद्धौ नियुक्तो गुरुकर्मणि । कस्मात्प्रतिनिवृत्तोऽसि कच्चिन्न कुशलं तव ॥१९॥ मतंग उवाच । अन्त्ययोनिरयोनिर्वा कथं स कुशली भवेत् । कुशलं तु कुतस्तस्य

अपने अधीन रखता है अर्थात् मनुष्य अपनी जातिके अनुसार बर्ताव करता है १३ गधैयाके ऐसे दारुण वचनोंको सुनकर मतंग रथ परसे तुरत ही नीचे उतर पड़ा और गधैयासे बूझनेलगा १४ हे कल्याणि गधैया ! मेरी माताको किसने दूषित किया है ? यह तू मुझे बता ? और मैं चाण्डाल हूँ, इसको तूने किस प्रकार जान लिया; यह भी मुझे बता ? ॥ १५ ॥ तू मुझे चाण्डाल क्यों समझती है और हे महाप्राज्ञे ! ब्राह्मणत्व जिस प्रकार नष्ट होता है वह सब बात तू मुझसे यथार्थ रीतिसे कह॥१६॥ गधैयाने कहा, कि—तू यौवनसे मत्त हुई अपनी मातामें शूद्र—नापितसे उत्पन्न हुआ है अतः तू चाण्डाल है और तेरा ब्राह्मणत्व नष्ट होगया है ? ॥ १७ ॥ गधैयाके इस प्रकार कहने पर मतंग घरको लौट आया, अपने पुत्रको (ईंटोंके विना) लौटा हुआ देख कर पिताने बूझा, कि—॥१८॥ मैंने तुझे यज्ञसंसिद्धिके बड़े भारी काम पर नियुक्त किया था, तब भी तू क्यों लौट आया ? और तेरे कार्यमें क्या विघ्न पड़ गया ।.१९॥ मतंगने कहा, कि—जो पुरुष चाण्डाल जातिका अथवा अधम-

यस्येयं जननी पितः२०ब्राह्मण्यां वृषलाज्जातं पितर्वेदयतीव माम्।
अमानुषी गर्दभीयं तस्मात्तप्स्ये तपो महत् ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वा स
पितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः । ततो गत्वा महारण्यमतपत्सुमह-
त्तपः ॥२२॥ ततः स तापयामास विबुधांस्तपसान्वितः । मतंगः
सुखसंप्रेप्सुः स्थानं सुचरितादपि ॥ २३ ॥ तं तथा तपसायुक्त-
मुवाच हरिवाहनः । मतंग तप्स्यसे किं त्वं भोगानुत्सृज्य मानु-
षान् ॥ २४ ॥ वरं ददानि ते हन्त वृणीष्व त्वं यदिच्छसि ।
यच्चाप्यवाप्यं हृदि ते सर्वं तद्ब्रूहि मा चिरम्॥ २५॥मतङ्ग उवाच ।
ब्राह्मण्यं कामयानोऽहमिदमारब्धवांस्तपः । गच्छेयं तदवाप्येह वर
एष वृतो मया ॥ २६ ॥ भीष्म उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं

जातिका हो, उसकी कुशल कैसे होसकती है ? हे पिताजी! जिसकी ऐसी माता हो उसकी कुशल कैसे होसकती है ॥२०॥ हे पिताजी ! यह मनुष्य भी नहीं किन्तु पशुयोनिमें उत्पन्न हुई गधैया मुझे शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ बताती है, अतः मैं इस पापका प्रायश्चित करनेके लिये महातप करूँगा ॥ २१ ॥ इसप्रकार कह तप करनेका निश्चय कर मतंग एक महावनमें चलागया और वहाँ जाकर महातप करनेलगा ॥२२॥ मतंगको भली भाँति तप कर सुखपूर्वक ब्राह्मणत्व पानेकी इच्छा थी, अतएव वह तप करके देवताओंको सन्तप्त करनेलगा ॥ २३ ॥ तब इन्द्रने तप करतेहुए मतंगसे बूझा कि-हे मतंग ! तू मानुषी भोगोंको त्याग कर तप क्यों कर रहा है ॥ २४ ॥ हे भाई ! मैं तुझे वर देता हूँ, अतः तू अपनी इच्छानुसार वर माँगले, मनमें किसी दुर्लभ वस्तुकी इच्छाहो तो माँगले, मुझसे शीघ्र कह विलंब न कर ॥ २५ ॥ मतंगने कहा, कि-मैंने ब्राह्मणजातिकी कामनासे इस तपको आरम्भ किया है, अतः मैं यहाँसे ब्राह्मणत्व पाकर ही जाऊँगा और यही मेरा

तमुवाच पुरन्दरः । मतङ्ग दुर्लभमिदं विप्रत्वं प्रार्थ्यते त्वया ॥२७॥ ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वममाप्यमकृतात्मभिः । विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम मा चिरम् ॥२८॥ श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्त्तते । तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि ॥ २६ ॥ देवतासुरमर्त्येषु यत् पवित्रं परं स्मृतम् । चण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथञ्चन ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे इन्द्रमतङ्गसंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

भीष्म उवाच । एवमुक्त्वा मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः । अतिष्ठदेकपादेन वर्षाणां शतमच्युतः ॥ १ ॥ तमुवाच ततः शक्रः

वर है ॥ २६ ॥ भीष्मने कहा, कि–मतंगके कथनको सुनकर इन्द्रने कहा, कि–हे मतंग ! तू ब्राह्मणत्व माँगता है, परन्तु यह दुर्लभ है ॥ २७ ॥ तू ब्राह्मणत्व चाहता है, परन्तु अज्ञानी पुरुषोंको यह नहीं मिल सकता, हे दुर्बुद्धे ! तू तप करते२ नष्ट हो जायगा (परन्तु ब्राह्मणत्व तुझको नहीं मिल सकेगा) अतः तू तप करना बन्द कर ॥ २८ ॥ तप करनेसे ब्राह्मणरूप श्रेष्ठता नहीं मिल सकती, तू ब्राह्मणत्व पानेकी इच्छासे तप कर रहा है, परन्तु तू शीघ्र ही नष्ट होजायगा ॥ २६ ॥ देवताओंमें, असुरोंमें और मनुष्योंमें ब्राह्मणत्व पवित्र और उत्तम माना जाता है ऐसा ब्राह्मणत्व चाण्डाल जातिमें उत्पन्न हुए तुझे कभी नहीं मिल सकेगा ॥ ३० ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

भीष्मने कहा, कि–मनको और आत्माको नियममें रखने वाले मतंगसे इस प्रकार इन्द्रने कहा, तब मतंगने व्रतका आरंभ किया और अपने नियममें अटल रह कर सौ वर्ष तक एक पैरसे खड़ा रहा ॥ १ ॥ तब फिर महायशस्वी इन्द्रने उससे कहा, कि–हे तात ! तू ब्राह्मणत्व माँगता है, परन्तु वह दुर्लभ है और वह

पुनरेव महायशाः ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात प्रार्थयानो न लप्स्यसे२
मतङ्ग परमं स्थानं प्रार्थयन्विनशिष्यसि । मा कृथाः साहसं पुत्र
नैष धर्मपथस्तव ॥ ३ ॥ न हि शक्यं त्वया प्राप्तुं ब्राह्मण्यमिह
दुर्मते । अप्राप्यं प्रार्थयानो हि न चिराद्विनशिष्यसि ॥ ४ ॥
मतङ्ग परमं स्थानं वार्यमाणोऽसकृन्मया । चिकीर्षस्येव तपसा
सर्वथा न भविष्यसि ॥ ५ ॥ तिर्यग्योनिगतः सर्वो मानुष्यं यदि
गच्छति । स जायते पुल्कसो वा चाण्डालो वाप्यसंशयः ॥ ६ ॥
पुल्कसः पापयोनिर्वा यः कश्चिदिह लक्ष्यते । स तस्यामेव
सुचिरं मतङ्ग परिवर्तते ॥ ७ ॥ ततो दशशते काले लभते शूद्र-
तामपि । शूद्रयोनावपि ततो बहुशः परिवर्तते ॥८॥ ततस्त्रिंशद्गुणे
काले लभते वैश्यतामपि । वैश्यतायां चिरंकालं तत्रैव परिवर्तते ६

तुझे नहीं मिलेगा ॥ २ ॥ हे मतंग ! तू ब्राह्मणरूप उत्तम पदको पाना चाहता है, परन्तु वह तुझे नहीं मिलेगा, हे पुत्र ! तू साहस न कर, यह तेरे धर्मका मार्ग नहीं है ॥ ३ ॥ हे दुर्मति ! इस जन्ममें तू ब्राह्मणत्वको न पासकेगा, जो वस्तु दुर्लभ है, उसकी तू इच्छा करता है, इससे थोड़े समयमें ही तेरा नाश होजायगा ॥ ४ ॥ हे मतंग ! मैं तुझे वारम्वार रोकता हूँ, तब भी तू तप करके ब्राह्मणत्व पाना चाहता है, परन्तु इससे तेरी सर्वथा हानि ही होगी ॥५॥ तिर्यक्योनिमें पड़े हुए सब जीव यदि मनुष्यजातिमें उत्पन्न होते हैं, तो वे पुल्कस तथा चाण्डालयोनिमें ही उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥ हे मतंग ! इस जगत्‌में पुल्कस अथवा चाण्डाल जातिके जो पुरुष दीखते हैं वे पुरुष बहुत समय तक उसी जातिमें उत्पन्न हुआ करते हैं ॥७॥ फिर एक सहस्र वर्ष बीतने पर शूद्रत्व पाते हैं और अनेक वर्षों तक शूद्रजातिमें उत्पन्न होते रहते हैं ।८। फिर तीस गुना समय बीतने पर वे वैश्य जातिमें उत्पन्न होते हैं और उस जातिमें भी बहुत समय तक जन्म पाते रहते हैं ६

ततः षष्टिगुणे काले राजन्यो नाम जायते। ततः षष्टिगुणे काले लभते ब्रह्मबन्धुताम् ॥ १० ॥ ब्रह्मबन्धुश्चिरंकालं ततस्तु परिवर्तते। ततस्तु द्विशते काले लभते काण्डपृष्ठताम् ॥११॥ कांडपृष्ठश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते। ततस्तु त्रिशते काले लभते जपतामपि ॥१२॥ तं च प्राप्य चिरंकालं तत्रैव परिवर्तते। ततश्चतुःशते काले श्रोत्रियो नाम जायते। श्रोत्रियत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥१३॥ तदेवं शोकहर्षों तु कामद्वेषौ च पुत्रक। अतिमानातिवादौ च प्रविशेते द्विजाधमम् ॥१४॥ तांश्चेज्जयति शत्रून् स तदा प्राप्नोति सद्गतिम्। अथ ते वै जयन्त्येनं तालाग्रादिव

फिर साठगुणा समय बीतने पर वे ब्रह्मबंधुकी जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ उस जातिमें भी बहुत समय उत्पन्न होते रहनेके अनन्तर जब दो सौ गुणा समय बीत जाता है, तब वह शस्त्र पर आजीविका करने वाली जातिमें उत्पन्न होते हैं॥११॥ और शस्त्रजीवीकी जातिमें ही बहुत समय तक उत्पन्न हुआ करते हैं, तदनन्तर तीनसौ गुणा समय बीतने पर गायत्रीका जप करने वाले ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न होते है ॥ १२ ॥ गायत्रीका जप करने वालोंके कुलमें उत्पन्न होनेपर बहुत समय तक वह उसी कुलमें उत्पन्न हुआ करते हैं, तदनन्तर चारसौ गुणा समय बीतने पर वह श्रोत्रिय ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न होते हैं और उसके कुलमें ही वह बहुत समय तक उत्पन्न होते रहते हैं ॥१३॥ हे ब्राह्मण ! तदनन्तर अधम ब्राह्मणमें शोक, हर्ष, काम, द्वेष, अतिमान तथा अतिवाद प्रवेश करते हैं ॥१४॥ उन शत्रुओंको समय२ पर जीतने पर उनको सद्गति मिलती है; परन्तु यदि शोक आदि उस जीवका पराजय करते हैं तो उस श्रोत्रिय ब्राह्मणको, ताड़के अग्रभागसे जैसे गिराया जाय तैसे, उसको अतिनीच योनिमें डाल देते हैं ॥ १५ ॥ हे मतंग ! इस

पात्यते ॥ १५ ॥ मतङ्ग संप्रधार्यैवं यदहं त्वामचूचुदम् । वृणीष्व काममन्यं त्वं ब्राह्मण्यं हि सुदुर्लभम् ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे इन्द्रमतङ्गसंवादे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

भीष्म उवाच । एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः । सहस्रमेकपादेन ततो ध्याने व्यतिष्ठत ॥ १ ॥ तं सहस्रावरे काले शक्रो द्रष्टुमुपागमत् । तदेव च पुनर्वाक्यमुवाच बलवृत्रहा ॥ २ ॥ मतङ्ग उवाच । इदं वर्षसहस्रं वै ब्रह्मचारी समाहितः । अतिष्ठदेकपादेन ब्राह्मण्यं नाप्नुयां कथम् ॥३॥ शक्र उवाच । चण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं वै कथञ्चन । अन्यं कामं वृणीष्व त्वं मा वृथा तेऽस्त्वयं श्रमः ॥ ४ ॥ एवमुक्तो मतंगस्तु भृशं शोकपरायणः । अध्यतिष्ठद्गयां गत्वा सोऽङ्गुष्ठेन शतं समाः ॥ ५ ॥

प्रकार जानकर मैं तुझसे कहता हूँ, अतः तू दूसरा वर मांगले, क्योंकि-ब्राह्मणत्व अति दुर्लभ है१६ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त

भीष्मने कहा, कि-इसप्रकार इन्द्रने कहा तब पवित्रात्मा मतंगने नियमानुसार व्रत धारण किया और एक सहस्र वर्ष तक एक पैरसे खड़ा हो ध्यान करता रहा१एक सहस्र वर्ष बीतने पर इन्द्र उसको देखनेके लिये फिर आया और बल तथा वृत्रका नाश करनेवाले इन्द्रने फिर उससे वही बात कही ॥२॥ मतंगने उत्तर दिया, कि-मैं एक सहस्र वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा हूँ, अपने मनको मैंने नियममें रक्खा है और एक पैरसे खड़ा रहा हूँ तब भी मुझको ब्राह्मणत्व क्यों न मिलेगा ? ॥ ३ ॥ इन्द्रने कहा, कि-चाण्डाल जातिमें उत्पन्न हुए पुरुषको ब्राह्मणत्व कभी नहीं मिलता है, अतः तू कोई दूसरा वर माँग ले, तेरा यह परिश्रम वृथा न जाय ॥४ ॥ इसप्रकार इन्द्रने मतंगसे कहा, तब उसको अतिशोक हुआ और वह गयातीर्थमें जाकर सौ वर्ष तक अँगूठे

सुदुर्वहं वहन् योगं कृशा धमनिसंततः । त्वगस्थिभूतो धर्मात्मा स पपातेति नश्रुतम् ॥६॥ तं तपन्तमभिद्रुत्य परिजग्राह वासवः । वराणामीश्वरो दाता सर्वभूतहिते रतः ॥ ७ ॥ शक्र उवाच । मतंग ब्राह्मणत्वं ते विरुद्धमिह दृश्यते । ब्राह्मण्यं दुर्लभतरं संवृतं परिपंथिभिः ॥ ८ ॥ पूजयन्सुखमाप्नोति दुःखमाप्नोत्यत्यपूजयन् । ब्राह्मणः सर्वभूतानां योगक्षेमसमर्पिता ९ ब्राह्मणेभ्यो नु तृप्यन्ते पितरो देवतास्तथा । ब्राह्मणः सर्वभूतानां मतङ्ग उच्यते पर ॥१०॥ ब्राह्मणः कुरुते तद्धि यथा यद्यच्च वाञ्छति । बह्वीस्तु संविशन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः ॥ ११ ॥ पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्रा-

---

पर खड़ारहा ॥५॥ अतिकठिनतासे किये जासकने वाले योगको करते २ उसका शरीर दुर्बल होगया, सारे शरीर पर नसें ही नसें दीखने लगीं उस समय उसमें चमड़ा और हड्डियें ही बाकी रह गईं और वह अन्तमें (पृथ्वी पर) गिर पड़ा ऐसा हमने सुना है ॥ ६ ॥ वरोंके धनी और दाता तथा सब प्राणियोंके हितमें परायण वासवने वह जैसे गिरने लगा, कि-उसको झपट कर पकड़ लिया ॥७॥ तदनन्तर इन्द्र बोला, कि-हे मतंग ! तू ब्राह्मणत्व पाना चाहता है, परन्तु यह विपरीत बात दिखाई देती है, क्योंकि-ब्राह्मणत्व अति दुर्लभ है, यदि वह मिल भी जाय तो कामादि शत्रुओंसे घिरा हुआ है ॥ ८ ॥ जो (ब्राह्मणोंकी) पूजा करता है, वह सुखी होता है और जो पूजा नहीं करता है वह दुःखी होता है ब्राह्मण सब प्राणियोंका योगक्षेम करने वाले हैं ॥ ९ । ब्राह्मणोंसे पितर और देवता तृप्त होते हैं, हे मतंग ! ब्राह्मण सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ मानाजाता है१० मनुष्य जिस२ वस्तुकी इच्छा करता है,वह २ वस्तु ब्राह्मण दे सकता है, एक जीव अनेक योनियोंमें प्रवेश करता है और बारम्बार जन्म लेता है ॥ ११ ॥ तो कभी ब्राह्मण जातिमें

ह्मण्यमिह विदन्ति । तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः १२
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः । मतङ्ग उवाच । किं
मां तुदसि दुःखार्तं मृतं मारयसे च माम् ॥१३॥ त्वां तु शोचामि
यो लब्ध्वा ब्राह्मण्यं न बुभूषसे । ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्रापं त्रिभि-
र्वर्णैः शतक्रतो ॥१४॥ सुदुर्लभं सदावाप्य नानुतिष्ठन्ति मानवाः ।
यः पापेभ्यः पापतमस्तेषामधम एव सः ॥ १५ ॥ ब्राह्मण्यं यो
न जानीते धनं लब्ध्वेव दुर्लभम् । दुष्प्रापं खलु विप्रत्वं प्राप्तं
दुरनुपालनम् ॥ १६ ॥ दुरवापमवाप्यैतन्नानुतिष्ठन्ति मानवाः ।

उत्पन्न होता है, दुरात्मा पुरुषोंका ब्राह्मण जातिमें जन्म पाना दुर्लभ है अतः ब्राह्मण होनेकी बातको त्याग कर १२ तू दूसरा वर माँग, क्योंकि--तुझे ब्राह्मणत्व मिलना कठिन है, मतंगने कहा, कि-मैं दुःखसे आतुर होरहा हूँ फिर भी तू मुझे क्यों दुःख देता है ? मुझ मरे हुएको तू क्यों मारता है १३ मुझे तेरे लिये शोक होता है, क्यों कि तू ब्राह्मणत्वको पाने पर भी तो उससे अलंकृत नहीं है (क्यों कि-तुझको मुझ जैसे तपस्वी पर भी दया नहीं आती है) हे शतक्रतो ! ब्राह्मणत्व क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको मिलना अतिकठिन है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य इस सुदुर्लभ पदको पाकर भी उसके अनुकूल वर्ताव नहीं करते हैं वे पापियोंमें भी पापी हैं और उनमें भी अधम हैं१५ अतिदुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी ब्राह्मणके(शम,दम,तप,शौच, क्षमा,सरलता,ज्ञान विज्ञान तथा आस्तिकभाव इन धर्मोंका पालन करना भी कठिन है, दुर्लभ धनकी समान ब्राह्मणत्वको पाकर उसको जानना अति कठिन है पहिले तो ब्राह्मणत्व मिलना ही अतिकठिन है, यदि मिल भी जाय तो उसका पालन करना अति कठिन है ॥ १६ ॥ दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी मनुष्य उसका पालन नहीं कर सकते, हे इन्द्र! मैं एक परमात्मामें विश्वास

एकारामो ह्यहं शक्र निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ १७ ॥ अहिंसा दम-
मास्थाय कथं नार्हामि विप्रताम् । दैवं तु कथयेतद्वै यदहं मातृदो-
षतः ॥ १८ ॥ एतामवस्थां संप्राप्तो धर्मज्ञः सन् पुरन्दर । नूनं
दैवं न शक्यं हि पौरुषेणातिवर्तितुम् ॥ १९ ॥ यदर्थं यत्नवानेव न
लभे विप्रतां विभो । एवं गते तु धर्मज्ञ दातुमर्हसि मे वरम् ॥ २० ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यः किंचिद्वा सुकृतं मम । वैशम्पायन उवाच । वृणी-
ष्वेति तदा प्राह ततस्तं बलवृत्रहा ॥ २१ ॥ चोदितस्तु महेन्द्रेण
मतंगः प्राब्रवीदिदम् । यथा कामविहारी स्यां कामरूपी विहं-
गमः ॥ २२ ॥ ब्रह्मक्षत्राविरोधेन पूजां च प्राप्नुयामहम् । यथा
ममाक्षया कीर्तिर्भवेच्चापि पुरन्दर ॥ २३ ॥ कर्तुमर्हसि तदेव
शिरसा त्वां प्रसादये । शक्र उवाच । छन्दो देव इति ख्यातः

करूँगा, मैं सुख तथा दुःखरहित हूँ और परिग्रहरहित हूँ १७
मैं अहिंसा दम आदि धर्मोंको पालकर भी ब्राह्मणत्व पानेके योग्य
क्यों नहीं हूँ ? यह कैसा प्रारब्ध है, कि-मैं माताके दोषके
कारण १८ धर्मज्ञ होनेपर भी हे पुरन्दर ! इस अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ
वास्तवमें पुरुषार्थसे दैवका उल्लँघन नहीं किया जासकता १९
इसीकारण हे प्रभो ! मैं यत्न करके भी ब्राह्मणत्वको न पा
सका ! अतः हे धर्मज्ञ ! मेरी समान स्थितिमें पड़े हुए पुरुषको
आपको वर देना उचित है २० यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र
होऊँ अथवा मेरा कुछ पुण्य हो तो मुझे वर दीजिये, वैशम्पा-
यनने कहा, कि-यह सुनकर बल और वृत्रका नाश करने वाले
इन्द्रने उससे कहा, कि वर माँग २१ महेन्द्रने वर माँगनेकी
प्रेरणा की, तब मतङ्ग बोला, कि-मैं इच्छानुसार विचरनेवाला
और इच्छानुसार रूप धारण करने वाला आकाशचारी हो
जाऊँ २२ हे पुरन्दर ! ब्राह्मण तथा क्षत्रिय विना विरोधके
मेरी पूजा करें और हे पुरन्दर ! मेरी कीर्ति अक्षय रहे २३ यह

स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि ॥ २४ ॥ कीर्तिश्च तेऽतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति । एवं तस्मै वरं दत्वा वासवोऽन्तरधीयत ॥ २५ ॥ प्राणांस्त्यक्त्वा मतंगोऽपि संप्राप्तः स्थानमुत्तमम् । एवमेतत् परं स्थानं ब्राह्मण्यं नाम भारत । तच्च दुष्प्रापमिह वै महेन्द्रवचनं यथा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे इन्द्रमतंगसम्वादे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं मे महदाख्यानमेतत्कुरुकुलोद्वह । सुदुष्प्रापं यद्ब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदतां वर ॥ १ ॥ विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत । श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥२॥ वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः । तदेव

वर आप मुझे दीजिये हे देव ! मैं आपको मस्तक नमाकर प्रसन्न करता हूँ, इन्द्रने कहा, कि-तू छन्द नामक देवता होगा स्त्रियें तेरी पूजा करेंगी २४ तथा हे वत्स ! तेरी कीर्ति भी तीनों लोकोंमें अतुल होगी इसप्रकार मतङ्गको वर देकर इन्द्र अन्तर्धान होगए २५ तदनन्तर मतङ्गने भी प्राणोंको त्याग कर उत्तम पद पाया अर्थात् देवता होगया, हे भरतवंशी राजन् ! इसप्रकार ब्राह्मणत्व देवत्वसे भी अतिश्रेष्ठ है और इस लोकमें तप करने पर भी उसका मिलना अति कठिन है. इस विषयमें इन्द्रका वचन प्रमाण है ॥ २६ ॥ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त २९

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे कुरुकुलोत्पन्न ! यह बड़ा भारी आख्यान मैंने सुना, हे उत्तम वक्ता ! आप कहते हैं, कि-ब्राह्मणत्व मिलना अतिदुर्लभ है ॥ १ ॥ परन्तु यह सुना जाता है, कि-विश्वामित्रने पहिले ब्राह्मणत्व पाया था. तब भी हे सत्तम ! आप कहते हैं, कि-वह दुष्प्राप्य है ॥ २ ॥ वीतहव्य नामक राजा भी ब्राह्मण होगया था, ऐसा मैंने सुना है अतः हे गङ्गापुत्र प्रभो

तावद्गांगेय श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ॥ ३ ॥ स केन कर्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तमः । वरेण तपसा वापि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥ भीष्म उवाच । शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः। राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम्॥५॥ मनोर्महात्मनस्तात प्रजा धर्मेण शासतः। बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः ॥ ६ ॥ तस्यान्ववाये द्वौ राजन् राजानौ संबभूवतुः । हैहयस्तालजंघश्च वत्सस्य जयतां वर ॥ ७ ॥ हैहयस्य तु राजेंद्र दशसु स्त्रीषु भारत । शतं बभूव पुत्राणां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥ तुल्यरूपप्रभावाणां बलिनां युद्धशालिनाम् । धनुर्वेदे च वेदे च सर्वत्रैव कृतश्रमाः ॥ ९ ॥ काशिष्वपि नृपो राजन् दिवोदासपितामहः । हर्यश्व इति विख्यातो बभूव जयतां

भीष्म ! यह बताइये, कि–वह उत्तम राजा क्या कर्म करके ब्राह्मण हुआ था ॥३॥ वह राजसत्तम कौनसे कर्मसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुआ था, उसने क्या वरदानके द्वारा अथवा तपसे ब्राह्मणत्व पाया था, यह मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ भीष्मजीने कि–हे राजन् ! महायशस्वी राजर्षि वीतहव्यने जिसप्रकार लोकोंमें पूजनीय दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया था उसको सुनो ॥ ५ ॥ हे तात ! महात्मा मनु धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करते थे, उनके शर्याति नामक प्रसिद्ध धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ हे महाविजयी राजन् ! शर्याति राजाके वंशमें वत्स नामक राजा हुआ उसके हैहय और तालजंघ नामक दो राजे पुत्र हुए ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजेन्द्र ! राजा हैहयके दश रानियें थी, उनके सौ पुत्र हुए थे, वे शूरवीर थे और रणमें पीछेको पैर नहीं रखते थे ॥ ८ ॥ सब पुत्र रूप और पराक्रममें समान थे, सब बलवान् थे, युद्धकुशल थे, उन्होंने धनुर्वेद और वेदमें बड़ा परिश्रम किया था ॥९॥ हे राजन् ! उस समय काशीमें भी दिवोदासका दादा

वरः ॥ १० ॥ स वीतहव्यदायादैरागत्य पुरुषर्षभ । गङ्गायमुन-
योर्मध्ये संग्रामे विनिपातितः ॥ ११ ॥ तं तु हत्वा नरपतिं हैहयास्ते
महारथाः । प्रतिजग्मुः पुरीं रम्यां वत्सानामकुतोभयाः ॥ १२ ॥
हर्यश्वस्य च दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत । सुदेवो देवसंकाशः
साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ १३ ॥ स पालयामास महीं धर्मात्मा
काशिनन्दनः । तैर्वीतहव्यैरागत्य युधि सर्वैर्विनिर्जितः ॥ १४ ॥
तमथाजौ विनिर्जित्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् । सौदेवस्त्वथ काशीशो
दिवोदासोऽभ्यषिच्यत ॥ १५ ॥ दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां
यतात्मनाम् । वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात् ॥१६॥
विप्रक्षत्रियसंबाधां वैश्यशूद्रसमाकुलाम् । नैकद्रव्योच्चयवतीं

राज्य करता था वह हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध था और महाविजयी था ॥ १० ॥ हे महाराज ! वीतहव्य उपनाम वाले हैहयके पुत्र काशीपुरी पर चढ़ आये, उन्होंने गङ्गा और यमुना नदीके बीचमें हर्यश्वके साथ युद्धकिया और उसमें हर्यश्वको मार डाला ।११। महारथी हैहय नरपति हर्यश्वको मार कर निर्भय हो वत्सवंशके राजाकी रमणीय नगरीमें लौट आये ।१२। तदनन्तर हर्यश्वका पुत्र सुदेव जो देवताकी समान तेजस्वी और दूसरा साक्षात् धर्म ही था उसका काशिराजके पद पर अभिषेक किया गया॥१३॥ काशिराजका वह धर्मात्मा पुत्र पृथ्वीका पालन करने लगा, तब वीतहव्यके पुत्र उस पर भी चढ़ आये और युद्धमें उस राजाका पराजयकिया ॥ १४ ॥ और जीतनेके वाद लौट गए, तदनन्तर सुदेवके पुत्र दिवोदासका काशिराजके पद पर अभिषेक किया गया ॥ १५ ॥ महातेजस्वी दिवोदासने मनको नियममें रखने वाले वीतहव्योंके पराक्रमको जान कर इन्द्रकी आज्ञानुसार वाराणसी नामकी नगरीको स्थापित किया ॥ १६ ॥ यह नगरी ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे भरपूर थी, वैश्य और शूद्रोंसे भी भरी

समृद्धविपणापणाम् ॥ १७ ॥ गङ्गाया उत्तरे कूले वर्माते राजसत्तम । गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम् ॥ १८ ॥ तत्र तं राजशार्दूलं निवसंतं महीपतिम् । आगत्य हैहया भूपः पर्यधावंत भारत ॥ १९ ॥ स निष्क्रम्य ददौ युद्धं तेभ्यो राजा महाबलः । देवासुरसमं घोरं दिवोदासो महाद्युतिः ॥ २० ॥ स तु युद्धे महाराज दिनानां दशतीर्दश । हतवाहनभूयिष्ठस्ततो दैन्यमुपागमत् ॥ २१ ॥ हतयोधस्ततो राजन् क्षीणकोशश्च भूमिपः । दिवोदासः पुरीं त्यक्त्वा पलायनपरोऽभवत् ॥२२॥ गत्वाश्रमपदं रम्यं भरद्वाजस्य धीमतः । जगाम शरणं राजा कृतांजलिररिंदम ॥ २३ ॥ तमुवाच भरद्वाजो ज्येष्ठः पुत्रो बृह-

हुई थी, अनेक प्रकारके पदार्थोंसे भरी हुई थी, उसके बाजारकी दूकाने भरी हुई रहती थीं ॥ १७ ॥ हे राजसत्तम ! यह नगरी गङ्गाजीके उत्तर तट पर और गोमतीके दक्षिण तट पर इन्द्रकी अमरावतीकी समान शोभा पारही थी १८हे भारत ! वह राजसिंह नरपति तहाँ रहता था परन्तु हैहय फिर तहाँ भी आपहुँचे ॥१९॥ तब महाकान्तिमान् और महाबली राजा दिवोदास वाराणसी नगरमेंसे बाहर निकलकर शत्रुओंसे लड़ने लगा उस समय देवासुर संग्रामकी समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ २० ॥ हे महाराज ! वह युद्ध एक सहस्र वर्ष तक चलता रहा, उसमें दिवोदासके बहुतसे वाहन मारे गए तब वह दुःखी होगया २१ हे राजन् ! उसके योधा मर गए, उसका भण्डार खाली होगया और अन्तमें दिवोदास काशीपुरीको त्यागकर भाग गया ॥ २२ ॥ और बुद्धिमान् भरद्वाजके रमणीय आश्रममें पहुँच गया और हे शत्रुञ्जय राजन् ! उस राजाने दोनों हाथ जोड़ कर भरद्वाजकी शरण ली२३तब बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र भरद्वाज जो उसके पुरोहित थे और सब प्रकार शीलसम्पन्न थे उन्होंने महीपति दिवोदाससे बूझा

स्पतेः । पुरोधाः शीलसंपन्नो दिवोदासं महीपतिम् ॥ २४ ॥
किमागमनकृत्यं ते सर्वं प्रब्रूहि मे नृप । यत्ते प्रियं तत्करिष्ये न
मेऽस्ति विचारणा ॥ २५ ॥ राजोवाच । भगवन् वैतहव्यैर्मे
युद्धे वंशः प्रणाशितः । अहमेकः परिद्यूनो भवंतं शरणं गतः २६
शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि । एकशेषः कृतो वंशो
मम तैः पापकर्मभिः ॥२७॥ तमुवाच महाभागो भरद्वाजः प्रता-
पवान् । न भेतव्यं न भेतव्यं सौदेव व्येतु ते भयम् ॥ २८ ॥
अहमिष्टिं करिष्यामि पुत्रार्थं ते विशां पते । वीतहव्यसहस्राणि
येन त्वं प्रहरिष्यसि ॥ २९ ॥ तत इष्टिं चकारर्षिस्तस्य वै पुत्र-
कामिकीम् । अथास्य तनयो जज्ञे प्रतर्दन इति श्रुतः ॥ ३० ॥ स
जातमात्रो ववृधे समाः सद्यस्त्रयोदश । वेदं चापि जगौ कृत्स्नं

कि-२४हे राजन् ! आप यहाँ किस कारणसे आये हैं, वह मुझे बताइये आपका जो प्रिय कार्य होगा वह मैं करूँगा,और मैं इसमें कुछ विचार नहीं करूँगा२५राजाने कहा, कि-हे भगवन् ! युद्धमें वीतहव्यके पुत्रोंने मेरे वंशका नाश कर डाला है अब मैं अकेला ही बच कर भागता हुआ आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! शिष्यस्नेहवश आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये, उन पापकर्म करने वालोंने मेरे वंशमेंसे एकमात्र मुझे ही जीवित छोड़ा है ॥२७॥ तब महाभाग्यशाली और प्रतापी भरद्वाजने उस राजासे कहा,कि-तू डरे मत हे सुदेवके पुत्र!तेरा भय दूर हो २८ हे राजन् ! मैं तेरे (पराक्रमी) पुत्र होनेके लिये इष्टि करूँगा, उस पुत्रकी सहायतासे तू वीतहव्यके सैंकड़ों पुत्रोंको मार सकेगा २९ तदनन्तर उन ऋषिने उस राजाके लिये पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया तब उस राजाके यहाँ प्रतर्दन नाम वाला प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वह जन्मते क्षण ही बढ़ने लगा और तेरह वर्षका होगया तथा सब वेद और संपूर्ण धनर्वेदको पढ़

धनुर्वेदं च भारत ॥ ३१ ॥ योगेन च समाविष्टो भरद्वाजेन धीमता। तेजो लोक्यं स संगृह्य तस्मिन् देशे समाविशत् ॥३२॥ ततः स कवची धन्वी स्तूयमानः सुरर्षिभिः। वंदिभिर्वंद्यमानश्च बभौ सूर्य इवोदितः ॥ ३३ ॥ सरथी बद्धनिस्त्रिंशो बभौ दीप्त इवानलः। प्रययौ स धनुर्धुन्वन् खड्गी चर्मी शरासनी ॥३४॥ तं दृष्ट्वा परमं हर्षं सुदेवतनयो ययौ। मेने च मनसा दग्धान् वैतहव्यान् स पार्थिवः ॥३५॥ ततोऽसौ यौवराज्ये च स्थापयित्वा प्रतर्दनम्। कृतकृत्यं तदात्मानं स राजा अभ्यनन्दत ॥ ३६ ॥ ततस्तु वैतहव्यानां वधाय स महीपतिः। पुत्रं प्रस्थापयामास प्रतर्दनमरिन्दमम् ॥ ३७ ॥ स रथः स तु संतीर्य गङ्गामाशु पराक्रमी। प्रययौ वीतहव्यानां पुरीं परपुरञ्जयः ॥ ३८ ॥ वैतहव्या-

---

गया ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान् भरद्वाजने योगके द्वारा सारे संसारके तेजको इकट्ठा करके उस कुमारके शरीरमें भर दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर राजा प्रतर्दनने शरीर पर कवच और धनुष धारण किया, देवर्षि उसकी स्तुति करने लगे, वन्दी उसको प्रणाम करने लगे तब वह उदय होते हुए सूर्यकी समान प्रकाशित होने लगा ॥ ३३ ॥ तलवार बांधे हुए वह रथी राजा प्रतर्दन प्रदीप्त अग्निकी समान प्रतीत होने लगा, वह ढाल तलवार और धनुष को ले धनुषको घुमाता हुआ चलता था ॥ ३४ ॥ उसको देख कर सुदेवके पुत्रको परमहर्ष हुआ और वह राजा अपने मनमें वीतहव्यके पुत्रोंको भस्म हुआ समझने लगा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर राजाने अपने पुत्र प्रतर्दनका युवराजके पद पर अभिषेक कर दिया और अपने आत्माको कृत कृत्य समझता हुआ आनन्दित हुआ ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस राजाने वीतहव्यके पुत्रोंका वध करनेके लिये अपने अरिंदमन पुत्र प्रतर्दनको भेजा ॥ ३७ ॥ शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाला पराक्रमी प्रतर्दन रथमें बैठ कर चला और फुर्तीसे

स्तु संश्रुत्य रथघोषं समुद्धतम् । निर्ययुर्नगराकारै रथैः पररथा-
रुजैः ॥ ३९ ॥ निष्क्रम्य ते नरव्याघ्रा दंशिताश्चित्रयोधिनः ।
प्रतर्दनं समाजग्मुः शरवर्षैरुदायुधाः ॥ ४० ॥ शस्त्रैश्च विविधा-
कारै रथौघैश्च युधिष्ठिर । अभ्यवर्षन्त राजानं हिमवन्तमिवां-
बुदाः ॥ ४१ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां राजा प्रतर्दनः ।
जघान तान् महातेजा वज्रानलसमैः शरैः ॥ ४२ ॥ कृत्तोत्तमां-
गास्ते राजन् भल्लैः शतसहस्रशः । अपतन् रुधिरार्द्राङ्गा निकृत्ता
इव किंशुकाः ४३ हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यसुतेष्वथ । प्राद्रवन्नगरं
हित्वा भृगोराश्रममच्युत ४४ ययौ भृगुं च शरणं वीतहव्यो नरा-

गङ्गाजीके पार होकर वीतहव्यके पुत्रोंकी राजधानी पर पहुँच गया ॥ ३८ ॥ वीतहव्यके पुत्र भी प्रतर्दनके रथकी महाध्वनिको सुनकर शत्रुके रथोंको तोड़नेवाले नगरकी समान लम्बे चौड़े रथोंमें बैठकर नगरमेंसे बाहर निकले ॥ ३९ ॥ वे सब योधा व्याघ्रकी समान बली थे, सबके शरीर पर कवच थे और वे अनेक प्रकारसे लड़ना जानते थे, वे प्रतर्दनके सामने चढ़ आये और शस्त्रोंको उठाकर उन पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४० ॥ हे युधिष्ठिर ! मेघ जैसे हिमाचल पर जल बरसाते हैं, तैसे ही वे राजे भी प्रतर्दन पर अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे और अनेक महारथियोंको साथमें ले उस पर चढ़ आये ॥ ४१ ॥ महातेजस्वी राजा प्रतर्दनने उनके सामने अस्त्र मारकर उनके अस्त्रोंको रोक दिया और उनके वज्र तथा अग्निकी समान तीक्ष्ण बाण मारे ॥ ४२ ॥ और हे राजन् ! भल्ल नामक बाण मार कर लाखों वैतहव्योंके मस्तकोंको काट डाला तब रुधिरमें लथड़ पथड़ हुए वैतहव्य कटे हुए टेसूके फूलोंकी समान पृथ्वी पर ढह गए ॥ ४३ ॥ राजा वीतहव्य अपने सकल पुत्रोंके मारे जाने पर नगरको छोड़ कर भृगुके आश्रमकोमें भाग गया ॥ ४४ ॥ तहाँ जाकर राजा वीत-

षिपः॥अभयं च ददौ तस्मै राज्ञे राजन् भृगुस्तदा४५अथानुपदमेवाशु तत्रागच्छत् प्रतर्दनः । स प्राप्य चाश्रमपदं दिवोदासात्मजोऽब्रवीत् ॥४६॥ भो भो केऽत्राश्रमे संति भृगोः शिष्या महात्मनः । द्रष्टुमिच्छे मुनिमहं तस्याचक्षत मामिति ॥ ४७ ॥ स तं विदित्वा तु भृगुर्निश्चक्रामाश्रमात्तदा । पूजयामास च ततो विधिना नृपसत्तमम् ॥ ४८ ॥ उवाच चैनं राजेन्द्र किं कार्यं ब्रूहि पार्थिव । स चोवाच नृपस्तस्मै यदागमनकारणम् ॥ ४९ ॥ राजोवाच । अयं ब्रह्मन्नितो राजा वीतहव्यो विसर्ज्यताम् । तस्य पुत्रैर्हि मे कृत्स्नो ब्रह्मन् वंशः प्रणाशितः ॥ ५० ॥ उत्सादितश्च विषयः काशीनां रत्नसंचयः । एतस्य वीर्यदृप्तस्य हतं पुत्रशतं मया५१ अस्येदानीं वधादद्य भविष्याम्यनृणः पितुः । तमुवाच कृपाविष्टो

हव्यने भृगुकी शरण ली हे राजन्!तब भृगुने भी उसको अभयदान दिया ।४५। इतनेमें ही उसके पीछे राजा प्रतर्दन शीघ्र ही आपहुँचा,तहाँ आश्रममें पहुँचकर दिवोदासके पुत्रने कहा,कि-४६ भो ! भो ! इस आश्रममें महात्मा भृगुके कौन कौन शिष्य हैं, मैं मुनिको देखना चाहता हूँ, उनसे मेरा समाचार कहिये ।४७। भृगु ऋषि भी प्रतर्दनको आया हुआ जानकर आश्रमके बाहर निकले और वेदविधिसे उस श्रेष्ठ राजाकी पूजाकी ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उस राजाने कहा, कि-हे राजेन्द्र ! हे पृथ्वीपते ! बताइये मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूँ ? तब उस राजाने भृगु मुनिसे अपने आनेका कारण कहा, ४९ राजाने कहा, कि-हे ब्राह्मण ! आप इस राजा वीतहव्यको यहाँसे निकाल दीजिये, क्योंकि-हे ब्रह्मन् ! इसके पुत्रोंने मेरे सारे वंशका नाश कर डाला है ५० और रत्नोंसे भरे हुए काशी देशको भी उजाड़ दिया है, पराक्रमसे गर्वमें भरे हुए इसके उन सौ पुत्रोंको मैंने मार डाला है ५१ आज इस राजाको भी मार कर अपने पिताके ऋणसे छूटूँगा तब

भृगुर्धर्मभृतां वरः ॥ ५२ ॥ नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित् सर्वे हीमे द्विजातयः । एतत्तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ॥ ५३ ॥ पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् । एवमप्यस्मि भगवन् कृतकृत्यो न संशयः ॥ ५४ ॥ य एप राजा वीर्येण स्वजातिं त्याजितो मया । अनुजानीहि मां ब्रह्मन् ध्यायस्व च शिवेन माम् ॥ ५५ ॥ त्याजितो हि मया जातिमेव राजा भृगूद्वह । ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः ॥५६॥ यथागतं महाराज मुक्त्वा विषमिवोरगः। भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः॥५७ वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च । तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ॥५८॥ शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किल-

धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ भृगुने दया आनेके कारण प्रतर्दनसे कहा, कि-५२यहाँ कोई भी क्षत्रिय नहीं है, ये सब ब्राह्मण जातिके हैं, प्रतर्दन भृगु ऋषिके इस तथ्य वचनको सुनकर ॥ ५३ ॥ अतिप्रसन्न हुआ और धीरेसे उनके दोनों चरणोंको छूकर कहने लगा, कि- "हे भगवन् ! इस प्रकारका कार्य करनेसे मैं कृतकृत्य होगया ५४ क्योंकि-मैंने अपने पराक्रमसे इस राजासे इसकी जाति छुड़ादी हे ब्रह्मन् ! अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये और मेरी कल्याणकामना कहिये ॥ ५५ ॥ हे भृगुपुत्र ! मैंने इस राजाको जातिसे भ्रष्ट कर दिया है,, तब भृगु ऋषिके आज्ञा देने पर राजा प्रतर्दन जैसे सर्प विषको त्याग कर चला जाय, इस प्रकार जैसे आया था, तैसे चला गया और भृगुके वचनमात्रसे ही वह राजा ब्रह्मर्षित्वको प्राप्त होगया ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे महाराज ! राजा वीतहव्य ब्रह्मवादीपनको प्राप्त होगया, तदनन्तर उसके गृत्समद नामक पुत्र हुआ वह रूपमें दूसरा इन्द्र ही था ॥ ५८ ॥ उसको इन्द्र समझ कर दैत्योंने पकड़ लिया था, उस महात्माकी ऋग्वेदमें एक प्रधान श्रुति है (कि-"तदुगात्सर्मदमेतेन वै गृत्समद इन्द्रस्य

भवत् । ऋग्वेदे वर्तते चाऽग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः ॥ ५६ ॥ यत्र गृत्समदो राजन् ब्राह्मणैः स महीयते । स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत् ॥ ६० ॥ पुत्रो गृत्समदस्यापि सुचेता अभवद्‌द्विजः । वर्चाः सुतेजसः पुत्रो विहव्यस्तस्य चात्मजः ६१ विहव्यस्य तु पुत्रस्तु वितत्यस्तस्य चात्मजः । वितत्यस्य सुतः सत्यः सन्तः सत्यस्य चात्मजः ॥ ६२ ॥ श्रवास्तस्य सुतश्चर्षिः श्रवंसश्चाभवत्तमः । तमसश्च प्रकाशोऽभूत्तनयो द्विजसत्तमः । प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतां वरः ॥ ६३ ॥ तस्यात्मजश्च प्रमितिर्वेदवेदाङ्गपारगः। घृताच्यां तस्य पुत्रस्तु रुरुर्नामोदपद्यत६४ प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत । शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः ॥६५॥ एवं विप्रत्वमगमद्वीतहव्यो नराधिपं धामोपागच्छत्—गृत्समद अपने कहे हुए कर्मको करके इन्द्रके प्रिय लोक स्वर्गमें गया था) ॥५६॥ हे राजन् ! ऋग्वेदके ब्राह्मणभागके मंत्रोंमें गृत्समदकी स्तुति कीगई है,श्रीमान् गृत्समद ब्रह्मचारी और विप्रर्षि थे ॥६०॥ गृत्समदके भी सुचेता नामक पुत्र था, वह द्विज था सुचेताके वर्चस् नामक पुत्र था, उसके विहव्य नामक पुत्र था॥६१॥विहव्यके वितत्य नामक पुत्र था, वितत्यके सत्य नामक पुत्र हुआ, सत्यके सन्त नामक पुत्र हुआ ॥६२॥ उसके ऋषि श्रवा नामक पुत्र हुआ,श्रवाके तम नामक पुत्र हुआ, तमके प्रकाश नामक पुत्र हुआ, वह श्रेष्ठ ब्राह्मण था, प्रकाशके वागिन्द्र नामक जीतने वालोंमें श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ उसके प्रमिति नामक पुत्र हुआ, वह वेदवेदांगोंमें पारङ्गत था, प्रमितिके घृताची नामक स्त्रीमें रुरु नामक पुत्र हुआ, रुरुके प्रमद्वरामें शुनक नामक ब्रह्मर्षि पुत्र हुआ था, शुनकके शौनक नामक पुत्र हुआ था ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे राजेन्द्र ! हे क्षत्रियोत्तम ! राजा वीतहव्य क्षत्रिय था वह भृगु ऋषिके प्रसादसे ब्राह्मण हुआ

धिपः । भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभः ॥६६॥ तथैव कथितो वंशो मया गार्त्समदस्तव । विस्तरेण महाराज किमन्यदनुपृच्छसि ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे वीतहव्योपाख्यानं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच । के पूज्या वै त्रिलोकेऽस्मिन् मानवा भरतर्षभ । विस्तरेण तदाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यतः ॥१॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । नारदस्य च संवादं वासुदेवस्य चोभयोः ॥ २ ॥ नारदं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा पूजयानं द्विजर्षभान् । केशवः परिपप्रच्छ भगवन् क नमस्यसि ॥ ३ ॥ बहुमानपरस्तेषु भगवन् यान्नमस्यसि । शक्यं चेच्छ्रोतुमस्माभिर्ब्रूह्येतद्धर्मवित्तम ॥ ४ ॥ नारद उवाच । शृणु गोविन्द यानेतान् पूज-

था ॥६६॥ हे महाराज ! इस प्रकार मैंने तुमसे गृत्समदके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन किया अब तुम क्या बूझना चाहते हो ? ६७ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे पितामह ! इस त्रिलोकीमें कैसे पुरुष पूज्य होते हैं ? यह आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये, आपके कथनको सुनते २ मैं अघाता नहीं हूँ ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-इस विषयमें भी नारद और वासुदेवका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास इस प्रकार है ॥ २ ॥ एक समय नारदजी दोनों हाथ जोड़ कर उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा कर रहे थे, यह देखकर केशवने प्रश्न किया, कि हे भगवन् ! आप किसको नमस्कार कर रहे हैं ॥ ३ ॥ आप जिनका अतिसत्कार पूर्वक पूजन कर रहे हैं उनको सुननेका यदि मैं पात्र होऊँ तो हे धर्म जाननेवालों में श्रेष्ठ ! आप मुझे बताइये ४ नारदजीने कहा, कि–हे अरिमर्दन ! मैं जिनकी पूजा करता हूँ, उनको आप सुनिये, इस जगत्में आपके

यास्यरिमर्दन । त्वत्तोऽन्यः कः पुमाँल्लोके श्रतुमेतदिहार्हति ।५।
वरुणं वायुमादित्यं पर्जन्यं जातवेदसम् । स्थाणुं स्कन्दं तथा
लक्ष्मीं विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥ ६ ॥ वाचस्पतिं चन्द्रमसमपः
पृथ्वीं सरस्वतीम् । सततं ये नमस्यन्ति तान्नमस्याम्यहं विभो ७
तपोधनान् वेदविदो नित्यं वेदपरायणान् । महार्हान् वृष्णिशार्दूल
सदा संपूजयाम्यहम् ॥८॥ अभुक्त्वा देवकार्याणि कुर्वते येऽविक-
त्थनाः । संतुष्टाश्च क्षमायुक्तास्तान्नमस्याम्यहं विभो ॥ ९ ॥
सम्यग्यजन्ति ये चेष्टीः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः । सत्यं धर्मं
क्षितिं गाश्च तान्नमस्यामि यादव ॥ १० ॥ ये वै तपसि वर्तन्ते
वने मूलफलाशनाः। असंचयाः क्रियावन्तस्तान्नमस्यामि यादव ११

अतिरिक्त कौन पुरुष इस बातको सुननेका पात्र होसकता है ? ५
हे क्षारक केशव ! जो पुरुष सदा वरुण, वायु, आदित्य, पर्जन्य,
अग्नि, रुद्र, स्वामी कार्तिकेय, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति,
चन्द्र, जल, पृथ्वी और सरस्वतीको प्रणाम करते हैं उनको मैं
सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ७ ॥ और हे वृष्णिसिंह ! मैं तपोधनों
को, वेदवेत्ताओंको, वेदमें परायण रहने वालोंको और अति
पूजनीय पुरुषोंको सदा पूजता हूँ ॥८॥ जो पुरुष भोजन करनेके
पूर्व देवकार्य करते हैं, अपनी प्रशंसा नहीं करते हैं, जो मिल
जाय उस पर सन्तोष रखते हैं तथा जो क्षमाशील होते हैं,हे विभो!
उनको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ हे यादव ! जो भली
प्रकार इष्टि करते हैं, क्षमावान् होते हैं, मनको नियममें रखते हैं,
जितेन्द्रिय होते हैं और सत्य, धर्म, पृथिवी और गौको पूजते हैं
उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥ हे यादव ! जो वनमें मूल
और फलका आहार करते हुए तप करते हैं, किसी प्रकारका
संग्रह नहीं करते हैं धार्मिक कार्य किया करते हैं, उनको मैं प्रणाम
करता हूँ ॥ ११ ॥ हे यादव ! जो पोष्य वर्गका पोषण करनेमें

ये भृत्यभरणे शक्ताः सततं चातिथिव्रताः । भुञ्जते देवशेषाणि तान्नमस्यामि यादव ॥ १२ ॥ ये वेदं प्राप्य दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मचारिणः । याजनाध्यापने युक्ता नित्यं तान् पूजयाम्यहम् १३ प्रसन्नहृदयाश्चैव सर्वसत्त्वेषु नित्यशः । आपृष्ठतापात्स्वाध्याये युक्तास्तान् पूजयाम्यहम् ॥ १४ ॥ गुरुप्रसादे स्वाध्याये यतन्तो ये स्थिरव्रताः । शुश्रूषवोऽनसूयन्तस्तान्नमस्यामि यादव ॥१५॥ सुव्रता मुनयो ये च ब्राह्मणाः सत्यसङ्गराः । वोढारो हव्यकव्यानां तान्नमस्यामि यादव ॥ १६ ॥ भैक्ष्यचर्यासु निरताः कृशा गुरुकुलाश्रयाः । निःसुखा निर्धना ये तु तान्नमस्यामि यादव ॥१७॥ निर्ममा निष्प्रतिद्वन्द्वा निर्ह्रीका निष्प्रयोजनाः । ये वेदं प्राप्य

समर्थ हैं, जो सदा अतिथियोंका सत्कार करते हैं और जो देवताओंको भाग लगानेके पीछे उनके प्रसादका भोजन करते हैं उनको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥१२॥ हे यादव ! जो वेदका अध्ययन कर दुर्धर्ष होजाते हैं, धर्मकी बातें करनेमें वाचाल होजाते हैं, ब्रह्मचर्य पालते हैं, यज्ञ और अध्ययन कराते हैं उनकी मैं सदा पूजा करता हूँ ॥ १३ ॥ जो सदा मनसे सब प्राणियों पर प्रसन्न रहते हैं और मध्यान्हकाल तक वेदका स्वाध्याय करते हैं उनकी मैं सदा पूजा करता हूँ ॥१४॥ हे यादव ! जो पुरुष गुरुको प्रसन्न करनेमें और स्वाध्याय करनेमें सदा संलग्न रहते हैं, व्रतमें स्थिर रहते हैं, गुरुओंकी सेवा करना चाहते हैं तथा किसीसे ईर्षा नहीं करते हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १५ ॥ हव्य कव्यको ग्रहण करनेवाले सदाचारी मुनि और सत्यभाषी ब्राह्मणोंको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ हे यादव ! जो ब्राह्मण भिक्षा माँग कर आजीविका चलाते हैं, कृशवृत्तिवाले हैं, जो गुरुकुलमें रहते हैं, सुख और धनरहित हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ जो ममतारहित, सुखदुःखरहित और दिगम्बर रहते हैं, किसी

दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥ अहिंसानिरता ये च ये च सत्यव्रता नराः । दान्ताः शमपराश्चैव तान्नमस्यामि केशव १९ देवतातिथिपूजायां युक्ता ये गृहमेधिनः । कपोतवृत्तयो नित्यं तान्नमस्यामि यादव ॥ २० ॥ येषां त्रिवर्गः कृत्येषु वर्तते नोपहीयते । शिष्टाचारप्रवृत्ताश्च तान्नमस्याम्यहं सदा ॥ २१ ॥ ब्राह्मणाः श्रुतसम्पन्ना ये त्रिवर्गमनुष्ठिताः । अलोलुपाः पुण्यशीलास्तान्नमस्यामि केशव ॥२२॥ अब्भक्षा वायुभक्षाश्च सुधाभक्षाश्च ये सदा । व्रतैश्च विविधैर्युक्तास्तान्नमस्यामि माधव २३ अयोनीनग्नियोनींश्च ब्रह्मयोनींस्तथैव च । सर्वभूतात्मयोनींश्च तान्न-

---

प्रकारका प्रयोजन नहीं रखते हैं, वेद पढ़ कर दुराधर्ष होगए हैं, धर्मशास्त्रके प्रवचनमें वाचाल हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१८॥ जो अहिंसाधर्ममें परायण रहते हैं, सत्यभाषण करते हैं, मनको नियममें रखते हैं और शमपरायण रहते हैं, हे केशव ! उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१९॥ जो गृहस्थ, देवता और अतिथियोंकी पूजामें तत्पर रहते हैं, कपोतवृत्तिसे जीवन बिताते हैं, उनको हे यादव ! मैं सदा प्रणाम करता हूँ॥२०॥जो पुरुष करने योग्य कर्मोंमें धर्म अर्थ और काम इस त्रिवर्गमें परायण रहते है, विपरीत वर्ताव नहीं करते हैं, शिष्टोंके आचरणके अनुसार वर्ताव करते हैं, उनको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥२१॥ और हे केशव ! जो ब्राह्मण वेदशास्त्रसंपन्न हों, जो धर्म, अर्थ और काम इन तीन वस्तुओंका अविरुद्धरीतिसे सेवन करते हों और जो लोभरहित तथा पुण्यशील होते हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२२॥ हे माधव ! जल पीने वाले, वायुका आहार करने वाले तथा सदा वैश्वदेवके अनन्तर बाकी बचे हुए अन्नका आहार करने वाले और अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन करने वालोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ जो अयोनि अर्थात् स्त्रीरहित हैं,

मस्याम्यहं सदा २४ नित्यमेतान्नमस्यामि कृष्ण लोककरानृषीन् । लोकज्येष्ठान् कुलज्येष्ठांस्तमोघ्नान् लोकभास्करान् ॥२५॥ तस्मात्त्वमपि वार्ष्णेय द्विजान् पूजय नित्यदा । पूजिताः पूजनार्हा हि सुखं दास्यन्ति तेऽनघ ॥ २६ ॥ अस्मिँल्लोके सदा ह्येते परत्र च सुखप्रदाः । चरन्ते मान्यमाना वै प्रदास्यन्ति सुखं तव ॥२७॥ ये सर्वातिथयो नित्यं गोषु च ब्राह्मणेषु च । नित्यं सत्ये चाभिरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २८ ॥ नित्यं शमपरा ये च तथा ये चानसूयकाः। नित्यस्वाध्यायिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥२९॥ सर्वान् देवान्नमस्यन्ति ये चैकं वेदमाश्रिताः । श्रद्दधानाश्च दांताश्च दुर्गाण्यतितरंति ते ॥३०॥ तथैव विप्रप्रवरान्नमस्कृत्य यतव्रताः ।

जिन्होंने विवाह करके अग्निहोत्र लेलिया है तथा वेद जिनका आधार है और जो सब प्राणियोंकी मूल अर्थात् योनिरूप हैं उनको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! इस लोकमें श्रेष्ठ, कुलमें ज्येष्ठ, अज्ञाननाशक, लोकोंमें सूर्यकी समान और जगत्का कल्याण करने वाले ऋषियोंको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥२५॥ अतः हे वृष्णिकुलोत्पन्न निर्दोष श्रीकृष्ण ! आप भी सदा ब्राह्मणोंकी पूजा करिये, क्योंकि -पूजनीय ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे वे सुख देंगे ॥२६॥ ब्राह्मण इस लोकमें तथा परलोकमें सदा कल्याण करते हैं, मान्य पुरुषोंसे मान पाकर वे सदा जगत्में विहार करते हैं, उनका मान करनेसे वे तुम्हें सुख देंगे ॥ २७ ॥ जो सदा सबका अतिथिसत्कार करते हैं जो गौ, ब्राह्मण तथा सत्य पर प्रीति रखते हैं वे दुःखोंको तर जाते हैं २८ जो सदा शमपरायण रहते हैं, किसीसे ईर्षा नहीं करते हैं सदा वेदका स्वाध्याय करते हैं वे दुःखोंके पार होजाते हैं॥२९॥ सब देवताओंको नमस्कार करने वाले, एक मात्र वेदका आश्रय लेने वाले, श्रद्धालु और दानी पुरुष दुःखोंके पार होजाते हैं ॥३०॥

भवन्ति ये दानरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३१ ॥ तपस्विनश्च ये नित्यं कौमारब्रह्मचारिणः । तपसा भावितात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३२ ॥ देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां चार्चने रताः । शिष्टान्नभोजिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥३३॥ अग्निमाधाय विधिवत् प्रणता धारयन्ति ये । प्राप्ताः सोमाहुतिं चैव दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३४ ॥ मातापित्रोर्गुरुषु च सम्यग्वर्तन्ति ते सदा। यथा त्वं वृष्णिशार्दूलेत्युक्त्वैवं विरराम सः ॥ ३५ ॥ तस्मात्त्वमपि कौन्तेय पितृदेवद्विजातिथीन् । सम्यक् पूजयसे नित्यं गतिमिष्टामवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कृष्णनारदसंवादे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

ऐसेही जो पुरुष उदार ब्राह्मणोंको नमस्कार करते हैं, नियमपूर्वक व्रत पालन करते हैं तथा जो दान पर प्रीति रखते हैं वे दुःखोंको तर जाते हैं॥३१॥जो सदा तप करते हैं, कुमारावस्थासे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हैं तथा तप पर श्रद्धा रखते हैं वे दुःखोंके पार होजाते हैं ॥३२॥ जो देवता,अतिथि पोष्यवर्ग तथा पितरोंके पूजन पर प्रेम रखते हैं और जो वैश्वदेव तथा अतिथिसत्कारसे बचे अन्नका भोजन करते हैं वे दुःखोंके पार होजाते हैं ॥३३॥ जो अग्निको प्रकट कर विधिपूर्वक नमस्कार करतेहुए उसको प्रज्वलित रखते हैं और जो सोमयज्ञमें विधिपूर्वक होम करते हैं वे दुःखोंके पार होजाते हैं ॥ ३४ ॥ तथा हे वृष्णिसिंह कृष्ण ! तथा जो सदा तुम्हारी समान माता पिता और गुरुके साथ विनयपूर्वक वर्ताव करते हैं वे भी दुःखोंके पार हो जाते हैं, इतना कह कर नारद चुप होगए ॥ ३५ ॥ अतः हे कुन्तीपुत्र ! तू भी यदि पितरोंकी देवताओंकी ब्राह्मणोंकी और अतिथियोंकी यथार्थ रीतसे नित्य पूजा करेगा तो तुझे अभीप्सित गति मिलेगी ॥३६॥

युधिष्ठिर उवाच । पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि धर्मं भरतसत्तम ॥ १ ॥ शरणागतं ये रक्षन्ति भूतग्रामं चतुर्विधम् । किं तस्य भरतश्रेष्ठ फलं भवति तत्त्वतः ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । इदं शृणु महाप्राज्ञ धर्मपुत्र महायशः । इतिहासं पुरावृत्तं शरणार्थं महाफलम् ॥३॥ प्रपात्यमानः श्येनेन कपोतः प्रियदर्शनः । वृषदर्भं महाभागं नरेन्द्रं शरणं गतः ॥ ४ ॥ स तं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्रासादंकमुपागतम् । आश्वास्याश्वसिहीत्याह न तेऽस्ति भयमण्डज ॥५॥ भयं ते सुमहत् कस्मात् कुत्र किं वा कृतं त्वया । येन त्वमिह संप्राप्तो विसंज्ञो भ्रान्तचेतनः । ६ ॥ नवनीलोत्पलापीड चारुवर्ण सुदर्शन । दाडिमाशोकपुष्पाक्ष मा त्रसस्वाभयं तव ॥ ७ ॥ मत्सकाशमनुप्राप्तं न

युधिष्ठिरने बूझा, हे महाबुद्धिमान् पितामह ! हे सर्वशास्त्रकुशल ! हे भरतवंशमें श्रेष्ठ पुरुष ! आपसे मैं धर्मकी बात सुनना चाहता हूँ १ स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज और जरायुज इन चार प्रकारके प्राणियोंके शरणमें आने पर जो उनकी रक्षा करते हैं उनको क्या फल मिलता है, यह मुझसे कहिये २ भीष्मजीने कहा; कि–हे महाबुद्धिमान् महायशस्वी धर्मपुत्र ! जिसमें शरणागतका वर्णन है ऐसे महाफलप्रद प्राचीन कालके इस इतिहासको तू सुन ३ एक सुन्दर कपोतको एक बाजने आकाशमेंसे नीचे गिरा दिया, तब वह वृषदर्भ नामक एक महाभाग्यवान् राजाकी शरणमें गया ४ उस विशुद्धात्माने उसको भयभीत होकर अपनी गोदीमें बैठा देखकर उसको धीरज देते हुए कहा, कि–" हे पक्षिन् ! तू धैर्य धर डरे मत ५ तुझे किसका डर लग रहा है, क्यों लग रहा है, तूने क्या किया है ? कि जिससे तू बेभानसा होकर यहाँ आया है ६ हे चारुदर्शन ! हे नीलकमलकी समान वर्णवाले ! हे दाडिम और अशोकके पुष्पकी समान नेत्रोंवाले ! तू डर मत, मैं तुझे

स्वां कश्चित्समुत्सहेत् । मनसा ग्रहणं कर्तुं रक्षाध्यक्षपुरस्कृतम् ८
काशिराज्यं तदद्यैव त्वदर्थं जीवितं तथा । त्यजेयं भवविस्रब्धः
कपोत न भयं तव ॥ ६ ॥ श्येन उवाच । ममैतद्विहितं भक्ष्यं न
राजंस्त्रातुमर्हसि । अतिक्रांतं च प्राप्तं च प्रयत्नाच्चोपपादितम् १०
मांसं च रुधिरं चास्य मज्जा मेदश्च मे हितम् । परितोषकरा ह्येष
न ममास्याग्रतो भव ॥ ११ ॥ तृष्णा मे बाधतेऽत्युग्रा क्षुधा
निर्दहतीव माम् । मुञ्चैनं न हि शक्ष्यामि राजन् मन्दयितुं
क्षुधाम् ॥ १२ ॥ मया ह्यनुसृतो ह्येष मत्पक्षनखविक्षतः । किञ्चि-
दुच्छ्वासनिःश्वासं न राजन् गोप्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ यदि स्ववि-
षये राजन् प्रभुस्त्वं रक्षणे नृणाम् । खेचरस्य तृषार्तस्य न त्वं

अभय देता हूँ ॥७॥ मुझ रक्षाध्यक्षके पास आने पर कोई तुझे मनसे भी पकड़नेका साहस नहीं कर सकता८हे कपोत ! मैं तेरे लिये काशीके राज्यको और अपने प्राणोंको भी त्याग सकता हूँ तू विश्वास रख अब तुझे कुछ भय नहीं है६बाजने कहा, कि-हे राजन्! यह कबूतर मेरा भक्ष्य माना जाता है, इसके प्राण भी थोड़े ही समयके अतिथि हैं और मैंने इसको प्रयत्न करके पाया है अतः आपको इसकी रक्षा न करनी चाहिये १० इसका मांस, रुधिर मज्जा और मेद मेरा हित करने वाला है और मुझे पूर्णरीतिसे संतुष्ट रखने वाला है, उसमें आप विघ्न न डालिये ११ मुझे तृष्णा पीड़ा देरही है और उग्र क्षुधा मुझे जलासा रही है, आप इसको छोड़ दीजिये क्यों कि-क्षुधाको दबानेकी मुझमें शक्ति नहीं है १२ मैं इसके पीछे २ उड़ता हुआ यहाँ आया हूँ और यह कबूतर मेरे नाखून और परोंसे घायल होगया है और हे राजन् ! इसमें थोड़ेसे ही श्वास उच्छ्वास बाकी हैं अतः आपको इसकी रक्षा न करनी चाहिये ॥ १३ ॥ राजन् ! आप
रहने वाले मनुष्योंकी ही

प्रभुरथोत्तम ॥ १४ ॥ यदि वैरिषु भृत्येषु स्वजनव्यवहारयोः ।
विषयेष्विंद्रियाणां च आकाशे मा पराक्रम ॥ १५ ॥ प्रभुत्वं हि
पराक्रम्य सम्यक् पक्षहरेषु ते । यदि त्वमिह धर्मार्थी मामपि द्रष्टु-
मर्हसि ॥ १६ ॥ भीष्म उवाच । श्रुत्वा श्येनस्य तद्वाक्यं राजर्षि-
र्विस्मयं गतः । संभाव्य चैनं तद्वाक्यं तदर्थी प्रत्यभाषत ॥१७॥
राजोवाच । गोवृषो वा वराहो वा मृगो वा महिषोऽपि वा । त्व-
दर्थमद्य क्रियतां क्षुधा प्रशमनाय ते ॥१८॥ शरणागतं न त्यजेय-
मिति मे व्रतमाहितम् । न मुञ्चति ममांगानि द्विजोऽयं पश्य वै
द्विज ॥ १९ ॥ श्येन उवाच । न वराहं न चोक्षाणं न चान्यान्वि-

हे नृपश्रेष्ठ ! आकाशचारी तृषातुरको रोकनेका आपको अधि-
कार नहीं है ॥ १४ ॥ यदि आपको पराक्रम करना हो तो
वैरियों पर, अपने भृत्यों पर और व्यवहार करने वालों पर
और इन्द्रियोंके विषयों पर पराक्रम दिखाइये परन्तु आकाश-
चारियोंपर पराक्रम न दिखाइये॥१५॥ तुम्हें अपनी आज्ञाको न
मानने वाले शत्रुओंके ऊपर पराक्रम करके उनके ऊपर प्रभुत्व
करना चाहिये, और यदि तू इस कपोतकी रक्षा करके धर्म पाना
चाहता हो तो तुझे मेरी ओर भी देखना चाहिये॥१६॥ भीष्मजीने
कहा, कि-वह राजर्षि उस बाजके वचनको सुन कर आश्चर्यमें
होगया और उसकी तथा उसके वचनकी प्रशंसा कर कपोतकी
रक्षा करनेके लिये उसको प्रत्युत्तर देने लगा, ॥ १७ ॥ राजाने
कहा, कि-मैं तेरी क्षुधाको शान्त रखनेके लिये तू कहे तो तुझे
आज बैल दूँ, वराह दूँ, मृग दूँ अथवा भैंसा देदूँ (जो तू कहे
सो देदूँ) ॥ १८ ॥ परन्तु शरणागतको न त्यागनेका मैंने व्रत
लेलिया है, हे बाज ! देख यह पक्षी मेरे अंगोंको नहीं छोड़ता
अर्थात् मेरे शरीरसे चिपटा ही जाता है ॥ १९ ॥ बाजने कहा,
कि-हे महाराज!मैं वराह बैल और दूसरे नाना प्रकारके पक्षियोंको

विधान् द्विजान् । भक्षयामि महाराज किमन्नाद्येन तेन मे ॥२०॥ यस्तु मे विहितो भक्ष्यः स्वयं देवैः सनातनः । श्येनाः कपोतान् खादन्ति स्थितिरेषा सनातनी ॥ २१ ॥ उशीनर कपोते तु यदि स्नेहस्तवानघ । ततस्त्वं मे प्रयच्छाद्य स्वमांसं तुलया धृतम् २२ राजोवाच । महाननुग्रहो मेऽद्य यस्त्वमेवमिहात्थ माम् । बाढमेवं करिष्यामीत्युक्त्वासौ राजसत्तमः ॥२३॥ उत्कृत्योत्कृत्य मांसानि तुलया समतोलयत् । अन्तःपुरे ततस्तस्य स्त्रियो रत्नविभूषिताः ॥ २४ ॥ हाहाभूता विनिष्क्रांताः श्रुत्वा परमदुःखिताः । तासां रुदितशब्देन मन्त्रिभृत्यजनस्य च ॥ २५ ॥ बभूव सुमहान्नादो मेघगंभीरनिःस्वनः । निरुद्धं गगनं सर्वं व्यभ्रं मेघैः समंततः ॥ २६ ॥ मही प्रचलिता चासीत्तस्य सत्येन कर्मणा ।

नहीं खाना चाहता हे महाराज ! इन तथा दूसरे प्राणियोंसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥२०॥ देवताओंने प्राचीन कालसे कपोतको मेरे भोजनके रूपमें बना रक्खा है और बाज कपोतोंको खाते हैं यह सनातन-कालकी मर्यादा है ॥ २१ ॥ तो भी हे निर्दोष उशीनर ! यदि तुझे कपोत पर स्नेह हो तो तू अपने मांसको कबूतरकी बराबर तोल कर मुझे अभी देदे ॥ २२ ॥ राजाने कहा, कि-"तूने मुझसे इस प्रकार कह कर मेरे ऊपर परम अनुग्रह किया है, बहुत अच्छा, ! मैं ऐसा ही करूँगा" इस प्रकार कह कर वह महाराज अपने शरीरमेंसे माँसके टुकड़े काट २ कर तराजूमें रख कर तोलने लगा, यह बात सुन कर रत्नजटित आभूषणोंसे सजी हुई अन्तःपुरमें रहनेवाली उसकी रानियें अतिखिन्न हुई और हाहाकार करती हुई बाहर निकल आई उन रानियोंके, मंत्रियोंके तथा सेवकोंके रोनेका शब्द मेघध्वनिकी समान गम्भीर होगया और बादलोंरहित आकाश भी बादलोंसे घिर गया ॥ २३-२६ ॥ उस राजाके सत्यकर्मसे

स राजा पार्श्वतश्चैव बाहुभ्यामूरुतश्च यत् ॥ २७ ॥ तानि मांसानि संच्छिद्य-तुलां पूरयतेच्छनैः । तथापि न समस्तेन कपोतेन बभूव ह ॥ २८ ॥ अस्थिभूतो यदा राजा निर्मांसो रुधिरस्रवः । तुलां ततः समारूढः स्वं मांसक्षयमुत्सृजन् ॥ २९ ॥ ततः सेन्द्रास्त्रयो लोकास्तं नरेन्द्रमुपस्थिताः । भेर्यश्चाकाशगैस्तत्र वादिता देवदुन्दुभिः ॥ ३० ॥ अमृतेनावसिक्तश्च वृषदर्भो नरेश्वरः । दिव्यैश्च सुसुखैर्माल्यैरभिवृष्टः पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ देवगन्धर्वसंघातैरप्सरोभिश्च सर्वतः । नृत्तश्चैवोपगीतश्च पितामह इव प्रभुः ॥ ३२ ॥ हेमप्रासादसंबाधं मणिकांचनतोरणम् । स वैदूर्यमणिस्तंभं विमानं समधिष्ठितः ॥ ३३ ॥ स राजर्षिर्गतः स्वर्गं कर्मणा तेन शाश्वतम् । शरणागतेषु चैवं त्वं कुरु सर्वं

पृथ्वी काँप उठी, वह राजा अपनी दोनों पुसुलियोंमेंसे, दोनों भुजाओंमेंसे और दोनों जाँघोंमेंसे माँसको काट २ कर तराजूमें रखनेलगा, परन्तु तब भी वह माँस कबूतरकी बराबर न हुआ२८ इस प्रकार करते २ राजाके शरीरका मांस निबट गया उसकी अस्थियें ही बाकी रह गई और शरीरमेंसे रक्त निकलने लगा, तब राजा अपने शरीरका क्षय करना छोड़ कर स्वयं ही तराजू पर चढ़ बैठा ॥ २९ ॥ यह देख कर इन्द्रसहित तीनों लोक उस नरेन्द्रकी सेवामें उपस्थित होगए और आकाशचारी देवताओंने भेरी और दुन्दुभि बजाई ॥ ३० ॥ राजा वृषदर्भ पर देवताओंने अमृत की वर्षाकी, फिर उस पर अतिसुखदायक दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि की ॥ ३१ ॥ देवता, गंधर्व और अप्सराओंके टोलोंने उसके सामने गायन करके पितामहकी समान उसको सन्तुष्ट किया ३२ सुवर्णके प्रासादोंसे भरपूर, मणि और सुवर्णके तोरणोंसे शोभायमान वैदूर्यमणिजटित विमानमें बैठ कर वह राजर्षि भी उस कर्मके प्रभावसे शाश्वत स्वर्गमें गया हे राजा युधिष्ठिर ! इस प्रकार तुम्हें

युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ भक्तानामानुरक्तानामाश्रितानां च रक्षिता । दयावान् सर्वभूतेषु परत्र सुखमेधते ॥ ३५ ॥ साधुवृत्तो हि यो राजा सद्वृत्तमनुतिष्ठति । किं न प्राप्तं भवेत्तेन स्वव्याजेनेह कर्मणा ॥ ३६ ॥ स राजर्षिर्विशुद्धात्मा धीरः सत्यपराक्रमः । काशीनामीश्वरः ख्यातस्त्रिषु लोकेषु कर्मणा ॥ ३७ ॥ योऽप्यन्यः कारयेदेवं शरणागतरक्षणम् । सोऽपि गच्छेत तामेव गतिं भरतसत्तम ॥ ३८ ॥ इदं वृत्तं हि राजर्षेर्वृषदर्भस्य कीर्त्तयन् । पूतात्मा वै भवेल्लोके शृणुयाद्यश्च नित्यशः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्येनकपोताख्याने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । किं राज्ञः सर्वकृत्यानां गरीयः स्यात् पितामह । कुर्वन् किं कर्म नृपतिरुभौ लोकौ समश्नुते ॥ १ ॥ भीष्म

भी शरणागत प्राणियोंकी सबप्रकारसे रक्षाकरनी चाहिये ३३-३४ जो पुरुष भक्तिमान् प्रीतिमान् और आश्रितोंकी रक्षा करता है तथा सब प्राणियों पर दया रखता है, वह पुरुष परलोकमें सुख भोगता है॥३५॥जो राजा सदाचारी होता है, सदाचारसे वर्त्ताव करता है वह अपने कर्मरूपी व्याजसे किस वस्तुको नहीं पासकता ॥३६ ॥ वह राजर्षि काशिराज विशुद्ध मनवाला था, धीर था और वह तीनों लोकोंमें अपने कर्मसे प्रसिद्ध होगया था ॥ ३७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदि कोई दूसरा पुरुष भी इस प्रकार शरणागतकी रक्षा करेगा तो उसको भी यही गति मिलेगी ३८ जो पुरुष राजर्षि वृषदर्भके इस चरित्रको जगत्में गाता है अथवा नित्य उसको सुनता है उस पुरुषका आत्मा पवित्र होजाता है ३९ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि हे पितामह ! राजाके सब कर्मोंमें कौन कर्म महत्त्वका है, कौनसे कर्मको करनेसे राजा दोनों लोकोंमें

उवाच । एतद्राज्ञः कृत्यतममभिषिक्तस्य भारत । ब्राह्मणानामनुष्ठानमत्यंतं सुखमिच्छता ॥ २ ॥ कर्तव्यं पार्थिवेन्द्रेण तथैव भरतर्षभ । श्रोत्रियान् ब्राह्मणान् वृद्धान्नित्यमेवाभिपूजयेत् ।३। पौरजानपदांश्चापि ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् । सान्त्वेन भोगदानेन नमस्कारैस्तथार्चयेत् ॥ ४ ॥ एतत् कृत्यतमं राज्ञो नित्यमेवोपलक्षयेत् । यथात्मानं यथा पुत्रांस्तथैतान् प्रतिपालयेत् ॥ ५ ॥ ये चाप्येषां पूज्यतमास्तान् दृढं प्रतिपूजयेत् । तेषु शान्तेषु तद्राष्ट्रं सर्वमेव विराजते ॥ ६ ॥ ते पूज्यास्ते नमस्कार्या मान्यास्ते पितरो यथा । तेष्वेव यात्रा लोकानां भूतानामिव वासवे ॥ ७ ॥ अभिचारैरुपायैश्च दहेयुरपि चेतसा । निःशेषं कुपिताः कुर्युरुग्राः सत्य-

सुखी होता है ॥१॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! जिस राजाका अभिषेक होगया हो, ऐसे बड़ा भारी सुख पाने वाले राजाको ब्राह्मणोंकी सेवा खूब करनी चाहिये, यह उसका कर्तव्य है ॥ २ ॥ हे भरतवंशी श्रेष्ठ राजन् ! महाराजको वेद पढ़े हुए ब्राह्मणोंकी तथा वृद्धोंकी नित्य सेवा करनी चाहिये ३ नगरमें और ग्राममें रहनेवाले बहुश्रुत ब्राह्मणोंका मधुर वचन कह कर, उत्तम भोग देकर तथा नमस्कार करके सत्कार करना चाहिये ॥४॥ अपने पुत्रोंकी समान सदा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंका पालन करना राजाका उत्तोत्तम कृत्य है ॥ ५ ॥ और इनके जो पूज्यतम हों उनकी दृढ़तासे पूजा करे, क्योंकि उनके शान्त रहनेसे सब राष्ट्र दिपने लगता है ॥६॥ वेदवेत्ता ब्राह्मण पूजनीय होते हैं, नमस्कार करने योग्य होते हैं और उनका पितरोंकी समान सत्कार करना चाहिये, प्राणियोंके जीवनका आधार जैसे मेघों पर है तैसे ही सब लोकोंके जीवनका आधार इन ब्राह्मणों पर हैं ॥ ७ ॥ महाभयंकर तथा सत्यपराक्रमी विद्वान् ब्राह्मण यदि कोपमें भर जाते हैं तो वे श्येनयाग

पराक्रमाः ॥ ८ ॥ नांतमेषां प्रपश्यामि न दिशश्चाप्यपावृताः । कुपिताः समुदीक्षंते दावेष्वग्निशिखा इव ॥ ९ ॥ विभ्यतेषां साहसिका गुणास्तेषामतीव हि । कूपा इव तृणच्छन्ना विशुद्धा द्यौरिवापरे ॥ १० ॥ प्रसह्यकारिणः केचित् कार्पासमृदवो परे सन्ति चैषामतिशठास्तथैवान्ये तपस्विनः ॥ ११ ॥ कृषिगोरक्ष्यमप्येके भैक्ष्यमन्येप्यनुष्ठिताः । चौराश्चाऽन्येनृताश्चान्ये तथान्ये

आदि अभिचार करके, कौलिकशास्त्रमें प्रसिद्ध उपायोंको करके निःशेषरीतिसे भस्म कर डालते हैं ।८। मैं इनका नाशकर्ता किसीको नहीं देखता, उनको दिशायें भी नहीं रोक सकती अर्थात् वे विना रोक टोक सर्वत्र जासकते हैं वे जब कोपमें भर जाते हैं तब दावाग्निकी शिखाओंकी समान देखते हैं ॥ ९ ॥ साहसी पुरुष भी इन विद्वान ब्राह्मणोंसे डरते रहते हैं क्यों कि-इन पुरुषोंमें बहुतसे गुण हैं, इन ब्राह्मणोंमें बहुतसे घास फूँससे ढकेहुए कूपोंकी समान होते हैं (अर्थात् जैसे घास फूँससे ढके हुए कूप जाननेमें वा देखनेमें नहीं आते हैं ऐसे ही महात्मा भी ऊपरके मैले कुचैले वेषके कारण जाननेमें नहीं आते) और (वशिष्ठ आदि) बहुतसे आकाशकी समान शुद्ध चरित्र वाले होते हैं ॥१०॥ बहुतसे तपस्वी क्रोधी होते हैं, कितने ही तपस्वी रुईकी समान कोमलस्वभाव होते हैं, बहुतसे महाशठ होते हैं और बहुतसे तपस्वी होते हैं (अर्थात् दुर्वासा आदि ऋषि महाक्रोधी हैं गौतम आदि ऋषियोंका स्वभाव परम-कोमल है अत एव चलते२ भी जीवहिंसा न होजाय इस भयसे उन्होंने अपने चरणोंमें नेत्र बना लिये हैं बहुतसे ऋषियोंको शठ कहनेका तात्पर्य यह है कि-अगस्त्य आदि ऋषि वातापिका नाश करनेके लिये मांस भी खाना चाहते हैं ११ बहुतसे ऋषि खेती वाड़ी और गोरक्षा करते हैं और बहुतसे भिक्षा माँग कर आजीविका चलाते हैं, बहुतसे

नटनर्तकाः ॥ १२ ॥ सर्वकर्मसहाश्चान्ये पार्थिवेष्वितरेषु च ।
विविधाकारयुक्ताश्च ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १३ ॥ नानाकर्मसु
रक्तानां बहुकर्मोपजीविनाम् । धर्मज्ञानां सतां तेषां नित्यमेवानु-
कीर्तयेत् ॥ १४ ॥ पितृणां देवतानां च मनुष्योरगरक्षसाम् ।
पुराप्येते महाभागा ब्राह्मणा वै जनाधिप ॥ १५ ॥ नैते देवैर्न
पितृभिर्न गंधर्वैर्न राक्षसैः । नासुरैर्न पिशाचैश्च शक्या जेतुं
द्विजातयः ॥ १६ ॥ अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् । यमि-
च्छेयुः स राजा स्याद्यो नेष्टः स पराभवेत् ॥ १७ ॥ परिवादं च

चोर हैं और बहुतसे असत्यभाषण करनेवाले हैं और बहुतसे नट और नर्तक हैं(तात्पर्य यह है,कि उद्दालकके गुरु खेती बाड़ी करते थे, दत्तात्रेय आदि भिक्षा माँग कर आजीविका चलाते थे,विश्वामित्र चोर थे उन्होंने दुष्कालकके समय चाण्डालके घरसे कुत्तेकी जाँघ चुराई थी, नारद आदि कलहप्रिय हैं और भरत आदि नट नर्तक थे)॥ १२ ॥ कितने ही ब्राह्मण सब प्रकारके साधारण और असाधारण कर्म करते हैं(जैसे अगस्त्य समुद्रको पी गए थे)हे भरत-र्षभ ! ब्राह्मण नाना प्रकारके अनेक चरित्रोंवाले हैं ॥ १३ ॥ ब्राह्मण (अपने स्वरूपको गुप्त रखनेके लिये अथवा लोकोंका कल्याण करनेके लिये) अनेक कर्मोंको करते हैं तथा अनेक कर्म करके आजीविका चलाते हैं, उन सज्जन धर्मज्ञ ब्राह्मणोंका गुण सदा गाना चाहिये ॥ १४ ॥ हे राजन् ! महाभाग्य ब्राह्मण पूर्व-कालसे ही पितरोंके, देवताओंके, मनुष्योंके सर्पोंके तथा राक्षसोंके भी पूज्य हैं ॥ १५ ॥ देवता, पितर गन्धर्व, राक्षस असुर और पिशाच भी ब्राह्मणोंको नहीं जीत सकते॥१६॥ब्राह्मण जो देवता नहीं होता है उसको देवता बना देते हैं,और देवताको देवताकी पदवी परसे भ्रष्ट कर डालते हैं. ब्राह्मण जिसको राजा बनाना चाहते हैं उसको राजा बना देते हैं और जिसको राजाके रूपमें

ये कुर्युर्ब्राह्मणानामचेतसः । सत्यं ब्रवीमि ते राजन् विनश्येयुर्न संशयः ॥ १८ ॥ निंदाप्रशंसाकुशलाः कीर्त्यकीर्तिपरायणाः । परिकुप्यंति ते राजन् सततं द्विषतां द्विजाः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणा यं प्रशंसंति पुरुषः स प्रवर्धते । ब्राह्मणैर्यः पराकृष्टः पराभूयात् क्षणाद्धि सः ॥ २० ॥ शका यवनकांबोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥ २१ ॥ द्राविडाश्च कलिंगाश्च पुलिंदाश्चाप्युशीनर । कोलिसर्पा महिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ॥ २२ ॥ वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् । श्रेयान् पराजयस्तेभ्यो न जयो जयतां वर २३ यस्तु सर्वमिदं हन्यात् ब्राह्मणं च न तत्समम् । ब्रह्मवध्या महान्

देखना नहीं चाहते हैं उसका पराजय करवा देते हैं१७हे राजन् ! जो मूर्ख पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं, यह बातमैं सत्य कहता हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! सदा प्रशंसा करनेमें और निन्दा करनेमें कुशल, कीर्ति तथा अपकीर्तिमें तत्पर रहने वाले ब्राह्मण सदा ब्रह्मद्वेषियोंके ऊपर कोपायमान होजाते हैं।१९।ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह धन धान्यवान् होजाता है और ब्राह्मण जिसका अपमान करते हैं, वह एक क्षणमें पराजित होजाता है २०.शक जातिके मनुष्य, यवन और काम्बोज जातिके क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी सुदृष्टि न पड़नेसे शूद्र होगए हैं २१ द्रविड़के मनुष्य, कलिंगदेशके पुरुष, पुलिन्द (भील) उशीनर देशके मनुष्य, कोलिसर्प और माहिषक आदि क्षत्रिय जातिके पुरुष ब्राह्मणोंका सहवास न पानेसे शूद्र होगए हैं, अतः हे महाविजयी ! ब्राह्मणोंसे हारजाना तो अच्छा है,परन्तु उनको हराना अच्छा नहीं है ॥ २३ ॥ इस सम्पूर्ण जगत्की हत्या करने वाला और ब्रह्महत्यारा इन दोनों का पाप बराबर नहीं होता,इनमें महर्षि ब्रह्महत्याको ही महापाप

दोष इत्याहु परमर्षयः ॥ २४ ॥ परिवादो द्विजातीनां न श्रो-
तव्यः कथंचन । आसीताधोमुखस्तूष्णीं समुत्थाय व्रजेच्च वा २५
न स जातो जनिष्यद्वा पृथिव्यामिह कश्चन । यो ब्राह्मणविरो-
धेन सुखं जीवितुमुत्सहेत् ॥ २६ ॥ दुर्ग्राह्यो मुष्टिना वायुर्दुःस्पर्शः
पाणिना शशी । दुर्धरा पृथवी राजन् दुर्जया ब्राह्मणा भुवि २७
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे ब्राह्मणप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

भीष्म उवाच । ब्राह्मणानेव सततं भृशं संपरिपूजयेत् । एते
हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥१॥ एते भोगैरलंकारै-
रन्यैश्चैव किमिच्छकैः । सदा पूज्या नमस्कारै रक्ष्याश्च पितृ-
वन्नृपैः ॥ २ ॥ ततो राष्ट्रस्य शान्तिर्हि भूतानामिव वासवात् ।

बताते हैं ॥ २४ ॥ ब्राह्मणोंकी निन्दा कभी न सुननी चाहिये, यदि ब्राह्मणोंकी निन्दा होती हो तो नीचेको मुख करके चुपचाप बैठा रहे अथवा तहाँसे उठ कर चला जाय ॥२५॥ इस पृथ्वीमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जन्मा है और न जन्मेगा ही जो ब्राह्मणोंसे विरोध करके सुखसे जीवन बितानेका उत्साह कर सके ॥ २६ ॥ पवनको मुट्ठीमें बन्द नहीं किया जासकता, हाथसे चन्द्रमाको नहीं पकड़ा जासकता हे राजन्! जैसे पृथ्वीको धारण करना कठिन काम है, ऐसेही पृथ्वीमें ब्राह्मणोंको जीतना भी बड़ा कठिन काम है ॥२७॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

भीष्मने कहा, कि–ब्राह्मणोंकी सदा भली प्रकार पूजा करनी चाहिये क्योंकि–ब्राह्मणोंका राजा चन्द्रमा है और वे सुख तथा दुःखके स्वामी हैं ॥ १ ॥ और राजाओंको अनेक प्रकारके भोग देकर, आभूषण देकर तथा दूसरे मन चाहे पदार्थ देकर और नमस्कार करके ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करनी चाहिये और पिता की समान उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥ प्राणी जैसे मेघके

जायतां ब्रह्मवर्चस्वी राष्ट्रे वै ब्राह्मणः शुचिः ॥ ३ ॥ महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः । ब्राह्मणं जातिसम्पन्नं धर्मज्ञं संशितव्रतम् ॥ ४ ॥ वासयेत गृहे राजन्न तस्मात्परमस्ति वै । ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्तं प्रतिगृह्णंति देवताः ॥ ५ ॥ पितरः सर्वभूतानां नैतेभ्यो विद्यते परम् । आदित्यश्चन्द्रमा वायुरापो भूरंबरं दिशः ६ सर्वे ब्राह्मणमाविश्य सदान्नमुपभुंजते । न तस्याश्नन्ति पितरो यस्य विप्रा न भुञ्जते ॥ ७ ॥ देवाश्चाप्यस्य नाश्नंति पापस्य ब्राह्मणद्विषः । ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रीयंते पितरः सदा ॥ ८ ॥ तथैव देवता राजन्नात्र कार्या विचारणा । तथैव तेपि प्रीयन्ते येषां भवति तद्धविः ॥ ९ ॥ न च प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छंति च

देवता इन्द्रसे शांति पाते हैं इसी प्रकार देशको ब्राह्मणोंसे शांति मिलती है अतः तेरे देशमें ब्रह्मतेजस्वी और पवित्र ब्राह्मण उत्पन्न हों ॥ ३ ॥ महारथी और शत्रुको तपानेवाले क्षत्रियको भी अपने देशमें रखनेकी इच्छा करनी चाहिये तथा उत्तम जातिवाले धर्मज्ञ और उत्तम आचरणवाले ब्राह्मणको अपने घरमें रखना चाहिये, हे राजन् ! ब्राह्मणोंसे अधिक कोई भी पुरुष श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि-ब्राह्मणोंको जो हवि दी जाती है उसको ही देवता ग्रहण करते हैं ॥ ५ ॥ ब्राह्मण सब प्राणियोंके पितर हैं उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है आदित्य चन्द्रमा वायु जल पृथ्वी आकाश और दिशायें यह सब ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करके सदा ही अन्नका उपभोग करते हैं ब्राह्मण जिसके अन्नको नहीं खाते हैं उसके अन्नको पितर भी नहीं खाते हैं ॥ ७ ॥ जो पुरुष पापी और ब्रह्मद्वेषी होता है उसके अन्नको देवता भी नहीं खाते हैं और ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होनेसे पितर सदाही सन्तुष्ट रहते हैं ८ ऐसेही देवता भी प्रसन्न होते हैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये और वे भी प्रसन्न होते हैं जिनके लिये वह हवि दीजाती है ९।

परां गतिम् । येन येनैव हविषा ब्राह्मणांस्तर्पयेन्नरः ॥ १० ॥ तेन तेनैव प्रीयन्ते पितरो देवतास्तथा । ब्राह्मणादेव तद्भूतं प्रभवन्ति यतः प्रजाः ॥ ११ ॥ यतश्चायं प्रभवति प्रेत्य यत्र च गच्छति । वेदैष मार्गं स्वर्गस्य तथैव नरकस्य च ॥१२॥ आगतानागते चोभे ब्राह्मणो द्विपदां वरः । ब्राह्मणो भरतश्रेष्ठ स्वधर्मं चैव वेद यः ॥ १३ ॥ ये चैनमनुवर्तंते ते न यान्ति पराभवम् । न ते प्रेत्य विनश्यंति गच्छन्ति न पराभवम् ॥ १४ ॥ यद्ब्राह्मणमुखात् प्राप्तं प्रतिगृह्णंति वै वचः । भूतात्मानो महात्मानस्ते न यांति पराभवम् ॥ १५ ॥ क्षत्रियाणां प्रतपतां तेजसा च बलेन च । ब्राह्मणेष्वेव शाम्यंति तेजांसि च बलानि च १६ भृगवस्तालजंघांश्च नीपानांगिरसो जयन् । भरद्वाजो वैतहव्यां-

देवताओंको हवि देनेवाला मरणके पीछे नरकमें नहीं पड़ता है, किन्तु परमगति पाता है पुरुष जिस २ हविसे ब्राह्मणोंको तृप्त करता है ॥१०॥ उस २ हविसे देवता और पितर तृप्त होते हैं क्योंकि-यज्ञ और श्राद्ध आदिक ब्राह्मणोंसे ही उत्पन्न होते हैं और उन यज्ञ आदिकसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥ जहाँसे प्राणी उत्पन्न होता है और जिसमें लीन होता है इस बातको तथा स्वर्ग और नरकके मार्गको भी वे जानते हैं ॥१२॥ ब्राह्मण दोपैरसे चलने वाले प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं वे भूत तथा भविष्य दोनोंको जानते हैं तथा हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! ब्राह्मण अपने धर्मको भी जानते हैं॥१३॥ जो ऐसे ब्राह्मणोंके अनुकूल रहते हैं वे पराभव नहीं पाते हैं तैसे ही मरनेके पीछे वे नरकमें भी नहीं पडते हैं ॥१४॥ मनको वशमें रखने वाले जो पुरुष ब्राह्मणोंके मुखमेंसे निकले हुये वचनको ग्रहण करते हैं तो वे संसारमें पराजय नहीं पाते तेज और बलसे तपते हुये क्षत्रियोंका तेज और बल ब्राह्मणोंके आगे शांत पड़जाता है भार्गवोंने तालजंघोंको और

नैलांश्च भरतर्षभ ॥ १७ ॥ चित्रायुधांश्चाप्यजयन्नेते कृष्णा-
जिनध्वजाः । प्रदिश्याथ च कुंभान्वै पारगामिनमारभेत् ॥१८॥
यत्किञ्चित्कथ्यते लोके श्रूयते पठ्यतेऽपिवा । सर्वं तद्ब्राह्मणेष्वेव
गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १९ ॥ अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरा-
तनम् । संवादं वासुदेवस्य पृथ्व्याश्च भरतर्षभ ॥२०॥ वासुदेव
उवाच । मातरं सर्वभूतानां पृच्छे त्वां संशयं शुभे । केनस्वित्
कर्मणा पापं व्यपोहति नरो गृही ॥२१॥ पृथिव्युवाच । ब्राह्म-
णानेव सेवेत पवित्रं ह्येतदुत्तमम् । ब्राह्मणान् सेवमानस्य रजः
सर्वं प्रणश्यति । अतो भूतिरतः कीर्तिरतो बुद्धिः प्रजायते २२
महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः । इति मां नारदः प्राह

आङ्गिरसोंने नीपोंको हराया था तथा हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष!
भरद्वाजने वीतहव्यके पुत्रोंको तथा इलाके पुत्रको हराया था १७
क्षत्रियोंके पास अनेक प्रकारके आयुध थे तो भी कृष्णमृगके चर्म
की ध्वजा वाले विप्रोंने उनका पराजय किया अतः विप्रोंको
पृथ्वीका दान देकर इस लोकमें तथा परलोकमें प्रकाश करने
वाला तथा परलोकमें हित करने वाला कर्म करना चाहिये १८
जगत्में जो कुछ बात कही जाती है जो कुछ सुनी जाती है
और जो कुछ पढ़ी जाती है वह सब जैसे काष्ठमें अग्नि गुप्त
रहती है ऐसे ही विप्रोंमें रहती है ॥ १९ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ
पुरुष! इस विषयमें वासुदेव और पृथ्वीके सम्वादरूप एक प्राचीन
इतिहासका इस प्रकार उदाहरण दिया जाता है ॥२०॥ वासुदेवने
बूझा कि हे कल्याणि! हे सब प्राणियोंकी मातः! तुझसे मैं एक प्रश्न
को बूझता हूँ कि—गृहस्थ आश्रममें पुरुष क्या कर्म करनेसे अपने
पापका नाश कर सकता है ।२१। पृथ्वीने उत्तर दिया कि पापका
नाश करनेके लिये विप्रोंकी सेवा करनी चाहिये विप्रोंकी सेवा
करने वाले पुरुषका सब रजोगुण अर्थात् ध्यानमें अन्तराय

सततं सर्वभूतये ॥ २३ ॥ ब्राह्मणं जातिसंपन्नं धर्मज्ञं संशितं
शुचिम् । अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चैव येऽपरे ॥२४॥ ब्राह्मणा
यं प्रशंसंति स मनुष्यः प्रवर्धते । अथ यो ब्राह्मणान् क्रुष्टः परा-
भवति सोचिरात् ॥ २५ ॥ यथा महार्णवे क्षिप्ता सीता नेष्टु-
र्विनश्यति । तथा दुश्चरितं सर्वं पराभावाय कल्पते ॥ २६ ॥
पश्य चन्द्रे कृतं लक्ष्म समुद्रो लवणोदकः । तथा भगसहस्रेण
महेन्द्रः परिचिन्हितः ॥ २७ ॥ तेषामेव प्रभावेण सहस्रनयनो
ह्यसौ । शतक्रतुः समभवत्पश्य माधव यादृशम् ॥ २८ ॥ इच्छन्
कीर्तिं च भूतिं च लोकांश्च मधुसूदन । ब्राह्मणानुमते तिष्ठेत् पुरुषः

डालने वाला विक्षेप नष्ट होजाता है तथा विप्रसे ही ऐश्वर्य मिलता है विप्रसे ही कीर्ति मिलती है और विप्रसे ही बुद्धिभी मिलती है२२ तथा महारथीपना क्षत्रियपना ऐश्वर्यसम्पन्नता और शत्रुतापी-पन भी ब्राह्मणोंकी ही सेवासे मिलता है और मुझसे नारदने कहा है कि सब प्रकारकी विभूतिपानेके लिये२३उत्तम जातिके धर्म जाननेवाले सदाचारसम्पन्न और भीतर बाहरसे पवित्र ब्राह्मणोंकी नित्य सेवा करनी चाहिये,नीची जातिके अथवा ऊँची जातिके जिस पुरुषकी ब्राह्मण प्रशंसा करते हैं वह पुरुष समृद्धि-मान् होजाता है परन्तु ब्राह्मण जिसकी निन्दा करते हैं उस पुरुषका थोड़े ही समयमें पराभव होजाता है ॥२४–२५॥ हलके अग्रभाग पर चिपटा हुआ मट्टीका पिंड जैसे महासागरमें डालनेसे गल जाता है तैसे ही ब्राह्मणोंसे दुर्व्यवहार करनेवाला नष्ट होजाता है ॥ २६ ॥ तू देख विप्रोंने चन्द्रमामें कलंक लगादिया महेन्द्रके शरीरमें सौ भग करदिये ॥ २७ ॥ परन्तु विप्रके ही प्रतापसे इन्द्रके शरीरके भग नेत्ररूप होगए इस वृत्तान्तको हे माधव!आप देखिये ॥ २८॥ हे मधुसूदन ! ए [illegible] द कीर्तिकी ऐश्वर्यकी और उत्तम लोकोंकी इच्छा होय [illegible] हरसे पवित्र होकर

शुचिरात्मवान् ॥ २९ ॥ भीष्म उवाच । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा मेदिन्या मधुसूदनः । साधु साध्विति कौरव्य मेदिनीं प्रत्यपूजयत् ॥ ३० ॥ एतां श्रुत्वोपमां पार्थ प्रयतो ब्राह्मणर्षभान् । सततं पूजयेथास्त्वं ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पृथिवीवासुदेवसम्वादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

भीष्म उवाच । जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते । नमस्यः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् ॥ १ ॥ सर्वार्थाः सुहृदस्तात ब्राह्मणाः सुमनोमुखाः । गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिरनुध्यायंति पूजिताः ॥ २ ॥ सर्वान्नो द्विषतस्तात ब्राह्मणा जातमन्यवः । गीर्भिर्दारुणयुक्ताभिरभिध्यासुरपूजिताः ॥ ३ ॥ अत्र गाथाः पुरा गीताः कीर्तयंति पुराविदः । सृष्ट्वा द्विजातीन् धाता हि

और अपने मनको नियममें रखकर विप्रोंकी आज्ञामें रहना चाहिये२९भीष्मने कहा कि-हे कुरुवंशके पुत्र! श्रीकृष्णने पृथ्वीके उपरोक्त वचनको सुनकर कहा कि-तुमने ठीक कहा ठीक कहा इसप्रकार कहकर उन्होंने पृथ्वीकी पूजाकी ३० हे पृथापुत्र! तू इस कथाको सुनकर प्रयत्न पूर्वक सदा उत्तम विप्रोंकी पूजा करेगा तो तेरा कल्याण होगा ३१ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३४

भीष्मने कहा कि-हे युधिष्ठिर!विप्र जन्मसे ही महाभाग्यशाली होकर जन्मते हैं सब प्राणियोंके नमस्कार करने योग्य हैं सबके अतिथि हैं तथा पकान्न भोजनके पहिले पहिल जीमनेके अधिकारी हैं॥१॥ हे तात! विप्र धर्म अर्थ काम तथा मोक्षकी समान महालाभ देने वाले हैं वे सब प्राणियोंके मित्र हैं देवताओंके मुखरूप हैं और पूजा करने पर मङ्गलमय वाणीसे आशीर्वाद देते हैं ॥२॥ हे तात! हमारे शत्रु विप्रोंकी पूजा नहीं करते हैं तो उनको क्रोध चढ़ता है और वे दारुण वाणीसे शत्रुओंके नाश होने

यथापूर्वं समादधत् ॥ ४ ॥ न चान्यदिह कर्तव्यं किंचिदूर्ध्वं यथा विधि । गुप्तो गोपायते ब्राह्म श्रेयो वस्तेन शोभनम् ॥५॥ स्वमेव कुर्वतां कर्म श्रीर्वो ब्राह्म भविष्यति । प्रमाणं सर्वभूतानां प्रग्रहाश्च भविष्यथ ॥ ६ ॥ न शौद्रं कर्म कर्तव्यं ब्राह्मणेन विपश्चिता । शौद्रं हि कुर्वतः कर्म धर्मः समुपरुध्यते ॥ ७ ॥ श्रीश्च बुद्धिश्च तेजश्च विभूतिश्च प्रतापिनी । स्वाध्याये चैव माहात्म्यं विपुलं प्रतिपत्स्यते ॥ ८ ॥ हुत्वा चाहवनीयस्थं महाभाग्ये प्रतिष्ठिताः । अग्रभोज्याः प्रसूतीनां श्रिया ब्राह्मयानुकल्पिता ॥ ९ ॥ श्रद्धया

का मनमें चिंतवन करते हैं ॥३॥ इस विषयकी पुरानी गाई हुई गाथाओंको पुरातत्ववेत्ता इस प्रकार कहते हैं कि-प्रजापतिने विप्रजाको पहिलेकी समान ही रच कर उनके लिये नियम बनाये कि ४ विप्रोंको शास्त्रोक्त कर्म करने चाहियें परन्तु इसके अतिरिक्त और कोई कर्म नहीं करना चाहिये विप्रको धर्मसे रक्षित होकर औरोंकी रक्षा करनी चाहिये ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा ५ तुम अपना कर्म करोगे तो तुम्हें ब्राह्मी लक्ष्मी मिलेगी तुम सब प्राणियोंमें मान्य माने जाओगे और नियममें रखनेवाली रज्जुरूप होजाओगे ६ धर्मज्ञ विद्वान् विप्रोंको शूद्रकर्म अर्थात् सेवा चाकरी आदि नहीं करना चाहिये विप्र यदि शूद्रके कर्म करता है तो उसका धर्म नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ जो विप्र अपने धर्मके अनुसार वर्ताव करता है, उसको लक्ष्मी बुद्धि तेज और प्रतापशाली विभूति और स्वाध्याय करनेमें विपुल माहात्म्य मिलता है ८ विप्र देवताओंके निमित्त आहवनीय नामक अग्निमें होम करके महाभाग्यशाली होते हैं पुत्रोंसे भी प्रथम भोजन करने का अधिकार पाते हैं (धर्मशास्त्रमें कहा है, कि-जच्चा और बालकोंको सबसे पहिले जिमा देना चाहिये परन्तु अग्निहोत्री विप्रोंको उनसे भी पहिले जीमनेका अधिकार है) ९ हे विप्रो !

परया युक्ता ह्यनभिद्रोहलब्धया । दमस्वाध्यायनिरताः सर्वान् कामानवाप्स्यथ ॥१०॥ यच्चैव मानुषे लोके यच्च देवेषु किंचन । सर्वं तु तपसा साध्यं ज्ञानेन नियमेन च ॥ ११ ॥ इत्येवं ब्रह्मगीतास्ते समाख्याता मयानघ । विप्राणामनुकंपार्थं तेन प्रोक्तं हि धीमता ॥१२॥ भूयस्तेषां बलं मन्ये यथा राज्ञस्तपस्विनः । दुरासदाश्च चण्डाश्च रभसाः क्षिप्रकारिणः १३ संत्येषां सिंहसत्वाश्च व्याघ्रसत्वास्तथापरे । वराहमृगसत्वाश्च जलसत्वास्तथापरे ११ सर्पस्पर्शसमाः केचित्तथान्ये मकरस्पृशः । विभाष्यघातिनः केचित्तथा चक्षुर्हणोऽपरे १५ संति चाशीविषसमाः संति मन्दास्तथा परे विविधानीह वृत्तानि ब्राह्मणानां युधिष्ठिर १६

तुम यदि किसीसे द्रोह नहीं करोगे और परम श्रद्धा रक्खोगे, इन्द्रियोंको नियममें रक्खोगे और स्वाध्यायमें तत्पर रहोगे, तो सब कामनाओंको पाओगे १० जो पदार्थ मनुष्य लोकमें और जो पदार्थ देवलोकमें है वे सब तपसे ज्ञानसे और नियमसे पाये जासकते हैं ११ हे निर्दोष युधिष्ठिर! इस प्रकार पहिले बुद्धिमान् ब्रह्माजीने विप्रोंके ऊपर दया करनेके लिये जो गाथाएँ गाईं थीं, वे सब गाथाएँ मैंने तुम्हें कहकर सुना दीं १२ तपस्वी राजाकी समान विप्रोंका बल भी महान् है, विप्र भी राजाकी समान महादुःखसे जीते जासकते हैं, प्रचंड हैं, साहसपूर्वक कर्म करनेवालेहैं और शीघ्रतासे कर्म करनेवाले हैं१३ब्राह्मणोंमें बहुतसे सिंहकी समान बलवान् हैं बहुतसे व्याघ्रकी समान बलवान् हैं बहुतसे वराह और मृगोंकी समान बलवान् हैं और बहुतसे जलचरोंकी समान बलवान् हैं १४ बहुतसे सर्पकी समान स्पर्श करने वाले हैं बहुतसे मगरमच्छकी समान स्पर्श करने वाले हैं बहुतसे वाणीमात्रसे ही मार देते हैं और बहुतसे नेत्रोंसे देख कर मार देते हैं,कितने ही जहरीले सर्पकी समान हैं और बहुत

मेकला द्राविडा लाटाः पौंड्राः कान्वशिरास्तथा । शौंडिका दरदा दार्वाश्चौराः शबरबर्बराः ॥ १७ ॥ किराता यवनाश्चैव तास्ताः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानाममर्षणात् १८ ब्राह्मणानां परिभवादसुराः सलिलेशयाः । ब्राह्मणानां प्रसादाच्च देवाः स्वर्गनिवासिनः ॥ १९ ॥ अशक्यं स्प्रष्टुमाकाशमचाल्यो हिमवान् गिरिः। अधार्या सेतुना गङ्गा दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥ २० ॥ न ब्राह्मणविरोधेन शक्या शास्तुं वसुंधरा । ब्राह्मणा हि महात्मानो देवानामपि देवताः ॥ २१ ॥ तान् पूजयस्व सततं दानेन परिचर्यया। यदीच्छसि महीं भोक्तुमिमां सागर-

से मंद भी हैं, हे युधिष्ठिर! इस प्रकार ब्राह्मणोंके अनेक प्रकारके चरित्र हैं ॥ १६ ॥ मेकल, द्राविड़, लाट, पौण्ड्र, कान्वशिरा, शौण्डिक, दरद, दार्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात, और यवन ये सब क्षत्रिय जातिके थे परन्तु विप्रोंका दर्शन अर्थात् सम्पर्क न रहनेसे शूद्र होगए ॥१८॥ विप्रोंका तिरस्कार करनेसे असुरोंको समुद्रके जलमें रहना पड़ा है और विप्रोंकी कृपासे देवता स्वर्गमें रहते हैं ॥ १९ ॥ आकाशको छूना असम्भव है, हिमाचलको खदेड़ना भी असम्भव है, मेंड बांध कर गङ्गाजीको रोकना भी असम्भव है, इसी प्रकार पृथ्वी पर विप्रको जीतना भी कठिन काम है ॥ २० ॥ विप्रोंसे विरोध करके पृथ्वी पर राज्य नहीं किया जासकता, क्योंकि—विप्र महात्मा हैं और देवदेव हैं २१ अतः यदि तू इस सागररूप कटि मेखला वाली पृथ्वी पर राज्य करना चाहता है तो तू सदा दान और सेवा करके विप्रोंकी पूजा कर ॥ २२ ॥ हे निर्दोष राजन्! दान लेनेसे विप्रोंका तेज शांत होजाता है अतः हे राजन्! जो दान लेना नहीं चाहते हैं

मेखलाम् ॥ २२ ॥ प्रतिग्रहेण तेजो हि विप्राणांशाम्यतेऽनघ । प्रतिग्रहं ये नेच्छेयुस्तेभ्यो रक्ष्यं त्वया नृप ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-धर्मे ब्राह्मणप्रशंसायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । शक्र-शंबरसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १ ॥ शक्रो ह्यज्ञातरूपेण जटी भूत्वा रजोगुणः । विरूपं रथमास्थाय प्रश्नं पप्रच्छ शंबरम् ॥२॥ शक्र उवाच । केन शंबरवृत्तेन स्वजात्यानधितिष्ठसि । श्रेष्ठं त्वां केन मन्यंते तद्वै प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ शंबर उवाच । नासूयामि यदा विप्रान् ब्रह्मैव च मे मतम् । शास्त्राणि वदतो विप्रान् संमन्यामि यथासुखम् ॥ ४ ॥ श्रुत्वा च नावजानामि नापराध्यामि कर्हिचित् । अभ्यर्च्याभ्यनुपृच्छामि पादौ गृह्णामि

ऐसे विप्रोंसे तुझे अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २३ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ छ छ छ

भीष्मने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें इन्द्र और शम्बरके सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासको इस प्रकार कहते हैं, उसको तू सुन ॥१॥ इन्द्र अज्ञात रूपवाला बन जटा धारण करके रजोगुणी होकर एक बेडौल रथमें बैठ शम्बरके पास गया और उससे प्रश्न बूझने लगा ॥ २ ॥ इन्द्रने बूझा, कि-हे शम्बर ! तू किस प्रकारके आचरणसे अपनी जाति वालोंके ऊपर राज्य करता है और तेरी जातिवाले किस कारण तुझे उत्तम मानते हैं इसका तत्त्व तू मुझे बता ॥ ३ ॥ शम्बरने कहा, कि-मैं ब्राह्मणोंसे ईर्षा नहीं करता हूँ किन्तु उनके मतके अनुसार आचरण करता हूँ और जिस प्रकार उन्हें सुख पहुँचे तिस प्रकार उनका मान करता हूँ ॥ ४ ॥ मैं विप्रोंके वचन सुन कर उनका अपमान नहीं करता हूँ और किसीदिन विप्रोंका

धीमताम् ॥ ५ ॥ ते विश्रब्धाः प्रभाषंते संपृच्छंते च मां सदा । प्रमत्तेष्वप्रमत्तोऽस्मि सदा सुप्तेषु जागृमि ॥ ६ ॥ ते मां शास्त्रपथे युक्तं ब्रह्मण्यमनसूयकम् । समासिंचन्ति शास्तारः क्षौद्रं मध्विव मक्षिकाः ॥ ७ ॥ यच्च भाषंति संतुष्टास्तच्च गृह्णामि मेधया । समाधिमात्मनो नित्यमनुलोममचिंतयम् ॥ ८ ॥ सोऽहं वागग्रमृष्टानां रसानामवलेहकः । स्वजात्यानधितिष्ठामि नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ ९ ॥ एतत् पृथिव्याममृतमेतच्चक्षुरनुत्तमम् । यद्ब्राह्मणमुखाच्छास्त्रमिह श्रुत्वा प्रवर्तते ॥ १० ॥ एतत्कारणमाज्ञाय दृष्ट्वा देवासुरं पुरा । युद्धं पिता मे हृष्टात्मा विस्मितः समपद्यत ११

अपमान नहीं करता हूँ, मैं विद्वान् विप्रोंके दोनों चरणोंका स्पर्श करता हूँ, उनकी पूजा करता हूँ, इसके अनन्तर उनसे प्रश्न बूझा करता हूँ ॥ ५ ॥ विप्र भी विश्वासपूर्वक मेरे साथ सम्भाषण करते हैं और सर्वदा भलीप्रकार मुझसे प्रश्न भी करते हैं दूसरे पुरुष जब असावधान रहते हैं तब भी मैं सावधान रहता हूँ और दूसरोंके सोने पर भी मैं जागता रहता हूँ॥६॥मैं शास्त्रोक्त मार्गसे चलता हूँ, विप्रोंका भक्त हूँ,ईर्षा रहित हूँ और सुहाककी मक्खियें जैसे छत्तेमें शहद भरती रहती हैं तैसे ही उपदेश देनेवाले विप्र भी मुझ पर अमृतकी समान विद्याका छिड़काव करते रहते हैं ॥७॥ संतुष्ट हुए विप्र मुझसे जो कुछ कहते हैं उसका मैं अपनी बुद्धिसे ग्रहण करता हूँ उनपर सदा श्रद्धा रखता हूँ तथा विप्रोंको अपनेसे श्रेष्ठ मानता हूँ ॥ ८ ॥ जिनके जिह्वाग्रपर विद्यारूपी अमृत रहता है उन विप्रोंकी सूक्तिरूप सुधाका मैं पान करता रहता हूँ इस लिये चंद्रमा जैसे नक्षत्रों पर राज्य करता है इसी प्रकार मैं अपने जाति बान्धवों पर राज्य करता हूँ ॥९॥ विप्रोंके मुखसे शास्त्रको सुनकर इस जगत्में वर्ताव करना चाहिये, क्योंकि-पृथ्वी पर यही अमृत है यही सर्वोत्तम नेत्र है ॥ १० ॥ इस बातका

दृष्ट्वा च ब्राह्मणानां तु महिमानं महात्मनाम्। पर्यपृच्छत् कथममी सिद्धा इति निशाकरम् ॥ १२ ॥ सोम उवाच। ब्राह्मणास्तपसा सर्वे सिध्यंते वाग्बलाः सदा। भुजवीर्याश्च राजानो वागस्त्राश्च द्विजातयः ॥ १३ ॥ प्रणवं चाप्यधीयीत ब्राह्मीर्दुर्वसतीर्वसन्। निर्मन्युरपि निर्वाणो यतिः स्यात् समदर्शनः ॥ १४ ॥ अपि च ज्ञानसंपन्नः सर्वान्वेदान् पितुर्गृहे। श्लाघमान इवाधीयाद् ग्राम्य इत्येव तं विदुः ॥१५॥ भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव। राजानं चाप्ययोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ १६ ॥ अभिमानः श्रियं हन्ति पुरुषस्याल्पमेधसः। गर्भेण दुष्यते कन्या

जानकर और पूर्वकालमें हुए देवासुर युद्धको देखकर मेरे पिता मनमें प्रसन्न हुए थे और आश्चर्यित हुए थे ॥ ११ ॥ और महात्मा विप्रोंकी महिमाको देख कर मेरे पिताने चन्द्रमासे बूझा था, कि-यह विप्र किस प्रकार सिद्ध हुए हैं यह मुझे बतलाइये ॥१२॥ चन्द्रमाने उत्तर दिया, कि-यह सब विप्र तप करके सिद्ध हुए हैं और इनका बल सदा वाणीमें रहता है, क्षत्रियोंका बल भुजाओंमें रहता है और विप्रोंका बल वाणीमें रहता है॥१३ गुरुके घरमें रह दुःख सहन करते हुए ओंकार और वेदका अध्ययन करना चाहिये और क्रोध तथा सब पदार्थोंको त्याग कर यति बनना चाहिये और सब प्राणियों पर समदृष्टि रखनी चाहिये॥१४॥जो पुरुष अपने पिताके घरमें रहकर सब वेदोंको पढ़ता है उसके ज्ञानसम्पन्न और प्रशंसनीय होने पर भी दूसरे मनुष्य उसको ग्रामीण ही समझते हैं (अर्थात् गुरुके घर रहकर वेद पढ़नेवाला ही श्रेष्ठ कहलाता है) ॥१५॥ सर्प जैसे बिलमें रहनेवाले क्षुद्र जीवोंको निगल जाता हैं ऐसे ही युद्ध न करनेवाला क्षत्रिय और गुरुके घर पर न रहनेकर विद्या अध्ययन करनेवाला विप्र इन दोनोंको पृथ्वी निगल जाती है ॥ १६ ॥

गृहवासेन च द्विजः ॥ १७ ॥ इत्येतन्मे पिता श्रुत्वा सोमादद्भुत-
दर्शनात् । ब्राह्मणान् पूजयामास तथैवाहं महाव्रतान् ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच । श्रुत्वैतद्वचनं शक्रो दानवेन्द्रमुखाच्च्युतम् । द्विजान्
सम्पूजयामास महेन्द्रत्वमवाप च ॥ १९ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे ब्राह्मणप्रशंसायामिन्द्रशम्बरसम्वादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

युधिष्ठिर उवाच । अपूर्वश्च भवेत् पात्रमथवापि चिरोषितः ।
दूरादभ्यागतं चापि किं पात्रं स्यात् पितामह ॥ १ ॥ भीष्म
उवाच । क्रिया भवति केषांचिदुपांशुव्रतमुत्तमम् । यो यो याचेत
यत् किञ्चित् सर्वं दद्याम इत्यपि ॥ २ ॥ अपीडयन् भृत्यवर्गे-

अभिमान अल्प बुद्धिवाले पुरुषके धनका नाश कर डालता है
कन्या गर्भ रहनेसे दूषित होजाती है और विप्र घरमें रहनेसे
दूषित होजाता है ॥ १७ ॥ इसप्रकार अद्भुत दर्शनवाले चन्द्रमासे
सुनकर मेरे पिता विप्रोंकी पूजा करने लगे और मैं भी इसी
प्रकार महाव्रतवाले विप्रोंकी पूजा करता हूँ ॥ १८॥ भीष्मने
कहा, कि-दानवराजके मुखसे यह बात सुनकर इन्द्र विप्रोंकी
पूजा करने लगा, तब उसने महेन्द्रपद पाया था ॥ १९ ॥
छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! अनजाना पुरुष (दानका)
पात्र माना जाता है अथवा बहुत समय तक साथमें रहनेवाला
पुरुष पात्र माना जाता है अथवा दूर देशसे आया हुआ पुरुष
पात्र समझा जाता है, इनमें कौन पात्र माना जाता है,यह मुझसे
कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! ये सब अपने
अपने स्थानमें पात्र माने जाते हैं, जो बहुतसे पुरुष यज्ञ करनेके
लिये, गुरुदक्षिणा देनेके लिये अथवा कुटुम्बका पोषण करनेके
लिये धनकी याचना करते हैं, वे पात्र माने जाते हैं, कितने ही

भिस्येवमनुशुश्रुम । पीडयन् भृत्यवर्गं हि आत्मानमपकर्षति ॥३॥ अपूर्वं भावयेत् पात्रं यच्चापि स्याच्चिरोषितम् । दूरादभ्यागतं चापि तत् पात्रं च विदुर्बुधाः ॥४॥ युधिष्ठिर उवाच । अपीडया च भूतानां धर्मस्याहिंसया तथा । पात्रं विद्यात्तु तत्त्वेन यस्मै दत्तं न संतपेत् ॥ ५ ॥ भीष्म उवाच । ऋत्विक्पुरोहिताचार्याः शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः । सर्वे पूज्याश्च मान्याश्च श्रुतवन्तोऽनसूयकाः ॥६॥ अतोऽन्यथा वर्तमानाः सर्वे नार्हन्ति सत्क्रियाम् ।

मौन धारण कर संसारको त्याग पृथिवी पर घूमते हैं, वे पात्र कहलाते हैं, जो मनुष्य जिस पदार्थकी याचना करे उसको वह वस्तु देनी चाहिये ॥ २ ॥ परन्तु हमने सुना है, कि–इस प्रकार न देना चाहिये जिससे अपना पोष्यवर्ग दुःखी हो, जो पोषण करने योग्य आश्रितोंको दुःखी कर पात्रको देता है, वह अपनी आत्माको दुःख देता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष अपने साथ बहुत समयसे रहता हो और जो दूरसे आया हो, उन दोनोंको विद्वान् अपूर्व (अपरिचित) पात्रकी समान ही समझते हैं ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरने पूछा, कि–प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचे और धर्मका भी नाश न हो, इसप्रकार यथार्थ रीतिसे सुपात्रको दान देना उचित है, परन्तु पात्रापात्रकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये, जिससे दियेहुए दानको संताप न करना पड़े (शास्त्रमें कहा है,कि–"नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते । दीयमानं रुदत्यन्नं किं मया दुष्कृतं कृतम् अपवित्र,व्रत भ्रष्ट तथा वेद न पढ़े हुए विप्रको जो अन्न दिया जाता है तो वह अन्न रोकरकहता है,कि-मैंने ऐसा क्या पापकर्म किया है, जिसकारण मैं अपात्रका दियागया"५ भीष्मजीने कहा,कि-ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, शिष्य, सम्बन्धी,बांधव, शास्त्रवेत्ता और ईर्षा रहित पुरुष ये सब पूजनीय और माननीय गिने जाते हैं६इनसे अन्य तथा विपरीत बर्ताव करने वाले पुरुष पूजनीय नहीं माने

तस्मान्नित्यं परीक्षेत पुरुषान् प्रणिधाय वै ॥७॥ अक्रोधः सत्यवचनमहिंसा दम आर्जवम्। अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः ॥ ८ ॥ यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते न चाकार्याणि भारत। स्वभावतो निविष्टानि तत्पात्रं मानमर्हति ॥ ९ ॥ तथा चिरोषितं चापि संप्रत्यागतमेव च। अपूर्वं चैव पूर्वं च तत्पात्रं मानमर्हति १० अप्रामाण्यं च वेदानां शास्त्राणां चाभिलंघनम्। अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ॥ ११ ॥ भवेत् पण्डितमानी यो ब्राह्मणो वेदनिन्दकः। आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम् ॥ १२ ॥ हेतुवादान् ब्रुवन् सत्सु विजेताऽहेतुवादिकः। आक्रोष्टा चातिवक्ता च ब्राह्मणानां सदैव हि ॥ १३ ॥ सर्वाभि-

---

जाते अतः सावधानी रखकर सदा पुरुषोंकी परीक्षा करनी चाहिये ७ हे युधिष्ठिर ! अक्रोध (शांति), सत्यभाषण, अहिंसा, दम (इंद्रियनिग्रह) नम्रता, अद्रोह, अभिमानका अभाव, लज्जा, सहनशीलता, दम, शम ये सब जिसमें दीखते हों और हे भारत ! अकार्य जिसमें स्वाभाविकरीतिसे प्रविष्ट न हुए हों उसको पात्र समझना चाहिये और वह मानके योग्य है ॥८-९॥ जो पुरुष बहुत समयसे अपने पास रहता हो और जो बहुत समयमें आया हो, वह चाहें परिचित हों अथवा अपरिचित हो दोनों पात्र माने जाते हैं ॥१०॥ जो वेदोंको अप्रमाण मानता है, शास्त्रमें वर्णित आज्ञाओंका उल्लंघन करता है और सर्वत्र अव्यवस्था फैलाना उचित समझता है, और अपना पात्रत्व नष्ट करने वाले कर्म करता है ॥११॥ जो ब्राह्मण पाण्डित्यका अभिमान रखता हो, वेदोंकी निन्दा करता हो औरवेदविरुद्ध होनेके कारण मोक्षकी अनुपयोगी आन्वीक्षिकी और तर्कविद्या पर प्रेम रखता हो १२ स्वयं मिथ्या तर्कवादी न होने पर भी सत्पुरुषोंकी गोष्ठीमें मिथ्या तर्क वाले वादोंसे जीत जाता हो, तथा जो सदा चीख मारकर

शंकी मूढश्च बालः कटुकवागपि। बोद्धव्यस्तादृशस्तात नरश्वानं हि तं विदुः॥ १४॥ यथा श्वा भषितुं चैव हन्तुं चैवाभ्यसज्जते। एवं संभाषणार्थाय सर्वशास्त्रवधाय च॥ १५॥ लोकयात्रा च द्रष्टव्या धर्मश्चात्महितानि च। एवं नरो वर्तमानः शाश्वतीर्वर्धते समाः॥१६॥ ऋणमुन्मुच्य देवानामृषीणां च तथैव च। पितृणामथ विप्राणामतिथीनां च पंचमम्॥ १७॥ पर्यायेण विशुद्धेन सुविनीतेन कर्मणा। एवं गृहस्थः कर्माणि कुर्वन् धर्मान्न हीयते१८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पात्रपरीक्षायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

युधिष्ठिर उवाच। स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि श्रोतुं भरतसत्तम। स्त्रियो हि मूलं दोषाणां लघुचित्ता हि ताः स्मृताः॥१॥

बोलने वाला और ब्राह्मणोंकी निन्दा करने वाला हो॥१३॥जो सबसे शंकित रहता हो, मूर्ख हो, बालक हो और कड़वी बात कहने वाला हो ऐसे पुरुषको हे तात! विद्वान् नरश्वान (कुत्ता) मानते हैं ॥१४॥ कुत्ता जैसे भौंकने लगता है और काट खानेको दौड़ पड़ता है, ऐसे ही दुर्जन पुरुष संभाषण करनेके लिये सब शास्त्रोंका खण्डन करता हुआ दौड़ आता है॥ १५॥ जगत्के व्यवहारको देखे, धर्मका विचार करे, शम दम आदि अपने हितकारी कर्मोंका भी विचार करे, जो पुरुष इस प्रकार वर्ताव करता है वह पुरुष अनेक वर्षों तक सुखी रहता है॥ १६॥ (यज्ञ याग करके) देवताओंके (वेदाध्ययन कर) ऋषियोंके (सत्पुत्र उत्पन्न कर) पितरोंके, (दान देकर) ब्राह्मणोंके और (अतिथिसत्कार कर)अतिथियोंके ऋणसे मुक्त हो यथाक्रम विशुद्ध और शास्त्रोक्त कर्म करने पर गृहस्थ धर्मभ्रष्ट नहीं होता है॥ १७॥ १८॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३७॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन्! अब स्त्रियोंका

भीष्म उवाच। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पञ्चचूडया २ लोकाननुचरन् सर्वान् देवर्षिर्नारदः पुरा। ददर्शाप्सरसं ब्राह्मीं पंचचूडामनिंदिताम् ३ तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीं पप्रच्छाप्सरसं मुनिः। संशयो हृदि कश्चिन्मे ब्रूहि तन्मे सुमध्यमे ॥४॥ भीष्म उवाच। एवमुक्ताथ सा विप्रं प्रत्युवाचाथ नारदम्। विषये सति वक्ष्यामि समर्थां मन्यसे च माम् ॥५॥ नारद उवाच। न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथंचन। स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं वरानने ॥ ६ ॥ भीष्म उवाच। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा। प्रत्युवाच न शक्ष्यामि स्त्री सती निंदितुं स्त्रियः ॥७॥

स्वभाव जाननेकी मेरी इच्छा है क्योंकि-स्त्रियें दोषोंका मूल कहलाती हैं तथा उनका चित्त भी चंचल है भीष्मने कहा, कि-हे युधिष्ठिर! इस विषयमें नारद तथा पंचचूड़ा नामकी एक पुंश्चलीके सम्वादरूप प्राचीन इतिहासका इस प्रकार उदाहरण देते हैं ॥ २ ॥ कि-पहिले देवर्षि नारदने सब लोकोंमें घूमते २ ब्रह्मलोकमें पंचचूड़ा नामकी एक पवित्र अप्सराको देखा ॥३॥ उस सर्वांगसुंदरी अप्सराको देखकर मुनि उससे बूझने लगे, कि-हे सुंदर कटिवाली स्त्री! मेरे हृदयमें एक संदेह है उसको तू निवारण कर ॥ ४ ॥ भीष्मने कहा, कि इस प्रकार पंचचूड़ासे कहा, तब, उसने नारदजीको उत्तर दिया कि-"मैं जानती होऊँगी और यदि तुम मुझको कहनेमें समर्थ मानते होगे तो मैं कहूँगी" ५ नारदजीने कहा, कि-हे कल्याणि! मैं तुझसे तुझे अज्ञात बातका निर्णय करनेके लिये नहीं कहूँगा, हे सुन्दरवदने! मैं तुझसे स्त्रियोंका स्वभाव जानना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ भीष्मने कहा, कि-देवर्षिके इस उत्तम वचनको सुनकर उस उत्तम अप्सराने उत्तर दिया कि-मैं स्त्रीजाति हूँ अतः स्त्रियोंकी निन्दा नहीं कर

विदितास्ते स्त्रियो याश्च यादृशाश्च स्वभावतः । न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं कार्य ईदृशे ॥ ८ ॥ तामुवाच स देवर्षिः सत्यं वद सुमध्यमे । मृषावादे भवेद्दोषः सत्ये दोषो न विद्यते ॥ ९ ॥ इत्युक्ता सा कृतमतिरभवच्चारुहासिनी । स्त्रीदोषाञ्छाश्वतान् सत्यान् भाषितुं संप्रचक्रमे ॥ १० ॥ पञ्चचूडोवाच । कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः । मर्यादासु न तिष्ठंति स दोषः स्त्रीषु नारद ॥ ११ ॥ न स्त्रीभ्यः किंचिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति वै । स्त्रियो हि मूलं दोषाणां तथा त्वमपि वेत्थ ह ॥ १२ ॥ समाज्ञातानृद्धिमतः प्रतिरूपान् वशे स्थितान् । पतीनंतरमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम् ॥ १३ ॥ असद्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो । पापीयसो नरान् यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजासकती ॥ ७ ॥ स्त्रियें कैसी हैं और उनका स्वभाव कैसा है ? यह बात आपको अज्ञात नहीं है अतः हे देवर्षि नारद ! आपको मुझे इस स्त्रियोंकी निन्दा करनेके कार्यमें लगाना उचित नहीं है८ देवर्षिने कहा, कि-हे सुन्दर कटिवाली स्त्री ! तू सच्ची बात कह झूँठी बात कहनेमें दोष है,सच्ची बात कहनेमें दोष नहीं लगता ९ इसप्रकार नारदजीने कहा, तब उस सुहासिनीनें मनमें विचार किया और स्त्रियोंके अनादि कालके जो वास्तविक दोष हैं उनको कहना उसने आरम्भ किया ॥ १० ॥ पंचचूडाने कहा, कि-हे नारद ! कुलीन रूपवती और पतिवाली स्त्रियें मर्यादामें नहीं रहती हैं, यह उनमें दोष है ॥ ११ ॥ स्त्रियोंसे अधिक कोई भी वस्तु अधिक पापी नहीं हैं क्योंकि-स्त्रियें दोषोंका मूल हैं इस बातको आप भी जानते हैं ॥१२॥ कीर्तिमान् धनवान्, रूपवान् और अपने वशमें रहनेवाले अपने पतिसे भी जब स्त्रियोंके काममें विघ्न पड़ने लगता है तब वे उसकी परवाह नहीं करती हैं,हे प्रभो ! हम स्त्रियोंमें एक अधर्म यह है कि-हम लज्जाको,त्याग कर पापी

महे ॥ १४ ॥ स्त्रियं हि यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति । ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ॥ १५ ॥ अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात् परिजनस्य च । मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु १६नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः । विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुंजते ॥१७॥ न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेतोः कथञ्चन । न ज्ञातिकुलसम्बन्धात् स्त्रियस्तिष्ठंति भर्तृषु ॥१८॥ यौवने वर्तमानानां मृष्टाभरणवाससाम् । नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः ॥ १९ ॥ याश्च शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः । अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जांधजडवा-

---

पुरुषोंकी भी सेवा करती हैं१३-१४जो पुरुष स्त्रियोंकी प्रार्थना करता है, जो पुरुष स्त्रियोंके पास रहता है तथा जो पुरुष स्त्रियों की थोड़ी सेवा करता है स्त्रियें उसको ही चाहती हैं ॥ १५ ॥ स्त्रियें मर्यादारहित हैं, उनके मर्यादामें रहकर पतिव्रत धर्मको पालनेका यह कारण है, कि मनुष्य उनकी प्रार्थना नहीं करते हैं तथा स्त्रियोंको आसपासके कुटुम्बी मनुष्योंका भी भय रहता है ॥ १६ ॥ स्त्रियोंको कोई भी पुरुष अगम्य नहीं है, इसीप्रकार स्त्रियें अमुक छोटा है या अमुक बड़ा है इसप्रकार अवस्थाका भी कुछ विचार नहीं करती हैं कुरूप हो या रूपवान् हो परन्तु पुरुष होना चाहिये उसका वे उपभोग करती हैं ॥ १७ ॥ स्त्रियें पापके भयसे, दयासे, पैसेके लिये और अपनी जातिके मनुष्य, कुल तथा सम्बन्धियोंके लिये भी धर्म नहीं पालती हैं १८ कुलीन स्त्रियें भी यौवनमें मत्त, सुन्दर, दमकते हुए आभूषण और वस्त्र पहिरने वाली स्वतंत्रतासे वर्ताव करने वाली स्त्रियोंके सुखोंको चाहती हैं ॥१९॥ जिन स्त्रियोंकी सत्कारपूर्वक रक्षाकी जाती हो और जो स्त्रियें प्रिय होती हैं वे भी किसी समय कुबड़े, अंधे मूर्ख तथा ठिगने पुरुषोंके साथ प्रेमपाशमें बँधजाती

मनैः ॥ २० ॥ पंगुष्वथ च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिता नराः ।
स्त्रीणामगम्यो लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिन्महाद्युने ॥ २१ ॥ यदि
पुंसां गतिर्ब्रह्मन् कथंचिन्नोपपद्यते । अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते न हि
तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २२ ॥ अलाभात् पुरुषाणां हि भयात् परि-
जनस्य च । वधबन्धभयाच्चापि स्वयं गुप्ता भवन्ति ताः ॥२३॥
चलस्वभावा दुःसेव्या दुर्ग्राह्या भावतस्तथा । प्राज्ञस्य पुरुषस्येह
यथा वाचस्तथा स्त्रियः ॥ २४ ॥ नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नाप-
गानां महोदधिः । नांतकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः२५
इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् । दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः
प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ २६ ॥ कामानामपि दातारं कर्त्तारं मनसां

हैं ॥ २० ॥ तथा हे देवर्षे ! लंगड़े पुरुषोंके और ओछी जातिके पुरुषोंके प्रेमपाशमें बँध जाती हैं,इस लोकमें स्त्रियोंके लिये कोई भी पुरुष अगम्य नहीं है२१हे ब्राह्मण ! यदि स्त्रियोंको किसी प्रकार भी पुरुष नहीं मिलते है तो स्त्रियें स्त्रियोंके साथ ही समागम करने लगती हैं और स्वामियोंकी बाट नहीं देखती हैं ॥२२॥ स्त्रियें पुरुष न मिलनेसे, कुटंबी मनुष्योंके भयसे और वध तथा जेलमें पड़नेके भयसे अपने शीलकी रक्षा करती हैं॥२३॥ इस जगत्में बुद्धिमान् पुरुषोंकी वाणी जैसे नवीन २ वातोंको खोजने वाली होनेसे चञ्चलस्वभाव वाली होती है और उसका यथार्थभाव समझमें नहीं आता है, ऐसेही स्त्रियें भी नवीनताको खोजने वाली होनेसे चञ्चलस्वभाव होती हैं और उनके मनका भाव जानना बड़ा कठिन है ॥ २४ ॥ समुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता, अग्नि काष्ठोंसे तृप्त नहीं होता, यमराज सब प्राणियोंसे सन्तुष्ट नहीं होता, इसी प्रकार स्त्रियें भी पुरुषोंसे नहीं अघाती हैं॥२५॥हे देवर्षे ! यह स्त्रियोंकी एक दूसरी गुप्त बात है, कि-हृद्य पुरुषोंको देख कर स्त्रियोंकी उपस्थेन्द्रिय

प्रियम् । रक्षितारं न मृष्यन्ति स्वभर्त्तारमलं स्त्रियः ॥ २७ ॥ न कामभोगान् विपुलान्नालंकारान्न संश्रयान् । तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम् ॥ २८ ॥ अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् । क्षुरधारा विषं सर्पो वन्हिरित्येकतःस्त्रियः ॥२९॥ यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च यतश्च लोका विहिता विधात्रा । यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मितास्तदैव दोषाःप्र मदासु नारद॥३०॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे-पञ्चचूडानारदसंवादे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच । इमे वै मानवा लोके स्त्रीषु सज्जंत्यभीक्ष्णशः । मोहेन परमाविष्टा देवसृष्टेन पार्थिव ॥ १ ॥ स्त्रियश्च

क्लिन्न होने लगती है ॥ २६ ॥ अपना पति अपनी सब कामनाओंको पूर्ण करता हो, अपना मनचीता करता हो तथा अपनी रक्षा करता हो तब भी स्त्रियोंको अपना पति पूर्णरूपसे नहीं रुचता२७स्त्रियें रतिसुखमें जैसा अनुग्रह समझती हैं तैसा अनुग्रह वह अतिसुखप्रद भोगोंसे,आभूषणोंसे तथा पतिके सत्कारसे भी नहीं मानतीं ॥२८॥ काल, पवन, मृत्यु, पाताल,वड़वानल, अग्नि, उस्तरेकी धार, विष, सर्प, (इन सब) को एक ओर रक्खा जाय और दूसरी ओर स्त्रीको रक्खा जाय तो बराबर होंगे अर्थात् काल आदि जैसे पुरुषका नाश करने वाले हैं, इसी प्रकार स्त्री भी पुरुषका नाश कर डालती है ॥२९॥ जहाँसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए हैं, जहाँसे विधाताने सब लोकोंका निर्माण किया है और जहाँसे पुरुषोंको और स्त्रियोंको रचा है,हे नारद ! उसी प्रकार स्त्रियोंमें ये दोष भी रचे गए हैं अर्थात् उनके ये दोष स्वाभाविक हैं ॥ ३० ॥ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

युधिष्ठिरने पूछा, कि–हे भीष्मपितामह ! दैवनिर्मित मोहके वशमें होकर स्त्रियोंमें मनुष्य वारम्वार फँसजाते हैं ॥ १ ॥

पुरुषेष्वेव प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम् । अत्र मे संशयस्तीव्रो हृदि संपरिवर्तते ॥२॥ कथमासां नराः संगं कुर्वते कुरुनन्दन । स्त्रियो वा केषु रज्यंते विरज्यन्ते च ताः पुनः ॥ ३ ॥ इति ताः पुरुषव्याघ्र कथं शक्यास्तु रक्षितुम् । प्रमदाः पुरुषेणेह तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥ एता हि रममाणास्तु वंचयंतीह मानवान् । न चासां मुच्यते कश्चित् पुरुषो हस्तमागतः ॥ ५ ॥ गावो नवतृणानीव गृह्णन्त्येता नवं नवम् । शंबरस्य च या माया माया या नमुचेरपि ॥६॥ बलेः कुंभीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः । हसंतं प्रहसंत्येता रुदंतं प्ररुदन्ति च ॥ ७ ॥ अप्रियं प्रियवाक्यैश्च गृह्णते कालयोगतः । उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ८

और स्त्रियें पुरुषोंमें वारम्वार फँसती रहती हैं, यह वात प्रत्यक्ष दीखती है, मनुष्य स्वयं ही इसके साक्षी हैं, इस विषयमें मुझे एक तीव्र संशय हुआ है २ हे कुरुवंशोत्पन्न ! पुरुष स्त्रियोंका सहवास क्यों करते हैं? और स्त्रियें कैसे पुरुषोंसे प्रसन्न रहती हैं और कैसे पुरुषोंसे उदासीन रहती हैं ॥ ३ ॥ और हे पुरुषव्याघ्र ! पुरुष इस जगत्में तरुण स्त्रियोंकी किस भाँति रक्षा कर सकते हैं, यह वात आप वताइये ॥ ४ ॥ स्त्रियें रमण करती २ भी पुरुषोंको धोखेमें डालती हैं, स्त्रियोंके हाथमें पड़ा हुआ कोई पुरुष नहीं छूट सकता ५ गौएँ जैसे नए २ तिनकों को खाना चाहती है तैसे ही स्त्रियें भी नए २ पुरुषोंसे भोग करना चाहती हैं, शम्बरासुरकी मायाको, नमुचिकी मायाको और वलि तथा कुम्भीनसीकी भी सब मायाओंको स्त्रियें जानती हैं, स्त्रियें पुरुषको रोते देखकर रोने लगती हैं, हँसते देखकर हँसने लगती हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अप्रिय पुरुषसे प्रिय वाक्य कहकर कुछ समय तक उसको भी अपने वशमें रखती हैं, जिस शास्त्रको बृहस्पति जानते हैं और जिस शास्त्रको शुक्राचार्य जानते हैं ८

स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येत तास्ता रक्ष्याः कथं नरैः॥ अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथाऽनृतम् ॥ ९ ॥ इति यास्ताः कथं वीर संरक्ष्याः पुरुषैरिह । स्त्रीणां बुद्ध्यर्थनिष्कर्षादर्थशास्त्राणि शत्रुहन् ॥ १० ॥ बृहस्पतिप्रभृतिभिर्मन्ये सद्भिः कृतानि वै । संपूज्यमानाः पुरुषैर्विकुर्वंति मनो नृषु ॥ ११ ॥ अपास्ताश्च तथा राजन् विकुर्वंति मनः स्त्रियः । इमाः प्रजा महाबाहो धार्मिक्य इति नः श्रुतम् ॥ १२ ॥ सत्कृता सत्कृताश्चापि विकुर्वंति मनः सदा । कस्ताः शक्तो रक्षितुं स्यादिति मे संशयो महान् १३ तथा ब्रूहि महाभाग कुरूणां वंशवर्धन । यदि शक्या कुरुश्रेष्ठ रक्षा तासां कदाचन । कर्तुं वा कृतपूर्वं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि १४

वह शास्त्र स्त्रियोंकी बुद्धिसे बढ़िया नहीं है, इन स्त्रियोंको पुरुष किस भाँति वशमें रख सकते हैं ? जो स्त्रियें सत्यको असत्य और असत्यको सत्य बना डालती है ऐसी स्त्रियोंको हे वीर पुरुष! पुरुष किस प्रकार वशमें रख सकते हैं ॥ १० ॥ हे शत्रुनाशक ! मेरा यह मत है, कि-स्त्रियोंकी बुद्धिमें स्थित विषयोंको निचोड़कर बृहस्पति आदिने अर्थशास्त्र बनाया हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! स्त्रियें पुरुषोंसे अपमानित होने पर भी पुरुषोंके मनमें विकार उत्पन्न करती है और हे महाभुज ! स्त्रियें धर्मनिष्ठ होती हैं, यह भी हमने सुना है ॥१२॥ स्त्रियोंका सत्कार किया जाय अथवा अपमान किया जाय, परन्तु वे सदा ही मनमें विकार उत्पन्न करती हैं, ऐसी स्त्रियोंको विषयोंसे कौन बचा सकता है, यह मेरे मनमें महान् संशय है १३ हे महाभाग्यवान् ! हे कुरुवंशको बढ़ाने वाले!हे कुरुवंशके श्रेष्ठ पुरुष! किसी भी रीतिसे स्त्रियोंकी रक्षा की जासकती हो तो बताइये,अथवा पहिले किसी ने स्त्रीकी विषयसे रक्षाकी हो तो उसकी कथा मुझसे कहिये ॥ १४ ॥

उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ ✽ ✽

भीष्म उवाच । एवमेव महाबाहो नात्र मिथ्यास्ति किंचन । यथा ब्रवीषि कौरव्य नारीं प्रति जनाधिप ॥ १ ॥ अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन महात्मना ॥ २ ॥ प्रमदाश्च यथा सृष्टा ब्रह्मणा भरतर्षभ । यदर्थं तच्च ते तात प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥३॥ न हि स्त्रीभ्यः परं पुत्र पापीयः किंचिदस्ति वै । अग्निर्हि प्रमदा दीप्तो मायाश्च मयजा विभो ॥४॥ क्षुरधारा विषं सर्पो वन्हिरित्येकतः स्त्रियः । प्रजा इमा महाबाहो धार्मिक्य इति नः श्रुतम् ॥ ५ ॥ स्वयं गच्छन्ति देवत्वं ततो देवानियाद्भयम् । अथाभ्यगच्छन् देवास्ते पितामहमरिन्दम ॥ ६ ॥ निवेद्य मानसं चापि तूष्णीमासन्नधोमुखाः । तेषामन्तर्गतं ज्ञात्वा देवानां स पितामहः ॥ ७ ॥ मानवानां प्रमो-

भीष्मजीने कहा,कि-हे महाभुज कुरुवंशोत्पन्न नराधिप! तुमने स्त्रियोंके विषयमें जो कुछ कहा वह यथार्थ हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है१इस विषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहास कहूँगा इसमें महात्मा विपुलके गुरुपत्नीकी रक्षा करनेकी कथा है२और हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! हे तात ! हे नराधिप ! ब्रह्माजीने स्त्रियोंको किस प्रकार और किस लिये उत्पन्न किया है ? यह भी तुमसे कहूँगा ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! कोई भी प्राणी स्त्रियोंसे अधिक पापी नहीं हैं,तरुण स्त्रियें प्रदीप्त अग्निकी समान हैं और मयदानवकी उत्पन्नकी हुई माया हैं ॥ ४ ॥ छुरेकी धार, विष, सर्प, और वन्हिको एक ओर रक्खा जाय तथा स्त्रीको एक ओर रक्खा जाय तो बराबर हों, हे महाभुज राजन् ! और इस प्रजाको हमने धर्मनिष्ठ भी सुना है ॥ ५ ॥ हे शत्रुदमन युधिष्ठिर ! जब मनुष्य अपने आप देवता होने लगे तब देवताओंको भय होने लगा और वे पितामहके पास गए ॥ ६ ॥ और अपने मनकी बात उनसे निवेदन कर अपना मुख नीचेको करके चुपचाप बैठ गए, पिता-

हार्थं कृत्या नार्योऽसृजत् प्रभुः । पूर्वसर्गे तु कौन्तेय साध्व्यो नार्य इहाभवन् ॥ ८ ॥ आसाऽस्तु समुत्पन्नाः कृत्याः सर्गात् प्रजापतेः । ताभ्यः कामान् यथाकामं प्रादाद्धि स पितामहः ॥९॥ ताः कामलुब्धाः प्रमदाः प्रबाधंते नरान् सदा । क्रोधं कामस्य देवेशः सहायं चासृजत् प्रभुः ॥१०॥ असज्जन्तः प्रजाः सर्वाः कामक्रोधवशं गताः । न च स्त्रीणां क्रियाः काश्चिदिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ११ ॥ निरिंद्रिया ह्यशास्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति श्रुतिः । शय्यासनमलंकारमन्नपानमनार्यताम् ॥१२॥ दुर्वाग्भावं रतिं चैव ददौ स्त्रीभ्यः प्रजापतिः । न तासां रक्षणं शक्यं कर्तुं पुंसा कथंचन ॥ १३ ॥अपि विश्वकृता तात कुतस्तु पुरुषैरिह ।

मह देवताओंके मनकी बात समझ गए॥७॥फिर प्रभु ब्रह्माजीने मनुष्योंको मोहमें डालनेके लिये कृत्यारूप स्त्रियोंको रचा,हे कौन्तेय पहिले सर्गमें ये स्त्रियें सद्गुणी थीं ॥ ८ ॥ परन्तु पीछेसे प्रजापतिकी सृष्टिमेंसे दुराचारी कृत्याएँ उत्पन्न हुई थी और पितामहने उन कृत्याओंको इच्छानुसार वर दिये थे ॥९॥ वे प्रमदारूप कृत्याएँ कामके लोभसे पुरुषोंको सदा दुःख देती रहती हैं, देवेशने कामको सहायता देनेके लिये क्रोधको भी उत्पन्न किया है ॥१०॥ इन काम और क्रोधके वशमें हुई सम्पूर्ण प्रजा स्त्रियोंमें आसक्त होरही हैं, स्त्रियोंको किसी कर्मको करनेका अधिकार नहीं है, ऐसा धर्मशास्त्रोंमें कहा है ॥११॥ स्त्रियें निरिन्द्रिय हैं (अर्थात् वे इन्द्रियसुख भोगनेमें स्वतंत्र नहीं है) और उनको शास्त्र पढ़नेका अधिकार नहीं है, और वे असत्यकी मूर्ति हैं, ऐसा वेदमें कहा है, शय्या, आसन और आभूषणों पर प्रीति, खाना, पीना, अनार्यता, खोटी वाणी बोलना, दुर्विचार और रति इतनी वस्तु प्रजापतिने स्त्रियोंको दी हैं,पुरुष स्त्रियोंकी रक्षा किसी प्रकार नहीं कर सकते ॥१२॥१३॥ हे तात ! विश्वकर्ता

वाचा च वधबंधैर्वा क्लेशैर्वा विविधैस्तथा ॥ १४ ॥ न शक्या रक्षितुं नार्यस्ता हि नित्यमसंयताः । इदं तु पुरुषव्याघ्र पुरस्ताच्छ्रुतवानहम् ॥१५॥ यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन गुरुस्त्रियाः । ऋषिरासीन्महाभागो देवशर्मेति विश्रुतः ॥ १६ ॥ तस्य भार्या रुचिर्नाम रूपेणासदृशी भुवि । तस्या रूपेण संमत्ता देवगन्धर्वदानवाः ॥ १७ ॥ विशेषेण तु राजेन्द्र वृत्रहा पाकशासनः । नारीणां चरितज्ञश्च देवशर्मा महामुनिः ॥१८॥ यथाशक्ति यथोत्साहं भार्यां तामभ्यरक्षत । पुरन्दरं च जानीते परस्त्रीकामचारिणम् ॥ १९ ॥ तस्माद्यत्नेन भार्याया रक्षणं स चकार ह । स कदाचिदथ विस्तात यज्ञं कर्तुमनास्तदा ॥ २० ॥ भार्यासंरक्षणं कार्यं कथं स्यादित्यचिन्तयत् । रक्षाविधानं मनसा स संचिन्त्य

प्रजापति भी स्त्रियोंकी रक्षा नहीं कर सकते, फिर पुरुषकी तो बात ही क्या ? ॥ १४ ॥ स्त्रियोंकी विषयोंसे रक्षा नहीं कीजा-सकती,क्यों कि-स्त्रियें सदा उद्धत रहती हैं,हे पुरुषव्याघ्र राजन् ! मैंने पहिले एक कथा सुनी है कि-॥ १५ ॥ पहिले विपुल नामक एक शिष्यने गुरुकी स्त्रीके शीलकी रक्षाकी थी, पहिले देवशर्मा नामक एक महाभाग्यवान् और प्रसिद्ध ऋषि थे ॥ १६ ॥ उनके रुचि नामक एक स्त्री थी, उस समय पृथ्वी पर उसकी समान रूपवती और कोई स्त्री नहीं थी, देवता और दानव तथा गन्धर्व भी उसके रूपको देख कर मत्त होजाते थे ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! वृत्रहन्ता इन्द्र तो उस पर बहुत ही आसक्त होगया था, महामुनि देवशर्मा स्त्रियोंके चरित्रको जानते थे ॥ १८ ॥ इस लिये वह अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार अपनी स्त्रीकी रक्षा करते थे और इन्द्रको परस्त्रीलम्पट भी समझते थे ॥ १९ ॥ अत एव वह मुनि प्रयत्नपूर्वक अपनी स्त्रीकी रक्षा करने लगे, हे तात ! एक समय उनके मनमें यज्ञ करनेका विचार उठा ॥ २० ॥ यह

महातपाः ॥ २१ ॥ आहूय दयितं शिष्यं विपुलं प्राह भार्गवम् । देवशर्मोवाच । यज्ञकारो गमिष्यामि रुचिं चेमां सुरेश्वरः २२ यतः प्रार्थयते नित्यं तां रक्षस्व यथाबलम् । अप्रमत्तेन ते भाव्यं सदा प्रति पुरन्दरम् ॥ २३ ॥ स हि रूपाणि कुरुते विविधानि भृगूत्तम । भीष्म उवाच । इत्युक्तो विपुलस्तेन तपस्वी नियतेन्द्रियः ॥ २४ ॥ सदैवोग्रतपा राजन्नग्न्यर्कसदृशद्युतिः । धर्मज्ञः सत्यवादी च तथेति प्रत्यभाषत ॥ २५ ॥ पुनश्चेदं महाराज पप्रच्छ प्रस्थितं गुरुम् । विपुल उवाच । कानि रूपाणि शक्रस्य भवंत्यागच्छतो मुने ॥ २६ ॥ वपुस्तेजश्च कीदृग्वै तन्मे व्याख्यातुमर्हसि । भीष्म उवाच । ततः स भगवांस्तस्मै विपुलाय महात्मने ॥ २७ ॥ आचचक्षे यथा तत्त्वं मायां शक्रस्य भारत । देव-

मनमें अपनी स्त्रीकी रक्षा करनेका विचार करने लगे और उन्होंने अपने प्रिय शिष्य विपुलको बुला कर कहा, देवशर्माने कहा, कि–मैं यज्ञ करना चाहता हूँ और देवराज इन्द्र इस रुचिको सदा पाना चाहता है, अतः तू अपनी शक्तिके अनुसार इसकी रक्षा करना और इन्द्रसे सदा सावधान रहना २१–२३ हे भृगुकुलोत्तम ! इन्द्र अनेक प्रकारके रूपोंको धारण करता है, भीष्मजीने कहा, कि-जब तपस्वी जितेन्द्रिय विपुलसे इस प्रकार कहा २४ तब सदा उग्र तप करने वाले अग्नि तथा सूर्यकी समान कांतिमान्, धर्मज्ञ और सत्यवादी विपुलने उत्तर दिया कि–"मैं ऐसा ही करूँगा" ॥२५॥ हे महाराज ! जब गुरु चलनेको उद्यत हुए तब विपुलने गुरुसे पूछा, कि–हे गुरो ! इन्द्र जब आता है, तब वह कैसे रूपमें आता है ॥२६॥ और उसका शरीर तथा तेज कैसा होता है, यह मुझे बताना उचित है, भीष्मजीने कहा, कि–वह भगवान् मुनि यह सुन कर विपुलसे ॥ २७ ॥ हे भारत ! इन्द्रकी मायाको सुनाने लगे, देवशर्माने कहा, कि–

शर्मोवाच । बहुमायः स विप्रर्षे भगवान् पाकशासनः ॥ २८ ॥
तांस्तान्विकुरुते भावान् बहूनथ मुहुर्मुहुः ॥ किरीटी वज्रधृग्धन्वी
मुकुटी बद्धकुण्डलः ॥२९॥ भवत्यथ मुहूर्तेन चंडालसमदर्शनः ।
शिखी जटी चीरवासाः पुनर्भवति पुत्रक ॥३०॥ बृहच्छरीरश्च
पुनश्चीरवासाः पुनः कृशः । गौरं श्यामं च कृष्णं च वर्णं विकु-
रुते पुनः ॥ ३१ ॥ विरूपो रूपवांश्चैव युवा वृद्धस्तथैव च ।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव वैश्यः शूद्रस्तथैव च ॥ ३२ ॥ प्रतिला-
मोऽनुलोमश्च भवत्यथ शतक्रतुः । शुकवायसरूपी च हंस-
कोकिलरूपवान् ॥३३॥ सिंहव्याघ्रगजानां च रूपं धारयते पुनः ।
दैवं दैत्यमथो राज्ञां वपुर्धारयतेऽपि च ॥ ३४ ॥ अकृशो वायु-
भग्नांगः शकुनिर्विकृतस्तथा । चतुष्पाद्बहुरूपश्च पुनर्भवति

हे विप्रर्षे ! इन्द्र बड़ा मायावी है ॥ २८ ॥ वह बारम्बार अनेक प्रकारके रूपोंको धारण करता है, वह एक ही मुहूर्तमें मुकुटधारी वज्रधारी, धनुर्धर और कानोंमें कुण्डल धारण करनेवाला बन जाता है ॥ २९ ॥ फिर एक मुहूर्तमें ही चाण्डालकेसे रूपको धारण कर लेता है, और हे पुत्र ! वह शिखाधारी, जटाधारी और वल्कल वस्त्रधारी बन जाता है ॥३०॥ एक क्षणमें ही महाकाय होजाता है, फिर फटे हुए वस्त्रोंको धारण कर लेता है, कुछ ही समयमें दुर्बल शरीर होजाता है, क्षणमें गोरा, क्षणमें काला और क्षणमें श्याम शरीरवाला होजाता है ॥३१॥ घड़ीमें कुरूप, घड़ीमें रूपवान्, क्षणभरमें वृद्ध और क्षणभरमें तरुण और क्षणभरमें ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रके रूपको धारण कर लेता है ॥ ३२ ॥ वह घड़ीमें प्रतिलोम, घड़ीमें अनुलोम बन जाता है और वह तोते, कौए, हंस कोयल, सिंह, व्याघ्र और हाथीके रूपको बारम्बार धारण कर लेता है और वह देव, दैत्य और राजाओंके स्वरूपको धारण कर लेता है ३३-३४

चालिशः ॥ ३५ ॥ मक्षिकामशकादीनां वपुर्धारयतेऽपि च । न शक्यमस्य ग्रहणं कर्तुं विपुल केनचित् ॥ ३६ ॥ अपि विश्वकृता तात येन सृष्टमिदं जगत्।पुनरंतर्हितः शक्रो दृश्यते ज्ञानचक्षुषा ३७ वायुभूतश्च स पुनर्देवराजो भवत्युत । एवं रूपाणि सततं कुरुते पाकशासनः ॥ ३८ ॥ तस्माद्विपुल यत्नेन रक्षेमां तनुमध्यमाम् । यथा रुचिं नावलिहेद्देवेन्द्रो भृगुसत्तम ॥३९॥ क्रतावुपहिते न्यस्तं हविः श्वेव दुरात्मवान् । एवमाख्याय स मुनिर्यज्ञकारोऽगम-त्तदा ॥ ४० ॥ देवशर्मा महाभागस्ततो भरतसत्तम । विपुलस्तु वचः श्रुत्वा गुरोश्चिन्तामुपेयिवान् ॥४१॥ रक्षां च परमां चक्रे

किसी समय वह स्थूल शरीरवाला बन जाता है और किसी समय शरीरको टेढ़ा कर लेता है और किसी समय पक्षीके स्वरूप को धारण कर लेता है, किसी समय विकारी होजाता है, किसी समय चार पैरवाला, किसी समय बहुरूपिया और किसी समय मूर्ख बन जाता है, ॥ ३५ ॥ किसी समय मक्खीके और किसी समय मच्छरके स्वरूपको धारण कर लेता है, हे विपुल ! कोई भी इसको पकड़ नहीं सकता ॥३६॥ हे तात ! जिसने जगत्को रचा है, वह विश्वकर्ता भी इसको नहीं पकड़ सकता, परन्तु अन्तर्धान हुए इन्द्रको ज्ञानदृष्टिसे ही देखा जासकता है ॥३७॥ वह देव वायुके रूपको भी धारण कर लेता है और देवराज भी बना रहता है यह इन्द्र सदा अनेक रूपोंको बदलता रहता है ३८ अतः हे विपुल ! तू इस पतली कमरवाली स्त्रीकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना, कि–जिससे कि–वह दुरात्मा यज्ञकी हविको चाटने वाले कुत्तेकी समान मेरी स्त्री रुचिको भ्रष्ट न कर जाय, इस प्रकार कहकर वह मुनि महाभाग देवशर्मा यज्ञ करनेके लिये चले गए, परन्तु हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! विपुल गुरुकी बातका स्मरण करके चिंता करता हुआ गुरुकी पत्नीकी महाबली इन्द्रसे

देवराजान्महाबलात्। किं नु शक्यं मया कर्तुं गुरुदाराभिरक्षणे ४२ मायावी हि सुरेन्द्रोऽसौ दुर्धर्षश्चापि वीर्यवान्। नापिधायाश्रमं शक्यो रक्षितुं पाकशासनः ॥४३॥ उटजं वा तथा ह्यस्य नानाविधसरूपता। वायुरूपेण वा शक्रो गुरुपत्नीं प्रधर्षयेत् ॥४४॥ तस्मादिमां संप्रविश्य रुचिं स्थास्येऽहमद्य वै। अथवा पौरुषेणेयं न शक्या रक्षितुं मया ॥ ४५ ॥ बहुरूपो हि भगवाञ्छ्रूयते पाकशासनः। सोऽहं योगबलादेनां रक्षिष्ये पाकशासनात् ॥ ४६ ॥ गात्राणि गात्रैरस्याहं संप्रवेक्ष्ये हि रक्षितुम्। यद्युच्छिष्टामिमां पत्नीमद्य पश्यति मे गुरुः ॥ ४७ ॥ शप्स्यत्यसंशयं कोपाद्दिव्यज्ञानो महातपाः। न चेयं रक्षितुं शक्या यथान्या प्रमदा नृभिः ४८ मायावी हि सुरेन्द्रोसावहो प्राप्तोऽस्मि संशयम्। अवश्यं करणीयं

रक्षा करने लगा, वह विचारने लगा, कि-मैं गुरुपत्नीकी रक्षा करनेके लिये क्या उपाय करूँ ? ३९-४२ देवराज इन्द्र मायावी है, दुराधर्ष है और वीर्यवान् है, आश्रमके दरवाजोंको बन्द करके भी उसको आनेसे नहीं रोका जासकता क्योंकि-यह नाना प्रकारके रूपोंको धारण करता है अतः इन्द्र वायुका रूप धारण करके कुटीमें घुस गुरुपत्नीको दूषित कर सकता है ४३-४४ अतः मुझे इस रुचि स्त्रीके शरीरमें प्रवेश करके ही रहना चाहिये, और किसी प्रकारका पुरुषार्थ करके मैं इसकी रक्षा नहीं कर सकूँगा ४५ भगवान् इन्द्रको मैंने बहुतसे रूप धारण कर सकनेवाला सुना है अतः मैं योगबलसे ही इस रुचिकी इन्द्रसे रक्षा कर सकूँगा ४६ मैं अपने शरीरके अवयवोंसे इस स्त्रीके शरीरके अवयवोंमें प्रवेश करके ही इसकी रक्षा कर सकता हूँ. परन्तु मेरे गुरु अपनी स्त्रीको उच्छिष्ट हुई देख लें तो वह दिव्यज्ञानी महातपस्वी मुझे अवश्य ही शाप देदेंगे, परन्तु सामान्य स्त्रीकी जैसे पुरुष रक्षा कर लेते हैं, तैसे इस स्त्रीकी रक्षा नहीं की जासकती ४७-४८ यह इन्द्र भी मायावी है,

हि गुरोरिह हि शासनम् ॥ ४९ ॥ यदि त्वेतदहं कुर्यामाश्चर्यं स्यात् कृतं मया ।योगेनाथ प्रवेशो हि गुरुपत्न्याः कलेवरे । एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः ॥ ५० ॥ अशक्तः पद्मपत्रस्थो जलबिन्दुर्यथाचलः ॥ ५१ ॥ निर्मुक्तस्य रजोरूपान्नापराधो भवेन्मम यथा हि शून्यां पथिकः सभामध्यावसेत् पथि५२ तथाद्यावासयिष्यामि गुरुपत्न्याः कलेवरम् । एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः ॥ ५३ ॥ इत्येवं धर्ममालोक्य वेदवेदांश्च सर्वशः । तपश्च विपुलं दृष्ट्वा गुरोरात्मन एव च ॥ ५४ ॥ इति निश्चत्य मनसा रक्षां प्रति स भार्गवः । अन्वतिष्ठत्परं यत्नं यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ ५५ ॥ गुरुपत्नीं समासीनो विपुलः स

अतः मेरे ऊपर तो संकट आ पड़ा है, परन्तु मुझे गुरुकी आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिये ४९ यदि मैं इस गुरुपत्नीके शरीरमें योगबलसे प्रवेश करूँ तो यह काम एक आश्चर्यजनक होगा ५० जिस प्रकार जलकी बिन्दु कमलके पत्र पर असक्त भावसे स्थिर रहती है, इसी प्रकार मैं भी सावधानीके साथ गुरुपत्नीमें आसक्ति रक्खे बिना अचल होकर निवास करूँगा ॥ ५१ ॥ मैं रजोगुणके स्वरूपसे रहित हूँ अतः मुझे दोष न लगेगा,जैसे एक बटोही मार्गमें जाते २ एक उजाड़ धर्मशालामें निवास करके रहता है ५२ इसी प्रकार मैं भी आज इस गुरुपत्नीके कलेवरमें सावधान होकर निवास कर सकता हूँ, इस प्रकार मैं इसके शरीरमें प्रवेश करके रहूँगा ५३ इस प्रकार विपुलने धर्मका अवलोकन किया, सब वेदोंका विचार किया और अपने तथा अपने गुरुके तपका भी मनमें विचार किया५४इस प्रकार निश्चय करके भृगुकुलोत्पन्न विपुलने गुरुपत्नीकी रक्षा करनेके लिये जिस प्रकार महाप्रयत्नका आरम्भ किया था उसको हे राजन् ! तू सुन॥५५॥ महातपस्वी विपुल गुरुपत्नीके समीप बैठ गया और अपने पास बैठी हुई पवि-

महातपाः। उपासोनामनिंद्यांगीं यथार्थे समलोभयत् ॥ ५६ ॥
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्या रश्मिं संयोज्य रश्मिभिः। विवेश विपुलः
कायमाकाशं पतगो यथा ॥५७॥ लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन
च। अविचेष्टन्नतिष्ठद्वै छायेवान्तर्हितो मुनिः ॥ ५८ ॥ ततो
विष्टभ्य विपुलो गुरुपत्न्याः कलेवरम्। उवास रक्षणे युक्तो न
च सा तमबुद्ध्यत ॥ ५९ ॥ यं कालं नागतो राजन् गुरुस्तस्य
महात्मनः। क्रतुं समाप्य स्वगृहं तं कालं सोऽभ्यरक्षत ॥६०॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे विपुलोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

भीष्म उवाच। तदा कदाचिद्देवेन्द्रो दिव्यरूपवपुर्धरः। इद-
मन्तरमित्येवमभ्यगात्तमथाश्रमम् ॥१॥ रूपमप्रतिमं कृत्वा लोभ-
नीयं जनाधिपः। दर्शनीयतमो भूत्वा प्रविवेश तमाश्रमम् ॥२॥

ङ्गीसे यथार्थ बातें कह कर उसको तन्मय कर दिया ॥ ५६ ॥
तदनन्तर विपुलने अपने दोनों नेत्रोंसे गुरुपत्नीके दोनों नेत्रोंमें
प्रवेश किया, अपने नेत्रकी किरणोंसे गुरुपत्नीके नेत्रकी किरणोंमें
प्रवेश किया और पवन जैसे आकाशमें प्रवेश करता है, इसी प्रकार
विपुलने गुरुपत्नीके शरीरमें प्रवेश किया ॥५७॥ अपने लक्षणसे
गुरुपत्नीके लक्षणमें प्रवेश किया, अपने मुखसे गुरुपत्नीके मुखमें
प्रवेश किया, तब किसी क्रियाको न करते हुए मुनि विपुल स्थिर
और अदृश्य होकर बैठे रहे॥५८॥ इस प्रकार विपुलने गुरुपत्नीके
शरीरको स्थिर कर दिया और उसकी रक्षा करने लगे, परन्तु
गुरुपत्नीको यह बात प्रतीत नहीं हुई ॥५९॥ हे राजन्! महात्मा
विपुलके गुरु जब तक यज्ञको समाप्त कर न लौटे तब तक विपुल
उसकी रक्षा करते रहे ॥६०॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४०॥

भीष्मजीने कहा, कि-तदनन्तर एक समय देवेन्द्र यही अव-
सर है, यह समझकर दिव्य रूप और शरीरको धारण कर

स ददर्श समासीनं विपुलस्य कलेवरम् । निश्चेष्टं स्तब्धनयनं यथा लेख्यगतं तथा ॥ ३ ॥ रुचिं च रुचिरापाङ्गीं पीनश्रोणि-पयोधराम् । पद्मपत्रविशालाक्षीं संपूर्णेन्दुनिभाननाम् ॥ ४ ॥ सा तमालोक्य सहसा प्रत्युत्थातुमियेष ह । रूपेण विस्मिता कोऽसी-त्यथ वक्तुमिवेच्छती ॥ ५ ॥ उत्थातुकामा तु सती विष्टब्धा विपुलेन सा । निगृहीता मनुष्येन्द्र न शशाक विचेष्टितुम् ॥ ६ ॥ तामाबभाषे देवेन्द्रः साम्ना परमवल्गुना । त्वदर्थमागतं विद्धि देवेद्रं मां शुचिस्मिते ॥ ७ ॥ क्लिश्यमानमनङ्गेन त्वत्संकल्पभवेन ह । तत्संप्राप्तं हि मां सुभ्रु पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ ८ ॥ तमेवं वादिनं शक्रं शुश्राव विपुलो मुनिः । गुरुपत्न्याः शरीरस्थो ददर्श

आश्रममें आया ॥ १ ॥ हे राजन् ! इन्द्र अप्रतिम, लोभमें डालने वाले मनोहर रूपको धारण कर आश्रममें घुस गया, तहाँ उसने क्रियारहित, स्थिर नेत्रवाले तथा चित्रलिखितकी समान विपुलके शरीरको (पड़े हुए) देखा ॥ २ ॥ ३ ॥ तथा दूसरी ओर मनोहर कटाक्षवाली, महानितंब और स्तनोंवाली, कमल पत्रकी समान नेत्रवाली और पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान मुखवाली रुचिको बैठी हुई देखा ॥ ४ ॥ रुचि इन्द्रको देखकर एकाएक उठना चाहने लगी और इन्द्रके रूपको देखकर आश्चर्यित होगई और "तू कौन है" यह बूझना भी चाहने लगी ॥ ५ ॥ रुचि उठना चाहती थी, परन्तु विपुलने उसको योगबलसे तहाँ ही बैठाये रक्खा हे मनुष्येंद्र ! इस प्रकार वह कुछ चेष्टा न कर सकी ॥ ६ ॥ तदनन्तर देवेन्द्र उस स्त्रीको अतिमधुर रीतिसे समझाता हुआ कहने लगा, कि–हे पवित्र हास्यवाली स्त्री ! तू मुझे अपने लिये आया हुआ देवेन्द्र समझ ॥ ७ ॥ तेरा विचार करने पर काम मुझे दुःख देरहा है अतः हे सुभ्रु ! मैं तेरे पास आया हूँ, और समय बीता जारहा है ॥ ८ ॥ इन्द्रके इस

त्रिदशाधिपम् ॥९॥ न शशाक च सा राजन् प्रत्युत्थातुमनिंदिता। वक्तुं च नाशकद्राजन् विष्टब्धा विपुलेन सा ॥ १० ॥ आकारं गुरुपत्न्यास्तु स विज्ञाय भृगूद्वहः। निजग्राह महातेजा योगेन बलवत् प्रभो ॥ ११ ॥ बबंध योगबंधैश्च तस्याः सर्वेंद्रियाणि सः। तां निर्विकारां दृष्ट्वा तु पुनरेव शचीपतिः ॥१२॥ उवाच व्रीडितो राजंस्तां योगबलमोहिताम्। एह्येहीति ततः सा तु प्रतिवक्तुमियेष तम् ॥ १३ ॥ स तां वाचं गुरोः पत्न्या विपुलः पर्यवर्तयत्। भोः किमागमने कृत्यमिति तस्यास्तु निःसृता ॥ १४॥ वक्त्राच्छशांकसदृशाद्वाणी संस्कारभूषणा। व्रीडिता सा तु तद्वाक्यमुक्त्वा परवशा तदा ॥ १५ ॥ पुरन्दरश्च तत्रस्थो बभूव विमना

कथनको विपुलने सुना और गुरुपत्नीके शरीरमें स्थित विपुलने इन्द्रको देखा भी ॥९॥ परन्तु हे राजन्! विपुलके योगबलसे रोक रखनेके कारण वह अनिन्दित स्त्री न उठ सकी न कुछ उत्तर देसकी ॥ १० ॥ गुरुपत्नीकी आकृति (परसे यह इन्द्रका स्वागत करेगी यह) जान कर महातेजस्वी भृगुकुलोत्पन्न विपुलने हे प्रभो! योगबलसे गुरुपत्नीको भली प्रकार अंकुशमें रक्खा ११ और योगके बन्धन बाँध कर उस स्त्रीकी सब इन्द्रियोंको भी अपने वशमें कर लिया. उस स्त्रीको निर्विकार देख कर शचीपति इन्द्र लज्जित होगया और लजाता लजाता हे राजन्! योगबलसे पराधीन हुई उस स्त्रीसे फिर कहने लगा, कि-"यहाँ आओ! यहाँ आओ!" तब वह स्त्री इन्द्रको उत्तर देनेकी इच्छा करने लगी ॥ १३ ॥ परन्तु उस समय विपुलने गुरुपत्नीकी वाणीमें फेरफार कर दिया, इससे उस स्त्रीके मुखमेंसे यह बात निकली, कि-आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है? चन्द्रमाकी समान सुन्दर मुखमेंसे संस्कारसे शोभायमान इतनी बात निकली, और पराधीन हुई वह स्त्री इतना कह कर शरमा गई ॥ १५ ॥

भृशम् । स तद्वैकृतमालक्ष्य देवराजो विशांपते ॥ १६ ॥ अवै-
क्षत सहस्राक्षस्तदा दिव्येन चक्षुषा । स ददर्श मुनिं तस्याः
शरीरांतरगोचरम् ॥ १७ ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शे गुरुपत्न्याः शरीर-
गम् । स तं घोरेण तपसा युक्तं दृष्ट्वा पुरंदरः ॥ १८ ॥ प्रावेपत
सुसंत्रस्तः शापभीतस्तदा विभो । विमुच्य गुरुपत्नीं तु विपुलः
सुमहातपाः । स्वकलेवरमाविश्य शक्रं भीतमथाब्रवीत् ॥ १९ ॥
विपुल उवाच । अजितेन्द्रिय दुर्बुद्धे पापात्मक पुरंदर । न चिरं
पूजयिष्यंति देवास्त्वां मानुषास्तथा ॥ २० ॥ किं नु तद्विस्मृतं
शक्र न तन्मनसि ते स्थितम् । गौतमेनासि यन्मुक्तो भगांकपरि-
चिन्हितः ॥ २१ ॥ जाने त्वां बालिशमतिमकृतात्मानमस्थिरम् ।

हे राजन् ! तहाँ खड़ा हुआ इन्द्र यह बात सुनकर अपने मनमें बड़ा उदास हुआ और इस प्रकार वाणीके विकार (विलक्षणता) को देखकर देवराज सहस्राक्ष इन्द्रने उस समय दिव्यदृष्टिसे देखा तो उसको उस स्त्रीके शरीरमें वायुरूपसे बैठे हुए विपुल मुनि दीखे ॥ १७ ॥ आरसीमें जैसे प्रतिबिम्ब दीखता है, इसी प्रकार पुरन्दरने गुरुपत्नीके शरीरमें रहकर भयंकर तप करते हुए मुनि को देखा ॥१८॥ हे राजन् ! विपुलको देखकर इन्द्र शापके डरसे भयभीत होगया और काँपने लगा तब महातपस्वी विपुल भी गुरुपत्नीके शरीरको त्यागकर अपने शरीरमें आगया और भयभीत होते हुए इन्द्रसे कहने लगा, ॥ १९ ॥ विपुलने कहा, कि हे इन्द्रियाधीन दुर्बुद्धि पापी पुरन्दर ! (तेरे ऐसे कर्मसे) देवता तथा मनुष्य बहुत समय तक तेरी पूजा नहीं करेंगे २० हे शक्र ! गौतमने तेरे पूर्ण शरीरको भगांकित कर दिया था, इस बातको क्या तू भूल गया ? क्या यह बात तेरे मनमें नहीं गुजारती है ? ॥ २१ ॥ मैं जानता हूँ, कि तू मूढ़ बुद्धि है, तेरा मन वशमें नहीं है,तू चञ्चल है। हे मूढ़ ! मैं इस स्त्रीकी रक्षा कर

मयेयं रक्ष्यते मूढ़ गच्छ पाप यथागतम् ॥ २२ ॥ नाहं त्वामद्य मूढ़ात्मन् दहेयं हि स्वतेजसा । कृपायमानस्तु न ते दग्धुमिच्छामि वासव ॥ २३ ॥ स च घोरतमो धीमान् गुरुस्त्वं पापचेतसम् । दृष्ट्वा त्वां निर्दहेदद्य क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ॥ २४ ॥ नैवं तु शक्र कर्तव्यं पुनर्मान्याश्च ते द्विजाः । मा गमः स्वसुतामात्यः क्षयं ब्रह्मबलार्दितः ॥ २५ ॥ अमरोऽस्मीति यद्द बुद्धिं समास्थाय प्रवर्तसे । मावमंस्था न तपसा न साध्यं नाम किंचन ॥ २६ ॥ भीष्म उवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं शक्रो विपुलस्य महात्मनः । अकिंचिदुक्त्वा व्रीडार्तस्तत्रैवांतरधीयत ॥२७॥ मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु देवशर्मा महातपाः । कृत्वा यज्ञं यथाकाममाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २८ ॥ आगतेऽथ गुरौ राजन् विपुलः प्रियकर्मकृत् ।

रहा हूँ, अतः हे पापी ! तू जैसे आया है, तेसे ही पीछेको लौट जा ॥ २२ ॥ हे मूढात्मा ! मैं आज तुझे अपने तेजसे भस्म नहीं करता, क्योंकि-हे इन्द्र ! मुझे तुझ पर दया आरही है, इसलिये मैंने तुझको भस्म नहीं किया है ॥ २३ ॥ मेरे बुद्धिमान् गुरु और भी भयंकर हैं,वे तुझ पापी मन वालेको देख पायँगे तो तुझे क्रोधसे प्रदीप्त हुए नेत्रोंसे देख कर आज ही भस्म कर डालेंगे ॥२४॥ हे इन्द्र ! तू फिर कभी ऐसा न करना और ब्राह्मणोंका तो तुझे सत्कार ही करना चाहिये अर्थात् तुझे ब्राह्मणकी स्त्री पर ऐसी कुदृष्टि डालना उचित नहीं है, जा तेरा ब्रह्मबलसे पीड़ित होकर कहीं पुत्र और मंत्रियोंसहित नाश न होजाय ! २५ यदि तू अपनेको अमर मान कर ऐसा करता हो तो तू किसीका अपमान न कर क्योंकि-तपसे कुछ भी असाध्य नहीं है २६ भीष्मजीने कहा, कि-महात्मा विपुलके वचनको सुन कर इन्द्र लज्जित होगया और विना कुछ कहे हुए ही अन्तर्धान होगया २७ तदनन्तर एक मुहूर्त बीतते ही महातपस्वी देवशर्मा

रक्षितां गुरवे भार्यां न्यवेदयदनिंदिताम् ॥ २९ ॥ अभिवाद्य च शांतात्मा स गुरुं गुरुवत्सलः विपुलः पर्युपातिष्ठद्यथापूर्वमशंकितः ॥ ३० ॥ विश्रांताय ततस्तस्मै सहासीनाय भार्यया । निवेदयामास तदा विपुलः शक्रकर्म तत् ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा स मुनिस्तुष्टो विपुलस्य प्रतापवान् । बभूव शीलवृत्ताभ्यां तपसा नियमेन च ॥३२॥ विपुलस्य गुरौ वृत्तिं भक्तिमात्मनि तत्प्रभुः । धर्मे च स्थिरतां दृष्ट्वा साधु साध्वित्यभाषत ॥ ३३ ॥ प्रतिलभ्य च धर्मात्मा शिष्यं धर्मपरायणम् । वरेण च्छन्दयामास देवशर्मा महामतिः॥३४॥स्थितिं च धर्मे जग्राह स तस्माद्गुरुवत्सलः। अनु-

---

इच्छानुसार यज्ञ करके अपने आश्रममें लौट आये २८ हे राजन् ! गुरुके आने पर प्रिय कर्म करने वाले विपुलने अपने आप जिसकी रक्षाकी थी, ऐसी अनिन्दित गुरुपत्नी गुरुके अर्पण करदी २९ तदनन्तर मनमें शान्त हुआ गुरुका प्रिय शिष्य विपुल गुरुको प्रणाम कर निःशङ्क मनसे प्रथमकी समान गुरुकी सेवा करने लगा ३० गुरु परिश्रमरहित होकर अपनी स्त्रीके साथ एक स्थानमें बैठे हुए थे तव विपुलने उनके पास जाकर इन्द्रकी बात कही,उसको सुनकर प्रतापी गुरु विपुल पर प्रसन्न हुए तथा उसके शील आचरण, तप और नियमको देखकर प्रसन्न हुए ३१-३२ तथा विपुलकी अपने ऊपर सद्वृत्ति, भक्ति तथा धर्म पर स्थिर निष्ठाको देख कर कहने लगे, कि-बहुत अच्छा किया बहुत अच्छा किया ३३ धर्मात्मा महाबुद्धिमान् देवशर्माने धर्ममें परायण अपने शिष्यसे कहा, कि-वर माँग ३४ तब गुरु पर प्रेम रखनेवाले विपुलने कहा,कि-"मेरी धर्म पर आस्था रहे" तब गुरुके तथास्तु कहने पर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण तप करने लगा ३५ महातपस्वी देवशर्मा भी बल और वृत्रनाशक इन्द्रसे निर्भय होकर निर्जन

ज्ञातश्च गुरुणा चचारानुत्तमं तपः॥३५॥तथैव देवशर्मापि सभार्यः समं हातपाः। निर्भयो बलवृत्रघ्नाच्चचार विजने वने ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

भीष्म उवाच। विपुलस्त्वकरोत्तीव्रं तपः कृत्वा गुरोर्वचः। तपोयुक्तमथात्मानममन्यत स वीर्यवान् ॥ १ ॥ स तेन कर्मणा स्पर्धन् पृथिवीं पृथिवीपते। चचार गतभीः प्रीतो लब्धकीर्तिवरो नृप ॥ २ ॥ उभौ लोकौ जितौ चापि तथैवामन्यत प्रभुः। कर्मणा तेन कौरव्य तपसा विपुलेन च ३ अथ काले व्यतिक्रांते कस्मिंश्चित्कुरुनन्दन। रुच्या भगिन्या आदानं प्रभूतधनधान्यवत् ४ एतस्मिन्नेव काले तु दिव्या काचिद्वरांगना। बिभ्रती परमं रूपं जगामाथ विहायसा ५ तस्याः शरीरात् पुष्पाणि पतितानि

वनमें भार्याके साथ विहार करने लगे ३६ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ छ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि-विपुल गुरुके वचनका पालन कर तीव्र तप करने लगा और वह वीर्यवान् अपनेको तपस्वी समझने लगा ॥१॥ और हे राजन्! अपने उत्तम कर्मसे सम्पूर्ण भूमण्डलसे स्पर्धा करता हुआ गुरुसे वरदान और कीर्ति पा प्रसन्न हो निर्भयतापूर्वक पृथ्वी पर घूमने लगा ॥ २ ॥ हे कुरुकुलोत्पन्न युधिष्ठिर! गुरुपत्नीकी रक्षा करके और तप करके विपुल समझने लगा, कि-मैंने इस लोकको भी जीत लिया है और परलोकको भी जीतलिया है॥ ३ ॥ फिर हे कुरुनन्दन! कुछ समय वीत जाने पर जिसमें बहुतसा धन खरच हुआ था, ऐसा रुचिकी बहिनका विवाह आ गया ४ इसी अवसरमें एक दिव्य स्त्री उत्तम रूप धारण करके आकाशमार्गसे जा रहीथी ५ हे भरतवंशी राजन्! उस स्त्रीके शरीर परसे रुचिके पतिके

महीतले। तस्याश्रमस्याविदूरे दिव्यगंधानि भारत ६ तान्य गृह्णात्ततो राजन् रुचिर्ललितलोचना।तदा निमंत्रकस्तस्या अंगेभ्यः क्षिप्रमागमत् ७ तस्या हि भगिनी तात ज्येष्ठा नाम्ना प्रभावती। भार्या चित्ररथस्याथ बभूवांगेश्वरस्य वै ८ पिनह्य तानि पुष्पाणि केशेषु वरवर्णिनी आमंत्रिता ततोऽगच्छद्रुचिरंनागपतेर्गृहम् ॥९॥ पुष्पाणि तानि दृष्ट्वा तु तदांगेंद्रवरांगना। भगिनीं चोदयामास पुष्पार्थे चारुलोचना ॥ १० ॥ सा भर्त्रे सर्वमाचष्ट रुचिः सुरुचिरानना। भामिन्या भाषितं सर्वमृषिस्तच्चाभ्यनन्दत ॥ ११ ॥ ततो विपुलमानाय्य देवशर्मा महातपाः। पुष्पार्थे चोदयामास गच्छ गच्छेति भारत ॥ १२ ॥ विपुलस्तु गुरोर्वाक्यमविचार्य महातपाः। स तथेत्यब्रवीद्राजंस्तं च देशं जगाम ह ॥ १३ ॥ यस्मिन् देशे तु तान्यासन् पतितानि नभस्तलात्। अम्लानान्यपि तत्रासन् कुसुमान्यपराण्यपि ॥ १४ ॥ स ततस्तानि

आश्रममें दिव्य गन्ध वाले कुछ पुष्प गिर पड़े ६ हे राजन्! ललितलोचना रुचिने उन पुष्पोंको उठा लिया था, इतनेमें ही अंगदेशके राजाका दूत उसको बुलाने आया ७ हे तात! रुचिकी प्रभावती नाम वाली बड़ी बहिन अंगदेशके राजा चित्ररथकी भार्या थी,अंगदेशके राजाका निमन्त्रण पाकर रूपवती रुचि उन पुष्पोंको अपने केशोंमें गूँथ कर अङ्गराजके घर गई८ ९तहाँ सुन्दर-नेत्रा अंगराजकी सुन्दर पत्नी उन पुष्पोंको देखकर अपनी बहिनसे ऐसे ही और पुष्पोंके लिये कहने लगी१०अपनी बहिनकी सबबात सुन्दरवदना रुचिने अपने पतिसे कही,ऋषिने उसकी बातका समर्थन किया११हे भरतवंशी राजन्! महातपस्वी देवशर्माने विपुलको बुलाकर पुष्प लेनेके लिये भेजा१२ महातपस्वी विपुल गुरुकी बात पर विचार न कर तथास्तु कह कर हे राजन्!उस प्रदेशमें गया १३ कि जिस प्रदेशमें पहिले आकाशमेंसे पुष्प गिरे थे, तहाँ और

जग्राह दिव्यानि रुचिराणि च । प्राप्तानि स्वेन तपसा दिव्यगंधानि भारत ॥१५॥ संभाव्य तानि प्रीतात्मा गुरोर्वचनकारकः। तदाजगाम तूर्णं च चंपां चंपकमालिनीम् ॥ १६ ॥ स वने निर्जने तात ददर्श मिथुनं नृणाम् । चक्रवत् परिवर्तंतं गृहीत्वा पाणिना करम् ॥ १७ ॥ तत्रैकस्तूर्णमगमत्तत्पदे च विवर्तयन् । एकस्तु न तदा राजंश्चक्रतुः कलहं ततः ॥ १८ ॥ त्वं शीघ्रं गच्छसीत्येकोऽब्रवीन्नेति तथा परः । नेति नेति च तौ राजन् परस्परमथोचतुः ॥ १९ ॥ तयोर्विस्पर्धतोरेवं शपथोऽयमभूत्तदा। सहसोद्दिश्य विपुलं ततो वाक्यमथोचतुः ॥ २० ॥ आवयोरनृतं

भी विना मुरझाये हुए पुष्प पड़े थे ॥ १४ ॥ हे भरतवंशके राजन् ! उसने तहाँसे उन सुन्दर दिव्य पुष्पोंको बीन लिया हे भारत ! इस प्रकार उन्होंने अपने तपके प्रतापसे दिव्य गंध वाले पुष्प पाये ॥ १५ ॥ तब गुरुके कथनको करनेवाला विपुल उन पुष्पोंको पाकर मनमें प्रसन्न हुआ और चम्पाके वृक्षोंकी मालावाली चम्पा नगरीको चल दिया ॥१६॥ हे तात ! मार्गमें एक निर्जन वन पड़ा, तहाँ पर उसने एक पुरुषके जोड़ेको परस्पर हाथ पकड़ गोलाकार रीतिसे घूमते हुए देखा उनमें एक शीघ्रतासे घूम रहा था और दूसरा पहिलेके पदके तालमें विषमता करनेके लिये उस प्रकार नहीं चलता था, हे राजन् ! इस बात पर उन दोनोंमें विवाद होने लगा ॥ १८ ॥ उन दोनोंमेंसे एक बोला कि-तू शीघ्रतासे चलता है तब दूसरेने कहा, कि-" न, मैं शीघ्रता से नहीं चलता हूँ" फिर हे राजन् ! वे परस्पर कहने लगे, कि-मैं तेजीसे नहीं चलता हूँ, मैं तेजीसे नहीं चलता हूँ १९ इस प्रकार वे दोनों आपसमें झगड़ा करने लगे और उन्होंने उस समय निम्नलिखित शपथ की, वे दोनों सहसा विपुलको लक्ष्य करके कहने लगे, कि-॥ २० ॥ हम दोनोंमेंसे जो असत्य बोलता हो

प्राह यस्तस्याभूद् द्विजस्य वै। विपुलस्य परे लोके या गतिः सा भवेदिति ॥ २१ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो विषण्णवदनोऽभवत् । एवं तीव्रतपाश्चाहं कष्टश्चायं परिश्रमः ॥ २२ ॥ मिथुनस्यास्य किं मे स्यात् कृतं पापं यथागतिः । अनिष्टा सर्वभूतानां कीर्तितानेन मेऽद्य वै ॥ २३ ॥ एवं संचिंतयन्नेव विपुलो राजसत्तम । अवाङ्मुखो दीनमना दध्यौ दुष्कृतमात्मनः ॥ २४ ॥ ततः षडन्यान् पुरुषानक्षैः कांचनराजतैः । अपश्यद्दीव्यमानान् वै लोभहर्षान्वितांस्तथा ॥२५॥ कुर्वतः शपथं तेन यः कृतो मिथुनेन तु । विपुलं वै समुद्दिश्य तेऽपि वाक्यमथाब्रुवन् ॥ २६ ॥ लोभमास्थाय योऽस्माकं विषमं कर्तुमुत्सहेत् विपुलस्य परे लोके या गतिस्तामवाप्नुयात् ॥ २७॥ एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो नापश्यद्धर्म-

---

उसको वह गति मिले जो गति ब्राह्मण विपुलको परलोकमें मिलेगी।।२१।।उन दोनोंकी इस बातको सुनकर विपुलका मुख उदास होगया और वह विचारने लगा,कि-मैंने तो बड़ा भारी तप किया है और इस जोड़ेको घोर दुःख उठाना पड़ता है २२ मैंने ऐसा कौनसा पापकर्म किया है,जिससे ये मुझे सब प्राणियों को न रुचने वाली गति मिलनेकी बात कह रहे हैं ॥ २३ ॥ हे राजन्!इस प्रकार विचार करते२विपुलने अपने मुखको नीचेको कर लिया और उसका मन उदास होगया और वह अपने पापको खोजने लगा ॥ २४ ॥ इतनेमें ही उसको लोभ और हर्षसे भरे हुए छः दिव्य पुरुष सुवर्ण और चाँदीके पाशोंसे जुए खेलते हुए दीखे ॥२५॥ वे तीनों जोड़े भी पहिले जोड़ेकी समान विपुलकी ओर इंगित करके शपथ लेते हुए कहने लगे, कि-॥२६॥हममेंसे जो लोभके कारण कपटका वर्ताव करता हो उसकी परलोकमें विपुलकी जो गति होने वाली है वही, गति हो ॥२७॥ हे राजन्! यह बात सुन कर विपुल अपने मनमें विचारने लगा, कि-मैंने

संकरम् । जन्मप्रभृति कौरव्य कृतपूर्वमथात्मनः ॥ २८ ॥ संप्रदध्यौ तथा राजन्नग्नारग्निरिवाहितः । दह्यमानेन मनसा शापं श्रुत्वा तथाविधम् ॥२९॥ तस्य चिंतयतस्तात बह्वयो दिननिशा ययुः । इदमासीन्मनसि च रुच्या रक्षणकारितम् ॥३०॥ लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च । विशाय न मया चोक्तं सत्यमेतद्गुरोस्तथा ॥ ३१ ॥ एनदात्मनि कौरव्य दुष्कृतं विपुलस्तदा । अमन्यत महाभाग तथा तच्च न संशयः॥३२॥स चंपां नगरीमेत्य पुष्पाणि गुरवे ददौ । पूजयामास च गुरुं विधिवत्स गुरुप्रियः ३३ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

कौनसा पापकर्म किया है, परन्तु जन्मसे लेकर अब तकके कर्मोंका विचार करने पर उसको कोई अपना पापकर्म प्रतीत नहीं हुआ ॥ २८ ॥ तब इस प्रकार शपथ करनेके कारण वह मनमें बलने लगा और एक अग्नि जैसे दूसरी बलती हुई अग्निके पड़ने पर और भी बलने लगती है, तैसे ही वह बलने लगा ॥ २९ ॥ हे तात ! इस प्रकार विचार करते २ उसको कई दिन और कई रात होगई,तब उसके ध्यानमें आयाकि मैंने रुचिकी रक्षा करते समय ॥ ३० ॥ अपनी लक्षणेन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय)से (योगबलके द्वारा) उसकी लक्षणेन्द्रियमें प्रवेश किया था, मुखसे उसके मुखमें प्रवेश किया था, और यह तथ्य बात मैंने गुरुसे नहीं कही थी ॥३१॥ हे कुरुकुलोत्पन्न महाभाग्यवान् युधिष्ठिर ! इस कर्मको विपुलने अपना पापकर्म माना और बात भी निःसन्देह ऐसी ही थी॥३२॥ तदनन्तर गुरु जिसको प्रिय हैं ऐसे विपुलने चम्पानगरीमें जाकर गुरुको पुष्प दिये और विधिपूर्वक गुरुकी पूजाकी ॥ ३३ ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

भीष्म उवाच । तमागतमभिप्रेक्ष्य शिष्यं वाक्यमथाब्रवीत् । देवशर्मा महातेजा यत्तच्छृणु जनाधिप ॥ १ ॥ देवशर्मोवाच । किं ते विपुल दृष्टं वै तस्मिन् शिष्य महावने । ते त्वां जानंति विपुल आत्मा च रुचिरेव च ॥ २ ॥ विपुल उवाच । ब्रह्मर्षे-मिथुनं किं तत् के च ते पुरुषा विभो । ये मां जानंति तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥३॥ देवशर्मोवाच । यद्वै तन्मिथुनं ब्रह्मन्न-होरात्रं हि विद्धि तत्। चक्रवत्परिवर्तेत तत्ते जानाति दुष्कृतम् ४ ये च ते पुरुषा विप्र अक्षैर्दीव्यंति हृष्टवत् । ऋतूंस्तानभिजानीहि ते ते जानंति दुष्कृतम् ॥ ५ ॥ न मां कश्चिद्विजानाति इति कृत्वा न विश्वसेत् । नरो रहसि पापात्मा पापकं कर्म वै द्विज ॥ ६ ॥ कुर्वाणं हि नरं कर्म पापं रहसि सर्वदा । पश्यंति ऋतवश्चापि

भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! शिष्यको आया हुआ देख कर महातेजस्वी देवशर्माने जो वाक्य कहा था, उसको तू सुन १ देवशर्माने कहा, कि-हे शिष्य विपुल ! तूने महावनमें क्या देखा ? हे विपुल ! मैं और रुचि तुझको पहिचानते हैं, तैसे ही वे भी तुझको जानते हैं ॥ २ ॥ विपुलने कहा कि-हे विप्रर्षे ! मैंने जो जोड़ा देखा था वह कौन था तथा हे विभो ! मैंने जिन मनुष्यों को देखा था, वे कौन थे, कि-जो मुझे भली भाँति जानते हैं और आप जिनके सम्बन्धमें मुझसे बूझ रहे हैं ॥ ३ ॥ देव-शर्माने कहा, कि-हे ब्राह्मण ! तूने जो जोड़ा देखा था, उनको तू दिन और रात्रि समझ, वे चक्रकी समान गोलाकार रीतिसे घूमते रहते हैं और वे तेरे पापको जानते हैं ४ और हे ब्राह्मण ! जो हर्षमें भर कर पाशोंसे जुआ खेल रहे थे वे छः ऋतुएँ हैं और वे तेरे पापकर्मको जानती हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण ! एकान्तमें मुझे कोई नहीं देख सकता यह समझ कर पापी पुरुषको पाप कर्म पर विश्वास न रखना चाहिये॥६॥ मनुष्य एकान्तमें सदा पाप-

तथा दिननिशेऽप्युत ॥ ७ ॥ तथैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा। कृत्वा नाचक्षतः कर्म मम तच्च यथा कृतम् ॥ ८ ॥ ते त्वां हर्षस्मितं दृष्ट्वा गुरोः कर्मानिवेदकम्। स्मारयंतस्तथा प्राहुस्ते यथा श्रुतवान् भवान् ॥ ९ ॥ अहोरात्रं विजानाति ऋतवश्चापि नित्यशः। पुरुषे पापकं कर्म शुभं वाशुभकर्मिणः ॥ १० ॥ तत्त्वया मम यत्कर्म व्यभिचाराद्भयात्मकम्। नाख्यातमिति जानंतस्ते त्वामाहुस्तथा द्विज ॥ ११ ॥ तेनैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा। कृत्वा नाचक्षतः कर्म मम यच्च त्वया कृतम् १२ त्वया शक्या च दुर्वृत्या रक्षितुं प्रमदा द्विज। न च त्वं कृतवान् किंचिदतः प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥ १३ ॥ यदि त्वहं त्वां दुर्वृत्तम-

---

कर्म करता है परन्तु उसको रात्रि दिन और छः ऋतुएँ (अवश्य) देखती हैं ॥ ७ ॥ तूने जिस प्रकार कर्म किया था उस प्रकार मुझसे नहीं कहा था, इस लिये पाप कर्म करने वालोंको जो लोक मिलते हैं, वे लोक तुझे मिलते ॥ ८ ॥ गुरुको अपना कर्म न बताने वाले तुझको हर्षसे गर्वमें भरा देख कर तेरे पापकर्मका स्मरण दिलानेके लिये, तू जिस प्रकार सुन सके, उस प्रकार उन्होंने कहा, था ॥ ९ ॥ पापी पुरुषके पापकर्मको और पुण्यको रात्रि, दिन और ऋतुएँ सदा जानती रहती हैं ॥ १० ॥ व्यभिचारसे भय उत्पन्न होता है, ऐसे भयदायक कर्मको करके तूने मुझसे उसका वर्णन नहीं किया, इस बातको वे जानते थे, अतः उन्होंने तुझसे यह बात कही थी ॥ ११ ॥ तूने जो कर्म किया उसको मुझसे नहीं कहा इससे तुझे पापकर्म करने वालोंके लोक मिलते ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मण ! तू इस दुर्वृत्त तरुण स्त्रीकी रक्षा नहीं कर सकता था, तब भी तूने कोई पापकर्म न करके (इस स्त्रीकी रक्षाकी) अतः मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ परन्तु हे ब्राह्मणोत्तम ! मैं यदि तेरा थोड़ासा भी दुराचरण देखता तो क्रोधमें

द्रात्तं द्विजसत्तम । शपेयं त्वामहं क्रोधान्न मेऽत्रास्ति विचारणा १४
सज्जंति पुरुषे नार्यः पुंसा सोर्थश्च पुष्कलः । अन्यथा रक्षतः
शापोऽभविष्यत्ते मतिश्च मे ॥ १५ ॥ रक्षिता च त्वया पुत्र मम
चापि निवेदिता । अहं ते प्रीतिमांस्तात स्वस्थः स्वर्गं गमिष्यसि १६
इत्युक्त्वा विपुलं प्रीतो देवशर्मा महानृषिः । मुमोद स्वर्गमास्थाय
सभार्यः सहशिष्यकः ॥१७॥ इदमाख्यातवांश्चापि ममाख्यानं
महामुनिः । मार्कंडेयः पुरा राजन् गंगाकूले कथांतरे ॥ १८ ॥
तस्माद्ब्रवीमि पार्थ त्वां स्त्रियो रक्ष्याः सदैव च । उभयं दृश्यते
तासु सततं साध्वसाधु च ॥ १९ ॥ स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः
संमता लोकमातरः । धारयंति महीं राजन्निमां सवनकाननाम् २०

भर कर तुझे निःसन्देह शाप देदेता ॥ १४ ॥ स्त्रियें मनुष्यके ऊपर आसक्त हो जाती हैं इसमें मनुष्योंका भी महास्वार्थ है, यदि तूने मेरी तरुणी स्त्रीकी रक्षा न की होती तो मेरा विचार तुझे शाप देनेका था ॥ १५ ॥ परन्तु हे पुत्र ! तूने मेरी स्त्रीकी रक्षा की है और बादको उसको मेरे अर्पण कर दिया है, इससे मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ, हे तात ! अब तू सुखपूर्वक स्वर्गमें जासकेगा ॥ १६ ॥ इस प्रकार विपुलसे कह कर महर्षि देवशर्मा प्रसन्न हुए और अपनी भार्या तथा शिष्यके साथ इस जगत्में सुख भोगकर स्वर्गमें जाकर आनन्द करने लगे १७ हे राजन् ! गंगाजीके तटपर कथाओंका प्रसंग चलनेपर यह आख्यान मुझसे मार्कण्डेयजीने कहा था, ॥ १८ ॥ हे पार्थ ! इस लिये मैं तुझसे कहता हूँ कि स्त्रियोंकी सदा रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि-स्त्रियोंमें अच्छी और बुरी दोनों बातें सदा दीखती हैं १९ हे राजन् ! पतिव्रता स्त्रियें महाभाग्यशालिनी होती हैं, वे लोकोंमें मान पाती हैं, लोकोंकी माता मानी जाती हैं और वह वन और महावनः सहित इस सारी पृथ्वीकी रक्षा करती हैं २० हे राजन्! स्त्रियोंके

असाध्व्यश्चापि दुर्वृत्ताः कुलघ्नाः पापनिश्चयाः। विज्ञेया लक्षणै-
र्दुष्टैः स्वगात्रसहजैर्नृप ॥ २१ ॥ एवमेता सुरक्षा वै शक्या कर्तुं
महात्मभिः। अन्यथा राजशार्दूल न शक्या रक्षितुं स्त्रियः॥२२॥
एता हि मनुजव्याघ्र तीक्ष्णास्तीक्ष्णपराक्रमाः । नासामस्ति प्रियो
नाम मैथुने संगमेति यः॥२३॥ एताः कृत्याश्च कार्याश्च कृताश्च
भरतर्षभ । न चैकस्मिन् रमंत्येताः पुरुषे पांडुनन्दन॥२४॥ नासां
स्नेहो नरैः कार्यस्तथैवेर्ष्या जनेश्वर । खेदमास्थाय भुंजीत धर्म-
मास्थाय चैव ह । २५ । निहन्यादन्यथा कुर्वन्नरः कौरवनंदन ।
सर्वथा राजशार्दूल मुक्तिः सर्वत्र पूज्यते २६ तेनैकेन तु रक्षा वै

आचरण असाधु होते हैं,जो दूषित वृत्ति वाली होती हैं वे अपने कुलका नाश कर डालती हैं, तथा पाम कर्म करनेका निश्चय रखने वाली स्त्रियें अपने अंगोंके दुश्चिन्होंसे पहिचोन ली जाती हैं२१इस प्रकार महात्मा पुरुष ही स्त्रियोंकी रक्षा कर सकते हैं हे राजेन्द्र ! और किसी प्रकार (दुष्टा) स्त्रियोंकी रक्षा नहीं की जासकती २२ इन स्त्रियोंमें बहुतसी तीक्ष्ण होती हैं, बहुतसी तीक्ष्ण पराक्रम वाली होती हैं,जो मनुष्य इनसे मैथुन करता है वह (वास्तवमें) उनका प्रिय नहीं होता ॥ २३ ॥ हे भरत-वंशके श्रेष्ठ राजन् ! ये स्त्रियें कृत्यारूप हैं (प्राणलेवा कालदेवी रूप हैं) और पहिले एक मनुष्यसे विवाही जाने पर भी दूसरे मनुष्योंकी स्त्रियें वन जाती हैं, हे पाण्डुनन्दन ! ये (दुष्ट) स्त्रियें एक ही मनुष्यके साथ रमण नहीं करतीं हैं २४ हे राजन् ! मनुष्योंको स्त्रियों पर स्नेह नहीं रखना चाहिये तथा उनसे ईर्षा भी नहीं करनी चाहिये, किन्तु उदासीनभावसे धर्मके लिये ही स्त्रीका उपभोग करना चाहिये ॥२५॥ हे कुरुकुलनन्दन! इसके विपरीत वर्ताव करने वाला मनुष्य नष्ट हो जाता है, अतः हे राजसिंह!सर्वथा सर्वत्र आसक्ति न रखना ही श्रेष्ठ माना जाता

विपुलेन कृता स्त्रिया । नान्यः शक्तस्त्रिलोकेऽस्मिन् रक्षितुं नृप योषितम् २७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

युधिष्ठिर उवाच । यन्मूलं सर्वधर्माणां स्वजनस्य गृहस्य च । पितृदेवातिथीनां च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ अयं हि सर्वधर्माणां धर्मश्चिंत्यतमो मतः । कीदृशस्य प्रदेया स्यात् कन्येति वसुधाधिप ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । शीलवृत्ते समाज्ञाय विद्यां योनिं च कर्म च । सद्भिरेवं प्रदातव्या कन्या गुणयुते वरे ॥३॥ ब्राह्मणानां सतामेष ब्राह्मो धर्मो युधिष्ठिर । आवाह्यमावहेदेवं यो दद्यादनुकूलतः ॥ ४ ॥ शिष्टानां क्षत्रियाणां च धर्म एष सना-

है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! केवल एक विपुलने ही स्त्रीकी रक्षाकी थी, परन्तु इस जगत्में और कोई मनुष्य स्त्रीकी रक्षा नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे पितामह ! जो सब धर्मोंका, अपने कुटम्बका, घरका और पितर देवता तथा अतिथियोंका भी मूल हो उस (धर्म) को मुझसे कहिये ॥१॥ सकल धर्मोंमें इस धर्मकी ही अधिक चिंता करनी पड़ती है, कि—कैसे पुरुषको कन्या दी जाय ? ॥२॥ भीष्मजीने कहा, कि—वरके शीलकी आचरणकी, विद्याकी, योनिकी अर्थात् जातिकी तथा वंशकी, और कर्मकी परीक्षा करके गुणी वरको सत्पुरुषोंको कन्या विवाहनी चाहिये ३ हे युधिष्ठिर ! साधु ब्राह्मण इस प्रकार कन्या दान करनेको ब्राह्मधर्म (ब्राह्मविवाह) कहते हैं उपरोक्त गुण वाले वरको (भेंट आदि देकर) कन्याको ग्रहण करने योग्य बना कर और अनुकूलताके अनुसार धन आदि दहेजमें देकर जो कन्याका विवाह किया जाता है ॥ ४ ॥ वह क्षात्रविवाह कहलाता है, और वह विवाह

त्तनः। आत्माभिप्रेतमुत्सृज्य कन्याभिमेत एव यः ॥ ५ ॥ अभि-प्रेता च या यस्य तस्मै देया युधिष्ठिर।गांधर्वमिति तं धर्मं प्राहुर्वेद-विदो जनाः ॥६॥ धनेन बहुधा क्रीत्वा संप्रलोभ्य च बांधवान्। असुराणां नृपैतं वै धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥ ७ ॥ हत्वा छित्वा च शीर्षाणि रुदतां रुदतीं गृहात्। प्रसह्य हरणं तात राक्षसो विधि-रुच्यते ॥८॥ पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर। पैशा-चश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथंचन ॥ ९ ॥ ब्राह्मः क्षात्रोऽथ गांधर्व एते धर्म्या नरर्षभ।पृथग्वा यदि वा मिश्राः कर्तव्या नात्र संशयः१०

उत्तम क्षत्रियोंका सनातन विवाह कहलाता है,अपने पिता आदिके मनोनीत वरको छोड़ कर जो कन्याको अभिप्रेत हो और कन्या जिसको अभीष्ट हो उसको कन्या देनेको धर्मात्मा विद्वान् गांधर्व-विवाह कहते हैं ॥ ५-६ ॥ और जिसमें प्रायः बन्धु बान्धवोंको लोभमें डाल कर कन्या धन देकर खरीदी जाती है उसको विद्वान् असुरोंका धर्म मानते हैं ॥ ७ ॥ (कन्याके संबन्धियोंको) मार पीट कर और उनके शिरोंको काट कर उनके और कन्याके रोते पीटते रहने पर जो कन्याको बलपूर्वक पकड़ कर लेजाया जाता हो उसको राक्षसविवाहविधि कहते हैं ॥८॥ हे युधिष्ठिर ! इन पाँच (ब्राह्म,क्षात्र, गांधर्व, आसुर और राक्षस) विवाहोंमें पहिले तीन धर्म्य हैं शेष दो अधर्ममय हैं, राक्षस (पैशाच) और आसुर विवाहको कभी न करना चाहिये (मनु याज्ञवल्क्य आदिने निम्नलिखित आठ विवाह बताये हैं, कि-१ब्राह्म,२ दैव, ३ आर्ष ४ प्राजापत्य ५ आसुर, ६ गांधर्व,७ राक्षस और ८ पैशाच । परन्तु इस श्लोकमें आठके स्थानमें १ ब्राह्म,२क्षात्र,३ गांधर्व, ४ आसुर और५राक्षस,कहे हैं ब्रह्म विवाहमें दैव और आर्षका अन्त-र्भाव कर लिया है तथा राक्षसविवाहमें पैशाच विवाहका अन्त-र्भाव कर लिया है) ॥ ९ ॥ हे उत्तम राजन् ! ब्राह्म,क्षात्र और

तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु । वैश्यः स्वजात्यां विंदेत तास्वपत्यं समं भवेत् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणी तु भवेज्ज्येष्ठा क्षत्रियस्य तु क्षत्रिया । रत्यर्थमपि शूद्रा स्यान्नेत्याहुरपरे जनाः १२ अपत्यजन्म शूद्रायां न प्रशंसंति साधवः । शूद्रायां जनयन्विप्रः प्रायश्चित्ती विधीयते ॥ १३ ॥ त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां भार्यां विन्देत

गान्धर्व ये विवाह धर्म्य कहलाते हैं, इन विवाहोंको भिन्न २ और मिश्ररीतिसे कर सकते हैं (दमयन्तीका विवाह ब्राह्म तथा क्षात्र विवाहसे मिश्रित था, रुक्मिणीका विवाह राक्षस और गान्धर्व इन दो विवाहोंसे मिश्रित था, सुभद्राका विवाह राक्षस और क्षात्र-विधिसे मिश्रित था)॥ १०॥ ब्राह्मणके तीन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णकी भार्याएँ होसकती हैं, क्षत्रियके दो (क्षत्रिय तथा वैश्यवर्णकी) भार्याएँ होसकती हैं और वैश्यके एक (अपने ही) वर्णकी भार्या होसकती है और उन स्त्रियोंमें जो सन्तान उत्पन्न होती हैं, वह पिताके समान जातिकी मानी जाती है ११ ब्राह्मणकी ब्राह्मणी भार्या श्रेष्ठ मानी जाती है, क्षत्रियकी क्षत्रिय भार्या श्रेष्ठ मानी जाती है(और वैश्यकी तो एकही भार्या होती है अतः वह श्रेष्ठ मानी जाती है) रतिक्रीडाके लिये शूद्रजातिकी स्त्री भी ली जासकती है परन्तु(धर्मशास्त्रवेत्ता)दूसरे पुरुष उसका भी निषेध करते हैं (याज्ञवल्क्य आदि शूद्रजातिकी कन्यासे विवाह करनेका निषेध करते हुए लिखते हैं, कि-"यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रदारोपसंग्रहः । नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रात्मा जायते शुभम्।" अर्थात् कितने ही कहते हैं,कि- द्विज वर्णके पुरुषोंको शूद्रजातिकी कन्याके साथ भी विवाह कर लेना चाहिये परन्तु मेरा यह मत नहीं है)क्यों कि-आत्माको ही (पुत्ररूपसे) उसमें उत्पन्न होना पड़ेगा॥ १२॥ शूद्रा स्त्रीमें सन्तानरूपसे उत्पन्न होना अच्छा नहीं माना जासकता, जो ब्राह्मण शूद्रजातिकी स्त्रीमें सन्तानको उत्पन्न

नग्निकाम् । एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ यस्यास्तु न भवेद्व भ्राता पिता वा भरतर्षभ । नोपयच्छेत तां जातु पुत्रिकाधर्मिणी हि सा ॥ १५ ॥ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती । चतुर्थे त्वथ संप्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत् ॥१६॥ प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ । अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः ॥ १७ ॥ असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । इत्येतामनुगच्छेत तं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर

करता है वह प्रायश्चित्तका अधिकारी होता है ॥ १३ ॥ तीस वर्षका पुरुष नग्निका (जिसके स्त्रीत्वके चिन्ह प्रकट नहीं हुए हैं ऐसी) दश वर्षकी कन्यासे विवाह करे अथवा इक्कीस वर्षका पुरुष सात वर्षकी कन्यासे विवाह करे ॥ १४ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! जिस कन्याके भाई अथवा पिता न हो उस कन्याके साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि-वह कन्या पुत्रिका धर्म वाली मानी जाती है१५(यदि पिता भ्राता आदि कन्याका विवाह न करें, तो) कन्या ऋतुमती होने पर भी तीन वर्ष तक बाट देखे और चौथा वर्ष आने पर अपने आप वरको खोज लेय१६हे भरतवंशके राजन् ! तो उस कन्याकी सन्तान उतरती हुई नहीं मानी जाती है और उस कन्याके साथ मैथुन करनेसे भी दोष नहीं लगता है, परन्तु जो कन्या इसके विपरीत वर्ताव करती है तो उसकी प्रजाके स्वामीकी चर्चा होने लगती है ॥ १७ ॥ जो कन्या माताकी सपिण्ड न हो और पिताके गोत्रकी न हो उसके साथ विवाह करना मनुजीने धर्मानुकूल माना है + ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरने बूझा

+ "बध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्य यदि सप्तमः । पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्डयं निवर्तते" सात पीढ़ी तकके पुरुष सपिण्ड कहलाते हैं, क्योंकि-उनको सातवीं पीढ़ी तक पिण्ड दिया

उवाच । शुल्कमन्येन दत्तं स्याद्ददानीत्याह चापरः । बलादन्यः प्रभाषेत धनमन्यः प्रदर्शयेत् ॥ १६ ॥ पाणिग्रहीता चान्यः स्यात्

कि–एक मनुष्यने कन्याका शुल्क (मूल्य) देदिया हो, और दूसरा कहता हो, कि–मैं कन्याका मूल्य देता हूँ और तीसरा बलपूर्वक (कन्या लेजानेकी) बात चीत कर रहा हो, चौथा धन दिखा रहा हो ॥ १६॥ और पाँचवाँ कन्याका पाणिग्रहण करने वाला

जाता है इनमें तीन पिण्डभागी होते हैं और तीन लेपभागी होते हैं और सातवाँ पिण्ड देनेवाला होता है । पिताकी ओरका सापिण्ड्य सात पीढ़ी तक चलता है और माताका सापिण्ड्य पाँच पीढ़ी तक माना जाता है । मूल श्लोकमें कहा है कि–जो कन्या माताकी सपिण्ड न हो और माताकी सगोत्र न हो उस कन्यासे विवाह करना चाहिये, तब इसका बहुतसे यह अर्थ करते हैं, कि–कन्या माताकी सपिण्ड न होनी चाहिये तथा सगोत्र भी नहीं होनी चाहिये और बहुतसे यह कहते हैं, कि–"एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ।" अर्थात् स्त्रीका पिण्ड, गोत्र और सूतक भर्ताके साथ एकत्वको प्राप्त होजाता है, अतः स्त्रीका दूसरा गोत्र नहीं होता । अतएव माताकी सपिण्ड न हो यही अर्थ ग्रहण करना चाहिये, परन्तु माताके साथमें असगोत्रा विशेषण न लगाना चाहिये । दूसरे इसका खण्डन करते हुए कहते हैं, कि–जिस कन्या की माताको उसके पिताने पुत्र मानलिया हो तो उसकी माताका गोत्र उसके पिताका होता है इस विचारको ध्यानमें रखकर माताके साथ भी असगोत्रा विशेषण देना चाहिये । यहाँ असगोत्रासे असमानपर्गोत्रका अर्थ लेना चाहिये, अर्थात् जिस कन्यासे विवाह करना हो वह जैसे एक गोत्रकी न हो तैसे ही एक प्रवरकी भी न होनी चाहिये । क्योंकि–स्मृतिमें कहा है, कि–"असमानर्ष-

कस्य भार्या पितामह । तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ।।२०।। भीष्म उवाच । यत्किञ्चित् कर्म मानुष्यं संस्थानाय मदृश्यते । मंत्रवन्मंत्रितं तस्य मृषावादस्तु पातकः ।। २१ ।। भार्या पत्यर्त्विगाचार्याः शिष्योपाध्याय एव च । मृषोक्ते दण्ड-

---

हो तो इनमें हे पितामह ! वह कन्या किसकी भार्या मानी जायगी हम तत्त्वको जानना चाहते हैं आप हमारे नेत्र बनिये २० भीष्म-जीने कहा, कि विचारवान पुरुष एकत्रित होकर यह निश्चित करें कि-अमुक कन्या अमुक वरको देनी चाहिये, वह निश्चित व्यवस्था मानी जाती है ऐसा होने पर जो असत्य बोलना है उसको पाप लगता है ।। २१ ।। स्त्री, पति, ऋत्विज, आचार्य, शिष्य और

गोत्रजां" इस श्लोकमें कन्याका माता पिताके साथ अमुक प्रकार का सम्बन्ध न हो ऐसी कन्याको ग्रहण करना चाहिये । यह कह कर कन्या माता पिताकी जातिवाली हो यह भी कहा है । समान जातिकी कन्या ही दारकर्म अर्थात् यज्ञ आदि कर्ममें तथा मैथुनमें उत्तम मानी है । मैथुनमें भी समान जातिकी कन्या ही उत्तम है इस कातात्पर्य यह है, कि-हीन जातिकी कन्याके साथ विवाह कर उसमें सन्तान उत्पन्न करनेवाला स्वयं भी हीन होजाता है, क्योंकि-"तत्रात्मा जायते स्वयम्" श्रुतिमें कहा है, कि-पुरुष स्वयं ही स्त्रीमें सन्तान रूपसे उत्पन्न होता है अतः यदि हीन (नीच) जातिकी कन्याके साथ विवाह करता है तो समागम कर उसमें स्वयं उत्पन्न होना पड़ता है इस सबका निष्कर्ष यह है, कि जिस कन्याके साथ विवाह किया जाय वह अपनी जाति की होनी चाहिये, तथा अपने माता पिताके गोत्रकी और प्रवर की और पुत्रिका धर्मवाले माता पिताके गोत्रकी न होनी चाहिये, ऐसी कन्याके साथ विवाह करना शास्त्रानुकूल माना जाता है ।

मर्हति नेत्याहुरपरे जनाः ॥ २२ ॥ न ह्यकामेन संवासं मनुरेवं प्रशंसति। अयशस्यमधर्म्यं च यन्मृषा धर्मकोपनम् ॥२३॥ नैकांतो दोष एकस्मिंस्तदा केनोपपद्यते। धर्मतो यां प्रयच्छन्ति यां च क्रीणंति भारत ॥२४॥ बंधुभिः समनुज्ञाते मंत्रहोमौ प्रयोजयेत्। तथा सिध्यंति ते मंत्रा नादत्तायाः कथंचन ॥२५॥ यस्त्वत्र मंत्र-समयो भार्यापत्योर्मिथः कृतः।तमेवाहुर्गरीयांसं यश्चासौ ज्ञातिभिः कृतः ॥ २६ ॥ देवदत्तां पतिर्भार्यां वेत्ति धर्मस्य शासनात्। स

उपाध्याय ये यदि असत्य बोलें, (अर्थात् ऐसी व्यवस्था होने पर कहने लगें; कि-इसके साथ विवाह पक्का नहीं हुआ था) तो वे दण्डपात्र होते हैं और बहुतसे कहते हैं, कि वे दण्डपात्र नहीं होते ॥ २२ ॥ क्योंकि-मनु कहते हैं, कि-अकाम पुरुषके साथ वास करनेसे अपयश होता है, धर्मका नाश होजाता है और असत्यभाषण करना पड़ता है, इस प्रकार धर्मका लोप जाता है ॥ २३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! जिस कन्याको पाणिग्रहणकी विधिसे विवाह दिया हो और जिस कन्याका मूल्य ले लिया हो, उस कन्याके साथ विवाह करनेवाला और कन्याका मूल्य देने वाला यदि उस कन्याको हर कर ले जाय तो उसको किसी प्रकारका दोष नहीं लगता है ॥ २४ ॥ कन्याके माता पिता आदिके आज्ञा देने पर विवाहके मंत्रोंका और होमका प्रयोग करना चाहिये, ऐसा करने पर ही विवाहके मंत्र सफल होते हैं (परन्तु कन्याके माता पिताने कन्यादान न किया हो तो विवाहके मंत्र सिद्ध नहीं होते अर्थात् कन्यादाताकी सम्मतिके विना किया हुआ विवाह निकृष्ट माना जाता है) ॥ २५ ॥ कन्याके माता पिता आदिका निश्चय ही महान् माना जाता है परन्तु भार्या और पतिका विवाहके समय परस्पर मंत्रपूर्वक किया हुआ निर्णय उससे भी अधिक महत्त्वका माना जाता है ॥ २६ ॥ धर्मकी

दैवीं मानुषीं वाचमनृतां पर्युदस्यति ॥ २७ ॥ युधिष्ठिर उवाच। कन्यायां प्राप्तशुल्कायां ज्यायांश्चेदा व्रजेद्वरः । धर्मकामार्थसंपन्नो वाच्यमत्रानृतं न वा ॥२८॥ तस्मिन्नुभयतो दोषे कुर्वञ्छ्रेय समाचरेत् । अयं नः सर्वधर्माणां धर्मश्चिंत्यतमो मतः ॥ २९ ॥ तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् । तदेतत् सर्वमाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ ३० ॥ भीष्म उवाच । नैव निष्ठाकरं शुल्कं ज्ञात्वासीत्तेन नाहृतम् । न हि शुल्कपराः संतः कन्यां ददति कर्हिचित् ॥३१॥ अन्यैर्गुणैरुपेतं तु शुल्कं याचंति बांधवाः

आज्ञाके अनुसार पुरुष अपनी स्त्रीको कर्मानुसार अथवा ईश्वरसे मिली हुई समझता है ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-कन्याके लिये एक वरसे शुल्क लेलिया हो, परन्तु इतनेमें ही धर्म अर्थ और कामनासे परिपूर्ण दूसरा वर मिल जाय तो पहिले वरका टाल कर नए आये हुए वरको कन्या देनेसे पाप होता है, या नहीं ॥२८॥ यहाँ पर दोनों प्रकारसे पाप लगता है (अर्थात् बान्धवोंसे सम्मति कर कन्या देनेकी प्रतिज्ञा कर दूसरे वरको कन्या देने पर वचनभंगका दोष लगता है परन्तु उत्तम वरको कन्या न देनेसे कन्याका भला नहीं होता, इस प्रकार दोनों प्रकारसे दोष लगता है) अतः कन्यादाता इन दोनोंमेंसे कौनसे कामको करे जिससे उसका कल्याण हो, हम तो इस धर्मको सब धर्मोंसे अधिक विचार करने योग्य समझते हैं २९ हम- तत्त्व वस्तुको जानना चाहते हैं, अतः आप हमारे नेत्र बनिये इस सब प्रश्नका उत्तर आप दीजिये, आप जो कथा कहते हैं, उसको सुनते २ मैं तृप्त नहीं होता हूँ ॥३०॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! शुल्क कन्यामें भार्यात्व नहीं लाता है, यह जानकर कन्या को खरीदनेके लिये शुल्क दिया जाता है, क्योंकि जो पुरुष कन्या का शुल्क लेता है उसको कन्यादानका फल किसी प्रकार

अलंकृत्वा वहस्वेति यो दद्यादनुकूलतः ॥३२॥ यच्च तां च दद-
त्येवं न शुल्कं विक्रयो न सः । प्रतिगृह्य भवेद्देयमेष धर्मः सना-
तनः ॥ ३३ ॥ दास्यामि भवते कन्यामिति पूर्वं न भाषितम् । ये
चाहुर्ये च नाहुर्ये ये चावश्यं वदंत्युत ३४ तस्मादाग्रहणात् पाणेर्या-
चयंति परस्परम् । कन्या वरः पुरा दत्तो मरुद्भिरिति नः श्रुतम् ३५
नानिष्टाय प्रदातव्या कन्या इत्यृषिचोदितम् । तन्मूलं काममूलस्य
प्रजनस्येति मे मतिः ॥ ३६ ॥ समीक्ष्य च बहून्दोषान् संवासा-
द्विद्धि पाणयोः । यथानिष्ठाकरं शुल्कं न जात्वासीत्तथा शृणु ३७

नहीं मिलता (क्योंकि वह तो कन्याको बेचनेवाला है) ॥३१॥
कन्याके सम्बन्धी जो कन्या पर द्रव्य लेते हैं, वे धर्म, अर्थ अथवा
काम पानेके लिये नहीं लेते हैं,परन्तु वरकी बड़ी अवस्था वा उसके
किसी दोषके कारण लेते हैं, जो पुरुष कन्याको अलंकृत करके
वरके अनुकूल रह कन्यादान देता है वह कन्याविक्रय नहीं कहाता
है,विवाहके समय कन्याका सत्कार करना सनातन धर्म है३२–३३
मैं तुमको अपनी कन्या दूँगा इस प्रकार कहने वालोंका कथन,और
मैं तुमको अपनी कन्या दूँगा ऐसा न कहकर चुपचाप बैठे रहने
वालोंकी बात और जा दृढ़तापूर्वक कन्या देने न देनेकी बात
कहते हैं, इन सबकी बात (कन्यादानसे पहिले) न कही हुई
की समान है ॥ ३४ ॥ पाणिग्रहण होनेसे पहिले तक मनुष्य
कन्याको माँग सकते हैं और मरुत नामक देवताओंने भी कन्याओं
के माँगनेका मनुष्योंको वर दिया है, ऐसा हमारे सुननेमें आया
है ॥ ३५ ॥ अनिष्ट (गुणरहित) वरको कन्या न देनी चाहिये
यह ऋषि कह गए हैं कन्या कामनाकी और प्रजनन (सन्ता-
नोत्पत्ति) की मूल है ऐसा मेरा विचार है ॥३६॥ बहुत समयके
अनुभवके अनन्तर मैं कहता हूँ कन्याको मोल लेनेमें और बेचनेमें
बड़े दोष हैं, यह तू भली भाँति विचार कर समझ ले । कन्या

अहं विचित्रवीर्यस्य द्वे कन्ये समुदावहम् । जित्वा च मागधान् सर्वान् काशीनथ च कोसलान् ॥ ३८ ॥ गृहीतपाणिरेकासीत् प्राप्तशुल्का पराभवत् । कन्या गृहीता तत्रैव विसर्ज्या इति मे पिता ॥ ३९ ॥ अब्रवीदितरां कन्यामावहेति स कौरवः । अप्यन्यानमुपपच्छ शंकमानः पितुर्वचः ॥४०॥ अतीव ह्यस्य धर्मेच्छा पितुर्मेऽभ्यधिकाभवत् । ततोऽहमब्रुवं राजन्नाचारेप्सुरिदं वचः । आचारं तत्त्वतो वेत्तुमिच्छामि च पुनः पुनः ॥४१॥ ततो मयैवमुक्ते तु वाक्ये धर्मभृतां वरः । पिता मम महाराज बाल्हीको वाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥ यदि वः शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा । लाभांतरमुपासीत प्राप्तशुल्क इति स्मृतिः ॥ ४३ ॥ न

मोल लेनेसे या देनेसे भार्या नहीं बन सकती, इस विषयमें तू एक बात सुन ॥ ३७ ॥ मैं सब मागध राजाओंको, काशिदेशके राजाओंको तथा कौशलदेशके राजाओंको जीतकर विचित्रवीर्य के लिये दो कन्याएँ लाया था ॥ ३८ ॥ उनमेंसे एक कन्या पाणिग्रहणकी रीतिसे विवाही गई थी और दूसरी अम्बाको मैं अपने पराक्रमरूपी शुल्कसे लाया था, मेरे चाचा बाल्हीकने कहा, कि-पराक्रमरूपी धनसे लाई हुई कन्याको त्याग देना चाहिये ३९ और उन्होंने कहा, कि-इस दूसरी कन्याको ग्रहण करना चाहिये परन्तु उनके वचनसे शंका न मिटनेके कारण मैंने दूसरोंसे भी इस विषयमें प्रश्न किया४०मेरे चाचाजीकी धर्म पर श्रद्धा अधिक थी,अतएव मैंने उनसे आचारको जाननेकी इच्छासे वारम्बार यह कहा,कि-मैं आचारको यथार्थरीतिसे जानना चाहता हूँ ॥४१॥ हे महाराज!तब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ मेरे चाचा बाल्हीकने कहा,कि-४२ यदि यह कहा जाय कि-पाणिग्रहणसे भार्यात्व नहीं आता, किन्तु शुल्कसे भार्यात्व आता है तो यह स्मृतिवचन व्यर्थ हो जायगा "लाभान्तरमुपासीत प्राप्तशुल्कः" अर्थात् शुल्क लेने वाले पिताको

हि धर्मविदः प्राहुः प्रमाणं वाक्यतः स्मृतम् । येषां वै शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा ॥ ४४ ॥ प्रसिद्धं भाषितं दाने नैषां प्रत्यायकं पुनः । ये मन्यंते क्रयं शुल्कं न ते धर्मविदो नराः ४५ न चैतेभ्यः प्रदातव्या न वोढव्या तथा विधा । न ह्येव भार्या क्रेतव्या न विक्रय्या कथंचन ॥ ४६ ॥ ये च क्रीणंति दासीं च विक्रीणंति तथैव च । भवेत्तेषां तथानिष्ठा लुब्धानां पापचेतसाम् ४७ अस्मिन्नर्थे सत्यवंतं पर्यपृच्छंत वै जनाः । कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः शुल्कदः प्रशमं गतः ॥ ४८ ॥ पाणिगृहीता वान्यः स्यादत्र नो धर्मसंशयः । तन्नश्छिंधि महाप्राज्ञ त्वं हि वै प्राज्ञसंमतः ॥४९॥

यदि शुल्क देने वालेसे अधिक गुणी वर मिले तो अधिक गुणीको कन्या विवाह देनी चाहिये ॥ ४३ ॥ जिन मनुष्योंका यह मत है कि-" शुल्कसे जिस प्रकार भार्यात्व आता है तैसे पाणिग्रहणसे नहीं आता" उनके कथनको धर्मवेत्ता प्रमाण नहीं मानते हैं ४४ कन्याका दान प्रसिद्ध रीतिसे करनेसे और प्रसिद्ध रीतिसे कहने पर ही भार्यात्व आता है (परन्तु शुल्क देनेसे भार्यात्व आता है ऐसा कोई भी ज्ञापक वचन नहीं है) जो मनुष्य खरीदनेको और विजयको भार्यात्व लाने वाला समझते हैं, उनको धर्मका ज्ञान नहीं है ॥४५॥ कन्याविक्रय करने वालोंकी कन्या न लेनी चाहिये और न उनको अपनी कन्या देनी चाहिये तथा भार्याको भी कभी न वेचना चाहिये और न कभी विकती हुई खरीदनी चाहिये ॥ ४६ ॥ जो पुरुष विकती हुई दासीको लेलेते हैं और बेच देते हैं,उन पापमतियोंकी लोभके कारण वैसे ही(भार्यात्वकी) बुद्धि होजाती है ॥ ४७ ॥ प्राचीन मनुष्योंने इस विषयमें सत्यवान्से प्रश्न किया था,कि-कन्याका शुल्क देनेके पीछे यदि शुल्क देने वाला मर जाय तो वह कन्या विवाही मानी जावेगी अथवा उसका दूसरेके साथ विवाह होसकता है ? इसमें हमें संदेह है,

तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान्। तानेवं ब्रुवतः सर्वान् सत्यवान् वाक्यमब्रवीत् ॥५०॥ यत्रेष्टं तत्र देया स्यान्नात्र कार्या विचारणा। कुर्वते जीवतोऽप्येवं मृते नैवास्ति संशयः ॥ ५१ ॥ देवरं प्रविशेत् कन्या तप्येद्वापि तपः पुनः। तमेवानुगता भूत्वा पाणिग्राहस्य काम्यया ॥ ५२ ॥ लिखंत्येव तु केषांचिदपरेषां शनैरपि। इति ये संवदंत्य त्र एतं निश्चयं विदुः॥५३॥ तत्पाणिग्रहणात् पूर्वमंतरं यत्र वर्तते। सर्वमङ्गलमंत्रं वै मृषावादस्तु

हे महाबुद्धिमान्! आप हमारे संदेहको दूर करिये क्योंकि आप विद्वानोंमें मान्य समझे जाते हैं ॥४८-४९॥ हम धर्मके वास्तविकस्वरूपको देखना चाहते हैं अतः आप हमारे नेत्ररूप बनिये, उन सबके इस प्रकार कहने पर सत्यवान्ने यह बात कही, कि-५० जहाँ उत्तम वर मिले तहाँ कन्या विवाहनी चाहिये, इसमें कुछ विचार न करना चाहिये। कन्याका शुल्क देने वाला जीवित हो तब भी शिष्ट पुरुष ऐसा करते हैं तो फिर शुल्क देने वालेके मरने पर तो बात ही क्या है? ॥५१॥ ऐसा होने पर कन्याका देवरके साथ विवाह कर देना चाहिये अथवा विवाह करने वाली की इच्छानुसार उसको शुल्कद पतिका अनुसरण कर तप करने देना चाहिये॥५२॥कितनों हीका मत है कि-(देवर आदि)अलिखित (अक्षतयोनि शुल्कसे खरीदी हुई अथवा वाग्दत्ता)कन्याके साथ विवाह कर भोग सकते हैं और दूसरोंका मत यह है, कि-इस प्रकारका व्यवहार करना अपनी इच्छाके अधीन है, इसमें शास्त्रका कोई प्रमाण नहीं है,जो इस प्रकार परस्पर विरुद्ध विचार रखते हैं उनका अन्तिम निर्णय यही है, कि ॥ ५३ ॥ जिसका शुल्क देदिया हो, ऐसी कन्याका पति पाणिग्रहण होनेसे पहिले मर जाय तो चाहें कन्याके हरिद्रास्नान आदि मांगलिक कर्म होगए हों तब भी कन्याका दूसरे वरके साथ विवाह कर देने पर विवाह

पातकः ॥ ५४ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे । पाणिग्रहस्य भार्या स्याद्यस्य चाद्भिः प्रदीयते ॥ ५५ ॥ इति देयं वदंत्यत्र त एनं निश्चयं विदुः । अनुकूलामनुवंशां भ्रात्रा दत्तामुपाग्निकाम् । परिक्रम्य यथान्यायं भार्यां विन्देद्द्विजोत्तमः ५६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-धर्मे विवाहधर्मकथने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

युधिष्ठिर उवाच । कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः पतिश्चेन्नास्ति कश्चन । तत्र का प्रतिपत्तिः स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । या पुत्रकस्य ऋद्धस्य प्रतिपाल्या तदा भवेत् ।

कराने वालेको मिथ्याभाषणके अतिरिक्त और कोई पाप नहीं लगता है (अर्थात् शुल्क लेनेके बाद, शुल्क देने वाला मर जाय तो शुल्कके कारण कन्यामें भार्यात्व नहीं आता है) ॥ ५४ ॥ पाणिग्रहणकी विधिके मन्त्रोंकी समाप्ति सप्तपदीके सातवें पदमें पूर्ण होती है अर्थात् सप्तपदी पूर्ण होने पर ही कन्यामें भार्यात्व आता है और जिस पुरुषको जलसे दान करके कन्या दी जाती है उस पाणिग्रहण करने वालेकी वह भार्या होती है ॥५५॥ इस प्रकार कन्यादान करने वालोंने कन्यादानकी विधि कही है, उन्होंने इसका निर्णय करते हुए कहा है, कि-जो कन्या अनुकूल हो, वरके वंशके योग्य हो, तथा जिसका भाई विवाह करता हो ऐसी कन्याको ब्राह्मण शास्त्रोक्तविधिसे अग्निके सामने अग्निकी प्रदक्षिणा करकै भार्यारूपसे स्वीकार करे ॥ ५६ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ ❀ ❀ ❀ ❀

युधिष्ठिरने बूझा, कि-एक कन्याका शुल्क ले लिया हो परन्तु शुल्क देनेवाला परदेश चला गया हो और इस भयसे दूसरा भी कोई उसको न माँगता हो तो (उसके पिताको) क्या करना चाहिये ? हे पितामह ! यह बात आप मुझे बताइये १

अथ चेन्नाहरेच्छुल्कं क्रीता शुल्कप्रदस्य सा ॥ २ ॥ तस्यार्थेऽपत्यमीहेत येन न्यायेन शक्नुयात् । न तस्मान्मंत्रवत्कार्यं कश्चित् कुर्वीत किंचन ॥ ३ ॥ स्वयं वृतेन साऽज्ञप्ता पित्रा वै प्रत्यपद्यत । तत्तस्याऽन्ये प्रशंसंति धर्मज्ञा नेतरे जनाः ॥४॥ एतत्तु नापरे चक्रुरपरे जातु साधवः । साधूनां पुनराचारो गरीयान् धर्मलक्षणः ॥५॥ अस्मिन्नेव प्रकरणे सुक्रतुर्वाक्यमब्रवीत् । नप्ता विदेहराजस्य जनकस्य महात्मनः ॥ ६ ॥ असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्तनम् अत्र प्रश्नः संशयो वा सतामेवमुपालभेत् ॥ ७ ॥ असदेव हि

भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! अपुत्र धनवान्से जिसका शुल्क ले लिया हो उस कन्याको पिताका (जब तक शुल्क देने वाला आये तब तक) पालन करना चाहिये, यदि कन्याके लिये लिया हुआ शुल्क लौटाया नहीं जाय तो वह कन्या शुल्क देने वालेकी ही मानी जावेगी ॥ २ ॥ शुल्क देनेवालेके लिये जिस प्रकार होसके (उसको बुलाकर) सन्तान उत्पन्न होनेकी इच्छा करे उस कन्याको और कोई मंत्रपूर्वक स्वीकृत नहीं कर सकता ३ (पहिले सावित्री) पिताकी आज्ञाके अनुसार अपने आप वर को खोज कर उसके साथ विवाही गई थी, उसके इस कर्मकी कोई प्रशंसा करते हैं और कोई मनुष्य प्रशंसा नहीं करते हैं (यह आपद्धर्मके विषयमें कहा है) ॥ ४ ॥ कितने ही कहते हैं, कि-पहिले किसीने ऐसा काम नहीं किया है तब कितने ही कहते हैं, कि-महात्मा पुरुषोंका आचरण महान् धर्मस्वरूप होता है ५ इस विषयमें विदेहराज जनकके पौत्र सुक्रतुने कहा है, कि-"असत् पुरुषोंके आचरण किये हुए मार्गका शास्त्रमें वर्णन कैसे मिल सकता है (अर्थात् कन्याका अपने आप वरको ढूँढना दूषित है क्योंकि-" न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति " इस वचनसे विरोध पड़ता है, अतः धर्मशास्त्र सावित्रीके वर्तावका अनुमोदन कैसे कर सकता

धर्मस्य प्रदानं धर्म आसुरः। नानुशुश्रुम जात्वेतामिमां पूर्वेषु कर्मसु ॥ ८ ॥ भार्यापत्योर्हि संबंधः स्त्रीपुंसोः स्वल्प एव तु। रतिः साधारणो धर्म इति चाह स पार्थिवः ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच। अथ केन प्रमाणेन पुंसामादीयते धनम्। पुत्रवद्धि पितुस्तस्य कन्या भवितुमर्हति ॥ १० ॥ भीष्म उवाच। यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। तस्यामात्मनि तिष्ठंत्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥११॥ मातुश्च यौतकं यः स्यात् कुमारीभाग एव सः। दौहित्र एव तद्रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ॥१२॥ ददाति हि स पिं-

है ? यह प्रश्न है) सत्पुरुषोंको इस विषयमें सन्देह ही कैसे हो-सकता है और ये प्रश्न ही क्यों करेंगे ७ असद्व धर्मका प्रचार करना (अर्थात् स्त्रीस्वतंत्रताका प्रचार करना) आसुर धर्म है (परन्तु सावित्रीने स्वतन्त्रता नहीं माँगी थी अतः उसको दोष नहीं लगसकता) और पूर्वकालमें किसी कन्याने स्वतन्त्र होकर विवाह किया हो, यह भी हमने नहीं सुना है (और सावित्रीने भी ऐसा नहीं किया है,किंतु पिताकी आज्ञासे किया था,८भार्या और पतिका सूक्ष्म संबन्ध है और परस्परका रतिसंबंध साधारण स्थूल संबंध है यह बात जनकके पौत्र राजा सुक्रतुने कही है ९ युधिष्ठिरने बूझा, कि- पुरुष (अपुत्रके) धनको कैसे ले लेते हैं, क्योंकि-उस अपुत्रकी कन्याको भी पुत्रकी ही समान मानना चाहिये ॥ १० ॥ भीष्मजीने कहा, कि-पुत्र अपनी आत्माकी समान होता है और पुत्री पुत्रकी समान होती है, आत्मस्वरूप पुत्रीके विद्यमान रहते हुए दूसरा धन कैसे ले सकता है११माता का जो यौतक धन होता है वह उसकी पुत्रियोंका ही भाग माना जाता है, यदि मातामहके पुत्र न हो तो उसके धनको धेवतोंको ले लेना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि वह अपने पिताके पिताको और माताके पिताको भी पिण्ड देता है,

हान् वै पितुर्मातामहस्य च । पुत्रदौहित्रयोरेव विशेषो नास्ति धर्मतः ॥१३॥ अन्यत्र जामया सार्धं प्रजानां पुत्र ईहते । दुहितान्यत्र जातेन पुत्रेणापि विशिष्यते ॥१४॥ दौहित्रकेण धर्मेण नात्र पश्यामि कारणम् । विक्रीतासु हि ये पुत्रा भवंति पितुरेव ते१५ असूयवस्त्वधर्मिष्ठाः परस्वादायिनः शठाः । आसुरादधिसंभूता धर्माद्विषमवृत्तयः ॥१६॥ अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयंति पुराविदः । धर्मज्ञा धर्मशास्त्रेषु निबद्धा धर्मसेतुषु ॥१७॥ यो मनुष्यः स्वकं पुत्रं विक्रीय धनमिच्छति । कन्यां वा जीवितार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति ॥ १८ ॥ सप्तावरे महाघोरे निरये कालसाह्वये । स्वेदं

धर्मानुसार पुत्रमें और दौहित्र (धेवते) में कुछ भेद नहीं है ॥१३॥ पहिले पुत्रीको पुत्रकी समान मान लेनेके अनन्तर पुत्र उत्पन्न हो जाय तो अपने धनके पाँच भाग करके दो भाग पुत्रीको अथवा उसके पुत्रको देदेय और तीन भाग पुत्रको देय । पुत्रीको पुत्रवत् माननेके पीछे दत्तक पुत्र लेलेय अथवा दत्तक पुत्र लेनेके बाद पुत्री उत्पन्न हो जाय तो भी पुत्री दत्तकपुत्रसे श्रेष्ठ मानी जाती है(अर्थात् पुत्रीको स्थावरजंगम संपत्तिमेंसे तीन भाग और पुत्रको दो ही भाग मिलने चाहिये) ॥ १४ ॥ जिन कन्याओंको बेच दिया हो ऐसी कन्याओंके पुत्र अपने पिताके ही पुत्र माने जाते हैं उनको दौहित्रके रूपमें वारिस बनाना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता ॥१५॥ आसुर विवाह करने पर जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे पुत्र दूसरेसे ईर्षा करने वाले, अधर्मिष्ठ दूसरेके धनको हरने वाले और शठ होते हैं तथा धर्ममें विषमवर्ताव करने वाले होते हैं ॥ १६ ॥ धर्मज्ञ और धर्मशास्त्रोंमें चतुर, धर्मकी मर्यादामें बँधे रहने वाले प्राचीनतत्त्ववेत्ता पुरुष यमकी गाई हुई गाथाओंको इस विषयमें गाते हैं, कि-॥१७॥ जो पुरुष अपने पुत्रको बेच कर धन पाना चाहता है और जो पुरुष आजीविकाके लिये शुल्क

मूत्रं पुरीषं च तस्मिन् मूढः समश्नुते ॥ १६ ॥ आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् । अल्पो वा बहु वा राजन् विक्रयस्ताव- देव सः ॥२०॥ यद्यप्याचरितः कैश्चिन्नैष धर्मः सनातनः । अन्ये- षामपि दृश्यंने लोकतः सम्प्रवृत्तयः॥ २१ ॥ वश्यां कुमारीं बलतो ये तां समुपभुञ्जते । एते पापस्य कर्तारस्तमस्यंधे च शेरते २२ अन्योप्यथ न विक्रेयो मनुष्यः किं पुनः प्रजाः । अधर्ममूलैर्हि धनैस्तैर्न धर्मोऽथ कश्चन ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान- धर्मे यमगाथानाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

भीष्म उवाच । प्राचेतसस्य वचनं कीर्तयन्ति पुराविदः । यस्याः

लेकर अपनी कन्याको बेच देता है ॥१८॥ वह मूढ पुरुष महा- भयंकर कालमूत्र नामक सात भाग वाले नरकमें पड़ कर पसीना तथा मूत्र और विष्ठाका भक्षण करता है ॥१६॥ कितने ही कहते हैं,कि आर्षविवाहमें कन्याके पिताको जो एक बैल तथा एक गौ दीजाती है, वह भी शुल्क ही है,क्योंकि—हे राजन् ! थोड़ा हो या अधिक है तो विक्रय ही,परन्तु वास्तवमें उस को शुल्क कहना मृषा (अनुचित) है ॥ २० ॥ कितने ही इस धर्मका आचरण करते हैं,परन्तु यह सनातनधर्म नहीं है, इसके अतिरिक्त राक्षसआदि दूसरे विवाहोंकी प्रवृत्ति भी मनुष्योंमें देखनेमें आती है ॥२१॥ जो मनुष्य कुमारीको वशमें करके उसके साथ बलपूर्वक भोग करते हैं वे पाप कर्म करने वाले पुरुष अंधकार भरे नरकमें पड़ते हैं२२और भी किसी मनुष्यको न बेचना चाहिये तो अपनी सन्तानकी तो बात ही क्या है ? जो धन अधर्मसे मिलता है उससे किसी प्रकार का धर्म नहीं होसकता ॥२३॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

भीष्मजीने कहा, कि—प्राचीन कालके इतिहासको जानेवाले प्रचेताके पुत्र दक्षके वचनोंका स्मरण करके कहते हैं, कि—(जिस

किञ्चिन्नाददते ज्ञातयो न स विक्रयः॥ १ ॥ अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यतमं च तत्। सर्वं च प्रतिदेयं स्यात् कन्यायै तदशेषतः २ पितृभिर्भ्रातृभिश्चापि श्वशुरैरथ देवरैः। पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ३ ॥ यदि वै स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्। अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनो न प्रवर्धते ॥४॥ पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यञ्जनाधिप। स्त्रियो यत्र च पूज्यंते रमंते तत्र देवताः ॥ ५ ॥ अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः। तदा चैतत्कुलं नास्ति यदा शोचंति जामयः ॥ ६ ॥ जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया। नैव भांति न वर्धंते

कन्याके माता पिता आदि) सम्बन्धी कन्याके ऊपर कुछ नहीं लेते हैं (किन्तु कन्याके लिये जो उसकी सुसरालवाले पल्ला आदि भेजते हैं उसको ही कन्याके लिये स्वीकार करते हैं) तो वह कन्याविक्रय नहीं समझा जाता है ॥१॥ कन्याओंको पल्लेके रूपमें जो धन दिया जाता है, वह कन्याओंका सत्कार करनेकी समान है और सज्जनता है, कन्याके माता पिताको (पल्ले आदिके रूपमें)जो धन मिले वह वह सब धन कन्याओंके अर्पण कर देना चाहिये ॥ २ ॥ कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, श्वसुर और देवरोंको स्त्रियोंको सदा अलंकृत रखकर उनका सत्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥ यदि स्त्री रुचिवाली न बनेगी तो वह पुरुषको प्रसन्न किस प्रकार कर सकेगी और पुरुष प्रसन्न नहीं होगा तो सन्तानकी वृद्धि नहीं होसकती ॥ ४ ॥ अतः हे राजन् ! स्त्रियोंका सदा सत्कार करना चाहिये और उनको लाड़ लड़ाने चाहिये क्योंकि-जहाँ स्त्रियोंकी पूजाकी जाती है तहाँ देवता रमण करते हैं ॥ ५ ॥ और जिस घरमें स्त्रियें अपूजित रहती हैं तहाँ की सब क्रियाएँ निष्फल होजाती हैं और जब कुलकी बहू बेटियें शोक करने लगती हैं, तब वह कुल नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥ बहिन

श्रियाहीनानि पार्थिव ॥ ७ ॥ स्त्रियः पुंसां परिददे मनुर्जिगमिषुर्दिवम् । अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृदः सत्यजिष्णवः ॥ ८ ॥ ईर्ष्यवो मानकामाश्च चण्डाश्च सुहृदोऽबुधाः । स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयत मानवाः ॥ ९ ॥ स्त्रीप्रत्ययो हि वै धर्मो रतिभोगाश्च केवलाः । परिचर्या नमस्कारास्तदायत्ता भवंतु वः १० उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः पश्यत स्त्रीनिबंधनम् ॥ ११ ॥ संमान्यमानास्त्वेता हि सर्वकार्याण्यवाप्स्यथ । विदेहराजदुहिता चात्र श्लोकमगायत ॥ १२ ॥ नास्ति यज्ञक्रिया काचिन्न श्राद्धं नोपवासकम् । धर्मः स्वभर्तृशु-

---

आदि पूज्य स्त्रियें जिस घरको शाप देती हैं, वह घर कृत्याओंके नष्ट किये हुए घरकी समान नष्ट होजाता है और हे पार्थिव ! उन घरोंकी शोभा नष्ट होजाती है और उनकी समृद्धिका भी नाश होजाता है ॥ ७ ॥ स्वर्गमें जाना चाहनेवाले मनुने स्त्रियें पुरुषोंके अर्पण की थीं और कहा था, कि-स्त्रियें बलरहित हैं, उनका कौपीन स्वल्प होता है, वे स्नेहसे भरी हुई होती हैं और सत्यको जीतना चाहती हैं ॥ ८ ॥ स्त्रियें ईर्षालु हैं, मान चाहती हैं, क्रोधी हैं, स्नेहमय हृदयवाली हैं और अबुध हैं तब भी वे सत्कारपात्र हैं अतः हे मनुष्यो ! तुम स्त्रियोंका सत्कार करो, क्योंकि-पुरुषोंके धर्मका आधार स्त्रियों पर ही है और वे केवल रति और भोगके लिये ही हैं तुम्हारी परिचर्या और नमस्कार स्त्रियोंके अधीन है॥९॥१०॥ सन्तानको उत्पन्न करना, उत्पन्न हुई सन्ततिका पालन करना और लोकयात्राको प्रीतिपूर्वक चलाना स्त्रियोंके अधीन समझना चाहिये ११ हे मनुष्यो ! इनका सत्कार करनेसे तुम्हें सब काम मिलेंगे इस विषयमें विदेहराजकी पुत्रीने (एक) श्लोक गाया है, कि-॥ १२ ॥ स्त्रियोंको किसी यज्ञक्रियाको करनेकी, श्राद्ध करनेकी तथा उपवास करनेकी (आव-

श्रूषा तया स्वर्गं जयंत्युत ॥ १३ ॥ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति १४ श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता । पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मे स्त्रीप्रशंसानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच । सर्वशास्त्रविधानज्ञ राजधर्मविदुत्तम । अतीव संशयच्छेत्ता भवान् वै प्रथितः क्षितौ ॥ १ ॥ कश्चित्तु संशयो मेऽस्ति तन्मे ब्रूहि पितामह । जातेऽस्मिन् संशये राजन्नान्यं पृच्छेम कंचन ॥ २ ॥ यथा नरेण कर्तव्यं धर्ममार्गानुवर्तिना । एतत् सर्वं महाबाहो भवान् व्याख्यातुमर्हति ॥ ३ ॥ चतस्रो

श्यकता और अधिकार नहीं है, अपने पतिकी सेवा करना ही उनका धर्म है और पतिसेवासे ही वह स्वर्गको जीत लेती हैं १३ (स्त्रियोंकी) कुमारावस्थामें पिता रक्षा करता है, यौवनमें भर्ता रक्षा करता है और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं, स्त्रीको किसी समय स्वतन्त्र होना उचित नहीं है ॥१४॥ स्त्रियें लक्ष्मीस्वरूप हैं, अतः लक्ष्मीकी कामना वाले मनुष्योंको स्त्रियोंका सत्कार करना चाहिये, हे भरतवंशी राजन् ! वशमें रख कर पालन करनेसे स्त्री लक्ष्मीस्वरूप बन जाती है १५ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४६।

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे सब शास्त्रोंके विधानको जानने वाले! हे राजधर्म जानने वालोंमें उत्तम ! आप पृथ्वीमें संशयच्छेदकोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥१॥ हे पितामह ! मुझे एक संदेह है उसको आप निवारण करिये, हमैं जो संदेह हुआ है, उसको हम किसी दूसरेसे बूझना नहीं चाहते ॥२॥ हे महाबाहो ! धर्ममार्गमें चलने वाले मनुष्यका कर्तव्य क्या है ? इस सबकी आपको व्याख्या करनी चाहिये ॥ ३ ॥ हे पितामह ! रतिकी इच्छा करने वाले

विहिता भार्या ब्राह्मणस्य पितामह । ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च रतिमिच्छतः ॥४॥ तत्र जातेषु पुत्रेषु सर्वासां कुरुसत्तम । आनुपूर्व्येण कस्तेषां पित्र्यं दायादमर्हति ॥ ५ ॥ केन वा किं ततो हार्यं पितृवित्तात् पितामह । एतदिच्छामि कथितं विभागस्तेन यः स्मृतः ॥ ६ ॥ भीष्म उवाच । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः । एतेषु विहितो धर्मो ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर॥७॥ वैषम्यादथवा लोभात् कामाद्वापि परंतप । ब्राह्मणस्य भवेच्छूद्रा न तु दृष्टांततः स्मृता ॥ ८ ॥ शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो

ब्राह्मणके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्ण स्त्री, इस प्रकार चार भार्याओंका विधान है (चार स्त्रीग्रहण करना धर्म नहीं है, परन्तु रतिसुखकी इच्छा वालेके लिये ये काम्य विधान है, क्यों कि-कहा है, कि-"शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् । अपत्यं जनयित्वास्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते" अर्थात् ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीको पर्यंक पर चढ़ानेसे अधोगतिको प्राप्त होता है और उसमें सन्तान उत्पन्नकरके तो ब्राह्मणत्वसेही भ्रष्टहोजाता है)४ हे कुरुसत्तम।उनसब स्त्रियोंमें पुत्र उत्पन्न होजायँ तो उनमेंसे पिताके भागको क्रमशः कौन पासकता है ॥ ५ ॥ हे पितामह ! किस पुत्रको पिताके धनमेंसे कितना२ भाग लेना चाहिये ? भिन्न भिन्न जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए पुत्रोंको किस प्रकार भाग देना चाहिये ? यह सब बात मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर !ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य, ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं, इनमें ब्राह्मणका इनसे विवाह करना धर्म माना जाता है॥७॥परन्तु हे राजन् ! ब्राह्मणको शूद्रकन्यासे विवाह करनेका शास्त्रमें विधान नहीं है, परन्तु कार्याकार्यके अविवेकसे , लोभसे अथवा कामनासे मनुष्य शूद्राके साथ विवाह कर लेते हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण शूद्र जातिकी कन्याके

यात्यधोगतिम् । प्रायश्चित्तीयते चापि विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ६ ॥
तत्र जातेष्वपत्येषु द्विगुणं स्याद्युधिष्ठिर । आपद्यमानमृक्थं तु
संप्रवक्ष्यामि भारत ॥ १० ॥ लक्षण्यं गोवृषो यानं यत्प्रधान-
तमं भवेत् । ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्पुत्र एकांशं वै पितुर्धनात् ॥ ११ ॥
शेषं तु दशधा कार्यं ब्राह्मणस्वं युधिष्ठिर । तत्र तेनैव हर्तव्याश्च-
त्वारोंशाः पितुर्धनात् ॥ १२ ॥ क्षत्रियायास्तु यः पुत्रो ब्राह्मणः
सोऽप्यसंशयः । स तु मातुर्विशेषेण त्रीनंशान् हर्तुमर्हति ॥ १३ ॥

साथ यदि शयन करता है, तो उसकी अधोगति होजाती है और वेदोक्त मंत्रोंसे उसको प्रायश्चित्त करना पड़ता है (सब विषयोंमें एक ही विधि अथवा निषेध नहीं चलता है। यहाँ ब्राह्मणके लिये शूद्रा स्त्री अयोनि कही है, श्रुति कहती है, कि-"कूष्माण्डै-र्जुहुयाद्द योऽपूत इव मन्यते यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनौ रेतः सिञ्चति इति,, जो अपने शरीरको अपवित्र समझे उसको कूष्माण्ड नामक मंत्रोंसे होम करना चाहिये, चोर और ब्रह्महत्यारे पुरुषोंकी भाँति उसको यह होम करना चाहिये, इसी प्रकार जो पुरुष अयोनिमें वीर्यका सेचन करता है, उसको भी कूष्माण्ड होम करना चाहिये, ॥ ६ ॥ हे युधिष्ठिर! शूद्र जातिकी स्त्रीमें संतान उत्पन्न करनेसे दुगना प्रायश्चित्त करना पड़ता है हे भरवंशी राजन्! अब मैं ब्राह्मणी आदि स्त्रियोंमें उत्पन्न हुई संतानोंको पिताके धनका कितना २ भाग देना चाहिये, यह कहता हूँ॥ १०॥ ब्राह्मणजातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुत्र अपने पिताकी संपत्तिमेंसे गौ तथा बैल आदि जो मुख्य २ वस्तु हों उनके एक अर्थात् मुख्य अंशको लेलेय ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर! तदनन्तर ब्राह्मणके धनके दश भाग करने चाहियें, उनमेंसे ब्राह्मणीके पुत्रको पिताके धनमेंसे चार भाग लेलेने चाहिये ॥ १२ ॥ क्षत्रियजातिकी स्त्रीका जो पुत्र होता

वर्णे तृतीये जातस्तु वैश्यायां ब्राह्मणादपि । द्विरंशस्तेन हर्तव्यो ब्राह्मणस्वाद्युधिष्ठिर ॥ १४ ॥ शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो नित्यादेयधनः स्मृतः । अल्पं चापि प्रदातव्यं शूद्रापुत्राय भारत १५ दशधा प्रविभक्तस्य धनस्यैष भवेत्क्रमः । सवर्णासु तु जातानां समान भागान् प्रकल्पयेत् ॥१६॥ अब्राह्मणं तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात् । त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद्ब्राह्मणो भवेत् १७ स्मृताश्च वर्णाश्चत्वारः पञ्चमो नाधिगम्यते । हरेच्च दशमं भागं शूद्रापुत्रः पितुर्धनात् ॥ १८ ॥ तत्तु दत्तं हरेत् पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति । अवश्यं हि धनं देयं शूद्रापुत्राय भारत ॥१९॥ आनृ-

---

है, वह भी निःसन्देह ब्राह्मण होता है,वह अपनी माताके अधिकारानुसार तीन भाग पानेका अधिकारी है ॥ १३ ॥ और हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणसे तृतीयवर्ण वैश्यजातिकी स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होता है,उसको ब्राह्मणके धनमेंसे दो भाग लेने चाहिये१४ हे भरतवंशी राजन् ! ब्राह्मणसे शूद्र जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मणपिताके धनमेंसे धन लेनेका पात्र किसी प्रकार भी नहीं है,तब भी शूद्रजातिकी स्त्रीके पुत्रको थोड़ासा धन(दयासे) देना चाहिये (अतः अवशिष्ट एक भाग उसका देदेना चाहिये)१५ दश भागमें बँटे हुए धनका क्रम इस प्रकार है, जो पुत्र अपनी समान जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुए हों उनको समान भाग देना चाहिये ॥ १६ ॥ शूद्र जातिकी स्त्रीका पुत्र (वेदशास्त्रमें) कुशल नहीं होता है,इससे उसको ब्राह्मण नहीं माना जासकता, परन्तु ब्राह्मणजातिके पुरुषसे पहिली तीन जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए पुत्र ब्राह्मणकी समान माने जाते हैं ॥ १७ ॥ शास्त्रमें चार वर्ण कहे हैं, पाँचवें वर्णका शास्त्रमें वर्णन नहीं है, शूद्रजातिकी स्त्रीका पुत्र पिताके धनमेंसे दशवाँ भाग लेलेय ॥ १८ ॥ उस भागको भी यदि पिता देय तो लेलेय अन्यथा उसका लेना भी

शंस्यं परो धर्म इति तस्मै प्रदीयते । यत्र तत्र समुत्पन्नं गुणायैवोपपद्यते ॥ २० ॥ यद्यप्येष सपुत्रः स्यादपुत्रो यदि वा भवेत् । नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय भारत ॥ २१ ॥ त्रैवार्षिकाद्यदा भक्तादधिकं स्याद्द्विजस्य तु । यजेत तेन द्रव्येण न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २२ ॥ त्रिसहस्रपरो दायः स्त्रियै देयो धनस्य वै । भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति ॥ २३ ॥ स्त्रीणां तु पतिदायाद्यमुपभोगफलं स्मृतम् । नापहारं स्त्रियः कुर्युः पतिवित्तात् कथंचन ॥ २४ ॥ स्त्रियास्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं युधिष्ठिर । ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्कन्या यथा पुत्रस्तथा हि सा ॥ २५ ॥ सा हि पुत्रसमा राजन् विहिता कुरुनन्दन । एवमेव समुद्दिष्टो धर्मो

अनुचित है, परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! शूद्राके पुत्रको धन अवश्य देना चाहिये ॥ १६ ॥ आनृशंस्य परम धर्म है अतः उसको धन देना चाहिये, सर्वत्र उसका प्रयोग करना गुणरूप होजाता है २० हे भरतवंशी राजन् ! शूद्राका पुत्र अपुत्र हो अथवा पुत्रवान् हो परन्तु उसको दशवें भागसे अधिक भाग कभी न देना चाहिये २१ ब्राह्मणके पास तीन वर्षसे अधिक चलनेवाला धन हो तो उस धनसे यज्ञ करे और वृथा ही धनसंग्रह न करे ॥ २२ ॥ पुरुषको अपनी स्त्रीका तीन सहस्र तक धन देदेना चाहिये और स्वामीके दिये हुए धनका स्त्रीको उचित मार्गसे व्यय करना चाहिये ॥२३॥ स्त्रियोंको पतिके धनमेंसे जो भाग मिलता है; उसका उपभोग करना ही शास्त्रमें फल कहा है, स्त्रीको अपने पतिके धनमेंसे (और कुछ) न उड़ाना चाहिये ॥२४॥ हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणी स्त्रीको उसके पितासे जो धन मिला हो, वह धन (मरणके पीछे) उसकी पुत्रीको लेना चाहिये क्योंकि पुत्रीको पुत्रकी समान मानना चाहिये ॥२५॥ हे कुरुनन्दन राजन् ! पुत्रीको भी शास्त्रमें पुत्रकी समान कहा है, हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! इस प्रकार

वै भरतर्षभ । एवं धर्ममनुस्मृत्य न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो यद्यदेयधनः स्मृतः । केन प्रतिविशेषेण दशमोऽप्यस्य दीयते ॥२७॥ ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः । क्षत्रियायां तथैव स्याद्वैश्यायामपि चैव हि ॥ २८ ॥ कस्मात्तु विषमं भागं भजेरन्नृपसत्तम। यदा सर्वेऽत्र यो वर्णास्त्वयोक्ता ब्राह्मणा इति ॥ २९ ॥ भीष्म उवाच । दारा इत्युच्यते लोके नाम्नैकेन परंतप । प्रोक्तेन चैव नाम्नायं विशेषः सुमहान् भवेत् ॥३०॥ तिस्रः कृत्वा पुरो भार्याः पश्चाद्विंदेत ब्राह्मणीम् । सा ज्येष्ठा सा च पूज्या स्यात् सा च भार्या गरीयसी ॥ ३१ ॥ स्नानं प्रसाधनं भर्तुर्दन्तधावनमंजनम् ।

विभागकी रीति कही, इसी प्रकार धर्मका अनुसरण करके धन सम्पादन करना चाहिये और अन्यायसे धन इकट्ठा न करना चाहिये ॥ २६ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-शूद्र जातिकी स्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताकी सम्पत्तिमेंसे धन पानेका अधिकारी नहीं है तब भी उसको कौनसे अधिकारसे दशवाँ भाग दिया जाता है ॥२७॥ ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह ब्राह्मण ही माना जाता है, इसी प्रकार ब्राह्मण जातिके पुरुषसे क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें और वैश्य जातिकी स्त्रीमें भी जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह भी ब्राह्मण ही माना जाता है २८ हे राजन् ! ये तीनों वर्णोंके पुत्र ब्राह्मण ही कहलाते हैं, फिर भी इन्हें न्यूनाधिक भाग क्यों लेना चाहिये ? २९ भीष्मजीने कहा, कि-हे परन्तप ! इस जगत्में सब स्त्रियें दारा नामसे प्रसिद्ध हैं, तथापि इस दारा शब्दमें बड़ा भारी भेद है ३० ब्राह्मण चाहे भिन्न २ जातिकी तीन स्त्रियोंसे पहिले विवाह कर लेय और ब्राह्मण जातिकी स्त्रीसे पीछे विवाह करे तब भी ब्राह्मण जातिकी पीछे विवाही हुई स्त्री श्रेष्ठ, ज्येष्ठ और पूज्य भार्या मानी

हव्यं कव्यं च यच्चान्यद्धर्मयुक्तं गृहे भवेत् ॥ ३२ ॥ न तस्यां जातु तिष्ठंत्यामन्या तत्कर्तुमर्हति । ब्राह्मणी त्वेव कुर्याद्वा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥ अन्नं पानं च माल्यं च वासांस्याभरणानि च । ब्राह्मण्यैतानि देयानि भर्तुः सा हि गरीयसी ३४ मनुनाभिहितं शास्त्रं यच्चापि कुरुनन्दन । तत्राप्येष महाराज दृष्टो धर्मः सनातनः ॥३५॥ अथ चेदन्यथा कुर्याद्यदि कामाद्युधिष्ठिर । यथा ब्राह्मणचांडालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण्या सदृशः पुत्रः क्षत्रियायाश्च यो भवेत् । राजन्विशेषो यस्त्वत्र वर्णयोरुभयोरपि ॥३७॥ न तु जात्या समा लोके ब्राह्मण्याः क्षत्रिया

जाती है ३१ पतिको स्नान कराना, सजाना, दतौन देना, नेत्रोंमें सुरमा डालना, देवताओंको बलिदान देना और श्राद्धकर्ममें सहायता देना तथा और भी घरमें जो धार्मिककृत्य हों ३२ ये सब काम यदि घरमें ब्राह्मण जातिकी स्त्री हो तो दूसरी स्त्रीको नहीं करने चाहियें, किन्तु हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणके घरके काम ब्राह्मणी को ही करने चाहिये ३३ भोजनके लिये अन्न, पीनेके लिये जल, पुष्प, वस्त्र और आभूषण ये सब ब्राह्मण जातिकी स्त्री ही पतिको देवे, क्योंकि-सब पत्नियोंमें ब्राह्मण जातिकी पत्नी ही श्रेष्ठ है ३४ हे कुरुवंशनन्दन महाराज ! मनुजीने जो शास्त्र कहा है, उसमें भी इस सनातन धर्मका निर्णय किया है ३५ यदि कोई ब्राह्मण कामवासनासे इसके विपरीत वर्ताव करता हो तो उसको पूर्ववर्णित मतंगकी समान ही ब्राह्मण चाण्डाल समझना चाहिये ३६ ब्राह्मणका क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होता है वह ब्राह्मणीके पुत्रकी समान नहीं माना जाता, इसका कारण यह है, कि-इन दोनों वर्णोंमें भेद है ३७ यह भेद है, कि-इस लोकमें क्षत्रिय जातिकी स्त्री ब्राह्मण जातिकी स्त्रीकी समान नहीं मानी जाती अतः हे महाराज ! ब्राह्मणीके पुत्रकी प्रथम

भवेत् । ब्राह्मण्याः प्रथमः पुत्रो भूयान् स्याद्राजसत्तम ॥ ३८ ॥ भूयो भूयोऽपि संहार्यः पितृवित्ताद्युधिष्ठिर । यथा न सदृशी जातु ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत् ॥३९॥ क्षत्रियायास्तथा वैश्या न जातु सदृशी भवेत् । श्रीश्च राज्यं च कोशश्च क्षत्रियाणां युधिष्ठिर ४० विहितं दृश्यते राजन् सागरांतां च मेदिनीम् । क्षत्रियो हि स्वधर्मेण श्रियं प्राप्नोति भूयसीम् ॥ ४१ ॥ राजा दंडधरो राजन् रक्षा नान्यत्र क्षत्रियात् । ब्राह्मणा हि महाभागा देवानामपि देवताः। तेषु राजन् प्रवर्तेत पूजया विधिपूर्वकम् ॥ ४२ ॥ प्रणीतमृषिभिर्ज्ञात्वा धर्मं शाश्वतमव्ययम् । लुप्यमानं स्वधर्मेण क्षत्रियो ह्येष रक्षति ॥४३॥ दस्युभिर्ह्रियमाणं च धनं दाराश्च सर्वशः । सर्वेषामेव वर्णानां त्राता भवति पार्थिवः ॥४४॥ भूयान् स्यात् क्षत्रिया-

और बड़ोंमें गणनाकी है ॥३८॥ और हे युधिष्ठिर ! क्षत्रियका पुत्र ब्राह्मणीके पुत्रकी समान नहीं माना जाता अतः पिताके धनमेंसे ब्राह्मणीका पुत्र अधिक धन लेता है ॥ ३९ ॥ जैसे क्षत्रिया कभी भी ब्राह्मणीकी समान नहीं मानी जाती ऐसे ही वैश्य जातिकी स्त्री भी कभी क्षत्रिय जातिकी स्त्रीकी समान नहीं होसकती, हे युधिष्ठिर ! लक्ष्मी, राज्य और धनका भण्डार क्षत्रियको लेना चाहिये, यह धर्मशास्त्रमें कहा है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि-हे युधिष्ठिर ! क्षत्रिय जातिका पुरुष समुद्र तककी पृथ्वीको और बड़ी भारी लक्ष्मीको अपने धर्मसे पाता है ॥ ४०-४१ ॥ हे राजन् ! क्षत्रियको दण्डधारण करनेका अधिकार है तथा रक्षा करनेका अधिकार भी, क्षत्रियके अतिरिक्त और किसीको नहीं है ब्राह्मण महाभाग्यवान् हैं और देवदेव हैं अतः हे राजन् ! उनका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ऋषियोंने बुद्धिपूर्वक जिस अविनाशी और शाश्वत धर्मका निर्माण किया है, उस धर्मका जब लोप होने

पुत्रो वैश्यापुत्रान्न संशयः । भूयस्तेनापि हर्तव्यं पितृवित्ताद्‌ युधिष्ठिर ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । उक्तं ते विधिवद्राजन् ब्राह्मणस्य पितामह । इतरेषां तु वर्णानां कथं वै नियमो भवेत् ४६ भीष्म उवाच । क्षत्रियस्यापि भार्ये द्वे विहिते कुरुनन्दन । तृतीया च भवेच्छूद्रा न तु दृष्टांततः स्मृता ॥ ४७ ॥ एष एव क्रमो हि स्यात् क्षत्रियाणां युधिष्ठिर । अष्टधा तु भवेत् कार्यं क्षत्रियस्वं जनाधिप ॥ ४८ ॥ क्षत्रियाया हरेत् पुत्रश्चतुरोंशान् पितुर्धनात् । युद्धावहारिकं यच्च पितुः स्यात् स हरेत्तु तत् ॥ ४९ ॥ वैश्या-

---

लगता है तब क्षत्रिय अपने धर्मका पालन कर उसकी रक्षा करता है ॥४३॥ चोर जब ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके धनको और स्त्रीको हर कर लेजाने लगें, उस समय राजाको चारों वर्णोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ वैश्य स्त्रीके पुत्रसे क्षत्रियाका पुत्र श्रेष्ठ माना जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, अतः हे युधिष्ठिर ! क्षत्रियाके पुत्रको पिताके धनमेंसे अधिक भाग लेना चाहिये ४५ युधिष्ठिरने बूझा, कि हे राजन् ! हे पितामह ! आपने ब्राह्मणसे तीन जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए पुत्रोंका शास्त्रानुसार वर्णन किया, परन्तु दूसरे वर्णके मनुष्य किस २ जातिकी स्त्रीसे विवाह करें और उनके पुत्रोंको पिताके धनमेंसे कितना २ भाग लेना चाहिये ॥ ४६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे कुरुनन्दन ! क्षत्रियको भी दो भार्याएँ करनेका विधान है और तीसरी शूद्रजातिकी स्त्रीको भी विवाह सकता है, परन्तु धर्मशास्त्रमें उसका विधान नहीं है ॥४७॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार क्षत्रियजातिके पुरुषके विवाह करनेका क्रम है, हे राजन् ! क्षत्रियके धनके आठ भाग करने चाहियें ॥ ४८ ॥ क्षत्रियसे क्षत्रियामें उत्पन्न हुए पुत्रको पिताके धनमेंसे चार भाग लेलेने चाहिये, और अपने पिताने युद्धमें जीत कर जो हाथी घोड़ा पाया हो, उसको भी लेलेना

पुत्रस्तु भागांस्त्रीन् शूद्रापुत्रस्तथाष्टमम् । सोऽपि दत्तं हरेत् पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ॥ ५० ॥ एकैव हि भवेद्भार्या वैश्यस्य कुरुनन्दन । द्वितीया तु भवेच्छूद्रा न तु दृष्टांततः स्मृता ॥ ५१ ॥ वैश्यस्य वर्तमानस्य वैश्यायां भरतर्षभ । शूद्रायां चापि कौन्तेय तयोर्विनियमः स्मृतः ॥ ५२ ॥ पञ्चधा तु भवेत् कार्यं वैश्यस्वं भरतर्षभ । तयोरपत्ये वक्ष्यामि विभागं च जनाधिप ॥ ५३ ॥ वैश्यापुत्रेण हर्तव्याश्चत्वारोंशाः पितुर्धनात् । पंचमस्तु स्मृतो भागः शूद्रापुत्राय भारत ॥५४॥ साऽपि दत्तं हरेत पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति । त्रिभिर्वर्णैः सदा जातः शूद्रोऽदेयधनो भवेत् ।५५॥ शूद्रस्य स्यात् सवर्णैव भार्या नान्या कथंचन । समभागाश्च

चाहिये ॥४९॥ क्षत्रियसे वैश्य स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्रको पिताके धनमेंसे तीन भाग लेने चाहियें और शूद्राके पुत्रको आठवाँ भाग लेलेना चाहिये, परन्तु उसको भी पिताके देने पर ही लेना चाहिये पिता यदि न दे तो उसको भी न लेय ॥ ५० ॥ हे राजन् ! वैश्यके अपनी जातिकी एक ही भार्या होसकती है और दूसरी शूद्र जातिकी स्त्री होसकती है, परन्तु उसका धर्मशास्त्रमें वर्णन नहीं है ॥५१॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वैश्यके वैश्यवर्णकी और शूद्रजातिकी इसप्रकार दो जातिकी स्त्रियें हों तो हे राजन् ! उन दोनोंके भागमें बहुत भेद होता है ॥ ५२ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! तब वैश्यके धनके पाँच विभाग करने चाहियें अब हे राजन् ! मैं वैश्याके और शूद्राके पुत्रोंको कितने भाग देने चाहियें, यह बताता हूँ ॥ ५३ ॥ कि- वैश्य स्त्रीके पुत्रको पिताके धनमेंसे चार भाग लेने चाहियें और हे भारत ! पाँचवाँ भाग शूद्र पुत्रको लेना चाहिये ॥ ५४ ॥ परन्तु उसको भी पिता देय तो लेय अन्यथा न लेय । प्रथमके तीन वर्णोंसे उत्पन्न हुए शूद्र जातिके पुत्रोंको धन देना अनुचित है ॥ ५५ ॥ शूद्रजातिके

पुत्राः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥ ५६ ॥ जातानां समवर्णायाः पुत्राणामविशेषतः । सर्वेषामेव वर्णानां समभागो धनात् स्मृतः ५७ ज्येष्ठस्य भागो ज्येष्ठः स्यादेकांशो यः प्रधानतः । एष दायविधिः पार्थ पूर्वमुक्तः स्वयंभुवा ॥ ५८ ॥ समवर्णासु जातानां विशेषोऽस्त्यपरो नृप । विवाहवैशिष्यकृतः पूर्वपूर्वो विशिष्यते ॥ ५९ ॥ हरेज्ज्येष्ठः प्रधानांशमेकं तुल्यासुतेष्वपि । मध्यमो मध्यमं चैव कनीयांस्तु कनीयसम् ॥ ६० ॥ एवं जातिषु सर्वासु सवर्णः श्रेष्ठतां गतः । महर्षिरपि चैतद्वै मारीचः काश्यपोऽब्रवीत् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे रिक्थविभागो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

पुरुषके लिये केवल अपनी ही जातिकी-भार्याका विधान है और का नहीं, शूद्रके सौ पुत्र हों तब भी उनको समानरीतिसे धन बाँट लेना चाहिये ५६ सब वर्णोंकी स्त्रियोंमें यदि अपने वर्णवालेसे ही पुत्र उत्पन हों तो उनको धन समानभागमें ही लेना चाहिये, ऐसा धर्मशास्त्रमें कहा है ॥५७॥ हे पृथा पुत्र ! ज्येष्ठ पुत्रको पिताकी सारी सम्पत्तिमेंसे एक भाग अधिक देना चाहिये, इसप्रकार दायविभाग पहिले स्वयम्भूने कहा है ॥ ५८ ॥ और हे राजन् ! समानवर्णवाली स्त्रियोंमें उत्पन्न हुओंमें यह विशेष बात है, कि-उनमें जिसकी माताका पहिले विवाह हुआ हो उसको श्रेष्ठ मानना चाहिये ॥ ५९ ॥ समानवर्णकी स्त्रियोंमें भी उत्पन्न हुए ज्येष्ठ पुत्रको प्रधान भाग लेना चाहिये, मध्यम पुत्रको मध्यम भाग लेना चाहिये तथा कनिष्ठको कनिष्ठ भाग लेना चाहिये ॥ ६० ॥ इसप्रकार सब जातिके पुत्रोंमें सवर्ण जातिका पुत्र ही श्रेष्ठ है, मरीचिके पुत्र कश्यपजीने भी यही बात कही है ॥ ६१ ॥ सैंता-लीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ छ छ छ

युधिष्ठिर उवाच। अर्थाल्लोभाद्वा कामाद्वा वर्णानां चाप्य-निश्चयात्। अज्ञानाद्वापि वर्णानां जायते वर्णसंकरः ॥ १ ॥ तेषामेतेन विधिना जातानां वर्णसंकरे। को धर्मः कानि कर्माणि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥ भीष्म उवाच। चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि चातुर्वर्ण्यं च केवलम्। असृजत् स हि यज्ञार्थं पूर्वमेव प्रजापतिः ३ भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते। आनुपूर्व्याद्द्वयो-र्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः ॥ ४ ॥ परं शवाद्ब्राह्मणस्यैव पुत्रः

युधिष्ठिरने बूझा, कि-धनके लोभसे अथवा कामवश उत्तम वर्णकी स्त्री अधम वर्णके साथ समागम करे, तो वर्णका निश्चय नहीं होता इससे और वर्णोंका ज्ञान न होनेसे वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ इसप्रकार वर्णसंकररूपसे उत्पन्न हुए मनुष्योंका धर्म क्या होता है और उनके आजीविकाके कौन २ साधन होते हैं ? यह बात हे पितामह! आप मुझसे कहिये॥२॥ भीष्मजीने उत्तर दिया, कि-प्रजापतिने पहिले चारों वर्णोंके कर्मोंको तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंको यज्ञके लिये ही उत्पन्न किया है (इनमें शूद्र तीनों वर्णों की सेवा द्वारा ही यज्ञके काममें आते हैं साक्षात्‌रूपसे नहीं, क्योंकि-श्रुतिमें कहा है, कि-"तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः" ॥३॥ ब्राह्मणके चार जातिकी स्त्री होती हैं, उनमें पहली दो जातिकी स्त्रियोंमेंसे जो पुत्र होते हैं, वे ब्राह्मण ही माने जाते हैं और वैश्य तथा शूद्रजातिकी स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वह कुछ नीचे गिने जाते हैं और अपनी माताकी जातिके गिने जाते हैं (मनुजीने कहा है, कि-क्षत्रियामें उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मणीके पुत्रसे कुछ नीचा माना जाता है, ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र अम्बष्ठ कहलाता है तथा शूद्रामें उत्पन्न हुआ पुरुष निषाद और पारशव कहलाता है) ॥ ४ ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें जो पुत्र

शूद्रापुत्रं पारशवं तमाहुः । शुश्रूषकः स्वस्य कुलस्य स स्यात् स्वचरित्रं नित्यमथो न जह्यात् ॥ ५ ॥ सर्वानुपायानथ संप्रधार्य समुद्धरेत् स्वस्य कुलस्य तन्त्रम् । ज्येष्ठो यवीयानपि या द्विजस्य शुश्रूषया दानपरायणः स्यात् ॥ ६ ॥ तिस्रः क्षत्रियसम्बन्धाद् द्वयोरात्मास्य जायते । हीनवर्णास्तृतीयायां शूद्रा उग्रा इति स्मृतिः ७ द्वे चापि भार्ये वैश्यस्य द्वयोरात्मास्य जायते । शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते ॥ ८ ॥ अतोऽविशिष्टस्त्वधमो गुरुदार-प्रधर्षकः । बाह्यं वर्णं जनयति चातुर्वर्ण्यविगर्हितम् ॥ ९ ॥ विप्रायां

उत्पन्न होता है, वह पुरुष शवसमान शूद्र जातिके पुरुषसे पर अर्थात् श्रेष्ठ होता है इसलिये उसको विद्वान् ब्राह्मण पारशव कहते हैं, उस पुरुषको अपने कुलकी सेवा करनी चाहिये और अपने (कुलसेवारूप) चरित्रका कभी त्याग न करना चाहिये ५ सब उपायोंका विचार कर अपने कुलका उद्धार करना चाहिये, अपने आप अवस्थामें बड़े होने पर भी अपने कुलमें उत्पन्न हुए तीन वर्णोंके अवस्थामें छोटे पुरुषोंकी सेवा करनी चाहिये और दानमें परायण रहना चाहिये ॥ ६ ॥ क्षत्रियके तीन स्त्रियोंके सम्बन्धसे पुत्र होसकते हैं, उनमें क्षत्रिय और वैश्य जातिकी स्त्रीसे अपनी जातिका पुत्र उत्पन्न होता है और तीसरी शूद्र जातिकी स्त्रीका पुत्र हीन जातिका अर्थात् उतरता हुआ माना जाता है और शूद्र उग्र जातिका कहलाता है, यह धर्मशास्त्रमें कहा है ॥७॥ वैश्यके वैश्य जातिकी और शूद्र जातिकी इस प्रकार दो जातिकी स्त्रियें होती हैं, इन दोनों में इसका आत्मा उत्पन्न होता है और शूद्रके एक अपनी ही जातिकी स्त्री होती है और वह शूद्रको ही उत्पन्न करती है ८ अपने पितासे अश्रेष्ठ यह शूद्र यदि गुरु (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) जातिकी स्त्रियोंसे समागम करे तो चारों वर्णोंसे बाह्य

क्षत्रियो वाह्यं सूतं स्तोमक्रियापरम् । वैश्यो वैदेहकं चापि मौद्ग-
ल्यमपवर्जितम् ॥ १० ॥ शूद्रश्चांडालमत्युग्रं बध्यघ्नं वाह्यवासि-
नम् । ब्राह्मण्यां संप्रजायन्त इत्येते कुलपांसनाः । एते मतिमतां
श्रेष्ठ वर्णसंकरजाः प्रभो ॥११॥ बन्दी तु जायते वैश्यान्मागधो
वाक्यजीवनः।शूद्रान्निषादो मत्स्यघ्नः क्षत्रियायां व्यतिक्रमात्१२

चाण्डाल आदि निन्दित जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है ॥९॥ क्षत्रिय जातिका पुरुष ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें (चारों वर्णोंसे) वाह्य सूत नामकी जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है, वह राजा आदिकी स्तुति करता है,वैश्य जातिका पुरुष ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें जिस पुत्रको उत्पन्न करता है,वह वैदेह जातिका कहलाता है और उसका काम अन्तःपुरकी रक्षा करना आदि है और वह संस्कारके अयोग्य होता है ॥ १० ॥ शूद्र जातिसे ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुत्र चाण्डाल जातिका कहलाता है, वह स्वभावका अति उग्र होता है, वह चोर हिंसक आदि दण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देनेका कार्य करता है और नगर अथवा ग्रामके वाहर रहता है,इसप्रकार उतरती जातिके पुरुषसे ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें कुलको लाञ्छन लगानेवाले वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं । हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ प्रभो ! वैश्य जातिका पुरुष क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमेंसे बन्दी और मागध जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है, उसको राजा आदिकी स्तुति करनेका काम करना चाहिये, तथा प्रसंगानुसार कविताएँ कहकर आजीविका चलानी चाहिये, शूद्र जातिका पुरुष क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें जिस पुत्रको उत्पन्न करता है, उसको निषाद जातिका समझना चाहिये और मछली आदिको पकड़नेका धन्धा करके आजीविका चलानी चाहिये(मनुजीने निषाद जातिको अनुलोम जातिमें माना है और क्षत्ताको प्रतिलोमोंमें गिना है, परन्तु व्यासजीने विदुरको प्रायः

शूद्रादायोगवश्चापि वैश्यायां ग्राम्यधर्मिणः । ब्राह्मणैरप्रतिग्राह्यस्तक्षा स्वधनजीवनः ॥१३॥ एतेऽपि सदृशान् वर्णान् जनयन्ति स्वयोनिषु । मातृजात्याः प्रसूयन्ते ह्यवरा हीनयोनिषु॥१४॥ यथा चतुर्षु वर्णेषु द्वयोरात्मास्य जायते । आनन्तर्यात् प्रजायन्ते तथा

क्षत्ता करके लिखा है, भगवान् याज्ञवल्क्यने भी लिखा है, कि-"शूद्र्यां निषादो जातः पारशवोऽपि वा । क्षत्रिया मागधं वैश्यात् शूद्रात् क्षत्तारमेव वा ॥" ब्राह्मण जातिके पुरुषसे शूद्र जातिकी स्त्रीमें निषाद अथवा पारशव जातिका पुत्र उत्पन्न होता है और वैश्य जातिके पुरुषसे क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें मागध जातिका पुत्र उत्पन्न होता है और शूद्र क्षत्तृ जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है यहाँ "वा" शब्दसे दोनोंकी निषाद और क्षत्रिय जाति भी सूचित होती है । और ब्राह्मण जातिका पुरुष शूद्रजातिकी स्त्रीमें क्षत्ता जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है और शूद्रजातिका पुरुष क्षत्रियजातिकी स्त्रीमें निषाद जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है । यह उचित अर्थ भी होसकता है-नीलकण्ठ) ॥११-१२॥ शूद्रजातिके पुरुषसे वैश्य जातिकी स्त्रीका समागम होने पर आयोगव जातिका पुत्र उत्पन्न होता है, उसको बढ़ईका धन्धा करके आजीविका करनी चाहिये, ब्राह्मणोंको उससे दान न लेना चाहिये, उसको अपने (सञ्चित) धनसे आजीविका न चलानी चाहिये (किन्तु बढ़ई आदिका काम करके आजीविका चलानी चाहिये) ॥ १३ ॥ यह वर्णसंकर पुरुष भी अपनी २ जातिकी स्त्रियोंमें अपनी जातिके पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं और उनसे उतरती हुई जातिमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे माताकी जातिमें समझे जाते हैं ॥ १४ ॥ जैसे चारों वर्णोंके पुरुषोंसे अपनी २ जातिकी स्त्रीमें और अपनेसे उतरती जातिकी स्त्रीमें अपनी समान जातिके पुत्र उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार एक २

बाह्याः प्रधानतः ॥ १५ ॥ ते चापि सदृशं वर्णं जनयन्ति स्वयोनिषु । परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ १६ ॥ यथा शूद्रोऽपि ब्राह्मण्यां जन्तुं बाह्यं प्रसूयते । एवं बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्यात् प्रजायते ॥ १७ ॥ प्रतिलोमं तु वर्तन्ते बाह्याद्बाह्यतरात् पुनः । हीनाद्धीनाः प्रसूयन्ते वर्णाः पञ्चदशैव तु ॥ १८ ॥ अगम्यागमनाच्चैव जायते वर्णसंकरः । बाह्यानामनुजायन्ते सैरंध्र्यां मागधेषु च । प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ॥ १९ ॥ अत-

---

उतरते वर्णको छोड़कर (यथा ब्राह्मणसे वैश्यामें) मुख्यतः चार वर्णोंसे बाह्य जाति वाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ वे मनुष्य भी अपनी जातिकी स्त्रियोंमें समान वर्ण वाले पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं और परस्परमें भिन्न भिन्न जातिकी स्त्रियोंमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं, वे निन्दनीय होते हैं ॥ १६ ॥ जैसे शूद्रजातिका मनुष्य ब्राह्मणीमें जिस पुत्रको उत्पन्न करता है वह बाह्य जातिका कहलाता है और मूलतः शुद्ध चारों वर्णोंकी स्त्रियोंमें बाह्य जातिके मनुष्यसे जो प्रजा उत्पन्न होती है, वह बाह्यतर प्रजाको उत्पन्न करती है ॥ १७ ॥ जो प्रजा चारों वर्णोंसे बाह्य है, वह बाह्य प्रजा विशेष बाह्य अर्थात् बाह्यतर जातिकी स्त्रीमेंसे प्रतिलोम प्रजाकी वृद्धि करती है, इस प्रकार उतरती जातिके मनुष्यसे उतरती जातिकी पन्द्रह प्रकारकी प्रजा उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥ अगम्या स्त्रीसे गमन करने पर वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न होती है, मागध जातिका मनुष्य सैरंध्री जातिकी स्त्रीमें जिस प्रजाको उत्पन्न करता है, वह बाह्यप्रजा सैरंध्री जातिकी मानी जाती है, इन सैरन्ध्री जातिके मनुष्योंको राजा आदि श्रीमान् मनुष्योंके और स्त्रियोंको रानी आदिके शृंगार करनेका, बाल काढ़नेका, शरीर पर अंगराग लगानेका तथा उनकी स्तुति करनेका काम करना चाहिये ॥ १९ ॥ मागध सैरंध्री

श्चायोगवं सूते वागुरावन्धजीवनम्। मैरेयकं च वैदेहः संप्रसूतेऽथ माधुकम् ॥२०॥ निषादो मद्गुरं सूते दासं नावोपजीविनम्। मृतपं चापि चांडालः श्वपाकमिति विश्रुतम् ॥ २१ ॥ चतुरो मागधो सूते क्रूरान् मायोपजीविनः। मांसं स्वादुकरं क्षौद्रं सौगन्धमिति विश्रुतम् ॥ २२ ॥ वैदेहकाच्च पापिष्ठा क्रूरं मायोपजीविनम्। निषादान्मद्रनाभं च खरयानप्रयायिनम् ॥ २३ ॥ चाण्डालात् पुल्कसं चापि खराश्वगजभोजिनम्। मृतचैलप्रति-

---

जातिकी स्त्रीमें आयोगव जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है, वह जलमेंसे मछली पकड़ कर अपने जीवनका निर्वाह करता है, विदेहसे सैरंध्रक जातिकी स्त्रीमें मैरेयक नाम पुत्र उत्पन्न होता है, उसको मदिरा बनानेका कार्य करना चाहिये २० निषादसे सैरन्ध्र जातिकी स्त्रीमें मद्गुर जातिका पुत्र उत्पन्न होता है, वह दास भी कहाता है, इस दासको नौका चलाकर अपनी आजीविका चलानी चाहिये, चाण्डालसे सैरन्ध्र जातिकी स्त्रीमें श्वपाक जातिका पुत्र उत्पन्न होता है, उसको श्मशानकी रक्षा करनेका काम करना चाहिये ॥ २१ ॥ इन चार जातिके पुरुषोंसे समागम करके अगली जातिकी स्त्री दूसरी चार जाति की क्रूर प्रजाको उत्पन्न करती है, वह मायासे अपनी आजीविका चलाती है, वह चार जातियें मांस, स्वादुकर, क्षौद्र और सौगंध हैं ॥ २२ ॥ वैदेह जातिका पुरुष आयोगवी जातिकी स्त्रीमें पापिष्ठ क्रूर और माया (ठगई) से आजीविका करने वाली प्रजाको उत्पन्न करता है, निषाद जातिका पुरुष आयोगवी जातिकी स्त्रीमें मद्रनाभ जातिके पुरुषको उत्पन्न करता है और वह पुत्र गधोंसे जुती गाड़ीमें बैठ कर आता जाता है ॥ २३ ॥ चाण्डाल जातिका पुरुष आयोगवीमें पुल्कस जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है, वह गधे घोड़े और हाथीके मांसको खाता है

च्छन्नं भिन्नभाजनभोजिनम् ॥ २४ ॥ आयोगवीषु जायन्ते हीन-
वर्णास्तु ते त्रयः । क्षुद्रो वैदेहकादन्ध्रो वहिर्ग्रामप्रतिश्रयः ॥ २५ ।
कारावरो निषाद्यान्तु चर्मकारः प्रसूयते । चाण्डालात् पांडुसौपाक-
स्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥ २६ ॥ आहिंडको निषादेन वैदेह्यां
संप्रसूयते । चण्डालेन तु सौपाकश्चंडालसमवृत्तिमान् ॥ २७ ॥
निषादी चापि चाण्डालात् पुत्रमन्तेवसायिनम् । श्मशानगोचरं
सूते बाह्यैरपि वहिष्कृतम् ॥ २८ ॥ इत्येते संकरे जाताः पितृमातृ-
व्यतिक्रमात् । प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः २९

मृत मनुष्योंके ओढे हुए वस्त्रोंको पहिरता है और फूटे हुए बर्तनोंमें भोजन करता है ॥२४॥ इसप्रकार आयोगवी जातिकी स्त्रीमें हीन जातिके तीन वर्ण उत्पन्न होते हैं वैदेहसे निषाद जातिकी स्त्रीमें क्षुद्र जातिका पुत्र उत्पन्न होता है,उसको अंध्र और कारावर भी कहते हैं, यह जाति ग्रामके बाहर रह कर अपनी आजीविका चलाती है२५कारावर निषाद जातिकी स्त्रीसे चमार जातिके पुरुषको उत्पन्न करता है चाण्डाल निषादीमेंसे पांडुसौपाक नामक पुत्रको उत्पन्न करता है, बाँसकी टोकरियें बनाना उसका काम है ॥ २६ ॥ निषाद वैदेही स्त्रीमें आहिण्डक नामक पुत्रको उत्पन्न करता है और चाण्डाल वैदेही स्त्रीमें सौपाक नामक चाण्डालकी समान वृत्ति वाले पुत्रको उत्पन्न करता है ॥ २७ ॥ चाण्डाल निषादी स्त्रीमेंसे अन्तेवसायी नामक पुत्रको उत्पन्न करता है, वह श्मशानमें अपना समय बिताता है और बाह्यजातिके मनुष्य भी उसको अपनेसे दूर रखते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार भिन्न २ वर्णकी माता पिताके सयोगसे वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न होती है, इनमें कितनी ही प्रजा गुप्त होती है और कितनी ही प्रकट होती है, उनके कर्म और विचारसे उनको जान लेना चाहिये ॥ २९ ॥ (शास्त्रमें) केवल चार वर्णोंके धर्म (का

चतुर्णामेव वर्णानां धर्मो नान्यस्य विद्यते । वर्णानां धर्महीनेषु संख्या नास्तीह कस्यचित् ॥ ३० ॥ यदृच्छयोपसम्पन्नैर्यज्ञसाधुबहिष्कृतैः । बाह्या बाह्यैश्च जायन्ते यथावृत्ति यथाश्रयम् ॥ ३१ ॥ चतुष्पथश्मशानानि शैलांश्चान्यान् वनस्पतीन् । कार्ष्णायसमलंकारं परिगृह्य च नित्यशः ॥ ३२ ॥ वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयंतः स्वकर्मभिः । युञ्जंतो वाप्यलंकारांस्तथोपकरणानि च ॥ ३३ ॥ गोब्राह्मणाय साहाय्यं कुर्वाणा वै न संशयः । आनृशंस्यमनुक्रोशः सत्यवाक्यं तथा क्षमा ॥ ३४ ॥ स्वशरीरैरपि त्राणं बाह्यानां सिद्धिकारणम् । भवन्ति मनुजव्याघ्र तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ३५ ॥ यथोपदेशं परिकीर्तितासु नरः प्रजायेत विचार्य

वर्णन मिलता) है औरोंका नहीं धर्महीन वर्णोंकी कोई संख्या नहीं है ॥ ३० ॥ जाति विजातिका विचार न कर जो मैथुनेच्छा करने लगते हैं और जो यज्ञ करनेका अधिकार होनेपर भी यज्ञ नहीं करते हैं अथवा जिनको यज्ञका अधिकार ही नहीं है और जो साधु मनुष्योंसे बहिष्कृत हैं वे मनुष्य चारों वर्णोंके हों अथवा चारों वर्णोंसे बाह्य हो तब भी चाहे किसी वर्णकी स्त्रीके साथ समागम करके असंख्य वर्णसंकर प्रजाको उत्पन्न करते हैं और वह अपने मूलके अनुसार जीवन व्यतीत करती हैं ॥ ३१ ॥ वे चौराहोंमें, श्मशानोंमें; पर्वतों पर तथा बड़े २ वृक्षोंके नीचे रहें और लोहेके आभूषणोंको पहिरे हुए और अपने अलंकार तथा उपकरणोंको बनाते हुए प्रकट रीति पर रहें ॥ ३२-३३ ॥ गौ और ब्राह्मणोंकी उनका संदेहरहित हो सहायता करनी चाहिये और उनको दया, अनुक्रोश, और क्षमा रखनी चाहिये तथा सत्य बोलना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे मनुजव्याघ्र ! अपने शरीरकी भी अपेक्षा न रख कर दूसरोंकी रक्षा करनेसे चातुर्वर्ण्यबाह्य प्रजाको सिद्धि अवश्य मिलती है, यह मेरा मत है ॥ ३५ ॥ अतः

बुद्धिमान् । निहीनयानिर्हिं सुतोऽवसादयेत्तितीर्षमाणं हि यथोपलो जले ॥ ३६ ॥ अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः । नयन्ति ह्युपथं नार्यः कामक्रोधवशानुगम् ॥ ३७ ॥ स्वभावश्चैव नारीणां नराणामिह दूषणम् । अत्यर्थं न प्रसज्जन्ते प्रमदासु विपश्चितः ॥ ३८ ॥ युधिष्ठिर उवाच । वर्णापेतमविज्ञाय नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कथं विद्यामहे वयम् ॥३९॥ भीष्म उवाच । योनिसंकलुषे जातं नानाभावसमन्वितम् । कर्मभिः सज्जनाचीर्णैर्विज्ञेया योनिशुद्धता ॥ ४० ॥ अनार्यत्वमनाचारः क्रूरत्वं निष्क्रियात्मता। पुरुषं व्यंजयंतीह लोके कलुषयोनिजम्४१ पित्र्यं वा भजते शीलं मातृजं वा तथोभयम् । न कथंचन संकीर्णः

बुद्धिमान् मनुष्यको विचार करके इन उपदिष्ट स्त्रियोंमें सन्तानको उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि–हीनयोनिमें उत्पन्न किया हुआ पुत्र, तैरना चाहने वालेको पत्थरकी समान, अपने पिताको, कष्ट देता है॥३६। इस संसारमें मूर्खकी तो बात ही क्या ? स्त्रियें काम तथा क्रोधके वशमें पड़े हुए विद्वान् पुरुषको भी कुमार्गगामी बना देती हैं ॥३७॥ पुरुषोंको दूषित करना स्त्रियोंका स्वभाव है (अतः) विद्वान् पुरुष स्त्रियोंमें अधिक आसक्त नहीं होते हैं।३८॥युधिष्ठिरने कहा, कि–जो पुरुष वर्णोंसे बहिष्कृत हो अथवा संकर जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ हो, परन्तु श्रेष्ठ पुरुषके घरमें रहनेसे हम उसको पहिचानते न हों तो उस आर्यरूप अनार्यको हम कैसे जान सकते हैं ॥ ३९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–कलुषित योनिमें उत्पन्न हुआ पुरुष सज्जनोंसे भिन्न नाना प्रकारके आचरणोंसे जाना जाता है और सज्जनोचित कर्मोंके द्वारा सज्जनोंकी योनिशुद्धिका निश्चय करना चाहिये ।४०॥ अनार्यपन, अनाचार, क्रूरता, और वेदोक्त कर्म न करना, ये सब कर्म पुरुषको कलुषित योनिमें उत्पन्न हुआ बताते हैं ।४१।

प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ४२ ॥ यथैव सदृशो रूपे मातापित्रोर्हि जायते । व्याघ्रश्चित्रैस्तथा योनिं पुरुषः स्वां नियच्छति ॥४३॥ कुले स्रोतसि संच्छन्ने यस्य स्याद्योनिसंकरः । संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमथवा बहु ॥ ४४ ॥ आर्यरूपसमाचारं चरन्तं कृतके पथि । सुवर्णमन्यवर्णं वा स्वशीलं शास्ति निश्चये ॥४५॥ नानावृत्तेषु भूतेषु नानाकर्मरतेषु च । जन्मवृत्तसमं लोके सुश्लिष्टं न विरज्यते ॥ ४६ ॥ शरीरमिह सत्वेन न तस्य परिकृष्यते । ज्येष्ठमध्यावरं सत्वं तुल्यसत्वं प्रमोदते ॥ ४७ ॥ ज्यायांसमपि शीलेन

वर्णसंकर प्रजा अपने पिताके स्वभावके अथवा अपनी माताके स्वभावके अथवा माता पिता दोनोंके स्वभावके अनुसार चलती है और वर्णसंकर प्रजा कभी भी अपनी प्रकृतिको नहीं छिपा सकती ॥ ४२ ॥ चित्र विचित्र रूपके कारण जैसे व्याघ्र माता पिताके रूपके अनुसार अमुकयोनिमें उत्पन्न हुआ है यह प्रतीत होजाता है, ऐसे ही पुरुष भी अपनी योनिको नहीं छिपा सकता (अर्थात् पशु पक्षी भी अपने बीजके गुणको नहीं त्याग सकते, मनुष्योंकी तो बात ही क्या है) ॥४३॥ किसीके कुलका चाल चलन चाहें कितना ही छुपा हो तब भी यदि वह वर्णसंकर होगा तो वर्णसंकरपनके थोडे अथवा बहुत स्वभावका आश्रय अवश्य लेगा ही ॥ ४४ ॥ जो पुरुष सज्जन होता है वह ऊपरसे क्रूर होने पर भी कार्यके समय दयालु बन जाता है और जो पुरुष दुर्जन अर्थात् वर्णसंकर होता है वह पुरुष ऊपरसे कोमल दीखता है और कार्यके समय क्रूर बन कर अपनी जातिके स्वभावको दिखाता है४५नाना प्रकारके आचरणों वाले और नाना प्रकारके कर्मों पर प्रीति रखने वाले प्राणियोंमें जन्मको आचारकी समान और कोई नहीं बता सकता ॥ ४६ ॥ वर्णसंकर पुरुषका शरीर शास्त्रविचारसे नीचमार्गसे उच्चमार्गमें नहीं चल सकता, परन्तु

विहीनं नैव पूजयेत् । अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमभिपूजयेत् ४८
आत्मानमाख्याति हि कर्मभिर्नरः सुशीलचारित्रकुलैः शुभाशुभैः ।
प्रनष्टमप्याशु कुलं तथा नरः पुनः प्रकाशं कुरुते स्वकर्मतः ॥ ४९ ॥
योनिष्वेतासु सर्वासु संकीर्णास्वितरासु च । यत्रात्मानं न जन-
येद्द् बुधस्तां परिवर्जयेत् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
विवाहधर्मे वर्णसंकरकथने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

युधिष्ठिर उवाच । ब्रूहि तात कुरुश्रेष्ठ वर्णानां त्वं पृथक्पृथक् ।
कीदृश्यां कीदृशाश्चापि पुत्राः कस्य च के च ते ॥१॥ विप्रवादाः
सुबहवः श्रूयन्ते पुत्रकारिताः । अत्र नो मुह्यतां राजन् संशयं छेत्तु-

---

शरीरके उत्पन्न होते समय शरीरको उत्पन्न करने वाला उत्तम, मध्यम अथवा जो कनिष्ठ सत्त्व होता है वह सत्त्व अंत तक रहता है ॥ ४७ ॥ पुरुष चाहे जैसी उच्च जातिका हो, किन्तु शील-भ्रष्ट और शीलरहित हो तो उसका सत्कार न करना चाहिये, और कोई शूद्र होने पर भी धर्मवेत्ता और सदाचारी हो तो उसका सत्कार करना चाहिये ॥४८॥ पुरुष अपने शुभ अशुभ कर्म, शील, चरित्र, तथा कुलसे अपने स्वरूपको प्रकट करता है यदि अपना कुल विपत्तिमें पड़ गया हो तब भी (शुद्ध) पुरुष अपने कर्मोंसे उसकी विशुद्धताको प्रकट कर देता है ॥ ४९ ॥ अत एव सब वर्णसंकर और शीलरहित जातिकी कन्याओंसे विद्वान् पुरुषको अपनेको (पुत्ररूपसे) उत्पन्न न करना चाहिये ५० अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने कहा, कि—हे कुरुश्रेष्ठ! भिन्न २ वर्णोंसे किसजातिकी स्त्रीसे किस जातिका पुत्र उत्पन्न होता है और वह पुत्र किसका कहलाता है और वह कौन२ हैं यह मैं जानना चाहता हूँ १ शास्त्रोंमें पुत्रसंबंधी बहुतसे विवाद सुननेमें आते हैं, उनसे हम भ्रममें पड़

महंसि ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । आत्मा पुत्रश्च विज्ञेयस्तस्यानन्तरजश्च यः । निरुक्तजश्च विज्ञेयः सुतः प्रसृतजस्तथा ॥ ३ ॥ पतितस्य तु भार्यायां भर्त्रा सुसमवेतया । तथा दत्तकृतौ पुत्राध्यूढश्च तथापरः ॥ ४ ॥ षडपध्वंसजाश्चापि कानीनापसदास्तथा । इत्येते वै समाख्यातास्तान् विजानीहि भारत ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । षडपध्वंसजाः के स्युः के वाप्यपसदास्तथा । एतत् सर्वं यथातत्त्वं व्याख्यातुं मे त्वमर्हसि॥६॥ भीष्म उवाच । त्रिषु वर्णेषु ये पुत्रा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर । वर्णयोश्च द्वयोः स्यातां यौ राजन्यस्य भारत ॥ ७ ॥ एको विड्वर्ण एवाथ तथात्रैवोप-

---

जाते हैं, अतः आप हमारे भ्रमको दूर करिये ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–अपनी स्त्रीमें उत्पन्न हुए औरस पुत्रको अपना आत्मा समझना चाहिये, अपनी स्त्रीमें अपनी आज्ञासे दूसरेके उत्पन्न किये पुत्रको निरुक्तज समझना चाहिये, और अपनी आज्ञाके विना दूसरेसे अपनी स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्रको प्रसृतज समझना चाहिये ॥३॥ पतितको अपनी स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्रको पतित ही समझना चाहिये दत्तक पुत्र पाँचवाँ है और कृत्रिम (बनाया हुआ) पुत्र छठा है और सातवाँ (कुमारावस्थामें दूसरेसे गर्भ धारण करने पर विवाह होने पर विवाहित पतिके यहाँ होने वाला) पुत्र अध्यूढ़ कहलाता है ४आठवाँ पुत्र कानीन(कुमारावस्थामें पिताके घर हुआ)पुत्र कहलाता है, इसके अतिरिक्त छः अपध्वंसज और छः अपसद नामक पुत्र होते हैं,हे भरतवंशी राजन्!इस प्रकार तुम्हें शास्त्रोक्त बीस प्रकारके पुत्र जानने चाहियें५युधिष्ठिरने बूझा, कि: छः अपध्वंसज कौन हैं ? और छः अपसद कौन हैं यह सब बात आप मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥ ६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणके क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन जाति की स्त्रीमें और हे भरतवंशी राजन् ! क्षत्रियके वैश्य और शूद्र

लक्षितः । षडपध्वंसजास्ते हि तथैवापसदान् शृणु ॥८॥ चांडालो व्रात्यवैद्यौ च ब्राह्मण्यां क्षत्रियासु च । वैश्यायां चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽपसदास्त्रयः ॥ ९ ॥ मागधो वामकश्चैव द्वौ वैश्यस्योपलक्षितौ । ब्राह्मण्यां क्षत्रियायां च क्षत्रियस्यैक एव तु ॥ १० ॥ ब्राह्मण्यां लक्ष्यते सूत इत्येतेऽपसदाः स्मृताः । पुत्रा ह्येते न शक्यंते मिथ्याकर्तुं नराधिप ॥ ११ । युधिष्ठिर उवाच । क्षेत्रजं केचिदेवाहुः सुतं केचित्तु शुक्रजम् । तुल्यावेतौ सुतौ कस्य तन्मे ब्रूहि

इन दो जातिकी स्त्रीमें तथा वैश्यके शूद्र जातिकी स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे पुत्र अपध्वंसज पुत्र कहलाते हैं, अब मैं तुझसे छः अपसद पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ शूद्रजातिका मनुष्य ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें जिस पुत्रको उत्पन्न करता है वह चाण्डाल जातिका माना जाता है और क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें जिस पुत्रको उत्पन्न करता है, वह पुत्र व्रात्य कहलाता है और वैश्य जातिकी स्त्रीमें जिस मनुष्यको उत्पन्न करता है, वह वैद्य जातिका कहलाता है और ये तीनों पुत्र अपसद कहलाते हैं ॥ ९ ॥ वैश्य जातिका पुरुष ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें मागध जातिके पुत्रको और क्षत्रिय जातिकी स्त्रीमें वामक जातिके पुत्रको उत्पन्न करता है और क्षत्रिय जातिका मनुष्य ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें एक ही उत्पन्न करता है ॥१०॥ क्षत्रियसे ब्राह्मण जातिकी स्त्रीमें जो यह पुत्र उत्पन्न होता है, वह सूत जातिका होता है, इन छः पुत्रोंको अपसद जानना चाहिये, इनको मिथ्या अर्थात् और किसी जातिके नहीं बताया जासकता ॥११॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे पितामह ! कितने ही (क्षेत्रको प्रधान मानने वाले) कहते हैं, कि–जो अपने क्षेत्रमें उत्पन्न हुआ हो वह पुत्र कहलाता है और कितने ही(वीर्यको प्रधान मानने वाले) कहते हैं;कि-जो अपने वीर्यसे उत्पन्न हुआ हो वही पुत्र कहलाता है

पितामह ॥ १२ ॥ भीष्म उवाच । रेतजा वा भवेत् पुत्रस्त्यक्तो वा क्षेत्रजो भवेत् । अध्यूढः समयं भित्वेत्येतदेव निबोध मे ॥१३॥ युधिष्ठिर उवाच । रेतजं विद्म नौ पुत्रं क्षेत्रजस्यागमः कथम् । अध्यूढं विद्म नौ पुत्रं भित्वा तु समयं कथम् ॥ १४ ॥ भीष्म उवाच । आत्मजं पुत्रमुत्पाद्य यस्त्यजेत्कारणान्तरे । न तत्र कारणं रेतः स क्षेत्रस्वामिना भवेत् ॥ १५ ॥ पुत्रकामो हि पुत्रार्थे यां वृणीते विशाम्पते । क्षेत्रजं तु प्रमाणं स्यान्न नौ तत्रात्मजः सुतः ॥ १६ ॥ अन्यत्र क्षेत्रजः पुत्रो लक्ष्यते भरतर्षभ । न ह्यात्मा

अतः आप मुझसे कहिये, कि—क्या ये दोनों समान हैं ? और वह पुत्र किसका माना जावेगा ? । १२॥ भीष्मजीने कहा कि-हे युधिष्ठिर ! जो वीर्यसे उत्पन्न हुआ हो वही पुत्र कहलाता है और वीर्यदने जिसको त्याग दिया हो तो वह पुत्र क्षेत्रस्वामीका ही माना जाता है और गर्भवती कन्याके अध्यूढ़ पुत्रके विषयमें भी यही नियम है॥१३॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे भीष्म ! वीर्यसे उत्पन्न हुओंको हम पुत्र समझते हैं, परन्तु शास्त्रने क्षेत्रजको पुत्र क्यों बताया है और हम गर्भवती कन्याके पुत्रको भी दूसरेका जानते हैं, तब भी वह वीर्यदके भरण पोषण करना अस्वीकृत करने पर दूसरेका कैसे होजाता है ? ॥ १४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि—कोई मनुष्य अपनी आत्मामेंसे पुत्रको उत्पन्न करके किसी कारणसे उस परसे अपना अधिकार छोड़दे तो उस पुत्रमें उसका कारण (अधिकार) नहीं माना जाता है और वह क्षेत्रके स्वामीका अर्थात् स्त्रीको स्वीकार करने वाले पतिका पुत्र (लम्बेटा) माना जाता है ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! सुतकी कामनावाला मनुष्य सुतके लिये यदि एक गर्भवती कन्याके साथ विवाह करता है, तो वह सुत क्षेत्रके स्वामीका अर्थात् विवाह करने वालेका माना जाता है, किन्तु गर्भाधान करने वाले उस दूसरे

शक्यते हन्तुं दृष्टान्तोपगतो ह्यसौ ॥ १७ ॥ क्वचिच्च कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते । न तत्र रेतः क्षेत्रं वा यत्र लक्ष्येत भारत १८ युधिष्ठिर उवाच । कीदृशः कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते । शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्यं न भारत ॥ १९ ॥ भीष्म उवाच । मातापितृभ्यां यस्त्यक्तः पथि यस्तं प्रकल्पयेत् । न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां स हि कृत्रिमः ॥२०॥ अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन्

मनुष्यका नहीं माना जाता है ॥१६॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! दूसरेके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए सुतको यदि लोग उसकी आकृति देख कर यह भी कहने लगें, कि-"यह सुत तो अमुककी समान है" तब भी वह सुत उत्पन्न करने वालेका नहीं माना जाता किन्तु क्षेत्रके स्वामीका ही माना जाता है,उत्पन्न होने वाला सुत अपने आपेको छिपानेका प्रयत्न करने पर भी अपनी असलियतको छिपा नहीं सकता, क्योंकि-सुत अपने आप ही मूल आत्माके प्रत्यक्ष दृष्टान्तरूपमें देखनेमें आता है,यह अमुकका सुत है (ऐसा लोक-विश्वास होने पर भी)वह उसका नहीं माना जाता किन्तु क्षेत्र-पतिका सुत माना जाता है ॥१७॥ हे भरतवंशी राजन् ! किसी समय दूसरेके सुतको रख लिया जाता है, (दत्तक लिया जाता है) इससे वह कृतक (किया हुआ) सुत कहलाता है, वहाँ न वीर्य कारण है और न क्षेत्र कारण है ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! कृतक (दत्तक) सुत कैसा होता है, कि-जो केवल संग्रह करनेसे ही सुत माना जाता है और उसमें न क्षेत्र कारण माना जाता है और न वीर्य ही कारण माना जाता है ॥१६॥ भीष्मजीने कहा, कि हे युधिष्ठिर ! माता पिताने जिसको मार्गमें त्याग दिया हो इससे जिसके माता पिताका ज्ञान न होना हो उसका जो पालन करे उसको ही उसका पिता मानना चाहिये और उसको कृत्रिम सुत समझना चाहिये२०

संमति लक्ष्यते । या वर्णः पोषयेत्तं च तद्वर्णस्तस्य जायते ।२१। युधिष्ठिर उवाच । कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्य वा कथम् । देया कन्या कथं चेति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२२॥ भीष्म उवाच । आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तथा । त्यक्तो मातापितृभ्यां यः स वर्णं प्रतिपद्यते ॥२३॥ तद्गोत्रबन्धुजं तस्य कुर्यात् संस्कारमच्युत । अथ देया तु कन्या स्यात्तद्वर्णस्य युधिष्ठिर ॥ २४ ॥ संस्कर्तुं वर्णगोत्रं च मातृवर्णविनिश्चये । कानीनाध्यूढजौ वापि विज्ञेयौ पुत्र किल्विषौ ॥२५॥ तावपि स्वाविव सुतौ संस्कार्याविति

जिसका स्वामित्व न प्रतीत होने पर दूसरा स्वामित्व करता हो (वारिस बनता हो) तो जिस वर्णका मनुष्य उसका पोषण करता हो उसी पोषकका वर्ण उसका वर्ण माना जाता है ॥२१॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्म पितामह ! ऐसे सुतका संस्कार किस प्रकार करना चाहिये ? और यह किसका है यह कैसे प्रतीत हो ? और उस सुतका किस कन्यासे विवाह करना चाहिये, यह मुझसे कहिये २२ भीष्मजीने कहा है, कि ऐसे सुतको उसके स्वामीके (पालकके) सुतकी समान मानकर संस्कार करना चाहिये, क्योंकि माता पिताका त्यागा हुआ सुत पालककी जाति का माना जाता है २३ हे अच्युत ! पालकको उसके अपने गोत्र और जातिके संस्कार करने चाहिये और पालकको ऐसी कृत्रिम कन्या ही ऐसे सुतको विवाह देनी चाहिये २४ परन्तु माताकी जातिका पता न लगने पर ही पालक संस्कारकर्ताको कृतक सुतके अपनी जाति और गोत्रकी समान संस्कार करने चाहियें, कन्यावस्थामें उत्पन्न हुआ कानीन नामक सुत और गर्भवती कन्याका विवाह होने पर उत्पन्न हुआ सुत इन दोनोंको हे भारत ! पापी और अपसद प्रकारके सुत समझना चाहिये २५ पालकको इन दोनों सुतोंका भी अपनी विवाहिता स्त्रीसे उत्पन्न हुए सुतकी-

निश्चयः । क्षेत्रजो वाप्यपसदो येऽध्यूढ़ास्तेषु चाप्युत ॥ २६ ॥ आत्मवद्वै प्रयुञ्जीरन् संस्कारान् ब्राह्मणादयः । धर्मशास्त्रेषु वर्णानां निश्चयोऽयं प्रदृश्यते॥ २७॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मे पुत्रप्रतिनिधिकथने एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच । दर्शने कीदृशः स्नेहः संवासे च पितामह । महाभाग्यं गवां चैव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥ भीष्म उवाच । हन्त ते कथयिष्यामि पुरा वृत्तं महाद्युते । नहुषस्य च संवादं महर्षेश्च्यवनस्य च ॥२॥ पुरा महर्षिश्च्यवनो भार्गवो भरतर्षभ । उदवासकृतारम्भो बभूव स महाव्रतः ॥३॥ निहत्य मानं क्रोधं च महर्ष शोकमेव च । वर्षाणि द्वादश मुनिर्जलवासे धृतव्रतः ।४।

समान संस्कार करना चाहिये,यह मेरा निश्चय है,पालकको क्षेत्रज अपसद और अध्यूढ़ सुतका भी अपने सुतोंकी समान संस्कार करना चाहिये इस प्रकार धर्मशास्त्रोंमें वर्णोंका निश्चय देखा जाता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार मैंने तुझसे सब बात कही अब तू और क्या सुनना चाहता है ? ॥२८॥ उड़ञ्चासवाँ अध्याय समाप्त॥४६॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे पितामह ! दूसरेके दुःखको देखनेसे तथा दूसरेके साथ निवास करनेसे किस प्रकार स्नेह होजाता है? और गौका क्या माहात्म्य है, यह आपको कहना चाहिये ॥१॥ भीष्मजीने कहा, कि—हे महाकान्तिमान् युधिष्ठिर ! इस विषयमें मैं तुझसे महर्षि च्यवन और नहुषके सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासको कहता हूँ ॥२॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! पहिले भृगुवंशोत्पन्न महर्षि महाव्रतधारी च्यवनने जलमें खड़े होकर उदवास नामक व्रतको किया था ॥ ३ ॥ अभिमान, क्रोध, हर्ष और शोकको छोड़ कर व्रत धारण करते हुए उन्होंने बारह वर्ष

आदधत् सर्वभूतेषु विश्रंभं परमं शुभम् । जलेचरेषु सर्वेषु शीतरश्मिरिव प्रभुः ॥ ५ ॥ स्थाणुभूतः शुचिर्भूत्वा दैवतेभ्यः प्रणम्य च । गंगायमुनयोर्मध्ये जलं संप्रविवेश ह ॥६॥ गंगायमुनयोर्वेगं सुभीमं भीमनिःस्वनम् । प्रतिजग्राह शिरसा वातवेगसमं जवे ७ गंगा च यमुना चैव सरितश्च सरांसि च । प्रदक्षिणमृषिं चक्रुर्न चैनं पर्यपीडयन् ॥८॥ अन्तर्जलेषु सुष्वाप काष्ठभूतो महामुनिः । ततश्चोर्ध्वस्थितो धीमानभवद्भरतर्षभ ॥९॥ जलौकसां स सत्त्वानां बभूव प्रियदर्शनः । उपाजिघ्रन्त च तदा तस्योष्ठं हृष्टमानसाः १० तत्र तस्यासतः कालः समतीतोऽभवन्महान् । ततः कदाचित्समये कस्मिंश्चिन्मत्स्यजीविनः ॥ ११ ॥ तं देशं समुपाजग्मुर्जालहस्ता महाद्युते । निषादा बहवस्तत्र मत्स्योद्धरणनिश्चयाः ॥ १२ ॥

तक जलमें निवास किया था ॥४॥ शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाकी समान ऋषिने सब जलचर प्राणियोंका परम विश्वास किया था ५ उन ऋषिने स्नान करके और देवताओंको प्रणाम कर काष्ठ की समान जड़रूप हो गंगा और यमुनाके जलमें प्रवेश किया ६ और गङ्गा तथा यमुनाके भयंकर ध्वनिवाले वायुकी समान वेगवान् वेगको वे मुनि वे अपने मस्तक पर सहने लगे ॥ ७ ॥ इसी प्रकार गङ्गा और यमुना तथा नदी और सरोवर भी उन ऋषि की प्रदक्षिणा करते हुए चले जाते थे और उनको कष्ट नहीं देते थे ॥८॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वह महामुनि काष्ठकी समान बन कर जलमें ही शयन करते थे और वह बुद्धिमान् जलमें ही ऊपरको खड़े होजाते थे ॥ ९ ॥ वह ऋषि उस जलाशयके जलचरोंके प्रीतिपात्र होगए थे और जलचर मनमें प्रसन्न होकर उनके ओष्ठोंको सूँघते थे ॥ १० ॥ उनको जलमें रहते २ जब बहुत समय बीत गया हे महाद्युते ! फिर किसी समय मत्स्यों पर आजीविका करनेवाले निषाद मत्स्योंको निकालनेका निश्चय

व्यायता बलिनः शूराः सलिलेष्वनिवर्तिनः । अभ्याययुश्च तं देशं निश्चिता जालकर्मणि ॥ १३ ॥ जालं ते योजयामासुर्निःशेषेण जनाधिप । मत्स्योदकं समासाद्य तदा भरतसत्तम ॥१४॥ ततस्ते बहुभिर्योगैः कैवर्ता मत्स्यकांक्षिणः । गंगायमुनयोर्वारि जालैरभ्यकिरंस्ततः ॥ १५ ॥ जालं सुवितत तेषां नवसूत्रकृतं तथा । विस्तारायामसंपन्नं यत्तत्र सलिलेऽक्षिपन् ॥१६॥ ततस्ते सुमहच्चैव बलवच्च सुवर्तितम् । अवतीर्य ततः सर्वे जालं चकृषिरे तदा ॥ १७ ॥ अभीतरूपाः संहृष्टा अन्योन्यवशवर्तिनः । बबन्धुस्तत्र मत्स्यांश्च तथान्यान् जलचारिणः ॥ १८ ॥ तथा मत्स्यैः परिवृतं च्यवनं भृगुनन्दनम् । आकर्षयन् महाराज जालेनाथ यदृच्छया ॥१९॥ नदीशैवलदिग्धांगं हरिश्मश्रुजटाधरम् । लग्नैः

करके हाथमें जालोंको लेकर तहाँ आपहुँचे ॥ ११ ॥ १२ ॥ उन लम्बे चौड़े बली, जलसे पीछेको न हटने वाले, जाल कर्ममें चतुर शूर निषादोंने उस मछलियोंसे भरपूर जलमें जालको अच्छी प्रकार फैला दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ तदनन्तर वे मत्स्याभिलाषी धीवर नाना प्रकारके उपायोंसे गंगा और जमुनाजीके जलको जाल डाल कर थँओलने लगे ॥ १५ ॥ उन्होंने जिस जालको जलमें फैंका था वह दूर तक फैला हुआ था, नौ डोरोंका बना हुआ था और बहुत लम्बा चौड़ा था ॥ १६ ॥ तदनन्तर वे जलमें फैंके हुए बड़े भारी जालको जलमें उतर कर बलपूर्वक खेंचने लगे ॥ १७ ॥ उन्होंने निडर होकर परस्परके अनुकूल रहकर प्रसन्नतापूर्वक मत्स्यों तथा दूसरे जलचारी जीवोंको बाँध लिया था ॥१८॥ हे महाराज ! उस समय यदृच्छासे भृगुनन्दन च्यवन ऋषिको भी मत्स्योंके साथ उन्होंने खींच लिया १९ उन ऋषिका सम्पूर्ण शरीर सिवारसे भर रहा था, उनकी डाढ़ी और जटाएँ भी हरी होगईं थीं, उनका शरीर शंख नामक

शंखनखैर्गात्रैः क्रोडैश्चित्रैरिवार्पितम् ॥२०॥ तं जालेनोद्धृतं दृष्ट्वा ते तदा वेदपारगम् । सर्वे प्राञ्जलयो दाशाः शिरोभिः प्रापतन् भुवि ॥ २१ ॥ परिखेदपरित्रासाज्जालस्याकर्षणेन च । मत्स्या बभूवुर्व्यापन्नाः स्थलसंस्पर्शनेन च ॥ २२ ॥ स मुनिस्तत्तदा दृष्ट्वा मत्स्यानां कंदनं कृतम् । बभूव कृपयाविष्टो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २३ ॥ निषादा ऊचुः । अज्ञानाद्यत्कृतं पापं प्रसादं तत्र नः कुरु । करवाम प्रियं किं ते तन्नो ब्रूहि महामुने ॥ २४ ॥ इत्युक्तो मत्स्यमध्यस्थश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् । यो मेऽद्य परमः कामस्तं शृणुध्वं समाहिताः ॥ २५ ॥ प्राणोत्सर्गं विसर्गं वा मत्स्यैर्यास्याम्यहं सह । संवासान्नोत्सहे त्यक्तुं सलिलेऽध्युषि-

---

जलचरोंके नख और क्रोड़ लगनेसे चित्रलिखित सा होरहा था ॥२०॥ उन वेदपारगामी मुनिको जालके साथ निकला हुआ देखकर उन सब दाशोंने भूमिमें मस्तक झुका उनको प्रणाम किया ॥ २१ ॥ जलसे बाहर खेंचनेके कारण तथा चारों ओरसे खेदनेके कारण त्रास पहुँचनेसे और स्थलका स्पर्श होनेसे बहुतसे मत्स्य कष्ट पाने लगे ॥ २२ ॥ उस समय मछलियोंको नष्ट होती हुई देखकर मुनिके मनमें दया उपजी और वह वारम्वार श्वास लेने लगे ॥ २३ ॥ मच्छीमारोंने कहा कि हे महामुने ! हमसे अनजानमें पाप वन गया है, अतः आपको हम पर कृपा करनी चाहिये और वताइये; कि-हम आपका क्या प्रिय कार्य करें २४ इस प्रकार कहने पर मत्स्योंके वीचमें स्थित च्यवनने यह बात कही, कि-जो मेरा बड़ा भारी काम है, उसको तुम सब सावधान होकर सुनो ॥ २५ ॥ यदि ये मत्स्य जीवित रहेंगे तो मैं जीवित रहूँगा और ये मर जायँगे तो मैं मर जाऊँगा, इनके साथ जलमें

तानहम् ॥ २६ ॥ इत्युक्तास्ते निषादास्तु सुभृशं भयकम्पिताः ।
सर्वे विवर्णवदना नहुषाय न्यवेदयन् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे च्यवनोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

भीष्म उवाच । नहुषस्तु ततः श्रुत्वा च्यवनं तं तथागतम् ।
त्वरितः प्रययौ तत्र सहामात्यपुरोहितः ॥१॥ शौचं कृत्वा यथा-
न्यायं प्रांजलिः प्रयतो नृपः । आत्मानमाचचक्षे च च्यवनाय
महात्मने ॥ २ ॥ अर्चयामास तं चापि तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
सत्यव्रतं महात्मानं देवकल्पं विशाम्पते ॥ ३ ॥ नहुष उवाच ।
करवाणि प्रियं किं ते तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम । सर्वं कर्तास्मि भगवन्
यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥ ४ ॥ च्यवन उवाच । श्रमेण महता
युक्ताः कैवर्ता मत्स्यजीविनः । मम मूल्यं प्रयच्छैभ्यो मत्स्यानां

एक साथ रहा हूँ अतः मैं इनको नहीं त्याग सकता ॥ २६ ॥
जब च्यवनने इस प्रकार कहा, तब मच्छीमार भयसे काँप उठे
और उनके मुख उदास पड़ गए, फिर उन्होंने यह बात नहुषसे
कही ॥ २७ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ छ

भीष्मजीने कहा, कि—च्यवन ऋषिको जलमेंसे बाहर निकला
हुआ सुनकर राजा नहुष अपने मंत्रियों और पुरोहितको साथमें
लेकर शीघ्रतासे उस स्थान पर आया १ और उस राजाने पवित्र
हो न्यायानुसार सावधान हो हाथ जोड़ महात्मा च्यवनको अपना
नाम बताया २ इसके पीछे हे राजन् ! राजा नहुषके पुरोहितने
सत्यव्रतधारी देवताकी समान महात्मा च्यवनकी पूजाकी ३
तदनन्तर राजा नहुषने कहा, कि—हे उत्तम ब्राह्मण ! मैं आपका
क्या प्रिय करूँ ? यह मुझे बताइये हे भगवन् ! यदि अतिकठिन
कार्य होगा तब भी मैं करूँगा ४ च्यवनने कहा, कि—इन मछलियों
पर आजीविका करने वालोंने आज बड़ा भारी परिश्रम किया ।

विक्रयैः सह ॥५॥ नहुष उवाच । सहस्रं दीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहित । निष्क्रयार्थे भगवतो यथाह भृगुनन्दनः ॥ ६ ॥ च्यवन उवाच । सहस्रं नाहमर्हामि किं वा त्वं मन्यसे नृप । सदृशं दीयतां मूल्यं स्वबुद्ध्या निश्चयं कुरु ॥ ७ ॥ नहुष उवाच । सहस्राणां शतं विप्र निषादेभ्यः प्रदीयताम् । स्यादिदं भगवन् मूल्यं किं वान्यन्मन्यते भवान् ॥ ८ ॥ च्यवन उवाच । नाहं शतसहस्रेण निमेयः पार्थिवर्षभ । दीयतां सदृशं मूल्यममात्यैः सह चिंतय ।६। नहुष उवाच । कोटिः प्रदीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहित । यदेतदपि नो मूल्यमतो भूयः प्रदीयताम् ॥१०॥ च्यवन उवाच । राजन्नार्हाम्यहं कोटिं भूयो वापि महाद्युते । सदृशं दीयतां मूल्यं

है, अतः तू मुझको और मछलियोंको बेचने पर जो धन मिल सकता हो, वह इनको दे ५ नहुषने कहा, कि–हे पुरोहित ! यह भृगुपुत्र च्यवन जैसा कह रहे हैं, इसी प्रकार इन भगवान् च्यवन के बदलेमें एक सहस्र सुवर्ण इन मच्छीमारोंका दो ६ च्यवनने कहा, कि–हे राजन् ! मेरी कीमत एक सहस्र ही नहीं होसकती, आप मेरी कितनी कीमत समझते हैं, आप जरा बुद्धिसे विचारिये और मेरे योग्य कीमत दीजिये ७ नहुषने कहा, कि–हे पुरोहित! आप निषादोंको इन मुनिके मूल्यमें एक लाख (सुवर्णके सिक्के) दीजिये हे भगवन् ! यह आपका उचित मूल्य है या कुछ और है ८ च्यवनने कहा, कि हे श्रेष्ठ राजन् ! एक लाख ही मेरा उचित मूल्य नहीं है, तू मेरा उचित मूल्य दे और इस विषयमें अपने मंत्रियोंसे मन्त्रणा कर ६ नहुषने कहा, कि–हे पुरोहित ! आप निषादोंको एक करोड़ सुवर्ण मुद्रा देदीजिये और यदि इन मुनिका इससे भी अधिक मूल्य हो तो अधिक दीजिये १० च्यवनने कहा, कि हे महाकान्तिवान् राजन् ! मेरा मूल्य एक करोड़ या इससे भी अधिक नहीं होसकता, तू मुझे मेरी योग्यताके

ब्राह्मणैः सह चिंतय ॥११॥ नहुष उवाच । अर्धं राज्यं समग्रं वा निषादेभ्यः प्रदीयताम् । एतन्मूल्यमहं मन्ये किं वान्यन्मन्यसे द्विज ॥१२॥ च्यवन उवाच । अर्धं राज्यं समग्रं च मूल्यं नार्हामि पार्थिव । सदृशं दीयतां मूल्यमृषिभिः सह चिंत्यताम् ॥ १३ ॥ भीष्म उवाच । महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नहुषो दुःखकर्षितः । संचिंतयामास तदा सहामात्यपुरोहितः ॥ १४ ॥ तत्र त्वन्यो वनचरः कश्चिन्मूलफलाशनः। नहुषस्य समीपस्थो गविजातोऽभवन्मुनिः१५ स तमाभाष्य राजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः । तोषयिष्याम्यहं क्षिप्रं यथा तुष्टो भविष्यति ॥१६॥ नाहं मिथ्या वचो ब्रूयां स्वैरेष्वपि कुतोन्यथा । भवतो यदहं ब्रूयां तत्कार्यमविशंकया ॥ १७ ॥ नहुष उवाच । ब्रवीतु भगवान् मूल्यं महर्षेः सदृशं भृगोः । परि-

अनुसार मूल्य दे और इस विषयमें ब्राह्मणोंसे सम्मति कर ११ नहुषने कहा, कि—हे पुरोहित ! आप आधा या संपूर्ण राज्य निषादोंको देदीजिये, हे ब्राह्मण ! मैं तो इतनी ही कीमत अनुमान करता हूँ, आप और दूसरी कीमत क्या समझते हैं ॥१२। च्यवनने कहा, कि—हे राजन् ! मेरी कीमत आधा राज्य अथवा पूर्ण राज्य भी नहीं होसकती,आप मेरा उचित मूल्य दीजिये और इसके लिये ऋषियोंसे विचार करिये ॥ १३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि महर्षिके वचन सुनकर राजा नहुष बड़ा खिन्न हुआ और अपने मंत्री तथा पुरोहितसे इस विषयकी बात चीत करने लगा१४ वहाँ राजा नहुषके पास कन्दमूलका आहार करने वाले गौमें उत्पन्न हुए एक वनेचर आपहुँचे ॥१५॥ उन उत्तम ब्राह्मणने राजा नहुषसे कहा, कि मैं जिस प्रकार यह ऋषि सन्तुष्ट होंगे, वैसा उपाय शीघ्र करूँगा१६मैं कभी हास्यमेंभी मिथ्या नहीं बोलता हूँ, फिर और समय तो मिथ्या बोल ही कैसे सकता हूँ, अतः मैं जा बात कहूँगा, वह आपको निःशंक होकर करनी पड़ेगी १७

त्रायस्व मामस्मद्विषयं च कुलं च मे ॥ १८ ॥ इन्याद्धि भगवान् क्रुद्धस्त्रैलोक्यमपि केवलम् । किं पुनर्मां तपोहीनं बाहुवीर्यपरायणम् ॥ १९ ॥ अगाधाम्भसि मग्नस्य सामात्यस्य सऋत्विजः । प्लवो भव महर्षे त्वं कुरु मूल्यविनिश्चयम् ॥२०॥ भीष्म उवाच । नहुषस्य वचः श्रुत्वा गविजातः प्रतापवान् । उवाच हर्षयन् सर्वानमात्यान् पार्थिवं च तम् ॥ २१ ॥ अनर्घेया महाराज द्विजा वर्णेषु चोत्तमाः । गावश्च पुरुषव्याघ्र गोर्मूल्यं परिकल्प्यताम् २२ नहुषस्तु ततः श्रुत्वा महर्षेर्वचनं नृप । हर्षेण महता युक्तः सहामात्यपुरोहितः ॥ २३ ॥ अभिगम्य भृगोः पुत्रं च्यवनं संशितव्रतम् । इदं प्रोवाच नृपते वाचा सन्तर्पयन्निव ॥ २४ ॥ नहुष

नहुषने कहा, कि बहुत अच्छा, महर्षि भृगुका जो उचित मूल्य हो उसको बतला कर मेरे कुल और देशकी रक्षा करिये ॥ १८ ॥ क्योंकि भगवान् च्यवन क्रोधमें भरने पर तीनों लोकोंका भी नाश करसकते हैं, फिर मुझ जैसे तपोहीन बाहुबलवालेकी तो बात ही क्या है; १९ हे महर्षे ! मैं अपने मंत्रियों और ऋत्विजों सहित अगाध दुःखसागरमें डूब रहा हूँ, अतः आप नौका बनकर मेरा उद्धार करिये और इन मुनिके मूल्यका निर्णय करिये ॥ २० ॥ भीष्मजीने कहा, कि-राजा नहुषका वचन सुनकर प्रतापी गविजात ऋषि सकल मंत्रियों सहित उस राजाको प्रसन्न करते हुए कहने लगे, कि-२१ हे महाराज! वर्णोंमें उत्तम ब्राह्मणोंकी कीमत नहीं लगाई जा सकती, इसीप्रकार हे पुरुषव्याघ्र ! गौओंकी कीमत भी नहीं लगाई जासकती, अतः इन ऋषिके मूल्यमें एक गौ रखिये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! महर्षिकी बातको सुनकर राजा नहुष अपने पुरोहित और मंत्रियों सहित परम प्रसन्न हुआ २३ हे राजन् ! फिर वह अतितीक्ष्ण तप करनेवाले भृगुपुत्र च्यवनके पास जा उनको बातोंसे तृप्त करता हुआ इस प्रकार कहने लगा,

उवाच। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवाक्रीतोऽसि भार्गव। एतन्मूल्यमहं मन्ये तव धर्मभृताम्वर ॥२५॥ च्यवन उवाच। उत्तिष्ठाम्येष राजेन्द्र सम्यक् क्रीतोऽस्मि तेऽनघ। गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत॥२६॥ कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव। गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७ ॥ गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते। अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः ॥ २८ ॥ स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ। गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम् ॥ २९ ॥ अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च। अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ३० ॥ तेजसा वपुषा चैव गावो वन्हिसमा भुवि। गावो हि सुमहत्तेजः प्राणिनां च सुखप्रदाः ॥ ३१ ॥

कि—॥२४॥ हे विप्रर्षे! आपको मैंने गौसे खरीद लिया है अतः आप उठिये! उठिये!! हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! मैं आपका यह उचित मूल्य समझता हूँ॥ २५ ॥ च्यवनने कहा, कि—हे निर्दोष राजेन्द्र! आपने मुझे उचित मूल्यसे खरीद लिया है, हे राजन्! मैं पृथ्वीमें गौकी समान और कोई धन नहीं समझता॥ २६ ॥ हे राजन्! गौके गुणोंका कीर्तन, श्रवण, गौका दान और गौका दर्शन जगत्में प्रशंसनीय समझा जाता है और यह कल्याण करनेवाला और सब पापोंका हरनेवाला है ॥ २७ ॥ गौएँ सदा लक्ष्मीकी मूल हैं, गौओंमें पाप कुछ भी नहीं रहता है, गौएँ सदा अन्नस्वरूप हैं और देवताओंकी हविरूप हैं ॥ २८ ॥ स्वाहाकार और स्वधाकार भी सदा गौओंमें रहते हैं तथा गौएँ यज्ञकी नेत्ररूप और मुखरूप हैं २९ गौएँ नित्य अविकारी अमृतको धारण करती हैं और दुहनेसे अमृत देती हैं, गौएँ अमृतका स्थान हैं इसलिये सब मनुष्य उनको नमस्कार करते हैं ३० पृथ्वी पर गौओं का शरीर और तेज अग्निकी समान है और गौएँ महातेजःस्वरूप

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् । विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति ॥ ३२ ॥ गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः । गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किंचित् परं स्मृतम् ॥ ३३ ॥ इत्येतद्गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं भरतर्षभ । गुणैकदेशवचनं शक्यं पारायणं न तु ॥ ३४ ॥ निषादा ऊचुः । दर्शनं कथनञ्चैव सहास्माभिः कृतं मुने । सतां साप्तपदं मैत्रम्प्रसादं नः कुरु प्रभो ॥ ३५ ॥ हवींषि सर्वाणि यथा ह्युपभुंक्ते हुताशनः । एवं त्वमपि धर्मात्मन् पुरुषाग्निः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥ प्रसादयामहे विद्वन् भवन्तम्प्रणता वयम् । अनुग्रहार्थमस्माकमियङ्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥३७॥ च्यवन उवाच । कृपणस्य च यच्चक्षु-

हैं और प्राणियोंको सुख देनेवाली हैं ३१ जिस स्थानमें गौएँ निर्भयतासे बैठकर श्वास लेती हैं, वह स्थान दिपने लगता है और उस स्थानका पाप दूर होजाता है ३२ गौएँ स्वर्गकी सीढी हैं, स्वर्गमें भी उनकी पूजा होती है, गौएँ कामनाको पूर्ण करने वालीं देवी हैं और उनसे श्रेष्ठ और कोई वस्तु नहीं कही है ३३ हे भरतर्षभ ! मैंने यह गौओंके गुणों एकके भागका माहात्म्य तुमसे कहा. इनके पूर्ण गुणोंको तो कहा ही नहीं जासकता ३४ निषादोंने कहा, कि–हे मुने ! आपने हमें दर्शन दिया और हमसे बात चीतकी (इससे हम आनन्दित हुए हैं) सज्जन पुरुष सात पैर साथ चलनेसे ही मित्रता कर लेते हैं (अतः आप हमारे मित्र हुए अब आप हमारे ऊपर कृपा करिये ३५ हे धर्मात्मन् ! आप सकल हवियोंका उपभोग करनेवाले अग्निकी समान पुरुषरूपमें प्रतापी अग्नि हैं ॥ ३६ ॥ हे विद्वन् ! हम आपको प्रणाम कर आपका प्रसन्न करते हैं, अत. आप हम पर अनुग्रह करनेके लिये इस गौके दानको स्वीकृत करिये ॥ ३७ ॥ च्यवनने कहा, कि–हे कैवर्तों ! प्रज्वलित अग्नि जैसे घास आदिको जड़मूलसे

मुनेराशीविषस्य च । नरं समूलन्दहति कक्षमग्निरिव ज्वलन् ३८
प्रतिगृह्णामि वो धेनुं कैवर्ता मुक्तकिल्बिषाः । दिवङ्गच्छत वै क्षिप्रं
मत्स्यैः सह जलोद्भवैः ॥ ३९ ॥ भीष्म उवाच । ततस्तस्य प्रभा-
वात्तो महर्षेर्भावितात्मनः । निषादास्तेन वाक्येन सह मत्स्यैर्दिवं
ययुः ॥ ४० ॥ ततः स राजा नहुषो विस्मितः प्रेक्ष्य धीवरान् ।
आरोहमाणांस्त्रिदिवं मत्स्यांश्च भरतर्षभ ॥४१॥ ततस्तौ गविज-
श्चैव च्यवनश्च भृगूद्वहः । वराभ्यामनुरूपाभ्यां छन्दयामासतुर्नृ-
पम् ॥ ४२ ॥ ततो राजा महावीर्यो नहुषः पृथिवीपतिः । परमि-
त्यब्रवीत् प्रीतस्तदा भरतसत्तम ॥ ४३ ॥ ततो जग्राह धर्मे स
स्थितिमिन्द्रनिभो नृपः । तथेति चोदितः प्रीतस्तावृषी प्रत्यपूज-
यत् ॥४४॥ समाप्तदीक्षश्च्यवनस्ततोऽगच्छत् स्वमाश्रमम् । गवि-

भस्म कर डालता है, ऐसे ही कृपणकी, मुनिकी और विषैली डाढ़वाले सर्पकी दृष्टि मनुष्यको समूल नष्ट कर देती है ॥ ३८ ॥ हे कैवर्तों ! मैं तुम्हारी गौको ग्रहण करता हूँ, तुम पापसे छूट गए हो, अब तुम जलमें उत्पन्न हुई मछलियों सहित शीघ्रतासे स्वर्गको जाओ ॥ ३९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–तदनन्तर उन महर्षिके प्रभावसे वे श्रद्धालु निषाद और मछलियें स्वर्गको चली गईं ॥४०॥ हे राजन् ! तब राजा नहुष धीवरोंको और मछलियों को स्वर्गमें चढ़ता देखकर आश्चर्यित हुआ ॥ ४१ ॥ तदन्तर गविजातने और भृगुवंशोत्पन्न च्यवनने उस राजाको योग्य वर देकर प्रसन्न किया ॥ ४२ ॥ तब हे भरतसत्तम ! महापराक्रमी राजा नहुष अति प्रसन्न हुआ और बस बस कहने लगा ॥४३॥ तदनन्तर हे राजन् ! इन्द्रकी समान राजा नहुषने वर माँगा, कि मेरी (मति) धर्म पर स्थिर रहे, तब उन दोनों ऋषियोंने कहा, कि– "तथास्तु" तब उस राजाने उन दोनों ऋषियोंकी पूजाकी ४४ च्यवन ऋषि भी अपनी दीक्षाको समाप्त करके अपने

जश्च महातेजाः स्वमाश्रमपदं ययौ ॥ ४५ ॥ निषादाश्च दिवं जग्मुस्ते च मत्स्या जनाधिप । नहुषोऽपि वरं लब्ध्वा प्रविवेश स्वकम्पुरम् ॥ ४६ ॥ एतत्ते कथितन्तात यन्मां त्वम्परिपृच्छसि । दर्शने यादृशः स्नेहः संवासे वा युधिष्ठिर ॥ ४७ ॥ महाभाग्यं गवां चैव तथा धर्मविनिश्चयम् । किं भूयः कथ्यतां वीर किं ते हृदि विवक्षितम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनोपाख्याने एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिर उवाच । संशयो मे महाप्राज्ञ सुमहान् सागरोपमः । तं मे शृणु महाबाहो श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ कौतूहलं मे सुमहज्जामदग्न्यं प्रति प्रभो । रामं धर्मभृतां श्रेष्ठं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ कथमेष समुत्पन्नो रामः सत्यपराक्रमः । कथं

आश्रममें चले गए और महातेजस्वी गविज भी अपने आश्रमको चले गए४५हे राजन्!(इसप्रकार)मछलियें और धींवर स्वर्गको चले गए तब राजा नहुषने भी अपने नगरमें प्रवेश किया॥४६॥ हे युधिष्ठिर! दर्शन और सहवास करनेसे कैसा स्नेह होता है,तेरे इस प्रश्नका उत्तर मैंने तुझसे कह दिया,तथा हे तात! गौओंका माहात्म्य भी मैंने तुझसे कहा और धर्मका निर्णय भी तुझसे कहा हे वीर! अब मैं तुझसे और क्या कहूँ, तेरे मनमें अब क्या बूझने की इच्छा है? ॥४७॥४८॥ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

युधिष्ठिरने बूझा;कि—हे महाप्राज्ञ! मेरे सागरकी समान एक सन्देहका सुनिये और उसको सुन कर हे महाबाहु! उसको दूर करिये ॥ १ ॥ हे प्रभो! जमदग्निके पुत्र महाधर्मिष्ठ परशुरामके चरित्रको सुन कर मुझे बड़ा कौतूहल होता है, अतः आप मुझसे उनका चरित्र कहिये ॥२॥ कि— सत्यपराक्रमी राम किस प्रकार उत्पन्न हुए थे और ब्रह्मर्षियोंके वंशमें उत्पन्न हुए परशुरामजीने

ब्रह्मर्षिवंशोऽयं क्षत्रधर्मा व्यजायत ॥ ३ ॥ तदस्य सम्भवं राजन्निखिलेनानुकीर्तय । कौशिकाच्च कथं वंशात् क्षत्राद्वै ब्राह्मणोऽभवत् ॥ ४ ॥ अहो प्रभावः सुमहानासीद्वै सुमहात्मनः । रामस्य च नरव्याघ्र विश्वामित्रस्य चैव हि ॥ ५ ॥ कथं पुत्रानतिक्रम्य तेषां नप्तृष्वथाभवत् । एष दोषः सुतान् हित्वा तत्त्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । च्यवनस्य च संवादं कुशिकस्य च भारत ॥ ७ ॥ एतं दोषं पुरा दृष्ट्वा भार्गवश्च्यवनस्तदा । आगामिनं महाबुद्धिः स्ववंशे मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥ निश्चित्य मनसा सर्वं गुणदोषबलाबलम् । दग्धुकामः कुलं सर्वं कुशिकानां तपोधनः ॥ ९ ॥ च्यवनः समनु-

---

क्षत्रियके धर्मको क्यों स्वीकृत किया था?३हे राजन्! मुझे परशुरामजीकी पूरी २ उत्पत्ति सुनाइये और कुशिकका वंश तो क्षत्रिय था, उसमें ब्राह्मण कैसे हुआ ॥ ४ ॥ हे नरव्याघ्र! महात्मा परशुरामका और विश्वामित्रका प्रभाव! अहो हो! बहुत बड़ा है॥५॥ ऋचीकके और कुशिकके पुत्रमें यह दोष क्यों नहीं आया और उनके पौत्रोंमें यह दोष कैसे होगया,इसकी आपको तत्त्वतः व्याख्या करनी चाहिये ॥६॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन्! इस विषयमें च्यवन और कुशिकके संवाद-रूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण इसप्रकार दिया करते हैं, कि-॥ ७ ॥ भृगुवंशोत्पन्न मुनिसत्तम और महाबुद्धिमान् च्यवनने पहिले अपने वंशमें भविष्यमें दोष आनेवाला है अर्थात् अपना ब्राह्मणकुल क्षत्रियधर्मको स्वीकृत करनेवाला है इस दोषको देखकर ॥ ८ ॥ अपने मनमें गुण और दोषोंकी न्यूनाधिकताका विचार किया, फिर तपोधन च्यवनने कुशिकके सम्पूर्ण कुलको भस्म करनेका निश्चय किया (च्यवनने विचारा, कि कुशिकके वंशमेंसे मेरे वंशमें कन्या आवेगी और उसका पुत्र क्षत्रियधर्मको

प्राप्य कुशिकं वाक्यमब्रवीत् । वस्तुमिच्छा समुत्पन्ना त्वया सह ममानघ ॥ १० ॥ कुशिक उवाच । भगवन् सह धर्मोयं पंडितै-रिह धार्यते । प्रदानकाले कन्यानामुच्यते च सदा बुधैः ॥११॥ यत्तु तावदतिक्रान्तं धर्मद्वारं तपोधन । तत्कार्यं प्रकरिष्यामि तद-नुज्ञातुमर्हसि ॥ १२ ॥ भीष्म उवाच । अथासनमुपादाय च्यव-नस्य महामुनेः । कुशिको भार्यया सार्धमाजगाम यतो मुनिः१३ प्रगृह्य राजा भृङ्गारं पाद्यमस्मै न्यवेदयत् । कारयामास सर्वाश्च क्रियास्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥ ततः स राजा च्यवनं मधुपर्कं यथाविधि । ग्राहयामास चाव्यग्रो महात्मा नियतव्रतः ॥ १५ ॥ सत्कृत्य तं तथा विप्रमिदं पुनरथाब्रवीत् । भगवन् परवन्तौ स्वौ

स्वीकार करेगा और मेरे कुलमें क्षत्रियधर्मा पुत्र होना अच्छा नहीं, अतः भविष्यमें कन्या देनेवाले कुशिकके वंशको ही पूर्ण-रीतिसे नष्ट कर दूँ, तो ठीक हो) ॥ ९ ॥ फिर च्यवन ऋषिने राजा कुशिकके पास जाकर कहा, कि-हे निर्दोष राजन् ! मुझे इच्छा हुई है, कि-मैं तेरे यहाँ (कुछ समय तक) निवास करूँ१० कुशिकने कहा, कि-हे भगवन् ! विद्वान् पण्डितोंने कहा है,कि-कन्याओंका दान देते समय एक साथ रहना धर्म है ॥ ११ ॥ हे तपोधन ! यदि आप इसको अधर्म समझते हों तब भी मैं ऐसा करूँगा अतः आप आज्ञा दीजिये (यहाँ हास्य किया है, अर्थात् आप कन्या हैं अतः आपको यहाँ अवश्य रहना पड़ेगा)१२ भीष्मजीने कहा,कि इस प्रकार बात चीत होने पर जहाँ च्यवन ऋषि बैठे थे,तहाँ राजा कुशिक अपनी रानीको साथमें ले आसन लेकर आया१३फिर राजाने जलकी झारी लेकर उन मुनिको पैर धोनेके लिये,जल दिया और उन महात्माकी दूसरी भी सब पूजाएँ की।१४॥तदनंतर नियमानुसार व्रत पालनेवाले उस महात्मा राजा ने शान्त होकर विधिपूर्वक च्यवनको मधुपर्क दिया१५इसप्रकार

ब्रूहि किं करवावहे ॥ १६ ॥ यदि राज्यं यदि धनं यदि गाः संशितव्रत । यज्ञदानानि च तथा ब्रूहि सर्वं ददानि ते ॥ १७ ॥ इदं गृहमिदं राज्यमिदं धर्मासनञ्च ते । राजा त्वमसि शाध्युर्वीमहं तु परवांस्त्वयि ॥ १८ ॥ एवमुक्ते ततो वाक्ये च्यवनो भार्गवस्तदा । कुशिकं प्रत्युवाचेदं मुदा परमया युतः ॥ १६ ॥ न राज्यं कामये राजन्न धनं न च योषितः । न च गा न च वै देशान्न यज्ञं श्रूयतामिदम् ॥ २० ॥ नियमं किंचिदारप्स्ये युवयोर्यदि रोचते । परिचर्योऽस्मि यत्ताभ्यां युवाभ्यामविशंकया २१ एवमुक्ते तदा तेन दम्पती तौ जहर्षतुः । प्रत्यब्रूतां च तमृषिमेवमस्त्विति भारत ॥ २२ ॥ अथ तं कुशिको हृष्टः प्रावेशयदनुत्त-

---

च्यवन मुनिका सत्कार करके उन्होंने फिर कहा, कि-हे भगवन् ! हम आपके अधीन हैं; बताइये हम अब क्या करें ॥१६॥ हे तीक्ष्ण व्रत धारण करनेवाले ! यदि आपको राज्यकी इच्छा हो, धनकी इच्छा हो, गौकी इच्छा हो तथा यज्ञके निमित्त दानकी इच्छा हो तो बताइये, मैं आपको सब कुछ दूँगा ॥ १७ ॥ यह घर आपका है, राज्य आपका है, यह धर्मासन भी आपका है, आप ही राजा हैं, अतः आप इस पृथ्वीकी रक्षा करिये, मैं आपके अधीन हूँ ॥ १८ ॥ इस प्रकार राजा कुशिकने कहा, तब भृगुवंशोत्पन्न ! च्यवनने परम हर्षित हो राजा कुशिकसे इस प्रकार कहा कि-१६ हे राजन् ! मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है, धनकी कामना नहीं है, स्त्रीकी भी इच्छा नहीं है, देशकी भी इच्छा नहीं है तथा यज्ञ करनेकी भी इच्छा नहीं है किन्तु इस एक बातको तू सुन २० यदि तुम दोनोंको रुचे तो मैं एक नियम आरम्भ करना चाहता हूँ, और उसमें तुम दोनोंको सावधान रहकर मेरी सेवा करनी पड़ेगी २१ च्यवनके इस कथनको सुनकर राजा रानी प्रसन्न हुए और उन ऋषिसे कहने लगे, कि-अच्छा हम आपकी सेवा

मम् । गृहोद्देशं ततस्तस्य दर्शनीयमदर्शयत् ॥ २३ ॥ इयं शय्या भगवतो यथा काममिहोष्यताम् । प्रयतिष्यावहे प्रीतिमाहर्तुं ते तपोधन ॥ २४ ॥ अथ सूर्योऽतिचक्राम तेषां संवदतां तथा । अथर्षिश्चोदयामास पानमन्नं तथैव च ॥ २५ ॥ तमपृच्छत्ततो राजा कुशिकः प्रणतस्तदा । किमन्नजातमिष्टं ते किमुपस्थापयाम्यहम् २६ ततः स परया प्रीत्या प्रत्युवाच नराधिपम् । औपपत्तिकमाहारं प्रयच्छस्वेति भारत ॥ २७ ॥ तद्वचः पूजयित्वा तु तथेत्याह स पार्थिवः । यथोपन्नमाहारं तस्मै प्रादाज्जनाधिप ॥ २८ ॥ ततः स भुक्त्वा भगवान् दम्पती प्राह धर्मवित् । स्वप्तुमिच्छाम्यहं निद्रा बाधते मामिति प्रभो ॥ २९ ॥ ततः शय्यागृहं प्राप्य भगवानृषि-

---

करेंगे २२ तदनन्तर कुशिकने उन ऋषिको एक उत्तम भवनमें ठहराकर उसका एक रमणीय भाग (कमरा) उनको दिखाया २३ और कहा, कि-यह शय्या आपके लिये बिछा दी है, इस पर आप इच्छानुसार शयन करिये, हे तपोधन ! हम दोनों आपको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करेंगे २४ वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, इतनेमें ही सूर्य अस्त होगया, तब ऋषिने राजासे अन्न और जल लानेको कहा २५ तब राजा कुशिकने उनको प्रणाम करके उनसे बूझा, कि-आपको कौनसा अन्न प्रिय लगता है बताइये ! मैं कौनसा अन्न लाऊँ २६ तब उन ऋषिने परम प्रीतिसे राजा को उत्तर दिया, कि-हे भरतवंशी राजन् ! प्रतिदिन जो आहार बनता हो वह मुझको दीजिये २७ राजाने ऋषिके वचनका सत्कार करके कहा, कि-"तथास्तु" तब हे राजन् ! जो आहार तयार होरहा था, वह उन्होंने ऋषिके सामने लाकर उपस्थित किया २८ हे भगवन् ! तब ऋषिने वह भोजन किया, फिर धर्मवेत्ता ऋषिने उस दम्पतीसे कहा, कि-हे प्रभो! मुझे निद्रा पीड़ा दे रही है; अतः मैं सोना चाहता हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार कह कर वह ऋषि

सत्तमः । संविवेश नरेशस्तु सपत्नीकः स्थितोऽभवत् ॥ ३० ॥
न प्रबोध्योऽस्मि संसुप्त इत्युवाचाथ भार्गवः । संवाहितव्यौ मे
पादौ जागृतव्यश्च तेऽनिशम् ॥ ३१ ॥ अविशंकस्तु कुशिकस्तथे-
त्येवाह धर्मवित् । न प्रबोधत तां तौ च दम्पती रजनीक्षये ३२
यथादेशं महर्षेस्तु शुश्रूषापरमौ तदा । बभूवतुर्महाराज प्रयतावथ
दम्पती ॥३३॥ ततः स भगवान् विप्रः समादिश्य नराधिपम् ।
सुष्वापैकेन पार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३४ ॥ स तु राजा-
निराहारः सभार्यः कुरुनन्दन । पर्युपासत तं हृष्टश्च च्यवनाराधने
रतः ॥३५॥ भार्गवस्तु समुत्तस्थौ स्वयमेव तपोधनः । अकिंचि-
दुक्त्वा तु गृहान्निश्चक्राम महातपाः ॥ ३६ ॥ तमन्वगच्छतां तौ
च क्षुधितौ श्रमकर्शितौ । भार्यापती मुनिश्रेष्ठस्तावेतौ नावलोक-

---

श्रेष्ठ शय्यामंदिरमें गए और सो गए तथा राजा और रानी तहाँ खड़े रहे ३० तदनन्तर भृगुवंशी च्यवनने राजासे कहा, कि-तुम मुझे सोते रहने पर न जगाना और तुम सदा मेरे चरण दबाते रहना और जागते रहना ३१ यह सुन कर धर्मवेत्ता कुशिकने निःशंक होकर कहा, कि-अच्छा ऐसा ही करूँगा, तब रात्रि बीत जाने पर भी राजा रानीने ऋषिको नहीं जगाया ३२ परन्तु हे महाराज ! वह दम्पती आज्ञानुसार उन महर्षिकी सेवा करने लगे ३३ भगवान् च्यवन भी राजाको आज्ञा देकर एक करवटसे इक्कीस दिन तक सोते रहे ३४ हे कुरुनन्दन ! वह राजा रानी भी निराहार रहकर प्रसन्नतापूर्वक इतने दिन तक च्यवन की आराधनामें परायण रहकर उनकी सेवा करते रहे ३५ बाई-सवें दिन भृगुकुलोत्पन्न तपोधन च्यवन स्वयं ही उठे और वह महातपस्वी बिना कुछ कहे ही राजाके महलमेंसे बाहर चले गए ३६ तब क्षुधा और परिश्रमसे दुर्बल हुए वे पति पत्नी भी उन ऋषिके पीछे पीछे चले, परन्तु मुनिश्रेष्ठ च्यवनने उनकी ओर देखा तक

यत् ॥ ३७ ॥ तयोस्तु प्रेक्षतोरेव भार्गवाणां कुलोद्वहः । अन्तर्हि-
तोऽभूद्राजेन्द्र ततो राजाऽपतत्क्षितौ ॥३८॥ स मुहूर्तं समाश्वस्य
सह देव्या महाद्युतिः । पुनरन्वेषणे यत्नमकरोत् परमं तदा ३९
इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
च्यवनकुशिकसंवादे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

युधिष्ठिर उवाच । तस्मिन्नन्तर्हिते विप्रे राजा किमकरोत्तदा ।
भार्या चास्य महाभागा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥ भीष्म उवाच ।
अदृष्ट्वा स महीपालस्तमृषिं सह भार्यया । परिश्रान्तो निववृते
व्रीडितो नष्टचेतनः ॥२॥ स प्रविश्य पुरीं दीनो नाभ्यभाषत
किंचन । तदेव चिंतयामास च्यवनस्य विचेष्टितम् ॥ ३ ॥ अथ
शून्येन मनसा प्रविश्य स्वगृहं नृपः। ददर्श शयने तस्मिन् शयानं
भृगुनन्दनम् ॥४॥ विस्मितौ तमृषिं दृष्ट्वा तदाश्चर्यं विचिंत्य च ।
दर्शनात्तस्य तु तदा विश्रान्तौ संबभूवतुः ॥ ५ ॥ यथास्थानं च

नहीं ३७ और हे राजेन्द्र ! राजा रानीके देखते ही देखते भार्गव
कुलोत्पन्न च्यवन ऋषि अन्तर्धान होगए तब वह राजा पृथ्वीमें
गिर पड़ा ३८ फिर मुहूर्त तक विश्राम लेकर वह राजा रानीको
साथ ले उन ऋषिको फिर ढूँढने लगा ३९ बावनवाँ अध्याय
अध्याय समाप्त ५२ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे पितामह ! उन च्यवनके अन्तर्ध्यान
होने पर राजाने और उनकी महारानीने क्या २ किया, यह
मुझसे कहिये वह राजा उन ऋषिको न देखकर रानीसहित थककर
शरमाता हुआ वेभान होकर नगरीमें लौट आया और किसीसे
कुछ भी बात चीत न कर च्यवनके चरित्रका विचार करने लगा,
फिर वह राजा मनमें उदास हो घरमें घुसा, किन्तु तहाँ उसको
भृगुपुत्र शय्यामें सोते हुए दीखे २–४ उन ऋषिको देखकर तथा
उन ऋषिके आश्चर्यजनक चरित्रका विचार करके वे दोनों आश्चर्य

तौ स्थित्वा भूयस्तं संववाहतुः । अथापरेण पार्श्वेन सुष्वाप स महामुनिः ॥ ६ ॥ तेनैव च स कालेन प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् । न च तौ चक्रतुः किंचिद्विकारं भयशंकितौ ॥ ७ ॥ प्रतिबुद्धस्तु स मुनिस्तौ प्रोवाच विशाम्पते । तैलाभ्यङ्गो दीयतां मे स्नास्येऽहमिति भारत । तौ तथेति प्रतिश्रुत्य क्षुधितौ श्रमकर्शितौ । शतपाकेन तैलेन महार्हेणोपतस्थतुः ॥ ९ ॥ ततः सुखासीनमृषिं वाग्यतौ संववाहतुः । न च पर्याप्तमित्याह भार्गवः सुमहातपाः ॥ १० ॥ यदा तौ निर्विकारौ तु लक्षयामास भार्गवः ॥ तत उत्थाय सहसा स्नानशालां विवेश ह ॥ ११ ॥ क्लृप्तमेव तु तत्रासीत्स्नानीयं पार्थिवोचितम् ॥ असत्कृत्य च तत्सर्वं तत्रैवांतरधीयत ॥ १२ ॥

में होगए और ऋषिका दर्शन कर उनका परिश्रम दूर होगया ५ तदनन्तर राजा और रानी अपने स्थानमें बैठ कर फिर ऋषिके चरणोंको दावने लगे, उस समय वह महामुनि दूसरी करवटसे सोरहे थे ॥ ६ ॥ वह पराक्रमी ऋषि फिर उतना ही (इक्कीस दिन का) समय वीतने पर जागृत हुए, किन्तु राजा और रानीने भयकी शंकासे कुछ भी विकार नहीं दिखाया ॥७॥ हे भरतवंशी राजन् ! उन मुनिने जाग कर राजा और रानीसे कहा, कि—मेरे शरीर पर तैल मलो मैं स्नान करूँगा ॥ ८ ॥ राजा और रानी भूखे थे, श्रमसे दुर्बल होगए थे, तथापि उन्होंने तथास्तु कहकर मुनिके सामने शतपाक नामक बहुमूल्य तैल उपस्थित किया९ तब ऋषि सुखसे बैठ गए और राजा रानी चुपचाप उनके शरीर पर तैल मलने लगे और चरण दावने लगे, किन्तु महातपस्वी भृगु वंशोत्पन्न च्यवनने बस करो नहीं कहा ॥ १० ॥ किन्तु भृगुकुलोत्पन्न च्यवनने जब राजा रानीको तब भी विकाररहित देखा तो वह एक दम उठकर स्नानशालामें चले गए ॥ ११ ॥ तहाँ राजाने स्नान करने योग्य जल भर कर तयार करा रक्खा था,

स मुनिः पुनरेवाथ नृपतेः पश्यतस्तदा । नासूयाञ्चक्रतुस्तौ च दम्पती भरतर्षभ ॥ १३ ॥ अथ स्नातः स भगवान् सिंहासनगतः प्रभुः । दर्शयामास कुशिकं सभार्यं कुरुनन्दन ॥ १४ ॥ संहृष्टवदनो राजा सभार्यः कुशिको मुनिम् । सिद्धमन्नमिति प्रह्वो निर्विकारो न्यवेदयत् ॥ १५ ॥ आनीयतामिति मुनिस्तं चोवाच नराधिपम् । स राजा समुपाजह्रे तदन्नं सह भार्यया ॥ १६ ॥ मांसं प्रकारान्विविधान् शाकानि विविधानि च । वेसवारविकारांश्च पानकानि लघूनि च ॥ १७ ॥ रसालापूपकांश्चित्रान् मोदकानथ खाण्डवान्। रसान्नानाप्रकारांश्च वन्यञ्च मुनिभोजनम् १८ फलानि च विचित्राणि राजभोज्यानि भूरिशः । बदरेंगुदकाश्मर्यभल्लातकफलानि च ॥ १९ ॥ गृहस्थानां च यद्भोज्यं यच्चापि

परन्तु मुनि उन सब पदार्थोंका सत्कार किये विना ही अर्थात् स्नान किये विना ही राजाके देखते २ अन्तर्धान होगए ॥ १२॥ हे भरतर्षभ ! उन दम्पतिके देखते २ वे मुनि फिर अन्तर्धान हो गए, तब भी उन दोनोंने कुछ बुरा न माना ॥१३॥ हे कुरुनन्दन ! तदनन्तर फिर उन ऋषिने स्नान करके सिंहासन पर बैठ राजा कुशिक और उसकी भार्याको दर्शन दिया ॥ १४ ॥ तब राजा और रानीके मुख हर्षसे खिल उठे और राजाने सरल और शान्त होकर ऋषिसे कहा, कि—भोजन तयार है ॥१५॥ मुनिने राजासे कहा, कि—लाइये, तब राजा और रानीने मुनिके सामने निम्नलिखित भोजन उपस्थित किया ॥ १६ ॥ नाना प्रकारके मांस, नाना प्रकारके शाक, वेसवार, हलके शरवत चित्रविचित्र रसीले गुलगुले, लडडू, खाण्डव और नानाप्रकारके रस और मुनियोंके योग्य भोजन और राजाओंके खाने योग्य बहुतसे चित्र विचित्र फल और वेर, इमली काश्मर्य और बहेड़े, इस प्रकार गृहस्थोंके और वनवासियोंके खाने योग्य सब भोजन राजाने

वनवासिनाम् । सर्वमाहारयामास राजा शापभयात्ततः ॥ २० ॥ अथ सर्वमुपन्यस्तमग्रतश्च्यवनस्य तत् । ततः सर्वं समानीय तच्च शय्यासनं मुनिः ॥ २१ ॥ वस्त्रैः शुभैरवच्छाद्य भोजनोपस्करैः सह । सर्वमादीपयामास च्यवनो भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥ न च तौ चक्रतुः क्रोधं दम्पती सुमहामती । तयोः संप्रेक्षतोरेव पुनरंतर्हितोऽभवत् ॥ २३ ॥ तथैव च स राजर्षिस्तस्थौ तां रजनीं तदा । सभार्यो वाग्यतः श्रीमान्न च कोपं समाविशत् ॥ २४ ॥ नित्यसंस्कृतमन्नन्तु विविधं राजवेश्मनि । शयनानि च मुख्यानि परिषेकाश्च पुष्कलाः । वस्त्रं च विविधाकारमभवत् समुपार्जितम् । न शशाक ततो द्रष्टुमन्तरं च्यवनस्तदा ॥ २६ ॥ पुनरेव च विप्रर्षिः प्रोवाच कुशिकं नृपम् । सभार्यो मां रथेनाशु वह यत्र ब्रवीम्यहम् ॥ २७ ॥ तथेति च प्राह नृपो निर्विशंकस्तपोधनम् ।

शापके भयसे मँगाया ॥१७-२०॥ और वह सब भोजन च्यवनके सामने परोसा तदनन्तर मुनिने उस अन्नको एक स्थान पर मँगा कर उन भोजनके पदार्थोंको और शय्याको उत्तम वस्त्रोंसे ढक दिया, फिर भृगुवंशोत्पन्न च्यवन ऋषिने भोजनके पदार्थ और शय्यामें आग लगा दी॥ २१-२२ ॥ किन्तु तब भी महाबुद्धिमान् राजा रानीको क्रोध नहीं आया और मुनि फिर राजा रानीके देखते ही देखते अन्तर्धान होगए ॥ २३ ॥ वह राजर्षि रानीके साथ सारी रात्रि वैसे ही बैठा रहा और उस श्रीमान्ने अपनी वाणीको अँकुशमें रखकर कुछ भी क्रोध न किया ॥ २४ ॥ राजभवनमें अनेक प्रकारके मसाले डाल कर भोजन बनाया जाता था, बढ़िया२ पलंग, नाना प्रकारके स्नानोदक तथा अनेक प्रकार के रंग विरंगे वस्त्र तयार रक्खे जाते थे, इस प्रकार च्यवन ऋषि राजाका कोई छिद्र न देख सके २५-२६ तदन्तर विप्रर्षि च्यवनने राजा कुशिकसे कहा, कि-तू अपनी भार्यासहित रथमें जुतकर

क्रीडारथोऽस्तु भगवन्नुत सांग्रामिको रथः ॥ २८ ॥ इत्युक्तः स मुनी राज्ञा तेन हृष्टेन तद्वचः । च्यवनः प्रत्युवाचेदं हृष्टः परपुरंजयम् ॥२९॥ सज्जीकुरु रथं क्षिप्रं यस्ते सांग्रामिको मतः । सायुधः सपताकश्च शक्तीकनकयष्टिमान् ॥ ३० ॥ किंकणीस्वननिर्घोषो युक्तस्तोरणकल्पनैः । जाम्बूनदनिबद्धश्च परमेषुशतान्वितः ३१ ततः स तन्तथेत्युक्त्वा कल्पयित्वा महारथम् । भार्यां वामे धुरि तदा चात्मानं दक्षिणे तथा ॥ ३२ ॥ त्रिदण्डं वज्रसूच्यग्रं प्रतोदं तत्र चादधत् । सर्वमेतत्तथा दत्वा नृपो वाक्यमथाब्रवीत् ॥३३॥ भगवन् क्व रथो यातु ब्रवीतु भृगुनन्दन । यत्र वक्ष्यसि विप्रर्षे तत्र यास्यति ते रथः३४एवमुक्तस्तु भगवान् प्रत्युवाचाथ तं नृपम् । इतः प्रभृति यातव्यं पदकं पदकं शनैः२ श्रमो मम यथा न स्या-

---

में जहाँ कहूँ,तहाँ मुझे लेचल२७उस राजाने निःशंक भावसे तपोधनसे कहा, कि-"तथास्तु" और कहा, कि-हे भगवन्! मैं क्रीड़ारथ(विहाररथ)लाऊँ अथवा जैत्र (युद्धका विजय) रथ लाऊँ २८ राजाने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा तब च्यवन प्रसन्न हुए और उन्होंने शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले राजासे कहाकि २९ तू जिस रथको सांग्रामिक समझता हो, उस रथमें आयुध,पताका, शक्ति और सुवर्ण रख कर तयार कर ३० उसमें घूँघरू लगा, जिससे उसमेंसे झनकार निकले, और उसमें तोरण लगाना तथा वह रथ सुवर्णकी पत्तरोंसे जड़ा हुआ होना चाहिये और उसमें एक सौ बाण रखना ॥ ३१ ॥ तब राजा तथास्तु कह कर रथको तयार कर ले आया, उसमें उसने बाईं ओर रानीको जोत दिया था और दाहिनी ओर अपने आप जुत रहा था ३२ उसने वज्रकी समान तीखी अनी वाला एक पैना रथकी बैठक पर रख दिया था, इस प्रकार रथको तयार करके राजाने मुनिसे यह बात कही, कि-॥ ३३ ॥ हे भगवन् भृगुनन्दन ! (आप

तथा मच्छन्दचारिणौ। सुसुखं चैव वोढव्यो जनः सर्वश्च पश्यतु ३६
नोत्सार्याः पथिकाः केचित्तेभ्यो दास्ये वसु ह्यहम्। ब्राह्मणेभ्यश्च ये
कामानर्थयिष्यन्ति मां पथि ॥ ३७ ॥ सर्वान् दास्याम्यशेषेण धनं
रत्नानि चैव हि । क्रियतां निखिलेनैतन्मा विचारय पार्थिव ३८
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा भृत्यांस्तथाब्रवीत् । यद्यद्ब्रूयान्मुनिस्त-
त्तत्सर्वं देयमशंकितैः ॥ ३९ ॥ ततो रत्नान्यनेकानि स्त्रियो युग्य-
मजाविकम् । कृताकृतञ्च कनकं गजेन्द्राश्चाचलोपमाः ॥ ४० ॥
अन्वगच्छन्त तमृषिं राजामात्याश्च सर्वशः । हाहाभूतं च तत्सर्व-
मासीन्नगरमार्तवत् ॥ ४१ ॥ तौ तीक्ष्णाग्रेण सहसा प्रतोदेन

रथ पर चढ़ कर बैठिये, और) आज्ञा दीजिये, कि–यह रथ किस ओर चले, हे विप्रर्षे ! आप जहाँ जानेके लिए कहेंगे, तहाँ यह रथ जावेगा ३४ इसप्रकार ऋषिसे कहा तब भगवान् च्यवनने राजा से कहा, कि–तुझे यहाँसे धीरे२ एक२ कदम चलना चाहिये ३५ मुझे परिश्रम न हो इस प्रकार तुझे मेरी इच्छाके अनुकूल चलना चाहिये और मुझे जिस प्रकार सुख पहुँचे, तिस प्रकार रथको खेंचना चाहिये और सब मनुष्य तुझे रथ खेंचता हुआ देखें ३६ तू किन्हीं बटोहियोंको उकसाना मत, मैं उनको धन दूँगा तथा मार्गमें ब्राह्मण मुझसे जिस २ वस्तुको माँगेंगे उनको मैं उनकी इच्छानुसार पदार्थ, धन और रत्न आदि सब कुछ दूँगा, हे राजन् ! तू इस प्रकार सब सामग्री तयार कर और कुछ विचार न कर ३८ ऋषिके वचन सुन राजाने अपने अनुचरोंसे कहा कि मुनि जिस२ वस्तुको कहें, उस२ वस्तुको तुम निःसन्देह होकर देना ३९ तदनन्तर अनेक, रत्न स्त्रियें वाहन, बकरे, मेढे और शोधा तथा विना शोधा हुआ सुवर्ण और पर्वतोंकी समान ऊँचे हाथी और राजाके सब मंत्री उन ऋषिके पीछे २ चलने लगे और सब नगर आर्त होकर हाहाकार करने लगा ४०–४१ उस समय ऋषिने एक साथ पैने

प्रतोदितौ । पृष्ठे विद्धौ कटे चैव निर्विकारौ समूहतः ॥४२॥ वेपमानौ निराहारौ पंचाशद्रात्रकर्शितौ । कथंचिदूहतुर्वीरौ दम्पती तं रथोत्तमम् ॥ ४३ ॥ बहुशो भृशविद्धौ तौ स्रवतौ च क्षतोद्भवम् । ददृशाते महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४४ ॥ तौ दृष्ट्वा पौरवर्गस्तु भृशं शोकसमाकुलः । अभिशापभयत्रस्तो न च किंचिदुवाच ह ॥ ४५ ॥ द्वंद्वशश्चाब्रुवन् सर्वे पश्यध्वं तपसो बलम् । क्रुद्धा अपि मुनिश्रेष्ठं वीक्षितुं नेह शक्नुमः॥४६ अहो भगवतो वीर्यं महर्षेर्भावितात्मनः । राज्ञश्चापि समार्यस्य धैर्यं पश्यत यादृशम्॥४७ श्रान्तावपि हि कृच्छ्रेण रथमेनं समूहतुः । न चैतयोर्विकारं वै ददर्श भृगुनन्दनः ॥ ४८ ॥ भीष्म उवाच । ततः स निर्विकारौ

की तीखी नोकसे राजा और रानीकी पीठको तथा गण्डस्थलको बींधडाला,तब भी वे विना क्रोध कियेहुए रथको खेंचतेही रहे४२ वे राजा और रानी पचास रात्रिके भूखे थे, उनका शरीर दुर्बल होगया था और वे काँपरहे थे,फिर भी वे यथा तथा रथको खैंच रहे थे ४३ राजा और रानी पैनेकी आरसे बहुत ही घायल होगए उनके शरीरमेंसे रक्त चूने लगा तब हे राजन्! वे दोनों खिले हुए टेसूके फूलोंकी समान प्रतीत होनेलगे ४४ नगरके मनुष्य राजा और रानीकी ऐसी दशा देखकर बड़ा शोक करने लगे परन्तु ऋषिके शाप देनेके भयसे कुछ कह न सके४५ सब मनुष्य उन दोनोंके जोडेको देखकर कहने लगे, कि-"तपके बल को तो देखो, हमें क्रोध आरहा है" तब भी हम इन मुनिश्रेष्ठके सामने नहीं देखसकते ४६ ब्रह्मस्वरूप हुए इन भगवान् महर्षिका कैसा प्रताप है और राजा तथा रानीका भी कैसा धैर्य है. इसको देखिये ४७ राजा रानी थक गए हैं तब भी कष्टके साथ रथको खैंचे ही जाते हैं अभी तक भृगुनन्दन इन दोनोंमें क्रोधका कोई विकार नहीं पा सके हैं ४८ भीष्मजीने कहा, कि भृगुवंशमें

तु दृष्ट्वा भृगुकुलोद्वहम्। वसु विश्राणयामास यथा वैश्रवणस्तथा४६
तत्रापि राजा प्रीतात्मा यथा दिष्टमथाकरोत् । ततोऽस्य भगवान्
प्रीतो बभूव मुनिसत्तमः ॥ ५० ॥ अवतीर्य रथश्रेष्ठाद्दम्पती तौ
मुमोच ह । विमोच्य चैतौ विधिवत्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ५१ ॥
स्निग्धगम्भीरया वाचा भार्गवः सुप्रसन्नया । ददानि वां वरं
श्रेष्ठं तं ब्रूतामिति भारत ॥५२॥ सुकुमारौ च तौ विद्धौ कराभ्यां
मुनिसत्तमः । परपस्पर्शामृतकल्पाभ्यां स्नेहाद्भरतसत्तम ॥ ५३ ॥
अथाब्रवीन्नृपो वाक्यं श्रमो नास्त्यावयोरिह । विश्रान्तौ च प्रभा-
वात्ते ऊचतुस्तौ तु भार्गवम् ॥ ५४ ॥ अथ तौ भगवान् प्राह
प्रहृष्टश्च्यवनस्तदा । न वृथा व्याहृतं पूर्वं यन्मया तद्भविष्यति५५

उत्पन्न हुए च्यवन राजा और रानीको विकाररहित देखकर कुबेरकी समान धन लुटाने लगे ४६ राजा तब भी प्रसन्न हो ऋषिकी आज्ञानुसार करने लगा तब मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् च्यवन उस पर प्रसन्न हुए ५०और महारथपरसे नीचेउतर कर उन दम्पतीको छोड़ दिया, उन दोनोंको रथके जुएमेंसे निकाल कर उनसे कहने लगे,५१ हे भरतवंशी राजन्! भार्गव स्नेहमयी गंभीर वाणीमें कहने लगे,कि-मैं तुम दोनोंको क्या उत्तम वर दूँ, यह बताओ ॥ ५२ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! उन दोनोंके शरीर सुकुमार थे और पैनेसे विंध गये थेउनको मुनिश्रेष्ठ च्यवन अमृतकी समान जीवित करने वाले हाथोंसे सहलाने लगे ५३ तदनन्तर (च्यवनने उन दोनोंसे पूछा, कि-तुम दोनोंको कुछ परिश्रम पडा है क्या ? उसके उत्तरमें) राजाने कहा, कि हमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ और उन्होंने भार्गवसे कहा, कि आपके प्रभाव से हमको विश्राम ही मिला है ॥५४॥ तदनन्तर भगवान् च्यवन ने परम प्रसन्न होकर राजासे कहा, कि-मैंने पहले कभी झूठ नहीं बोला है, मैंने जो कुछ कहा है, वही होगा ॥ ५५ ॥ यह

रमणीयः समुद्देशो गङ्गातीरमिदं शुभम् । किंचित् कालं व्रतपरो निवत्स्यामीह पार्थिव ॥ ५६ ॥ गम्यतां स्वपुरं पुत्र विश्रान्तः पुनरेष्यसि । इहस्थं मां सभार्यस्त्वं द्रष्टासि श्वो नराधिप । न च मन्युस्त्वया कार्यः श्रेयस्ते समुपस्थितम् ५७ यत् कांक्षितं हृदिस्थन्ते तत् सर्वं हि भविष्यति । इत्येवमुक्तः कुशिकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ५८ प्रोवाच मुनिशार्दूलमिदं वचनमर्थवत् । न मे मन्युर्महाभाग पूतौ स्वो भगवंस्त्वया ५९ संवृतौ यौवनस्थौ स्वो वपुष्मंतौ बलान्वितौ । प्रतोदेन व्रणा ये मे सभार्यस्य त्वया कृताः ६० तान्नः पश्यामि गात्रेषु स्वस्थोऽस्मि सह भार्यया । इमां च देवीं पश्यामि वपुषाप्सरसोपमाम् ६१ श्रिया परमया युक्ता तथा दृष्टा

गंगाजीका तट रमणीय है अतः हे राजन् ! मैं कुछ समय तक नदीके तट पर व्रत धारण करके रहूँगा ॥ ५६ ॥ हे पुत्र ! तू अब अपने नगरमें जा और विश्राम लेकर यहाँ आना हे राजन् ! तू कल अपनी स्त्रीको साथमें लेकर मुझे देखनेको आना तू क्रोध न करना अब तेरा कल्याण होने वाला है, तेरे मनमें जो कामना होंगी वह सब पूर्ण होंगी, मुनिने इस प्रकार कहा, तब कुशिकने मनमें परमप्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ च्यवनसे प्रयोजन भरी यह बात कही, कि–हे महाभाग ! मुझे क्रोध नहीं आया है, हे भगवन् ! आपने तो हमें पवित्र कर दिया है, ॥ ५७ ५८ ॥ हम दोनों तरुण होगए हैं, हमारा शरीर सुन्दर और बलवान् हो गया है, और आपने मेरे और मेरी रानीके पैने मार कर जो घाव कर दिये थे, ॥ ६० ॥ वे भी मुझे अब शरीरमें नहीं दिखलाई देते, मैं अब स्त्रीसहित स्वस्थ होगया हूँ और अपनी इस रानीको अप्सराकी समान सुन्दर शरीरवाली देख रहा हूँ, ६१ और इसकी वैसी ही बड़ी भारी शोभा होरही है, जैसी कि–मैंने पहले देखी थी, हे महामुने ! यह सब बात आपकी कृपासे

पुरा मया । तव प्रसादसंवृत्तमिदं सर्वं महामुने ६२ नैतच्चित्रं तु भगवंस्त्वयि सत्यपराक्रम । इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं कुशिकं च्यवनस्तदा ६३ आगच्छेथाः सभार्यश्च त्वमिहेति नराधिप । इत्युक्तः समनुज्ञातो राजर्षिरभिवाद्य तम् ६४ प्रययौ वपुषा युक्तो नगरं देवराजवत् । तत एनमुपाजग्मुरमात्याः सपुरोहिताः ६५ बलस्था गणिका युक्ताः सर्वाः प्रकृतयस्तथा । तैर्वृतः कुशिको राजा श्रिया परमया ज्वलन् ६६ प्रविवेश पुरं हृष्टः पूज्यमानोऽथ बन्दिभिः । ततः प्रविश्य नगरं कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः । भुक्त्वा सभार्यो रजनीमुवास स महाद्युतिः ६७ ततस्तु तौ नवमभिवीक्ष्य यौवनं परस्परं विगतरुजाविवामरौ । ननन्द तुः शयनगतौ वपुर्धरौ श्रियायुतौ द्विजवरदत्तया तदा ६८ अथाप्यृषिर्भृगुकुलकीर्तिवर्धनस्तपो

ही हुई है ६२ और हे सत्यपराक्रमी भगवन् ! आपमें यह बात होना कोई आश्चर्य नहीं है, इस प्रकार कहने पर च्यवनने कुशिक से कहा, कि- ६३ हे राजन् ! तू अपनी रानीके साथ यहाँ आना इस प्रकार मुनिसे आज्ञा पाने पर जिसका शरीर सुन्दर होगया है ऐसा वह राजर्षि उनको प्रणाम करके देवराज इन्द्रकी समान अपने नगरकी ओर चला, उस समय मंत्री और पुरोहित उसके साथ २ चल रहे थे॥६४॥६५॥फौज वेश्याएँ और सब प्रजा भी उसके साथ२ चल रही थीं, उनसे घिरा हुआ राजा कुशिक बड़ी भारी शोभासे प्रकाशित होरहा था वह राजा प्रसन्न होता हुआ और बन्दियोंसे पूजा पाता हुआ अपने नगरमें पहुँच गया राजाने नगरमें प्रवेश करके पूर्वान्हकालकी सब क्रियाएँ कीं, फिर भोजन किया, और उस महाकांतिमान् राजाने अपनी स्त्रीके साथ रात भर नगरमें निवास किया, ६६ उस रात्रिमें राजा और रानी पलंग पर शयन करने लगे, वे ऋषिकी दी हुई शरीर की शोभासे सुन्दर होगये थे और देवताओंकी समान नीरोग

नवयौवनमभिराममृद्धिमत् । मनीषया बहुविधरत्नभूषितं ससर्ज यन्न पुरि शतक्रतोरपि ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

भीष्म उवाच । ततः स राजा राज्यंते प्रतिबुद्धो महामनाः । कृतपूर्वाह्निकः प्रायात् सभार्यस्तद्वनं प्रति ॥ १ ॥ ततो ददर्श नृपतिः प्रासादं सर्वकांचनम् । मणिस्तंभसहस्राढ्यं गंधर्वनगरोपमम् । तत्र दिव्यानभिप्रायान् ददर्श कुशिकस्तदा ॥ २ ॥ पर्वतान् रूप्यसानूंश्च नलिनीश्च सपंकजाः । चित्रशालाश्च विविधास्तोरणानि च भारत । शाद्वलोपचितां भूमिं तथा कांचनकुट्टिमाम् ॥ ३ ॥ सहकारान् प्रफुल्लांश्च केतकोद्दालकान् वरान् । अशोकान् सह कुन्दांश्च फुल्लांश्चैवातिमुक्तकान् ॥ ४ ॥ चंप-

होगये थे, वे परस्परके नवयौवनको देख कर प्रसन्न हुए ६८ दूसरी ओर भृगुकुलकी कीर्त्तिमें वृद्धि करनेवाले तपोधन चयवन ने अपनी बुद्धिसे उस वनको इन्द्रके नगरमें भी न मिल सकनेवाली अनेक प्रकारकी उत्तम वस्तुओंसे शोभायमान बना दिया ॥६९॥

तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥　　छ　छ　छ

भीष्मजीने कहा, कि- रात्रि बीतने पर महामना राजा कुशिक जागा और पूर्वान्ह कालके सब कर्म करके अपनी भार्याको साथ ले वनमें गया ॥ १ ॥ तहाँ राजाने निरे सुवर्णका बना हुआ एक राजभवन देखा, उसमें मणियोंके सहस्रों खम्भे लग रहे थे और वह गन्धर्वनगरकी समान दीखता था, तहाँ कुशिकने और भी बहुतसे दिव्य अभिप्राय देखे ॥ २ ॥ उस राजाने जहाँ तहाँ पर्वत, चाँदीके शिखर, कमलों सहित बावड़ियें, नाना प्रकारकी चित्रशाला और तोरण, तथा हरी २ घास वाली भूमि और सुवर्णकी भूमि, आम्र, खिले हुए केतकी और सिरसके वृक्ष अशोक

कांस्तिलकान् भव्यान् पनसान् वंजुलानपि । पुष्पितान् कर्णि-
कारांश्च तत्र तत्र ददर्श ह ॥ ५ ॥ श्यामान् वारणपुष्पांश्च तथा-
ष्टपदिका लताः । तत्र तत्र परिक्लृप्ता ददर्श स महीपतिः ॥ ६ ॥
रम्यान् पद्मोत्पलधरान्, सर्वर्तु कुसुमांस्तथा । विमानप्रतिमांश्चापि
प्रासादान् शैलसन्निभान् ॥ ७ ॥ शीतलानि च तोयानि क्वचि-
दुष्णानि भारत । आसनानि विचित्राणि शयनप्रवराणि च ८
पर्यंकान् रत्नसौवर्णान् परार्घ्यास्तरणावृतान् । भक्ष्यं भोज्यमनंतं
च तत्र तत्रोपकल्पितम् ॥ ९ ॥ वाणीवादाञ्छुकांश्चैव सारि-
कान् भृंगराजकान् । कोकिलाञ्छतपत्रांश्च सकोयष्टिककुक्कुभान् १०
मयूरान्कुक्कुटांश्चापि दात्यूहान् जीवजीवकान् । चकोरान् वान-
रान् हंसान्सारसांश्चक्रसाह्वयान् ॥ ११ ॥ समंततः प्रमुदितान्

कुन्द और अतिमुक्तक (माधवी) नामकी लताओंका तथा चम्पक तिलक, कटहल, अशोक और खिले हुए कनेरके वृक्षोंको भी जहाँ तहाँ देखा ॥ ३–५ ॥ और उस राजाने महँदीके वृक्षोंको और पुन्नाग (केले) के वृक्षोंको तथा भद्रावती नामकी लताओंको जहाँ तहाँ लगी हुई देखा ॥६॥ और पद्म तथा उत्पल जातिके कमलोंसे शोभायमान पर्वतोंकी समान ऊँचे सुन्दर महलोंको देखा उन महलोंमें सब ऋतुओंके पुष्प लगरहे थे, और वे महल विमानों की समान दीखते थे ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तहाँ पर कहीं शीतल जल भर रहा था, कहीं गरम जल भर रहा था, और कहीं विचित्र आसन बिछे हुए थे, और कहीं पर उत्तम पलँग पड़े हुए थे ॥ ८ ॥ कहीं २ रत्नजटित सुवर्णके पलँग पड़े हुए थे, उनके ऊपर बहुमूल्य पलँगपोश बिछाए गए थे तथा अनेक प्रकारके भक्ष्य और भोज्य भी जहाँ तहाँ रखे हुए थे, ९ और जहाँ तहाँ मैना, भौंरे, कोयल, सारस, कोयष्टिक, कुक्कुट, मोर, मुर्गे, घातक, जीवजीवक, चकोर, बन्दर, हंस सारस और

ददर्श सुमनोहरान् । क्वचिदप्सरसां संघान् गंधर्वाणां च पार्थिव१२
कांताभिरपरांस्तत्र परिष्वक्तान् ददर्श ह । न ददर्श च तान् भूयो
ददर्श च पुनर्नृपः ॥ १३ ॥ गीतध्वनिं सुमधुरं तथैवाध्यापन-
ध्वनिम् । हंसान् सुमधुरांश्चापि तत्र शुश्राव पार्थिवः ॥ १४ ॥ तं
दृष्ट्वात्यद्भुतं राजा मनसाचिंतयत्तदा । स्वप्नोऽयं चित्तविभ्रंश उताहो
सत्यमेव तु ॥१५॥ अहो सह शरीरेण प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
उत्तरान् वा कुरून् पुण्यानथवाप्यमरावतीम् ॥ १६ ॥ किं चेदं
महदाश्चर्यं संपश्यामीत्यचिंतयत् । एवं संचिंतयन्नेव ददर्श मुनि-
पुंगवम् ॥ १७ ॥ तस्मिन् विमाने सौवर्णे मणिस्तंभसमाकुले ।
महार्हे शयने दिव्ये शयानं भृगुनन्दनम् ॥ १८ ॥ तमभ्ययात्
प्रहर्षेण नरेन्द्रः सह भार्यया । अन्तर्हितस्ततो भूयश्च्यवनः शयनं

चक्रवाक अपनी अपनी बोली बोल रहे थे ॥ १०-११ ॥
और हे राजन् ! उस राजाने अप्सराओंके और गन्धर्वोंके मनो-
हर टोलोंको आनन्दमें भरे हुए देखा ॥ १२ ॥ और राजाने
तहाँ बहुतसे प्राणियोंको स्त्रियोंको आलिंगन करते हुए देखा,
और उनको देखकर भी अनदेखा सा करदिया ॥ १३ ॥ और
उस कुशिक राजाने तहाँ पर गाने बजानेके मधुर स्वरको, पढ़ाने
की ध्वनिको और हंसोंके मधुर स्वरको सुना ॥१४॥ राजाने इन
अद्भुत बातोंको देखकर अपने मनमें विचारा कि-मैं क्या स्वप्न देख
रहा हूँ,अथवा मेरे चित्तमें भ्रम होगया, अथवा क्या यह सत्य ही
है ॥ १५ ॥ अहो हो ! मैं सशरीर ही परम गतिको प्राप्त होगया
क्या। मैं पवित्र उत्तर कुरुओंमें आगया अथवा मैं क्या इन्द्रकी नगरी
में पहुँच गया हूँ १६ मैं इस बड़े भारी आश्चर्यको देख रहा हूँ,
वह इस प्रकार विचार कर रहा था, कि-उसको मुनिवर च्यवनके
दर्शन हुए१७ भृगुनन्दन च्यवन मणिजटित स्तम्भवाले सुवर्णमय
विमानमें बहुमूल्य दिव्य पलंग पर सो रहे थे १८,उनको देख-

च तत् ॥ १९ ॥ ततोऽन्यस्मिन्वनोद्देशे पुनरेव ददर्श तम् । कौश्यां वृस्यां समासीनं जपमानं महाव्रतम् ॥ २० ॥ एवं योगबलाद्विप्रो मोहयामास पार्थिवम् । क्षणेन तद्वनं चैव ते चैवाप्सरसां गणाः ॥ २१ ॥ गंधर्वाः पादपाश्चैव सर्वमंतरधीयत । निःशब्दमभवच्चापि गंगाकूलं पुनर्नृप ॥ २२ ॥ कुशवल्मीकभूयिष्ठं बभूव च यथा पुरा । ततः स राजा कुशिकः सभार्यस्तेन कर्मणा ॥ २३ ॥ विस्मयं परमं प्राप्तस्तद्द दृष्ट्वा महदद्भुतम् । ततः प्रोवाच कुशिको भार्यां हर्षसमन्वितः ॥ २४ ॥ पश्य भद्रे यथा भावाश्चित्रा दृष्टाः सुदुर्लभाः । प्रसादाद्भृगुमुख्यस्य किमन्यत्र तपोबलात् ॥ २५ ॥ तपसा तदवाप्यं हि यत्तु शक्यं मनोरथैः । त्रैलोक्यराज्यादपि हि तप एव विशिष्यते ॥ २६ ॥ तपसा हि

कर राजा अपनी रानीके साथ परम प्रसन्न हो उन ऋषिके पास पहुँचा, कि च्यवन और उनका वह पलँग तुरत अन्तर्धान हो गया १९ राजाने दूसरे वनमें घूमते २ फिर महाव्रत च्यवन ऋषि को कुशके आसन पर बैठकर जप करतेहुए देखा २० च्यवन ऋषिने इस प्रकार योगके प्रभावसे राजाको मोहमें डाला था, फिर एक क्षणमें ही वह वन; अप्सराओंकी टोलियें, गन्धर्व और वृक्ष आदि यह सब अन्तर्धान होगया और हे राजन्! गङ्गाजीका तट भी नीरव होगया और पहिलेकी समान बहुतसे कुशों और बिलों वाला होगया, तब राजा कुशिक और उसकी भार्या ऋषिके महा अद्भुत कर्मोंको देखकर बड़े आश्चर्यित हुए, और राजा कुशिकने हर्षमें भर कर अपनी भार्यासे कहा, कि–२१–२४ हे कल्याणि! देख, हमने भृगुमुख्य च्यवन ऋषिकी कृपासे अति दुर्लभ अनेक प्रकारके पदार्थ देखे हैं, तपोबलसे अधिक और कौनसा बल है २५ जिस वस्तुका मनोरथ किया जाय, वह सब वस्तु तपसे मिल सकती है, अतः तप त्रिलोकीके राज्यसे भी श्रेष्ठ है २६ तपको

सुतप्तेन शक्यो मोक्षस्तपोबलात् । अहो प्रभावो ब्रह्मर्षेश्च्यवनस्य महात्मनः ॥ २७ ॥ इच्छयैष तपोवीर्यादन्यांल्लोकान् सृजेदपि । ब्राह्मणा एव जायेरन् पुण्यवाग्बुद्धिकर्मणः ॥ २८ ॥ उत्सहेदिह कृत्वैव कोऽन्यो वै च्यवनादृते । ब्राह्मण्यं दुर्लभं लोके राज्यं हि सुलभं नरैः ॥२९॥ ब्राह्मण्यस्य प्रभावाद्धि रथे युक्तौ स्वधुर्यवत् । इत्येवं चिंतयानः स विदितश्च्यवनस्य वै ॥ ३० ॥ संप्रेक्ष्योवाच नृपतिं क्षिप्रमागम्यतामिति इत्युक्तः सहभार्यस्तु सोभ्यगच्छन्महामुनिम् ॥ ३१ ॥ शिरसा वंदनीयं तमवदंत च पार्थिवः । तस्याशिषः प्रयुज्याथ स मुनिस्तं नराधिपम् । निषीदेत्यब्रवीद्धीमान्सांत्वयन् पुरुषर्षभः ॥ ३२ ॥ ततः प्रकृतिमापन्नो भार्गवो नृपते नृपम् । उवाच श्लक्ष्णया वाचा तर्पयन्निव भारत ॥३३॥ राजन्

भली भाँति करनेसे मोक्ष मिल सकता है, ब्रह्मर्षि महात्मा च्यवन के (तपके) प्रभावको तो देखो ॥ २७ ॥ यह ऋषि चाहें तो तपके बलसे दूसरे लोकोंको भी रच सकते हैं पवित्र वाणी बुद्धि और कर्म वाले ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ ऐसे कर्मको च्यवन ऋषिके अतिरिक्त और कौन करसकता है, इस जगत्में मनुष्योंको राज्य मिलना तो सुलभ है,परन्तु ब्राह्मणत्व मिलना दुर्लभ है ॥ २९ ॥ इन ऋषिने ब्राह्मणत्वके प्रभावसे ही हमको घोड़ेकी समान जोत लिया था, राजा इस प्रकार विचार रहा था, कि-उसको च्यवन ऋषि आते हुए दीखे ॥ ३० ॥ ऋषिने उनको देखकर कहा कि-शीघ्र आइये, इस प्रकार कहने पर राजा अपनी स्त्रीसहित उन मुनिके पास गया ॥ ३१ ॥ और उन वन्दनीय मुनिको उसने मस्तक झुका कर प्रणाम किया तब वह पुरुषर्षभ बुद्धिमान् राजाको आशीर्वाद दे धीरज देते हुए कहने लगे, कि-वैठिये ! ॥३२॥ तब हे भरतवंशी राजन् ! राजाके बैठने पर भृगुकुलोत्पन्न च्यवनने उस राजाको मधुर

सम्यग्जितानीह पञ्च पञ्च स्वयं त्वया। मनःपष्ठानींद्रियाणि कृच्छ्रान्मुक्तोऽसि तेन वै ॥ ३४ ॥ सम्यगाराधितः पुत्र त्वया भवदतां वर। न हि ते वृजिनं किंचित् सुसूक्ष्ममपि विद्यते ॥ ३५ ॥ अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि यथागतम्। प्रीतोऽस्मि तव राजेन्द्र वरश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६ ॥ कुशिक उवाच। अग्निमध्ये गतेनेव भगवन् सन्निधौ मया। वर्तितं भृगुशार्दूल यन्न दग्धोऽस्मि तद्बहु ॥३७॥ एष एव वरो मुख्यः प्राप्तो मे भृगुनन्दन। यत्प्रीतोऽसि मया ब्रह्मन् कुलं त्रातं च मेऽनघ ॥ ३८ ॥ एष मेऽनुग्रहो विप्र जीविते च प्रयोजनम्। एतद्राज्यफलं चैव तपसश्च फलं मम ॥ ३९ ॥ यदि त्वं प्रीतिमान्विप्र मयि वै भृगुनन्दन। अस्ति मे संशयः कश्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४० ॥

वाणीसे सन्तुष्ट करते हुए कहा, कि-॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तूने पञ्चज्ञानेन्द्रियोंको तथा पञ्चकर्मेन्द्रियोंको और छठे (ग्यारहवें) मनको भली प्रकार जीत लिया है, इससे तू दुःखमेंसे छूट गया है ३४ हे श्रेष्ठवक्ता पुत्र ! तूने मेरी भले प्रकार सेवा की है,इसमें मुझे तेरा छोटेसे छोटा अपराध भी प्रतीत नहीं हुआ ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! अब तू मुझे जानेकी आज्ञा दे, मैं जैसे आया था, तैसे ही चला जाऊँगा, हे राजेन्द्र ! मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ अतः तू वर माँग ले ३६ कुशिकने कहा, कि हे भृगुवंशसिंह ! मैं आपके पास अग्निके बीचमें रहनेकी समान रहा हूँ, तब भी मैं भस्म नहीं हुआ, यह बहुत बड़ी बात है ३७ हे भृगुनन्दन ब्रह्मन् ! मैंने यही बड़ा भारी वर पा लिया कि-जो आप मुझ पर प्रसन्न रहे और हे अनघ ! मेरा कुल रक्षित रहा ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण ! यही मेरा आप पर अनुग्रह हुआ है और यही मेरे जीवनका प्रयोजन है, यही मेरे तपका और राज्यका फल है ३९ हे भृगुनन्दन ! हे विप्र ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो मेरे मनमें एक सन्देह है, उसको दूर करिये ४० चौअनवाँ अध्याय समाप्त

च्यवन उवाच। वरश्च गृह्यतां मत्तो यश्च ते संशयो हृदि। तं प्रब्रूहि नरश्रेष्ठ सर्वं संपादयामि ते ॥ १ ॥ कुशिक उवाच। यदि प्रीतोऽसि भगवंस्ततो मे वद भार्गव। कारणं श्रोतुमिच्छामि मद्गृहे वासकारितम् ॥ २ ॥ शयनं चैकपार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम्। अकिंचिदुक्त्वा गमनं बहिश्च मुनिपुङ्गव ॥ ३ ॥ अन्तर्धानमकस्माच्च पुनरेव च दर्शनम्। पुनश्च शयनं विप्र दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४ ॥ तैलाभ्यक्तस्य गमनं भोजनं च गृहे मम। समुपानीय विविधं यद्दग्धं जातवेदसा ॥ ५ ॥ निर्याणं च रथेनाशु सहसा यत्कृतं त्वया। धनानां च विसर्गस्य वनस्यापि च दर्शनम् ॥ ६ ॥ प्रासादानां बहूनां च कांचनानां महामुने। मणिविद्रुमपादानां पर्यंकाणां च दर्शनम् ॥ ७ ॥ पुनश्चादर्शनं तस्य

च्यवनने कहा; कि हे नरश्रेष्ठ! तू मुझसे वर माँगले और तेरे हृदयमें जो सन्देह हो उसको मुझसे कह, मैं तेरा सब कार्य करूँगा १ हे भृगुवंशोत्पन्न भगवन! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हों। तो मैं यह सुनना चाहता हूँ, आप मेरे घरमें किस कारणसे रहे थे २ हे मुनिश्रेष्ठ! आप इक्कीस दिन तक एक करवटसे सोते रहे और विना कुछ कहे हुए बाहर चले गए ३ फिर अकस्मात् अन्तर्धान होगये थे और फिर आपने दर्शन दिया था और फिर इक्कीस दिन तक दूसरी करवटसे सोते रहे थे४ शरीर पर तेल मलवा कर आप चले गए थे और आपने मेरे घरके भाँति २ के भोजनोंको इकट्ठे करके उनको अग्नि लगाकर भस्म कर दिया था ५ फिर आप एक साथ रथमें बैठ कर नगरसे बाहरको चलने लगे, मार्गमें धनके दान दिये और वनके भी दर्शन कराये ६ और हे मुने! तहाँ आपने सुवर्णके बहुतसे राजमहल दिखाये, मणि और मूँगोंके पाये वाले पलँग दिखाये ७ और फिर उन सबको अन्तर्धान कर दिया इसका

श्रोतुमिच्छामि कारणम् । अतीव ह्यत्र मुह्यामि चिंतयानो भृगू-
द्वह ॥ ८ ॥ न चैवात्राधिगच्छामि सर्वस्यास्य विनिश्चयम् ।
एतदिच्छामि कात्स्र्न्येन सत्यं श्रोतुं तपोधन ॥९॥ च्यवन उवाच।
शृणु सर्वमशेषेण यदिदं येन हेतुना । न हि शक्यमनाख्यातुमेवं
पृष्टेन पार्थिव ॥ १० ॥ पितामहस्य वदतः पुरा देवसमागमे ।
श्रुतवानस्मि यद्राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ११ ॥ ब्रह्मक्षत्रविरो-
धेन भविता कुलसंकरः । पौत्रस्ते भविता राजंस्तेजोवीर्यसम-
न्वितः ॥ १२ ॥ ततस्ते कुलनाशार्थमहं त्वां समुपागतः । चिकी-
र्षन् कुशिकोच्छेदं संदिधक्षुः कुलं तव ॥ १३ ॥ ततोऽहमागम्य
पुरे त्वामवोचं महीपते । नियमं कंचिदारप्स्ये शुश्रूषा क्रियता-
मिति ॥ १४ ॥ न च ते दुष्कृतं किंचिदहमासादयं गृहे । तेन

कारण मैं जानना चाहता हूँ १ हे भृगुकुलोत्पन्न ऋषे ! इन सब
बातोंका विचार करते २ मैं चक्करमें पड़ जाता हूँ ८ इन सब
बातोंका मैं निर्णय नहीं कर सकता हे तपोधन मैं इन सब
बातोंको ठीक २ सुनना चाहता हूँ ९ च्यवनने कहा कि—हे राजन्!
यह सब बात जिस कारणसे (कीगई थी) उस सबको सुनिये
आपके इस प्रकार बूझने पर मैं इस बातको कहनेसे रुक नहीं
सकता १० हे राजन् ! पहिले देवसभामें ब्रह्माजी कथा कह रहे
थे, उनसे मैंने एक बात सुनी थी, वह मैं तुमसे कहता हूँ,
सुन ११ ब्राह्मण और क्षत्रियके कुलोंमें विरोध होनेसे कुलमें संक-
रता होजायगी उस समय तेज और वीर्यवाला मेरा एक पौत्र
(तेरे कुलकी कन्यासे) प्रकट होगा १२ अतः (यह सुनकर) मैं
कुशिकके वंशको भस्म कर उसका नाश करनेके लिये यहाँ
आया था, कुशिकके मस्तकको काटने और तेरे कुलको नाश
करनेके विचारसे मैं यहाँ आया था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तब मैंने
नगरमें आकर तुमसे कहा, कि—" यदि आप मेरी शुश्रूषा कर

जीवसि राजर्षे न भवेथास्त्वमन्यथा ॥ १५ ॥ एवं बुद्धिं समास्थाय दिवसानेकविंशतिम् । सुप्तोऽस्मि यदि मां कश्चिद्बोधयेदिति पार्थिव ॥ १६ ॥ यदा त्वया सभार्येण संसुप्तो न प्रबोधितः । अहं तदैव ते प्रीतो मनसा राजसत्तम ॥ १७ ॥ उत्थाय चास्मि निष्क्रान्तो यदि मां त्वं महीपते । पृच्छेः क्व यास्यसीत्येवं शपेयं त्वामिति प्रभो ॥१८॥ अन्तर्हितः पुनश्चास्मि पुनरेव च ते गृहे । योगमास्थाय संसुप्तो दिवसानेकविंशतिम् ॥१९ ॥क्षुधितौ मामसूयेथां श्रमाद्वेति नराधिप । एवं बुद्धिं समास्थाय कर्शितौ वां क्षुधा मया ॥२०॥ न च तेऽभूत्सुसूक्ष्मोऽपि मन्युर्मनसि पार्थिव । सभार्यस्य नरश्रेष्ठ तेन ते प्रीतिमानहम् ॥२१॥ भोजनं च समा

सके तो मैं एक व्रतका आरम्भ करना चाहता हूँ" ॥ १४ ॥ तूने यह स्वीकार कर लिया, तब हे राजन् ! मैने तेरे घरमें निवास करके भी तेरा थोड़ा सा भी दोष न देखा, अतः तू बच गया अन्यथा तू मारा जाता ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मुझे कोई न कोई जगावेगा ही यह विचार कर मैं इक्कीस दिन तक सोता रहा १६ परन्तु तेरी भार्याने अथवा तूने मुझे सोतेसे नहीं उठाया, हे राजसत्तम ! तबसे ही मैं तुझ पर मनमें प्रसन्न होगया था १७ हे महीपते ! जब मैं उठकर जारहा था, उस समय यदि तुम मुझसे बूझते, कि–आप कहाँ जारहे हैं, तो हे प्रभो ! मैं तुमको अवश्य ही शाप देदेता ॥ १८ ॥ मैं फिर अन्तर्धान होगया था तथा मैं फिर योगको धारण करके तेरे घरमें इक्कीस दिन सोता रहा १९ हे राजन् ! तुम क्षुधा अथवा श्रमके कारण मुझसे ईर्षा करोगे यह विचार कर मैंने तुमको क्षुधित रखकर दुःखित किया था २० तब भी हे राजन् ! तुम्हारे और तुम्हारी रानीके मनमें लेशमात्र भी क्रोधका उदय नहीं हुआ, तब हे राजन् ! मैं तुझ पर और तेरी रानी पर प्रसन्न होगया २१ मैंने जो भोजन मँगाकर

नाद्य यत्तदा दीपितं मया । क्रुद्धयेथा यदि मात्सर्यादिति तन्म-
र्षितं च मे ॥ २२ ॥ ततोऽहं रथमारुह्य त्वामवोचं नराधिप ।
सभार्यो मां वहस्वेति तच्च त्वं कृतवांस्तथा ॥ २३ ॥ अविशंको
नरपते प्रीतोऽहं चापि तेन ह । धनोत्सर्गेऽपि च कृते न त्वां क्रोधः
प्रधर्षयत् ॥२४॥ ततः प्रीतेन ते राजन् पुनरेतत्कृतं तव । सभा-
र्यस्य वनं भूयस्तद्विद्धि मनुजाधिप ॥ २५ ॥ प्रीत्यर्थं तव चैतन्मे
स्वर्गसंदर्शनं कृतम् । यत्ते वनेऽस्मिन्नृपते दृष्टं दिव्यं निदर्श-
नम् ॥२६॥ स्वर्गोद्देशस्त्वया राजन् सशरीरेण पार्थिव । मुहू-
र्तमनुभूतोऽसौ सभार्येण नृपोत्तम ॥ २७ ॥ निदर्शनार्थं तपसो
धर्मस्य च नराधिप । तत्र यासीत् स्पृहा राजंस्तच्चापि विदितं
मया॥२८॥ब्राह्मण्यं कांक्षसे हि त्वं तपश्च पृथिवीपते । अवमन्य

उसको भस्म कर दिया था, उसका यह कारण था, कि यदि तुम मत्सरतासे मुझ पर क्रोध करते तो मैं तुम्हारा नाश कर डालता, तुमने मेरे उस कार्यको भी सहन कर लिया । २२ । हे राजन् ! फिर मैंने रथ पर चढकर तुमसे और तुम्हारी रानी से कहा, कि-तुम दोनों रथको खेंचो, वह काम भी तुमने वैसे ही किया ॥ २३ ॥ हे नरपते ! तेरे इस कर्मसे मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ तेरे धनको लुटाने पर भी क्रोधने तेरा पराभव नहीं किया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसलिये मैं तुझ पर प्रसन्न होगया हूँ, तब मैंने तुझे और तेरी रानीको वनके दर्शन कराये २५ मैंने तुझे प्रेमपूर्वक (इस बहानेसे) स्वर्गके दर्शन कराये थे, हे राजन् ! इस वनमें जो पदार्थ तूने देखे वे दिव्य पदार्थ थे २६ हे श्रेष्ठ राजन् ! तूने और तेरी भार्याने इसी देहसे दो घडी तक स्वर्गसुख भोगा है २७ हे नराधिप ! तप और धर्मका निदर्शन जाननेके लिये तेरे मनमें जो इच्छा है उसको मैंने जान लिया है २८ हे पृथ्वीपते ! तू राजत्व और देवत्वका

नरेन्द्रत्वं देवेन्द्रत्वं च पार्थिव ॥२६॥ एवमेतद्यथात्थ त्वं ब्राह्मण्यं तात दुर्लभम् । ब्राह्मण्ये सति चर्षित्वमृषित्वे च तपस्विता ॥३०॥ भविष्यत्येष ते कामः कुशिकात् कौशिको द्विजः । तृतीयं पुरुषं तुभ्यं ब्राह्मणत्वं गमिष्यति ॥ ३१ ॥ वंशस्ते पार्थिवश्रेष्ठ भृगूणा-मेव तेजसा । पौत्रस्ते भविता विप्र तपस्वी पावकद्युतिः ॥ ३२ ॥ यः सदैव मनुष्याणां भयमुत्पादयिष्यति । त्रयाणामेव लोकानां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३३॥ वरं गृहाण राजर्षे यत्ते मनसि वर्तते । तीर्थयात्रां गमिष्यामि पुरा कालोऽतिवर्तते॥३४॥कुशिक उवाच । एष एव वरो मेऽद्य यस्त्वं प्रीतो महामुने । भवत्वेतद्यथात्थ त्वं भवेत् पौत्रो ममानघ ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण्यं मे कुलस्यास्तु भगवन्नेष

भी तिरस्कार करके ब्राह्मणत्व और तपकी इच्छा करता है २६ हे तात ! तू जिस प्रकार समझता है,ब्राह्मणत्व इसीप्रकार दुर्लभ है, ब्राह्मणोंमें ऋषि होना दुर्लभ है और ऋषि होने पर भी तपस्वी होना दुर्लभ है ३० तेरी यह कामना पूर्ण होगी,कुशिकसे कौशिक नामक एक द्विज उत्पन्न होगा और तुझसे तीसरा पुरुष ब्राह्मणत्वको प्राप्त होगा ॥३१॥ हे पार्थिवश्रेष्ठ ! भृगुवंशियोंके तेजसे तेरा वंश ब्राह्मणत्वको पावेगा, तेरा पोता तपस्वी तथा अग्निकी समान तेजस्वी होगा ॥ ३२ ॥ और वह देवता मनुष्य तथा तीनों लोकोंको भयभीत करनेवाला होगा, यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूँ ॥ ३३ ॥ हे राजर्षे ! तेरे मनमें जो कामना हो वह वर माँगले, अब मैं तीर्थयात्रा करनेके लिये जाऊँगा क्योंकि—समय बहुत बीत गया है ॥ ३४ ॥ कुशिकने कहा, कि-हे महामुने ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होगए, यह ही मुझे बड़ा भारी वर मिलगया आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही हो, हे महा-मुने ! मेरा पौत्र ऐसा ही हो ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! मेरे कुलको ब्राह्मणत्व मिले यह वर मुझे दीजिये,हे भगवन् ! इस बातको मैं

मे वरः। पुनश्चाख्यातुमिच्छामि भगवान् विस्तरेण वै ॥ ३६ ॥ कथमेष्यति विप्रत्वं कुलं मे भृगुनन्दन। कश्चासौ भविता बन्धुर्मम कश्चापि संमतः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५

च्यवन उवाच। अवश्यं कथनीयं मे तवैतन्नरपुङ्गव। यदर्थं त्वाहमुच्छेत्तुं संप्राप्तो मनुजाधिप ॥१॥ भृगूणां क्षत्रिया याज्या नित्यमेतज्जनाधिप। ते च भेदं गमिष्यन्ति दैवयुक्तेन हेतुना ॥२॥ क्षत्रियाश्च भृगून् सर्वान् वधिष्यन्ति नराधिप। आगर्भादनुकृन्तन्तो दैवदण्डनिपीडिताः ॥ ३ ॥ तत उत्पस्यतेऽस्माकं कुले गोत्रविवर्धनः। ऊर्वो नाम महातेजा ज्वलनार्कसमद्युतिः ॥ ४ ॥ स त्रैलोक्यविनाशाय कोपाग्निं जनयिष्यति। महीं सपर्वतवनां

फिर विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ, कि—॥ ३६ ॥ हे भृगुनन्दन! मेरे कुलमें ब्राह्मणत्व किसप्रकार आवेगा, मेरा सबंधी कौन होगा, और मेरा माननीय कौन होगा? ॥३७॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ छ छ

च्यवनने कहा, कि—हे नरपुङ्गव! मुझे यह बात तुझसे अवश्य कहनी चाहिये, कि—जिस लिये मैं तेरा नाश करनेके लिये यहाँ आया था ॥ १ ॥ हे जनाधिप! भृगुकुलके ब्राह्मण क्षत्रियोंका सदा यज्ञ कराते रहते हैं, किन्तु प्रारब्धके कारण उनमें भेद पड़ जायगा, तब हे राजन्! क्षत्रिय दैवके दण्डसे पीडित होने पर भृगुवंशियोंके गर्भ तकका संहार करनेलगेंगे ॥ ३ ॥ उस समय हमारे कुलमें गोत्रको बढाने वाला ऊर्व नामक एक महातेजस्वी पुरुष उत्पन्न होगा, उसकी कान्ति सूर्य और अग्निकी समान होगी ॥ ४ ॥ वह तीनों लोकोंका नाश करनेके लिये क्रोधाग्नि को उत्पन्न करेगा, वह क्रोधाग्नि पर्वत और वनसहित पृथ्वी

यः करिष्यति भस्मसात् ॥ ५ ॥ कश्चित् कालंतु वन्हिं च स एव शमयिष्यति । समुद्रे वडवा वक्त्रे प्रक्षिप्य मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥ पुत्रं तस्य महाराज ऋचीकं भृगुनन्दनम् । साक्षात् कृत्स्नो धनुर्वेदः समुपस्थास्यतेऽनघ ॥७॥ क्षत्रियाणामभावाय दैवयुक्तेन हेतुना । स तु तं प्रतिगृह्यैव पुत्रे संक्रमयिष्यति ॥ ८ ॥ जमदग्नौ महाभागे तपसा भावितात्मनि । स चापि भृगुशार्दूलस्तं वेदं धारयिष्यति९ कुलात्त्व तव धर्मात्मन् कन्यां सोऽधिगमिष्यति । उद्भावनार्थं भवतो वंशस्य भरतर्षभ ॥ १० ॥ गाधेर्दुहितरं प्राप्य पौत्रीं तव महातपाः । ब्राह्मणं क्षत्रधर्माणं पुत्रमुत्पादयिष्यति ॥११॥ क्षत्रियं विप्रकर्माणं बृहस्पतिमिवौजसा । विश्वामित्रं तव कुले गाधेः पुत्रं सुधार्मिकम्॥१२॥ तपसा महता युक्तं प्रदास्यति महाद्युते । स्त्रियौ

को भस्म करडालेगी ॥५॥ तदनन्तर वह मुनिसत्तम कुछ समय के पीछे समुद्रमें स्थित वडवाके मुखमें अग्निको डालकर उसको शान्त करदेगा॥६॥ हे निष्पाप महाराज ! प्रारब्धवश उसके पुत्र भृगुनन्दन ऋचीकके पास क्षत्रियोंको नष्ट करनेके लिये साक्षात् पूर्ण धनुर्वेद उनकी सेवामें उपस्थित होगा, और वह उसको ग्रहण करके अपने पुत्रको पढावेगा ७।८तपसे विशुद्ध अन्तःकरण वाला महाभाग जमदग्नि उस वेदको धारण करेगा।और हे धर्मात्मन् ! वह भृगुशार्दूल तेरे कुलका कल्याण करनेके लिये तेरे वंशमेंसे कन्याको ग्रहण करेगा ॥ ९ ॥ १० ॥ वह महातपस्वी गाधिकी पुत्री और तुम्हारी पौत्रीको ग्रहण करके क्षत्रियके धर्म का आचरण करनेवाले ब्राह्मण पुत्रको उत्पन्न करेगा ॥ ११ ॥ तथा तेरे कुलमें उत्पन्न हुए राजा गाधिके विश्वामित्र नामका एक पुत्र उत्पन्न होगा, वह पुत्र क्षत्रिय होनेपर भी ब्राह्मणोंके कर्म करेगा,बृहस्पतिकी समान तेजस्वी होगा,धर्मनिष्ठ होगा,१२ और हे महाकान्तिमान् राजन् ! वह महातपस्वी होगा,इसप्रकार

तु कारणं तत्र परिवर्ते भविष्यतः ॥ १३ ॥ पितामहनियोगाद्वै नान्यथैतद्भविष्यति । तृतीये पुरुषे तुभ्यं ब्राह्मणत्वमुपैष्यति । भविता त्वं च सम्बन्धी भृगूणां भावितात्मनाम् ॥ भीष्म उवाच। कुशिकस्तु मुनेर्वाक्यं च्यवनस्य महात्मनः । श्रुत्वा हृष्टो भवद्राजा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १५ ॥ एवमस्त्विति धर्मात्मा तदा भरत-सत्तम । च्यवनस्तु महातेजाः पुनरेव नराधिपम् ॥१६॥ वरार्थं चोदयामास तमुवाच स पार्थिवः । बाढमेवं करिष्यामि कामं त्वत्तो महामुने ॥ १७ ॥ ब्रह्मभूतं कुलं मेऽस्तु धर्मे चास्य मनो भवेत् ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्तथेत्येवं प्रत्युक्त्वा च्यवनो मुनिः । अभ्यनुज्ञाय नृपतिं तीर्थयात्रां ययौ तदा ॥ १९ ॥ एतत्ते कथितं सर्वमशेषेण मया नृप । भृगूणां कुशिकानां च अभिसम्बन्धकार-

---

(वर्ण धर्ममें) फेरफार होनेमें स्त्रियें कारण होंगी (अर्थात् स्त्रियों के परस्पर चरुको बदल लेने पर यह फेरफार होगा) ॥ १३ ॥ यह सब ब्रह्माजीकी आज्ञासे होगा और किसी प्रकारसे नहीं होगा तेरी तीसरी पीढ़ी ब्राह्मणत्वको पावेगी, और तू पवित्र मनवाले भृगुवंशियोंका सम्बन्धी होगा ॥१४॥ भीष्मजीने कहा, कि-राजा कुशिक च्यवनके वचनको सुनकर परमप्रसन्न हुआ और नीचे लिखे अनुसार कहने लगा, कि-"एवमस्तु" तब हे भरतसत्तम ! धर्मात्मा महातेजस्वी च्यवनने उस राजासे कहा, कि-वर माँगिये, तब राजाने कहा, कि-बहुत अच्छा मैं आपके कहनेके अनुसार करूँगा, मैं आपसे वर माँगता हूँ कि १६-१७ मेरा कुल ब्रह्मरूप होजाय और मेरे कुलका मन धर्ममें आसक्त रहे ॥ १८ ॥ राजाके इसप्रकार कहने पर च्यवन मुनि "तथास्तु' कहकर और राजाकी अनुमति लेकर तीर्थयात्रा करनेके लिये चलेगए ॥ १९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! भृगुओंके और कुशिकोंके सम्बन्ध होनेका सब कारण मैंने तुमसे कहा २०

णम् ॥ २० ॥ यथोक्तमृषिणा चापि तदा तद्भवन्नृप । जन्म-
रामस्य च मुनेर्विश्वामित्रस्य चैव हि ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे च्यवनकुशिकसंवादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिर उवाच । मुह्यामीव निशम्याद्य चिंतयानः पुनः पुनः।
हीनां पार्थिवसंघातैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥ प्राप्य
राज्यानि शतशो महीं जित्वाऽथ भारत । कोटिशः पुरुषान् हत्वा
परितप्ये पितामह ॥ २ ॥ का नु तासां वरस्त्रीणां समवस्था
भविष्यति । या हीनाः पतिभिः पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा ॥ ३ ॥
वयं हि तान् कुरून् हत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि वा । अवाक्शीर्षाः
पतिष्यामो नरके नात्र संशयः ॥ ४ ॥ शरीरं योक्तुमिच्छामि
तपसोग्रेण भारत । उपदिष्टमिहेच्छामि तत्त्वतोऽहं विशांपते ॥ ५॥
वैशम्पायन उवाच।युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा भीष्मो महामनाः ।

हे राजन् ! जिसप्रकार ऋषिने कहा था, उसी प्रकार परशुराम
जीका और मुनि विश्वामित्रजीका जन्म हुआ था ॥ २१ ॥
छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-आज मैं इस पृथ्वीको शोभासम्पन्न
राजाओंके मण्डलसे शून्य हुई देखकर विचार करता हुआ
मूढसा होजाता हूँ ॥ १ ॥ हे पितामह ! सैंकडों देशोंका राज्य
पाकर और इस पृथ्वीको जीतकर भी करोड़ों पुरुषोंको मारनेके
कारण मेरे मनमें संताप होता है ॥२। जो श्रेष्ठ स्त्रियें पति, पुत्र
मामा और भाइयोंसे अलग होगई हैं, उनकी अब क्या अवस्था
होगी हम कौरवोंके, संबंधियोंके और स्नेहियोंके मारनेके कारण
औंधे मस्तक होकर नरकमें ही पड़ेंगे ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी
राजन् !मैं भयंकर तप करके अपने शरीरको संतप्त करना चाहता
हूँ अतः हे राजन् ! मैं आपसे यथार्थ उपदेश सुनना चाहता हूँ ५

परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या युधिष्ठिरमभाषत ॥ ६ ॥ रहस्यमद्भुतं चैव शृणु वक्ष्यामि यत्त्वयि । या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे विशाम्पते ॥ ७ ॥ तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः । आयुः प्रकर्षो भोगाश्च लभ्यंते तपसा विभो ॥८॥ ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं संपत्तथैव च । सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ ॥ ९ ॥ धनं प्राप्नोति तपसा मौनेनाज्ञां प्रयच्छति । उपभोगास्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १० ॥ अहिंसायाः फलं रूपं दीक्षाया जन्म वै कुले । फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत् ॥ ११ ॥ पयोभक्षो दिवं याति दानेन द्रविणाधिकः । गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्राद्धेन संततिः ॥ १२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि–महामनस्वी भीष्मजीने युधिष्ठिरकी बात सुन कर सूक्ष्मबुद्धिसे विचार कर युधिष्ठिरसे कहा, कि–६ हे विशांपते ! मैं तुमसे एक अद्भुत रहस्य (साधना) कहता हूँ उसके साधनसे मनुष्य मरने पर उत्तम फल पाता है ॥ ७ ॥ हे विभो।तप करनेसे स्वर्ग मिलता है,तप करनेसे यश मिलता है और हे राजन्।तप करनेसे दीर्घायुष्य और बड़े २ भोग भोगनेको मिलते हैं ॥८॥ और हे भरतवंशी राजन् ! ज्ञान,विज्ञान,आरोग्य रूप, सम्पत्ति और सौभाग्य भी तपसे मिल सकता है ॥ ९ ॥ तपसे धन मिलता है, मौनव्रत धारण करनेसे आज्ञासिद्धि होती है, दानसे उपभोग मिलते हैं, ब्रह्मचर्यसे आयुकी वृद्धि होती है १० अहिंसासे रूप मिलता है, व्रतकी दीक्षा लेनेसे उत्तम कुलमें जन्म होता है, फल और मूलका भोजन करने वालोंको राज्य मिलता है और पत्तोंका आहार करने वालोंको स्वर्ग मिलता है ॥११॥ दूध पीने वाले स्वर्गमें जाते हैं, दान देने वाले अधिक धनी होते हैं, गुरुकी सेवा करनेसे विद्यावान् होता है और नित्य श्राद्ध करनेसे सन्ततिकी वृद्धि होती है ॥१२॥ शाकका आहार करने

गवाढ्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशिनाम् । स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ १३ ॥ नित्यस्नायी भवेद्दक्षः संध्ये तु द्वे जपन्द्विजः । मरुं साधयतो राजन्नाकपृष्ठमनाशके १४ स्थंडिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च । चीरवल्कलवासोभिर्वासांस्याभरणानि च ॥ १५ ॥ शय्यासनानि यानानि योगयुक्ते तपोधने । अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६ ॥ रसानां प्रतिसंहारात्सौभाग्यमिह विंदति । आमिषप्रतिसंहारात् प्रजा ह्यायुष्मती भवेत् ॥१७॥ उदवासं वसेद्यस्तु स नराधिपतिर्भवेत् । सत्यवादी नरश्रेष्ठ दैवतैः सह मोदते ॥ १८ ॥ कीर्तिर्भवति दानेन तथारोग्यमहिंसया । द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं चापि पुष्कलम् ॥ १९ ॥ पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती ।

वाले गौएँ पाते हैं, तृणका आहार करने वाले स्वर्गमें जाते हैं, त्रिकाल स्नान करने वाले स्त्रियें पाते हैं और वायु पान करनेवाले यज्ञके फलको पाते हैं१३ सदा प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके सन्ध्यावन्दन करनेवाले पुरुष दक्ष(प्रजापति)होकर अवतार लेते हैं और आहार तथा जलको त्यागनेवाले स्वर्गमें जाते हैं१४ स्थण्डिल (खुले मैदानमें) सोनेवालोंको घर और शय्याएँ मिलती हैं चीथड़े और वल्कल वस्त्रोंको पहिरनेवाले वस्त्र तथा आभूषण पाते हैं ॥ १५ ॥ तपोधन योगीको शय्या और वाहन मिलते हैं, अग्निमें प्रवेश करनेसे ब्रह्मलोकमें पूजा होती है १६ छः रसोंको त्यागनेसे इस लोकमें सौभाग्य मिलता है, मांसका त्याग करनेसे प्रजा आयुष्मती होती है ॥१७॥ जो पुरुष जलमें बैठकर जप करता है वह पुरुष राजा होता है, हे राजन् ! सत्यवादी पुरुष देवताओंके साथ आनन्दपूर्वक निवास करता है१८ दान देनेसे कीर्ति फैलती है, अहिंसासे आरोग्य मिलता है, ब्राह्मणों की सेवा करनेसे राज्य मिलता है तथा पूर्ण ब्राह्मणत्व मिलता

अन्नस्य तु प्रदानेन तृप्यंते कामभोगतः ॥ २० ॥ सांत्वदः सर्व-
भूतानां सर्वशोकैर्विमुच्यते। देवशुश्रूषया राज्यं दिव्यं रूपं निय-
च्छति ॥ २१ ॥ दीपालोकप्रदानेन चक्षुष्मान् भवते नरः। प्रेक्ष-
णीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥ २२ ॥ गंधमाल्यप्रदानेन
कीर्तिर्भवति पुष्कला। केशश्मश्रुधारयतामग्र्या भवति संततिः २३
उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च पार्थिव। कृत्वा द्वादशवर्षाणि
वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ २४ ॥ दासीदासमलंकारान् क्षेत्राणि च
गृहाणि च। ब्रह्मदेयां सुतां दत्वा प्राप्नोति मनुजर्षभ ॥ २५ ॥
क्रतुभिश्चोपवासैश्च त्रिदिवं याति भारत। लभते च शिवं ज्ञानं

है ॥ १९ ॥ मलका दान देनेसे शाश्वती कीर्ति मिलती है अन्नका दान करनेसे मनकी सब कामनाएँ पूर्ण होजाती हैं और संपूर्ण वैभव उपभोग करनेको मिलते हैं ॥ २० ॥ सब प्राणियोंको धीरज देनेवाला सब प्रकारके शोकसे छूट जाता है तथा देवताओंकी सेवा करनेसे राज्य और दिव्यरूप मिलता है ॥ २१ ॥ देवमन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेसे मनुष्यकी दृष्टि बहुत समय तक स्थिर रहती है, देखने योग्य पदार्थोंका दान देनेसे पुरुष स्मृति और मेधाको पाता है ॥ २२ ॥ चन्दन तथा पुष्पोंका दान देनेसे पुरुषकी कीर्त्ति अधिक फैलती है, मस्तक परके केश और डाढ़ी बढ़ानेवाले पुरुषोंके उत्तम प्रकारकी सन्तान होती है॥२३॥उपवास(सब प्रकारके वैभवोंका त्याग)दीक्षा(जपादिक नियमोंका स्वीकार) तथा दिनमें तीन समय स्नान करना हे राजन् ! जो पुरुष इन तीनों नियमोंका पालन करता है उस पुरुषको वीर पुरुषोंको मिलनेवाली गतिसे भी श्रेष्ठ गति मिलती है २४हे राजन् ! जो अपनी पुत्रीका ब्राह्मविधिसे विवाह करता है,उस पुरुषको दास दासी आभूषण क्षेत्र और घर मिलते हैं२५ हे भरतवंशी राजन् ! पुरुष यज्ञ करनेसे तथा उपवास करनेसे

फलपुष्पप्रदो नरः ॥ २६ ॥ सुवर्णशृंगैस्तु विराजितानां गवां सहस्रस्य नरः प्रदानात् । प्राप्नोति पुण्यं दिवि देवलोकमित्येवमाहुर्दिवि देवसंघाः ॥२७॥ प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां कांस्योपदोहां कनकाग्रशृंगीम् । तैस्तैर्गुणैः कामदुहास्य भूत्वा नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ॥२८॥ यावंति रोमाणि भवंति धेन्वास्तावत् कालं प्राप्य स गोप्रदानात् । पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्वमासप्तमं तारयते परत्र ॥२९॥ सदक्षिणां कांचनचारुशृंगीं कांस्योपदोहां द्रविणोत्तरीयाम् । धेनुं तिलानां ददतो द्विजाय लोका वसूनां सुलभा भवंति ॥३०॥ स्वकर्मभिर्मानवं संनिरुद्धं तीव्रांधकारे नरके पतंतम् । महार्णवे नौरिव वायुयुक्ता दानं गवां तारयते परत्र ॥ ३१ ॥ यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्यां भूमिप्रदानं च

स्वर्गमें जाता है, और फल तथा पुष्पोंका दान देनेसे मोक्षदायक ज्ञान मिलता है ॥ २६ ॥ जो पुरुष सुवर्णसे मढ़े हुए सींगोंवाली एक सहस्र गौओंका दान देता है,उसको पवित्र स्वर्गलोक मिलता हैं, यह बात स्वर्गवासी देवता कहते हैं ॥२७॥ जो पुरुष सुवर्णसे मढ़े हुए सींगोंवाली कपिला गौको बछड़ेके साथ तथा दूध दुहनेके पात्रके साथ दान देता है वह गौ उस पुरुषके पास कामधेनु होकर आजाती है जो पुरुष गौओंका दान देता है वह मनुष्य गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं उतने वर्ष तक स्वर्गमें रहता है और वह गौ परलोकमें उसके सात पीढ़ियों तकके पुत्र पौत्रोंको तारदेती है २९जो पुरुष सुवर्णसे मढ़े हुए होनेके कारण सुन्दर सींगोंवाली गौको जरीकी झूल उढाकर काँसीके दुहनेके पात्र और दक्षिणा के साथ उसका दान करता है उस पुरुषको वसुओंके लोक सुलभ होजाते हैं ॥ ३० ॥ जैसे महासागरमें वायुसे धकेली हुई नाव मनुष्यको पार पहुँचा देती है इसीप्रकार अपने कर्मसे भली प्रकार बँधे हुए और गाढ अन्धकार भरे नरकमें गिरनेको तयार

करोति विप्रे । ददाति चान्नं विधिवच्च यश्च स लोकमाप्नोति पुरंदरस्य ॥ ३२ ॥ नैवेशिकं सर्वगुणोपपन्नं ददाति वै यस्तु नरो द्विजाय । स्वाध्यायचारित्र्यगुणान्विताय तस्यापि लोकाः कुरुषूत्तरेषु ॥ ३३ ॥ धुर्यप्रदानेन गवां तथा वै लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम् । स्वर्गाय चाहुस्तु हिरण्यदानं ततो विशिष्टं कनकप्रदानम् ॥ ३४ ॥ छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं यानं तथोपानहसंप्रदाने।वस्त्रप्रदानेन फलं स्वरूपं गंधप्रदानात् सुरभिर्नरःस्यात् ३५ पुष्पोपगं वाथ फलोपगं वा यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय । सश्रीकमृद्धं बहुरत्नपूर्णं,लभत्ययत्नोपगतं गृहं वै ॥ ३६ ॥ भक्ष्यान्नपानीयरसप्रदाता सर्वान् समाप्नोति रसान् प्रकामम् । प्रतिश्रयाच्छा-

---

हुए पुरुषको गौका दान परलोकमें तार देता है॥३१॥ जो पुरुष अपनी कन्याका ब्राह्मविधिसे विवाह करता है और जो पुरुष विधिपूर्वक भूमि तथा अन्नका दान देता है उसको मरणके पीछे इन्द्रलोक मिलता है३२जो पुरुष सब प्रकारके गुणोंसे युक्त घरको वेदाभ्यास करनेवाले तथा उत्तम चरित्रवाले ब्राह्मणको दान करके देता है वह पुरुष उत्तर कुरुदेशमें उत्पन्न होता है मनुष्य बैलका दान देनेसे और गौओंका दान देनेसे वसुओंके लोकोंमें जाता है, सुवर्णके दानसे स्वर्ग मिलता है, और कन्याका दान इससे भी श्रेष्ठ मानाजाता है ॥३४॥ छत्रीका दान देनेसे उत्तम घर मिलता हैं जूतेका दान देनेसे अच्छी सवारियें मिलती हैं वस्त्रका दान देनेसे सुन्दर रूप मिलता है और चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका दान देनेसे मनुष्य सुगन्धित होजाता है ३५ जो पुरुष ब्राह्मणको पुष्पोंसे लदे हुए अथवा फलोंसे लदेहुए वृक्षोंका दान देता है, वह पुरुष प्रयत्न किये विना ही शोभायमान धनसे और बहुत रत्नोंसे भरेहुए घरको पाता है३६ भक्ष्य अन्न,जल घी आदि रसोंका दान देनेवाला पुरुष भली प्रकार

दनसंमदाता प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र ॥ ३७ ॥ स्रग्धूप-
गंधाननुलेपनानि स्नानानि माल्यानि च मानवो यः । दद्याद्
द्विजेभ्यः स भवेदरोगस्तथाभिरूपश्च नरेंद्र लोके ॥३८॥ बीजैर-
शून्यं शयनैरुपेतं दद्याद् गृहं यः पुरुषो द्विजाय। पुण्याभिरामं
बहुरत्नपूर्णं लभत्यधिष्ठानवरं स राजन् ॥ ३९ ॥ सुगंधचित्रास्त-
रणोपधानं दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय। रूपान्वितां पक्षवतीं
मनोज्ञां भार्यामयत्नोपगतां लभेत् सः ॥ ४० ॥ पितामहस्यान-
वरो वीरशायी भवेन्नरः । नाधिकं विद्यते यस्मादित्याहुः पर-
मर्षयः ॥४१॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतात्मा
कुरुनन्दनः । नाश्रमे रोचयद्वासं वीरमार्गाभिकांक्षया ॥ ४२ ॥

सबप्रकारके रसोंको पाता है और जो रहनेके लिये घर और ओढने के लिये वस्त्र देता है वह पुरुष निःसंदेह इन पदार्थोंको पाता है २७ जो पुरुष पुष्पोंकी माला धूप चन्दन शरीर पर लगानेके लिये उबटन स्नानोदक और पुष्प ब्राह्मणोंको देता है वह पुरुष नीरोगी रहता है तथा हे राजन् ! जगत्में सुन्दररूप वाला होता है ३८ जो मनुष्य अन्नसे भरे हुए घरको और पलँगोंको ब्राह्मणोंको दानमें देता है हे राजन् ! उस मनुष्यको पवित्रतासे मनोहर बहुत से रत्नोंसे भरा हुआ उत्तम स्थान मिलता है ३९ जो मनुष्य सुगन्धित और चित्र विचित्र तकिये और पलँगपोश वाले पलँगका ब्राह्मणको दान देता है, वह पुरुष रूपवती उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई और मनको अच्छी लगने वाली स्त्रीको विना प्रयत्नके ही पाता है ४० जो पुरुष वीरशय्यामें सोता है वह पुरुष ब्रह्माके समान होजाता है, महर्षि कहते हैं कि-उससे अधिक और कोई श्रेष्ठ नहीं है ४१ वैशम्पायनने कहा, कि-भीष्मजीकी बात सुन कर युधिष्ठिर अपने मनमें प्रसन्न हुए और उन्होंने वीर पुरुषोंका मार्ग पानेकी इच्छासे आश्रममें रहना स्वीकृत नहीं किया ॥४२॥

ततो युधिष्ठिरः प्राह पांडवान् पुरुषर्षभ । पितामहस्य यद्वाक्यं तद्वो रोचत्विति प्रभुः ॥ ४३ ॥ ततस्तु पाण्डवाः सर्वे द्रौपदी च यशस्विनी । युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं बाढ़मित्यभ्यपूजयन् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

भीष्म उवाच । आरामाणां तडागानां यत्फलं कुरुपुङ्गव । तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽद्य भरतर्षभ १ भीष्म उवाच । सुप्रदर्शा बलवती चित्रा धातुविभूषिता । उपेता सर्वभूतैश्च श्रेष्ठा भूमिरिहोच्यते २ तस्याः क्षेत्रविशेषाश्च तडागानां च बंधनम् । औदकानि च सर्वाणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ३ तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः । त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयस्तडागवान् ४ अथवा मित्र-

---

हे महापुरुष ! तदनन्तर समर्थ युधिष्ठिरने पाण्डवोंसे कहा, कि पितामहके वाक्यको तुम पसन्द करो ४३ तदनन्तर सब पाण्डवोंने और यशस्विनी द्रौपदीने युधिष्ठिरके वाक्यका 'ठीक है' कहकर अनुमोदन किया ॥ ४४ ॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि हे पुरुपुंगव ! बगीचे और तालाब बनवानेका जो पुण्य हो वह मैं आपसे सुनना चाहता हूँ १ भीष्मजीने कहा, कि-इस जगत्में जो भूमि सुन्दर दृश्यवाली हो जिसमें बहुतसा अन्न उत्पन्न होता हो,जो विचित्र प्रकारकी हो, अनेक प्रकारकी धातुओंसे शोभायमान हो और जिस पर सब जातिके प्राणी निवास करते हों वह भूमि उत्तम मानी जाती है २ उसमें क्षेत्र लगानेसे और तालाब बनवानेसे और भी सब प्रकारके जलाशय बनवानेसे जो पुण्य मिलता है उसको मैं क्रमशः कहता हूँ ३ तालाब बनवानेसे जो लाभ होते हैं उनको मैं कहता हूँ, तालाब बनवानेवाला पुरुष पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग इन तीनों लोकोंमें पूजनीय माना जाता है ४ तालाब मित्रके घरकी समान उपकार

सदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम्। कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम्५धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः। तडागसुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम्६ चतुर्विधानां भूतानां तडागमुपलक्षयेत्। तडागानि च सर्वाणि दिशंति श्रियमुत्तमाम् ७ देवा मनुष्यगंधर्वाः पितरोरगराक्षसाः। स्थावराणि च भूतानि संश्रयंति जलाशयम्८ तस्मात्तांस्ते प्रवक्ष्यामि तड़ागे ये गुणाः स्मृताः। या च तत्र फलावाप्तिर्ऋषिभिः समुदाहृता ९ वर्षाकाले तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति। अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः १० शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति। गोसहस्रस्य स प्रेत्य लभते फलमुत्तमम्११ हेमंतकाले सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति। स वै बहुसु-

करनेवाला और सूर्यको प्रसन्न करनेवाला है और देवताओंको पुष्ट करनेवाला है तथा बनानेवालेकी कीर्त्तिको फैलानेवाला है इसप्रकार तालाव खुदवाना उत्तम माना जाता है ॥ ५ ॥ विद्वान् कहते हैं, कि-तालाव खुदवानेसे धर्म अर्थ और कामका फल मिलता है, जिस स्थानमें क्षेत्र हों और जहाँ महापुरुषोंका निवास हो तहाँ तालाव खुदवाना उचित है ६ तथा जिस देशमें तालाव खुदवाया जाता है वह तालाव उस प्रदेशमें रहने वाले जरायुज,स्वेदज,अण्डज और उद्भिज इन चार प्रकारके प्राणियोंका आश्रयस्थान होजाता है,सब प्रकारके जलाशय बावड़ी तालावको खुदवानेवाले उत्तम प्रकारकी लक्ष्मी पाते हैं ७ देवता,मनुष्य,गन्धर्व, पितर,सर्प,राक्षस और स्थावर प्राणी जलाशयका आश्रय लेते हैं८ तालाव बनवानेके जो गुण कहे हैं और उससे ऋषियोंने जिस फलकी प्राप्ति कही है वह मैं तुझसे कहता हूँ उसको तू सुन ९ वर्षाकालमें जिसके तालावमें जल रहता है,उस मनुष्यको अग्निहोत्रका फल मिलता है,यह विद्वान् कहते हैं १० जिसके तालाव में शरद् ऋतुमें जल रहता है उसको मरनेके पीछे एक हजार

वर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् १२ यस्य वै शैशिरे काले तडागे सलिलं भवेत्। तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः१३ तडागं सुकृतं यस्य वसंते तु महाश्रयम्। अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते१४ निदाघकाले पानीयं यडागे तस्य तिष्ठति। वाजिमेधफलं तस्य फलं वै मुनयो विदुः १५ सकुलं तारयेत् सर्वं यस्य खाते जलाशये। गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा१६ तडागे यस्य गावस्तु पिबंति तृषिता जलम्। मृगपक्षिमनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् १७ यत्पिबंति जलं तत्र स्नायंते विश्रमंति च। तडागे यस्य तत्सर्वं प्रेत्यानंत्याय कल्पते१८दुर्लभं सलिलं तात विशेषेण परत्र वै। पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती१९

गौओंके दानका उत्तम फल मिलता है ११ जिसके तालावमें हेमन्त कालमें जल रहता है उस मनुष्यको जिसमें बहुतसे सुवर्णका दान दिया जाता है ऐसे यज्ञका फल मिलता है१२ जिसके तालावमें शिशिरऋतुमें जल रहता है,उस मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है,ऐसा विद्वान् कहते हैं १३ जिसके तालावमें वसन्त ऋतु तक जल रहता है, उसको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है १४ जिसके तालावमें ग्रीष्म ऋतुमें भी जल रहता है,उसको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, इस बातको मुनि जानते हैं १५ जिसके खुदवाये हुए तालावमें गौएँ तथा सत्पुरुष सदा जल पीते हैं वह अपने सारे कुलको तार देता है १६ जिसके तालावमें पिलासी गौएँ जल पीती हैं और पिलासे मृग पक्षी और मनुष्य जल पीते हैं वह पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल पाता है १७ जिसके तालावमें प्राणी जल पीते हैं, स्नान करते हैं तथा उसके तट पर विश्राम करते हैं वे सब तालाव खुदवाने वालेको मरणके पीछे अनन्त सुख देते हैं १८ हे तात ! जल दुर्लभ पदार्थ है और परलोकमें तो विशेष दुर्लभ है, जलका दान देनेसे सदा रहनेवाली प्रीति

तिलान् ददत पानीयं दीपान् ददत जाग्रत । ज्ञातिभिः सह मोदध्वमेतत् प्रेत्य सुदुर्लभम् २० सर्वदानैर्गुरुतरं सर्वदानैर्विशिष्यते । पानीयं नरशार्दूल तस्माद्दातव्यमेव हि २१ एवमेतत्तडागस्य कीर्तितं फलमुत्तमम्। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वृक्षाणामवरोपणम् २२ स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः । वृक्षगुल्मलतावल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ २३ ॥ एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे । कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम् ॥ २४ ॥ लभते नाम लोके च पितृभिश्च महीयते । देवलोके गतस्यापि नाम तस्य न नश्यति ॥ २५ ॥ अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत । तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षांश्च

मिलती है १६ तिलोंका दान दो, जलका दान करो, दीपदान दो और जीवन पर्यन्त सम्बन्धियोंके साथ आनन्दमें रहो इन वस्तुओंका परलोकमें मिलना अति दुर्लभ है २० हे नरसिंह ! जलका दान सब दानोंसे उत्तम है और सब दानोंसे श्रेष्ठ है अतः जलका दान अवश्य देना चाहिये २१ इसप्रकार तालाब खुदवाने का उत्तम फल कहा, अब मैं तुमसे वृक्ष लगानेके सम्बन्धमें कहता हूँ २२ स्थावर प्राणियोंकी वृक्ष, गुल्म (कुश आदि), लता (वृक्षों पर चढ़नेवाली गिलोय आदि),वल्ली (भूमिमें फैली हुई बेल),त्वक्सार (बाँस आदि) और तिनके आदि यह छः जातियें कही हैं २३ वृक्षोंकी इतनी जातियें हैं और उनके यह गुण हैं, वृक्षोंके लगानेवालेकी मनुष्यकी इसलोकमें कीर्ति होती है और मरनेके पीछे परलोकमें शुभ फल मिलता है २४ इस लोकमें नाम फैलता है और परलोकमें पितर उसकी पूजा करते हैं तथा वृक्ष लगाने वाला देवलोकमें जाता है और मरण पाने पर भी उसका नाम नष्ट नहीं होता है २५ और हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वृक्ष लगाने

रापयेत् ॥ २६ ॥ तस्य पुत्रा भवंत्येते पादपा नात्र संशयः । पर-
लोकगतः स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान् ॥२७॥ पुष्पैः सुर-
गणान् वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितॄन् ॥ छायया चातिथिं तात
पूजयंति महीरुहः ॥२८॥ किन्नरोरगरक्षांसि देवगंधर्वमानवाः ।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान् ॥ २९ ॥ पुष्पिताः
फलवंतश्च तर्पयंतीह मानवान् । वृक्षदं पुत्रवद्वृक्षास्तारयंति परत्र
तु ॥ ३० ॥ तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा ।
पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥३१॥ तडागकृद्
वृक्षरोपी इष्टयज्ञश्च यो द्विजः । एते स्वर्गे महीयंते ये चान्ये सत्य-

---

वाला अपने पितासे पहिले तथा भविष्यमें होनेवाले वंशजोंको तार देता है अतः वृक्ष लगाने चाहियें २६ और वृक्ष,लगाने वालेके यहाँ पुत्र होकर उत्पन्न होते हैं इसमें सन्देह नहीं है और वृक्ष लगानेवाला मरणके पीछे स्वर्गमें जाता है तथा अविनाशी लोकोंको पाता है २७ वृक्ष पुष्पोंसे देवताओंको तृप्त करते हैं फलोंसे पितरोंको तृप्त करते हैं और छायासे अतिथियोंका सत्कार करते हैं२८किन्नर, सर्प,राक्षस,देवता, गन्धर्व,मनुष्य और ऋषि वृक्षोंका आश्रय लेते हैं२९पुष्प और फलोंवाले वृक्ष इस जगत्में मनुष्योंको तृप्तकरते हैं वृक्ष वृक्षोंका दान देनेवालेको पुत्रकी समान परलोकमें तारते हैं ३०अतः कल्याण चाहने वाले मनुष्य को सदा तालावके किनारे उत्तम वृक्ष लगाने चाहियें और पुत्रकी समान उनको बडा करना चाहिये, क्योंकि- लगाए हुए वृक्ष धर्मानुसार पुत्र कहलाते हैं ३१ तालाव खुदवानेवाले वृक्ष लगवानेवाले यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण और सत्यवादी मनुष्य स्वर्गमें पूजा पाते हैं ३२ अतः मनुष्यको तालाव खुदवाने चाहिये वृक्ष लगवाने

वादिनः ॥ ३२ ॥ तस्मात्तडागं कुर्वीत आरामांश्चैव रोपयेत् । यजेच्च विविधैर्यज्ञैः सत्यं च सततं वदेत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिकेपर्वणि दानधर्मे आरामतडागवर्णनं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

युधिष्ठिर उवाच । यानीमानि बहिर्वेद्यां दानानि परिचक्षते । तेभ्यो विशिष्टं किं दानं मतं ते कुरुपुङ्गव ॥१॥ कौतूहलं हि परमं तत्र मे विद्यते प्रभो । दातारं दत्तमन्वेति यद्दानं तत् प्रचक्ष्व मे २ भीष्म उवाच । अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः । यच्चाभिलषितं दद्यात् तृषितायाभियाचते ॥ ३ ॥ दत्तं मन्येत यद्दत्वा तद्दानं श्रेष्ठमुच्यते । दत्तं दातारमन्वेति यद्दानं भरतर्षभ ॥ ४ ॥ हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च । एतानि वै पवित्राणि तारयंत्यपि दुष्कृतम् ॥ ५ ॥ एतानि पुरुषव्याघ्र साधुभ्यो देहि

चाहिये अनेक यज्ञ करने चाहिये और सत्य बोलना चाहिये३३

अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-वेदीके बहिर्भागमें जो २ दान कहे हैं हे कुरुश्रेष्ठ भीष्म ! आप उनमें किस दानको उत्तम समझते हैं, यह मुझसे कहिये ॥१॥ हे प्रभो ! मुझे इस विषयमें बड़ा कुतूहल होरहा है,अतः आप, जो दान देने पर दाताके पीछे जाता हो उसका मुझसे वर्णन करिये ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-सब प्राणियोंको अभय दे, दुःखके समय अनुग्रह करे,पियासेको जल पिलावे और याचना करने वालेको उसकी इच्छानुसार पदार्थ दे ॥ ३ ॥ और दानको देकर दिया हुआ माने (अर्थात् उसकी अपेक्षा न करे) वह दान श्रेष्ठ कहलाता है और हे भरतर्षभ ! वह दान दाताके पीछे २ जाता है ॥४॥ सुवर्णदान; गौदान और भूमिदान ये दान पवित्र हैं और पापीको भी तार देते हैं ॥५॥ हे पुरुषव्याघ्र ! तू सदा सत्पुरुषोंको इन वस्तुओंका दान कर,

नित्यदा । दानानि हि नरं पापान्मोक्षयंति न संशयः ॥ ६ ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥७॥ प्रियाणि लभते नित्यं प्रियदः प्रियकृत्तथा । प्रियो भवति भूतानामिह चैव परत्र च ॥८॥ याचमानमभीमानादनासक्तमकिंचनम् । यो नार्चति यथा शक्ति स नृशंसो युधिष्ठिर॥९ अमित्रमपि चेद्दीनं शरणैषिणमागतम् । व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः ॥१०॥ कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते । अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः ॥ ११ ॥ क्रियानियमितान् साधून् पुत्रदारैश्च कर्शितान् । अयाचमानान् कौन्तेय सर्वो-

दान मनुष्यको अवश्य ही पापसे मुक्त कर देते हैं ॥६॥ जो जो पदार्थ जगत्में अतिप्रिय हों और अपने घरमें जो २ पदार्थ अपनेको प्रिय हों उन पदार्थोंका अक्षय रीति पर पानेकी इच्छासे सत्पुरुषोंको दानमें देना चाहिये ॥ ७ ॥ प्रिय कार्य करने वाला और प्रिय वस्तुओंको देने वाला पुरुष सदा प्रिय वस्तुएँ पाता है और इस लोकमें तथा परलोकमें प्राणियोंका प्रिय होजाता है ॥ ८ ॥ हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य संसारमें आसक्तिरहित अकिञ्चन पुरुषके माँगने पर अभिमानमें भर उसका यथाशक्ति सत्कार नहीं करता है वह मनुष्य क्रूर है ॥ ९ ॥ परन्तु जो पुरुष दीनदशामें पड़ अपनी शरणमें आये हुए अपने शत्रु पर दुःखके समय अनुग्रह करता है उसको उत्तम मनुष्य समझना चाहिये ॥१०॥ विद्या पढ़ा हुआ पुरुष आजीविकारहित हो, निर्धन होगया हो और अन्नके लिये दुःखी होकर घूमता हो तो जो मनुष्य उसकी क्षुधाको शान्त करता है, उसकी समान और कोई नहीं होसकता ॥११॥ हे कौन्तेय ! अपना धर्म पालनेमें तत्पर, पुत्र और स्त्री आदि (के लिये यथेष्ट धन न पाने) से दुःख पाने पर भी किसीसे न माँगने वाले सज्जन पुरुषोंको सब उपायोंसे बुला कर सत्कार

पायैर्निमंत्रयेत् ॥ १२ ॥ आशिषं ये न देवेषु न च मर्त्येषु कुर्वते। अर्हतो नित्यसंतुष्टास्तथा लब्धोपजीविनः ॥ १३ ॥ आशीविषसमेभ्यश्च तेभ्यो रक्षस्व भारत। तान्युक्तैरुपजिज्ञास्य तथा द्विजवरोत्तमान् ॥१४॥ कृतैरावसथैर्नित्यं समेध्यैः सपरिच्छदैः। निमंत्रयेथाः कौरव्य सर्वकामसुखावहैः ॥ १५ ॥ यदि ते प्रतिगृह्णीयुः श्रद्धापूतं युधिष्ठिर। कार्यमित्येव मन्वाना धार्मिकाः पुण्यकर्मिणः १६ विद्यास्नाता व्रतस्नाता ये व्यपाश्रित्य जीविनः। गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥१७॥ तेषु शुद्धेषु दांतेषु स्वदारपरितापिषु। यत् करिष्यसि कल्याणं तत्तो लोके युधां पते १८

करे १२ जो मनुष्य किसी कामनासे देवता अथवा मनुष्योंकी स्तुति नहीं करते हैं ऐसे माननीय नित्य सन्तुष्ट रहने वाले और जो मिल जाय उसी पर निर्वाह करने वाले। सर्पकी समान पुरुषोंसे हे भारत! (दान आदि देकर) तू अपनी रक्षा कर और गुप्तचर रख कर उन श्रेष्ठ द्विजवरोंका तू पता लगा १३-१४ तदनन्तर हे कौरव! सब आवश्यकीय पदार्थोंसे भरे हुए, दास दासी और आभूषण आदिसे युक्त, पुरुषोंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करने वाले और सब सुख देने वाले उत्तम घर देकर तुझे उनका सत्कार करना चाहिये १५ हे युधिष्ठिर! (दाता) धर्मार्थ ही दान कर रहा है, किसी कामनासे नहीं, यह प्रतीत होने पर पुण्यात्मा धार्मिक ब्राह्मण तेरे श्रद्धासे पवित्र हुए दानको ग्रहण करेंगे १६ विद्यास्नात तथा व्रतस्नात, बिना किसी आश्रयके जीविका चलाने वाले, उत्तम व्रतोंका पालन करने वाले, अपने स्वाध्याय और तपको गुप्त रखने वाले, अपनी स्त्रीमें ही सन्तुष्ट रहने वाले, दान्त और पवित्र मन वाले ब्राह्मणोंको यदि तू धन देगा तो हे योधाओंके स्वामी! तेरा परलोकमें कल्याण होगा १७-१८ प्रातःकाल और सायंकाल अग्निमें होम करने

यथाग्निहोत्रं सुहुतं सायं प्रातर्द्विजातिना । तथा दत्तं द्विजातिभ्यो भवत्यथ यतात्मसु ॥ १९ ॥ एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः । विशिष्टः सर्वयज्ञेभ्यो ददतस्तात वर्तताम् ॥ २० ॥ निवापदानसलिलस्तादृशेषु युधिष्ठिर । निवसन् पूजयंश्चैव तेष्वानृण्यं नियच्छति ॥ २१ ॥ य एवं नैव कुप्यन्ते न लुभ्यंति तृणेष्वपि । त एव नः पूज्यतमा ये चापि प्रियवादिनः ॥ २२ ॥ एतेन बहु मन्यन्ते न प्रवर्तन्ति चापरे । पुत्रवत् परिपाल्यास्ते नमस्तेभ्यस्तथाभयम् ॥ २३ ॥ ऋत्विक्पुरोहिताचार्या मृदुब्रह्मधरा हि ते । क्षात्रेणापि हि संसृष्टं तेजः शाम्यति वै द्विजे ॥२४॥ अस्ति

वाले ब्राह्मणोंको जो फल मिलता है, वही फल मनको नियममें रखने वाले ब्राह्मणोंको दान देनेसे मिलता है १९ हे तात ! तेरा यह दानरूपी विस्तार वाला श्रद्धासे पवित्र सदक्षिण यज्ञ सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है, उसको सदा किये जा २० जैसे पितृतर्पण नित्य किया जाता है, इसी प्रकार पहिले कहे हुए ब्राह्मणोंको दान सदा देना चाहिये, आश्रय देना चाहिये और पूजा करनी चाहिये ऐसा करने पर प्राणी देवता, ऋषि और पितरोंके ऋणसे छूट जाता है ॥२१॥ जो ब्राह्मण क्रोध कभी नहीं करते हैं, तिनकेका भी लोभ नहीं करते और जो प्रिय भाषण करते हैं, वे हमारे सदा मान्य हैं ॥ २२ ॥ उपरोक्त ब्राह्मण तथा दूसरे निःस्पृह ब्राह्मण दाताको कुछ उत्तम नहीं मानते और धन पानेके लिये उद्योग भी नहीं करते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंका पुत्रकी समान पालन करना चाहिये, उनको नमस्कार है और वे सदा अभय रहें (क्योंकि उनके रुष्ट होने पर नरक और प्रसन्न होने पर स्वर्ग मिलता है) ॥ २३ ॥ शिष्यों पर प्रेम रखने वाले और वेदका स्वाध्याय करने वाले ऋत्विज तथा पुरोहित और आचार्य उपरोक्त प्रकारके निःस्पृह होते हैं, क्योंकि-चाहे जैसा क्षात्र तेज ब्रह्मतेजके सामने पड़ते

मे बलवानस्मि राजास्मीति युधिष्ठिर । ब्राह्मणान्मा च पर्यश्नी-
र्वासोभिरशनेन च ॥ २५ ॥ यच्छोभार्थं बलार्थं वा वित्तमस्ति
तवानघ । तेन ते ब्राह्मणाः पूज्याः स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥२६॥ नम-
स्कार्यास्तथा वि ा वर्तमाना यथातथम् । यथासुखं यथोत्साहं
ललंतु त्वयि पुत्रवत् ॥२७॥ को ह्यक्षयप्रसादानां सुहृदामल्प-
तोषिणाम् । वृत्तिमर्हत्यवक्षेप्तुं त्वदन्यः कुरुसत्तम ॥२८॥ यथा
पत्याश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके सनातनः । सदैव सा गतिर्नान्या
तथास्माकं द्विजातयः॥ २९ ॥ यदि नो ब्राह्मणास्तात संत्यजेयु-
रपूजिताः । पश्यंतो दारुणं कर्म सततं क्षत्रिये स्थितम् ॥ ३० ॥
अवेदानामयज्ञानामलोकानामवर्तिनाम् । कस्तेषां जीवितेनार्थस्त्वां

ही शान्त पड़ जाता है ॥२४॥ हे युधिष्ठिर ! यह सब धन मेरा है, मैं बलवान् हूँ, मैं राजा हूँ यह समझ कर तू ब्राह्मणोंको त्याग कर अपने आप ही वस्त्र और अन्नका उपभोग न करना ॥२५ हे राजन् ! तेरे पास शोभाके लिये और बलके लिये जो धन है, उस धनसे तू ब्राह्मणोंकी पूजा कर और अपने धर्मका आचरण कर ॥ २६ ॥ वर्तमान कालके ब्राह्मण चाहे जैसे हों तब भी उनको अवश्य प्रणाम कर और ब्राह्मण भी सुख पाते हुए उत्साहमें भर तेरे पास रमण करते रहें ॥ २७ ॥ हे कुरुकुलोत्तम! जिनकी कृपा अक्षय है, जिनका हृदय स्नेहमय है, जो थोड़ी वस्तुसे ही सन्तुष्ट होजाते हैं, उनकी तेरे अतिरिक्त और कौन आजि-विका बाँध सकता है ॥ २८ ॥ जैसे जगत्में पतिका आश्रय लेना स्त्रियोंका सनातन धर्म है और पति ही स्त्रियोंकी सदा गति है और कोई गति नहीं है, इसी प्रकार ब्राह्मण भी हमारी गति हैं २९ हे तात ! यदि हम ब्राह्मणोंकी पूजा न करें और वे भी क्षत्रियोंमें सदा रहने वाले दारुण कर्मको देखकर हमको त्याग दें तो हम वेदरहित, यज्ञहोमरहित अतएव परलोकरहित होजांय, फिर हमारे

विना ब्राह्मणाश्रयम् ॥ ३१ ॥ अत्र ते वर्तयिष्यामि यथा धर्मं सनातनम् । राजन्यो ब्राह्मणान् राजन् पुरा परिचचार ह ३२ वैश्यो राजन्यमित्येव शूद्रो वैश्यमिति श्रुतिः । दूराच्छूद्रेणोपचर्यो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥३३॥ संस्पर्शपरिचर्यस्तु वैश्येन क्षत्रियेण च । मृदुभावान् सत्यशीलान् सत्यधर्मानुपालकान् ॥३४॥ आशीविषानिव क्रुद्धांस्तानुपाचरत द्विजान् । अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चापि ये परे ॥३५॥ क्षत्रियाणां प्रतपतां तेजसा च बलेन च । ब्राह्मणेष्वेव शाम्यंति तेजांसि च तपांसि च ॥ ३६ ॥ न मे पिता प्रियतरो न त्वं तात तथा प्रियः । न मे पितुः पिता राजन्न चात्मा न च जीवितम् ॥ ३७ ॥ त्वत्तश्च मे प्रियतरः पृथिव्यां

जीवित रहनेका प्रयोजन ही क्या रह जाय ? ३०-३१ हे राजन् ! इस विषयमें मैं तुझसे सनातनधर्मका विचार कहूँगा, पहिले क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे ३२ वैश्य, क्षत्रियोंकी सेवा करते थे और शूद्र वैश्योंकी सेवा करते थे, ऐसा वेदमें कहा है, अग्निकी समान प्रज्वलित रहने वाले ब्राह्मणकी शूद्रको दूर रह कर सेवा करनी चाहिये ३३ किन्तु क्षत्रिय और वैश्यको ब्राह्मण का स्पर्श करके सेवा करनी चाहिये, ब्राह्मण स्वभावतः कोमल होते हैं, सत्य स्वभाव वाले होते हैं और सत्यधर्मका अनुसरण करते हैं ३४ परन्तु जब वे क्रोधमें भर जाते हैं, तब विषैले सर्पों की समान होजाते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंकी तुझको सेवा करनी चाहिये, ब्राह्मण अनुलोम और विलोमोंमें जो श्रेष्ठ हैं उनमें भी श्रेष्ठ हैं ३५ तेज और बलसे तपे हुए क्षत्रियोंका तेज और बल ब्राह्मणोंमें जाते ही शान्त हो जाता है ३६ मुझको अपने पिता भी ब्राह्मणोंकी समान प्रिय नहीं हैं और हे तात! तू भी मुझको ब्राह्मणोंकी समान प्रिय नहींहै और मैं अपने आत्मा तथा जीवनको भी ब्राह्मणोंकी समान प्रिय नहीं समझता ३७ इस पृथ्वीमें मुझको

नास्ति कश्चन । त्वत्तोऽपि मे प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ ३८
ब्रवीमि सत्यमेतच्च यथाहं पांडुनन्दनः।तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्
यत्र च शांतनुः ॥ ३९ ॥ पश्येयं च सतां लोकाञ्छुचीन् ब्रह्म-
पुरस्कृतान् । तत्र मे तात गंतव्यमन्हाय च चिराय च ॥ ४० ॥
सोऽहमेतादृशाँल्लोकान् दृष्ट्वा भरतसत्तम । यन्मे कृतं ब्राह्मणेषु न
तप्ये तेन पार्थिव ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि
दानधर्मे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

युधिष्ठिर उवाच । यौ च स्यातां चरणेनोपपन्नौ यौ विद्यया
सदृशौ जन्मना च । ताभ्यां दानं कतमस्मै विशिष्टमयाचमानाय
च याचते च ॥१॥ भीष्म उवाच । श्रेयो वै याचतः पार्थ दान-

तुमसे अधिक और कोई प्रिय नहीं है, परन्तु हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! ब्राह्मण मुझको तुमसे भी अधिक प्रिय हैं ३८ हे पाण्डुपुत्र ! मैं यह सत्य बात कह रहा हूँ और सत्यके कारण ही जहाँ राजा शान्तनु हैं, तहां ही मैं जाऊँगा ३९ मैं ब्रह्मलोक आदि सत्पुरुषोंके लोकोंको देख रहा हूँ और हे तात ! मैं तहाँ शीघ्र ही बहुत समय तकके लिये जाऊँगा४०हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! इन लोकोंका देखने पर मैंने जो ब्राह्मणोंका (दान आदिसे) सत्कार किया है उसके लिये मेरे मनमें सन्ताप नहीं होता है किंतु मुझे परम हर्ष होरहा है ४१ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ छ छ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-दो मनुष्य एकसा आचरण करते हों एकसी विद्या पढ़े हों और एक समय उत्पन्न हुए हों उनमें एक याचना करता हो और दूसरा याचना न करता हो;तो किसको दान देनेसे उत्तम फल मिलता है? १ भीष्मजीने कहा,कि-हे पृथा-पुत्र ! याचना करने वालेसे याचना न करने वालेको दिया हुआ

माहुरयाचते। अर्हत्तमो वै धृतिमान् कृपणादधृतात्मनः ॥ २ ॥ क्षत्रिया रक्षणधृतिर्ब्राह्मणोऽनर्थनाधृतिः। ब्राह्मणो धृतिमान्विद्वान् देवान् प्रीणाति तुष्टिमान् ॥ ३ ॥ वाच्यमाहुरनीशस्य अभिहारं च भारत। उद्वेजयन्ति याचन्ति सदा भूतानि दस्युवत् ॥ ४ ॥ म्रियते याचमानो वै न जातु म्रियते ददत्। ददत् संजीवयत्येन-मात्मानं च युधिष्ठिर ॥ ५ ॥ आनृशंस्यं परो धर्मो याचते यत् प्रदीयते। अयाचतः सीदमानान् सर्वोपायैर्निमंत्रयेत् ॥ ६ ॥ यदि वै तादृशा राष्ट्रान् वसेयुस्ते द्विजोत्तमाः। भस्मच्छन्नानिवाग्ना-स्तान् बुध्येथास्त्वं प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ तपसा दीप्यमानास्ते दहेयुः

दान विशेष कल्याण करता है, अधीर मन वाले कृपण पुरुषकी अपेक्षा धैर्यधारी पुरुष अधिक पूज्य माना जाता है, रक्षा करते समय क्षत्रियको धैर्य रखना चाहिये और याचना न करनेके लिये ब्राह्मणको धैर्य (दृढ़ता) रखना चाहिये, जो ब्राह्मण धैर्य-वान्, विद्वान् और संतोषी होते हैं वह देवताओंको प्रसन्न करते हैं ३ हे भरतवंशी राजन्! दरिद्र पुरुषका याचनारूपी कर्म तिरस्कार-रूप है, यह विद्वान् कहते हैं, क्योंकि-याचना करने वाले प्राणी सर्वदा चोरोंकी समान मनुष्योंको खिन्न करते हैं ४ याचना करने वाले मर जाते हैं, परन्तु दान देने वाले कभी नहीं मरते हैं, हे युधि-ष्ठिर! दाता याचकको और अपनी आत्माको भी जीवित रखता है ५ दूसरों पर दया करना परमधर्म है, इसलिये याचना करने वालोंको दिया जाता है, किन्तु दुःखी रहने पर भी याचना न करने वालोंको सब प्रकारके उपाय करके बुलाकर दान देना चाहिये ६ याचना न करने वाले जो उत्तम ब्राह्मण तेरे देशमें रहते हों, उन भस्मसे ढकी हुई अग्निकी समान उत्तम ब्राह्मणोंको तू प्रयत्नपूर्वक खोज ॥ ७ ॥ क्योंकि-तपसे प्रकाशित रहने वाले ब्राह्मण पृथ्वीको भी भस्म कर सकते हैं, हे कौरव! यदि वे

पृथिवीमपि । अपूज्यमानाः कौरव्य पूजार्हास्तु तथाविधाः ॥८॥ पूज्या हि ज्ञानविज्ञानतपोयोगसमन्विताः । तेभ्यः पूजां प्रयुञ्जीथा ब्राह्मणेभ्यः परंतप ॥ ९ ॥ ददद्बहुविधान्दायानुपागच्छन्नयाचताम् । यदग्निहोत्रे सुहुते सायं प्रातर्भवेत् फलम् ॥ १० ॥ विद्यावेदव्रतवति तद्दानफलमुच्यते । विद्यावेदव्रतस्नाता न व्यपाश्रयजीविनः ॥ ११ ॥ गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणान् संशितव्रतान् । कृतैरावसथैर्हृद्यैः सप्रेष्यैः सपरिच्छदैः ॥ १२ ॥ निमन्त्रयेथाः कौरव्य कामैश्चान्यैर्द्विजोत्तमान् । अपि ते प्रतिगृह्णीयुः श्रद्धापेतं युधिष्ठिर ॥ १३ ॥ कार्यमित्येव मन्वाना धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः । अपि ते ब्राह्मणा भुक्त्वा गताः सोद्धरणान् गृहान् ॥ १४ ॥

अपूज्य रहते हों तो उनकी प्रत्येक रीतिसे पूजा करनी चाहिये८ क्योंकि—ज्ञान, विज्ञान और तपवाले ब्राह्मण पूज्य होते हैं, अतः हे शत्रुतापन ! तू उन ब्राह्मणोंकी पूजा कर ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण याचना नहीं करते हैं, उनके पास तुझको जाना चाहिये और उनको नाना प्रकारके धन आदि पदार्थ देने चाहिये, सायंकाल और प्रातःकाल अग्निमें होम करनेसे जो फल मिलता है ॥१०॥ वही फल विद्या तथा वेदाध्ययनके लिये ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करने वाले ब्राह्मणको दान देनेसे मिलता है,ऐसा शास्त्रमें कहा, है ॥११॥ वेद और विद्याका स्नान करने वाले ब्राह्मणोंको दान देना दानका फल माना जाता है, हे कौरव्य ! तू विद्या और वेदव्रतका अभ्यास करने वाले किसीके आश्रयसे जीविका न चलाने वाले अपने स्वाध्याय और तपको गुप्त रखने वाले तथा प्रशंसनीय व्रत करने वाले ब्राह्मणोंको सेवक और आभूषणआदि सहित मनोरम घर देकर तथा और भी अनेक प्रकारके पदार्थ देकर निमन्त्रण दे,हे युधिष्ठिर ! तब वे धर्मज्ञ सूक्ष्मदर्शी ब्राह्मण तेरे दानको धर्मार्थ समझ कर ग्रहण कर लेंगे, और वे ब्राह्मण

येषां दाराः प्रतीक्षंते पर्जन्यमिव कर्षकाः । अन्नानि प्रातः सवने नियता ब्रह्मचारिणः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणास्तात भुञ्जानास्त्रेताग्निं प्रीणयन्त्युत । माध्यंदिनं ते सवनं ददतस्तात वर्ततां ॥ १६ ॥ गोहिरण्यानि वासांसि तेनेन्द्रः प्रीयतां तव । तृतीयं सवनं ते वै वैश्वदेवं युधिष्ठिर ॥ १७ ॥ यद्देवेभ्यः पितृभ्यश्च विप्रेभ्यश्च प्रयच्छसि । अहिंसा सर्वभूतेभ्यः संविभागश्च भागशः१८दमस्त्यागो धृतिः सत्यं भवत्ववभृथाय ते । एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः ॥१९॥ विशिष्टः सर्वयज्ञानां नित्यं तात प्रवर्तताम्२०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि
दानधर्मे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

भोजन करके अपने घरमें जहाँ कि-उनकी स्त्रियें अपने बच्चोंसे कह रही होंगी कि-तुम्हारे पिता आकर भोजन देंगे तहाँ, जावेंगे ॥ १२ ॥ १४ ॥ तहाँ उनकी स्त्रियें किसानोंके वर्षाकी बाट देखनेकी समान अपने पतियोंके अन्न आदि लानेकी बाट देखती होंगी (ऐसे ब्राह्मणोंको दान देनेसे महापुण्य होता है) नियममें रहनेवाले ब्रह्मचारी ब्राह्मण प्रभातकालमें अन्नका भोजन करते हैं, तो हे तात ! वे अन्नदान करने वालेकी तीनों अग्नियोंको तृप्त करते हैं, तू मध्यान्हके समय दानधर्म करना १५-१६ तू गौ, सुवर्ण और वस्त्र आदिका दान कर जिससे इन्द्र तुझ पर प्रसन्न हों,हे युधिष्ठिर ! तीसरे पहरमें किया हुआ दान वैश्वदेव समझा जाता है ॥ १७ ॥ उस समय तुझे पितरोंको और ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, सब प्राणियोंको अभयदान देना चाहिये और सब वस्तुओंका विभाग करना चाहिये ।१८। और इन्द्रियोंका निग्रह करना चाहिये त्याग, दान, धैर्य, और सत्य तुझे अवभृथस्नानका फल देंगे, हे तात ! तू इस श्रद्धासे पवित्र,दक्षिणावाले सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ दानयज्ञको सदा करता रह१९

युधिष्ठिर उवाच । दानं यज्ञः क्रिया चेह किंस्वित् प्रेत्य महाफलम् । कस्य ज्यायः फलं प्रोक्तं कीदृशेभ्यः कथं कदा ॥ १ ॥ एतदिच्छामि विज्ञातुं याथातथ्येन भारत । विद्वन् जिज्ञासमानाय दानधर्मान् प्रचक्ष्व मे ॥ २ ॥ अन्तर्वेद्यां च यद्दत्तं श्रद्धया चानृशंस्यतः । किंस्विन्नैःश्रेयसं तात तन्मे ब्रूहि पितामह ॥३॥ भीष्म उवाच । रौद्रं कर्म क्षत्रियस्य सततं तात वर्तते । तस्य वैतानिकं कर्म दानं चैवेह पावनम् ॥४॥ न तु पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णंति साधवः । एतस्मात् कारणाद्यज्ञैर्यजेद्राजाप्तदक्षिणैः ॥ ५ ॥ अथ चेत्प्रतिगृह्णीयुर्दद्यादहरहर्नृपः । श्रद्धामास्थाय परमां पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥६॥ ब्राह्मणांस्तर्पयन् द्रव्यैस्ततो यज्ञे यतव्रतः । मैत्रान्

युधिष्ठिरने बूझा, कि-दान और यज्ञ इन दोनोंमेंसे मरणके पीछे कौनसी क्रिया महाफल देती है ? किस कर्मके फलको उत्तम कहा है ? किसको दान देना चाहिये ? यज्ञ किस प्रकार करना चाहिये और कब करना चाहिये ? ॥ १ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस बातको मैं यथार्थरीतिसे जानना चाहता हूँ अतः हे विद्वन् ! आप मुझसे दानधर्म कहिये ॥ २ ॥ जो दान वेदीके भीतर श्रद्धापूर्वक दिया जाता है और जो दान दया करके वेदीके बाहर दिया जाय ? हे पितामह ! हे तात ! इन दोनोंमेंसे कौनसा दान कल्याणकारक है यह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे तात ! क्षत्रिय सदा भयंकर कर्म करते रहते हैं अतः यज्ञ तथा दान करना उनको पवित्र करता है॥४॥ महात्मा पुरुष पापकर्म करने वाले राजाओंका दान नहीं लेते हैं अतएव राजाओं को पूर्ण दक्षिणा वाले यज्ञ करने चाहियें ॥ ५ ॥ और सत्पुरुष दान लेते हों तो राजाको प्रतिदिन परम श्रद्धासे दान देना चाहिये, क्योंकि श्रद्धापूर्वक दिया हुआ दान उत्तम और पवित्र करने वाला है ॥ ६ ॥ अतः तू व्रतको नियमानुसार धारण करके

साधून् वेदविदः शीलवृत्ततपोर्जितान् ॥ ७ ॥ यत्ते तेन करिष्यंति कृतं तेन भविष्यति । यज्ञान् साधय साधुभ्यः स्वाद्वन्नान् दक्षिणा-वतः ॥ ८ ॥ इष्टं दत्तं च मन्येथा आत्मानन्दानकर्मणा । पूजयेथा यायजूकांस्तवाप्यंशो भवेद्यथा ॥९॥ प्रजावतो भरेथाश्च ब्राह्म-णान् बहुकारिणः । प्रजावांस्तेन भवति यथा जनयिता तथा १० यावतः साधुधर्मान् वै संतः सम्वर्धयन्त्युत । सर्वस्वैश्चापि भर्तव्या नरा ये बहुकारिणः ॥ ११ ॥ समृद्धः संप्रयच्छ त्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर। धेनूरनडुहोऽन्नानि च्छत्रं वासांस्युपानहौ १२ आज्यानि यजमानेभ्यस्तथान्नानि च भारत । अश्ववंति च या-नानि वेश्मानि शयनानि च ॥ १३ ॥ एते देया व्युष्टिमंतो लघू-

मित्रताका वर्ताव करने वाले, वेदवेत्ता, शील आचार तथा तप का सम्पादन करने वाले उत्तम ब्राह्मणोंको यज्ञमें धन देकर तृप्त कर ॥ ७ ॥ यदि उस समय वह तेरे दानको स्वीकृत करलेंगे तो तेरा कल्याण होगा अतः तू महात्माओंका सत्कार करनेके लिये स्वादिष्ट अन्न वाले और महादक्षिणा वाले यज्ञोंको कर ॥ ८ ॥ और उन यज्ञोंमें दान देकर तू अपनी आत्माको पुण्यवान् समझ, तू यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोंका सत्कार करना, कि जिससे उनके पुण्यमेंसे तुझको भी भाग मिले ॥ ९ ॥ जो सन्तानवान् ब्राह्मण बहुतसे मनुष्योंका उपकार करते रहते हैं उन ब्राह्मणोंका भरण पोषण करनेसे तू प्रजापतिकी समान प्रजा वाला होजायगा १० जो सकल धार्मिक कार्योंमें सत्पुरुषोंको उत्तेजित करते रहते हैं उन सज्जनोंका राजाको सर्वस्व देकर भी भरण पोषण करना चाहिये क्योंकि-ऐसे महात्मा पुरुष राजाका बड़ा उपकार करते हैं ११ हे युधिष्ठिर ! तू समृद्धि पाकर ब्राह्मणोंको गौ, बैल, अन्न, छत्र वस्त्र और जूतोंका दान देना ॥१२॥ तथा हे भरतवंशी राजन् ! यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोंको घी, अन्न, घोड़े जुते हुए रथ आदि

पायाश्च भारत । अनुगुप्तांश्च विज्ञाय ब्राह्मणान् वृत्तिकर्शितान्१४
उपच्छन्नं प्रकाशं वा वृत्त्या तान्प्रतिपालयेत् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां
श्रेयस्तत्क्षत्रियान् प्रति१५एवं पापैर्विनिर्मुक्तस्त्वं पूतः स्वर्गमाप्स्यसि।
सञ्चयित्वा पुनः कोशं यद्राष्ट्रं पालयिष्यसि१६ तेन त्वं ब्रह्मभूयत्व-
मवाप्स्यसि धनानि च । आत्मनश्च परेषां च वृत्तिं संरक्ष भारत१७
पुत्रवच्चापि भृत्यान् स्वान् प्रजाश्च परिपालय । योगः क्षेमश्च ते
नित्यं ब्राह्मणेष्वस्तु भारत ॥१८॥ तदर्थं जीवितं तेऽस्तु मा तेभ्यो
प्रतिपालनम् । अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यद्वित्तनिचयो महान् ॥१९॥

सवारियें, घर तथा पलँग आदि दान करके दे ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यह दान समृद्धि और पुण्यको सरलतासे बढ़ाने वाले हैं, जिन ब्राह्मणोंका आचरण निन्दित न हो और जो आजीविका न मिलनेसे दुःखी रहते हों उनका पता लगाकर गुप्तरीतिसे अथवा प्रकट रीतिसे उनकी आजीविका बाँध देनी चाहिये और राजसूय तथा अश्वमेध आदि करके उनका सत्कार करना चाहिये, कि-जिससे क्षत्रियोंका कल्याण हो ॥ १५ ॥ तू ऊपर कहे अनुसार दान और यज्ञ करनेसे पापमेंसे मुक्त होजा-यगा और पवित्र होकर स्वर्गमें जायेगा, तेरे धनके भण्डार पूर्ण रहेंगे और तू देशकी रक्षा कर सकेगा॥१६॥इस प्रकार करनेसे तुझे धन मिलेगा और अगले जन्ममें तू ब्राह्मण होगा अतः हे भरतवंशी राजन् ! तू अपनी और दूसरोंकी आजीविकाकी रक्षा कर ॥१७॥ तू अपने पोष्यवर्ग और प्रजाका पुत्रकी समान पालन करना तथा हे भरतवंशी राजन् ! ब्राह्मणोंके पास जो वस्तु न हो वह उनको तू सर्वदा देते रहना और जो वस्तु उनके पास हो उसकी सर्वदा रक्षा करना ॥ १८ ॥ तेरा जीवन ब्राह्मणोप-योगी हो और तू विप्रोंका सदा पालन करे विप्रके पास बहुतसा धन होना ही अनर्थ है ॥१९॥ क्योंकि-लक्ष्मी सदा पास रहनेसे

श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो दर्पयेत् संप्रमोहयेत्। ब्राह्मणेषु प्रमूढेषु धर्मो विप्रणशेद्ध्रुवम् धर्मप्रणाशे भूतानामभावः स्यान्न संशयः २० यो रक्षिभ्यः संप्रदाय राजा राष्ट्रं विलुम्पति। यज्ञे राष्ट्राद्धनं तस्मा-दानयध्वमिति ब्रुवन् ॥२१॥ यच्चादाय तदाज्ञप्तं भीतं दत्तं सुदा-रुणम्। यजेद्राजा न तं यज्ञं प्रशंसन्त्यस्य साधवः ॥२२॥ अपी-डिताः सुसंवृद्धा ये ददत्यनुकूलतः। तादृशेनाप्युपायेन यष्टव्यं नोद्यमाहृतैः ॥२३॥ यदा परिनिषिच्येत निहितो वै यथाविधि। तदा राजा महायज्ञैर्यजेत बहुदक्षिणैः ॥२४॥ वृद्धबालधनं रक्ष्य-मन्धस्य कृपणस्य च। न खातपूर्वं कुर्वीत न रुदन्तीधनं हरेत् २५ हृतं कृपणवित्तं हि राष्ट्रं हन्ति नृपश्रियम्। दद्याच्च महतो

मनुष्यको अहंकारी बनादेती है और बड़े भारी मोहमें डाल देती है और जब विप्र (गर्वके कारण)अतिमूढ़ होजाते हैं, तब धर्म अवश्य ही नष्ट होजाता है और धर्मका नाश होतेही प्राणियोंका भी अवश्य नाश होजाता है२०जो राजा अपने धनभण्डारियोंका धन रखनेके लिये देकर कहता है,कि-यज्ञ करनेके लिये देशमेंसे दूसरा और धन लाओ,वह अपने देशको लूट लेता है२१और इस प्रकार धन इकट्ठा करके जो राजा यज्ञ करता है उस राजाके यज्ञकी सत्पुरुष प्रशंसा नहीं करते हैं२२अतः अति धनवती प्रजाके सरलभावसे दिये हुए और उनका विना पीड़ा दिये प्राप्त हुए धनसे यज्ञ करना चाहिये ॥ २३ ॥ जो राजा प्रजाका परम हित करता रहता है इस कारण प्रजा अपने बढ़े हुए धन पर जिस राजाका अभि-षेक कर देती है, उस राजाको महायज्ञ करके उसमें बहुतसी दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २४ ॥ वृद्ध पुरुषका (सोलह वर्ष तकके) बालकका, अन्धेका, दरिद्रका, (अकाल पड़ने पर) कूपके जलसे धान्य पकाने वाले पुरुषका और रुदन करने वाली स्त्रीका धन राजाको नहीं लेना चाहिये ॥ २५ ॥ राजा यदि

भोगान् क्षुद्भयं प्रणुदेत् सताम् ॥२६॥ येषां स्वादूनि भोज्यानि समवेक्ष्यंति बालकाः। नाश्नंति विधिवत्तानि किं नु पापतरं ततः॥ २७॥ यदि ते तादृशो राष्ट्रे विद्वान्सीदेत् क्षुधा द्विजः। भ्रूणहत्यां च गच्छेथाः कृत्वा पापमिवात्तमम् ॥२८॥ धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रे यस्यावसीदति। द्विजोऽन्यो वा मनुष्योऽपि शिविराह वचो यथा॥ २९॥ यस्य स्म विषये राज्ञः स्नातकः सीदति क्षुधा। अवृद्धिमेति तद्राष्ट्रं विंदते सह राजकम् ॥३०॥ क्रोशंत्यो यस्य वै राष्ट्राद्ध्रियन्ते तरसा स्त्रियः। क्रोशतां पतिपुत्राणां मृतोऽसौ न च जीवति॥३१॥ अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम्। तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम्॥३२

दरिद्रके धनको छीन लेता है, तो उसका धन देशका और लक्ष्मी का नाश कर डालता है, राजा महात्मा पुरुषोंको बड़े २ वैभव भोगनेके लिये दे और उनकी क्षुधाको भी दूर करता रहे २६ जिनके स्वादिष्ट भोजनोंको बालक लड़े २ ताकते रहते हैं और उनको वह भोजन खानेको नहीं मिलते इससे अधिक और पाप क्या होगा ? २७ तेरे देशमें यदि कोई ऐसा विप्र क्षुधासे पीड़ित रहता हो तो तुझे गर्भहत्याकी समान महापातक लगेगा२८राजा शिबिने कहा है,कि–जिस राजाके देशमें विप्र अथवा और कोई मनुष्य भूखसे पीड़ा पाता हो उस राजाके जीवनको धिक्कार है२९ जिस राजाके देशमें स्नातक विप्र क्षुधासे पीड़ा पाते हैं,उस राजा का देश वृद्धिको प्राप्त नहीं होता,उस राजाकी निन्दा होती है ३० जिस राजाके राज्यमें पति और पुत्रोंके रोते रहने पर विलाप करती हुई स्त्रियें उड़ाली जाती हैं, उस राजाको जीवित नहीं किन्तु मरा हुआ समझना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता है, प्रजाके धनको लूट लेता है, स्वामित्वके अयोग्य होता है, दयारहित होता है, ऐसे राजारूपी कलिको

अहं वो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिपः । स संहत्य निहं-
तव्यः श्वेव सोन्माद आतुरः ॥३३॥ पापं कुर्वन्ति यत्किञ्चित् प्रजा
राज्ञा ह्यरक्षिताः । चतुर्थं तस्य पापस्य राजा विन्दति भारत ३४
अथाहुः सर्वमेवैति भूयोऽर्धमिति निश्चयः । चतुर्थमतमस्माकं मनोः
श्रुत्वानुशासनम् ॥३५॥ शुभं वा यच्च कुर्वन्ति प्रजा राज्ञा सुर-
क्षिताः । चतुर्थं तस्य पुण्यस्य राजा चाप्नोति भारत ॥ ३६ ॥
जीवन्तं त्वानुजीवन्तु प्रजाः सर्वा युधिष्ठिर । पर्जन्यमिव भूतानि
महाद्रुममिवाण्डजाः ॥३७॥ कुबेरमिव रक्षांसि शतक्रतुमिवामराः ।
ज्ञातयस्त्वानुजीवन्तु सुहृदश्च परन्तप॥३८॥एकषष्टितमोऽध्यायः ॥

प्रजा कैद करके मार डाले॥३२॥जो राजा रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करने पर भी रक्षा नहीं करता है प्रजा इकट्ठी होकर ऐसे राजा को बावले कुत्तोकी समान मान कर मार डाले ॥ ३३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! प्रजाकी रक्षा न करने वाले राजा को प्रजाके पापका चतुर्थांश भोगना पड़ता है ॥ ३४ ॥ कितने ही कहते हैं, कि-प्रजाका किया हुआ सब पाप राजाको लगता है और कितने ही कहते हैं, कि प्रजाका किया हुआ आधा पाप राजाको लगता है, और मनुके शास्त्रको सुननेके अनन्तर मेरा मत यह है, कि—राजाको पापका चतुर्थांश भोगना पड़ता है ३५ राजाकी भली प्रकार पाली हुई प्रजा जो कुछ शुभ कर्म करती है, हे भारत ! उस पुण्यका चतुर्थांश राजाको मिलता है ३६ हे युधिष्ठिर ! सब प्रजा तेरे ऊपर आजीविका चलावे, प्राणी जैसे मेघसे आजीविका चलाते हैं, पक्षी जैसे महा वृक्ष पर आजीविका करते हैं ३७ राक्षस जैसे कुबेर पर आजी-वका चलाते हैं और देवता जैसे इन्द्रसे आजीविका चलाते हैं हे तात ! ऐसे ही तेरे जातिसम्बन्धी तुझ पर आजीवित रहें ३८ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ६१ छ छ छ

युधिष्ठिर उवाच। इदं देयमिदं देयमितीयं श्रुतिरादरात्। बहु-देयाश्च राजानः किंस्विद्दानमनुत्तमम् ॥१॥ भीष्म उवाच। अति-दानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते। अचला ह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामानिहोत्तमान् ॥२॥ दोग्ध्री वासांसि रत्नानि पशून् व्रीहियवांस्तथा। भूमिदः सर्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः ३यावद्भूमेरायु-रिह तावद्भूमिद एधते। न भूमिदानादस्तीह परं किंचिद्युधिष्ठिर॥४॥ अप्यल्पं प्रददुः सर्वे पृथिव्या इति नः श्रुतम्। भूमिमेव ददुः सर्वे भूमिं ते भुञ्जते जनाः।स्वकर्मैवोपजीवन्ति नरा इह परत्र च। भूमि-र्भूतिर्महादेवी दातारं कुरुते प्रियम् ॥ ६ ॥ य एतां दक्षिणां दद्या-दक्षयां राजसत्तम। पुनर्नरत्वं संप्राप्य भवेत् स पृथिवीपतिः ७

युधिष्ठिरने कहा कि श्रुति आदरपूर्वक कहती है,कि-यह देना चाहिये,यह देना चाहिये,इस प्रकार राजाओंको अनेक दान देनेका विधान है अतः कौनसा दान उत्तम है, यह मुझको बताइये १ भीष्मजीने उत्तर दिया कि-दान बहुतसे हैं, सब दानोंमें पृथ्वीका दान उत्तम माना जाता है पृथ्वी अचल है, अक्षया है और इस जगत्में उत्तम कामनाओंको पूर्ण करने वाली है२और भूमि वस्त्र, रत्न, पशु, व्रीहि और यवोंको देती है, पृथ्वीका दान देने वाला प्राणी सब प्राणियोंमें शाश्वत काल तक प्रतिष्ठापूर्वक जीवन विताता है ॥ ३ ॥ पृथ्वीका दान करने वाला पुरुष जब तक पृथ्वीकी आयु रहती है, तब तक सुखपूर्वक रहता है, हे युधिष्ठिर! कोई भी दान पृथ्वीदानसे अधिक श्रेष्ठ नहीं है ॥ ४ ॥ हमने सुना है, कि-सबने भूमिका थोड़ा २ दान दिया है, सबने भूमि का दान दिया है अत एव वे भूमिका उपभोग करते हैं५ मनुष्य इस लोकमें तथा परलोकमें अपने कर्मके फलको भोगते हैं, भूमि भूति है और महादेवी है और वह दाताको अपना प्रिय बना लेती है ६ हे श्रेष्ठ राजन्! जो पुरुष अक्षय रहने वाली, पृथ्वीकी

यथा दानं तथा भोग इति धर्मेषु निश्चयः । संग्रामे वा तनुं जह्या-
दद्याच्च पृथिवीमिमाम् ॥ ८ ॥ इत्येतत् क्षत्रबंधूनां वदन्ति परमां
श्रियम् । पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमिति शुश्रुम ॥ ९ ॥ अपि
पापसमाचारं ब्रह्मघ्नमपि चानृतम् । सैव पापं स्रावयति सैव पापात्
प्रमोचयेत् ॥ १० ॥ अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णंति साधवः ।
पृथिवीं नान्यदिच्छंति पावनं जननी यथा ॥ ११ ॥ नामास्याः
प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनम् । दानं वाप्यथवा दानं नामा-
स्याः प्रथमप्रियम् ॥ १२ ॥ य एतां विदुषे दद्यात् पृथिवीं पृथिवी-
पतिः । पृथिव्यामेतदिष्टं स राजा राज्यमितो व्रजेत् ॥ १३ ॥

दक्षिणा देता है, वह मनुष्य फिर मनुष्ययोनिमें जन्म पाने पर पृथ्वीका स्वामी होता है ७ जिस प्रकार दान किया जाता है उसी प्रकार उसका फल भोगनेको मिलता है, यह धर्मशास्त्रोंका निश्चय है, संग्राममें शरीरको छोड़ देय अथवा पृथ्वीका दान कर दे ८ इन दोनों कर्मोंसे क्षत्रिय जातिके पुरुषको परम लक्ष्मी मिलती है, यह धर्मशास्त्र (पुकार२ कर) कहते हैं, हमने सुना है, कि–पृथिवी का दान दाताको पवित्र करता है ९ पृथिवीका दान पापकर्म करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले और असत्यभाषण करने वालेके पाप का नाशकर देता है और पापीको पापमेंसे मुक्त कर देता है १० सत् पुरुष भी राजाओंसे पृथ्वीके दानको ग्रहण कर लेते हैं परन्तु और किसी दानको ग्रहण नहीं करते हैं, जैसे माता अपने पुत्रको पवित्र करती है ऐसे ही पृथ्वीका दान मनुष्यको पवित्र कर देता है ॥११॥ इस पृथ्वीका "प्रियदत्ता" नाम सनातनसमयका और गुप्त है पृथ्वीका दान दो अथवा न दो पृथ्वीका मान्य मुख्य नाम तो यही है ॥१२॥ पृथ्वीका दान सबको अच्छा लगता है, जो राजा विद्वानोंको पृथ्वीका दान देता है उस राजाको राज्य मिलता है ॥ १३ ॥ पृथ्वीका दान देने वाला पुरुष दूसरे जन्ममें

पुनश्चासौ जनिं प्राप्य राजवत् स्यान्न संशयः। तस्मात् प्राप्यैव पृथिवीं दद्याद्विप्राय पार्थिवः ॥१४॥ नाभूमिपतिना भूमिरधिष्ठेया कथंचन। न चापात्रेण वा ग्राह्या दत्तदानेन वा चरेत् ॥१५॥ ये चान्ये भूमिमिच्छेयुः कुर्युरेवं न संशयः। यः साधोर्भूमिमादत्ते न भूमिं विन्दते तु सः ॥ १६ ॥ भूमिं दत्वा तु साधुभ्यो विन्दते भूमिमुत्तमाम्। प्रेत्य चेह च धर्मात्मा संप्राप्नोति महद्यशः ॥१७॥ यस्य विप्रास्तु शंसन्ति साधोर्भूमिं सदैव हि। न तस्य शत्रवो राजन् प्रशंसंति वसुंधराम् ॥ १८ ॥ यत्किंचित् पुरुषः पापं कुरुते वृत्तिकर्शितः। अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते ॥१९॥ येऽपि संकीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः। तेभ्यः पवित्रमाख्येयं

राजा ही होता है अतः राजाको पृथिवी पाने पर ब्राह्मणोंको पृथिवीका दान देना चाहिये ॥१४॥ जो मनुष्य भूमिका स्वामी न हो उसको कभी भी पृथिवीका स्वामित्व नहीं करना चाहिये तथा अपात्र पुरुषको पृथिवीका दान न लेना चाहिये तथा जिस पृथिवीका दान दिया हो उस पृथिवी पर अपना अधिकार न रखना चाहिये ॥ १५ ॥ जो पुरुष पृथिवीपति बनना चाहता हो उसको पृथिवीका दान अवश्य देना चाहिये, जो पुरुष महात्मा पुरुषोंको दी हुई पृथिवीको छीन लेता है उस पुरुषको भूमि नहीं मिलती है॥१६॥सत्पुरुषोंको भूमिदान देनेसे उत्तम भूमि मिलती है और भूमिका दान देने वाला धर्मात्मा पुरुष मरणके पीछे पर लोकमें तथा इस लोकमें महान् यश पाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मण जिस सत्पुरुषकी भूमिकी सदा प्रशंसा करते हैं, हे राजन्! उस पुरुषकी भूमिकी शत्रु प्रशंसा नहीं करते हैं और उसको लेनेका लोभ भी नहीं करते हैं ॥ १८ ॥ जो पुरुष आजीविका नष्ट होने पर सब प्रकारका पापकर्म करता है, वह पुरुष एक गोचर्मकी समान भूमिका दान देनेसे पवित्र होजाता है ॥ १९ ॥ जो

भूमिदानमनुत्तमम् ॥ २० ॥ अल्पांतरमिदं शश्वत् पुराणा मेनिरे जनाः। यो यजे ताश्वमेधेन दद्याद्वा साधवे महीम् ॥ २१ ॥ अपि चेत्सुकृतं कृत्वा शंकेरन्नापि पण्डिताः। अशक्यमेकमेवैतद्भूमिदान-मनुत्तमम् ॥२२॥ सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिमुक्तावसूनि च । सर्वमे-तन्महाप्राज्ञो ददाति वसुधां ददत् ॥ २३ ॥ तपो यज्ञः श्रुतं शीलमलोभः सत्यसंधता। गुरुदैवतपूजा च एता वर्तंति भूमिदम् २४ भर्तृनिःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः । ब्रह्मलोकगताः सिद्धा नातिक्रामन्ति भूमिदम् २५ यथा जनित्री स्वं पुत्रं क्षीरेण भरते सदा । अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥ २६ ॥ मृत्युर्वैकिङ्करो दंडस्तमो वह्निः सुदारुणः। घोराश्च दारुणाः पाशा

राजा पापकर्मी होता है भयंकर कर्म करता रहता है उसको भूमिके सर्वोत्तम पवित्र दानका उपदेश देना चाहिये ॥ २० ॥ प्राचीनकालके पुरुष समझते हैं, कि अश्वमेध करने वाले और सत्पुरुषको पृथिवीका दान देनेवाले पुरुषोंमें थोड़ा ही भेद है २१ पुण्यकर्म करने पर पण्डितोंको उसके फलके विषयमें शंका ही रहती है परन्तु भूमिरूप सर्वोत्तम दानके फलके विषयमें शंका करना अशक्य है २२ जो महाबुद्धिमान् पुरुष दान देता है वह महा पुरुष सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, मुक्ता और धन आदि सब वस्तुओंको पाता है २३ जो पुरुष पृथिवीका दान देता है, उसका तप, यज्ञ, शास्त्र, शील, अलोभ, सत्यप्रतिज्ञा, गुरुपूजा, देवपूजा ये सब अनु-सरण करते हैं २४ जो पुरुष अपने स्वामीका कल्याण करनेमें तत्पर रहते हैं और जो रणमें देहको त्याग कर मरण पाते हैं और जो ब्रह्मलोकमें गमन करने वाले सिद्ध होते हैं वे पुरुष भी भूमिदान देने वालेसे आगे नहीं जा सकते । २५ ॥ जैसे जननी अपने पुत्रको सदा दुग्धसे पोषण करती है इसी प्रकार पृथिवी भी दाताको सब रस देकर उस पर अनुग्रह करती है २६ मृत्यु

नोपसर्पति भूमिदम् ॥२७॥ पितृंश्च पितृलोकस्थान् देवलोकाच्च देवताः । संतर्पयति शांतात्मा यो ददाति वसुंधराम् ॥ २८ ॥ कृशाय म्रियमाणाय वृत्तिग्लानाय सीदते । भूमिं वृत्तिकरीं दत्वा सत्री भवति मानवः २९ यथा धावति गौर्वत्सं स्रवंती वत्सला पयः । एवमेव महाभाग भूमिर्भवति भूमिदम् ॥ ३० ॥ फालकृष्टां महीं दत्वा सबीजां सफलामपि । उदीर्णं वापि शरणं यथा भवति कामदः ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणं वृत्तिसंपन्नमाहिताग्निं शुचिव्रतम् । नरः प्रतिग्राह्य महीं न याति परमापदम् ३२ यथा चन्द्रमसो वृद्धि-रहन्यहनि जायते । तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते ३३

तथा कुत्सित कार्य कर लैकिंकर कहलाने वाला, दण्ड, तम और अग्न ये सब दारुण हैं, परन्तु घोर और दारुण पाश भूमिका दान देने वाले पुरुषके पास नहीं आसकते २७ जो शान्त मन वाले पुरुष पृथिवीका दान करते हैं वे पुरुष पितृलोकमें रहने वाले पितरोंको और देवलोकमें रहने वाले देवताओंको तृप्त करते हैं२८ शरीरमें दुर्बल, मरनेकी अनी पर पहुँचे, आजीविकाके कारण उकताते हुए पुरुषको जो आजीविका देने वाली पृथिवीका दान देता है वह यज्ञ करने वाला सत्री कहलाता है २९ हे महाभाग्यवान् युधिष्ठिर ! जैसे वात्सल्यमयी गौ दूधको टपकाती २ बछड़ेकी ओर दौड़ती है ऐसे ही भूमि भी भूमिका दान देने वालेके पीछे दौड़ती है३०हलसे जुती हुई और जिसमें बीज बो दिये गए हैं ऐसी फल-प्रद भूमिका जो दान देता है और जो पुरुष बड़े भारी भवनका दान देता है उसको कामना पूर्ण करने वाला समझना चाहिये३१ आजीविकावान्,अग्निहोत्री और पवित्राचरण वाले ब्राह्मणोंको जो पुरुष भूमिका दान देता है उस पुरुष पर बड़ी भारी विपत्ति नहीं पड़ती है ॥३२॥ जैसे प्रतिदिन चन्द्रमाकी वृद्धि होती है.तैसे ही पृथिवीका दान भी प्रत्येक धान्यके द्वारा बढ़ता रहता है ॥३३॥

अत्र गाथा भूमिगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः। याः श्रुत्वा जामदग्न्येन दत्ता भूः काश्यपाय वै ३४ मामेवादत्त मां दत्त मां दत्त्वा मामवाप्स्यथ। अस्मिन् लोके परे चैव तद्दत्तं जायते पुनः ३५ य इमां व्याहृतिं वेद ब्राह्मणो वेदसंमिताम्। श्राद्धस्य क्रियमाणस्य ब्रह्मभूयं स गच्छति ३६ कृत्यानामभिशस्तानामरिष्टशमनं महत्। प्रायश्चित्तं महीं दत्त्वा पुनात्युभयतो दश ३७ पुनाति य इदं वेद वेदवादं तथैव च। प्रकृतिः सर्वभूतानां भूमिर्वैश्वानरी मता ३८ अभिषिच्यैव नृपतिः श्रावयेदिममागमम्। यथा श्रुत्वा महीं दद्यान्नाद्द्यात् साधुतश्च ताम् ३९ सोऽयं कृत्स्नो ब्राह्म-

---

पृथिवीदानके संबंधमें प्राचीन इतिहासवेत्ता भूमिकी गाई हुई इन गाथाओंको गाते हैं, और इन गाथाओंको सुन कर परशुरामजीने कश्यपको पृथिवीका दान दिया था ॥ ३४ ॥ (पृथिवीकी गाई हुई गाथाएँ इस प्रकार हैं, कि–) मुझको ग्रहण करो, मुझे दानमें दो, मेरा दान करनेसे मुझको पासकोगे, इस जन्ममें मेरा दान करनेसे मुझे दूसरे जन्ममें पासकोगे ३५ जो ब्राह्मण इस वेदकी समान पृथिवीकी गाई हुई गाथाओंको श्राद्ध करते समय गाता है वह महाफल पाता है ३६ अथर्ववेदमें कही हुई मंत्रात्मक महाप्रबल मारणशक्तिको शान्त करने वाली पृथिवीका दान महाप्रायश्चित्तस्वरूप है और पृथिवीका दान देने वाला अपने पिताके पाँच पीढ़ीके पुरुषोंको और अपनी माताके पाँच पीढ़ीके पुरुषोंको पवित्र करता है ३७ और जो पुरुष पृथिवीकी गाई हुई वेदसमान इस गाथाको जानता है वह पुरुष भी अपनी माता पिताकी दश पीढ़ियोंको तार देता है पृथिवी सब प्राणियोंका उत्पत्तिस्थान है और उसका देवता अग्नि है ३८ राजाका राज्यासन पर अभिषेक करनेके अनन्तर यह गाथा सुनानी चाहिये और राजाको इसको सुनने पर पृथिवीका दान देना चाहिये तथा सत्पुरुषोंसे

णार्थो राजार्थश्चाप्यसंशयः । राजा हि धर्मकुशलः प्रथमं भूति-
लक्षणम् ४० अथ येषामधर्मज्ञो राजा भवति नास्तिकः । न ते
सुखं प्रबुध्यंति न सुखं प्रस्वपंति च ४१ सदा भवंति चोद्विग्ना-
स्तस्य दुश्चरितैर्नराः । योगक्षेमा हि बहवो राष्ट्रं नास्याविशंति
तत् ४२ अथ येषां पुनः प्राज्ञो राजा भवति धार्मिकः । सुखं ते
प्रतिबुध्यंते सुसुखं प्रस्वपंति च ४३ तस्य राज्ञः शुभै राज्यैः कर्म-
भिर्निर्वृता नराः । योगक्षेमेण वृष्ट्या च विवर्धंते स्वकर्मभिः ४४
स कुलीनः स पुरुषः स बन्धुः स च पुण्यकृत् । स दाता स च
विक्रांतो यो ददाति वसुंधराम् ४५ आदित्या इव दीप्यंते तेजसा
भुवि मानवाः । ददन्ति वसुधां स्फीतां ये वेदविदुषि द्विजे ४६

पृथिवी नहीं छीननी चाहिये३९ये सब बातें ब्राह्मण और क्षत्रियके लिये कही हैं,क्योंकि–जो राजा धर्मकुशल होता है उसकी प्रजाको ऐश्वर्य मिलता है४० और जो राजा धर्मविमुख होता है नास्तिक होता है उसकी प्रजा सुखपूर्वक नहीं सोती और न सुखपूर्वक जागती रहती है ४१ राजाके अधर्माचरणसे उसकी प्रजा सदा उद्विग्न रहती है और योगक्षेमकी इच्छा रखने वाले बहुतसे पुरुष अधर्मी राजाके देशमें प्रवेश नहीं करते हैं ४२ और जिस प्रजाका राजा बुद्धिमान् और धर्मनिष्ठ होता है उसकी प्रजा सुखमें सोती है और सुखमें जागती है ॥ ४३ ॥ उस राजाके पुण्यकर्मोंसे उसकी प्रजा सुखी रहती है उसके योगक्षेममें वृद्धि होती है और उसका देश जलकी वृष्टिसे सम्पन्न रहा करता है और प्रजा अपने उत्तम कर्मसे वृद्धि पाती रहती है ४४ पृथिवी का दान देने वालोंको कुलीन, पुरुष बन्धु, पुण्यकर्म करने वाला दाता तथा पराक्रमी समझना चाहिये ४५जो पुरुष वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मणको समृद्धिवाली पृथिवी का दान देता है,वह मनुष्य पृथिवी में सूर्यकी समान तेज वाला हो प्रकाशित होता रहता है ४६

यथा सस्यानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले । तथा कामाः प्ररोहंति भूमिदानसमार्जिताः ४७ आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः । शूलपाणिश्च भगवान् प्रतिनन्दंति भूमिदम् ४८ भूमौ जायन्ति पुरुषा भूमौ निष्ठां व्रजन्ति च । चतुर्विधो हि लोकोऽयं योऽयं भूमिगुणात्मकः ॥ ४९ ॥ एषा माता पिता चैव जगतः पृथिवीपते । नानया सदृशं भूतं किंचिदस्ति जनाधिप ५० अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥५१॥ इष्ट्वा क्रतुशतेनाथ महता दक्षिणावता । मघवा वाग्विदां श्रेष्ठं पप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ॥ ५२ ॥ मघवोवाच । मघवन् केन दानेन स्वर्गतः सुखमेधते । यदक्षयं महार्घं च तद्ब्रूहि वदतां वर ॥५३॥ भीष्म उवाच । इत्युक्तः सुरेन्द्रेण ततो देव-

---

पृथिवीमें बीज बोने पर उसमें धान्य उगता है, और भूमिका दान देनेसे सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं ४७ भूमिका दान देने वालोंको आदित्य,वरुण,विष्णु,ब्रह्मा, सोम,अग्नि और भगवान् शूलपाणि मान देते हैं ४८ पुरुष पृथिवीमेंसे उत्पन्न होते हैं, पृथिवीमें लय पाते हैं,स्वेदज,उद्भिज्ज, अण्डज और जरायुज ये चारों प्राणी पृथिवीके विकार हैं ४९ हे पृथिवीपते ! यह भूमि जगत्की माता और पितारूप है, हे जनाधिप ! पृथिवीकी समान और कोई तत्व नहीं है ५० हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास इस प्रकार है ५१ इन्द्रने सौ यज्ञ करके बड़ी २ दक्षिणायें दीं वह फिर वाणीको नियममें रखने वाले बृहस्पतिसे बूझने लगा ५२ इन्द्रने बूझा, कि-हे भगवन् ! हे उत्तम वक्ता ! किस वस्तुका दान करनेसे मनुष्यको स्वर्गसुख मिलता है और कौनसा दान अक्षय और उत्तम माना जाता है यह मुझे बताइये ५३ भीष्मजीने कहा, कि-इसप्रकार देवराजने देवपुरोहितसे बूझा तब महातेजस्वी बृहस्पतिने इन्द्रको उत्तर

पुरोहितः । बृहस्पतिर्बृहत्तेजाः प्रत्युवाच शतक्रतुम् ॥ ५४ ॥ बृहस्पतिरुवाच । सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वृत्रहन् । ददद्देतान्महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥ न भूमिदानाद्देवेन्द्र परं किंचिदिति प्रभो।विशिष्टमिति मन्यामि यथा प्राहुर्मनीषिणः॥५६ ये शूरा निहता युद्धे स्वर्याता रणगृद्धिनः । सर्वे ते विबुधश्रेष्ठ नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥५७॥ भर्तुर्निश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः । ब्रह्मलोकगता युक्ता नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥५८॥ पञ्चपूर्वा हि पुरुषाः षडन्ये वसुधां गताः । एकादश ददद्भूमिं परित्रातीह मानवः ॥ ५९ ॥ रत्नोपकीर्णां वसुधां यो ददाति पुरन्दर । स मुक्तः सर्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥ ६० ॥ महीं स्फीतां ददद्राजन् सर्वकामगुणान्विताम् । राजाधिराजो भवति

दिया,कि-५४बृहस्पतिने कहा, कि-हे वृत्रहन् ! जो महाबुद्धिमान् मनुष्य सुवर्ण, गौ और भूमिका दान देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ५५ हे प्रभो देवेन्द्र! मैं पृथिवीके दानसे अधिक और किसी दानको श्रेष्ठ नहीं मानता हूँ और विद्वान् भी यही कहते हैं ॥ ५६ ॥ जो शूर युद्धमें मरण पाकर स्वर्गमें जाते हैं और रण मचाना चाहते हैं, हे देवराज ! वे भी भूमिदान करने करने वालेसे श्रेष्ठ नहीं माने जाते ॥ ५७ ॥ जो अपने स्वामीका कल्याण करनेमें तत्पर रहते हैं, जो रणमें अपने शरीरको त्याग देते हैं और जो योगद्वारा मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं, वे भी भूमिका दान करने वालेसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते ॥५८॥ जो पुरुष भूमिका दान देता है वह पुरुष अपने पाँच पूर्वजोंको और छः पृथ्वी पर रहने वाले वंशजोंको इस प्रकार ग्यारह पुरुषोंको तार देता है ॥५९॥ हे पुरन्दर ! जो पुरुष रत्नमयी पृथिवीका दान करता है, वह पुरुष सब पापों से छूट जाता है और स्वर्गलोक में पूजा पाता है ॥ ६० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष सब कामनाओं

तद्धि दानमनुत्तमम् ॥ ६१ ॥ सर्वकामसमायुक्तां काश्यपीं यः प्रयच्छति । सर्वभूतानि मन्यन्ते मां ददातीति वासव ॥ ६२ ॥ सर्वकामदुघां धेनुं सर्वकामगुणान्विताम् । ददाति यः सहस्राक्ष स्वर्गं याति स मानवः ॥ ६३ ॥ मधुसर्पिःप्रवाहिण्यः पयोदधिवहास्तथा । सरितस्तर्पयन्तीह सुरेन्द्र वसुधाप्रदम् ॥ ६४ ॥ भूमिप्रदानान्नृपतिर्मुच्यते सर्वकिल्बिषात् । न हि भूमिप्रदानेन दानमन्यद्विशिष्यते ॥ ६५ ॥ ददाति यः समुद्रान्तां पृथिवीं शस्त्रनिर्जिताम् । तं जनाः कथयन्तीह यावद्भवति गौरियम् ॥ ६६ ॥ पुण्यामृद्धिरसां भूमिं यो ददाति पुरन्दर । न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणान्विताः ॥ ६७ ॥ सर्वदा पार्थिवेनेह सततं भूतिमिच्छता ।

को पूर्ण करने वाली समृद्धिमयी पृथिवीका दान देता है, वह पुरुष राजाधिराज होता है, और उसका दान उत्तमोत्तम कहलाता है ॥ ६१ ॥ जो पुरुष सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली भूमिका दान देता है, हे इन्द्र ! तो सब प्राणी यही समझते हैं, कि-यह हमको ही दे रहा है ॥ ६२ ॥ हे सहस्राक्ष ! जो पुरुष सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली और सब गुणों वाली इस पृथिवीका दान देता है, वह मनुष्य स्वर्गमें जाता है ॥ ६३ ॥ हे सुरेन्द्र ! जो पुरुष पृथिवीका दान देता है, उस मनुष्यको मधु घृत और दुग्धको प्रवाहित करने वाली नदियें तृप्त करती हैं ६४ राजा पृथिवीका दान करके सब पापोंसे मुक्त होजाता है, भूमिदानसे अधिक और कोई दान नहीं है ॥ ६५ ॥ जो पुरुष समुद्रतककी भूमिको शस्त्रसे जीत कर उसका दान देता है उस पुरुषकी जब तक वह भूमि रहती है तब तक स्मृति बनी रहती है ॥ ६६ ॥ हे पुरन्दर ! जो पुरुष पवित्र और समृद्धिरूपी रससे भरी हुई भूमिका दान देता है, उस मनुष्यको भूमिदानके माहात्म्यके कारण अक्षय लोक मिलते हैं ॥ ६७ ॥ हे इन्द्र ! अपनी

भूर्देया विधिवच्छक्र पात्रे सुखमभीप्सुना ॥ ६८ ॥ अपि कृत्वा नरः पापं भूमिं दत्वा द्विजातये ।समुत्सृजति तत्पापं जीर्णां त्वचमिवोरगः॥६६॥सागरान् सरितः शैलान् काननानि च सर्वशः । सर्वमेतन्नरः शक्र ददाति वसुधां ददत्॥७०॥ तडागान्युदपानानि स्रोतांसि च सरांसि च । स्नेहान् सर्वरसांश्चैव ददाति वसुधां ददत् ॥ ७१ ॥ ओषधीर्वीर्यसम्पन्ना नगान् पुष्पफलान्वितान् । काननोपलशैलांश्च ददाति वसुधां ददत् ॥७२॥ अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वा च स्वाप्तदक्षिणैः न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते४८ दाता दशानुगृह्णाति दश हन्ति तथाक्षिपन् । पूर्वदत्तां हरन् भूमिं

उन्नति चाहने वाले और सुखकी अभिलाषा रखने वाले राजाको इस लोकमें सुपात्रको शास्त्रानुसार भूमिका दान अवश्य देना चाहिये६८मनुष्य पाप करने पर भी, जैसे सर्प कैंचुलीको त्याग देता है,तैसे भूमिदान करने पर पापको त्याग देता है६६हे शक्र! जोपुरुष पृथिवीका दान देता है.वह सागर,नदी,पर्वत और वन इन सबका दान करने वाला माना जाता है ॥ ७० ॥ पृथिवीका दान देने वाले मनुष्यको तालाव, सरोवर और जलके झरनोंके दान करनेका फल मिलता है तथा सब प्रकारके स्नेहोंके दान करने का फल मिलता है ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य पृथिवीका दान देता है उस मनुष्यको वीर्यवती औषधि पुष्प, फलवाले वृक्ष और वगीचे तथा पर्वतोंका दान करने वाला समझना चाहिये ॥७२॥भूमिका दान देनेसे जो फल मिलता है वह फल अग्निष्टोम आदि यज्ञ कर पूर्ण दक्षिणा देनेसे भी नहीं मिलता है ७३ पृथिवीका दान देने वाला पुरुष माताकी और पिताकी ओरके दश पीढ़ी तकके पुरुषोंका उद्धार करता है और पृथिवीको छीन लेने वाला माता तथा पिताकी दश पीढ़ियोंके मनुष्योंको नरकमें डाल देता है, जो मनुष्य पूर्वजोंकी दी हुई भूमिको छीन लेता है, वह पुरुष नरकमें

नरकायोपगच्छति ॥ ७४ ॥ न ददाति प्रतिश्रुत्य दत्त्वापि च हरेत्तु यः । स बद्धो वारुणैः पाशैस्तप्यते मृत्युशासनात् ॥७५॥ आहिताग्निं सदायज्ञं कृशवृत्तिं प्रियातिथिम् । ये भजन्ति द्विजश्रेष्ठं नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ ७६ ॥ ब्राह्मणेष्वनृणीभूतः पार्थिवः स्यात् पुरन्दर । इतरेषां तु वर्णानां तारयेत् कृशदुर्बलान् ॥७७॥ नाच्छिद्यात् स्पर्शितां भूमिं परेण त्रिदशाधिप । ब्राह्मणस्य सुरश्रेष्ठ कृशवृत्तेः कदाचन ॥ ७८ ॥ यथाश्रु पतितं तेषां दीनानामथ सीदताम् । ब्राह्मणानां हृते क्षेत्रे हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ७९ ॥ भूमिपालं च्युतं राष्ट्राद्यस्तु संस्थापयेन्नरः। तस्य वासः सहस्राक्ष नाकपृष्ठे महीयते ॥८०॥ इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् । गोऽश्ववाहनपूर्णां वा बाहुवीर्यादुपार्जिताम् ॥ ८१ ॥ निधिगर्भां

पड़ता है ॥७४॥ जो पुरुष भूमि देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है और देकर छीन लेता है,वह पुरुष वरुणके पाशोंसे बँधता है और मृत्युके शासनसे संतप्त होता है ॥ ७५ ॥ जो पुरुष अल्प आजीविकावाला होने पर भी अतिथि पर प्रेम रखने वाले अग्निहोत्री ब्राह्मणकी सेवा करता है उसको यमराजके पास नहीं जाना पड़ता ॥ ७६ ॥ हे पुरन्दर ! राजा ब्राह्मणोंके ऋणसे छूट कर दूसरे वर्णके कृशवृत्ति होनेसे दुर्बल हुए पुरुषोंका पालन करे ७७ हे सुरश्रेष्ठ देवराज ! अल्प आजीविका वाले ब्राह्मणको दानमें मिली हुई भूमिको कभी न छीने ॥ ७८ ॥ यदि दरिद्री ब्राह्मण भूमिके छिन जाने पर दुःखित हो नेत्रोंसे आँसू गिराता है तो कुलकी तीन पीढ़ियोंका नाश होजाता है ॥७९॥ हे सहस्रनेत्र ! जो पुरुष देशसे भ्रष्ट हुए राजाको फिर सिंहासनपर बैठाता है, वह पुरुष स्वर्गमें जाता है॥८०॥मनुष्य गन्नोंसे भरी हुई जौ और गेहूँसे छाई, गौ, घोड़े रथ और वाहनोंसे भरपूर पृथिवीको अपने भुजबलसे जीत कर उसका दान करता है, तो उसको अक्षय

ददद्भूमिं सर्वरत्नपरिच्छदाम् । अक्षयाँल्लभते लोकान् भूमि सत्रं हि तस्य तत् ॥८२॥ विधूय कलुषं सर्वं विरजाः सम्मतः सताम् । लोके महीयते सद्भिर्यो ददाति वसुन्धराम् ॥८३॥ यथाप्सु पतितः शक्र तैलबिन्दुर्विसर्पति । तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते ॥८४॥ ये रणाग्रे महीपालाः शूराः समितिशोभनाः । वध्यन्तेऽभिमुखाः शक्र ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥८५॥ नृत्यगीतपरा नार्यो दिव्यमाल्यविभूषिताः । उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र तथा भूमिप्रदं दिवि॥८६॥ मोदते च सुखं स्वर्गे देवगन्धर्वपूजितः । यो ददाति महीं सम्यग्विधिनेह द्विजातये ॥ ८७ ॥ शतमप्सरसश्चैव दिव्यमाल्यविभूषिताः । उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र ब्रह्मलोके धराप्रदम् ॥ ८८ ॥ उपतिष्ठन्ति पुण्यानि सदा भूमिप्रदं नरम् । शंखं भद्रासनं छत्रं

लोक मिलते हैं और वह उसका भूमियज्ञ कहलाता है ८१-८२ भूमिदान करने वाला पुरुष सब पापोंका नाश करके शुद्ध होजाता है, सत्पुरुषोंमें मान्य होजाता है और सज्जन पुरुष उसका सत्कार करते हैं ॥ ८३ ॥ हे शक्र ! जलमें डाली हुई तैलकी बूँद जैसे फैल जाती है इसी प्रकार भूमिदान करने वालेका प्रत्येक धान्य बढता रहता है ॥८४॥ हे शक्र ! शोभायमान प्रतीत होने वाले जो राजे रणमें सम्मुख डट कर मारे जाते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं ॥८५॥ हे देवेन्द्र ! जो भूमिका दान देते हैं उनके सामने देवलोकमें दिव्य माल्योंसे विभूषित स्त्रियें नाचती और बजाती हुई आती हैं ॥ ८६ ॥ जो पुरुष विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको इस लोकमें पृथिवीका दान देते हैं, देवता और गंधर्व उनकी सेवा करते हैं, और वे स्वर्गमें सुखपूर्वक रहते हैं ॥ ८७ ॥ हे देवेन्द्र ! जो पुरुष भूमिका दान देते हैं उन पुरुषोंकी सेवामें सौ अप्सरायें दिव्य पुष्पोंसे विभूषित होकर उपस्थित होती हैं ८८ पुण्य, शंख, भद्रासन, छत्र, सुन्दर घोडे और उत्तम वाहन भूमिका दान देनेवालेकी

वराश्ववरवाहनम् ॥ ८९ ॥ भूमिप्रदानात् पुष्पाणि हिरण्यनि-
चयास्तथा । आज्ञा सदाप्रतिहता जयशब्दा वसूनि च ॥ ९० ॥
भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरन्दर । हिरण्यपुष्पाश्चौषध्यः
कुशकांचनशाद्वलाः ॥ ९१ ॥ अमृतप्रसवां भूमिं प्राप्नोति पुरुषो-
ऽददत् । नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः । नास्ति
सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः ॥ ९२ ॥ एतदांगिरसा-
च्छ्रुत्वा वासवो वसुधामिमाम् । वसुरत्नसमाकीर्णां ददावांगिरसे
तदा ॥९३॥ य इदं श्रावयेच्छ्राद्धे भूमिदानस्य संभवम् । न तस्य
रक्षसां भागो नासुराणां भवत्युत ॥ ९४ ॥ अक्षयं च भवेद्दत्तं
पितृभ्यस्तन्न संशयः । तस्माच्छ्राद्धेष्विदं विद्वान् भुञ्जतः श्राव-

सेवामें उपस्थित होते हैं ८९ पृथिवीका दान देनेसे उत्तम पुष्प,
सुवर्णकी राशि, सदा अप्रतिहत आज्ञा, जय जयकारके शब्द
और धन मिलता है ९० हे पुरन्दर ! भूमिका दान करने वालोंको
पुण्यका लाभ होता है, तथा पुण्यके फलरूपमें स्वर्ग सुवर्ण, पुष्प
औषधि, दर्भ, काञ्चन और हरियाली भूमि आदि मिलती है ९१
पृथिवीका दान देने वाला पुरुष अमृतको उत्पन्न करने वाली
भूमिको पाता है, भूमिके समान दान नहीं है, माताकी समान
गुरू नहीं है, सत्यकी समान धर्म नहीं है, और दानकी समान
भण्डार नहीं है ९२ आंगिरस गोत्री बृहस्पतिसे यह बात सुन
इन्द्रने उसी समय रत्नोंसे भरपूर भूमि बृहस्पतिको दानमें दी ९३
जो पुरुष श्राद्धमें इस भूमिदानकी कथाको सुनाता है, उसके
श्राद्धमें राक्षस और असुर भाग नहीं लेसकते ॥ ९४ ॥ और
वह श्राद्ध पितरोंको अक्षय-रीतिसे पहुँचता है, यह बात निस्स-
न्देह सत्य है, अतः श्राद्धमें जब ब्राह्मण भोजन करनेके लिये
बैठें तब उनको यह भूमिदानका आख्यान सुनाना चाहिये ९५
हे भरतशार्दूल ! मैंने तुमसे यह सब दानोंमें श्रेष्ठ दानका वर्णन

येद्द्विजान् ॥ ६५ ॥ इत्येतत् सर्वदानानां श्रेष्ठमुक्तं तवानघ । मया भरतशार्दूल किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-धर्मे इन्द्रबृहस्पतिसंवादे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । कानि दानानि लोकेस्मिन् दातुकामो महीपतिः । गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दद्याद्भरतसत्तम ॥ १ ॥ केन तुष्यन्ति ते सद्यः किं तुष्टाः प्रदिशन्ति च । शंस मे तन्महाबाहो फलं पुण्यकृतं महत् ॥ २ ॥ दत्तं किं फलवद्राजन्निह लोके परत्र च । भवतः श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ॥३॥ भीष्म उवाच । इममर्थं पुरा पृष्टो नारदो देवदर्शनः । यदुक्तवानसौ वाक्यं तन्मे निगदतः शृणुः ॥४॥ नारद उवाच । अन्नमेव प्रशसन्ति देवा ऋषिगणास्तथा ।लोकतन्त्रं हि संज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रति-

---

किया अब तू और क्या सुनना चाहता है ॥ ६६ ॥ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे भरतसत्तम ! इस जगत्में दान देना चाहने वाला राजा सुपात्र ब्राह्मणको किस २ वस्तुका दान देय ? ब्राह्मण किस वस्तुके दान देनेसे तुरत प्रसन्न होजाते हैं और वे प्रसन्न होकर क्या देते हैं, हे महाभुज ! यह मुझसे कहिये, क्योंकि-पुण्यका फल महान् होता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! इस संसारमें किस वस्तुको देनेसे इस लोकमें और परलोकमें फल मिलता है यह मैं आपसे सुनना चाहता हूँ, अतः आप इसका विस्तारसे वर्णन करिये ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–देवताओंकी समान दर्शन वाले नारदजीसे पहिले मैंने यह कथा बूझी थी, उन्होंने मुझे जो कथा सुनाई थी, वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४ ॥ नारदजीने कहा, कि– देवता और ऋषि अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं लोकव्यवहार और बुद्धि ये सब अन्नके आधार पर ही स्थिर

ष्ठितम् ॥ ५ ॥ अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति । तस्मा-
दन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः ॥६॥ अन्नमूर्जस्करं लोके
प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः । अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं
प्रभा ॥ ७ ॥ अन्नाद्गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तापसास्तथा ।
अन्नाद्भवन्ति वै प्राणाः प्रत्यक्षं नात्र संशयः ॥ ८ ॥ कुटुंबिने
सीदते च ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो
भूतिमिच्छता ॥ ९ ॥ ब्राह्मणायाभिरूपाय यो दद्यादन्नमर्थिने ।
विदधाति निधिं श्रेष्ठं पारलौकिकमात्मनः १० श्रान्तमध्वनि वर्तन्तं
वृद्धमर्हमुपस्थितम् । अर्चयेद्भूतिमन्विच्छन् गृहस्थो गृहमागतम् ११
क्रोधमुत्पतितं हित्वा सुशीलो वीतमत्सरः। अन्नदः प्राप्नुते राजन्
दिवि चेह च यत्सुखम् ॥ १२ ॥ नावमन्येदभिगतं न प्रणुद्यात्

हैं ॥ ५ ॥ इस जगत्में अन्नदानकी समान और कोई दान नहीं था और न होगा, इसीलिये मनुष्य अधिकतर अन्नदान देना चाहते हैं ॥ ६ ॥ अन्न शरीरके तेजको बढ़ानेवाला है. जगत्में प्राण अन्नके आधार पर ही स्थिर रहते हैं और हे प्रभो ! यह सब जंगम जगत् अन्नके आधार पर ही स्थिर है ७ इस जगत् में गृहस्थ, संन्यासी तथा तपस्वी भी अन्नके आधार पर स्थित हैं, यह प्रत्यक्ष है और इसमें कुछ सन्देह नहीं है ८ जिसको अपने कल्याणकी इच्छा हो उसको अन्नके लिये दुःखी रहने वाले कुटुम्बी महात्मा ब्राह्मणको तथा भिक्षुकको अन्नका दान देना चाहिये ९ जो पुरुष याचना करनेवाले सुपात्र ब्राह्मणको अन्नका दान देता है, वह मनुष्य अपने लिये परलोकमें उत्तम भण्डार तयार करता है १० मार्गमें चलनेसे थका हुआ सुपात्र वृद्ध पुरुष अपने घर आजाय तो कल्याण चाहने वाला गृहस्थ उसका पूजन करे ॥११॥ पुरुष क्रोध और मत्सरको त्याग कर सुशील रहकर अन्नका दान करता है तो वह इस लोकमें और परलोकमें

कदाचन। अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति ॥१३॥
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते। आर्तायादृष्टपूर्वाय स मह-
द्धर्ममाप्नुयात् ॥१४॥ पितॄन्देवानृषीन्विप्रानतिथींश्च जनाधिप।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत्॥१५॥ कृत्वातिपातकं
कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने। ब्राह्मणाय विशेषेण न पापेन मुह्यते१६
ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महाफलम्। अन्नदानं हि शूद्रे च
ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥१७॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देश-
मेव च। भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं प्रयाचितः ॥१८॥ अन्न-
दस्यान्नवृक्षाश्च सर्वकामफलप्रदाः। भवन्ति चेह चामुत्र नृपतेर्नात्र
संशयः ॥ १९ ॥ आशंसन्ते हि पितरः सुवृष्टिमिव कर्षकाः।

सुख भोगता है१२अपने घर आये हुए पुरुषका अपमान न करना चाहिये और उसको कष्ट भी न दे,चाण्डालको भी दिया हुआ दान और कुत्तेको भी डाली हुई रोटी व्यर्थ नहीं जाती है१३जो पुरुष मार्गमें चलने वाले पहिले कभी न देखे हुए दुःखी मनुष्यको पवित्र अन्नका दान देता है, उसको बड़ा पुण्य होता है १४ हे राजन्! जो पुरुष पितरोंको, देवताओंको,ऋषियोंको, ब्राह्मणों को और अतिथियोंको अन्न देकर प्रसन्न करता है, उस पुरुषको महापुण्य होता है ॥ १५ ॥ जो पुरुष महापापकर्म करके भी याचक ब्राह्मणको अन्नका दान देता है, तो वह पापके कारण मोहमें नहीं पड़ता है १६ ब्राह्मणको दान देनेसे अक्षय फल मिलता है और शूद्रको अन्न देनेसे महाफल होता है, ब्राह्मणको और शूद्रको अन्न देनेसे महाफल होता है १७ ब्राह्मण अन्नकी याचना करनेको आवे तो उससे गोत्र, चरण, स्वाध्याय तथा देश आदि न बूझै और दान देदेय १८ जो राजा अन्नका दान देता है उस राजाकी अन्नके वृक्ष परलोककी और इस लोककी भी सब कामनाओंको अवश्य पूर्ण करते हैं १९ किसान

अस्माकमपि पुत्रो वा पौत्रो वान्नं प्रदास्यति ॥ २० ॥ ब्राह्मणो हि महद्भूतं स्वयं देहीति याचति । अकामो वा सकामो वा दत्वा पुण्यमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥ ब्राह्मणः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् । विप्रा यदधिगच्छन्ति भिक्षमाणा गृहं सदा । सत्कृताश्च निवर्तन्ते तदतीव प्रवर्धते । महाभागे कुले प्रेत्य जन्म चाप्नोति भारत ॥ २३ ॥ दत्वा त्वन्नं नरो लोके तथा स्थानमनुत्तमम् । नित्यं मिष्टान्नदायी तु स्वर्गे वसति सत्कृतः ॥२४॥ अन्नं प्राणा नराणां हि सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् । अन्नदः पशुमान् पुत्री धनवान् भोगवानपि ॥ २५ ॥ प्राणवांश्चापि भवति रूपवांश्च तथा नृप।अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदः प्रोच्यते तु सः२६

जैसे सुवृष्टिकी बाट देखता रहता है, ऐसे ही पितर भी पुत्र और पौत्रोंके अन्न देनेकी बाट देखते रहते हैं २० ब्राह्मण एक उत्तम प्राणी है वह जब स्वयं "दो" कह कर याचना करता है, उस समय सकामभावसे अथवा निष्कामभावसे देने वालोंको पुण्य होता है २१ ब्राह्मण सब मनुष्योंका अतिथि है, सबसे पहिले ब्राह्मणोंको भोजन करनेका अधिकार है ब्राह्मण घर घर भिक्षा माँग कर जिस वस्तुको इकट्ठी करते हैं २२ और जिससे सत्कार पाते हैं, वह वस्तु सदा बढ़ती रहती है और हे भरतवंशी राजन ! दान देने वाला पुरुष मरणके पीछे दूसरे जन्ममें महाभाग्यशाली होकर उत्पन्न होता है २३ जो मनुष्य सदा ही अन्नका दान करता है, सर्वोत्तम स्थानका दान करता है, तथा सर्वदा मिष्टान्नका दान करता है, वह स्वर्गमें रहता है और देवता उसका सत्कार करते हैं २४ अन्न मनुष्योंके प्राण हैं, क्योंकि- सब जगत् अन्नके आधार पर है, अन्न देने वाला पुरुष पशुमान्, पुत्रवान्, धनवान्, भोगवान्, बलवान् और रूपवान् होता है, इस जगत्में जो पुरुष अन्न देता

अन्नं हि दत्वातिथये ब्राह्मणाय यथाविधि । प्रदाता सुखमाप्नोति दैवतैश्चापि पूज्यते ॥ २७ ॥ ब्राह्मणो हि महद्भूतं क्षेत्रभूतं युधिष्ठिर । उप्यते तत्र यद्बीजं तद्धि पुण्यफलं महत् ॥२८॥ प्रत्यक्षं प्रीतिजननं भोक्तुर्दातुर्भवत्युत । सर्वाण्यन्यानि दानानि परोक्षफलवन्त्युत ॥ २९ ॥ अन्नाद्धि प्रसवं यान्ति रतिरन्नाद्धि भारत । धर्मार्थावन्नतो विद्धि रोगनाशं तथान्नतः ॥३०॥ अन्नं ह्यमृतमित्याह पुरा कल्पे प्रजापतिः । अन्नं भुवं दिवं खं च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥३१॥ अन्नप्रणाशे भिद्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः। बलं बलवतोऽपीह प्रणश्यत्यन्नहानितः ॥ ३२ ॥ आवाहाश्च विवाहाश्च यज्ञाश्चान्नमृते तथा । निवर्तन्ते नरश्रेष्ठ ब्रह्म चात्र प्रली-

---

है, वह पुरुष सदा प्राण देनेवाला कहलाता है ॥ २५॥२६ ॥ जो पुरुष विधिपूर्वक अतिथि ब्राह्मणको अन्न दान देता है, वह सुख पाता है और देवता भी उसकी पूजा करते हैं २७ हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण महान् प्राणी और क्षेत्रस्वरूप हैं, उनमें जो बीज बोया जाता है उसमेंसे महापुण्यफल उत्पन्न होता है २८ अन्न का दान दाताको और भोक्ताको प्रत्यक्ष रीतिसे प्रसन्न करता है और दूसरे सब दान अप्रत्यक्ष रीतिसे फल देते हैं २९ हे भरतवंशी राजन् ! अन्नमेंसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे रति उत्पन्न होती है और अन्नसे धर्म तथा अर्थकी उत्पत्ति होती है और रोग का नाश होजाता है ३० पूर्वकल्पमें प्रजापतिने अन्नको अमृत कहा है, इतना ही नहीं परन्तु अन्नको भूमि, स्वर्ग तथा आकाश कहा है,संक्षेपमें कहा जाय तो सम्पूर्ण जगत् अन्नके आधार पर ही स्थित है३१अन्नका आहार न करने पर शरीरमें रहने वाली पाँच धातुएँ नष्ट होजाती हैं और अन्नके अभावसे बलवान् भी नष्ट होजाते हैं३२आमंत्रण,विवाह और यज्ञ अन्नके बिना नहीं होसकते,इसी प्रकार हे नरश्रेष्ठ!अन्नके बिना वेद भी नष्ट होजाते

यते ॥३३॥ अन्नतः सर्वमेतद्धि यत्किंचित् स्थाणुजंगमम् । त्रिषु लोकेषु धर्मार्थमन्नदेयमतो बुधैः ॥ ३४ ॥ अन्नदस्य मनुष्यस्य बलमोजो यशांसि च।कीर्तिश्च वर्धते शश्वत्त्रिषु लोकेषु पार्थिव ३५ मेघेष्वूर्ध्वं सन्निधत्ते प्राणानां पवनः पतिः । तच्च मेघगतं वारि-शक्रो वर्षति भारत ॥ ३६ ॥ आदत्ते च रसान् भौमानादित्यः स्वगभस्तिभिः । वायुरादित्यतस्तांश्च रसान् देवः प्रवर्षति ॥३७॥ तद्यदा मेघतो वारि पतितं भवति क्षितौ । तदा वसुमती देवी स्निग्धा भवति भारत ॥ ३८ ॥ ततः सस्यानि रोहन्ति येन वर्त-यते जगत् । मांसमेदोऽस्थिशुक्राणां प्रादुर्भावस्ततः पुनः ॥३९॥ संभवन्ति ततः शुक्रात् प्राणिनः पृथिवीपते।अग्नीषोमौ हि तच्छुक्रं सृजतः पुष्यतश्च ह ॥ ४० ॥ एवमन्नाद्धि सूर्यश्च पवनः शुक्रमेव

हैं३३तीनों लोकोंके स्थावर जंगमात्मक सब पदार्थ अन्नके आधार पर हैं, अतः विद्वानोंको अन्नके लिये धर्माचरण करना चाहिये ३४ हे पार्थिव ! अन्न देने वाले मनुष्यके बल, ओज, यश तथा कीर्ति की तीनों लोकोंमें वृद्धि होती है ३५ प्राणोंका स्वामी पवन मेघों जलकी वृष्टि करता है और हे भरतवंशी राजन् ! उस मेघमें स्थित जलको इन्द्र बरसाता है ३६ सूर्य अपनी किरणोंसे भूमि मेंसे रसको ग्रहण करता है और वायुदेव सूर्यमेंसे उन रसों को बरसाते हैं ॥ ३७ ॥ जब मेघमेंसे पृथिवी पर जल पड़ता है तब पृथिवी देवी हे भरतवंशी राजन् स्निग्धा (भीगी होजाती है) ३८ तब पृथिवीमें अन्न उत्पन्न होता है और उससे जगत् अपनी आजीविका चलाता है और उस अन्नसे मांस मेद, अस्थि और वीर्यकी उत्पत्ति होती है ॥ ३९ । हे राजन् ! वीर्यमेंसे प्राणियों की उत्पत्ति होती है और अग्नि तथा सोम उस शुक्रको उत्पन्न करते हैं तथा उसका पोषण करते हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार अन्न मेंसे सूर्य, पवन तथा शुक्र उत्पन्न होते हैं इसप्रकार सब एकमेंसे

च। एकमेव स्मृतो राशिस्ततो भूतानि जज्ञिरे ॥ ४१ ॥ प्राणान् ददाति भूतानां तेजश्च भरतर्षभ । गृहमभ्यागतायाथ यो दद्या-दन्नमर्थिने ॥ ४२ ॥ भीष्म उवाच । नारदेनैवमुक्तोहमदामन्नं सदा नृप । अनसूयुस्त्वमप्यन्नं तस्माद्देहि गतज्वरः ॥ ४३ ॥ दत्त्वान्नं विधिवद्राजन् विप्रेभ्यस्त्वमिति प्रभो । यथावदनुरूपेभ्यस्ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ४४ ॥ अन्नदानां हि ये लोका-स्तांस्त्वं शृणु जनाधिप । भवनानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महा-त्मनाम् ॥४५॥ तारासंस्थानि रूपाणि नानास्तंभान्वितानि च । चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किंकणीजालवन्ति च ॥४६॥ तरुणादित्य-वर्णानि स्थावराणि चराणि च । अनेकशतभौमानि सान्तर्जल-

ही उत्पन्न होते हैं और इनमेंसे प्राणी उत्पन्न होते हैं४१जो पुरुष अपने घर आये हुए याचकको अन्न देता है हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वह पुरुष प्राणियोंको प्राण और तेजका दान देता है४२ भीष्मजीने कहा, कि- हे राजन् ! इस प्रकार मुझसे नारदने कहा, कि-इससे मैं सदा ही अतिथिको अन्न देता था अतः तू भी ईर्षा और अभिमानको त्याग कर अतिथिको अन्न दे ॥४३॥ हे राजन्! तू विधिके अनुसार सुपात्र ब्राह्मणोंको अन्नका दान देगा तो हे प्रभो ! तू स्वर्गमें जावेगा ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अन्नका दान देने वालोंको जो लोक मिलते हैं, उन लोकोंको तू सुन, अन्नका दान देनेवाले महात्माओंके भवन स्वर्गमें झलझलाते रहते हैं ॥ ४५ ॥ और उन भवनोंके रूप आकाशमें चमकते हुए तारों की समान चमकते रहते हैं, उनमें अनेक स्तंभ होते हैं,वे चन्द्र-मण्डलकी समान श्वेतवर्णके होते हैं, उनमें झालरें लटकती रहती हैं ॥ ४६ ॥ कोई २ भवन उदित होते हुए सूर्यकी समान होते हैं, इनमें कितने ही स्थिर रहनेवाले होते हैं और कितने (चरा चलने वाले होते हैं इन घरोंमें भूमि पर होने वाले बहुतसे

चराणि च ॥ ४७ ॥ वैदूर्यार्कप्रकाशानि रौप्यरुक्ममयानि च ।
सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः ॥४८॥ वाप्यो वीथ्यः
सभाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः । घोषवन्ति च यानानि युक्ता-
न्यथ सहस्रशः ॥ ४९ ॥ भक्ष्यभोज्यमया शैला वासांस्या भर-
णानि च । क्षीरं स्रवन्ति सरितस्तथा चैवान्नपर्वताः ॥ ५० ॥
प्रसादाः पाण्डुराभ्राभाः शय्याश्च काञ्चनोज्ज्वलाः । तान्य-
न्नदाः प्रपद्यन्ते तस्मादन्नप्रदो भव ॥ ५१ ॥ एते लोकाः पुण्य-
कृता अन्नदानां महात्मनाम् । तस्मादन्नं प्रयत्नेन दातव्यं मान-
वैर्भुवि ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे अन्यदान प्रशंसायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३ ॥

युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं मे भवतो वाक्यमन्नदानस्य यो विधिः ।

पदार्थ होते हैं उनके भीतर जलाशय और जलचर होते हैं)॥४७॥ कितने ही वैदूर्यमणि और सूर्यकी समान कान्तिमान् होते हैं और चाँदी तथा सुवर्णकी सामग्रीसे सुशोभित होते हैं और उन घरोंमें सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले वृक्ष खड़े होते हैं ४८ उन घरोंमें सहस्रों बावड़ियें, वीथियें, सभागृह, कूप, तालाव और झमकारती हुई सवारियें होती हैं ॥४९॥ भक्ष्य और भोज्योंके पर्वत, वस्त्र, गहने, दुग्धके प्रवाहवाली नदियें अन्नके ढेर, श्वेत वर्णके मेघोंकी समान अट्टालिकायें, और सुवर्णकी समान दमकती हुई शय्याएँ होती हैं, ये सब अन्नका दान देनेवालोंको मिलती हैं, अतः तू अन्नका दान दे ॥ ५०॥५१॥ ऊपर कहे हुए पुण्यसे मिलने वाले लोक अन्नका दान देनेवाले महात्माओं को मिलते हैं, अतः पृथ्वी पर मनुष्योंको प्रयत्न करके दान देना चाहिये ॥ ५२ ॥ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि–मैंने आपसे अन्नदानकी विधि सुनी अब

नक्षत्रयोमस्येदानी दानकल्पं ब्रवीहि मे ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । देवक्याश्चैव संवादे महर्षेर्नारदस्य च ॥ २ ॥ द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम् । पप्रच्छेदं वचः प्रश्नं देवकी धर्मदर्शनम् ॥ ३ ॥ तस्या संपृच्छ्यमानाया देवर्षिर्नारदस्ततः । आचष्टविधिवत् सर्वं तच्छृणुष्व विशाम्पते ॥ ४ ॥ नारद उवाच । कृत्तिकासु महाभागे पायसेन ससर्पिषा । सन्तर्प्य ब्राह्मणान् साधूंल्लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ५ रोहिण्यां प्रसृतैर्मार्गैर्मांसैरन्नेन सर्पिषा । पयोऽन्नपानं दातव्यमनृणार्थं द्विजातये ॥ ६ ॥ दोग्ध्रीं दत्वा सवत्सां तु नक्षत्रे सोमदैवते । गच्छन्ति मानुषाल्लोकात् स्वर्गलोकमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ आर्द्रायां कृसरं दत्वा तिलमिश्रमुपोषितः । नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥ ८ ॥ पूपान् पुनर्वसौ दत्वा तथैवान्नानि

आप यह बताइये, कि-किस२ नक्षत्रमें दान करनेसे क्या फल होता है ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-इस विषयमें देवकी और महर्षि नारदका संवादरूप एक प्राचीन इतिहास इस प्रकार है २ एक समय देवताकी समान दर्शन वाले नारदजी द्वारकामें गए, उस समय देवकीने नारदजीसे धर्मसंबंधी कुछ प्रश्न बूझे थे ३ हे राजन् ! देवकीके प्रश्न करने पर नारदजीने उनके विधिपूर्वक उत्तर दिये थे, उनको तू सुन ॥४॥ नारदजीने कहा, कि-हे महाभाग्यवती देवकी ! कृतिका नक्षत्रमें सुपात्र ब्राह्मणोंको दूधपाक और घृत जिमाकर सन्तुष्ट करने पर श्रेष्ठ साधुओंके लोक मिलते हैं ५ रोहिणी नक्षत्रमें पितरोंके ऋणसे छूटनेके लिये ब्राह्मणोंको मृगके मांस, अन्न, घी, दूध तथा शरबत दान दे ६ सोमदैवत अथवा मृगशिरा नक्षत्रमें सवत्सा दुधेर गौका दान देनेसे मनुष्य मनुष्य लोकसे उत्तम स्वर्गलोकमें जाता है ७ पुरुष आर्द्रानक्षत्रमें उपवास करके तेल और खिचड़ीका दान देनेसे दुःखोंके पार होजाता

शोभने। यशस्वी रूपसम्पन्नो बह्वन्नो जायते कुले ॥ ९ ॥ पुष्येण कनकं दत्वा कृतं वा कृतमेव च। अनालोकेषु लोकेषु सोमवत् स विराजते ॥ १० ॥ आश्लेषायां तु यो रूप्यमृषभं वा प्रयच्छति। स सर्वभयनिर्मुक्तः सम्भवानधितिष्ठति ॥ ११ ॥ मघासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि मानवाः। प्रदाय पुत्रपशुमानिह प्रेत्य च मोदते ॥ १२ ॥ फल्गुनीपूर्वसमये ब्राह्मणानामुपोषितः। भक्ष्यान् फाणितसंयुक्तान् दत्वा सौभाग्यमृच्छति ॥ १३ ॥ घृतक्षीरसमायुक्तं विधिवत् षष्टिकौदनम्। उत्तराविषये दत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ १४ ॥ यद्यत् प्रदीयते दानमुत्तराविषये नरैः।

है और उस्तरेकी धारकी समान पर्वतोंको भी लाँघ जाताहै ८ हे सुन्दरि! पुनर्वसु नक्षत्रमें अपूप और अन्नका दान देनेसे पुरुष यशस्वी, रूपसंपन्न और बहुतसे अन्न वाला होता है और उत्तम कुलमें उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ पुष्य नक्षत्रमें सुवर्णके आभूषणों का अथवा सुवर्णका दान देनेवाला पुरुष स्वयंप्रकाश लोकोंमें चन्द्रमाकी समान प्रकाशित होता है ॥ १० ॥ जो पुरुष आश्लेषा नक्षत्रमें चाँदीका और बैलका दान देता है तो सब भयोंसे छूट जाता है और उसको सब प्रकारकी समृद्धि मिलती है ॥ ११ ॥ जो पुरुष मघा नक्षत्रमें तिलसे भरे हुए वर्धमान नामक पात्रोंका दान देता है, वह पुरुष पुत्र और पशुवाला होता है और मरण केपीछे स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें उपवास करके ब्राह्मणोंको फणित (गोरसविकार) युक्त भोजन कराता है तो सौभाग्यवान् होता है ॥ १३ ॥ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको दूध और घी मिला सट्टीके चावलोंका भात विधिपूर्वक खिलाता है तो वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजा पाता है १४ उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें पुरुष जिन जिन पदार्थोंका दान देता है, वह २ पदार्थ अनन्त और महाफल

महाफलमनन्तं तद्भवतीति विनिश्चयः ॥ १५ ॥ हस्ते हस्तिरथं दत्वा चतुर्युक्तमुपोषितः । प्राप्नोति परमाँल्लोकान् पुण्यकामसमन्वितान् ॥ १६ ॥ चित्रायां वृषभं दत्वा पुण्यगन्धांश्च भारत । चरन्त्यप्सरसां लोके रमन्ते नन्दने तथा ॥ १७ ॥ स्वात्यामथ धनं दत्वा यदिष्टतममात्मनः । प्राप्नोति लोकान् स शुभानिह चैव महद्यशः ॥ १८ ॥ विशाखायामनड्वाहं धेनुं दत्वा च दुग्धदाम् । सप्रासंगं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंयुतम् ॥ १९ ॥ पितॄन् देवांश्च प्रीणाति प्रेत्य चानंत्यमश्नुते । न च दुर्गाण्यवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ २० ॥ दत्वा यथोक्तं विप्रेभ्यो वृत्तिमिष्टां स विंदति। नरकादींश्च संक्लेशान्नाप्नोतीति विनिश्चयः २१ अनुराधासु प्रावारं वरान्नं समुपोषितः । दत्वा युगशतं चापि

देनेवाला होजाता है, यह निश्चय है १५ जो पुरुष हस्तनक्षत्रमें उपवास करके चार हाथियोंसे जुते हस्तिरथका दान देताहै उसको पुण्यमयी कामनावाले उत्तमलोक मिलते हैं१६हे भरतवंशी राजन् ! चित्रा नक्षत्रमें बैलका दान देनेसे और पवित्र सुगंधित पदार्थोंका दान देनेसे मनुष्य अप्सराओंके लोकमें जाता है और नन्दनवनमें रमण करता है१७मनुष्य स्वाति नक्षत्रमें धनका दान देनेसे अपनी अतिप्रिय वस्तुको पाता है तथा शुभ लोकोंको और महायशको पाता है१८विशाखा नक्षत्रमें वृषभका और दूध देनेवाली गौका दान देने वाला और प्रासंग और छत्रीवाले और परदेवाले वस्त्रोंका दान देनेवाला पुरुष पितरोंको और देवताओंको प्रसन्न करता है तथा परलोकमें अनन्त सुख भोगता है और दान देनेवाला दुःख नहीं पाता है किंतु मरणके पीछे स्वर्गलोकमें जाता है॥१९॥२०॥ जो पुरुष इस प्रकार ब्राह्मणोंको दान देता है, वह मनमानी आजीविका पाता है और नरक आदि दुःखोंको नहीं पाता॥२१॥ जो मनुष्य अनुराधा नक्षत्रमें उपवास करके दुशाले और उत्तम अन्न

नरः स्वर्गे महीयते ॥ ... सम्पन्नो वह्वन्नो जायते कुले ॥ ६ ॥
समूलकम् । ज्येष्ठायामृद्धिमिष्टां वै गतिमिष्टां स गच्छति ॥२३॥
मूले मूलफलं दत्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः । पितॄन् प्रीणयते
चापि गतिमिष्टां च गच्छति ॥ २४ ॥ अथ पूर्वास्वषाढासु दधि-
पात्राण्युपोषितः । कुलवृत्तोपसंपन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २५ ॥
पुरुषो जायते प्रेत्य कुले सुबहुगोधने । उदमन्थं ससर्पिष्कं प्रभूत-
मधिफाणितम् ॥२६॥ दत्वोत्तरास्वषाढासु सर्वकामानवाप्नुयात् ।
दुग्धं त्वभिजिते योगे दत्वा मधुघृतप्लुतम् । धर्मनित्यो मनीषिभ्यः
स्वर्गलोके महीयते ॥ २७ ॥ श्रवणे कंबलं दत्वा वस्त्रांतरितमेव
च । श्वेतेन याति यानेन स्वर्गलोकानसंवृतान् ॥२८॥ गोमयुक्तं
धनिष्ठासु यानं दत्वा समाहितः । वस्त्ररशिधनं सद्यः प्रेत्य राज्यं

दान देता है वह मनुष्य सौ युग तक स्वर्गमें आनन्द भोगता है २२ मनुष्य ब्राह्मणोंको ज्येष्ठा नक्षत्रमें नरिचेके शाकका दान देता है उसको मनमानी समृद्धि और गति मिलती है २३ जो मनुष्य मूल नक्षत्रमें सावधानीके साथ मूलीका दान देता है, उसके पितर प्रसन्न होते हैं और उसको मनचाही गति मिलती है २४ जो पुरुष पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें उपवास करके कुलीन और सदाचारसम्पन्न तथा वेदशास्त्र पारंगत ब्राह्मणको दहीके पात्रका दान देता है वह पुरुष मरणके पीछे गोधनवाले कुलमें उत्पन्न होता है, जलका घड़ा, घृत, सत्तू, और अधिकाणित वस्तुका दान देनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं, अभिजित् नक्षत्रमें जो धर्मात्मापुरुष शहद और घी मिला हुआ दुग्ध ब्राह्मणोंको देता है, वह स्वर्गलोकमें पूजा पाता है २५-२७ जो पुरुष श्रवण नक्षत्रमें कम्बलका तथा कम्बलके साथमें और २ वस्त्रोंका दान देता है, वह श्वेत विमानमें बैठ कर खुले हुए द्वारवाले स्वर्गलोकमें जाता है २८ जो मनुष्य धनिष्ठा नक्षत्रमें सावधान होकर वृषभोंसे जुते हुए रथ आदि

पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् । [illegible]योगे दत्वा सागुरुचन्दनान् ।
चिदवाप्नुते ॥ ६ ॥ बृहस्पत्य गन्धांश्च शाश्वतान् ॥ ३० ॥
अश्विनोश्[illegible]योगे राजमाषान् प्रदाय तु । सर्वभक्षफलोपेतः सवै
प्रेत्य सुखी भवेत् ॥ ३१ ॥ औरभ्रमुत्तरायोगे यस्तु मांसं प्रय-
च्छति । स पितॄन् प्रीणयति वै प्रेत्य चानंत्यमश्नुते ॥ ३२ ॥
कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति । सा प्रेत्य कामाना-
दाय दातारमुपतिष्ठति ॥ ३३ ॥ रथमश्वसमायुक्तं दत्वाश्विन्यां
नरोत्तमः । हस्त्यश्वरथसम्पन्ने वर्चस्वी जायते कुले ॥ ३४ ॥
भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलधेनुं प्रदाय वै । गाः सुप्रभूताः प्राप्नोति
नरः प्रेत्य यशस्तथा ॥ ३५ ॥ भीष्म उवाच । इत्येष लक्षणो-

वाहनोंका दान देता है और जो वस्त्रोंके गट्ठरोंका और धनका दान देता है, वह मनुष्य मरणके अनन्तर दूसरे जन्ममें राज्य पाता है २९ शतभिषा नक्षत्रमें अगर चन्दन और सुगंधित वस्तुका दान देनेवाला मनुष्य मरणके पीछे अप्सराओंको और अविनाशी सुगंधित पदार्थोंको पाता है ३० जो मनुष्य पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें उड़दोंका दान देता है वह मनुष्य मरनेके पीछे सब प्रकारके अन्न तथा फलोंका भोक्ता होता है तथा सुखी होता है ३१ जो मनुष्य उत्तरा नक्षत्रमें बकरेके मांसका दान देता है, उस मनुष्यके पितर तृप्त होजाते हैं और दान देनेवाला मरणके पीछे परलोकमें अनन्त सुख पाता है ३२ जो मनुष्य रेवतीनक्षत्रमें दुग्ध दुहनेके काँसीके पात्रका और गौका दान देता है तो वह गौ दाता के पास मरणके पीछे कामनाको पूर्ण करती हुई आजाती है ३३ जो महात्मा मनुष्य अश्विनी नक्षत्रमें घोड़ोंसे जुते हुए रथका दान देता है, वह मनुष्य हाथी, घोड़े तथा रथवाले धनाढ्य कुलमें तेजस्वी होकर उत्पन्न होता है ३४ जो मनुष्य भरणी नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको तिल की धेनुका दान करके देता है उस मनुष्यको मरणके पीछे दूसरे

देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः । देवे वृद्धन्नो जायते कुले ॥ ३४ ॥
अब्रवीदिदम् ॥ ३६ ॥   मिष्टां स गच्छति ॥३३॥
इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासानिके पर्वणि प्रीणयते
नक्षत्रयोगधानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

भीष्म उवाच । सर्वान् कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति
कांचनम् । इत्येवं भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥१॥ पवित्र-
मथ चायुष्यं पितृणामक्षयं च तत् । सुवर्णं मनुजेन्द्रेण हरिश्च-
न्द्रेण कीर्तितम् ॥२॥ पानीयं परमं दानं दानानां मनुरब्रवीत् ।
तस्मात् कूपांश्च वापीश्च तडागानि च खानयेत् ॥ ३ ॥ अर्धं
पापस्य हरति पुरुषस्येह कर्मणः। कूप प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तश्च
नित्यशः ॥ ४ ॥ सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये । गावः
पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा ॥ ५ ॥ निदाघकाले

जन्ममें बहुतसे स्थान मिलते हैं और यश मिलता है ३५ भीष्मजी
ने कहा, कि—इस प्रकार नारदजीने नक्षत्रोंका अनुसरण करके
दान देनेकी विधि देवकीसे कही थी और देवकीने यह कथा अपनी
बहुओंसे कही थी ३६ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ६४

भीष्मजीने कहा, कि-जो पुरुष सुवर्णका दान देता है उस
पुरुषकी सब कामनाएँ पूर्ण होजाती हैं,यह बात ब्रह्माजीके पुत्र
भगवान् अत्रिने कही है ॥ १ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा है, कि-
सुवर्ण पवित्र है,आयु बढानेवाला है और पितरोंको अक्षय गति
देनेवाला है ॥ २ ॥ और मनुजीने कहा है, कि जलका दान
सब दानोंमें उत्तम दान है अतः कूप, बावड़ी और तालाब खुद
वाने,चाहियें ॥ ३ ॥ कूप खुदवाने पर यदि भली भाँति जल
निकल आता है,तो खुदवाने वालेके सारे पातक दूर होजाते हैं ४
जिस पुरुषके खुदवाये हुए तालावमें गौ, ब्राह्मण, सत्पुरुष तथा
(साधारण) मनुष्य सदा जल पीते रहते हैं, उसका सारा वंश

पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् । स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुते ॥ ६ ॥ बृहस्पतेर्भगवतः पूष्णश्चैव भगस्य च । अश्विनोश्चैव वन्हेश्च प्रीतिर्भवति सर्पिषा ॥ ७ ॥ परमं भेषजं ह्येतद्यज्ञानामेतदुत्तमम् । रसानामुत्तमं चैतत् फलानां चैतदुत्तमम्॥८ फलकामो यशस्कामः पुष्टिकामश्च नित्यदा । घृतं दद्याद् द्विजातिभ्यः पुरुषः शुचिरात्मवान्॥९॥ घृतं मासे आश्वयुजि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति । तस्मै प्रयच्छतो रूपं प्रीतो देवाविहाश्विनौ १० पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति। गृहं तस्य न रक्षांसि धर्षयन्ति कदाचन ॥ ११ ॥ पिपासया न म्रियते सोपच्छन्दश्च जायते । न प्राप्नुयाच्च व्यसनं करकान् यः प्रयच्छति ॥ १२ ॥ प्रयतो ब्राह्मणाग्ने यः श्रद्धया परया युतः । उपस्पर्शन् षड्भागं

तर जाता है ॥ ५ ॥ जिसके खुदवाये हुए जलाशयमें गरमीमें भी यथेष्ट जल रहता है, वह पुरुष कभी भी विषम दुःख नहीं पाता है ॥ ६ ॥ घृतका दान देनेसे भगवान् बृहस्पति, भगवान् पूषा, भगवान् भग, भगवान् अश्विनीकुमार और भगवान् अग्निदेव प्रसन्न होते हैं ॥७॥ घृत परमौषध है, यज्ञोंमें उत्तम यज्ञ है, रसोंमें उत्तम रस है और फलोंमें उत्तम फल है ॥ ८ ॥ जिस पुरुषको फलकी, यशकी और पुष्टिकी कामना हो उस पुरुषको सदा पवित्र और जितेन्द्रिय रहकर ब्राह्मणोंको घृतका दान देना चाहिये ॥ ९ ॥ जो पुरुष आश्विन मासमें ब्राह्मणोंको घृतका दान देता है, उस पुरुषको अश्विनीकुमार नामक देवता प्रसन्न होकर रूप देते हैं ॥१०॥ जो पुरुष ब्राह्मणोंको घृत मिला हुआ दुग्ध देता है राक्षस उस पुरुषके घरको कभी नहीं दबाते ॥११॥ जो पुरुष जलसे भरे हुए करुएका ब्राह्मणोंको दान देता है, उस पुरुषका तृषासे मरण नहीं होता उसके घरमें सब प्रकारकी सामग्री भरी हुई रहती है और उसको दुःख नहीं होता ॥ १२ ॥ जो

लभते पुरुषः सदा ॥ १३ ॥ यः साधनार्थं काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । प्रतापनार्थं राजेन्द्र वृत्तवद्भ्यः सदा नरः ॥१४॥ सिद्ध्यन्त्यर्थाः सदा तस्य कार्याणि विविधानि च । उपर्युपरि शत्रूणां वपुषा दीप्यते च सः ॥ १५ ॥ भगवांश्चापि संप्रीतो वह्निर्भवति नित्यशः । न तं त्यजन्ति पशवः संग्रामे च जयत्यपि १६ पुत्राञ्छ्रियं च लभते यश्छत्रं संप्रयच्छति । न चक्षुर्व्याधिं लभते यज्ञभागमथाश्नुते ॥ १७ ॥ निदाघकाले वर्षे वा यश्छत्रं संप्रयच्छति । नास्य कश्चिन्मनोदाहः कदाचिदपि जायते ॥ १८ ॥ कृच्छ्रात् स विषमाच्चैव क्षिप्रं मोक्षमवाप्नुते । प्रदानं सर्वदानानां शकटस्य विशांपते । एवमाह महाभागाः शांडिल्यो भगवानृषिः १९

पुरुष मनको नियममें रख कर परमश्रद्धासे उत्तम ब्राह्मणको दान देता है उस पुरुषको मन और इन्द्रियोंको नियममें रख कर तप करनेवाले ब्राह्मणके तपका छटा भाग सदा मिलता है ॥१३॥ हे राजेन्द्र ! जो पुरुष सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणोंको भोजन बनानेके और शीत दूर करनेके लिये सर्वदा काष्ठ देता रहता है १४ उसके सम्पूर्ण मनोरथ और विविध प्रकारके कार्य सिद्ध होते हैं और उसका शरीर शत्रुओंसे अधिक तेजस्वी होजाता है ॥१५॥ भगवान् अग्नि भी उस पर सदा प्रसन्न रहते हैं, पशु आदि उसका त्याग नहीं करते हैं और संग्राममें भी उसकी जीत ही होती है ॥१६॥ जो पुरुष छत्रका दान देता है उसको पुत्र और लक्ष्मी मिलती हैं और नेत्रोंकी व्याधि नहीं होती है और उसको यज्ञका भाग मिलता है ॥ १७ ॥ जो पुरुष ग्रीष्म ऋतुमें अथवा चौमासेमें छत्रीका दान देता है, उस पुरुषको कभी मनमें सन्ताप करनेका अवसर नहीं आता॥१८॥और छत्रीका दान देने वाला पुरुष शीघ्र ही दुःख और काठिन्यसे मुक्त होजाता है हे राजन्! महाभाग्यशाली भगवान् शाण्डिल्यने कहा है, कि-गाड़ीका दान भी उपरोक्त सब फलोंको देता है॥१९॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त६५

युधिष्ठिर उवाच । दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ । यत्फलं तस्य भवति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । उपानहौ प्रयच्छेद्यो ब्राह्मणेभ्यः समाहितः । मर्दते कण्टकान् सर्वान्विषमान्निस्तरत्यपि ॥ २ ॥ स शत्रूणामुपरि च संतिष्ठति युधिष्ठिर । यानं चाश्वतरीयुक्तं तस्य शुभ्रं विशाम्पते ॥ ३ ॥ उपतिष्ठति कौन्तेय रौप्यकांचनभूषितम् । शकटं दम्यसंयुक्तं दत्तं भवति चैव हि ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । यत्फलं तिलदाने च भूमिदाने च कीर्तितम् । गोदाने चान्नदाने च भूयस्तद्ब्रूहि कौरव ॥ ५ ॥ भीष्म उवाच । शृणुष्व मम कौन्तेय तिलदानस्य यत्फलम् । निशम्य च यथान्यायं प्रयच्छ कुरुसत्तम ॥६॥ पितॄणां परमं भोज्यं तिलाः सृष्टाः स्वयम्भुवा। तिलदानेन वै तस्मात्पितृ-

युधिष्ठिरने बूझा, कि-जो पुरुष तपनमें पैदल चलने वाले ब्राह्मणको पादत्राण (जूते,खड़ाऊँ आदिका)दान देता है,हे पिता-मह ! उसको क्या फल मिलता है, यह मुझे बताइये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-जो पुरुष सावधान होकर ब्राह्मणोंको जूते का दान देता है वह सब काँटोंको मसल डालता है और दुःखोंके पार होजाता है ॥ २ ॥ और हे युधिष्ठिर ! जूतेका दान देने वाला पुरुष शत्रुओंके मस्तक पर बैठता है तथा हे कुन्तीपुत्र राजन् ! उसका सोने चाँदीकी पत्तरोंसे जड़ा हुआ और खच्चरोंसे जुता हुआ रथ मिलता है और उसको इसके दानका फल भी मिलता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पुरुवंशमें उत्पन्न हुए पितामह ! तिल, भूमि, गौ और अन्नका दान देनेसे जो फल मिलता हो उसका मुझसे फिर वर्णन करिये ॥ ५ ॥ भीष्मजीने कहा कि हे कुरुकुलोत्तम कौंतेय ! तिलोंका दान करने पर जो फल मिलता है उसको तू सुन और उसको सुन कर उचित रीति से उसका दान कर ॥ ६ ॥ स्वयंभूने तिलोंको पितरोंके उत्तम

पत्तः प्रमोदते ॥ ७ ॥ माघमासे तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रय-
च्छति । सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥ ८ ॥ सर्वसत्रैश्च
यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् । न चाकामेन दातव्यं तिलश्राद्धं
कदाचन ॥ ९ ॥ महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः ।
ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः प्रभा ॥ १० ॥ पौष्टिका
रूपदाश्चैव तथा पापविनाशनाः । तस्मात् सर्वप्रदानेभ्यस्तिल-
दानं विशिष्यते ॥ ११ ॥ आपस्तंबश्च मेधावी शंखश्च लिखि-
तस्तथा । महर्षिगौतमश्चापि तिलदानैर्दिवं गताः ॥१२॥ तिल-
होमरता विप्राः सर्वे संयतमैथुनाः । समा गव्येन हविषा प्रवृत्तिषु
च संस्थिताः ॥१३॥ सर्वेषामिति दानानां तिलदानं विशिष्यते ।
अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते ॥१४॥ उच्छिन्ने तु पुरा

भोजनरूपमें उत्पन्न किया है, अत एव तिलोंके दानसे पितरोंका दल परम प्रसन्न रहता है ॥७॥ जो पुरुष माघमासमें तिलोंका दान देता है उस पुरुषको सब प्रकारके प्राणियोंसे भरपूर नरकके दर्शन नहीं करने पड़ते ॥ ८ ॥ जो पुरुष तिलोंसे पितरोंका पूजन करता है उस पुरुषको सब योगोंके करनेका फल मिलता है पुरुष निष्कामभावसे कभी तिलोंसे श्राद्ध न करे ९ हे प्रभो ! तिल महर्षि कश्पयके शरीरमेंसे उत्पन्न हुए हैं, अत एव तिल दानमें दूसरी वस्तुओंसे उत्तम माने जाते हैं१०तिल पुष्टि करनेवाले हैं, रूप बढ़ाने वाले हैं और पापनाशक हैं अतः सब दानोंमें तिल का दान उत्तम माना जाता है ११ आपस्तंब, मेधावी, शंख, लिखित और गौतम आदि महर्षि भी तिलोंका दान देकर स्वर्गमें गए हैं १२ ब्राह्मण तिलोंसे होम करना पसन्द करते हैं, तिलोंसे उनका मन नियम (अंकुश) में रहता है और वे प्रवृत्तियोंमें गोघृत की समान स्थित रहते हैं १३ सब प्रकारके दानोंमें तिलोंका दान श्रेष्ठ माना जाता है इस जगत्के सब दानोंमें तिलोंका दान अक्षय

हव्ये कुशिकर्षिः परन्तपः । तिलैरग्निन्त्रयं हुत्वा प्राप्तवान् गति-मुत्तमाम् ॥१५॥ इति प्रोक्तं कुरुश्रेष्ठ तिलदानमनुत्तमम् । विधानं येन विधिना तिलानामिह शस्यते ॥ १६ ॥ अत ऊर्ध्वं निबोधेदं देवानां यष्टुमिच्छताम्। समागमे महाराज ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा१७ देवाः समेत्य ब्रह्माणं भूमिभागे यियक्षवः । शुभं देशमयाचन्त यजेम इति पार्थिव ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः । भगवंस्त्वं प्रभुर्भूमेः सर्वस्य त्रिदिवस्य च । यजेमहि महाभाग यज्ञं भवदनुज्ञया॥१६॥ नाननुज्ञातभूमिर्हि यज्ञस्य फलमश्नुते । त्वं हि सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ॥ २० ॥ प्रभुर्भवसि तस्मात्त्वं समनुज्ञातु-मर्हसि ।ब्रह्मोवाच । ददानि मेदिनीभागं भवद्भ्योऽहं सुरर्षभाः२१

कहा है ॥ १४ ॥ परमतपस्वी कुशिक नामक ऋषिने पहिले हविके पदार्थोंके निवट जाने पर तिलोंसे तीनों अग्नियोंमें होम करके उत्तम गति पाई थी ॥१५॥ हे कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! इस प्रकार तिलोंके दानको श्रेष्ठ माना है, यदि तिलोंका यथाविधि दान किया जाता है तो प्रशंसनीय समझा जाता है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! अब यज्ञ करना चाहने वाले देवताओंका ब्रह्माजीके साथ जो समागम हुआ था, उसकी कथाको तू सुन १७ हे राजन्! पृथ्वी पर यज्ञ करनेकी इच्छासे देवता ब्रह्माजीके पास गए और ब्रह्माजीसे हम यज्ञ करेंगे यह कहकर शुभ देश बतानेकी प्रार्थना की ॥ १८ ॥ देवताओंने कहा, कि—आप इस भूमिके स्वामी हैं और सारे स्वर्गके भी स्वामी हैं अतः हे भगवन् ! हम आपकी आज्ञासे यज्ञ करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष भूमि न माँग कर यज्ञ करता है उसको यज्ञका फल नहीं मिलता है, आप स्थावरजंगमात्मक सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं ॥ २० ॥ अतः आपका हमें भूमि पर यज्ञ करनेकी आज्ञा देना उचित है, ब्रह्माजीने कहा, कि हे श्रेष्ठ देवताओं ! मैं तुम्हें पृथिवीका भाग देता हूँ २१

यस्मिन् देशे करिष्यध्वं यज्ञान् कश्यपनन्दनाः । देवा ऊचुः ।
भगवन् कृतकार्य्याः स्म यक्ष्महे स्वाप्तदक्षिणैः ॥ २२ ॥ इमं तु
देशं मुनयः पर्युपासन्ति नित्यदा । ततोऽगस्त्यश्च कण्वश्च भृगु-
रत्रिर्वृषाकपिः ॥ २३ ॥ असितो देवलश्चैव देवयज्ञमुपागमन् ।
ततो देवा महात्मान ईजिरे यज्ञमच्युतम् ॥ २४ ॥ तथा समाप-
यामासुर्यथाकालं सुरर्षभाः । त इष्टयज्ञास्त्रिदशा हिमवत्यचलो-
त्तमे ॥ २५ ॥ षष्ठमंशं क्रतोस्तस्य भूमिदानं प्रचक्रिरे । प्रादेश-
मात्रं भुवस्तु यो दद्यादनुपस्कृतम् ॥ २६ ॥ न सीदति स कृच्छ्रेषु
न च दुर्गाण्यवाप्नुते । शीतवातातपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम् २७
प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यान्तेऽपि न चाल्यते । मुदितो वसति
प्राज्ञः शक्रेण सह पार्थिव ॥ २८ ॥ प्रतिश्रयप्रदानाच्च सोऽपि

हे कश्यपके पुत्रों ! तुम उस देशमें यज्ञ करना, देवताओंने कहा, कि-हे भगवन् ! हम कृतकार्य होगये अब हम बड़ी २ दक्षिणा वाले यज्ञ करेंगे ॥ २२ ॥ इस देशमें अर्थात् हिमालयकी तलैटीमें मुनि सर्वदा यज्ञ करते रहते हैं तब अगस्त्य, कण्व, भृगु, अत्रि, वृषाकपि और देवल उस देवयज्ञस्थलमें गये तहाँ उन महात्मा देवताओंने अच्युतयज्ञ किया॥२३-२४॥ और समय आने पर उन देवश्रेष्ठोंने यज्ञको समाप्त करदिया इसप्रकार उन देवताओंने पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर यज्ञ समाप्त करके उस यज्ञके फलके छठे अंशका भूमिदान करदिया जो मनुष्य सब प्रकारके विघ्नोंसे रहित एक बिलस्त भर भूमि भी दान करके देदेता है ॥ २५-२६ ॥ वह कठिन अवसरों पर दुःख नहीं पाता है और उसके ऊपर कष्ट नहीं पड़ते हैं जो पुरुष शीत, आँधी और धूपको सह सकने वाली तयारकी हुई गृहरूप भूमिका दान देता है उसको देवलोक मिलते हैं और वह पुण्य पूर्ण होने पर भी वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता है, और हे राजन् ! वह बुद्धिमान् मनुष्य इन्द्रके साथ प्रसन्नता-

स्वर्गे महीयते । अध्यापककुले जातः श्रोत्रियो नियतेन्द्रियः २९
गृहे यस्य वसेत्तुष्टः प्रधानं लोकमश्नुते । तथा गवार्थे शरणं
शीतवर्षसहं दृढम् ॥ ३० ॥ आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ।
क्षेत्रभूमिं ददल्लोके शुभां श्रियमवाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ रत्नभूमिं
प्रदद्यात्तु कुलवंशं प्रवर्धयेत् । न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात्
कथञ्चन ॥ ३२ ॥ न श्मशानपरीतां च न च पापनिषेविताम् ।
पारक्ये भूमिदेशे तु पितॄणां निर्वपेत्तु यः ॥ ३३ ॥ तद्भूमिं वा
पितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते । तस्मात् क्रीत्वा महीं दद्यात् स्वल्पा-
मपि विचक्षणः ॥ ३४ ॥ पिण्डः पितृभ्यो दत्तो वै तस्यां भवति

पूर्वक रहता है २७-२८ रहनेके लिये आश्रयस्थान देने वाले पुरुषकी भी स्वर्गमें पूजा होती है और वह इस लोकमें पढ़ाने वालोंके घरमें वेदवेत्ता ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है, और इन्द्रियोंको नियममें रखता है २९ जिस पुरुषके घरमें कोई पुरुष सन्तुष्ट होकर रहता है, उसको ब्रह्मलोक मिलता है और हे भरत-वंशके श्रेष्ठ राजन् ! जो पुरुष गौओं रहनेके लिये गरमी और सरदीको दूर करने वाला दृढ़ घर दान करके देता है, वह अपने कुलके सात पुरुषोंका उद्धार करता है, और जो बोनेके लिये खेतका दान करता है, उसको उत्तम लक्ष्मी मिलती है ३०-३१ जो पुरुष रत्नोंसे भरी हुई भूमिका दान देता है उसके वंशकी वृद्धि होती है, कल्लड़ और भस्म हुई भूमिका दान कभी नहीं करना चाहिये ३२ श्मशानके समीपकी भूमिका भी कभी दान नहीं देना चाहिये, इसी प्रकार जिसमें पापी मनुष्य रहते हों ऐसी भूमिका भी दान नहीं देना चाहिये, जो पुरुष दूसरोंकी भूमिपर श्राद्ध करता है और दूसरेकी भूमिका दान देदेता है ३३ पितर उसके श्राद्धके फलको और भूमिदानके फलको नष्ट कर डालते हैं, अतः विद्वान् पुरुषको चाहिये, कि थोड़ी सी भूमि

शाश्वतः । अटवी पर्वताश्चैव नद्यस्तीर्थानि यानि च ॥ ३५ ॥ सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तत्र परिग्रहः । इत्येतद्व भूमिदानस्य फलमुक्तं विशाम्पते ॥ ३६ ॥ अतः परन्तु गोदानं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ । गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात् सर्वेभ्य एव च ॥३७॥ तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः सहास्थितः । ब्राह्मे लोके वसन्त्येताः सोमेन सह भारत ॥ ३८ ॥ यां तां ब्रह्मर्षयः सिद्धाः प्रार्थयन्ति परां गतिम् । पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा ॥ ३९ ॥ अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृङ्गैर्वालैश्च भारत । नासां शीतातपौ स्यातां सदैताः कर्म कुर्वते ॥४०॥ न वर्षविषयं वापि दुःखमासां भवत्युत । ब्राह्मणैः सहिता यान्ति तस्मात् पार-

---

ख़रीद कर तो उसका दान अवश्य करे ॥ ३४ ॥ यदि अपने आप ली हुई भूमिमें पितरोंका पिण्डदान दिया जाता है तो वह अक्षयरीतिसे पितरोंको मिलता है, अरण्य, पर्वत, नदी और तीर्थोंका कोई भी स्वामी नहीं होता है, उनके ऊपर कोई कर नहीं लेता है अतएव ऐसे स्थानोंमें श्राद्ध करना चाहिये, हे राजन् इस प्रकार मैंने तुमसे भूमिदानका फल कहा ॥ ३६ ॥ हे निर्दोष राजन् ! अब मैं तुमसे गोदानका माहात्म्य कहता हूँ, कि–गौएँ सब तपस्वियोंसे भी श्रेष्ठ हैं ॥३७॥ इसीलिये महादेवजीने गौओंके साथ रह कर तप किया था, हे भरतवंशी राजन् ! गौएँ ब्रह्मलोकमें सोमके साथ निवास करती हैं ॥३८॥ ब्रह्मर्षि और सिद्ध पुरुष भी इस ब्रह्मलोककी गतिको पाना चाहते हैं, हे भारत ! गौएँ दुग्धसे, घृतसे, दहीसे, मट्ठेसे, चमड़ेसे, हड्डियोंसे, सींगोंसे और केशोंसे भी इस जगत्का उपकार करती रहती हैं, गौओंको गरमी सरदी नहीं व्यापती और वे सदा अपना नित्य कर्म करती रहती हैं ॥४०॥ गौओंको वर्षाका दुःख नहीं होता, गौएँ ब्राह्मणोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर निवास करती हैं ॥ ४१ ॥ इससे

मकं पदम् ॥४१॥ एकं गोब्राह्मणं तस्मात् प्रवदन्ति मनीषिणः। रन्तिदेवस्य यज्ञे ताः पशुत्वेनोपकल्पिताः ॥ ४२ ॥ अतश्चर्मण्वती राजन् गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता । पशुत्वाच्च विनिर्मुक्ताः प्रदानायोपकल्पिताः ॥ ४३ ॥ ता इमा विप्रमुख्येभ्यो या ददाति महीपते । निस्तरेदापदं कृच्छ्रां विषमस्थोऽपि पार्थिव ॥ ४४ ॥ गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं न प्रपद्यते । सर्वत्र विजयं चापि लभते मनुजाधिप ॥ ४५ ॥ अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः। तस्माद्ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति ॥ ४६ ॥ अग्नीनामव्ययं ह्येतद्धौम्यं वेदविदो विदुः । तस्माद्ददाति यो धेनुं स हौम्यं संप्रयच्छति ॥ ४७ ॥ स्वर्गो वै मूर्तिमानेष वृषभं यो गवां पतिम् ।

विद्वान् गौओंको और ब्राह्मणोंको एक ही बताते हैं राजा रन्तिदेवने अपने यज्ञमें गौओंका पशुरूपसे उपयोग किया था ॥४२॥ हे महाराज ! उन गौओंके चमड़ेमेंसे जो रुधिरकी धारा उत्पन्न हुई थी उससे चर्मण्वती नामकी नदी उत्पन्न हुई थी उसने गौओं को यज्ञमें पशुरूपसे अर्पण किया था, तदनन्तर गौएँ पशुपनसे मुक्त होगई थीं और गौओंको दान देनेकी कल्पना की गई ४३ हे महीपते! जो पुरुष इन गौओंका उत्तम ब्राह्मणोंको दान देता है वह मनुष्य दुःखमें पड़ाहुआ होता है तब भी कष्टदायक आपत्ति से मुक्त होजाता है ॥४४॥ हे राजन् ! एक सहस्र गौओंका दान देने वाला पुरुष मरण होने पर नरकमें नहीं पड़ता है और सर्वत्र विजय पाता है ॥ ४५ ॥ स्वर्गके राजा इन्द्रने कहा है, कि–गौओं का दुग्ध अमृत है अतएव गोदान देने वाले पुरुषको अमृतका दान देने वाला समझना चाहिये ॥४६॥ यदि अग्निमें गोदुग्ध का होम किया जाता है तो वह अविनाशी फल देता है यह बात वेदज्ञ जानते हैं अतएव जो पुरुष गोदान देता है वह पुरुष होमके हव्यका दान करता है ॥ ४७॥ गौओंका पति वृषभ मूर्त्ति

विप्रे गुणयुते दद्यात् स व स्वर्गे महीयते ॥४८॥ प्राणा वै प्राणि-
नामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ । तस्माद्ददाति यो धेनुं प्राणानेष प्रय-
च्छति ॥ ४९ ॥ गावः शरण्या भूतानामिति वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं शरणं स प्रयच्छति ॥५०॥ न वधार्थं प्रदा-
तव्या न कीनाशे न नास्तिके । गोजीविने न दातव्या तथा
गाभरतर्षभ ॥ ५१ ॥ ददत् स तादृशानां वै नरो गां पापकर्म-
णाम् । अक्षयं नरकं यातीत्येवमाहुर्महर्षयः ॥ ५२ ॥ न कृशां
नापवत्सां वा वंध्यां रोगान्वितां तथा । न व्यंगां न परिश्रान्तां
दद्याद्गां ब्राह्मणाय वै ॥ ५३ ॥ दश गोसहस्रदो हि शक्रेण सह
मोदते । अक्षयांल्लभते लोकान्नरः शतसहस्रशः ॥ ५४ ॥

मान् स्वर्ग है, जो पुरुष गुणवान् ब्राह्मणको गौओंके स्वामी वृषभ का दान करता है वह पुरुष स्वर्गमें पूजा पाता है ॥ ४८ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! गौ प्राणियोंकी प्राणरूप कहलाती हैं अतः गौओंके दान देनेवालेको प्राणोंका दान देनेवाला समझना चाहिये ॥४९॥ वेदवेत्ता समझते हैं, कि—गौएँ प्राणियोंकी शरण्य हैं अतएव गोदान देनेवालेको शरणका दान करनेवाला समझना चाहिये ॥ ५० ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! वध करनेके लिये गौ नहीं देनी चाहिये चाण्डालको गौ नहीं देनी चाहिये, और नास्तिक पुरुषको भी गौ नहीं देनी चाहिये तथा दूध दही का व्यापार करनेवालेको भी गौ नहीं देनी चाहिये ॥ ५१ ॥ जो पुरुष उपरोक्त पापकर्म करनेवालोंको गोदान देता है महर्षि कहते हैं, कि-वह अक्षय नरकमें पड़ता है ॥ ५२ ॥ इसी प्रकार दुबली मृतवत्सा, वन्ध्या, अंगहीन और थकी हुई गौ भी ब्राह्मणको नहीं देनी चाहिये ॥ ५३ ॥ दशसहस्र गौओंका दान देने वाला पुरुष इन्द्रके साथ स्वर्गमें आनन्द करता है और एक लाख गौओंका दान देनेवाला पुरुष अक्षयलोकोंको पाता है ॥ ५४ ॥

इत्येतद्गोप्रदानं च तिलदानं च कीर्तितम् । तथा भूमिप्रदानं च शृणुष्वान्ने च भारत ॥ ५५ ॥ अन्नदानं प्रधानं हि कौन्तेय परिचक्षते । अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ॥ ५६ ॥ श्रान्ताय क्षुधितायान्नं यः प्रयच्छति भूमिपः । स्वायंभुवं महत् स्थानं स गच्छति नराधिपः ॥ ५७ ॥ न हिरण्यैर्न वासोभिर्नान्यदानेन भारत । प्राप्नुवन्ति नराः श्रेयो यथा ह्यन्नप्रदाः प्रभो ५८ अन्नं वै प्रथमं द्रव्यमन्नं श्रीश्च परा मता । अन्नात् प्राणः प्रभवति तेजो वीर्यं बलं तथा ॥ ५९ ॥ सद्यो ददाति यश्चान्नं सदैकाग्रमना नरः । न स दुर्गाण्यवाप्नोतीत्येवमाह पराशरः ॥६०॥ अर्चयित्वा यथान्यायं देवेभ्योऽन्नं निवेदयेत् । यदन्ना हि नरा राजंस्तदन्नास्तस्य देवताः ॥ ६१ ॥ कौमुदे शुक्लपक्षे तु योऽन्न-

हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार गोदान, तिलदान और भूमिदानका वर्णन किया अब तू अन्नदानको सुन ॥ ५५ ॥ हे कुन्तीके पुत्र ! अन्नके दानको सब दानोंमें प्रधान कहा है, राजा रन्तिदेव अन्नका दान देनेसे स्वर्गमें गया है ॥५६ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष थके हुए तथा भूखे पुरुषको अन्न देता है वह पुरुष ब्रह्माजीके स्थानमें जाता है ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! अन्नका दान देने वाले पुरुषका जितना कल्याण होता है उतना कल्याण सुवर्णका दान देनेसे वस्त्रका दान देनेसे और दूसरे पदार्थोंका दान देनेसे नहीं होता है ॥५८॥ सब द्रव्योंमें अन्नको उत्तम माना है और अन्नको परम लक्ष्मी माना है, अन्नसे प्राणकी उत्पत्ति होती है तथा अन्नसे तेज वीर्य और बलकी उत्पत्ति होती है ५९ पराशर मुनिने कहा है, कि-जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे अन्नका दान देता है उसके ऊपर दुःख नहीं पड़ता है ॥ ६० ॥ मनुष्यको शास्त्रोक्तरीतिसे देवताओंका पूजन करके उनको अन्न निवेदन करना चाहिये, जो पुरुष जिस अन्नका भोजन करता हो उस

दानं करोत्युत । स सन्तरति दुर्गाणि प्रेत्य चानंत्यमश्नुते ।६२।
अभुक्त्वातिथये चान्नं प्रयच्छेद्यः समाहितः । स वै ब्रह्मविदां
लोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ॥ ६३ ॥ सुकृच्छ्रामापदं प्राप्तश्चान्नदः
पुरुषस्तरेत् । पापं तरति चैवेह दुष्कृतं चापकर्षति ॥६४॥ इत्ये-
तदन्नदानस्य तिलदानस्य चैव ह । भूमिदानस्य च फलं गोदान-
स्य च कीर्तितम् ॥ ६५ ॥

इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं दानफलं तात यत्त्वया परिकीर्तितम् ।
अन्नदानं विशेषेण प्रशस्तमिह भारत ॥ १ ॥ पानीयदानमेवैतत्
कथं चेह महाफलम् । इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण पितामह२

पुरुषको वही अन्न देवताके सामने रखना चाहिये ॥ ६१ ॥ जो पुरुष कार्त्तिकके महीनेमें अन्नका दान करता है, वह पुरुष दुःखों के पार होजाता है और मरणके पीछे मोक्ष पाता है ॥ ६२ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! जो पुरुष सावधान होकर भोजन करने से पहले अतिथिको अन्न देता है उसको ब्रह्मवेत्ताओंके लोक मिलते हैं ॥ ६३ ॥ अन्नका दान देने वाला पुरुष अतिकष्टप्रद आपत्तिमें पड़ने पर भी उसके पार होजाता है इसलोकमें किये हुए पापकर्मोंके पार होकर अपने दुष्कर्मोंका नाश करडालता है ॥ ६४ इस प्रकार तुमसे अन्नदानका, तिलदानका, भूमिदानका और गोदानका फल कहा ॥६५॥ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ६६

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! आपने जो दानका फल कहा, वह मैंने सुना, इसमें भी इस जगत्में अन्नका दान विशेष प्रशंसनीय माना जाता है ॥ १ ॥ हे पितामह ! इस जगत्में जलदानका कैसा माहात्म्य है, इसको मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे सत्यपराक्रम

भीष्म उवाच । हन्त ते वर्तयिष्यामि यथावद्भरतर्षभ । गदतस्त-
न्ममाद्येह शृणु सत्यपराक्रम ॥ ३ ॥ पानीयदानात्प्रभृति सर्वं
वक्ष्यामि तेऽनघ । यदन्नं यच्च पानीयं संप्रदायाश्नुते नरः॥४॥
न तस्मात् परमं दानं किंचिदस्तीति मे मनः । अन्नात् प्राणभृत-
स्तात प्रवर्तन्ते हि सर्वशः ॥५॥ तस्मादन्नं परं लोके सर्वलोकेषु
कथ्यते । अन्नाद्बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्धते सदा ॥ ६ ॥
अन्नदानमतस्तस्माच्छ्रेष्ठमाह प्रजापतिः । सावित्र्या ह्यपि कौन्तेय
श्रुतं ते वचनं शुभम् ॥ ७ ॥ यतश्च यद्यथा चैव देवसत्रे महा-
मते । अन्ने दत्ते नरेणेह प्राणा दत्ता भवन्त्युत ॥ ८ ॥ प्राणदा-
नाद्धि परमं न दानमिह विद्यते । श्रुतं हि ते महाबाहो लोमश-
स्यापि तद्वचः ॥ ९ ॥ प्राणान् दत्वा कपोताय यत्प्राप्तं शिविना

भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! मैं तुझे यथार्थ उत्तर देता हूँ, उसको तू मुझसे सुन ॥ ३ ॥ मैं, जलदान आदि सब दानोंका तुझसे वर्णन करूँगा, मनुष्य अन्नदान और जलदान करके जिस फलको पाता है, उसका भी मैं तुझसे कहूँगा ॥ ४ ॥ कोई दान अन्न-दानसे अधिक उत्तम नहीं है, ऐसा मेरा मत है क्यों कि—अन्न-दानसे सब प्राणी प्रवृत्ति कर सकते हैं॥५॥अतः सब लोकोंमें वह उत्तम कहा, है अन्नसे प्राणियोंका तेज तथा बल सदा वृद्धि पाया करता है ॥ ६ ॥ इसी लिये प्रजापतिने भी अन्नके दानको श्रेष्ठ माना है,हे कौन्तेय ! तूने सावित्रीके शुभ वचनको भी सुना है ॥ ७ ॥ हे महामति राजन् ! उसने देवताओंके यज्ञमें उपरोक्त वचन जिस प्रकार और जिस कारणसे कहा था, उसको तू जानता है,अन्नका दान करने वाला पुरुष प्राणोंका दाता समझा जाता है ॥८॥ इस जगत्में प्राणदानकी समान और कोई महा-दान नहीं है, हे महाभुज ! इस विषयमें तूने लोमश ऋषिका वचन सुना है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! पहिले राजा शिविने कपोत

पुरा । तां गतिं लभते दत्वा द्विजस्यान्नं विशाम्पते ॥ १० ॥
तस्माद्विशिष्टां गच्छन्ति प्राणदा इति नः श्रुतम् । अन्नं वापि
प्रभवति पानीयात् कुरुसत्तम । नीरजातेन हि विना न किञ्चित्
संप्रवर्तते ॥ ११ ॥ नीरजातश्च भगवान् सोमो ग्रहगणेश्वरः ।
अमृतं च सुधा चैव सुधा चैवामृतं तथा ॥ १२ ॥ अन्नौषध्यो
महाराज वीरुधश्च जलोद्भवाः । यतः प्राणभृतां प्राणाः संभ-
वन्ति विशाम्पते ॥ १३ ॥ देवानाममृतं ह्यन्नं नागानां च सुधा
तथा । पितॄणां च स्वधा प्रोक्ता पशूनां चापि वीरुधः ॥ १४ ॥
अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहुर्मनीषिणः । तच्च सर्वं नरव्याघ्र
पानीयात्संप्रवर्तते ॥ १५ ॥ तस्मात् पानीयदानाद्वै न परं विद्यते
क्वचित् । तच्च दद्यान्नरो नित्यं यदीच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ १६ ॥

को प्राणदान देकर जो फल पाया था, वही गति अन्नका दान देने वालेको मिलती है ॥ १० ॥ इसी लिये प्राणदान देने वाले उत्तम गति पाते हैं यह हमने सुना है, हे कुरुवंशके श्रेष्ठ राजन् ! अन्नदान भी जलदानसे श्रेष्ठ हो या न हो क्योंकि-जलमेंसे उत्पन्न हुए विना किसी वस्तुकी प्रवृत्ति नहीं होती है ॥ ११ ॥ ग्रहोंके स्वामी सोम जलमेंसे उत्पन्न हुए हैं, हे महाराज ! अमृत, सुधा, स्वधा, अमृत, अन्न, औषधि और लतायें भी जलसे ही उत्पन्न हुई हैं और हे राजन् ! जलसे ही प्राणियोंके प्राण भी उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ देवताओंका अन्न अमृत है, नागोंका अन्न सुधा है, पितरोंका अन्न स्वधा है और पशुओंका अन्न लतायें बताई हैं ॥ १४ ॥ विद्वान् कहते हैं, कि अन्न ही मनुष्योंके प्राण हैं और वह (अन्न आदि) जलसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ १५ ॥ अत एव और कोई दान जलदानसे श्रेष्ठ नहीं है अतः जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो तो उसको जलका दान सदा देना चाहिये १६ इस जगत्में जलका दान धन देने वाला, यश देने

धन्यं यशस्यमायुष्यं जलदानमिहोच्यते । शत्रूंश्चाप्यधि कौन्तेय सदा तिष्ठति तोयदः ॥ १७ ॥ सर्वकामानवाप्नोति कीर्तिं चैव हि शाश्वतीम् । प्रेत्य चानन्त्यमश्नाति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते ॥१८॥ तोयदो मनुजव्याघ्र स्वर्गं गत्वा महाद्युते । अक्षयान् समवाप्नोति लोकानित्यब्रवीन्मनुः ॥ १९ ॥

इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पानीयदानमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । तिलानां कीदृशं दानमथ दीपस्य चैव हि । अन्नानां वाससां चैव भूय एव ब्रवीहि मे ॥१॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । ब्राह्मणस्य च संवादं यमस्य च युधिष्ठिर ॥ २ ॥ मध्यदेशे महान् ग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह । गङ्गायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः ॥ ३ ॥ पर्णशा-

---

वाला और आयु बढ़ाने वाला कहलाता है और हे कौन्तेय ! जलदाता पुरुष शत्रुओंके ऊपर भी अधिकारी बन जाता है १७ सब प्रकारकी कामना और सनातनी कीर्तिको पाता है, मरणके पीछे मुक्त होकर पापोंसे छूट जाता है १८ हे मनुष्यव्याघ्र महा-कान्तिमान् राजन् ! मनुजीने कहा है,कि-जलदाता पुरुष स्वर्गमें जाता है और अक्षय लोकोंको पाता है १९ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥　छ　छ　छ　छ　छ

युधिष्ठिरने बूझा. कि-हे भीष्म ! तिलदान, दीपदान, अन्नदान और वस्त्रदानके फलका मुझसे फिर वर्णन करिये, कि-उसका कैसा फल मिलता है ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-इस विषयमें यम और ब्राह्मणका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास इस प्रकार कहा जाता है ॥ २ ॥ कि हे नराधिप ! गंगा और यमुनाके मध्यमें यामुन (गिरिव्रज) पर्वतकी तलैटीमें मध्यदेशमें पर्णशाला नाम वाला ब्राह्मणोंका एक रमणीय ग्राम था, तहाँ पर विद्वान्

लेति विख्यातो रमणीयो नराधिप । विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्म-
णाश्चावसंस्तथा ॥ ४ ॥ अथ प्राह यमः कंचित्पुरुषं कृष्णवास-
सम् । रक्ताक्षमूर्ध्वरोमाणं काकजंघाक्षिनासिकम् ॥ ५ ॥ गच्छ
त्वं ब्राह्मणग्रामं ततो गत्वा तमानय । अगस्त्यं गोत्रतश्चापि नाम-
तश्चापि शर्मिणम् ॥ ६ ॥ शमे निविष्टं विद्वांसमध्यापकमनावृ-
तम् । मा चान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः ॥ ७ ॥ स
हि तादृग्गुणस्तेन तुल्योऽध्ययनजन्मना । अपत्येषु तथा वृत्ते सम-
स्तेनैव धीमता ॥ ८ ॥ तमानय यथोद्दिष्टं पूजा कार्या हि तस्य
वै । स गत्वा प्रतिकूलं तच्चकार यमशासनम् ॥ ९ ॥ तमा-
क्रम्यानयामास प्रतिषिद्धो यमेन यः । तस्मै यमः समुत्थाय पूजां
कृत्वा च वीर्यवान् ॥ १० ॥ प्रोवाच नीयतामेष सोऽन्य आनीय-

ब्राह्मण रहते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ एक दिन यमराजने श्यामवर्णके
वस्त्र पहिरने वाले, रक्तनेत्र, ऊपरको खड़े हुए केश वाले और
कौएकी जंघाकी समान नेत्र और नासिकावाले पुरुषसे कहा,
कि-॥५॥ तू ब्राह्मणोंके ग्राममें जाकर अगस्त्यगोत्री शर्मी नाम
वाले ब्राह्मणको ले आ ॥६॥ वह ब्राह्मण शमसम्पन्न है, विद्वान्
है, विद्या पढ़ा हुआ सदाचारी है, किन्तु उसके समीपमें ही उसका
सगोत्री दूसरा ब्राह्मण रहता है, उसको तू न ले आना ॥ ७ ॥
वह ब्राह्मण भी उसके समान ही गुणी है और विद्या तथा जन्म
में भी उसके ही सदृश है और उसकी समान ही वह सन्तानवान्
और बुद्धिमान् है ८ मैंने तुझे जिस ब्राह्मणको बताया है उसको
तू लिवा ला, क्योंकि मुझे उस ब्राह्मणकी पूजा करनी है तब
यमका दूत (आज्ञानुसार उस ब्राह्मणको लेनेके लिये) गया,
किन्तु उसने (भ्रमवश) यमकी आज्ञाके प्रतिकूल ही बर्ताव किया ९
वह उसी ब्राह्मणको पकड़ कर ले आया, कि जिसके लिये यमने
मना कर दिया था, उस समय वीर्यवान् यमने उठ कर उस

तामिति । एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन स द्विजः ॥११॥ प्रोवाच धर्मराजानं निर्विण्णोऽध्ययनेन वै । यो मे कालो भवेच्छेषस्तं वसेयमिहाच्युत ॥ १२ ॥ यम उवाच । नाहं कालस्य विहितं प्राप्नोमीह कथंचन । यो हि धर्मं चरति वै तन्तु जानामि केवलम् ॥ १३ ॥ गच्छ विप्र त्वमद्यैव आलयं स्वं महाद्युते । ब्रूहि सर्वं यथास्वैरं करवाणि किमच्युत ॥१४॥ ब्राह्मण उवाच । यत्तत्र कृत्वा सुमहत् पुण्यं स्यात्तद्ब्रवीहि मे । सर्वस्य हि प्रमाणं त्वं त्रैलोक्यस्यापि सत्तम ॥ १५ ॥ यम उवाच । शृणु तत्त्वेन विप्रर्षे प्रदानविधिमुत्तमम् । तिलाः परमकं दानं पुण्यं चैवेह शाश्वतम् ॥ १६ ॥ तिलाश्च संप्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ ।

ब्राह्मणकी पूजाकी १० फिर अपने दूतसे कहा, कि-तू इसको लौटा कर ले जा और दूसरेको ले आ, धर्मराजके इस प्रकार कहने पर उस ब्राह्मणने धर्मराजसे कहा, कि-मैं संसारसे उदासीन होगया हूँ, मेरा अध्ययन भी पूर्ण होगया है,अतः हे अच्युत! अब जो मेरा समय बाकी हो, उतने समय तक मैं यहाँ ही रहना चाहता हूँ ११-१२ यमराजने कहा, कि-तेरी आयु कितनी है, इसको मैं नहीं जानता(अत एव मैं तुझे यहाँ रखनेकी शक्ति नहीं रखता)धर्माचरण करने और न करने वालों पर दृष्टि रखना ही मेरा काम है १३ अतः हे महाकान्तिमान् ब्राह्मण ! तू आज ही अपने घरको लौट जा । और मैं तेरा क्या प्रियकार्य करूँ,उसको तू अपनी इच्छानुसार बता १४ ब्राह्मणने कहा कि-मनुष्यलोकमें जिस कर्मको करनेसे महापुण्य हो उस कर्मका मुझसे वर्णन करिये, हे श्रेष्ठ ! आप सब मनुष्योंके क्या त्रिलोकीके भी मान्य हैं १५ यमने कहा,कि-हे विप्रर्षे! मैं तुमसे दानकी उत्तम विधि कहता हूँ उसको तू यथार्थरीतिसे सुन, तिलका दान,सब दानोंमें श्रेष्ठ है, पुण्यप्रद है और सदा रहने वाला है १६ हे उत्तम ब्राह्मण !

नित्यदानात् सर्वकामांस्तिला निर्वर्तयंत्युत ॥ १७ ॥ तिलान् श्राद्धे प्रशंसंति दानमेतद्ध्यनुत्तमम् । तान् प्रयच्छस्व विप्रेभ्यो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १८ ॥ वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु तिलान् दद्याद् द्विजातिषु । तिला भक्षयितव्याश्च सदा त्वालंभनं च तैः ॥ १९ ॥ कार्यं सततमिच्छद्भिः श्रेयः सर्वात्मना गृहे । तथापः सर्वदा देयाः पेयाश्चैव न संशयः ॥ २० ॥ पुष्करिण्यस्तडागानि कूपाश्चैवात्र खानयेत् । एतत् सुदुर्लभतरमिह लोके द्विजोत्तम ॥ २१ ॥ आपो नित्यं प्रदेयास्ते पुण्यं ह्येतदनुत्तमम् । प्रपाश्च कार्या दानार्थं नित्यं ते द्विजसत्तम । भुक्तेऽप्यन्नं प्रदेयं तु पानीयं वै विशेषतः ॥२२॥ भीष्म उवाच । इत्युक्ते स तदा तेन यमदूते

शक्तिके अनुसार तिलोंका दान देना चाहिये, सर्वदा तिल दान देनेसे तिल सब कामनाओंको पूर्ण करते हैं १७ श्राद्धमें भी तिलों की प्रशंसा की जाती है, अतः तिलदान उत्तमोत्तम माना जाता है, अतः तू इन तिलोंका शास्त्रोक्तरीतिसे ब्राह्मणोंको दान दे १८ वैशाखी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणोंको तिलोंका दान देना चाहिये, तिलोंको खाना चाहिये और उनसे उबटन करना चाहिये १९ और अपना कल्याण चाहने वालोंको यह सब अपने घरमें प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये और हे उत्तम ब्राह्मण ! जल तथा शरबत सदा पिलाते रहना चाहिये, इसमें सन्देह न कर ॥२०॥ हे उत्तम ब्राह्मण ! बावड़ियें, कूप और तालाब खुदवावे, हे द्विजोत्तम ! इस लोकमें इन कामोंका होना अतिकठिन है २१ हे द्विजसत्तम ! तू सदा जलका दान करना, क्यों कि-यह बड़े भारी पुण्यका काम है और तू सदा पौ लगाना, जिस मनुष्यने भोजन कर लिया हो उसको भी अन्न और विशेषतः जल अवश्य देना चाहिये २२ भीष्मजीने कहा, कि-यमराजके इस प्रकार कहने पर यमका दूत उस ब्राह्मणको उसके घर पहुँचा आया, तहाँ उसने

म वै गृहान् । नीतश्च कारयामास सर्वं तद्यमशासनम् ॥ २३ ॥
नीत्वा तं यमदूतोऽपि गृहीत्वा शर्मिणं तदा । ययौ स धर्मराजाय
न्यवेदयत चापि तम् ॥२४॥ तं धर्मराजो धर्मज्ञं पूजयित्वा प्रता-
पवान् । कृत्वा च संविदं तेन विससर्ज यथागतम् ॥ २५ ॥
तस्यापि च यमः सर्वमुपदेशं चकार ह । मेत्यैत्य च ततः सर्वं
चकारोक्तं यमेन तत् ॥ २६ ॥ तथा प्रशंसते दीपान् यमः पितृ-
हितेप्सया । तस्माद्दीपप्रदो नित्यं सन्तारयति वै पितॄन् ॥ २७ ॥
दातव्याः सततं दीपास्तस्माद्भरतसत्तम । देवतानां पितॄणां च
चक्षुष्यं चात्मनां विभो ॥ २८ ॥ रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं
जनाधिप । यस्तान् विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयंकरम् ॥२९॥
यद्वै ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै । उभयोः स्यात्तदक्षय्यं

यमके कथनानुसार सब काम किया २३ यमदूत भी उसको उसके घर पहुँचा कर शर्मीको लेकर यमलोकमें आया और उसको यमराजके सामने उपस्थित किया २४ प्रतापी धर्मराजने उस धर्मवेत्ता ब्राह्मणकी पूजा कर उससे वार्तालाप किया और जिस प्रकार उस को बुलाया था उसी प्रकार उसको (सत्कारपूर्वक यमलोकमें) छोड़ दिया २५ फिर यमने उसको भी यह सब उपदेश दिया और वह जन्म लेने पर यमराजके कथनानुसार करने लगा २६ इसीप्रकार यमने पितरोंके हितकी इच्छासे दीपदानकी प्रशंसाकी थी, इस लिये जो दीपदान करता है,वह सदा अपने पितरोंका कल्याण करता है २७ इस लिये हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! सदा दीपकोंका दान देते रहना चाहिये,हे राजन् ! दीपकोंका दान पितरोंके देवताओंके और अपने नेत्रोंका सदा हित करता है२८हे राजन् ! रत्नदानका भी बड़ा भारी पुण्य होता है, ब्राह्मण यदि रत्नोंको बेच कर भी यज्ञ करता है तो उसको दानमें ली हुई वस्तुको बेचनेका पाप नहीं लगता है २९ जो ब्राह्मण ! एक मनुष्यसे

दातुरादातुरेव च ॥ ३० ॥ यो ददाति स्थितः स्थितयो तादृशाय प्रतिग्रहम् । उभयोरक्षयं धर्मं तं मनुः प्राह धर्मवित् ॥ ३१ ॥ दासस्तां संप्रदानेन स्वदारनिरतो नरः । सुवस्त्रश्च सुवेषश्च भवतीत्यनुशुश्रुम ॥३२॥गावः सुवर्णं च तथा तिलाश्चैवानुवर्णिताः। बहुशः पुरुषव्याघ्र वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ ३३ ॥ विवाहांश्चैव कुर्वीत पुत्रानुत्पादयेत च । पुत्रलाभो हि कौरव्य सर्वलाभाद्विशिष्यते ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे यमब्राह्मणसंवादे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर उवाच । भूय एव कुरुश्रेष्ठ दानानां विधिमुत्तमम् । कथयस्व महाप्राज्ञ भूमिदानं विशेषतः ॥ १ ॥ पृथिवीं क्षत्रियो दद्याद्ब्राह्मणायेष्टिकर्मिणे । विधिवत्प्रतिगृह्णीयान्न त्वन्यो दातु-

---

दान लेकर दूसरे ब्राह्मणको दान देदेता है, तो दाताका और ग्रहण करने वालेका अक्षय कल्याण होता है ३० उत्तम स्थिति वाला पुरुष यदि उत्तम स्थिति वाले ब्राह्मणको दान देता है तो उन दोनोंको अक्षय धर्म होता है,ऐसा मनुजीने कहा है ३१ अपनी स्त्रीसे ही प्रेम करने वाला मनुष्य वस्त्रोंका दान देनेसे अच्छे वस्त्र और वेष वाला होता है, ऐसा हमने सुना है ३२ हे पुरुषव्याघ्र ! गौओंके, सुवर्णके, तथा तिलोंके दान देनेके लिये वेदके प्रमाण देकर उनको अनेक जगह सिद्ध किया ३३ पुरुष विवाह कर पुत्रोंको उत्पन्न करे, क्यों कि-हे कुरुकुलोत्पन्न ! पुत्रका लाभ सब लाभोंसे अधिक है ३४ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिरने पूछा, हे कुरुश्रेष्ठ महाप्राज्ञ ! आप दानकी उत्तमविधिका फिर वर्णन करिये और भूमिदानका विशेष रीतिसे वर्णन करिये १ क्षत्रिय यज्ञ करने वाले ब्राह्मणको विधिपूर्वक पृथ्वीका दान देवे और ब्राह्मण लेय, क्योंकि-क्षत्रियके अतिरिक्त

मर्हति ॥ २ ॥ सर्ववर्णैस्तु यच्छक्यं प्रदातुं फलकाङ्क्षिभिः । वेदे वा यत्समाख्यातं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च । सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ ४ ॥ यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्यां ब्राह्मीं सरस्वतीम् । पृथिवीगोप्रदानाभ्यां तुल्यं स फलमश्नुते ५ तथैव गाः प्रशंसन्ति न तु देयं ततः परम् । सन्निकृष्टफलास्ता हि लघ्वर्थाश्च युधिष्ठिर ॥ ६ ॥ मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः । वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ॥७॥ सन्ताड्या न तु पादेन गवां मध्ये न च व्रजेत् । मङ्गलायतनं देव्यस्तस्मात्पूज्याः सदैव हि ॥८॥ प्रचोदनं देवकृतं गवां कर्मसु

और कौन दान देनेका पात्र होसकता है २ फलकी अभिलाषा रखने वाले सब वर्णोंके मनुष्य जिस २ वस्तुका दान कर सकते हों और वेदमें दानविषयक जो कुछ वर्णन हो, उसका मुझसे वर्णन करिये ३ भीष्मजीने कहा, कि-पृथ्वी, सरस्वती, और गौ इन तीनोंका नाम एक (गौ) ही है, अतः इन तुल्य नाम वाली और एकसा फल देने वाली और सब कामनाओंका फल देने वाली तीनों वस्तुओंका दान देना चाहिये ४ जो पुरुष शिष्य को धर्ममयी वेदविद्याका उपदेश देता है वह पुरुष पृथ्वीदान और गौदानके समान फल पाता है ५ इस प्रकार गोदानकी भी बड़ी भारी प्रशंसा सुनी जाती है, गोदानसे अधिक और कोई दान नहीं है, हे युधिष्ठिर ! गोदानका उत्तमोत्तम फल मिलता है और तुरत ही फल मिलता है ६ गौएँ सब प्राणियोंका पोषण करनेके कारण उन की माता कहलाती हैं, वे सब सुख देने वाली हैं, अपना कल्याण चाहने वाला पुरुष गौओंकी सदा प्रदक्षिणा करे ७ गौओंके लात न मारे, दो गौएँ खड़ी हों तो उनके बीचमें होकर न निकले, गौएँ मङ्गलकी स्थानरूप और देवीरूप हैं

वर्ततामृ । पूर्वमेवाक्षरं चान्यदभिधेयं ततः परमृ ॥ ९ ॥ प्रचारे वा निवाते वा बुधो नोद्वेजयेत गाः । तृषिता ह्यभिवीक्षन्त्यो नरं हन्युः सबान्धवमृ ॥ १० ॥ पितृसद्मानि सततं देवतायतमानि च । पूयन्ते शकृता यासां पूतं किमधिकं ततः ॥११॥ घासमुष्टिं परगवे दद्यात् सम्वत्सरन्तु यः । अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत्सार्वकामिकमृ ॥१२॥ स हि पुत्रान्यशोर्थं च श्रियं चाप्यधिगच्छति। नाशयत्यशुभं चैव दुःस्वप्नं चाप्यपोहति ॥१३॥ युधिष्ठिर उवाच। देयाः किंलक्षणा गावः काश्चापि परिवर्जयेत् । कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय च ॥ १४ ॥ भीष्म उवाच । असद्वृत्त-

अतः गौओंकी सदा पूजा करे ८ देवताओंने यज्ञ करते समय पृथिवीको जोता था और उस समय बैलोंको कोड़ा मार कर चलाया था, अतः यज्ञ करनेके लिये पृथ्वी जोतते समय बैलोंको कोड़ा मार कर चलानेमें दोष नहीं है, परन्तु खेतीके लिये पृथिवी जोतते समय बैलोंको नहीं मारना चाहिये ॥ ९ ॥ विद्वान् पुरुष भागती हुई और कठिनतासे बैठती हुई गौओंको दिक न करे, गौएँ प्यासी होकर जिस पुरुषकी ओर देखती हैं तो (जल न पिलाने पर) उसको बान्धवों सहित नष्ट कर डालती हैं ॥ १० ॥ जिन गौओंके गोवरसे पितरोंके और देवताओंके मन्दिर भी पवित्र होजाते हैं, तो उनसे अधिक और कौन पवित्र होगा ११ जो पुरुष दूसरेकी गौको वर्ष भर तक घासका पूला देता है और उस गौके मट्ठे आदिका भी आहार नहीं करता है तो वह उसका सार्वकामिक नामक व्रत माना जाता है १२ और वह पुरुष पुत्र, लक्ष्मी तथा यश पाता है अपने अशुभका नाश करता है और दुःस्वप्नका भी नाश कर डालता है १३ युधिष्ठिरने बूझा, कि-कैसे चिन्हों वाली गौओंका दान देय, कैसी गौओंका दान न देय, कैसे ब्राह्मणोंका दान देय और कैसे ब्राह्मणोंको दान

त्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने। हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ॥ १५ ॥ भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये। दत्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥ १६ ॥ यश्चैव धर्मं कुरुते तस्य धर्मफलं च यत्। सर्वस्यैवांशभाग्दाता तं निमित्तं प्रवृत्तयः ॥ १७ ॥ यश्चैनमुत्पादयते यश्चैनं त्रायते भयात्। यश्चास्य कुरुते वृत्तिं सर्वे ते पितरस्त्रयः ॥ १८ ॥ कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्ति मानो महद्यशः। अपुत्रतां त्रयः पुत्रा अवृत्तिं दशधेनवः ॥ १९ ॥ वेदान्तनिष्ठस्य बहुश्रुतस्य प्रज्ञानतृप्तस्य जितेन्द्रियस्य। शिष्टस्य दान्तस्य यतस्य चैव भूतेषु नित्यं प्रियवादिनश्च ॥२०॥ यः क्षुद्भयान्नैव विकर्म कुर्यान्मृदुश्च शांतो ह्यतिथि-

---

न देय १४ भीष्मजीने कहा, कि-असदाचरणी, पापी, लोभी, मिथ्याभाषी और हव्य तथा कव्यसे रहित ब्राह्मणको गौ कभी न देय १५ और भिक्षुक, बहुतसे पुत्रों वाले, वेदवेत्ता तथा अग्नि होत्री ब्राह्मणको दश गौओंका दान देने वाला पुरुष सर्वोत्तम लोकोंको पाता है १६ जो पुरुष धर्म कर्म करता है, उसको धर्म कर्मका ही फल मिलता है, उसमें थोड़ासा भाग उसको सहायता प्रदान करने वालेको भी मिलता है, क्योंकि-उसको धनकी सहायता देने वाला भी धर्माचरण करने वालेकी प्रवृत्तिमें कारणभूत है १७ जो पुरुष उत्पन्न करता है और जो भयसे बचाता है और जो वृत्ति बाँध देता है ये तीनों पिता माने जाते हैं १८ गुरुओंकी सेवा पापको, अभिमान महायशको, तीन पुत्र अपुत्रताको और दश धेनुएँ आजीविकाके अभाव (दरिद्रता) को दूर कर देती हैं १९ वेदान्त शास्त्र पर निष्ठा रखने वाले, बहुश्रुत, प्रज्ञानतृप्त, शिष्ट, जितेन्द्रिय, यमपालक, प्राणिमात्रसे सदा प्रिय बातें करने वाले ब्राह्मणकी वृत्ति बाँध देनी चाहिये२० क्षुधा लगने पर भी अधर्मका काम न करने वाले, मृदु, शान्त, अतिथियोंके प्रीतिपात्र, स्त्री

प्रियश्च । वृत्तिं द्विजायातिसृजेत तस्मै यस्तुल्यशीलश्च सपुत्र-दारः ॥ २१ ॥ शुभे पात्रे ये गुणा गोप्रदाने तावान् दोषो ब्राह्मणस्वापहारे । सर्वावस्थं ब्राह्मणस्वापहारो दाराश्चैषां दूरतो वर्जनीयाः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-धर्मे गोदानमाहात्म्य एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

भीष्म उवाच । अत्रैव कीर्त्यते सद्भिर्ब्राह्मणस्वाभिमर्षणे । नृगेण सुमहत्कृच्छ्रं यदवाप्तं कुरूद्वह ॥ १ ॥ निविशन्त्यां पुरा पार्थ द्वारवत्यामिति श्रुतिः। अदृश्यत महाकूपस्तृणवीरुत्समावृतः२ प्रयत्नं तत्र कुर्वाणास्तस्मात्कूपाज्जलार्थिनः ।श्रमेण महता युक्ता-स्तास्मस्तोये सुसंवृते ॥ ३ ॥ ददृशुस्ते महाकायं कृकलासमवस्थि-

और पुत्रों पर एकसा भाव रखने वाले ब्राह्मणकी आजीविका बाँध देनी चाहिये २१ एक सुपात्र ब्राह्मणको गोदान देनेसे जितना पुण्य होता है, उतना ही पातक ब्राह्मणका धन छीन लेनेसे लगता है चाहे जैसी अवस्था हो, परन्तु ब्राह्मणोंका धन न छीने और उनकी स्त्रियोंसे व्यभिचार न करे २२ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ छ छ छ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि-हे कुरुकुलकी वृद्धि करने वाले ! इस विषयमें महात्मा कहते हैं कि-ब्राह्मणका धन हर लेनेसे राजा नृगको बड़ा दुःख उठाना पड़ा था १ हे पृथापुत्र ! ऐसी जनश्रुति है कि-पहिले द्वारकापुरीनिवासी यादवकुमार (जलको ढूँढते हुए फिर रहे थे) इतनेमें ही उनको तिनके और लताओंसे ढका हुआ एक कुआ दीखा २ वे जल पीना चाहते थे अतः उन्होंने घास फूँससे ढके हुए जल वाले कूएके ऊपरसे बड़ा भारी परिश्रम कर घास फूँस हटा दिया ३ तब उन्होंने उसमें बड़े भारी शरीर वाले एक गिरगटको बैठे हुए देखा तब वे उसको निका-

तम् तस्य चोद्धरणे यत्नमकुर्वंस्ते सहस्रशः ॥ ४ ॥ प्रग्रहैश्चर्मपट्टैश्च तं बद्ध्वा पर्वतोपमम् । नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं ततो जग्मुर्जनार्दनम् ॥ ५ ॥ खमावृत्योदपानस्य कृकलासः स्थितो महान् । तस्य नास्ति समुद्धर्तेत्येतत् कृष्णे न्यवेदयन् ॥६॥ स वासुदेवेन समुद्धृतश्च पृष्टश्च कार्यं निजगाद राजा । नृगस्तदात्मानमथो न्यवेदयत् पुरातनं यज्ञसहस्रयाजिनम् ॥७॥ तथा ब्रुवाणन्तु तमाह माधवः शुभं त्वया कर्म कृतं न पापकम् । कथं भवान्दुर्गतिमीदृशीं गतो नरेन्द्र तद्ब्रूहि किमेतदीदृशम् ॥ ८ ॥ शतं सहस्राणि गवां शतं पुनः पुनः शतान्यष्टशतायुतानि । त्वया पुरा दत्तमितीह शुश्रुम नृप द्विजेभ्यः क्व नु तद्गतं तव ॥९॥नृगस्ततोऽब्रवीत् कृष्णं

लनेके लिये सहस्रों यत्न करने लगे ४ उन्होंने उस पर्वताकार शरीर वाले घिरघटको चमड़ेकी डोरियोंसे बाँध कर खेंचना चाहा परन्तु उसको न निकाल सके, तब वे श्रीकृष्णके पास पहुँचे ५ और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, कि - एक बड़ा भारी घिरघट कुएके आकाशस्थलको घेरे हुए पड़ा है और कोई उसको (हममेंसे) बाहर न निकल सका ॥ ६ ॥ तब श्रीकृष्णने तहाँ पहुँच कर उस घिरघटको बाहर निकाला तब श्रीकृष्णने उससे बूझा, कि तुम कौन हो ? तब राजा नृगने कहा, कि-मैंने अपने पहिले जन्ममें सहस्रों यज्ञ किये थे ॥ ७ ॥ वह राजा इस प्रकार कह रहा था तब माधवने उससे बूझा, कि-तूने शुभ कर्म ही किये हैं और कोई पापकर्म नहीं किया है, तब हे नरेन्द्र ! तेरी ऐसी दुर्दशा क्यों हुई है ? तेरा रूप ऐसा क्यों होगया है, यह तू मुझे बता ॥ ८ ॥ हे राजन् ! हमने सुना है, कि-तूने पहिले ब्राह्मणोंको असंख्य गौएँ दान करके दी हैं और एक समय तूने आठ चार लाख २ गौओंका दान किया था, तेरे उस गोदानका फल कहाँ गया तदनन्तर राजा नृगने श्रीकृष्णसे कहा,

ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः।प्रोषितस्य परिभ्रष्टा गौरेका मम गोधने१०
गवां सहस्रे संख्याता तदा सा पशुपैर्मम। सा ब्राह्मणाय मे दत्ता
प्रेत्यार्थमभिकाङ्क्षता ॥ ११ ॥ अपश्यत् परिमार्गंश्च तां गां पर-
गृहे द्विजः। ममेयमिति चोवाच ब्राह्मणो यस्य साभवत् ॥१२॥
तावुभौ समनुप्राप्तौ विवदन्तौ भृशज्वरौ। भवान् दाता भवान्
हर्तेत्यथ तौ मामवोचताम् ॥१३॥ शतेन शतसंख्येन गवां विनि-
मयेन वै। याचे प्रतिग्रहीतारं स तु मामब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥
देशकालोपसम्पन्ना दोग्ध्री शान्तातिवत्सला। स्वादुक्षीरप्रदा
धन्या मम नित्यं निवेशने ॥ १५ ॥ कृशं च भरते सा गौर्मम
पुत्रमपस्तनम्। न सा शक्या मया दातुमित्युक्त्वा स जगाम

कि एक अग्निहोत्री ब्राह्मण परदेश गया था उसकी एक गौ भटकती२ मेरे गोधनमें मिलगई ॥ १० ॥ और उसकी मेरे गोरक्षकोंने मेरी सहस्र गौओंमें गिनती कर ली, तदनन्तर मैंने भी मरणके पीछे स्वर्ग पानेकी इच्छासे वह गौ दूसरे ब्राह्मणको दान करके देदी ॥ ११ ॥ (इतनेमें पहिला ब्राह्मण परदेशसे लौट आया और अपनी गौको ढूँढने लगा) तो उसको वह गौ दूसरे ब्राह्मणके घरमें मिली, तब वह गौ जिस ब्राह्मणकी थी, उसने कहा, कि-"यह गौ तो मेरी है" ॥१२॥ इस बात पर लड़ते२ वे दोनों ब्राह्मण बड़े क्रोधमें भर गए और मेरे पास आये, उनमें से एक कहने लगा, कि-तूने यह गौ मुझे दानमें दी है, और दूसरा कहने लगा, कि-तूने मेरी गौ चुराली है ॥ १३ ॥ तब मैंने दान लेनेवालेसे कहा, कि-तू इस गौके बदलेमें एक लाख गौएँ लेले और मुझे यह गौ लौटा दे, तब उसने मुझसे कहा, कि-॥१४॥ यह गौ देश और कालके अनुकूल है, दुधेर है, शान्त है परम प्रेम करने वाली है और मधुर दूध देती है, यह परम प्रशंसनीय गौ मेरे घरमें रह कर माताके मर जानेसे कृश हुए मेरे पुत्रका

ह ॥ १६ ॥ ततस्तमपरं विप्रं याचे विनिमयेन वै । गवां शत-
सहस्रं हि तत्कृते गृह्यतामिति ॥१७॥ ब्राह्मण उवाच। न राज्ञां
प्रतिगृह्णामि शक्तोऽहं स्वस्य मार्गणे। सैव गौर्दीयतां शीघ्रं ममेति
मधुसूदन ॥ १८ ॥ रुक्ममश्वांश्च ददतो रजतस्यंदनांस्तथा । न
जग्राह ययौ चापि तदा स ब्राह्मणर्षभः ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नेव
काले तु चोदितःकालधर्मणा। पितृलोकमहं प्राप्य धर्मराजमु-
पागमम् ॥ २० ॥ यमस्तु पूजयित्वा मां ततो वचनमब्रवीत् ।
नान्तः संख्यायते राजंस्तव पुण्यस्य कर्मणः ॥२१॥ अस्ति चैव
कृतं पापमज्ञानात्तदपि त्वया । चरस्व पापं पश्चाद्वा पूर्वं वा त्वं
यथेच्छसि ॥२२॥ रक्षितास्मीति चोक्तं ते प्रतिज्ञा चानृता तव ।
ब्राह्मणस्वस्य चादानं द्विविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ २३ ॥ पूर्वं कृच्छ्रं

सदा पोषण करती है अतः मैं इस गौको नहीं देसकता,इसप्रकार
कह कर वह ब्राह्मण चला गया ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर मैंने
दूसरे ब्राह्मणसे प्रार्थनाकी, कि तू अपनी इस गौके बदलेमें एक
लाख गौएँ लेले ॥१७॥ हे मधुसूदन ! तब उस ब्राह्मणने उत्तर
दिया, कि-"मैं राजाओंका दान नहीं लेता हूँ, मैं अपनी आजी-
विकाके मार्गको अपने आप खोज सकता हूँ. अतः आप मेरी
गौ ही शीघ्रतासे मुझको देदीजिये" १८ तदनन्तर मैं उस ब्राह्मण
को सुवर्ण, घोड़े, चाँदी और रथ देने लगा, परन्तु उस ब्राह्मण-
र्षभने कुछ न लिया और चला गया ॥१६॥ तदनन्तर मैं कालके
प्रभावसे मरने पर पितृलोकमें यमराजके सामने पहुँचा ॥२०॥
धर्मराजने मेरी पूजा करके कहा, कि-हे राजन् ! तेरे पुण्यकर्मोंकी
गिनती नहीं होसकती ॥२१॥ तथापि तुझसे अनजानमें एक पाप-
कर्म बन गया है,अतः तू अपने पापके फलको पहिले भोगना चाहे
तो पहिले भोगले और पीछे भोगना चाहे तो पीछे भोग लेना २२
तेरी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा मिथ्या होगई है और तूने ब्राह्मणका

चरिष्येऽहं पश्चाच्छुभमिति प्रभो । धर्मराजं ब्रुवन्नेवं पतितोऽस्मि महीतले ॥ २४ ॥ अथोऽपि पतितश्चाहं यमस्योच्चैः प्रभाषतः । वासुदेवः समुद्धर्ता भविता ते जनार्दनः ॥२५॥ पूर्णे वर्षसहस्रांते क्षीणे कर्मणि दुष्कृते । प्राप्स्यसे शाश्वतान् लोकान् जितान् स्वेनैव कर्मणा ॥ २६ ॥ कूपेऽत्मानमधःशीर्षमपश्यं पतितश्च ह । तिर्यग्योनिमनुप्राप्तं न च मामजहात् स्मृतिः ॥ २७ ॥ त्वया तु तारितोऽस्म्यद्य किमन्यत्र तपोबलात् । अनुजानीहि मां कृष्ण गच्छेयं दिवमद्य वै ॥ २८ ॥ अनुज्ञातः स कृष्णेन नमस्कृत्य जनार्दनम् । दिव्यमास्थाय पन्थानं ययौ दिवमारदमः ॥ २९ ॥ ततस्तस्मिन्दिवं याते नृगे भरतसत्तम । वासुदेव इमं श्लोकं जगाद

धन हर लिया था,अतः तुझसे दो प्रकारका अपराध होगया है२३ "मैं पहिले पापका फल भोगूँगा फिर हे प्रभो ! पुण्यका फल भोगूँगा" धर्मराजसे ऐसा कहते ही मैं पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ २४ ॥ जिस समय मैं गिर रहा था, उस समय उच्च स्वरसे बोलते हुए यमराजकी यह बात मैंने सुनी, कि-वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण तेरा उद्धार करेंगे ॥ २५ ॥ सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर तेरा पाप क्षीण होजायगा, तब तू अपने कर्मसे जीते हुए शाश्वत लोकोंको पावेगा ॥ २६ ॥ उस समय मैंने अपनेको नीचेको मुख करके पड़े हुए देखा, यद्यपि उस समय मैं तिर्यक् योनिमें पड़ गया था, तब भी मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई थी २७ उस तिर्यक् योनिमेंसे आज आपने मुझे छुड़ा दिया है,यह भी तपोबलकी ही महिमा है,तपोबलसे अधिक और क्या होसकता है,हे कृष्ण ! अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये, तब मैं स्वर्गमें जाऊँ ॥२८॥ तब श्रीकृष्णके आज्ञा देने पर वह अरिन्दम राजा श्रीकृष्णको प्रणाम करके दिव्यमार्गसे स्वर्गमें चला गया ॥२९॥ हे कुरुनन्दन भरत-सत्तम ! राजा नृगके स्वर्गमें जाने पर वासुदेवने यह श्लोक

कुरुनन्दन ॥ ३० ॥ ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं पुरुषेण विजानता । ब्राह्मणस्वं हृतं हन्ति नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥३१॥ सतां समागमः सद्भिर्नाफलः पार्थ विद्यते । विमुक्तं नरकात् पश्य नृगं साधुसमागमात् ॥ ३२ ॥ प्रदानफलवत्तत्र द्रोहस्तत्र तथाफलः । अपचारं गवां तस्माद्वर्जयेत युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि अनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे नृगोपाख्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

युधिष्ठिर उवाच । दत्तानां फलसंप्राप्तिं गवां प्रब्रूहि मेऽनघ । विस्तरेण महाबाहो न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । ऋषेरुद्दालके-र्वाक्यं नाचिकेतस्य चोभयोः ॥२॥ ऋषिरुद्दालकिर्दीक्षामुपगम्य

पड़ा था ॥ ३० ॥ विवेकी पुरुषको ब्राह्मणका धन न छीनना चाहिये, ब्राह्मणका धन छीन लेने पर वह धन, ब्राह्मणकी गौके नृगको मारनेके समान, हरणकर्ताको मार डालता है ॥ ३१ ॥ और हे पार्थ ! सज्जनोंका समागम कभी निष्फल नहीं जाता है, देखो राजा नृग साधुसमागमके कारण नरकसे छूट गया था ३२ हे युधिष्ठिर ! जैसे गोदानका फल मिलता है, तैसे ही उनसे द्रोह करनेसे भी (बुरा) फल मिलता है, अतः गौओंको दुःख न देय और दूसरेकी गौको न छीने ३३ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ७०

राजा युधिष्ठिरने बूझा, कि हे निर्दोष महाभुज भीष्म ! गौओं का दान देनेसे जो फल मिलता हो, उसको आप मुझसे विस्तार-पूर्वक वर्णन करिये, तुम्हारे मुखसे कथा सुनते २ मुझै तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें उद्दालक ऋषि और नाचिकेताके संवादरूप एक प्रचीन इतिहासको इस प्रकार कहते हैं कि-॥२॥ उद्दालक ऋषिने व्रत धारण करते हुए अपने पुत्र नाचिकेतके पास जाकर कहा, कि-

ततः सुतम् । त्वं मामुपचरस्वेति नाचिकेतमभाषत ॥३॥ समाप्ते नियमे तस्मिन्महर्षिः पुत्रमब्रवीत् । उपस्पर्शनसक्तस्य स्वाध्यायाभिरतस्य च ॥४॥ इध्मा दर्भाः सुमनसः कलशश्चातिभोजनम् । विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज ॥ ५ ॥ गत्वानवाप्य तत्सर्वं नदीवेगसमाप्लुतम् । न पश्यामि तदित्येवं पितरं सोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ६ ॥ क्षुत्पिपासाश्रमाविष्टो मुनिरुद्दालकिस्तदा । यमं पश्येति तं पुत्रमशपत् स महातपाः ॥ ७ ॥ तथा स पित्राभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः । प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्वोऽपतद्भुवि ८ नाचिकेतं पिता दृष्ट्वा पतितं दुःखमूर्च्छितः । किं मया कृतमित्युक्त्वा निपपात महीतले ॥९॥ तस्य दुःखपरीतस्य स्वपुत्रमनुशोचतः ।

तुझे मेरी सेवा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ तदनन्तर व्रत पूर्ण होने पर उन महर्षिने पुत्रसे कहा, कि–मैं व्रतका सेवन करनेमें लगा हुआ था और स्वाध्यायमें तत्पर था, अतः मैं नदीके तट पर यज्ञके काष्ठ, दर्भ, पुष्प, जलका कलश और शाक आदि सामग्रीको भूल आया हूँ, अतः तू लेआ ॥ ४ ॥ ५ ॥ नाचिकेत वहाँ पहुँचा, किन्तु वहाँ पर सब वस्तुएँ नदीके प्रवाहसे वह गई थीं, अत एव उसको वे वस्तुएँ न मिलीं तब उस मुनिने अपने पितासे आकर कहा, कि वे वस्तुएँ वहाँ प्रतीत नहीं होतीं ॥ ६ ॥ उस समय महातपस्वी उद्दालक ऋषि भूखे और प्यासे और थके हुए थे, इस लिये उन्होंने पुत्रको शाप दिया, कि–" तू यमके दर्शन कर" (मर जा) ॥७॥ इस प्रकार पिताके वाणीरूप वज्रसे प्रहार करते ही वह पुत्र दोनों हाथ जोड़कर "प्रसन्न हो" कहता हुआ सत्वरहित होकर गिर पड़ा ॥ ८ ॥ नाचिकेताको पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर उसकेपिता भी "मैंने यह क्या किया" कह कर दुःखसे मूर्छितहो पृथिवीमें गिर गए ॥ ९ ॥ वे ऋषि दुःखमें मग्न होगए और उनको अपने पुत्रका शोक करते हुए

व्यतीतं तदहःशेषं सा घोरा तत्र शर्वरी ॥ १० ॥ पित्र्येणा-
श्रुपातेन नाचिकेतः कुरूद्वह । मास्यंदच्छयने कौश्ये वृष्ट्या सस्य-
मिवाप्लुतम् ॥ ११ ॥ स पर्यपृच्छत्तं पुत्रं क्षीणं पर्यागतं पुनः ।
दिव्यैर्गन्धैः समादिग्धं क्षीणस्वप्नमिवोत्थितम् ॥१२॥ अपि पुत्र
जिता लोकाः शुभास्ते स्वेन कर्मणा । दिष्ट्या चासि पुनः प्राप्तो
न हि ते मानुषं वपुः ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पित्रा पृष्टो
महात्मना । स तां वार्तां पितुर्मध्ये महर्षीणां न्यवेदयत् ॥ १४ ॥
कुर्वन् भवच्छासनमाशुयातो ह्यहं विशालां रुचिरप्रभावाम् ।
वैवस्वतीं प्राप्य सभामपश्यं सहस्रशोयोजनहेमभासम् ॥ १५ ॥
दृष्ट्वैव मामभिमुखमापतन्तं देहीति स ह्यासनमादिदेश । वैवस्व-

वह दिन और भयंकर रात्रि बीत गई ॥१०॥ हे कुरुवंशकी वृद्धि करने वाले ! जलकी वृष्टि होनेसे जैसे बीज अंकुरित होजाता है तैसेही दर्भासन पर सोता हुआ नाचिकेत अपने पिताके आँसु-ओंसे भीग कर जीवित होगया ॥ ११ ॥ अपने पुत्रको मर कर जीवित हुआ देख कर उसके शरीर पर चंदन लगा हुआ तथा उसको निद्रासे उठे हुएकी समान देख कर ऋषि उससे बूझने लगे कि-१२ हे पुत्र ! तूने अपने पुण्यकर्मोंसे पवित्र लोकोंको जीत लिया है,तू फिर जीवित होगया यह बड़े आनन्दकी बात है तेरा शरीर मानवीय नहीं, किंतु दिव्य है ॥ १३ ॥ नाचिकेतने यमलोकमें सबको अपनी दृष्टिसे देखा था अतः उससे उसके महात्माने पिता उससे यमलोकके संबंधमें प्रश्न किया, तब वह अपने पिता और महर्षियोंसे यमलोककी बात कहने लगा १४ कि-मैं आपकी आज्ञाको ग्रहण करके मनोहर प्रभाव वाली विशाल यमराजकी सभामें गया, वह सभा सहस्रों योजन लंबी थी और सुवर्णकी समान दमक रही थी १५ मुझे आता देख कर धर्म-राजने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, कि- 'इसको बैठनेके लिये

तोऽर्घ्यादिभिरर्हणैश्च भवत्कृते पूजयामास मां सः ॥ १६ ॥
ततस्त्वहं तं शनकैरवोचं वृतः सदस्यैरभिपूज्यमानः । प्राप्तोऽस्मि
ते विषयं धर्मराज लोकामर्हो यानहं तान्विधत्स्व ॥१७॥ यमोऽब्र-
वीन्मां न मृतोऽसि सौम्य यमं पश्येत्याह स त्वां तपस्वी । पिता
प्रदीप्ताग्निसमानतेजा न तच्छक्यमनृतं विप्रकर्तुम् ॥१८॥ दृष्टस्तेऽहं
प्रतिगच्छस्व तात शोचत्यसौ तव देहस्य कर्ता । ददानि किं चापि
मनः प्रणीतं प्रियातिथेस्तव कामान् वृणीष्व ॥ १६ ॥ तेनैवमुक्त-
स्तमहं प्रत्यवोचं प्राप्तोस्मि ते विषयं दुर्निवर्त्यम् । इच्छाम्यहं
पुण्यकृतां समृद्धांल्लोकान् द्रष्टुं यतेऽहं वरार्हः ॥ २० ॥ यानं
समारोप्य तु मां स देवो वाहैर्युक्तं सुप्रभं भानुमत्तत् । संदर्शया-

---

श्रेष्ठ आसन दो' तदनन्तर वैवस्वत धर्मराजने सत्कार करनेके
लिये अर्घ आदि सामग्रीसे मेरी पूजाकी १६ इसके बाद सभा-
सदोंने मुझे घेर लिया और मेरी पूजाकी तब मैंने धीरे २ उनसे
कहा, कि-हे धर्मराज ! मैं आपके देशमें आगया हूँ, अतः
जो लोक मेरे योग्य हों उनमें मुझको भेजिये ॥ १७ ॥
तब यमने मुझसे कहा, कि-हे सौम्य ! तू मरा नहीं है, प्रदीप्त
अग्निकी समान तेज वाले तेरे तपस्वी पिताने तुझसे यमका
दर्शन करनेको कहा था, हे विप्र ! उस वचनको लौटा नहीं
जासकता था ॥ १८ ॥ हे तात ! अब तूने मुझे देख लिया,
अतः अब तू लौट जा, तेरे पिता तेरा शोक कर रहे हैं, तू मेरा
प्यारा अतिथि है, अतः बता अब मैं तुझे तेरा कौनसा अभि-
लषित वर दूँ, तू मुझसे वर माँगले ॥ १६ ॥ यमके इस प्रकार
कहने पर मैंने कहा, कि–जहाँसे पीछेको लौटना बड़ा कठिन है,
ऐसे आपके देशमें मैं आया हूँ, अब आप मुझे वरदान देने
योग्य समझते हों तो मैं पुण्यकर्म करने वालोंके समृद्धिमान
लोकोंको देखना चाहता हूँ ॥ २० ॥ तदनन्तर हे द्विजेन्द्र ! वह

मास तदात्मलोकान् सर्वांस्तथा पुण्यकृतां द्विजेन्द्र ॥ २१ ॥ अपश्यं तत्र वेश्मानि तैजसानि महात्मनाम् । नानासंस्थानरूपाणि सर्वरत्नमयानि च ॥ २२ ॥ चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किंकणीजालवन्ति च । अनेकशतभौमानि सान्तर्जलवनानि च ॥२३॥ वैदूर्यार्कप्रकाशानि रूप्यरुक्ममयानि च । तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ॥२४॥ भक्ष्यभोज्यमयान् शैलान् वासांसि शयनानि च । सर्वकामफलांश्चैव वृक्षान् भवनसंस्थितान् ॥ २५ ॥ नद्यो वीथ्यः सभा वाप्यो दीर्घिकाश्चैव सर्वशः । घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः ॥ २६ ॥ क्षीरस्रवा वै सरितो गिरींश्च सर्पिस्तथा विमलं चापि तोयम् । वैवस्वतस्यानुमतांश्च देशान-

---

यमराज मुझे एक रमणीय कान्ति वाले दमकते हुए घोड़े जुते रथमें बैठा कर पुण्यकर्म करने वालोंके और अपने सब लोकोंको दिखाने लगे ॥ २१ ॥ तहाँ मैंने महात्माओंके अनेक प्रकारके आकार वाले, रत्नोंसे जड़े हुए, चन्द्रमण्डलकी समान श्वेत, ध्वनि करने वाले घुँघुरुओंसे शोभायमान, सैंकड़ों मञ्जिल वाले और भीतरसे बावड़ी और बगीचोंसे शोभायमान वैदूर्यमणि और सूर्यकी समान प्रकाश वाले, रूपहले, सुनहरे, और बाल सूर्यकी समान वर्ण वाले चलते फिरते और स्थावर तेजोमय भवनोंको देखा ॥ २२-२४ ॥ और मैंने भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंके पर्वताकार ढेर, वस्त्र, पलँग, और सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले वृक्षोंसे शोभायमान घरोंको (भी देखा) ॥२५॥ और मैंने पहिले कभी न देखी हुई नदी, गली, सभा, बावड़ी, तालाब और सहस्रों शब्द करते हुए चलने वाले रथोंको जुते खड़े देखा ॥ २६ ॥ और मैंने दूध बहाने वाली नदियें, घृतके पर्वत, और निर्मल जल जहाँ तहाँ देखे तथा मैंने यमराजकी अनुमति पाकर पहिले कभी न देखे हुए और भी बहुतसे देश

दृष्टपूर्वान् सुबहूनपश्यम् ॥२७। सर्वान् दृष्ट्वा तदहं धर्मराजमवोचं वै प्रभविष्णुं पुराणम्। क्षीरस्यैताः सर्पिषश्चैव नद्यः शश्वत्स्रोताः कस्य भोज्याः प्रदिष्टाः ॥ २८॥ यमोऽब्रवीद्विद्धि भोज्यास्त्वमेता ये दातारः साधवो गोरसानाम्। अन्ये लोकाः शाश्वता वीतशोकैः समाकीर्णा गोप्रदाने रतानाम् ॥२९॥ न त्वेतासां दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च। ज्ञात्वा देयं विप्रगवान्तरं हि दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥३०॥ स्वाध्यायवान् योऽतिमात्रं तपस्वी वैतानस्थो ब्राह्मणः पात्रमासाम्। कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ३१ ॥ तिस्रो रात्र्यस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः। वत्सैः

देखे ॥ २७ ॥ इन सबको देख कर मैंने प्रभावशाली प्राचीन यमराजसे कहा, कि-इन सदा प्रवाहित रहने वाली क्षीर और घृतकी नदियोंका कौन उपभोग करता है? ॥ २८ ॥ तब यमने मुझसे कहा, कि-जो सज्जन पुरुष गोरसका दान देते हैं उनको ये नदियें भोगनेको मिलती हैं तथा गोदान पर प्रेम करने वाले वीतशोक मनुष्योंसे और भी बहुतसे शाश्वत लोक घिर रहे हैं ॥ २९ ॥ केवल गोदान करना ही प्रशंसनीय नहीं है, किंतु पात्र, समय, गौ और दानविधि इन सबका विचार करना आवश्यक है, ब्राह्मण और गौ इन दोनोंके तारतम्यको विचार कर दान देना चाहिये और जिसको गौ दीजाय उसके घरमें गौको अग्नि और सूर्य (धूप) से कष्ट तो नहीं होगा? इसका विचार करके दान देना चाहिये ॥३०॥ वेदका स्वाध्याय करने वाला और अग्निहोत्री ब्राह्मण गोदानका पात्र माना जाता है, जो गौएँ संकटमेंसे छूट गई हों और जो गौएँ पोषणके लिये दरिद्रके घरसे आई हों उनका पोषण करना उत्तम है ॥ ३१ ॥ गोदान देने वाला पुरुष तीन रात तक जलका आहार करे,

प्रीताः सुप्रजाः सोपचारास्त्र्यहं दत्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥३२॥
दत्वा धेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावद्वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम्३३
तथानड्वाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।
कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं भुंक्ते लोकान संमितान् धेनुदस्य३४
गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः । वृद्धे
ग्लाने संभ्रमे वा महार्थे कृष्यर्थं वा होम्यहेतोः प्रसूत्याम् ॥३५॥
गुर्वर्थं वा बालपुष्ट्याभिषंगां गां वै दातुं देशकालोऽविशिष्टः ।
अन्तर्ज्ञाताः सक्रियज्ञानलब्धाः प्राणक्रीता निर्जिता यौतकाश्च३६

भूमिमें सोवे, और चौथे दिन जिन गौओंका दान देना हो उनको (सानी आदिसे) तृप्त करे और जिनको दान देना हो उन ब्राह्मणोंको भी तृप्त करके गोरसका आहार करता हुआ तीन दिन तक एक २ परम सन्तुष्ट सवत्सा गौओंका दान करे और साथमें सामग्री भी दे ॥३२॥ जो पुरुष सुशील, दौड़ भाग न करने वाली सवत्सा गौका और उसके साथ दुग्ध दुहनेके काँसीके पात्रका दान देता है वह पुरुष गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षों तक स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार पुरुष सधे हुए बलवान् तरुण और कुल भरकी आजीविका चलाने वाले वीर्यवान् उन्नत बैलका ब्राह्मणोंको दान देने पर धेनुदान करने वालेके लोकोंको पाता है ॥३४॥ गौओं पर क्षमा करने वाला, गौओंको शरण देने वाला, कृतज्ञ और आजीविकारहित पुरुष दानपात्र माना जाता है, जो पुरुष वृद्ध होगया हो, रोगी होगया हो उसको और दुष्कालके समय, यज्ञ आदिमें खेती करते समय, यज्ञमें होम करते समय, पुत्रके जन्मके समय, गुरुके लिये आवश्यकता पड़ने पर, बालकके पोषणके लिये आवश्यकता होने पर गोदान करनेका समय वा पात्र देखनेकी आवश्यकता

नाचिकेत उवाच । श्रुत्वा वैवस्वतवचस्तमहं पुनरन्वयुवम् । अभावे गोप्रदातृणां कथं लोकान् हि गच्छति ॥ ३७ ॥ ततोऽब्रवीद्यमो धीमान् गोप्रदानपरां गतिम् । गोप्रदानानुकल्पं तु गामृते सन्ति गोप्रदाः ॥ ३८ ॥ अलाभे यो गवां दद्यात् घृतधेनुं यतव्रतः । तस्यैता घृतवाहिन्यः क्षरन्ते वत्सला इव ॥ ३९ ॥ घृतालाभे तु यो दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः । स दुर्गात्तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ॥ ४० ॥ तिललाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं यतव्रतः । स कामप्रवहां शीतां नदीमेतामुपाश्नुते ॥ ४१ ॥ एवमेतानि मे तत्र

नहीं है, अब कैसी गौ दान देने योग्य मानी जाती है, यह बताता हूँ, जो गौ दूध देती हुई हो, जो गौं बिकती हुई खरीदी हो,जो ज्ञानसे पाई हो, जिसकी प्राणोंकी भी उपेक्षा करके रक्षा की हो और जो गौ ससुर आदिसे दहेजमें मिली हो उसका दान देना चाहिये॥३५॥३६॥नाचिकेतने कहा,कि-यमराजकी बात सुनकर मैंने फिर उनसे बूझा, कि-जिसमें गोदान करनेकी शक्ति न हो वह परलोकमें किस प्रकार जाता है ? ॥ ३७ ॥ यह सुन कर बुद्धिमान् यम मुझसे गोप्रदानसे मिलने वाली गतिका वर्णन करते हुए कहने लगे,कि-गौके विना भी लोग गोदान कर सकते हैं उनको गोदानकी गौणविधि करनी चाहिये ॥ ३८ ॥ जो व्रत-धारी पुरुष गौ न मिले तो इसके बदलेमें घृतकी गौका दान देता है, उसको ये घृतवाहिनियें वत्सला गौकी समान घृत देती हैं ॥३९॥ और घृतके भी न मिलने पर जो व्रतधारी पुरुष तिल-धेनुका दान देता है,तो गौ उसको कठिन स्थलसे पार कर देती हैं और वह क्षीरनदीमें आनन्द करता है ॥ ४० ॥ और तिल भी न मिलें तो जो व्रतधारी पुरुष जलकी धेनुका दान देता है तो वह इस नवीन २ कामनाओंके प्रभाववाली शीतल नदीका उपभोग करता है ॥४१॥ इस प्रकार धर्मराजने मुझसे दानोंका

धर्मराजो न्यदर्शयत् । दृष्ट्वा च परमं हर्षमवापमहमच्युत ॥ ४२ ॥ निवेदये चाहमिमं प्रियं ते क्रतुर्महानल्पधनप्रचारः । प्राप्तो मया तात स मत्प्रसूतः प्रपत्स्यते वेदविधिप्रवृत्तः ॥ ४३ ॥ शापो ह्ययं भवतोऽनुग्रहाय प्राप्तो मया यत्र दृष्टो यमो वै । दानव्युष्टिं तत्र दृष्ट्वा महात्मन्निःसंदिग्धान् दानधर्मांश्चरिष्ये ॥ ४४ ॥ इदं च मामब्रवीद् धर्मराजः पुनः पुनः संप्रहृष्टो महर्षे । दानेन यः प्रयतोऽभूत्सदैव विशेषतो गोप्रदानं च कुर्यात् ॥ ४५ ॥ शुद्धो ह्यर्थो नावमन्यस्व धर्मान् पात्रे देयं देशकालोपपन्ने । तस्माद्गावस्ते नित्यमेव प्रदेया मा भूच्च ते संशयः कश्चिदत्र ॥ ४६ ॥ एता पुरा ह्यददन्नित्यमेव शान्तात्मानो दानपथे निविष्टाः । तपांस्युग्राण्यप्रति-

वर्णन किया था, हे अच्युत ! मैं भी इन दानोंको सुन कर परम हर्षित होगया हूँ ॥४२॥ मैं यह अपनी प्रिय बात आपसे कहता हूँ कि-यह गोदानरूप महायज्ञ थोड़ेसेही धनसे होसकता है,हे तात! इस यज्ञका मुझसे यमराजने वर्णन किया था, वेदमें भी इसकी विधि है और यह प्रसिद्ध होकर जगत्में प्रवृत्त होगा ॥४३॥ आपके इस शापने मेरे ऊपर अनुग्रह ही किया है,क्योंकि इसके कारण मैंने यमराजका दर्शन पाया, हे महात्मन् ! दानके फलोंको देखने के पीछे अब मैं सब दानधर्मोंका निःसंदिग्धरूपसे पालन करूँगा ॥४४॥ महर्षे ! धर्मराजने हर्षमें भर कर मुझसे वारवार कहा था, कि तू दान देनेका प्रयत्न करना और गोदान विशेषरूपसे करना ॥४५॥ धर्मविधि शुभ शुद्ध कर्म है, तू धर्मका अपमान न करना पवित्रदेशमें पवित्र समयमें सुपात्र ब्राह्मणको दान देना चाहिये, अतः तू सर्वदा गौओंका दान देना, इसमें तू किसी प्रकारका सन्देह न कर ॥ ४६ ॥ शान्त मन वाले और दानमार्गका सेवन करने वाले पुरुष पहिले सदा गौओंका दान देते रहते थे, जो उग्र तप करनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं

शंकमानास्ते वै दानं प्रददुश्चैव शक्त्या ॥ ४७ ॥ काले च शक्त्या मत्सरं वर्जयित्वा शुद्धात्मानः श्रद्धिनः पुण्यशीलाः । दत्वा गा वै लोकममुं प्रपन्ना देदीप्यन्ते पुण्यशीलास्तु नाके ॥ ४८ ॥ एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः पात्रे दत्तं प्रापणीयं परीक्ष्य । काम्याष्टम्यां वर्तितव्यं दशाहं रसैर्गवां शकृता प्रस्नवैर्वा ॥४९॥ देवव्रती स्याद्वृषभप्रदानैर्वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने । तीर्थावाप्तिर्गोप्रयुक्तप्रदाने पापोत्सर्गः कपिलायाः प्रदाने ॥५०॥ गामप्येकां कपिलां संप्रदाय न्यायोपेतां कलुषाद्विप्रमुच्येत् । गवां रसात्परमं नास्ति किंचिद्गवां प्रदानं सुमहद्ध वदन्ति ॥ ५१॥ गावो लोकांस्तारयन्ति क्षरन्त्यो गावश्चान्नं संजनयन्ति लोके । यस्तं जानन्न

रखते थे, वे भी शक्तिके अनुसार दान देते थे ॥४७॥ अतः शुद्ध मन वाले, श्रद्धावान् और पुण्य कर्म करने वाले पुरुष पर्व आदि के समय गोदान देकर स्वर्गमें जाकर प्रकाशित होते रहते हैं ४८ गोदान देने वाला गौको न्यायसे प्राप्त करे, जिसको दान देना हो उस सुपात्रकी परीक्षा करे तथा जहाँ गौ दीजावेगी तहाँ उसको ठीक ठीक आहार मिलेगा या नहीं ? इसकी खोज करे, इसके अनन्तर द्विजको दान दे दान काम्य अष्टमीके दिनदे और फिर दश दिन तक गौका दुग्ध अथवा गौका गोबर अथवा गोमूत्र पीकर रहे ॥ ४९ ॥ वृषभका दान देनेसे देवव्रत करनेका फल मिलता है, गौ और वृषभके जोड़ेका दान देनेसे वेदाध्ययनका फल मिलता है, बैलोंसे जुड़े हुए रथ आदिका दान देनेसे तीर्थयात्राका फल मिलता है और कपिला गौका दान देनेसे पापका नाश होजाता है ॥ ५० ॥ न्यायसे प्राप्तकी हुई एक भी कपिला गौका दान देनेसे पुरुष पापोंसे छूट जाता है, गोरससे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, और गौओंका दान उदार माना जाता है ॥ ५१ ॥ दुधेर गौ मनुष्योंका नरकमेंसे उद्धार कर देती है और गौएँ

गवां हार्दमेति स वै गन्ता निरयं पापचेताः ॥ ५२ ॥ यैस्तद्दत्तं गोसहस्रं शतं वा दशार्धं वा दश वा साधु वत्सम् । अप्येका वै साधवे ब्राह्मणाय सा स्यामुष्मिन्पुण्यतीर्था नदी वै ॥ ५३ ॥ प्राप्त्या पुष्ट्या लोकसंरक्षणेन गावस्तुल्याः सूर्यपादैः पृथिव्याम् । शब्दश्चैकः संततिश्चोपभोगास्तस्माद्गोदः सूर्य इवावभाति ॥ ५४ ॥ गुरुं शिष्यो वरयेद्गोप्रदाने स वै गन्ता नियतं स्वर्गमेव । विधिज्ञानां सुमहान् धर्म एषो विधिं ह्याद्यं विधयः संविशन्ति ॥५५॥ इदं दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः पात्रे दत्वा प्रापयेथाः परीक्ष्य । त्वय्याशंसंत्यमरा मानवाश्च वयं चापि प्रसृते पुण्यशीले ॥५६॥

संसारमें अन्नको उत्पन्न करती हैं, जो इस बातको जान कर भी गौओंके मनके भावके अनुसार वर्ताव नहीं करता है अर्थात् उनको न सानी देता है न पानी पिलाता है और न खुजलाता है, वह पापी चित्तवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है ॥५२॥ जो पुरुष एक सहस्र, सौ, दश, पाँच अथवा एक ही गौ सुपात्र ब्राह्मणको देता है, तो वह गौ उस पुरुषके लिये परलोकमें पवित्र नदीरूप होजाती है ५३ सूर्यकी किरणें जैसे पृथ्वीका अभ्युदय करती हैं, पुष्टि देती हैं और जगत्की रक्षा करती हैं, तैसे ही गौएँ भी दुग्ध तथा खेती आदिसे जगत्का अभ्युदय, पोषण तथा रक्षण करती हैं, अतएव गौएँ पृथ्वीमें सूर्यकी किरणोंकी समान मानी जाती हैं, और गो शब्द किरण और गौ इन दोनोंका वाचक है इससे मनुष्यकी उन्नति होती है तथा भोग भोगनेको मिलते हैं और गोदान देने वाला सूर्यकी समान दिपने लगता है५४ शिष्य गोदान देनेके लिये गुरुका वरण करने पर अवश्य ही स्वर्गमें जाता है, विधिको जानने वालेके लिये यह महान् धर्म है इस आद्य विधिके अन्तर्गत ही और सब विधियें आजाती हैं ५५ गौको न्यायसे प्राप्त करके और सुपात्र ब्राह्मणकी परीक्षा करके

इत्युक्तोऽहं धर्मराजं द्विजर्षे धर्मात्मानं शिरसाभिप्रणम्य । अनु-
ज्ञातस्तेन वैवस्वतेन प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ॥ ५७ ॥
इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
यमवाक्यं नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिर उवाच । उक्तं ते गोप्रदानं वै नाचिकेतमृषिं प्रति ।
माहात्म्यमपि चैवोक्तमुद्देशेन गवां प्रभो ॥ १ ॥ नृगेण च महद्
दुःखमनुभूतं महात्मना । एकापराधादज्ञानात्पितामह महामते २
द्वारवत्यां यथा चासौ निविशन्त्यां समुद्धृतः। मोक्षहेतुरभूत्कृष्ण-
स्तदप्यवधृतं मया ॥३॥ किं त्वस्ति मम संदेहो गवां लोकं प्रति
प्रभो । तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि गोदा यत्र वसंत्युत ॥ ४ ॥ भीष्म

उसको गौ देनी चाहिये, देवता तथा मनुष्य और हम भी यह आशा रखते हैं, कि "पुण्यकर्म करने वाला तू गौओंका दान देगा और उनका फल तुझको मिलेगा" ॥ ५६ ॥ हे द्विजर्षे ! धर्मराजके इस प्रकार कहने पर मैंने उन धर्मात्मा धर्मराजको प्रणाम किया, फिर विवस्वान्‌के पुत्र यमराजके मुझे आज्ञा देने पर मैं आपके चरणोंकी शरणमें आगया हूँ ॥ ५७ ॥ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा कि-हे प्रभो ! (यमने) ऋषि नाचिकेतसे गोदानके संबंधमें जो बात कही वह और गौओंको लक्ष्यमें रख कर आपने उनका माहात्म्य भी कहा॥१॥ और हे महाबुद्धिमान् पितामह ! महात्मा राजा नृगने अज्ञानवश हुए एक ही अपराधके कारण बड़ा भारी दुःख भोगा ॥ २ ॥ और उसको गिरगटके रूपमें द्वारकापुरीमें रहना पड़ा था और तहाँसे श्रीकृष्णने उसका उद्धार किया, यह भी मैंने सुना ॥३॥ किन्तु हे प्रभो ! गोलोक के संबंधमें मुझे एक सन्देह है । अतः जहाँ पर गोदान देने वाले रहते हैं, उन गोलोकोंके संबधकी यथार्थ बात मैं सुनना

उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यथापृच्छत् पद्मयोनिमेतदेव शतक्रतुः ॥ ५ ॥ शक्र उवाच । स्वर्लोकवासिनां लक्ष्मीमभिभूय स्वयार्चिषा । गोलोकवासिनः पश्ये व्रजतः संशयोऽत्र मे ॥ ६ ॥ कीदृशा भगवंल्लोका गवां तद्ब्रूहि मेऽनघ । यानावसन्ति दातार एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ७ ॥ कीदृशाः किंफलाः किंस्वित् परमस्तत्र को गुणः । कथं च पुरुषास्तत्र गच्छन्ति विगतज्वराः ॥ ८ ॥ कियत्कालं प्रदानस्य दाता च फलमश्नुते । कथं बहुविधं दानं स्यादल्पमपि वा कथम् ॥ ९ ॥ बह्वीनां कीदृशं दानमल्पानां वापि कीदृशम् । अदत्वा गोप्रदाः सन्ति केन वा तच्च शंस मे ॥१०॥ कथं वा बहुदाता स्यादल्प-

---

चाहता हूँ ॥ ४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-इन्द्रने ब्रह्माजीसे इस विषयमें जिस प्रकार बूझा था, मनुष्य उस प्राचीन इतिहासका इस प्रकार दृष्टान्त-देते हैं ॥ ५ ॥ इन्द्रने बूझा, कि-हे ब्रह्मन् ! गोलोकमें रहने वाले अपनी कान्तिसे स्वर्गलोकमें रहने वालोंकी कान्तिको हलकी करते हुए चले जाते हैं, यह मैंने देखा है अतः मुझे संदेह होरहा है ॥६॥ कि-हे भगवन् ! हे निर्दोष ब्रह्मन् ! गोलोक कैसे हैं, यह मुझसे कहिये, जिन लोकोंमें गोदान देने वाले रहते हैं उन लोकोंको मैं यथार्थ रीतिसे जानना चाहता हूँ७ मुझे यह बताइये, कि-गौओंके लोक कैसे हैं ? तहाँ क्या फल मिलता है ? उनके गुण क्या हैं ? तथा और पुरुष दुःखोंसे मुक्त होकर तहाँ किस प्रकार पहुँचते हैं इसका मुझसे वर्णन करिये ॥ ८ ॥ गौ देने वाला कितने समय तक दानका फल भोगता है गौओंका दान विशिष्ट किस प्रकार होता है और उनका फल निकृष्ट किस प्रकार होजाता है ॥९॥ थोड़ी गौओंका दान देनेसे क्या फल मिलता है और बहुतसी गौओंका दान देनेसे क्या फल मिलता है ? और गोदान न देने पर भी मनुष्य

दात्रा समः प्रभो । अल्पप्रदाता बहुदः कथंस्वित् स्यादिहेश्वर ११
कीदृशी दक्षिणा चैव गोप्रदाने विशिष्यते । एतत्तथ्येन भगवन्
मम शंसितुमर्हसि ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे गोप्रदानिके द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

पितामह उवाच । योऽयं प्रश्नस्त्वया पृष्टो गोप्रदानादिकारितः ।
नास्ति प्रष्टास्ति लोकेस्मिंस्त्वत्तोऽन्यो हि शतक्रतो ॥ १ ॥ सन्ति
नानाविधा लोका यांस्त्वं शक्र न पश्यसि । पश्यामि यानहं
लोकानेकपत्न्यश्च याः स्त्रियः ॥ २ ॥ कर्मभिश्चापि सुशुभैः
सुव्रता ऋषयस्तथा । सशरीरा हि तान् यान्ति ब्राह्मणाः शुभ-
बुद्धयः ॥ ३ ॥ शरीरन्यासमोक्षेण मनसा निर्मलेन च । स्वप्न-

गोदान देने वाले कैसे माने जाते हैं, यह मुझसे कहिये ॥१०॥
और हे प्रभो ! बहुत दान देने वाला अल्प दान देने वालेकी
समान कैसे हो जाता है और हे ईश्वर ! अल्पदान करने वाला
बहुतसी गौओंका दान देने वालेकी समान कैसे होजाता है ११
और हे भगवन् ! गोदानके समय कैसी दक्षिणा विशिष्ट मानी
जाती है, यह बात यथार्थ रीतिसे मुझसे कहिये १२ बहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ * * *

पितामहने कहा, कि-हे इन्द्र ! तूने गोदान आदिके सम्बन्धमें
मुझसे जो प्रश्न बूझे थे, उन प्रश्नोंका बूझने वाला इस संसारमें
तेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है ॥ १ ॥ हे शक्र ! लोक अनेक
प्रकारके हैं, उन लोकोंको तू नहीं देख सकता, किन्तु मैं देख रहा
हूँ और एक पतिका आश्रय करके रहने वाली स्त्रियें देख सकती
हैं ॥ २ ॥ सुन्दर व्रतधारी ऋषि और शुभ बुद्धि वाले ब्राह्मण
उत्तम कर्म करके अवश्य ही उन लोकोंमें जाते हैं ३ तथा उत्तम
व्रत धारण करने वाले पुरुष समाधि लगानेके समय और मरण

भूतांश्च तांल्लोकान् पश्यन्तीहापि सुव्रताः ॥ ४ ॥ ते तु लोकाः सहस्राक्ष शृणु यादृग्गुणान्विताः । न तत्र क्रमते कालो न जरा न च पावकः ॥ ५॥ तथा नास्त्यशुभं किंचिन्न व्याधिस्तत्र न क्लमः । यद्यच्च गावो मनसा तस्मिन् वाञ्छन्ति वासव ॥ ६ ॥ तत्सर्वं प्राप्नुवन्ति स्म मम प्रत्यक्षदर्शनात् । कामगाः कामचारिण्यः कामात् कामांश्च भुञ्जते ॥ ७ ॥ वाप्यः सरांसि सरितो विविधानि वनानि च। गृहाणि पर्वताश्चैव यावद् द्रव्यं च किंचन ॥ मनोज्ञं सर्वभूतेभ्यः सर्वतत्र प्रदृश्यते। ईदृशाद्विपुलाल्लोकान्नास्ति लोकस्तथाविधः ॥९॥ तत्र सर्वसहाः क्षान्ता वत्सला गुरुवर्तिनः । अहंकारैर्विरहिता यान्ति शक्र नरोत्तमाः ॥१०॥ यः सर्वमांसानि

के समय निर्मलचित्तसे स्वप्नकी समान अदृश्य उन लोकोंको इस लोकमें भी देखते हैं ४ हे सहस्राक्ष ! अब उन लाकोंके गुणोंको तू सुन, तहाँ कालका जराका अथवा अग्निका बल नहीं चलता है ५ और तहाँ किसी प्रकारका अशुभ नहीं होता है, तथा तहाँ किसी प्रकारकी व्याधि भी नहीं होती हैं और तहाँ किसी प्रकारका कष्ट भी नहीं पड़ता है, हे वासव ! गौएँ अपने मनमें जिस २ वस्तुकी इच्छा करती हैं ६ वह सब वस्तु उनका तहाँ मिल जाती है, यह मैंने अपनी दृष्टिसे देखा है, सब गौएँ इच्छानुसार गति देने वाली हैं और इच्छानुसार विचरण किया करती हैं और उत्तरोत्तर कामनाओंका उपभोग करती हैं ७ तहाँ वावड़ी, सरोवर, नदी, अनेक प्रकारके वाग, अनेक प्रकारके महल, पर्वत तथा और भी बहुतसे द्रव्य है, जो सब प्राणियोंके मनको आनन्द देते हैं और यह गोलोक इतना विशाल है, कि उसकी समान और कोई लोक नहीं है ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तहाँ पर सबको सहने वाले क्षमावान्, वत्सलता रखने वाले और गुरुका अनुसरण करने वाले अहंकाररहित उत्तम पुरुष जाते हैं ॥ १० ॥ जो पुरुष

न भक्षयीत पुमान् सदा भावितो धर्मयुक्तः। मातापित्रोरर्चिता सत्ययुक्तः शुश्रूषिता ब्राह्मणानामनिंद्यः॥ ११॥ अक्रोधनो गोषु तथा द्विजेषु धर्मे रतो गुरुशुश्रूषकश्च। यावज्जीवं सत्यवृत्ते रतश्च दाने रतो यः क्षमी चापराधे॥ १२॥ मृदुर्दान्तो देवपरायणश्च सर्वातिथिश्चापि तथा दयावान्। ईदृग्गुणो मानवस्तं प्रयाति लोकं गवां शाश्वतं चाव्ययं च॥ १३॥ न पारदारी पश्यति लोकमेतं न वै गुरुघ्नो न मृषा संप्रलापी। सदा प्रवादी ब्राह्मणेष्वात्तवैरो दोषैरेतैर्यश्च युक्तो दुरात्मा॥ १४॥ न मित्रध्रुङ्नैकृतिकः कृतघ्नः शठोऽनृजुर्धर्मविद्वेषकश्च। न ब्रह्महा मनसापि

किसीका भी मांस नहीं खाते हैं, जो भावनावाले होते हैं, जो धर्मिष्ठ होते हैं, जो माता पिताकी पूजा करते हैं, सत्यवादी होते हैं ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं और निर्दोष होते हैं ११ गौ और ब्राह्मणों पर क्रोध नहीं करते हैं, धर्म पर श्रद्धा रखते हैं गुरुकी सेवा करते हैं जीवन भर सत्यवादीपनके व्रतका पालन करते हैं, दानमें परायण रहते हैं, अपराध होने पर भी क्षमा रखते हैं १२ मृदु होते हैं इन्द्रियोंका निग्रह करते रहते हैं, देवताओंकी भक्ति करते रहते हैं सब अतिथियोंका सत्कार करते रहते हैं तथा दयालु रहते हैं, इन गुणी मनुष्योंको गौओंके सनातन अविनाशी लोक मिलते हैं १३ किन्तु परस्त्रीके साथ व्यभिचार करने वाला पुरुष गोलोकको नहीं देखता है गुरुकी हत्या करने वाला गोलोकको नहीं देखता है, मिथ्याभाषण करने वाला गोलोकको नहीं देखता सदा बड़बड़ करने वाला गोलोकको नहीं देखता है और ब्राह्मणोंसे वैर करने वाला भी गोलोकको नहीं देख सकता और जो दुरात्मा उपरोक्त सब दोषोंसे भरा हुआ होता है वह भी गोलोकको नहीं देख सकता १४ मित्रद्रोही कपटी, कृतघ्नी, शठ, कुटिल धर्मद्वेषी और ब्रह्महत्यारा पुण्यात्माओंके निवासस्थानरूप गोलोकोंको मनसे भी नहीं

प्रपश्येद्दिवं लोकं पुण्यकृतां निवासम् ॥१५॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं निपुणेन सुरेश्वर । गोप्रदानरतानां तु फलं शृणु शतक्रतो ।१६। दायाद्यलब्धैरर्थैर्यो गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति । धर्मार्जितान् धनैः क्रीताम् स लोकानाप्नुतेऽक्षयान् ॥१७॥ यो वै द्यूते धनं जित्वा गां क्रीत्वा संप्रयच्छति । स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥ १८ ॥ दायाद्या याः स्म वै गावो न्यायपूर्वैरुपार्जिताः । प्रदद्यात्ताः प्रदातॄणां सम्भवंत्यपि च ध्रुवाः ॥ १९ ॥ प्रतिगृह्य तु यो दद्याद्गाः सशुद्धेन चेतसा । तस्यापीहाक्षयाँल्लोकान् ध्रुवान्विद्धि शचीपते ॥ २० ॥ जन्मप्रभृति सत्यं च यो ब्रूयान्नियतेन्द्रियः । गुरुद्विजसहः क्षान्तस्तस्य गोभिः समा गतिः ॥ २१ ॥ न जातु ब्राह्मणो वाच्यो यदवाच्यं शचीपते । मनसा गोषु न

देख सकता१५हे सुरेश्वर।वह सब कथा मैंने कुशलतापूर्वक कही, अतः हे इन्द्र ! गोदान देने वालोंको क्या फल मिलता है, इसको तू सुन १६ जो पुरुष अपने बाप दादाकी मिलकियतमेंसे मिले हुए धनसे बिकती हुई गौ लेकर उसका दान देता है, वह पुरुष धर्मसे सम्पादन किये हुए और अपने धनसे मिले हुए अक्षय लोकोंको जाता है १७ हे शक्र ! जो पुरुष जुएमें जीत कर उससे बिकती हुई गौ खरीद कर उसका दान देता है वह पुरुष दशसहस्र दिव्य वर्षों तक फल पाता है१८ जो गौ अपने पूर्वजोंके भागमेंसे मिलती है, वह न्यायप्राप्त कहलाती है ऐसी गौओंका दान देने वालोंको अविनाशी लोक मिलते हैं ॥१९॥ जो पुरुष गौका दान लेकर शुद्धमनसे उस गौका फिर दान देदेता है, हे शचीपति इन्द्र ! वह भी अक्षय तथा ध्रुव लोकोंको पाता है ॥ २० ॥ जो पुरुष जन्मसे ही सत्य बोलता है जो जितेन्द्रिय रहताहै, गुरु तथा ब्राह्मणके अपराधको सहलेता है और क्षमावान् होता है वह गोलोकमें जाता है ॥ २१ ॥ हे शचीपति इन्द्र ! ब्राह्मणको देख

दुर्बलोद्वृत्तिर्गोऽनुकम्पकः ॥ २२ ॥ सत्ये धर्मे च निरतस्तस्य शक्र फलं शृणु । गोसहस्रेण समिना तस्य धेनुर्भवत्युत ॥ २३ ॥ क्षत्रियस्य गुणैरेतैरपि तुल्यफलं शृणु । तस्यापि द्विजतुल्या गौर्भवतीति विनिश्चयः ॥ २४ ॥ वैश्यस्यैते यदि गुणास्तस्य पञ्चशतं भवेत् । शूद्रस्यापि विनीतस्य चतुर्भागफलं स्मृतम् ।२५। एतच्चैनं योऽनुतिष्ठेत युक्तः सत्ये रतो गुरुशुश्रूषया च । दक्षः क्षान्तो देवतार्थी प्रशान्तः शुचिर्बुद्धो धर्मशीलोऽनहंवाक्२६ महत् फलं प्राप्यते स द्विजाय दत्वा दोग्ध्रीं विधिनाऽनेन धेनुम् । नित्यं दद्यादेकभक्तः सदा च सत्ये स्थितो गुरुशुश्रूषिता च२७वेदाध्यायी

कर कभी हलके वचन न कहे, मनसे भी गौओंका बुरा न चाहे, जो पुरुष गौकी समान वृत्ति रखता हो अर्थात् दूसरे दिनकी परवाह नहीं करता हो, गौको घास आदि डाल कर उनकी सेवा करता हो, ॥ २२ ॥ सत्य बोलता हो, धर्मपरायण रहता हो उसको क्या फल मिलता है, उसको तू सुन, हे शक्र ! वह यदि एक गौका दान देता है तो उसको एक सहस्र गौओंके दानका फल मिलता है ॥ २३ ॥ यदि क्षत्रिय भी इन गुणोंसे युक्त होता है, तो उसको भी बराबर ही फल मिलता है, अर्थात् उसकी गौ भी ब्राह्मणकी गौकी समान फल देती है २४ इन गुणोंसे युक्त वैश्य को भी पाँच सौ गौओंके दानका फल मिलता है और विनत शूद्र को भी सवासौ गौओंके दानका फल मिलता है ॥ २५ ॥ जो पुरुष उपरोक्तरीतिसे बर्ताव करता है, सत्यपरायण रहता है, गुरुकी सेवा करता है, चतुर होता है, क्षमा करनेवाला, देवताओंसे प्रार्थना करने वाला, शमगुणसम्पन्न, शुद्ध, बुद्ध और धर्मात्मा रहता है, तथा कभी अभिमान भरी बातें नहीं करता है वह पुरुष धेनुदान करने पर बड़े भारी फलको पाता है, मनुष्य सदा गोदान करे, ईश्वरका अनन्य भक्त रहे, सत्यमार्गमें स्थित रहे और गुरुओं

गोषु यो भक्तिमांश्च नित्यं दत्त्वा योभिनंदेत गांश्च । आजा-
तितो यश्च गवां नमेत इदं फलं शक्र निबोध तस्य२८ यत्स्यादिष्ट्वा
राजसूये फलं तु यत्स्यादिष्ट्वा बहुना कांचनेन । एतत्तुल्यं फल-
मप्याहुरग्र्यं सर्वे सन्तस्त्वृषयो ये च सिद्धाः ॥ २६ ॥ योग्रं भक्तं
किंचिदप्राश्य दद्याद्गोभ्यो नित्यं गोव्रती सत्यवादी । शान्तो
लुब्धो गोसहस्रस्य पुण्यं संवत्सरेणाप्नुयात् सत्यशीलः ॥३०॥
येदकभक्तमश्नीद्द्यादेकं गवां च यत् । दशवर्षाण्यनंतानि गोव्रती
गोनुकम्पकः ॥ ३१ ॥ एकेनैव च भक्तेन यः क्रीत्वा गां प्रय-
च्छति । यावन्ति तस्या रोमाणि संभवन्ति शतक्रतो ॥ ३२ ॥

की सेवा करे, वेदका अध्ययन करे, गौओंमें भक्ति रक्खे, सदा गौओंका दान देता रहे, गौओंको प्रणाम करता रहे, इन पुरुषोंको और जो जन्मसे ही गौओंको प्रणाम करता रहता है, हे शक्र ! उसको जो फल मिलता है उसको सुनो ॥ २६-२८ ॥ राजसूय यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है, बहुतसा सुवर्ण दक्षिणामें देनेसे जो फल मिलता है वैसाही उत्तम फल उसको भी मिलता है, यह बात सत्पुरुष, ऋषि और सिद्ध कहते हैं ॥ २६ ॥ जो पुरुष अपने आप खानेसे पहिले कुछ भोजन गौके लिये सदा देता रहता है जो सदा गौओंकी सेवा करता रहता है, शान्त और लोभरहित रहता है और सदाचरण करता है, उस पुरुषको एक वर्षमें सहस्र गौओंके दानका फल मिलता है ॥ ३० ॥ जो एक बार भोजन कर एक ही गौका दान देता है, वह गोव्रती और गौओंके ऊपर अनुग्रह करने वाला होकर दश वर्ष तक अनन्त सुख भोगता रहता है ॥३१॥ जो पुरुष एक समय भोजन कर दूसरे समयके बचे हुए भोजनके अन्नसे गौको खरीद कर उसका दान देता है तो हे इन्द्र ! उस गौके जितने रोम होते हैं ॥३२॥ उतनी गौओंके

तावत्प्रदानात् स गवां फलमाप्नोति शाश्वतम् । ब्राह्मणस्य फलं हीदं क्षत्रियस्य तु वै शृणु ॥ ३३ ॥ पंचवार्षिकमेवं तु क्षत्रियस्य फलं स्मृतम् । ततोऽर्धेन तु वैश्यस्य शूद्रो वैश्यार्धतः स्मृतः ३४ यश्चात्मविक्रयं कृत्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति । यावत् संदर्शयेद्गां वै स तावत् फलमश्नुते ३५ रोम्णि रोम्णि महाभाग लोकाश्चास्याक्षयाः स्मृताः । संग्रामेष्वर्जयित्वा तु यो वै गाः संप्रयच्छति । आत्मविक्रयतुल्यास्ताः शाश्वता विद्धि कौशिक ॥३६॥ अभावे यो गवां दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः । दुर्गात् स तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ॥ ३७ ॥ न त्वेवासां दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च । कालज्ञानं विप्रगवांतरं हि दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥ ३८ ॥ स्वाध्यायाढ्यं शुद्धयोनिं प्रशांतं

पुण्यका फल उसको मिलता है, ब्राह्मणोंको तो गोदानका इतना फल मिलता है. अब तू क्षत्रियके दानके फलको सुन ॥ ३३ ॥ क्षत्रिय पाँच वर्ष तक फल पाता है वैश्यको उससे आधा अर्थात् ढाई वर्ष तक फल मिलता है और शूद्रको वैश्यसे आधा अर्थात् सवा वर्ष तक फल मिलता है ३४ जो पुरुष अपने आपेको बेच कर उस धनसे गौ खरीदकर दान देता है, वह पुरुष जब तक गौ दीखती है उतने दिन तक सुख पाता है ॥३५॥ हे महाभाग ! यह कहा है, कि गौके रोम २ में अक्षय लोकोंका निवास है, जो पुरुष संग्राममें गौ पाकर उसका दान देता है, हे इन्द्र! उसका गोदान अपनेको बेच कर गोदान करने वालेकी समान माना जाता है ३६ जो नियमपूर्वक व्रत पालने वाला गौके अभावमें तिलधेनुका दान देता है, वह उस धेनुके द्वारा कठिन स्थानसे पार होकर क्षीरनदीमें आनन्द करता है ३७ केवल गौओंका दान करना ही प्रशंसनीय नहीं माना जाता है, दान करते समय पात्र, काल, गौ, विधि, तथा ग्रहीताके घर उसको धूप या अग्निका दुःख तो नहीं रहेगा, इसका भी

वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् । गोषु क्षान्तं नातितीक्ष्णं शरण्यं वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ॥ ३९ ॥ वृत्तिग्लाने सीदति चातिमात्रं कृष्यर्थे वा होम्यहेतोः प्रसूतेः । गुर्वर्थं वा बालसंवृद्धये वा धेनुं दद्याद्देशकालेऽविशिष्टे ॥ ४० ॥ अन्तर्ज्ञाताः सक्रयज्ञानलब्धाः प्राणैः क्रीतास्तेजसा यौतकाश्च । कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ४१ ॥ बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वाः प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः । यथा हि गंगा सरितां वरिष्ठा तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ।४२। तिस्रो रात्रीस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।

विचार करना चाहिये ॥ ३८ ॥ स्वाध्यायके धनी, शुद्धयोनि, प्रशान्त, यज्ञ करने वाले, पापसे डरने वाले, बहुतसे शास्त्रोंके जानकार, गौओं पर क्षमा करने वाले, अतितीक्ष्ण वर्ताव न करने वाले, शरण देनेके योग्य और कृशवृत्ति पुरुषको पात्र कहा है ३९ आजीविकारहित होनेसे दुःख पाते हुए खेती करना चाहने वाले और यज्ञमें होम करनेके लिये जिसको हविकी आवश्यकता हो उसको, जिसके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ हो उसको गुरुको और जिसको बालकका पोषण करनेके लिये गौकी आवश्यकता हो उसको देशकालका कुछ विचार न कर गोदान देदेना चाहिये ४० दुग्धवती, खरीदी हुई, विद्याके प्रभावसे पाई हुई, प्राणोंकी भी अपेक्षा न कर पराक्रमसे पाई हुई, विवाहमें ससुर आदिसे मिली हुई, दुःखसे छुड़ाई हुई और अपने पोषणके लिये आई हुई गौ प्रशंसनीय मानी जाती है ४१ बलवती, शीलसंपन्न और तरुणावस्था वाली सब सुगंधित गौएँ प्रशंसनीय मानी जाती हैं परन्तु जैसे नदियोंमें गंगानदी श्रेष्ठ मानी जाती हैं, इसी प्रकार गौओंमें कपिला गौ उत्तम मानी जाती है ।।४२।। गोदान देने वालेको तीन रात्रि तक केवल जल पीकर उपवास करना चाहिये, भूमिपर शयन

वत्सैः पुष्टैः क्षीरपैः सुपचारास्त्र्यहं दत्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ।४३।
दत्वा धेनुं सुव्रतां साधुदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावंति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावन्ति वर्षाणि भवंत्यमुत्र ४४
तथानड्वाहं ब्राह्मणाय प्रदाय धुर्यं युवानं बलिनं विनीतम् ।
हलस्य वोढारमनन्तवीर्यं प्राप्नोति लोकान् दश धेनुदस्य ॥४५॥
कांतारे ब्राह्मणान् गाश्चः यः परित्राति कौशिक । क्षणेन विप्रमुच्येत तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४६ ॥ अश्वमेधक्रतोस्तुल्यं फलं भवति शाश्वतम् । मृत्युकाले सहस्राक्ष यां वृत्तिमनुकांक्षते ।४७।
लोकान् बहुविधान्दिव्यान्यच्चास्य हृदि वर्तते । तत्सर्वं समवा-

---

करना चाहिये गौओंको घुस आदि खिला कर तृप्त करना चाहिये फिर ब्राह्मणोंको तृप्त करके उनको गौओंका दान देना चाहिये, उनके साथ दूध पीने वाला पुष्ट बछड़ा भी देना चाहिये, वे गौएँ भली भाँति घूमने वाली हों, इस प्रकार दान देकर तीन दिन तक गोरसका आहार करना चाहिये ॥ ४३ ॥ सुन्दर आचरण वाली सुखपूर्वक दुहाने वाली, कल्याण करने वाले बछड़े वाली, न भागने वाली गौका दान देकर पुरुष उस गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षों तक परलोकमें रहता है ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार जुएको उठाने वाले, तरुण, बली, विनीत, हलको खैंचने वाले, अनन्त वीर्य बैलका ब्राह्मणको दान देकर पुरुष दश धेनुओंका दान देने वालोंके लोकोंको पाता है ॥ ४५ ॥ हे इन्द्र ! जो पुरुष वनमें गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा करता है, वह मनुष्य एक क्षणमें ही (पापोंसे) मुक्त हो जाता है, और उसको जो पुण्य होता है, उसके फलको तू सुन ॥४६॥ उस पुरुषको अश्वमेध यज्ञ करनेकी समान शाश्वत फल मिलता है और वह मरणके समय जैसी इच्छा करता है और हे सहस्राक्ष ! उसके हृदयमें जो इच्छा होती है वह सब पूर्वोक्त कर्मके प्रभावसे सफल होजाती है

प्नोति कर्मणैतेन मानवः ॥ ४८ ॥ गोभिश्च समनुज्ञातः सर्वत्र च महीयते । यस्त्वेतेनैव कल्पेन गां वनेष्वनुगच्छति ॥ ४९ ॥ तृणगोमयपर्णाशी निस्पृहो नियतः शुचिः । अकामं तेन वस्तव्यं मुदितेन शतक्रतो ॥ ५० ॥ मम लोके सुरैः सार्धं लोके यत्रापि चेच्छति ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पितामहेन्द्रसंवादे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इन्द्र उवाच । जानन् यो गामपहरेद्विक्रीयाच्चार्थकारणात् । एतद्विज्ञातुमिच्छामि क्व नु तस्य गतिर्भवेत् ॥ १ ॥ पितामह उवाच । भक्षार्थं विक्रयार्थं वा येऽपहारं हि कुर्वते । दानार्थं ब्राह्मणार्थाय तत्रेदं श्रूयतां फलम् ॥ २ ॥ विक्रयार्थं हि यो हिंस्या-

---

और उसको अनेक प्रकारके दिव्य लोक मिलते हैं ४८ गौओंकी आज्ञानुसार वर्ताव करने वाला पुरुष सर्वत्र पूजा पाता है, जो इस विधिके अनुसार वनमें गौके पीछे २ जाता है ॥४९॥ और तिनका, गोमय तथा पत्तोंका भक्षण करता है, नियममें रहता है और निस्पृह रह कर पवित्रताका वर्ताव करता है, हे इन्द्र ! वह निष्कामभावसे आनन्द करता हुआ देवताओंके साथ मेरे लोकमें तथा और जिन लोकोंमें चाहता है तहाँ आनन्दपूर्वक रहता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥

इन्द्रने बूझा, कि-हे पितामह ! धर्म और अधर्मको जानने वाला पुरुष यदि दूसरेकी गौको छीन लेय अथवा धनके लिये गौको बेच डाले, तो उसकी क्या गति होती है, यह मैं जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥ पितामहने कहा, कि-जो पुरुष भोजन करनेके लिये अथवा बेचनेके लिये गौका हरण करता है और ब्राह्मणको दान देनेके लिये गौको चुराता है उसके फलका मैं तुमसे कहता हूँ, सुन २ जो पुरुष बेचनेके लिये गौको छीन लेता है अथवा निरङ्कुश

ऽन्नयेद्वा निरंकुशः। घातयानं हि पुरुषं येनुमन्येयुरर्थिनः ॥३॥ घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते। यावन्तिस्तस्या रोमाणि तावद्वर्षाणि मज्जति॥४॥ ये दोषा यादृशाश्चैव द्विजयज्ञोपघातके। विक्रये चापहारे च ते दोषा वै स्मृताः प्रभो ५ अपहृत्य तु यो गां वै ब्राह्मणाय प्रयच्छति। यावद्दानफलं तस्या-स्तावन्निरयमृच्छति ॥६॥ सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाद्युते। सुवर्णं परमित्युक्तं दक्षिणार्थमसंशयम् ॥७॥ गोप्रदानात्तारयते सप्त पूर्वांस्तथापरान्। सुवर्णं दक्षिणां कृत्वा तावद् द्विगुणमुच्यते८ सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा। सुवर्णं पावनं शक्र पाव-नानां परं स्मृतम् ॥९॥ कुलानां पावनं प्राहुर्जातरूपं शतक्रतो।

होकर गौका भक्षण करता है और जो धनी गोहत्यारे पुरुषका अनुमोदन करते हैं ॥३॥ गौको मारने वाला, खानेवाला और गो हत्याका अनुमोदन करनेवाला ये सब गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षतक (नरकमें) पड़े रहते हैं॥४॥ हे प्रभो! ब्राह्मणके यज्ञको नष्ट करने वाले पुरुषको जो और जितने पाप लगते हैं, उतने ही दोष गौको छीनने वाले और बेचनेवालोंको लगते हैं॥५॥ जो पुरुष गौको चुरा कर ब्राह्मणको दानमें देता है वह पुरुष गोदानका जितना फल मिलता है, उतने समय तक नरकमें पड़ा रहता है॥६॥ हे महाद्युते! गोदानके समय सुवर्णकी दक्षिणा देना कहा है, सुवर्णकी दक्षिणा ही परमोत्तम दक्षिणा कही है॥७॥ गोदान सात पहिले और सात अगले पितरोंका उद्धार करता है और उसमें सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे, दुगना फल मिलता है, यह कहा जाता है॥८॥ सुवर्ण परम-दान है सुवर्ण परमदक्षिणा है और हे शक्र! सुवर्ण पावन करने वाली उत्कृष्ट वस्तुओंको भी पवित्र करने वाला है॥९॥ हे शत-क्रतो! सुवर्ण कुलोंको पवित्र करने वाला है, इस प्रकार मैंने संक्षेप

एषा मे दक्षिणा प्रोक्ता समासेन महाद्युते ॥१०॥ भीष्म उवाच। एतत्पितामहेनोक्तमिंद्राय भरतर्षभ। इन्द्रो दशरथायाह रामायाह पिता तथा ॥११॥ राघवोऽपि प्रियभ्रात्रे लक्ष्मणाय यशस्विने। ऋषिभ्यो लक्ष्मणेनोक्तमरण्ये वसता प्रभो ॥१२॥ पारंपर्यागतं चेदमृषयः संशितव्रताः दुर्धरं धारयामासू राजानश्चैव धार्मिकाः १३ उपाध्यायेन गदितं मम चेदं युधिष्ठिर। य इदं ब्राह्मणो नित्यं वदेद्ब्राह्मणसंसदि ॥ १४ ॥ यज्ञेषु गोप्रदानेषु द्वयोरपि समागमे। तस्य लोकाः किलाक्षय्या दैवतैः सह नित्यदा ॥ १५ ॥ इति ब्रह्मा स भगवानुवाच परमेश्वरः ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि अनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

युधिष्ठिर उवाच। विस्रंभितोऽहं भवता धर्मान् प्रवदता विभो।

से दक्षिणाओंका वर्णन किया १० भीष्मजीने कहा कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष! यह बात पितामहने इन्द्रसे कही थी, इन्द्रने राजा दशरथसे कही थी पिता दशरथने रामसे कही थी ११ रामने भी प्रिय भाई यशस्वी लक्ष्मणसे कही थी और हे प्रभो! लक्ष्मण जब अरण्यमें रहते थे, तब उन्होंने ऋषियोंसे कही थी १२ उत्तम व्रतधारी ऋषि तथा धर्मनिष्ठ राजे परम्परासे इस दुर्धर कथाको धारण करते आते हैं १३ हे युधिष्ठिर! मुझसे उपाध्यायने यह कथा कही थी, जो ब्राह्मण इस कथाको सदा ब्राह्मणोंकी सभामें कहता है १४ और यज्ञोंमें गोदानोंमें और यज्ञ तथा गोदानके समागमके समय इस कथाको कहता है उसको सदा देवताओं सहित अक्षय लोक मिलते हैं इस प्रकार परमेश्वर भगवान् ब्रह्माजीने कहा था १५-१६ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ७४

युधिष्ठिरने कहा कि-हे प्रभो आपने धर्मोंका वर्णन करते२ मुझको विश्वासु बना दिया है, हे पितामह! मैं एक सन्देहको कहता हूँ

प्रवक्ष्यामि तु सन्देहं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ व्रतानां किं फलं प्रोक्तं कीदृशं वा महाद्युते । नियमानां फलं किं च स्वधीतस्य च किंफलम् ॥ २ ॥ दत्तस्येह फलं किं च वेदानां धारणे च किम् । अध्यापने फलं किं च सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥ अप्रतिग्राहके किं च फलं लोके पितामह । तस्य किं च फलं दृष्टं श्रुतं यस्तु प्रयच्छति ॥ ४ ॥ स्वकर्मनिरतानां च शूराणां चापि किं फलम् । शौचे च किं फलं प्रोक्तं ब्रह्मचर्ये च किं फलम् ॥५॥ पितृशुश्रूषणे किं च मातृशुश्रूषणे तथा । आचार्यगुरुशुश्रूषास्वनुक्रोशानुकम्पने ॥ ६ ॥ एतत्सर्वमशेषेण पितामह यथातथम् । वेत्तुमिच्छामि धर्मज्ञ परं कौतूहलं हि मे ॥ ७ ॥ भीष्म उवाच । यो व्रतं वै यथोद्दिष्टं तथा संप्रतिपद्यते । अखण्डं सम्यगारभ्य

उसका आप उत्तर दीजिये १ हे महाद्युते ! व्रतोंका कैसा और कितना फल कहा है?नियमोंका क्या फल है? और स्वाध्यायका क्या फल है ? २ दान देनेका क्या फल है ? वेदोंको धारण करनेका क्या फल है और पढ़ानेका क्या फल है ? यह सब बात मैं जानना चाहता हूँ ३ और हे पितामह ! प्रतिग्रह न करने वालेको क्या फल मिलता है और इस लोकमें जो वेदको पढ़ाता है उसको क्या फल मिलता है ४ अपने कर्ममें परायण रहने वालोंको और शूरोंको क्या फल मिलना है पवित्र रहनेसे क्या फल मिलना है और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेसे क्या फल मिलता है५ पिताकी सेवा करनेसे, माताकी सेवा करनेसे, आचार्य और गुरुकी सेवा करने पर और दूसरेके दुःखमें दुखी होनेसे तथा उस पर दया करने से क्या फल मिलता है ? ६ हे पितामह ! इन सब बातोंको मैं यथार्थ रीतिसे जानना चाहता हूँ, क्योंकि-हेधर्मज्ञ ! इन सब बातोंको सुननेका मुझै परम कुतूहल है ७ भीष्मजीने कहा, कि-जो पुरुष शास्त्रोक्त विधिसे व्रतका आरंभ कर उसका अखण्ड

तस्य लोकाः सनातनाः ॥ ८ ॥ नियमानां फलं राजन् प्रत्यक्ष-मिह दृश्यते । नियमानां क्रतूनां च त्वयावाप्तमिदं फलम् ॥ ९ ॥ स्वधीतस्यापि च फलं दृश्यतेऽमुत्र चेह च । इह लोकेऽथवा नित्यं ब्रह्मलोके च मोदते ॥१०॥ दमस्य तु फलं राजञ्छृणु त्वं विस्त-रेण मे । दान्ताः सर्वत्र सुखिनो दान्ताः सर्वत्र निर्वृताः ॥११॥ यत्रेच्छागामिनो दान्ताः सर्वशत्रुनिषूदनाः । प्रार्थयन्ति च यद्दांता लभन्ते तन्न संशयः ॥१२॥ युज्यन्ते सर्वकामैर्हि दान्ताः सर्वत्र पाण्डव । स्वर्गे यथा प्रमोदन्ते तपसा विक्रमेण च ॥ १३ ॥ दानैर्यज्ञैश्च विविधैस्तथा दान्ताः क्षमान्विताः । दानाद्दमो विशिष्टो

रीतिसे पालन करता है, उसको सनातन लोक मिलते हैं ८ हे राजन् ! इस लोकमें नियम पालनेका फल प्रत्यक्ष दीखता है तूने भी नियमोंको पालनेसे तथा यज्ञ करनेसे यह फल पाया है ९ वेदको भली प्रकार पढ़ने पर उसका फल परलोकमें और इस लोकमें दीखता है और वेदाध्ययन करनेवाला पुरुष इस लोकमें तथा ब्रह्मलोकमें नित्य आनन्द करता है ॥१०॥ हे राजन् ! अब तू मुझसे दमके फलको विस्तारपूर्वक सुन, दम (अर्थात् इन्द्रिय निग्रह करने) वाला पुरुष सर्वत्र सुखी होता है और सर्वत्र निवृत्ति सुख पाता है ॥ ११ ॥ क्षमा करने वाले दान्त पुरुष अपने सब शत्रुओंका नाश कर डालते हैं और जहाँ इच्छा होती है तहाँ जाते हैं और दम गुण वाले पुरुष जिस वस्तुकी प्रार्थना करते हैं, उस वस्तुको सब प्रकार पाते हैं ॥ १२ ॥ हे पाण्डव ! दम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह करने वाला पुरुष तप करके और पराक्रम करके स्वर्गमें आनन्द करता है, इसी प्रकार सर्वत्र सब कामनाओंको पाता है॥१३॥ इस प्रकार दान कर दे तथा विविध यज्ञ करके दम गुण वाले क्षमाशील दान्त पुरुष भी स्वर्गमें जाकर आनन्द करते हैं, दम दानसे भी उत्तम समझा जाता है, क्योंकि-ब्राह्मणको

हि ददत्किंचिद्धि द्विजातये ॥१४॥ दाता कुप्यति नो दान्तस्तस्मा-
दानात् परं दमः। यस्तु दद्यादकुप्यन्हि तस्य लोकाः सनातनाः१५
क्रोधो हन्ति हि यद्दानं तस्मादानात् परं दमः । अदृश्यानि महा-
राज स्थानान्ययुतशो दिवि ॥१६॥ ऋषीणां सर्वलोकेषु यानीतो
यान्ति देवताः । दमेन यानि नृपते गच्छन्ति परमर्षयः ॥ १७॥
कामयाना महत् स्थानं तस्मादानात्परं दमः । अध्यापकः परि-
क्लेशादक्षयं फलमश्नुते ॥१८॥ विधिवत् पावकं हुत्वा ब्रह्मलोके
नराधिप । अधीत्यापि हि यो वेदान्न्यायविद्भ्यः प्रयच्छति १९
गुरुकर्मप्रशंसी तु सोऽपि स्वर्गे महीयते । क्षत्रियोऽध्ययने युक्तो
यजने दानकर्मणि । युद्धे यश्च परित्राता सोपि स्वर्गे महीयते२०

देते समय दाता उस पर कुछ कोप भी कर सकता है, परन्तु
दान्त पुरुष कोप नहीं करता है, अतः दानसे दम उत्तम है, दान
देते समय क्रोध न करनेवाले पुरुषको सनातन लोक मिलते हैं१४-१५
क्रोध करनेसे दान निष्फल होजाता है अतः दानसे दम उत्तम
है, स्वर्गमें ऋषियोंके अयुत स्थान हैं और वह अदृश्य हैं ॥१६॥
हे नृपते ! मनुष्य दमका सेवन कर देवता बन उन लोकोंमें जाते हैं
तथा महर्षि भी दमका सेवन करके उन लोकोंमें जाते हैं ॥१७॥
तथा कामना करनेसे महास्थानको भी प्राप्त करते हैं, इसलिये
दानसे दमको श्रेष्ठ कहा जाता है, अध्यापक अर्थात् शिष्योंको
वेदशास्त्र पढ़ानेवाला दुःख भोगनेके पीछे अक्षय फल पाता है १८
हे राजन् ! अग्निमें विधिपूर्वक होम करने वाला पुरुष भी ब्रह्म-
लोकमें जाता है जो पुरुष वेद तथा शास्त्रोंका अभ्यास करके
नीतिमान् शिष्योंको वेद और शास्त्रोंको पढ़ाता है ॥ १९ ॥
तथा जिस गुरुके कर्मोंकी प्रशंसा होती है, वह भी स्वर्गमें पूजा
पाता है, और वेदशास्त्रका अध्ययन करने वाला, यज्ञ याग
करने वाला, दान करने वाला और युद्ध करके धार्मिकोंकी रक्षा

वैश्यः स्वकर्मनिरतः प्रदानाल्लभते महत् । शूद्रः स्वकर्मनिरतः स्वर्गं शुश्रूषयाऽर्च्छति ॥२१॥ शूरा बहुविधाः प्रोक्तास्तेषामर्थांस्तु मे शृणु । शूरान्वयानां निर्दिष्टं फलं शूरस्य चैव हि ॥ २२ ॥ यज्ञशूरा दमे शूराः सत्यशूरास्तथापरे । युद्धशूरास्तथैवोक्ता दानशूराश्च मानवाः ॥ २३ ॥ सांख्यशूराश्च बहवो योगशूरास्तथा परे । अरण्ये गृहवासे च त्यागे शूरास्तथा परे ॥ २४ ॥ आर्जवे च तथा शूराः शमे वर्तन्ति मानवाः । तैस्तैश्च नियमैः शूरा बहवः सन्ति चापरे । वेदाध्ययनशूराश्च शूराश्चाध्ययने रताः २५ गुरुशुश्रूषया शूराः पितृशुश्रूषया परे । मातृशुश्रूषया शूरा भैक्ष्यशूरास्तथा परे ॥२६॥ अरण्ये गृहवासे च शूराश्चातिथिपूजने ।

करने वाला क्षत्रिय भी स्वर्गमें पूजा पाता है ॥ २० ॥ अपने कर्ममें परायण रह कर दान देने वाला वैश्य जातिका पुरुष भी स्वर्गमें जाता है और अपने कर्म करने वाला और तीनों वर्णोंकी सेवा करने वाला शूद्र भी स्वर्गमें जाता है ॥ २१ ॥ शूरवीरोंके भी बहुतसे भेद कहे हैं, उन शूरोंके वंशजोंको और शूरोंको जो फल मिलना कहा है, उसको तू सुन ॥ २२ ॥ कितने ही यज्ञशूर हैं, कितने ही दमशूर हैं और कितने ही सत्यशूर हैं इसी प्रकार कितने ही युद्धशूर और दानशूर कहलाते हैं ॥ २३ ॥ सांख्यशूर और योगशूर भी बहुतसे हुए हैं और अरण्यशूर, गृहवासशूर और त्यागशूर भी हुए हैं ॥ २४ ॥ सरलताशूर तथा शमशूर इस प्रकार अनेक नियमोंका पालन करने वाले बहुतसे शूर हैं, कितने ही वेदोंका अध्ययन करनेमें शूर हैं, कितने ही वेद पढ़ानेमें शूर हैं ॥ २५ ॥ कितने ही गुरु सेवाके शूर हैं, कितने ही पितृशुश्रूषाशूर हैं और कितने ही माताकी सेवा करनेके शूर हैं और बहुतसे भिक्षाशूर हैं ॥२६॥ बहुतसे वनमें बसनेमें शूर होते हैं और कितने ही घरमें बसनेके

सर्वे यान्ति पराँल्लोकान् स्वकर्मफलनिर्जितान् ॥ २७ ॥ धारणं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम् । सत्यं च ब्रुवतो नित्यं समं वा स्यान्न वा समम् ॥ २८ ॥ अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ २६ ॥ सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्निः प्रदीप्यते । सत्येन मरुतो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥ सत्येन देवाः प्रीयन्ते पितरो ब्राह्मणास्तथा । सत्यमाहुः परो धर्मस्तस्मात् सत्यं न लंघयेत् ॥ ३१ ॥ मुनयः सत्यनिरता मुनयः सत्यविक्रमाः । मुनयः सत्यशपथास्तस्मात् सत्यं विशिष्यते ॥ ३२ ॥ सत्यवन्तः स्वर्गलोके मोदन्ते भरतर्षभ । दमः सत्य फलावाप्तिरुक्ता सर्वात्मना मया ॥ ३३ ॥ असंशयं विनीतात्मा स वै स्वर्गे महीयते । ब्रह्मचर्यस्य च गुणं

शूर होते हैं और दूसरे अतिथिपूजा करनेमें वीरता दिखाते हैं, ये सब अपने कर्मोंके फलसे जीते हुए परलोकोंमें जाते हैं २७ सब वेदोंका धारण करना और सब तीर्थोंमें स्नान करना ये दोनों बातें सत्यभाषीपनेके समान हों या नहीं अर्थात् सत्यभाषी सबसे श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ सत्य और सौ अश्वमेध यज्ञ इन दोनोंको तराजूमें धरने पर सौ अश्वमेधोंसे सत्य ही अधिक उतरता है २६ सत्यसे सूर्य तपता है, सत्यसे अग्नि प्रकाशित होती है सत्यसे पवन चलते हैं, सब वस्तु सत्यमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ३० ॥ सत्यसे देवता, ब्राह्मण और पितर प्रसन्न होते हैं, सत्यको परमधर्म कहते हैं, अतः सत्यका उल्लंघन न करना चाहिये ॥ ३१ ॥ मुनि सत्यमें परायण रहते हैं, मुनि सत्यपराक्रमी हैं, मुनि सत्य की सौगंध खाते हैं अतः सत्य उत्तम माना जाता है ॥ ३२ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! स्वर्गलोकमें सत्यवादी आनन्दसे रहते हैं, सत्यभाषण करनेसे दमका फल मिलता है, यह मैंने सर्वात्मभावसे कहा है ॥ ३३ ॥ विनीतात्मा पुरुष भी स्वर्गमें

शृणु त्वं वसुधाधिप ॥ ३४ ॥ आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह । न तस्य किंचिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ॥ ३५ ॥ बह्वयः कोटयस्त्वृषीणां तु ब्रह्मलोके वसंत्युत । सत्ये रतानां सततं दांतानामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् । ब्राह्मणेन विशेषेण ब्राह्मणो ह्यग्निरुच्यते ॥३७॥ प्रत्यक्षं हि तथा ह्येतद्ब्राह्मणेषु तपस्विषु । बिभेति हि यथा शक्रो ब्रह्मचारिप्रधर्षितः ॥३८॥ तद्ब्रह्मचर्यस्य फलमृषीणामिह दृश्यते। मातापित्रोः पूजने यो धर्मस्तमपि मे शृणु ॥ ३९ ॥ शुश्रूषते यः पितरं न चासूयेत् कदाचन । मातरं भ्रातरं वापि गुरुमाचार्यमेव च ॥ ४० ॥ तस्य राजन् फलं विद्धि स्वर्लोके स्थानमर्चितम् । न च पश्येत नरकं गुरुशुश्रूषयात्मवान्४१ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥

पूजा जाता है, हे वसुधाधिप ! तू अब ब्रह्मचर्यके गुणोंको सुन ॥ ३४ ॥ जो पुरुष जन्मसे आरम्भ कर मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रहता है, हे नराधिप ! उसको कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती ॥ ३५ ॥ ब्रह्मलोकमें करोड़ों ऋषि रहते हैं,वे सदा सत्य परायण रहते हैं इन्द्रियोंका दमन करनेवाले हैं और उर्ध्वरेता हैं३६ हे राजन् ! यदि ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है तो वह सब पापोंको भस्म कर देता है,ब्राह्मणको तो विशेषतः ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये, क्योंकि-ब्राह्मण अग्नि कहलाता है. ३७यह बात तपस्वी ब्राह्मणोंमें प्रत्यक्ष दीखती है,क्योंकि-इन्द्र भी ब्रह्मचारीके शापसे डरता रहता है ॥३८॥ इस जगत्में ऋषियोंमें उसी ब्रह्मचर्यको फल देखनेमें आता है, अब मातापिताका पूजन करनेमें जो धर्म है उसको तू सुन३९जो पिताकी माताकी गुरुकी भाईकी तथा आचार्यकी सेवा करते हैं और उनसे किसी प्रकार ईर्षा नहीं करते हैं४०हे राजन्!उन पुरुषोंको स्वर्गमें पूजनीय स्थान मिलताहै, आत्मवान् पुरुषको गुरुशुश्रूषा करनेपर नरक नहीं देखना पड़ता४१

युधिष्ठिर उवाच । विधिं गवां परं श्रोतुमिच्छामि नृप तत्त्वतः । येन तान् शाश्वताँल्लोकानर्थिनां प्राप्नुयादिह १ भीष्म उवाच । न गोदानात्परं किञ्चिद्विद्यते वसुधाधिप । गौर्हिन्यायागता दत्ता सद्यस्तारयते कुलम् ।। २ ।। सतामर्थे सम्यगुत्पादितो यः स वै क्लृप्तः सम्यगाभ्यः प्रजाभ्यः । तस्मात् पूर्वं ह्यादिकालप्रवृत्तं गोदानार्थं शृणु राजन्विधिं मे ।।३।। पुरा गोषूपनीतासु गोषु संदिग्धदर्शिना । मांधात्रा प्रकृतं प्रश्नं बृहस्पतिरभाषत ।।४।। द्विजातिमतिसत्कृत्य श्वःकालमभिवेद्य च । गोदानार्थे प्रयुञ्जीत रोहिणीं नियतव्रतः ।। ५ ।। आह्वानं च प्रयुञ्जीत समंगे बहुलेति च । प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ६ गौर्मे माता वृषभः

युधिष्ठिरने बूझा, कि- हे राजन् ! मैं आपसे गोदानको यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ, कि-जिसके सुननेसे अर्थियोंको सनातन लोकोंका लाभ होता है ।। १ ।। भीष्मजीने कहा कि- हे वसुधाधिप ! कोई भी दान गोदानसे उत्तम नहीं है, अतः न्यायसे मिली हुई गौका दान कुलको तार देता है ।।२।। सज्जनों के लिये गोदानकी विधि भली भाँति उत्पन्न की गई है और यह विधि प्रजाके लिये विशेषतः निर्मित की गई है, हे राजन् ! ऐसी आदिकालसे चली आती हुई गोदानकी विधिको तू मुझसे सुन।।३।। जब गौएँ प्रथम ही प्रथम दान करनेके लिये लाई,गईं तब मांधाताको सन्देह हुआ, कि-कैसी गौओंका दान देना चाहिये ? तब उसने प्रश्न भी किया उस समय बृहस्पतिने नीचे लिखा उत्तर दिया था, कि- ४ व्रतधारी मनुष्य ब्राह्मणोंका सत्कार कर कहे कि-कलको मैं तुमको गोदान दूँगा, फिर दूसरे दिन रोहिणी गौका दान देय ५ और दान देते समय समङ्गे और बहुले शब्दसे बुलावे फिर गौओंके मध्यमें प्रवेश करके नीचे लिखी श्रुतिका उच्चारण करे ६ गौ मेरी माता हैं, वृषभ मेरा पिता है,

पिता मे दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा । प्रपद्यैवं शर्वरीमुष्य गोषु पुनर्वाणीमुत्सृजेद्गोप्रदाने ॥ ७ ॥ सतामेकां निशां गोभिः समसख्यः समव्रतः । ऐकात्म्यं गमनात् सद्यः कलुषाद्विप्रमुच्यते ८ उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्यदर्शने । त्रिदिवं प्रतिपत्तव्यमर्थवादाशिषस्तव ॥ ९ ॥ ऊर्जस्विन्य ऊर्जमेधाश्च यज्ञे गर्भोऽमृतस्य जगतोऽस्य प्रतिष्ठा । क्षिते रोहः प्रवहः शश्वदेव प्राजापत्याः सर्वमित्यर्थवादाः ॥१०॥ गावो ममैनः प्रणुदन्तु सौर्यास्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु । आत्मानं मे मातृवच्चाश्रयंतु तथानुक्ताः संतु सर्वाशिषो मे ॥११॥ शेषोत्सर्गे कर्मभिर्देहमोक्षे सरस्वत्यः श्रेयसे

गौ मेरी प्रतिष्ठारूप है वह मुझे ऐहिक और पारलौकिक सुख दें इस भाँति गौकी शुद्धि करके उनकी शरणमें जावे तदनन्तर रात्रि भर गौओंके बीचमें निवास करे तथा दान देते समय गौ मेरी माता है इत्यादि अर्थवाली श्रुतिका फिर उच्चारण करे ७ गोदान देनेवाला एक रात्रि तक गौओंके साथ मित्रता रक्खे और उनकी समान व्रतका पालन करे अर्थात् पृथ्वी पर सोवे डाँस आदिको न उड़ावे,इस भाँति गौके साथ एकरूप हो जाने पर पुरुष तुरत ही सब पापोंसे छूट जाता है ८ सूर्योदयके समय बछड़े और बैलके साथ गोदान देना चाहिये ऐसा करनेसे स्वर्ग मिलता है और अर्थवादमें कहे हुए आशीर्वाद भी मिलते हैं ९ गौएँ उत्साहवाली और बलवाली हैं गौएँ बुद्धिमती हैं यज्ञमें मिलनेवाले अमरत्वकी साधन हैं जगत्की प्रतिष्ठारूप हैं ऐश्वर्यकी अंकुररूप हैं पृथ्वीकी नित्यप्रवाहरूप हैं और प्रजापतिके उत्पन्न किये हुए इस जगत्की कारणरूप हैं यह सब अर्थवाद गोदानके समय बोलने चाहिये १० सूर्यका तथा सोमका चैतन्य जिनमें रहता है, ऐसी गौएँ मेरे पापका नाश करें और मुझे स्वर्गमें लेजाने वाली हों तथा माता जैसे अपने पुत्रको आश्रय देती है तिसीप्रकार मेरी आत्माको

संप्रवृत्ताः । यूयं नित्यं सर्वपुण्योपवाह्या दिशध्वं मे गतिमिष्टां प्रसन्नाः ॥ १२ ॥ या वै यूयं सोऽहमद्यैव भावो युष्मान् दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता । मनश्च्युता मन एवोपपन्नाः संधुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः ॥१३॥ एवं तस्याग्रे पूर्वमर्धं वदेत गवां दाता विधिवत्पूर्वदृष्टः । प्रतिब्रूयाच्छेषमर्धं द्विजातिः प्रतिगृह्णन् वै गोप्रदाने विधिज्ञः ॥१४॥ गोप्रदानीति वक्तव्यमर्घ्यवस्त्रवसुप्रदः । ऊर्ध्वास्या

आश्रय दें और इन दो मन्त्रोंमें कहनेसे बचे हुए और सब आशीर्वाद भी मुझे मिलें ११ यदि गौके पंचगव्य आदिका सेवन किया जाता है तो वह क्षय रोगका नाश करदेता है तथा देहको मुक्ति देता है तथा सरस्वती जैसे सेवा करने पर कल्याण करती है इसीप्रकार गौ भी सेवा करने पर कल्याण करती है, हे गौओं ! तुम नित्य पुण्यके फलको देने वाली हो अतः तुम प्रसन्न होकर मुझे इष्ट गति दो ॥ १२ ॥ तदन्तर गोदान करते समय गोदान देने वाला विधिपूर्वक इस आधे श्लोका उच्चारण करे और दानकी विधिको जानने वाला तथा दानको ग्रहण करने वाला ब्राह्मण बाकी आधे श्लोकका उच्चारण करे वह श्लोक इस प्रकार है "या वै यूयं सोहमद्यैव भावो युष्मान् दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता" अर्थात् हे गौओं ! तुम जो कुछ हो वह मेरा रूप हो आज मैंने तुम्हारा दानकरके अपने आपेका ही दान करदिया है, तदनन्तर प्रतिग्रह लेने वाला उत्तरार्धका उच्चारण करे कि-मनश्च्युता मन एवोपपन्ना सन्धुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः" अर्थात् तुम दाताके ममत्वके अभिमानसे मुक्त होगई हो और मेरी ममताकी स्थानरूप होगई हो अतः हे चन्द्रमा और सूर्यकी समान शान्त और उग्ररूप धारिणी गौओं ! तुम दाताको प्रिय वैभव देकर प्रसन्न करो ॥ १३ ॥ १४ ॥ गौके दानके स्थानमें गौका मूल्य वस्त्र अथवा धन देने वाला पुरुष भी गोदान देनेवाला माना जाता है

भवितव्या च वैष्णवीति च चोदयेत् ॥१५॥ नाम संकीर्तयेत्तस्या यथासंख्योत्तरं स वै फलं षट्त्रिंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः१६ एवमेतान् गुणान्विद्याद्गवादीनां यथाक्रमम् । गोमदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे ॥१७॥ गोदः शीली निर्भयश्चार्घदाता न स्याद्दुःखी वसुदाता च कामम् । उपस्योढा भारते यश्च विद्वान्विख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोकाः॥१८॥गा वै दत्त्वा गोव्रती स्यात् त्रिरात्रं निशां चैकां संवसेतेह ताभिः । कामाष्टम्यां वर्तितव्यं त्रिरात्रं रसैर्वा

गौके बदले मूल्य देनेवालेको गोदान करते समय कहना चाहिये, कि–"इमां ऊधस्यां तुभ्यं संप्रददे" और वस्त्रधेनुका दान देते समय "इमां भवितव्यां तुभ्यं संप्रददे" कहना चाहिये और धनरूपी गौका दान देते समय "इमां वैष्णवी तुभ्यं संप्रददे त्वां गृहाण" कहना चाहिये ॥ १५ ॥ जैसी गौ देनी हो उसी प्रकार उस गौ का नाम लेना चाहिये उसके दानसे उत्तरोत्तर संख्याके अनुसार फल मिलता है गौकी कीमतका धन देनेसे छत्तीस सहस्र गौओं के दान देनेका पुण्य होता है, वस्त्रकी धेनुका दान देने वालोंको आठ सहस्र गोदानका पुण्य मिलता है और सुवर्णकी धेनुका दान देने वालेको वीस सहस्र गौओंके दान देनेका फल मिलता है१६इस प्रकार गोप्रतिनिधिके दानका फल कहा परन्तु प्रत्यक्ष गौका दान देने वालेको तो जब गौ चलती२आठवाँ पग धरती है तब ही सब फल मिलजाता है १७ जो प्रत्यक्ष गौका दान देता है वह शीलवान् होता है गौके बदले गौके मूल्यका दान देने वाला भयरहित होजाता है तथा जो गौके मूल्यमें इच्छानुसार सुवर्णका दान देता है वह सुखी होता है हे भारत ! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर स्नान सन्ध्या आदि कर्म करता है और महाभारतका जानकार होता है वह पुरुष विष्णुलोकमें तथा चन्द्रलोकमें जाता है गोदान देनेवालेको गोदान देकर तीन रात्रि तक गोव्रतका

गोः शकृता प्रस्नवैर्वा ॥ १६ ॥ देवव्रती स्याद् वृषभप्रदाने वेदा-
वाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने । तथा गवां विधिमासाद्य यज्वा लोका-
नग्र्यान्विन्दते नाविधिज्ञः ॥२०॥ कामान्सर्वान्पार्थिवानेकसंस्थान्यो
वै दद्यात्कामदुघां च धेनुम् । सम्यक्ताः स्युर्हव्यकव्यौघवत्यस्ता-
सामुक्ष्णां ज्यायसां सम्प्रदानम् ॥२१॥ न चाशिष्यायाव्रतायो-
पकुर्यान्नाश्रद्दधानाय न वक्रबुद्धये । गुह्यो ह्ययं सर्वलोकस्य धर्मो
नेमं धर्मं यत्र तत्र प्रजल्पेत् ॥२२॥ संति लोके श्रद्दधाना मनुष्याः
सन्ति क्षुद्रा राक्षसमानुषेषु । एषामेतद्दीयमानं ह्यनिष्टं ये नास्तिक्यं

पालन करना चाहिये एक रात्रि गौओंके साथ रहे काम्या अष्टमीके दिन गोदान देवै, तीन दिवस तक गोव्रतका पालन करनेवाले मनुष्यको गोदुग्ध गोमूत्र अथवा गोबरका रस पीकर रहना चाहिये१६जो पुरुष वृषभका दान देता है वह पुरुष सूर्यमण्डलको भेदकर ऊपरके लोकोंमें जाता है एक गौ तथा एक वृषभ दान देने वालेको वेदके स्वाध्याय करनेका फल मिलता है तथा विधि-पूर्वक गोदान देनेवाला और यज्ञ करनेवाला पुरुष उत्तम लोकोंमें जाता है परन्तु जो गोदानकी विधिको नहीं जानता है उसको उत्तम लोक नहीं मिलते हैं२०जो पुरुष इच्छानुसार दूध देनेवाली गौका दान देता है उस मनुष्यको इस पृथ्वी परके हाथी घोड़े आदि सब पदार्थोंके दानका फल मिलता है तो फिर हव्य तथा कव्योंको पूर्ण करनेवाली अनेक गौओंका दान देनेसे अधिक फल मिलेगा इसमें तो कहना ही क्या!वृषभोंका दान इससेभी उत्तम माना जाता है२१ जो शिष्य न हो जो ब्रह्मचारी न हो जो श्रद्धारहित हो और जो कुटिलबुद्धि हो उससे गोदान विधि कहकर उसके ऊपर उपकार नहीं करना चाहिये क्योंकि-यह धर्म सब मनुष्योंसे गुप्त रखने योग्य है अतः इस धर्मको सर्वत्र नहीं कहना चाहिये ॥ २२ ॥ इस जगत्में बहुतसे मनुष्य श्रद्धारहित होते हैं और बहुतसे मनुष्यों

चाश्रयंतेऽल्पपुण्याः ।२३। बार्हस्पत्यं वाक्यमेतन्निशम्य ये राजानो गोप्रदानानि दत्वा । लोकान् प्राप्ताः पुण्यशीलाः प्रवृत्तास्तान्मे राजन्कीर्त्यमानान्निबोध ॥ २४ ॥ उशीनरो विश्वगश्वो नृगश्च भगीरथो विश्रुतो यौवनाश्वः । मांधाता वै मुचुकुन्दश्च राजा भूरिद्युम्नो नैषधः सोमकश्च ॥२५॥ पुरूरवा भरतश्चक्रवर्ती यस्यान्ववाये भरताः सर्व एव । तथा वीरो दाशरथिश्च रामो ये चाप्यन्ये विश्रुताः कीर्तिमंतः ॥ २६ ॥ तथा राजा पृथुकर्मा दिलीपो दिवं प्राप्तो गोप्रदानैर्विधिज्ञः। यज्ञैर्दानैस्तपसा राजधर्मैर्मांधाताभूद्गोप्रदानैश्च युक्तः ॥ २७ ॥ तस्मात्पार्थ त्वमपीमां मयोक्तां बार्हस्पतीं भारतीं धारयस्व । द्विजाग्रेभ्यः संप्रयच्छस्व प्रीतो गाः पुण्या वै प्राप्य राज्यं कुरूणाम् ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथा सर्व

में तथा राक्षसोंमें क्षुद्र होते हैं, उनसे यह दानविधि कहनेसे अनिष्ट होता है और अल्प पुण्यवाले मनुष्योंसे भी इस दानविधिका वर्णन करने पर अनिष्ट होता है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जो राजे बृहस्पतिजीके इस वचनको सुनकर गोदान करके स्वर्गमें गए हैं उन पुण्यात्माओंके नामोंको मैं तुझसे कहता हूँ, सुन ॥ २४ ॥ उशीनर, विश्वगश्व, नृग, भगीरथ, प्रसिद्ध भूपति यौवनाश्व, मांधाता, राजा मुचकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरूरवा, चक्रवर्ती भरत, कि-जिनके वंशमें सब राजे भरत कहलाते थे, शूरवीर दशरथपुत्र राम, ये और भी प्रसिद्ध कीर्तिवाले राजे तथा विशाल कर्म करनेवाला और दानकी विधिको जानने वाला राजा दिलीप भी गोदान देकर स्वर्गमें गया है, राजा मांधाताने भी यज्ञ दान, तप और राजधर्मोंका पालन किया था तथा गौके दर्शन किये थे ॥ २५ ॥ २७ ॥ अतएव हे पार्थ ! तू भी मेरे कहे हुए बृहस्पतिके वचनको स्मरण रख और कुरुओंका राज्य पाकर प्रसन्न हो पवित्र गौओंका उत्तम ब्राह्मणोंको दान दे ॥ २८ ॥

कृतवान् धर्मराजो भीष्मेणोक्तो विधिवद्गोप्रदाने । स मांधातुर्वेद-
देवोपदिष्टं सम्यग्धर्मं धारयामास राजा ॥ २६ ॥ इति नृप सततं
गवां प्रदाने यवशकलान् सह गोमयैः पिबानः । क्षितितलशयनः
शिखी यतात्मा वृष इव राजवृषस्तदा बभूव ॥ ३० ॥ नरपतिर-
भवत् स दैवताभ्यः प्रयतमनास्त्वभिसंस्तुवंश्च ताः स्म । नृपतिधुरि
च गामयुक्त भूपस्तुरगवरैरगमच्च यत्र तत्र ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि
दानधर्मे गोदानकथने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो युधिष्ठिरो राजा भूयः शान्तनवं
नृपम् । गोदानविस्तरं धीमान पप्रच्छ विनयान्वितः ॥१॥ युधि-

वैशम्पायनने कहा, कि-भीष्मजीके विधिपूर्वक गोदान देनेको कहने पर राजा युधिष्ठिरने वैसा ही किया और बृहस्पतिने राजा मांधाताको जा उपदेश दिया था उसको उन्होंने अपने मनमें धारण किया ॥ २६ ॥ हे राजा जनमेजय ! तब राजा युधिष्ठिर गौओंका दान देने लगे और और यवके कण तथा गोमयका आहार करने लगे, पृथ्वी पर सोने लगे, उन्होंने मस्तक पर जटा रखना लीं और इन्द्रियोंको नियममें रखने लगे, उस समय राज-र्षभ राजा युधिष्ठिर (मूर्तिमान्) धर्मसे दिपने लगे ॥३०॥ और राजा युधिष्ठिर गौओंका सदा ध्यान रखने लगे और अपने मन को नियममें रख कर उनकी स्तुति और उपासना करने लगे, और उस दिनसे उन्होंने अपने रथमें वैलोंका जोड़ना वन्द कर दिया और जहाँ जाते थे, तहाँ रथमें उत्तम घोड़ोंको ही जोड़ कर जाते थे ॥ ३१ ॥ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥

वैशम्पायनने कहा,कि-हे जममेजय ! तदनन्तर बुद्धिमान् और विनयवान् राजा युधिष्ठिरने शन्तनुके पुत्र भीष्मजासे गोदानके सम्बन्धमें फिर विस्तारपूर्वक प्रश्न किया युधिष्ठिरने बूझा, कि-

ष्ठिर उवाच । गोप्रदानगुणान् सम्यक् पुनर्मे ब्रूहि भारत । न हि तृप्याम्यहं वीर शृण्वानोऽमृतमीदृशम् ॥२॥ वैशम्पायन उवाच इत्युक्तो धर्मराजेन तदा शांतनवो नृपः । सम्यगाह गुणांस्तस्मै गोप्रदानस्य केवलान् ॥३॥ भीष्म उवाच । वत्सलां गुणसंपन्नां तरुणीं वस्त्रसंयुताम् । दत्त्वेदृशीं गां विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ४ असुर्या नाम ते लोका गां दत्त्वा तान्न गच्छति । पीतोदकां जग्ध-तृणां नष्टक्षीरां निरिंद्रियाम् ॥ ५ ॥ जरारोगोपसंपन्नां जीर्णां वापीमिवाजलाम् । दत्त्वा तमः प्रविशति द्विजं क्लेशेन योजयेत्६ रुष्टा दुष्टा व्याधिता दुर्बला वा नो दातव्यायाश्च मूल्यैरदत्तः।क्लेशै-र्विप्रं योऽफलैः संयुनक्ति तस्या वीर्याश्चाफलाश्चैव लोकाः ॥७॥

हे भरतवंशी राजन् ! आप मुझसे गोदानके गुणोंको फिर विस्तारके साथ कहिये हे भगवन्!मैं ऐसी अमृतमयी कथाको सुनते२ तृप्त नहीं होता हूँ ॥ २ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-हे जनमेजय ! शन्तनुके पुत्र भीष्मजीसे बूझा तब वह राजा युधिष्ठिरसे गोदानके फलका ही भली प्रकार कहने लगे ॥३-४॥ भीष्मजीने कहा,कि-वत्सला,तरुणी गौका वस्त्रके साथ ब्राह्मणको दान देनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है पुरुष गोदान देनेपर असुर्य नामक लोकोंमें नहीं जाता है जिसने जल पीलिया हो और तिनके चुग लिये हों ऐसी और जिसका दूध नष्ट होगया हो इन्द्रियें क्षीण होगई हों तथा जो बुड्ढी और रोगिणी हो ऐसी जलरहित टूटी फूटी बावड़ीकी समान गौका दान देने वाला पुरुष गोदान लेने वाले ब्राह्मणको कष्टमें डाल देता है और अपने आप नरकमें पड़ता है ॥ ५।६ ॥ क्रोध करनेवाली मरखनी रोगिणी दुबली और जिनका मोल नहीं चुकाया है ऐसी गौओंका दान नहीं देना चाहिये और जो गौ ब्राह्मणोंको केवल दुःखी ही करे ऐसी गौओंका दान नहीं देना चाहिये ऐसी गौओंका दान देने

बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वे प्रशंसंति सुगन्धवत्यः । यथा हि गंगा सरितां वरिष्ठा तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा॥८॥ युधिष्ठिर उवाच । कस्मात् समाने बहुजाप्रदाने सद्भिः प्रशस्तं कपिलाप्रदानम् । विशेषमिच्छामि महाप्रभावं श्रोतुं समर्थोस्मि भवान् प्रवक्तुम् ॥९॥ भीष्म उवाच । वृद्धानां ब्रुवतां तात श्रुतं मे यत्पुरातनम् । वक्ष्यामि तदशेषेण रोहिण्यो निर्मिता यथा ॥ १० ॥ प्रजाः सृजेति चादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयंभुवा । असृजद् वृत्तिमेवाग्रे प्रजानां हितकाम्यया ॥११॥ यथा ह्यमृतमाश्रित्य वर्तयन्ति दिवौकसः । तथा वृत्तिं समाश्रित्य वर्तयन्ति प्रजा विभो ॥ १२ ॥ अचरेभ्यश्च भूतेभ्यश्चराः श्रेष्ठाः सदा नराः । ब्राह्मणाश्च ततः

वाले मनुष्योंको जो लोक मिलते हैं वे वीर्यरहित और निष्फल होते हैं ॥ ७ ॥ बलवती शीलवती तरुण अवस्थावाली और गन्ध वाली गौकी सब प्रशंसा करते हैं नदियोंमें जैसे गंगाजी श्रेष्ठ हैं इसी प्रकार गौओंमें कपिला गौ श्रेष्ठ है॥८॥युधिष्ठिरने बूझा, कि–सब गौओंके दानको एकसा ही कहा है तब भी कपिला गौके दानको श्रेष्ठ क्यों कहा है?मैं कपिलागौके महाप्रभावशाली दानको अधिकतर सुनना चाहता हूँ मैं जैसे सुननेका पात्र हूँ तैसे ही आप भी कहनेके पात्र हैं॥ ९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे तात ! मैंने वृद्ध पुरुषोंसे वार्त्तालाप करते समय रोहिणी गौकी उत्पत्तिका प्राचीन वृत्तान्त जिस प्रकार सुना है उस संपूर्ण वृत्तान्तको मैं तुमसे कहूँगा १०. पहिले ब्रह्माजीने दक्ष प्रजापतिको आज्ञा दी, कि–तू प्रजाको उत्पन्न कर तब दक्षने प्रजाका हितकरनेकी इच्छासे पहिले आजीविकाको ही उत्पन्न किया ॥११॥ हे विभो ! देवता जैसे अमृतसे आजीविकाका चलाते हैं उसी प्रकार प्रजा भी वृत्तिका आश्रय लेकर आजीविका चलाती है ॥ १२ ॥ न चलने वाले प्राणियोंसे चलने वाले मनुष्य सदा श्रेष्ठ हैं मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और उन

श्रेष्ठास्तेषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १३ ॥ यज्ञैरवाप्यते सोमः स च
गोषु प्रतिष्ठितः । ततो देवाः प्रमोदन्ते पूर्वं वृत्तिस्ततः प्रजाः १४
प्रजा तान्येव भूतानि प्राक्रोशन् वृत्तिकाङ्क्षया । वृत्तिदं चान्वपद्यंत
तृषिताः पितृमातृवत् ॥ १५ ॥ इतीदं मनसा गत्वा प्रजासर्गार्थ-
मात्मनः । प्रजापतिस्तु भगवानमृतं मापिबत्तदा ॥ १६ ॥ स-
गतस्तस्य तृप्तिं तु गन्धं सुरभिमुद्गिरन् । ददर्शोद्गारसंवृत्तां सुरभिं
मुखजां सुताम् ॥१७॥ सासृजत्सौरभेयीस्तु सुरभीर्लोकमातृकाः।
सुवर्णवर्णाः कपिलाः प्रजानां वृत्तिधेनवः ॥ १८ ॥ तासाममृत-
वर्णानां क्षरन्तीनां समंततः । बभूवामृतजः फेनः स्रवन्तीनामिवो-
र्मिजः ॥ १६ ॥ स वत्समुखविभ्रष्टो भवस्य भुवि तिष्ठतः ।

ब्राह्मणोंके आश्रयसे यज्ञ रहते हैं ॥ १३ ॥ यज्ञ करनेसे सोम मिलता है और वह यज्ञ गौओंके आश्रयसे रहता है यज्ञसे देवता प्रसन्न होते हैं अतः दक्षने पहिले आजीविका उत्पन्नकी और फिर प्रजाको उत्पन्न किया उत्पन्न हुए प्राणी आजीविकाकी इच्छासे चीखें मारने लगे और जैसे भूखी तथा पियासी सन्तान अपने माता पिताके पास जाती है ऐसे ही प्राणी आजीविका देने वालेके पास गये १५ भगवान् दक्ष प्रजापतिने इस स्थितिका अपने मनमें विचार किया और अपनी रची हुई प्रजाकी आजीविका रचनेके लिये अमृतका पान किया ॥१६॥ तब वह तृप्त हुए और उन्होंने अपने मुँखमेंसे सुरभि (सुगन्ध) निकाली उस समय उनके मुखके उद्गारमेंसे सुरभि नामकी गौ पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई १७ उस सुरभिने लोकोंकी माताकी समान दूसरी सुरभिको उत्पन्न किया यह सब गौएँ सुन्दर वर्णकी और कपिला थीं तथा प्रजाकी आजीविकारूप थीं ॥ १८ ॥ जैसे नदियोंकी लहरोंमेंसे झाग उत्पन्न होजाते हैं इसीप्रकार चारों ओर दूध टपकाती हुई यह अमृतवर्णी गौएँ दूध देने वाली होकर उत्पन्न होगईं ।१६।

शिरस्यवापतत्क्रुद्धः स तदैक्षत च प्रभुः ॥ २० ॥ ललाटप्रभवेणाक्ष्णा रोहिणीं प्रदहन्निव । तत्तेजस्तु ततो रौद्रं कपिलास्ता विशाम्पते ॥ २१ ॥ नानावर्णत्वमनयन् मेघानिव दिवाकरः । यास्तु तस्मादपक्रम्य सोममेवाभिसंश्रिताः ॥ २२ ॥ यथोत्पन्नाः स्ववर्णास्थास्तानीताश्चान्यवर्णताम् । अथ क्रुद्धं महादेवं प्रजापतिरभाषत ॥२३॥ अमृतेनावसिक्तस्त्वं नोच्छिष्टं विद्यते गवाम् । यथा ह्यमृतमादाय सोमो विस्यंदते पुनः ॥ २४ ॥ तथा क्षीरं क्षरन्त्येता रोहिण्योऽमृतसंभवम् । न दुष्यत्यनिलो नाग्निर्न सुवर्णं न चोदधिः ॥ २५ ॥ नामृतेनामृतं पीतं वत्सपीता न वत्सला ।

एक समय एक बछड़ा सुरभिका दूध पीरहा था उसके मुखमेंसे एक दूधका फेन उड़ कर जहाँ शिवजी बैठे थे वहाँ उनके मस्तक पर जाकर गिरा तब शिवजी क्रोधमें भर गये और उन प्रभुने देखा२०उस समय वह अपने ललाटमें रहने वाले तीसरे नेत्रसे मानो रोहिणी गौको भस्म करते हों ऐसे प्रतीत होते थे,हे राजन्! तब जैसे सूर्य मेघोंको अनेक रङ्गका बना देता है तैसे ही रुद्रने कपिला गौको कपिला रंगकी चितकबरी बनादिया जिन गौओंने वहाँसे भाग कर सोमका आश्रय लिया ॥ २१–२२ ॥ वे गौएँ जैसे रंगकी उत्पन्न हुई थीं वैसी ही रहीं उनका रंग नहीं बदला तदनन्तर प्रजापति दक्षने कुपितहुए महादेवसे कहा, कि–॥२३॥ आप अमृतसे भीग गए हैं बच्छड़ोंका दूध पिलाते समय गौओंका दूध उच्छिष्ट नहीं माना जाता सोम जैसे अमृतका पान करके उसको बरसाता है ॥२४॥ इसीप्रकार यह रोहिणियें भी अमृत मेंसे उत्पन्न हुए दधको बरसाती हैं पवन दूषित नहीं होता है अग्नि भी दूषित नहीं होता है सुवर्ण भी दूषित नहीं होता है तथा समुद्र भी दूषित नहीं होता है ॥ २५ ॥ देवताओंका पिया हुआ अमृत भी जैसे दूषित नहीं होता है इसी प्रकार बछड़ोंको

इमांल्लोकान् भरिष्यन्ति हविषा प्रस्रवेण च ॥ २६ ॥ आसामैश्वर्यमिच्छन्ति सर्वेऽमृतमयं शुभम् । वृषभं च ददौ तस्मै सह गोभिः प्रजापतिः ॥२७॥ प्रसादयामास मनस्तेन रुद्रस्य भारत। प्रीतश्चापि महादेवश्चकार वृषभं तदा ॥ २८ ॥ ध्वजं च वाहनं चैव तस्मात् स वृषभध्वजः । ततो देवर्महादेवस्तदा पशुपतिः कृतः । ईश्वरः स गवां मध्ये वृषभाङ्कः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ एवमव्यग्रवर्णानां कपिलानां महौजसाम् । प्रदाने प्रथमः कल्पः सर्वासामेव कीर्तितः ॥ ३० ॥ लोकज्येष्ठा लोकवृत्तिप्रवृत्ता रुद्रोपेताः सोमविष्यंदभूताः । सौम्याः पुण्याः कामदाः प्राणदाश्च गा वै दत्त्वा सर्वकामप्रदः स्यात् ॥ ३१ ॥ इदं गवां प्रभवविधानमुत्तमं

पिलाती हुई गौएँ भी दूषित नहीं होती हैं अर्थात् बछड़ा दूध पीता हो उस समय उसके मुखमेंसे उड़ा हुआ झाग उच्छिष्ट नहीं माना जाता है यह गौ अपने दूधसे तथा घीसे जगत्का पोषण करेंगी ॥ २६ ॥ और सब लोक इन गौओंके अमृतरूप शुभ ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं इस प्रकार कह कर प्रजापतिने शंकरको गौ और एक बैल दिया ॥ २७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उसने इस प्रकार रुद्रके मनको प्रसन्न किया तब महादेवजी भी प्रसन्न हुए और उन्होंने उस समय वृषभको अपना वाहन तथा अपनी ध्वजा रूप बनालिया अत एव शंकर वृषभध्वज कहलाते हैं उस समयसे देवताओंने महादेवको पशुपति बनाया है और गौओंके मध्यमें महादेवको वृषभाङ्क कहने लगे ॥ २८॥२९ ॥ इसप्रकार सब गौओंके दानमें अव्यग्र वर्णवाली महाबलवती कपिला गौके दानको उत्तम कहा है ॥ ३० ॥ गौएँ जगत्में सबसे श्रेष्ठ हैं लोकों की आजीविकाको चलानेवाली हैं उनका स्वामी रुद्र है वे दुग्धरूप अमृतको दिया करती हैं यह शान्तस्वभाव पुण्यरूप और कामनाको पूर्ण करनेवाली हैं और प्राणोंकी रक्षा करनेवाली हैं

पठन् सदाऽशुचिरपि मङ्गलप्रियः। विमुच्यते कलिकलुषेण मानवः श्रियं सुतान् धनपशुमाप्नुयात् सदा॥ ३२॥ हव्यं कव्यं तर्पणं शान्तिकर्म यानं वासो वृद्धबालस्य तुष्टिः। एतान् सर्वान् गोमदाने गुणान् वै दाता राजन्नाप्नुयाद्वै सदैव॥ ३३॥ वैशम्पायन उवाच। पितामहस्याथ निशम्य वाक्यं राजा सह भ्रातृभिराजमीढः सुवर्णवर्णानडुहस्तथा गाः पार्थो ददौ ब्राह्मणसत्तमेभ्यः ३४ तथैव तेभ्योऽपि ददौ द्विजेभ्यो गवां सहस्राणि शतानि चैव। यज्ञान् समुद्दिश्य च दक्षिणार्थे लोकान्विजेतुं परमां च कीर्तिम् ३५
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रभवकथने सप्तसप्ततिमोऽध्यायः॥ ७७॥

भीष्म उवाच। एतस्मिन्नेव काले तु वसिष्ठमृषिसत्तमम्। इक्ष्वाकुवंशजो राजा सौदासो वदतां वरः॥ १॥ सर्वलोकचरं

ऐसी गौका दान देनेवाला सब कामनाओंको देनेवाला माना जाता है॥ ३१॥ यदि अपवित्र मनुष्य भी गौओंके उत्पत्ति-सम्बन्धी इस उत्तम विधानको पढ़ता है तब वह मांगलिक वस्तुओं से प्रेम करने लगता है और वह मनुष्य कलियुगके दोषोंसे छूट जाता है और लक्ष्मी पुत्र पशु और धनसे भरपूर रहता है ३२ हे राजन्! गोदान देनेवाला पुरुष हव्य कव्य तर्पण शान्ति कर्म वाहन वस्त्र वृद्ध और बालकोंके संतोषको सदा पाता रहता है॥ ३३॥ वैशम्पायनने कहा कि-राजा युधिष्ठिरने और उनके भाइओंने पितामहकी बात सुनकर सुवर्णकी समान वर्णवाले बैलों का और गौओंका उत्तम ब्राह्मणोंको दान दिया इसीप्रकार राजा युधिष्ठिरने परलोकको जीतनेके लिये तथा परमकीर्त्ति पानेके लिये यज्ञमें दक्षिणारूपसे दीजानेवाली लाखों गौएँ उत्तम ब्राह्मणोंको दीं॥ ३५॥ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥ ७७॥

भीष्मजीने कहा, कि-एक समय इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न राजा

सिद्धं ब्रह्मकोशं सनातनम् । पुरोहितमभिप्रष्टुमभिवाद्योपचक्रमे२
सौदास उवाच । त्रैलोक्ये भगवन् किंचित् पवित्रं कथ्यतेऽनघ ।
यत्कीर्तयन् सदा मर्त्यः प्राप्नुयात् पुण्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ भीष्म
उवाच । तस्मै प्रोवाच वचनं प्रणताय हितं तदा । गवामुपनिष-
द्विद्वान्नमस्कृत्य गवां शुचिः ॥ ४ ॥ गावः सुरभिगन्धिन्यस्तथा
गुग्गुलगन्धयः । गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ५
गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी । गावो लक्ष्म्या-
स्तथा मूलं गोषु दत्तं न नश्यति ॥ ६ ॥ अन्नं हि परमं गावो
देवानां परमं हविः। स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ७
गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः । गावो भविष्यं

सौदासने सब लोकोंमें घूमनेवाले ब्रह्माजीके पुत्र प्राचीन सिद्ध अपने पुरोहित ऋषिसत्तम वशिष्ठजीको प्रणाम करके बूझा, कि-१ २ सौदासने बूझा, कि हे भगवन् ! हे निर्दोष ऋषे ! तीनों लोकोंमें ऐसी कौनसी पवित्र वस्तु है, जिसका सदा कीर्तन करनेसे मनुष्य को उत्तम पुण्य होता है ? ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-उस समय प्रणाम करके,सामने खड़े हुए सौदाससे विद्वान् और पवित्र वसिष्ठ गौको नमस्कार करके जगत्के हितरूप गौके उपनिषद्का वर्णन करने लगे ४ गौएँ सुरभि गन्ध वाली है, गौएँ गुग्गलुके समान गन्ध वाली हैं गौएँ प्राणियोंकी आश्रय रूप हैं और गौएँ कल्याणकी मूर्त्ति हैं ॥ ५ ॥ गौएँ भूत और भविष्यरूप हैं, गौएँ सनातनकालसे पुष्टि देने वाली हैं, गौएँ लक्ष्मीकी मूल हैं, गौओं को जो कुछ खिलाया जाता है वह अक्षयफल देता है ॥ ६ ॥ गौ परम अन्नरूप है, गौ देवताओंके परमहवि घृतको उत्पन्न करती हैं,स्वाहाकार और वषट्कार सदा गौओंके आधीन रहते हैं ॥ ७ ॥ गौएँ यज्ञका फल हैं, यज्ञ गौओंके आधार पर स्थित हैं गौएँ भविष्य और भूतरूप हैं और यज्ञ उनके आधारसे ही

भूतं च गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ ८ ॥ सायं प्रातश्च सततं होम-
काले महाद्युते । गावो ददति वै हौम्यमृषिभ्यः पुरुषर्षभ ॥९॥
यानि कानि च दुर्गाणि दुष्कृतानि कृतानि च । तरन्ति चैव
पाप्मानं धेनुं ये ददति प्रभो ॥ १० ॥ एकां च दशगुर्दद्याद्दश
दद्याच्च गोशती । शतं सहस्रगुर्दद्यात् सर्वे तुल्यफला हि ते ११
अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः । समृद्धो यश्च कीनाशो
नार्घमर्हन्ति ते त्रयः ॥ १२ ॥ कपिलां ये प्रयच्छन्ति सवत्सां
कांस्यदोहनाम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीतामुभौ लोकौ जयन्ति ते १३
युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन शतयूथपम् । गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरि-
शृङ्गमलंकृतम् ॥ १४ ॥ वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप ।

रहते हैं ॥ ८ ॥ और हे महाकान्तिमान् पुरुषश्रेष्ठ ! गौएँ सदा प्रातःकाल और सायंकाल होम करनेके समय ऋषियोंको होमने योग्य घृत देती हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जो पुरुष गोदान देता है, वह गोदान देने वाला पुरुष अपने किये हुए सब कर्मोंको नष्ट कर डालता है॥१०॥दश गौवालेको एक गौका दान देना चाहिये, सौ गौओंके स्वामीका दश गौओंका दान देना चाहिये, सहस्र गौओंके स्वामीको सौ गौओंका दान देना चाहिये, इन सब दान देने वालोंको एकसा फल मिलता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष सौ गौओंका धनी होने पर अग्निहोत्र न करता हो और जो सहस्र गौओंका स्वामी होने पर भी यज्ञ न करता हो और जो धनाढ्य होने पर भी कृपण होता हो ये तीनों अर्घके पात्र नहीं हैं॥१२॥ जो पुरुष बछड़ेसहित और दुहनेके काँसीके पात्रसहित सदाचरणी कपिला गौका दान देता है, वह इस लोकको और परलोकको भी जीत लेता है ॥ १३ ॥ जो तरुण अवस्थावाले इन्द्रियोंसे सम्पन्न सहस्रों गौओंके स्वामी बड़े भारी सींगोंवाले बड़े भारी बैलको सजाकर वेदपाठी ब्राह्मणको दान करके देते हैं

ऐश्वर्यं तेऽधिगच्छन्ति जायमानाः पुनः पुनः ॥ १५ ॥ नाकीर्तयित्वा गाः सुप्यात्तासां संस्मृत्य चोत्पतेत् । सायं प्रातर्नमस्येच्च गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात् ॥१६॥ गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कथंचन । न चासां मांसमश्नीद्गवां पुष्टिं तथाप्नुयात् ॥१७॥ गाश्च संकीर्तयेन्नित्यं नावमन्येत तास्तथा । अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः संप्रकीर्तयेत् ॥ १८ ॥ गोमयेन सदा स्नायात् करीषे चापि संविशेत् । श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत् ॥ १९ ॥ सार्द्रे चर्मणि भुञ्जीत निरीक्षेद्वारुणीं दिशम् । वाग्यतः सर्पिषा भूमौ गवां पुष्टिं सदाश्नुते ॥२०॥ घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् । घृतं दद्याद् घृतं प्राशेद्गवां पुष्टिं सदाश्नुते ॥ २१ ॥

हे शत्रुतापन राजन् ! वे वारम्वार जन्म लेकर ऐश्वर्यको पाते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ गौओंका कीर्त्तन किये विना शयन न करे, और उनका कीर्त्तन करनेसे पहले उठे भी नहीं, प्रातःकालके समय और सायंकालके समय गौओंको प्रणाम करे, ऐसा करनेसे मनुष्यको पुष्टि मिलती है ॥ १६ ॥ गोमूत्रसे और गोवरसे कभी उद्विग्न न होवे, गौका मांस किसी दिन न खावे, ऐसा करनेसे गौओंकी वृद्धि होती है ॥ १७ ॥ सदा गौओंका सङ्कीर्त्तन करे उनका कभी अपमान न करे मनुष्य अनिष्ट स्वप्न देखने पर गौका कीर्त्तन करे ॥ १८ ॥ सदा गोमयसे स्नान करे गोवरके ऊपर बैठे और किसी दिन भी गौकी ओर न थूके तथा किसी दिन मूत्र और पुरीष भी न करे और गौओंका तिरस्कार भी न करे ॥ १९ ॥ जलसे भीगे मृगचर्म पर बैठ कर भोजन करे पश्चिम दिशाकी ओर दृष्टि रक्खे वाणीको नियममें रक्खे पृथ्वीमें बैठकर गोघृतका भक्षण करे ऐसा करनेसे गौओंकी सदा वृद्धि होती रहती है ॥ २० ॥ अग्निमें घृतका होम करे घृतसे स्वस्तिवाचन करे घृतका दान देय और घृतको चाखे ऐसा

गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानमौभिमन्त्र्य यः। सर्वरत्नमयीं दद्यान्न स शोचेत् कृताकृते ॥ २२ ॥ गावो मामुपतिष्ठंतु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः । सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ॥ २३ ॥ गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा । गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥२४॥ एवं रात्रौ दिवा चापि समेषु विषमेषु च । महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयात् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रदानिके अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

वसिष्ठ उवाच । शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्तं सुदुष्करम् । गोभिः पूर्वं विसृष्टाभिर्गच्छेम श्रेष्ठतामिति ॥ १ ॥ लोकेऽस्मिन्दक्षिणानां च सर्वासां वयमुत्तमाः । भवेम न च लिप्येम दोषेणेति

करनेसे गौएँ सदा पुष्ट रहती हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष " गो माँ अग्ने विमाँ अश्वीति " नामक गौमती मन्त्रसे तिलकी धेनुका अभिमन्त्रण करता है और सब प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण तिल धेनुका दान देता है उसको सुकृत और दुष्कृतका शोक नहीं करना पड़ता है ॥ २२ ॥ सुवर्णसे मढ़े हुए सींगवाली और दूध देनेवाली सुरभियें और उनकी पुत्री सौरभेयियें जैसे नदी समुद्रके पास जाती हैं तैसे मेरे पास आवें ॥ २३ ॥ मैं गौओंका सदा दर्शन करूँ और गौएँ सदा मेरा दर्शन करें गौएँ हमारी हैं और हम गौओंके हैं जहाँ गौएँ हैं तहाँ हम हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार रातमें दिनमें सम और विषम समयमें तथा महाभयके समय गौओंका कीर्त्तन करता है तो वह भयमेंसे छूट जाता है २५ अठत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७८॥

वशिष्ठजीने कहा, कि—पहले उत्पन्न हुई गौओंने हम श्रेष्ठ हो जायँ इस इच्छासे एक लाख वर्षतक अति दुष्कर तप किया था १ और तपके अन्तमें ब्रह्माजीने उनके निम्न लिखित वरदान माँगने

परन्तप ॥ २ ॥ अस्मत्पुरीषस्नानेन जनः पूयेत सर्वदा । शकृता च पवित्रार्थं कुर्वीरन् देवमानुषाः ॥ ३ ॥ तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च । प्रदातारश्च लोकान्नो गच्छेयुरिति मानद ॥ ४ ॥ ताभ्या वरं ददौ ब्रह्मा तपसोऽन्ते स्वयं प्रभुः । एवं भवत्विति प्रभुर्लोकांस्तारयतेति च ॥ ५ ॥ उत्तस्थुः सिद्धकामास्ता भूतभव्यस्य मातरः । प्रातर्नमस्यास्ता गावस्ततः पुष्टिमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥ तपसोऽन्ते महाराज गावो लोकपरायणाः । तस्माद्गावो महाभागाः पवित्रं परमुच्यते ॥ ७ ॥ तथैव सर्वभूतानां समतिष्ठन्त मूर्धनि । समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीतां ब्रह्मलोके महीयते ॥८॥ लोहितां तुल्यवत्सां

पर उनसे " तथास्तु " कहा था और कहा था, कि-तुम सब लोकोंको तारोगी गौओंने यह वर माँगा था, कि-इस जगत्में जो दक्षिणायें दी जाती हैं उनमें हम उत्तम दक्षिणारूप हो जायँ और हमको दोष न लगे मनुष्य हमारे गोमयसे स्नान करनेसे सदा पवित्र होते रहें और देवता तथा मनुष्य हमारे गोबरको पवित्र करनेके काममें लावें तथा सब स्थावर जंगम प्राणी भी ऐसा ही करें और हे मानदेनेवाले देव ! हमारा दान देनेवाले मनुष्य हमारे लोकोंमें जावें ॥ २-५ ॥ इसप्रकार जब गौओंकी कामना सिद्ध होगई तब वह भूतकाल भविष्यतकाल माता गौएँ तपमेंसे उठीं अतः प्रभातमें उठकर इन गौओंको नमस्कार करना उचित है ऐसा करनेसे मनुष्यको पुष्टि मिलती है६ हे महाराज ! तप पूर्ण होनेके पीछे गौएँ लोकोंका कल्याण करने लगीं इसलिये महाभाग्यशालिनी गौएँ परम पवित्र कहलाती हैं ॥ ७ ॥ इसी प्रकार गौएँ सब प्राणियोंमें उत्तम मानी जाती हैं जो पुरुष दुधेर और सधी हुई कपिला गौको वैसे ही वर्णवाले बछड़ेको भी वस्त्र उढाकर दानमें देता है उस पुरुषकी ब्रह्मलोकमें पूजा होती

तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सूर्यलोके मही-
यते ॥ ९ ॥ समानवत्सां शवलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम् । सुव्रतां
वस्त्रसंवीतां सोमलोके महीयते ॥ १० ॥ समानवत्सां श्वेतां तु
धेनुं दत्वा पयस्विनीम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ११
समानवत्सां कृष्णां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीता-
मग्निलोके महीयते ॥ १२ ॥ समानवत्सां धूम्रां तु धेनुं दत्वा
पयस्विनीम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीतां याम्यलोके महीयते ॥ १३ ॥
अपां फेनसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् । प्रदाय वस्त्रसंवीतां
वारुणं लोकमाप्नुते ॥ १४ ॥ वातरेणुसवर्णां तु सवत्सां कांस्य-
दोहनाम् । प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते ॥१५॥ हिरण्य-
वर्णां पिंगाक्षीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् । प्रदाय वस्त्रसंवीतां

है ॥ ८ ॥ जो लाल वर्णवाली और लाल ही बछड़े वाली सधी
हुई दुधेर गौको झूल उढ़ाकर दान देता है उसकी सूर्यलोकमें
पूजा होती है ॥ ९॥ जो पुरुष चितकबरे बछड़ेवाली चितकबरी
गौका झूल उढ़ाकर दान देता है उस पुरुषकी सोमलोकमें पूजा
होती है ॥ १० ॥ जो पुरुष श्वेत बछड़े वाली सधी हुई श्वेत
दुधेर गौका झूल उढ़ाकर दान करता है वह इन्द्र लोकमें पूजा
पाता है ॥ ११ ॥ जो काले बछड़ेवाली सधी हुई काली दुधेर
गौका झूल उढाकर दान करता है उस पुरुषकी अग्निलोकमें
पूजा होती है ॥१२॥ जो पुरुष धुमैले वर्णकी सधी हुई दुधेर गौ
का झूल उढ़ाकर दान करता है वह यमलोकमें पूजा पाता है १३
जो पुरुष जलके झागोंके समान वर्ण वाली सवत्सा गौका झूल
उढ़ाकर कांसीके पात्रके साथ दान करता है वह पुरुष वरुणलोक
में जाता है ॥१४॥ पवनसे उड़ती हुई धूलके समान वर्ण वाली
सवत्सा गौका जो कांसीके पात्र और वस्त्रके साथ दान देता है
वह पुरुष वायुलोकमें पूजा पाता है १५ सुनहरे वर्ण वाली पीली

कौवेरं लोकमश्नुते ॥ १६ ॥ पलालधूम्रवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् । प्रदाय वस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते ॥ १७ ॥ सवत्सां पीवरीं दत्वा दृतिकण्ठामलंकृताम् । वैश्यदेवमसंबाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते ॥ १८ ॥ समानवत्सां गौरीं तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् । सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूनां लोकमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ पाण्डुकंबलवर्णाभां सवत्सां कांस्यदोहनाम् । प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमाप्नुते ॥ २० ॥ वैराटपृष्ठमुक्षाणं सर्वरत्नैरलंकृतम् । प्रददन्मरुतां लोकान् स राजन् प्रतिपद्यते ॥ २१ ॥ वयोपपन्नं लीलाङ्गं सर्वरत्नसमन्वितम् । गन्धर्वाप्सरसां लोकान् दत्वा प्राप्नोति मानवः ॥ २२ ॥ दृतिकण्ठमनड्वाहं सर्वरत्नैरलं-

---

पीली आँखोंवाली गौको वस्त्र उढ़ाकर जो कांसीके पात्रके साथ और बछड़ेके साथ दान देता है, वह पुरुष कुवेरके लोकको पाता है ॥१६। जो पुरुष फँगोलेके धुएँके समान वर्णवाली सवत्सा गौको झूल उढ़ाकर कांसीके पात्रके साथ दान देता है उसकी पितृलोकमें पूजा होती है१७ शरीरमें स्थूल कण्ठमें लटकते हुए सास्नावाली गौको बछड़ेके साथ सजाकर दान देनेवाला पुरुष विश्वेदेवताओंके दुःखरहित उत्तम स्थानमें जाता है १८ बछड़ेवाली गौर वर्णकी सदाचारमती दुधेर गौको वस्त्र उढ़ाकर देनेवाला पुरुष वसुओंके लोकमें जाता है १६ जो पुरुष पीले कम्बलके समान रंगवाली सवत्सा गौको झूल उढ़ाकर कांसीके पात्रके साथ दान देता है वह साध्योंके लोकोंमें जाता है २० ऊँची पीठ वाले बैलको सब प्रकारके रत्नोंसे सजाकर दान देनेवाला पुरुष पवनोंके लोकोंमें जाता है ॥२१॥ जो मनुष्य तरुण अवयवोंवाले बैलको सब प्रकारके रत्नोंसे सजाकर उसका दान देता है वह पुरुष गन्धर्वोंके और अप्सराओंके लोकोंमें जाता है २२ जो पुरुष सास्नावाले बैलका सब रत्नोंसे सजाकर दान देता

कृतम् । दत्वा प्रजापतेर्लोकान् विशोकः प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥
गोप्रदानरतो याति भित्वा जलदसंचयान् । विमानेनार्कवर्णेन
दिवि राजन् विराजते ॥ २४ ॥ तं चारुवेषाः सुश्रोण्यः सहस्रं
सुरयोषितः । रमयन्ति नरश्रेष्ठं गोप्रदानरतं नरम् ॥ २५ ॥
वीणानां वल्लकीनाञ्च नूपुराणाञ्च शिञ्जितैः । हासैश्च हरिणा-
क्षीणां सुप्तः स प्रतिबोध्यते ॥ २६ ॥ यावन्ति रोमाणि भवन्ति
धेन्वास्तावन्ति वर्षाणि महीयते सः । स्वर्गच्युतश्चापि ततो नृलोके
प्रसूयते वै विपुले गृहे सः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
गोप्रदानिके एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

वसिष्ठ उवाच । घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥ १ ॥ घृतं मे हृदये

है वह पुरुष शोकरहित होकर प्रजापतिके लोकमें जाता है २२
हे राजन् ! गोदान करनेमें प्रीति रखनेवाला पुरुष मेघमण्डलको
भेदकर सूर्यकी समान वर्णवाले विमानमें बैठकर स्वर्गमें जाता
है २४ तहाँ पर गोदानमें प्रीति रखनेवाले उत्तम प्रकारका भेष
धारण करके सहस्रों सुश्रोणी देवाङ्गनाओंके साथ रमण करता
है २५ और वह पुरुष वीणा वल्लकी और नूपुरोंकी ध्वनि
तथा मृगनयनी स्त्रियोंके हास्यकी ध्वनियोंसे जागता है २६ गोदान
देने वाला पुरुष गौके शरीरमें जितने रुएँ होते हैं उतने वर्ष तक
स्वर्गलोकमें पूजा पाता है और स्वर्गमेंसे भ्रष्ट होने पर मनुष्य
लोकमें सम्पन्न घरमें उत्पन्न होता है २७ उन्मासीवाँ अध्याय
समाप्त ॥ ७९ ॥ छ छ छ

वसिष्ठजीने कहा, कि- धेनु घृत तथा दुग्ध देनेवाली हैं, घृत
की कारणरूप हैं, घृतको उत्पन्न करनेवाली हैं घृतकी नदीरूप
हैं और घृतकी भ्रमररूप हैं, वे सदा मेरे घरमें वास करें ॥ १ ॥

नित्यं घृतं नाभ्यामप्रतिष्ठितम् । घृतं सर्वेषु गात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् ॥२॥ गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च । गावो मे सर्वतश्चैव गवाम्मध्ये वसाम्यहम् ॥३॥ इत्याचम्य जपेत् सायं प्रातश्च पुरुषः सदा । यदन्हा कुरुते पापं तस्मात्स परिमुच्यते ४ प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रशः ॥ ५ ॥ नवनीतपंकाः क्षीरोदा दधिशैवलसंकुलाः । वहन्ति यत्र वै नद्यस्तत्र यान्ति सहस्रदाः ॥६॥ गवां शतसहस्रं तु यः प्रयच्छेद्यथाविधि । परां वृद्धिमवाप्याथ स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥ दश चोभयतः पुत्रो मातापित्रोः पितामहान् । ददाति सुकृताँल्लोकान् पुनाति च कुलं नरः ॥ ८ ॥

घृत सदा मेरे हृदयमें रहे, घृत नित्य मेरी नाभिमें रहे, घृत मेरे सब अवयवोंमें रहे तथा घृत मेरे मनमें रहे ॥२॥ धेनु सदा मेरे आगे रहें, धेनु सदा मेरे पीछे रहें धेनु मेरे चारों ओर रहें और मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ ॥ ३ ॥ जो पुरुष सदा प्रातःकाल और सायंकालमें आचमन करके उपरोक्त अर्थवाले मंत्रोंका पाठ करता है, उसके दिन भरके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ४ ॥ एक सहस्र गौओंका दान देने वाला पुरुष जहाँ पर सुवर्णके भवन बने हुए हैं और जहाँ मन्दाकिनी वह रही है और जहाँ गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं, तहाँ जाता है ॥५॥ एक सहस्र गौओंका दान देनेवाला पुरुष जहाँ मक्खनकी कीच मच रही है और जहाँ दुग्धके प्रवाह वाली और घृतरूपी सिवार वाली नदियें हैं तहाँ जाता है ॥ ६ ॥ एक लाख गौओंका विधिपूर्वक दान देने वाला पुरुष इस जगत्में परम अभ्युदय पाता हैं और मरणके पीछे स्वर्गमें पूजा पाता है ॥७॥ और एक लाख धेनुओंका दान देने वाला अपनी माता तथा पिताके दश वंशजोंको पुण्यमय लोकोंमें भेजता है और अपने कुलको पवित्र करता है ॥८॥ जो

धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणान्धेनुं तिलानामपि च प्रदाय। पानीय-
दाता च यमस्य लोके न यातनां काञ्चिदुपैति तत्र ॥ ९ ॥
पवित्रमग्र्यं जगतः प्रतिष्ठा दिवौकसाम्मातरोथाप्रमेयाः। अन्वाल-
भेद्दक्षिणतो व्रजेच्च दद्याच्च पात्रे प्रसमीक्ष्य कालम् ॥ १० ॥
धेनुं सवत्सां कपिलाम्भूरिशृङ्गीं कांस्योपदोहां वसनोत्तरीयाम्।
प्रदाय ताङ्गाहति दुर्विगाह्यां याम्यां सभां वीतभयो मनुष्यः ११
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः। गावो मामुपतिष्ठंतामिति
नित्यं प्रकीर्तयेत् ॥ १२ ॥ नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं
फलम्। नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति ॥ १३ ॥ त्वचा
लोम्नाथ शृङ्गैर्वा वालैः क्षीरेण मेदसा। यज्ञं वहति संभूय किम-

धेनुकी समान प्रमाण वाली तिलधेनुका दान देता है और
जो जलधेनुका दान देता है उसको यमलोकमें किसी प्रकारका
कष्ट उठाना नहीं पड़ता ९ गौ सबसे अधिक पवित्र हैं, जगत्की
आधारभूत हैं, देवताओंकी मातारूप हैं और प्रमाणरहित हैं ऐसी
गौओंका स्पर्श करना चाहिये,उनकी प्रदक्षिणा करनीचाहिये और
पर्व आदिके समय परीक्षा करके सुपात्रको दान देना चाहिये।१०।
जो पुरुष बड़े २ सींगों वाली सवत्सा दुधेर कपिला गौको झूल
उढ़ाकर काँसीके पात्रके साथ उसका दान देता है, वह पुरुष जहाँ
पर प्रवेश करना कठिन है, उस यमराजकी सभा में निर्भय हो
कर प्रवेश करता है ॥ ११ ॥ सुरूपा, अनेकरूपा तथा अनेक
प्रकारके रूप धारण करनेवाली मातारूप धेनु मेरे आस पास रहें
इस प्रकार सदा उच्चारण करना चाहिये ॥ १२ ॥ गोदानकी
समान अधिक पुण्य देनेवाला और कोई दान नहीं है, इसकी
समान फल देनेवाला और कोई पुण्य नहीं है, और गौओं से
अधिक उत्तम प्राणी इस लोकमें न कोई हुआ है और न होगा १३
और अपने चमड़ेसे, रोमसे, सींगोंसे, पूँछके बालोंसे, दुग्धसे

स्त्यभ्यधिकं ततः ॥ १४ ॥ यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावर-
जङ्गमम् । तान्धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम् ॥ १५ ॥
गुणवचनसमुच्चयैकदेशो नृवर मयैष गवाम्प्रकीर्तितस्ते । न च
परमिह दानमस्ति गोभ्यो भवति न चापि परायणं तथान्यत् १६
भीष्म उवाच । वरमिदमिति भूमिदो विचिंत्य प्रवरमृषेर्वचनं ततो
महात्मा । व्यसृजत् नियतात्मवान् द्विजेभ्यः सुबहु च गोधनमाप्त-
वांश्च लोकान् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे गोप्रदानिकेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

युधिष्ठिर उवाच । पवित्राणाम्पवित्रं यच्छिष्टं लोके च यद्भवेत् ।
पावनं परमं चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥ भीष्म उवाच । गावो
महार्थाः पुण्याश्च तारयन्ति च मानवान् । धारयन्ति प्रजाश्चेमा

और मेदसे धेनु यज्ञमें सहायता देती हैं अतः उनसे श्रेष्ठ
और कौन प्राणी होसकता है १४ जिस गौसे यह यह स्थावर-
जंगमात्मक जगत् व्याप्त होरहा है, उस भूत और भविष्यकालकी
मातारूप गौको मैं प्रणाम करता हूँ १५ हे राजन् ! मैंने तुमको
गौओंके गुणोंका एक भाग कह सुनाया कोई भी दान गौदानकी
समान उत्तम नहीं है, तथा उसके समान और कोई परोपकारी
प्राणी भी नहीं है १६ भीष्मजीने कहा, कि—भूमिदान देने वाला
वह महात्मा राजा सौदस ऋषिका उत्तम वचन सुनकर "यह
बहुत अच्छा है" यह विचार कर मनको नियममें रख कर ब्राह्म-
णोंको बहुतसी गौओंके धनका दान देकर परलोकमें गया १७
अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे पितामह ! जो पदार्थ पवित्र पदार्थों
में भी पवित्र हो और जगत्में जो उत्तम वस्तु हो तथा जो परम
पवित्र करनेवाला हो उसका मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ भीष्म-

हविषा पयसा तथा ॥ २ ॥ न हि पुण्यतमं किंचिद्गोभ्यो भरतसत्तम । एताः पुण्याः पवित्राश्च त्रिषु लोकेषु सत्तमाः ॥ ३ ॥ देवानामुपरिष्टाच्च गावः प्रतिवसन्ति वै । दत्वा चैतास्तारयते यान्ति स्वर्गं मनीषिणः ॥ ४ ॥ मान्धाता यौवनाश्वश्च ययातिर्नहुषस्तथा । गा वै ददन्तः सततं सहस्रशतसम्मिताः ॥ ५ ॥ गताः परमकं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् । अपि चात्र पुरा गीतं कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ ६ ॥ ऋषीणामुत्तमं धीमान् कृष्णद्वैपायनं शुकः । अभिवाद्याह्निककृतः शुचिः प्रयतमानसः ॥ ७ ॥ पितरं परिपप्रच्छ दृष्टलोकपरावरम् । को यज्ञः सर्वयज्ञानां वरिष्ठोभ्युपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ किं च कृत्वा परं स्थानं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ।

जीने कहा, कि-गौ उत्तम प्राणी हैं, पुण्यरूप हैं, मनुष्योंको तारनेवाली हैं, तथा इन प्रजाओंका घृतसे और दुग्धसे पोषण करती हैं ॥ २ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! कोई भी प्राणी गौओंसे अधिक पुण्यरूप नहीं है गौएँ त्रिलोकीमें पवित्र पुण्यरूप तथा श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ गौएँ देवताओंके ऊपरके लोकोंमें वसती हैं अतः गौओंका दान देनेवाला अपनी आत्माको तारता है तथा विद्वान् भी गौओंका दान देकर स्वर्गमें जाते हैं ॥ ४ ॥ राजा मान्धाता राजा यौवनाश्व राजा ययाति और राजा नहुष सदा लाखों गौओंका दान देते रहते थे ॥ ५ ॥ उसके फलसे वे देवताओंको भी अति दुर्लभ उत्तम लोकोंगए हैं, हे निर्दोष युधिष्ठिर ! इसविषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन कथा कहता हूँ ॥ ६ ॥ बुद्धिमान् शुकदेव आह्निक कर पवित्र हो मनको नियममें रख ऋषियोंमें उत्तम भूत और भविष्यत् कालको देखने वाले पिता कृष्णद्वैपायनसे कहने लगे, कि-सब यज्ञोंमें कौनसा यज्ञ उत्तम माना जाता है ।८। विद्वान् कौनसा कर्म करके उत्तमोत्तम स्थानमें जाते हैं, और हे विभो ! देवता किस पवित्र (वस्तुके प्रभाव) से स्वर्गमें जाते

केन देवाः पवित्रेण स्वर्गमश्नन्ति वा विभो ॥ ९ ॥ किं च यज्ञस्य यज्ञत्वं क्व च यज्ञः प्रतिष्ठितः । देवानामुत्तमं किं च किं च सत्रमितः परम् १० पवित्राणां पवित्रं च यत्तद्ब्रूहि पितर्मम । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः परमधर्मवित् । पुत्रायाकथयत् सर्वं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ११ ॥ व्यास उवाच । गावः प्रतिष्ठा भूतानां तथा गावः परायणम् । गावः पुण्याः पवित्राश्च गोधनं पावनं तथा ॥ १२ ॥ पूर्वमासन्नशृङ्गा वै गाव इत्यनुशुश्रुम । शृङ्गार्थे समुपासंत ताः किल प्रभुमव्ययम् ॥ १३ ॥ ततो ब्रह्मा तु गाः प्रायमुपविष्टाः समीक्ष्य ह । ईप्सितं प्रददौ ताभ्यो गोभ्यः प्रत्येकशः प्रभुः १४

हैं ? ९ यज्ञका यज्ञत्व क्या है ? यज्ञ कहाँ पर प्रतिष्ठित है ? देवताओंकी उत्तम वस्तु क्या है ? और कौनसा यज्ञ उत्तम माना जाता है ? १० तथा हे पिता ! पवित्र वस्तुओंमें भी कौनसी वस्तु परमपवित्र है ? यह मुझको बताइये (यह बात सुनकर) परमधर्मको जानने वाले व्यास हे राजेन्द्र ! अपने पुत्रको सब प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देने लगे ११ व्यासजीने कहा, कि गौएँ प्राणियोंकी परम आश्रयस्थान हैं, गौएँ पुण्यरूप और पवित्र हैं तथा धेनुरूपी धन पवित्र है १२ हमने सुना है, कि-पहिले गौओंके सींग नहीं थे, और सींग पानेके लिये गौओंने अविनाशी प्रभुकी उपासना की १३ तब ब्रह्माजीने धेनुओंको उपवास करते देख कर प्रत्येक गौको इष्ट वस्तु दी १४* हे पुत्र तदनन्तर उन गौओंमेंसे

* पहिले गौओंके खुर और सींग न थे, उनको पानेकी इच्छासे गौओंने यज्ञका आरंभ किया, तब उनके दशवें महीने खुर और सींग उत्पन्न होगए, यही बात एक श्रुतिमें लिखी है. "कि-गावो वै सत्रमासत शफान् शृंगाणि सिषासन्त्यस्तासां दशमे मासि शफाः शृङ्गाण्यजायन्त इति ।"

तासां शृङ्गाण्यजायन्त यस्या यादृङ्मनोगतम् । नानावर्णाः शृङ्गवंत्यस्ता व्यरोचन्त पुत्रक ॥ १५ ॥ ब्रह्मणा वरदत्तास्ता हव्यकव्यप्रदाः शुभाः । पुण्याः पवित्राः सुभगा दिव्यसंस्थानलक्षणाः ॥ १६ ॥ गावस्तेजो महद्दिव्यं गवां दानं प्रशस्यते । ये चैताः संप्रयच्छन्ति साधवो वीतमत्सराः ॥ १७ ॥ ते वै सुकृतिनः प्रोक्ताः सर्वदानप्रदाश्च ते । गवां लोकं तथा पुण्यमाप्नुवन्ति च तेऽनघ ॥ १८ ॥ यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः । पुष्पाणि च सुगन्धीनि दिव्यानि द्विजसत्तम ॥ १९ ॥ सर्वा मणिमयी भूमिः सर्वकांचनवालुका । सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पंका नीरजाः शुभाः ॥ २० ॥ रक्तोत्पलवनैश्चैव मणिखंडैर्हिरण्मयैः । तरुणादित्यसंकाशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः ॥२१ ॥ महार्हमणिपत्रैश्च कांचनप्रभकेसरैः । नीलोत्पलविमिश्रैश्च सरो-

जैसे सींग जिसको अच्छे लगते थे, वैसे ही सींग उनके उत्पन्न होगए तब वे अनेक वर्णकी गौएँ शोभा पाने लगीं ॥ १५ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने इन गौओंको वर दिया था, ये धेनु हव्य और कव्य देनेवाली हैं, शुभ पुण्यरूप पवित्र सद्भाग्यवती और दिव्य आकार वाली हैं॥१६॥धेनु महातेज वाली मानी जाती हैं, गोदान करना प्रशंसनीय कार्य है, जो सत्पुरुष मत्सरको त्याग कर गौओंका दान देता है वह पुण्यात्मा और सब दान देने वाला कहलाता है तथा हे निर्दोष पुत्र ! गौओंके पवित्र लोकमें जाता है ॥ १७ ॥ तहाँ पर मीठे फल वाले और दिव्य पुष्प और फलों वाले वृक्ष हैं और हे द्विजसत्तम ! तहाँ पर सुगंधित दिव्य पुष्प हैं ॥ १८ ॥ और तहाँ पर सुवर्णके रेते वाली मणिमयी भूमि है वह भूमि सब ऋतुओंमें स्पर्श सुख देती है और कींचड़ तथा धूल रहित है ॥२० ॥ और तहाँके जलाशय बालसूर्यकी समान रक्तकमलोंसे और मणिजटित सुवर्णकी भूमिवाले

भिर्महुर्पङ्कजैः ॥ २२ ॥ करवीरवनैः फुल्लैः सहस्रावर्तसंवृतैः । सन्तानकवनैः फुल्लैर्वृक्षैश्च समलंकृताः ॥ २३ ॥ निर्मलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाप्रभैः । उद्धूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥ २४ ॥ सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा द्रुमोत्तमैः । जातरूपमयैश्चान्यैर्हुताशनसमप्रभैः ॥ २५ ॥ सौवर्णा गिरयस्तत्र मणिरत्नशिलोच्चयाः। सर्वरत्नमयैर्भान्ति शृङ्गैश्चारुभिरुच्छ्रितैः २६ नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः । दिव्यगन्धरसैः पुष्पैः फलैश्च भरतर्षभ ॥ २७ ॥ रमन्ते पुण्यकर्माणस्तत्र नित्यं युधिष्ठिर । सर्वकामसमृद्धार्था निःशोका गतमन्यवः ॥ २८ ॥ विमा-

---

तटोंसे सुशोभित रहते हैं और तहाँकी नदियोंके निकले हुए किनारे महाप्रभ निर्मल मोतियोंकी और सुवर्णकी रेतीसे सुशोभित रहते हैं और तहाँके सरोवर बहुमूल्य मणियोंके पत्तोंवाले और सुवर्णकी प्रभाकी समान पराग वाले नीलकमलोंसे सुशोभित रहते हैं और वे प्रफुल्लित कनेरके, सहस्रावर्तके तथा सन्तानकके वृक्षोंसे शोभायमान रहते हैं ॥ २१–२४ ॥ और तहाँकी नदियोंके तट नाना प्रकारके वर्ण वाले रत्नोंसे और उत्तम वृक्षोंसे आच्छादित रहते हैं और अग्निकी समान कान्ति वाले सुवर्णसे उन नदियोंके तट सुशोभित रहते हैं ॥ २५ ॥ और तहाँ सुवर्णके पर्वत हैं उनके ऊपर मणि और रत्नोंकी शिलाएँ पड़ी हुई हैं वे पर्वत सब भाँतिके रत्नोंसे भरपूर तथा सुन्दर और उन्नत शिखरोंसे शोभायमान लगते हैं ॥ २६ ॥ और तहाँ पर जिनमें सदा पुष्प और फल आते रहते हैं ऐसे वृक्ष हैं उन पर पक्षी बैठे हुए हैं हे भरतर्षभ ! यह वृक्ष दिव्य गन्ध दिव्य रस दिव्य पुष्प तथा दिव्य फलोंसे व्याप्त हैं ॥ २७ ॥ हे युधिष्ठिर ! ऐसे प्रदेशमें सदा पुण्य करनेवाले पुरुष विहार करते रहते हैं वे पूर्णकाम और शोक तथा क्रोधरहित होते हैं ॥ २८ ॥ और

नेषु विचित्रेषु रमणीयेषु भारत । मोदन्ते पुण्यकर्माणो विहरंतो यशस्विनः ॥ २९ ॥ उपक्रीडन्ति तान् राजन् शुभाश्चाप्सरसां गणाः । एतांल्लोकानवाप्नोति गां दत्वा वै युधिष्ठिर ॥ ३० ॥ येषामधिपतिः पूषा मारुतो बलवान् बली । ऐश्वर्ये वरुणो राजा जातमात्रं युगन्धराः ॥ ३१ ॥ सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः । प्राजापत्यमिति ब्रह्मन् जपेन्नित्यं यतव्रतः ॥ ३२ ॥ गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः । यस्मै तुष्टाः प्रयच्छंति वरानपि सुदुर्लभान् ॥ ३३ ॥ द्रुह्येन्न मनसा वापि गोषु नित्यं सुखप्रदः । अर्चयेत सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत् ॥ ३४ ॥ दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाश्नुते । त्र्यहमुष्णं पिबेन्-

---

हे भरतवंशी राजन् ! तहाँ पुण्यकर्म करने वाले यशस्वी पुरुष विचित्र और रमणीय विमानोंमें आनन्द करते हैं ॥ २९ ॥ तथा हे राजन् ! अप्सराओंके माङ्गलिक मण्डल भी इन लोकोंमें विहार कर रहे हैं हे युधिष्ठिर ! ऐसे पवित्र लोक गोदान देनेसे मिलते हैं ॥ ३० ॥ जो पुरुष व्रत धारण करके प्रजापतिके सदा कीर्त्तन किये हुए गौके युगन्धरा सुरूपा बहुरूपा इन नाम मंत्रों का जप करता है वह पुरुष जिस लोकका अधिपति पूषा है जिस लोकका अधिपति बलवान् मरुत है और जिसका अधिपति ऐश्वर्यसम्पन्न वरुणदेव है ऐसे लोकमें जाता है ॥ ३१॥३२ ॥ जो पुरुष गौकी सेवा करता है और पूर्णरूपसे गौओंके पीछे२ जाता है उस पुरुषके ऊपर गौएँ प्रसन्न होजाती हैं और उसको अतिदुर्लभ वर देती हैं ॥ ३३ ॥ मनसे भी गौओंको सदा सुख देवे सदा गौओंका पूजन करे और उनको प्रणाम करे॥३४॥जो पुरुष इन्द्रियोंको नियममें रखता है मनमें प्रसन्न रहता है और गौओंका दान देता है उसको गौओंकी समान सुख मिलता है तीन दिन तक गरम गोमूत्रको पिये और तीन दिन तक गो

मूत्रं त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ॥ ३५ ॥ गवामुष्णं पयः पीत्वा त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत्। त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो भवेत्त्र्यहम् ३६ येन देवाः पवित्रेण भुंजते लोकमुत्तमम् । यत्पवित्रं पवित्राणां तद्घृतं शिरसा वहेत् ॥ ३७ ॥ घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् । घृतं प्राशेद्घृतं दद्याद्गवां पुष्टिं तथाश्नुते ॥ ३८ ॥ निर्हृतैश्च यवैर्गोभिर्मासं प्रशितयावकः । ब्रह्महत्यासमं पापं सर्वमेतेन शुद्ध्यते ॥ ३९ ॥ पराभवाच्च दैत्यानां देवैः शौचमिदं कृतम् । ते देवत्वमपि प्राप्ताः संसिद्धाश्च महाबलाः ॥ ४० ॥ गावः पवित्राः पुण्याश्च पावनं परमं महत् । ताश्च दत्वा द्विजातिभ्यो नरः स्वर्गमुपाश्नुते ॥ ४१ ॥ गवां मध्ये शुचिर्भूत्वा

दुग्धको गरम करके पिये ॥ ३५ ॥ तीन दिन तक गोदुग्धको गरम करके पीनेके पीछे तीन दिन तक गरम घृत पिये और तीन दिन गरम घृत पीनेके पीछे तीन दिन तक वायुका भक्षण करे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर जिस वस्तुसे देवता उत्तम लोकों का उपभोग करते हैं उस पवित्रसे भी पवित्र घृतको मस्तक पर धारण करे ॥ ३७ ॥ अग्निमें गोघृतका होम करे, गोघृतसे स्वस्तिवाचन करावे, गोघृतका प्राशन करे और गौके घीका दान देय ऐसा करनेसे गौओंकी समान सुख मिलता है॥ ३८॥गोबर मेंसे जो जौं निकलते हैं एक मास तक उनका भक्षण करने पर पुरुष ब्रह्महत्याकी समान सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ ३९ ॥ जब दैत्योंने देवताओंको हरा दिया था, तब देवताओंने यह प्रायश्चित्त कर फिर देवत्व पाया था और वे महासिद्धि पाकर बलवान् होगए थे ॥ ४० ॥ गौएँ पवित्र हैं, पुण्यरूप हैं, परमपावनकर हैं, मनुष्य इन गौओंका ब्राह्मणोंको दान देनेसे स्वर्गमें जाता है ॥ ४१ ॥ मनुष्य गौओंके मध्यमें पवित्र होकर मनमें गोमती मन्त्रका जप करे मनुष्य अग्निके सामने, गौओंके मध्यमें

गोमतीं मनसा जपेत्। पूताभिरद्भिराचम्य शुचिर्भवति निर्मलः ४२
अग्निमध्ये गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संसदि । विद्यावेदव्रत-
स्नाता ब्राह्मणाः पुण्यकर्मिणः ॥ ४३ ॥ अध्यापयेरन् शिष्यान्
गौ गोमतीं यज्ञसंमिताम् । त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा गोमतीं लभते
वरम् ॥ ४४ ॥ पुत्रकामश्च लभते पुत्रं धनमथापि वा । पति-
कामा च भर्तारं सर्वकामांश्च मानवः । गावस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति
सेविता गौ न संशयः ॥ ४५ ॥ एवमेता महाभागा यज्ञियाः सर्व-
कामदाः । रोहिण्य इति जानीहि नैताभ्यो विद्यते परम् ॥४६॥
इत्युक्तः स महातेजाः शुकः पित्रा महात्मना । पूजयामास गां
नित्यं तस्मात्त्वमपि पूजय ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रदानिके एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

और ब्राह्मणोंकी सभामें आचमन करनेसे शुद्ध होजाता है, पुण्य कर्म करने वाले विद्यास्नात और व्रतस्नात ब्राह्मण शिष्योंको यज्ञकी समान गोमती नामक मन्त्रका उपदेश दें, जो मनुष्य तीन रात उपवास करके गोमती नामक मंत्रका पाठ करता है, उसको ऋचाके कथनानुसार वर मिलता है ॥ ४२-४४ ॥ (इस व्रत को करने पर) पुत्राभिलाषी पुत्र पाता है, धनाभिलाषी धन पाता है और पतिकी अभिलाषा करने वाली स्त्री पतिको पाती है, इस प्रकार धेनुएँ सन्तुष्ट होने पर सब वस्तुयें देती हैं ।४५। इस प्रकार ये महाभाग यज्ञोपयोगी धेनु सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली हैं और तू इनसे अधिक और किसी वस्तुको श्रेष्ठ न समझ ४६ इस प्रकार महात्मा पिता व्यासजीने महातेजस्वी शुकसे कहा तब शुक सदा गोपूजन करने लगे अतः तू भी गौओं की पूजा कर । ४७ ॥ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ८१

युधिष्ठिर उवाच । मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम्। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं संशयोऽत्र पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । गोभिर्नृपेह संवादं श्रिया भरतसत्तम ॥२॥ श्रीः कृत्वेह वपुः कांतं गोमध्येषु विवेश ह । गावोऽथ विस्मितास्तस्या दृष्ट्वा रूपस्य संपदम् ॥३॥ गाव ऊचुः। कासि देवि कुतो वा त्वं रूपेणाप्रतिमा भुवि । विस्मिताः स्म महाभागे तव रूपस्य सम्पदा ॥ ४ ॥ इच्छाम त्वां वयं ज्ञातुं का त्वं क्व च गमिष्यसि । तत्त्वेन वरवर्णाभे सर्वमेतद्ब्रवीहि नः ॥ ५ ॥ श्रीरुवाच । लोककान्तास्मि भद्रं वः श्रीर्नामाहं परिश्रुता । मया दैत्याः परित्यक्ता विनष्टाः शाश्वतीः समाः ॥६॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे पितामह! मैंने सुना है, कि–गोबरमें लक्ष्मीका निवास रहता है, हे पितामह! मुझे इस विषयमें सन्देह है, अतः आप इस विषयको कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे भरतसत्तम! इस विषयमें लक्ष्मी और गौओंमें हुए एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण इस प्रकार दिया करते हैं, कि–॥ २ ॥ एक समय लक्ष्मी सुन्दर शरीर धारण करके गौओंके पास पहुँची, गौएँ लक्ष्मीकी रूपसम्पत्तिको देख विस्मित हो लक्ष्मीसे कहने लगीं ॥ ३ ॥ गौओंने कहा, कि–हे देवी! आप कौन हैं?आप कहाँसे आई हैं?पृथ्वीमें आपका रूप अनुपमेय है, हे महाभाग्यशालिनी! हम आपके रूपको देखकर विस्मित होगई हैं और आप कौन हैं? और कहाँ जावेंगी? यह जानना चाहती हैं; हे सुन्दरवर्णवाली! यह सब बात आप यथार्थ बताइये ॥४॥५॥ लक्ष्मीने कहा, कि–तुम्हारा कल्याण हो! सब संसार मेरी इच्छा करता है,मैं सर्वत्र लक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हूँ, मैंने दैत्योंको त्याग दिया है अत एव वे बहुत समय तक दुःखी रहेंगे ॥६॥ और मैंने इन्द्र सूर्य सोम विष्णु जल और अग्निकी

मयाभिपन्ना देवाश्च मोदन्ते शाश्वतीः समाः । इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च विष्णुरापोग्निरेव च ॥७॥ मयाभिपन्नाः सिद्ध्यन्ते ऋषयो देवतास्तथा । यान्नाविशाम्यहं गावस्ते विनश्यन्ति सर्वशः ॥८॥ धर्मश्चार्थश्च कामश्च मया जुष्टाः सुखान्विताः । एवंप्रभावां मां गावो विजानीत सुखप्रदाः ॥ ९ ॥ इच्छामि चापि युष्मासु वस्तुं सर्वासु नित्यदा । आगत्य प्रार्थये युष्मान्छ्रीजुष्टा भवताथ वै १० गाव ऊचुः । अध्रुवा चपला च त्वं सामान्या बहुभिः सह । न त्वामिच्छाम भद्रं ते गम्यतां यत्र रंस्यसे ॥ ११ ॥ वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाद्य वै । यथेष्टं गम्यतां तत्र कृतकार्या वयं त्वया ॥ १२ ॥ श्रीरुवाच । किमेतद्वः क्षमं गावो यन्मां नेहा-

---

समान देवताओंको स्वीकार कर लिया है, इससे वह बहुत समय से सुख भोग रहे हैं ॥ ७ ॥ मेरा वास होने पर ही देवता और ऋषि अपना कार्य कर सकते हैं, परन्तु हे गौओं ! मैं जिनमें स्थिर नहीं रहती हूँ वे पूर्णरीतिसे नष्ट होजाते हैं ॥ ८ ॥ धर्म, अर्थ और काम मेरा आवेश होने पर ही सुख देसकते हैं, हे सुखद गौओं ! यह मेरा प्रभाव है, इसको तुम समझ लो ॥ ९ ॥ अब मैं तुम सबमें सदा वास करना चाहती हूँ, इस लिये ही मैं तुम्हारे पास आकर तुमसे प्रार्थना करती हूँ, कि-तुम लक्ष्मीसे सुसम्पन्न हो ॥ १० ॥ गौओंने कहा, कि-तू अध्रुव है, चपल है, बहुतसे प्राणियोंके साथ एकसा सम्बन्ध रखती है, अतः हम तुझको अपने साथ रखना नहीं चाहतीं, तेरा कल्याण हो, और तू जहाँ रमण करना चाहती हो तहाँ रमण कर ॥ ११ ॥ हम स्वयं ही शरीरमें हृष्ट पुष्ट हैं अतः हमें तुझसे क्या प्रयोजन ? तेरी जहाँ इच्छा हो चली जा (तूने हमारे प्रश्नका उत्तर देकर) हमको कृतार्थ किया है ॥ १२ ॥ लक्ष्मीने कहा, कि-हे गौओं ! तुम मुझको अभिनन्दन नहीं देतीं, ऐसा करना क्या तुमको उचित है?

भिनन्दथ। न मां संप्रतिगृह्णीध्वं कस्माद्वै दुर्लभां सतीम् ॥१३॥
सत्यं च लोकवादोऽयं लोके चरति सुव्रताः। स्वयं प्राप्ते परिभवो
भवतीति विनिश्चयः ॥ १४ ॥ महदुग्रं तपः कृत्वा मां निषेवन्ति
मानवाः । देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥१५॥ प्रभाव
एष वो गावः प्रतिगृह्णीत मामिह । नावमन्या ह्यहं सौम्यास्त्रैलोक्ये
सचराचरे ॥ १६ ॥ गाव ऊचुः । नावमन्यामहे देवि न त्वां
परिभवामहे । अध्रुवा चलचित्तासि ततस्त्वां वर्जयामहे ॥ १७ ॥
बहुना च किमुक्तेन गम्यतां यत्र वांछसि । वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः
किमस्माकं त्वयाऽनघे ॥ १८ ॥ श्रीरुवाच । अवज्ञाता भविष्यामि
सर्वलोकस्य मानदाः । प्रत्याख्यानेन युष्माकं प्रसादः क्रियतां
मम ॥ १९ ॥ महाभागा भवन्त्यो वै शरण्याः शरणागताम् ।

मैं दुर्लभ और सती हूँ तब भी तुम मुझको क्यों ग्रहण नहीं करती ॥ १३ ॥ हे सदाचरणी गौओं ! यह लोकोक्ति ठीक ही है, कि-जो अपने आप आता है उसका तिरस्कार होता है १४ मनुष्य देवता दानव गन्धर्व, पिशाच सर्प और राक्षस बड़ा भारी तप करके मेरी सेवा करते हैं ॥ १५ ॥ तुममें (भी) ऐसा (ही) प्रभाव है, अतः तुम मुझको ग्रहण करो, हे शान्तात्मा गौओं ! मैं तो सचराचर त्रिलोकीमें भी आपका अपमान नहीं करती हूँ, तब तुम मेरा अपमान क्यों करती हो ॥ १६ ॥ गौओंने कहा, कि-हे देवि ! हम तेरा अपमान नहीं करतीं तथा तेरा पराभव करना भी नहीं चाहतीं, परन्तु तू अनित्य है और चञ्चल चित्त वाली है, अतः हम तुझे त्यागती हैं १७ अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, जहाँ तेरी इच्छा हो तहाँ तू चली जा, हम सब शरीरमें हृष्ट पुष्ट हैं, हे निर्दोष लक्ष्मी ! हमारा तुझसे क्या प्रयोजन ? १८ लक्ष्मीने कहा, कि-हे मानद गौओं ! तुम मेरा अपमान करोगी, तो सारा जगत् मेरा अपमान करेगा, अतः तुम

परित्रायंतु मां नित्यं भजमानामनिंदिताम् ॥ २० ॥ माननामह-
मिच्छामि भवत्यः सततं शिवाः । अप्येकांगेष्वधो वस्तुमिच्छामि
च सुकुत्सिते ॥ २१ ॥ न वोऽस्ति कुत्सितं किंचिदंगेष्वालक्ष्यते-
नघाः । पुण्याः पवित्राः सुभगा ममादेशं प्रयच्छथ ॥२२॥ वसेयं
यत्र वो देहे तन्मे व्याख्यातुमर्हथ । एवमुक्तास्ततो गावः शुभाः
करुणवत्सलाः। सम्मंत्र्य सहिताः सर्वाः श्रियमूचुर्नराधिप॥२३॥
अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि । शकृन्मूत्रे निवस
त्वं पुण्यमेतद्धि नः शुभे ॥ २४ ॥ श्रीरुवाच । दिष्ट्या प्रसादो
युष्माभिः कृतो मेऽनुग्रहात्मकः । एवं भवतु भद्रं वः पूजितास्मि
सुखप्रदाः ॥ २५ ॥ एवं कृत्वा तु समयं श्रीर्गोभिः सह भारत ।

मुझ पर कृपा करो १९ तुम भाग्यशालिनी शरणागतका पालन करने वाली हो, अतः मैं तुम्हारी शरणमें आई हूँ नित्य तुम्हारी सेवा कर रही हूँ और मैं निर्दोष हूँ अतः तुम मेरी रक्षा करो२० तुम सदा कल्याण करनेवाली हो अतः मैं तुमसे सन्मान पाना चाहती हूँ, मैं तुम्हारे कुत्सितसे कुत्सित अङ्गमें भी रहना चाहती हूँ. परन्तु हे निर्दोष गौओं ! मुझे तुम्हारा कोई अङ्ग कुत्सित नहीं मालूम होता, तुम पुण्यमयी पवित्र और उत्तम भाग्यशालिनी हो अतः तुम मुझको आज्ञा दो ॥२१॥२२॥ मैं तुम्हारे शरीरमें कहाँ निवास करूँ, यह तुम मुझे बताओ, इस प्रकार गौओंने लक्ष्मीसे कहा, तब माङ्गलिक, दयालु और वत्सला गौएँ सब एकत्रित होगईं और हे राजन् ! परस्पर विचार करके लक्ष्मीसे कहने लगीं २३ हे यशस्विनि ! हमको तेरा सन्मान अवश्य करना चाहिये अतः हे कल्याणि ! तू हमारे गोबर और मूत्रमें निवास कर, क्योंकि हमारी यह वस्तु पवित्र है. २४ लक्ष्मीने कहा, कि तुमने मुझे यह अनुग्रहरूप वर दिया है, हे सुख देने वाली गौओं ! तुमने मेरा सत्कार किया है अतः तुम्हारा कल्याण हो २५ हे

पश्यन्तीनां ततस्तासां तत्रैवान्तरधीयत ॥ २६ ॥ एवं गोशकृतः पुत्र माहात्म्यं ते तु वर्णितम् । माहात्म्यं च गवां भूयः श्रूयतां गदतो मम ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्रीगोसंवादो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

भीष्म उवाच । ये च गां संप्रयच्छन्ति हुतशिष्टाशिनश्च ये । तेषां सत्राणि यज्ञाश्च नित्यमेव युधिष्ठिर ॥१॥ ऋते दधिघृतेनेह न यज्ञः संप्रवर्तते । तेन यज्ञस्य यज्ञत्वमतो मूलं च कथ्यते ॥२॥ दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते । गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥ पुष्ट्यर्थमेताः सेवेत शान्त्यर्थमपि चैव ह । पयोदधिघृतं चासां सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ४ ॥ गावस्तेजः परं प्रोक्तमिह लोके परत्र च । न गोभ्यः परमं किंचित्पवित्रं भरत-

---

भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार लक्ष्मी गौओंके साथ प्रतिज्ञा करके गौओंके देखते ही देखते अदृश्य हो गई २६ हे पुत्र ! इस भाँति मैंने तुमसे गौओंका और गोबरका माहात्म्य वर्णन किया अब मैं फिर गौओंका माहात्म्य सुनाता हूँ, सुन २७ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ८२

भीष्मजीने कहा, कि-हे राजा युधिष्ठिर ! जो गौओंका दान देते हैं और जो अग्निमें होम करके बचे हुए अन्नका आहार करते हैं उनको सदा सत्र और यज्ञ करने वाला समझना चाहिये १ दूध और घीके बिना यज्ञ सिद्ध नहीं होसकता, इसलिये ही मैं इनको यज्ञका मूल कहता हूँ २ सब दानोंमें गोदान श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि-गौएँ श्रेष्ठ और पवित्र हैं और पवित्र करनेवाली उत्तम वस्तु हैं ३ इन गौओं का पुष्टि पानेके लिये और शान्ति पानेके लिये सेवन करे, इन गौओंका दुग्ध, दही और घी सब पापोंमेंसे मुक्त करने वाला है ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस

र्षभ ॥ ५ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पितामहस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ६ ॥ पराभूतेषु दैत्येषु शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः । प्रजाः समुदिताः सर्वाः सत्यधर्मपरायणाः ॥७॥ अथर्षयः सगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः । देवासुरसुपर्णाश्च प्रजानां पतयस्तथा ॥८॥ पर्युपासन्त कौन्तेय कदाचिद्वै पितामहम् । नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ ९ ॥ दिव्यतानेषु गायन्तः पर्युपासन्त तं प्रभुम् । तत्र दिव्यानि पुष्पाणि प्रावहत् पवनस्तदा १० आजह्रुर्ऋतवश्चापि सुगन्धीनि पृथक् पृथक् । तस्मिन् देवसमावाये सर्वभूतसमागमे ॥११॥ दिव्यवादित्रसंघुष्टे दिव्यस्त्रीचारणावृते । इन्द्रः पप्रच्छ देवेशमभिवाद्य प्रणम्य च ॥ १२ ॥ देवानां भगवन्

लोकमें और परलोकमें गौएँ परमतेजोरूप मानी जाती हैं, कोई भी प्राणी गौसे अधिक पवित्र नहीं है ॥५॥ इस विषयमेंभी पितामह ब्रह्माजी और इन्द्रके सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण इस प्रकार दिया करते हैं, कि—॥ ६ ॥ दैत्योंके पराजित होने पर सत्यधर्मपरायण तीनों लोकोंका स्वामी इन्द्र और और सब प्रजाएँ परम प्रसन्न हुईं ॥ ७ ॥ फिर हे कौन्तेय ! एक दिन ऋषि गंधर्व, किन्नर, सूर्य, राक्षस, देवता, असुर, सुपर्ण तथा प्रजापति ब्रह्माजीकी सेवा कर रहे थे और नारद, पर्वत विश्वावसु तथा हहाहुहू नामक गंधर्व दिव्यतानके साथ गाकर प्रभु ब्रह्माजीकी उपासना कर रहे थे,उस समय वहाँ पवन दिव्य पुष्पोंको उड़ा लाया ॥ ८-१० ॥ और भिन्न२ऋतुएँ भी नाना प्रकारके सुगंधित पुष्पोंकी भेंट देरहीं थीं,इस प्रकार वहाँ पर देवताओंका तथा सब प्राणियोंका सम्मेलन होरहा था ॥ ११ ॥ दिव्य बाजे बज रहे थे और दिव्य स्त्री तथा चारणोंकी भीड़ होरही थी, इतनेमें ही देवताओंके स्वामी इन्द्रने ब्रह्माजीको प्रणाम करके बूझा कि—॥ १२ ॥ हे भगवन् ! हे पितामह ! मैं यह

कस्माल्लोकेशानां पितामह । उपरिष्टाद्गवां लोक एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १३ ॥ किंतपो ब्रह्मचर्यं वा कृतं गोभिर्महेश्वर । देवानामुपरिष्टाद्यद्वसन्त्यरजसः सुखम् ॥१४॥ ततः प्रोवाच ब्रह्मा तं शक्रं बलनिषूदनम् । अवज्ञातास्त्वया नित्यं गावो बलनिषूदन ॥ १५ ॥ तेन त्वमासां माहात्म्यं न वेत्सि शृणु यत् प्रभो । गवां प्रभावं परमं माहात्म्यं च सुरर्षभ ॥ १६ ॥ यज्ञांगं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव । एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथंचन ॥ १७ ॥ धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा ॥एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥ १८ ॥ जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च । ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥१९॥ पयोदधिघृतं चैव पुण्याश्चैताः सुराधिप । वहन्ति

जानना चाहता हूँ, कि-गौओंका लोक लोकपालोंके लोकोंसे भी ऊपर क्यों है ? ॥१३॥ हे महेश्वर ! गौओंने ऐसा क्या तप किया है और कितने ब्रह्मचर्यका पालन किया है, कि वे निर्दोष गौएँ देवताओंके ऊपर आनन्दपूर्वक निवास करती हैं ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजीने बलदैत्यका नाश करने वाले इन्द्रसे कहा, कि-हे बल दैत्यको मारनेवाले इन्द्र ! तू सदा गौओंका अपमान करता रहता है ॥ १५ ॥ इसीलिये तुझको गौओंका माहात्म्य विदित नहीं है,हे प्रभो ! मैं तुझसे गौओंका जैसे प्रभाव और माहात्म्य है उसका वर्णन करता हूँ, हे देवराज ! तू उसको सुन ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! गौओंको यज्ञका अंग और यज्ञ कहा है;इनके बिना यज्ञ किसी प्रकार नहीं होसकता ॥ १७ ॥ ये गौएँ अपने दुग्ध और घृतसे प्रजाकी रक्षा करती हैं और इनके पुत्र (बैल) भी खेतीको चलाते हैं॥१८॥तब नाना प्रकारके बीज और धान्य उत्पन्न होते हैं और उनसे ही यज्ञ होते हैं तथा सर्वत्र हव्य तथा कव्य प्रवर्तित रहते हैं हे देवताओंके स्वामी ! ये पवित्र गौएँ दूध, दही तथा

विविधान् भारान् क्षुत्तृषापरिपीडिताः ॥ २० ॥ मुनींश्च धारयन्तीह प्रजाश्चैवापि कर्मणा । वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च ॥ २१ ॥ उपरिष्टात्ततोऽस्माकं वसन्त्येताः सदैव हि । एवं ते कारणं शक्र निवासकृतमद्य वै ॥ २२ ॥ गवां देवोपरिष्टाद्धि समाख्यातं शतक्रतो । एता हि वरदत्ताश्च वरदाश्चापि वासव ॥ २३ ॥ सुरभ्यः पुण्यकर्मिण्यः पावनाः शुभलक्षणाः । यदर्थं गां गताश्चैव सुरभ्यः सुरसत्तम ॥ २४ ॥ तच्च मे शृणु कार्त्स्न्येन वदतो बलसूदन । पुरा देवयुगे तात देवेन्द्रेषु महात्मसु ॥ २५ ॥ त्रींल्लोकाननुशासत्सु विष्णौ गर्भत्वमानते । अदित्यास्तप्यमानायास्तपो घोरं सुदुश्चरम् ॥ २६ ॥ पुत्रार्थममरश्रेष्ठ पादेनैकेन नित्यदा । तां तु दृष्ट्वा महादेवीं तप्यमानां महत्तपः ॥२७॥ दक्षस्य दुहिता

घृत देती हैं और इनके पुत्र भी क्षुधा और तृषासे पीड़ित होने पर भी अनेक प्रकारके बोझेको उठाते रहते हैं ॥ २० ॥ और अपने (कृषिरूप) कर्मसे मुनियोंका और प्रजाओंका पालन करते रहते हैं, हे वासव ! गौएँ पवित्र कर्म करने वाली हैं और सरल व्यवहार करती रहती हैं ॥ २१ ॥ इन कारणोंसे ही गौएँ सदा हमारे ऊपर निवास करती हैं हे शतक्रतो ! इस प्रकार मैंने तुझसे गौओंके ऊपर निवास करनेका कारण बताया; हे वासव ! गौओंने वर पाया है और गौएँ वरदान भी देती हैं ॥ २२॥२३ ॥ गौएँ पवित्र कर्म करने वाली शुभ लक्षणों वाली तथा प्राणियोंको पवित्र करने वाली हैं, हे बलनिषूदन इन्द्र ! ये गौएँ जिस कारणसे पृथ्वी पर गई हैं, उस सब कारणको भी तू मेरे कहने पर पूर्णरीतिसे सुन, हे तात ! पहिले सत्ययुगमें महात्मा देवता तीनों लोकों पर राज्य करते थे, उस समय हे देवश्रेष्ठ ! अदिति एक पैरसे खड़ी होकर पुत्रके लिये अतिकठिन तप कर कर कर रही थी, उस समय विष्णु उसके गर्भमें विद्य-

देवी सुरभी नाम नामतः। अतप्यत तपो घोरं हृष्टा धर्मपरायणा २८
कैलासशिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते । व्यतिष्ठदेकपादेन परमं
योगमास्थिता २६ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । संतप्ता-
स्तस्या तस्या देवाः सर्षिमहोरगाः ३० तत्र गत्वा मया सार्धं पर्यु-
पासंत तां शुभाम् । अथाहमब्रुवं तत्र देवीं तां तपसान्विताम् ३१
किमर्थं तप्यसे देवि तपो घोरमनिन्दिते । प्रीतस्तेऽहं महाभागे
तपसानेन शोभने ॥ ३२ ॥ वरयस्व वरं देवि दातास्मीति पुर-
न्दर ॥३३॥ सुरभ्युवाच । वरेण भगवन्मह्यं कृतं लोकपितामह ।
एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ ॥ ३४ ॥ ब्रह्मोवाच ।
तामेवं ब्रुवतीं देवीं सुरभिं त्रिदशेश्वर । प्रत्युब्रुवं यद्देवेन्द्र तन्निबोध
शचीपते ॥ ३५ ॥ अलोभकाम्यया देवि तपसा च शुभानने ।

मान थे, उस महादेवीको बड़ा भारी तप करते हुए देखकर
धर्ममें परायण रहने वाली दक्षकी पुत्री देवी सुरभि हर्षमें भर
कर स्वयं भी घोर तप करने लगी थी ॥ २४–२८॥ वह देवता
और गन्धर्वोंसे सेवित कैलासपर्वतके रमणीय शिखर पर जाकर
परमयोगको धारण कर ग्यारह सहस्र वर्ष तक एक पैरसे खड़ी
रही, तब देवता, ऋषि और महासर्प उसके तपसे संतप्त होने
लगे २६॥३०तब वे मेरे साथ तहाँ जाकर उस कल्याणीकी सेवामें
उपस्थित हुए,उस समय मैंने उस तप करती हुई देवीसे कहा,
कि–॥३१॥हे अनिन्दित देवी ! तू किस लिये घोर तप कर रही
है,हे महाभागे ! हे शोभने ! मैं तेरे इस तपसे प्रसन्न होगया हूँ ३२
हे देवि ! तू वर माँग, इसप्रकार हे पुरन्दर ! मैंने उससे कहा
था ॥३३॥ हे लोकपितामह ! मैं वरका क्या करूँगी ? हे अनघ !
आप प्रसन्न होगए, यही मुझको बड़ा भारी वर मिलगया ३४
ब्रह्माजीने कहा, कि–हे त्रिदशेश्वर ! देवी सुरभि इस प्रकार कह
रही थी, उस समय हे शचीपति देवेन्द्र ! मैंने उससे जो बात

प्रसन्नोऽहं वरं तस्मादमरत्वं ददामि ते ॥ ३६ ॥ त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्टान्निवत्स्यति । मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः संभविष्यति ॥ ३७ ॥ मानुषेषु च कुर्वाणाः प्रजाः कर्म शुभास्तव । निवत्स्यन्ति महाभागे सर्वा दुहितरश्च ते ॥३८॥ मनसा चिंतिता भोगास्त्वया वै दिव्यमानुषाः । यच्च सर्वं सुखं देवि तत्ते संपत्स्यते शुभे ॥ ३९ ॥ तस्या लोकाः सहस्राक्ष सर्वकामसमन्विताः । न तत्र क्रमते मृत्युर्न जरा न च पावकः ॥ ४० ॥ न दैवं नाशुभं किंचिद्विद्यते तत्र वासव । तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च ॥४१॥ विमानानि सुयुक्तानि कामगानि च वासव । ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन च दमेन च ॥ ४२ ॥

कही थी, उसको तू सुन ॥ ३५ ॥ मैंने कहा, कि हे देवि ! हे शुभवदने ! मैं तेरे लोभरहित और निष्काम तपसे प्रसन्न हो तुझको अमर होनेका वरदान देता हूँ ॥ ३६ ॥ तू तीनों लोकों के ऊपर निवास करेगी और मेरे प्रसादसे तेरा लोक गोलोक नामसे प्रसिद्ध होगा॥३७॥ हे महाभागे ! तेरी सब प्रजा मनुष्यलोकमें शुभ कर्म करेगी और तेरी सब पुत्रियें गोलोकमें निवास करेंगी ॥ ३८ ॥ और हे देवि ! तू जिन दिव्य और मानुषी भोगोंका मनमें विचार करेगी वे सब भोगसुख तुझको मिल जावेंगे ॥ ३९ ॥ हे सहस्राक्ष ! सुरभिके लोकमें सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं, वहां पर न मृत्युका वश चलता है, न तहाँ बुढ़ापा अपना बल दिखाता है और न तहाँ पर अग्नि दुःख देता है ४० हे वासव ! तहाँ किसी प्रकारका अशुभ कर्म प्राणियोंको कष्ट नहीं देता है, तहाँ पर दिव्य बगीचे और दिव्य भवन हैं ॥४१॥ और हे इन्द्र ! तहाँ अच्छी प्रकार जुते हुए इच्छाचारी विमान हैं हे कमलनयन ! यह गोलोक ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे, तप करनेसे, सत्य और दमका पालन करनेसे, नाना प्रकारके दान

दानैश्च विविधैः पुण्यैस्तथा तीर्थानुसेवनात्। तपसा महता चैव सुकृतेन च कर्मणा ॥ ४३ ॥ शक्यः समासादयितुं गोलोकः पुष्करेक्षण। एतत्ते सर्वमाख्यातं मया शक्रानुपृच्छते ॥ ४४ ॥ न ते परिभवः कार्यो गवामसुरसूदन ॥ ४५ ॥ भीष्म उवाच। एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षः पूजयामास नित्यदा। गाश्चक्रे बहुमानं च तासु नित्यं युधिष्ठिर ॥ ४६ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं पावनं च महाद्युते। पवित्रं परमं चापि गवां माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ कीर्तितं पुरुषव्याघ्र सर्वपापविमोचनम्। य इदं कथयेन्नित्यं ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥ हव्यकव्येषु यज्ञेषु पितृकार्येषु चैव ह। सार्वकामिकमक्षय्यं पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४९ ॥ गोषु भक्तश्च लभते यद्यदिच्छति मानवः। स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः ॥ ५० ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नु-

देनेसे, पुण्य करनेसे और तीर्थयात्रा करनेसे, बड़ा भारी तप करनेसे और पुण्यमय कर्म करसेने मिल सकते हैं हे शक्र! तेरे बूझने पर मैंने तुझसे यह सब बात कही ॥४२-४४॥ हे असुर-निकन्दन! तुझको गौओंका पराभव न करना चाहिये ॥४५॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर! यह कथा सुनकर सहस्र नेत्रों वाला इन्द्र गौओंकी पूजा करने लगा और गौओंको परम माननीय समझने लगा ॥ ४६ ॥ हे महाद्युते! मैंने तुझसे यह परम पवित्र उत्तम गौमहात्म्य कहा हे पुरुषव्याघ्र! यह माहात्म्य सब पापोंसे छुड़ाने वाला है, जो पुरुष मनको सावधान रखकर हव्य और कव्य देनेके समय यज्ञोंमें और श्राद्धोंमें ब्राह्मणोंको सुनाता है उसके पितर जिन२ कामोंकी कामना करते हैं वे उनकी कामनाएँ अक्षय रीतिसे पूर्ण होती हैं ॥ ४७-४९ ॥ गौओंमें भक्ति रखने वाला मनुष्य जो२ चाहता है, सो २ पाता है और स्त्रियें भी गौओंकी भक्ति करके अपनी वाञ्छनीय वस्तु

यात् । धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात् सुखम् । न किंचिद्
दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे गोलोकवर्णने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

युधिष्ठिर उवाच । उक्तं पितामहेनेदं गवां दानमनुत्तमम् ।
विशेषेण नरेन्द्राणामिह धर्ममवेक्षताम् ॥ १ ॥ राज्यं हि सततं
दुःखं दुर्धरं चाकृतात्मभिः । भूयिष्ठं च नरेन्द्राणां विद्यते न शुभा
गतिः ॥ २ ॥ पूयन्ते तत्र नियतं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम् । सर्वे
च कथिता धर्मास्त्वया मे कुरुनन्दन ॥ ३ ॥ एवमेव गवामुक्तं
प्रदानं ते नृगेण ह । ऋषिणा नाचिकेतेन पूर्वमेव निदर्शितम् ।४।

पाती हैं ॥ ५० ॥ (गोभक्ति करनेसे) पुत्र चाहने वाला पुत्र पाता है, कन्याभिलाषी कन्या पाता है, धनाभिलाषी धन पाता है और धर्माभिलाषी धर्मको पाता है, विद्यार्थी विद्या पाता है, और सुख चाहने वालोंको सुख मिलता है, हे भारत ! गोभक्त को कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है ॥५१॥ ५२॥ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ छ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्मपितामह ! ब्रह्माजीने गौओंके दानको सब दानोंमें उत्तम कहा है और धर्मद्रष्टा राजाओंके लिये तो उन्होंने विशेषतः गौदानका वर्णन किया है ॥ १ ॥ राज्य सदा दुःख देने वाला है और चतुरतारहित पुरुष उसको कठिनतासे चला सकते हैं अतएव राजाओंको अधिकतर शुभगति नहीं मिलती है ॥ २ ॥ जो राजे सदा पृथ्वीका दान देते रहते हैं, वे पवित्र रहते हैं, हे कुरुनन्दन ! आपने मुझसे संपूर्ण धर्मों का वर्णन किया ॥ ३ ॥ इसी प्रकार नृगका गोदान कहा और ऋषि नाचिकेतने भी यह वृत्तान्त पहिले ही कहा है ॥४॥

वेदोपनिषदश्चैव सर्वकर्मसु दक्षिणाः । सर्वक्रतुषु चोद्दिष्टं भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम् ॥५॥ तत्र श्रुतिस्तु परमा सुवर्णं दक्षिणेति वै । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पितामह यथातथम् ॥ ६ ॥ किं सुवर्णं कथं जातं कस्मिन् काले किमात्मकम् । किं दैवं किंफलं चैव कस्माच्च परमुच्यते ॥ ७ ॥ कस्माद्दानं सुवर्णस्य पूजयन्ति मनीषिणः । कस्माच्च दक्षिणार्थं तद्यज्ञकर्मसु शस्यते ॥ ८ ॥ कस्माच्च पावनं श्रेष्ठं भूमेर्गोभ्यश्च काञ्चनम् । परमं दक्षिणार्थे च तद्ब्रवीहि पितामह ॥९॥ भीष्म उवाच । शृणु राजन्नवहितो बहुकारणविस्तरम् । जातरूपसमुत्पत्तिमनुभूतं च यन्मया ॥१०॥ पिता मम महातेजाः शान्तनुर्निधनं गतः । तस्य दित्सुरहं श्राद्धं गङ्गाद्वारमुपागमम् ११

वेदोंमें और उपनिषदोंमें लिखा है, कि-सब कर्मोंमें और सब यज्ञोंमें भूमिका, गौओंका, और सुवर्णका दान देना चाहिये ५ श्रुतिमेंभी कहा है, कि-सुवर्णकी दक्षिणा उत्तम है, हे पितामह ! इस बातको मैं आपसे यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ सुवर्ण ऐसा क्या पदार्थ है ? उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है ? किस समय हुई है, उसका रूप क्या है ? सुवर्णका देवता कौन है ? सुवर्णके दान करनेका क्या फल है ? सुवर्ण किस लिये उत्तम माना जाता है ? ॥ ७ ॥ विद्वान् सुवर्णकी पूजा क्यों करते हैं ? और यज्ञोंमें सुवर्णकी दक्षिणा क्यों प्रशंसित मानीजाती है ? हे पितामह ! यह सब बात आप मुझसे कहिये ॥ ८ ॥ और सुवर्ण भूमि तथा गौओंसे भी श्रेष्ठ क्यों माना जाता है ? तथा दक्षिणाओंमें भी उत्तम क्यों माना जाता है ? यह मुझसे कहिये ॥ ९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! तू सावधान होकर इनके बहुतसे कारणोंको विस्तारके साथ सुन सुवर्णकी उत्पत्तिके विषयमें जो कुछ मुझे अनुभव है, उसको मैं कहता हूँ १० जब मेरे महातेजस्वी पिता शान्तनु मर गए तब उनका श्राद्ध

तत्रागम्य पितुः पुत्र श्राद्धकर्म समारभम् । माता मे जाह्नवी चात्र साहाय्यमकरोत्तदा ॥ १२ ॥ ततोऽग्रतस्ततः सिद्धानुपवेश्य बहूनृषीन् । तोयप्रदानात् प्रभृति कार्याण्यहमथारभम् ॥ १३ ॥ तत्समाप्य यथोद्दिष्टं पूर्वकर्मसमाहितः । दातुं निर्वपणं सम्यग्यथावदहमारभम् ॥१४॥ ततस्तं दर्भविन्यासं भित्त्वा सुरुचिरांगदः । प्रलम्बाभरणो बाहुरुदतिष्ठद्विशाम्पते ॥ १५ ॥ तमुत्थितमहं दृष्ट्वा परं विस्मयमागमम् । प्रतिग्रहीता साक्षान्मे पितेति भरतर्षभ १६ ततो मे पुनरेवासीत् संज्ञा संचिन्त्य शास्त्रतः । नायं वेदेषु विहितो विधिर्हस्त इति प्रभो ॥ १७ ॥ पिण्डो देयो नरेणेह ततो मतिरभून्मम । साक्षान्नेह मनुष्यस्य पिंडं हि पितरः क्वचित् ॥१८॥

करनेके लिये मैं गंगाद्वार नामक स्थानमें गया ।११॥हे पुत्र ! मैंने गंगाद्वारमें जाकर पिताके श्राद्धकर्मका आरम्भ किया, इस श्राद्धकर्ममें मेरी माता जान्हवीने मुझको सहायता दी थी ॥ १२ ॥ उस समय मैंने वहाँ पर बहुतसे सिद्ध पुरुषोंको और ऋषियोंको अपने सामने बैठाकर जलदान आदि सब कर्म किये ॥ १३ ॥ सावधान होकर शास्त्रानुसार पहिलेके सब कर्म समाप्त करके मैं यथार्थ रीतिसे पिण्डदान देने लगा, कि–॥ १४ ॥ हे राजन् ! सुन्दर बाजूबन्द वाली तथा विशाल आभरणोंसे शोभायमान एक भुजा दर्भासनमेंसे बाहर निकली ॥ १५ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! उस हाथको बाहर निकला देखकर मुझे परम विस्मय हुआ, क्योंकि–प्रतिग्रहीता (ग्रहण करने वाले) साक्षात् मेरे पिता थे ॥१६॥ तदनन्तर हे राजन् ! मैंने शास्त्रका विचार किया तो मुझे ज्ञान हुआ, कि–वेदोंमें हाथमें पिण्ड देनेका विधान नहीं है ॥ १७ ॥ तदनन्तर मेरा यह विचार हुआ, कि–पुरुष को पिण्डदान देना चाहिये, परन्तु मनुष्यके दिये हुए पिण्डको पितरोंने कभी साक्षात् होकर ग्रहण नहीं किया है ॥१८॥ पिण्ड-

गृह्णन्ति विहितं चेत्थं पिण्डो देयः कुशेष्विति। ततोऽहं तदनादृत्य पितुर्हस्तनिदर्शनम् ॥ १९ ॥ शास्त्रप्रामाण्यसूक्ष्मं तु विधिं पिंडस्य संस्मरन्। ततो दर्भेषु तत्सर्वमददं भरतर्षभ ॥२०॥ शास्त्रमार्गानुसारेण तद्विद्धि मनुजर्षभ। ततः सोऽन्तर्हितो बाहुः पितुर्मम जनाधिप २१ ततो मां दर्शयामासुः स्वप्नान्ते पितरस्तथा। प्रीयमाणास्तु मामूचुः प्रीताः स्म भरतर्षभ २२ विज्ञानेन तवानेन यन्न मुह्यसि धर्मतः। त्वया हि कुर्वता शास्त्रं प्रमाणमिह पार्थिव ॥२३॥ आत्मा धर्मः श्रुतं वेदाः पितरश्चर्षिभिः सह। साक्षात्पितामहो ब्रह्मा गुरवोऽथ प्रजापतिः २४ प्रमाणमुपनीता वै स्थिताश्च न विचालिताः। तदिदं सम्यगारब्धं त्वयाद्य भरतर्षभ २५ किं तु भूमेर्गवां चार्थे सुवर्णं दीयतामिति। एवं वयं च

दान तो दर्भके आसन पर दिया जाता है और वे उसको ग्रहण करते हैं, यह विचार कर मैंने पिताके प्रत्यक्ष हाथकी उपेक्षा की ॥ १९ ॥ और पिण्डदानविषयक शास्त्रके सूक्ष्म प्रमाणका भली प्रकार विचार किया, तदनन्तर हे भरतर्षभ! मैंने दर्भके ऊपर सब पिण्ड दिये ॥२०॥ हे राजन्! मैंने शास्त्रोक्त मार्गका अनुसरण कर ही पिण्डदान दिया, इस प्रकार पिंडदान देनेके पीछे हे राजन्! मेरे पिताका हाथ अन्तर्धान होगया ॥ २१ ॥ तदनन्तर हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन्! स्वप्नमें सब पितरोंने मुझको दर्शन दिये और वह मुझसे प्रसन्न होकर कहने लगे, कि-॥ २२ ॥ हम तेरे ज्ञानसे प्रसन्न हुए हैं क्योंकि-तू धार्मिक बातोंमें उलझता नहीं है, हे राजन्! तूने इस विषयमें शास्त्रको प्रमाण मानकर अपनी आत्मा, धर्म, शास्त्र, वेद, पितर ऋषि, साक्षात् पितामह, ब्रह्मा, गुरु, और प्रजापतिको प्रमाण माना है और तूने उनको उनके स्थानसे चलायमान नहीं किया, हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन्! तूने आज यह काम यथार्थ ही किया है २३-२५

धर्मज्ञ सर्वे चास्मत्पितामहाः २६ पाविता वै भविष्यन्ति पावनं हि परं हि तत्। दश पूर्वान् दशैवान्यांस्तथा संतारयन्ति ते २७ सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति एवं मत्पितरोऽब्रुवन्। ततोऽहं विस्मितो राजन् प्रतिबुद्धो विशाम्पते २८ सुवर्णदानेऽकरवं मतिं च भरतर्षभ। इतिहासमिमं चापि शृणु राजन् पुरातनम् २९ जामदग्न्यं प्रति विभो धन्यमायुष्यमेव च। जामदग्न्येन रामेण तीव्ररोषान्वितेन वै ३० त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा। ततो जित्वा महीं कृत्स्नां रामो राजीवलोचनः ३१ आजहार क्रतुं वीरो ब्रह्मक्षत्रेण पूजितम्। वाजिमेधं महाराज सर्वकामसमन्वितम् ३२ पावनं सर्वभूतानां तेजोद्युतिविवर्धनम्। विपाप्मा

किन्तु तू भूमि और गौओंके निमित्त सुवर्णका दान कर, ऐसा करनेसे हम सब तथा हमारे सब पितामह पवित्र होजावेंगे, क्योंकि सुवर्ण परमपवित्र करने वाला है, सुवर्णका दान देने वाले पुरुष अपने दश पहिले और दश अगले वंशजोंको तार देते हैं ॥२७॥ हे राजन्! पितरोंके इस प्रकार कहने पर मैं आश्चर्यमें होगया, कुछ समयके अनन्तर मेरी आँख खुल गई २८ तब हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन्! मैंने सुवर्णदान करनेका विचार किया, हे राजन्! तू इस एक और प्राचीन इतिहासको सुन २९ इसको जमदग्निपुत्र परशुरामने कहा था तथा यह धन और आयु देने वाला है, जमदग्निके पुत्र परशुराम महाक्रोधी थे ॥ ३० ॥ उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया था, हे महाराज! कमलनयन वीर परशुरामने संपूर्ण पृथ्वीको जीतनेके पीछे ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे पूजित सब कामनाओंको पूर्ण करने वाला अश्वमेध नामक यज्ञ किया ३१॥३२ वह अश्वमेधयज्ञ सब प्राणियोंको पवित्र करने वाला था तेज और कांतिकी वृद्धि करने वाला था, पापरहित तेजस्वी परशुरामने ऐसे अश्वमेधयज्ञ

च स तेजस्वी तेन क्रतुफलेन च ॥ ३३ ॥ नैवात्मनोऽथ लघुतां जामदग्न्योऽभ्यगच्छत। स तु क्रतुवरेणेष्ट्वा महात्मा दक्षिणावता ३४ पप्रच्छागमसम्पन्नानृषीन् देवांश्च भार्गव । पावनं यत्परं नृणामुग्रे कर्मणि वर्ततास् ॥ ३५ ॥ तदुच्यतां महाभागा इति जातघृणाऽब्रवीत् । इत्युक्ता वेदशास्त्रज्ञास्तमूचुस्ते महर्षयः ॥ ३६ ॥ राम विप्राः सत्क्रियन्तां वेदप्रामाण्यदर्शनात् । भूयश्च विप्रर्षिगणाः प्रष्टव्याः पावनं प्रति ॥ ३७ ॥ ते यद्ब्रूयुर्महाप्राज्ञास्तच्चैव समुदाचर । ततो वसिष्ठं देवर्षिमगस्त्यमथ काश्यपम् ॥ ३८ ॥ तमेवार्थं महातेजाः पप्रच्छ भृगुनन्दनः । जाता मतिर्मे विप्रेन्द्रा कथं पूयेयमित्युत ॥३९॥ केन वा कर्मयोगेन प्रदानेनेह केन वा ।

को किया था ॥ ३३ ॥ परन्तु उस यज्ञके फलसे उन्होंने अपने को पापरहित नहीं समझा, महात्मा परशुरामने महायज्ञ करके दक्षिणा दी ३४ फिर भृगुकुलोत्पन्न परशुरामके चित्तमें दया उत्पन्न हुई, तब उन्होंने शास्त्रसंपन्न देवता और ऋषियोंसे प्रश्न किया, कि—भयंकर कर्म करने वाले पुरुषोंको जो वस्तु पूर्णरूप से पवित्र करने वाली हो, हे महाभाग्यशाली मुनियों ! उसका आप मुझसे पूर्णरीतिसे वर्णन करिये ॥ ३५ ॥ इस प्रकार दयावान् होकर प्रश्न करने पर वेद और शास्त्रोंको जानने वाले महर्षियोंने उनसे कहा, कि—॥ ३६ ॥ हे राम ! तुमने ब्राह्मणोंका सत्कार किया, वेदमें भी इसका प्रमाण दीखता है, अधिक जाननेके लिये आप ब्रह्मर्षियोंसे प्रश्न करिये ॥३७॥ और वे महाबुद्धिमान् ब्रह्मर्षि जिस प्रकार कहें, उस प्रकार आपको करना चाहिये, तब महातेजस्वी भृगुपुत्र परशुरामने देवर्षि वसिष्ठ, अगस्त्य, और कश्यपसे भी यही बात बूझी, कि—हे विप्रेन्द्रों ! मैं किसी प्रकार पवित्र होजाऊँ यह मेरी इच्छा है ! ॥३८।३९॥ कौनसे कर्मको करनेसे और किस वस्तुका दान देनेसे मैं पवित्र

यदि वोऽनुग्रहकृता बुद्धिर्मां प्रति सत्तमाः । प्रब्रूत पावनं किं मे भवेदिति तपोधनाः ॥ ४० ॥ ऋषय ऊचुः । गाश्च भूमिं च वित्तं च दत्त्वेह भृगुनन्दन । पापकृत् पूयते मर्त्य इति भार्गव शुश्रुम ॥ ४१ ॥ अन्यद्दानं तु विप्रर्षे श्रूयतां पावनं महत् । दिव्यमत्यद्भुताकारमपत्यं जातवेदसः ॥ ४२ ॥ दग्ध्वा लोकान् पुरा वीर्यात् संभूतमिह शुश्रुम । सुवर्णमिति विख्यातं तद्ददत्सिद्धिमेष्यसि ॥४३॥ ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भगवान् संशितव्रतः । शृणु राम यथोत्पन्नं सुवर्णमनलप्रभम् ॥४४॥ फलं दास्यति ते यत्तु दाने परमिहोच्यते । सुवर्णं यच्च यस्माच्च यथा च गुणवत्तमम् ४५ तन्निबोध महाबाहो सर्वं निगदतो मम । अग्नीषोमात्मकमिदं

होसकूँगा हे महात्मा तपोधनो! यदि तुम्हें मेरे ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा हो तो मुझे यह बताइये, कि-कौन वस्तु मुझे पवित्र करेगी? ॥ ४० ॥ ऋषियोंने कहा, कि-हे भृगुनन्दन भार्गव ! हमने सुना है, कि-पापकर्म करने वाला पुरुष गौ, भूमि और धन का दान देनेसे पवित्र होजाता है ४१॥ ४२ हे विप्रर्षे ! इसके अतिरिक्त और एक पवित्र करने वाली महावस्तुके दानको तू सुन वह वस्तु अग्निसे उत्पन्न हुई है, दिव्य है और उसका आकार अद्भुत है ४२ हमने सुना है, कि-पहिले अग्निने लोकोंको भस्म करके अपने वीर्यसे सुवर्ण नामक वस्तुको उत्पन्न किया था, आप उसका दान करिये, तो आपको सिद्धि मिलेगी ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उत्तम व्रतधारी भगवान् वशिष्ठने कहा, कि-हे राम ! अग्निकी समान कान्तिवाला सुवर्ण जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है उसको आप सुनिये ४४ सुवर्ण आपको फल देगा, क्योंकि-यह दानमें उत्तम पदार्थ माना जाता है, हे महाभुज राम ! सुवर्ण का दान देना उत्तम माना जाता है, सुवर्णका स्वरूप कैसा है ? सुवर्ण किससे उत्पन्न हुआ है, तथा कैसे उत्तम गुणों वाला है

सुवर्णं विद्धि निश्चये ॥ ४६ ॥ अजोग्निर्वरुणो मेषः सूर्योश्व इति दर्शनम् । कुञ्जराश्च मृगा नागा महिषाश्चासुरा इति ।४७। कुक्कुटाश्च वराहाश्च राक्षसा भृगुनन्दन । इडा गावः पयः सोमो भूमिरित्येव च स्मृतिः ॥ ४८ ॥ जगत् सर्वं च निर्मथ्य तेजोराशिः समुत्थितः । सुवर्णमेभ्यो विप्रर्षे रत्नं परममुत्तमम् ४६ एतस्मात् कारणाद्देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः । मनुष्याश्च पिशाचाश्च प्रयता धारयन्ति तत् ॥५०॥ मुकुटैरङ्गदयुतैरलंकारैः पृथग्विधैः । सुवर्णविकृतैस्तत्र विराजन्ते भृगूत्तम ॥५१॥ तस्मात् सर्वपवित्रेभ्यः

यह सब बात मैं आपसे कहता हूँ, सुनिये, यह सुवर्ण अग्नीषाम-स्वरूप है अर्थात् इसमें अग्नि और सोम इन दोनोंका अंश है ४६ अज (बकरा) अग्निस्वरूप है, अजका दान देनेसे अग्निलोक मिलता है, मेष वरुणरूप है और उसका दान देनेसे वरुणलोक मिलता है, घोड़ा सूर्यस्वरूप है अर्थात् उसका दान देनेसे सूर्य-लोक मिलता है, यह धर्मशास्त्रमें कहा है, हाथी और मृग नाग-रूप हैं अर्थात् उनका दान देनेसे नागलोक मिलता है, भैंसे असुर-रूप हैं अर्थात् उनका दान देनेसे असुरलोकमें जाना पड़ता है ४७ हे भृगुनन्दन ! मुर्गे और सूअर राक्षसरूप हैं अर्थात् उनका दान देनेसे राक्षसलोक मिलते हैं, यज्ञ गौ दुग्ध तथा सोम ये सब भूमिरूप हैं अर्थात् इनका दान देनेसे भूमिका लाभ होता है, इस प्रकार धर्मशास्त्रमें कहा है ॥ ४८ ॥ तेजकी राशिकी समान सुवर्णको सम्पूर्ण जगत्का मथन करके उत्पन्न किया गया है, अतः हे विप्रर्षे ! सुवर्ण उपरोक्त पदार्थोंसे अति उत्तम रत्न माना जाता है ॥४६॥ इसीकारण देवता, गंधर्व, सर्प, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच सावधान होकर सुवर्णको धारण करते हैं ॥५०॥ और हे भृगुवंशके श्रेष्ठ पुत्र ! वे मुकुट तथा बाजूबंद आदि सुवर्णके नाना प्रकारके अनगिनती आभूषणोंको धारण करके शोभायमान

पवित्रं परमं स्मृतम् । भूमेर्गोभ्योऽथ रत्नेभ्यस्तद्विद्धि मनुजर्षभ ५२
पृथिवीं गाश्च दत्वेह यच्चान्यदपि किञ्चन । विशिष्यते सुवर्णस्य
दानं परमकं विभो ॥ ५३ ॥ अक्षयं पावनं चैव सुवर्णममरद्युते ।
प्रयच्छ द्विजमुख्येभ्यः पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥५४॥ सुवर्णमेव सर्वासु
दक्षिणासु विधीयते । सुवर्णं ये प्रयच्छंति सर्वदास्ते भवंत्युत ५५
देवतास्ते प्रयच्छन्ति ये सुवर्णं ददत्यथ । अग्निर्हि देवताः सर्वाः
सुवर्णं च तदात्मकम् ॥ ५६ ॥ तस्मात् सुवर्णं ददता दत्ताः
सर्वाः स्म देवताः । भवन्ति पुरुषव्याघ्र न ह्यतः परमं विदुः ५७
भूय एव च माहात्म्यं सुवर्णस्य निबोध मे । गदतो मम विप्रर्षे
सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ ५८ ॥ मया श्रुतमिदं पूर्वं पुराणे भृगुनंदन ।
प्रजापतेः कथयता यथान्यायं तु तस्य वै ॥५९॥ शूलपाणेर्भगवतो

प्रतीत होने लगते हैं५१इसलिये सुवर्णको सब पवित्र पदार्थोंसे पवित्र कहा है,हे मनुष्योत्तम परशुराम ! सुवर्ण-भूमि रत्न और गौओंसे भी उत्तम है५२हे विभो!पृथिवी,गौ तथा औरभी दूसरे सब दानोंसे सुवर्णका दान अति-उत्तम माना जाता है५३ हे ! अमर-द्युते ! सुवर्ण अक्षय है तथा पवित्र करने वाला है, अतएव आप ब्राह्मणोंको पवित्र करने वाले श्रेष्ठ सुवर्णका दान दीजिये५४ सब प्रकारकी दक्षिणाओंमें सुवर्णका दान देनेकी ही विधि है, सुवर्णका दान देनेवाले सब वस्तुओंका दान देनेवाले माने जाते हैं५५ जो सुवर्णका दान देते हैं वे देवताओंका दान देते हैं, क्योंकि-अग्नि सर्वदेवरूप है और सुवर्ण अग्निरूप है ५६ अतः सुवर्णका दान देने वाला सब देवताओंका दान देने वाला है,हे पुरुषव्याघ्र! विद्वान् सुवर्णदानकी समान और किसी दानको उत्तम नहीं बताते हैं सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विप्रर्षे ! मैं तुझसे सुवर्णके दान का माहात्म्य कहता हूँ, उसको तू सुन ५८ हे भृगुनन्दन ! मैंने पुराणोंमें कही हुई प्रजापतिकी न्यायोचित बात सुनी है ५९

रुद्रस्य च महात्मनः । गिरौ हिमवति श्रेष्ठे तदा भृगुकुलोद्वह ।६०। देव्या विवाहे निर्वृत्ते रुद्राण्या भृगुनन्दन । समागमे भगवतो देव्या सह महात्मनः ॥ ६१ ॥ ततः सर्वे समुद्विग्ना देवा रुद्रमुपागमन् । ते महादेवमासीनं देवीं च वरदामुमाम् ॥ ६२ ॥ प्रसाद्य शिरसा सर्वे रुद्रमूचुर्भृगूद्वह । अयं समागमो देवो देव्या सह तवानघ ॥६३॥ तपस्विनस्तपस्विन्या तेजस्विन्यातितेजसः । अमोघतेजास्त्वं देव देवी चेयमुमा तथा ॥ ६४ ॥ अपत्यं युवयोर्देव बलवद्भविता विभो । तन्नूनं त्रिषु लोकेषु न किंचिच्छेषयिष्यति ॥ ६५ ॥ तदेभ्यः प्रणतेभ्यस्त्वं देवेभ्यः पृथुलोचन । वरं प्रयच्छ लोकेश त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥ ६६ ॥ अपत्यार्थं निगृह्णीष्व तेजः परमकं विभो । त्रैलोक्यसारौ हि युवां लोकं संतापयिष्यथ ॥ ६७ ॥ तदपत्यं हि युवयोर्देवानभिभवेद्ध्रुवम् ।

हे भृगुनन्दन ! पर्वतश्रेष्ठ हिमाचल पर शूलपाणि रुद्रका देवी रुद्राणीके साथ विवाह हुआ था तदन्तर उनका समागम होने पर सब देवता उद्विग्न होकर रुद्रके पास गए, वे सब (योगमें) बैठे हुए महादेवजी और वरदान देने वाली देवी उमाको मस्तक झुका प्रणाम कर उनसे कहने लगे, कि–हे देव ! यह देवका देवी के साथ समागम है ६०–६३ तपस्वीका तपस्विनीके साथ योग है और महातेजस्वीका महातेजस्विनीके साथ योग है और हे देव ! आप अमोघ तेज वाले हैं और देवी उमा भी अमोघ तेज वाली हैं ६४ अतः हे विभो ! आप दोनोंसे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह बड़ी बलवान् होगी और वह तीनों लोकोंमें किसी वस्तुको अवशिष्ट नहीं रक्खेगी ६५ अतः हे पृथुलोचन लोकेश ! हम प्रणाम करने वाले देवताओंको तीनों लोकोंका हित करनेकी इच्छासे आप वर दीजिये ६६ आप सन्तान उत्पन्न करने वाले उत्तम वीर्यको रोक रखिये, आप दोनों लोकोंके साररूप हैं

न हि ते पृथिवी देवी न च द्यौर्न दिवं विभो ॥ ६८ ॥ नेदं धारयितुं शक्ताः समस्ता इति मे मतिः । तेजःप्रभावनिर्दग्धं तस्मात् सर्वमिदं जगत् ॥ ६९ ॥ तस्मात् प्रसादं भगवन् कर्तुमर्हसि नः प्रभो । न देव्यां सम्भवेत् पुत्रो भवतः सुरसत्तम । धैर्यादेव निगृह्णीष्व तेजो ज्वलितमुत्तमम् ॥ ७० ॥ इति तेषां कथयतां भगवान् वृषभध्वजः । एवमस्त्विति देवांस्तान्विप्रर्षे प्रत्यभाषत ॥ ७१ ॥ इत्युक्त्वा चोर्ध्वमनयद्रेतो वृषभवाहनः । ऊर्ध्वरेताः समभवत्ततः प्रभृति चापि सः ॥७२॥ रुद्राणीति ततः क्रुद्धा प्रजोच्छेदे तदा कृते । देवानथाब्रवीत्तत्र स्त्रीभावात् परुषं वचः ॥७३॥ यस्मादपत्यकामो वै भर्ता मे विनिवर्तितः । तस्मात्

अर्थात् बलरूप हैं आपसे लोकोंको सन्ताप पहुँचेगा ६७ तुमसे जो सन्तान होगी वह अवश्य ही देवताओंका पराभव करेगी, इसी प्रकार हे प्रभो ! पृथ्वीदेवी, आकाश और स्वर्ग ॥ ६८ ॥ ये सब तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ नहीं है, ऐसा मेरा मत है, आपकी शक्तिके प्रभावसे यह सब जगत् जलकर भस्म होजावेगा ॥ ६९ ॥ अतः हे भगवन् ! हे प्रभो ! आपको हम पर दया करनी चाहिये, हे देवसत्तम ! देवी उमामें पुत्र उत्पन्न न हो इसलिये आप अपने उत्तम तेजको धारण करिये ॥७०॥ हे विप्रर्षे ! देवताओंके इसप्रकार कहने पर भगवान् वृषभध्वजने देवताओंसे कहा, कि-"तथास्तु" ॥७१॥ फिर भगवान् शंकर ने अपने वीर्यको ऊपरको चढ़ा लिया, उस दिनसे महादेव ऊर्ध्वरेता (ऊपरको वीर्य खेंचने वाले) होगए ७२ इसप्रकार देवताओंके सन्तान उत्पन्न होना रोक देने पर रुद्राणीको क्रोध चढ़ा है और उन्होंने स्त्रीजातिके स्वभावानुसार देवताओंसे कठोर वचन कहे ॥ ७३ ॥ कि हे देवताओं ! तुमने सन्तानोत्पत्ति करनेकी इच्छा वाले मेरे स्वामीको रोक दिया अतएव तुम सब

सर्वे सुरा यूयमनपत्या भविष्यथ ॥ ७४ ॥ प्रजोच्छेदो मम कृतो यस्माद्युष्माभिरद्य वै । तस्मात् प्रजा वः खगमाः सर्वेषां न भविष्यति ॥ ७५ ॥ पावकस्तु न तत्रासीच्छापकाले भृगूद्वह । देवा देव्यास्तथा शापादनपत्यास्ततोऽभवन् ॥७६॥ रुद्रस्तु तेजोऽप्रतिमं धारयामास वै तदा । प्रस्कन्नं तु ततस्तस्मात्किंचित्तत्रापतद्भुवि ७७ उत्पपात तदा वन्हौ ववृधे चाद्भुतोपमम् । तेजस्तेजसि संयुक्तमात्मयोनित्वमागतम् ॥७८॥ एतस्मिन्नेव काले तु देवाः शक्रपुरोगमाः । असुरस्तारको नाम तेन सन्तापिता भृशम् ॥ ७९ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोऽथाश्विनावपि । साध्याश्च सर्वे संत्रस्ता दैतेयस्य पराक्रमात् ॥ ८० ॥ स्थानानि देवतानां हि विमानानि पुराणि च । ऋषीणां चाश्रमाश्चैव बभूवुरसुरैर्हृताः ८१

देवता सन्तानरहित होओगे ॥ ७४ ॥ तुमने आज मेरा सन्तानोच्छेद कर दिया, अतः तुम सबोंके सन्तान उत्पन्न नहीं होगी ७५ हे भृगुवंशवर्द्धन राम ! शाप देते समय अग्निदेव तहाँ पर नहीं थे, बाकी सब देवता उमादेवीके शापसे निःसन्तान ही रहे ॥ ७६ ॥ रुद्रने अपने अप्रतिम तेजको रोक लिया था, तब भी उसमेंका कुछ एक अंश पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ वह अग्निमें जाकर पड़ा और वह अनुपम वीर्य बढ़ने लगा धीरे२ वह तेज अग्निके तेजमें मिल कर एकाकार होगया ॥ ७८ ॥ उस समय इन्द्र आदि देवता तारक नामक असुरसे सन्ताप पारहे थे उस दैत्यके पराक्रमसे आदित्य वसु, रुद्र, मरुत, अश्विनीकुमार और साध्य ये सब संत्रस्त होरहे थे ॥८०॥ इतना ही नहीं किन्तु असुरोंने देवस्थानोंको, विमानोंको, नगरोंको और ऋषियोंके आश्रमोंको भी छीन लिया ॥ ८१ ॥ तब सब देवता और ऋषि मनमें खिन्न होगए और वे अजर

ते दीनमनसः सर्वे देवता ऋषयश्च ये । प्रजग्मुः शरणं देवं ब्रह्माणमजरं विभो ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुवर्णोत्पत्तिर्नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

देवा ऊचुः । असुरस्तारको नाम त्वया दत्तवरः प्रभो । सुरानृषींश्च क्लिश्नाति वधस्तस्य विधीयताम् ॥ १ ॥ तस्माद्भयं समुत्पन्नमस्माकं वै पितामह । परित्रायस्व नो देव न ह्यन्या गतिरस्ति नः ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच । समोऽहं सर्वभूतानामधर्मं नेह रोचये । हन्यतां तारकः क्षिप्रं सुरर्षिगणबाधिता ॥ ३ ॥ वेदा धर्माश्च नोच्छेदं गच्छेयुः सुरसत्तमाः । विहितं पूर्वमेवात्र मया वै व्येतु वो ज्वरः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः । वरदानाद्भगवतो दैतेयो बलगर्वितः दैवैर्न । शक्यते हन्तुं स कथं प्रशमं व्रजेत् ॥ ५ ॥

तथा व्यापक ब्रह्माजीकी शरणमें गए ८२ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥

देवताओंने कहा, कि-हे प्रभो ! तारक नामक असुर आपसे वर पाकर देवता तथा ऋषियोंको कष्ट दे रहा है अतः उसके नाश का कुछ उपाय करिये ॥ १ ॥ हे पितामह ! हमको उस दैत्यसे डर रहता है, हे देव ! आपही हमारी रक्षा करिये आपको छोड़ कर हम किसकी शरणमें जायँ ? हमारी और कोई गति नहीं है २ ब्रह्माजीने कहा, कि-मुझे सब प्राणी एकसे हैं, परन्तु मैं जगत् में अधर्म होना भी अच्छा नहीं समझता, इस लिये देवता और ऋषियोंको कष्ट देने वाले तारकासुरका शीघ्रही नाश होना चाहिये ॥ ३ ॥ हे देवश्रेष्ठो ! वेदोंका तथा धर्मोंका उच्छेद न हो इसके लिये मैंने पहिलेसे ही उपाय रच रक्खा है, तुम्हारी चिंता दूर हो ॥ ४ ॥ देवताओंने कहा, कि-हे भगवन् ! आपके वर-दानसे वह दैत्य बलके घमण्डमें भर रहा है, देवताओंसे उसका

स हि नैव स्म देवानां नासुराणां न रक्षसाम् । वध्यः स्यामिति जग्राह वरं स्वत्तः पितामह ॥ ६ ॥ देवाश्च शप्ता रुद्राण्या प्रजोच्छेदे पुरा कृते । न भविष्यति वोऽपत्यमिति सर्वे जगत्पते ॥७॥ ब्रह्मोवाच । हुताशनो न तत्रासीच्छापकाले सुरोत्तमाः । स उत्पादयिताऽपत्यं वधाय त्रिदशद्विषाम् ॥८॥ तद्वै सर्वानतिक्रम्य देवदानवराक्षसान । मानुषानथ गन्धर्वान्नागानथ च पक्षिणः ६ अस्त्रेणामोघपातेन शक्त्या तं घातयिष्यति । यतो वो भयमुत्पन्नं ये चान्ये सुरशत्रवः ॥ १० ॥ सनातनो हि संकल्पः काम इत्यभिधीयते । रुद्रस्य तेजः प्रस्कन्नमग्नौ निपतितं च यत् ॥ ११ ॥ तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिति पावकम् । वधार्थं देवशत्रूणां

वध होना अशक्य है ? उसका अन्त कैसे हो सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे पितामह ! उस दैत्यने तो आपसे यह वर पाया है, कि–न मुझे देवता मार सकें, न असुर मार सकें और न राक्षस मार सकें ॥ ६ ॥ तथा हे जगत्पति ! देवताओंने पहिले शंकरको गर्भाधान करनेका निषेध करके शंकरके सन्तान होना रोक दिया था, तब रुद्राणीने सब देवताओंको शाप दे दिया था, कि-"तुम्हारे सन्तान न होगी" अतः देवता प्रजारहित हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे देवताओं ! उस शापके समय तहाँ पर अग्नि नहीं था, अतः वह देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेके लिये सन्तान उत्पन्न करेगा ॥ ८ ॥ अग्निका पुत्र देव दानव गंधर्व राक्षस मनुष्य नाग और पक्षी इन सबसे श्रेष्ठ होगा ॥९॥ तुमको जिससे डर लग रहा है उसको तथा दूसरे देवशत्रुओंको वह अपनी शक्तिसे अमोघ पात वाले अस्त्रसे मार डालेगा १० संकल्प सनातन है, उस संकल्पको शास्त्रमें काम कहते हैं, उस कामके कारण ही रुद्रका स्खलित वीर्य अग्निमें गिर पड़ा था ११ रुद्रका वह तेज महाभूतरूप और दूसरे अग्निकी समान है और अग्नि-

गंगायां जनयिष्यति ॥ १२ ॥ स तु नावाप्तं शापं नष्टः स हुतभुक् तदा । तस्माद्वो भयहृद्देवाः समुत्पत्स्यति पावकिः ॥१३॥ अन्विष्यतां वै ज्वलनस्तथा चाद्य नियुज्यताम् । तारकस्य वधोपायः कथितो वै मयानघाः ॥ १४ ॥ न हि तेजस्विनां शापास्तेजःसु प्रभवन्ति वै । बलान्यतिबलं प्राप्य दुर्बलानि भवन्ति वै ॥ १५ ॥ हन्यादवध्यान् वरदानपि चैव तपस्विनः । संकल्पाभिरुचिः कामः सनातनतमोऽभवत् ॥ १६ ॥ जगत्पतिरनिर्देश्यः सर्वगः सर्वभावनः । हृच्छयः सर्वभूतानां ज्येष्ठो रुद्रादपि प्रभुः १७ अन्विष्यतां स तु क्षिप्रं तेजोराशिर्हुताशनः। स वो मनोगतं कामं देवः सम्पादयिष्यति ॥ १८ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ततो देवा महा-

देव शत्रुओंको मारनेके लिये उसको गंगामें डालकर पुत्ररूपसे उत्पन्न करेगा १२ रुद्राणीके देवताओंको शाप देते समय अग्नि तहाँ पर नहीं था, इससे उसको रुद्राणीका शाप नहीं लगा था, अतः हे देवताओं! अग्निमेंसे तुम्हारे भयको दूर करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा१३ अतः तुम अग्निको ढूँढ कर लाओ और उसको पुत्रोत्पत्ति करनेके लिये प्रेरित करो, हे निर्दोष देवताओं! यह तारकासुरके वधका उपाय मैंने तुमसे कहा॥१४॥तेजस्वी पुरुषोंका शाप तेजस्वियों पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता, क्योंकि बली भी महाबलवानोंके पास जाकर निर्बल पड़ जाते हैं१५ और तपस्वी पुरुष वरदान देने वाले अवध्य पुरुषोंको भी मार सकते हैं,काम्य अर्थात् काम्यरूप अग्नि संकल्प अर्थात् अपत्य विषयमें सबको अभिरुचि (इच्छा) उत्पन्न करने वाला है और वह अतिसनातन है१६वह जगत्का पति (पालन करने वाला) है,अनिर्वचनीय है, सर्वत्र गमन कर सकने वाला है, सबको उत्पन्न करने वाला है, सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करने वाला है और वह प्रभु रुद्रसे भी बढ़कर है ॥१७॥ उस तेजोराशि अग्निको तुम शीघ्र

रमनः । जग्मुः संसिद्धसंकल्पाः पर्येषन्तो विभावसुम् ॥ १६ ॥
ततस्त्रैलोक्यमृषयो व्यचिन्वन्त सुरैः सह । कांक्षन्तो दर्शनं वह्नेः
सर्वे तद्गतमानसाः ॥ २० ॥ परेण तपसा युक्ताः श्रीमन्तो लोक-
विश्रुताः । लोकानन्वचरन्सिद्धाः सर्व एव भृगूत्तम ॥ २१ ॥
नष्टमात्मनि संलीनं नाभिजग्मुर्हुताशनम् । ततः संजातसंत्रासा-
नग्निदर्शनलालसान् ॥ २२ ॥ जलेचरः क्लांतमनास्तेजसाग्नेः
प्रदीपितः । उवाच देवान् मण्डूको रसातलतलोत्थितः ॥ २३ ॥
रसातलतले देवा वसत्यग्निरिति प्रभो । सन्तापादिह संप्राप्तः
पावकप्रभवादहम् ॥ २४ ॥ स संसुप्तो जले देवा भगवान् हव्य-
वाहनः । अपः संसृज्य तेजोभिस्तेन सन्तापिता वयम् ॥ २५ ॥

खोज करो, वह देवता तुम्हारी मनकी कामनाको पूर्ण करेगा १८ महात्मा ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर जिनका संकल्प सिद्ध होगया था वे देवता अग्निको ढूँढनेके लिये निकल पड़े ॥ १६ ॥ सब ऋषियोंका मन उस समय अग्निकी ओर लग रहा था, तब ऋषि देवताओंको साथमें लेकर अग्निका दर्शन पानेकी इच्छासे तीनों लोकोंमें उसकी खोज करने लगे २० हे भृगुनन्दन! महातपस्वी श्रीमान् और लोकप्रसिद्ध सब सिद्ध पुरुष लोकोंमें अग्निको ढूँढते हुए घूमने लगे ॥ २१ ॥ परन्तु उस समय वह अपने कारण जलमें अपनेको लीन करके अदृश्य होगया इस कारण उसका पता न चला, इससे देवता भयभीत होगए और उनको अग्निका दर्शन करनेकी उत्कण्ठा बढ़ने लगी ॥ २२ ॥ उस समय रसातलमें रहने वाले एक मेंडकने अग्निके तापसे सन्तप्त होकर और मनमें घबड़ा कर रसातलमेंसे बाहर निकल कर देवताओंसे कहा, कि-॥२३॥ हे देवताओं! अग्नि रसातलमें निवास कर रहा है और उसके तापसे घबड़ा कर मैं यहाँ आया हूँ २४ हे देवों! भगवान् हव्यवाहन जलमें शयन कर रहे हैं, वे अपने तेजसे युक्त जलको

तस्य दर्शनमिष्टं वो यदि देवा विभावसोः । तत्रैवमधिगच्छध्वं कार्यं वो यदि वन्हिना ॥ २६ ॥ गम्यतां साधयिष्यामो वयं ह्यग्निभयात् सुराः । एतावदुक्त्वा मंडूकस्त्वरितो जलमाविशत् २७ हुताशनस्तु बुबुधे मण्डूकस्य च पैशुनम् । शशाप स तमासाद्य न रसान् वेत्स्यसीति वै ॥ २८ ॥ तं वै संयुज्य शापेन मण्डूकं त्वरितो ययौ । अन्यत्र वासाय विभुर्न चात्मानमदर्शयत् ॥२९॥ देवास्त्वनुग्रहं चक्रुर्मण्डूकानां भृगूत्तम । यत्तच्छृणु महाबाहो गदतो मम सर्वशः ॥ ३० ॥ देवाः ऊचुः । अग्निशापादजिह्वापि रसज्ञानवहिष्कृताः । सरस्वतीं बहुविधां यूयमुच्चारयिष्यथ ॥३१॥ बिलवासं गतांश्चैव निराहारानचेतसः । गतासूनपि संशुष्कान्

उत्पन्न कर रहे हैं, इसलिये हम झुलसे जाते हैं ।२५॥ हे देवताओं ! यदि तुम अग्निका दर्शन करना चाहते हो और तुमको उनसे कुछ काम हो तो तुम तहाँ जाकर उनको देखो ॥ २६ ॥ हे देवताओं ! हम अब अग्निके भयसे अपना २ कार्य करनेमें लग जायँगे और तुम जाकर अपना काम सिद्ध करो" इतनी बात कह कर वह मेंडक जलमें घुस गया २७ अग्निको मेंडकके चुगली खानेका समाचार मिलने पर उसने मेंडकोंको शाप दिया, कि- "तुमको रसका ज्ञान नहीं रहेगा" २८ अग्नि मेंडकोंसे इस प्रकार कह कर उतावलीसे दूसरे स्थान पर चला गया किन्तु उसने दूसरोंको अपना शरीर नहीं दिखाया २९ हे भृगुवंशोत्पन्न महाभुज राम ! तब देवताओंने मेंडकों पर जो अनुग्रह किया था, उसको मैं तुमसे पूर्णरीतिसे कहता हूँ, सुनिये ३० देवताओंने कहा, कि हे मेंडकों ! अग्निने तुमको शाप देकर जिह्वारहित और रसरहित करदिया है, तथापि तुम नानाप्रकारकी सरस्वती(वाणी) का उच्चारण कर सकोगे ३१ तुम बिलमें पड़े हुए आहाररहित होनेसे अचेत और प्राणरहित होकर शुष्क होजाओगे, तब भी

भूमिः सन्तारयिष्यति ॥ ३२ ॥ तमोघनायामपि वै निशायां विचरिष्यथ । इत्युक्त्वा तांस्ततो देवाः पुनरेव महीमिमाम् ॥३३॥ परीयुर्ज्वलनस्यार्थे न चाविन्दन् हुताशनम् । अथ तान्द्विरदः कश्चित् सुरेन्द्रद्विरदोपमः ॥ ३४ ॥ अश्वत्थस्थोऽग्निरित्येवमाह देवान् भृगूद्वह । शशाप ज्वलनः सर्वान् द्विरदान् क्रोधमूर्च्छितः ३५ प्रतीपा भवतां जिह्वा भवित्रीति भृगूद्वह । इत्युक्त्वा निःसृताऽश्वत्थादग्निर्वारणसूचितः । प्रविवेश शमीगर्भमथ वन्हिः सुषुप्सया ३६ अनुग्रहं तु नागानां यं चक्रुः शृणु तं प्रभो । देवा भृगुकुलश्रेष्ठ प्रीत्या सत्यपराक्रमाः ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः । प्रतीपया जिह्वयापि सर्वाहारं करिष्यथ । वाचं चोच्चारयिष्यध्वमुच्चैरव्यंजिताक्षराम् ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा पुनरेवाग्निमनुसस्रुर्दिवौकसः । अश्व-

---

भूमि तुमको जीवित ही रक्खेगी (अर्थात् तुम जल बरसने पर फिर जीवित होजाया करोगे) ३२ और तुम गाढ़ अन्धकार वाली रात्रिमें भी भ्रमण कर सकोगे, इस प्रकार देवता मेंडकोंसे कह कर पृथ्वीमें अग्निको चारों ओर ढूँढते हुए घूमने लगे, परन्तु उनको अग्निका पता न लगा, उस समय देवहस्तीकी समान एक हाथीने देवताओंको समाचार दिया, कि–अग्नि अश्वत्थमें रहता है, हे भृगुवंशवर्धन राम ! यह समाचार पाने पर अग्निने क्रोधमें भर कर सब हाथियोंको शाप दिया कि–३३–३५ "तुम्हारी जिह्वा उलटी रहेगी" इस प्रकार हाथियोंसे कह कर हाथियोंने जिसका समाचार देदिया था, वह अग्नि अश्वत्थमेंसे निकल कर सोनेकी इच्छासे शमीके पेड़में चला गया ॥ ३६ ॥ हे भृगुकुलश्रेष्ठ ! उस समय सत्यपराक्रमी देवताओंने हाथियों पर जो अनुग्रह किया था उसको आप सुनिये ॥ ३७ ॥ देवताओंने कहा, कि हे हाथियों ! तुम उल्टी जीभसे भी सब प्रकार का आहार कर सकोगे और ऊँचे स्वरसे अव्यक्त अक्षरों वाली

स्थाग्निःसृतश्चाग्निः शमीगर्भमुपाविशत् ॥३६॥ शुकेन ख्यापितो विप्र तं देवाः समुपाद्रवन् । शशाप शुकमग्निस्तु वाग्विहीनो भविष्यसि ॥ ४० ॥ जिह्वामावर्तयामास तस्यापि हुतभुक्तथा । दृष्ट्वा तु ज्वलनं देवाः शुकमूचुर्दयान्विताः ॥ ४१ ॥ भविता न त्वमत्यन्तं शुकत्वे नष्टवागिति । आवृत्तजिह्वस्य सतो वाक्यं कांतं भविष्यति ॥ ४२ ॥ बालस्येव प्रवृद्धस्य कलमव्यक्तमद्भुतम् । इत्युक्त्वा तं शमीगर्भे वह्निमालक्ष्य देवताः ॥ ४३ ॥ तदेवायतनं चक्रुः पुण्यं सर्वक्रियास्वपि । ततः प्रभृति चाप्यग्निः शमीगर्भेषु दृश्यते ॥ ४४ ॥ उत्पादने तथोपायमभिजग्मुश्च मानवाः । आपो रसातले यास्तु संस्पृष्टाश्चित्रभानुना ॥४५॥ ताः पर्वतप्रस्रवणै-

---

वाणीका वेगसे उच्चारण कर सकोगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कह कर देवता फिर अग्निको ढूँढने लगे उस समय हे विप्र ! तोतेने देवताओंसे कहा, कि-अग्नि अश्वत्थके वृक्षमेंसे निकल कर शमीके वृक्षमें चला गया है, तब देवता अग्निकी ओर चले, इस बातकी सूचना मिलने पर अग्निने तोतेको शाप दिया, कि-तू वाणीरहित होजायगा ॥ ३६ ॥ ४० ॥ हुतद्रव्यका भोजन करने वाले अग्निने तोतेकी जीभको भी उलटी कर दिया, तदनन्तर देवताओंने अग्निको देखकर दयालु हो तोतेसे कहा, कि-॥ ४१ ॥ शुकजातिमें तेरी वाणी अधिक नष्ट नहीं रहेगी, तेरी जीभ उलटी हुई रहेगी, तब भी तेरी वाणी मनोहर रहेगी ४२ तू वृद्ध हो जायगा तब भी तेरी वाणी बालकोंकी मानस अद्भुत और मधुर ही रहेगी, इस प्रकार तोतेको वरदान देनेके बाद देवताओंने अग्निको शमीके पेड़में देखा ॥ ४३ ॥ इसी लिये ब्राह्मणोंने सब क्रियाओंमें शमीको ही अग्निका पवित्र-स्थान माना है और उस दिनसे अग्नि भी शमीके वृक्षमें दर्शन देता है ४४ और मनुष्य भी अग्निको उत्पन्न करनेके लिये शमीके वृक्षको

रूष्मां मुञ्चति भार्गव । पावकेनाधिशयता संतप्तास्तस्य तेजसा ४६
अथाग्निर्देवता दृष्ट्वा बभूव व्यथितस्तदा । किमागमनमित्येवं
तानपृच्छत पावकः ॥ ४७ ॥ तमूचुर्विबुधाः सर्वे ते चैव पर-
मर्षयः । त्वां नियोक्ष्यामहे कार्ये तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥ ४८ ॥
कृते च तस्मिन् भविता तवापि सुमहान् गुणः ॥ ४९ ॥ अग्नि-
रुवाच । ब्रूत यद्भवतां कार्यं कर्तास्मि तदहं सुराः । भवतां तु
नियोज्योऽस्मि मा वोऽत्रास्तु विचारणा ॥५०॥ देवा ऊचुः ।
असुरस्तारको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः । अस्मान्प्रबाधते वीर्या-
द्वधस्तस्य विधीयताम् ॥ ५१ ॥ इमान् देवगणांस्तात प्रजापति-
गणांस्तथा । ऋषींश्चापि महाभाग परित्रायस्व पावक ॥ ५२ ॥

एक उपायरूप जानने लगे, रसातलमें जलका अग्निसे स्पर्श हो गया था, हे भार्गव ! अग्निने जलमें शयन किया था, उसके तेज से रसातलका जल गरम होगया था, वह पर्वतके झरनों द्वारा अपनी ऊष्माको बाहर निकालता रहता है ४६ तदनन्तर अग्नि देवताओंको देख कर व्यथित होगया और उसने देवताओंसे प्रश्न किया, कि–तुम किस लिये आये हो ? ॥ ४७ ॥ तब सब देवताओंने और परमर्षियोंने अग्निसे कहा, कि–हम तुमसे एक कर्म कराना चाहते हैं और वह कार्य आपको करना चाहिये ४८ उस कर्मको करनेसे तुमका भी बड़ा लाभ होगा ॥ ४९ ॥ अग्नि ने कहा, कि हे देवताओं ! तुम्हारा जो कार्य हो उसका मुझसे वर्णन करिये, मैं उस कामको करूँगा, मैं तुम्हारा नियोज्य अर्थात् सेवक हूँ, अतः आप कुछ विचार न करिये ॥ ५० ॥ देवताओं ने कहा, कि–एक तारक नाम वाला असुर है, वह ब्रह्माजीके वरदान देने पर गर्वमें भर गया है और अपने बलसे हमें दुःखित करता है. तुम उसके वधका उपाय करो ॥ ५१ ॥ हे तात ! हे महाभाग्यवान् अग्ने ! तू इन देवताओंकी, प्रजापतियोंकी और

अपत्यं तेजसा युक्तं प्रवीरं जनय प्रभो । यद्भयं नो सुरात्तस्मा-
न्नाशयेद्धव्यवाहन ॥ ५३ ॥ शप्तानां नो महादेव्या नान्यदस्ति
परायणम् । अन्यत्र भवतो वीर्यं तस्मात्त्रायस्व नः प्रभो ॥५४॥
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगवान् हव्यवाहनः । जगामाथ दुराधर्षो
गंगां भागीरथीं प्रति ॥५५॥ तया चाप्यभवन्मिश्रो गर्भं चास्या
दधे तदा । ववृधे स तदा गर्भः कक्षे कृष्णगतिर्यथा ॥ ५६ ॥
तेजसा तस्य देवस्य गंगा विह्वलचेतना । सन्तापमगमत्तीव्रं सोढुं
सा न शशाक ह ॥५७॥ आहिते ज्वलनेनाथ गर्भे तेजःसमन्विते ।
गंगायामसुरः कश्चिद्भैरवं नादमानदत् ॥ ५८ ॥ अबुद्धिपतितेनाथ
नादेन विपुलेन सा । वित्रस्तोद्भ्रांतनयना गंगा विस्रुतलोचना ५९

ऋषियोंकी रक्षा कर ॥ ५२ ॥ हे प्रभो हव्यवाहन ! तुम एक
तेजस्वी तथा पराक्रमी पुत्रको उत्पन्न करो, वह पुत्र हमारे असुर-
संबंधी भयको दूर करेगा ॥ ५३ ॥ महादेवीने हमको शापदिया
है, कि-" तुम्हारे सन्तान नहीं होगी" अतः तुम्हारे वीर्यके
अतिरिक्त हमको और किसीका आधार नहीं है, अतः हे प्रभो !
आप हमारी रक्षा करिये ॥ ५४ ॥ इस प्रकार देवताओंने कहा
तब भगवान् हव्यवाहनने तथास्तु कहा फिर वह दुराधर्ष अग्नि
भागीरथी गंगाके पास गया ॥ ५५ ॥ और उसने गंगाजीसे
संयुक्त होकर गर्भाधान किया, उस समय अग्नि जैसे तिनकोंमें
बढ़ने लगता है, ऐसे ही वह गर्भ गंगामें बढ़ने लगा ॥५६॥ उस
समय गंगाजी अग्निके तेजसे विह्वल होगई उसको अतिसन्ताप
होने लगा और वह अग्निके तापको सहन न कर सकी ॥५७॥
जिस समय अग्निने गंगामें तेजस्वी गर्भको स्थापित किया उस
समय एक असुरने महाभयंकर गर्जनाकी ५८ इस आकस्मिक
महागर्जनासे गंगा भयभीत होगई, उसकी आँखें ऊपरको चढ़
गईं और उसके नेत्रोंमेंसे आँसू टपकने लगे ॥ ५९ ॥ वह अचेत

विसंज्ञा नाशकद्गर्भं वोढुमात्मानमेव च । सा तु तेजःपरीताङ्गी कम्पयन्तीव जाह्नवी ॥ ६० ॥ उवाच ज्वलनं विप्र तदा गर्भबलोद्धुता । ते न शक्तास्मि भगवंस्तेजसोऽस्य विधारणे ॥ ६१ ॥ विमूढास्मि कृतानेन न मे स्वास्थ्यं यथा पुरा । विह्वला चास्मि भगवंश्चेतो नष्टं च मेऽनघ ॥ ६२ ॥ धारणे नास्य शक्ताहं गर्भस्य तपतां वर । उत्स्रक्ष्येऽहमिमं दुःखान्न तु कामात् कथञ्चन ॥ ६३ ॥ न तेजसोऽस्ति संस्पर्शो मम देव विभावसो । आपदर्थे हि संबंधः सुसूक्ष्मोऽपि महाद्युते ॥ ६४ ॥ यदत्र गुणसम्पन्नमितरद्वा हुताशन । त्वय्येव तदहं मन्ये धर्माधर्मौ च केवलौ ॥ ६५ ॥ तामुवाच ततो वह्निर्धार्यतां धार्यतामिति । गर्भो मत्तेजसा युक्तो महागुणफलो-

होगई और गर्भ तथा अपने शरीरकोभी सम्हालनेमें असमर्थ होगई उसका शरीर तेजसे व्याप्त होगया और वह काँपने लगी ६० हे विप्र ! गर्भके बलसे पराभव पाई हुई गंगाने पावकसे कहा कि- हे भगवन् ! मैं आपके इस तेजको धारण नहीं कर सकती ६१ तुम्हारे तेजने मुझे अचेतसा कर दिया है इस लिये मेरा स्वास्थ्य पहिलेकासा नहीं रहा है, हे भगवन् ! मैं विह्वल होगई हूँ, हे निर्दोष ! मेरा चित्त घूम रहा है ॥ ६२ ॥ हे उत्तम तपस्वी ! मैं इस गर्भको धारण न कर सकूँगी, अतः मैं कामनासे नहीं, किंतु दुःखके कारण इसको किसी न किसी प्रकार त्याग दूँगी ॥ ६३ ॥ हे विभावसो ! मेरा तेरे शरीरके साथ स्पर्श नहीं हुआ है परन्तु हे वन्हे ! देवताओं पर आपत्ति पड़ने पर हमारा सूक्ष्म संबंध हुआ है ॥ ६४ ॥ हे हुताशन ! इस विषयमें जो पुण्य या पाप लगेगा, उसका कारण मैं तुझको ही मानती हूँ, क्योंकि- धर्म और अधर्म ही केवल हैं ॥ ६५ ॥ तदनन्तर पावकने गंगासे कहा, कि तू इस गर्भको धारण कर ! धारण कर !! यह गर्भ मेरे तेजसे युक्त है और इससे तुझको महाफल मिलेगा ॥ ६६ ॥

दयः ॥ ६६ ॥ शक्ता ह्यसि महीं कृत्स्नां वोढुं धारयितुं तथा । न हि ते किंचिदप्राप्यमन्यतो धारणादृते ॥ ६७ ॥ सा वह्निना वार्यमाणा देवैरपि सरिद्वरा । समुत्ससर्ज तं गर्भं मेरौ गिरिवरे तदा ॥ ६८ ॥ समर्था धारणे चापि रुद्रतेजःप्रधर्षिता । नाशकत्तं तदा गर्भं संधारयितुमोजसा ॥ ६९ ॥ सा समुत्सृज्य तं दुःखा-दीप्तवैश्वानरप्रभम् । दर्शयामास चाग्निस्तं तदा गंगां भृगूद्वह ७० पप्रच्छ सरितां श्रेष्ठां कच्चिद्गर्भः सुखोदयः । कीदृग्वर्णोऽपि वा देवि कीदृग्रूपश्च दृश्यते । तेजसा केन वा युक्तः सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥७१॥ गंगोवाच । जातरूपः स गर्भो वै तेजसा त्वमिवानघ । सुवर्णो विमलो दीप्तः पर्वतं चावभासयत् ॥ ७२ ॥ पद्मोत्पल-विमिश्राणां ह्रदानामिव शीतलः । गन्धोऽस्य सकदम्बानां तुल्यो

तू सारी पृथ्वीको खेंचने और धारण करनेमें समर्थ है, इस गर्भ को धारण करने पर तुझे कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहेगी ॥६७॥ पावकने तथा देवताओंने उस महानदीको बहुत रोकना चाहा तब भी उसने मेरु नामक महापर्वत पर गर्भको त्याग दिया ६८ गंगा उस गर्भको धारण करनेमें समर्थ थी, परन्तु रुद्रके तेजसे फीकी पड़ जानेके कारण वह उस गर्भको अपने बलसे धारण न कर सकी ६९ इस प्रकार गंगाजीने दुःखके कारण प्रदीप्त अग्निकी समान कान्तिवाले गर्भको त्याग दिया, इसके पीछे हे भृगुकुलवर्धन राम! अग्निने गंगाको दर्शन दिये और उससे मिले ७० और उस श्रेष्ठ नदीसे बूझा, कि-तेरा गर्भ सुखी है, हे देवी ! तेरा वर्ण कैसा है ? तेरा रूप कैसा दीख रहा है ? और तेरे शरीरका तेज कैसा है ? यह सब मुझसे कह ॥ ७१ ॥ गंगाजीने कहा, कि-हे निर्दोष अग्नि ! यह गर्भ सुवर्णकी समान और तेरी समान तेजस्वी है उसके शरीरका वर्ण अतिसुन्दर है, वह स्वयं निर्मल है, प्रकाशवान है उसने मेरु पर्वतको प्रकाशित कर रक्खा है ७२ वह पद्म और

वै तपतां वर ॥७३॥ तेजसा तस्य गर्भस्य भास्करस्येव रश्मिभिः। यद्द्रव्यं परिसंसृष्टं पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ७४ ॥ तत्सर्वं काञ्चनीभूतं समन्तात् प्रत्यदृश्यत। पर्यधावत शैलांश्च नदीः प्रस्रवणानि च ॥७५॥ व्यदीपयंस्तेजसा च त्रैलोक्यं सचराचरम्। एवंरूपः स भगवान् पुत्रस्ते हव्यवाहन। सूर्यवैश्वानरसमः कान्त्या सोम इवापरः ॥७६॥ एवमुक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत। पावकश्चापि तेजस्वी कृत्वा कार्यं दिवौकसाम् ॥ ७७ ॥ जगामेष्टं ततो देशं तदा भार्गवनन्दन। एतैः कर्मगुणैर्लोके नामाग्नेः परिगीयते ॥७८॥ हिरण्यरेता इति वै ऋषिभिर्विबुधैस्तथा। पृथिवी च तदा देवी ख्याता वसुमतीति वै ॥७९॥ स तु गर्भो महातेजा गाङ्गेयः पावकोद्भवः। दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधेऽद्भुतदर्शनः ८०

उत्पलोंसे भरे हुए सरोवरोंकी समान शीतल है और हे उत्तम तपस्वी! उसके शरीरकी गन्ध कदम्बके पुष्पोंकी समान है ७३ सूर्यकी किरणोंकी समान उस गर्भके तेजसे पृथ्वीपरके और पर्वत परके जिन पदार्थोंका स्पर्श हुआ है ७४ वे पदार्थ चारों ओरसे सुवर्णकी समान प्रतीत होते हैं और वह तेज पर्वत, नदी तथा झरनोंमें भी फैल रहा है ७५ उस गर्भके तेजसे स्थावरजंगमरूप त्रिलोकी प्रकाशित होरही है, हे हव्यवाहन! तेरा पुत्र ऐश्वर्य-सम्पन्न है उसकी कान्ति सूर्य और अग्निकी समान है और वह दूसरे सोमकी समान है। ७६। इस प्रकार कह कर देवी गंगा तहाँ ही अन्तर्धान होगई और हे भार्गवनन्दन! तेजस्वी अग्नि भी देवताओंका कार्य करके ७७ अपने अभिलषित स्थानको चला गया, ऐसे कर्म और गुणोंसे जगत्में देवता और ऋषि अग्निको हिरण्यरेता नामसे पुकारते हैं और उस समयसे पृथ्वी वसुमती कहलाती है ७८-७९ तदन्तर अद्भुत दर्शन वाला महा-तेजस्वी अग्नि और गंगाका पुत्र दिव्य शरोंके वनमें जाकर

ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालार्कसदृशद्युतिम् । पुत्रं वै ताश्च तं बालं पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः ॥ ८१ ॥ ततः स कार्तिकेयत्वमवाप परमद्युतिः । स्कन्नत्वात् स्कन्दतां चापि गुहावासाद्गुहोऽभवत् ८२ एवं सुवर्णमुत्पन्नमपत्यं जातवेदसः।तत्र जाम्बूनदं श्रेष्ठं देवानामपि भूषणम् ॥ ८३ ॥ ततः प्रभृति चाप्येतज्जातरूपमुदाहृतम् । रत्नानामुत्तमं रत्नं भूषणानां तथैव च ॥८४॥ पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् । यत् सुवर्णं स भगवानग्निरीशः प्रजापतिः ॥ ८५ ॥ पवित्राणां पवित्रं हि कनकं द्विजसत्तमाः । अग्नीषोमात्मकं चैव जातरूपमुदाहृतम् ॥ ८६ ॥ वसिष्ठ उवाच । अपि चेदं पुरा राम श्रुतं मे ब्रह्मदर्शनम् । पितामहस्य यद् वृत्तं ब्रह्मणः

बढ़ने लगा ८० उस वनमें कृत्तिकायें रहती थीं वे उस बालसूर्य की समान कान्तिवाले पुत्रको देख कर उसको अपना दूध पिला कर पालने लगीं ८१ इस प्रकार कृत्तिकाओंके पोषण करनेसे उस परम कान्तिवाले कुमारका नाम कार्तिकेय पड़ा था ८२ और रुद्रका जो वीर्य गिर गया था (स्कन्न होगया था) उससे इनकी उत्पत्ति हुई थी, इससे इनका नाम स्कंद पड़ा और गुफामें निवास करनेके कारण इनका नाम गुह पड़ा था ८३ इस प्रकार सुवर्ण उत्पन्न हुआ और वह अग्निका बालक है, इनमें जाम्बूनद नामक सुवर्ण श्रेष्ठ है और वह देवताओंको आभूषणरूप है ८४ पवित्र पदार्थोंमें वह विशेष पवित्र है, मांगलिक पदार्थोंमें वह मांगलिक है, इतना ही नहीं, किन्तु सुवर्ण भगवान् अग्निस्वरूप ईश्वरस्वरूप तथा प्रजापतिरूप है ॥८५॥ और हे उत्तम ब्राह्मण ! सुवर्ण पवित्र पदार्थोंमें भी पवित्र है, पावक और सोमरूप है तथा उसको जातरूपक कहते हैं ॥ ८६ ॥ वसिष्ठजीने कहा; कि- हे भृगुपुत्र ! मैंने पहिले ब्रह्मदर्शन जिनका नाम है ऐसे पितामह का इतिहास सुना है, उसको आप सुनिये ॥ ८७ ॥ हे प्रभो !

परमात्मनः ॥ ८७ ॥ देवस्य महतस्तात वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् । ऐश्वर्ये वारुणे राम रुद्रस्येशस्य वै प्रभो ॥ ८८ ॥ आजग्मुर्मुनयः सर्वे देवाश्चाग्निपुरोगमाः । यज्ञांगानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥ ८९ ॥ मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः । ऋग्वेदश्चागमत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥ ९० ॥ लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तं सुरपंक्तयः । ओंकारश्चावसन्नेऽत्रे निग्रहप्रग्रहौ तथा ॥ ९१ ॥ वेदाश्च सोपनिषदो विद्या सावित्र्यथापि च । भूतं भव्यं भविष्यं च दधार भगवान् शिवः ॥ ९२ ॥ संजुहावात्मनात्मानं स्वयमेव तदा प्रभो । यज्ञं च शोभयामास बहुरूपं पिनाकधृन् ॥९३॥ द्यौर्नभः पृथिवी खं च तथा चैवैष भूपतिः । सर्वविद्येश्वरः श्रीमानेष चापि विभावसुः ॥ ९४ ॥ एष ब्रह्मा शिवो रुद्रो वरुणोऽग्निः प्रजापतिः । कीर्त्यते भगवान् देवः सर्व-

हे तात राम ! पहिले महादेवने वरुणका स्वरूप धारण करके वरुणके ऐश्वर्यकालमें यज्ञका आरंभ किया था ॥ ८८ । उनके यज्ञमें पावक आदि सब देवता, मुनि, यज्ञके सब अङ्ग, मूर्तिमान् वषट्कार तथा सहस्रों मूर्तिमान् सामवेद और यजुर्वेद तथा पद और क्रमसे शोभायमान ऋग्वेद आये थे ॥ ८९ ९० ॥ और लक्षण, स्वर, स्तोम, निरुक्त, स्वर पंक्ति ओंकार, निग्रह और प्रग्रह महादेवजीके नेत्रोंमें आकर बसे थे ॥ ९१ ॥ वेद, उपनिषद, विद्या, सावित्री और भूत, भविष्यत् तथा वर्तमानकाल इन सबको भगवान् शिवने धारण कर लिया था ॥ ९२ ॥ हे प्रभो ! उन पिनाकपाणि शंकरने उस समय यज्ञमें स्वयं ही अपनी आत्माका होम किया और उस बहुरूप यज्ञको सुशोभित किया ९३ यह शंकर स्वर्गरूप, नभोरूप, पृथ्वीरूप, आकाशरूप तथा भूपतिरूप हैं और सब विद्याओंके ईश्वर श्रीमान् तथा विभावसु हैं ९४ और यह ही ब्रह्मा, शिव, रुद्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति,

भूतपतिः शिवः ॥९५॥ तस्य यज्ञः पशुपतेस्तपः क्रतव एव च ।
दीक्षा दीप्तव्रतो देवी दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ९६ ॥ देवपत्न्यश्च
कन्याश्च देवानां चैव मातरः । आजग्मुः सहितास्तत्र तदा भृगु-
कुलोद्वह ॥ ९७ ॥ यज्ञं पशुपतेः प्रीता वरुणस्य महात्मनः ।
स्वयंभुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि । ९८ ॥ तस्य शुक्रस्य
विस्पन्दान् पांसून् संगृह्य भूमितः । प्रास्यत् पूषा कराभ्यां वै
तस्मिन्नेव हुताशने ॥ ९९ ॥ ततस्तस्मिन् संप्रवृत्ते सत्रे ज्वलित-
पावके । ब्रह्मणो जुह्वतस्तत्र प्रादुर्भावो बभूव ह ॥ १०० ॥
स्कन्नमात्रं च तच्छुक्रं स्रुवेण परिगृह्य सः । आज्यवन्मंत्रतश्चापि
सोऽजुहोद्‌ भृगुनन्दन ॥ १ ॥ ततः स जनयामास भूतग्रामं च
वीर्यवान् । तस्य तत्तेजसस्तस्माज्जज्ञे लोकेषु तैजसम् ॥ २ ॥

सर्वभूतपति, देव और शिव कहलाते हैं ९५ हे भृगुकुलवर्धन राम ! उन पशुपति शंकरके यज्ञमें तप, यज्ञ, दीप्त व्रतधारी देवी दीक्षा दिशाएँ, दिशाओंके अधिपति, देवांगनायें देवकन्याएँ और देवमातृकाएँ ये सब एकत्रित हुई थीं ९६-९७ वे प्रसन्न होकर वरुणका स्वरूप धारण करने व ले महात्मा पशुपतिके यज्ञमें आई थीं उनको देखकर स्वयंभू ब्रह्माका वीर्य स्खलित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ९८ पूषाने धूलमें मिली हुई वीर्यबिन्दुओं को दोनों हाथोंमें उठा कर उस यज्ञकी अग्निमें होम दिया ९९ जिस समय प्रज्वलित पावकवाला यज्ञ चला रहा था और होता होम कर रहे थे, उस समय ब्रह्माजीका वीर्य प्रकट हुआ था १०० ब्रह्माजीका वीर्य जैसे ही नीचेको गिरा, तैसे ही पूषाने उस वीर्य को स्रुवेमें ग्रहण कर लिया और मन्त्र पढ़ कर घृतकी समान उसका पावकमें होम कर दिया १०१ उस वीर्यमेंसे चार प्रकारके प्राणियोंका समुदाय उत्पन्न हुआ, उस (त्रिगुणात्मक) वीर्यके रजोगुणप्रधान वीर्यमेंसे प्रवृत्तिप्रधान जंगम प्रजा उत्पन्न हुई १०२

तमसस्तामसा भावा व्यापि सत्वं तथोभयम् । सगुणस्तेजसो नित्यस्तस्य चाकाशमेव च ॥ ३ ॥ सर्वभूतेषु च तथा सत्वं तेजस्तथोत्तमम् । शुक्रे हुतेऽग्नौ तस्मिंस्तु प्रादुरासंस्त्रयः प्रभो ॥४॥ पुरुषा वपुषा युक्ताः स्वैः स्वैः प्रसवजैर्गुणैः । भृगित्येव भृगुः पूर्वमङ्गारेभ्योऽगिराभवत् ॥ ५ ॥ अङ्गारसंश्रयाच्चैव कविरित्यपरोऽभवत् । सह ज्वालाभिरुत्पन्नो भृगुस्तस्माद्भृगुः स्मृतः ॥६॥ मरीचिभ्यो मरीचिस्तु मारीचः कश्यपो ह्यभूत् । अङ्गारेभ्योऽगिरास्तात वालखिल्याः कुशोच्चयात् ॥ ७ ॥ अत्रैवात्रेति च विभो

वीर्यके तमोगुणी अंशमेंसे तामसी स्थावर प्रजा उत्पन्न हुई, सत्त्वगुण उन दोनोंमें व्याप्त था और वह तेजोरूप था, उसमेंसे तेजःस्वरूप बुद्धि उत्पन्न हुई, वह बुद्धिसत्त्व नित्य है और आकाशरूप है अर्थात् आकाश आदि सब विश्वरूप सत्त्वगुणसे आत्मरूप में परिणमित होजाता है ॥ १०३ ॥ इसलिये सब प्राणियोंमें सत्त्वगुण उत्तम तेजःस्वरूप है, हे प्रभो ! जब पावकमें वीर्यको होम किया गया था तब उसमेंसे तीन पुरुष उत्पन्न हुए थे १०४ वे देहधारी थे, अपनेको उत्पन्न करने वाले कारणोंके गुण उनमें विद्यमान थे, पावककी भृग्ज्वाला (अर्थात् पवित्र करने वाली ज्वाला) मेंसे जो प्रथम पुरुष उत्पन्न हुआ था उसका नाम भृगु हुआ, अङ्गारोंमेंसे जो पुरुष उत्पन्न हुआ उसका नाम अङ्गिरा हुआ ॥ १०५ ॥ और अङ्गारोंका आश्रय करके रहने वाली निर्धूम अल्पज्वालाओंसे जो पुरुष उत्पन्न हुआ उसका नाम कवि हुआ, भृगु पावककी ज्वालाओंमेंसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये उनका नाम भृगु हुआ । १०६॥ पावककी मरीचि (किरणों)मेंसे मरीचि नामक (ऋषि) उत्पन्न हुए, मरीचिमेंसे कश्यप उत्पन्न हुए, हे तात ! अङ्गारोंमेंसे अङ्गिरा उत्पन्न हुए, दर्भके समूहमेंसे वालखिल्य नामक ऋषि उत्पन्न हुए ॥ १०७ ॥ तथा "अत्र"

जातमत्रिं वदन्त्यपि। तथा भस्मव्यपोहेभ्यो ब्रह्मर्षिगणसंमताः ८
वैखानसाः समुत्पन्नास्तपःश्रुतगुणेप्सवः। अश्रुतोऽस्य समुत्पन्ना-
वश्विनौ रूपसंमतौ ॥ ९ ॥ शेषाः प्रजानां पतयः स्रोतोभ्यस्तस्य
जज्ञिरे। ऋषयो रोमकूपेभ्यः स्वेदाच्छन्दो बलान्मनः ॥ १० ॥
एतस्मात् कारणादाहुरग्निः सर्वास्तु देवताः। ऋषयः श्रुतसंपन्ना
वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥११॥ यानि दारूणि निर्यासास्ते मासाः
पक्षसंज्ञिताः। अहोरात्रा मुहूर्ताश्च पित्तं ज्योतिश्च दारुणम् ।१२।
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितात् कनकं स्मृतम्। तन्मैत्रमिति विज्ञेयं
धूमाच्च वसवः स्मृताः ॥१३॥ अर्चिषो याश्च ते रुद्रास्तथादित्या
महाप्रभाः। उद्दिष्टास्ते तथांगारा ये धिष्ण्येषु दिवि स्थिताः १४

पड़े हुए दर्भोंके समुदायसे जो उत्पन्न हुए वे अत्रि कहलाये, यज्ञकी भस्मराशिमेंसे ब्रह्मर्षियोंके मान्य, तपश्चरण, शास्त्रश्रवण तथा गुणोंको सम्पादन करनेकी इच्छा करने वाले वैखानस उत्पन्न हुए और अश्रुओंमेंसे रूपवान् अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए ॥ १०८।१०९ ॥ बाकी प्रजापति इस (पावक) के शरीरकी कान आदि इन्द्रियोंमेंसे उत्पन्न हुए हैं, पसीनेमेंसे छन्द उत्पन्न हुआ, वीर्यमेंसे मन उत्पन्न हुआ ॥ ११० ॥ इन सब कारणोंके कारण शास्त्रसम्पन्न ऋषि वेदके प्रमाणके अनुसार पावकको सर्वदेवमय कहते हैं ॥१११॥ पावकके निवासरूप काष्ठ मासरूप हैं, लाक्षादि काष्ठरस पक्षरूप हैं, पावकका पित्त दिवस और रात्रिरूप है, दारुण पावकका ज्योतिष मुहूर्तरूप है ॥ ११२ ॥ (पावकके) लोहितको रुद्रसम्बन्धी तत्त्व कहा है और उसके लोहितमेंसे सुवर्ण उत्पन्न हुआ है, यह प्रसिद्ध है, इस कनकको मैत्रदेवता कहते हैं, धूममेंसे वसु उत्पन्न हुए हैं॥११३॥पावककी अर्चिष्मेंसे रुद्र और महाकान्तिवाले आदित्य उत्पन्न हुए हैं, आकाशमें जो भिन्न २ स्थानोंमें ग्रह तारे और नक्षत्रोंके रूपमें

आदिकर्ता च लोकस्य तत् परं ब्रह्म तद् ध्रुवम् । सर्वकामदमित्याहुस्तद्रहस्यमुवाच ह ॥ १५ ॥ ततोऽब्रवीन्महादेवो वरुणः पवनात्मकः । मम सत्रमिदं दिव्यमहं गृहपतिस्त्विह ॥ १६ ॥ त्रीणि पूर्वाण्यपत्यानि मम तानि न संशयः । इति जानीत खगमा मम यज्ञफलं हि तत् ॥१७॥ अग्निरुवाच । मदंगेभ्यः प्रसूतानि मदाश्रयकृतानि च । ममैव तान्यपत्यानि वरुणो ह्यवशात्मकः १८ अथाब्रवील्लोकगुरुर्ब्रह्मा लोकपितामहः । ममैव तान्यपत्यानि मम शुक्रं हुतं हि तत् ॥ १९ ॥ अहं कर्ता हि सत्रस्य होता शुक्रस्य चैव ह । यस्य बीजं फलं तस्य शुक्रं चेत् कारणं मतम् ॥२०॥ ततोऽब्रुवन् देवगणाः पितामहमुपेत्य वै । कृतांजलिपुटाः सर्वे

रहते हैं वे पावकके अङ्गारोंमेंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ११४ ॥ पावक जगत्का आदिकर्ता है, वह परब्रह्मरूप है, ध्रुवरूप है, सब प्रकार की कामनाओंको देने वाला है, यह गुप्त बात ऋषियोंने कही है ॥११५॥ प्रजा उत्पन्न होने पर पवनरूप और वरुणरूप महादेवने कहा, कि-"यह दिव्य यज्ञ मेरा है और मैं गृहपति हूँ ११६ पहिले जो तीन सन्तान उत्पन्न हुई हैं वे मेरी हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, हे आकाशचारियों ! इस प्रकार मेरे ही यज्ञका फल हुआ है ॥ ११७ ॥ पावकने कहा, कि-ये सन्तान मेरे अङ्गोंमेंसे उत्पन्न हुई है मेरा आश्रय करने वाली है और मेरी ही सन्तान है, वरुणरूप शंकर तो भूल कर रहे हैं ॥११८॥ तदनन्तर लोकगुरु और लोकपितामह ब्रह्माजीने कहा, कि-ये सन्तान तो मेरी हैं, क्योंकि-पावकमें मेरे वीर्यको होमा गया था ॥ १९ ॥ यज्ञों का कर्ता मैं हूँ, उसमें वीर्यका होम करने वाला भी मैं हूँ, यदि प्रजाको उत्पन्न करनेमें वीर्यको कारण माना जाता है तो जिसका बीज हो उसका ही फल मानना चाहिये १२० तदनन्तर सब देवता पितामहके पास जा दोनों हाथ जोड़ उनको मस्तक

शिरोभिरभिवंद्य च ॥ २१ ॥ वयं च भगवन् सर्वे जगच्च सच-
राचरम् । तवैव प्रसवाः सर्वे तस्मादग्निर्विभावसुः २२ वरुणश्चे-
श्वरो देवो लभतां काममीप्सितम् । निसर्गाद्ब्रह्मणश्चापि वरुणो
यादसां पतिः ॥ २३ ॥ जग्राह वै भृगुं पूर्वमपत्यं सूर्यवर्चसम् ।
ईश्वरोंगिरसं चाग्नेरपत्यार्थमकल्पयत् ॥ २४ ॥ पितामहस्त्वपत्यं
वै कविं जग्राह तत्त्ववित् । तदा स वारुणः ख्यातो भृगुः प्रसव-
कर्मकृत् ॥२५॥आग्नेयस्त्वंगिराः श्रीमान् कविर्ब्राह्मो महायशाः ।
भार्गवांगिरसौ लोके लोकसंतानलक्षणौ ॥२६॥ एते हि प्रसवाः
सर्वे प्रजानां पतयस्त्रयः । सर्वं संतानमेतेषामिदमित्युपधारय २७
भृगोस्तु पुत्राः सप्तासन् सर्वे तुल्या भृगोर्गुणैः । च्यवनो वज्र-

झुका प्रणाम करके कहने लगे, कि--॥ २१ ॥ हे भगवन् ! हम
तथा स्थावरजंगमात्मक जगत् ये सब आपकी ही प्रजा हैं, अतः
प्रकाशवाले पावकदेव और वरुणरूपधारी शंकरको अपनी
इच्छानुसार प्रजाको ग्रहण करने दीजिये, तदनन्तर ब्रह्माजी
की आज्ञासे जलचरोंके स्वामी वरुणरूप शंकरने सूर्यकी
समान कान्तिवाले प्रथम पुत्र भृगुको ग्रहण किया और
ईश्वरने अङ्गिरसको पावकका पुत्र ठहराया ॥ २२-२४ ॥
फिर तत्वज्ञ पितामहने कविको अपने पुत्ररूपमें ग्रहण किया, उस
दिनसे प्रसवका कर्म करने वाले भृगु वारुण नामसे प्रसिद्ध हुए
हैं ॥ १२५ ॥ अङ्गिरा अग्निके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुए हैं और
महायशस्वी कवि ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुए हैं तथा भार्गव
और आंगिरस संसारमें सन्तानलक्षण हुए हैं ॥ १२६ ॥ ये
तीन प्रजापति हैं और सम्पूर्ण जगत् इनकी सन्तानरूप है, यह
आप समझ लीजिये ॥ १२७ ॥ भृगुके सात पुत्र थे, वे सब
भृगुकी समान गुणी थे, उनके नाम इस प्रकार हैं च्यवन वज्र-
शीर्ष शुचि और्व शुक्र वरेण्य और सवन ये सातों भृगुके पुत्र

शीर्षश्च शुचिरौर्वस्तथैव च ॥ २८ ॥ शुक्रो वरेण्यश्च विभुः सवनश्चेति सप्त ते । भार्गवा वारुणाः सर्वे येषां वंशे भवानपि २९ अष्टौ चांगिरसः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः । बृहस्पतिरुतथ्यश्च पयस्यः शांतिरेव च ॥ ३० ॥ घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः । एतेऽष्टौ वह्निजाः सर्वे ज्ञाननिष्ठा निरामयाः ३१ ब्रह्मणस्तु कवेः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः । अष्टौ प्रसवजैर्युक्ता गुणैर्ब्रह्मविदः शुभाः ३२ कविः काव्यश्च धृष्णुश्च बुद्धिमानुशनास्तथा। भृगुश्च विरजाश्चैव काशी चोग्रश्च धर्मवित् ॥३३॥ अष्टौ कविसुता ह्येते सर्वमेभिर्जगत्ततम् । प्रजापतय एते हि प्रजाभागैरिह प्रजाः ॥ ३४ ॥ एवमंगिरसश्चैव कवेश्च प्रसवान्वयैः भृगोश्च भृगुशार्दूल वंशजैः सततं जगत् ॥ ३५ ॥ वरुणश्चाद्वितो विप्र जग्राह प्रभुरीश्वरः । कविं तात भृगुं चापि तस्मात्तौ वारुणौ स्मृतौ ॥ ३६ ॥ जग्राहांगिरसं देवः शिखी तस्माद्धुताशनः ।

भार्गव और वारुण नामसे प्रसिद्ध हैं और आप भी इनके ही वंशमें हैं ॥ १२८॥१२९ ॥ अङ्गिराके बृहस्पति उतथ्य पयस्य शान्ति घोर विरूप सम्वर्त और सुधन्वा नामक ज्ञाननिष्ठ और रागरहित आठ पुत्र थे, ये भी वारुण कहलाते हैं १३०-१३१ ब्रह्माजीके पुत्र कविके पवित्र आचरण वाले सन्तानवान् और ब्रह्मवेत्ता आठ पुत्र थे, वे भी वारुण कहलाते थे ॥ १३२ ॥ कविके कवि काव्य धृष्णु बुद्धिमान् उशना भृगु विरजा काशी और धर्मात्मा उग्रनामक आठ पुत्र थे, इनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है, ये सब प्रजापति हैं और इन्होंने प्रजाकी उत्पत्तिमें भाग लिया है ॥ १३३-१३४ ॥ हे भृगुशार्दूल ! इस प्रकार अङ्गिरा कवि और भृगुके वंशमें उत्पन्न हुए वंशजोंसे ही सारा जगत् भर रहा है ॥ १३५ ॥ ऐश्वर्यवान् प्रभु वरुण रूपधारी शंकरने पहिले कवि और भृगुको ग्रहण किया था, इसलिये यह

तस्मादांगिरसा ज्ञेयाः सर्व एव तदन्वयाः ॥३७॥ ब्रह्मा पितामहः पूर्वं देवताभिः प्रसादितः । इमे नः संतरिष्यन्ति प्रजाभिर्जगतीश्वराः ॥ ३८ ॥ सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चातितपस्विनः । त्वत्प्रसादादिमं लोकं तारयिष्यन्ति सांप्रतम् ॥३९॥ तथैव वंशकर्तारस्तव तेजोविवर्धनाः। भवेयुर्वेदविदुषः सर्वे च कृतिनस्तथा४० देवपक्षचराः सौम्याः प्राजापत्या महर्षयः । आप्नुवंति तपश्चैव ब्रह्मचर्यं परं तथा ॥४१॥ सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसवः प्रभो। देवानां ब्राह्मणानां च त्वं हि कर्ता पितामह ४२ मारीचमादितः कृत्वा सर्वे चैवाथ भार्गवाः । अपत्यानीति संप्रेक्ष्य क्षमयाम पितामह ॥ ४३ ॥ ते त्वनेनैव रूपेण प्रजनिष्यन्ति वै प्रजाः ।

दोनों वारुण कहलाते हैं ॥ १३६ ॥ और उन देवसे ज्वाला वाले अग्निदेवने अङ्गिराको ग्रहण किया था, इसलिये अङ्गिराके सब वंशजोंको अग्निके वंशज समझना चाहिये१३७एक समय देवताओंने पितामह ब्रह्माजीको प्रसन्न कर कहा, कि-" ये जगदीश्वर प्रजापति सन्तान उत्पन्न करके हमारा उद्धार करें १३८ ये सब प्रजापति हैं सब अतितपस्वी हैं, आपकी कृपासे इस समय ये संसारका उद्धार कर सकते हैं १३९ ये सब प्रजापति वंशकी वृद्धि और तुम्हारे तेजमें वृद्धि करें सब वेदवेत्ता होजाँय और सब वेदोक्त कर्म करें ॥ १४० ॥ देवताओंके पक्षमें रहें, शान्तस्वभाव रहें और ये महर्षि प्रजापति ब्रह्मचर्यका व्रत धारण कर तपस्या भी करें४१ हे प्रभो ! हम और ये प्रजापति आपकी ही प्रजा हैं,हे पितामह ! आप देवताओंके और ब्राह्मणोंके कर्त्ता हैं ॥४२॥ हे पितामह ! मरीचिसे भृगु तकके सब वंशज आपके ही पुत्र हैं,यह विचार कर हम परस्परमें क्षमापूर्वक वर्ताव करते हैं और अपने उत्कर्षके लिये दूसरेका पराभव नहीं करते हैं ।४२। यह प्रजापति इस प्रकार प्रजाको उत्पन्न करें और युग के आरंभ

स्थापयिष्यन्ति चात्मानं युगादिनिधने तथा ॥ ४४ ॥ इत्युक्तः स तदा तैस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः । तथेत्येवाब्रवीत् प्रीतस्तेऽपि जग्मुर्यथागतम् ॥४५॥ एवमेतत् पुरा वृत्तं तस्य यज्ञे महात्मनः। देवश्रेष्ठस्य लोकादौ वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ४६ ॥ अग्निर्ब्रह्मा पशुपतिः शर्वो रुद्रः प्रजापतिः । अग्नेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा ॥ ४७ ॥ अग्न्यभावे च कुरुते वन्हिस्थानेषु काञ्चनम् । जामदग्न्यः प्रमाणज्ञो वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥४८॥ कुशस्तंबे जुहोत्यग्निं सुवर्णे तत्र च स्थिते । वाल्मीकस्य वपायां च कर्णे वाजस्य दक्षिणे ॥४९॥ शकटोर्व्यां परस्याप्सु ब्राह्मणस्य करे तथा। हुते प्रीतिकरीमृद्धिं भगवांस्तत्र मन्यते ॥ ५० ॥ तस्मादग्निपराः

के समयसे प्रलय होने तक अपनेको (और अपनी प्रजाको) स्थिर रक्खें इस प्रकारकी वररूप आज्ञा दीजिये ॥ ४४ ॥ उन देवताओंके इस प्रकार कहने पर लोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा 'तथास्तु' तब देवता इच्छानुसार चले गए ॥ ४५ ॥ इस प्रकार सृष्टिके आरंभमें वरुणका शरीर धारण करने वाले देवश्रेष्ठ महात्मा शंकरके यज्ञमें घटना हुई थीं ॥ ४६ ॥ अग्नि ब्रह्मा पशुपति शर्व रुद्र प्रजापतिरूप हैं और सुवर्ण अग्निकी सन्तान है, यह शास्त्रमें निर्णय किया है ।४७। जहाँ अग्नि न मिले तहाँ निम्न लिखित वेदकी श्रुतिके अनुसार हे जमदग्नि पुत्र परशुराम ! अग्निके स्थानमें सुवर्णका उपयोग किया जाता है "अग्नावनुगतेऽन्तरा आहुती हिरण्यं उत्तरां जुहुयात्' इति कल्पकारः ॥ ४८ ॥ कुशोंके स्तम्ब पर, सुवर्णके टुकड़े पर, बमईके मुख पर और बकरेके दाहिने कान पर उनको अग्नि मान कर होम किया जाता है ॥४९॥ यदि सपाट भूमि तीर्थके जल और ब्राह्मणके हाथ पर होम किया जाता है तो भगवान् अग्नि प्रसन्न होते हैं और अपनी तथा देवताओंकी

सर्वे देवता इति शुश्रुम । ब्रह्मणो हि प्रभूतोऽग्निरग्नेरपि च काञ्चनम् ॥ ५१ ॥ तस्माद्ये वै प्रयच्छंति सुवर्णं धर्मदर्शिनः । देवतास्ते प्रयच्छंति समस्ता इति नः श्रुतम् ॥ ५२ ॥ तस्य चातमसो लोका गच्छतः परमां गतिम् । स्वर्लोके राजराज्येन सोऽभिषिच्येत भार्गव ॥ ५३ ॥ आदित्योदयसंप्राप्ते विधिमंत्रपुरस्कृतम् । ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः ॥ ५४ ॥ ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विधूयते । मध्यान्हे ददतो रुक्मं हंति पापमनागतम् ॥ ५५ ॥ ददाति पश्चिमां सन्ध्यां यः सुवर्णं यतव्रतः । ब्रह्मवाय्वग्निसोमानां सालोक्यमुपयाति सः ॥ ५६ ॥ सेंद्रेषु चैव लोकेषु प्रतिष्ठां विन्दते शुभाम् । इह लोके यशः प्राप्य शांतपाप्मा च मोदते ॥ ५७॥ ततः संपद्यतेऽन्येषु लोकेष्वप्रतिमः

ऋद्धि मानते हैं ॥ १५० ॥ इस लिये हमने सुना है, कि—सब देवता पावकपर हैं पावक ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुआ है और पावक से सुवर्ण उत्पन्न हुआ है ॥५१॥ इस कारण हमने यह सुना है, कि जो धर्मदर्शी पुरुष सुवर्णका दान देते हैं, वे सम्पूर्ण देवताओंका ही दान देते हैं ॥५२॥ सुवर्णका दान देने वालेको परम गति मिलती है और प्रकाशवान् लोक मिलते हैं तथा हे भृगुपुत्र! उसका स्वर्गमें कुबेरके पद पर अभिषेक किया जाता है । ५३ । जो पुरुष सूर्योदयके समय विधिपूर्वक मन्त्र पढ़ कर सुवर्णका दान देता है उसको दुःस्वप्नका फल नहीं मिलता है ॥ ५४ ॥ जो पुरुष सूर्योदय होने पर सुवर्णका दान देता है उसके पाप नष्ट होजाते हैं और जो पुरुष मध्यान्हके समय सुवर्णका दान देता है उसके भविष्यकालके पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ५५ ॥ जो पुरुष व्रत धारण करके सायंकालके समय सुवर्णका दान देता है वह पुरुष ब्रह्मा वायु पावक और सोमके लोकमें जाता है ५६ और इन्द्र आदि लोकोंमें और इस लोकमें यशस्वी होता है तथा

सदा। अनावृतगतिश्चैव कामचारो भवत्युत ॥ ५८ ॥ न च क्षरति तेभ्यश्च यशश्चैवाप्नुते महत्। सुवर्णमक्षयं दत्वा लोकांश्चाप्नोति पुष्कलान् ॥ ५९ ॥ यस्तु संजनयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति। दद्याद्वै व्रतमुद्दिश्य सर्व्वकामान् समश्नुते ॥ ६० ॥ अग्निमित्येव तत्प्राहुः प्रदानं च सुखावहम्। यथेष्टगुणसंवृत्तं प्रवर्तकमिति स्मृतम् ॥ ६१ ॥ एषा सुवर्णस्योत्पत्तिः कथिता ते मयानघ। कार्तिकेयस्य च विभो तद्विद्धि भृगुनन्दन ॥ ६२ ॥ कार्तिकेयस्तु संवृद्धो कालेन महता तदा। देवैः सेनापतित्वेन वृतः सेन्द्रैर्भृगूद्वह ॥ ६३ ॥ जघान तारकं चापि दैत्यमन्यांस्तथा सुरान्। त्रिदशेन्द्राज्ञया ब्रह्मँल्लोकाना हितकाम्यया ॥ ६४ ॥

पापरहित होकर सुख भोगता है ५७ तथा मृत्युके पीछे दूसरे लोकोंमें सदा प्रतिष्ठित होकर रहता है, उसकी गति अप्रतिहत रहती है ५८ सुवर्णका दान देने वालेको स्वर्ग आदि लोकोंमेंसे इस लोकमें आना नहीं पड़ता और वह महायशस्वी होता है और जो पुरुष बहुतसे सुवर्णका दान देता है उस पुरुषको बहुतसे लोक मिलते हैं ॥ ५९ ॥ जो पुरुष किसी व्रतका नियम लेकर प्रातःकाल पावकको प्रकट करके उसके सामने सुवर्णका दान देता है, वह पुरुष सब कामनाओंको पाता है ६० सुवर्णको ही पावक कहते हैं और सुवर्णका दान देनेसे सुख मिलता है और सुवर्ण यथेष्ट गुणोंसे व्याप्त है और वह लोकव्यवहारका प्रवर्तक है ६१ हे विभो भृगुनन्दन! इस प्रकार मैंने आपसे सुवर्णकी और कार्तिकेयकी उत्पत्ति कही, इसको आप ध्यानमें रखिये ६२ हे भृगुकुलकी वृद्धि करने वाले राम! बहुत समय बाद कार्तिकेय बड़े होगए तब इन्द्र आदि देवताओंने उनको अपना सेनापति बना लिया ६३ हे ब्रह्मन्! उन्होंने लोकोंका हित करनेकी इच्छासे तथा इन्द्रकी आज्ञासे तारक नामक दैत्यको तथा दूसरे दैत्योंको

सुवर्णदाने च मया कथितास्ते गुणा विभो । तस्मात् सुवर्णं विप्रेभ्यः प्रयच्छ ददतां वर ॥ ६५ ॥ भीष्म उवाच । इत्युक्तः स वसिष्ठेन जामदग्न्यः प्रतापवान् । ददौ सुवर्णं विप्रेभ्यो व्यमुच्यत च किल्बिषात् ॥ ६६ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं सुवर्णस्य महीपते । प्रदानस्य फलं चैव जन्म चास्य युधिष्ठिर । १६७॥ तस्मात्त्वमपि विप्रेभ्यः प्रयच्छ कनकं बहु । ददत् सुवर्णं नृपते किल्बिषाद्विप्रमोक्ष्यसि ॥ १६८ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुवर्णोत्पत्तिर्नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

युधिष्ठिर उवाच । उक्ताः पितामहेनेह सुवर्णस्य विधानतः । विस्तरेण प्रदानस्य ये गुणाः श्रुतिलक्षणाः ॥ १ ॥ यत्तु कारणमुत्पत्तेः सुवर्णस्य प्रकीर्तितम् । स कथं तारकः प्राप्तो निधनं तद्ब्रवीहि मे २ उक्तं स दैवतानां हि अवध्य इति पार्थिव । कथं

मार डाला ६४ हे विभो ! मैंने आपसे सुवर्णदानके गुण कहे, इस लिये हे दान देने वालोंमें श्रेष्ठ ! ब्राह्मणोंको सुवर्णका दान दीजिये ६५ भीष्मजीने कहा,कि–हे युधिष्ठिर ! प्रतापी परशुराम से वशिष्ठजीने यह बात कही तब वे ब्राह्मणोंको सुवर्णका दान देकर पापोंसे मुक्त होगए ६६ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार मैंने तुमसे सुवर्णके गुण कहे और उसके दानका फल कहा तथा उसकी उत्पत्ति कही ६७ अतः तू ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दे हे नरपते ! सुवर्णका दान देने वाला पापसे मुक्त होजाता है ६८ पिचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा,कि–हे भीष्मपितामह ! आपने सुवर्णके दान देनेके शास्त्रोक्त गुण विस्तारपूर्वक कहे ॥ १ ॥ और सुवर्णकी उत्पत्तिका जो कारण है, वह भी आपने कहा,अब आप मुझसे "तारकासुर किस प्रकार मारा गया था" उसका वृत्तान्त सुना-

तस्याभवन्मृत्युर्विस्तरेण प्रकीर्तय ३ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तः कुरुकुलोद्वह । कार्त्स्न्येन तारकवधं परं कौतूहलं हि मे ४ भीष्म उवाच । विपन्नकृत्या राजेन्द्र देवता ऋषयस्तथा । कृत्तिकाश्चोदयामासुरपत्यभरणाय वै ॥ ५ ॥ न देवतानां काचिद्धि समर्था जातवेदसः । एता हि शक्तास्तं गर्भं संधारयितुमोजसा ॥ ६ ॥ षण्णां तासां ततः प्रीतः पावको गर्भधारणात् । स्वेन तेजोविसर्गेण वीर्येण परमेण च ॥ ७ ॥ तास्तु षट् कृत्तिका गर्भं पुपुषुर्जातवेदसः । षट्सु वर्त्मसु तेजोऽग्नेः सकलं निहितं प्रभो ॥८॥ ततस्ता वर्धमानस्य कुमारस्य महात्मनः । तेजसाभिपरीताङ्ग्यो न क्वचिच्छर्म लेभिरे ॥ ९ ॥ ततस्तेजःपरीताङ्ग्यः सर्वाः काल उप-

---

इये ॥२॥ हे पार्थिव ! आपने उसको देवताओंसे अवध्य बताया था, तब भी उसकी मृत्यु क्यों होगई, इसका आप विस्तारसे वर्णन करिये ॥ ३ ॥ हे कुरुकुलोद्वह ! मुझे तारकासुरके वधका परम कुतूहल होरहा है, अतः मैं आपसे इसका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे राजेन्द्र ! गंगाजीके गर्भको डाल देने पर देवता और ऋषियोंका कार्य जब नष्ट होने लगा, तब उन्होंने पुत्रका पोषण करनेके लिये कृत्तिकाओंको प्रेरित किया ॥५॥ क्योंकि और कोई दिव्य स्त्री पावकके गर्भको धारण करनेमें समर्थ नहीं थीं और ये उसको बलपूर्वक धारण करनेमें समर्थ थीं ॥६॥ जब इन छः कृत्तिकाओंने पावकके तेज वाले और परम वीर्य वाले उस गर्भको धारण कर लिया तब पावक उन छहों कृत्तिकाओं पर प्रसन्न होगया ॥७॥ हे प्रभो ! उन छहोंने (गरुड़ीका रूप धारण करके) छः (मुख)मार्गोंसे उस तेजका पान कर लिया इस प्रकार वे छः कृत्तिकायें पावकके गर्भको धारण कर उसका पोषण करने लगीं ॥ ८ ॥ परन्तु उस बढ़ते हुए महात्मा कुमारके तेजके अपने शरीरमें चारों ओर फैल

स्थिते । समं गर्भं सुषुविरे कृत्तिकास्तं नरर्षभ ॥ १० ॥ ततस्तं षडधिष्ठानं गर्भमेकत्वमागतम् । पृथिवी प्रतिजग्राह कार्तस्वरसमीपतः ॥११॥ स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान् पावकप्रभः । दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः ॥१२॥ ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम् । जातस्नेहाच्च सौहार्दात् पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः ॥ १३ ॥ अभवत् कार्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे । स्कन्नत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद्गुहोऽभवत् ॥१४॥ ततो देवास्त्रयस्त्रिंशद्दिशश्च सदिगीश्वराः । रुद्रो धाता च विष्णुश्च यमः पूषार्यमा भगः ॥ १५ ॥ अंशो मित्रश्च साध्याश्च वासवो वसवोऽश्विना । आपो वायुर्नभश्चन्द्रो नक्षत्राणि ग्रहा रविः ॥ १६ ॥

जाने पर उसको सह न सकीं ॥९॥ हे नरर्षभ ! तब समय आने पर उन तेजःपरीतांगी सब कृत्तिकाओंने एक साथ गर्भको उत्पन्न किया १० तदनन्तर वह छः स्थानोंमें बँटा हुआ गर्भ एकत्रित होगया और सुवर्णके ऊपरसे पृथ्वीने उसको ग्रहण करलिया ११ उस गर्भके सब अवयव दिव्य थे, वह स्वयं दीप्तिमान् था, उसकी कान्ति पावककी समान थी और उसका दिखाव मनोहर था, वह शरों (सैंटों)के दिव्य वनमें बड़ा होने लगा १२ उस सूर्यकी समान कांतिवाले बालकको देखकर कृत्तिकाओंकोभी उसपर स्नेह उत्पन्न होगया और वे उसको सुहृद्भावसे दूध पिला कर उसका पालन करने लगीं तदनन्तर वह कुमार स्थावरजङ्गमात्मक त्रिलोकीमें कार्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध होगया, शंकरके स्खलित वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम स्कन्द हुआ और गुफामें वास करनेके कारण वह गुह कहलाया १४तब तैंतीस देवतायें दिशायें दिशाओं के अधिपति रुद्र धाता विष्णु यम पूषा अर्यमा भग , अंश मित्र साध्य वासव वसु अश्विनीकुमार जल वायु आकाश चन्द्रमा नक्षत्र ग्रह सूर्य तथा देवताओंको बलि देनेके भिन्न२ साधनरूप

पृथग्भूतानि चान्यानि यानि देवार्पणानि वै। आजग्मुस्तेऽद्भुतं द्रष्टुं कुमारं ज्वलनात्मजम् ॥ १७ ॥ ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव गन्धर्वाश्च जगुस्तथा। षडाननं कुमारं तु द्विषडक्षं द्विजप्रियम् ॥ १८ ॥ पीनांसं द्वादशभुजं पावकादित्यवर्चसम्। शयानं शरगुल्मस्थं दृष्ट्वा देवाः सहर्षिभिः ॥ १९ ॥ लेभिरे परमं हर्षं मेनिरे चासुरं हतम्। ततो देवाः प्रियाण्यस्य सर्व एव समाहरन् ॥ २० ॥ क्रीडतः क्रीडनीयानि ददुः पक्षिगणाश्च ह। सुपर्णोस्य ददौ पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् २१ राक्षसाश्च ददुस्तस्मै वराहमहिषावुभौ। कुक्कुटं चाग्निसंकाशं प्रददावरुणः स्वयम् ॥ २२ ॥ चन्द्रमाः प्रददौ मेषमादित्यो रुचिरां प्रभाम्। गवां माता च गा देवी ददौ शतसहस्रशः ॥ २३ ॥ छागमग्निर्गुणोपेतमिला पुष्पफलं बहु।

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद अद्भुत दृश्य वाले पावकके पुत्र कुमारको देखने आये ॥ १५-१७ ॥ ऋषि उस कुमारकी स्तुति करने लगे, गन्धर्व उनका गान करने लगे, देवता तथा ऋषि उस दर्भवनमें सोते हुए बालकके छः मुख और बारह नेत्रोंका देखकर तथा उसके स्थूल खम्भे, बारह भुजायें और आदित्यकी समान कान्तिको देखकर परमहर्षित हुए और असुरको नष्ट हुआ ही समझने लगे, तदनन्तर सब देवता उस कुमारको मनमानी भेंट देने लगे १८-२० जिस समय कुमार क्रीड़ा कर रहे थे उस समय पक्षियोंने उनको खिलौने दिये, गरुड़ने कुमारको विचित्र पक्ष वाला एक मोरका बच्चा दिया २१ राक्षसोंने उनको वराह और महिष दिये और अरुणने पावककी समान रक्तवर्णका एक मुरगा दिया २२ चन्द्रमाने एक मेंढा दिया, सूर्यने मनोहर क्रान्ति दी, गौओंकी माता सुरभिने एक लाख गौएँ दीं २३ पावकने गुणसम्पन्न बकरा दिया पृथ्वी ने बहुतसे पुष्प और फल दिये, सुधन्वाने शकट और महाकूबर

सुधन्वा शकटं चैव रथं चामितकूबरम् ॥ २४ ॥ वरुणो वारुणान्दिव्यान् स गजान् प्रददौ शुभान्। सिंहान् सुरेन्द्रो व्याघ्रांश्च द्विपानन्यांश्च पक्षिणः ॥ २५ ॥ श्वापदांश्च बहून् घोरांश्छत्राणि विविधानि च । राक्षसासुरसंघाश्च अनुजग्मुस्तमीश्वरम् ।२६। वर्धमानं तु तं दृष्ट्वा प्रार्थयामास तारकः । उपायैर्बहुभिर्हन्तुं नाशकच्चापि तं विभुम् ॥ २७ ॥ सैनापत्येन तं देवाः पूजयित्वा गुहालयम् । शशंसुर्विप्रकारं तं तस्मै तारककारितम् ॥ २८ ॥ स विवृद्धो महावीर्यो देवसेनापतिः प्रभुः । जघानामोघया शक्त्या दानवं तारकं गुहः ॥ २९ ॥ तेन तस्मिन् कुमारेण क्रीडता निहतेऽसुरे । सुरेन्द्रः स्थापितो राज्ये देवानां पुनरीश्वरः ॥३०॥ स सेनापतिरेवाथ बभौ स्कन्दः प्रतापवान्। ईशो गोप्ता च देवानां

वाला रथ दिया २४ वरुणने उत्तम घोड़े और हाथी दिये, इन्द्रने सिंह व्याघ्र तथा पक्षी दिये २५ तथा बहुतसे हिंसक और भयंकर प्राणी दिये और नानाप्रकारके छत्र दिये, उस समय बहुतसे राक्षस और असुर समर्थ कुमारके पीछे पीछे चलनेलगे ॥ २६ ॥ उस कुमारको बड़ा होता हुआ देख कर तारकने उसको मारनेके लिये बहुतसे उपाय किये, परन्तु उस व्यापक कुमारको वह मार न सका २७ तदनन्तर देवताओंने गुफामें रहने वाले उस कुमारका सेनापतिके पद पर अभिषेक कर दिया फिर सत्कार देवताओंने करके तारकका किया हुआ अशुभ उनसे कहा २८ यह सुन कर उस अवस्थामें प्राप्त हुए महावीर्यवान् देवसेनापति गुहनामक कुमारने अमोघ शक्ति मार कर तारक नामक दानवको मार डाला २९ कुमारने खेल २ में तारकासुरको मार कर ईश्वर सुरेन्द्रका देवराज्य पर फिर अभिषेक कर दिया ॥ ३० ॥ उस समय ईश, रक्षक, देवताओंका तथा शंकरका प्रिय करने

प्रियकृच्छंकरस्य च ॥ ३१ ॥ हिरण्यमूर्तिर्भगवानेष एव च पावकिः । सदा कुमारो, देवानां सैनापत्यमवाप्तवान् ॥ ३२ ॥ तस्मात् सुवर्णं मंगल्यं रत्नमक्षय्यमुत्तमम् । सहजं कार्तिकेयस्य वह्नेस्तेजः परं मतम् ॥३३॥ एवं रामाय कौरव्य वसिष्ठोऽकथयत् पुरा । तस्मात् सुवर्णदानाय प्रयतस्व नराधिप ॥ ३४ ॥ रामः सुवर्णं दत्त्वा हि विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः । त्रिविष्टपे महत् स्थानमवापासुलभं नरैः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे तारकवधोपाख्यानं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

युधिष्ठिर उवाच । चातुर्वर्ण्यस्य धर्मात्मन् धर्माः प्रोक्ता यथा त्वयि । तथैव मे श्राद्धविधिं कृत्स्नं प्रब्रूहि पार्थिव ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । युधिष्ठिरेणैवमुक्तो भीष्मः शान्तनवस्तदा । इमं

वाले देवसेनापति प्रतापी स्कन्द शोभा पाने लगे ३१ उस समय से हिरण्यमूर्तिरूप पावकपुत्र कुमार सदाके लिये देवसेनापति होगए ३२ इस प्रकार सुवर्ण मङ्गल करने वाला, अविनाशी और उत्तम रत्न माना जाता है, कार्तिकेयके साथ उत्पन्न हुआ है और उसको पावकका उत्तम तेज माना है ३३ हे कुरुकुलोत्पन्न राजन्! इस प्रकार पहिले वशिष्ठजीने परशुरामजीसे सुवर्णकी उत्पत्ति कही अतः तू सुवर्णका दान देनेका प्रयत्न कर ३४ परशुराम सुवर्णका दान देकर सब पापोंमेंसे मुक्त होगए थे और (इसके फलसे) उन्होंने मनुष्योंको दुर्लभ बड़ा भारी स्थान पाया था ३५ छियासीवाँ अध्यास समाप्त ८६

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे धर्मात्मन्! आपने चारों वर्णोंके धर्मों का मुझसे वर्णन किया, हे पार्थिव! अब आप मुझसे श्राद्धकी विधि पूर्णरीतिसे कहिये १ वैशम्पायनने कहा कि-इस प्रकार राजा युधिष्ठिरने शंतनुके पुत्र भीष्मजीसे प्रश्न किया, तब उन्होंने

श्राद्धविधिं कृत्स्नं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । शृणुष्वावहितो राजञ्छ्राद्धकर्मविधिं शुभम् । धन्यं यशस्यं पुत्रीयं पितृयज्ञं परन्तप ॥ ३ ॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । पिशाचकिन्नराणां च पूज्या वै पितरः सदा ॥ ४ ॥ पितॄन् पूज्यादितः पश्चाद्देवतास्तर्पयन्ति वै । तस्मात्तान् सर्वयज्ञेन पुरुषः पूजयेत् सदा ॥ ५ ॥ अन्वाहार्यं महाराज पितॄणां श्राद्धमुच्यते । तस्माद्विशेषविधिना विधिः प्रथमकल्पितः ॥ ६ ॥ सर्वेष्वहःसु प्रीयन्ते कृते श्राद्धे पितामहाः । प्रवक्ष्यामि तु ते सर्वांस्तिथ्यातिथ्यगुणागुणान् ॥ ७ ॥ येष्वहःसु कृतैः श्राद्धैर्यत्फलं प्राप्यतेऽनघ ।

श्राद्धकी सारी विधि कहनेका आरम्भ किया २ भीष्मजीने कहा, कि–हे राजन् ! तू सावधान होकर श्राद्धकर्मकी शुभविधिको सुन हे शत्रुन्तप राजन् ! पितृयज्ञ अर्थात् श्राद्ध धन देने वाला यश देने वाला और पुत्र देने वाला है ३ पितरोंकी देवता असुर मनुष्य गन्धर्व सर्प राक्षस पिशाच और किन्नरोंको सदा पूजा करनी चाहिये ४ पहिले पितरोंकी पूजा करके फिर देवताओंकी पूजा करते हैं,इस लिये पुरुषको सब यज्ञोंमें सदा उनकी पूजा करनी चाहिये(नीलकण्ठने इस श्लोकके"आदितः,,शब्दको लक्ष्य करके यह अर्थ लिखा है, कि–अमावास्याके दिन पितरोंकी पूजा करके फिर पक्षकी आदि अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके दिन देवताओं की पूजा करनी चाहिये) ५ हे महाराज ! पितरोंका श्राद्ध अन्वाहार्य (अर्थात् जिस दिन चन्द्रमा नहीं दीखता है उस दिन अपरान्हमें पिण्डपितृयज्ञ) कहलाता है, इस विशेष विधिके कारण इस विधिकी प्रथम कल्पना की है ॥६॥ सब दिन श्राद्ध करनेसे पितर प्रसन्न होते हैं, अब मैं तुमसे श्राद्ध करने योग्य तिथियोंके गुणोंको और श्राद्ध न करने योग्य तिथियोंके दोषोंको कहूँगा ७ हे निर्दोष राजन् ! जिन दिनोंमें

तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि यथावत्तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ पितॄनर्च्य प्रतिपदि प्राप्नुयात् स गृहे स्त्रियः। अभिरूपप्रजायिन्यो दर्शनीया बहुप्रजाः ॥९॥ स्त्रियो द्वितीयां जायन्ते तृतीयायां तु वाजिनः । चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवो भवन्ति बहवो गृहे ॥ १० ॥ पंचम्यां बहवः पुत्रा जायन्ते कुर्वतां नृप । कुर्वाणास्तु नराः षष्ठ्यां भवन्ति द्युतिभागिनः ॥ ११ ॥ कृषिभागी भवेच्छ्राद्धं कुर्वाणः सप्तमीं नृप । अष्टम्यां तु प्रकुर्वाणो वाणिज्ये लाभमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ नवम्यां कुर्वतः श्राद्धं भवत्येकशफं बहु । विवर्धंते तु दशमीं गावः श्राद्धान् विकुर्वतः ॥ १३ ॥ कुप्यभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वन्नेकादशीं नृप । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते तस्य वेश्मनि ॥ १४ ॥ द्वादश्यामीह-

---

श्राद्ध करनेसे जो फल मिलता है, उस सबको मैं तुझसे कहूँगा, तू मुझसे यथार्थरीतिसे श्रवण कर ८ प्रतिपदाके दिन पितरोंका पूजन करनेसे घरकी स्त्रियें योग्य सन्तानोंको जन्म देती हैं, जो स्त्रियें मिलती हैं वे दर्शनीय होती हैं और उनके बहुतसी प्रजा उत्पन्न होती है ९ दूजके दिन श्राद्ध करनेसे पुत्री सन्तान उत्पन्न होती है और तीजके दिन श्राद्ध करने पर घरमें घोड़ोंकी सम्पत्ति बढ़ती है और चौथके दिन श्राद्ध करने पर घरमें क्षुद्र पशुओंकी वृद्धि होती है १० हे नृप ! पञ्चमीके दिन श्राद्ध करनेसे घरमें बहुतसे पुत्र उत्पन्न होते हैं और छठके दिन श्राद्ध करनेसे पुरुष तेजस्वी हो जाता है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सप्तमीके दिन श्राद्ध करनेसे श्राद्ध करने वाले पुरुषको कृषिमें लाभ होता है अष्टमीके दिन श्राद्ध करने वालेको व्यापारमें लाभ होता है ॥ १२ ॥ नवमीके दिन श्राद्ध करनेसे एक खुरीवाले प्राणियोंकी वृद्धि होती है और दशमीके दिन श्राद्ध करने वाले पुरुषके यहाँ गौओं की वृद्धि होने लगती है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! एकादशीके दिन श्राद्ध करने वाले पुरुषके घरमें वस्त्र पात्र आदिकी वृद्धि होने

मानस्य नित्यमेव प्रदृश्यते । रजतं बहुवित्तं च सुवर्णं च मनोरमम् ॥ १५ ॥ ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्वञ्छ्राद्धं त्रयोदशीम् । अवश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे ॥ १६ ॥ युद्धभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वञ्छ्राद्धं चतुर्दशीम् । अमावास्यां तु निर्वापात् सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । श्राद्धकर्मणि तिथ्यस्तु प्रशस्ता न तथेतराः ॥ १८ ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । किंस्विद्दत्तं पितृभ्यो वै भवत्यक्षयमीश्वर । किं हविश्चिररात्राय किमानंत्याय कल्पते ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ।

लगती है और उसके घरमें ब्रह्मतेजस्वी पुत्र उत्पन्न होते हैं १४ द्वादशीके दिन श्राद्ध करने वालेको सदा बहुतसा धन, चाँदी तथा मनोहर सुवर्ण मिलता है ॥ १५ ॥ तेरसके दिन श्राद्ध करने वाला जातिमें प्रतिष्ठित होजाता है, जो चौदसके दिन श्राद्ध करता है उसके घरके तरुण पुरुष मर जाते हैं और श्राद्ध करने वाले पुरुषको युद्ध करनेका अवसर आजाता है और अमावास्याके दिन श्राद्ध करने वाले पुरुषकी सब कामनाएँ पूर्ण होजाती हैं॥१६-१७॥कृष्णपक्षमें चतुर्दशीके अतिरिक्त दशमीसे अमावास्या तक की तिथियें जैसी उत्तम मानी जाती हैं, ऐसी दूसरी तिथि उत्तम नहीं मानी जातीं ॥ १८ ॥ जैसे श्राद्ध के लिये शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष अच्छा माना जाता है, इसी प्रकार श्राद्धमें पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्णकाल उत्तम माना जाता है ॥ १९ ॥ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे ईश्वर ! पितरोंको दी हुई कौनसी

हवींषि श्राद्धकल्पेतु यानि श्राद्धविदो विदुः । तानि मे शृणु काम्यानि फलं चैव युधिष्ठिर ॥ २ ॥ तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा । दत्तेन मासं प्रीयंते श्राद्धेन पितरो नृप ॥ ३ ॥ वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षयं मनुरब्रवीत् । सर्वेष्वेव तु भोज्येषु तिलाः प्राधान्यतः स्मृताः ॥४॥ द्वौ मासौ तु भवेत्तृप्तिर्मत्स्यैः पितृगणस्य ह । त्रीन्मासानाविकेनाहुश्चतुर्मासं शशेन ह ॥५॥ आजेन मासान् प्रीयन्ते पंचैव पितरो नृप । वाराहेण तु षण्मासान् सप्त वै शाकुलेन तु ॥ ६ ॥ मासानष्टौ पार्षतेन रौरवेण नव प्रभो । गवयस्य

वस्तु अक्षय होती है और कौनसी हवि बहुतसी रात्रियों तक पितरोंको तृप्त करती है और कौनसी हवि अनन्तकाल तक पितरोंको तृप्त रखती है ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! श्राद्धकर्मको जानने वाले पुरुषोंने श्राद्धकी विधिमें कामनाओंको पूर्ण करने वाली जो विधियें कही हैं उन हवियोंको और उनके फलोंको तू मुझसे सुन ॥ २ ॥ हे राजन् ! श्राद्धमें पितरोंको तिल, व्रीहि, यव, उड़द, जल और मूल फल देनेसे वे एक मास तक तृप्त रहते हैं ॥ ३ ॥ मनुजीने लिखा है, कि-जिस श्राद्धमें तिलोंका अधिक उपयोग किया जाता है, उस श्राद्धसे पितरोंको अक्षय तृप्ति मिलती है शास्त्रमें कहा है, कि-भोजनके सब पदार्थोंमें तिलोंका मुख्यरीतिसे उपयोग करना चाहिये ४ मछलीके मांससे पितर दो मास तक तृप्त रहते हैं और भेड़का पिण्ड देनेसे पितर तीन महीने तक तृप्त रहते हैं और खरगोशके मांसके पिण्डसे चार मास तक तृप्त रहते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! बकरेके मांसका पिण्ड देनेसे पितर पाँच महीने तक तृप्त रहते हैं और शाकुलके मांससे पितर सात महीने तक तृप्त रहते हैं ॥६॥ और चित्रमृगके मांससे पितर आठ मास तक तृप्त रहते हैं और रुरुमृगके मांससे नौ मास तक तृप्त रहते हैं और गवयके मांससे

तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दशमासिकी ॥ ७ ॥ मांसेनेकादशमीतिः पितॄणां माहिषेण तु । गव्येन दत्ते श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते ८ यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषा सह । वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ६ ॥ आनंत्याय भवेद्दत्तं खड्गमांसं पितृक्षये । कालशाकं च लौहं चाप्यानंत्यं छाग उच्यते ॥ १० ॥ गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति पितृगीता युधिष्ठिर । सनत्कुमारो भगवान् पुरा मय्यभ्यभाषत ॥११॥ अपि नः स्वकुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । मघासु सर्पिःसंयुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ १२ ॥ आजेन वापि लौहेन मघास्वेव यतव्रतः । हस्तिच्छायासु विधिवत्

दश महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ ७ ॥ भैंसेके मांससे पितर ग्यारह महीने तक तृप्त रहते हैं और श्राद्धकर्ममें गादुग्ध और गोघृत देनेसे पितर एक वर्ष तक तृप्त रहते हैं (यह मांसप्रकरण मांसभक्षियोंके लिये लिखा है, क्योंकि–अश्रद्धालु पुरुषको फल नहीं मिलता है और मांसभक्षियोंमें भी मांसभक्षण कम करनेके अभिप्रायसे लिखा है) ॥ ८ ॥ दूध और दहीकी समान घृतके साथ दूधपाकके पिण्डसे तथा वाध्रीणस नामक बकरेके मांससे पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं ॥६॥ मरणतिथिके दिन गेंडेके मांसका पिण्ड देनेसे पितर अनन्तकाल तक तृप्त रहते हैं, कहा है, कि–कालशाक, लौह और बकरेके मांसके पिण्डसे पितर अनन्तकाल तक तृप्त रहते हैं ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! श्राद्धविषयक पितरोंकी गाई हुई गाथाओंको ऋषि इस प्रकार गाते हैं, इन गाथाओंको भगवान् सनत्कुमारने पहिले मुझसे कहा था ११ पितरोंने कहा था कि–हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न हो, जो पुरुष दक्षिणायनमें तेरसके दिन तथा मघा नक्षत्रमें हमें घृत और दूध मिला हुआ पिण्ड देय १२ अथवा पुरुष व्रतमें परायण रह कर बकरेके मांसका अथवा

कर्णव्यजनवीजितम् ॥ १३ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यत्रासौ प्रथितो लोकेष्वक्षय्यकरणो वटः ॥ १४ ॥ आपो मूलं फलं मांसमन्नं वापि पितृक्षये । यत्किंचिन्मधुसंमिश्रं तदानन्त्याय कल्पते ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

भीष्म उवाच । यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शशबिंदवे । तानि मे शृणु काम्यानि नक्षत्रेषु पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे कुर्वीत सततं नरः । अग्नीनाधाय सापत्यो यजेत विगतज्वरः ॥ २ ॥ अपत्यकामो रोहिण्यां तेजस्कामो मृगोत्तमे ।

चम्पाके पुष्प आदि शाकका पिण्ड मघा नक्षत्रके दिन हमको देय अथवा हाथीकी छाया पूर्वदिशामें जाय तब हाथीके कानके पवनसे जिसपर वायु चला गया हो ऐसा दूधपाक देनेवाला पुत्र हमारे कुलमें उत्पन्न हो ॥ १३ ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये क्योंकि-उनमेंसे कोई न कोई तो गयामें जायगा और गयामें जाकर अक्षय तृप्ति देनेवाले प्रसिद्ध वटके पास हमारा श्राद्ध करेगा १४ मरणतिथिके दिन जल, कन्द, फल, मांस अथवा अन्न आदि जो कुछ मधुके साथ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अनन्त काल तक पितरोंको तृप्त करता है ॥ १५ ॥ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥

भीष्मजीने कहा, कि-यमराजने राजा शशबिंदुसे भिन्न भिन्न नक्षत्रोंमें किये जाने वाले जिन काम्य श्राद्धोंका वर्णन किया था, उन श्राद्धोंको मैं तुमसे कहता हूँ, सुन ॥ १ ॥ जो पुरुष कृत्तिका नक्षत्रके योगमें नित्य अग्निका आधान लेकर अपने पुत्रके साथ श्राद्ध करता है, वह पुरुष दुःखरहित होजाता है २ पुत्रकी कामना वाले पुरुषको रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये

क्रूरकर्मा ददच्छ्राद्धमार्द्रायां मानवो भवेत् ३ धनकामो भवेन्मर्त्यः
कुर्वञ्छ्राद्धं पुनर्वसौ। पुष्टिकामोऽथ पुष्येण श्राद्धमाहेत मानवः ४
आश्लेषायां ददच्छ्राद्धं धीरान् पुत्रान् प्रजायते। ज्ञातीनां तु भवे-
च्छ्रेष्ठो मघासु श्राद्धमावपन् ॥ ५ ॥ फल्गुनीषु ददच्छ्राद्धं सुभगः
श्राद्धदो भवेत्। अपत्यभागुत्तरासु हस्तेन फलभाग्भवेत् ॥ ६ ॥
चित्रायां तु ददत् श्राद्धं लभेद्रूपवतः सुतान्। स्वातियोगे पितृनर्च्य
वाणिज्यमुपजीवति ॥७॥ बहुपुत्रो विशाखासु पुत्रमीहन्भवेन्नरः।
अनुराधासु कुर्वाणो राजचक्रं प्रवर्तयेत् ॥ ८॥ आधिपत्यं व्रजेन्-
मर्त्यो ज्येष्ठायामपवर्जयन्। नरः कुरुकुलश्रेष्ठ ऋद्धो दमपुरःसरः ९

तेज पाना चाहने वालेको मृगशीर्षनामक उत्तम नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये, आर्द्रानक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला मनुष्य क्रूरकर्मा होता है ॥ ३ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला पुरुष धनकी कामना करने वाला होता है, पुष्टिकी कामना करने वाले पुरुषको पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेके धीर पुत्र उत्पन्न होते हैं, मघा नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला पुरुष जातिमें मुखिया होता है ५ फल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला पुरुष सद्भाग्यवान् होता है, उत्तरा नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेके सन्तान उत्पन्न होती है, हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाले पुरुषको इष्ट वस्तु मिलती हैं ६ चित्रानक्षत्रमें श्राद्ध करने वाले पुरुषके रूपवान् पुत्र उत्पन्न होते है, स्वाति नक्षत्रमें पितरों का श्राद्ध करनेसे व्यापारमें लाभ होता है ७ पुत्रोंकी कामना वाला पुरुष विशाखा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे बहुतसे पुत्रोंको पाता है, अनुराधा नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला राजचक्रको प्रवर्तित रखता है ८ हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! जो समृद्धिमान् पुरुष इन्द्रियोंका निग्रह करके ज्येष्ठानक्षत्रमें श्राद्ध करता है उस पुरुषको अधिपतित्व मिलता है ९ मूलनक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला आरोग्य पाता है, आषाढ़ा

मूले त्वारोग्यमृच्छेत यशोऽषाढासु चोत्तमम् । उत्तरासु त्वषाढासु वीतशोकश्चरेन्महीम् ॥१०॥ श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन् भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् । श्रवणेषु ददच्छ्राद्धं प्रेत्य गच्छेत् स सद्गतिम् ॥११॥ राज्यभागी धनिष्ठायां भवेत नियतं नरः । नक्षत्रे वारुणे कुर्वन् भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ पूर्वप्रोष्ठपदाः कुर्वन् बहून्विन्दत्यजाविकान् । उत्तरासु प्रकुर्वाणो विंदते गाः सहस्रशः ॥१३॥ बहुकुप्यकृतं वित्तं विंदते रेवतीं श्रितः । अश्विनीष्वश्वान्विंदते भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥१४॥ इमं श्राद्धविधिं श्रुत्वा शशबिंदुस्तथाकरोत् । अक्लेशेनाजयच्चापि महीं सोऽनुशशास ह ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला उत्तम यश पाता है, उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला शोकरहित होकर पृथ्वी पर विचरण करता है१० अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्ध करने वाला वैद्यकमें सिद्धि पाता है, श्रवण नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेकी मरणके पीछे सद्गति होती है ११ जो पुरुष धनिष्ठा नक्षत्रमें नियमपूर्वक श्राद्ध करता है, वह पुरुष राज्यका भागी होता है, जो वैद्य शतभिषा नक्षत्रमें श्राद्ध करता है, उसको औषधसिद्धि मिलती है १२ जो पुरुष पूर्वाप्रोष्ठ(भाद्र)पदा नक्षत्रमें श्राद्ध करता है उस पुरुषको बहुतसे बकरे और मेढे मिलते हैं,उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेको सहस्रों गौएँ मिलती हैं १३ रेवती नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेको नानाप्रकारकी धातुओंका लाभ होता है,अश्विनी नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेको घोड़े मिलते हैं,भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करने वालेको श्रेष्ठ आयु मिलती है१४ राजा शशबिन्दुने श्राद्धकी विधिको सुनकर इसीप्रकार किया (उसके फलसे) वह बिना किसी क्लेशके पृथ्वीको जीतकर उसका शासन करने लगा।१५।

युधिष्ठिर उवाच । कीदृशेभ्यः प्रदातव्यं भवेत् श्राद्धं पितामह । द्विजेभ्यः कुरुशार्दूल तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । ब्राह्मणान्न परीक्षेत क्षत्रियो दानधर्मवित् । दैवे कर्मणि पित्र्ये तु न्यायमाहुः परीक्षणम् ॥ २ ॥ देवताः पूजयंतीह दैवेनैवेह तेजसा । उपेत्य तस्माद्देवेभ्यः सर्वेभ्यो दापयेन्नरः ॥ ३ ॥ श्राद्धे त्वथ महाराज परीक्षेद्ब्राह्मणान् बुधः । कुलशीलवयारूपैर्विद्ययाभिजनेन च ४ तेषामन्ये पंक्तिदूषास्तथान्ये पंक्तिपावनाः। अपांक्तेयास्तु ये राजन् कीर्तयिष्यामि तान् शृणु ॥ ५ ॥ कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः । ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायनः सर्वविक्रयी ॥ ६ ॥ अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे भीष्मपितामह ! हे कुरुकुलसिंह ! कैसे ब्राह्मणको श्राद्धमें जिमाना चाहिये,इसका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करिये १ भीष्मजीने कहा, कि–दानधर्मको जानने वाले क्षत्रियको देवकर्ममें अर्थात् यज्ञमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करनी चाहिये, परन्तु पितृकर्ममें ब्राह्मणोंकी विशेषरूपसे परीक्षा करनी चाहिये और श्राद्धकर्ममें ब्राह्मणोंकी परीक्षा करनेको विद्वान् न्याय्य मानते हैं २ देवताओंकी दी हुई भक्तिसे मनुष्य पृथ्वीमें देवताओंकी पूजा करते हैं, इसीलिये मनुष्योंको देवताओंके उद्देश्यसे दान देना चाहिये ३ हे महाराज ! विद्वान् पुरुष श्राद्धके समय ब्राह्मणके कुलकी, शीलकी, अवस्थाकी, रूपकी, विद्याकी और कुटुम्बकी परीक्षा अवश्य करे ४ ब्राह्मणोंमें बहुतसे पंक्तिदूषक होते हैं अर्थात् उनके पंक्तिमें बैठनेसे और ब्राह्मण भी अपवित्र होजाते हैं और बहुतसे पंक्तिपावन होते हैं अर्थात् उनके पंक्तिमें बैठनेसे पंक्ति भी पवित्र होजाती हैं, ऐसे ब्राह्मणोंका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ सुन ५ जुआरी गर्भहत्यारा क्षयरोगी पशुपालनकर्ता मूर्ख गवाँर ब्याजखोर गायक सवपदार्थों

सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः ॥ ७ ॥ पित्रा विवद-
मानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे । अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चो-
पजीवति ॥ ८ ॥ पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ।
अव्रतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च ॥९॥ श्वभिश्च यः परि-
क्रामेयः शुना दष्ट एव च । परिवित्तिश्च यश्च स्याद्दुश्चर्मा गुरु-
तल्पगः ॥ १० ॥ कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति । इह-
शैर्ब्राह्मणैर्भुक्तमपांक्तेयैर्युधिष्ठिर ॥ ११ रक्षांसि गच्छते हव्यमित्या-
हुर्ब्रह्मवादिनः । श्राद्धं भुक्त्वा त्वधीयीत वृषलीतल्पगश्च यः॥१२
पुरीषे तस्य तौ मासं पितरस्तस्य शेरते । सोमविक्रयिणे विष्ठाभि

को वेचने वाला घरमें आग लगाने वाला विष देने वाला कुण्ड
जातिके पुरुषका भोजन करने वाला सोमलता वेचने वाला सामु-
द्रिक अर्थात् हस्तरेखासे फल कहने वाला राजसेवक तेल पेलने
वाला झूठी गवाही देने वाला पितासे विवाद करने वाला जिसके
घरमें उपपति रहता हो वह अभिशप्त चोर शिल्पजीवी वेशान्तर-
धारी चुगलखोर मित्रद्रोही परस्त्रियोंसे व्यभिचार करने वाला
शूद्रोंका पुरोहित शस्त्र धारण करके आजीविका चलाने वाला
कुत्तोंको साथमें रख कर शिकार खेलने वाला कुत्तेका काटा हुआ
बड़े भाईके अविवाहित रहने पर भी अपना विवाह कर लेने वाला
छोटा भाई, दूषित चर्म वाला गुरुपत्नीगामी नट देवपूजनका धंधा
करने वाला और नक्षत्र देखकर लोगोंसे फल कह कर जीवन
विताने वाला हे युधिष्ठिर! इतने ब्राह्मण अपांक्तेय कहलाते हैं इन
ब्राह्मणोंने जो भोजन किया होता है उसको राक्षस खालेते हैं अर्थात्
वह देवताओंको नहीं पहुँचाता है, यह बात ब्रह्मवेत्ता कहते हैं।
जो ब्राह्मण श्राद्धका भोजन करनेके पीछे वेदाध्ययन करता है
तथा जो शूद्रा स्त्रीके साथ गमन करता है ६-१२ उसके पितर
एक महीने तक नरकमें पड़े रहते हैं, सोम बेचने वालेको जिमाया

षजे पूयशोणितम् १३ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषे ।
यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् १४ भस्मनीव हुतं हव्यं
तथा पौनर्भवे द्विजे । ये तु धर्मव्यपेतेषु चरित्रापगतेषु च । हव्यं
कव्यं प्रयच्छंति तेषां तत्प्रेत्य नश्यति १५ ज्ञानपूर्वं तु ये तेभ्यः
प्रयच्छंत्यल्पबुद्धयः । पुरीषं भुञ्जते तस्य पितरः प्रेत्य निश्चयः १६
एतानिमान्विजानीयादपांक्तेयान्द्विजाधमान् । शूद्राणामुपदेशं च
ये कुर्वंत्यल्पचेतसः १७ षष्टिं काणः शतं षंढः श्वित्री यावत्
प्रपश्यति । पंक्त्यां समुपविष्टायां तावद्दूषयते नृपः १८ यद्-

अथवा दिया हुआ अन्न विष्टासमान होजाता है, वैद्यको श्राद्धमें जिमाया हुआ अन्न पीव और रुधिरकी समान होजाता है १३ श्राद्धमें देवलक (पुजारी) को जिमाया हुआ अन्न निष्फल जाता है तथा ब्याजखोरोंको दिया हुआ अन्न भी निष्फल ही जाता है; व्यापारियोंको दिया हुआ अन्न इस लोकमें और परलोकमें कुछ फल नहीं देता है ॥ १४ ॥ पौनर्भवको दिया हुआ हव्य और कव्य राखमें होमनेकी समान निष्फल है, जो धर्मरहित और सदाचाररहित ब्राह्मणोंको यज्ञमें और श्राद्धमें भोजन कराता है उसको मरणके अनन्तर उसका फल नहीं मिलता है (और उसके पितर भी तृप्त नहीं होते हैं) ॥ १५ ॥ जो अल्पमति पुरुष जान बूझ कर धर्मरहित चरित्रहीन पुरुषको हव्य तथा कव्य जिमाते हैं, उस पुरुषके पितर विष्टाका भोजन करते हैं १६ इन उपरोक्त अधम ब्राह्मणोंको भी अपांक्तेय समझना चाहिये, जो निर्बुद्धि ब्राह्मण शूद्रोंको वेदका उपदेश देते हैं उनको भी अपांक्तेय समझना चाहिये ॥१७॥ हे राजन्! काणा पुरुष देखने पर पंक्तिमें बैठे हुए साठ पुरुषोंको दूषित कर देता है अर्थात् उनको जिमाया हुआ भोजन व्यर्थ जाता है और षण्ड पुरुष सौ मनुष्योंको दूषित करता है और श्वित्री (कुष्ठी) पुरुष बैठी

वेष्टितशिरा भुंक्ते यद्भुंक्ते दक्षिणामुखः । सोपानत्कश्च यद्भुंक्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् १९ असूयता च यद्दत्तं यच्च श्रद्धाविवर्जितम् । सर्वं तदसुरेंद्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत् २० श्वानश्च पंक्तिदूषाश्च नावेक्षेरन् कथंचन । तस्मात् परिस्रुते दद्यात्तिलांश्चान्ववकीरयेत् ॥ २१ ॥ तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन च । यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुंपन्ति तद्धविः ॥ २२ ॥ अपांक्तो यावतः पांक्तान् भुञ्जानाननुपश्यति । तावत्फलाद्भ्रंशयति दातारं तस्य बालिशम् ॥ २३ ॥ इमे तु भरतश्रेष्ठ विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः । ये त्वतस्तान् प्रवक्ष्यामि परीक्षस्वेह तान्द्विजान् ॥२४॥

पंक्तिको जहाँ तक देखता है, तहाँ तकके पुरुष दूषित होजाते हैं ॥ १८ ॥ जो शिर पर पगड़ी आदि रख कर भोजन करता है और जो दक्षिणकी ओर मुख करके भोजन करता है और जो जूते पहर कर भोजन करता है इन सबके भोजनोंको राक्षसों का भोजन समझना चाहिये अर्थात् ऐसे ब्राह्मणोंको अपांक्तेय समझना चाहिये ॥ १९ ॥ जो पुरुष ईर्षा करके दान देता है और जो श्रद्धारहित रहकर दान देता है, इस सबको ब्रह्माजीने असुरोंके राजा बलिका भाग कल्पित किया है ॥ २० ॥ कुत्ते और पंक्तिदूषक न देख पावें इसलिये चारों ओरसे आच्छादित प्रदेशमें ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और चारों ओर तिलों को फेंकना चाहिये ॥ २१ ॥ जो श्राद्ध तिलोंके विना किया जाता है तथा जो क्रोधसे किया जाता है, उसके हविको यातुधान और पिशाच खाजाते हैं ॥ २२ ॥ अपांक्त पुरुष पंक्तिमें बैठ कर भोजन करने वाले जितने ब्राह्मणोंको देखता है उतने ब्राह्मणोंके जिमानेके फलसे उस मूर्ख जिमाने वालेको भ्रष्ट कर देता है ॥ २३ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! अब मैं तुझसे पंक्तिपावन ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें कहूँगा इनकी तू परीक्षा कर ॥ २४ ॥

विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः सर्व एव हि । सदाचारपराश्चैव विज्ञेयाः सर्वपावनाः ॥ २५ ॥ पांक्तेयांस्तु प्रवक्ष्यामि ज्ञेयास्ते पंक्तिपावनाः । त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् २६ ब्रह्मदेयानुसन्तानश्छन्दो गोज्येष्ठसामगः । मातापित्रोर्यश्च वश्यः श्रोत्रियो दशपूरुषः ॥ २७ ॥ ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा । वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पंक्ति पुनात्युत ॥ २८ ॥ अथर्वशिरसोऽध्येता ब्रह्मचारी यतव्रतः । सत्यवादी धर्मशीलः स्वकर्मनिरतश्च सः ॥ २९ ॥ ये च पुण्येषु तीर्थेषु अभिषेककृतश्रमाः । मखेषु च समन्त्रेषु भवन्त्यवभृथप्लुताः ॥३०॥ अक्रोधना ह्यचपलाः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः। सर्वभूतहिता ये च श्राद्धेष्वे-

वेदस्नात, व्रतस्नात और वेदव्रतस्नात सदाचार सम्पन्न सब ब्राह्मणोंको सबको पवित्र करने वाला जानना चाहिये ॥२५॥ अब मैं पांक्तिके संबंधमें लिखता हूँ, त्रिणाचिकेत नामक मंत्रोंका अध्ययन करने वाले, गार्हपत्य आदि आवसथ्यान्त पाँच अग्नियोंका सेवन करने वाले, ऋग्वेदके त्रिसुपर्ण आदि तीन मन्त्रोंके पढ़ने वाले और वेदके छः अंगोंको जानने वाले ब्राह्मणोंको पंक्तिपावन समझना चाहिये ॥ २६ ॥ वेदविद्या पढ़ाने वालोंके वंशमें उत्पन्न हुए सामवेद पढ़ने वाले, ज्येष्ठ सामका गान करने वाले, माता तथा पिताके वशमें रहने वाले और जिनके कुलमें दश पीढ़ीसे वेदविद्या पढ़ी जाती हो और ऋतुकालमें सदा धर्मपत्नीसे गमन करने वाले, वेदविद्यास्नात और व्रतस्नात ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करते हैं अर्थात् वे पंक्तिपावन कहलाते हैं ॥ २७–२८ ॥ अथर्वशीर्ष पढ़े हुए, ब्रह्मचारी, नियमपूर्वक व्रत पालने वाले, सत्यवादी, धर्मात्मा, स्वकर्मपरायण ब्राह्मण भी पंक्तिपावन कहलाते हैं ॥२९॥ पवित्र तीर्थोंमें स्नान करनेके लिये परिश्रम करने वाले, यज्ञोंमें वेदमन्त्रोंसे अवभृथ स्नान करने वाले, क्रोधरहित,

तान्निमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥ एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पंक्तिपावनाः। इमे परे महाभागा विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥ ३२ ॥ यतयो मोक्ष-धर्मज्ञा योगाः सुचरितव्रताः। ये चेतिहासं प्रयताः श्रावयन्ति द्विजोत्तमान् ॥ ३३ ॥ ये च भाष्यविदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः। अधीयते पुराणं ये धर्मशास्त्राण्यथापि च ॥३४॥ अधीत्य च यथान्यायं विधिवत्तस्य कारिणः। उपपन्नो गुरुकुले सत्यवादी सहस्रशः ॥३५॥ अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च। यावदेते प्रपश्यन्ति पंक्त्यास्तावत्पुनंत्युत ॥ ३६ ॥ ततो हि पावनात् पंक्त्याः पंक्तिपावन उच्यते। क्रोशादर्धतृतीयाच्च पावयेदेक एव

चपलतारहित, क्षमाशील, दान्त, जितेन्द्रिय तथा सब भूतोंके हितमें परायण रहने वाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रण देना चाहिये ॥ ३०-३१ ॥ उपरोक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन कहलाते हैं और उनको भोजनदान देनेसे अक्षयफल मिलता है इन महा-भाग्यशाली ब्राह्मणोंको पंक्तिपावन समझना चाहिये ॥ ३२ ॥ मोक्षधर्मको जानने वाले यति, उत्तम प्रकारसे व्रतका आचरण करने वाले योगी सावधान रह कर उत्तम द्विज वर्णके पुरुषोंको इतिहास सुनाने वाले, भाष्यवेत्ता, व्याकरणशास्त्रको जाननेवाले पुराणोंको जानने वाले और धर्मशास्त्रको जानने वाले, शास्त्र पढ़ कर उसी प्रकार आचरण करने वाले, गुरुके घर पर रहने वाले, सहस्रों वार अवसर पड़ने पर भी सत्य ही बोलने वाले, चारों वेदोंको भली भाँति जानने वाले और सब शास्त्रोंका प्रवचन करनेमें श्रेष्ठ, ये ब्राह्मण पंक्तिको जितनी दूर तक देखते हैं उतने ब्राह्मणोंको पवित्र कर देते हैं ॥३३-३६॥ पंक्तिको पवित्र करनेसे ये पंक्तिपावन कहलाते हैं, वेदवेत्ता जानते हैं, कि-वेदकी शिक्षा देने वालोंके वंशज और स्वयं भी वेदका अध्ययन करने वाले एक वार दृष्टि डालनेसे साढ़े तीन कोस दूर तककी पंक्तिको

हि ॥३७॥ ब्रह्मदेयानुसन्तान इति ब्रह्मविदो विदुः । अनृत्विग-
नुपाध्यायः स चेदग्रासनं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ ऋत्विग्भिरभ्यनुज्ञातः
पंक्त्या हरति दुष्कृतम् । अथ चेद्वेदवित् सर्वैः पंक्तिदोषैर्वि-
वर्जितः ॥ ३९ ॥ न च स्यात् पतितो राजन् पंक्तिपावन एव
सः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यामन्त्रयेद् द्विजान्॥४०॥ स्वकर्म-
निरतानन्यान् कुले जातान् बहुश्रुतान् । यस्य मित्रप्रधानानि
श्राद्धानि च हवींषि च । न प्रीणन्ति पितृन् देवान् स्वर्गं च न
स गच्छति ॥ ४१ ॥ यश्च श्राद्धे कुरुते संगतानि न देवयानेन
पथा स याति। स वै मुक्तः पिप्पलम्बन्धनाद्वा स्वर्गाल्लोकाच्च्य-
वते श्राद्धमित्रः॥४२॥तस्मान्मित्रं श्राद्धकृन्नाद्रियेत दद्यान्मित्रेभ्यः

पवित्र कर देते हैं,जो पुरुष ऋत्विज और उपाध्याय न होने पर भी दूसरे ऋत्विजोंकी आज्ञासे अग्रासन पर बैठ जाता है तो उसे पंक्तिका दोष उसको भोगना पड़ता है, परन्तु हे राजन् ! यदि वह पवित्र होता है और पंक्तिको दूषित करने वाले दोषोंसे रहित होता है तो वह पंक्तिपावन ही माना जाता है,इस लिये सब प्रकारसे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करके उनको निमन्त्रण देनाचाहिये ३७-४० अपने कर्ममें परायण रहने वाले, सत्कुलमें उत्पन्न हुए और बहुश्रुत ब्राह्मणोंको भी श्राद्धमें निमंत्रण देना चाहिये जिसके श्राद्धमें तथा यज्ञकर्ममें मित्रोंको भोजन कराया जाता है तो उससे पितर और देवता प्रसन्न नहीं होते और श्राद्ध करने वालेको स्वर्ग भी नहीं मिल सकता ॥ ४१ ॥ जो पुरुष श्राद्धक्रियामें दूसरोंको निमंत्रित करके उनसे मित्रता कर लेता है, वह पुरुष देवयान नामक मार्गसे स्वर्गमें नहीं जासकता परन्तु पिप्पल जैसे डण्ठल परसे टूट कर गिर जाता है ऐसे ही श्राद्धकर्ममें मित्रोंको निमंत्रित करने वाला स्वर्गमेंसे भ्रष्ट होजाता है ॥४२॥ इसलिये श्राद्धकर्ता पुरुषको श्राद्धमें मित्रोंको निमंत्रण न देना चाहिये,

संग्रहार्थं धनानि । यन्मन्यते नैव शत्रुं न मित्रं तं मध्यस्थं भोजयेद्धव्यकव्ये ॥ ४३ ॥ यथोषरे बीजमुप्तं न रोहेन्नचावप्ताप्नुयाद्बीजभागम् । एवं श्राद्धं भुक्तमनर्हमाणैर्न चेह नामुत्र फलं ददाति ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ ४५ ॥ संभोजनी नाम पिशाचदक्षिणा सा नैव देवान्न पितृनुपैति । इहैव सा भ्राम्यति हीनपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥४६॥ अथाग्नौ शान्ते घृतमाजुहोति तन्नैव देवान्न पितृनुपैति । तथा दत्तं नर्तने गायने च यां चानृते दक्षिणामाहृणोति ॥ ४७ ॥ उभौ हिनस्ति

किन्तु मित्रोंका संग्रह करनेके लिये उनको धन देकर सन्तुष्ट रखना चाहिये और जिनको न मित्र मानते हों और न शत्रु मानते हों ऐसे मध्यस्थ पुरुषोंको श्राद्ध और यज्ञमें निमंत्रण देना चाहिये ४३ जैसे ऊषर भूमिमें बीज बोने पर वह उगता नहीं है और जैसे उन बीजोंको बोने वाला फल नहीं पाता है, तैसे ही अयोग्य पुरुषको खिलाया हुआ श्राद्धका भोजन न इस लोकमें फल देता है और न परलोकमें फल देता है ॥ ४४ ॥ वेद न पढ़ाने वाला ब्राह्मण तिनकोंकी अग्निकी समान शान्त होजाता है, उसको श्राद्धमें निमन्त्रण न देना चाहिये, क्यों कि भस्ममें कोई होम नहीं करता है ॥ ४५ ॥ जिस श्राद्धमें अपने मित्रोंको इकट्ठा करके दक्षिणा दीजाती है वह पिशाचदक्षिणा कहलाती है और वह श्राद्ध न पितरोंको पहुँचता है और न देवताओंको पहुँचता है, उस दक्षिणावाले श्राद्धका फल, जैसे हीनपुण्या मृतवत्सा गौ घरमें ही चक्कर काटा करती है इसी प्रकार इस लोकमें ही रहता है और पितरोंको नहीं पहुँचता ॥४६॥ जैसे बुझी हुई अग्निमें होमा हुआ घृत देवता और पितरोंको नहीं पहुँचता है, ऐसे ही गाने वाले नाचने वाले और असत्यभाषण करने

न भुनक्ति चैशा या चानृते दक्षिणा दीयते वै। आघातिनी गर्हितैषा पतन्ती तेषां प्रेतान् पातयेद्देवयानात् ॥ ४८ ॥ ऋषीणां समये नित्यं ये चरन्ति युधिष्ठिर। निश्चिताः सर्वधर्मज्ञास्तान् देवा ब्राह्मणान् विदुः ॥४९॥ स्वाध्यायनिष्ठा ऋषयो ज्ञाननिष्ठास्तथैव च। तपोनिष्ठाश्च बोद्धव्याः कर्मनिष्ठाश्च भारत ॥५०॥ कव्यानि ज्ञाननिष्ठेभ्यः प्रतिष्ठाप्यानि भारत। तत्र ये ब्राह्मणान् केचिन्न निन्दन्ति हि ते नराः ॥ ५१ ॥ ये तु निन्दन्ति जल्पेषु न ताञ्छ्राद्धेषु भोजयेत्। ब्राह्मणा निन्दिता राजन् हन्युस्त्रैपुरुषं कुलम् ॥ ५२ ॥ वैखानसानां वचनमृषीणां श्रूयते नृप। दूरादेव

वाले पुरुषको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है ४७ अपात्र पुरुषको जो दक्षिणा दी जाती है, वह दाता और दान लेने वालेका कल्याण न कर उनका नाश ही कर डालती है, जो पुरुष कुपात्रको दक्षिणा देता है, उसकी दक्षिणाकी निन्दा होती है, वह दक्षिणा दाता और ग्रहीताका नाश कर डालती है और दक्षिणा परलोकगत पितरोंको देवयानसे भ्रष्ट कर देती है ४८ हे युधिष्ठिर! सदा ऋषियोंके सिद्धान्तके अनुसार वर्ताव करने वाले, दृढ़ मन वाले और सब धर्मोंको जानने वालोंको देवता ब्राह्मण कहते हैं ४९ हे भारत! बहुतसे ऋषि ज्ञाननिष्ठ होते हैं और बहुतसे स्वाध्यायनिष्ठ होते हैं बहुतसे तपोनिष्ठ होते हैं और बहुतसे कर्मनिष्ठ होते हैं, यह तू समझ ५० हे भारत! ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंको श्राद्धमें जिमाना चाहिये, जो ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करते हैं उनको श्रेष्ठ पुरुष समझना चाहिये ५१ जो वार्तालाप करते समय निन्दा करते हों उनको श्राद्धमें न जिमाना चाहिये, हे राजन्! ब्राह्मणोंकी निन्दा होने पर ब्राह्मण कुलकी तीन पीढ़ियोंको नष्ट कर डालते हैं ५२ हे राजन्! वैखानस ऋषियोंका वचन सुना है कि—वेदपार-

परीक्षेत ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥५३॥ प्रियो वा यदि वा द्वेष्यस्तेषां तु श्राद्धमावपेत् । यः सहस्रं सहस्राणां भोजयेदनृतान्नरः । एकस्तान्मंत्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति भारत ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

युधिष्ठिर उवाच । केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन् काले किमात्मकम् । भृग्वंगिरसिके काले मुनिना कतरेण वा ॥ १ ॥ कानि श्राद्धानि वर्ज्याणि कानि मूलफलानि च । धान्यजात्यश्च का वर्ज्यास्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । यथाश्राद्धं संप्रवृत्तं यस्मिन् काले सदात्मकम् । येन संकल्पितं चैव तन्मे शृणु जनाधिप ॥३॥ स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् ।

गामी ब्राह्मणोंकी दूरसे ही परीक्षा करे ५३ वेदवेत्ता पुरुष चाहे अपना प्रिय हो वा अप्रिय हो उसको श्राद्धमें जिमावें, जो पुरुष एक लाख अपात्र ब्राह्मणोंको श्राद्धमें जिमाता है, उस सब भोजनको एक मंत्रवेत्ता ब्राह्मण ही प्रसन्न होकर जीमनेके योग्य है अर्थात् लाख मूर्खोंकी अपेक्षा एक सत्पात्रको जिमाना अच्छा है ५४ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ९० छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-श्राद्धका विधान किसने किया है, कब किया है और उसका तत्त्व क्या है, क्या श्राद्धकी कल्पना भृगु और अङ्गिराके समयमेंकी गई थी अथवा किसीने इसका आगे या पीछे विधान किया है १ श्राद्धमें कौनसे कर्म वर्जित हैं, कौनसे मूल और फलोंको ग्रहण न करना चाहिये, किस धान्यको त्याग देना चाहिये यह सब बातें हे पितामह! मुझसे कहिये २ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! श्राद्धविधि जिस प्रकार प्रवृत्त हुई है, उसका जो स्वरूप है, वह जिस समयमें चली है और जिसने इस विधिकी कल्पनाकी है, इन सब बातोंकी कथा तू मुझसे सुन ३ हे कुरुकुलोत्पन्न!

तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥ ४ ॥ दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमिर्नाम तपोधनः । निमेश्चाप्यभवत् पुत्रः श्रीमान्नाम श्रिया वृतः ॥ ५ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रान्ते स कृत्वा दुष्करं तपः । कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥ ६ ॥ निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा । सन्तापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥ ७ ॥ अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः । तमेव गणयन् शोकं विरात्रे प्रत्यबुध्यत ॥ ८ ॥ तस्यासीत् प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः । मनः संहृत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी ॥ ९ ॥ ततः संचिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः । यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च ॥१०॥ उक्तानि यानि चान्नानि यानि चेष्टानि तस्य ह । तानि सर्वाणि मनसा विनि-

स्वयंभूके पुत्र महर्षि अत्रि परमप्रतापी थे, हे महाराज ! उनके वंशमें दत्तात्रेय उत्पन्न हुए थे, दत्तात्रेयके निमिनामक पुत्र था वह तपोधन था, निमिके श्रीमान् नामक पुत्र था, वह सौंदर्यसम्पन्न था ४।५ वह एक सहस्र वर्ष तक तप कर कालके धर्मसे मर गया ॥ ६ ॥ पुत्रका मरण होने पर निमि शोकमें भर गया, उसको तीव्र सन्ताप होने लगा तब उसने शास्त्रानुसार शौचकर्म किया ॥७॥ महामति निमिने स्नान करनेके अनन्तर भक्ष्य भोज्य आदि श्राद्धोपयोगी सब वस्तुएँ चतुर्दशीके दिन तयारकीं और पुत्रका शोक करता हुआ दूसरे दिन प्रातःकालमें उठा ८ प्रातःकाल जागने पर भी उसका मन शोकसे व्यथित होरहा था, परन्तु जब उसने अपने मनसे शोकको दूर कर दिया तब उसकी बुद्धि विस्तार वाली अर्थात् विचार करने योग्य होगई ॥ ९ ॥ तब मुनिने भी सावधान हो कर श्राद्धकी विधिका विचार किया, फिर उस तपोधनने खाने योग्य मूल और फलोंका श्राद्धीय अन्न का और जो अन्न उसको प्रिय थे उन सबका मनमें विचार

शिवस्य तपोधनः ॥ ११ ॥ अमावास्यां महाप्राज्ञो विप्रानानाय्य पूजितान् । दक्षिणावर्तिकाः सर्वा बृसीः स्वयमथाकरोत् ॥ १२ ॥ सप्त विप्रांस्ततो भोज्ये युगपत् समुपानयत् । ऋते च लवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः ॥ १३ ॥ दक्षिणाग्रास्ततो दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः । पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते ॥ १४ ॥ कृत्वा च दक्षिणाग्रान् वै दर्भान् स प्रयतः शुचिः । प्रददौ श्रीमतः पिण्डान्नामगोत्रमुदाहरन् ॥ १५ ॥ तत्कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकरमात्मनः । पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिंतयत् १६ अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् । कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥ १७ ॥ ततः संचिंतयामास वंशकर्तारमा-

क्रिया ॥१०॥११॥ तदनन्तर महाबुद्धिमान् निमिने अमावस्याके दिन पूज्य ब्राह्मणोंको बुलाया और उन सबकी प्रदक्षिणा करके उनको आसन पर बैठाया ॥ १२ ॥ तदनन्तर सात ब्राह्मणोंको एक साथ भोजन करनेके लिये बैठाया और उनको लवणरहित श्यामाक भोजन जिमाया ॥ १३ ॥ तदनन्तर जो ब्राह्मण भोजन करनेको बैठे उनके चरणोंके आगे आसनों पर दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके दर्भ (कुश) बिछाये ॥ १४ ॥ फिर दक्षिण दिशाकी ओर दर्भोंके मुख करके मुनिने पवित्र और सावधान होकर अपने पुत्र श्रीमान्के नामका तथा गोत्रका उच्चारण करके उसको पिण्ड दिया ॥ १५ ॥ फिर वह मुनि पुत्रका श्राद्ध करके "मैंने धर्ममें संकरता की है" यह मान कर अपने मनमें बड़ा पश्चाताप करने लगे और संतप्त होकर मनमें विचार करने लगे (वेदमें पिता, पितामह और प्रपितामहके उद्देश्यसे श्राद्ध लिखा है, परन्तु मैंने पुत्रके निमित्त श्राद्धकर्म किया, इस प्रकार धर्ममें संकरता फैलादी, यह विचार उन ऋषिको शोक उत्पन्न हुआ) ॥१६॥ पहिले मुनियोंने इस धर्मका आचरण नहीं किया है, तब भी मैंने यह

त्मनः । ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः ॥ १८ ॥
अथात्रिस्तं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम् । भृशमाश्वासयामास
वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥ १९ ॥ निमे संकल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञ-
स्तपोधन । मा ते भूद्भीः पूर्वदृष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम् ॥२०॥
सोऽयं स्वयंभुविहितो धर्मः संकल्पितस्त्वया । ऋते स्वयंभुवः
कोऽन्यः श्राद्धेयं विधिमाहरेत् ॥ २१ ॥ अथाख्यास्यामि ते पुत्र
श्राद्धेयं विधिमुत्तमम् । स्वयंभुविहितं पुत्र तत्कुरुष्व निबोध मे२२
कृत्वाग्नौ करणं पूर्वं मंत्रपूर्वं तपोधन । ततोग्नयेथ सोमाय
वरुणाय च नित्यशः ॥ २३ ॥ विश्वेदेवाश्च ये नित्यं पितृभिः
सह गोचराः। तेभ्यः संकल्पिता भागाः स्वयमेव स्वयंभुवा॥२४॥

क्या किया ? अब ब्राह्मण मुझे शाप देकर भस्म तो न कर डालेंगे ! ॥१७॥ तदनन्तर निमिने अपने वंशप्रवर्तक अत्रिका ध्यान किया कि–तुरत ही अत्रि नामक तपोधन तहाँ आगए ॥ १८ ॥ और निमिको पुत्रशोकसे दुर्बल हुआ देख कर अविनाशी अत्रिने मधुर वाणीसे उनको आश्वासन दिया ॥ १९ ॥ और कहा, कि–हे तपोधन निमे ! तूने जो पितृयज्ञ किया है, उससे तू भय-भीत न हो,ब्रह्माजीने पहिले ही इस पितृ यज्ञको प्रवृत्त किया था२० जिस धर्मको ब्रह्माजीने प्रचलित किया था तूने उसही धर्मका संकल्प किया है, ब्रह्माजीके विना और कौन श्राद्धकी विधिको कह सकता है २१ हे पुत्र! अब तुझसे ब्रह्माजीकी कही हुई उत्तम श्राद्धकी विधिको कहता हूँ, तू मुझसे सुन कर उसी प्रकार कर ॥२२॥ हे तपोधन ! प्रथम वेदके मन्त्र पढ़ कर अग्नौकरण (अग्निमे पिण्डका होम) करना चाहिये, तदनन्तर सदा पितरोंके साथ घूमने वाले अग्नि, सोम, वरुण, विश्वेदेवताओंका ब्रह्माजीने भाग कल्पित किया है ॥२३॥ उसको देनेके अनन्तर पिण्डको धारण करने वाली पृथ्वीकी स्तुति करते समय वैष्णवी काश्यपी

स्तोतव्या चेह पृथिवी निवापस्येह धारिणी । वैष्णवी काश्यपी चेति तथैवेहाक्षयेति च ॥ २५ ॥ उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः । ततोग्निश्चैव सोमश्च आप्याय्याविह तेऽनघ २६ देवास्तु पितरो नाम निर्मिता ये स्वयंभुवा । उष्णपा ये महाभागास्तेषां भागः प्रकल्पितः ॥ २७ ॥ ते श्राद्धेनार्च्यमाना वै विमुच्यन्तेह किल्विषात् । सप्तकः पितृवंशस्तु पूर्वदृष्टः स्वयंभुवा ॥ २८ ॥ विश्वे चाग्निमुखा देवाः संख्याताः पूर्वमेव ते । तेषां नामानि वक्ष्यामि भागार्हाणां महात्मनाम् ॥ २९ ॥ बलं धृतिर्विपाप्मा च पुण्यकृत् पावनस्तथा । पार्ष्णिक्षेमा समूहश्च दिव्यसानुस्तथैव च ॥ ३० ॥ विवस्वान् वीर्यवान् ह्रीमान् कीर्तिमान् कृत एव च । जितात्मा मुनिवीर्यश्च दीप्तरोमा भयंकरः ३१ अनुकर्मा प्रतीतश्च प्रदाताप्यंशुमांस्तथा । शैलाभः परमक्रोधी धीरोष्णी भूपतिस्तथा ॥३२॥ स्रजो वज्री वरी चैव विश्वेदेवाः

और अक्षया नामका उच्चारण करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥ जल देते समय वरुणदेवकी स्तुति करनी चाहिये और हे निर्दोष पुत्र ! अग्नि और सोमको तृप्त करना चाहिये २६ ब्रह्माजीने अपने उत्पन्न किये हुए पितृ नामक देवताओंका और महाभाग्यशाली उष्णपा नामक देवताओंका भाग भी निर्माण किया है २७ जो श्राद्ध करके पितरोंकी पूजा करता है,उसके पितर पापमेंसे मुक्त होजाते हैं, ब्रह्माजीके उत्पन्न किये हुए पितरोंके पूर्वजोंकी संख्या सात है २८ अग्निमुख विश्वेदेवताओंका वर्णन पहिले ही कर दिया है, जो महात्मा विश्वेदेवता श्राद्धमें भाग पानेके पात्र हैं, उनके नामोंको मैं तुमसे कहता हूँ२९ बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत्, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्तिमान्, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयंकर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान, शैलाभ, परम

सनातनाः । विद्युद्वर्चाः सोमवर्चाः सूर्यश्रीश्चेति नामतः ॥३३॥
सोमपः सूर्यसावित्रो दत्तात्मा पुण्डरीयकः । उष्णीनाभो नभोदश्च
विश्वायुर्दीप्तिरेव च ॥३४॥ चमूहरः सुरेशश्च व्योमारिः शंकरो
भवः । ईशः कर्ता कृतिर्दक्षो भुवनो दिव्यकर्मकृत् ॥३५॥ गणितः
पञ्चवीर्यश्च आदित्यो रश्मिवांस्तथा । सप्तकृत् सोमवर्चाश्च
विश्वकृत् कविरेव च॥३६॥ अनुगोप्ताशुगोप्ता च नप्ता चेश्वर एव
च । कीर्त्तितास्ते महाभागाः कालस्य गतिगोचराः ॥ ३७ ॥
अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा । हिंगुद्रव्येषु शाकेषु
पलाण्डुं लशुनं तथा ॥ ३८ ॥ सौभांजनः कोविदारस्तथा
गृंजनकादयः । कूष्मांडजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च॥३९॥
ग्राम्यवाराहमांसं च यच्चैवाप्रोक्षितं भवेत् । कृष्णा जाजी विड-
श्चैव शीतपाकी तथैव च । अंकुराद्यास्तथा वर्ज्या इह शृङ्गाटकानि

क्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्रधारी, सनातन विश्वेदेव, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्य, सावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति. चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शंकर, भव, ईश, कर्ता, कृति, दक्ष, भवन, दिव्यकर्मकृत्, गणित, पञ्चवीर्य, आदित्य, रश्मिवान्, सप्तकृत्, सोमवर्चा, विश्वकृत्, कवि, अनुगोप्ता, नप्ता, ईश्वर, इस प्रकार महाभाग्यवान् विश्वेदेवताओंके नाम कहे हैं और ये कालकी गतिके गोचर हैं ३०-३७ अब मैं श्राद्धधर्ममें न खाने योग्य पदार्थों का वर्णन करता हूँ, कोदरा, पुलक (चावलोंसहित धान), छौंकनेके पदार्थोंमें लहसन, प्याज, शिग्रु, कोविदार, गाजर, पेठा, आँवला, रामतुरई, कालानमक,ग्रामके सूअरका मांस तथा मंत्रोंसे प्रोक्षण न किया हुआ पदार्थ, काला जीरा, सोंचर नमक, शीतपाकी (शाकविशेष), अंकुरादि बाँस करीर आदि, और सिंघाड़ेका श्राद्धमें उपयोग न करना चाहिये ॥ ३८-४० ॥

च४०वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बुफलानि च।अवक्षुतावरुदितं तथा श्राद्धे च वर्जयेत्॥४१॥निवापे हव्यकव्ये वा गर्हितं च सुदर्शनम् । पितरश्च हि देवाश्च नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ४२ ॥ चाण्डाल-श्वपचौ वर्ज्यौ निवापे समुपस्थिते। काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महापि वा ॥ ४३ ॥ संकीर्णयोनिर्विप्रश्च सम्बन्धी पतितश्च यः । वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते ॥४४॥ इत्येवमुक्त्वा भगवान् स्ववंश्यं तमृषिं पुरा । पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

भीष्म उवाच । तथा निमौ प्रवृत्ते तु सर्व एव महर्षयः ।

तथा श्राद्धमें सब प्रकारके नमक और जामनोंका उपयोग न करना चाहिये और जिस पर रोया गया हो तथा जिस पर छींक दिया हो उस अन्नको श्राद्धमें त्याग देय ॥ ४१ ॥ सुदर्शन नामक शाकका पितरोंको पिण्ड देनेका निषेध है और सुदर्शन शाकका यज्ञ और श्राद्धमें उपयोग न करना चाहिये, सुदर्शन नामक शाककी हविको पितर और देवता स्वीकार नहीं करते हैं॥४२॥ पिण्डदानका समय आने पर श्राद्धके स्थानमेंसे चाण्डाल और श्वपचको हटा देना चाहिये तथा भगवाँ वस्त्र पहिरने वाले पाखण्डी, कोढ़ी, पतित तथा ब्रह्महत्यारेको भी श्राद्धस्थानमेंसे निकाल देना चाहिये ॥ ४३ ॥ विद्वान् पुरुष पिण्ड देते समय श्राद्धस्थानमेंसे वर्णसंकर ब्राह्मण और पतित संबंधीको हटा देय ॥ ४४ ॥ प्राचीनसमयमें इस प्रकार अपने वंशमें उत्पन्न हुए निमिसे कह कर अत्रि ऋषि पितामहकी दिव्य सभामें चले गए ॥ ४५ ॥ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ९१

भीष्मजीने कहा, कि-उपरोक्त प्रकारसे निमिके श्राद्ध करने

पितृयज्ञं तु कुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१॥ ऋषयो धर्मनित्यास्तु कृत्वा निवापनान्युत । तर्पणं चाप्यकुर्वन्त तीर्थाम्भोभिर्यतव्रताः ।२। निवापैर्दीयमानैश्च चातुर्वर्ण्येन भारत । तर्पिताः पितरो देवास्तत्रान्नं जरयन्ति वै ॥ ३ ॥ अजीर्णेनस्त्वभिहन्यन्ते ते देवाः पितृभिः सह । सोममेवाभ्यपद्यन्त तदा ह्यन्नाभिपीडिताः ॥४॥ तेऽब्रुवन् सोममासाद्य पितरोऽजीर्णपीडिताः । निवापान्नेन पीड्यामः श्रेयो नोऽत्र विधीयताम् ॥ ५ ॥ तान् सोमः प्रत्युवाचाथ श्रेयश्चेदीप्सितं सुराः । स्वयम्भूसदनं यात स वः श्रेयोऽभिधास्यति ॥ ६ ॥ ते सोमवचनाद्देवाः पितृभिः सह भारत । मेरुशृङ्गे समासीनं पितामहमुपागमन् ॥ ७ ॥ पितर ऊचुः । निवापान्नेन भगवन् भृशं पीड्यामहे वयम् । प्रसादं कुरु नो देव श्रेयो नः संविधीयताम् ॥ ८ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ।

पर सब महर्षि भी शास्त्रोक्त विधिसे पितृयज्ञ करने लगे १ धर्मको नित्य मानने वाले व्रतधारी ऋषि पिण्डदान करके तीर्थ के जलसे भी तर्पण करने लगे २ हे भरतवंशी राजन् ! तदनन्तर चारों वर्णोंकी प्रजा पितरोंको पिण्डदान देने लगी, इससे पितर और देवता तृप्त होगए, परन्तु उस अन्नको वे पचा न सके ३ और वे देवता और ऋषि अजीर्ण होनेसे पीड़ा पाकर सोमके पासगए४ पितर अजीर्णसे पीड़ा पाते हुए सोमसे कहने लगे, कि–"हम पिण्डके अन्नसे पीड़ा पारहे हैं, आप हमारा कल्याण करिये" ५ यह सुन कर सोमने देवताओंसे कहा, कि–हे देवताओं ! यदि तुम कल्याण पाना चाहते हो तो ब्रह्माजीकी सभामें जाओ, वे तुम्हें कल्याणदायिनी बात बतावेंगे ६ हे भरतवंशी राजन् ! सोमका वचन सुन कर देवता और पितर मेरुपर्वत पर विराजमान ब्रह्माजीके पास जाकर कहने लगे ७ पितरोंने कहा, कि–हे भगवन् ! आप हम पर कृपा कर हमारा कल्याण करिये८पितरोंकी

एष मे पार्श्वतो वह्निर्युष्मच्छ्रेयोऽभिधास्यति ॥९॥ अग्निरुवाच । सहितास्तात भोक्ष्यामो निवापे समुपस्थिते । जरयिष्यथ चाप्यन्नं मया सार्धं न संशयः ॥ १० ॥ एतच्छ्रुत्वा तु पितरस्ततस्ते विज्वराभवन् । एतस्मात् कारणाच्चाग्नेः प्राक्तावद्दीयते नृप ११ निवृत्ते चाग्निपूर्वे वै निवापे पुरुषर्षभ । न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवापं धर्षयन्त्युत ॥ १२ ॥ रक्षांसि चापवर्तन्ते स्थिते देवे हुताशने । पूर्वं पिंडं पितुर्दद्यात्ततो दद्यात्पितामहे ॥१३॥ प्रपिता-महाय च तत एष श्राद्धविधिः स्मृतः । ब्रूयात् श्राद्धे च सावित्रीं पिंडे पिंडे समाहितः ॥ १४ ॥ सोमायेति च वक्तव्यं तथा पितृ-मतेति च । रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोश्च या । निवा-

---

बात सुन कर स्वयंभू ब्रह्माजीने कहा, कि-यह मेरे समीपमें स्थित अग्नि तुम्हारा कल्याण करेगा ९ अग्निने कहा, कि-हे तात पितरो! पिण्डदानके समय हम एक साथ भोजन करेंगे,मेरे साथ भोजन करनेसे तुम्हारा अन्न पच जावेगा इसमें कुछ सन्देह करनेकी बात नहीं है १० हे राजन् ! इस बातको सुन कर पितर निश्चिन्त होगए इसी लिये अग्निको प्रथम पिण्ड दिया जाता है ११ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अग्निको पहिले पिण्ड देनेसे ब्रह्मराक्षस पिण्डको ग्रहण नहीं कर सकते १२ अग्निदेवके समीपमें खड़े रहनेसे राक्षस तहाँसे भाग जाते हैं, पहिला पिण्ड पिताके निमित्त देना चाहिये, दूसरा पिण्ड पितामहके निमित्त देना चाहिये १३ और तीसरा प्रपितामहके निमित्त देना चाहिये, यह श्राद्धकी विधि शास्त्रमें कही है, पिण्ड देने वालेको श्राद्धमें सावधान रह कर प्रत्येक पिण्ड देते समय गायत्रीमंत्र पढ़ना चाहिये १४ तदनन्तर 'सोमाय पितृमते स्वाहा' कह कर अग्निमें होम करना चाहिये, पिण्ड देते समय रजस्वला स्त्रीको तथा कान टूटी हुई स्त्रीको श्राद्धके स्थानसे दूर कर देना चाहिये,दूसरे वंशकी स्त्री

पेनोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजा ॥ १५ ॥ जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान्। नदीमासाद्य कुर्वीत पितृणां पिण्डतर्पणम् १६ पूर्वं स्ववंशजानां तु कृत्वाद्भिस्तर्पणं पुनः। सुहृत्संबन्धिवर्गाणां ततो दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ १७ ॥ कल्माषगोयुगेनाथ युक्तेन तरतो जलम्। पितरोऽभिलषन्ते वै नावं चाप्यधिरोहिताः १८ सदा नावि जलं तज्ज्ञाः प्रयच्छन्ति समाहिताः। मासार्धे कृष्णपक्षस्य कुर्यान्निर्वपणानि वै ॥१९॥ पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृभक्तितः। पितामहः पुलस्त्यश्च वसिष्ठः पुलहस्तथा ॥ २० ॥ अंगिराश्च क्रतुश्चैव कश्यपश्च महानृषिः। एते कुरुकुलश्रेष्ठ महायोगेश्वराः स्मृताः ॥ २१ ॥ एते च पितरो राजन्नेष श्राद्धविधिः परः।

से श्राद्धभोज्य अन्नको नहीं बनवाना चाहिये ॥ १५ ॥ जलको पार करते समय पितामहोंके नामका उच्चारण करना चाहिये और प्रत्येक नदीके पास पहुँचने पर भी पितरोंको पिण्ड देना चाहिये और तर्पण करना चाहिये ॥ १६ ॥ प्रथम अपने वंशके पुरुषोंका जलसे तर्पण करना चाहिये फिर सगे सम्बन्धियोंका जप करके तर्पण करना चाहिये ॥१७॥ एक गाड़ीमें दो बैल जोड़ कर नदीके पार उतरते हुए पुरुषको उन चितकबरे बैलोंकी पूँछके जलसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये, पितर ऐसे तर्पणको चाहते रहते हैं, और नावमें बैठा पुरुष भी पितृतर्पण करे ॥ १८ ॥ पितृतर्पणको जानने वाले पुरुष सावधान होकर नौकामें बैठने पर पितरोंका तर्पण अवश्य करते हैं, कृष्णपक्षके पन्द्रह दिनोंमें पितरोंको पिण्ड देना चाहिये और उनका तर्पण करना चाहिये १९ पितरोंकी भक्ति करनेसे पुष्टि आयु वीर्य तथा लक्ष्मीका लाभ होता है, पितामह पुलस्त्य वसिष्ठ पुलह अङ्गिरा क्रतु और महर्षि कश्यपको महायोगेश्वर समझे ॥ २०-२१ ॥ तथा हे राजन्! इनको पितर भी समझे,

प्रेतास्तु पिण्डसम्बन्धान्मुच्यन्ते तेन कर्मणा ॥ २२ ॥ इत्येषा पुरुषश्रेष्ठ श्राद्धोत्पत्तिर्यथागमम् । व्याख्याता पूर्वनिर्दिष्टा दानं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । द्विजातयो व्रतोपेता हविस्ते यदि भुञ्जते । अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अवेदोक्तव्रताश्चैव भुञ्जानाः कामकारणे । वेदोक्तेषु तु भुञ्जाना व्रतलुप्ता युधिष्ठिर ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच । यदिदं तप इत्याहुरुपवासं पृथग्जनाः । तपः स्यादेतदेवेह तपोन्यद्वापि किं भवेत् ३

यह उत्तम श्राद्धविधि है, पिण्ड देनेसे पिण्ड देने वालेके मरे हुए पुरुष प्रेतत्वके दुःखमेंसे मुक्त होजाते हैं ॥ २२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ राजन्! मैंने शास्त्रका अनुसरण कर तुझसे यह श्राद्धकी उत्पत्ति कही, इसको पहिले ऋषियोंने शास्त्रमें वर्णन करा था, अब मैं दानके विधानको कहूँगा २३ बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥

धर्मराजने बूझा, कि–हे भीष्म! व्रतधारी द्विज पुरुषको यजमानके घर हविका भोजन करने पर क्या फल मिलता है, क्योंकि–भोजन करने पर ब्राह्मणका व्रत भंग होजाता है और निषेध करने पर ब्राह्मण यजमानकी इच्छा भंग होजाती है, तो इनमें महापातक कौनसा है ? १ भीष्मजीने कहा, कि–हे कौन्तेय ! वेदोक्त व्रतका पालन न करने वालोंका यजमानकी इच्छानुसार भोजन करने पर व्रत टूट ही नहीं सकता, परन्तु वेदोक्त व्रतका पालन करने वाले यदि भोजन कर लेवे तो उनके व्रतका लोप हो जाता है २ धर्मराजने बूझा कि–बहुतसे पुरुष उपवासको तप कहते हैं, अतः यहाँ पर उपवास शब्दसे तपका ग्रहण करें, या तप कोई दूसरी वस्तु है ३ भीष्मजीने कहा, कि–मनुष्य एक मास और आधे

भीष्म उवाच । मासार्धमासोपवासाद्यत्तपो मन्यते जनः । आत्म-तंत्रोपघाती यो न तपस्वी न धर्मवित् ॥ ४ ॥ त्यागस्य चापि संपत्तिः शिष्यते तप उत्तमम् । सदोपवासी च भवेद्ब्रह्मचारी तथैव च ॥५॥ मुनिश्च स्यात् सदा विप्रो वेदांश्चैव सदा जपेत् । कुटुंबिको धर्मकामः सदा स्वप्नश्च मानवः ॥ ६ ॥ अमांसाशी सदा च स्यात् पवित्रं च सदा पठेत् । ऋतवादी सदा च स्यान्नियतश्च सदा भवेत् ॥ ७ ॥ विघसाशी कथं च स्यात् सदा चैवातिथिप्रियः । अमृताशा सदा च स्यात् पवित्री च सदा भवेत् ८ युधिष्ठिर उवाच । कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी च पार्थिव । विघसाशी कथं च स्यात् कथं चैवातिथिप्रियः ९ भीष्म उवाच ।

मासके तपको उपवास माने हैं, परन्तु (सत्य बात यह है, कि-)जो पुरुष अपने देहका (अथवा अपने कुटुम्बका) नाश करता है उसे न धर्मवेत्ता समझे और न तपस्वी समझे ॥ ४ ॥ त्यागकी सम्पत्ति भी उत्तम तप कहलाती है, ब्राह्मण सदा उपवास करे और ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करे ॥५॥ सदा मौन रहे तथा सदा वेदोंको पढ़ता रहे, धर्मकी कामना करने वाला स्त्रीके साथ विवाह करे और सन्तानवान् बने और धार्मिक विषयमें सदा जागृत रहे ६ सर्वदा मांसका भोजन न करे, सदा पवित्र रह कर वेदका पाठ करे, सदा सत्य भाषण करे, तथा सदा नियम में रहे ७ सदा विघस (ब्राह्मणों और अतिथियोंको जिमानेसे बचा हुआ) अन्न सदा भक्षण करे, अतिथियों पर सदा प्रेम रक्खे, सदा (पञ्चमहायज्ञसे बचे हुए) अमृतका भोजन करे और सदा पवित्र रहे ॥ ८ ॥ धर्मराजने बूझा, कि-हे राजन् ! किस प्रकार सदा उपवास करे, किस प्रकार ब्रह्मचारी रहे, किस प्रकार विघसका भोजन करे तथा किस प्रकार अतिथिका प्रिय बने ? ९ भीष्मजीने कहा, कि-जो पुरुष दिन और रात्रिके

अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं च यो नरः॥सदोपवासी भवति यो न भुंक्तेऽतरा पुनः॥१०॥भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति चैव ह। ऋतवादी सदा च स्याद्दानशीलस्तु मानवः ॥११॥ अभक्षयन् वृथा मांसममांसाशी भवत्युत। दानं ददत् पवित्री स्यादस्वप्नश्च दिवाऽस्वपन् ॥ १२ ॥ भृत्यातिथिषु यो भुंक्ते भुक्तवत्सु नरः सदा। अमृतं केवलं भुंक्ते इति विद्धि युधिष्ठिर ॥ १३ ॥ अभुक्तवत्सु नाश्नाति ब्राह्मणेषु तु यो नरः। अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत ॥ १४ ॥ देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च संश्रितेभ्यस्तथैव च। अवशिष्टानि यो भुंक्ते तमाहुर्विघसाशिनम् ॥१५॥ तेषां लोका ह्यपर्यंताः सदने ब्रह्मणः स्मृताः। उपस्थिता ह्यप्स-

---

बीचमें दो वार ही भोजन करता है और बीचमें भोजन नहीं करता है वह पुरुष सदा उपवासी माना जाता है ॥ १० ॥ जो पुरुष ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीसे समागम करता है, वह पुरुष ब्रह्मचारी माना जाता है, जो पुरुष सदा दान देता रहता है, वह पुरुष सदा सत्यभाषी समझा जाता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष देवताको अर्पण किये विना मांसका वृथा ही भक्षण करता है वह अमांसाशी कहलाता है, दान देने वाला पवित्र होजाता है, और जो पुरुष दिनमें नहीं सोता है, वह पुरुष निद्रा न करने वाला कहलाता है ॥ १२ ॥ हे युधिष्ठिर! जो पुरुष सदा माता पिता आदि पाल्यवर्ग तथा अतिथियोंके भोजन करनेके पीछे भोजन करता है, उस पुरुषको केवल अमृतका भोजन करने वाला समझना चाहिये ॥ १३ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणोंके न जीमने तक भोजन नहीं करता है वह पुरुष इस प्रकार भोजन न करनेसे स्वर्गको जीत लेता है ॥ १४ ॥ जो पुरुष देवता, पितर तथा आश्रितोंको भोजन करानेके बाद बचे हुए भोजनका भक्षण करता है, ऋषि उस पुरुषको विघसाशी कहते हैं १५

रसो गंधर्वैश्च जनाधिप १६ देवतातिथिभिः सार्धं पितृभिश्चोप-
भुञ्जते । रमंते पुत्रपौत्रेण तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर
उवाच । ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छंति दानानि विविधानि च । दातृ-
प्रतिगृहीत्रोर्वै को विशेषः पितामह १८ भीष्म उवाच । साधोर्यः
प्रतिगृह्णीयात्तथैवासाधुतो द्विजः । गुणवत्यल्पदोषः स्यान्निर्गुणे
तु निमज्जति ॥ १९ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृषादर्भेश्च सम्वादं सप्तर्षीणां च भारत ॥ २० ॥ कश्यपो-
ऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः । विश्वामित्रो जमदग्निः
साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥ २१ ॥ सर्वेषामथ तेषां तु गण्डाभूत्कर्म
कारिका । शूद्रः पशुसखश्चैव भर्ता चास्या बभूव ह ॥ २२ ॥

और वह पुरुष अनन्त लोकोंको पाता है तथा ब्रह्मलोकमें भी जाता है तथा हे राजन् ! गन्धर्व और अप्सरायें उसकी सेवा करते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष देवता अतिथि तथा पितरोंके साथ भोजन करता है, वह पुत्र पौत्रोंके साथ आनन्द करता है और उसको उत्तम गति मिलती है ॥ १७ ॥ धर्मराजने बूझा, कि—हे भीष्म ! ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये जाते हैं, परन्तु दाता और प्रतिग्रहीतामें क्या भेद है, यह मुझे बताइये ॥ १८ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे धर्मराज ! ब्राह्मण सत्पुरुष और असत्पुरुष इन दोनोंसे दान लेते हैं, इनमें गुणी पुरुषसे दान लेने पर थोड़ा दोष लगता है, परन्तु निर्गुण पुरुषसे दान लेने पर दान लेने वाला नरकमें डूब जाता है ॥१९॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस विषयमें वृषादर्भि और सप्तर्षियोंके सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त इस प्रकार दिया करते हैं कि—॥ २० ॥ कश्यप अत्रि वसिष्ठ भरद्वाज गौतम विश्वामित्र और जमदग्नि ये सात ऋषि और साध्वी अरुन्धती (एक साथ रहते थे) इन सबकी गण्डा नाम वाली एक स्त्री सेवा करती थी और उसके शूद्रजातिके

ते च सर्वे तपस्यंतः पुरा चेरुर्महीमिमाम् । समाधिनोपशिक्षंतो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥२३॥ अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन । कृच्छ्रप्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधान्वितः २४ कस्मिंश्चिच्च पुरा यज्ञे शैब्येन शिविसूनुना । दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विग्भ्यो दत्तः पुत्रः पुरा किल ॥ २५ ॥ अस्मिन् कालेऽथ सोऽल्पायुर्दिष्टांतमगमत् प्रभुः । ते तं क्षुधाभिसंतप्ताः परिवार्योपतस्थिरे ॥ २६ ॥ याज्यात्मजमथो दृष्ट्वा गतासुमृषिसत्तमाः । अपचन्त तदा स्थाल्यां क्षुधार्ताः किल भारत ॥ २७ ॥ निरन्ने मर्त्यलोकेऽस्मिन्नात्मानं ते परीप्सवः । कृच्छ्रामापेदिरे वृत्तिमन्नहेतोस्तपस्विनः ॥ २८ ॥ अटमानोऽथ तान्मार्गे पचमानान् महीपतिः । राजा शैब्या वृषादर्भिः क्लिश्यमानान् ददर्श ह ॥ २९ ॥ वृषादर्भिरुवाच । प्रतिग्रह-

---

भर्ताका नाम पशुसख था ॥ २२ ॥ (वे सब एक साथ रहते थे) पहिले वसिष्ठ आदि ऋषि समाधिके द्वारा सनातन ब्रह्मलोकको पाना चाहते थे. इसलिये वे तप करते हुए पृथ्वी पर घूमते रहते थे २३ हे कुरुनन्दन ! किसी समय बहुत दिनों तक वर्षा न हुई और मनुष्य भूखसे मरने लगे ॥२४॥ उस समय शिविके पुत्र शैब्यने यज्ञ किया, उसमें उसने दक्षिणारूपमें अपने पुत्रको अर्पण कर दिया ॥ २५ ॥ परन्तु उस पुत्रकी आयु थोड़ी ही थी, इससे वह मर गया, तब क्षुधापीड़ित सब ब्राह्मण उसको घेर कर खड़े होगए २६ और हे भरतवंशी राजन् ! क्षुधातुर हुए वे ऋषि उस यजमानपुत्रको मरा हुआ देख कर उसको एक कड़ाईमें डाल कर अग्निमें चढ़ा कर पकाने लगे ॥ २७ ॥ उस समय जगत्में अन्न नहीं मिलता था और वे अपने शरीरकी रक्षा करना चाहते थे तथा अन्नके कारण वे बड़ा कष्ट पा रहे थे २८ उस समय शिविका पुत्र राजा वृषादर्भि घूमता २ उस मार्गसे निकला, उसने ऋषियोंको अन्नके लिए दुःखी होते हुए और

स्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्णताम् । मयि यद्विद्यते वित्तं तद्वृणुध्वं तपोधनाः ॥ ३० ॥ प्रियो हि मे ब्राह्मणो याच्यमानो दद्यामहं वोऽश्वतरीसहस्रम् । एकैकशः सवृषाः संप्रसूताः सर्वेषां वै शीघ्रगाः श्वेतरोमाः ॥३१॥ कुलंभरानन्डुहः शतं शतान् धुर्यान् श्वेतान् सर्वशोहं ददामि । पृष्ठौहीनां पीवराणां च तावदग्र्या गृष्ट्यो धेनवः सुव्रताश्च ॥ ३२ ॥ वरान् ग्रामान् व्रीहिरसं यवांश्च रत्नं चान्यद्धु दुर्लभं किं ददानि । नास्मिन्नभक्ष्ये भावमेवं कुरुध्वं पुष्ट्यर्थं वः किं प्रयच्छाम्यहं वै ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः । राजन् प्रतिग्रहो राज्ञां मध्वास्वादो विषोपमः । तज्जानमानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम् ॥३४॥ क्षेत्रं हि दैवतमिदं ब्राह्मणान् समु-

दक्षिणामें लिखे हुए पुत्रको राँधते देख कर उनसे कहा २९ वृषादर्भिने कहा, कि-प्रतिग्रह करनेसे तुम दुःखमेंसे मुक्त हो जाओगे और तुम्हारा शरीर पुष्ट होजायगा, हे तपोधनों ! मेरे पास जो धन है, उसको तुम ग्रहण करो ३० क्योंकि जो ब्राह्मण मुझसे याचना करता है, वह मुझको प्रिय लगता है, मैं तुममेंसे प्रत्येकको एक सहस्र खच्चर तथा श्वेत रुओं वाली उतावलीसे चलने वाली ब्याही हुई सहस्र गौएँ और बैल दूँगा ३१और मैं तुमको भार उठा सकने वाले अच्छी नसलके श्वेत सौ २ बैल दूँगा तथा शरीरमें स्थूल सधी हुई पहलौन गौएँ दूँगा ३२ मैं तुमको उत्तम गौ, व्रीहि, रस, यव, रत्न अथवा और कौनसी दुर्लभ वस्तु दूँ ? तुम इस अभक्ष्य पदार्थ पर प्रीति न करो, बताओ तुम्हारे शरीरको पुष्ट करनेके लिए मैं तुमको क्या दूँ ३३ ऋषियोंने कहा, कि-हे राजन् ! राजाका प्रतिग्रह स्वादमें मधु की समान मधुर है, परन्तु परिणाममें विषकी समान है, इस बातको आप भी जानते हैं, फिर भी आप हमें क्यों लोभ देते हैं । ३४ ॥ देवता ब्राह्मणोंमें निवास करते हैं अत एव ब्राह्मण

पाश्रितम् । अपलो ह्येष तपसा प्रीतः प्रीणाति देवताः ॥ ३५ ॥ अह्नापीह तपो जातु ब्राह्मणस्योपजायते । तद्दाव इव निर्दह्यात् प्राप्तो राजप्रतिग्रहः ॥ ३६ ॥ कुशलं सह दानेन राजन्नस्तु सदा तव । अर्थिभ्यो दीयतां सर्वमित्युक्त्वान्येन ते ययुः ॥ ३७ ॥ अपक्वमेव तन्मांसमभूत्तेषां महात्मनाम् । अथ हित्वा ययुः सर्वे वनमाहारकांक्षिणः ॥ ३८ ॥ ततः प्रचोदिता राज्ञा वनं गत्वास्य मंत्रिणः । प्रचीयोदुंबराणि स्म दातुं तेषां प्रचक्रिरे ॥ ३९ ॥ यदुंबराण्यथान्यानि हेमगर्भाण्युपाहरन् । भृत्यास्तेषां ततस्तानि प्रग्राहितुमुपाद्रवन् ॥४०॥ गुरूणीति विदित्वाथ न ग्राह्याण्यत्रिर-ब्रवीत् । न स्महे मंदविज्ञाना न स्महे मन्दबुद्धयः ॥ ४१ ॥ हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्म जागृम । इह ह्येतदुपादत्तं

देवताओंके क्षेत्र हैं, यदि ब्राह्मण तपसे शुद्ध होकर प्रसन्न होता है, तो देवता भी प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण दिन भरमें जितना तप इकट्ठा करता है उस तपको दावाग्नि जैसे वनको जला कर भस्म कर डालती है, तैसे ही राजाका प्रतिग्रह नष्ट कर डालता है ३६ हे राजन् ! तेरा दानके साथ सदा कुशल हो और तू याचकोंको दान दे, यह बात कह कर ऋषि दूसरी ओर चले गए ॥ ३७ ॥ तब उन महात्मा ऋषियोंका अग्नि पर पकाया हुआ मांस भी अपक ही रह गया और वे सब आहार की कांक्षा करते हुए वनको चले गए ३८ तब उस राजाने अपने ऋत्विजोंको ऋषियोंके पीछे वनमें भेजा, वे गूलड़ोंको ले कर वनमें गए और ऋषियोंको देने लगे ३९ तदनन्तर उनके सेवक भी दूसरे गूलड़ोंमें सुवर्ण भर कर लाये और वे उनको देनेके लिये उनके पीछे दौड़े ४० अत्रि ऋषि उन गूलड़ोंको वजनदार देख कर कहने लगे, कि—ये गूलड़ ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, हम कुछ मन्द विज्ञान वाले अथवा मन्दबुद्धि नहीं हैं ४१

प्रेत्य स्यात्कुःकोदयम् । अप्रतिग्राह्यमेवैतत् प्रेत्येह च सुखेप्सुना ४२
वसिष्ठ उवाच । शतेन निष्कगणितं सहस्रेण च संमितम् । तथा बहु प्रतीच्छन् वै पापिष्ठां पतते गतिम् ॥ ४३ ॥ कश्यप उवाच । यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। सर्वं तन्नालमेकस्य तस्माद्विद्वाञ्छमं चरेत् ॥४४॥ भरद्वाज उवाच । उत्पन्नस्य रुरोः शृगं वर्धमानस्य वर्धते । प्रार्थना पुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते ४५
गौतम उवाच । न तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत् । समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते ॥४६॥ विश्वामित्र उवाच । कामं कामयमानस्य यदा कामः समृद्ध्यते । अथैनमपरः काम-

हम जानते हैं, कि–इन गूलड़ोंमें सुवर्ण भरा हुआ है, हममें बुद्धि है और हम जाग रहे हैं, इस लोकमें प्रतिग्रह करनेसे परलोकमें उसका बुरा परिणाम होता है, इस लोकमें तथा मरणके पीछे परलोकमें जो सुख चाहता हो उसको प्रतिग्रह न करना चाहिये४२
वसिष्ठजीने कहा, कि–एक निष्कका दान लेनेसे सौ निष्कोंका और सौ निष्कोंका दान लेनेसे सहस्र निष्कोंके दान लेनेका पातक लगता है और अधिक प्रतिग्रह लेने वाला महापापाकी गतिका प्राप्त होता है४३ कश्यपने कहा, कि–इस पृथ्वीमें जितने व्रीहि, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियें वे सब एक पुरुषको मिल जाँय तब भी उसको सन्तोप नहीं हो सकता अत एव विद्वान् ..देष शान्ति रक्खे,(लोभ न करे)४४भरद्वाजने कहा,कि–उत्पन्न हुए रुरुमृगके बढ़नेके साथ २ उसका सींग भी बढ़ने लगता है, इसी प्रकार पुरुषकी इच्छा भी बढ़ती ही चली जाती है, उसकी किसी प्रकारकी अवधि नहीं होती है ४५ गौतमने कहा,कि–इस जगत्में ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो जगत्की तृष्णाको शान्त कर सके; पुरुष एक समुद्रकी समान है, वह कभी पूर्ण ही नहीं हो सकता४६विश्वामित्रने कहा,कि–कामना करने वाले

स्तृष्णा विध्यति बाणवत् ॥ ४७ ॥ जमदग्निरुवाच । प्रतिग्रहे संयमो वै तपो धारयते ध्रुवम् । तद्धनं ब्राह्मणस्येह लुभ्यमानस्य विस्रवेत् । ४८ । अरुंधत्युवाच । धर्मार्थं संचयो यो वै द्रव्याणां पक्षसंमतः । तपःसंचय एवेह विशिष्टो द्रव्यसंचयात् ४६ गंडोवाच । उग्रादितो भयाद्यस्माद्बिभ्यतीमे ममेश्वराः । बलीयांसो दुर्बलवद्बिभेम्यहमतः परम् ५० पशुसख उवाच । यद्वै धर्मे परं नास्ति ब्राह्मणास्तद्धनं विदुः। विनयार्थं सुविद्वांसमुपासेयं यथातथम् ५१ ऋषय ऊचुः । कुशलं सह दानेन तस्मै यस्य प्रजा इमाः। फलान्युपधियुक्तानि य एवं नः प्रयच्छति५२ भीष्म उवाच इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि हित्वा तानि फलानि वै । ऋषयो जग्मुरन्यत्र

पुरुषकी एक कामना पूर्ण हुई कि उसमें तुरत ही दूसरी कामना उत्पन्न हो जाती है और वह दूसरा तृष्णा रूपी बाण उसको वींध डालता है४७ जमदग्निने कहा, कि-प्रतिग्रह न लेनेसे ही ब्राह्मण तपको धारण कर सकता है,इस जगत्में तप ही ब्राह्मणका धन है,परन्तु(इस दानको स्वीकार करनेसे)लोभी ब्राह्मणका तपोरूप धन नष्ट होजाता है४८अरुन्धतीने कहा,कि-धर्मके लिये पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये, यह एक पक्ष है, परन्तु पदार्थोंका संग्रह करनेसे तपका संग्रह करना उत्तम माना जाता है ४६ गण्डाने कहा, कि-मेरे ये समर्थ स्वामी भी इस भयंकर भयसे दुर्बलकी समान काँप रहे हैं, तो फिर मेरी तो बात ही क्या है ? ॥५०॥ पशुसखने कहा, कि-लोभ आदि दोषोंसे उत्तम लोक नहीं मिलते हैं, अत एव ब्राह्मण अलोभको ही धन मानते हैं और मैं भी अलोभको ही सीखनेके लिये यथोचित रीतिसे इन विद्वान् ऋषियों की सेवा करता हूँ ॥ ५१ ॥ ऋषियोंने कहा, कि-जिस राजा की प्रजा गूलड़ोंमें सुवर्ण भर कर छलपूर्वक हमको देरही है, उस राजाका उसके दानके साथ कल्याण हो. ५२ भीष्मजीने कहा

सर्वे एव धृतव्रताः ॥ ५३ ॥ मंत्रिण ऊचुः। उपधिं शंकमानास्ते हित्वा तानि फलानि वै । ततान्येनैव गच्छन्ति विदितं तेस्तु पार्थिव ॥ ५४ ॥ इत्युक्तः स तु भृत्यैस्तैर्वृषादर्भिश्चुकोप ह । तेषां वै प्रतिकर्तुं च सर्वेषामगमद्गृहम् ॥ ५५ ॥ स गत्वाह वनीयेग्नौ तीव्रं नियममास्थितः । जुहाव संस्कृतैर्मंत्रैरेकैकामाहुतिं नृपः ॥५६॥ तस्मादग्नेः समुत्तस्थौ कृत्या लोकभयंकरी । तस्या नाम वृषादर्भिर्यातुधानीत्यथाकरोत् ॥ ५७ ॥ सा कृत्या कालरात्रीव कृतांजलिरुपस्थिता । वृषादर्भिं नरपतिं किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ वृषादर्भिरुवाच । ऋषीणां गच्छ सप्तानामरुंधत्यास्तथैव च । दासीभर्तुश्च दास्याश्च मनसा नाम धारय ५९

कि-वे व्रतधारी सब ऋषि इस प्रकार कह कर जिनके अन्दर सुवर्ण भर रहा था उन गूलड़ोंको त्याग कर तहाँसे दूसरे वनमें चले गए ॥ ५३ ॥ तब मंत्री (लौटकर राजासे) कहने लगे कि हे राजन्! वे ऋषि हमारे साथ छल किया गया है, इस शंकासे उन फलोंको त्याग कर दूसरे स्थान पर चले गए हैं, यह आपको को विदित हो ५४ सेवकोंके इस प्रकार कहने पर वृषादर्भिको कोप चढ़ा और वह उन सब ऋषियोंको शिक्षा देनेके लिये अपने घरको चला गया ५५ फिर घर जाकर उस राजाने तीव्र नियम धारण करके आहवनीय नामक अग्निमें मंत्र पढ़ कर एक एक आहुति होमना आरंभ की ॥ ५६ ॥ तब अग्निमेंसे लोकोंको भयभीत करने वाली एक कृत्या उत्पन्न हुई, वृषादर्भिने उसका यातुधानी नाम रक्खा ॥ ५७ ॥ वह कालिरात्रिकी समान कृत्या दोनों हाथ जोड़ कर खड़ी होगई और उसने राजा वृषादर्भिसे बूझा, कि-मैं क्या करूँ ॥ ५८ ॥ राजा-वृषादर्भिने कहा कि-तू सप्त ऋषि, अरुन्धती और उनकी दास दासीके पीछे जा, तू इन सबके नामोंको अपने मनमें रख ले ॥५९॥ और उनके नामोंको

ज्ञात्वा नामानि चैवैषां सर्वानेतान्विनाशय । विनष्टेषु तथास्वैरं गच्छ यत्रेप्सितं तव ॥ ६० ॥ सा तथेति प्रतिश्रुत्य यातुधानीस्वरूपिणी । जगाम तद्वनं यत्र विचेरुस्ते महर्षयः ॥६१॥ भीष्म उवाच । अथात्रिप्रमुखा राजन् वने तस्मिन् महर्षयः । व्यचरन् भक्षयंतो वै मूलानि च फलानि च ॥ ६२ ॥ अथापश्यन् सुपीनांसं पाणिपादमुखोदरम् । परिव्रजंतं स्थूलांगं परिव्राजं शुना सह ॥ ६३ ॥ अरुन्धती तु तं दृष्ट्वा सर्वांगोपचितं शुभम् । भवितारो भवंतो वै नैवमित्यब्रवीदृषीन् ॥६४॥ वसिष्ठ उवाच । नैतस्येह यथास्माकमग्निहोत्रमनिर्हुतम् । सायं प्रातश्च होतव्यं तेन पीवाञ्छुना सह ॥६५॥ अत्रिरुवाच । नैतस्येह यथास्माकं क्षुधा वीर्यं समाहृतम् । कृच्छ्राधीतं प्रनष्टं च तेन पीवाञ्छुना

जान-कर इन सबका नाश कर उनका नाश करने पर अपनी इच्छानुसार चली जाना ॥ ६० ॥ भीष्मजीने कहा, कि वह मूर्तिमती कृत्या यातुधानी "तथास्तु" कह प्रतिज्ञा कर जिस वनमें महर्षि फिर रहे थे उस वनमें चली गई ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! उधर अत्रि आदि महर्षि उस वनमें फल मूल खाते हुए वनमें विचर रहे थे ॥ ६२ ॥ इतनेमें उन्होंने विशाल खभे, मोटे हाथ, पैर, मुख, और पेट वाले एक संन्यासीको कुत्तोंके साथ वनमें घूमते हुए देखा ॥६३॥ सब अंगोंमें पुष्ट संन्यासीके शुभ आकार को देख कर अरुन्धतीने ऋषियोंसे कहा, कि तुम इसकी समान पुष्ट अंगों वाले कभी न होगे ॥ ६४ ॥ वसिष्ठजीने कहा, कि-जैसे हमें सायंकाल और प्रातकालमें अग्निमें होम करनेकी चिन्ता रहती है, वह चिन्ता इसको नहीं है, इसी लिये ये कुत्तों-सहित स्थूलशरीर वाला दीख रहा है ॥ ६५ ॥ हमारा वीर्य, क्षुधाके कारण नष्ट होगया है और कठिनतासे पढ़ी हुई बातोंको भी हम भूल गए है, उस प्रकारका यह नहीं है, अत एव यह मोटा

सह ॥ ६६ ॥ विश्वामित्र उवाच । नैतस्येह यथास्माकं शश्व-च्छास्त्रं जरद्गवः । अलसः क्षुत्परो मूर्खस्तेन पीवाञ्छुना सह ६७ जमदग्निरुवाच । नैतस्येह यथास्माकं भक्तमिंधनमेव च । संचित्य वार्षिकं चित्ते तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ६८ ॥ कश्यप उवाच । नैतस्येह यथास्माकं चत्वारश्च सहोदराः । देहि देहीति भिक्षंति तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ६९ ॥ भरद्वाज उवाच । नैतस्येह यथा-स्माकं ब्रह्मबन्धोरचेतसः । शोको भार्यापवादेन तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ७० ॥ गोतम उवाच । नैतस्येह यथास्माकं त्रिकौशेयं च रांकवम् । एकैकं वै त्रिवर्षीयं तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ७१ ॥ भीष्म उवाच । अथ दृष्ट्वा परिव्राट् स तान् महर्षीन् शुना सह ।

पुरुष कुत्तोंके साथ (घूम रहा है) ॥ ६६ ॥ विश्वामित्रने कहा, कि-हम शास्त्रमें कहे हुए धर्मको भूल गए हैं, और मैं भूखा तथा मूर्ख होरहा हूँ, और ये ऐसा नहीं है, इसी लिये ये कुत्तोंसहित स्थूल शरीर वाला दीख रहा है ॥ ६७ ॥ जमदग्निनें कहा ,कि-जैसे हमारे मनमें वर्षभरके भोजन तथा काष्ठका संग्रह करनेकी चिंता रहती है, तैसी इसको नहीं है, इसी लिये यह कुत्तोंसहित स्थूल शरीर वाला दीखता है ॥ ६८ ॥ कश्यपने कहा, कि जैसे हमारे चार सहोदर मुझे दो मुझे दो कह कर भिक्षा माँगते हैं, तैसे इसके नहीं हैं, अत एव यह कुत्तोंसहित स्थूल शरीर वाला दीखरहा है ॥ ६९ ॥ भरद्वाजने कहा, कि-हम जैसे ब्रह्मबन्धु होगए हैं और हमें जैसे अपनी भार्याओंकी निन्दा होनेसे शोक हुआ है, तैसा इसको नहीं हुआ है, इसी लिये यह कुत्तोंसहित स्थूल दीख रहा है ॥ ७० ॥ गौतमने कहा, कि-हमारे पास जैसे फटे हुए तीन रेशमी वस्त्र और तीन वर्ष का जीर्ण रुरुनामक मृगका चर्म है ऐसी दशा इसकी नहीं है, अत एव यह कुत्तोंसहित स्थूल शरीरवाला दीख रहा है ॥७१ ॥

अभिगम्य यथान्यायं पाणिस्पर्शमथाचरत् ॥ ७२ ॥ परिचर्यां वने तां तु क्षुत्प्रतीघातकारिकाम्। अन्योऽन्येन निवेद्याथ प्रातिष्ठंत सहैव ते ॥ ७३ ॥ एकनिश्चयकार्याश्च व्यचरन्त वनानि ते । आददानाः समुद्धृत्य मूलानि च फलानि च ॥ ७४ ॥ कदाचिद्विचरन्तस्ते वृक्षैरविरलैर्वृताम् । शुचिवारिप्रसन्नोदां ददृशुः पद्मिनीं शुभाम् ॥ ७५ ॥ बालादित्यवपुःप्रख्यैः पुष्करैरुपशोभिताम् । वैदूर्यवर्णसदृशैः पद्मपत्रैरथावृताम् ॥ ७६ ॥ नानाविधैश्च विहगैर्जलप्रकरसेविभिः। एकद्वारामनादेयां सूपतीर्थामकर्दमाम् ७७ वृषादर्भिप्रयुक्ता तु कृत्या विकृतदर्शना । यातुधानीति विख्याता पद्मिनीं तामरक्षत ॥७८॥ पशुसखसहायास्तु बिसार्थं ते महर्षयः ।

भीष्मजीने कहा, कि–तदनन्तर वह कुत्तोंके साथ घूमता हुआ संन्यासी उन ऋषियोंको देख कर उनके पास गया और यथाशास्त्र उनके हाथोंका स्पर्श किया ॥७२॥ तदनन्तर वे सब हम भूख मिटानेके लिये घूम रहे हैं, इस प्रकार परस्पर बात चीत करके एक साथ वनमें घूमने लगे ॥ ७३ ॥ वे एकमत हो मूल और फलोंको तोड़ उनका आहार करते हुए वनमें घूमने लगे ७४ एक दिन उन्होंने वनमें घूमते २ एक सुन्दर बावड़ी देखी, वह बावड़ी सघन वृक्षोंसे छा रही थी, उसमें भरा हुआ जल पवित्र और निर्मल था और उसमें कमल भर रहे थे ॥ ७५ ॥ वह बावड़ी उदय होते हुए सूर्यकी समान कान्तिवाले कमलोंसे शोभायमान थी और यह वैदूर्यमणिकी समान कान्ति वाले कमलके पत्तोंसे छारही थी ॥ ७६ ॥ अनेक प्रकारके पशुपक्षी उस जलाशयका सेवन कर रहे थे, उस बावड़ीका दरवाजा एक था, उसमेंसे कमल नहीं लिये जासकते थे, उसमें उतरनेका मार्ग सरल था और वह कीचड़रहित थी ॥ ७७ ॥ वृषादर्भिकी भेजी हुई भयंकर आकृति वाली यातुधानी नामसे

पद्मिनीमभिजग्मुस्ते सर्वे कृत्याभिरक्षिताम् ॥ ७९ ॥ ततस्ते यातुधानीं तां दृष्ट्वा विकृतदर्शनाम् । स्थितां कमलिनीतीरे कृत्यामूचुर्महर्षयः ॥ ८० ॥ एका तिष्ठसि का च त्वं कस्यार्थे किं प्रयोजनम् । पद्मिनीतीरमाश्रित्य ब्रूहि त्वं किं चिकीर्षसि ॥ ८१॥ यातुधान्युवाच । यास्मि सास्म्यनुयोगो मे न कर्तव्यः कथञ्चन । आरक्षिणीं मां पद्मिन्या वित्त सर्वे तपोधनाः ॥ ८२ ॥ ऋषय ऊचुः । सर्व एव क्षुधार्ताः स्म न चान्यत्किंचिदस्ति नः । भवत्याः सम्मते सर्वे गृह्णीयाम बिसान्युत ॥ ८३ ॥ यातुधान्युवाच । समयेन बिसानीतो गृह्णीध्वं कामकारतः । एकैको नाम मे प्रोक्त्वा ततो गृह्णीत मा चिरम् ॥ ८४ ॥ भीष्म उवाच । विज्ञाय यातुधानीं तां कृत्यामृषिवधैषिणीम् । अत्रिः क्षुधापरीतात्मा ततो

प्रसिद्ध कृत्या उस बावड़ीकी रक्षा कर रही थी ७८ वे पशुसख-सहित सब महर्षि उस कृत्यासे रक्षित बावड़ीकी ओर कमल लेनेके लिये चले ७९ तहाँ पर उन्होंने भयंकर आकृति वाली यातुधानीको बावड़ीके तट पर बैठे हुए देख कर कहा, कि-८० यहाँ पर अकेली बैठी हुई तुम कौन हो ? किस लिये बैठी हो ? तुम्हारे यहाँ बैठे रहनेका क्या प्रयोजन है? बताओ ! तुम बावड़ीके तट पर बैठ कर क्या करना चाहती हो ? ८१ यातुधानीने कहा, कि--मैं चाहें कोई होऊँ, तुम मुझ पर हुकम चलाने वाले कौन हो?तुम सब तपोधन मुझे इस बावड़ीकी रक्षा करने वाली जानो८२ऋषियोंने कहा, कि हम सब भूखसे पीडित होरहे हैं, हमारे पास और कुछ नहीं है,क्या हम सब तुम्हारी सम्मति लेकर इस बावड़ीमेंसे कमल लेसकते हैं८३यातुधानीने कहा कि-तुम एक प्रतिज्ञा करके इस बावड़ीमेंसे इच्छानुसार कमल (भसीड़े) लेसकते हो अर्थात् तुम एक२अपना २ नाम कह कर शीघ्रतासे कमलोंको लेसकते हो८४भीष्मजीनेकहा,कि-क्षुधासे व्याकुल आत्मावाले अत्रि

वचनमब्रवीत् ॥ ८५ ॥ अत्रिरुवाच । अरात्रिरत्रिः सा रात्रिर्या

ऋषिने उस यातुधानी नाम वाली कृत्याको ऋषियोंका वध करनेकी इच्छा वाली जान कर यह बात कही ८५ अत्रिने कहा, कि-मैं जगत्को पापमेंसे मुक्त करता हूँ,इस लिये अत्रि कहलाता हूँ, तथा नित्य वेदोंका तीन वार अध्ययन करनेसे मैंने अपनी रात्रिके दिन बना लिये हैं, इस लिये मैं अत्रि कहलाता हूँ, ऐसी कोई भी रात्रि नहीं है,जिसमें मैंने वेदोंका अध्ययन न किया हो इस लिये मैंअत्रि कहलाताहूँ,हे शोभने!इस प्रकार तू मुझे अत्रिजान (यहाँसे सप्तर्षियोंका यातुधानीके साथ सम्वाद चलता है, इसमें यातुधानीने ऋषियोंसे उसके नाम बूझे हैं, नाम बूझनेका कारण यह है, कि-उनके नामसे उनकी सामर्थ्यको जानकर कृत्या उनको मार डालना चाहती थी, परन्तु सप्तर्षियोंने अपने नामोंको ऐसे गूढ़रूपसे बताया, कि-वह उनको यथार्थरीतिसे न समझ सकी और न स्मरण रख सकी,-ये यातुधानी और सप्तर्षियोंके सम्वादरूप श्लोक महाकूट हैं, उनको नीलकण्ठने अपने बुद्धि की शक्तिके अनुसार यथासाध्य समझानेका यत्न किया है, उनको यहाँ क्रमशः दिखाया जायगा अत्रि शब्दका अर्थ पापमेंसे रक्षा करने वाला है। श्रुतिमें कहा है,कि-"यदिदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत । तदिदं किंच तत् तस्मादत्रयः। अर्थात् जो इस सब जगत् की पापमेंसे रक्षा करता है,वह ब्रह्मरूप है इससे मैं अत्रि कहलाता हूँ, अत्रि ऋषि यातुधानीको मोहमें डालनेके लिये अत्रि शब्दका अर्थ दूसरे शब्दोंमें बताते हैं, कि-" अरयः कामादयः सन्ति अस्मिन् इति अरं पापं तस्मात् त्रायते इति अरात्रिः । " अर्थात् जिसमें काम आदि अरि-शत्रु हों वह अर कहलाता है, अरसे त्राण अर्थात् रक्षा करने वाला अरात्रि कहलाता है जो अरात्रि होता है, वही अत्रि हो सकता है। और"अत्ति इति अद् मृत्युः

नाधीतेऽत्रिरथ वै । अरात्रिरत्रिरित्येव नाम मे विद्धि शोभने ॥८८

तस्मात् त्रायते इति अत्रिः । जो भक्षण करता है, वह अद्द अथवा मृत्यु कहलाता है और उससे त्राण (रक्षा) करने वाला अत्रि कहलाता है, मृत्यु शब्द पापका वाचक है । "पाप्मानं मृत्युमन्ववायान्" इस श्रुतिमें मृत्यु शब्दका अर्थ पाप लिया है, अर्थात् मैं काम आदिसे रक्षा करने वाला हूँ इस लिये मुझे अत्रि अर्थात् पापसे रक्षा करने वाला अथवा धर्म कहते हैं क्यों कि—"धर्मेण पापमपनुदति" धर्मसे पापका नाश करता है । दूसरी वार अपना नाम कहते हुए उन्होंने कहा, कि जिस अवस्थामें भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालका ज्ञान भिन्न २ होता है, वह अवस्था रात्रि कहलाती है । यथा पुत्रके उत्पन्न न होने पर उसका अनुत्पत्तिरूपसे अधिगम होता है । पुत्रकी उत्पत्ति होने पर उसका वर्तमानपनसे अधिगम होता है और नाश होनेके पीछे अतीतरूपसे अधिगम होता है, परन्तु यह ज्ञान जिस अवस्थामें नहीं होता है, और सब वर्तमान कालकी समान होजाता है उस जगत्की कारणरूप परब्रह्मकी प्राप्ति कराने वाली और सब पापोंका नाश कराने वाली अवस्थाको अरात्रि कहते हैं । इस अवस्थामें भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालका ज्ञान रहता है । श्रुतिमें लिखा है, कि—"यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दते," इस जगत्में जो कुछ (मिल गया) है और जो प्राप्त नहीं हुआ है, वह सब परब्रह्मको प्राप्त होनेसे मिल जाता है । "अत्र हि सर्वे कामाः समाहिताः ।" ज्ञानावस्थामें सब काम पूर्ण होजाते हैं, इस प्रकार मैं "अरात्रि" हूँ और इसी लिये मेरा नाम अत्रि है । वेदमें एक मंत्र इस प्रकार पढ़ा है, कि—"यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन्" अर्थात् असुर राहुने तमसे सूर्यको घेर लिया उसको

यातुधान्युवाच । यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते । दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ वसिष्ठ उवाच । वसिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वसे वासगृहेष्वपि । वसिष्ठत्वाच्च वासाच्च वसिष्ठ

अत्रियोंने पालिया, दूसरे न पासके। इस मंत्रका राहुशब्द मृत्युवाचक है अर्थात् मृत्युने अविद्यासे परब्रह्मको घेरलिया है अर्थात् देह आदिमें आत्मबुद्धिरूप अविद्यासे मनुष्य ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जान सकता, इस लिये अत्रि अर्थात् ब्रह्मविद्या जानने वाले परब्रह्मके स्वरूपको पाजाते हैं, दूसरे प्राप्त नहीं होसकते, मैं अत्रि अर्थात् ब्रह्मविद्याको जानने वाला हूँ ॥ ८६ ॥ यातुधानीने कहा, कि–हे महाकान्तिमान् ! आपने अपने नामका जिस प्रकार निर्वचन किया है,इसको मेरा मन कठिनतासे धारण कर सकता है अतः आप इस कमलोंसे भरपूर वावड़ीमें उतरिये ८७ वसिष्ठजीने कहा ,कि–मैं (योग गुण वाले) धनसे पूर्ण हूँ और मैं गृहस्थाश्रमके धर्मोंका पालन करता हूँ तथा मैं गृहस्थाश्रमके धर्मका पालन करने वालोंमें भी श्रेष्ठ हूँ, गृस्थाश्रमीकी रीतिसे आजीविका चलानेके कारण तथा सब गृहस्थाश्रमियोंमें श्रेष्ठ माना जानेसे तथा (योगरूपी) धनके अपने पास होनेसे तू मुझे वासिष्ठ जान (श्रुतिमें वसुओंकी गिनती करते हुए लिखा है, कि–वायुश्च पृथिवी च वारि चान्तरिक्षं च द्यौश्चादित्यश्चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चेति वसवः-वायु, पृथ्वी, जल, अंतरिक्ष आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि वसु कहलाते हैं, इस श्रुतिमें प्रसिद्ध वसु जिसके अधीन होते हैं वह वसुमान् कहलाता है अर्थात् उसको अणिमा आदि ऐश्वर्य प्राप्त होता है और वह महायोगी होता है, जो अत्यन्त वसुमान् होता है, वह वसिष्ठ कहलाता है, मैं ऐसा वसिष्ठ हूँ तथा अत्यन्त महान् हूँ, इससे मैं वरिष्ठ कहलाता हूँ सब मेरे अधीन हैं,मैं किसीके वशमें नहीं हूँ और

इति विद्धि माम् ॥८८॥ यातुधान्युवाच । नामनैरुक्तमेतत्ते दुःख-
व्याभाषिताक्षरम् । नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ८९
कश्यप उवाच । कुलं कुलं च कुवमः कुवमः कश्यपो द्विजः ।

मैं सबकी आजीविकारूप गृहस्थाश्रममें निवास कररहाहूँ,इसप्रकार गृहस्थाश्रममें वसने वालोंमें अतिश्रेष्ठ होनेसे मैं वशिष्ठ कहलाता हूँ, वसुमत् शब्दसे इष्ठन् प्रत्यय होने पर और इष्ठन् प्रत्ययके परे होने से मतुप् का लोप होने पर और टिका लोप होने पर वसिष्ठ शब्द बना है और वस्तुशब्दसे इष्ठन् प्रत्यय होकर टिलोप होने पर भी वसिष्ठ शब्द बनता है,भावार्थ यह है,कि-मैं देवता आदि सब प्राणियोंका आश्रयभूत हूँ इस लिये देवता मेरी रक्षा करते हैं८८ यातुधानी बोली कि-आपके नामका यह निर्वचन मेरी समझमें नहीं आता है क्यों कि-आपके नामके अक्षर कठिनतासे बोले जासकते हैं, आप जाइये और कमलवाली बावड़ीमें उतरिये८९ कश्यपने कहा, कि-मैं सदा अपने शरीरकी रक्षा करता हूँ और तप करनेसे तेजस्वी होगया हूँ,इस प्रकार शरीरकी रक्षा करनेसे तथा तपसे उत्पन्न हुए तेजके कारण मैं कश्यपके नामसे पहिचाना जाता हूँ. इस बातको तू जान (घोड़ोंको मारनेके चाबुकको कशा कहते हैं और उस कशाके योग्यको कश्य कहते है अर्थात् घोड़ाका नाम कश्प है,श्रुतिमें कहा है,कि-"इन्द्रियाणि हयानाहु" अर्थात् इन्द्रियें घोड़े कहलाती हैं अतः यहाँ कश्पय शब्दका अर्थ इन्द्रियें और वह जिसमें रहती हैं, ऐसा देह जानना चाहिये, उस शरीरमें रहने वाला मैं अकेला ही कश्पय नामक ब्राह्मण हूँ, मैं सब शरीरोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके उनका पालन करता हूँ, जीवरूपसे रह कर शरीरके सुख तथा दुःखोंका उप-भोग करता हूँ और ब्रह्मरूपसे सब शरीरोंको अपनेमें लय करता हूँ, इस प्रकार अपना अध्यात्मस्वरूप कह कर अब अधिदैव

काश्यः काशनिकाशत्वादेतन्मे नाम धारय ॥ ९० ॥ यातुधान्युवाच । यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते । दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९१ ॥ भरद्वाज उवाच । भरेऽसुतान् भरेऽशिष्यान् भरे देवान्भरे द्विजान् । भरे भार्यां भरेद्वाजं भर-

स्वरूपको कहते हैं, कि-मैं "कु" अर्थात् पृथ्वी पर "वमः" अर्थात् वमन करने वाला सूर्य हूँ, सूर्य पृथ्वी पर वृष्टि करता है, यह शास्त्रमें प्रसिद्ध है वह सूर्यरूप भी मैं ही हूँ, क्योंकि-सब सूर्य मेरे पुत्ररूप हैं और मैं काश जातिके पुष्पकी समान श्वेत रंगका हूँ अर्थात् पूर्णरीतिसे पलियों (झुर्रियों) वाला होगया हूँ, इससे प्रकाशवान् हूँ अर्थात् मैं बहुत ही वृद्ध होगया हूँ और तपसे तेजस्वी हूँ) ९० यातुधानीने कहा, कि हे महाकान्तिमान् ! अपने नामका जो निर्वचन आपने कहा है, इसको मैं मनसे ग्रहण नहीं करसकती अतः आप कमलोंसे भरपूर बावड़ीमें उतरिये ९१ भरद्वाजने कहा, कि-मैं सदा अपने अपुत्रोंका, अपने अशिष्योंका, देवताओंका, ब्राह्मणोंका और अपनी स्त्रीका पोषण करता हूँ, हे शोभने ! इस प्रकार सबका सरलतासे पोषण करने के कारण मैं भरद्वाज कहलाता हूँ ("प्रजा वै वाजः ता एष विभर्ति विभर्ति यद्व तस्माद्व भरद्वाजः" अर्थात् प्रजाको वाज कहते हैं उस प्रजाका जो पोषण करता है, वह भरद्वाज कहलाता है. इस श्रुतिके अनुसार भरद्वाजने अपने नामका निर्वचन किया है, मैं अशिष्य अर्थात् शासन करनेके अयोग्य राक्षसोंको और शत्रुओंको वशमें करके, भरे अर्थात् दयासे उनका पालन करता हूँ तथा असुतान् अर्थात् पुत्र ही नहीं किन्तु उदासीन दीनोंका और अदीनोंका भी पालन करता हूँ यहाँ भार्या शब्द केवल स्त्रीका ही वाचक नहीं है, किन्तु पुत्र सेवक आदिका भी वाचक है इसी प्रकार दूसरे भी जो शत्रुके वाज (साहस) को सहन करते हैं अथवा

द्वाजोऽस्मि शोभने ॥ ९२ ॥ यातुधान्युवाच । नामनैरुक्तमेतत्ते

अन्नसे उनका पोषण करते हैं, वे पृथ्वीकी समान सर्वसह और अन्न देने वाले कहलाते हैं, मैं भी ऐसा ही हूँ,भरद्वाज शब्दमेंसे द्वाज शब्दका पदच्छेद करने पर " द्वाभ्यां जातं " अर्थात् दोमेंसे उत्पन्न हुआ अर्थात् संकर अर्थ होता है, यहाँ कोई शंका करे, कि-"माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः" अर्थात् माता एक धौंकनीरूप है और पुत्र तो पितासे उत्पन्न होता है, अतः पुत्र जिससे उत्पन्न होता है, उसको उसका ही रूप समझना चाहिये। इस स्मृतिके वचनके अनुसार तो माता चमड़ेकी भस्त्रारूप है, अतः सब ही एकसे उत्पन्न हैं, कोई भी द्वाज अर्थात् दोसे उत्पन्न नहीं है, दोके वीर्यसे एककी उत्पत्ति होना असंभव है। आहवनीय आदि अग्नियोंका भी दो बार जन्म होता है,एक जन्म अरणियोंमेंसे होता है और दूसरा जन्म मंत्रके संस्कारोंसे होता है, इससे वे द्विज कहलाती हैं, क्योंकि-एक पुरुष उनको उत्पन्न करता है, और दूसरा पुरुष उनको अपना पुत्र मान कर उनका संस्कार करता है इस प्रकार दोसे उत्पन्न होनेके कारण वे द्विज कहलाती हैं परन्तु जो पुत्र संकर होता है वह द्विज नहीं कहलाता है किन्तु द्वाज कहलाता है, क्योंकि-वह एक पुरुषसे उत्पन्न होता है और दूसरा पुरुष उसको अपना पुत्र मानकर उसका संस्कार करता है, इसलिये दोसे उत्पन्न हुआ द्वाज कहलाता है,-द्विर्जायते इति द्विजः। व्याकरण शास्त्रमें स्त्री और पुरुष इन दोसे उत्पन्न हुएके अर्थमें द्वाज शब्दका निपातन किया है, इस प्रकार भी द्वाज शब्द सिद्ध होसकता है। तथा "वशीवश नयस्ते एकजत्वं" इस मन्त्रमें संकल्पको एकसे उत्पन्न होने वाला लिखा है अतएव एकसे भी (मानसिक) प्रजाकी उत्पत्ति होसकती है। द्वाज

दुःखव्याभाषिताक्षरम् । नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मि-
नीम् ॥ ९३ ॥ गोतम उवाच । गोदमो दमनोऽधूमोऽदमस्ते
समदर्शनात् । विद्धि मां गोतमं कृत्ये यातुधानि निबोध माम् ९४

प्रजा संकर होती है अर्थात् एककी उत्पन्न की हुई होती है, और दूसरा उसको अपनी मानकर संस्कार करता है । इसप्रकार बीजकी और संस्कारकी संकरतासे उस पुरुषके संकल्प अथवा मन और वाणीमें पूर्वापर विरोध होता है, इसलिये ही वे कुछ कहते हैं और कुछ करते हैं, और द्वाज प्रजा विश्वासघातक होती है । द्वाज प्रजाके संबंधमें एक प्राचीन श्लोक इसप्रकार प्रसिद्ध है, कि-"कौशिके क्रौर्यतपसी राधेये शौर्यभीरुते । खले वाक्चित्तवैमत्यै बीजसंस्कारसंकरात् ।,, विश्वामित्रके चरुमें लौट फेर होगया था, इससे उनमें क्रूरता और तप ये दोनों थे, चरु ब्राह्मणका था, इससे उनमें तप था और संस्कार क्षत्रियके किए गये थे,इससे उनमें क्रूरता थी । कर्णकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई थी, इससे उसमें शूरता थी और उसके संस्कार सूतपुत्रने किये थे, इससे उसमें भीरुता थी, इसीप्रकार खल पुरुषमें भी वीर्य और संस्कारको संकरतासे उसकी वाणीमें और विचारमें भेद होता है अर्थात् वह कहता कुछ है और करता कुछ है ॥९२॥ यातुधानीने कहा,कि-आपके नामके इस निर्वचनके जो अक्षर हैं उनका मैं सुखपूर्वक उच्चारण नहीं करसकती, इसलिये मैं उन का स्मरण भी नहीं रख सकती, अतः आप जाइये और बावड़ी में उतरिये ॥ ९३ ॥ गौतमने कहा, कि-आपने मनको नियममें रखनेके कारण मैंने पृथ्वी और स्वर्गको जीतलिया है सब प्राणियोंको और सब पदार्थोंका समदृष्टिसे देखनेके कारण मैं निर्धूम अग्निकी समान हूँ, इससे मैं जीतनेमें नहीं आसकता, मैं जिस समय उत्पन्न हुआ था तब मेरे शरीरके तेजसे

यातुधान्युवाच । यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने । नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥९५॥ विश्वामित्र उवाच । विश्वेदेवश्च मे मित्रं मित्रमस्मि गवां तथा । विश्वामित्रमिति ख्यातं

फैले हुए अंधकार का नाश होगया था, इससे मैं गौतम कहलाता हूँ इस प्रकार हे कृत्ये ! तू मुझे जान (मैं जितेन्द्रिय होनेसे गो अर्थात् पृथ्वी और स्वर्ग इन दोनोंका दमन करनेमें समर्थ हूँ, इससे मुझको गोदम कहते हैं और मैं निर्धूम अग्निकी समान हूँ, इस लिये मैं अदम अर्थात् दूसरोंसे दाव न खाने वाला हूँ, और मैं तुझको ब्रह्मदृष्टिसे देखता हूँ अर्थात् तुझको ब्रह्मरूप मानता हूँ, यह भी एक कारण है, जो पुरुष ब्रह्मरूप होता है वह सबको ब्रह्मरूप देखता है और देवता उसका पराभव करनेमें समर्थ नहीं होसकते, क्योंकि-ब्रह्मज्ञानी देवताओंका आत्मारूप होता है, इस लिये श्रुतिमें कहा, कि-"तस्य ह देवाश्च नाभूत्या ईशते आत्मा ह्येषां स भवति" अर्थात् ज्ञानी पुरुषका देवता भी अशुभ नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञानी देवताओंका आत्मारूप होता है, जब देवता भी ज्ञानी पुरुषका अप्रिय नहीं कर सकते, तो फिर निर्बल यातुधानियोंकी तो बात ही क्या ? हे यातुधानि ! मैं सब कृत्योंमें अर्थात् कार्योंमें ज्ञानरूपी किरणोंसे अज्ञानरूपी अंधकारका नाश करता हूँ, इससे तू मुझे गौतम जान) ॥ ९४ ॥ यातुधानीने कहा, कि-आपने अपने नामका जो निर्वचनने मुझसे कहा, उसको समझना अशक्य है, अतः आप इस कमलों वाली बावड़ीमें उतरिये ९५ विश्वामित्रने कहा, कि-इस जगत्के देवता मेरे मित्र हैं मैं भी जगत्का मित्र हूँ, इससे हे यातुधानी ! मैं विश्वामित्र नामसे प्रसिद्ध हूँ (विश्व शब्दका आधिदैविक अर्थ ब्रह्माण्डके देवता हैं और आध्यात्मिक अर्थ शरीरस्थ इन्द्रियें हैं, ये दोनों जिसके

यातुधानि निबोध माम् ॥९६॥ यातुधान्युवाच। नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम्। नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९७ ॥ जमदग्निरुवाच। जाजमद्य जजानेहं जिजाहीह जिजायिषि। जमदग्निरिति ख्यातस्ततो मां विद्धि शोभने॥९८॥ यातुधान्युवाच। यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने। नैतद्धार-

मित्र होते हैं, वह विश्वामित्र कहलाता है, श्रुतिमें भी कहा है, कि -"विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस' विश्वामित्र विश्वके मित्र हैं,मैं वही विश्वामित्र हूँ और"मित्रमस्मि गवाम्,,अर्थात् मैं गौ-इन्द्रियोंका मित्र हूँ, इस लिये मैं विश्वामित्ररूपसे प्रसिद्ध हूँ, इस प्रकारके माहात्म्यको सुन कर वह यातुधानी डर गई) ९६ यातुधानीने कहा, कि-आपने जो अपने नामका निर्वाचन कहा उसके अक्षरोंका मैं उच्चारण नहीं कर सकती, अतः आप जाइये और कमलों वाली बावडीमें उतरिये ॥ ९७ ॥ जमदग्नि ने कहा, कि-मैं देवताओंके यज्ञकी अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ हूँ, इससे हे शोभने ! मै जमदग्नि नामसे प्रसिद्ध हूँ, यह तू जान। (जमदग्नि अपने नामका अर्थ कहते हैं, कि-"अतिशयेन जमन्ति ते जाजमन्तः-अर्थात् जो बहुतसे यज्ञोंमें एक ही समय बहुत देर तक हविका भोजन करते हैं वे जाजमन्तः अर्थात् देवता कहलाते हैं, उन देवताओंका अग्निमें यजन होता है, तू मुझे उस अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ जान, इसीलिये तू मुझे इस लोकमें जमदग्नि नामसे प्रसिद्ध जान। इस प्रकार कहकर अपना दुराधर्षपना दिखाया। जाजमद् और अग्नि इन दो शब्दोंका मिलकर जमदग्नि शब्द बना है। "जाजमन्तोऽग्निश्च अस्मिन् सन्ति इति जमदग्निमान् ,,इनमेंसे प्रथमके जाका और अन्तके मतुप्का लोप होनेसे जमदग्नि शब्द सिद्ध होता है) ॥९८॥ यातुधानीने कहा, कि-हे महामुने ! आपने जो अपने नामका निर्वचन कहासको , इ

यितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९९ ॥ अरुन्धत्युवाच । धरान् धरित्रीं वसुधां भर्तुस्तिष्ठाम्यनन्तरम् । मनोनुरुन्धतीं भर्तु-रिति मां विद्ध्यरुन्धतीम् ॥१००॥ यातुधान्युवाच । नाम नैरुक्त-मेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् । नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०१ ॥ गण्डोवाच । वक्त्रैकदेशे गण्डेति धातुमेतं प्रचक्षते । तेनोन्नतेन गण्डेति विद्धि पानलसम्भवे ॥यातुधान्युवाच। नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् । नैतद्धारयितुं शक्यं

मैं समझ नहीं सकती, अतः आप इस कमलोंकी बावडीमें उत-रिये ॥९९॥ अरुन्धतीने कहा, कि मैं पर्वतोंमें, पृथ्वी पर और वसुओंको धारण करने वाले आकाशमें अपने पतिके पीछे २ फिरती हूँ, तथा अपने स्वामीके मनके अनुसार वर्ताव करती हूँ इससे तू मुझे अरुन्धती जान (अरुन्धतीने अपने नामका निर्व-चन करते हुए कहा, कि-मैं पर्वतोंमें, पृथ्वीमें और जिसमें वसु-ओंका निवास है ऐसे आकाशमें वसती हूँ, क्योंकि- मुझे अपने स्वामी वसिष्ठके पीछे २ व्यवधानरहित होकर घूमना पड़ता है, आकाशमें अरुन्धतीका जो तारा है वह विना व्यवधान (किसी को बीचमें दिये विना) के सप्तर्षियोंके साथ घूमा करता है, अथवा "अरुणो दधातीति अरुन्धती" अर्थात् अरुण अर्थात् महाकठिन पृथ्वी तथा पर्वत आदि पदार्थोंको धारण करनेवाली अरुन्धती कहलाती है) ॥१००॥ यातुधानीने कहा, कि--आपके नामके इस निरुक्तमें जो अक्षर हैं वे कठिनतासे बोले जासकते हैं अतःमैं आपके नामके इस निर्वचनको नहीं समझ सकती आप जाइये और इस कमलोंकी बावडीमें उतरिये १०१ गण्डा बोली, कि--गडि धातुसे गण्ड शब्द बनता है और वह मुखके एक प्रदेश अर्थात् कपोल का वाचक है, मेरा वह प्रदेश उन्नत है इससे हे अग्निमेंसे उत्पन्न हुई कृत्या ! तू मुझको गण्डा नाम वाली जान ॥ १०२ ॥ यातु-

गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ३ ॥ पशुसख उवाच । पशून् रक्षामि दृष्ट्वाहं पशूनां च सदा सखा । गौणं पशुसखेत्येवं विद्धि मामग्निसंभवे ॥ ४ ॥ यातुधान्युवाच । नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् । नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ५ ॥ शुनःसख उवाच । एभिरुक्तं यथा नाम नाहं वक्तुमिहोत्सहे । शुनःसखसखायं मां यातुधान्युपधारय ॥ ६ ॥ यातुधान्युवाच । नामनैरुक्तमेतत्ते वाक्यं संदिग्धया गिरा । तस्मात्पुनरिदानीं त्वं ब्रूहि यन्नाम ते द्विज ॥ ७ ॥ शुनःसख उवाच । सकृदुक्तं मया नाम न गृहीतं त्वया यदि । तस्मात् त्रिदंडाभिहता गच्छ भस्मेति

धानीने कहा, कि--आपके नामका यह निरुक्त कष्टसे उच्चारण करने योग्य अक्षरों वाला है इससे मैं इसका स्मरण नहीं रख सकती अतः आप जाइये और इस कमलोंकी बावड़ीमें उतरिये १०३ पशुसखने कहा कि--मैं पशुओंको प्रसन्न रखता हूँ और उनका पालन करता हूँ और मैं सदा पशुओंका सखा (मित्र) रहता हूँ हे अग्निमेंसे उत्पन्न हुई कृत्या! इन गुणोंके कारण तू मुझको पशुसख नामवाला जान ॥ १०४ ॥ यातुधानीने कहा, कि-- तेरे नामके इस निरुक्तमें जो अक्षर हैं, उनका उच्चारण कठिनतासे होसकता है, इसलिये मैं उनको धारण नहीं करसकती, अतः तू जा और कमलोंकी बावड़ीमें उतर ॥ १०५ ॥ शुनःसखने कहा, कि- इन मनुष्योंने जिस प्रकार नाम बतलाये इस प्रकार अपने नाम बतानेका मुझे उत्साह नहीं है, हे यातुधानी! तू मुझे शुनःसखसख अर्थात् धर्मके मित्र मुनियोंका मित्र जान ६ यातुधानीने कहा, कि--हे द्विज! आपने अपने नामका जो निरुक्त कहा, वह सन्देहसे भरा हुआ है अतः आपका जो नाम हो, उसको हे द्विज! आप फिर कहिये ॥१०७॥ शुनःसखने कहा, कि--मैंने एकबार अपना नाम तुझे बता दिया, परन्तु तू समझ

मा चरम् ॥८॥ सा ब्रह्मदंडकल्पेन तेन मूर्ध्नि हता तदा। कृत्या पपात मेदिन्यां भस्मसाच्च जगाम ह ॥९॥ शुनःसखा च हत्वा तां यातुधानीं महाबलाम्। भुवि त्रिदंडं विष्टभ्य शाद्वले समुपाविशत् ॥ १० ॥ ततस्ते मुनयः सर्वे पुष्कराणि बिसानि च। यथाकाममुपादाय समुत्तस्थुर्मुदान्विताः ॥ ११ ॥ श्रमेण महता कृत्वा ते बिसानि कलापशः। तीरे निक्षिप्य पद्मिन्यास्तर्पणं चक्रुरंभसा ॥ १२ ॥ अथोत्थाय जलात्तस्मात् सर्वे ते समुपागमन्। नापश्यंश्चापि ते तानि बिसानि पुरुषर्षभाः ॥१३॥ ऋषय ऊचुः। केन क्षुधापरीतानामस्माकं पापकर्मणाम्। नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकांक्षिणाम् ॥१४॥ ते शंकमानास्त्वन्योऽन्यं पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः। त ऊचुः समयं सर्वे कुर्म इत्यरिकर्शन ॥ १५ ॥

नहीं सकी अतः जा तू इस त्रिदण्डकी मारसे शीघ्र ही जल कर भस्म होजा ॥ १०८ ॥ इस प्रकार कहकर उसने ब्रह्मदण्ड की समान त्रिदण्डका कृत्याके मस्तक पर प्रहार किया, कि-कृत्या पृथ्वी पर गिरकर भस्म हागई ॥ १०९ ॥ इस प्रकार शुनःसख महाबलवती यातुधानीको मारकर त्रिदण्डका आश्रय ले हरियाली भूमि पर खड़ा होगया ॥ ११० ॥ तदनन्तर वे सब मुनि हर्षमें भर अपनी इच्छानुसार कमल और कमलगर्भोंको लेकर बावड़ी मेंसे बाहर निकले ॥ १११ ॥ और महापरिश्रमसे बावड़ीके तट पर कमलोंका ढेर लगाकर जलसे तर्पण करने लगे ॥ ११२ ॥ फिर तर्पण करनेके अनन्तर वे सब बावड़ीके जलमेंसे बाहर निकले और तट पर देखा तो उन महात्माओंको कमल नहीं दीखे तब वे कहने लगे ॥ ११३ ॥ ऋषियोंने कहा, कि--अरे ! हम पापकर्म करने वाले क्षुधासे व्याकुल होरहे थे, हमारे कमल किस क्रूरकर्मीने चुरा लिये ॥ ११४ ॥ फिर वे द्विजसत्तम एक दूसरे पर शंका कर परस्पर बूझने लगे हे अरिकर्षण ! फिर

त उक्त्वा वाढमित्येवं सर्व एव तदा समम् । क्षुधार्ताः क्षुपरिश्रांताः शपथायोपचक्रमुः ॥ १६ ॥ अत्रिरुवाच । स गां स्पृशतु पादेन सूर्यं च प्रतिमेहतु । अनध्यायेष्वधीयीत बिसस्तैन्यं करोति यः १७ वसिष्ठ उवाच । अनध्याये पठेल्लोके शुनः स परिकर्षतु । परिव्राट् कामवृत्तस्तु बिसस्तैन्यं करोति यः॥ १८ ॥ शरणागतं हंतु स वै स्वसुतां चोपजीवतु । अर्थान् कांक्षतु कीनाशाद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १९ ॥ कश्यप उवाच । सर्वत्र सर्वं लपतु न्यासलोपं करोतु च । कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिसस्तैन्यं करोति यः २० वृथामांसाशनश्चास्तु वृथादानं करोतु च । यातु स्त्रियं दिवा चैव बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ २१ ॥ भरद्वाज उवाच । नृशंसस्त्यक्त-

---

उन सबोंने कहा, कि-हम सब शपथ खावेंगे ॥ ११५ ॥ उस समय भूखसे घबड़ाये हुए और थके हुए वे सब एक साथ बहुत अच्छा कह कर शपथ खानेके लिये तयार होगए॥ ११६॥ अत्रिने शपथ खाई, कि-जिसने कमल चुराये हों उसको चरणोंसे गौओंको मारनेका पाप लगे, सूर्यके सामने मलत्याग करनेका पाप लगे तथा अनध्यायमें पढ़नेका पातक लगे ॥ ११७ ॥ वसिष्ठने शपथ खाई, कि-जिसने कमल चुराये हों उसको अनध्यायमें पढ़नेका पाप लगे, शिकार खेलनेके लिये कुत्तोंको वनमें लेजानेका पाप लगे संन्यासी होकर इच्छानुसार वर्ताव करने वाले का पाप लगे ॥ ११८ ॥ जिसने कमल चुराये हों उसको शरणागतोंकी हत्या करनेका पाप लगे, अपनी पुत्रीको धन लेकर वेचनेका पाप लगे, किसानसे धन लेनेका पाप लगे ॥ ११९ ॥ कश्यपने शपथ खाई, कि-जिसने कमल चुराये हों उसको सर्वत्र जो मनमें आवे उसको बोलनेका पाप लगे, धरोहड़ मारनेका पाप लगे और झूठी गवाही देनेका पाप लगे ॥ १२० ॥ जिस पुरुषने कमल चुराये हों उस पुरुषको वृथा मांस खानेका

धर्मास्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च । ब्राह्मणं चापि जयतां बिसस्तैन्यं करोति यः ॥२२॥ उपाध्यायमधः कृत्वा ऋचोऽध्येतु यजूंषि च । जुहोतु च स कक्षाग्नौ बिसस्तैन्यं करोति यः ॥२३॥ जमदग्निरुवाच । पुरीषमुत्सृजत्वप्सु हंतु गां चैव दुह्यतु । अनृतौ मैथुनं यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ २४ ॥ द्वेष्यो भार्योपजीवी स्याद्दूरबन्धुश्च वैरवान् । अन्योऽन्यस्यातिथिश्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ २५ ॥ गोतम उवाच । अधीत्य वेदांस्त्यजतु त्रीनग्नीनपविध्य तु । विक्रीणातु तथा सोमं बिसस्तैन्यं करोति यः ॥२६॥

दोष लगे, नट और गायकोंको वृथा दान दान देनेका पाप लगे और दिनमें स्त्रीके साथ गमन करनेका पाप लगे ॥ १२१ ॥ भरद्वाजने शपथ खाई, कि–जिसने कमल चुराये हों वह, नृशंस, स्त्री जाति तथा गौओंसे धर्माचरण न करे और युद्धमें वा विवादमें ब्राह्मणोंको जीते अर्थात् उसको इतनी वार्ताका पाप लगे ॥ १२२ ॥ जिसने कमल चुराये हों उसको उपाध्याय को नीचे बैठाकर ऋग्वेद और यजुर्वेद पढ़नेका पाप लगे, और उसको तृणाग्निमें होम करनेका पाप लगे (आशय यह है, कि–तृणोंकी अग्निमें हवि भस्म नहीं होता है, इससे होताको दोष लगता है) ॥ १२३ ॥ जमदग्निने शपथ खाई, कि–जिसने कमल चुराये हों उसको जलमें मलमूत्र करनेका पाप लगे, गोघातक और गोद्रोहीका पाप लगे तथा ऋतुके अतिरिक्त और दिनोंमें स्त्रीगमन करनेका पातक लगे ॥ १२४ ॥ और जिसने कमल चुराये हों उसको सम्पूर्ण जगत्के द्वेषपात्र होनेका पाप लगे, अपनी भार्याकी कमाई पर जीवन बितानेका पाप लगे, किसीसे बन्धुत्व न रखकर सबसे वैर रखनेका पातक लगे, तथा परस्परमें अतिथि बननेका पातक लगे ॥ १२५ ॥ गौतमने शपथ खाई, कि–जिसने कमल चुराये हों उसको वेद पढ़कर

उद्पानसवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः । तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ २७ ॥ विश्वामित्र उवाच । जीवतो वै गुरून् भृत्यान् भरंत्वस्य परे जनाः। अगतिर्बहुपुत्रः स्याद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ २८ ॥ अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु ऋद्ध्या चैवाप्यहंकृतः । कर्षको मत्सरी चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः॥२९॥ वर्षाचरोस्तु भृतको राज्ञश्चास्तु पुरोहितः। अयाज्यस्य भवेदृत्विग् बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ३० ॥ अरुंधत्युवाच । नित्यं परिभवेच्छ्वश्रूं भर्तु-र्भवतु दुर्मनाः। एका स्वादु समाश्नातु बिसस्तैन्यं करोति या ३१

उनको त्याग देनेका पातक लगे, अग्निहोत्र धारण कर उसको छोड़ देनेका पातक लगे तथा सोमलता बेचनेका पातक लगे १२६ एक कूप वाले ग्राममें जीवन विताने वाले ब्राह्मणको जा पाप लगता है और शूद्राको पत्नी बनाने वाले ब्राह्मणको जो पाप लगता है,वही पाप कमल चुराने वालेको लगे और उसको वही लोक मिलें ॥ २७ ॥ विश्वामित्रने शपथ खाई,कि-जिस पुरुपके जीवित रहने पर उसके गुरु और माता तथा पिताका दूसरे पुरुष पोषण करें तो उसको जो पातक लगता है तथा जिसकी कुगति हुई हो और जिसके बहुतसे पुत्र हों उसको जो पातक लगता है वह पातक कमल चुराने वालेको लगे ॥ २८ ॥ जिस पुरुषने कमल चुराये हों, उस पुरुषको अपवित्र पुरुषका पातक, वेद पर अनास्था रखनेका पातक, समृद्धि मिलनेसे अहंकार करनेका पातक तथा किसान होकर अभिमानी होने वालेका पातक लगे ॥ २९ ॥ जिसने कमल चुराये हों उसको वर्षाऋतुमें विचरण करनेका पातक लगे, सदा सेवामें ही लगे रहनेका पातक लगे, राजपुरोहितका पातक लगे, यज्ञ करानेके अयोग्य पुरुषके ऋत्विजका पातक लगे ॥१३०॥ अरुन्धतीने शपथ खाई, कि जिसने कमल चुराये हों उसको अपनी सासका सदा अप-

ज्ञातीनां गृहमध्यस्था सक्तूनत्तु दिनक्षये । अभोग्या वीरसूरस्तु विसस्तैन्यं करोति या ॥ ३२ ॥ गंडोवाच । अनृतं भाषतु सदा बन्धुभिश्च विरुध्यतु । ददातु कन्यां शुल्केन विसस्तैन्यं करोति या ॥ ३३ ॥ साधयित्वा स्वयं प्राशेद्दास्ये जीर्यतु चैव ह । विकर्मणा प्रनीयेत विसस्तैन्यं करोति या ॥ ३४ ॥ पशुसख उवाच । दास एव प्रजायेतामप्रसूतिरकिंचनः । दैवतेष्वनमस्कारो विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ३५ ॥ शुनःसख उवाच । अध्वर्यवे दुहितरं वा

मान करने वाली स्त्रीका पातक लगे, पतिके मनको दुःखित करने वाली स्त्रीका पातक लगे, अकेले ही स्वदिष्ट भोजन करने वाली स्त्रीका पातक लगे ॥ ३१ ॥ जिसने कमल चुराये हों उसको अपने सम्बन्धियोंका अनादर करने वाली स्त्रीका पातक लगे, दूषित योनि वाली स्त्रीको जो पातक लगता है, वह पातक लगे तथा वीरपुत्रकी माताको जो पातक लगताहै वह पातक लगे (अरुन्धती ब्राह्मणी होनेसे क्षात्रकर्म करने वाले पुत्रको नहीं चाहती, ब्राह्मणीके मनमें ऐसी इच्छा होना पापरूप है) ॥ ३२ ॥ गण्डाने शपथ खाई, कि-जिस स्त्रीने कमल चुराये हों उसको सदा असत्यभाषण करने वाले पुरुषको जो पाप लगता हो वह पाप लगे, सम्बन्धियोंके साथ सदा विरोध करनेका पातक लगे धन देकर कन्यादान देने वालेका पातक लगे ॥ ३३ ॥ और जिस स्त्रीने कमल चुराये हों उसको अन्न बना कर दूसरोंको जिमाये बिना अपने आप पहिले भोजन करने वाली स्त्रीको जो पातक लगता है, वह पातक लगे, सम्पूर्ण जीवन दासत्वमें विताने वालेको जो पातक लगता है, वह वह पातक लगे, व्यभिचार करके सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्रीको जो पातक लगता हो वह पाप उसको लगे ॥ ३४ ॥ पशुसखने शपथकी, कि-जिस पुरुषने कमल चुराये हों वह पुरुष दास होकर उत्पन्न हो अपुत्र

ददातु च्छंदोगे वा चरितब्रह्मचर्ये । आथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः
स्नायीत वा यो हरते बिसानि॥३६॥ ऋषय ऊचुः। इष्टमेतद्द्वि-
जातीनां योऽयं ते शपथः कृतः । त्वया कृतं बिसस्तैन्यं सर्वेषां
नः शुनःसख ॥ ३७ ॥ शुनःसख उवाच । न्यस्तमद्य न पश्य-
द्भिर्यदुक्तं कृतकर्मभिः। सत्यमेतन्न मिथ्यैतद्बिसस्तैन्यं कृतं मया३८
मया ह्यंतर्हितानीह बिसानीमानि पश्यत। परीक्षार्थं भगवतां
कृतमेवं मयानघाः ॥३९॥ रक्षणार्थं च सर्वेषां भवतामहमागतः।
यातुधानी ह्यतिक्रूरा कृत्यैषा वो वधैषिणी ॥४०॥ वृषादर्भिप्रयु-
क्तैषा निहता मे तपोधनाः। दुष्टा हिंस्यादियं पापा युष्मान् प्रत्य-

रहे, अकिञ्चन रहे तथा देवताको प्रणाम न करने वालेको जो पाप लगता है, वह पाप उसका लगे ॥ ३५ ॥ शुनःसखने शपथ खाई, कि–जिसने कमल चुराये हों उसको अध्वर्युको कन्या-दान देनेका फल मिले, ब्रह्मचर्य व्रत पाल कर सामवेदके अध्य-यन करनेका फल मिले, अथर्ववेद पढ़ कर स्नान करने वाले ब्राह्मणको जो फल मिलता है, वही पुण्य कमल चुराने वालेको मिले ॥ ३६ ॥ ऋषियोंने कहा, कि–तूने जो शपथ खाई, है वह ब्राह्मणोंको प्रिय है, अतः हे शुनःसख ! हमारे सब कमल तूने ही चुराये हैं ॥३७॥ शुनःसखने कहा, कि तुम तर्पण करने को गए थे, तब मैंने तुम्हारे कमलोंको छिपा दिया था इस लिये वे तुम्हारे देखनेमें नहीं आये, तुम्हारा कहना सत्य है, मैंने ही कमल चुराये हैं ॥ ३८ ॥ हे निर्दोष ऋषियो ! मैंने तुम्हारे इन कमलोंको छुपा दिया था, देखो, मैंने तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ऐसा करा था ॥ ३९ ॥ मैं तुम सबकी रक्षा करनेके लिये यहाँ आया हूँ, क्योंकि–हे तपोधनो ! यह यातुधानी अतिक्रूर थी, यह कृत्या थी और तुम्हारा वध करना चाहती थी ॥ ४० ॥ इसको वृषादर्भिने भेजा था, यह अग्निमेंसे उत्पन्न हुई थी और

ग्निसंभवा ॥४१॥ तस्मादस्म्यागतो विप्रा वासवं मां निबोधत ।
अलोभादक्षया लोकाः प्राप्ता वै सार्वकामिकाः ॥४२॥ उत्तिष्ठ-
ध्वमितः क्षिप्रं तानवाप्नुत वै द्विजाः ॥ ४३ ॥ भीष्म उवाच ।
ततो महर्षयः प्रीतास्तथेत्युक्त्वा पुरंदरम् । सहैव त्रिदशेंद्रेण सर्वे
जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ४४ ॥ एवमेते महात्मानो भोगैर्बहुविधैरपि ।
क्षुधा परमया युक्ताश्छंद्यमाना महात्मभिः ॥ ४५ ॥ नैव लोभं
तदा चक्रुस्ततः स्वर्गमवाप्नुवन् । तस्मात् सर्वास्ववस्थासु नरो
लोभं विवर्जयेत् ॥४६॥ एष धर्मः परो राजंस्तस्माल्लोभं विवर्ज-
येत् ॥ ४७ ॥ इदं नरः सुचरितं समवायेषु कीर्तयन् । अर्थभागी
च भवति न च दुर्गाण्यवाप्नुते ॥ ४८ ॥ प्रीयन्ते पितरश्चास्य

यह तुम्हारा नाश कर डालती ॥४१॥ इस लिये हे ब्राह्मणों ! मैं यहाँ आया हूँ, और मैं इन्द्र हूँ, यह तुम जान लो, तुमने लोभ नहीं किया है इससे तुम सर्वोको कामना पूर्ण करने वाले अक्षय लोक मिलेंगे ॥४२॥ हे द्विजों ! तुम अब यहाँसे उठो और लोकोंमें चलो॥४३॥भीष्मजीने कहा,कि–यह सुन कर महर्षि प्रसन्न हुए और इन्द्रसे तथास्तु कह कर सब इन्द्रके साथ स्वर्गमें चले गए४४ इस प्रकार ये महात्मा बहुत भूखे थे और महात्मा पुरुषोंने उनसे अनेक प्रकारके भाग स्वीकार करनेके लिये विनतीकी ॥ ४५ ॥ तब भी उन्होंने उस समय लोभ नहीं किया, इससे वे स्वर्गमें चले गए, इस लिये मनुष्यको सब अवस्थाओंमें लोभको त्याग देना चाहिये॥४६॥हे राजन्! यह परमधर्म है,अतः मनुष्य लोभ को त्याग देय॥४७। मनुष्य इस उत्तम चरित्रका मनुष्योंके समुदायमें पाठ करनेसे धन पाता है और उसको दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं ॥ ४८ ॥ और पितर, ऋषि तथा देवता उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं और वह पुरुष मरनेके पीछे दूसरे जन्ममें भी यश,

ऋषयो देवतास्तथा । यशोधर्मोर्थभागी च भवति प्रेत्य मानवः ॥ १४६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे बिसस्तैन्योपाख्याने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

भीष्म उवाच। अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यद्वृत्तं तीर्थयात्रायां शपथं प्रति तच्छृणु ॥ १ ॥ पुष्करार्थं कृतं स्तैन्यं पुरा भरतसत्तम । राजर्षिभिर्महाराज तथैव च द्विजर्षिभिः ।२। ऋषयः समेताः पश्चिमे वै प्रभासे समागता मंत्रममंत्रयंत । चराम सर्वां पृथिवीं पुण्यतीर्थां तन्नः कामं हंत गच्छाम सर्वे ॥ ३ ॥ शुक्रोऽङ्गिराश्चैव कविश्च विद्वांस्तथा ह्यगस्त्यो नारदपर्वतौ च । भृगुर्वसिष्ठः कश्यपो गोतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निश्च राजन् ४

धर्म और धन पाता है ॥ ४६ ॥ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ९३

भीष्मजीने कहा; कि-हे युधिष्ठिर ! पहिले तीर्थयात्राके समय शपथके संबंधमें हुए एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण इस प्रकार दिया करते हैं१ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! पहिले इन्द्रने (धर्म सुनने की कामनासे कमलोंकी) चोरी की थी और हे महाराज ! राजर्षि और ब्रह्मर्षियोंने इसके लिये शपथ खाई थी ॥ २ ॥ एक समय ऋषि पश्चिम दिशामें स्थित प्रभासक्षेत्रमें इकट्ठे हुए थे, उन्होंने परस्पर विचार किया, कि-हम सारी पृथ्वीके तीर्थोंकी यात्रा करें और सब सुखपूर्वक (एक साथ) चलें ॥ ३ ॥ इन ऋषियोंमें शुक्र, अंगिरा, विद्वान् कवि, अगस्त्य, पर्वत, नारद, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, तथा हे राजन् ! जमदग्नि, गालव ऋषि, अष्टक, भरद्वाज अरुंधती और बालखिल्य ये सब ब्रह्मर्षि तथा शिबि, दिलीप, नहुष, अम्बरीष, राजा ययाति, धुन्धुमार तथा पुरु आदि राजे भी थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ये सब महापुरुष महानुभाव,सौ यज्ञ करने

ऋषिस्तथा गालवो वाष्टकश्च भरद्वाजोऽरुंधती वालखिल्याः ।
शिविर्दिलीपो नहुषोऽम्बरीषो राजा ययातिर्धुंधुमारोऽथ पूरुः॥५॥
जग्मुः पुरस्कृत्य महानुभावं शतक्रतुं वृत्रहणं नरेंद्राः। तीर्थाणि
सर्वाणि परिभ्रमंतो माध्यां ययुः कौशिकीं पुण्यतीर्थाम् ॥ ६ ॥
सर्वेषु तीर्थेष्ववधूतपापा जग्मुस्ततो ब्रह्मसरः सुपुण्यम् । देवस्य
तीर्थे जलमग्निकल्पा विगाह्य ते भुक्तविसप्रसूनाः ॥ ७ ॥ केचि-
द्बिसान्यखनंस्तत्र राजन्नन्ये मृणालान्यखनंस्तत्र विप्राः । अथा-
पश्यन् पुष्करं ते ह्रियंतं ह्रदादगस्त्येन समुद्धृतं तत् ॥ ८ ॥
तानाह सर्वानृषिमुख्यानगस्त्यः केनादत्तं पुष्करं मे सुजातम् ।
युष्मान् शंके पुष्करं दीयतां मे न वै भवंता हर्तुमर्हंति पद्मम् ६
शृणोमि कालो हिंसते धर्मवीर्यं सोऽयं प्राप्तो वर्तते धर्मपीडा । पुरा-

---

वाले और वृत्रहन्ता इन्द्रको आगे करके सब तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मध्य देशमें कौशिकी नामक पुण्यतीर्थमें आपहुँचे ६ सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जिनके पाप झड़ गए थे ऐसे वे महात्मा पुण्यवान् ब्रह्मसरके समीप आपहुँचे, तहाँ ब्रह्मदेवके तीर्थमें अग्निकी समान उन ब्रह्मर्षियोंने और राजर्षियोंने स्नान करके कमल (भसीडों) के पुष्पोंका भोजन किया ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस समय बहुतसे ब्राह्मण उस तीर्थमें बिस (भसीड़ों) को खोद रहे थे और बहुतसे मृणालोंको खोद रहे थे, अगस्त्यजीने भी सरोवरमेंसे एक कमलको खोद कर बाहर निकाला था, परन्तु उसको लिसीने चुरा लिया ८ यह देख कर वह सब मुख्य २ ऋषियोंसे बूझने लगे मेरा उत्तम कमल किसने चुरा लिया मुझे तुम्हारे ऊपर शंका होती है, अतः मेरा कमल मुझे देदो, तुम्हें कमल चुराना उचित नहीं है ६ मैंने सुना है कि काल धर्मके वीर्यको नष्ट कर डालता है, वही समय अब आलगा है और धर्म पीड़ित होने लगा है, इस लिये जब तक अधर्म नहीं

ऽधर्मो वर्तते नेह यावत्तावद्गच्छामः सुरलोकं चिराय ॥१०॥ पुरा वेदान् ब्राह्मणा ग्राममध्ये घुष्टस्वरा वृषलान् श्रावयन्ति। पुरा राजा व्यवहारेण धर्मान् पश्यत्यहं परलोकं व्रजामि ॥ ११ ॥ पुरा वरान् प्रत्यवरान् गरीयसो यावन्नरानावमंस्यंति सर्वे। तमोत्तरं यावदिदं न वर्तते तावद्व्रजामि परलोकं चिराय ॥ १२ ॥ पुरा प्रपश्यामि परेण मर्त्यान् बलीयसा दुर्बलान् भुज्यमानान्। तस्माद्यास्यामि परलोकं चिराय न ह्युत्सहे द्रष्टुमिह जीवलोकम् १३ तमाहुरार्ता ऋषयो महर्षिं न ते वयं पुष्करं चोरयामः। मिथ्याभिषंगो भवता न कार्यः शपाम तीक्ष्णैः शपथैर्महर्षे ॥१४॥ ते निश्चितास्तत्र महर्षयस्तु संपश्यंतो धर्ममेतं नरेन्द्राः। ततोऽशपंत शपथान् पर्ययेण सहैव ते पार्थिव पुत्रपौत्रैः ॥१५॥ भृगुरुवाच।

फैलता है, उससे पहिले ही हम चिरकालके लिये स्वर्गमें जाना चाहते हैं १० और ब्राह्मणोंके ग्राममें बैठ कर उच्चस्वरसे शूद्रोंको वेद सुनानेसे पहिले और राजाओंके व्यवहारदृष्टिसे धर्मका अवलोकन करनेसे पहिले मैं परलोकमें जाना चाहता हूँ ११ और मनुष्य ये मनुष्य उत्तम हैं, ये मनुष्य अधम हैं और ये पुरुष महान् हैं (ऐसा भेद न मान कर) सबका अपमान करने लगें उससे पहिले ही और अज्ञान फैलनेसे पहिले ही मैं बहुत समयके लिये परलोकमें जाना चाहता हूँ १२ महाबलवान् पुरुष दुर्बल मनुष्योंके ऊपर अपनी सत्ता चलावें, उससे पहिले ही मैं बहुत समय तकके लिये परलोकमें जाना चाहता हूँ मुझे मृत्युलोकको देखनेकी इच्छा नहीं होती १३ (यह सुन कर) घबड़ाये हुए उन ऋषियोंने उन महर्षिसे कहा, कि-हमने आपका कमल नहीं उठाया है आपको हमें मिथ्या दोष न लगाना चाहिये, हे महर्षि ! हम तीक्ष्ण शपथ खाते हैं १४ तब महर्षियोंने और राजाओंने धर्मकी ओर दृष्टि करके शपथ खानेका निश्चय किया, फिर हे राजन् !

मत्याक्रोशेदिहाक्रुष्टस्ताडितः प्रतिताडयेत् । खादेच्च पृष्ठमांसानि यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १६ ॥ वसिष्ठ उवाच । अस्वाध्यायपरो लोके श्वानं च परिकर्षतु । पुरे च भिक्षुर्भवतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १७ ॥ कश्यप उवाच । सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासे लोभं करोतु च । कूटसाक्षित्वमभ्येतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १८ ॥ गोतम उवाच । जीवत्वहंकृतो बुद्ध्या विपमेणासमेन सः । कर्षको मत्सरी चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १९ ॥ अंगिरा उवाच । अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु श्वानं च परिकर्षतु । ब्रह्महाऽनिकृतिश्चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २० ॥ धुंधुमार उवाच । अकृतज्ञस्तु मित्राणां

वे अपने पुत्र पौत्रोंके साथ क्रमशः शपथ खाने लगे १५ भृगुने शपथ खाई, कि-जो पुरुष गाली देने पर गाली देय मारने वालेको मारे और किसी प्राणीकी पीठका मांस खाय उसको जो पातक लगता हो वह पातक मुझे लगे १६ वसिष्ठ जीने कहा कि-जिसने आपका कमल चुराया हो वह लोकमें स्वाध्यायमें तत्पर न रहे, शिकारके लिये कुत्तोंको वनमें खेंच कर लेजाय तथा नगरमें रह कर भिक्षा माँगे अर्थात् उसको इन बातोंका पाप लगे १७ कश्यपने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको सर्वत्र सब प्रकारका व्यवहार करने वालेका किसीकी रक्खी हुई धरोहड़को गपच जानेका और झूठी गवाही देनेका पाप लगे १८ गौतमने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको अभिमानी पुरुषका जान बूझ कर विषमबुद्धिसे वर्ताव करने वालेका अयोग्यको योग्य माननेका किसानका और मत्सरी पुरुषका पापलगे १९ अंगिराने शपथ खाई कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको अपवित्र रहनेवालेका वेदके साथ कपटसे वर्ताव करनेवालेका वनमें शिकारके लिये कुत्तोंको लेजाने वालेका और ब्रह्महत्या करके प्रायश्चित्त न करने वालेका पातक लगे ॥ १२० ॥ धुंधु-

शूद्रायां च प्रजायतु । एकः संपन्नमश्नातु यस्ते हरति पुष्करम् २१ पुरुरुवाच । चिकित्सायां प्रचरतु भार्यया चैव पुष्यतु । श्वशुरात्तस्य वृत्तिः स्याद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥२२॥ दिलीप उवाच । उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः । तस्य लोकान् स व्रजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २३ ॥ शुक्र उवाच । वृथामांसं समश्नातु दिवा गच्छतु मैथुनम् । प्रेष्यो भवतु राज्ञश्च यस्ते हरति पुष्करम् २४ जमदग्निरुवाच । अनध्यायेष्वधीयीत मित्रं श्राद्धे च भोजयेत् । श्राद्धे शूद्रस्य चाश्नीयाद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥२५॥ शिबिरुवाच। अनाहिताग्निर्म्रियतां यज्ञे विघ्नं करोतु च । तपस्विभिर्विरुध्येच्च

मारने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको, मित्रोंके किये हुए उपकारको न मानने वालेको, शूद्रजातिकी स्त्री में सन्तानको उत्पन्न करने वालेको और अकेले मिष्टान्नका भोजन करने वालेको जो पाप लगता है वह पाप लगे । २१ । पुरुने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको वैद्यकका कार्य करने वालेका, भार्या पर आजीविका चलाने वालेका और सुसरे पर आजीविका चलानेवालेका पाप लगे २२ दिलीपने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको एक कूपवाले ग्राममें वसने वाले ब्राह्मणका और शूद्र जातिकी कन्यासे विवाह करने वाले ब्राह्मणका पातक लगे और इन पापियोंके लोकमें वह जा २३ शुक्रने शपथ खाई, कि जिसने आपका कमल चुराया हो उसको वृथा मांस खानेका, दिवसमें मैथुन करने वालेका और राजाकी सिपाहीगीरी करनेवालेका पापलगे २४ जमदग्निने शपथ खाई, कि जिसने आपका कमल चुराया हो उसको अनध्यायमें वेदका पाठ करने वालेको जो पाप लगता हो वह पाप लगे, श्राद्धमें मित्रको जिमाने वालेको जो पाप लगता है वह पापलगे है तथा शूद्रके श्राद्धमें भोजन करने वालेका जो पाप लगता

यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २६ ॥ ययातिरुवाच । अनृतौ च व्रती चैव भार्यायां स प्रजायतु । निराकरोतु वेदांश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २७ ॥ नहुष उवाच । अतिथिर्गृहसंस्थोऽस्तु कामवृत्तस्तु दीक्षितः । विद्यां प्रयच्छतु भृतो यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २८ ॥ अंबरीष उवाच । नृशंसस्त्यक्तधर्मोऽस्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च । निहंतु ब्राह्मणं चापि यस्ते हरति पुष्करम् ॥२९॥ नारद उवाच । गृहज्ञानी बहिः शास्त्रं पठतां विस्वरं पदम् । गरीयसोऽवजानातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३० ॥ नाभाग उवाच । अनृतं भाषतु

वह पाप लगे॥२५॥शिविने शपथ खाई,कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको अग्निहोत्र धारण न करके मरने वालेका,यज्ञमें विघ्न करने वालेका और तपस्वियोंसे कलह करने वालेका पातक लगे ॥ २६ ॥ ययातिने शपथ खाई, कि जिसने आपका कमल चुराया हो उसको, ऋतुकालके अतिरिक्त स्त्रीसे गमन करने वालेका, ब्रह्मचारी होकर भार्यासे गमन करने वालेका तथा वेदोंके अपमान करने वालेको जो पाप लगता हो, वह पाप लगे ॥ २७ ॥ नहुषने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको संन्यासी होकर घरमें निवास करने वालेको जो पाप लगता है, वह पाप लगे, दीक्षित होकर अपनी इच्छानुसार वर्ताव करने वालेको जो पाप लगता है वह पाप लगे तथा धन लेकर विद्या पढ़ाने वालेको जो पाप लगता है वह पाप लगे ॥२८॥ अम्बरीपने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको स्त्री, सम्बन्धी और गौओंसे क्रूरतामय अधार्मिक व्यवहार करनेका और ब्राह्मणकी हत्या करनेका पाप लगे ॥ २९ ॥ नारदजीने शपथ खाई, कि जो पुरुष देहाभिमानी हो, जो जातिबहिष्कृत गुरुसे शास्त्रका अध्ययन करता हो, जो स्वररहित वेदमन्त्रोंका अध्ययन करता हो उसको जो पाप लगता है वह पाप आपका

सदा सद्भिश्चैव विरुध्यतु । शुल्केन तु ददत्कन्यां यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३१ ॥ कविरुवाच । पद्भ्यां स गां ताडयतु सूर्यं च प्रतिमेहतु । शरणागतं संत्यजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३२ ॥ विश्वामित्र उवाच । करोतु भृतकोऽवर्षां राज्ञश्चास्तु पुरोहितः । ऋत्विगस्तु ह्ययाज्यस्य यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३३ ॥ पर्वत उवाच । ग्रामे चाधिकृतः सोऽस्तु खरयानेन गच्छतु । शुनः कर्षतु वृत्त्यर्थे यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३४ ॥ भरद्वाज उवाच । सर्वपापसमादानं नृशंसे चानृते च यत् । तत्तस्यास्तु सदा पापं यस्ते हरति पुष्करम् ॥३५॥ अष्टक उवाच ।

कमल चुराने वालेको लगे ॥ ३० ॥ नाभागने शपथ खाई, कि-सदा असत्य भाषण करने वाले, सत्पुरुषके साथ विरोध करने वाले और धन लेकर कन्यादान देने वाले पुरुषको जो पातक लगता है वह पाप आपका कमल चुराने वालेको लगे ॥ ३१ ॥ कविने शपथ खाई, कि-पैरसे गौको ठुकराने वालेको, सूर्यके सामने मलत्याग करनेवालेको तथा शरणागतका परित्याग करने वालेको जो पातक लगता है, वह पाप आपका कमल चुराने वालेको लगे ३२ विश्वामित्रने शपथ खाई,कि-धन अथवा अन्न देकर खरीदा हुआ यदि अपने स्वामीके खेतमें जो हानिपहुँचाता है, उसको जो पातक लगता है, राजाके पुरोहितको जो पातक लगता है और अयाज्य पुरुषके ऋत्विजको जो पातक लगता है वह पाप आपका कमल चुराने वालेको लगे ३३ पर्वतने शपथ खाई कि-जिसने आपका कमल चुराया हो वह ग्रामका गमार हो,गधे की सवारी पर बैठकर जाय और अपनी आजीविकाके लिये कुत्तों को शिकारमें लेजाने वालेको जो पापलगता है वह पाप लगे ३४ भरद्वाजने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको क्रूर पुरुषको तथा असत्य भाषण करने वालेको जो पाप

स राजास्त्वकृतप्रज्ञः कामवृत्तश्च पापकृत् । अधर्मेणाभिशास्तूर्वीं यस्ते हरति पुष्करम् ३६ गालव उवाच । पापिष्ठेभ्यो ह्यनर्घार्हः स नरोऽस्तु स्वपापकृत्। दत्वा दानं कीर्तयतु यस्ते हरति पुष्करम् ३७ अरुन्धत्युवाच । श्वश्रूापवादं वदतु भर्तुर्भवतु दुर्मनाः । एका स्वादु समश्नातु या ते हरति पुष्करम् ॥ ३८ ॥ वालखिल्या ऊचुः । एकपादेन वृत्त्यर्थं ग्रामद्वारे स तिष्ठतु । धर्मज्ञस्त्यक्तधर्मास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३९ ॥ शुनःसख उवाच । अग्निहोत्रमनादृत्य स सुखं स्वपतु द्विजः । परिव्राट् कामवृत्तोऽस्तु यस्ते हरति पुष्क-रम् ॥४०॥ सुरभ्युवाच । वालजेन निदानेन कांस्यं भवतु दोह-

लगता है, वह सब पातक लगे ॥ ३५ ॥ अष्टकने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो उसको मूर्ख, इच्छानुसार वर्ताव करने वाले, पापकर्मी तथा अधर्मसे पृथिवी पर राज्य करने वाले राजाका पातक लगे ॥ ३६ ॥ गालवने शपथ खाई, कि-जिसने आपका कमल चुराया हो वह पुरुष अर्घके अयोग्य पापियों से भी अपूज्य हो, और अपने पुरुषोंको विष आदि देकर पाप कमाने वाला हो और वह पुरुष दान देकर उसका कीर्तन करे३७ अरुन्धतीने शपथ खाई, कि-अपनी सासकी निन्दा करने वाली को, स्वामीके मनको दुःखित करने वालीको और अकेली मिष्टान्न का भक्षण करने वालीको जो पाप लगता है, वह पाप आपका कमल चुरानेवालीको लगे ॥ ३८ ॥ वालखिल्योंने शपथ खाई कि आजीविकाके लिये ग्रामके द्वार पर एक पैरसे खड़े होने वाले को और धर्मको त्यागनेवालेको जो पाप लगता है,वह पाप आपके कमलकी चोरी करने वालेको लगे ॥ ३९ ॥ शुनःसुखने शपथ खाई, कि--जो ब्राह्मण अग्निहोत्रमें होम न करके सो रहता है जो संन्यासी होकर अपनी इच्छानुसार वर्ताव करता है उसको जो पाप लगता है, वह पाप आपका कमल चुराने वालेको मिले४०

नम् । दुह्येत परवत्सेन या ते हरति पुष्करम् ॥४१॥ भीष्म उवाच। ततस्तु तैः शपथैः शप्यमानैर्नानाविधैर्बहुभिः कौरवेंद्र। सहस्राक्षो देवराट् संप्रहृष्टः समीक्ष्य तं कोपनं विप्रमुख्यम् ॥ ४२ ॥ अथाब्रवीन्मघवा प्रत्ययं स्वं समाभाष्य तमृषिं जातरोषम्। ब्रह्मर्षिदेवर्षिनृपर्षिमध्ये यं तं निबोधेह ममाद्य राजन् ॥ ४३ ॥ शक्र उवाच। अध्वर्यवे दुहितरं ददातु छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये। अथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः स्नायीत यः पुष्करमाददाति ॥४४॥ सर्वान् वेदानधीयीत पुण्यशीलोस्तु धार्मिकः। ब्रह्मणः सदनं यातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥४५॥ अगस्त्य उवाच। आशीर्वादस्त्वया मोक्तः शपथो बलसूदन। दीयतां पुष्करं मह्यमेष धर्मः

सुरभिने शपथ खाई, कि-जिसने आपके कमलकी चोरीकी हो उसको मनुष्योंके बालोंकी रस्सीसे गौके पैर बाँधने वालोंका पाप लगे और दूसरा बछड़ा दिखा कर गौ दुहनेका पाप लगे ॥४१॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे कौरवेन्द्र! इस प्रकार बहुत से ब्रह्मर्षियोंके अनेक प्रकारकी शपथें खा चकने पर देवताओंका राजा सहस्राक्ष इन्द्र आनन्दमें भर कर क्रोधी स्वभाव वाले ब्राह्मणोंमें मुख्य अगस्त्यकी ओर देख कर कहने लगा४२हे राजन्! उस समय जिनको क्रोध आरहा था उन अगस्त्य ऋषिसे इन्द्रने ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके मध्यमें जो अपना अभिप्राय बताया था उसको तू मुझसे सुन ॥ ४३ ॥ इन्द्रने कहा, कि-अध्वर्युको पुत्री देने वालेको जो फल मिलता है ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर सामवेद पढ़ने वालेको जो पुण्य होता है अथर्ववेद जान कर स्नान करने वालेको जो पुण्य होता है वह पुण्य आपके कमलकी चोरी करने वालेको मिले ॥४४॥ धर्मनिष्ठको जो पुण्य होता है सब वेदोंका अध्ययन करने वालेको जो पुण्य होता है वह पुण्य आपका कमल चुराने वालेको हो ॥ ४५ ॥ अगस्त्यने

सनातनः॥४६॥इन्द्र उवाच । न मया भगवन् लोभाद्द धृतं पुष्कर-मद्य वै । धर्मास्तु श्रोतुकामेन हृतं न क्रोद्धुमर्हसि ॥४७॥ धर्म-श्रुतिसमुत्कर्षो धर्मसेतुरनामयः । आर्षो वै शाश्वतो नित्यमव्य-योऽयं मया श्रुतः ॥४८॥ तदिदं गृह्यतां विद्वन् पुष्करं द्विजसत्तम । अतिक्रमं मे भगवन् क्षंतुमर्हस्यनिंदित ॥ ४९ ॥ इत्युक्तः स महे-द्रेण तपस्वी कोपना भृशम् । जग्राह पुष्करं धीमान् प्रसन्नश्चा भवन्मुनिः ॥ ५० ॥ प्रययुस्ते ततो भूयस्तीर्थानि वनगोचराः । पुण्येषु तीर्थेषु तथा गात्राण्याप्लावयंत ते ॥ ५१ ॥ आख्यानं य इदं युक्तः पठेत् पर्वणि पर्वणि । न मूर्ख जनयेत् पुत्रं न भवेच्च

कहा कि-हे बल दैत्यको मारने वाले इन्द्र ! तूने जो शपथ ली वह तो आशीर्वादरूप है अतः तूने ही कमल उठाया है अतः तू मेरा कमल मुझे देदे यही सनातनधर्म है ॥ ४३ ॥ इन्द्रने कहा कि-हे भगवन् ! मैंने इस समय लोभसे कमलकी चोरी नहीं की है किन्तु मैंने धर्म सुननेकी इच्छासे कमल चुराया है अतः आप को क्रोध करना उचित नहीं है ॥४७॥ वेदमें धर्मको सुननेका महत्त्व कहा है और संसाररूपी समुद्रके पार जानेके लिये धर्म एक उत्तम सेतु है और वही यह ऋषियोंका कहा हुआ नित्य और अविनाशी सनातनधर्म मैंने सुना ॥ ४८ ॥ हे द्विजसत्तम विद्वन् ! आप अपना कमल लीजिये और हे निर्दोष भगवन् ! मेरे अपराधको क्षमा करिये ॥ ४९॥ इन्द्रके इस प्रकार कहने पर तपस्वी और अतिक्रोधी बुद्धिमान् अगस्त्य मुनिने प्रसन्न होकर कमलको ग्रहण किया ५० तदनन्तर वे सब वनचारी फिर तीर्थयात्रा करने लगे और पवित्रतीर्थोंमें अपने शरीरको भिगोने लगे ५१ जो पुरुष प्रत्येक पर्वके समय सावधान होकर इस आख्यानका पाठ करता है उसके यहाँ मूर्ख पुत्र उत्पन्न नहीं होता है और उसका पुत्र निराकृति अर्थात् वेडौल भी उत्पन्न

निराकृतिः ॥ ५२ ॥ न तमापत् स्पृशेत् काचिद्विज्वरो न जरावहः । विरजाः श्रेयसा युक्तः प्रेत्य स्वर्गमवाप्नुयात् ॥५३॥ यश्च शास्त्रमधीयीत ऋषिभिः परिपालितम् । स गच्छेद्ब्रह्मणो लोकमव्ययं च नरोत्तम ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शपथविधिर्नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

युधिष्ठिर उवाच। यदिदं श्राद्धकृत्येषु दीयते भरतर्षभ। छत्रं चोपानहौ चैव केनैतत् संप्रवर्तितम् ॥१॥ कथं चैतत् समुत्पन्नं किमर्थं चैव दीयते। न केवलं श्राद्धकृत्ये पुण्यकेष्वपि दीयते ॥ २ ॥ बहुष्वपि निमित्तेषु पुण्यमाश्रित्य दीयते। एतद्विस्तरतो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच। शृणु राजन्नवहि-

नहीं होता है ५२ और इस आख्यानका पाठ करने वालेके ऊपर किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं पड़ती है वह दुःखरहित होजाता है उसको वृद्धावस्था नहीं आती है वह पापरहित होजाता है कल्याण पाता है और मरणके पीछे स्वर्गमें जाता है ५३ हे नरोत्तम ! जो पुरुष ऋषियोंसे पूर्णरीतिसे रक्षित इस शास्त्रका अध्ययन करता है वह पुरुष ब्रह्माजीके अविनाशी लोकमें जाता है ॥५४॥ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥ छ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! श्राद्धकृत्यमें जो छत्री और जूता दिया जाता है इन छत्री और जूतोंके दानकी विधिको किसने चलाया था ? ॥ १ ॥ यह दानकी विधि किस प्रकार उत्पन्न हुई है ? इनका दान किस लिये दिया जाता है ? और श्राद्धकृत्यमें ही इनका दान दिया जाता है अथवा दूसरे धार्मिक कृत्योंमें भी इनका दान दिया जाता है ? ॥ २ ॥ बहुतसे निमित्तोंमें भी पुण्य मान कर छत्री और जूतेका दान दिया जाता है, अतः हे राजन् ! मैं इस दानकी विधिको विस्तार-

तश्छत्रोपानहविस्तरम् । यथैतत् प्रथितं लोके यथा चैतत् प्रवर्तितम् ॥ ४ ॥ यथा चाक्षय्यतां प्राप्तं पुण्यतां च यथागतम् । सर्वमेतदशेषेण प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥५॥ जमदग्नेश्च संवादं सूर्यस्य च महात्मनः । पुरा स भगवान् साक्षाद्धनुषाक्रीडयत् प्रभो ६ संधाय संधाय शरांश्चिक्षेप किल भार्गवः । तान् क्षिप्तान् रेणुका सर्वांस्तस्येषून् दीप्ततेजसः ॥ ७ ॥ आनीय सा तदा तस्मै प्रादादसकृदच्युत । अथ तेन सशब्देन ज्यायाश्चैव शरस्य च ॥८॥ प्रहृष्टः संप्रचिक्षेप सा च प्रत्याजहार तान् । ततो मध्याह्नमारूढे ज्येष्ठामूले दिवाकरे ॥ ९ ॥ स सायकान् द्विजो मुक्त्वा रेणुकामिदमब्रवीत् । गच्छानय विशालाक्षि शरानेतान् धनुश्च्युतान् १०

पूर्वक यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे राजन् ! तू सावधान होकर छत्री और जूतेकी दानकी विधिको विस्तारसे सुन, यह विधि जिस प्रकार जगत्में प्रसिद्ध हुई थी और जिस प्रकार इस जगत्में प्रचलित हुई है, इसका तू सुन ॥ ४ ॥ हे नराधिप ! यह विधि किस प्रकार अक्षय हुई है और किस प्रकार पुण्यमय बनी है,इस सब बातको मैं पूर्णरीति से कहूँगा ५ इस विषयमें जमदग्नि और महात्मा सूर्यमें संवाद हुआ था, हे प्रभो ! पहिले (एक समय) भगवान् जमदग्नि धनुषसे क्रीड़ा करने लगे ६ हे अच्युत! भृगुपुत्र जमदग्नि बाणोंको धनुष पर चढ़ा कर वारम्वार फैंकने लगे और उनकी पत्नी रेणुका जमदग्निके फैंके हुए महातेजस्वी सब बाणोंको बारम्बार लाकर जमदग्निको देरही थी, उस समय धनुषकी टंकारके शब्दसे तथा बाणोंकी बड़ी भारी सरसर ध्वनिसे जमदग्नि परम प्रसन्न होकर बाणोंको फैंकते ही रहे और रेणुका उनको उठा कर लाती रही, इस प्रकार मध्यान्ह होगया उस समय सूर्य ज्येष्ठामूलमें था, कि-मुनिने फिर सब बाण छोड़ कर

यावदेतान् पुनः सुभ्रु क्षिपामीति जनाधिप । सा गच्छत्यंतरा-
छायां वृक्षमाश्रित्य भामिनी ॥ ११ ॥ तस्थौ तस्या हि संतप्तं
शिरः पादौ तथैव च । स्थिता सा तु मुहूर्तं वै भर्तुः शापभया-
च्छुभा ॥१२॥ ययावानयितुं भूयः सायकानसितेक्षणा । प्रत्या-
जगाम च शरांस्तानादाय यशस्विनी ॥ १३ ॥ सा वै खिन्ना
सुचार्वंगी पद्भ्यां दुःखं नियच्छती । उपाजगाम भर्तारं भयाद्भर्तुः
प्रवेपती ॥ १४ ॥ स तामृषिस्तदा क्रुद्धो वाक्यमाह शुभाननाम् ।
रेणुके किं चिरेण त्वमागतेति पुनः पुनः ॥ १५ ॥ रेणुकोवाच ।
शिरस्तावत् प्रदीप्तं मे पादौ चैव तपोधन । सूर्यतेजोनिरुद्धाहं वृक्ष-
च्छायां समाश्रिता ॥ १६ ॥ एतस्मात् कारणाद्ब्रह्मंश्चिरायैतत् कृतं

रेणुकासे यह बात कही, कि-हे विशालाक्षि ! तू इन धनुषमेंसे छूटे हुए बाणोंको फिर उठा कर ले आ, जिससे हे सुभ्रु ! मैं इन बाणोंको फिर छोडूँ, हे जनाधिप ! रेणुका यह बात सुन कर गई और चलती २ एक वृक्षकी छायामें बैठ गई, क्योंकि-उसके पैर और शिर तचने लगे थे, किन्तु वह शुभा अपने पतिके शापके भयसे मुहूर्त भर ही तहाँ पर खड़ी हुई ॥ ७ १२ ॥ वह श्यामनेत्र वाली यशस्विनी स्त्री फिर बाण लेनेको चली गई और बाण लेकर लौट चली ॥ १३ ॥ उस समय वह सुन्दरांगी खिन्न होरही थी, उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, तब भी वह स्वामीके भयसे काँपती २ स्वामीके पास पहुँची ॥१४॥ उस समय वह ऋषि क्रोधमें भर कर उस शुभाननासे बार २ कहने लगे, कि-हे रेणुके ! तू देरसे क्यों आई ॥ १५ ॥ उस समय रेणुकाने कहा, कि हे तपोधन ! मेरा शिर और पैर सूर्यकी धूपसे तच गए थे अतएव मैं सूर्यके तापसे निरुद्ध होकर वृक्षकी छायाके नीचे खड़ी होगई थी ॥ १६ ॥ इस कारण हे ब्रह्मन् ! मुझे देर लग गई थी, हे विभो ! हे तपोधन ! इस कारणको

मया । एतच्छ्रुत्वा मम विभो मा क्रुधस्त्वं तपोधन ॥१७॥ जमदग्निरुवाच । अथैनं दीप्तकरणं रेणुके तव दुःखदम् । शरैर्निपातयिष्यामि सूर्यमस्त्राग्नितेजसा ॥ १८ ॥ भीष्म उवाच । स विस्फार्य धनुर्दिव्यं गृहीत्वा च शरान् बहून् । अतिष्ठत् सूर्यमभितो यतो याति ततोमुखः ॥१९॥ अथ तं प्रेक्ष्य सन्नद्धं सूर्योऽभ्येत्य तथाऽब्रवीत् । द्विजरूपेण कौंतेय किं ते सूर्योऽपराध्यते २० आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो दिवि तिष्ठंस्ततस्ततः । रसं हृतं वै वर्षासु प्रवर्षति दिवाकरः ॥ २१ ॥ ततोऽन्नं जायते विप्र मनुष्याणां सुखावहम् । अन्नं प्राणा इति यथा वेदेषु परिपठ्यते ॥ २२ ॥ अथाभ्रेषु निगूढश्च रश्मिभिः परिवारितः । सप्तद्वीपानिमान् ब्रह्मन्

सुन कर आपको मुझ पर क्रोध न करना चाहिये ॥ १७ ॥ जमदग्निने कहा; कि-हे रेणुके ! मैं तुझे दुःख देने वाले इस सूर्यको आज अग्निकी समान तेजस्वी बाण मार कर नीचे गिरा दूँगा १८ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! फिर वह बहुतसे बाण लेकर अपने दिव्य धनुषको टंकार कर जिस ओर सूर्य जारहा था, उस दिशाकी ओर मुख करके खड़े होगए १९ हे कौन्तेय ! सूर्य जमदग्निको आयुध लेकर तयार हुआ देख ब्राह्मणका रूप धारण कर उनके पास आये और कहने लगे, सूर्यने कहा, कि-सूर्यने आपका क्या अपराध किया है ? २० सूर्य आकाशमें स्थित रह कर किरणोंसे पृथ्वीके सब पदार्थोंमेंसे रसको खेंच लेता है और जिस रसको ग्रहण करता है, उस रसको चौमासेमें फिर बरसाता है ॥ २१ ॥ उससे अन्न उत्पन्न होता है और हे ब्राह्मण ! अन्नसे मनुष्य सुखी होते हैं तथा वेदोंमें कहा है, कि-"अन्नं प्राणाः" अन्न मनुष्योंके प्राण हैं २२ और हे ब्राह्मण ! सूर्य अपनी किरणोंसे व्याप्त होकर मेघोंमें गुप्त रहता है और सातों द्वीपों पर जलकी

वर्षेणाभिप्रवर्षति ॥ २३ ॥ ततस्तदौषधानां च वीरुधां पुष्पपत्र-जम् । सर्वं वर्षाभिनिर्वृत्तमन्नं संभवति प्रभो ॥२४॥ जातकर्माणि सर्वाणि व्रतोपनयनानि च । गोदानानि विवाहश्च तथा यज्ञ-समृद्धयः ॥२५॥ शास्त्राणि दानानि तथा संयोगा वित्तसंचयाः। अन्नतः संप्रवर्तन्ते यथा त्वं वेत्थ भार्गव ॥ २६ ॥ रमणीयानि यावंति यावदारंभिकाणि च । सर्वमन्नात् प्रभवति विदितं कीर्त-यामि ते ॥ २७ ॥ सर्वं हि वेत्थ विप्र त्वं यदेतत् कीर्तितं मया । प्रसादये त्वां विप्रर्षे किं ते सूर्यं निपात्य वै ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिकेपर्वणि दान-धर्मे छत्रोपानहोत्पत्तिर्नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

युधिष्ठिर उवाच । एवं मयाचति तदा भास्करे मुनिसत्तमः । जमदग्निर्महातेजाः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ।

वृष्टि करता है २३ और हे प्रभो ! उस जलवृष्टिसे औषध और लताके पुष्पोंमेंसे तथा पत्तोंमेंसे सब प्रकारका अन्न उत्पन्न होता है २४ और सब जातकर्म आदि संस्कार व्रत, उपनयनसंस्कार, केशान्तसंस्कार, विवाह, यज्ञ, उसकी सामग्रियें,शास्त्रमें कहे हुए दान, संयोग धनके संग्रह ये सब हे भार्गव ! अन्नसे ही होसकते हैं, यह बात आप जानते हैं २६ जितने रमणीय कार्य हैं और जितने कार्योंके आरम्भ हैं, वे सब अन्नके प्रभावसे ही होते हैं, यह आप जानते हैं, तब भी मैं आपसे कहता हूं २७ हे विप्र ! मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, उस सबको आप जानते हैं, हे विप्रर्षे! मैं तुमको प्रसन्न करता हूं आपके सूर्यको नीचे गिरानेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २८ ॥ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि–इस प्रकार सूर्य बड़ी भारी प्रार्थना करने लगे, तब महातेजस्वी जमदग्निने क्या कार्य किया ? भीष्मजी ने कहा, कि–हे कुरुनन्दन ! उपरोक्त रीतिसे सूर्यके प्रार्थना करने

स तथा याचमानस्य मुनिरग्निसमप्रभः । जमदग्निः शमं नैव जगाम कुरुनन्दन ॥२॥ ततः सूर्यो मधुरया वाचा तमिदमब्रवीत्। कृतांजलिर्विप्ररूपी प्रणम्यैनं विशांपते ॥३॥ चलं निमित्तं विप्रर्षे सदा सूर्यस्य गच्छतः । कथं चलं भेत्स्यसि त्वं सदा यांतं दिवाकरम् ॥ ४ ॥ जमदग्निरुवाच । स्थिरं चापि चलं चापि जाने त्वां ज्ञानचक्षुषा । अवश्य विनयाधानं कार्यमद्य मया तव ॥५॥ मध्याह्ने वै निमेषार्धं तिष्ठसि त्वं दिवाकर । तत्र भेत्स्यामि सूर्य त्वां न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ६ ॥ सूर्य उवाच । असंशयं मां विप्रर्षे भेत्स्यसे धन्विनां वर । अपकारिणं मां विद्धि भगवञ्छरणागतम् ॥ ७ ॥ भीष्म उवाच । ततः प्रहस्य भगवान् जमदग्निरुवाच तम् । न भीः सूर्य त्वया कार्या प्रणिपातगतो ह्यसि ॥ ८॥

पर भी अग्निकी समान कान्तिमान् जमदग्नि मुनि शान्त नहीं हुए २ तब ब्राह्मणके रूपमें छुपे हुए सूर्यने दोनों हाथ जोड़ जमदग्निको प्रणाम कर मधुर वाणीमें उनसे कहा, कि-हे विप्रर्षे ! सूर्य सदा चलता रहता है अतः उसका लक्ष्य तो चल रहेगा आप सदा चलने वाले चल सूर्यको किस प्रकार वेध सकेंगे ४ जमदग्निने कहा, कि-मैं ज्ञानदृष्टिसे पहिचानता हूँ, कि-तूही सूर्य है, तू चल हो या स्थिर हो परन्तु मैं आज तुझे अवश्य ही दण्ड देकर विनीत बना दूँगा ५ हे दिवाकर ! तू मध्यान्हके समय आधे निमेषके लिये ठहरा करता है, हे सूर्य ! उस समय मैं तुझे वेध डालूँगा, और इसमें मुझे कुछ विचार नहीं है ६ सूर्यने कहा, कि-हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विप्रर्षे ! आप मुझे अवश्य वेध सकते हैं, परन्तु हे भगवन् ! आप मुझ अपराधी को शरणमें आया हुआ समझिये ७ भीष्मजीने कहा, कि-तब भगवान् जमदग्निने उससे हँस कर कहा, कि-हे सूर्य ! तू अब मत डर, क्योंकि-अब तू प्रणाम कर रहा है ८ ब्राह्मणोंमें जो सर-

ब्राह्मणेष्वार्जवं यच्च स्थैर्यं च धरणीतले । सौम्यतां चैव सोमस्य गांभीर्यं वरुणस्य च ॥९॥ दीप्तिमग्नेः प्रभां मेरोः प्रतापं तपनस्य च । एतान्यतिक्रमेद्यो वै स हन्याच्छरणागतम् ॥ १० ॥ भवेत् स गुरुतल्पी च ब्रह्महा च स वै भवेत् । सुरापानं स कुर्याच्च यो हन्याच्छरणागतम् ॥११॥ एतस्य त्वपनीतस्य समाधिं तात चिंतय । यथासुखगमः पंथा भवेत्त्वद्रश्मिभावितः ॥ १२ ॥ भीष्म उवाच । एतावदुक्त्वा स तदा तूष्णीमासीद्भृगूत्तमः। अथ सूर्योऽददत्तस्मै छत्रोपानहमाशु वै ॥ १३ ॥ सूर्य उवाच । महर्षेशिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम् । प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्यां च त्राणार्थं चर्मपादुके ॥ १४ ॥ अद्य प्रभृति चैवेह लोके संप्रचरिष्यति । पुण्यकेषु च सर्वेषु परमक्षय्यमेव च ॥१५॥ भीष्म उवाच । छत्रो-

---

ला है, पृथ्वीमें जो स्थिरता है, सोमकी जो सौम्यता है, वरुणकी जो गम्भीरता है, अग्निकी जो दीप्ति है, मेरुकी जो प्रभा है और सूर्यमें जो प्रताप है, शरणागतको मारने वाला इन सब वस्तुओंका अतिक्रमण करता है, यह समझना चाहिये ।९।१०। शरणागतको मारने वालेको गुरुपत्नीसे गमन करनेका ब्रह्महत्या करनेका और सुरापान करनेका पाप लगता है ११ हे तात ! अब तू अपने अपराधके उपायका विचार कर अर्थात् तेरी किरणोंसे तपे हुए मार्ग पर मनुष्य सुखपूर्वक जासकें इसका उपाय कर १२ भीष्मजीने कहा, कि–इतनी बात कह कर भृगुपुत्र जमदग्नि उस समय मौन होगए, तब सूर्यने उनको तुरत ही छत्री और जूते दिये १३ सूर्यने कहा, कि–हे महर्षे ! मेरी किरणोंको रोकने वाला और मस्तककी रक्षा करने वाला यह छत्र लो और पैरोंकी रक्षा करनेके लिये ये चमड़ेकी जूतियें लो १४ आजसे इस जगत्में सब पुण्यके कामोंमें छत्रीका और जूतेके जोड़ेका दान प्रचलित होजायगा और उसका अक्षयपुण्य हुआ करेगा १५

पानहमेतत्तु सूर्येणैतत् प्रवर्तितम् । पुण्यमेतदभिख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १६ ॥ तस्मात् प्रयच्छ विप्रेषु छत्रोपानहमुत्तमम् । धर्मस्तेषु महान् भावी न मेऽत्रास्ति विचारणा॥१७॥ छत्रं हि भरतश्रेष्ठ यः प्रदद्याद्द्विजातये । शुभ्रं शतशलाकं वै स प्रेत्य सुखमेधते ॥ १८ ॥ स शक्रलोके वसति पूज्यमानो द्विजातिभिः । अप्सरोभिश्च सततं देवैश्च भरतर्षभ ॥१६॥ दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ । स्नातकाय महाबाहो संशिताय द्विजातये २० सोऽपि लोकानवाप्नोति दैवतैरभिपूजितान् । गोलोके स मुदा युक्तो वसति प्रेत्य भारत ॥२१॥ एतत्ते भरतश्रेष्ठ मया कात्स्न्र्येन कीर्तितम् । छत्रोपानहदानस्य फलं भरतसत्तम ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे छत्रोपानहदानप्रशंसानाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥६६॥

भीष्मजीने कहा, कि–हे भारत ! इस प्रकार सूर्यने छत्री और जूतेके जोड़ेके दानकी विधि चलाई है, यह तीनों लोकोंमें पुण्य देनेवाली है १६ इस लिये तू ब्राह्मणोंको उत्तम छत्री और उत्तम जूतेके जोड़ेका दान दे, इनका दान देनेसे महान् पुण्य होता है, इसमें विचार करनेकी कुछ बात नहीं है १७ हे भरतर्षभ ! जो पुरुष ब्राह्मणको सौ काँप वाला श्वेत वर्णका छत्र देता है, उस पुरुषके परलोकके सुखमें वृद्धि होती है १८ हे भरतर्षभ ! (जूते और छत्रीका दान देने वाला) इन्द्रलोकमें ब्राह्मण, अप्सरा और देवतासे सदा पूजा पाता हुआ निवास करता है ॥ १६ ॥ हे महाभुज ! जो पुरुष जिसके पैर तच रहे हों ऐसे श्रेष्ठ और स्नातक ब्राह्मणको जूते देता है २० वह देवपूजित लोकोंमें जाता है और हे भरतवंशी राजन् ! वह मरणके अनन्तर गोलोकमें भी हर्षपूर्वक निवास करता है२१हे भरतश्रेष्ठ!हे भरतसत्तम ! मैंने यह छत्री और जूतेके दानका फल पूर्णरीतिसे कहदिया२२

युधिष्ठिर उवाच । गार्हस्थ्यं धर्ममखिलं प्रब्रूहि भरतर्षभ । ऋद्धिमाप्नोति किं कृत्वा मनुष्य इह पार्थिव ॥१॥ भीष्म उवाच । अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तं जनाधिप । वासुदेवस्य संवादं पृथिव्याश्चैव भारत ॥२॥ संस्तुत्य पृथिवीं देवीं वासुदेवः प्रतापवान् । पप्रच्छ भरतश्रेष्ठ मां त्वं यत् पृच्छसेऽद्य वै ॥ ३ ॥ वासुदेव उवाच । गार्हस्थ्यं धर्ममाश्रित्य मया वा मद्विधेन वा । किमवश्यं धरे कार्यं किं वा कृत्वा कृतं भवेत् ॥४॥ पृथिव्युवाच । ऋषयः पितरो देवा मनुष्याश्चैव माधव । इज्याश्चैवार्चनीयाश्च यथा चैव निबोध मे ॥५॥ सदा यज्ञेन देवाश्च सदातिथ्येन मानुषाः । छंदतश्च यथा नित्यमर्हान् भुंजीत नित्यशः ॥६॥ तेन ह्यृषिगणाः

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! मुझसे आप गृहस्थाश्रमके संपूर्ण धर्मोंका वर्णन करिये तथा इस जगत् में मनुष्य कौनसे कर्मको करके समृद्ध होसकता है, इसका भी मुझसे वर्णन करिये १ भीष्मजीने कहा, कि-हे जनाधिप ! हे भारत ! मैं तुम्हें इस विषयकी वासुदेव और पृथ्वीकी सम्वाद-रूप एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ २ हे भरतश्रेष्ठ ! आज तुम मुझसे जो बात बूझ रहे हो, वही बात प्रतापी वासुदेवने पृथ्वीकी स्तुति करके पृथ्वीसे बूझी थी ॥३॥ वासुदेवने बूझा, कि-हे पृथिवी ! मुझको अथवा मुझ जैसे-पुरुषको गृहस्थाश्रममें रह कर कौनसे कर्म अवश्य करने चाहियें और कौनसे कर्म करनेसे धर्म कर्म सफल होते हैं ४ पृथिवीने कहा, कि हे माधव ! मनुष्य, देवता और पितरोंका किस प्रकार यजन और पूजन करना चाहिये, इसको तू मुझसे सुन ॥ ५ ॥ सदा यज्ञ करके देवताओंका, सदा आतिथ्य करके मनुष्योंका और नित्य छन्दसहित तर्पण करके पितरोंका सेवन करके भोजन करना चाहिये ६ हे मधुसूदन !, ऐसा करनेसे ऋषि प्रसन्न

प्रीता भवंति मधुसूदन । नित्यमग्निं परिचरेदभुक्त्वा बलिकर्म च ७ कुर्यात्तथैव देवा वै प्रीयंते मधुसूदन । कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥ ८ ॥ पयोमूलफलैर्वापि पितृणां प्रीतिमाहरन् । सिद्धान्नाद्वैश्वदेवं वै कुर्यादग्नौ यथाविधि ॥ ९ ॥ अग्नीषोमं वैश्वदेवं धान्वंतर्यमनंतरम् । प्रजानां पतये चैव पृथग्घोमो विधीयते ॥ १० ॥ तथैव चानुपूर्व्येण बलिकर्म प्रयोजयेत् । दक्षिणायां यमायेति प्रतीच्यां वरुणाय च ॥ ११ ॥ सोमाय चाप्युदीच्यां वै वास्तुमध्ये प्रजापतेः । धन्वंतरेः प्रागुदीच्यां प्राच्यां शक्राय माधव ॥ १२ ॥ मनुष्येभ्य इति प्राहुर्बलिं द्वारि गृहस्य वै । मरुद्भ्यो दैवतेभ्यश्च बलिमंतर्गृहे हरेत् ॥ १३ ॥ तथैव विश्वे-

---

होजाते हैं; भोजनके पहिले सदा अग्निमें होम करना चाहिये और भूतोंको बलि देना चाहिये ७ हे मधुसूदन ! ऐसा करनेसे देवता भी प्रसन्न होते हैं, प्रतिदिन अन्न और जलसे श्राद्ध करे ८ अथवा पितरोंकी प्रीति सम्पादन करनेके लिये फल मूल और फलोंसे श्राद्ध करे, सिद्ध (तयार किये हुए) अन्नमेंसे विधिपूर्वक नित्य अग्निमें विधिके अनुसार वैश्वदेव करे ॥ ९ ॥ ॐ अग्नीषोमाय न मम ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम । ॐ धन्वन्तरये स्वाहा, इदं धन्वन्तरये न मम । ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम । इस प्रकार सब देवताओंके निमित्त अलग २ होम करना चाहिये ॥ १० ॥ होम करनेके अनन्तर क्रमशः बलिका कर्म करना चाहिये, दक्षिण दिशामें यमाय नमः, पश्चिमदिशामें वरुणाय नमः ११ उत्तरदिशामें सोमाय नमः, घरके मध्यभागमें प्रजापतये नमः, ईशानकोणमें धन्वन्तरये नमः पूर्वदिशामें शक्राय नमः ॥ १२ ॥ घरके द्वार पर मनुष्येभ्यो नमः, घरके भीतर मरुद्भ्यो नमः, और दैवतेभ्यो नमः कह कर बलि देनी चाहिये, इसी प्रकार

देवेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् । निशाचरेभ्यो भूतेभ्यो बलिं नक्तं तथा हरेत् ॥१४॥ एवं कृत्वा बलिं सम्यग्दद्याद्भिक्षां द्विजाय वै । अलाभे ब्राह्मणस्याग्नावग्रमुत्धृत्य निक्षिपेत् ॥ १५॥ यदा श्राद्धं पितृभ्योऽपि दातुमिच्छेत मानवः । तदा पश्चात् प्रकुर्वीत निवृत्ते श्राद्धकर्मणि ॥१६॥ पितॄन् संतर्पयित्वा तु बलिं कुर्याद्विधानतः । वैश्वदेवं ततः कुर्यात् पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम् ॥ १७ ॥ ततोऽन्नेन विशेषेण भोजयेदतिथीनपि । अर्चापूर्वं महाराज ततः प्रीणाति मानवान् ॥१८॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते । आचार्यस्य पितुश्चैव सख्युराप्तस्य चातिथेः ॥ १९ ॥ इदमस्ति गृहे मह्यमिति नित्यं निवेदयेत् । ते यद्वदेयुस्तत् कुर्यादिति धर्मो विधीयते ॥२०॥ गृहस्थः पुरुषः कृष्ण शिष्टाशी च सदा भवेत् ।

आकाशमेंसे विश्वेदेवता बलि लेलेते हैं अत एव आकाशमें विश्वेभ्यो नमः कह कर बलिदेनी चाहिये और निशाचरेभ्यो नमः भूतेभ्यो नमः कह कर रात्रिमें निशाचर और भूतोंको बलि देनी चाहिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार भली भाँति बलि देकर ब्राह्मणोंको भिक्षा देय, यदि ब्राह्मण न मिले तो भिक्षामेंसे थोड़ासा भाग लेकर अग्निमें होम कर देय ॥ १५ ॥ जब मनुष्य पितरोंके निमित्त श्राद्धकर्म करना चाहे तो प्रथम श्राद्धसे निवृत्त होकर फिर बलिकर्म करे, तदनन्तर वैश्वदेव करे, फिर ब्राह्मणोंको निमंत्रण देय और ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ १६ ॥१७॥ फिर अतिथियोंकी पूजा कर उनको उत्तम अन्नका भोजन करावे,हे महाराज ! ऐसा करनेसे अतिथि प्रसन्न होते हैं ॥ १८ ॥ पुरुष अनित्य स्थित रहनेसे अतिथि कहलाता है. आचार्य, पिता, मित्र और अतिथिसे यह सदा कहे; कि-यह मेरे घरमें सब वस्तुएँ तयार हैं, आप इनको लीजिये और उनके कथनानुसार करे, यह सनातन धर्म है॥ १९ २० ॥

राजर्त्विजं स्नातकं च गुरुं श्वशुरमेव च ॥ २१ ॥ अर्चयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरोषितान् । श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ २२ ॥ वैश्वदेवं हि नामैतत् सायं प्रातर्विधीयते। एतांस्तु धर्मान् गार्हस्थ्यान् यः कुर्यादनसूयकः । स इहर्षिवरान् प्राप्य प्रेत्य लोके महीयते ॥२३॥ भीष्म उवाच । इति भूमेर्वचः श्रुत्वा वासुदेवः प्रतापवान् । तथा चकार सततं त्वमप्येवं सदाचर ॥२४॥ एतद्ब गृहस्थधर्मं त्वं चेष्टमानो जनाधिप । इह लोके यशः प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ २५ ॥ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे वलिदानविधिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

युधिष्ठिर उवाच । आलोकदानं नामैतत् कीदृशं भरतर्षभ ।

हे कृष्ण ! गृहस्थ पुरुष सदा अतिथि आदिको भोजन कराने के उपरान्त बचे हुए अन्नका भोजन करे और राजा, ऋत्विज, स्नातक, गुरु और श्वसुर एक वर्षमें आवें तो इनकी मधुपर्कसे पूजा करे, कुत्तोंको, चाण्डालोंको और पक्षियोंको पृथ्वी पर वलि देय, इस कर्मका नाम वैश्वदेव कर्म है और यह कर्म प्रातःकाल तथा सायंकालमें किया जाता है, जो पुरुष ईर्षारहित होकर इन गृहस्थाश्रमके धर्मोंका आचरण करता है, वह इस जगत्में ऋषियोंसे श्रेष्ठ वर पाता है और मरनेके पीछे परलोकमें पूजित होता है ॥ २३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-भूमिकी इन वार्तोंको सुन कर प्रतापी वासुदेव सदा इसी प्रकार करने लगे,तू भी सदा इसी मार्ग पर चल ॥ २४ ॥ हे राजन् ! यदि तू गृहस्थोंके इस धर्मका पालन करेगा तो तुझे इस जगत्में यश मिलेगा और मरने पर स्वर्ग मिलेगा ॥२५॥ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ९७

युधिष्ठिरने बूझा,कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष! दीपदान किस प्रकार करना चाहिये, यह दीपदान किस प्रकार उत्पन्न हुआ है

कथमेतत् समुत्पन्नं फलं वा तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । मनोः प्रजापतेर्वादं सुवर्णस्य च भारत ॥ २ ॥ तपस्वी कश्चिदभवत् सुवर्णो नाम भारत । वर्णतो हेमवर्णः स सुवर्ण इति प्रथथे ॥ ३ ॥ कुलशीलगुणोपेतः स्वाध्याये च परं गतः । बहून् सुवंशप्रभवान् समतीतः स्वकैर्गुणैः ४ स कदाचिन्मनुं विप्रो ददर्शोपससर्प च । कुशलप्रश्नमन्योन्यं तौ चोभौ तत्र चक्रतुः ॥५॥ ततस्तौ सत्यसंकल्पौ मेरौ कांचनपर्वते । रमणीये शिलापृष्ठे सहितौ संन्यषीदताम् ॥ ६ ॥ तत्र तौ कथयंतौ स्तां कथा नानाविधाश्रयाः । ब्रह्मर्षिदेवदैत्यानां पुराणानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥ सुवर्णस्त्वब्रवीद्वाक्यं मनुं स्वायंभुवं प्रति । हितार्थं सर्वभूतानां प्रश्नं मे वक्तुमर्हसि ॥८॥ सुमनोभिर्य-

---

और इसका क्या फल है, यह मुझको बताइये १ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! इस विषयकी मनु, प्रजापति और सुवर्णके सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासकी कथा इस प्रकार है, कि-॥ २ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सुवर्ण नामक एक तपस्वी था, उसके शरीरका वर्ण सुवर्णकी समान था, इससे वह सुवर्ण नाम से प्रसिद्ध था ॥ ३ ॥ वह कुलीन, सुशील और गुणी था, स्वाध्यायमें पारङ्गत था और अपने गुणोंके कारण सद्वंशमें उत्पन्न हुए बहुतसे पुरुषोंसे श्रेष्ठ था ॥ ४ ॥ एक समय उसने मनु महाराजको देखा तब वह उनके पास गया, तब दोनोंने आपसमें कुशलप्रश्न किये ॥५॥ तदनन्तर वे दोनों सत्यसंकल्प पुरुष सुवर्णमय मेरुपर्वतकी एक रमणीय शिला पर पास २ बैठ गए ॥ ६ ॥ तब वे दोनों नाना वातोंसे सम्बन्ध रखने वाली ब्रह्मर्षि, देवता, दैत्य और प्राचीन महात्माओंकी कथा कहने लगे ॥ ७ ॥ वातों वातोंमें सुवर्णने सब भूतोंका हित करनेकी इच्छासे स्वायंभुव मनुसे कहा कि-मेरे प्रश्नका उत्तर मुझे दीजिये ८

द्रिज्यंते दैवतानि प्रजेश्वर । किमेतत् कथमुत्पन्नं फलं योगं च.
शंस मे ॥९॥ मनुरुवाच । अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।
शुक्रस्य च बलेश्चैव संवादं वै महात्मनोः ॥१०॥ बलेर्वैरोचनस्येह
त्रैलोक्यमनुशासतः । समीपमाजगामाशु शुक्रो भृगुकुलोद्वहः ११
तमर्घ्यादिभिरभ्यर्च्य भार्गवं सोऽसुराधिपः । निषसादासने पश्चा-
द्विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२ ॥ कथेयमभवत्तत्र या त्वया था परि-
कीर्तिता । सुमनोधूपदीपानां संप्रदाने फलं प्रति ॥ १३ ॥ ततः
पप्रच्छ दैत्येन्द्रः कवींद्रं प्रश्नमुत्तमम् ॥१४॥ बलिरुवाच । सुमनो-
धूपदीपानां किं फलं ब्रह्मवित्तम । प्रदानस्य द्विजश्रेष्ठ तद्भवान्
वक्तुमर्हति ॥१५॥ शुक्र उवाच । तपः पूर्वं समुत्पन्नं धर्मस्तस्मा-

---

हे प्रजापति ! पुष्पोंसे जो देवताओंकी पूजा की जाती है, यह पूजनविधि कैसी है यह किस प्रकार उत्पन्न हुई है, इसका फल और योग मुझसे कहिये ॥ ९ ॥ मनुने कहा, कि-इस विषयकी महात्मा शुक्र और बलिकी सम्वादरूप एक पुरानी कथा इस प्रकार है, कि–॥ १० ॥ पहिले विरोचनका पुत्र बलि त्रिलोकी पर राज्य कर रहा था, एक समय भृगु-कुलमें उत्पन्न हुए शुक्र उसके पास आये ॥ ११ ॥ तब असुरा-धिपने अर्घ आदिसे भार्गवकी विधिपूर्वक पूजा की, फिर बहुत सी दक्षिणा देने वाला बलि अपने आसन पर बैठ गया १२ तदनन्तर जिस कथाको तू बूझ रहा है, इसी प्रकार पुष्प चढ़ाने. धूप देने तथा दीपदान देनेसे जो फल मिलता है उसकी कथा होने लगी ॥ १३ ॥ दैत्यराजने कवियोंमें इन्द्र शुक्रसे उत्तम प्रश्न बूझा ॥ १४ ॥ बलिने बूझा, कि–हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! हे द्विजश्रेष्ठ ! पुष्प धूप और दीपदान करनेसे क्या फल मिलता है, यह मुझसे कहिये ॥ १५ ॥ शुक्रने उत्तर दिया, कि-प्रथम तप उत्पन्न हुआ है, फिर धर्म उत्पन्न हुआ है, इन दोनों

दनंतरम् । एतस्मिन्नन्तरे चैव वीरुदोषध्य एव च ॥ १६ ॥ सोम-
स्यात्मा च बहुधा संभूतः पृथिवीतले । अमृतं च विषं चैव ये
चान्ये तृणजातयः ॥१७॥ अमृतं मनसः प्रीतिं सद्यस्तृप्तिं ददाति
च । मनो ग्लपयते तीव्रं विषं गन्धेन सर्वशः ॥ १८ ॥ अमृतं
मङ्गलं विद्धि महद्विषममंगलम् । ओषध्यो ह्यमृतं सर्वा विषं तेजो-
ग्निसंभवम् ॥१९॥ मनो ह्लादयते यस्माच्छ्रियं चापि दधाति च ।
तस्मात् सुमनसः प्रोक्ता नरैः सुकृतकर्मभिः ॥ २० ॥ देवताभ्यः
सुमनसो यो ददाति नरः शुचिः । तस्य तुष्यंति वै देवास्तुष्टाः
पुष्टिं ददत्यपि ॥२१॥ यं यमुद्दिश्य दीयेरन् देवं सुमनसः प्रभो ।
मङ्गलार्थं स तेनास्य प्रीतो भवति दैत्यप ॥ २२ ॥ ज्ञेयास्तूग्राश्च
सौम्याश्च तेजस्विन्यश्च ताः पृथक् । ओषध्यो बहुवीर्या हि बहु-

के मध्यमें लता और औषधि उत्पन्न हुई हैं ॥ १६ ॥ पृथ्वी
पर औषधियें अनेक प्रकारसे विस्तृत होगई थीं और उन सबका
सोम अधिपति हुआ था, इन औषधियोंमेंसे बहुतसी औषधियों
में अमृत था और बहुतसी औषधियोंमें विष था और बहुतसी
समान गुण वाली थीं ॥ १७ ॥ इनमें अमृत मनको प्रसन्न
करने वाला है और तुरत तृप्ति देने वाला है और विष अपनी
गंधसे मनको तीव्र दुःखी करता है ॥ १८ ॥ अमृतको मंगल
रूप जानना चाहिये और विष महा अमंगलरूप है, सब औष-
धियें अमृतरूप हैं और विष अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ तेज है १९
पुष्प मनको प्रसन्न करते हैं, शोभाको बढ़ाते हैं, इस लिये पुण्य-
कर्म करने वाले उनको सुमनस् कहते हैं ॥ २० ॥ जो पुरुष
पवित्र होकर देवताओंको सुमनसका दान देता है, उस पर
देवता प्रसन्न होते हैं और उसको पुष्टि देते हैं २१ हे दैत्यराज!
जिस २ देवताके निमित्त मंगलकी कामनासे पुष्प दिये (चढ़ाये)
जाते हैं, तो देवता उस पुष्पदानसे प्रसन्न होते हैं २२ बहुतसी

रूपास्तथैव च ॥ २३ ॥ यज्ञियानां च वृक्षाणामयज्ञीयान्निबोध मे । असुराणि च माल्यानि दैवतेभ्यो हितानि च ॥ २४ ॥ रक्षसासुरगाणां च यक्षाणां च तथा प्रियाः । मनुष्याणां पितृणां च कांतायास्त्वनुपूर्वशः ॥ २५ ॥वन्या ग्राम्याश्चेह तथा कृष्टोप्ताः पर्वताश्रयाः । अकण्टकाः कंटकिनो गंधरूपरसान्विताः ॥ २६ ॥ द्विविधो हि स्मृतो गन्ध इष्टोऽनिष्टश्च पुष्पजः । इष्टगन्धानि देवानां पुष्पाणीति विभावय ॥२७॥ अकंटकानां वृक्षाणां श्वेतप्रायाश्च वर्णतः । तेषां पुष्पाणि देवानामिष्टानि सततं प्रभो ॥ २८ ॥ जलजानि च माल्यानि पद्मादीनि च यानि वै । गंधर्वनागयक्षेभ्य-

औषधियें उग्र, बहुतसी औषधियें सौम्य और बहुतसी तेजस्विनी होती हैं और बहुतसी नानाप्रकारके वीर्यवाली और बहुतसे अनेक प्रकारके रूप वाली होती हैं ॥ २३ ॥ अब मैं तुमसे यज्ञके काममें आने वाले और यज्ञके काममें न आने वाले वृक्षोंका वर्णन करता हूँ, उसको तुम सुनो, तैसे ही देवताओंको अच्छे लगने वाले और असुरोंको अच्छे लगने वाले पुष्पोंको भी तुम सुनो ॥ २४ ॥ तैसे ही राक्षसोंके, सर्पोंके, वृक्षोंके प्रिय पुष्पों को और मनुष्य तथा पितरोंके प्रिय पुष्पोंको तथा प्रियाको प्रिय लगने वाले पुष्पोंको भी क्रमशः सुनो ॥ २५ ॥ बहुतसे पुष्पोंके वृक्ष वनमें होते हैं, बहुतसे ग्राममें होते हैं, बहुतसे खेतीमें वोये जाते हैं और बहुतसे पर्वतों पर उगते हैं, कितने ही काँटों वाले होते हैं, कितने ही निष्कण्टक होते हैं, ये सब रूप,रस और गन्ध वाले होते हैं ॥ २६ ॥ पुष्पोंकी गन्ध दो प्रकारकी होती है, एक इष्ट और दूसरी अनिष्ट, इष्ट (मनोनुकूल) गन्ध वाले पुष्पोंको देवता पर चढ़ाना चाहिये ॥२७॥ हे राजन् ! काँटे रहित वृक्षोंके धौले रंगके पुष्पोंसे देवता सदा प्रसन्न रहते हैं २८ कुशलपुरुष जलमें उत्पन्न होने वाले कमल आदि गन्धर्व,

स्तानि दद्याद्विचक्षणः ॥ २९ ॥ औषध्यो रक्तपुष्पाश्च कटुकाः कण्टकान्विताः । शत्रूणामभिचारार्थमाथर्वेषु निदर्शिताः ॥३०॥ तीक्ष्णवीर्यास्तु भूतानां दुरालंभाः सकंटकाः । रक्तभूयिष्ठवर्णाश्च कृष्णाश्चैवोपहारयेत् ।३१। मनोहृदयनंदिन्यो विशेषमधुराश्रयाः। चारुरूपाः सुमनसो मानुषाणां स्मृता विभो ३२ न तु श्मशानसंभूता देवतायतनोद्भवाः । सन्नयेत् पुष्टियुक्तेषु विवाहेषु रहःसु च ३३ गिरिसानुरुहाः सौम्या देवानामुपपादयेत् । प्रोक्षिताभ्युक्षिताः सौम्या यथायोग्यं यथास्मृति ३४ गंधेन देवास्तुष्यंति दर्शनाद्यक्षराक्षसाः । नागाः समुपभोगेन त्रिभिरेतैस्तु मानुषाः ३५ सद्यः प्रीणाति देवान् वै ते प्रीता भावयंत्युत । संकल्पसिद्धा

नाग और यक्षोंको चढ़ावे ॥ २९ ॥ लाल पुष्पों वाली, काटेदार कड़वे रस वाली औषधियोंका शत्रुओंके अभिचारकर्ममें उपयोग करना चाहिये, यह बात अथर्ववेदमें कही है ३० तीक्ष्ण वीर्य वाले, जिनका स्पर्श न किया जासके, काँटेदार अधिक लाल और काले वर्णके पुष्प और औषधियोंको भूतोंको चढ़ावे ३१ हे राजन् ! मनुष्य मनको और हृदयको आनन्द देने वाले अति मधुर रस वाले,सुन्दर दिखाव वाले पुष्प अपने उपयोगमें लावे ३२ श्मशानमें उत्पन्न हुए और देवालयोंमें उत्पन्न हुए पुष्पोंका पुष्टिकार्यमें, विवाहोंमें और स्त्री पुरुषोंके एकान्तविहारमें उपयोग न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ पर्वतके शिखर पर उत्पन्न हुए सुगंधित पुष्प देवताओंके अर्पण करने चाहिये, उन पुष्पोंका मंत्र पढ़ कर जलसे प्रोक्षण करना चाहिये फिर शास्त्रानुसार जो पुष्प जिसके योग्य हो उस देवताको चढ़ावे ॥ ३४ ॥ देवता गन्धसे प्रसन्न होजाते हैं, सर्प उपभोग करनेसे सन्तुष्ट रहते हैं और राक्षस दर्शन करके सन्तुष्ट शुद्ध होजाते हैं और मनुष्य उपरोक्त तीनों बातोंसे प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ पुष्पोंसे देवता

मर्त्यानामीप्सितैश्च मनोरमैः ३६ प्रीताः प्रीणंति सततं मानिता मानयन्ति च । अवज्ञातावधूताश्च निर्दहंत्यधमान्नरान् ३७ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूपदानविधेः फलम् । धूपांश्च विविधान् साधूनसाधूंश्च निबोध मे ३८ निर्यासाः सारिणश्चैव कृत्रिमाश्चैव ते त्रयः । इष्टाऽनिष्टो भवेद्गन्धस्तन्मे विस्तरशः शृणु ३९ निर्यासाः सल्लकीवर्ज्या देवानां दयितास्तु ते । गुग्गुलुप्रवरस्तेषां सर्वेषामिति निश्चयः ॥४०॥ अगुरुः सारिणां श्रेष्ठो यक्षराक्षसभोगिनाम् । दैत्यानां सल्लकीयश्च कांक्षितो यश्च तद्विधः ४१ अथ सर्जरसादीनां गंधैः पार्थिवदारवैः । फाणितासवसंयुक्तैर्मनुष्याणां

शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं और जिनके संकल्प सिद्ध हैं वे देवता प्रसन्न होकर मनुष्योंके इच्छित और मनोहर मनोरथोंको पूरा करते हैं ॥३६॥ देवता प्रसन्न होने पर मनुष्योंको प्रसन्न करते हैं, देवताओंका मान करने पर देवता मनुष्योंको मान देते हैं; और अधम मनुष्य यदि देवताका अपमान करते हैं तो देवता उसको भस्म कर डालते हैं ॥ ३७ ॥ अब मैं धूप करनेका विधि उसका फल और भाँतिरके अच्छी बुरी धूपोंके विषयमें कहूँगा उसको तुम मुझसे सुनो ॥ ३८ ॥ धूप तीन प्रकारकी होती है एक गोंदरूप (गूगल आदि) होती है दूसरी साररूप होती है (उसको अंगारे पर रखने पर उसमेंसे रस निकलता है) तीसरी कृत्रिम (बनावटी अष्टगंध) होती है; गंध दो प्रकारकी होती है एक प्रिय और दूसरी अप्रिय,इनका वर्णन भी मैं तुझे विस्तृतरूपसे सुनाता हूँ ॥ ३९ ॥ सल्लकी के अतिरिक्त और वृक्षोंका निर्यास (गोंद) देवताओंको प्रिय है और इनमें गूगल परमश्रेष्ठ है यह मेरा मत है॥४०॥साररूप धूपोंमें अगर श्रेष्ठ है और वह यक्ष, राक्षस तथा दैत्योंको प्रिय है, वे सल्लकीके वृक्षकी धूपको और उसकी समान वृक्षोंकी धूपको भी चाहते हैं ॥ ४१ ॥ राल आदि

त्रिश्रीयते ४२ देवदानवभूतानां सद्यस्तुष्टिकरःस्मृतः । येन्ये वैहारिकास्तत्र मानुषाणामिति स्मृताः ४३ य एवोक्ताः सुमनसां प्रदाने गुणहेतवः । धूपेष्वपि परिज्ञेयास्त एव प्रीतिवर्धनाः ४४ दीपदाने प्रवक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमम् । यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते ॥ ४५ ॥ ज्योतिस्तेजः प्रकाशं वाप्यूर्ध्वगं चापि वर्ण्यते । प्रदानं तेजसां तस्मात्तेजो वर्धयते नृणाम् ४६ अंधं तमस्तमिस्रं च दक्षिणायनमेव च । उत्तरायणमेतस्माज्ज्योतिर्दानं प्रशस्यते ॥ ४७ ॥ यस्मादूर्ध्वगमे तत्तु तमसश्चैव भेषजम् । तस्मादूर्ध्वगतेर्दाता भवेदत्रेति निश्चयः ॥ ४८ ॥ देवास्ते-

तथा सुगंधित लोबान आदि पृथिवीके रस तथा सुगंधित काष्ठोंमेंसे बनाये हुए सुगंधित रस और सुगंधित रसोंकी चासनी डाल कर तीव्र गंधवाली बनाई हुई धूपोंका मनुष्य उपयोग करते हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु वह देव, दानव और भूतोंको तुरत प्रसन्न करने वाले हैं, अतः विहारोपयोगी दूसरी धूपोंका भी मनुष्योंको उपयोग करना चाहिये ॥ ४३ ॥ पुष्प अर्पण करनेसे जो फल कहा है वही फल धूपका भी समझना चाहिये और धूप भी प्रीतिको बढ़ाने वाली है ॥ ४४ ॥ अब मैं तुझसे दीपदानका सर्वोत्तम फल कहता हूँ, दीपदान किसको करना चाहिये कब करना चाहिये, किस प्रकार करना चाहिये और कैसे दीपक बनाने चाहियें, यह मैं तुझसे कहता हूँ । ४५ । दीपक आदिका तेज कीर्तिरूप है, ऊर्ध्वगामी है, इसप्रकार (शास्त्रमें) वर्णन किया है, अतः दीपदान मनुष्योंके तेजको बढ़ाता है, ॥ ४६ ॥ अन्धतम नामक नरक अंधकारमय है इसी प्रकार दक्षिणायन भी अन्धकारमय है और उत्तरायण अंधकाररहित है अत एव उत्तरायणमें दीपदान देना प्रशंसनीय माना जाता है।४७। दीपककी शिखा ऊपरको जाने वाली है और वह अंधकारकी औषध है,

जस्विनो यस्मात् प्रभावन्तः प्रकाशकाः । तामसा राक्षसाश्चैव तस्माद्दीपः प्रदीयते ॥ ४६ ॥ आलोकदानाच्चक्षुष्मान् प्रभायुक्तो भवेन्नरः । तान् दत्वा नोपहिंसेत न हरेन्नोपनाशयेत् ॥ ५० ॥ दीपहर्ता भवेदंधस्तमोगतिरसुप्रभः । दीपप्रदः स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ॥ ५१ ॥ हविषा प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः । वसामेदोस्थिनिर्यासैर्न कार्यः पुष्टिमिच्छता ॥ ५२ ॥ गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे । दीपदानं भवेन्नित्यं य इच्छेद्द भूतिमात्मनः ॥ ५३ ॥ कुलोद्योतो विशुद्धात्मा प्रकाशत्वं च गच्छति । ज्योतिषां चैव सालोक्यं दीपदाता नरः सदा ॥५४॥ बलिकर्मसु

इस लिये दीपक ऊर्ध्वलोककी गति देते हैं यह निश्चय है ४८ देवता तेजस्वी हैं,कान्तिमान् हैं प्रकाश करने वाले हैं और राक्षस तमोगुणी हैं,अंधकार करने वाले हैं,इस लिये देवताओंके निमित्त दीपदान दिया जाता है ॥ ४६ ॥ दीपदान करनेसे मनुष्यके नेत्र तेजस्वी होते हैं और दीपदान करने वाला भी कान्तिमान् होता है दीपदान करनेके पीछे दीपकोंको बुझाना न चाहिये न उठाना चाहिये और उनका नाश भी नहीं करना चाहिये ॥ ५० ॥ जो दीपककी चोरी करता है, वह अंधा होजाता है मरणके पीछे नरकमें पड़ता है, उसकी कान्तिका नाश होजाता है और जो दीपदान देता है, वह दीपमालाकी समान स्वर्गमें शोभा पाता है । ५१ ॥ घृतका दीपक बालनेकी विधि मुख्य विधि है, औषधियोंके रसके अर्थात् तिल, सरसोंके तेलसे दीपक प्रज्वलित करनेका दूसरा पक्ष है, सुख चाहने वाला पुरुष चरबी मेद और हड्डियोंमेंसे निकलने वाले तेलसे दीपक प्रज्वलित न करे ।५२। अपना कल्याण चाहने वाला पुरुष सदा पर्वतके प्रपातमें, घनी झाड़ियोंमें, देवमंदिरोंमें और चौराहेमें दीपक बाले ॥ ५३ ॥ दीपदान करने वाला पुरुष अपने कुलमें दीप निकलता है, उसका

वक्ष्यामि गुणान् कर्मफलोदयान् । देवयक्षोरगनृणां भूतानामथ रक्षसाम् ॥ ५५ ॥ येषां नाग्रभुजो विप्रा देवतातिथिबालकाः । राक्षसानेव तान्विद्धि निर्विशंकानमङ्गलान् ॥ ५६ ॥ तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम् । शिरसा प्रयतश्चापि हरेद्बलिमतंद्रितः ॥ ५७ ॥ गृह्णंति देवता नित्यमाशंसंति सदा गृहान् । बाह्याश्चागंतवो येऽन्ये यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ५८ ॥ इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा । ते प्रीताः प्रीणयंत्येनमायुषा यशसा धनैः ॥५९॥ बलयः सह पुष्पैस्तु देवानामुपहारयेत् । दधिदुग्धमयाः पुण्याः सुगन्धाः प्रियदर्शनाः॥६०॥कार्या रुधिर मांसाढ्या बलयो यक्षरक्षसाम् । सुरासवपुरस्कारा लाजोल्लापिक-

आत्मा विशुद्ध होजाता है और वह प्रकाशमय लोकोंमें जाता है ॥ ५४ ॥ अब मैं देवता, यक्ष, सर्प, मनुष्य, भूत और राक्षसोंके बलिकर्म तथा उनसे होने वाले गुण, कर्म तथा फलोंको कहूँगा ५५ जो पुरुष ब्राह्मण, देवता, अतिथि और बालकोंसे पहिले भोजन कर लेते हैं उन पुरुषोंको (परलोकके भयसे)भयभीत न होने वाले अमङ्गल राक्षस समझना चाहिये ५६ अत एव मनष्य सावधान रहे, तन्द्राको त्यागदेय, और मस्तक नमा देवताओंका पूजन कर प्रथम बलि देय ५७ देवता बलिको सदा ग्रहण करते हैं और घरके मनुष्योंका कल्याण सदा चाहते हैं बाहरसे आये हुए अतिथि, यक्ष, राक्षस, सर्प, देवता और पितर बलिदान पर आजीविका चलाते हैं, बलिदानसे प्रसन्न होते हैं और बलि देने वालेको आयु, यश तथा धन देकर प्रसन्न करते हैं ५८-५९ देवताओंको पुष्पोंके साथ बलि देनी चाहिये और बलि दूध, दहीकी, पवित्र सुगंधित और सुहावनी बनानी चाहिये ६० यक्ष और राक्षसोंको रक्त और मांसकी बलि देनी चाहिये, उसमें मद्य और आसव भी डालना चाहिये और उसके

भूषिताः ॥ ६१ ॥ नागानां दयिता नित्यं पद्मोत्पलविमिश्रिताः ।
तिलान् गुडसुसंपन्नान् भूतानामुपहारयेत् ॥ ६२ ॥ अग्रदाताग्र-
भोगी स्याद्बलवीर्यसमन्वितः । तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रति-
पूजितम् ॥ ६३ ॥ ज्वलत्यहरहो वेश्म याश्चास्य गृहदेवताः ।
ताः पूज्या भूतिकामेन प्रसृताग्रप्रदायिना ॥६४॥ इत्येतदसुरेन्द्राय
काव्यः प्रोवाच भार्गवः । सुवर्णाय मनुः प्राह सुवर्णो नारदाय
च ॥६५॥ नारदोऽपि मयि प्राह गुणानेतान् महाद्युते । त्वमप्ये-
तद्विदित्वेह सर्वमाचर पुत्रक ॥ ६६ ॥ च छ
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे सुवर्णमनुसंवादो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥
युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं मे भरतश्रेष्ठ पुष्पधूपप्रदायिनाम् ।

ऊपर खीलें वखेरे ६१ नागोंको पद्म और उत्पल वाली वलि प्रिय लगती है भूतोंको तिल और गुड़मिली वलि देय ६२ जो पुरुष देवता आदिको पहिले वलि देकर फिर अपने आप भोजन करता है उस पुरुषको सबसे पहिले भोजन मिलता है और वह वीर्य तथा बलसे सम्पन्न होजाता है अत एव पहिले देवताओंकी पूजा करके उनको वलिदान देना चाहिये ६३ जो गृहदेवता घरको सदा प्रकाशित रखता हो उस घरके अधिष्ठात्री देवताको लक्ष्मी चाहने वाला पुरुष पहिले ही वलिदेकर उसका पूजन करे ६४ यह कथा कविके पुत्र भार्गवने असुरराजसे कही थी मनुने सुवर्णसे कही थी, और सुवर्णने नारदजीसे कही थी ६५ हे महा-कान्तिमान् ! इन गुणोंका नारदजीने मुझसे वर्णन किया था, हे पुत्र ! तू भी इस सब विधिको जान कर इस लोकमें सब कर्म इस भाँति कर ६६ अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठपुत्र ! मैंने आपसे पुष्प धूप तथा दीपदान देने वालोंको जो फल मिलता है, वह सुना

फलं बलिविधाने च तद्भूयो वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ धूपप्रदानस्य फलं प्रदीपस्य तथैव च । बलयश्च किमर्थं वै क्षिप्यंते गृहमेधिभिः ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । नहुषस्य च संवादमगस्त्यस्य भृगोस्तथा ॥ ३ ॥ नहुषो हि महाराज राजर्षिः सुमहातपाः । देवराज्यमनुप्राप्तः सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ४ ॥ तत्रापि प्रयतो राजन्नहुषस्त्रिदिवे वसन् । मानुषीश्चैव दिव्याश्च कुर्वाणो विविधाः क्रियाः ॥ ५ ॥ मानुष्यस्तत्र सर्वाः स्म क्रियास्तस्य महात्मनः । प्रवृत्तास्त्रिदिवे राजन्दिव्याश्चैव सनातनाः ॥ ६ ॥ अग्निकार्याणि समिधः कुशाः सुमनसस्तथा । बलयश्चान्नलाजाभिर्धूपनं दीपकर्म च ॥७॥ सर्वं तस्य गृहे राज्ञः प्रावर्तत महात्मनः । जपयज्ञान् मनोयज्ञांस्त्रिदिवेऽपि

तथा बलिदान देनेका फल भी सुना, परन्तु आप इस विषयको फिर कहिये १ धूप करनेसे क्या फल होता है, दीपदान देनेसे क्या फल मिलता है; तथा गृहस्थ देवताओंको बलि क्यों देते हैं।२ भीष्मजीने कहा, कि इस विषयमें भी नहुष, अगस्त्य तथा भृगु के सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण इस प्रकार मनुष्य दिया करते हैं कि—हे महाराज।महातपस्वी राजर्षि नहुष पुण्यकर्म करके देवराज्यको प्राप्त होगया था ४ हे राजन् ! वह स्वर्गमें निवास करते समय भी नाना प्रकारकी मानुषी और दिव्य क्रियाओंको करता था५हे राजन् ! स्वर्गमें भी महात्मा नहुषके घरमें सकल मानुषी और सनातनकालकी दिव्य क्रियाएँ सदा होती रहती थीं ६ इसके अतिरिक्त अग्निहोत्र आदि कर्मभी सदा होते रहते थे और उसके घरमें यज्ञकी समिधा, कुशा, पुष्प, बलि, अन्न, खीलें आदि दिव्य कर्मकी सब सामग्रियें तथा धूप और दीप ये सब उस महात्मा राजाके घरमें सदा होते रहते थे, इस तरह नहुष स्वर्गमें भी वेदमन्त्रोंका जप करता था और मानसिक यज्ञ

चकार सः ॥ ८ ॥ देवानभ्यर्चयच्चापि विधिवत् स सुरेश्वरः । सर्वानेव यथान्यायं यथापूर्वमरिंदम ॥९॥ अथेंद्रोऽहमिति ज्ञात्वा अहंकारं समाविशत् । सर्वाश्चैव क्रियास्तस्य पर्यहीयंत भूपतेः १० स ऋषीन् वाहयामास वरदानमदान्वितः । परिहीनक्रियश्चैव दुर्बलत्वमुपेयिवान् ॥११॥ तस्य वाहयतः कालो मुनिमुख्यांस्तपोधनान् । अहंकाराभिभूतस्य सुमहानभ्यवर्तत ॥ १२ ॥ अथ पर्यायशः सर्वान् वाहनायोपचक्रमे । पर्यायश्चाप्यगस्त्यस्य समपद्यत भारत ॥ १३ ॥ अथागत्य महातेजा भृगुर्ब्रह्मविदां वर । अगस्त्यमाश्रमस्थं वै समुपेत्येदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ एवं वयमसत्कारं देवेंद्रस्यास्य दुर्मतेः । नहुषस्य किमर्थं वै मर्षयाम महामुने ॥ १५ ॥ अगस्त्य उवाच । कथमेष मया शक्यः

करता था ॥८॥ हे शत्रुदमन राजन् ! वह सुरेश्वर पहिलेकी समान ही सब देवताओंका विधिपूर्वक तथा न्यायके अनुसार पूजन करता था ९ इसके उपरान्त एक समय उसने समझा, कि मैं स्वर्गका इन्द्र होगया हूँ तब उसके शरीरमें अहंकारने प्रवेश किया तब राजाकी सब क्रियाएँ बन्द होने लगीं१०वह राजा वरदानसे मदमें भर गया, उसने सब धर्म कर्म करने त्याग दिये, वह (धर्म) दुर्बल होगया और ऋषियोंसे अपनी पालकी उठवाने लगा ११ उसको अहंकारके वशमें हो मुनिश्रेष्ठ तपस्वियोंसे अपनी पालकी उठवाते बहुत समय बीत गया ॥१२॥ तदनन्तर राजा नहुषने वारी २ से सब ऋषियोंसे अपनी पालकी उठवानी आरंभ कर दी, हे भरतवंशी राजन ! अगस्त्य मुनिकी भी (एक दिन) वारी आगई ॥ १३ ॥ तब वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और महातेजस्वी भृगु आश्रममें रहने वाले अगस्त्यके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे ॥१४॥ कि-हे महामुने ! इस दुर्बुद्धि देवराज नहुषके अनादरको हम इस प्रकार (कबतक) क्यों सहें॥१५॥ अगस्त्यने

शप्तुं यस्य महामुने । वरदेन वरो दत्तो भवतो विदितश्च सः ॥ १६ ॥ यो मे दृष्टिपथं गच्छेत् स मे वश्यो भवेदिति । इत्यनेन वरं देवो याचितो गच्छता दिवम् १७ एवं न दग्धः स मया भवता च न संशयः । अन्येनाप्यृषिमुख्येन न दग्धो न च पातितः १८ अमृतं चैव पानाय दत्तमस्मै पुरा विभो । महात्मना तदर्थं च नास्माभिर्विनिपात्यते १९ प्रायच्छत वरं देवाः प्रजानां दुःखकारणम् । द्विजेष्वधर्मयुक्तानि स करोति नराधमः २० तत्र यत्प्राप्तकालं नस्तद्ब्रूहि वदतां वर । भवांश्चापि यथा ब्रूयात्तत्कर्तास्मि न संशयः ॥ २१ ॥ भृगुरुवाच । पितामहनियोगेन भवंतं सोऽहमागतः । प्रतिकर्तुं बलवति नहुषे दैवमोहिते२२ अद्य

उत्तर दिया, कि-हे महामुने ! उसको ब्रह्माजीने जो वर दिया है, उसको आप जानते हैं, फिर मैं उसको किस तरह शाप दे सकता हूँ ॥ १६ ॥ नहुषने स्वर्गको जाते समय ब्रह्माजीसे वर माँगा था, कि-जो मेरी दृष्टिमें पड़े वह मेरे आधीन होजाय' तब ब्रह्माजीने उसको यह वर देदिया था ॥१७॥ इसी कारण मैंने और आपने उसको अब तक शाप देकर भस्म नहीं किया है और दूसरे ऋषियोंने भी उसको शाप नहीं दिया है और उसको इन्द्रपदसे भ्रष्ट नहीं किया है ॥ १८ ॥ महात्मा ब्रह्माजीने उसको पहिले अमृत पिलाया था, इससे भी हमने उसको इन्द्रपदसे भ्रष्ट नहीं किया है१९नहुषको दिया हुआ ब्रह्माजीका वह वर प्रजाको दुःखदायक होगया है, अब पुरुषाधम नहुष ब्राह्मणोंके ऊपर अधर्ममय (जुल्म) करा करता है ॥ २० ॥ अतः हे श्रेष्ठ वक्ता! अब इस समय हमको क्या करना चाहिये, यह बताइये, आप जिस प्रकार कहेंगे, उसी प्रकार मैं निःशंक होकर करूँगा ॥२१॥ भृगुने कहा, कि-बलवान् नहुष दैवयोगसे मूढ़ होगया है, ब्रह्माजीकी आज्ञासे उसको ठिकाने पर लानेके लिये मैं आपके पास

हि त्वां सुदुर्बुद्धी रथे योदयति देवराट्। अद्यैनमहमुद्वृत्तं करि-
ष्येऽनिन्द्रमोजसा २३ अद्येंद्रं स्थापयिष्यामि पश्यतस्ते शतक्रतुम्।
संचाल्य पापकर्माणमैन्द्रात् स्थानात् सुदुर्मतिम् २४ अद्य चासौ
कुदेवेन्द्रस्त्वां पदा धर्षयिष्यति। दैवोपहतचित्तत्वादात्मनाशाय
मन्दधीः २५ व्युत्क्रान्तधर्मं तमहं धर्षणामर्षितो भृशम्। अहिर्भव-
स्वेति रुषा शप्स्ये पापं द्विजद्रुहम् २६ तत एनं सुदुर्बुद्धिं धिक्-
शब्दाभिहतत्विषम्। धरण्यां पातयिष्यामि पश्यतस्ते महामुने २७
नहुषं पापकर्माणमैश्वर्यबलमोहितम्। यथाचरो च ते तुभ्यं तथा

आया हूँ॥२२॥आज ही महादुर्बुद्धि देवराज नहुष तुमको अपने रथमें जोतेगा, और मैं भी इस उद्धत आचरण वाले राजाको आज ही अपने बलसे निद्रारहित कर दूँगा(अर्थात् इसको उचित दण्ड दूँगा)॥२३॥ मैं आज ही तुम्हारे देखते २ इस पाप-कर्म करने वाले अतिदुष्ट नहुषको इन्द्रासन परसे भ्रष्ट कर दूँगा और शतक्रतु इन्द्रको उसके स्थान पर स्थापित करदूँगा॥२४॥ यह देवताओंका कुत्सित राजा मन्द बुद्धि नहुष प्रारब्धवश अपना नाश करनेके लिये आज आपको लात मार कर तिरस्कार करेगा॥२५॥ आपका अपमान करनेसे मुझे बड़ा क्रोध आवेगा, तब ब्राह्मणोंसे द्रोह करने वाले और अपने धर्मको त्यागने वाले पापी नहुषको मैं क्रोधसे शापदूँगा, कि-तू सर्प होजा॥२६॥ इस प्रकार हे महामुने! धिक्कारस्वेसे निस्तेज हुए अतिदुर्बुद्धि उस राजाको मैं तेरे सामने ही पृथ्वी पर गिरा दूँगा॥२७॥ ऐश्वर्यके घमण्डमें भर कर नहुष पापकर्म कर रहा है (उसका फल उसको मिलना चाहिये) हे मुने! आप जिस प्रकार चाहते हैं, मैं सिसी प्रकार करूँगा॥२८॥ इस प्रकार मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्यजीसे

कर्तास्म्यहं मुने २८ एवमुक्तस्तु भृगुणा मैत्रावरुणिरव्ययः ।
अगस्त्यः परमप्रीतो बभूव विगतज्वरः २६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि
दानधर्मे अगस्त्यभृगुसंवादो नाम नवनवतितमोऽध्यायः ६६

युधिष्ठिर उवाच । कथं वै स विपन्नश्च कथं वै पातितो भुवि ।
कथं चानिंद्रतां प्राप्तस्तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ १ ॥ भीष्म उवाच ।
एवं तयोः संवदतोः क्रियास्तस्य महात्मनः । सर्वा एव प्रवर्तंते
या दिव्या याश्च मानुषीः ॥ २ ॥ तथैव दीपदानानि सर्वोपिकर-
णानि च । बलिकर्म च यच्चान्यदुत्सकाश्च पृथग्विधाः ॥ ३ ॥
सर्वे तस्य समुत्पन्ना देवेंद्रस्य महात्मनः । देवलोके नृलोके च
सदाचारा बुधाः स्मृताः ॥४॥ ते चेद्भवंति राजेंद्र ऋद्ध्यंते गृह-
मेधिनः । धूपप्रदानैर्दीपैश्च नमस्कारैस्तथैव च ॥५॥ यथा सिद्ध-

भृगुने कहा, तब अगस्त्य परम प्रसन्न हुए और उनके मनका
सन्ताप दूर होगया ॥ २६ ॥ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ६६

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्म ! राजा नहुष किस प्रकार
दुःखी हुआ था, उसको पृथ्वी पर किस प्रकार गिराया गया था
और उसकी निद्रा किस प्रकार उड़ गई थी, यह मुझसे कहिये ।१।
भीष्मजीने कहा, कि जिस समय वे दोनों महात्मा परस्पर बात-
चीत कर रहे थे, उस समय महात्मा नहुषके घरमें दैवी और
मानुषी सब क्रियाएँ होती थी ॥ २ ॥ दीपदान, सब प्रकारकी
पूजायें, बलिदान तथा पुत्रोंके नाना प्रकार वार्षिक महोत्सव आदि
महात्मा देवेन्द्रके घरमें सदा होते थे, पण्डित पुरुष मनुष्यलोकमें
और देवलोकमें (भी) सदाचारसम्पन्न रहते हैं । ३-४ ।
हे राजेन्द्र ! यदि गृहस्थाश्रमी सदाचारसंपन्न रहते हैं तो उनको
सम्पत्ति मिलती है और उनका अभ्युदय होता है, इसी प्रकार
धूपदान, दीपदान करनेसे और प्रणाम करनेसे भी फल मिलता

स्य चान्नस्य ग्रहायाग्नौ प्रदीयते। बलयश्च गृहोद्देशे अतः प्रीयंति देवताः ॥ ६ ॥ यथा च गृहिणस्तापो भवेद्वै बलिकर्मणि। तथा शतगुणा प्रीतिर्देवतानां प्रजापते॥७॥ एवं धूपप्रदानं च दीपदानं च साधवः। प्रयच्छंति नमस्कारैर्युक्तमात्मगुणावहम् ॥८॥ स्नानेनाद्भिश्च यत्कर्म क्रियते वै विपश्चिता। नमस्कारप्रयुक्तेन तेन प्रीयंति देवताः ॥९॥ पितरश्च महाभागा ऋषयश्च तपोधनाः। गृह्याश्च देवताः सर्वाः प्रीयन्ते विधिनार्चिताः ॥ १० ॥ इत्येतां बुद्धिमास्थाय नहुषः स नरेश्वरः। सुरेंद्रत्वं महत् प्राप्य कृतवानेतदद्भुतम् ॥ ११ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य भाग्यक्षय उपस्थिते। सर्वमेतदवज्ञाय कृतवानिदमीदृशम् ॥ १२ ॥ ततः स परिहीणोऽभूत् सुरेंद्रो बलदर्पतः। धूपदीपादकविधिं न यथावच्चकार ह १३

है ५ घरमें भोजन तयार होने पर प्रथम अतिथिको और देवताओंको जिमानेसे देवता प्रसन्न होते हैं ६ गृहस्थाश्रमी पुरुषोंको बलिदान करनेसे जितना सन्तोष होता है उससे सौगुणा आनन्द देवताओंको होता है ७ उपरोक्त रीतिसे जो सत्पुरुष देवताओंको नमस्कार करके धूपदान और दीपदान करते हैं उनका अभ्युदय होता है ८ और विद्वान् पुरुष स्नान करनेके और नमस्कार करनेके अनन्तर जलसे जिस कर्मको करते हैं,उससे देवता प्रसन्न होते हैं ९ विधिपूर्वक पूजन करनेसे महाभाग्यवान् पितर तपोधन ऋषि तथा घरके सब देवता प्रसन्न होजाते हैं १० मनमें ऐसा विचार कर (उसके अनुसार कर्म कर) राजा नहुष बड़े भारी सुरेन्द्रपदको पाकर भी गृहस्थोंके इन अद्भुत धर्मोंका आचरण किया करता था ११ तदनन्तर कुछ समय बीतने पर उसके पुण्यक्षय होनेका समय समीप आगया, तब उसने उपरोक्त सब कर्मोंका अपमान किया १२ देवराज नहुषने बलके गर्वमें भर सब कर्म त्याग दिये तथा धूपदानकी विधि भी नित्यप्रति करना त्याग

ततोऽस्य यज्ञविषयो रक्षोभिः पर्यवध्यत । अथागस्त्यमृषिश्रेष्ठं वाहनायाजुहाव ह ॥१४॥ द्रुतं सरस्वतीकूलं त् स्मयन्निव महाबलः । ततो भृगुर्महातेजा मैत्रावरुणिमब्रवीत् ॥ १५ ॥ निमीलय स्वनयने जटां यावद्विशामि ते । स्थाणुभूतस्य तस्याथ जटां प्राविशदच्युतः ॥ १६ ॥ भृगुः स सुमहातेजाः पातनाय नृपस्य च । ततः स देवराट् प्राप्तस्तमृषिं वाहनाय वै ॥ १७ ॥ ततोऽगस्त्यः सुरपतिं वाक्यमाह विशाम्पते । योजयस्वेति मां क्षिप्रं कं च देशं वहामि ते ॥१८॥ यत्र वक्ष्यसि तत्र त्वां नयिष्यामि सुराधिप । इत्युक्तो नहुषस्तेन योजयामास तं मुनिम् ॥ १९ ॥ भृगुस्तस्य जटांतस्थो बभूव हृषितो भृशम् । न चापि दर्शनं तस्य चकार स भृगुस्तदा ॥ २० ॥ वरदानप्रभावज्ञो नहुषस्य महात्मनः । नः

दिया १३ उसके यज्ञ याग भी राक्षसोंने बन्द कर दिये, तदनन्तर राजा नहुषने अपना वाहन खेंचनेकेलिये ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यको बुलाया १४ महाबली नहुषने स्मित करके महर्षिसे सरस्वती नदीके तटपर अपना रथ खेंचनेको कहा, तब महातेजस्वी भृगुने मैत्रावरुणि अगस्त्यसे कहा, कि-१५ आप अपनी दोनों आँखोंको मीच लीजिये तब मैं आपकी जटाओंमें प्रवेश करूँगा, तब अगस्त्य ऋषि दोनों नेत्रोंको मीच कर काष्ठकी समान होगए और अच्युत भृगु उनकी जटाओंमें घुस गए १६ महातेजस्वी भृगु ऋषि राजा नहुषको स्वर्गसे भ्रष्ट करनेकेलिये (अगस्त्यकी जटाओंमें घुस गए) तदनन्तर ऋषिसे रथ खिंचवानेके लिये देवराट् आया १७ तब हे राजन्! अगस्त्यने देवराज इन्द्रसे कहा कि-आप मुझे शीघ्रही रथमें जोत लीजिये और बताइये मैं आपको कौनसे प्रदेशमें ले जाऊँ १८ हे देवराज! आप जहाँ कहेंगे, तहाँ मैं आपको ले जाऊँगा, इस प्रकार ऋषिके कहनेपर नहुषने ऋषिको रथमें जोता १९ उससमय जटामें स्थितभृगु नहुषपर क्रुद्ध न

चुकोप तदागस्त्यो युक्तोऽपि नहुषेण वै ॥ २१ ॥ तं तु राजा प्रतोदेन चोदयामास भारत । न चुकोप स धर्मात्मा ततः पादेन देवराट् ॥ २२ ॥ अगस्त्यस्य तदा क्रुद्धो वामेनाभ्यहनच्छिरः । तस्मिन् शिरस्यभिहते स जटांतर्गतो भृगुः ॥ २३ ॥ शशाप बल-वत्क्रुद्धो नहुषं पापचेतसम् । यस्मात् पदाहतः क्रोधाच्छिरसीमं महामुनिम् ॥ २४ ॥ तस्मादाशु महीं गच्छ सर्पो भूत्वा सुदुर्मते । इत्युक्तः स तदा तेन सर्पो भूत्वा पपात ह ॥ २५ ॥ अदृष्टेनाथ भृगुणा भूतले भरतर्षभ । भृगुं हि यदि सोऽद्रक्ष्यन्नहुषः पृथिवी-पते ॥ २६ ॥ न च शक्तोऽभविष्यद्वै पातने तस्य तेजसा । स तु दत्तैः प्रदानैश्च तपोभिर्नियमैस्तथा ॥ २७ ॥ पतितोऽपि महा-राज भूतले स्मृतिमानभूत् । प्रसादयामास भृगुं शापांतो मे भवे-

---

हुए परन्तु उस समय भृगुने उस राजाको दृष्टिसे नहीं देखा २० क्योंकि महात्मा नहुषको ब्रह्माजीने वर दे रक्खा था, उसके प्रभावको वे जानते थे, इसलिये, राजा नहुषने अगस्त्यको रथमें जोत लिया तबभी उन्होंने क्रोध नहीं किया २१ तथा हे भरतवंशी राजन् ! राजा नहुषने अगस्त्यके कोड़े मारे, तबभी उन्होंने क्रोध नहीं किया २२ तदनन्तर देवराज नहुषने क्रोधमें भर कर अगस्त्य ऋषिके मस्तक पर दाईं लात मारी, लात मारते ही जटामें छिपे हुए भृगु बड़े क्रोधमें भर गए और पापात्मा नहुषको शाप देते हुए कहने लगे, कि-तूने क्रोधमें भर कर इन महामुनिके मस्तक पर लात मारी है २३-२४ अतः हे दुर्मति ! तू सर्प बन कर पृथ्वी पर गिर जा, इस तरह भृगुके शाप देते ही नहुष सर्प होकर पृथिवी पर गिर पड़ा २५ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! उस समय भृगुने राजा नहुषको नहीं देखा था, हे राजन् ! यदि भृगु नहुषको नेत्रोंसे देखते तो २६ उसके तेजसे भृगु नहुषको इन्द्रासनपरसे भ्रष्ट नहीं कर सकते थे २७ परन्तु राजा नहुषने

दिति ॥२८॥ ततोऽगस्त्यः कृपाविष्टः प्रसादयत तं भृगुम् । शापांतार्थं महाराज स च प्रादात् कृपान्वितः ॥ २९ ॥ भृगुरुवाच । राजा युधिष्ठिरो नाम भविष्यति कुलोद्वहः । स त्वां मोक्षयिता शापादित्युक्त्वांतरधीयत ॥ ३० ॥ अगस्त्योऽपि महातेजाः कृत्वा कार्यं शतक्रतोः । स्वमाश्रमपदं प्रायात् पूज्यमानो द्विजातिभिः ३१ नहुषोऽपि त्वया राजंस्तस्माच्छापात् समुद्धृतः । जगाम ब्रह्म-भवनं पश्यतस्ते जनाधिप ॥ ३२ ॥ तदा स पातयित्वा तं नहुषं भूतले भृगुः । जगाम ब्रह्मभवनं ब्रह्मणे च न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥ ततः शक्रं समानाय्य देवानाह पितामहः। वरदानान्मम सुरा नहुषो राज्यमाप्तवान् ॥ ३४ ॥ स चागस्त्येन क्रुद्धेन भ्रंशितो भूतलं

अनेक प्रकारके दान दिये थे अनेक तप किये थे तथा अनेक नियम पाले थे इस लिये हे महाराज ! उसको पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा, अतः उसने भृगुको प्रसन्न करके कहा, कि मेरे शापका अन्त करिये २८ उस समय अगस्त्यको दया आई और उन्होंने शापका अन्त करनेके लिये भृगुको प्रसन्न किया, तब हे महाराज ! भृगुने कृपालु होकर शापका अन्त बतलाते हुए इस प्रकार वर दिया २९ भृगु बोले, कि कुरुकुलकी वृद्धि करने वाला एक युधिष्ठिर नामका राजा होगा, वह तुझको शापसे छुड़ावेगा, इतनी बात कह कर वह अन्तर्धान होगए ३० महातेजस्वी अगस्त्य भी इन्द्रका कार्य करके ब्राह्मणोंसे पूजा पाते हुए अपने आश्रमको चले गए ३१ और हे राजन् ! शापमेंसे छूटा हुआ नहुष तेरे सामने ही ब्रह्मलोकमें गया है ३२ भृगु नहुषको पृथिवी पर गिरा कर ब्रह्मलोकमें गए और यह बात ब्रह्माजीसे कही ३३ तदनन्तर पितामहने इन्द्र और देवताओंको बुलाकर कहा, कि हे देवताओं मेरे वरदानसे नहुषको राज्य मिला था ॥३४॥ परन्तु अगस्त्य ने क्रोधमें भरकर उसको पृथ्वी पर गिरा दिया है, हे देवताओं!

गतः । न च शक्यं विना राज्ञा सुरा वर्तयितुं क्वचित् ॥ ३५ ॥ तस्मादयं पुनः शक्रो देवराज्येऽभिषिच्यताम् । एवं संभाषमाणं तु देवाः पार्थ पितामहम् ॥ ३६ ॥ एवमस्त्विति संहृष्टाः प्रत्यूचुस्तं नराधिप । सोऽभिषिक्तो भगवता देवराज्ये च वासवः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मणा राजशार्दूल यथापूर्वं व्यरोचत । एवमेतत् पुरा वृत्तं नहुषस्य व्यतिक्रमात् ॥ ३८ ॥ स च तैरेव संसिद्धो नहुषः कर्मभिः पुनः । तस्माद्दीपाः प्रदातव्याः सायं वै गृहमेधिभिः ॥ ३९ ॥ दिव्यं चक्षुरवाप्नोति प्रेत्य दीपस्य दायकः । पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा दीपदाश्च भवन्त्युत ॥ ४० ॥ यावदक्षिनिमेषाणि ज्वलंते तावतीः समाः । रूपवान् बलवांश्चापि नरो भवति दीपदः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते अगस्त्यभृगुसंवादो नाम शततमोऽध्यायः १००

राजाके विना किसी समय नहीं रहा जासकता ॥ ३५ ॥ अतः तुम इन्द्रका फिर देवताओंके राज्य पर अभिषेक करो, हे पार्थ! पितामहके इस प्रकार भाषण करने पर ॥ ३६ ॥ उनसे देवताओंने परमप्रसन्न होकर कहा, कि–" तथास्तु". तदनन्तर हे राजन्! पितामहने इन्द्रका देवताओंके राज्य पर अभिषेक कर दिया, तब वह प्रथमकी समान शोभा पाने लगा, इस प्रकार पहिले नहुषके व्यतिक्रमसे वृत्तान्त हुआ था ॥३७॥३८॥ और वह नहुष फिर भी इन कर्मोंके प्रभावसे ही सिद्धिको प्राप्त होगया था अतः गृहस्थाश्रमियोंको सायंकालमें मंदिरोंमें दीपक बालने चाहियें ॥३९॥ दीपक प्रज्वलित करने वाला मरणके पीछे दूसरे जन्ममें दिव्य नेत्र पाता है तथा दीपदान करनेवाला पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल कान्तिवाला होता है४०दीपदान करने वाला पुरुष जितने पलक मारनेके समय तक दीपक प्रज्वलित रहता है, उतने वर्ष तक रूपवान् और बलवान् बन कर जीवित रहता है ॥ ४१ ॥ सौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥

युधिष्ठिर उवाच । ब्राह्मणस्वानि ये मन्दा हरन्ति भरतर्षभ। नृशंसकारिणो मूढाः क्व ते गच्छंति मानवाः॥१॥भीष्म उवाच। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। चाण्डालस्य च सम्वादं क्षत्रबन्धोश्च भारत ॥२॥ राजन्य उवाच। वृद्धरूपोऽसि चाण्डाल बालवच्च विचेष्टसे। श्वखराणां रजःसेवी कस्मादुद्विजसे गवाम्३ साधुभिर्गर्हितं कर्म चाण्डालस्य विधीयते। कस्माद्गोरजसा ध्वस्तमपां कुण्डे निषिंचसि ॥ ४ ॥ चाण्डाल उवाच । ब्राह्मणस्य गवां राजन् ह्रियन्तीनां रजः पुरा। सोमसुध्वंसयामास तं सोमं येऽपिबन्द्विजाः ॥५॥ दीक्षितश्च स राजापि क्षिप्रं नरकमाविशत्।

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ पितामह ! जो मन्दबुद्धि पुरुष ब्राह्मणोंका धन गपच लेते हैं, वे क्रूर कर्म करने वाले मूढ़ किस लोकमें जाते हैं ॥१॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! इस विषयमें भी चाण्डाल और क्षत्रियके सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण इस प्रकार देते हैं ॥ २ ॥ कि-एक क्षत्रियने एक चाण्डालको देख कर बूझा, कि-हे चाण्डाल!तू वृद्ध है,तब भी बालकोंकी समान वर्ताव क्यों कर रहा है, तू कुत्ते और गधेकी धूलका सेवन करता है, उसकी तो तुझे कुछ परवाह नहीं है, परन्तु तू गोदुग्धसे क्यों उद्विग्न होरहा है ॥ ३ ॥ सत्पुरुष चाण्डालके कर्मकी निन्दा करते हैं, तेरा शरीर गोदुग्धसे भीग गया है, उसको तू जलके कुण्डमें उतर कर किस लिये धोरहा है ॥ ४ ॥ चाण्डालने उत्तर दिया, कि-हे राजन् ! किसी समय एक मनुष्य ब्राह्मणोंकी गौओंको हर कर लेजारहा था, जिस समय वह गौएँ चल रही थीं उस समय उनका दूध टपक कर मार्गमें उगी हुई कुछ सोमवल्लियों पर पड़ गया, इस प्रकार क्षीरसिञ्चनसे पुष्ट हुई सोमवल्लीका रस जिन ब्राह्मणोंने पिया ॥ ५ ॥ वे और यज्ञदीक्षा लेकर सोमवल्लीका

सह तैर्याजकैः सर्वैर्ब्रह्मस्वमुपजीव्य तत् ६ येऽपि तत्रापिबन् क्षीरं
घृतं दधि च मानवाः । ब्राह्मणाः सहराजन्याः सर्वे नरकमा-
विशन् ७ जघ्नुस्ताः पयसा पुत्रांस्तथा पौत्रान्विधुन्वतीः । पशून-
वेक्षमाणाश्च साधुवृत्तेन दम्पती ८ अहं तत्रावसं राजन्ब्रह्मचारी
जितेन्द्रियः । तासां मे रजसा ध्वस्तं भैक्षमासीन्नराधिप ९ चाण्डा-
लोऽहं ततो राजन्भुक्त्वातदभवं नृप । ब्रह्मस्वहारी च नृपः सो-
प्रतिष्ठां गतिं ययौ १० तस्माद्धरेन्न विप्रस्वं कदाचिदपि किंचन ।
ब्रह्मस्वं रजसाध्वस्तं भुक्त्वा मां पश्य यादृशम् ११ तस्मात् सोमो-
प्यविक्रेयः पुरुषेण विपश्चिता । विक्रयं त्विह सोमस्य गर्हयन्ति

रस पीने वाला वह राजा भी नरकमें गिर गया, इस प्रकार ब्रह्म-
धनसे उपजीविका करनेके कारण वह राजा याजकोंसहित नरक
में गिर गया था ॥६॥ और उस राजाके ग्राममें जिन मनुष्योंने
ब्राह्मणोंने तथा क्षत्रियोंने दूध, दही और घी खाया, वे सब नरक
में गिर गए ॥ ७ ॥ और हरण करके लाई हुई उन गौओंने
अपने शरीरको कँपा कर अपना दूध पीने वालोंके पुत्रोंको और
पौत्रोंको नष्ट कर डाला, और गौओंको सद्दृष्टिसे देखने वाले
सदाचारी राजा रानीका भी नाश कर डाला ॥ ८ ॥ मैं भी
राजाके ग्राममें जहाँ गौएँ बँधी हुई थी, तहाँ ही रहता था और
ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर जितेन्द्रिय रहता था, हे राजन् ! उन
गौओंके दुग्धसे मेरी भिक्षा भी भीग गई थी ॥ ९ ॥ हे राजन्!
मैं भी उस भिक्षाका भोजन करनेसे चाण्डाल होगया हूँ और
वह राजा भी ब्राह्मणोंकी गौओंका हरण करनेके कारण नरकमें
पड़ा हुआ है ॥ १० ॥ इस लिये ब्राह्मणका धन किसीको किसी
दिन नहीं छीनना चाहिये, ब्राह्मणकी छीनी हुई उन गौओंके
दूधसे भीगी हुई भिक्षाका भोजन करनेसे मैं कैसा होगया हूँ,
इसको तू देख ॥ ११ ॥ और समझदार पुरुषको सोमको भी

मनीषिणः १२ ये चैनं क्रीणते तात ये च विक्रीणते जनाः । ते तु वैवस्वतं प्राप्य रौरवं यान्ति सर्वशः १३ सोमं तु रजसा ध्वस्तं विक्रीणन्विधिपूर्वकम् । श्रोत्रियो वार्धुषी भूत्वा न चिरं स विनश्यति ॥ १४ ॥ नरकं त्रिशतं प्राप्य स्वविष्ठामुपजीवति । श्वचर्यामभिमानं च सखिदारे च विप्लवम् ॥१५॥ तुलया धारयन् धर्ममभिमानोऽतिरिच्यते । श्वानं वै पापिनं पश्य विवर्णं हरिणं कृशम् ॥ १६ ॥ अभिमानेन भूतानामिमां गतिमुपागतम् । अहं वै विपुले तात कुले धनसमन्विते ॥ १७ ॥ अन्यस्मिन् जन्मनि विभो ज्ञानविज्ञानपारगः । अभवं तत्र जानानो ह्येतान् दोषान्

भी न वेचना चाहिये, विद्वान् सोमके व्यापारकी निन्दा करते हैं । १२ ॥ हे तात ! जो मनुष्य विकता हुआ सोम लेते हैं और जो सोमको वेचते हैं, वे यमके लोकमें जाकर रौरव नरकमें पड़ते हैं ॥ १३ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मण यदि गोरज अर्थात् दुग्धसे भीगी हुई सोमलताको विधिपूर्वक वेचते हैं, तो वे दूसरे जन्ममें सूद-खोर होकर उत्पन्न होते हैं फिर कुछ समय तक नरकमें पड़े रहते हैं १४ वह पुरुष तीनसौ वर्ष तक नरकमें पड़े रहनेके अनन्तर अपनी विष्ठाका खाने वाला प्राणी होकर उत्पन्न होता है, नीच पुरुषकी सेवा, अभिमान तथा अपने मित्रकी स्त्रीके साथ व्यभि-चार इन तीनोंको तराजू पर रख कर तोलें तो धर्मका उल्लंघन कराने वाला अभिमान ही अधिक उतरेगा प्रथमके दोसे अभिमान ही अधिक पापमय है, तू इस पापी कुत्तेको तो देख, यह निस्तेज है इसका शरीर दुर्बल होगया है अत एव यह सूख गया है १६ यह सब प्राणियोंसे अभिमान करता था, इससे इसको कुत्तेका जन्म मिला है, हे तात ! मैं पहिले जन्म में एक धनाढ्य और विशाल कुलमें उत्पन्न हुआ था १७ ज्ञान और विज्ञानमें पारंगत था, तथा सब दोषोंको जानता था, तो भी

मदात् सदा ॥ १८ ॥ संरब्ध एव भूतानां पृष्ठमांसमभक्षयम् । सोऽहं तेन च वृत्तेन भोजनेन च तेन वै ॥ १९ ॥ इमामवस्थां संप्राप्तः पश्य कालस्य पर्ययम् । आदीप्तमिव चैलांतं भ्रमरैरिव चार्दितम् ॥ २० ॥ धावमानं सुसंरब्धं पश्य मां रजसान्वितम् । स्वाध्यायैस्तु महत् पापं हरन्ति गृहमेधिनः ॥ २१ ॥ दानैः पृथग्विधैश्चापि यथा प्राहुर्मनीषिणः । तथा पापकृतं विप्रमाश्रमस्थं महीपते ॥ २२ ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्तं छन्दांस्युत्तारयंत्युत । अहं हि पापयोन्यां वै प्रसूतः क्षत्रियर्षभ । निश्चयं नाधिगच्छामि कथं मुच्येयमित्युत ॥२३॥ जातिस्मरत्वं च मम केनचित् पूर्वकर्मणा । शुभेन येन मोक्षं वै प्राप्तुमिच्छाम्यहं नृप ॥ २४ ॥ त्वमिमं संप्र-

मदके कारण मैं सर्वदा सब प्राणियों पर क्रोध करता रहता था तथा प्राणियोंकी पीठका मांस खाता रहता था, ऐसे आचरणोंके कारण तथा पीठका मांस भक्षण करनेके कारण मैं ऐसी अवस्थाको प्राप्त होगया हूँ, कालके इस फेरफारको तो तू देख, मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि मेरे वस्त्रमें अग्नि लग रही है अथवा भ्रमर मुझे दुःख देरहे हैं इस भावसे मैं दौड़ा-२ फिरता रहता हूँ, मेरा शरीर धूलसे अट रहा है, इसको तू देख गृहस्थाश्रमी वेदका स्वाध्याय करके महापापका नाश करते हैं २१ तथा अनेक प्रकारके दानोंसे भी पापका नाश कर डालते हैं, इस प्रकार विद्वान् कहते हैं, इसी प्रकार पापकर्म न करने वाले, आश्रम धर्मका पालन करने वाले ब्राह्मणको और सब संगोंसे मुक्त हुए ब्राह्मणको वेद संसारमेंसे तारते हैं, हे क्षत्रियर्षभ ! मैं पापमय निकृष्ट योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ इस योनिसे मैं किस प्रकार छूटूँगा, इस बातको ठीक रीतिसे मैं नहीं जानता ॥ २२ ॥ २३ ॥ तथापि हे राजन् ! पूर्वजन्मके किसी शुभकर्मके कारण मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण है

पन्नाय संशयं ब्रूहि पृच्छते । चाण्डालत्वात् कथमहं मुच्येयमिति सत्तम ॥२५॥ राजन्य उवाच । चाण्डाल प्रतिजानीहि येन मोक्षमवाप्स्यसि । ब्राह्मणार्थे त्यजन् प्राणान् गतिमिष्टामवाप्स्यसि २६ दत्वा शरीरं क्रव्याद्भ्यो रणाग्नौ द्विजहेतुकम् । हुत्वा प्राणान् प्रमोक्षस्ते नान्यथा मोक्षमर्हसि ॥२७॥ भीष्म उवाच । इत्युक्तः स तदा तेन ब्रह्मस्वार्थे परंतप । हुत्वा रणमुखे प्राणान् गतिमिष्टामवाप ह ॥ २८ ॥ तस्माद्रक्ष्यं त्वया पुत्र ब्रह्मस्वं भरतर्षभ । यदिच्छसि महाबाहो शाश्वतीं गतिमात्मनः ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे राजन्यचाण्डालसंवादो नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

मैं कल्याण पाना चाहनेके लिये इस जातिमेंसे छूटना चाहता हूँ२४ हे साधु पुरुष ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ और अपने संशय को बूझ रहा हूँ आपको स्पष्ट रीतिसे यह बतलाना चाहिये कि-मैं चाण्डाल योनिमेंसे किस प्रकार छूटूँगा क्षत्रियने कहा, कि-हे चाण्डाल ! अपने मोक्षके उपायको तू सुन कि-जिससे तेरी मोक्ष होगी यदि तू ब्राह्मणोंके लिये प्राणोंका त्याग करेगा तो तुझे इष्ट गति मिलेगी ॥ २५ ॥ २६ ॥ अथवा यदि तू ब्राह्मणोंके लिये मांसाहारी प्राणियोंको अपना शरीर अर्पण करदेगा अथवा अपने शरीरको रणरूपी अग्निमें होम देगा तो तू चाण्डाल योनिमेंसे छूट जायगा, और किसी प्रकार तू चाण्डाल योनिमेंसे नहीं छूट सकेगा २७ भीष्मजीने कहा, कि-हे परन्तप ! इस प्रकार क्षत्रियके कहने पर वह चाण्डाल ब्राह्मणोंके धनके लिये रणके मुहाने पर अपने प्राणोंको होम कर इष्ट गतिको प्राप्त होगया २८ अथा हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! हे पुत्र ! हे महाभुज ! यदि तू सनातन गतिको पाना चाहता हो तो तू भी ब्राह्मणोंके धनकी रक्षा कर २९ एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०१ ॥

युधिष्ठिर उवाच । एके लोकाः सुकृतिनः सर्वे त्वाहो पितामह । तत्र तत्रापि भिन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥ भीष्म उवाच । कर्मभिः पार्थ नानात्वं लोकानां यान्ति मानवाः । पुण्यान् पुण्यकृतो यान्ति पापान् पापकृतो नराः ॥ २ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । गौतमस्य मुनेस्तात सम्वादं वासवस्य च ३ ब्राह्मणो गौतमः कश्चिन्मृदुर्दान्तो जितेन्द्रियः । महावने हस्तिशिशुं परिद्यूनमचातृकम् ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा जीवयामास सानुक्रोशो धृतव्रतः । स तु दीर्घेण कालेन बभूवातिबलो महान् ॥ ५ ॥ तं प्रभिन्नं महानागं प्रस्रुतं पर्वतोपमम् । धृतराष्ट्रस्य रूपेण शक्रो जग्राह हस्तिनम् ॥६ । ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा गौतमः संशितव्रतः ।

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्म पितामह ! सब कर्म करनेवालोंको एक ही लोक मिलता है और वह स्वर्ग लोक है ऐसा सुना है क्या यह सत्य है अथवा वहाँ पर कुछ छोटा बड़ापन है यह सब आप मुझसे कहिये १ भीष्मजीने कहा, कि-हे पार्थ! मनुष्य कर्म करके अनेकों लोकोंमें जाते हैं, पुण्य कर्म करनेवाले लोग पुण्यमय लोकोंमें जाते हैं और पाप कर्म करनेवाले पापमय लोकोंमें जाते हैं २ इस विषयमें गौतम और इन्द्रका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास है उसकी कथा इसप्रकार है ३ एक गौतम नामक ब्राह्मण था, वह स्वभावसे मृदु दान्त और जितेन्द्रिय था उसने महावनमें हाथीके एक बच्चेको देखा वह माता पिता रहित और दुःखी था ४ व्रतधारी गौतमने उसको देखकर दया आनेसे उसको पालकर बड़ा किया बहुत समयके बाद वह बहुत बड़ा बलवान् हाथी होगया ५ वह बड़ा होने पर पर्वतकी समान ऊँचा लगता था और उसके भिन्न हुए गण्डस्थलमेंसे मद टपकता था एक दिन इन्द्रने राजा धृतराष्ट्रका रूप धारण करके उस हाथीको पकड़ लिया ६ और उसको अपने नगरकी ओर लेजाने

अभ्यभाषत राजानं धृतराष्ट्रं महातपाः ॥७॥ मा मे हार्षीर्हस्तिनं पुत्रमेनं दुःखात्पुष्टं धृतराष्ट्राकृतज्ञ । मैत्रं सतां साप्तपदं वदन्ति मित्रद्रोहो मैव राजन् स्पृशे त्वाम् ॥८॥ इध्मोदकप्रदातारं शून्यपालं ममाश्रमे । विनीतमाचार्यकुले संयुक्तं गुरुकर्मणि ॥ ९ ॥ शिष्टं दांतं कृतज्ञं च प्रियं च सततं मम । न मे विक्रोशतो राजन् हर्तुमर्हसि कुञ्जरम् ॥१०॥ धृतराष्ट्र उवाच । गवां सहस्रं भवते ददानि दासीशतं निष्कशतानि पञ्च । अन्यच्च वित्तं विविधं महर्षे किं ब्राह्मणस्येह गजेन कृत्यम् ॥ ११ ॥ गौतम उवाच । तवैव गावो हि भवंतु राजन् दास्यः सनिष्का विविधं च रत्नम् । अन्यच्च वित्तं विविधं नरेन्द्र किं ब्राह्मणस्येह धनेन कृत्यम् १२

लगा महातपस्वी और उत्तम व्रतधारी गौतम यह देखकर राजा धृतराष्ट्रसे कहने लगे ७ गौतमने कहा, कि-हे अकृतज्ञ धृतराष्ट्र! मैंने इस हाथीके बच्चेको बड़े कष्टसे पाला है इसका तू हरण न कर सत्पुरुषोंके साथ सात पैर चलने पर ही मित्रता होजाती है यह बात महात्मा कहते हैं, अतः हे राजन्! तुझे मित्रद्रोह न करना चाहिये ८ यह हाथी मेरे आश्रममें हाथीवानके विना ही मुझे लकड़ी और जल लाकर देदेता है, आचार्यके आश्रममें विनीत होकर रहता है, गुरुके कर्मोंमें भली प्रकार लगा रहता है ९ यह शिष्ट दान्त और कृतज्ञ हाथीका बच्चा मुझे सदा प्रिय है अतः हे राजन्! मैं रोते पीटते रहने पर भी तुझे इस हाथीको लेजाना उचित नहीं है १० धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे महर्षे (इस हाथीके बदलेमें) मैं तुमको एक सहस्र गौएँ देसकता हूँ सौ दासियें देसकता हूँ पाँच सौ सोनेके सिक्के देसकता हूँ और भी अनेक प्रकारका धन देसकता हूँ इस जगत्में ब्राह्मणोंका हाथीसे क्या काम है ११ गौतमने कहा, कि-हे राजन्! गौएँ तेरे ही पास रहें, मणि पहिरनेवाली दासियें भी तेरे ही पास रहें, भाँति २

धृतराष्ट्र उवाच । ब्राह्मणानां हस्तिभिर्नास्ति कृत्यं राजन्यानां नागकुलानि विप्र । स्वं वाहनं न यतो नास्त्यधर्मो नागश्रेष्ठं गौतमास्मान्निवर्त ॥ १३ ॥ गौतम उवाच । यत्र प्रेतो नन्दति पुण्यकर्मा यत्र प्रेतः शोचते पापकर्मा । वैवस्वतस्य सदने महात्मंस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥१४॥ धृतराष्ट्र उवाच । ये निष्क्रिया नास्तिकाः श्रद्दधानाः पापात्मान इन्द्रियार्थे निविष्टाः । यमस्य ते यातनां प्राप्नुवन्ति परं गंता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥१५॥ गौतम उवाच । वैवस्वती संयमनी जनानां यत्रानृतं नोच्यते यत्र सत्यम् । यत्रावला बलिनं यातयंति तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये १६ धृतराष्ट्

के रत्न भी तेरे ही पास रहें तथा हे नरेन्द्र ! दूसरे नाना प्रकारके रत्न भी तेरे ही पास रहें, ब्राह्मणोंको इस जगत्में धनसे क्या प्रयोजन है १२ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे ब्राह्मण! ब्राह्मणोंको हाथियोंका काम नहीं पड़ता है किन्तु राजाओंको हाथियोंका काम पड़ता है, आपने वाहनरूप उत्तम हाथीका लेजाने वालेको अधर्म नहीं लगसकता हे गौतम! तू इस हाथीकी ममताको अब छोड़ दे १३ गौतमने कहा, कि–हे महात्मन्! जिस लोकमें पुण्य कर्म करनेवाले प्रेत आनन्द करते हैं और जहाँ पाप कर्म करनेवाले प्रेत शोक करते हैं उस वैवस्वत यमराजके लोकमेंसे भी मैं तुझसे हाथीको लौटा लाऊँगा ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–जो पुरुष धर्म कर्म नहीं करते हैं, नास्तिक होते हैं, श्रद्धारहित होते हैं, पापात्मा होते हैं, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त रहते हैं वे पुरुष यमलोककी यातना भोगते हैं, परन्तु धृतराष्ट्र तहाँ नहीं जायगा (क्योंकि–उसके कर्म उससे श्रेष्ठ हैं) ॥ १५ ॥ गौतमने कहा, कि–विवस्वान्की नगरी मनुष्योंको नियममें रखने वाली है, तहाँ असत्यभाषण नहीं किया जाता है, तहाँ सब सत्य ही बोलते हैं और बलवान् मनुष्य (यमकिंकर) निर्बल मनुष्यों (पापियों) को दुःखी करते

उवाच। ज्येष्ठां स्वसारं पितरं मातरं च यथा शत्रुं मदमत्ताश्चरंति। तथा विधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥१७॥ गौतम उवाच। मन्दाकिनी वैश्रवणस्य राज्ञो महाभागा भोगिजनप्रवेश्या। गन्धर्वयक्षैरप्सरोभिश्च जुष्टा तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच। अतिथिव्रताः सुव्रता ये जना वै प्रतिश्रयं ददति ब्राह्मणेभ्यः। शिष्टाशिनः संविभज्याश्रितांश्च मन्दाकिनीं तेपि विभूषयन्ति ॥ १९ ॥ गौतम उवाच। मेरोरग्रे यद्वनं भाति रम्यं सुपुष्पितं किन्नरीगीतजुष्टम्। सुदर्शना यत्र जंबूर्विशाला तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥२०॥ धृतराष्ट्र उवाच। ये ब्राह्मणा मृदवः सत्यशीला बहुश्रुताः सर्वभूताभिरामाः। येधी-

हैं, तहाँसे मैं तुझसे हाथीको लौटा लाऊँगा ॥१६॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो मदमत्त पुरुष बड़ी बहिन, पिता तथा माताके साथ शत्रुकी समान वर्ताव करते हैं हे महर्षे! यह लोक ऐसे पुरुषोंके लिये है, परन्तु धृतराष्ट्र उस लोकमें नहीं जायगा ॥१७॥ गौतमने कहा; कि-राजा कुबेरके नगरके पास बहने वाली, भोगी मनुष्य जिसमें स्नान करते हैं और गन्धर्व, यक्ष और अप्सरा जिसका सेवन करते हैं ऐसी गङ्गा नदीके तट परसे भी मैं तेरे पाससे हाथीको लौटा लाऊँगा ॥ १८ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-अतिथिको आश्रय देने वाले, सदाचारसम्पन्न, ब्राह्मणोंको आश्रय देने वाले, प्रथम आश्रितोंको जिमा कर शेष अन्नका अपने आप भोजन करने वाले पुरुष ही गङ्गाजीको सुशोभित करते हैं (परन्तु धृतराष्ट्रके कर्म इनसे श्रेष्ठ हैं, अतः, वह उससे भी उच्चस्थानमें जायगा) ॥ १९ ॥ गौतमने कहा, कि-मेरुपर्वत पर एक रमणीय वन शोभा पारहा है, वह वन पुष्पोंसे लदा रहता है, किन्नरियोंके गीतोंसे गुञ्जारता रहता है; तहाँ मनोहर दृश्य वाले जम्बूवृक्ष हैं, तहाँसे मैं तुझसे हाथीको छीन लाऊँगा ॥ २० ॥

यते सेतिहासं पुराणं मध्वाहुत्या जुह्वति वै द्विजेभ्यः ॥ २१ ॥
तथा विधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र । यद्वि-
श्रुते विदितं स्थानमस्ति तद्ब्रूहि त्वं त्वरितो ह्येष यामि ॥ २२ ॥
गौतम उवाच। सुपुष्पितं किन्नरराजजुष्टं प्रियं वनं नन्दनं नारदस्य।
गन्धर्वाणामप्सरसां च शश्वत्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये २३
धृतराष्ट्र उवाच । ये नृत्यगीते कुशला जनाः सदा ह्ययाचमानाः
सहिताश्चरन्ति । तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गंता धृतराष्ट्रो न
तत्र ॥ २४ ॥ गौतम उवाच । यत्रोत्तराः कुरवो भांति रम्या
देवैः सार्धं मोदमाना नरेंद्र । यत्राग्नियौनाश्च वसन्ति लोका
अब्योनयः पर्वतयोनयश्च ॥२५॥ यत्र शक्रो वर्षति सर्वकामान्

धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो ब्राह्मण मृदु, सत्यवादी और बहुश्रुत होते हैं, सब प्राणियों पर प्रसन्न होते हैं, इतिहास और पुराणों का अध्ययन करते हैं और मधुमय आहुति देते हैं ॥ २१ ॥ हे महर्षे ! ऐसे मनुष्योंके लिये यह लोक है, परन्तु धृतराष्ट्र तहाँ नहीं जायगा, इससे भी अधिक कोई मख्यात स्थान हो तो मुझसे कहिये तो मैं शीघ्रतासे तहाँ चला जाऊँ ॥ २२ ॥ गौतमने कहा, कि-नन्दन वन पुष्पोंसे छा रहा है, उसमें किन्नरराज रहते हैं, वह वन नारद, गन्धर्व और अप्सराओंको प्रिय है, तहाँसे मैं अपने हाथीको तुझसे लौटा लाऊँगा ॥ २३ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे महर्षे ! जो मनुष्य नृत्य और गीतमें कुशल हैं, सदा किसीसे याचना नहीं करते हैं, जो एक साथ घूमते हैं, वे पुरुष इस लोकमें जाते हैं, परन्तु तहाँ धृतराष्ट्र नहीं जायगा २४ गौतमने कहा, कि-हे नरेन्द्र ! जहाँ उत्तर कुरुदेश शोभा पारहा है और जिस देशमें अग्निमेंसे उत्पन्न हुए, जलमेंसे उत्पन्न हुए तथा पर्वतमेंसे उत्पन्न हुए मनुष्य देवताओंके साथ आनन्द करते रहते हैं ॥ २५ ॥ और जहाँ इन्द्र सब कामनाओंका पूर्ण करता

यत्र स्त्रियः कामचारा भवन्ति । यत्र चेर्ष्या नास्ति नारीनराणां तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । ये सर्वभूतेषु निवृत्तकामा अमांसादा न्यस्तदण्डाश्चरन्ति । न हिंसंति स्थावरं जङ्गमं च भूतानां ये सर्वभूतात्मभूताः २७निराशिषो निर्ममा बीतरागा लाभालाभे तुल्यनिंदाप्रशंसाः । तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गंता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २८ ॥ गौतम उवाच । ततो परे भांति लोकाः सनातनाः सुपुण्यगन्धा विरजा वीतशोकाः । सोमस्य राज्ञः सदने महात्मनस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये २६ धृतराष्ट्र उवाच । ये दानशीलान् प्रतिगृह्णते सदा न चाप्यर्थाश्चाददते परेभ्यः । येषामदेयमर्हते नास्ति किंचित् सर्वातिथ्याः

रहता है, जहाँ पर स्त्रियें अपनी इच्छानुसार बर्ताव करती हैं, जहाँ स्त्री और पुरुषोंमें ईर्षा नहीं रहती है उस देशमेंसे मैं तुझसे हाथीको छीन लाऊँगा ॥ २६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-सब प्राणियोंमें जो कामनारहित हैं, जो मांसाहारी नहीं हैं और जो दण्डको त्याग सबको अभय देते हुए पृथ्वी पर विचरते हैं तथा जो किसी स्थावर जङ्गमकी हिंसा नहीं करते हैं तथा जो सब प्राणियोंकी आत्मारूप हैं २७ तथा जो आशारहित और ममतारहित हैं लाभ और अलाभको समान मानने वाले हैं, निन्दा और प्रशंसाको समान मानते हैं, ऐसे पुरुषोंको यह लोक मिलता है, परन्तु धृतराष्ट्र तहाँ नहीं जायगा ॥ २८ ॥ गौतमने कहा कि-इसके अतिरिक्त और भी दूसरे सनातन लोक हैं, वे पुण्यरूप सुगन्धसे भरपूर हैं, रजोगुणसे रहित हैं, उनमें शोक नहीं करना पड़ता है, उन महात्मा सोमराजके मन्दिरमें से तुझसे हाथीको लौटा लाऊँगा ॥ २६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो दातासे प्रतिग्रह नहीं लेते हैं, जो किसीसे सेवा कराना नहीं चाहते हैं, जिनका मन याग्य पुरुषोंको कोई भी वस्तु अदेय नहीं समझता है, जो

सुप्रसादा जनाश्च ॥ ३० ॥ ये क्षन्तारो नाभिजल्पन्ति चान्यान् सत्रीभूताः सततं पुण्यशीलाः । तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गंता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३१ ॥ गौतम उवाच । ततो परे भांति लोकाः सनातना विरजसो वितमस्का विशोकाः । आदित्यदेवस्य पदं महात्मनस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३२ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । स्वाध्यायशीला गुरुशुश्रूषणे रतास्तपस्विनः सुव्रताः सत्यसन्धाः । आचार्याणामप्रतिकूलभाषिणो नित्योत्थिता गुरुकर्मस्वचोद्याः ॥ ३३ ॥ तथाविधानामेष लोको महर्षे विशुद्धानां भावितो वाग्यतानाम् । सत्ये स्थितानां वेदविदां महात्मनां परं गंता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३४ ॥ गौतम उवाच ।

सबका अतिथिसत्कार करते हैं,तथा जो दूसरों पर अच्छी प्रकार दया करते हैं ॥ ३० ॥ जो क्षमाशील हैं, जो दूसरोंसे कभी कुछ नहीं कहते हैं, जो प्राणियोंकी वस्त्रकी समान रक्षा करते हैं और जो सदा पुण्यशील रहते हैं,हे महर्षे! ऐसे पुरुष ही इन लोकोंमें जाते हैं, परन्तु धृतराष्ट्र ऐसे लोकोंमें नहीं जायगा ॥ ३१ ॥ गौतमने कहा, कि-इससे भी अधिक दूसरे सनातन लोक दीप रहे हैं,वे रजोगुणरहित हैं, तमोगुणरहित हैं और शोकरहित हैं, इन लोकोंमें महात्मा आदित्यदेवका एक लोक है, इस लोकमेंसे मैं हाथीको तुमसे लौटा लाऊँगा ॥ ३२ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो स्वाध्यायशील हैं, जो गुरुसेवामें परायण रहते हैं, तपस्वी हैं, उत्तम व्रतधारी हैं, सत्यप्रतिज्ञा वाले हैं, आचार्योंके अनुकूल भाषण करते रहते हैं, नित्य जागृत रहते हैं, गुरुके कर्मको विना प्रेरणाके करते हैं ॥ ३३ ॥ हे महर्षे ! ऐसे पुरुषोंको वह लोक मिलता है तथा सम्पूर्णरीतिसे भीतरी बाहरी शौच रखने वाले, भक्तिमान्, वाणीको नियममें रखने वाले, सत्यवादी, महात्मा वेदवेत्ता पुरुषोंको ये लोक मिलते हैं,परन्तु धृतराष्ट्र तहाँ

ततो परे भांति लोकाः सनातनाः सुपुण्यगन्धा विरजा विशोकाः।
वरुणस्य राज्ञः सदने महात्मनस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ३५
धृतराष्ट्र उवाच । चातुर्मास्यैर्ये यजन्ते जनाः सदा तथेष्टीनां दश-
शतं प्राप्नुवन्ति । ये चाग्निहोत्रं जुह्वति श्रद्दधाना यथाम्नायं त्रीणि
वर्षाणि विप्राः ॥ ३६ ॥ क्षुधारिणां धर्मक्षुरे महात्मनां यथोदिते
वर्त्मनि सुस्थितानाम् । धर्मात्मनामुद्गहतां गतिं तां परं गंता धृत-
राष्ट्रो न तत्र ॥ ३७ ॥ गौतम उवाच । इन्द्रस्य लोका विरजा
विशोका दुरन्वयाः कांक्षिता मानवानाम् । तस्याहं ते भवने भूरि-
तेजसो राजन्निमं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच।
शतवर्षजीवी यश्च शूरो मनुष्यो वेदाध्यायी यश्च यज्वाऽप्रमत्तः ।

नहीं जावेगा ३४ गौतमने कहा, कि-दूसरे लोक इससे भी अधिक प्रकाशित रहते हैं, वे लोक सनातन, अतिपुण्यरूपी गन्धसे सुवासित रजोगुणरहित और शोकरहित हैं, ऐसे महात्मा वरुणके लोकमेंसे भी मैं तुझसे हाथीको लौटा लाऊँगा॥३५॥धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो मनुष्य सदा चातुर्मास्य यज्ञ करतेहैं, जो एक सहस्र इष्टियें करते हैं तथा जो ब्राह्मण तीन वर्ष तक विधिपूर्वक श्रद्धावान् होकर अग्निहोत्र करते हैं ३६ जो धर्मरूपी तलवारकी धार पर अपनी आत्माको भली प्रकार धारण करते हैं, जो महात्मा हैं, जो शास्त्रोक्त मार्ग पर भली प्रकार स्थिर रहते हैं, तथा जो धर्मात्मा हैं और जो धर्माचरण करते हैं, वे उन लोकोंमें जाते हैं; परन्तु धृतराष्ट्र उन लोकोंमें नहीं जावेगा ॥ ३७ ॥ गौतमने कहा, कि-इन्द्रके लोक रजोगुणरहित हैं, उनमें बड़ी कठिनतासे पहुँचा जा-सकता है, मनुष्य इन लोकोंमें जाना चाहते हैं महातेजस्वी इन्द्रके इन लोकोंमेंसे भी मैं तुझसे इस हाथीको लौटा लाऊँगा ।३८। धृतराष्ट्रने कहा कि जो सौ वर्षकी आयु वाला; शूरवीर, वेदाध्यायी यज्वा, सावधान रहने वाला होता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है,

एते सर्वे शक्रलोकं व्रजन्ति परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३९ ॥ गौतम उवाच । प्राजापत्याः सन्ति लोका महान्तो नाकस्य पृष्ठे पुष्कला वीतशोकाः । मनीषिताः सर्वलोकोद्भवानां तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४० ॥ धृतराष्ट्र उवाच । ये राजानो राजसूयाभिषिक्ता धर्मात्मानो रक्षितारः प्रजानाम् । ये चाश्वमेधावभृथे प्लुतांगास्तेषां लोका धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ४१ ॥ गौतम उवाच । ततः परं भांति लोकाः सनातनाः सुपुण्यगन्धा विरजा वीतशोकाः । तस्मिन्नहं दुर्लभे चाप्यधृष्ये गवां लोके हस्तिनं यातयिष्ये ॥४२॥ धृतराष्ट्र उवाच । यो गौ सहस्री शतदः समां समां गवां शती दश दद्याच्च शक्त्या । तथा दशभ्यो यश्च दद्यादिहैका पञ्चभ्यो वा दानशीलस्तथैकाम् ॥४३॥ ये जीर्यंते ब्रह्म-

---

परन्तु धृतराष्ट्र तहाँ नहीं जायगा ॥ ३९ ॥ गौतमने कहा, कि-स्वर्गलोकके ऊपर प्रजापतिके बहुतसे लोक हैं, वे विशाल हैं, और सब मनुष्य उन लोकोंकी इच्छा करते हैं, तहाँसे भी मैं तुझसे हाथीको लौटा लाऊँगा ॥ ४० ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-जिन राजाओंका राजसूय यज्ञमें अभिषेक होजाता है, जो धर्मात्मा होते हैं, जो प्रजाकी रक्षा करते रहते हैं, जो अश्वमेध यज्ञके अवभृथ स्नानसे अपने शरीरको सिक्त करते हैं, उनको प्रजापतिके लोक मिलते हैं, परन्तु धृतराष्ट्र तहाँ नहीं जायगा ॥४१॥ गौतमने कहा, कि-इनसे भी अधिक दूसरे लोक प्रकाशित हो रहे हैं वे पुण्यरूपी गंधसे सुवासित, रजोगुणरहित तथा शोकरहित हैं, इनमें भी दुर्लभ तथा किसीसे भी तिरस्कृत न होने वाले गोलोकमेंसे भी मैं तुझसे हाथीका छीन लाऊँगा ॥४२॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो सहस्र गौओं वाला प्रतिवर्ष सौ २ गौओं का दान देता है, सौ गौओंका धनी शक्तिके अनुसार दश गौओं का दान देता है तथा जो दश गौओंका दानशील स्वामी प्रति

चर्येण विप्रा ब्राह्मीं वाचं परिरक्षति चैव । मनस्विनस्तीर्थयात्रा-
परायणास्ते तत्र मोदन्ति गवां निवासे ॥ ४४ ॥ प्रभासं मानसं
तीर्थं पुष्कराणि महत्सरः । पुण्यं च नैमिषं तीर्थं बाहुदां कर-
तोयिनीम् ॥४५॥ गयां गयशिरश्चैव विपाशां स्थूलवालुकाम् ।
कृष्णां गङ्गां पञ्चनन्दं महाह्रदमथापि च ॥४६॥ गोमतीं कौशिकीं
पम्पां महात्मानो धृतव्रताः । सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां ये तु यांति
च ॥ ४७ ॥ तत्र ते दिव्यसंस्थाना दिव्यमाल्यधराः शिवाः ।
प्रयांति पुण्यगन्धाढ्या धृतराष्ट्रो न तत्र वै ॥४८॥ गौतम उवाच ।
यत्र शीतभयं नास्ति न चोष्णभयमण्वपि । न क्षुत्पिपासे न ग्ला-
निर्न दुःखं न सुखं तथा॥४९॥न द्वेष्यो न प्रियः कश्चिन्न बन्धुर्न

वर्ष एक २ गौका दान देता है ॥ ४३ ॥ तथा जो ब्राह्मण ब्रह्म-
चर्य व्रत पालन कर वृद्ध होजाते हैं, जो ब्राह्मी वाणीकी रक्षा
करते हैं, मनको वशमें रखते हैं तथा जो तीर्थयात्रा किया करते
हैं, वे गोलोकमें जाकर आनन्द करते हैं ॥ ४४ ॥ जो महात्मा
व्रतधारी तीर्थयात्रा करनेके लिये प्रभास नामक तीर्थमें मानस-
तीर्थमें पुष्करतीर्थमें महासरोवरमें पवित्र नैमिषारण्यमें हाथ भर
जलसे भरी हुई बाहुदा नदीमें गयामें गयशीर्षमें विपाशामें स्थूल-
वालुकामें कृष्णामें गङ्गामें पञ्चनदमें महानदमें गोमतीमें कौशिकी
नदी पर पम्पासरोवरमें सरस्वती पर दृषद्वतीमें और यमुनाजीको
जाते हैं॥४५-४७॥वे पुरुष दिव्य शरीर धारण करके और दिव्य
पुष्पोंकी मालाको धारण करके पुण्यरूप सुगन्धसे महकते हुए
गोलोकमें जाते हैं, परन्तु धृतराष्ट्र वहाँ (तक ही) नहीं जायगा॥४८
गौतमने कहा, कि-जिस लोकमें गरमी और सरदीका कुछ भी
भय नहीं है, क्षुधा और तृषाका भय नहीं है, ग्लानि नहीं है,
जहाँ दुःख और सुख नहीं भोगना पड़ता ॥ ४९ ॥ जहाँ कोई
द्वेषपात्र अथवा प्रेमपात्र नहीं होता है, कोई प्रिय नहीं होता है,

रिपुस्तथा । न जरामरणे तत्र न पुण्यं न च पातकम् ॥ ५० ॥
तस्मिन्विरजसि स्फीते प्रज्ञासत्त्वव्यवस्थिते । स्वयंभुभवने पुण्ये
हस्तिनं मे प्रदास्यसि ॥५१॥ धृतराष्ट्र उवाच । निर्मुक्ताः सर्व-
संगैर्ये कृतात्मानो यतव्रताः । अध्यात्मयोगसंस्थानैर्युक्ताः स्वर्ग-
गतिं गताः ॥५२॥ ते ब्रह्मभवनं पुण्यं प्राप्नुवन्तीह सात्विकाः ।
न तत्र धृतराष्ट्रस्ते शक्यो द्रष्टुं महामुने ॥५३॥ गौतम उवाच ।
रथंतरं यत्र बृहच्च गीयते यत्र वेदी पुण्डरीकैस्तृणोति । यत्रोप-
याति हरिभिः सोमपीथी तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ५४ ॥
बुध्यामि त्वां वृत्रहणं शतक्रतुं व्यतिक्रमं तं भुवनानि विश्वा ।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं कदाचिदकार्षं ते मनसोऽभिषंगात् ५५

कोई बन्धु नहीं होता है, कोई शत्रु नहीं होता है जहाँ जरा और मरण नहीं है, पुण्य और पाप नहीं है ॥५०॥ ऐसे रजोगुणरहित उज्ज्वल प्रज्ञा और सत्त्वगुणका जहाँ निवास है ऐसे पुण्यमय स्वयम्भू ब्रह्माजीके लोकमें तू मुझको हाथी देगा ॥ ५१ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—जो सब प्रकारके संगोंसे मुक्त रहते हैं, जो कृतात्मा होते हैं, जो नियमानुसार व्रतका पालन करते हैं, आत्मज्ञान और योगशास्त्रसे तृप्त रहते हैं तथा जिन्होंने स्वर्गकी गति पाली है ५२ वे सत्त्वगुणी पुरुष ब्रह्माजीके लोकमें जाते हैं, हे महामुने ! तहाँ तुम धृतराष्ट्रको न देख सकोगे ५३ गौतमने कहा, कि—जहाँ पर रथन्तर साम तथा बृहत् सामका गान होत है, पुण्डरीक नामक यज्ञ यज्ञकी वेदीको पुण्डरीकों (कमलों) से ढक दिया जाता है, तथा जहाँ पर सोमपान करने वाला हरिणीके साथ जाता है, तहाँसे मैं तुझसे हाथीको लौटा लाऊँगा ५४ मैं तुझको पहिचानता हूँ, कि तू वृत्रको मारने वाला, सौ यज्ञ करने वाला और सम्पूर्ण जगत्में विचरण करने वाला इन्द्र है, मैंने किसी दिन भी मनःक्षोभसे वाणीसे तेरा पराभव नहीं

शतक्रतुरुवाच । मघवाहं लोकपथं प्रजानामन्वागमं परिवादे गजस्य । तस्माद्भवान् प्रणतं मानुशास्तु ब्रवीषि यत्तत् करवाणि सर्वम् ॥ ५६ ॥ गौतम उवाच । श्वेतं करेणुं मम पुत्रं हि नागं यं हि मे हार्षीर्दशवर्षाणि बालम् । यो मे वने वसतोऽभूद् द्वितीयस्तमेव मे देहि सुरेन्द्र नागम् ॥ ५७ ॥ शतक्रतुरुवाच । अयं सुतस्ते द्विजमुख्य नाग आगच्छति त्वामभिवीक्षमाणः । पादौ च ते नासिकयापजिघ्रते श्रेयो ममाध्याहि नमश्च तेऽस्तु ॥ ५८ ॥ गौतम उवाच । शिवं सदैवेह सुरेन्द्र तुभ्यं ध्यायामि पूजां च सदा प्रयुंजे । ममापि त्वं शक्र शिवं ददस्व त्वया दत्तं प्रतिगृह्णामि नागम् ॥ ५९ ॥ शतक्रतुरुवाच । येषां वेदा निहिता वै गुहायां

किया है (इस प्रकारके संवादसे कैसे कर्म करने वाले उत्तरोत्तर उच्चतर लोकोंमें जाते हैं, यह सूचित किया है) ५५ शतक्रतुने कहा, कि-मैं इन्द्र हूँ और इस हाथीको चुरानेके लिये इस मृत्युलोकमें आया था, अब आपको प्रणाम करता हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिये, आप मुझसे जो कुछ कहेंगे वह सब मैं करूँगा ५६ गौतमने कहा, कि-हे सुरेन्द्र ! तुम मेरे श्वेतवर्णके, दश वर्षके बालक पुत्रकी समान हस्तीको लेगए हो, वह मुझ वनवासीकी सहायता करता रहता है, अतः वह हाथी मुझको दीजिये ५७ शतक्रतुने कहा, कि-हे उत्तम ब्राह्मण ! यह तेरा पुत्रकी समान हाथी तेरी ओर देखता २ आरहा है और अपनी नासिकासे आपके दोनों चरणोंका छूरहा है, अब आप जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, इसका विचार करिये ! आपको नमस्कार हो ! ५८ गौतमने कहा, कि-हे सुरेन्द्र ! मैं सदा इस लोकमें आपका कल्याण चाहता हूँ तथा सदा आपकी पूजा करता हूँ, हे शक्र ! आप मेरा कल्याण करिये और मेरे हाथीको मुझे लौटा दीजिये मैं उसको ग्रहण करना चाहता हूँ ५९ शतक्रतुने कहा, कि-मन

मनीषिणां सत्यवतां महात्मनाम् । तेषां त्वयैकेन महात्मनास्मि वृद्धस्तस्मात् प्रीतिमांस्तेऽहमद्य ॥ ६० ॥ हंतेहि ब्राह्मण क्षिप्रं सह पुत्रेण हस्तिना । त्वं हि प्राप्नु शुभाँल्लोकानह्नाय च चिराय च ॥ ६१ ॥ स गौतमं पुरस्कृत्य सह पुत्रेण हस्तिना । दिवमाचक्रमे वज्री सद्भिः सह दुरासदम् ॥ ६२ ॥ इदं यः शृणुयान्नित्यं यः पठेद्वा जितेन्द्रियः । स याति ब्रह्मणो लोकं ब्राह्मणो गौतमो यथा ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे हस्तिकूटो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥

युधिष्ठिर उवाच । दानं बहुविधाकारं शान्तिः सत्यमहिंसितम् । स्वदारतुष्टिश्चोक्ता ते फलं दानस्य चैव यत् ॥१॥ पितामहस्य विदितं किमन्यत्तपसो बलात् । तपसो यत्परं तेऽद्य तन्नो

को नियममें रखने वाले सत्यवादी महात्माओंकी बुद्धिमें वेद रहते हैं, उन महात्माओंमेंसे ही एक आप हैं और इससे मैं वृद्ध होगया हूँ अर्थात् मेरा बल बढ़ा है, इसलिये ही मैं आप पर प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ६० ॥ अतः हे ब्राह्मण ! अपने पुत्र (की समान) हाथीसहित रात दिन शुभ लोकोंमें बसनेके लिये तुरत चलिये ६१ इस प्रकार कह कर पुत्रकी समान हाथीको आगे करके इन्द्र सत्पुरुषोंके साथ दुर्लभ स्वर्गमें गया ६२ जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर इस आख्यानको सदा सुनता है अथवा पाठ करता है, वह गौतमकी समान स्वर्गमें जाता है ६३ एकसौ दोवाँ अध्याय समाप्त १०२ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा कि-हे भीष्मपितामह दान अनेक प्रकारका है आपने मुझसे शान्ति, सत्य, अहिंसा तथा अपनी स्त्रीमें सन्तोष रखनेके लिये कहा तथा दानका फल भी कहा १ अब हे पितामह ! चान्द्रायण आदि तपोबलसे अधिक बलवाला और क्या

व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । तपः प्रचक्षते यावत्ता-
वल्लोको युधिष्ठिर । मतं ममात्र कौंतेय तपो नानशनात् परम् ३
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । भगीरथस्य सम्वादं ब्रह्म-
णश्च महात्मनः ॥ ४ ॥ अतीत्य सुरलोकं च नरलोकं च भारत ।
ऋषिलोकं च सोऽगच्छत् भागीरथ इति श्रुतम् ॥५॥ तं तु दृष्ट्वा वचः
प्राह ब्रह्मा राजन् भगीरथम् । कथं भगीरथागास्त्वमिमं लोकं
दुरासदम् ॥ ६ ॥ न हि देवा न गन्धर्वा न मनुष्या भगीरथ ।
आयांत्यतप्ततपसः कथं वै त्वमिहागतः ॥ ७ ॥ भगीरथ उवाच ।
निष्काणां वै ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः शतं सहस्राणि सदैव दानम् ।
ब्राह्मं व्रतं नित्यमास्थाय विद्वन्न त्वेवाहं तस्य फलादिहागाम् ८
दशैकरात्रान् दशपञ्चरात्रानेकादशैकादशकान् क्रतूंश्च । ज्योतिष्टो-

---

है ? यह आपको ज्ञात होगा, अतः जो तपसे भी श्रेष्ठ हो उसका
अब आप व्याख्यान दीजिये२ भीष्मजीने कहा, कि हे युधिष्ठिर !
लोकोंको जो रुचता है, उसको ही तप कहने लगते हैं, परन्तु
हे कुन्तीपुत्र ! तपके सम्बन्धमें मेरा मत यह है कि—अनशन (नि-
राहार व्रत) की समान और कोई तप नहीं है ३ इस विषयमें
महात्मा ब्रह्माजी और भगीरथका सम्वादरूप एक प्राचीन इति-
हास इस प्रकार है ४ कि—हे भरतवंशी राजन् ! राजा भगीरथ
देवलोक और गोलोकको लाँघ कर ब्रह्माजीके ऋषिलोकमें गया
था ऐसा हमने सुना है ५ हे राजन् ! ब्रह्माजीने भगीरथको देख
कर कहा, कि—हे भगीरथ ! तू इस दुरासद लोकमें किस प्रकार
आपहुँचा? ६ हे भगीरथ ! देवता, मनुष्य और गन्धर्व तप किये
बिना इस लोकमें नहीं आसकते फिर तू यहाँ किस प्रकार आगया ७
भगीरथने कहा, कि—हे विद्वान् ! मैं सदा ब्राह्मव्रतको धारण करके
ब्राह्मणोंको एक लाख सुवर्णके सिक्के दानमें देता था, परन्तु मैं
उसके फलसे इस लोकमें नहीं आया हूँ ८ मैंने ग्यारह रात्रिके, पन्द्रह

मानां च शतं यदिष्टं फलेन तेनापि च नागतोऽहम् ॥९॥ यच्चावसं जान्हवीतीरनित्यः शतं समास्तप्यमानस्तपोऽहम् । अदां च तत्राश्वतरीसहस्रं नारीपुरं न च तेनाहमागाम् ॥ १० ॥ दशायुतानि चाश्वानां गोयुतानि च विंशतिम् । पुष्करेषु द्विजातिभ्यः प्रादां शतसहस्रशः ॥ ११ ॥ सुवर्णचन्द्रोत्तमधारिणीनां कन्योत्तमानामददं सहस्रम् । षष्टिं सहस्राणि विभूषितानां जाम्बूनदैराभरणैर्न तेन ॥ १२ ॥ दशार्बुदान्यददं गोसवेज्यास्वेकैकशो दश गा लोकनाथ । समानवत्साः पयसा समन्विताः सुवर्णकांस्योपदुहा न तेन ॥ १३ ॥ आप्तोर्यामेषु नियतमेकैकस्मिन् दशाददम् । गृष्टीनां क्षीरदात्रीणां रोहिणीनां शतानि च ॥१४॥ दोग्ध्रीणां वै गवां चापि प्रयुतानि दशैव ह । प्रादां दशगुणं

रात्रिके और चौबीस रात्रिके यज्ञ किये हैं,एकसौ ज्योतिष्टोम याग किये हैं परन्तु उनके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ९और मैंने सदा गंगाजीके तट पर रह कर सौ वर्ष तक तप किया था और तहाँ एक सहस्र खच्चारियोंका दान दिया है तथा कन्याओंके टोलोंका दान दिया है, परन्तु उनके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ १० और मैंने पुष्कर तीर्थमें एक लाख घोड़ोंका दान दिया है तथा बीस सहस्र बैल और गौओंका दान दिया है ११ मैंने सुवर्णके चन्द्र नाम वाले आभूषणोंसे सजी हुई साठ सहस्र उत्तम कन्याओंका दान दिया है परन्तु उनके फलसे मैं इस लोकमे नहीं आया हूँ१२और हे लोकनाथ ! गोसव नामक यज्ञमें एक२ ब्राह्मणको दश दश गौ,इस प्रकार दश अब्ज दुधेर और समानवत्सा गौओंका मैंने दान दिया है,परन्तु उस दानके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ १३ आप्तोर्याम नामक याग करते समय मैंने प्रत्येक आप्तोर्याममें नियमपूर्वक पहलोन रोहिणी जातिकी दूध देती हुई दश २ गौओंका एक २ ब्राह्मणको दान दिया है १४

ब्रह्मन्न तेनाहमिहागतः ॥ १५ ॥ वाजिनां बाल्हिजातानामयुता-न्यददं दश । कर्कानां हेममालानां न च तेनाहमागतः ॥ १६ ॥ कोटीश्च कांचनस्याष्टौ प्रादां ब्रह्मन् दशान्वहम् । एकैकस्मिन् क्रतौ तेन फलेनाहं न चागतः ॥ १७ ॥ वाजिनां श्यामकर्णानां हरितानां पितामह । प्रादां हेमस्रजां ब्रह्मन् कोटीर्दश च सप्त च १८ ईषादन्तान् महाकायान् काञ्चनस्रग्विभूषितान् । पद्मिनो वै सहस्राणि प्रादां दश च सप्त च ॥ १९ ॥ अलंकृतानां देवेश दिव्यैः कनकभूषणैः । रथानां काञ्चनाङ्गानां सहस्राण्यददं दश ॥ २० ॥ सप्त चान्यानि युक्तानि वाजिभिः समलंकृतैः । दक्षिणावयवाः केचिद्वेदैर्ये संप्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥ वाजपेयेषु

इसके अतिरिक्त हे ब्रह्मन् ! मैंने और भी लाखों दुधेर गौओंका दान दिया है, परन्तु उनके दानके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ १५ मैंने बाल्हीक देशमें उत्पन्न हुए एक लाख घोड़ों का दान किया है, वे घोड़े श्वेत वर्णके और सुवर्णकी मालाओं से सजे हुए थे, परन्तु उनके दानके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ १६ हे ब्रह्मन् ! मैं प्रत्येक यज्ञमें सदा अठारह करोड़ सुवर्ण का दान करता था, परन्तु उस दानके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ १७ हे पितामह ! काले कान वाले और नीलवर्णके शरीर वाले और सुवर्णकी हमेलें पहिरने वाले सत्तर करोड़ घोड़ोंका मैंने दान दिया है १८ और मैंने ईर्षाकी समान दाँत वाले, महाशरीर, सुवर्णकी मालाओंसे सजे हुए पद्मके आभूषणों वाले सत्तर सहस्र हाथियोंका दान दिया है १९ हे देवेश ! सुवर्णके दिव्य आभूषणोंसे सजे हुए और जिनके अङ्ग भी सुवर्ण के बनाये गए थे ऐसे दश सहस्र रथ मैंने दानमें दिये थे २० तथा वेदोक्त दक्षिणाके अङ्गभूत सजे हुए घोड़ोंसे जुते हुए सात सहस्र सुवर्णके रथोंका मैंने दान किया था २१ और मैंने दश

दशसु प्रादान्तेष्वपि चाप्यहम् । शक्रतुल्यप्रभावाणामिज्यया विक्र-
मेण ह ॥ २२ ॥ सहस्रं निष्ककंठानामददं दक्षिणामहम् ।
विजित्य भूपतीन् सर्वानर्थैरिष्ट्वा पितामह ॥ २३ ॥ अष्टभ्यो
राजसूयेभ्यो न च तेनाहमागतः । स्रोतश्च यावद् गङ्गायाश्छन्न-
मासीज्जगत्पते ॥ २४ ॥ दक्षिणाभिः प्रवृत्ताभिर्मम नागाञ्च
तत्कृते । वाजिनाञ्च सहस्रे द्वे सुवर्णशतभूषिते ॥ २५ ॥ वरं
ग्रामशतं चाहमेकैकस्य त्रिधाऽददम् । तपस्वी नियताहारः शम-
मास्थाय वाग्यतः ॥ २६ ॥ दीर्घकालं हिमवति गङ्गायाश्च दुरुत्-
सहाम् । मूर्ध्ना धारां महादेवः शिरसा यामधारयत् । न तेना-

वाजपेय नामक यज्ञ किये थे उन यज्ञोंमें हे पितामह ! इन्द्रकी समान पराक्रम वाले और जिनके पराक्रमकी तुलना उनके यज्ञ से ही होसकती थी ऐसे वीरोंका दान किया था २२ तथा मैंने कण्ठमें सुवर्णकी माला पहिरने वाले सब राजाओंको पराक्रमसे जीत कर उन राजाओंका ब्राह्मणोंको दान देदिया था २३ तथा आठ राजसूय यज्ञ किये थे, परन्तु उनके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ, हे जगत्पते ! मेरे दक्षिणा देने पर गङ्गाजीका प्रवाह भी बन्द होगया था ॥ २४ ॥ परन्तु मैं उस दक्षिणाके फलसे इस लोकमें नहीं आया हूँ, सुवर्णके सैकड़ों आभूषणोंसे सजे हुए दो सहस्र घोड़ोंका मैंने दान दिया था २५ और मैंने एक २ ब्राह्मणको तीन तीन बार बढ़िया २ सौ २ ग्राम दक्षिणामें दिये हैं और मैंने नियम पूर्वक आहार करके, शान्ति रख कर वाणीको नियममें रख कर २६ बहुत समय तक (गंगाजीको मृत्युलोकमें लानेके लिये) हिमाचलमें बहुत समय तक तप किया था, उस समय (मौन व्रत धारण करनेके कारण) महादेवजीने दुःखसे सही जासकने वाली गंगाजीकी धाराको मस्तक पर धारण किया था (उनको लानेके कारण)

प्यहमागच्छं फलेनेह पितामह ॥ २७ ॥ शम्याक्षेपैरयजं यच्च देवान् साद्यस्कानामयुतैश्चापि यत्तत् । त्रयोदशद्वादशाहैश्च देव सपौंडरीकान्न च तेषां फलेन ॥ २८ ॥ अष्टौ सहस्राणि ककुद्मिनामहं शुक्लर्षभाणामददं द्विजेभ्यः । एकैकं वै काञ्चनं शृङ्गमेभ्यः पत्नीश्चैषामददं निष्ककण्ठीः ॥ २९ ॥ हिरण्यरत्ननिचयानददं रत्नपर्वतान् । धनधान्यैः समृद्धांश्च ग्रामांश्चान्ये-सहस्रशः ॥ ३० ॥ शतं शतानां गृष्टीनामददं चाप्यतन्द्रितः । इष्ट्वानेकैर्महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो न तेन च ॥३१॥ एकादशाहैरयजं सदक्षिणैर्द्विर्द्वादशाहैरश्वमेधैश्च देव । आर्कायणैः षोडशभिश्च ब्रह्मंस्तेषां फलेनेह न चागतोऽस्मि ॥ ३२ ॥ निष्ककैकण्ठमददं

भी हे पितामह ! मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ ॥ २७ ॥ शम्याक्षेपकी बराबर स्थानमें मैंने यज्ञ करके दश सहस्र साद्यस्क याग करके देवताओंका यजन किया था तथा तेरह और बारह दिनोंमें होने वाले यागोंसे तथा पौण्डरीक यागोंसे देवताओंका यजन किया है, परन्तु हे देव ! मैं उनके फलसे इस लोकमें नहीं आया हूँ ॥ २८ ॥ मैंने ब्राह्मणोंको ककुद वाले श्वेत वर्णके आठ सहस्र बैलोंका दान दिया था, इनमें प्रत्येक बैलके सींग सुवर्णसे मढ़े हुए थे तथा मैंने प्रत्येक ब्राह्मणको कण्ठमें सुवर्णकी माला पहिरने वाली स्त्रियोंका भी दान दिया था ॥ २९ ॥ और मैंने ब्राह्मणोंको सुवर्णके और रत्नोंके निचय और रत्नोंके पर्वत दिये थे, रत्नों, और धान्योंसे भरे हुए सहस्रों ग्रामोंका दान भी दिया था ॥ ३० ॥ और मैंने सावधान होकर अनेकों महायज्ञ किये थे और उनकी दक्षिणामें मैंने तुरतकी ब्याई हुई एक लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दानमें दी थीं, परन्तु इस दानके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ ॥३१॥ हे देव ! मैंने दोवार एकादशाह नामक यज्ञ किया है, दो बार द्वादशाह यज्ञ किया है

योजनायतं तद्विस्तीर्णं काञ्चनपादपानाम् । वनं कृतानां रत्न-
विभूषितानां न चैव तेषामागतोहं फलेन ॥ ३३ ॥ तुरायणं हि
व्रतमप्यधृष्यमक्रोधनोऽकरवं त्रिंशतोब्दान् । शतं गवामष्टशतानि
चैव दिने दिने ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः ॥ ३४ ॥ पयस्विनीनामथ
रोहिणीनां तथैवान्याननडुहो लोकनाथ। प्रादां नित्यं ब्राह्मणेभ्यः
सुरेश नेहागतस्तेन फलेन चाहम् ॥ ३५ ॥ त्रिंशदग्नीनहंब्रह्म-
न्नयजं यच्च नित्यदा । अष्टाभिः सर्वमेधैश्च नरमेधैश्च सप्तभिः ३६
दशभिर्विश्वजिद्भिश्च शतैरष्टादशोत्तरैः । न चैव तेषां देवेश
फलेनाहमिहागमम् ॥ ३७ ॥ सरय्वां बाहुदायाञ्च गङ्गायामथ
नैमिषे । गवां शतानामयुतमददं न च तेन वै ॥ ३८ ॥ इन्द्रेण

अश्वमेध नामक यज्ञ भी किया है, परन्तु हे ब्रह्मन् ! मैं उन
यज्ञोंके फलसे इस लोकमें नहीं आया हूँ ॥ ३२ ॥ और मैंने
रत्नोंसे शोभायमान सुवर्णके वृक्षोंवाली एक योजनवाली विशाल
भूमिका दान दिया है परन्तु उस दानके फलसे मैं इस लोकमें
नहीं आया हूँ ॥ ३३ ॥ और मैंने तीस वर्ष तक क्रोधको त्याग
कर किसीसे नष्ट न होने वाला तुरायण नामक यज्ञ किया है,
और मैंने प्रतिदिन ब्राह्मणोंको आठ २ सौ गौओंका दान दिया
है, परन्तु उस दानके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ ३४
और मैंने दुधेर रोहिणी जातिकी गौएँ तथा हे लोकनाथ ! और
भी बहुतसे बैल ब्राह्मणोंको दानमें दिये थे, परन्तु उनके फलसे
मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ ॥ ३५ ॥ और हे ब्रह्मन ! मैंने तीस
अग्निचयन किये हैं, अठारह सर्वमेध और सात नरमेध यज्ञ
किये हैं ॥३६॥ एकसौ अट्ठाईस विश्वजित् यज्ञ किये हैं, परन्तु
हे देवेश ! उन यज्ञोंके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ ३७
मैंने सरयू नदीमें, बाहुदा नदीमें, नैमिषारण्यमें लाखों गौओंका
दान दिया है, परन्तु उनके फलसे मैं इस लोकमें नहीं आया

गुह्यं निहितं वै गुहायां यद्भार्गवस्तपसेहाभ्यविंदत् । जाज्वल्यमानमुशनस्तेजसेह तत्साधयामासमहं वरेण्य ॥ ३९ ॥ ततो मे ब्राह्मणास्तुष्टास्तस्मिन्कर्मणि साधिते । सहस्रमृषयश्चासन् ये वै तत्र समागताः ॥४०॥ उक्तस्तैरस्मि गच्छ त्वं ब्रह्मलोकमिति प्रभो । प्रीतेनाक्तसहस्रेण ब्राह्मणानामहं प्रभो । इमं लोकमनुप्राप्तो मा भूत्तेऽत्र विचारणा॥ ॥ ४१ ॥ कामं यथावद्विहितं विधात्रा पृष्टेनं वाच्यं तु मया यथावत् । तपो नान्यच्चानशनान्मतं मे नमोस्तु ते देववर प्रसीद ॥४२॥ भीष्म उवाच । इत्युक्तवन्तं ब्रह्मा तु राजानं स भगीरथम् । पूजयामास पूजार्हं विधिदृष्टेन कर्मणा । ४३ ॥ तस्मादनशनैर्युक्तो विप्रान् पूजय नित्यदा ।

हूँ ॥ ३८ ॥ परन्तु हे वरेण्य ! जिस व्रतको इन्द्र अपने मनमें गुप्त रखता है और जिस व्रतको भार्गवने तपसे जाना था और जो व्रत शुक्रके तेजसे जाज्वल्यमान है, वह अनशन नामक व्रत मैंने किया था ॥ ३९ ॥ उस व्रतके करने पर ब्राह्मण मुझ पर प्रसन्न हुए और मेरे पास सहस्रों ऋषि एकत्रित होगए ॥४०॥ और हे प्रभो ! उन ऋषियोंने मुझसे कहा, कि—"तू ब्रह्मलोकमें जा" हे प्रभो ! इस प्रकार एक हजार ब्राह्मणोंके प्रसन्न होकर कहने पर मैं इस लोकमें आया हूँ; इसमें आप विचार न करें (मिथ्या न मानें) ॥ ४१ ॥ मैंने इस अनशन व्रतको इच्छानुसार यथार्थरीतिसे किया है और आप (ब्रह्माजी)के बूझने पर आपसे यथार्थरीतिसे कहा, मैं अनशन व्रतके अतिरिक्त और किसीको तप नहीं मानता, हे देव ! मैं आपको प्रसन्न करता हूँ आप मुझ पर प्रसन्न हूजिये ॥ ४२ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-इस प्रकार राजा भगीरथके अपनी कथा कह चुकने पर ब्रह्माजीने शास्त्रोक्त विधिसे पूजनीय राजा भगीरथकी पूजाकी ॥ ४३ ॥ इस लिये तू अनशन व्रतको धारण कर सदा ब्राह्मणोंकी पूजा

विप्राणां वचनात् सर्वं परत्रेह च सिध्यति ४४ वासोभिरन्नैर्गोभिश्च शुभैर्नैवेशिकैरपि । शुभैः सुरगणैश्चापि स्तोष्या एव द्विजास्तथा । एतदेव परं गुह्यमलोभेन समाचर ॥ ४५ ॥

इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्रह्मभगीरथसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

युधिष्ठिर उवाच । शतायुरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च जायते । कस्मान्म्रियन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह १ आयुष्मान् केन भवति अल्पायुर्वापि मानवः । केन वा लभते कीर्त्तिं केन वा लभते श्रियम् ॥ २ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण जपहोमैस्तथौषधैः । कर्मणा मनसा वाचा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । अत्र तेऽहं प्रवक्ष्यामि यन्मान्त्वमनुपृच्छसि । अल्पायुर्येन भवति

कर, ब्राह्मणोंके वचनसे इस लोकमें तथा परलोकमें सब कुछ सिद्ध होसकता है ॥ ४४ ॥ उत्तम प्रकारके वस्त्र अन्न गौ तथा बढ़िया घर देकर देवताओंको भी ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना उचित है, अतः लोभको त्याग कर इस उत्तम व्रतका पालन कर ॥ ४५ ॥ एकसौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे पितामह ! पुरुषकी आयु सौवर्षकी बतलाई है और पुरुषका सौ प्रकारका वीर्य कहा है,तो भी पुरुष बाल्यावस्थामें ही क्यों मर जाते हैं ॥ १ ॥ मनुष्य किस प्रकार दीर्घायु होता है और किस कारणसे मनुष्यकी आयु कम हो जाती है, मनुष्य क्या करनेसे कीर्ति पाता है और किस कर्मको करनेसे लक्ष्मीको पाता है ॥२॥ हे पितामह ! तप करनेसे,ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे तथा जप तप होम और औषधियोंका सेवन करनेसे अथवा मनसा वाचा कर्मणा कृत्य करनेसे उपरोक्त कार्य सिद्ध होते हैं?भीष्मजीने कहा,कि हे युधिष्ठिर!मनुष्यके अल्पायु और दीर्घायु होनेका तूने मुझसे जो प्रश्न किया,उसका

दीर्घायुर्वापि मानवः ॥ ४ ॥ येन वा लभते कीर्त्तिं येन वा लभते श्रियम् । यथा वर्तयन् पुरुषः श्रेयसा सम्प्रयुज्यते ॥ ५ ॥ आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् । आचारात् कीर्त्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥ ६ ॥ दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विंदते महत् । त्रसन्ति यस्माद्भूतानि तथा परिभवन्ति च ॥ ७ ॥ तस्मात् कुर्यादिहाचारं यदीच्छेद्भूतिमात्मनः । अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ८ ॥ आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः । साधूनाञ्च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ ९ ॥ अप्यदृष्टं श्रवादेव पुरुषं धर्मचारिणम् । भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम् ॥ १० ॥ ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरु-

---

मैं तुझको उत्तर दूँगा ४ जिस कृत्यसे मनुष्य कीर्ति पाता है जिस कारणसे मनुष्य लक्ष्मी पाता है और जैसा वर्ताव करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है, वह सब मैं तुझसे कहता हूँ ॥ ५ ॥ मनुष्य आचारसे आयुको पाता है, आचारसे लक्ष्मी पाता है और आचारसे मनुष्यकी इस लोकमें और परलोकमें कीर्ति फैलती है ६ परन्तु दुराचारी मनुष्य इस लोकमें दीर्घायु नहीं होसकता उससे सब डरते रहते हैं और उसका परोभव करते हैं ७ अतः जो अपना कल्याण करना चाहता हो उसको इस लोकमें सदाचारका पालन करना चाहिये दूषित शरीरवाला पापी पुरुष भी आचारका पालन करने पर अपस्मार आदि दुर्लक्षणोंका नाश कर डालता है ८ आचार ही धर्ममें प्रमाणभूत है और चरित्र ही सन्तोंका लक्षण है, साधुओंका चरित्र ही आचारका लक्षण है ९ कोई पुरुष धर्माचरण करता हो और कल्याणप्रद कार्य करता हो, उस पुरुषको दृष्टिसे न देखा हो तो भी उसके कर्मको सुन कर मनुष्य उस पर प्रेम करते हैं १० नास्तिक, क्रियारहित, गुरु और शास्त्रका अपमान करने वाले, धर्मको न जानने वाले दुरा-

शास्त्राभिलंघिनः । अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ११
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्णमैथुनाः । अल्पायुषो भव-
न्तीह नरा निरयगामिनः ॥ १२ ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि समुदा-
चारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयुश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥१३॥
अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः । अनसूयुरजिह्मश्च
शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४ ॥ लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी
च यो नरः । नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत् ॥१५॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिंतयेत् । उत्थायाचम्य तिष्ठेत
पूर्वां संध्यां कृताञ्जलिः ॥१६॥ एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत
वाग्यतः । नेक्षेतादित्यमुद्यंतं नास्तं यांतं कदाचन ॥ १७ ॥

चारी पुरुष आयुरहित होते हैं अर्थात् उनकी आयुको व्यर्थ बीती हुई समझना चाहिये ११ जो शीलरहित होते हैं, जो मर्यादा को तोड़ डालते हैं, और जो सर्वदा जहाँ चाहें तहाँ मैथुन करनेका बैठ जाते हैं, उन पुरुषोंकी आयु न्यून होती है और वे मरणके पीछे नरकमें पड़ते हैं १२ सब सुलक्षणोंसे रहित पुरुषभी यदि सदाचारी, श्रद्धालु और ईर्षारहित होता है, वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है १३ जो क्रोधरहित होता है, प्राणियोंकी मन वाणी आदिसे हिंसा नहीं करता है, किसीसे ईर्षा नहीं करता है तथा कपटरहित होता है, वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है १४ जो मट्टीके ढेलोंको फोड़ता रहता है, तिनकोंको तोड़ता रहता है और नाखूनोंको कुतरता रहता है. सदा उच्छिष्ट रहता है तथा चञ्चल मन वाला रहता है, वह इस संसारमें बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहता है १५ पुरुष ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् सूर्योदय होनेसे अड़तालीस मिनट पहिले जाग जाय, फिर धर्मसम्बन्धी विचार करे, तदनन्तर स्नान और आचमन कर हाथ जोड़ प्रातः-कालकी सन्ध्या करे १६ इसी प्रकारवाणीको नियममें रख कर

नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् । ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥ १८ ॥ तस्मात्तिष्ठेत् सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः । ये न पूर्वामुपासंते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् १९ सर्वास्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् । परदारा न गंतव्या सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ॥ २० ॥ न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ २१ ॥ यावन्तो रोमकूपाः स्युः स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः । तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ॥ २२ ॥ प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ॥ २३॥ पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत् कदाचन । नातिकल्पं नातिसायं

सायंसन्ध्या करे, उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्यको कभी न देखे १७ ग्रहणके समय सूर्यको न देखे, जलमें सूर्यके प्रतिबिम्बको न देखे, मध्यान्हके समय आकाशके बीचमें स्थित सूर्यको भी न देखे, ऋषियोंने नित्य सन्ध्यावन्दन करनेके कारण दीर्घायु पाई थी १८ इस लिये वाणीको नियममें रख कर अर्थात् मौन रह कर सदा प्रातःकाल और सायंकालकी संध्या करे, जो द्विजाति पुरुष प्रातःकालकी और सायंकालकी सन्ध्याकी उपासना नहीं करते हैं, धर्मनिष्ठ राजा उन सबसे शूद्र जातिके काम लेय, सब वर्णोंके पुरुषोंको कभी भी दूसरेकी स्त्रियोंसे व्यभिचार न करना चाहिये २० इस जगत्में जैसे परस्त्रीसे व्यभिचार करना आयुका नष्ट करने वाला है ऐसा और कोई कर्म आयुको नष्ट करने वाला नहीं है २१ स्त्रियोंके शरीरमें जितने रोमकूप बनाये गए हैं उतने सहस्र वर्षों तक व्यभिचारी पुरुष नरकमें पड़ा रहता है २२ मल मूत्रका त्याग, दतौन, केश बनवाना, अञ्जन आँजना, देवताओंकी पूजा आदिक कार्य दिनके पूर्वान्हमें हीं करने चाहिये २३ मल और मूत्रको किसी दिन भी न देखे

न च मध्यंदिने स्थिते ॥ २४ ॥ नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह । पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च २५ वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च । प्रदक्षिणं च कुर्वीत परिज्ञातान् वनस्पतान् ॥ २६ ॥ चतुष्पथान् प्रकुर्वीत सर्वानेव प्रदक्षिणान् । मध्यंदिने निशाकाले अर्धरात्रे च सर्वदा ॥ २७ ॥ चतुष्पथं न सेवेत् उभे सन्ध्ये तथैव च । उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत् । ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात् पादं पादेन नाक्रमेत् ॥ २८ ॥ अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः । अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥ २९ ॥ वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च । आक्रोशं परिवादं च पैशुन्यं च

तथा कभी उनके ऊपर खड़ा भी न होवे, अतिप्रातःकाल, अतिसायंकाल तथा मध्यान्हके समय ग्रामके बाहर न जाय ॥२४॥ अनजान मनुष्योंके साथ न जावे, अकेला न जावे, शूद्रोंके साथ न जावे, ब्राह्मण और गौ तथा राजाको मार्ग देदेय ॥ २५ ॥ तैसे ही वृद्ध पुरुषोंको, भारसे पीड़ा पाते हुए पुरुषको, गर्भिणी स्त्रीको और दुर्बल पुरुषको जानेके लिये मार्ग देदेय, परिज्ञात (पहिचानी हुई) वनस्पतियोंकी प्रदक्षिणा करे अथवा उनको दाहिनी ओर करके चले २६ तथा सम्पूर्ण चौराहोंको दाहिनी ओर करके चले तथा चौराहोंमें मध्यान्हमें और आधी रातमें न जाय, न खड़ा होय, इसी प्रकार प्रातःकाल और सायंकालके समय चौराहोंमें खड़ा न होवे, दूसरोंके पहिरे हुए वस्त्र और जूतोंको न पहिरे; नित्य ब्रह्मचर्यका पालन करे, एक पैरसे दूसरे पैरको न दबावे ॥ २७॥२८ ॥ अमावास्याके दिन, चौदशके दिन, पूर्णिमाके दिन, तथा दोनों पक्षोंकी अष्टमीके दिन पुरुष सदा ब्रह्मचर्यका पालन करे ॥२९॥यज्ञ और श्राद्ध कर्मके अतिरिक्त और कभी मांस भक्षण न करे,पशुओंकी पीठका मांस न

विवर्जयेत् ॥ ३० ॥ नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत। ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेदुशतीं पापलोक्याम् ॥ ३१ ॥ वाक्सायका वदनान्निष्पतंति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि। परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥३२॥ रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्। वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ ३३ ॥ कर्णि-नालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः। वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥ ३४ ॥ हीनांगानतिरिक्तांगान्विद्याहीनान्विगर्हितान्। रूपद्रविणहीनांश्च सत्यहीनांश्च नाक्षिपेत् ३५ नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम्। द्वेषः स्तंभाभिमानं

खाय, दुन्द न मचावे किसीकी निन्दा न करे और न किसीकी चुगली खाय ॥ ३० ॥ मर्मान्तिक बात न कहे, क्रूरताभरी बात न कहे, शत्रुको ओछे उपायसे न दबावे, जिस वाणीसे दूसरा उद्विग्न हो ऐसी दुःख उपजानेवाली और पापलोक देने वाली वाणी न बोले ३१ मुखमेंसे वाणीरूप जो बाण निकलते हैं उनसे घायल हुआ मनुष्य रात दिन शोक किया करता है, अथवा दूसरेके मर्मस्थानोंको काटने वाले वचनरूपी बाणोंका पण्डित दूसरों पर प्रहार न करे ॥ ३२ ॥ बाणोंसे विंधा हुआ अथवा फरसेसे काटा हुआ वन फिर भर जाता है, परन्तु वाणीरूपी बाणसे जिस पुरुषके घाव होजाता है, वह बड़ा बीभत्स होता है और कभी नहीं भरता है ॥ ३३ ॥ कर्णि, नालीक (बन्दूक) और नाराच नामक बाणोंको शरीरमेंसे मनुष्य निकाल सकते हैं, परन्तु वाणीरूप बाणको नहीं निकाला जासकता, क्योंकि-वह हृदयमें घर कर लेता है ॥ ३४ ॥ हीन अंगोंवाले (काने आदि) अतिरिक्त अंगों वाले (छंगे आदि), विद्याहीन, निन्दापात्र, रूप और धन रहित तथा सत्यरहित पुरुषोंकी (भी) निन्दा न

च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥ परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् । अन्यत्र पुत्राच्छिष्याच्च शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम् ॥ ३७ ॥ न ब्राह्मणान् परिवदेन्नक्षत्राणि न निर्दिशेत् । तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥ ३८ ॥ कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः । पादप्रक्षालनं कुर्यात् स्वाध्याये भोजने तथा ॥ ३९ ॥ त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् । अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ४० ॥ संयावं कृसरं मांसं शष्कुलीं पायसं तथा । आत्मार्थं न प्रकर्तव्यं

करे ॥ ३५ ॥ नास्तिकपन, वेदनिन्दा, देवनिन्दा, द्वेष, स्तंभ, अभिमान तथा तीक्ष्णताको त्याग देय ॥ ३६ ॥ पुत्र और शिष्यके अतिरिक्त और किसी पर दण्डा न उठावे, क्रोधमें भर कर किसीके लकड़ी न मारे, पुत्र और शिष्यको भी शिक्षा देनेके लिये ताड़ना देना शास्त्रमें लिखा है ।३७। ब्राह्मणोंकी निन्दा न करे, किसीको नक्षत्र न दिखावे, तथा आज अमुक पक्षकी अमुक तिथि है इस प्रकार घर २ कह कर आजीविका न चलावे, इस प्रकार वर्ताव करनेसे पुरुषकी आयु क्षीण नहीं होती है ॥ ३८ ॥ मूत्र करनेके अनन्तर, पुरीष त्याग करनेके अनन्तर और गलीमें घूमनेके अनन्तर पैर धोवे और स्वाध्याय करते समय तथा भोजन करते समय भी पैर धोवे ३९ देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन प्रकारकी पवित्रता कही है (१) किसीके स्पर्श करने पर भी अपनी दृष्टिसे उसको न देखने पर वह वस्तु पवित्र मानी जाती है, (२) जिस वस्तुको जलसे धो कर शुद्ध कर लिया जाय (३) और ब्राह्मण जिसको वाणीसे शुद्ध कर देते हैं वह भी पवित्र मानी जाती है ॥४०॥ संयाव (जौकी लहपसी) खिचड़ी (तिल चावलोंकी), मांस, पूरी तथा दुग्धपाक यह सब भोजन अपने लिये न बना कर ब्राह्मणोंके

देवार्थं तु प्रकल्पयेत् ॥४१॥ नित्यमग्निं परिचरेद्भिक्षां दद्याच्च नित्यदा। वाग्यतो दंतकाष्ठं च, नित्यमेव समाचरेत् ॥ ४२ ॥ न चाभ्युदितशायी स्यात् प्रायश्चित्ती तथा भवेत्। माता पितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ॥ ४३ ॥ आचार्यमथ वाप्यन्यं तथायुर्विंदते महत्। वर्जयेद्दंतकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ॥४४॥ भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि विवर्जयेत्। उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात् समाहितः ॥ ४५ ॥ अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद्दंतधावनम्। अकृत्वा देवपूजां च नाभिगच्छेत् कदाचन। अन्यत्र तु गुरुं वृद्धं धार्मिकं वा विचक्षणम् ॥४६॥ अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः। न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद्गर्भिणीं वा कदाचन ॥ ४७ ॥ उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च ।

लिये बनावे४१नित्य अग्निकी सेवा करे,नित्य ब्रह्मचारी रहे और संन्यासियोंको भिक्षा देय तथा वाणीको नियममें रख कर नित्य काष्ठकी दतौन करे॥ ४२ ॥ सूर्योदय तक न सोता रहे, ऐसा करनेसे प्रायश्चित लगता है, प्रभातमें उठ कर पहिले माता पिता को प्रणाम करे ॥ ४३ ॥ तदनन्तर आचार्य तथा दूसरे बड़ोंको प्रणाम करे, ऐसा वर्ताव करनेसे पुरुष दीर्घायु होता है, नित्य दतौन करके उसको त्याग देय (नित्य ताजी दतौन करे) ४४ शास्त्रमें जिस अन्नका खाना कहा हो उसको ही खावे, पर्वके दिन उसको भी न खाय, नित्य उत्तर दिशाकी ओर मुख कर सावधान हो शौच करे॥ ४५ ॥ दन्तधावन किये विना देवपूजा न करे, देवपूजा किये विना गुरु वृद्ध धर्मनिष्ठ पुरुष तथा विचक्षण पुरुषके अतिरिक्त दूसरे किसीसे न मिले ४६ महाबुद्धिमान् पुरुष मलिन दर्पणको न देखे, अनजान स्त्रीके साथ और गर्भिणी स्त्रीके साथ सहवास न करे ॥ ४७ ॥ विद्वान् पुरुष उत्तर दिशा और पश्चिम दिशा की ओर मुख करके न सोवे,किन्तु पूर्व दिश

प्राक्शिरास्तु स्वपेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिराः ॥ ४८ ॥ न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत च । नान्तर्धानेन संयुक्ते न च तिर्यक्कदाचन ॥४९॥ न चापि गच्छेत् कार्येण समयाद्वापि नास्तिकैः । आसनं तु पदाकृष्य न प्रसज्जेत्तथा नरः ॥ ५० ॥ न नग्नः कर्हिचित् स्नायान्न निशायां कदाचन । स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः ५१ न चानुलिंपेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत् । न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः ५२ स्रजश्च नावकृष्येत न बहिर्धारयीत च । उदक्यया च संभाषां न कुर्वीत कदाचन ॥ ५३ ॥ नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके । उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात् कदाचन ॥ ५४ ॥ अन्नं बुभुक्षमाणस्तु त्रिर्मुखेन स्पृशेदपः । भुक्त्वा चान्नं तथैव

तथा दक्षिण दिशाकी ओर शिर करके सोवे ॥ ४८ ॥ टूटी हुई अथवा ढीली खाट पर किसी दिन न सोवे अति अंधकार भरे श्मशानस्थानमें न सोवे, टेढ़ा होकर न सोवे ४९ नास्तिक पुरुषोंके साथ काम पड़ने पर भी न जाय तथा उनसे किसी प्रकारकी प्रतिज्ञा भी न करे, इसी प्रकार मनुष्य अपने बैठनेके आसनको अपने पैरसे न खेंचे ॥ ५० ॥ किसी दिन भी नंगा होकर स्नान न करे, किसीदिन रात्रिमें स्नान न करे तथा स्नान करनेके अनन्तर बुद्धिमान् पुरुष अपने शरीर को जोरसे न हिलावे ॥ ५१ ॥ स्नान किये विना अपने शरीर पर चन्दन न लगावे,स्नान करनेके पीछे स्नानके वस्त्रको न झटके तथा गीले वस्त्र न पहिरे ॥ ५२ ॥ अपने कण्ठमें पड़ी हुई पुष्पोंकी मालाको न खेंचे तथा अपने शरीर पर बाहर धारण न करे, रजस्वला स्त्रीसे कभी संभाषण न करे ॥ ५३ ॥ ग्राम के समीपके क्षेत्रमें शौच न करे,जलमें मूत्र न करे तथा विष्ठा भी न करे ५४ भोजन करने वाला पुरुष प्रथम तीन बार आचमन करे

त्रिर्द्भिःपुनः परिमार्जयेत् ॥ ५५ ॥ प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । प्रस्कंदयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत् ५६ आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । धन्यं पश्चान्मुखो भुंक्ते ऋतं भुंक्ते उदङ्मुखः ॥५७॥ अग्निमालभ्य तोयेन सर्वान् प्राणानुपस्पृशेत् । गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितले तथा ॥ ५८ ॥ नाधितिष्ठेत्तुषं जातु केशभस्मकपालिकाः । अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्जयेत् ॥५९॥ शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च धारयेत् । निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कदाचन ॥ ६० ॥ मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न

और भोजन करनेके उपरान्त भी तीन वार आचमन करे सदा पूर्वदिशाकी ओर मुख करके भोजन करे, भोजन करते समय वाणीको नियममें रक्खे, भोजनके अन्तमें थोड़ेसे अन्नको बाकी रहने दे, भोजन करनेके पीछे मनसे अग्निका स्पर्श करे ५६ आयुकी कामना वाला पुरुष पूर्व दिशाकी ओर मुख करके भोजन करे, यश चाहने वाला दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके भोजन करे, धनकी इच्छा वाला पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके भोजन करे, कल्याण चाहने वाला उत्तर दिशाकी ओर मुख करके भोजन करे ५७ अग्निका स्पर्श (स्मरण) करनेके अनन्तर जलका स्पर्श करे (मुख नेत्र धोवे) शरीरके सब अवयवोंका स्पर्श करे, नाभिका स्पर्श करे, तथा हाथोंके दोनों तलुओंका स्पर्श करे ५८ किसी दिन तुष पर खड़ा न होवे, बालोंके ऊपर, राख पर तथा ठीकरों पर खड़ा न होवे तथा दूसरोंके स्नान करनेसे बचे हुए जलको दूर फैंक दे ५९ शान्तिहोम करे सविता देवता वाले मंत्र पढ़े, भूमि पर बैठ कर भोजनकरे, कभी भी चलते २ भोजन न करे ६० खड़े २ न मूते, राखमें न मूते गौओंके बैठनेके स्थानमें न मूते, पग धोकर भोजन करे, प

गोव्रजे। आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ॥ ६१ ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम्। त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन ॥ ६२ ॥ अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते। त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ॥ ६३ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः। ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रमन्ति यूनः स्थविर आयति ॥ ६४ ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते। अभिवादयीत वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वयम् ॥ ६५ ॥ कृतांजलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वियात्। न चासीतासने भिन्ने भिन्नकांस्यं च वर्जयेत् ६६ नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति। स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत् ॥६७॥ उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे

भीगे पैर किसी दिन न सोवे ६१ पैर धोकर भोजन करनेवाला सौ वर्ष तक जीवित रहता है, भोजन आदिसे उच्छिष्ट हुआ पुरुष किसी दिन भी तीनों तेजोंका स्पर्श न करे ६२ अग्नि, गौ और ब्राह्मण ये तीन तेज हैं, ऐसा करनेसे आयु नष्ट नहीं होती है, इसी प्रकार उच्छिष्ट पुरुष सूर्य,चन्द्रमा और नक्षत्र इन तेजोंको न देखे, वृद्ध पुरुषोंके आने पर तरुण पुरुषके प्राण ऊपरको चढ़ते हैं६४वृद्ध पुरुषको प्रत्युत्थान देने पर तथा प्रणाम करने पर उसको फिर प्राण मिलते हैं,तरुण पुरुष वृद्ध पुरुषोंको प्रणाम करे और उनको बैठनेके लिये स्वयं आसन देय ६५ दोनों हाथ जोड़ कर उनके पास बैठे, वे जब जायें तो उनके पीछे २ जावे, टूटे फूटे आसन पर न बैठे, फूटे हुए काँसीके पात्रमें भोजन न करे ६६ एक वस्त्र पहिर कर भोजन न करे (अर्थात् सम्पूर्ण शरीर ढक कर भोजन करे) नंगे २ स्नान न करे, नंगे २ न सोवे, झूँठे मुख न बैठे६७झूँठे हाथसे मस्तकका स्पर्श न करे, क्यों कि सब प्राण मस्तकके आधार पर स्थित हैं

प्राणास्तदाश्रयाः । केशग्रहं प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ६८
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कंडूयेदात्मनः शिरः । न चाभीक्ष्णं
शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥६९॥ शिरस्नातस्तु तैलैश्च
नांगं किंचिदपि स्पृशेत् । तिलसृष्टं न चाश्नीयात्तथास्यायुर्न
रिष्यते ॥ ७० ॥ नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन ।
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ७१ ॥ अत्र गाथा
यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः । आयुरस्य निकृंतामि प्रजास्त-
स्याददे तथा ॥ ७२ ॥ उच्छिष्टो यः प्राद्रवति स्वाध्यायं चाधि-
गच्छति । यश्चानध्यायकालेऽपि मोहादभ्यस्यति द्विजः ॥७३॥
तस्य वेदः प्रणश्येत आयुश्च परिहीयते । तस्माद्युक्तो ह्यनध्याये
नाधीयीत कदाचन ॥७४॥ प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिगां च प्रति-

मस्तकके केशोंको न खींचे, मस्तक पर प्रहार भी न करे ६८ दोनों हाथोंको इकट्ठे करके अपने मस्तकको न खुजलाये तथा वारम्वार मस्तकसे स्नान न करे, ऐसा करनेसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती है ६९ मस्तकमें तेल डाल कर तेलके हाथोंसे किसी अंगका स्पर्श न करे और तिल लगे हुए पदार्थोंको न खावे, ऐसा करनेसे आयु क्षीण नहीं होती है ॥ ७० ॥ उच्छिष्ट पुरुष दूसरोंको वेद न पढ़ावे तथा उच्छिष्ट पुरुष अपने आप भी वेद न पढ़े और दुर्गन्धित पवनके चलने पर मनसे भी वेद का चिन्तवन न करे ॥ ७१ ॥ प्राचीन कालके इतिहासको जानने वाले पण्डित इस विषयमें यमकी गाई हुई गाथाओंको इस प्रकार गाते हैं, कि-जो पुरुष उच्छिष्ट दशामें उठ कर दौड़ता है तथा वेदका स्वाध्याय करता है, उसकी आयुको मैं नष्ट कर डालता हूँ तथा उसकी प्रजाको भी नष्ट कर डालता हूँ जो द्विजाति पुरुष अज्ञानसे अनध्यायके समय वेदपाठ करता है७२।७३ उसको वेद नहीं आते हैं और उसकी आयु नष्ट होजाती है, इस

द्विजान् । ये मेहन्ति च पन्थानन्ते भवन्ति गतायुषः ॥ ७५ ॥
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाभिमुखो रात्रौ
तथा ह्यायुर्न रिष्यते ॥ ७६ ॥ त्रीन् कृशान्नावजानीयाद्दीर्घमायु
र्जिजीविषुः । ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः ॥ ७७॥
दहत्याशीविषः क्रुद्धो यावत् पश्यति चक्षुषा । क्षत्रियोपि दहेत्क्रुद्धो
यावत्स्पृशति तेजसा ७८ब्राह्मणस्तु कुलं हन्याद्ध्यानेनावेक्षितेन च ।
तस्मादेतत्त्रयं यत्नादुपसेवेत पण्डितः ॥७९॥ गुरुणा चैव निर्बंधो
न कर्तव्यः कदाचन । अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधि-
ष्ठिर ॥ ८० ॥ सम्यङ्मिथ्याप्रवृत्तेपि वर्तितव्यं गुराविह । गुरु-

---

लिये पुरुष अनध्यायमें कभी अध्ययन न करे । ७४ । जो पुरुष सूर्यके सामने,अग्निके सामने,गौके सामने तथा ब्राह्मणोंके सामने मूत्र त्याग करता है, उसकी आयु नष्ट होने लगती है ७५ दिनमें उत्तर दिशाकी ओर मुख करके पुरीषत्याग करे तथा मूत्र-त्याग करे और रात्रिमें दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके मूत्र और पुरीषका त्याग करे ऐसा करनेसे आयु नष्ट नहीं होती है७६ बहुत समय तक जीवित रहना चाहने वाला पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय और सर्प ये तीनों दुर्बल हों, तब भी इनका अपमान न करे, क्योंकि-ये तीनों विषैले सर्प कहलाते हैं ७७ क्रोधमें भरा हुआ सर्प जहाँ तक देखता है, तहाँ तक काटता है और क्षत्रियभी क्रोधमें भरने पर जहाँ तक बल रहता है तहाँ तक लड़ता है ७८ परन्तु ब्राह्मण यदि क्रोधमें भर जाता है तो ध्यान करके और क्रूर दृष्टिसे देखकर कुलका ही नाश कर डालता है इस लिये विद्वान् पण्डित इन तीनोंका यत्नपूर्वक सेवन करे । ७९ । किसी दिन भी गुरुके साथ आग्रहपूर्वक वर्ताव न करे, हे युधिष्ठिर ! गुरु यदि क्रोधमें भर जायें तो उनको मान दे करके प्रसन्नकरे८० गुरु अपने प्रतिकूल चलें तो भी उनके प्रतिकूल न चले, गुरुकी

निन्दा वहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ॥८१॥ दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् । उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा८२ रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पण्डितैः । वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं प्रभो ॥ ८३ ॥ रक्तं शिरसि धार्यं तु तथा वानेयमित्यपि । काञ्चनीयापि माला या न सा दुष्यति कर्हिचित्८४ स्नातस्य वर्णकं नित्यमार्द्रं दद्याद्विशाम्पते । विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान्नरः ॥ ८५ ॥ तथा नान्यधृतं धार्यं न चापदशमेव च । अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ॥ ८६ ॥ अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि । प्रियंगुचन्दनाभ्यां च विल्वेन तगरेण च ॥ ८७ ॥ पृथगेवानुलिंपेत केसरेण च बुद्धिमान् ।

निन्दा मनुष्योंकी आयुको नष्ट कर डालती है ८१ मकानसे दूर मूत्रत्याग करे, दूर ही पैर धोवे और हित चाहने वाला पुरुष उच्छिष्टवस्तुको दूर ही डाले ८२ पण्डित लाल पुष्पोंकी मालाको धारण न करे, परन्तु श्वेतवर्णके पुष्पोंकी मालाको धारण करे और हे राजन् ! कमल और कुवलय लाल हों तो भी इनको धारण कर लेय ८३ कमल और कुवलयके अतिरिक्त जलमें उत्पन्न हुए रक्त पुष्पोंको मस्तक पर धारण करनेमें कोई हानि नहीं है, सोने की माला कभी दूषित नहीं मानी जाती है ८४ हे राजन् ! पुरुष स्नान करके सदा सुगंधित वस्तुओंको अपने शरीरपर लगावे तथा बुद्धिमान् पुरुष अपने पहिरनेके वस्त्रोंमें फेर फार न करे अर्थात् नीचे पहिरनेके वस्त्रोंको ऊपरके भागमें और ऊपरके भागमें पहिरने योग्य वस्त्रोंको नीचेके भागमें न पहिरे८५ दूसरेके पहिरे हुए वस्त्रों को न पहिरे हे राजन् ! सोनेके वस्त्र अलग ही रखने चाहिये ८६ गलीमें जाते समय पहिरनेका वस्त्र अलग ही रक्खे ; देवपूजामें दूसरे वस्त्र पहिरे अर्थात् भिन्न २ कार्योंके समय भिन्न २ वस्त्र पहिरे, प्रियंगु (सुगंधित पदार्थ) अगर, चन्दन, बिल्व तगर तथा

उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ ८८ ॥ पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत् । समानमेकपात्रे तु भुंजेन्नान्नं जनेश्वर ॥ ८९ ॥ नालीढ्यापरिहृतं भक्षयीत कदाचन । तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्षते नाप्रदाय च९०न संनिकृष्टे मेधावी नाशुचेर्न च सत्सु च । प्रतिषिद्धान्नधर्मेषु भक्ष्यान् भुञ्जीत पृष्ठतः ॥ ९१ ॥ पिप्पलं च वटं चैव शणशाकं तथैव च । उदुंबरं न खादेच्च भवार्थी पुरुषोत्तमः ॥ ९२ ॥ आजं गव्यं तथा मांसं मायूरं चैव वर्जयेत् । वर्जयेच्छुष्कमांसं च तथा पर्युषितं च यत् ॥ ९३ ॥ न पाणौ लवणं विद्वान् प्राश्नीयान्न च रात्रिषु । दधिसक्तून्न भुञ्जीत वृथा मांसं च वर्जयेत् ॥ ९४ ॥ सायं प्रातश्च भुञ्जीत

केसरको बुद्धिमान् अपने शरीर पर अलग२लगावे और स्नान कर शुद्धहो शरीर पर अलंकार धारण कर उपवास करे ८७,८८ सम्पूर्ण पर्वोंके समय सदा ब्रह्मचारी रहे, हे जनेश्वर ! समान पुरुष हों तब भी एक पात्रमें भोजन न जीमें ॥ ८९ ॥ रजस्वला स्त्रीके छुये हुए अन्नका कभी भक्षण न करे तथा जिनमेंसे सार निकाल लिया हो ऐसे फोकट पदार्थोंका भक्षण न करे तथा प्रेक्षकोंको दिये बिना भी भोजन न करे ॥९०॥ बुद्धिमान् पुरुष अपवित्र पुरुषके पास बैठ कर भोजन न करे तथा सज्जनोंके सामने भी भोजन न करे, श्राद्धमें विहित वैसे प्रतिषिद्ध भोजन का श्राद्धके अतिरिक्त और किसी समय भोजन न करे ॥ ९१ ॥ कल्याण चाहने वाला पुरुष पीपल, बड़,सन और गूलरका शाक न खाय ॥ ९२ ॥ बकरेका, बैलका और मोरका मांस न खाय, सूखा और बासी मांस भी न खाय ॥ ९३ ॥ विद्वान् पुरुष हाथ में नमक लेकर न खाय, दही और सत्तुओंको एक साथ न खाय तथा यज्ञ और श्राद्धके अतिरिक्त मांसका वृथा ही भक्षण न

नांतराले समाहितः। वालेन तु न भुञ्जीत परश्राद्धं तथैव च ९५ वाग्यतो नैकवस्त्रश्च नासंविष्टः कदाचन। भूमौ सदैव नाश्नीयान्नानासीनो न शब्दवत् ९६ तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशांपते। पश्चाद्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः ९७ समानमेकपंक्त्यां तु भोज्यमन्नं नरेश्वर। विषं हालाहलं भुंक्ते योऽप्रदाय सुहृज्जने ९८ पानीयं पायसं सक्तून्दधि सर्पिर्मधून्यपि निरस्य शेषमन्येषां न प्रदेयं तु कस्यचित् ९९ भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शंकां समाचरेत्। दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना १०० आचम्य चैकहस्तेन परिस्राव्यन्तथोदकम्। अंगुष्ठं चरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचयेत् १०१ पाणिं मूर्ध्नि समा-

करे९४ पुरुष सावधान होकर प्रभातमें और सायंकालमें भोजन करे, बीचमें भोजन न करे, वाल पड़े हुए अन्नका भोजन न करे और शत्रुके श्राद्धमें भी भोजन न करे ९५ मौन रह कर भोजन करे, दो वस्त्रोंसहित भोजन करे, खड़े २ भोजन न करे, सदा पृथ्वी पर अन्न रख कर भोजन न करे, विना बैठे भोजन न करे तैसे शब्दके साथ भोजन न करे ॥९६॥ बुद्धिमान् पुरुष पहिले अतिथिके हाथमें जल देय, फिर उसको अन्न देय, फिर अनन्य मन होकर भोजन करे ॥ ९७ ॥ हे राजन् ! एक पंक्तिमें एक समान भोजन करना चाहिये, जो पुरुष अपने स्नेहियोंको न देकर अपने आप अकेला खाता है, वह हलाहल विषका भोजन करता है ९८ जल, दुग्धपाक, सत्तू दही, घी और मधु यदि भोजनमेंसे बच जाँय तो दूसरोंको देदे परन्तु इनके अतिरिक्त दूसरी वस्तु न देवे (यह उच्छिष्ट वस्तु भी पुत्र, शिष्य अथवा छोटे भाईको देय, दूसरोंको नहीं) ॥९९॥ हे मनुष्यव्याघ्र ! भोजन करते समय किसी प्रकारकी शंका न करे, कल्याण चाहने वाला दहीका अनुपान न करे (मट्ठेका अनुपान करे) ॥१००॥ पुरुष प्रथम आच-

धाय स्पृष्ट्वा चाग्निं समाहितः। ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नोति प्रयोग-
कुशलो नरः २ अद्भिः प्राणान् समालभ्य नाभिं पाणितले
तथा। स्पृशंश्चैव प्रतिष्ठेत न चाप्यार्द्रेण पाणिना ३ अंगुष्ठस्यां-
तराले च ब्राह्मं तीर्थमुदाहृतम्। कनिष्ठिकायाः पश्चात्तु देवतीर्थ-
मिहोच्यते ४ अंगुष्ठस्य च यन्मध्यं प्रदेशिन्याश्च भारत। तेन
पित्र्याणि कुर्वीत स्पृष्ट्वापो न्यायतः सदा ५ परापवादं न ब्रूया-
न्नाप्रियं च कदाचन। न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना६
पतितैस्तु कथां नेच्छेद्दर्शनं च विवर्जयेत्। संसर्गं च न गच्छेत
तथायुर्विंदते महत् ७ न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न च बन्ध-

मन करे, तदनन्तर एक हाथसे दाहिने पैरके अँगूठे पर जल डाले ॥ १०१ ॥ प्रयोगकुशल पुरुष अपने मस्तक पर हाथ रक्खे, तदनन्तर सावधान होकर अग्निका स्पर्श करे, ऐसा करने से पुरुष ज्ञातिमें श्रेष्ठ होजाता है ॥ १०२ ॥ जलसे इन्द्रियोंका नाभिका तथा हाथके तलुओंका स्पर्श करे अर्थात् धो डाले, फिर जलसे भीगे हुए दोनों भागोंको पूँछ डाले ॥ १०३ ॥ अँगूठेका मूलप्रदेश ब्रह्मतीर्थ कहलाता है, कनिष्ठिका अँगुलीके अंतिम भागको देवतीर्थ कहते हैं ॥१०४॥ हे भरतवंशी राजन्! अँगूठे और प्रदेशिनीके मध्यप्रदेशको पितृतीर्थ कहते हैं, उससे पितृकार्य करना चाहिये तथा जलका स्पर्श करके सदा दूसरी क्रियाएँ भी करनी चाहियें ॥१०५॥ कभी दूसरेकी निन्दा न करनी चाहिये कभी अप्रिय वचन नहीं कहना चाहिये तथा कल्याण चाहने वालेको किसी प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिये १०६ पतितोंके साथ बात चीत न करनी चाहिये तथा उनका दर्शन भी न करना चाहिये और उनका संसर्ग भी न करना चाहिये ऐसा करनेसे दीर्घायु मिलती है ॥ १०७ ॥ पुरुष दिनमें मैथुन न करे तथा जिसने ऋतुस्नान न किया हो उस स्त्रीके साथ गमन भी

क्षीम् । न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत्तथायुर्विंदते महत् ८ स्वे स्वे तीर्थे समाचम्य कार्ये समुपकल्पिते । त्रिः पीत्वापोद्विः प्रमृज्य कृतशौचो भवेन्नरः ९ इन्द्रियाणि सकृत् स्पृश्य त्रिरभ्युदय च मानवः । कुर्वीत पित्र्यं दैवं च वेददृष्टेन कर्मणा १० ब्राह्मणार्थे च यच्छौचं तच्च मे शृणु कौरव । पवित्रं च हितं चैव भोजनाद्यं तयोस्तथा ११ सर्वशौचेषु ब्राह्मेण तीर्थेन समुपस्पृशेत् ॥ निष्ठीव्य तु तथा क्षुत्वा स्पृश्यापो हि शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥ वृद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदपि । गृहे वासयितव्यस्ते धन्यमायुष्यमेव च १३ गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सह सारिकाः । गृहेष्वेतेन पापाय तथा वै तैलपायिकाः । उद्दीपकाश्च गृध्राश्च

न करे, वेश्याके साथ और वंध्याके साथ भी गमन न करे ऐसा करनेसे पुरुष दीर्घायु होता है ॥१०८॥ अपने २ तीर्थमें आचमन करके कार्य करनेके पीछे तीन वार आचमन करे और दो वार मुखशुद्धि करे ऐसा करने पर पुरुष शुद्ध होजाता है ॥१०९॥ मनुष्य इन्द्रियोंको एक वार जलसे धो डाले फिर चित्तको एकाग्र करके भोजन करे, फिर तीन वार जलसे प्रोक्षण करे तदनन्तर वेदके अनुसार देवकार्य और पितृकार्य करे ॥ ११० ॥ हे कुरुकुलोत्पन्न ! ब्राह्मणोंके लिये जो शुद्धि है उसको तू सुन तथा भोजनके अन्तमें हितप्रद पवित्र शौचको भी तू सुन ॥ १११ ॥ ब्राह्मण सब प्रकारके शौचमें ब्रह्मतीर्थसे आचमन करे थूकने और हजामत बनवानेके बाद भी आचमन करे, ऐसा करनेसे पुरुष पवित्र होजाता है ॥१२॥ वृद्ध संबंधीको तथा दरिद्री मित्रको घरमें रक्खे, ऐसा करनेसे धन और आयु बढ़ती है १३ पारावत, तोते तथा मैना इन पक्षियोंका घरमें रहना मंगलप्रद है, परन्तु तैलपायिक, उद्दीपिका, गिद्ध, कपोत, भ्रमर जब घरमें प्रवेश करें तब शान्ति अवश्य करनी, चाहिये, क्योंकि—वे सब पक्षी अमां-

कपोता भ्रमरास्तथा ॥ १४ ॥ निविशेयुर्यदा तत्र शान्तिमेव तदा चरेत् । अमङ्गल्यानि चैतानि तथाक्रोशो महात्मनाम् ॥ १५ ॥ महात्मनोऽतिगुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित् । अगम्याश्च न गच्छेत राज्ञः पत्नीं सखीस्तथा ॥ १६ ॥ वैद्यानां वालवृद्धानां भृत्यानां च युधिष्ठिर । बन्धूनां ब्राह्मणानां च तथा शारणिकस्य च ॥ १७ ॥ सम्बन्धिनां च राजेन्द्र तथायुर्विन्दते महत् । ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ॥ १८ ॥ तदा वसेत् सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर । सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन्विद्यां न च समाचरेत् ॥१९॥ न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत् । नक्तं न कुर्यात्पित्र्याणि भुक्त्वा चैव प्रसाधनम् ॥ २० ॥ पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता । वर्जनीयाश्चैव नित्यं

गलिक हैं,इसी प्रकार महात्मा पुरुषोंकी निन्दा करना भी अमंगल करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ महात्मा पुरुषोंके अत्यन्त गुप्त कर्म कभी किसीसे न कहने चाहियें तथा अगम्या स्त्रीके साथ,राजाकी रानीके साथ और स्नेहियोंकी स्त्रियोंके साथ कभी गमन न करना चहिये ॥१६॥ हे युधिष्ठिर ! वैद्योंकी,बालकोंकी वृद्धोंकी सेवकोंकी भाइयोंकी,ब्राह्मणोंकी,शरणागतोंकी तथा संबंधियोंकी स्त्रियोंसे भी गमन नहीं करना चाहिये, उपरोक्तरीतिसे वर्ताव करने वाला दीर्घायु पाता है, जिस घरको ब्राह्मणोंने और बढ़इयोंने निर्माण किया हो १७-१८ हे राजन् ! कल्याण चाहने वाला पुरुष सदा उस घरमें रहे, हे राजन् ! सायंकालके समय निद्रा न लेय तथा विद्याभ्यास भी न करे १९ और बुद्धिमान् पुरुष सायंकालके समय भोजन भी न करे,इस प्रकार वर्ताव करने वाला पुरुष दीर्घायुको पाता है, रातमें श्राद्ध आदि पितृकार्य न करने चाहिये तथा भोजन करनेके अनन्तर केशसंस्कार (केशोंमें तेल डालना, केश कटवाना आदि) भी न करना चाहिये १२०

सक्तवो निशि भारत ॥ २१ ॥ शेपाणि चैव पानानि पानीयं चापि भाजने । सौहित्यं न च कर्तव्यं रात्रौ न च समाचरेत् २२ द्विजच्छेदं न कुर्वीत भुक्त्वा न च समाचरेत् । महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा ॥ २३ ॥ वयस्थां च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति । अपत्यमुत्पाद्य ततः प्रतिष्ठाप्य कुलं तथा ॥ २४ ॥ पुत्राः प्रदेया ज्ञानेषु कुलधर्मेषु भारत । कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते ।२५॥ पुत्रा निवेश्याश्च कुलाद्द भृत्या लभ्याश्च भारत । शिरस्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च ॥ २६ ॥ नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः। न प्रोष्ठपदयोः कार्यं

तथा कल्याण चाहने वाला पुरुष रात्रिमें स्नान न करे तथा हे राजन् ! रात्रिमें सत्तू न खाय ॥ १२१ ॥ और रात्रिमें भोजन और शरबत पीनेके पीछे जल न पिये और रात्रिमें डट कर भोजन न करे तथा दूसरेको भी डट कर भोजन न करावे अर्थात् थोड़ा आहार करे पक्षियोंकी हिंसा न करे,पक्षियोंका मांस खाना हो तो मोल लेकर खाय, किन्तु अपने आप पक्षीको पाल कर उसकी हिंसा न करे, महाकुलमें उत्पन्न हुई अच्छे लक्षणों वाली और अवस्थामें आई हुई कन्याके साथ बुद्धिमान् पुरुष विवाह करे फिर उसमें सन्तान उत्पन्न करके अपने कुलको स्थिर करे२३।२४ हे भरतवंशी राजन् ! अपने पुत्रोंको उत्तम विद्या पढ़ानेके लिये कुलीन और धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको सौंपे तैसे ही कन्या उत्पन्न होने पर कुलीन पुरुषके बुद्धिमान् पुत्रके साथ विवाह दे ॥१२५॥ हे भरतवंशी राजन् ! अपने पुत्रोंका उत्तम कुलमें विवाह करे,सेवक भी उत्तम कुलके ही पुरुषोंको बनावे, पूर्वाभाद्रपद और उत्तरा भाद्रपदमें देव और पितृकर्म न करे तथा हे भरतवंशी राजन् ! कृत्तिका नक्षत्रमें भी देवकर्म और पितृकर्म न करे ॥ १२६ ॥ तथा सम्पूर्ण दारुण नक्षत्रोंमें भी देवकर्म और पितृकर्म न करे

तथाग्नेये च भारत ॥२७॥ दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् । ज्योतिषे यानि चोक्तानि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ २८ ॥ प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयेत् सुसमाहितः । उदङ्मुखो वा राजेन्द्र तथायुर्विंदते महत् ॥ २९ ॥ परिवादं न च ब्रूयात् परेषामात्मनस्तथा । परिवादो ह्यधर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ ॥ ३० ॥ वर्जयेद्व्यंगिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तम । समार्षां व्यङ्गितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा ॥३१॥ वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम् । तथा निकृष्टवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत् ॥ ३२ ॥

तथा जिन नक्षत्रोंमें ज्योतिशास्त्रमें देवकर्म और पितृकर्म करनेका निषेध किया हो तथा प्रत्यरिके नक्षत्रमें भी देवकर्म और पितृकर्म न करे (पाँचवीं ताराको प्रत्यरि कहते हैं, ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि-"स्वनक्षत्राद्द् दिननक्षत्रं यावद्ग गणयित्वा । नवभिर्भागे हृते पञ्चमी तारा प्रत्यरिः॥" अपने जन्मके नक्षत्रसे जिस दिन कार्य करना हो उस दिनके नक्षत्र तक गिन कर नौका भाग देय, यदि तीन पाँच अथवा सात शेष रहें तो अशुभ जाने और एक, दो, चार आठ अथवा पूर्ण रहे तो शुभ समझे)२८ पुरुष सावधान होकर पूर्वदिशाकी ओर मुख करके केश उतरवावे (क्षौर करवावे) हे राजेन्द्र ! ऐसा करनेसे दीर्घायु मिलती है ॥ २९ ॥ अपनी तथा दूसरेकी निन्दा न करनी चाहिये, यह कहा है, कि-परनिन्दा करनेसे अधर्म होता है ।३० हे नरोत्तम ! जिस कन्याके अंग न्यून हों, जिसका प्रवर अपने प्रवरकी समान हो, जिसके अङ्ग अधिक हों, जो अपनी माताके कुलमें उत्पन्न हुई हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह न करे ३१ वृद्ध स्त्रीका, संसारका त्याग करने वाली परिव्राजिकाका, पतिव्रता स्त्रीका, निकृष्ट वर्णकी स्त्रीका तथा अपनेसे उत्कृष्ट वर्ण की स्त्रीका त्याग कर देय ॥ ३२ ॥ विचक्षण पुरुष अज्ञात कुल वाली तथा हलके

अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षणः । पिंगलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमुद्वोढुमर्हसि ॥ ३३ ॥ अपस्मारीकुले जातां निहीनां चापि वर्जयेत् । श्वित्रिणां च कुले जातां क्षयिणां मनुजेश्वर ३४ लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता या च लक्षणैः । मनोज्ञां दर्शनीयां च तां भवान् वोढुमर्हति ॥ ३५ ॥ महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर । अवरा पतिता चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ॥ ३६ ॥ अग्निमुत्पाद्य यत्नेन क्रियाः सुविहिताश्च याः । वेदे च ब्राह्मणैः प्रोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेत् ॥ ३७ ॥ न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या रक्ष्या दाराश्च सर्वशः । अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादीर्ष्यां विवर्जयेत् ॥ ३८ ॥ अनायुष्यं दिवास्वप्नं तथाभ्युदितशायिना । प्रगे-

कुलमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ विवाह न करे, तुझे पीले नेत्रों वाली और कोढ़ी कन्याके साथ भी विवाह न करना चाहिये ३३ अपस्मारके कुल वाली तथा ओछे कुल वाली कन्याके साथ विवाह न करे, श्वेत कुष्ठ वाले कुलमें तथा क्षयरोगीके कुलमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ भी विवाह न करे ३४ जो कन्या लक्षणोंसे युक्त हो और गुणोंसे प्रसिद्ध हो और जो मनोहर दीखती हो ऐसी कन्याके साथ तुझे विवाह करना उचित है ॥ ३५ ॥ हे युधिष्ठिर!महाकुलकी कन्याके साथ अथवा अपने समान कुल वाली कन्याके साथ विवाह करे, परन्तु कल्याण चाहने वाला पुरुष हलकी जातिकी कन्यके साथ अथवा पतितकी कन्याके साथ विवाह न करे।।३६।।प्रयत्नपूर्वक अग्निको उत्पन्न करे फिर सब वेदोक्त और ब्राह्मणोक्त कर्मोंको करे ॥ ३७ ॥ स्त्रियोंसे ईर्षा न करे किन्तु सब स्त्रियोंकी रक्षा करे, स्त्रियोंसे ईर्षा करने पर आयुका नाश होजाता है अतः ईर्षाको त्यागदेय ॥३८॥ दिनमें सोनेसे आयु नष्ट होने लगती है,तथा सूर्योदय तक सोते रहनेसे भी आयु नष्ट होने लगती है सायंकाल और रात्रिमें उच्छिष्ट

निशामाशु यथा नैवोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै ॥ ३९ ॥ पारदार्यमना-युष्यं नापितोच्छिष्टता तथा । यत्नतो वै न कर्तव्यमभ्यासश्चैव भारत ॥४०॥ सन्ध्यायां च न भुञ्जीत न स्नायेन्न तथा पठेत् । प्रयतश्च भवेत्तस्यां न च किंचित् समाचरेत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणान् पूजयेच्चापि तथा स्नात्वा नराधिप । देवांश्च प्रणमेत् स्नातो गुरूंश्चाप्यभिवादयेत् ॥ ४२ ॥ अनिमंत्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः । अनर्चिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ॥४३॥ न चैकेन परिव्रज्यं न गंतव्यं तथा निशि । अनागतायां सन्ध्यायां पश्चिमायां गृहे वसेत् ॥ ४४ ॥ मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् । हितं चाप्यहितं चापि न विचार्यं नरर्षभ ॥ ४५ ॥ धनु-

होकर न सोवे ॥ ३९ ॥ परस्त्रियोंसे व्यभिचार करनेसे और क्षौर बनवानेके अनन्तर स्नान न करनेसे आयु नष्ट होजाती है, हे भरतवंशी राजन् ! सायंकालके समय कोई काम प्रयत्न और परिश्रमपूर्वक न करना चाहिये तथा सायंकालके समय अध्ययन भी न करना चाहिये ॥ १४० ॥ सायंकालके समय भोजन न करना चाहिये न स्नान करना चाहिये, न कुछ अभ्यास करना चाहिये और दूसरा भी कोई कर्म न करना चाहिये ४१ हे राजन् ! स्नान करनेके अनन्तर देवपूजन तथा ब्राह्मण और गुरुओंको प्रणाम करना चाहिये ४२ निमन्त्रण न पाने पर कहीं न जाना चाहिये, परन्तु यज्ञका दर्शन करनेके लिये विना निमन्त्रण भी जाना चाहिये, जहाँ पूजा न होती हो ऐसे प्रत्येक स्थलमें जानेसे आयुका नाश होने लगता है ४३ पुरुष अकेला परदेशमें न जाय तथा रात्रिमें अकेला बाहर न जाय, सायंसंध्याके समयसे पहिले घरमें आजाय ४४ माता, पिता तथा गुरुकी आज्ञाका पालन करे, हे राजन् ! उनकी बातमें हिताहितका विचार न करे ४५ वेद और धनुर्वेद सीखने

वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप । हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव ह ॥ ४६ ॥ यत्नवान् भव राजेन्द्र यत्नवान् सुखमेधते । अप्रधृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च ॥४७॥ प्रजापालनयुक्तश्च न क्षतिं लभते क्वचित् । युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत ॥ ४८ ॥ गान्धर्वशास्त्रं च कलाः परिज्ञेया नराधिप । पुराणमितिहासाश्च तथाख्यानानि यानि च ॥४९॥ महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव ते । पत्नी रजस्वला या च नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत् ॥ ५० ॥ स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः । पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान् भवेत् ५१ एतेन विधिना पत्नीमुपगच्छेत पण्डितः । ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि सर्वशः ॥ ५२ ॥ यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविध-

का हाथी और घोड़ेकी पीठ पर बैठनेका तथा रथमें बैठ कर घूमनेका अभ्यास करे ४६ हे राजेन्द्र ! तू प्रयत्नवान् बन, प्रयत्न करने वाला पुरुष सुखी होता है, शत्रु, भृत्य तथा उसके निजी मनुष्य भी उसका तिरस्कार नहीं कर सकते ४७ हे भरतवंशी राजन् ! प्रजापालनमें परायण रहने वाला राजा कहीं पर भी हानि नहीं उठा सकता, तुझे शब्दशास्त्र और युक्तिशास्त्र सीखना चाहिये ४८ हे राजन् ! गान्धर्वशास्त्र भी सीखना चाहिये, कलायें भी सीखनी चाहिये, पुराण इतिहास तथा आख्यान भी जानने चाहिये ४९ महात्मा पुरुषोंके चरित्र भी तुझे सदा सुनने चाहिये, रजस्वला स्त्रीसे गमन न करना चाहिये तथा उसका आह्वान भी न करना चाहिये ५० स्नान करनेके अनन्तर चौथे दिन रात्रिमें विचक्षण पुरुषको स्त्रीके पास जाना चाहिये, पाँचवे दिन जानेसे कन्या और छठेदिन जानेसे पुत्र उत्पन्न होता है ५१ उपरोक्तविधिके अनुसार पण्डित पत्नीके पास जाय, अपनी माताके और पिताके सम्बन्धियोंका तथा मित्रोंका पूर्ण सत्कार

दक्षिणैः । अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ॥५३॥ एप ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः । शेपस्त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्याहार्यो युधिष्ठिर ॥ ५४ ॥ आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः । आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हंत्यलक्षणम् ॥५५॥ आगमानां हि सर्वेपामाचारः श्रेष्ठ उच्यते । आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ॥५६॥ एतद्यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् । अनुकंप्य सर्ववर्णान् ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥ १५७ ॥

इतिश्रीमहाभारते, अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे आयुष्याख्याने चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

युधिष्ठिर उवाच । यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तेत भरतर्षभ । कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरंस्तद्ब्रवीहि मे ॥१॥ भीष्म उवाच । ज्येष्ठ-

करे५२और हे राजन् । शक्तिके अनुसार यज्ञ करे तथा उनमें नाना प्रकारकी दक्षिणायें देय और फिर अरण्यमें जाकर वानप्रस्थके धर्मोंका पालन करे ५३ हे राजा युधिष्ठिर ! मैंने तुमसे आयुकी वृद्धि करने वाले ये लक्षण संक्षेपमें कहे, इसके अतिरिक्त तीनों वेदोंको जानने वाले वृद्धोंसे दूसरे कर्म जानलेने चाहिये ॥ ५४ ॥ सदाचार कल्याण करने वाला है, सदाचार कीर्त्तिको बढ़ाने वाला है, आचारसे आयुकी वृद्धि होती है तथा आचार आयुको नष्ट करने वाले दुर्लक्षणोंका नाश कर डालता है, सब शास्त्रोंमें आचारको श्रेष्ठ कहा है धर्म आचारसे उत्पन्न होता है और आयु धर्मसे बढ़ती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजीने सब वर्णों पर दया करके इस यश देने वाले, आयु देने वाले, स्वर्ग देने वाले तथा महाकल्याणके स्थानरूप आचारका आख्यान कहा था, वह मैंने तुमसे कहा ॥ १५७ ॥ एकसौ चारवाँ अध्याय समाप्त १०४

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! ज्येष्ठ भाईको छोटे भाइओंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये और छोटे

यत्तात वर्तस्व ज्येष्ठोसि सततं भवान् । गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥२॥ न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम् । गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्तच्छिष्यस्य भारत ॥ ३ ॥ अंधः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वा बुधः । परिहारेण तद्ब्रूयाद्यस्तेषां स्याद्व्यतिक्रमः ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः । श्रियाभितप्ताः कौंतेय भेदकामास्तथारयः ॥५॥ ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः । हंति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते ॥ ६ ॥ अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः ।

भाइयोंको बड़े भाईके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये, यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे तात ! तू ज्येष्ठ भाईकी समान वर्ताव कर, क्योंकि-तू बड़ा भाई है, गुरु जिस प्रकार शिष्यके साथ वर्ताव करता है, तैसा ही वर्ताव तू छोटे भाइयोंके साथ कर ॥ २ ॥ यदि गुरु उत्तम बुद्धि वाला नहीं होता है तो शिष्य उसके सामने उत्तमरीतिसे वर्ताव नहीं कर सकते, हे भरतवंशी राजन ! गुरु यदि दीर्घदर्शी होता है तो शिष्य भी दीर्घदर्शी होते हैं ३ बड़ा भाई छोटे भाइयोंके सामने कभी अन्धे बननेका समय आवे तो अन्धा बन जाय अर्थात् उस बातको देखने पर भी न देखे और जड़ बननेका अवसर आवे तो जड़ बन जाय और विद्वान् बननेका समय आवे तो विद्वान् बन जाय और छोटे भाइयोंसे अपराध होगया हो तब भी उसका परिहार करके उनके साथ बातचीत करे ४ हे कौन्तेय ! यदि बड़ा भाई छोटे भाईको सीधी तौरसे या टेढ़ा बन कर सुधारने का प्रयत्न करता है, तो बहुतसे शत्रु इस प्रकारके अभ्युदयको देख कर कुढ़ने लगते हैं और वे भाई भाइयोंमें भेद डालनेकी इच्छा कर प्रयत्नरोंसे पर भाइयोंमें भेदभाव डाल देते हैं ५ ज्येष्ठ पुत्र वृद्धि करता है अथवा कुलका नाश कर डालता है, जिस

अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः ॥ ७ ॥ निकृती हि नरो लोकान् पापान् गच्छत्यसंशयम् । विदुलस्येव तत्पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम् ॥ ८ ॥ सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः । अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च ॥ ९ ॥ सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हंति सोदराः । नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १० ॥ अनुपघ्नन्पितुर्दायं जंघाश्रमफलोऽध्वगः । स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति ॥ ११ ॥ भ्रातॄणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत् सह । न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात् कदाचन ॥ १२ ॥ न ज्येष्ठो वावमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि

कुलमें ज्येष्ठ पुत्र दुराचरण करता है, वह सम्पूर्ण कुल नष्ट हो जाता है ६ यदि ज्येष्ठ भाई छोटे भाइयोंसे कुटिलताका बर्ताव करे तो उसको ज्येष्ठ भाई न मानना चाहिये और उसका अधिक भाग भी उसको नहीं देना चाहिये और राजाको उसको दण्ड देना चाहिये ७ कपट करने वाला पुरुष अवश्य ही पापलोकोंमें जाता है और उसके जन्मको बेतके पुष्पकी समान निरर्थक समझना चाहिये ८ जिस कुलमें सब अनर्थोंसे भरा हुआ पापी पुरुष उत्पन्न होता है, वह पुरुष कुलकी कीर्तिको नष्ट कर डालता है और अकीर्ति फैला देता है ९ यदि छोटे भाई उचित कर्म न करते हों तो वे (पिताके धनके) भाग पाने योग्य नहीं माने जासकते और (धर्मानुकूल व्यवहार करने वाले) छोटे भाइयों को भाग दिये बिना उस सबको ही अपना माल न समझ लेना चाहिये १० जो पुरुष पिताके धनको नष्ट न कर अपनी जंघाओं के परिश्रमसे प्रवास कर धन सञ्चय करता है, वह पुरुष अपने आप कमाया हुआ धन इच्छा न होने पर अपने भाइयों न देय ११ भाई बटे न हों (एक साथ रहते हों) और एक साथ ही व्यापार करते हों तो पिता पुत्रोंको कभी विषमभाग न देय १२ बड़ा

वा । यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत्तत्तदा चरेत् ॥ १३ ॥ धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो जनाः । दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान् पिता दश ॥ १४ ॥ दश चैव पितॄन्माता सर्वां वा पृथिवीमपि । गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः॥ १५ ॥ माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः । ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ॥१६॥ स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात् स चैतान् प्रतिपालयेत् । कनिष्ठा तं नमस्येरन् सर्वे छन्दानुवर्तिनः१७ तमेव चोपजीवेरन्यथैव पितरं तथा । शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ॥ १८ ॥ आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या

भाई अच्छे कर्म करने वाला हो अथवा बुरे कर्म करने वाला हो, तब भी छोटे भाइयोंको उसका अपमान न करना चाहिये, परन्तु स्त्री और छोटा भाई दुष्ट हो तो उनके ऊपर पूरा लक्ष्य रक्खे १३ धर्मज्ञ पुरुष धर्मको ही श्रेष्ठ कहते हैं, आचार्य दश उपाध्यायोंकी समान माना जाता है और पिता दश आचार्योंकी समान माना जाता है १४ और माता दश पिताकी समान अथवा सारी पृथ्वीकी समान है, माताका गौरव सारी पृथ्वीसे भी अधिक है, माताकी समान और कोई गुरु नहीं है १५ इस प्रकार माता उत्तम मानी जाती है और मनुष्य उसका मान करते हैं हे भरतवंशी राजन्!पिताके मरने पर बड़े भाईका वा पिताकी समान मान करना चाहिये १६ बडे भाईको छोटे भाइयोंकी आजीविका चलानी चाहिये तथा उनका पालन करना चाहिये और सब छोटे भाइयोंको ज्येष्ठ भाईकी इच्छानुसार वर्ताव करना चाहिये और उनको नमस्कार करना चाहिये १७ और पुत्र जैसे पिता पर आजीविका चलाते हैं इसी प्रकार छोटे भाइयोंको बड़े भाईके ऊपर आजीविका चलानी चाहिये, हे भरतवंशी राजन ! पिता और माता पुत्रके शरीरको ही उत्पन्न करते हैं१८परन्तु आचार्य

साजराऽमरा । ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ ॥१९॥ भ्रातुर्भार्या च तद्वत्स्याद्यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत् ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिर्नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

युधिष्ठिर उवाच । सर्वेषामेव वर्णानां म्लेच्छानां च पितामह । उपवासे मतिरियं कारणं च न विद्महे ॥१॥ ब्रह्मक्षत्रेण नियमाश्चर्तव्या इति नः श्रुतम् । उपवासे कथं तेषां कृत्यमस्ति पितामह ॥ २ ॥ नियमांश्चोपवासांश्च सर्वेषां ब्रूहि पार्थिव । आप्नोति कां गतिं तात उपवासपरायणः ॥ ३ ॥ उपवासः परं पुण्यमुपवासः परायणम् । उपोष्येह नरश्रेष्ठ किं फलं प्रतिपद्यते ॥ ४ ॥ अधर्मान्मुच्यते केन धर्ममाप्नोति वा कथम् । स्वर्गं पुण्यं च

के हाथसे जो जन्म होता है वह जन्म सत्य, अजर तथा अमर होता है, हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! ज्येष्ठ बहन माताकी समान मानी जाती है १९ और बालकपनमें जिस भाईकी स्त्रीने दुग्ध पिलाया हो उसको माताकी समान मानना चाहिये २० एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा कि-हे पितामह ! सब वर्णोंके पुरुष और म्लेच्छ तक उपवास करना चाहते हैं, परन्तु उसका कारण मुझे विदित नहीं है १ हे पितामह! हमने सुना है, कि-ब्राह्मणोंको और क्षत्रियोंको नियमोंका पालन करना चाहिये, परन्तु चारों वर्ण तथा और वर्ण किस प्रकार उपवास करे, यह मुझसे कहिये २ हे राजन्! नियमोंकी और उपवासोंकी विधि मुझसे कहिये और उपवास करने वालेको क्या गति मिलती है, यह भी बतलाइये ३ उपवास परम पुण्य देने वाला है, उपवास सदा करना चाहिये परन्तु हे नरश्रेष्ठ ! इस उपवासका फल क्या है ४ उपवास करने वाला कौनसे अधर्मसे छूट जाता है और उसको कैसा धर्म होता है

लभते कथं भरतसत्तम॥५॥उपोष्य चापि किं तेन प्रदेयं स्यान्न-
राधिप। धर्मेण च सुखानर्थाल्लभेद्येन ब्रवीहि तम्॥ ६॥ वैशं-
पायन उवाच। एवं ब्रुवाणं कौंतेयं धर्मज्ञं धर्मतत्त्ववित्। धर्मपुत्र-
मिदं वाक्यं भीष्मः शांतनवोब्रवीत्॥ ७॥ भीष्म उवाच। इदं
खलु मया राजन् श्रुतमासीत् पुरातनम्। उपवासविधौ श्रेष्ठा
गुणा ये भरतर्षभ॥ ८॥ ऋषिमंगिरसं पूर्वं पृष्टवानस्मि भारत।
यथामा त्वं तथैवाहं पृष्टवांस्तं तपोधनम्॥ ९॥ प्रश्नमेतं मया
पृष्टो भगवानग्निसम्भवः। उपवासविधिं पुण्यमाचष्ट भरतर्षभ१०
अंगिरा उवाच। ब्रह्मक्षत्रे त्रिरात्रं तु विहितं कुरुनन्दन। द्विस्त्रि-
रात्रमथैकाहं निर्दिष्टं पुरुषर्षभ॥ ११॥ वैश्याः शूद्राश्च यन्मा

तथा हे भरतवंशश्रेष्ठ!उसको किस प्रकार पुण्यमय स्वर्गलोक मिलता है५हे राजन्!उपवास करनेके अनन्तर पुरुषको किस वस्तु का दान देना चाहिये ? तथा कौनसे धर्मका आचरण करनेसे पुरुष सुख और अर्थको पाता है, यह मुझसे कहिये॥ ६॥ वैशम्पायन कहने लगे, कि—इस प्रकार धर्मज्ञ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने कहा, तब धर्मके तत्त्वको जाननेवाले शन्तनुके पुत्र भीष्म धर्मपुत्रसे इस प्रकार कहने लगे॥ ७॥ भीष्मजी बोले, कि हे भरतवंशके राजन्! उपवासकी विधिमें जो श्रेष्ठ गुण हैं, उनके सम्बन्धमें मैंने इस प्रकार सुना है॥ ८॥ हे भरतवंशी राजन्! इस समय तू जैसे प्रश्न कररहा है इसी प्रकार मैंने पहिले तपोधन अङ्गिरा ऋषिसे इस विषयमें प्रश्न किया था ९ हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष! इस प्रश्नके बूझने पर अग्निपुत्र भगवान् अङ्गिराने मुझसे उपवासकी पुण्य देनेवाली विधि कही थी॥ १०॥ अङ्गिराने कहा था, कि-हे कुरुनन्दन! विप्र और क्षत्रियके लिये तीन रात उपवास करनेका विधान है और (आश्रमान्तरमें) छः रात तकका उपवास करना भी

हादुपवासं मत्रक्रिरे । त्रिरात्रं वा द्विरात्रं वा तयोर्व्युष्टिर्न विद्यते १२
चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते । त्रिरात्रं न तु धर्मज्ञैर्विहितं
धर्मदर्शिभिः ॥ १३ ॥ पंचम्यां वापि षष्ठ्यां च पौर्णमास्यां च
भारत । उपोष्य एकभक्तेन नियतात्मा जितेन्द्रियः ॥१४॥ क्षमा-
वान् रूपसम्पन्नः श्रुतवांश्चैव जायते । नानपत्यो भवेत् प्राज्ञो
दरिद्रो वा कदाचन ॥ १५ ॥ यजिष्णुः पंचमीं षष्ठीं कुले भोज-
यते द्विजान् । अष्टमीमथ कौरव्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् । १६ ॥
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते । मार्गशीर्षं तु यो मास-
मेकभक्तेन संक्षिपेत् ॥१७॥ भोजयेच्च द्विजान् शक्त्या स मुच्ये-

---

लिखा है ॥ ११ ॥ परन्तु वैश्य और शूद्र यदि मूर्खतावश छः रात अथवा तीन रात्रिका उपवास करते हैं, तो उनको फल नहीं मिलता है ॥ १२ ॥ धर्मज्ञ धर्मशास्त्रकर्ताओंने वैश्य और शूद्रोंके लिये दो रातका उपवास करना लिखा है, उनके लिये त्रिरात्र उपवास करनेका निषेध है ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! पुरुष अपने मनको नियममें रखकर, जितेन्द्रिय होकर पञ्चमी, षष्ठी अथवा पूर्णिमाके दिन उपवास करे अथवा, एक समय भोजन करे ॥ १४ ॥ तो वह क्षमावान्, रूपसम्पन्न और शास्त्रवेत्ता होता है, वह कभी अपुत्र और दरिद्री नहीं होता है, किंतु बुद्धिमान् होता है ॥ १५ ॥ जो पुरुष पाँचवें दिन अथवा छठे दिन देवपूजन करके सकामभावसे उपवास करता है, वह पुरुष कुलमें महत्व पाकर ब्रह्मभोज करता है, हे कुरुकुलमें उत्पन्न हुए युधिष्ठिर! जो पुरुष अष्टमी अथवा कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन उपवास करता है, वह पुरुष दूसरे जन्ममें रोगरहित और पराक्रमी होकर उत्पन्न होता है, जो पुरुष सारे मार्गशीर्षमासमें एक समय भोजन करता है तथा ब्राह्मणोंको शक्तिके अनुसार भोजन कराता है, वह पुरुष व्याधि और पाप

द्व्याधिकिल्बिषैः। सर्वकल्याणसम्पूर्णः सर्वौषधिसमन्वितः १८
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते। कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते॥ १९॥ पौषमासन्तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षिपेत्। सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते॥ २०॥ माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्। श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते॥ २१॥ भगदैवतमासं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत्। स्त्रीषु वल्लभतां याति वश्याश्चास्य भवन्ति ताः।२२। चैत्रं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्। सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते ॥२३॥ निस्तरेदेकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः। नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥२४॥

मोंसे मुक्त होजाता है, सब प्रकारके कल्याणको पाता है और उसके पास सब प्रकारकी औषधियें रहती हैं १६॥ १८ (मार्गशीर्षमासमें) उपवास करने वाला दूसरे जन्ममें व्याधिरहित और पराक्रमी होकर उत्पन्न होता है खेतीवाड़ी वाला, बहुतसे धन वाला तथा बहुतसे धान्यवाला होता है॥ १९॥ हे कौन्तेय! जो पुरुष सारा पौषका महीना एक समय भोजन करके व्यतीत करता है वह पुरुष भाग्यवान् दर्शनीय तथा यशस्वी होता है२० जो पुरुष माघ मासमें एक समय भोजन करनेका नियम लेता है वह पुरुष श्रीमानोंके कुलमें उत्पन्न होता है और जातिमें महत्व पाता है॥ २१॥ जो पुरुष भगदैवत (फाल्गुन) मासमें एक समय भोजन करता है, वह पुरुष स्त्रियोंमें प्रिय होजाता है और स्त्रियें उसके वशमें होजाती हैं २२ जो पुरुष नियमको धारण करके चैत्रमासमें एक समय भोजन करता है, वह पुरुष सुवर्ण, मणि और मोतियोंसे भरपूर कुलमें उत्पन्न होता है.२३ जो पुरुष अथवा स्त्री इन्द्रियोंको वशमें करके सारे वैशाखके महीने एक समय भोजन करता है, वह जातिमें उत्तम होजाता

ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् । ऐश्वर्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान् स्त्री वा प्रपद्यते ॥२५॥ आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः । बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते॥२६॥ श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् । यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥ २७ ॥ प्रौष्ठपदं तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः । गवाढ्यं स्फीतमचलमैश्वर्यं प्रतिपद्यते ॥ २८ ॥ तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् । मृजावान् वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥ २९ ॥ कार्तिकं तु नरो मासं यः कुर्यादेकभोजनम् । शूरश्च बहुभार्यश्च कीर्तिमांश्चैव जायते ॥ ३० ॥ इति मासा नरव्याघ्र क्षिपत्तां परिकीर्तिताः । तिथीनां नियमा ये तु शृणु

है २४जो पुरुष अथवा स्त्री ज्येष्ठमासमें एक समय भोजन करती है उसको अतुल ऐश्वर्य मिलता है२५ जो पुरुष सावधान होकर आषाढके महीनेमें एक समय भोजन करता है उस पुरुषको बहुत सा धन धान्य मिलता है और उसके बहुतसे पुत्र होते हैं २६ जो पुरुष श्रावणके महीनेमें एक समय भोजन करता है और नियमोंका पालन करता है, वह पुरुष जहाँ जाता है,तहाँ उसका अभिषेक होता है और वह अपने सम्बन्धियोंकी उन्नति करता है२७जो पुरुष भाद्रपदमें एक समय भोजन करता है वह पुरुष बहुतसी गौओंका स्वामी होता है और उसको शत्रुरहित उज्ज्वल और अचल ऐश्वर्य मिलता है ॥२८॥ जो पुरुष आश्विनमासमें एक समय भोजन करता है वह पुरुष दूसरे जन्ममें शुद्ध आचार वाला बहुतसे वाहनोंवाला तथा बहुतसे पुत्रोंवाला होकर उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ जो पुरुष कार्तिक मासमें एक समय भोजन करता है, वह पुरुष दूसरे जन्ममें शूरवीर कीर्तिमान् और बहुत सी स्त्रियोंका पति होता है ३० हे नरव्याघ्र ! इस प्रकार उपवास करनेवालोंके बारह महीनोंके फल मैंने तुमसे कहे, अब

तानपि पार्थिव ॥३१॥ पक्षे पक्षे गते यस्तु भक्तमश्नाति भारत।
गवाढ्यो वहुपुत्रश्च वहुभार्यः स जायते ॥ ३२ ॥ मासि मासि
त्रिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश । गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःस-
पत्नमनाविलम् ॥ ३३ ॥ एते तु नियमाः सर्वे कर्तव्याः शरदो
दश । द्वे चान्ये भरतश्रेष्ठ प्रवृत्तिमनुवर्तता ॥३४॥ यस्तु प्रातस्तथा
सायं भुञ्जानो नान्तरा पिवेत् । अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो
जातवेदसम् ॥ ३५ ॥ षड्भिः स वर्षैर्नृपते सिध्यते नात्र संशयः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३६ ॥ अधिवासे
सोप्सरसां नृत्यगीतविनादिते। रमते स्त्रीसहस्राढ्ये सुकृती विरजो
नरः ॥ ३७ ॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभं विमानमधिरोहति । पूर्णं वर्ष-

हे राजन् ! अब तिथियोंके जो २ नियम हैं,उनको भी तू सुन३१
हे भरतवंशी राजन्!जो पुरुष प्रत्येक महीने एक२पक्ष बीतने पर
दूसरे पक्षमें एक २ समय भोजन करता है, वह मनुष्य बहुतसी
गौओं वाला, बहुतसे पुत्रों वाला और बहुतसी स्त्रियों वाला
होता है ३२ जो पुरुष बारह वर्ष तक प्रत्येक मासमें तीन रात्रि
उपवास करता है वह पुरुष शत्रुरहित मनुष्योंका अधिपतित्व
पाता है और उसको कभी अपयश नहीं मिलता है ॥ ३३ ॥
हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! प्रवृत्तिमार्गके प्रेमियोंका इन सब नियमों
का बारह वर्ष तक पालन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो पुरुष
प्रातःकाल तथा सायंकाल भोजन करता है और बीचमें जल भी
नहीं पीता है,नित्य अहिंसापरायण रहता है अग्निमें होम करता है
हे राजन्!वह पुरुष छःवर्षमें सिद्ध होजाता है और उस मनुष्यको
अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है,उस पुरुषके पाप दूर होजाते हैं
और वह पुण्यशाली पुरुष नृत्य और गीतोंसे गुञ्जारते हुए
सहस्रों स्त्रियोंसे भरपूर अप्सराओंके लोकमें रमणकरता है३५-३७
और वह तपे हुए सुवर्णकी समान झलझलाते हुए विमानमें

सहस्रं च ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३८ ॥ तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते । यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकाहारो भवेन्नरः ३९ अतिरात्रस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते । दशवर्षसहस्राणि स्वर्गे च स महीयते ॥४०॥ तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते । यस्तु संवत्सरं पूर्णं चतुर्थं भक्तमश्नुते ॥ ४१ ॥ अहिंसानिरतो नित्यं सत्यवाग्विजितेन्द्रियः । वाजपेयस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ॥ ४२ ॥ दशवर्षसहस्राणि स्वर्गे लोके महीयते । षष्ठे काले तु कौन्तेय नरः संवत्सरं क्षिपन् ॥ ४३ ॥ अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । चक्रवाकप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४४ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते । अष्टमेन तु भक्तेन जीवन् संवत्सरं नृप ॥ ४५ ॥ गवामयस्य

बैठता है और एक सहस्र वर्ष तक ब्रह्मलोकमें पूजा पाता है ३८ उसका पुण्य क्षीण होने पर वह इस लोकमें उत्पन्न होकर उत्तम कीर्ति पाता है, जो पुरुष सारे वर्ष एक समय भोजन करता है वह पुरुष अतिरात्र यज्ञके फलको पाता है और वह स्वर्गमें दश सहस्र वर्ष तक पूजा पाता रहता है ॥ ३९ ॥ वह पुण्य भोगनेके अनन्तर इस लोकमें उत्पन्न होकर उत्तम महत्त्व पाता है जो पुरुष वर्ष भर तक दिनभर उपवास करके दूसरे दिन रात्रिमें भोजन करता है, सदा अहिंसापरायण रहता है, सत्य बोलता है और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उस पुरुषको वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ ४१-४२ ॥ उस मनुष्यकी स्वर्गमें दश सहस्र वर्ष तक पूजा होती है हे कौन्तेय ! जो पुरुष एक वर्ष तक छठे समय अर्थात् तीसरे दिन सायंकालके समय भोजन करता है, उस मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वह पुरुष चक्रवाकोंसे जुते हुए विमानमें बैठ कर स्वर्गमें जाता है ॥ ४४ ॥ और वह चालीस सहस्र वर्ष तक स्वर्गमें आनन्द करता है,

यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४६ ॥ पञ्चाशतं सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते । पक्षे पक्षे गते राजन् योऽश्नीयाद्वर्षमेव तु ॥ ४७ ॥ षण्मासानशनं तस्य भगवानंगिराब्रवीत् । षष्टिर्वर्षसहस्राणि दिवमावसते च सः ॥ ४८ ॥ वीणानां वल्लकीनां च वेणूनां च विशाम्पते । सुघोषैर्मधुरैः शब्दैः सुप्तः स प्रतिबोध्यते ॥४९॥ संवत्सरमिहैकं तु मासि मासि पिबेदपः । फलं विश्वजितस्तात प्राप्नोति स नरो नृप ॥ ५० ॥ सिंहव्याघ्रप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति । सप्तति च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ५१ ॥ मासादूर्ध्वं नरव्याघ्र नोपवासो विधीयते । विधिं त्वनशनस्याहुः पार्थ धर्मविदो जनाः ॥५२॥ अनार्तो व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः ।

हे राजन् ! जो पुरुष एक वर्ष तक आठवें समय अर्थात् चौथे दिन सायंकालको भोजन करता है उस पुरुषको गवामय यज्ञका फल मिलता है और वह हंस तथा सारसोंसे जुते हुए विमानमें बैठ कर स्वर्गमें जाता है ॥ ४६ ॥ और वह पचास सहस्र वर्ष तक स्वर्गमें आनन्दपूर्वक रहता है हे राजन् ! जो पुरुष एक वर्ष तक एक पक्ष बीतने पर दूसरे पक्षमें भोजन करता है ४७ उसको छः मास तक अनशन व्रत करनेका पुण्य मिलता है, यह भगवान् अंगिरा मुनिने कहा है और वह पुरुष साठ सहस्र वर्ष तक स्वर्गमें रहता है ॥ ४८ ॥ और हे राजन् ! वीणा, वल्लकी और बाँसलीके अतिमधुर शब्दोंसे उस पुरुषको जाग्रत किया जाता है ॥ ४९ ॥ एक वर्ष तक एक २ मासमें जल पीने वालेको हे राजन् ! विश्वजित् यज्ञका फल मिलता है ॥ ५० ॥ और वह सिंह तथा व्याघ्रोंसे जुते हुए विमानोंमें बैठ कर स्वर्गमें सत्तर सहस्र वर्ष तक आनन्द करता है ॥ ५१ ॥ हे नरव्याघ्र ! एक महीनेसे अधिकका उपवास नहीं करना चाहिये, परन्तु धर्मवेत्ता

पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥५३॥ दिव्यं हंसप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति। शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो ॥५४
शतं चाप्सरसः कन्या रमयन्त्यपि तं नरम्। आर्तो वा व्याधितो वापि गच्छेदनशनं तु यः ॥ ५५ ॥ शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो। काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तश्चैव प्रबोध्यते ॥५६॥ सहस्रहंसयुक्तेन विमानेन तु गच्छति। स गत्वा स्त्रीशताकीर्णे रमते भरतर्षभ ॥ ५७ ॥ क्षीणस्याप्यायनं दृष्टं क्षतस्य क्षतरोहणम्। व्याधितस्यौषधग्रामः क्रुद्धस्य च प्रसादनम् ॥५८॥ दुःखितस्यार्थमानाभ्यां दुःखानां प्रतिषेधनम्। न चैते स्वर्गकामस्य रोचन्ते

पुरुषोंने उपवास करनेकी विधि कही है ५२ जो मनुष्य दुःखी न हो तथा व्याधिरहित हो उसको उपवास करना चाहिये उस मनुष्यको पद २ में यज्ञका फल मिलता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ५३ और वह पुरुष हंसोंसे जुते हुए विमानोंमें बैठ कर जाता है तथा स्वर्गलोकमें एक लाख वर्ष तक आनन्दमें रहता है ५४ और उसके साथ अप्सराओंकी सौ कन्याएँ तहाँ रमा करती हैं यदि दुःखी अथवा रोगी पुरुष अनशन करता है तो वह एक लाख वर्ष तक स्वर्गमें आनन्द करता है और उसको कटिमेखला और नूपुरोंके शब्दसे जगाया जाता है ५५-५६ हे राजन्! वह पुरुष एक सहस्र हंसोंसे जुते हुए विमानमें बैठ कर स्वर्गमें भ्रमण करता है और हे भरतवंशश्रेष्ठ! वह पुरुष सैंकड़ों स्त्रियोंसे भरपूर स्वर्गमें अप्सराओंसे रमण करता है ५७ औषध क्षीण हुए पुरुषको पुष्ट कर देती हैं, औषध घाव पडने पर उसको भर देती हैं, औषधें रोगीके लिये ही हैं, इस जगत् में क्रोधी पुरुषको प्रसन्न करनेवाले पदार्थ भी हैं ५८॥ दुःखित पुरुषका दुःख धन तथा सन्मानसे दूर किया जाकसता है, परन्तु जिस पुरुषको स्वर्गकी कामना होती है और जो स्वर्गमें सुख

सुखमेधसः ॥ ५९ ॥ अतः सकामसंयुक्ते विमाने हेमसन्निभे । रमते स्त्रीशताकीर्णे पुरुषोऽलंकृतः शुचिः ॥६०॥ स्वस्थः सफलसंकल्पः सुखी विगतकल्मषः । अनश्नन् देहमुत्सृज्य फलं प्राप्नोति मानुषः ॥ ६१ ॥ बालसूर्यप्रतीकाशे विमाने हेमवर्चसि । वैदूर्यमुक्ताखचिते वीणामुरजनादिते ॥ ६२ ॥ पताकादीपिकाकीर्णे दिव्यघण्टानिनादिते । स्त्रीसहस्रानुचरिते स नरः सुखमेधते ६३ यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु पाण्डव । तावन्त्येव सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ६४ ॥ नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः । न धर्मात् परमो लाभस्तपो नानशनात् परम् ६५

मानता है उस पुरुषको क्षीण तथा घायल आदि होने पर भी पुष्टिकारक तथा घावको भरनेवाली औषधियें नहीं रुचतीं वह तो दुःखको सह अपने तपको ही वढाया करता है ॥५९॥ इसी कारण तप करनेवाला पुरुष अलंकारोंसे अलंकृत होकर तथा भीतर बाहरसे पवित्र होकर सैंकडों स्त्रियोंसे भरपूर सुवर्णकी समान कान्तिवाले और इच्छानुसार चलने वाले विमानमें बैठकर रमण करता है ॥ ६० ॥ वह स्वस्थ रहता है, उसके संकल्प सफल होते हैं, वह सुखी रहता है और उसके पाप नष्ट होजाते हैं, जो पुरुष अनशनव्रतको धारण करके अपने देहको त्यागदेता है, उसको दूसरे जन्ममें फल मिलता है ६१ वह बालसूर्यकी समान तेजस्वी, सुवर्णकी समान कीर्त्तिमान्, वैदूर्यमणि तथा मोतियोंसे जड़े हुए, वीणा और मृदङ्गोंकी ध्वनिसे गुञ्जारतेहुए, पताका और दीपकोंसे गछेहुए दिव्य घण्टोंसे गुञ्जारते हुए सहस्रों स्त्रियें जिसमें अनुचरियोंकी समान घूमती हैं,ऐसे विमान में बैठकर सुख भोगता है ६२-६३ हे पाण्डव ! उसके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने सहस्र वर्ष तक वह स्वर्गमें आनन्द करता है ६४ वेदकी समान और कोई उत्तम शास्त्र नहीं है,

ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पावनं दिवि चेह च । उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म न विद्यते ॥ ६६ ॥ उपोष्य विधिवद्देवास्त्रिदिवं प्रतिपेदिरे । ऋषयश्च परां सिद्धिमुपवासैरवाप्नुवन् ॥ ६७ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि विश्वामित्रेण धीमता । क्षान्तमेकेन भक्तेन तेन विप्रत्वमागतः ॥ ६८ ॥ च्यवनो जमदग्निश्च वसिष्ठो गौतमो भृगुः । सर्वे एव दिवं प्राप्ताः क्षमावन्तो महर्षयः ॥६९॥ इदमंगिरसा पूर्वं महर्षिभ्यः प्रदर्शितम् । यः प्रदर्शयते नित्यं न स दुःखमवाप्नुते ॥ ७० ॥ इमं तु कौन्तेय यथाक्रमं विधिं प्रवर्तितं ह्यंगिरसा महर्षिणा । पठेच्च यो वै शृणुयाच्च नित्यदा न विद्यते तस्य नरस्य किल्बिषम् ॥ ७१ ॥ विमुच्यते चापि स सर्वसंकरैर्न

मताकी समान और कोई गुरु नहीं है धर्मसे श्रेष्ठ और कोई लाभ नहीं है कोई तप उपवाससे विशिष्ट नहीं है ६५ इस लोकमें तथा परलोकमें ब्राह्मणोंसे अधिक पवित्र करनेवाला और कोई पदार्थ नहीं है, इसी प्रकार उपवासकी समान और कोई तप नहीं है ६६ देवताओंने विधिपूर्वक उपवास करके स्वर्ग पाया है और ऋषियोंने उपवास करके परमसिद्धि पाई है ॥ ६७ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रने एक सहस्र दिव्य वर्षों तक एक समय भोजन किया था, अतएव उनको ब्राह्मणत्व मिला था ॥ ६८ ॥ च्यवन, जमदग्नि, वसिष्ठ, गौतम, भृगु इन सब क्षमावान् महर्षियोंने उपवास करके स्वर्ग पाया है ६९ पहिले महर्षि अङ्गिराने उपवासकी विधि कही थी, जो पुरुष उपवासकी विधिको सदा दूसरोंसे कहता रहता है वह दुःख नहीं पाता है ७० हे कौन्तेय ! इस उपवासकी विधिको महर्षि अङ्गिराने अनुक्रमसे प्रवृत्त किया है, जो पुरुष इस उपवासविधिको नित्य सुनता है तथा पढ़ता है उस पुरुषका पाप नष्ट होजाता है ७१ और वह पुरुष सब प्रकारके संकर दोषोंसे मुक्त होजाता है दोष उस पुरुषके मनका पराभव नहीं कर सकते,

षास्य दोषैरभिभूयते मनः । विद्यानिज्ञानं च विजानते रुतं ध्रुवां च कीर्तिं लभते नरोत्तमः ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उपवासविधौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

युधिष्ठिर उवाच । पितामहेन विधिवद्यज्ञाः प्रोक्ता महात्मना। गुणाश्चैषां यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः॥१॥न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं पितामह । बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः ॥ २ ॥ पार्थिवै राजपुत्रैर्वा शक्याः प्राप्तुं पितामह । नार्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः ॥ ३ ॥ यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं सदा भवेत् । अर्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः ४ तुल्यो यज्ञफलैरेतैस्तन्मे ब्रूहि पितामह । भीष्म उवाच । इदमङ्गिरसा प्रोक्तमुपवासफलात्मकम् ॥ ५ ॥ विधिं यज्ञफलैस्तुल्यं

वह पुरुष पशु पक्षियोंके शब्दको जानता है तथा वह पुरुष दूसरे पुरुषोंमें श्रेष्ठ माना जाता है और अटल कीर्त्ति पाता है ॥७२॥ एकसौ छठा अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्मपितामह ! आपने विधिपूर्वक यज्ञ कहे और उनके इस लोकमें तथा परलोकमें मिलने वाले सब फल भी यथार्थ रीतिसे कहे १ परन्तु हे पितामह ! दरिद्र उन यज्ञोंको नहीं कर सकता क्योंकि-यज्ञोंमें अनेक वस्तुएँ तथा अनेक प्रकारकी सामग्रियें चाहियें २ हे पितामह ! राजा और राजकुमार यज्ञ कर सकते हैं, परन्तु निर्धन मनुष्य, विद्याहीन पुरुष और अकेले पुरुष इन यज्ञोंको नहीं कर सकते ३ इस लिये दरिद्र, निर्धन, विद्या आदि गुणोंसे हीन, अकेले अथवा सहायतारहित पुरुषभी जिस कर्मको कर सकते हों और जिसका फल यज्ञोंके फलकी समान मिलता हो, हे पितामह ! उस कर्मका मुझसे वर्णन करिये भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! अंगिराने

तन्निबोध युधिष्ठिर । यस्तु कल्यं तथा सायं भुञ्जानो नांतरा
पिबेत् ॥६॥ अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् । षड्भि-
रेव स वर्षैस्तु सिध्यते नात्र संशयः ॥ ७॥ तप्तकांचनवर्णं च
विमानं लभते नरः । देवस्त्रीणामधीवासे नृत्यगीतनिनादिते ८
प्राजापत्ये वसेत् पद्मं वर्षाणामग्निसंनिभे । त्रीणि वर्षाणि यः
प्राशेत् सततं त्वेकभोजनम् ॥ ६ ॥ धर्मपत्नीरतो नित्यमग्निष्टोम-
फलं लभेत् । यज्ञं बहुसुवर्णं वा वासवप्रियमाचरेत् ॥ १० ॥
सत्यवान् दानशीलश्च ब्रह्मण्यश्चानसूयकः । क्षांतो दांतो जित-
क्रोधः स गच्छति परां गतिम् ॥ ११ ॥ पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे
विमाने हंसलक्षणे । द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोप्सरोभिर्वसेत् सह १२

फल देने वाले उपवासकी विधि कही है४-५उसका फल यज्ञोंके फलकी समान है, उसको तू सुन, जो पुरुष प्रभातमें और सायं-कालमें भोजन करता है और बीचमें जलका भी पान नहीं करता है, किसीकी मन वाणी और शरीरसे हिंसा नहीं करता है सदा अग्निमें होम करता है वह पुरुष छः वर्षमें अवश्य ही सिद्ध हो जाता है ७ और वह पुरुष दमकते हुए सुवर्णके विमानमें बैठता है और नृत्य तथा गीतोंसे गुञ्जरित होते हुए देवांगनाओंके जहाँ घर हैं ऐसे अग्निकी समान प्रकाशवान् प्रजापतिके लोकमें एक पद्म वर्ष तक रहता है, जो पुरुष तीन वर्ष तकसदा एक समय भोजन करता है तथा धर्मपत्नीमें परायण रहता है उसको अग्नि-ष्टोम यज्ञका फल मिलता है और जो पुरुष इन्द्रका प्रिय यज्ञ करके बहुतसे सुवर्णका दान देता है वह पुरुष सत्यवादी, दानशील, ब्राह्मणभक्त, ईर्षाशून्य क्षमाशील, इन्द्रियोंका निग्रहकर्ता और क्रोधरहित होकर परमगति पाता है ८-११ और वह पुरुष दो पद्म वर्षों तक श्वेत मेघोंकी समान वर्णवाले हंसोंसे जुते हुए विमानमें बैठ कर अप्सराओंके साथ वसता है१२ जो पुरुष सदा

द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् । सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् १३ अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्पप्रबोधनः । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१४॥ हंससारसयुक्तं च विमानं लभते नरः । इन्द्रलोके च वसते वरस्त्रीभिः समावृतः ॥ १५ ॥ तृतीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् । सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १६ ॥ अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्पप्रबोधनः।अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १७ ॥ मयूरहंसयुक्तं च विमानं लभते नरः। सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरोभिर्वसेत् सह ॥ १८ ॥ निवर्तनं च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विभुः। दिवसे यश्चतुर्थे तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ १९ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ २० ॥

बारह मास तक दूसरे दिन एक समय भोजन करता है और नित्य अग्निमें होम करता है १३ नित्य प्रातः काल उठता है सदा अग्नि सेवामें परायण रहता है, उस पुरुषको अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है १४ और उसको हंसोंसे जुता हुआ विमान मिलता है, और वह इन्द्रलोकमें उत्तम स्त्रियोंसे घिर कर निवास करता है १५ जो पुरुष बारह मास तक तीसरे२ दिन एक बार भोजन करता है तथा अग्निमें नित्य होम करता है, नित्य अग्निहोत्रमें परायण रहता है नित्य प्रभातमें उठा करता है उसको अतिरात्र नामक यज्ञका उत्तम फल मिलता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ और उस पुरुषको मयूरों और हंसोंसे जुतो हुआ विमान मिलता है और वह पुरुष सप्तर्षियोंके लोकमें सदा अप्सराओंके साथ विहार करता रहता है ॥ १८ ॥ और वह समर्थ पुरुष तहाँ तीन पद्म वर्ष तक निवास करता है, जो पुरुष चौथे २ दिन एक समय बारह मास तक भोजन करता है और अग्निमें होम करता है उस पुरुषको वाज-

इन्द्रकन्याभिरूढं च विमानं लभते नरः। सागरस्य च पर्यंते वासवं लोकमावसेत्॥ २१ ॥ देवराजस्य च क्रीडां नित्यकालमवेक्षते । दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ २२ ॥ सदा द्वादशमांसास्तु जुह्वानो जातवेदसम् । अलुब्धः सत्यवादी च ब्रह्मण्यश्चाविहिंसकः ॥ २३ ॥ अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत् । जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं हंसलक्षणम् ॥ २४ ॥ सूर्यमालासमाभासमारोहत् पाण्डुरं गृहम् । आवर्तनानि चत्वारि तथा पद्मानि द्वादश ॥ २५ ॥ शराग्निपरिमाणं च तत्रासौ वसते सुखम् । दिवसे यस्तु षष्ठे वै मुनिः प्राशेत भोजनम् ॥ २६ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । सदा त्रिषवणस्नायी

पेय नामक सर्वोत्तम यज्ञका फल मिलता है ॥ २० ॥ और उस पुरुषको जिसमें इन्द्रकी कन्याएँ बैठी होती हैं, ऐसा विमान मिलता है और वह पुरुष लाखों वर्ष तक इन्द्रके लोकमें निवास करता ॥ २१ ॥ और वह पुरुष सदा देवराजकी क्रीड़ाको देखा करता है और जो पुरुष बारह मास तक पाँचवें दिन एक समय भोजन करता है, अग्निमें होम करता है, लोभ नहीं करता है, सत्यभाषण करता है, ब्राह्मणोंकी भक्ति करता है, किसीकी हिंसा नहीं करता है, किसीसे ईर्षा नहीं करता है, पापकर्म नहीं करता है, उस पुरुषको द्वादशाह यज्ञका फल मिलता है और उस पुरुषको सुवर्णके हंसोंसे जुता हुआ, सूर्यकी मालाकी समान कान्तिमान् विमान बैठनेको मिलता है, श्वेत वर्ण वाला बड़ा भारी मन्दिर मिलता है और वह पुरुष चार और बारहको जोड़ने पर सोलह और शराग्नि (शर ५ अग्नि अर्थात् सात गुणे ३५ कुल)इक्यावन पद्म पर्यंत सुखसे स्वर्गमें निवास करता है जो पुरुष मौनव्रत धारण करके बारह महीने तक छठे दिन एक समय भोजन करता है, अग्निमें होम करता है,नित्य तीन समय

ब्रह्मचार्यनसूयकः ॥ २७ ॥ गवां मेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । अग्निज्वालासमाभासं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ २८ ॥ शातकुम्भसमायुक्तं साधयेद्यानमुत्तमम् । तथैवाप्सरसामंके प्रतिसुप्तः प्रबोध्यते ॥ २९ ॥ नूपुराणां निनादेन मेखलानां च निःस्वनैः । कोटीसहस्रं वर्षाणां त्रीणि कोटिशतानि च ॥ ३१ ॥ पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च । अयुतानि च पञ्चाशदृक्षचर्मशतस्य च ॥ ३१ ॥ लोम्नां प्रमाणेन समं ब्रह्मलोके महीयते । दिवसे सप्तमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ३२ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्यं समाचरन् ॥ ३३ ॥ सुमनो वर्णकं चैव मधु मांसं च वर्जयन् । पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकं च गच्छति ॥ ३४ ॥ तत्र तत्र हि सिद्धार्थो देवकन्याभिरर्च्यते । फलं बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य

स्नान करता है, ब्रह्मचर्य पालता है, ईर्षा नहीं करता है उस पुरुषको गोमेध यज्ञका अनुत्तमफल मिलता है और उसको अग्नि की ज्वालाकी समान कान्तिवाला हंसों और मयूरोंसे सेवित सुवर्णकी पत्तरोंसे जड़ा हुआ उत्तम विमान मिलता है और उस विमानमें वह अप्सराओंकी गोदीमें सोता है ॥२२-२९॥ तथा उनकी झाँझनोंकी झनकार और कटिमेखलाके शब्दसे जाग्रत होता है और वह पुरुष सहस्र करोड़, तीनसौ करोड़, अठारह पद्म, दो पताका (पद्मसे अधिक संख्याविशेष), पचास दश सहस्र, एक सौ ऋक्षचर्म (संख्याविशेष) तथा शरीरके साढ़े तीन करोड़ रोम हैं इतने वर्षों तक ब्रह्मलोकमें पूजा पाता है। जो पुरुष बारह महीने तक सातवें २ दिन एक समय भोजन करता है, अग्निमें होम करता है, वाणीको नियममें रखता है, ब्रह्मचर्य पालता है, पुष्पोंकी माला और मद्य मांस आदिको त्याग देता है वह पुरुष पवनलोकमें और इन्द्रलोकमें जाता है ।३०-३४।

लभते नरः ॥ ३५ ॥ संख्यामतिगुणां चापि तेषु लोकेषु मोदते । यस्तु संवत्सरं क्षांतो भुङ्क्तेऽहन्यष्टमे नरः ॥ ३६ ॥ देवकार्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् । पौंडरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्य-नुत्तमम् ॥ ३७ ॥ पद्मवर्णनिभं चैव विमानमधिरोहति । कृष्णाः कनकगौर्यश्च नार्यः श्यामास्तथापराः ॥ ३८ ॥ वयोरूपविला-सिन्यो लभते नात्र संशयः।यस्तु संवत्सरं भुंक्ते नवमे नवमेऽहनि ३९ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४० ॥ पुण्डरीकप्रकाशं च विमानं लभते नरः । दीप्तसूर्याग्नितेजोभिर्दिव्यमालाभिरेव च ॥ ४१ ॥ नीयते रुद्रकन्याभिः सोंतरिक्षं सनातनम् । अष्टादशसहस्राणि

और उस सिद्धार्थ पुरुषको यत्र तत्र देवकन्याएँ पूजा करती हैं और वह पुरुष जिसमें बहुतसे सुवर्णकी दक्षिणा दीजाती है, ऐसे यज्ञके फलको पाता है ३५ और वह उन लोकोंमें बहुत वर्षों तक अतिसुख पाता है, जो पुरुष एक वर्ष तक आठवें दिन भोजन करता है, सब पर क्षमादृष्टि रखता है, देवताओंका सदा पूजन करता है और अग्निमें होम करता है,उस पुरुषको पुण्ड-रीक नामक यज्ञका सर्वश्रेष्ठ फल मिलता है । ३६। ३७ । तथा वह पद्मके समान वर्णवाले विमानमें बैठ कर घूमता है और उस पुरुषको श्यामवर्ण, सुवर्णवर्णा तथा गौरवर्णा, श्यामायें तथा तरुण अवस्था वाली, रूपवती तथा विलास करने वाली स्त्रियें मिलती हैं, जो पुरुष एक वर्ष तक नौवें दिन एक समय भोजन करता है और अग्निमें सदा होम करता है, उसको एक सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका सर्वश्रेष्ठ फल मिलता है । ३८ । ४० । और उस पुरुषको कमलकी समान श्वेत वर्ण वाला एक विमान मिलता है और प्रदीप्त सूर्य तथा अग्निकी समान तेजस्वी दिव्य-माला पहिरने वाली रुद्रकन्याएँ उस पुरुषको सनातन अन्तरिक्ष

वर्षाणां कल्पमेव च ॥ ४२ ॥ कोटीशतसहस्रं च तेषु लोकेषु मोदते । यस्तु संवत्सरं भुंक्ते दशाहे वै गते गते ॥ ४३ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । ब्रह्मकन्यानिवासे च सर्वभूतमनोहरे ॥ ४४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । रूपवत्यश्च तं कन्या रमयन्ति सनातनम् ॥ ४५ ॥ नीलोत्पलनिभैर्वर्णै रक्तोत्पलनिभैस्तथा । विमानं मण्डलावर्तमावर्तगहनाकुलम् ॥४६॥ सागरोर्मिप्रतीकाशं स लभेद्यानमुत्तमम् । विचित्रमणिमालाभिर्नादितं शङ्खनिःस्वनैः ॥ ४७ ॥ स्फाटिकैर्वज्रसारैश्च स्तंभैः सुकृतवेदिकम् । आरोहति महद्यानं हंससारसनादितम् ४८ एकादशे तु दिवसे यः मासे प्राशते हविः । सदा द्वादशमासांस्तु

में भ्रमण करानेके लिये लेजाती हैं और वह पुरुष अठारह सहस्र वर्ष तक और एक लाख कल्प तक भिन्न २ लोकोंमें आनन्द करता है, जो पुरुष एक वर्ष तक सदा दशवें दिन एक समय भोजन करता है तथा अग्निमें होम करता है, वह पुरुष सब प्राणियोंके मनको आनन्द देने वाली ब्रह्मकन्या (सरस्वती) के निवासस्थान ब्रह्मलोकमें निवास करता है ।४१-४४। उसको सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका उत्तमोत्तम फल मिलता है, उस पुरुषको रूपवती कन्याएँ आनन्द देती हैं ४५ और उस पुरुषको श्याम-कमल तथा रक्तकमलकी समान वर्णवाला, मण्डलाकार और भ्रमरकी समान घूमनेवाला और समुद्रकी तरंगोंकी समान ऊपर नीचे गमनकरने वाला विमान मिलता है उसमें अनेक प्रकारके मणियोंकी मालायें टँगी होती हैं और वह शंखोंके शब्दसे गूँजता रहता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उसमें स्फटिकमणि और रत्नोंके स्तंभ और वेदियें होती हैं, ऐसे हंसोंसे और सारसोंसे गुञ्जारते हुए विमानमें बैठ कर वह आनन्दमें भ्रमण करता है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष वर्ष भर तक ग्यारहवें दिन हविका भोजन करता है तथा

जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ४९ ॥ परस्त्रियं नाभिलषेद्वाचाथ मनसा-
पि वा । अनृतं च न भाषेत माता पित्रोः कृतेऽपि वा ॥ ५० ॥
अभिगच्छेन्महादेवं विमानस्थं महाबलम् । अश्वमेधसहस्रस्य फलं
प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥५१॥ स्वायंभुवं च पश्येत विमानं समुपस्थि-
तम् । कुमार्यः कांचनाभासा रूपवत्यो नयन्ति तम् ॥ ५२ ॥
रुद्राणां तमधीवासं दिवि दिव्यं मनोहरम् । वर्षाण्यपरिमेयानि
युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५३ ॥ कोटीशतसहस्रं च दशकोटिशतानि
च । रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंमतम् ॥ ५४ ॥ स तस्मै दर्शनं
प्राप्तो दिवसे दिवसे भवेत् । दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्राशते
हविः ॥ ५५ ॥ सदा द्वादशमासान् वै सर्वमेधफलं लभेत् ।
आदित्यं द्वादशे तस्य विमानं सन्निधीयते ॥ ५६ ॥ मणिमुक्ता-

सदा अग्निमें होम करता है, परस्त्रीकी मन वाणी और शरीरसे भी अभिलाषा नहीं करता है, माता पिताके लिये भी जो असत्य-भाषण नहीं करता है, वह पुरुष विमानमें बैठे हुए महाबली महादेवजीके पास जाता है और उसको एक सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका उत्तमोत्तम फल मिलता है । ४९-५१ । वह अपने पास आये हुए विमानमें बैठ कर स्वायंभुवके दर्शन करता है, सुवर्ण की समान वर्णवाली रूपवती कुमारियें उसको रुद्रोंके दिव्य और मनोहर स्थानमें ले जाती हैं, तहाँ उसकी कान्ति प्रलयाग्निकी समान होजाती है और वह तहाँ असंख्य वर्षों तक रहता है । ५२ । ५३ । तहाँ वह लाख, करोड़ और सहस्र करोड़ वर्षों तक रहता है और वह देवदानवोंके मान्य रुद्रको सदा प्रणाम करता रहता है । ५४ । और रुद्र भी सदा उसको दर्शन देते रहते हैं, जो पुरुष वर्ष भर तक बारहवें दिन घृतप्राशन करता है उसको सर्वमेध यज्ञका फल मिलता है और उसको बारह सूर्योंकी समान प्रकाशमय विमान मिलता है । ५५ । ५६ । तथ

प्रवालैश्च महार्हैरुपशोभितम् । हंसभासासपरिक्षिप्तं नागवीथीसमाकुलम् ॥ ५७ ॥ मयूरैश्चक्रवाकैश्च कूजद्भिरुपशोभितम् । अट्टैर्महद्भिः संयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥ नित्यमावसथं राजन्नरनारीसमावृतम् । ऋषिरेवं महाभागस्त्वंगिरा प्राह धर्मवित् ॥ ५९ ॥ त्रयोदशे तु दिवसे मासे यः प्राशते हविः । सदा द्वादशमासान् वै देवसत्रफलं लभेत् ६० रक्तपद्मोदयं नाम विमानं साधयेन्नरः । जातरूपमयुक्तं च रत्नसंचयभूषितम् ६१ देवकन्याभिराकीर्णं दिव्याभरणभूषितम् । पुण्यगन्धोदयं दिव्यं वायव्यैरुपशोभितम् ६२ तत्र शंकुपताके द्वे युगान्तं कल्पमेव च । अयुतायुतं तथा पद्मं समुद्रं च तथा वसेत् ६३ गीतगन्धर्वघोषैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः। सदा प्रह्लादितस्ताभिर्देवकन्याभिरिज्यते ६४

मूल्यवान् मोतियोंसे और प्रवालोंसे शोभायमान भास पक्षी, हंस, सर्प, मयूर और चक्रवाकोंके शब्दोंसे गूँजता हुआ बड़े बड़े झरोखों वाला एक बड़ा भारी स्थान ब्रह्मलोकमें मिलता है । ५७ । ५८ । और हे राजन् ! वह स्थान सदा उसकी सेवा करने वाले नरनारियोंसे भरा रहता है, इस प्रकार महाभाग वेदवेत्ता अङ्गिरा ऋषिने कहा है ५९ जो पुरुष बारह मास तक नित्य तेरहवें दिन एक समय हविका भोजन करता है उसको देवयज्ञका फल मिलता है ६० और उसको रक्तपद्म नामक विमान मिलता है, यह विमान चाँदीका बना होता है, उसमें बहुतसे रत्न जड़े हुए होते हैं, उसमें देवकन्याएँ भी होती हैं, वह दिव्य आभूषणोंसे सुसज्जित होता है, पवित्र सुगन्ध वाला होता है, दिव्य आकारका होता है, यह विमान जिसके पास होता है वह पुरुष वायुलोकमें लाखों, करोड़ों और अनन्त पद्म वर्षों तक वहाँ रहता है, गन्धर्वोंके, गीतोंके, भेरियोंके, नगाड़ोंके शब्दसे उसको सदा प्रसन्न किया जाता है और देवकन्याएँ उस पुरुष

चतुर्दशे तु दिवसे यः पूर्णे प्राशते हविः। सदा द्वादशमासांस्तु महामेधफलं लभेत् ६५ अनिर्देश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलंकृताः। मृष्टतप्तांगदधरा विमानैरुपयान्ति तम् ६६ कलहंसविनिघोषैर्नूपुराणां च निःस्वनैः। कांचीनां च समुत्कर्षैस्तत्र तत्र निबोध्यते ६७ देवकन्यानिवासे च तस्मिन् वसति मानवः। जान्हवीवालुकाकीर्णे पूर्णं संवत्सरं नरः ६८ यस्तु पक्षे गते भुंक्ते एकभक्तं जितेन्द्रियः। सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥६९॥ राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्। यानमारोहते दिव्यं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ ७० ॥ मणिमण्डलकैश्चित्रं जातरूपसमावृतम्। दिव्याभरणशोभाभिर्वरस्त्रीभिरलंकृतम् ७१

की पूजा करती हैं। ६३। ६४। जो पुरुष बारह महीने तक चौदहवें २ दिन घृतका प्राशन करता है उसको महामेधका फल मिलता है ६५ जिनके रूप तथा अवस्थाका निर्णय न किया जासके ऐसी भली प्रकार सजी हुई, घिस कर उजले किये हुए दमकते हुए सुवर्णके बाजूबन्दोंको भुजामें धारण करने वाली देवकन्याएँ विमानोंमें बैठ कर उस पुरुषके पास आती हैं ६६ और वह कलहंसोंकी मनोहर ध्वनिमें, भांझनोंकी भनकारोंमें तथा कटिमेखलाका रुनझुन शब्द होने पर जागा करता है ६७ उक्त पुरुष देवकन्याओंके निवासस्थानमें गङ्गाजीमें जितने वालुकाकण हैं, उतने वर्षों तक रहता है ६८ जो जितेन्द्रिय पुरुष बारह महीने तक प्रत्येक मासमें एक २ पक्ष बीत जाने पर एक एक बार भोजन करता है और सदा अग्निमें होम करता है ६९ उस पुरुषको एक सहस्र राजसूय यज्ञोंका फल मिलता है और वह हंसोंसे और मयूरोंसे जुते हुए विमानमें बैठता है ७० उस विमानमें मणियोंके मण्डल जड़े हुए होते हैं, वह सोनेसे मढ़ा हुआ होता है, दिव्य आभरण पहिर कर शोभायमान दीखती

एकस्तंभं चतुर्द्वारं सप्तभौमं सुमङ्गलम् । वैजयन्तीसहस्रैश्च शोभितं गीतनिःस्वनैः ॥७२॥ दिव्यं दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति । मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभम् ॥ ७३ ॥ वसेद्युगसहस्रं च खड्गकुञ्जरवाहनः । षोडशे दिवसे प्राप्ते यः कुर्यादेकभोजनम् ॥ ७४ ॥ सदा द्वादशमासान् वै सोमयज्ञफलं लभेत् । सोमकन्यानिवासेषु सोऽध्यावसति नित्यशः ॥ ७५ ॥ सौम्यगंधानुलिप्तश्च कामकारगतिर्भवेत् । सुदर्शनाभिर्नारीभिर्मधुराभिस्तथैव च ॥ ७६ ॥ अर्च्यते वै विमानस्थः कामभोगैश्च सेव्यते । फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकम् ॥ ७७ ॥ आवर्तनानि चत्वारि साधयेच्चाप्यसौ नरः । दिवसे सप्तदशमे

हुई स्त्रियोंसे अलंकृत होता है ७१ उसमें एक स्तंभ होता है, चार दरवाजे होते हैं,वह सतमँजला होता है उसका रूप माङ्गलिक होता है, वह सहस्रों वैजयन्ती मालाओंसे सुशोभित होता है, गीतोंकी ध्वनियोंसे गूँज रहा होता है ७२ दिव्य गुणोंसे भरपूर होता है, ऐसे दिव्य विमानमें वह बैठता है, मणि, मोती और प्रवालोंसे वह विमान शोभायमान होता है, उसकी कान्ति बिजलीकी समान होती है ७३ उस विमानमें वह एक सहस्र युग तक रहता है, हाथमें तलवार धारण कर हाथी पर सवार हो वह बाहर घूमनेको निकलता है जो पुरुष सोलहवें दिन एक समय भोजन करता है ७४ इस प्रकार जो साल भर तक करता है उसको सोमयज्ञका फल मिलता है, और वह पुरुष सदा सोमकन्याओंके मन्दिरमें रहता है ७५-उस पुरुषके मस्तक पर सौम्य चन्दनका लेप लगता है, तथा वह अपनी इच्छानुसार जहाँ जाना चाहता है, तहाँ जाता है, सुन्दर दीखने वालीं मधुरभाषिणी स्त्रियें उस पुरुषका पूजन करती हैं और वह पुरुष भोगोंको अपनी इच्छानुसार दश पद्म तथा दश कल्प तक भोगता

यः प्राप्ते प्राशते हविः ॥ ७८ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । स्थानं वारुणमैंद्रं च रौद्रं वाप्यधिगच्छति७९मारुतौशनसे चैव ब्रह्मलोकं स गच्छति । तत्र दैवतकन्याभिरासनेनोपचर्यते ॥ ८० ॥ भूर्भुवं चापि देवर्षि विश्वरूपमवेक्षते । तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्यो रमयंति तम् ॥८१॥द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलंकृताः । चंद्रादित्यावुभौ यावद्गगने चरतः प्रभो ॥ ८२ ॥ तावच्चरत्यसौ धीरः सुधामृतरसाशनः । अष्टादशे यो दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥८३॥ सदा द्वादशमासान् वै सप्तलोकान् स पश्यति । रथैः सनंदिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ॥ ८४ ॥ देवकन्याधिरूढैस्तु भ्राजमानैः स्वलंकृतैः । व्याघ्रसिंहप्रयुक्तं च

है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य सोलह दिन तक उपवास करके सत्रहवें दिन हविका प्राशन करता है और वर्ष भर तक ही अग्निमें होम करता है, वह मनुष्य वरुणके, इन्द्रके अथवा रुद्रके स्थानमें जाता है७८।७९अथवा मरुतोंके,अथवा उशनाके लोकमें अथवा ब्रह्मलोकमें जाता है, इन लोकोंमें देवकन्याएँ उसको बैठनेके लिये आसन देकर उसका सत्कार करती हैं ८० तहाँ वह भूर्भुवरूप देवर्षि विश्वरूपके दर्शन करता है और देवाधिदेवकी कन्याओंमें रमण करता है ८१ ब्रह्माजीकी ये रूपवती और मधुर स्वर वाली कन्याएँ बत्तीस हैं,हे राजन् ! जब तक आकाश में सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं, तब तक वह धीर मनुष्य उपर्युक्त ब्रह्मलोक आदिमें रह कर अमृतरसका पान करता है, जो मनुष्य अठारवें दिन वर्ष भर तक एक समय भोजन करता है, वह पुरुष सप्तलोकोंके दर्शन करता है और उसके पीछे २ महाध्वनि करने वाला रथ जाता है ॥८२-८४॥ वह रथ कान्तिमान् और भली प्रकार सुशोभित किया हुआ होता है और उस रथमें देवकन्याएँ बैठी हुई होती हैं, और उसमें व्याघ्र तथा सिंह जुड़े हु

घेवस्वननिनादितम् ॥ ८५ ॥ विमानमुत्तमं दिव्यं सुसुखी ह्यधिरोहति । तत्र कल्पसहस्रं स कन्याभिः सह मोदते ॥८६॥ सुधारसं च भुंजीत अमृतोपममुत्तमम् । एकोनविंशतिदिने यो भुंक्ते एकभोजनम् ॥ ८७ ॥ सदा द्वादशमासान् वै सप्तलोकान् स पश्यति । उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितम् ॥ ८८ ॥ गंधर्वैरुपगीतं च विमानं सूर्यवर्चसम् । तत्रामरवरस्त्रीभिर्मोदते विगतज्वरः ॥८९॥ दिव्यांबरधरः श्रीमानयुतानां शतं शतम् । पूर्णेथ विंशे दिवसे यो भुंक्ते ह्येकभोजनम् ॥९०॥ सदा द्वादशमासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः । अमांसाशी ब्रह्मचारी सर्वभूतहिते रतः ९१ स लोकान् विपुलान् रम्यानादित्यानामुपाश्नुते । गंधर्वैरप्सरो-

होते हैं, वे मेघके गर्जनेकी समान गर्जना करते हैं ॥ ८५ ॥ ऐसे उत्तम और दिव्य विमानमें बैठ कर वह पुरुष अतिसुख भोगता है और उस विमानमें एक कल्प तक देवकन्याओंके साथ आनन्द करता है ॥ ८६ ॥ और अमृतकी समान उत्तम सुधारसका पान करता है, जो पुरुष उन्नीसवें दिन वर्ष भर तक एक समय भोजन करता है, उस पुरुषको सप्तलोकोंके दर्शन होते हैं और वह अप्सराओंसे सेवित उत्तम लोकोंको पाता है ॥ ८७-८८ ॥ तथा गंधर्वोंके संगीतोंसे गुञ्जारते हुए सूर्यकी समान कान्तिवाले विमानमें बैठ कर देवांगनाओंके साथ आनन्दमें रहता है और सब दुःखोंसे रहित होकर शान्तिमें जीवन बिताता है ॥ ८९ ॥ तथा लाखों वर्ष तक श्रीमान् बन दिव्य वस्त्र धारण करके रहता है जो पुरुष बारह मास तक बीसवें दिन भोजन करता है, सत्यभाषण करता है, चान्द्रायण आदि व्रत करता है, मांसका भोजन नहीं करता है, ब्रह्मचारी रहता है, सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहता है, वह पुरुष आदित्योंके रमणीय और विशाल लोकोंमें जाता है तहाँ दिव्य माला पहिरने वाले तथा दिव्य चन्दन लगाने

भिश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ॥ ९२ ॥ विमानैः काञ्चनैर्हृद्यैः पृष्ठतश्चानुगम्यते । एकविंशे तु दिवसे यो भुंक्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९३ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । लोकमौशनसं दिव्यं शक्रलोकं च गच्छति ॥ ९४ ॥ अश्विनोर्मरुतां चैव सुखेष्वभिरतः सदा । अनभिज्ञश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः ॥ ९५ ॥ सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडत्यमरवत्प्रभुः । द्वाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुंक्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९६ ॥ सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसम् । अहिंसानिरतो धीमान् सत्यवागनसूयकः ॥ ९७ ॥ लोकान् वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः । कामचारी सुधाहारो विमानवरमास्थितः ॥ ९८ ॥ रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः । त्रयोविंशे तु दिवसे प्राशेद्यस्त्वेकभोजनम् ॥ ९९ ॥ सदा

वाले गंधर्व और अप्सरा सुवर्णके और मनके अनुकूल गमन करने वाले विमान उसके पीछे २ जाते हैं, जो पुरुष बारह मास तक इक्कीसवें दिन एक समय भोजन करता है ॥ ९०-९३ ॥ तथा बारह मास तक नित्य अग्निमें होम करता है वह उशनाके दिव्य लोकोंमें और शक्रलोकमें जाता है ॥ ९४ ॥ और अश्विनीकुमारोंके तथा मरुतोंके लोकमें जाता है और नित्य सुखमें आनन्द करता है, किसी प्रकारके दुःखका अनुभव किये बिना उत्तम विमानमें बैठता है ॥ ९५ ॥ उत्तम स्त्रियें उसकी सेवा करती हैं और वह महात्मा अमर अर्थात् इन्द्रकी समान रमण करता है, जो पुरुष वर्ष भर तक बाईसवें दिन एक समय भोजन करता है, अग्निष्टोम करता है, अहिंसा धर्ममें परायण रहता है, बुद्धिमान् होता है, सत्यभाषण करता है, किसीसे ईर्षा नहीं करता है, वह सूर्यकी समान कान्तिवाला पुरुष वसुओंके लोकोंमें जाता है, इच्छानुसार गति कर सकता है, अमृतका आहार करता है और उत्तम विमानमें बैठ कर दिव्य आभूषण पहिर

द्वादशमासांस्तु मिताहारो जितेन्द्रियः । वायोरुशनसश्चैव रुद्रलोकं च गच्छति ॥ १०० ॥ कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । अनेकगुणपर्यंतं विमानवरमास्थितः ॥ १०१ ॥ रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः । चतुर्विंशे तु दिवसे यः मासे प्राशते हविः २सदा द्वादशमासांश्च जुह्वानो जातवेदसम् । आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरम् ३दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगंधानुलेपनः । विमाने कांचने दिव्ये हंसयुक्ते मनोरमे ॥ ४ ॥ रमते देवकन्यानां सहस्रै रयुतैस्तथा । पंचविंशे तु दिवसे यः मासेदेकभोजनम् ॥ ५ ॥ सदा द्वादशमासांस्तु पुष्कलं यानमारुहेत् । सिंहव्याघ्रनयुक्तैस्तु मेघनिःस्वननादितैः ॥ ६ ॥ स रथैर्नंदिघो-

---

देवकन्याओंके साथ क्रीड़ा करता है । जो पुरुष वर्ष भर तक तेईसवें २ दिन एक समय भोजन करता है, स्वल्पाहार करता है इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह वायु, उशना तथा रुद्रकेलोकमें जाता है ॥९९-१००॥ इच्छानुसार भ्रमण करता है, अप्सराएँ उसकी पूजा करती हैं और वह अनेक वर्षों तक उत्तम विमानमें बैठ कर देवकन्याओंके साथ क्रीड़ा करता है और दिव्य आभूषणोंसे सजा हुआ रहता है, जो पुरुष बारह महीने तक चौबीसवें दिन घृतका प्राशन करता है, अग्निमें होम करता है, वह पुरुष सूर्यलोकमें बहुत समय तक आनन्दपूर्वक रहता है, दिव्य वस्त्र और दिव्य मालाओंको धारण करता है,शरीर पर दिव्य गंधका लेप लगाता है और हंसोंसे जुते हुए मनोहर सुवर्णके दिव्य विमानमें लाखों देवकन्याओंके साथ क्रीड़ा करता है, जो पुरुष वर्ष भर तक पच्चीसवें दिन एक समय भोजन करता है, वह पुरुष उत्तम विमानमें बैठ कर घूमता है और सिंह तथा व्याघ्रोंसे जुते हुए मेघकी समान गर्जना करने वाले तथा मांगलिक ध्वनि करने वाले रथ उसके पीछे २ जाते हैं, इन रथोंमें

पैश्च पृष्ठतो ह्यनुगम्यते। देवकन्यासमारूढैः काञ्चनैर्विमलैःशुभैः७
विमानमुत्तमं दिव्यमास्थाय सुमनोहरम् तत्र कल्पसहस्रं वै वसते
स्त्रीशतावृते ॥ ८ ॥ सुधारसं चोपजीवन्नमृतोपममुत्तमम् ।
षड्विंशे दिवसे यस्तु प्रकुर्यादेकभोजनम् ॥ ९ ॥ सदा द्वादश-
मासांस्तु नियतो नियताशनः। जितेंद्रियो वीतरागो जुह्वानो जात-
वेदसम् ॥ १० ॥ स प्राप्नोति महाभागः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।
सप्तानां मरुतां लोकान्वसूनां चापि सोऽश्नुते॥ ११॥विमानैः स्फा-
टिकैर्दिव्यैः सर्वरत्नैरलंकृतैः। गंधर्वैरप्सरोभिश्च पूज्यमानः प्रमो-
दते॥१२॥द्वे युगानां सहस्रे तु दिव्ये दिव्येन तेजसा। सप्तविंशेऽथ
दिवसे यः कुर्यादेकभोजनम् ॥ १३ ॥ सदा द्वादशमासांस्तु

देवकन्याएँ बैठी होती हैं,वे रथ सुवर्णके बने होते हैं और निर्मल तथा शुभ होते हैं ॥ १०१-१०७ ॥ वह पुरुष अत्यन्त मनोहर दिव्य विमानमें बैठ कर एक कल्प तक स्त्रियोंके मण्डलमें निवास करता है ॥१०८॥ तहाँ अमृतकी समान तथा देवताओंके भोगरूप अमृतकी समान सुधारसका पान करता है । जो पुरुष बारह मास तक छब्बीसवें दिन एक समय भोजन करता है। १०९॥ नियमोंका पालन करता है, नियमानुसार भोजन करता है, इन्द्रियोंको जीतता है, रागरहित रहता है और अग्निमें होम करता है, उस महाभाग्यशाली पुरुषकी अप्सराओंके मण्डल पूजा करते हैं और वह सप्तमरुतोंके और आठ वसुओंके लोकों में जाता है ॥ ११०-११२ ॥ और जिसमें सब प्रकारके रत्न जड़े हुए होते हैं ऐसे सजाये हुए स्फटिकके दिव्य विमानोंमें बैठकर भ्रमण करता है और उसकी गन्धर्व तथा अप्सरायें पूजा करती हैं ॥ १२ ॥ और वह दिव्य तेजको पाकर दो सहस्र दिव्य युगों तक सुख भोगता है, जो पुरुष वर्ष भर तक सत्ताईसवें २ दिन एक समय भोजन करता है तथा

जुह्वानो जातवेदसम् । फलं प्राप्नोति विपुलं देवलोके च पूज्यते १४
अमृताशी वसंस्तत्र स वितृष्णः प्रमोदते । देवर्षिचरितं राजन्
राजर्षिभिरनुष्ठितम् ॥ १५ ॥ अध्यावसति दिव्यात्मा विमानवरमास्थितः । स्त्रीभिर्मनोभिरामाभी रममाणो मदोत्कटः ॥१६॥
युगकल्पसहस्राणि त्रीण्यावसति वै सुखम् । योऽष्टाविंशे तु दिवसे
प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ १७ ॥ सदा द्वादशमासांस्तु जितात्मा
विजितेंद्रियः । फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्नुते ॥ १८ ॥
भोगवांस्तेजसा भाति सहस्रांशुरिवामलः । सुकुमार्यश्च नार्यस्तं
रममाणाः सुवर्चसः ॥ १९ ॥ पीनस्तनोरुजघना दिव्याभरणभूषिताः । रमयंति मनःकांते विमाने सूर्यसन्निभे ॥ २० ॥ सर्व-

अग्निमें होम करता है, उसको महापुण्यका फल मिलता है और वह देवलोकमें पूजा पाता है । १३ । १४ । तहाँ रह कर अमृतका भोजन करता है तृष्णारहित रहता है, सुख भोगता है और हे राजन् । वह देवर्षि और राजर्षियोंकी समान सुख भोगता है १५ उसकी आत्मा दिव्य होजाती है, वह दिव्य विमानमें बैठ कर मनचाही स्त्रियोंके साथ विहार करता है, मदोत्कट रहता है १६ इस प्रकार वह पुरुष तीन सहस्र युग तक सुखमें रहता है । जो पुरुष बारह महीने तक अट्ठाईसवें दिन एक बार भोजन करता है अपने मनको और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उस पुरुषको देवर्षियोंकी समान महापुण्यका फल मिलता है । १७ । १८ । और वह भोग भोगता हुआ सूर्यकी समान तेजस्वी और निर्मल रहता है तथा विहार करने वाली सुन्दर कान्ति वाली कोमलांगी और जिनके स्तन, जघन और जंघाएँ स्थूल होती हैं ऐसी दिव्य आभरणोंसे सजी हुई स्त्रियें मनको प्रिय लगाने वाले सूर्यकी समान कान्तिवाले सर्वत्र इच्छानुसार गति करने वाले दिव्य विमानोंमें लाखों वर्ष तक उपर्युक्त व्रत करने

कामगमे दिव्ये कल्पायुतशतं समाः। एकोनत्रिंशे दिवसे यः प्राशे-
देकभोजनम् २१ सदा द्वादशमासान् वै सत्यव्रतपरायणः। तस्य
लोकाः शुभा दिव्या देवराजर्षिपूजिताः २२ विमानं सूर्यचंद्राभं दिव्यं
समधिगच्छति। जातरूपमयं युक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ २३ ॥
अप्सरोगणसंपूर्णं गंधर्वैरभिनादितम् । तत्र चैनं शुभा नार्यो
दिव्याभरणभूषिताः ॥ २४ ॥ मनोभिरामा मधुरा रमयंति मदो-
त्कटाः । भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः ॥ २५ ॥
दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः । वसूनां मरुतां चैव
साध्यानामश्विनोस्तथा ॥ २६ ॥ रुद्राणां च तथा लोकं ब्रह्म-
लोकं च गच्छति । यस्तु मासे गते भुंक्ते एकभक्तं शमात्मकः २७

वाले पुरुषको आनन्दित रखती हैं, जो पुरुष वर्ष भर तक उन्तीसवें दिन एक समय भोजन करता है, सत्यभाषण करता है, उस पुरुषको देवर्षि और राजर्षियोंसे पूजित दिव्य लोक मिलते हैं १६-२२ और उसको सूर्य और चन्द्रमाकी समान दिव्य कान्तिवाला विमान मिलता है वह सुवर्णमय होता है और सब रत्नोंसे भरपूर होता है, उसमें अप्सराओंका मण्डल बैठा होता है और गंधर्वों के गीतोंसे गुञ्जारता रहता है उस विमानमें दिव्य आभरणोंसे शोभायमान मनको प्रिय लगने वाली मदोत्कट मधुरनारियें उस को रमण कराती हैं, वह पुरुष सब प्रकारके भोग भोगता है, तेजस्वी होता है और उसकी कान्ति वैश्वानरकी समान होजाती है तथा वह दिव्य पुरुष शरीरसे देवताकी समान शोभा पाने लगता है और वसु, पवन, साध्य, अश्विनीकुमार और रुद्रोंके तथा ब्रह्माजीके लोकमें जाता है जो पुरुष एक २ मास बीतने पर एक समय भोजन करता है और मनको शांत रखता है इस प्रकार बारह मास तक करता है वह पुरुष ब्रह्मलोकमें जाता है तहाँ श्रीमान् होकर अमृतके रसका आहार करता है, सबके मनको

सदा द्वादशमासान् वै ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् । सुधारसकृताहारः श्रीमान् सर्वमनोहरः ॥ २८ ॥ तेजसा वपुषा लक्ष्म्या भ्राजते रश्मिवानिव । दिव्यमाल्यांबरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ २९ ॥ सुखेष्वभिरतो भोगी दुःखानामविजानकः । स्वयंप्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो महीयते ॥३०॥ रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततं चाभिपूज्यते । नानारमणरूपाभिर्नानारागाभिरेव च ॥ ३१ ॥ नानामधुरभाषाभिर्नानारतिभिरेव च । विमाने गगनाकारे सूर्यवैदूर्यसन्निभे ॥३२॥ पृष्ठतः सोमसंकाशे उदर्के चाभ्रसन्निभे । दक्षिणायां तु रक्ताभे अधस्तान्नीलमण्डले ॥ ३३ ॥ ऊर्ध्वं विचित्रसंकाशे नैको वसति पूजितः । यावद्वर्षसहस्रं वै जम्बुद्वीपे प्रव-

खेंचने वाला होता है, तेजमें शरीरमें तथा शोभामें सूर्यकी समान दिपने लगता है, दिव्य पुष्पोंकी मालाको धारण करता है, दिव्य चन्दनको शरीर पर लगाता है, सुखमें मग्न रहता है भोग भोगता है, दुःखोंसे अनभिज्ञ रहता है और विमानमें स्वयंप्रभा स्त्रियें उसका यशोगान करती हैं और रुद्र तथा देवर्षियोंकी कन्या भी उसकी सदा पूजा करती हैं, वे सब कन्याएँ अनेक प्रकारसे रमण करने वाली, सुन्दर रूपवाली और अनेक इच्छा करने वाली होती हैं, अनेक प्रकारका मधुर भाषण करने वाली होती हैं,नाना प्रकारकी रति वाली होती हैं जिस विमानमें वह पुरुष बैठता है उस विमानकी कान्ति सूर्य और वैदूर्यमणिकी समान होती है विमानका आकार आकाशकी समान गोलाकार होता है, उस विमानका पिछला भाग चन्द्रमा की समान होता है, अगला भाग मेघोंकी समान वर्ण वाला होता है, दाईं ओर लालवर्णका होता है, नीचेका भाग हरे रंगका होता है और ऊपरका भाग अनेक वर्णोंका होता है, उसमें बहुत से पुरुष होते हैं, वह उसकी पूजा करते हैं, जितने वर्षों तक जम्बू-

षेति ॥ ३४ ॥ तावत् संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकेऽस्य धीमतः ।
विप्रुषश्चैव यावंत्यो निपतन्ति नभस्तलात् ॥ ३५ ॥ वर्षासु वर्ष-
तस्तावन्निवसत्यमरप्रभः । मासोपवासी वर्षैस्तु दशभिः स्वर्गम-
मुत्तमम् ॥ ३६ ॥ महर्षित्वमथासाद्य सशरीरगतिर्भवेत् । मुनिर्दान्तो
जितक्रोधो जितशिश्नोदरः सदा ॥ ३७ ॥ जुह्वन्नग्नींश्च नियतः
संध्योपासनसेविता । बहुभिर्नियमैरेवं शुचिरश्नाति यो नरः ३८
अभ्रावकाशशीलश्च तस्य भानोरिव त्विषः । दिवं गत्वा शरी-
रेण स्वेन राजन् यथामरः ॥ ३९ ॥ स्वर्गं पुण्यं यथाकाममुप-
भुंक्ते तथाविधः । एष ते भरतश्रेष्ठ यज्ञानां विधिरुत्तमः ॥ ४० ॥

द्वीपमें वर्षा होती है उतने सहस्र वर्षों तक वह पुरुष ब्रह्मलोकमें रहता है और वर्षाकालमें आकाशमेंसे जितनी विन्दुएँ पड़ती हैं, उतने वर्ष तक वह पुरुष ब्रह्मलोकमें रहता है और उसकी कान्ति देवताकी समान होजाती है, जो पुरुष दश वर्ष तक एक २ महीनेका उपवास करके इकतीसवें दिन भोजन करता है उसको उत्तम स्वर्गलोक मिलता है ॥ २६-३६ ॥ और वह महर्षित्वको पाकर सशरीर ही स्वर्गमें जाता है, जो पुरुष मौनव्रत धारण कर इन्द्रियोंको वशमें रख क्रोधका विजय कर शिश्न तथा उदरको भी वशमें रख कर अर्थात् विषयोंसे उपरत होकर तथा अभक्ष्य पदार्थको त्याग कर नियमपूर्वक सदा अग्निमें होम करता है, सन्ध्यावन्दन करता है, इस प्रकार बहुतसे नियमोंका पालन कर पवित्र रहता है और उपर्युक्त विधिसे भोजन करता है, और जो आकाशकी समान निर्मल स्वभावका होता है, हे राजन्! वह पुरुष सूर्यकी समान कान्तिमान शरीर धारण कर स्वशरीरके साथ स्वर्गमें जाता है ३७-३९ और तहाँ देवताकी समान अपनी इच्छाके अनुकूल पुण्यानुसार स्वर्गमें सुखका उपभोग करता है हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन्! तुझको यज्ञोंकी उत्तम विधि उसके

व्याख्यातो ह्यानुपूर्व्येण उपवासफलात्मकः । दरिद्रैर्मनुजैः पार्थ प्राप्तं यज्ञफलं यथा ॥ ४१ ॥ उपवासानिमान् कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिम् । देवद्विजातिपूजायां रतो भरतसत्तम ॥ ४२ ॥ उपवासविधिस्त्वेष विस्तरेण प्रकीर्तितः । नियतेष्वप्रमत्तेषु शौचवत्सु महात्मसु ॥४३॥ दम्भद्रोहनिवृत्तेषु कृतबुद्धिषु भारत। अचलेष्वप्रकम्पेषु मा तेऽभूदत्र संशयः ॥ १४४ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उपवासविधिर्नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह । यत्र चैव परं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥ भीष्म उवाच । सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणः । यत्तु तीर्थं च शौचं

फलके अनुक्रमसहित कह कर सुना दी, हे पार्थ ! इन उपवासों को करके दरिद्र मनुष्योंने यज्ञका फल पाया है ॥४०॥४१॥ हे भरतवंशके सत्पुरुष! जो पुरुष उपरोक्त उपवास करता है और देवताओंकी तथा ब्राह्मणोंकी पूजामें परायण रहता है वह पुरुष परमगतिको पाता है ॥ ४२ ॥ तुझसे यह उपवासकी विधि विस्तारपूर्वक कही। नियमानुसार रहने वाले, प्रमादरहित, भीतर और बाहरसे पवित्र रहने वाले, उदारमना, दम्भ द्रोहरहित, बुद्धिमान्, अचलस्वभाव तथा काँपने न वाले पुरुष उपवास कर सकते हैं और उनको फल भी मिलता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥१४३॥१४४॥ एकसौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! जो तीर्थ सब तीर्थोंमें उत्तम हो, उसका मुझसे वर्णन करिये और जहाँ जाने पर परमपवित्रता मिल सकती हो उसका मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ विद्वान् मनुष्यको सब तीर्थ गुण देते हैं और उसके पापको हर लेते हैं, परन्तु इनमें भी जो तीर्थ पवित्र करने वाला है उसको तू

च तन्मे शृणु समाहितः ॥ २ ॥ अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे । स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम् ॥ ३ ॥ तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम् । अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ॥ ४ ॥ निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः । शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुंजते ॥ ५ ॥ तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते । शौचलक्षणमेतत्ते सर्वत्रैवान्ववेक्षतः ॥ ६ ॥ रजस्तमः सत्त्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः । शौचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ॥ ७ ॥ सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः । शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये ॥ ८ ॥ नोद-

मुझसे सावधान होकर सुन ॥ २ ॥ शाश्वत (सदा रहने वाले) सत्त्वका अवलंबन लेकर अगाध, निर्मल शुद्ध, सत्यरूपी जलसे भरे हुए, और धैर्यरूप झरने वाले मानसतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥ ३ ॥ धनकी इच्छा न करना, सरलता रखना, सत्य बोलना, मृदुता रखना, सब प्राणियोंकी हिंसा न करना तथा दया, दम और शम ये पवित्र करने वाले तीर्थ हैं ॥ ४ ॥ ममतारहित, अहंकाररहित, सुखदुःखरहित, परिग्रह (घरकी सामग्री) रहित तथा भिक्षा पर आजीविका चलाने वाले पुरुष पवित्र और तीर्थरूप माने जाते हैं ॥ ५ ॥ तत्त्ववेत्ता और अहंकाररहित पुरुष उत्तम तीर्थ कहलाते हैं, तीर्थका अवलोकन करने वाले तुझसे यह तीर्थका लक्षण कहा ॥ ६ ॥ जिनका मन, सत्त्व, रज और तमसे रहित रहता है अत एव जो बाहरी पवित्रता और अपवित्रता से संयुक्त रहते हैं अर्थात् बाहरी शुचिता तथा अशुचिता पर ध्यान नहीं देते हैं, अपने (ब्रह्मविचाररूपी) कार्यका विचार किया करते हैं, सब प्रकारका त्याग करनेमें प्रसन्न रहते हैं, सर्वज्ञ होते हैं, समदृष्टि रखते हैं, शुद्ध आचरण रखते हैं, और शुद्ध रहते हैं, वे पुरुष तीर्थरूप कहलाते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ जिसका गात्र

क्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते । स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥ ९ ॥ अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः । शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ॥ १० ॥ प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः । तथा निष्किंचनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ॥ ११ ॥ वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम् । ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम् ॥ १२ ॥ मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च । स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः ॥ १३ ॥ समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमाहितः । केवलं गुणसम्पन्नः शुचिरेव नरः सदा ॥ १४ ॥ शरीरस्थानि तीर्थानि प्रोक्तान्येतानि भारत । पृथिव्यां यानि

जलसे भीगा हुआ होता है (केवल) उसको ही स्नान किया हुआ नहीं समझना चाहिये, किन्तु जिसने दमसे स्नान किया हो उसको भीतर और बाहरसे स्नात तथा शुद्ध जानना चाहिये ९ जो पुरुष विगत विषयोंकी अपेक्षा नहीं रखते हैं और जो अपने पासके पदार्थों पर भी ममता नहीं रखते हैं, तथा जो इच्छारहित हैं उन्होंने ही उत्तम तीर्थोंमें स्नान किया है १० प्रज्ञानसे ही शरीर की विशेषतः शुद्धि होती है, इसी प्रकार निष्किञ्चनपना तथा मनकी प्रसन्नता शरीरको अत्यन्त शुद्ध करने वाले हैं ११ सदाचार शुद्धि, मनःशुद्धि तथा तीर्थशुद्धि इस प्रकार तीन प्रकारकी शुद्धि कही है । इनमें ज्ञानसे जो शुद्धि होती है उसको उत्तम शुद्धि समझना चाहिये १२ प्रदीप्त (प्रसन्न) मनसे और ब्रह्मज्ञानरूपी जलसे मानसतीर्थमें जो स्नान किया जाता है उस स्नान को तत्त्वदर्शीका स्नान समझना चाहिये १३ जो मनुष्य नित्य तीर्थमें स्नान करके शुद्ध रहता है, सदा सबकी ओर उत्तम भाव रखता है, केवल धर्म और सद्गुणोंसे सम्पन्न रहता है, उस पुरुषको सदा शुद्ध समझना चाहिये १४ हे भरतवंशी राजन् !

तीर्थानि पुण्यानि शृणु तान्यपि ॥ १५ ॥ शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः । तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च ॥ १६ ॥ कीर्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् । धुनन्ति पापं तीर्थेषु ते प्रयान्ति सुखं दिवम् ॥ १७ ॥ परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा । अतीवपुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा ॥ १८ ॥ मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे । उभयोरेव यः स्नायात् स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता । नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति ।२०। एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः । शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शौचानुपृच्छानामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

शरीरके इन तीर्थोंका वर्णन मैंने तुमसे किया, अब तू पृथ्वीके तीर्थोंके वर्णनको सुन १५ शरीरके विभागोंको पवित्र कहनेकी समान पृथ्वीके विभागों और जलोंको भी पवित्र कहा है ॥१६॥ जो पुरुष तीर्थोंका कीर्त्तन कर, तीर्थोंमें स्नान कर, तीर्थोंमें पितरोंका तर्पण कर अपने पापोंका नाश कर लेता है, वह पुरुष सुखसे स्वर्गमें जाता है १७ पृथ्वीके (कुछ) विभाग सत्पुरुषोंके निवास, पृथ्वीके तेज और जलके तेजसे पवित्र (तीर्थरूप) होते हैं १८ मनके और पृथ्वीके पुण्यमय तीर्थ भिन्न२हैं,इन दोनोंमें स्नान करनेसे शीघ्र ही शुद्धि होजाती है १९ जैसे बलरहित क्रिया, अथवा क्रियारहित बल जगत्‌में किसी कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता, परन्तु दोनों साथ २ होनेसे ही कार्य सिद्ध होता है २० इसी प्रकार शरीरकी पवित्रता तथा तीर्थकी पवित्रता इन दोनोंसे शुद्ध हुआ पुरुष सिद्धिको पाता है अतः दोनों प्रकारकी पवित्रता उत्तम मानी जाती है ॥२१॥ एकसौ आठवाँ

युधिष्ठिर उवाच। सर्वेषामुपवासानां यच्छ्रेयः सुमहत्फलम्। यच्चाप्यसंशयं लोके तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १॥ भीष्म उवाच। शृणु राजन्यथा गीतं स्वयमेव स्वयंभुवा। यत् कृत्वा निर्वृतो भूयात् पुरुषो नात्र संशयः ॥ २ ॥ द्वादश्यां मार्गशीर्षे तु अहोरात्रेण केशवम्। अर्च्याश्वमेधं माप्नोति दुष्कृतं चास्य नश्यति ३ तथैव पौषे मासे तु पूज्यो नारायणेति च। वाजपेयमवाप्नोति सिद्धिं च परमां व्रजेत् ॥ ४ ॥ अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम्। राजसूयमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥५॥ तथैव फाल्गुने मासि गोविन्देति च पूजयन्। अतिरात्रमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ ६ ॥ अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णु-

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे भीष्मपितामह! सब उपवासोंमें जो महाफल देने वाला और महाकल्याण करने वाला हो और इस लोकमें जिसके विषयमें कुछ शंका न हो उस कर्मका आप मुझसे वर्णन करिये १ भीष्मजीने कहा, कि–हे राजन्! ब्रह्माजीने स्वयं ही जो बात कही है, उसको तू सुन उस कर्मको करनेसे पुरुष अवश्य शुद्ध होजाता है२जो पुरुष मार्गशीर्षमासमें द्वादशीके दिन तथा रात्रिमें केशवका पूजन करता है उसको अश्वमेधका फल मिलता है और उसके पाप नष्ट होजाते हैं ३ जो पुरुष पौष-मासमें नारायणकी पूजा करता है उसको वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और उसको परमसिद्धि मिलती है ४ जो पुरुष माघ-मासमें द्वादशीके दिन सारे दिन और सारी रात माधवकी पूजा करता है, उस पुरुषको राजसूय यज्ञका फल मिलता है और वह अपने कुलका उद्धार करता है ५ जो पुरुष इसी प्रकार फाल्गुन मासमें गोविन्दकी पूजा करता है उस पुरुषको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है और वह सोमलोकमें जाता है ६ जो पुरुष चैत्रमासमें द्वादशीके दिन रात्रि और दिनमें विष्णुका स्मरण

रिति स्मरन् । पौण्डरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥७॥
वैशाखमासे द्वादश्यां पूजयन् मधुसूदनम् । अग्निष्टोममवाप्नोति
सोमलोकं च गच्छति ॥ ८ ॥ अहोरात्रेण द्वादश्यां ज्येष्ठे मासि
त्रिविक्रमम् । गवां मेधमवाप्नोति अप्सरोभिश्च मोदते ॥ ९ ॥
आषाढ़े मासि द्वादश्यां वामनेति च पूजयन् । नरमेधमवाप्नोति
पुण्यं च लभते महत् ॥१०॥ अहोरात्रेण द्वादश्यां श्रावणे मासि
श्रीधरम् । पंचयज्ञानवाप्नोति विमानस्थश्च मोदते ॥ ११ ॥
तथा भाद्रपदे मासि हृषीकेशेति पूजयन् । सौत्रामणिमवाप्नोति
पूतात्मा भवते च हि ॥१२॥ द्वादश्यामाश्विने मासि पद्मनाभेति
चार्चयन् । गोसहस्रफलं पुण्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ १३ ॥

करता है, उस पुरुषको पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है और वह देवलोकमें जाता है ७ जो पुरुष वैशाखमासमें द्वादशीके दिन मधुसूदनकी पूजा करता है उसको अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है और वह सोमलोकमें जाता है ८ जो पुरुष ज्येष्ठमासमें द्वादशी के दिन त्रिविक्रमकी पूजा करता है, उस पुरुषको गोमेध यज्ञका फल मिलता है और वह अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ९ जो पुरुष आषाढ़मासमें द्वादशीके दिन वामनकी पूजा करता है उसको नरमेध यज्ञका फल मिलता है और उसको बड़ा भारी पुण्य होता है १० श्रावणमासमें द्वादशीके दिन रात दिन श्रीधरकी पूजा करने वाले पुरुषको पञ्च महायज्ञका फल मिलता है और वह विमानमें बैठ कर आनन्द करता है ११ जो पुरुष भाद्रपदमासमें द्वादशीके दिन हृषीकेशकी पूजा करता है उसको सौत्रामणि यज्ञका फल मिलता है और उसकी आत्मा पवित्र होजाती है १२ आश्विनमासमें द्वादशीके पद्मनाभकी पूजा करने वाले पुरुषको एक सहस्र गौओंके दानका फल मिलता है १३ कार्तिकमासमें द्वादशीके दिन दामोदरकी पूजा करने

द्वादश्यां कार्तिके मासि पूज्य दामोदरेति च । गवां यज्ञमवाप्नोति पुमान् स्त्री वा न संशयः ॥ १४ ॥ अर्चयेत् पुंडरीकाक्षमेवं संवत्सरं तु यः । जातिस्मरत्वं प्राप्नोति विंद्याद्बहुसुवर्णकम् ॥ १५॥ अहन्यहनि तद्भावमुपेन्द्रं योऽधिगच्छति । समाप्ते भोजयेद्विमानथवा दापयेद्घृतम् ॥१६॥ अतः परं नोपवासो भवतीति विनिश्चयः । उवाच भगवान्विष्णुः स्वयमेव पुरातनम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विष्णोर्द्वादशकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

वैशम्पायन उवाच । शरतल्पगतं भीष्मं वृद्धं कुरुपितामहम् । उपगम्य महाप्राज्ञः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच । अंगानां रूपसौभाग्यं प्रियं चैव कथं भवेत् । धर्मार्थकामसंयुक्तः

वाले पुरुषको अथवा स्त्रीको भी गोसव यज्ञका फल मिलता है ॥ १४ ॥ जो पुरुष उपरोक्त विधिसे एक वर्ष तक पुण्डरीकाक्षका पूजन करता है उसको पूर्वजन्मका स्मरण होजाता है और उसको बहुतसा सुवर्ण मिलता है ॥ १५ ॥ जो पुरुष उपेन्द्र भगवान्का सदा स्मरण करता है वह पुरुष उपेन्द्ररूप होजाता है भगवान्का पूजन करने वाले पुरुषको ध्यान समाप्त होनेके अनन्तर ब्राह्मणोंको जिमाना चाहिये और घृतका दान देना चाहिये ॥१६॥ उपवास इससे अधिक उत्तम नहीं है, यह निश्चय है और भगवान् विष्णुने स्वयं ही इस प्रकार पुरातन वचन कहा है ॥ १७ ॥ एकसौ नौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ छ

वैशम्पायनने कहा, कि महाबुद्धिमान् युधिष्ठिर बाणशय्यामें सोते हुए कौरवोंके पितामह वृद्ध भीष्मके पास जाकर फिर प्रश्न करने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने प्रश्न किया, हे भीष्म ! हम सुन्दर रूप वाले किस प्रकार होसकते हैं ? लोकोंमें प्रिय किस प्रकार होसकते हैं ? तथा पुरुष धर्म अर्थ और कामनाको किस प्रकार

सुखभागी कथं भवेत् ॥२॥ भीष्म उवाच । मार्गशीर्षस्य मासस्य
चन्द्रे मूलेन संयुते । पादौ मूलेन राजेन्द्र जंघायामथ रोहिणीम् ३
आश्विन्यां सक्थिनी चैव ऊरू चाषाढयोस्तथा । गुह्यं तु फाल्गुनी
विद्यात् कृत्तिका कटिकास्तथा ॥ ४ ॥ नाभिं भाद्रपदे विद्याद्रेव-
त्यामक्षिमंडलम् । पृष्ठमेव धनिष्ठासु अनुराधोत्तरास्तथा ॥ ५ ॥
बाहुभ्यां तु विशाखासु हस्तौ हस्तेन निर्दिशेत् । पुनर्वस्वंगुली
राजन्नाश्लेषासु नखास्तथा ॥ ६ ॥ ग्रीवां ज्येष्ठा च राजेन्द्र
श्रवणेन तु कर्णयोः । मुखं पुष्येण दानेन दंतोष्ठौ स्वातिरुच्यते ७

पा सकता है और सुखका भागी किस प्रकार होसकता है, यह मुझसे कहिये ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजेन्द्र ! मार्गशीर्ष मासकी मूलनक्षत्रवाली शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे इस (चान्द्र) व्रतको आरंभ करे और पूर्णिमाके दिन व्रतको पूर्ण करे, मूल आदि नक्षत्रोंसे चन्द्रमाके सब अवयवोंकी कल्पना करे, वह कल्पना इस प्रकार करे, देवतासहित मूलनक्षत्रसे चन्द्रमाके दोनों चरणोंकी कल्पना करे, रोहिणी नक्षत्रसे जंघाकी कल्पना करे ३ अश्विनी नक्षत्रसे दोनों पिंडलियोंकी कल्पना करे, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ासे ऊरुओंकी कल्पना करे, पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तरा फाल्गुनीसे गुह्यकी कल्पना करे, कृत्तिकासे कमरकी कल्पना करे ४ पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदसे नाभिकी कल्पना करे, रेवतीसे नेत्रमण्डलकी कल्पना करे धनिष्ठा, अनुराधा तथा उत्तरासे पीठकी कल्पना करे ५ विशाखासे दोनों भुजाओंकी कल्पना करे, हस्तसे उसके दोनों हाथोंकी कल्पना करे, हे राजन् ! पुनर्वसुसे अंगुलीकी कल्पना करे, आश्लेषासे नखोंकी कल्पना करे, ६ हे राजेन्द्र ! ज्येष्ठासे ग्रीवाकी कल्पना करे, श्रवणसे दोनों कर्णोंकी कल्पना करे,पुष्यसे मुखकी कल्पना करे, दानसे और स्वातिसे दाँतोंकी और ओष्ठोंकी कल्पना

हासं शतभिषां चैव मघां चैवाथ नासिकाम्। नेत्रे मृगशिरो विद्याल्ललाटे मित्रमेव तु ॥८॥ भरण्यां तु शिरो विद्यात् केशानार्द्रा नराधिप। समाप्ते तु घृतं दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ९ ॥ सुभगो दर्शनीयश्च ज्ञानभाग्यथ जायते। जायते परिपूर्णाङ्गः पौर्णमास्येव चंद्रमाः ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच। पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। श्रोतुमिच्छामि मर्त्यानां संसारविधिमुत्तमम् ॥ १ ॥ केन वृत्तेन राजेन्द्र वर्तमाना नरा भुवि। प्राप्नुवंत्युत्तमं स्वर्गं कथं च नरकं नृप ॥ २ ॥ मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः। प्रयांत्यमुं

करे, ७ शतभिषासे हास्यकी कल्पना करे, मघासे नासिकाकी मृगशीर्षसे दोनों नेत्रोंकी और मित्रसे ललाटकी कल्पना करे ८ हे राजन्! भरणीसे मस्तककी कल्पना करे, आर्द्रासे केशोंकी कल्पना करे, इस प्रकार देवतासहित सब नक्षत्रोंसे चन्द्रमाके सब अवयवोंकी कल्पना करके भिन्न २ मंत्रोंसे जप तथा होम करके चन्द्रमाके अवयवोंकी पूजा करे, इस व्रतको पूर्णिमा तक करे पूर्णिमाके दिन मंत्रोंसे घृतका होम करे, और होम करते २ जो घृत वच रहे उसको वेदपारंगत आचार्यको देदेय ९ इस प्रकार चन्द्रमाका व्रत करने वाला पुरुष सुन्दर अंगों वाला, दर्शनीय और ज्ञानी होता है और पौर्णिमाके दिन पूर्ण अंगोंवाले चन्द्रमाकी समान होजाता है १० एकसौ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥११० ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे सर्वशास्त्रविशारद महाबुद्धिमान् पितामह! "मनुष्य इस संसारमेंसे किस प्रकार तर सकते हैं" यह बात मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र! पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य कैसा वर्ताव करने पर स्वर्गमें जाते हैं और कैसा वर्ताव

लोकमितः को वै ताननुगच्छति ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । अयमा-
याति भगवान् बृहस्पतिरुदारधीः । पृच्छैनं सुमहाभागमेतद्गुह्यं
सनातनम् ॥ ४ ॥ नैतदन्येन शक्यं हि वक्तुं केनचिदद्य वै ।
वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित् ॥ ५ ॥ वैशम्पायन
उवाच । तयोः संवदतोरेवं पार्थगांगेययोस्तदा । आजगाम विशु-
द्धात्मा नाकपृष्ठाद् बृहस्पतिः॥६॥ ततो राजा समुत्थाय धृतराष्ट्र-
पुरोगमः । पूजामनुपमां चक्रे सर्वे ते च सभासदः ॥ ७ ॥ ततो
धर्मसुतो राजा भगवंतं बृहस्पतिम् । उपगम्य यथान्यायं प्रश्नं
पप्रच्छ तत्त्वतः ॥८॥ युधिष्ठिर उवाच । भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्व-
शास्त्रविशारद । मर्त्यस्य कः सहायो वै पिता माता सुतो

करनेसे नरकमें पड़ते हैं ॥ २ ॥ मनुष्य इस अपने मृतक शरीर
को काठ अथवा मट्टीके ढलेकी समान त्याग कर जब परलोकको
चले जाते हैं, तब उनके पीछे २ कौन जाता है ३ भीष्मजीने
कहा, कि-यह उदारबुद्धि भगवान् बृहस्पति आरहे हैं तू इन महा-
भागसे इस सनातन गुप्त बातको बूझ ४ आज कल और
कोई इस विषयका विवेचन नहीं कर सकता और बृहस्पतिकी
जोड़का और कोई वक्ता भी नहीं है ५ वैशम्पायनने कहा, कि-
हे राजन् ! इस प्रकार युधिष्ठिर और भीष्म सम्वाद कर रहे थे
कि-इतनेमें ही शुद्ध अन्तःकरण वाले बृहस्पति स्वर्गमेंसे उनके
पास आगए ६ तब धृतराष्ट्रप्रमुख राजा युधिष्ठिरने खड़े होकर
उनकी अनुपम पूजाकी और सब सभासदोंने भी उनकी पूजा
की ७ तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भगवान् बृहस्पतिके पास
जाकर उनसे नियम पूर्वक यथार्थरीतिसे प्रश्न किया ८ युधिष्ठिरने
बूझा कि-हे भगवान् ! सर्वधर्मवेत्ता हैं ! हे सर्वशास्त्रविशारद! मरे
हुएकी सहायता कौन करता है ? माता पिता पुत्र गुरु ननसा-
लिये ददसालिये और मित्रवर्ग मरे हुए शरीरको काष्ठ और

गुरुः ॥९॥ ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च। मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ॥ १० ॥ गच्छंत्यमुत्र लोकं वै क एनमनुगच्छति । बृहस्पतिरुवाच । एकः प्रसूयते राजन्नेक एव विनश्यति ॥ ११ ॥ एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम् । असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः ॥ १२ ॥ ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च । मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ॥ १३ ॥ मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यांति पराङ्मुखाः । तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोनुगच्छति ॥१४॥ तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः । प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत् स्वर्गगतिं पराम् ॥ १५ ॥ तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते । तस्मान्न्यायागतैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डितः ॥ १६ ॥ धर्म एको मनु-

---

मट्टीके ढलेकी समान त्याग कर चले जाते हैं, तब जीवके पीछे परलोकमें कौन जाता है ? बृहस्पतिने कहा, कि–हे राजन् ! पुरुष (जीव) अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही विनष्ट होजाता है ॥ ९–११ ॥ अकेला ही दुःखोंके पार होजाता है और अकेला ही दुःख पाता है, उसकी माता, पिता, भाई, पुत्र, गुरु, ननसालिये और ददसालिये तथा मित्र उसकी सहायता नहीं करते हैं, वे तो शवको लकड़ीकी समान और मट्टीके ढले की समान त्याग कर दो घड़ी पीछे पराङ्मुख हो पीठ देकर चले जाते हैं, वे तो उस शरीरको त्याग कर चले जाते हैं, परन्तु एक धर्म ही उस प्राणीके पीछे जाता है ॥ १२–१४ ॥ अत एव सदा सहायता देने वाले धर्मका मनुष्योंको अवश्य पालन करना चाहिये, जो प्राणी धर्माचरण करता है, वह अवश्य ही स्वर्गमें जाता है ॥ १५ ॥ इसी प्रकार अधर्म करने वाला नरकमें पड़ता है, इसलिये पण्डित न्यायसे धन सम्पादन करे और उस धनसे धर्म करे ॥ १६ ॥ एक धर्म ही मनुष्योंकी पर-

ध्याणां सहायः पारलौकिकः। लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाप्य-
बहुश्रुतः ॥ १७ ॥ नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीविते फलम् ॥ १८ ॥ एतत्त्रय-
मवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् । युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं भगवतो वाक्यं
धर्मयुक्तं परं हितम् ॥ १९ ॥ शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिस्तु मम
जायते । मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्ममव्यक्ततां गतम् ॥ २० ॥
अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति । बृहस्पतिरुवाच । पृथिवी
वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तगः ॥२१॥ बुद्धिरात्मा च सहिता
धर्मं पश्यन्ति नित्यदा । प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता निशा-
निशम् ॥ २२ ॥ एतैश्च सह धर्मोऽपि तं जीवमनुगच्छति । त्वग-
स्थिमांसं शुक्रं च शोणितं च महामते ॥२३॥ शरीरं वर्जयन्त्येते

लोकमें सहायता करता है, जो पुरुष बहुश्रुत नहीं होता है, वह
ही लोभसे मोहमें पड़ कर, दयासे अथवा भयसे दूसरोंके लिये
अकार्य करता है। धर्म अर्थ और काम इन तीनोंको पाना जीवन
का फल है ॥ १७ ॥ १८ ॥ परन्तु इन तीनोंको अधर्मको त्याग
धर्मसे पाना चाहिये, युधिष्ठिरने कहा, कि आपका धर्ममय हित-
कारक वाक्य मैंने सुना ॥ १९ ॥ मेरी बुद्धि शरीरकी स्थितिको
समझना चाहती है, जो मनुष्य मर जाता है उसका सूक्ष्मशरीर
तो अव्यक्त होता है ॥ २० ॥ अत एव वह नेत्रोंसे नहीं देखा
जासकता फिर धर्म उसके पीछे २ कैसे जाता है, बृहस्पतिने
कहा, कि-पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, मन, यम, बुद्धि
और आत्मा ये सब इकट्ठे होकर धर्मको सदा देखते रहते हैं,
दिन और रात सब प्राणियोंके साक्षी हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ इन
सबके साथ धर्म भी जीवके साथ जाते हैं त्वचा, अस्थि, मांस,
वीर्य और रुधिर भी हे महामति ! जीवके त्यागे हुए शरीरको
त्याग देते हैं, इसके उपरान्त धर्म और अधर्मसे संयुक्त हुआ

जीवितेन विवर्जितम् । ततो धर्मसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि ॥ २४ ॥ ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम् । देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२५॥ ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते । इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि ते ॥ २६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति । एतत्तु ज्ञातुमिच्छामि कथं रेतः प्रवर्तते ॥२७॥ बृहस्पतिरुवाच । अन्नमश्नन्ति यद्देवाः शरीरस्था नरेश्वर । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥ २८ ॥ ततस्तृप्तेषु राजेन्द्र तेषु भूतेषु पञ्चसु । मनः षष्ठेषु शुद्धात्मन् रेतः संपद्यते महत् ॥२९॥ ततो गर्भः संभवति श्लेषात् स्त्रीपुंसयोर्नृप । एतत्ते सर्वमाख्यातं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥३०॥ युधिष्ठिर उवाच ।

जीव दूसरे शरीरको धारण करता है ॥ २४ ॥ और उसके शरीरमें स्थित पञ्चभूतोंके (अधिष्ठात्री) देवता उस जीवके किये हुए शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं, अब तू और क्या सुनना चाहता है ॥ २५ ॥ तदनन्तर जीव यदि धर्माचरण करता है तो इस लोकमें तथा परलोकमें सुख भोगता है, अब मैं तुझसे और क्या कहूँ ॥ २६ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-धर्म जिस प्रकार जीवके पीछे जाता है, वह बात आपने बतला दी, अब मैं यह बात जानना चाहता हूँ, कि-वीर्य किस प्रकार उत्पन्न होता है ? ॥ २७ ॥ बृहस्पतिने कहा, कि हे नरेश्वर ! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मन ये सब के शरीरमें रहने वाले देवता अन्नका भक्षण करते हैं ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! तब पञ्च महाभूत और छठा मन तृप्त होता है,हे शुद्धात्मा ! फिर स्थूल वीर्य उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे नृप ! स्त्री और पुरुषका संसर्ग होने पर गर्भ उत्पन्न होता है, इस प्रकार मैंने तुझसे सब कहा, अब तू और क्या सुनना चाहता है ॥ ३० ॥ युधिष्ठिरने कहा,

आख्यातं मे भगवता गर्भः संजायते तथा । यथा जातस्तु पुरुषः
प्रपद्यति तदुच्यताम् ॥ ३१ ॥ बृहस्पतिरुवाच । आसन्नमात्रः
पुरुषस्तैर्भूतैरभिभूयते । विप्रयुक्तश्च तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम् ३२
सर्वभूतसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि । ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति
शुभं वा यदि वाऽशुभम् । देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतु-
मिच्छसि ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिर उवाच । त्वगस्थिमांसमुत्सृज्य तैश्च
भूतैर्विवर्जितः । जीवः स भगवन् क्वस्थः सुखदुःखे समश्नुते ३४
बृहस्पतिरुवाच । जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमागतः ।
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भारत ॥३५॥ यमस्य पुरुषैः
क्लेशं यमस्य पुरुषैर्वधम् । दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं स

कि-हे भगवन् ! गर्भ जिस प्रकार उत्पन्न होता है, वह आपने मुझसे कहा अब यह बताइये, कि-उत्पन्न हुआ पुरुष किस प्रकार वृद्धि पाता है ॥ ३१ ॥ बृहस्पतिने उत्तर दिया, कि-जीव वीर्यके साथ इकट्ठा होने पर पञ्चभूतोंसे पराभव पाता है अर्थात् उनसे आच्छादित होजाता है और जीव जब पञ्चभूतोंसे अलग होजाता है, तब मर जाता है ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर जब जीव फिर पञ्चभूतोंसे संयुक्त होजाता है तब फिर शरीर धारण करता है उस समय पञ्चभूतोंके अधिष्ठात्री देवता जीवके शुभ तथा अशुभ कर्मोंको देखते रहते हैं, अब तू और क्या सुनना चाहता है ? ॥ ३३ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे बृहस्पति ! जब जीव त्वचा, अस्थि मांस पञ्चभूतोंको त्याग देता है, तब वह कहाँ रह कर सुख और दुःख भोगता है ? ॥ ३४ ॥ बृहस्पतिने उत्तर दिया, कि-कर्मसे संयुक्त जीव शीघ्र ही वीर्यको प्राप्त होजाता है और हे भरतवंशी राजन् ! फिर वह स्त्रीके पुष्पको प्राप्त होकर समय आने पर उत्पन्न होता है ३५ (और जिसके पाप घोर होतेहैं वह गर्भत्वको प्राप्त न होकर सूक्ष्मशरीरमें) यमके सेवकोंसे दुःख पाता है

विन्दति ॥ ३६ ॥ इह लोके स च प्राणी जन्मप्रभृति पार्थिव । सुकृतं कर्म वै भुंक्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥ ३७ ॥ यदि धर्म यथा शक्ति जन्मप्रभृति सेवते । ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥ ३८ ॥ अथान्तरा तु धर्मस्याप्यधर्ममुपसेवते । सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोप्यधिगच्छति ॥ ३९ ॥ अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः । महद्‌ दुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥ ४० ॥ कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते । जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४१ ॥ यदेतदुच्यते शास्त्रे सेतिहासे च च्छंदसि । यमस्य विषयं घोरं मर्त्यो लोकः प्रपद्यते ४२ इहस्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भूपते । तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥ ४३ ॥ यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे

और यमके सेवकोंसे मारा जाता है,इस प्रकार इस संसारचक्रमें दुःख और क्लेश पाता है ॥ ३६ ॥ हे पार्थिव ! जो प्राणी इस लोकमें जन्म पाकर पुण्य करता है तो वह पुण्यका फल भोगता है ॥ ३७ ॥ यदि जीव जन्मसे लेकर यथाशक्ति धर्मका सेवन करता है तो पुरुषरूपसे उत्पन्न होकर सदा सुख भोगता है, परन्तु धर्माचरणके बीचमें यदि अधर्मका आचरण करता है तो जीव सुखके बीचमें दुःख भी भोगता है ॥ ३८-३९ ॥ अधर्म करने वाला जीव यमलोकमें जाता है और तहाँ महादुःख भोग कर फिर पशुओंकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ ४० ॥ मनुष्य मोहमें पड़ कर जिस २ कर्मको करनेसे जिस २ योनिको प्राप्त होता है, उसको मैं कहता हूँ, सुन ॥ ४१ ॥ यह बात शास्त्रमें इतिहासमें और वेदमें कही है,कि–मनुष्य मृत्युलोकमें पाप करनेसे यमराजके भयंकर लोकोंमें जाते हैं ॥ ४२ ॥ यमलोकमें देवताओंके स्थानोंकी समान पुण्यमय स्थान भी हैं, ये तिर्यक्‌योनिके न होने पर भी सर्वत्र चलते हैं ॥ ४३ ॥ ऐसा यमराजका दिव्य

गुणैः । कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते ॥ ४४ ॥ येन येन तु भावेन कर्मणा पुरुषो गतिम् । प्रयाति परुषां घोरां तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ४५ ॥ अधीत्य चतुरो वेदान् द्विजो मोहसमन्वितः । पतितात् प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥ ४६ ॥ खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत । खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥४७॥ बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः । ब्रह्मरक्षश्च मासांस्त्रींस्ततो जायति ब्राह्मणः ४८ पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते। तत्र जीवति वर्षाणि दशपञ्च च भारत४६ कृमिभावाद्विमुक्तस्तु ततो जायति गर्दभः । गर्दभःपञ्चवर्षाणि पञ्चवर्षाणि सूकरः५० कुक्कुटः पञ्चवर्षाणि पञ्चवर्षाणि जंबुकः॥

मंदिर गुणोंमें ब्रह्मलोककी समान है, प्राणी अपने किये हुए कर्मोंके कारण इस लोकमें जाकर दुःख (भी) भोगते हैं ४४ अब मैं तुमसे यह बात कहता हूँ, कि-मनुष्य अपनी इच्छानुसार किस २ कर्मको करके कौन कौनसी अति-कठोर घोर गतिको पाता है ॥ ४५ ॥ चारों वेद पढ़नेके उपरान्त जो ब्राह्मण मोहवश पतितसे दान लेलेता है, तो वह मरनेके पीछे गधा होकर उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! वह पन्द्रह वर्ष तक गधेकी योनिमें रह कर मर जाता है फिर बैल बन कर उत्पन्न होता है और सात वर्ष तक जीवित रहता है बैलकी योनिमेंसे मर कर वह ब्रह्मराक्षस होजाता है और तीन मास बाद फिर ब्राह्मण बन कर उत्पन्न होता है ॥४८॥ पतित पुरुष को यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण कीड़ा बन कर उत्पन्न होता है और हे भरतवंशी राजन् ! वह पन्द्रह वर्ष तक कीड़ेकी योनिको भोगता है ॥ ४६ ॥ कीड़ेकी योनिसे छूट कर वह गधा होजाता है, फिर पाँच वर्षमें गधेकी योनिसे छूट कर वह सूअर होकर उत्पन्न होता है और पञ्च वर्ष तक जीवित रहता है५० फिर पाँच

श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायति मानवः ॥ ५१ ॥ उपाध्यायस्य यःपापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् । स जीव इह संसारांस्त्रीनाप्नोति न संशयः ॥ ५२ ॥ प्राक् श्वा भवति राजेन्द्रः ततः क्रव्यात्ततः खरः। ततः प्रेतः परिक्लिष्टः पश्चाज्जायति ब्राह्मणः ॥ ५३ ॥ मनसापि गुरोर्भार्यां यः शिष्यो याति पापकृत् । स उग्रान् प्रैति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥ ५४ ॥ श्वयोनौ तु स संभूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति । तत्रापि निधनं प्राप्तः,कृमियोनौ प्रजायते ५५ कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति। ततस्तु निधनं प्राप्तो ब्रह्मयोनौ प्रजायते ॥ ५६ ॥ यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणे।

वर्ष तक मुर्गेकी और पाँच वर्ष तक गीदड़की तथा एक वर्ष तक कुत्तेकी योनि भोग कर फिर मनुष्यजातिमें अवतार लेता है५१जो मूर्ख शिष्य अपने उपाध्यायका अपराध करता है उस शिष्यको इस संसारमें तीन योनियोंमें अवतार लेना पड़ता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ हे राजेन्द्र ! पहिले तो वह कुत्ता बन कर उत्पन्न होता है, फिर मांसाहारी प्राणीकी योनिमें उत्पन्न होता है तदनन्तर गधेकी योनिमें उत्पन्न होता है और उस योनिमें दुःखित दशामें मरनेके अनन्तर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥ जो पापी मनुष्य अपने मनमें भी गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेका विचार करता है, उसको उस अधर्मके कारण भयंकर योनियोंमें उत्पन्न होना पड़ता है ५४ वह प्रथम कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होकर तीन वर्ष तक जीवित रहता है और कुत्तेकी योनिसे छूटने पर कीड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है ५५और एक वर्ष तक कीड़ेकी योनिका अनुभव करता है, फिर एक वर्ष पीछे मरण पाकर ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न होता है ॥५६॥ जो गुरु पुत्रकी समान शिष्यको निष्कारण ही मारता है, तो वह गुरु भी अपने यथेच्छाचारके कारण हिंस्र (पशु)

आत्मनः कामकारेण सोपि हिंस्रः प्रजायते ॥५७॥ पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते। सोपि राजन्मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥५८॥ गर्दभत्वं तु संप्राप्य दशवर्षाणि जीवति। संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥ ५९ ॥ पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि। गुर्वपध्यानतः सोपि मृतो जायति गर्दभः ६० खरो जीवति मासांस्तु दश श्वा च चतुर्दश। बिडालः सप्तमासांस्तु ततो जायति मानवः ॥६१॥ मातापितरावाक्रुश्य सारिकः संप्रजायते। ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो नृप ॥६२॥ कच्छपो दशवर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः। व्यालो भूत्वा च षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥ ६३ ॥ भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यो राजद्विष्टानि सेवते। सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायति वानरः ६४

रूपसे उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! माता तथा पिताका अपमान करने वाला पुत्र मरण होनेके बाद प्रथम गधा होकर उत्पन्न होता है ॥ ५८॥ और दश वर्ष तक गधेकी योनिमें रह कर एक वर्ष तक कुम्भीरकी योनिमें रहता है, फिर वह मनुष्य योनिमें उत्पन्न होता है ॥ ५९ ॥ जिस पुत्रके ऊपर माता और पिता रुष्ट होगए हों वह यदि उन गुरुओंके रुष्ट होने पर मनमें उनका तिरस्कार करता है, तो वह मरणके पीछे गधा होता है ॥ ६० ॥ वह दश मास गधेकी योनिमें बिता कर चौदह वर्ष तक कुत्तेकी योनिमें रहता है, फिर सात मास तक बिलावकी योनिमें रह कर मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है ॥६१॥ हे राजन्! माता पिताकी निन्दा करने वाला पुरुष सारिकयोनिमें उत्पन्न होता है और उन दोनोंको मारने वाला कछुआ होता है ॥६२॥ वह दश वर्ष तक कछुआ, तीन वर्ष तक सेई और छः मास तक सर्प रह कर फिर मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है ॥ ६३ ॥ जो पुरुष राजा की ओरसे आजीविकाका उपयोग करने पर भी उसके

वानरो दशवर्षाणि पंचवर्षाणि मूषिकः । श्वाथ भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥ ६५ ॥ न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः । संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥६६॥ तत्र जीवति वर्षाणि दश पंच च भारत । दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ६७ ॥ असूयको नरश्चापि मृतो जायति शार्ङ्गकः । विश्वासहर्ता तु नरो मीनो जायति दुर्मतिः ॥ ६८ ॥ भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृतो जायति भारत । मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥ ६९ ॥ छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णे संवत्सरे ततः। कीटः संजायते जन्तुस्ततो जायति मानुषः ॥७०॥ धान्यान् यवांस्तिलान् माषान् कुलत्थान् सर्षपांश्चणान् । कला-

शत्रुओंकी भी सेवा करता है वह मूर्ख मनुष्य मरनेपर वन्दर होता है और दश वर्ष वानरकी योनिमें रह कर पन्द्रह वर्ष तक चूहेकी योनिमें रहता है, तदनन्तर छः मास कुत्तेकी योनिमें रहता है, फिर मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है ॥६५॥ धरोहड़ मारने वाला पुरुष मरणके पीछे यमलोकमें जाता है और तहाँ सौ वार कीड़े की जातिमें उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥ और प्रत्येक जातिमें पन्द्रह पन्द्रह वर्ष तक जीवित रहता है और जब पापक्षय होजाता है, तब मनुष्यजातिमें उत्पन्न होता है ॥ ६७ ॥ ईर्षा करने वाला पुरुष मरण होने पर मृग होकर उत्पन्न होता है, विश्वासघाती दुर्बुद्धि पुरुष मरनेके अनन्तर मछलीकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ ६८ ॥ आठ वर्ष तक मछलीकी योनि भोग मरनेके पीछे मृग होकर उत्पन्न होता है चार मास तक मृगयोनिमें रह कर वकरा होकर उत्पन्न होता है ॥ ६९ ॥ एक वर्ष तक वकरेकी योनिमें रह कर कीड़ा वन कर उत्पन्न होता है फिर मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है ॥ ७० ॥ जो पुरुष मूर्खतावश जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, कलाप,

पानथ मुद्गांश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥ ७१ ॥ सस्यस्यान्यस्य हर्ता च मोहाज्जन्तुरचेतनः । स जायते महाराज मूषिको निरपत्रपः ७२ ततः प्रेत्य महाराज मृतो जायति सूकरः । सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ॥ ७३ ॥ श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव । भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायति मानवः ॥७४॥ परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायति वै वृकः । श्वा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कंको बकस्तथा॥७५॥भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः । पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति सोपि संवत्सरं नृप ॥ ७६ ॥ सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च । प्रधर्षयित्वा कामाय मृतो जायति सूकरः ॥ ७७ ॥ सूकरः पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि

मूँग, गेहूँ और अलसी इन धान्योंमेंसे किसी धान्यकी चोरी करता है, वह पुरुष भानरहित कीड़ा होकर उत्पन्न होता है और फिर लज्जारहित चूहा बन कर उत्पन्न होता है।७१।७२। चूहेकी योनि पूर्ण होनेके अनन्तर वह सूअर होकर उत्पन्न होता है, हे राजन्! वह सूकरकी जातिमें जन्म लेकर तुरत ही रोगसे मर जाता है ॥ ७३ ॥ तदनन्तर हे राजन्! वह मूढ़ अपने कर्मों के कारण कुत्ता बन कर उत्पन्न होता है और पाँच वर्ष तक कुत्तेकी योनि भुगता कर मनुष्यजातिमें उत्पन्न होता है ॥ ७४ ॥ जो पुरुष परस्त्रीसे व्यभिचार करता है वह पुरुष नाहर होकर उत्पन्न होता है, तदनन्तर क्रमशः कुत्ता, गीदड़, गिद्ध और सर्प तथा, कौआ और बगला होता है ॥ ७५ ॥ जो पापी मन वाला पुरुष मूर्खतासे अपने भाईके स्त्रीके ऊपर बलात्कार करता है, हे राजन्! वह पुरुष एक वर्ष तक नरकोकिल बन कर उत्पन्न होता है ॥ ७६ ॥ जो पुरुष मित्रकी भार्या गुरुकी भार्या तथा राजभार्याके ऊपर कामातुर होकर बलात्कार करता है, वह पुरुष मरनेके पीछे सूअर बन कर उत्पन्न होता है ॥ ७७ ॥ और

श्वाविधः। बिडालः पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि कुक्कुटः ७८ पिपीलिकस्तु मासांस्त्रीन् कीटः स्यान्मासमेव तु। एतानासाद्य संसारान् कृमियोनौ प्रजायते ॥ ७९ ॥ तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश। ततोऽधर्मक्षयं कृत्वा पुनर्जायति मानवः ॥ ८० ॥ उपस्थिते विवाहे तु यज्ञे दानेऽपि वा विभो। मोहात् करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः ॥८१॥ कृमिर्जीवति वर्षाणि दशपञ्च च भारत। अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानवः ८२ पूर्वं दत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति। सोपि राजन् मृतो जन्तुः कृमियोनौ प्रजायते ॥ ८३ ॥ तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश

पाँच वर्ष तक सूअरकी योनि भुगतनेके अनन्तर दश वर्ष तक सेईकी योनिका अनुभव करता है, पाँच वर्ष तक बिलावकी की योनिमें रहता है फिर दश वर्ष तक मुर्गेकी योनिमें रहता है ॥ ७८ ॥ तदनन्तर तीन मास तक चींटीकी योनिमें रहता है, फिर एक मास तक कीड़ेकी योनिमें रहता है, इन जन्मोंको भोगनेके अनन्तर वह फिर कृमियोनिमें उत्पन्न होता है ॥७९॥ और उस योनिमें चौदह मास तक जीवित रहता है इस प्रकार अनेक जन्म धारण कर अपने पापका क्षय करनेके अनन्तर वह फिर मनुष्य जातिमें उत्पन्न होता है ॥ ८० ॥ हे राजन्! जो पुरुष मूर्खतावश विवाह कार्य चलते समय, यज्ञ करते समय तथा दान देते समय विघ्न डालता है वह मर कर कीड़ा होता है ॥८१॥ हे भरतवंशी राजन्! वह पन्द्रह वर्ष तक उस कीट-योनिमें जीवित रहता है और अपने पापका क्षय होने पर मनुष्य होकर उत्पन्न होता है ॥८२॥ हे राजन्! जो पुरुष एक व्यक्तिको कन्यादान देकर दूसरे व्यक्तिको उस ही कन्याका दान देदेता है हे राजन्! वह पुरुष भी मर कर कीड़ा होता है ॥८३॥ हे युधिष्ठिर! वह पुरुष तेरह वर्ष तक कीड़ेकी योनिमें

युधिष्ठिर । अधर्मसंक्षये युक्तस्ततो जायति मानवः ॥ ८४ ॥
देवकार्यमकृत्वा तु पितृकार्यमथापि वा । अनिर्वाप्य समश्नन् वै
मृतो जायति वायसः ॥८५॥ वायसः शतवर्षाणि ततो जायति
कुक्कुटः । जायते व्यालकश्चापि मासं तस्मात्तु मानुषः ॥ ८६ ॥
ज्येष्ठं पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते । सोपि मृत्युमुपागम्य
क्रौंचयोनौ प्रजायते ॥ ८७ ॥ क्रौंचो जीवति वर्षं तु ततो जायति
चीरकः । ततो निधनमापन्नो मानुषत्वमुपाश्नुते ॥ ८८ ॥ वृषलो
ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते । ततः संभाव्य निधनं जायते
सूकरः पुनः ॥ ८९ ॥ सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ।
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ॥ ९० ॥ श्वा भूत्वा
कृतकर्मासौ जायते मानुषस्ततः । तत्रापत्यं समुत्पाद्य मृतो जायति

रह कर पापक्षय होने पर मनुष्यजातिमें उत्पन्न होता है॥८४॥ जो
पुरुष न देवकार्य करता है, न पितृकार्य करता है केवल अपना
ही पोषण करता है, वह मरणके पीछे कौएकी योनिमें उत्पन्न
होता है ॥ ८५ ॥ और सौ वर्ष तक कौएकी योनिमें जीवित
रह कर फिर मुर्गेकी योनिमें उत्पन्न होता है फिर सर्पयोनिमें
उत्पन्न होकर एक मास तक जीवित रहता है फिर मनुष्यरूपसे
उत्पन्न होता है ॥ ८६ ॥ जो पिताकी समान माने जाने वाले
ज्येष्ठ भ्राताका अपमान करता है वह पुरुष मरण पाने पर क्रौंच-
पक्षीकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ ८७ ॥ और क्रौंचयोनिमें एक
वर्ष बिता कर चीरक जातिमें जाता है और तहाँसे मरण पाने
पर फिर मनुष्यत्वको पाता है ॥ ८८ ॥ ब्राह्मणीके साथ गमन
करने वाला शूद्र कीटयोनिमें उत्पन्न होता है और तहाँसे मर
कर सूअर होकर उत्पन्न होता है ॥ ८९ ॥ सूअर होकर उत्पन्न
होते ही रोगसे मर जाता है, हे राजन् ! तदनन्तर वह मूढ़ अपने
पापकर्मोंसे कुत्ता होता है ॥ ९० ॥ और कुत्ता बन कर अपने

मूषिकः ॥ ६१ ॥ कृतघ्नस्तु मृतो राजन् यमस्य विषयं गतः । यमस्य पुरुषैः क्रुद्धैर्वधं प्राप्नोति दारुणम् ॥ ६२ ॥ दण्डं समुद्गरं शूलमग्निकुम्भं च दारुणम् । असिपत्रवनं घोरवालुकं कूटशाल्मलीम् ॥६३॥ एताश्चान्याश्च वह्वीश्च यमस्य विषयं गतः । यातनाः प्राप्य तत्रोग्रास्ततो वध्यति भारत ॥ ६४ ॥ ततो हतः कृतघ्नः स तत्रोग्रैर्भरतर्षभ । संसारचक्रमासाद्य कृमियोनौ प्रजायते ६५ कृमिर्भवति वर्षाणि दश पंच च भारत । ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते शिशुः ॥६६॥ ततो गर्भशतैर्जन्तुर्वहुभिः संप्रपद्यते । संसारांश्च वहून् गत्वा ततस्तिर्यक्षु जायते ॥ ६७ ॥ ततो दुःख-

---

पापकर्मोंका उपभोग करता है और पाप नष्ट होने पर मनुष्य होकर उत्पन्न होता है और मनुष्य जातिमें एक सन्तान उत्पन्न कर मरनेके पीछे चूहा बन कर उत्पन्न होता है ॥ ६१ ॥ हे राजन्! कृतघ्न पुरुष मरनेके अनन्तर यमलोकमें जाता है तहाँ यमदूत क्रोधमें भर कर उस पर दारुण मार लगाते हैं ६२ तहाँ यमलोकमें दण्डकी मारका, मुद्गरकी मारका, शूलकी मारका दारुण अग्निकुंभ नामक नरकका, असिपत्र वनका, घोरवालुका नामक नरकका, कूटशाल्मलि नामक नरकका भयंकर दुःख भोगता है, फिर भी यमके दूत उस प्राणीको मारते हैं ६३॥६४ हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष! तहाँ यमलोकमें उग्र यमदूत उस कृतघ्नी पुरुष पर मार लगाते हैं, तदनन्तर वह इस संसाररूपी चक्रमें कीड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ ६५ ॥ हे भरतवंशी राजन्! और वह पन्द्रह वर्ष तक कीड़ेकी जातिका अनुभव करता है फिर कीटके गर्भमें आकर उत्पन्न होता है और उस जातिमें छोटी अवस्थामें मर जाता ॥ ६६ ॥ इस प्रकार वह उत्तरोत्तर सैंकड़ों वार कीडेकी जातिमें उत्पन्न होता है और बहुतसे जन्म लेनेके पीछे वह पक्षियोनिमें उत्पन्न होता है ॥६७॥ और बहुत

मनुप्राप्य बहुवर्षगणानिह। अपुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥९८॥
दधि हृत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान्। चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुदंशः प्रजायते ॥ ९९ ॥ फलं वा मूलकं हृत्वा अपूपं वा पिपीलिकाः। चोरयित्वा च निष्पावं जायते हलगोलकः ॥१००॥
पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुते। हृत्वा पिष्टमयं पूपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥ १०१ ॥ अयो हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः। कांस्यं हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारितो जायते नरः॥१०२॥
राजतं भाजनं हृत्वा कपोतः संप्रजायते। हृत्वा तु कांचनं भांडं कृमियोनौ प्रजायते ॥ १०३ ॥ पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कृकलत्वं निगच्छति। कौशिकं तु ततो हृत्वा नरो जायति वर्तकः ॥१०४॥

वर्षो तक पक्षियोनिमें उत्पन्न होता हुआ उसके दुःख भोगता है और अन्तमें कछुआ होकर उत्पन्न होता है फिर मनुष्यजातिमें उत्पन्न होता है ॥ ९८ ॥ मनुष्य दही चुरानेसे बगला होजाता है और देवार्पण किये विना खानेसे प्लव (एक प्रकारका मत्स्य) होता है और दुर्बुद्धि पुरुष मधु चुराने पर डाँस बन कर उत्पन्न होता है ॥ ९९ ॥ जो पुरुष फल मूल, अपूप, पिपीलिका अथवा लोबियेको चुराता है वह हलगोलक नामक कीड़ा होकर उत्पन्न होता है ॥ १०० ॥ दूधपाक चुराने वाला पुरुष तीतर होता है और पिट्ठी भरे अपूप चुराने पर कुंभोलूक होकर उत्पन्न होता है ॥ १०१ ॥ लोहा चुराने वाला दुर्बुद्धि पुरुष कौआ होकर उत्पन्न होता है, काँसी चुराने वाला मूर्ख पुरुष हारीत बन कर जन्म लेता है ॥ २ ॥ चाँदीके पात्र चुराने वाला पुरुष कबूतर होता है, सुवर्णके पात्र चुराने वाला पुरुष कीड़ा होकर उत्पन्न होता है ॥३॥ धुले हुए रेशमी वस्त्र चुराने वाला गिरगट होता है, रेशमी वस्त्र चुराने वाला बटेर होकर उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ वस्त्रको चुराने वाला पुरुष तोता होता है, दुकूल

अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायति मानवः । चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥ १०५ ॥ क्रौंचः कार्पासिकं हृत्वा मृतो जायति मानवः । चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भारत ६ क्षौमं च वस्त्रमादाय शशो जन्तुः प्रजायते । वर्णान् हृत्वा तु पुरुषो मृतो जायति बर्हिणः ॥ ७ ॥ हृत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः । वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः ८ छुच्छुंदरित्वमाप्नोति राजंल्लोभपरायणः । तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च॥६॥अधर्मस्य क्षयं गत्वा ततो जायति मानुषः। चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥ १० ॥ यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः । सोऽपि राजन् मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते ॥ ११ ॥ अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः । अर्थार्थी यदि वा वैरी स मृतो जायते खरः ॥१२॥खरो जीवति

(दुपट्टा) चुराने वाला मरने पर हंसयोनिमें उत्पन्न होता है ५ सूती वस्त्रोंको चुराने वाला क्रौञ्च पक्षी बन कर उत्पन्न होता है और हे भरतवंशी राजन् ! पुरुष ऊनी और रेशमीवस्त्र चुराने पर खरगोश बन कर उत्पन्न होता है, हरताल आदि रंगोंको चुराने वाला मरने पर मोर होकर उत्पन्न होता है ॥ ६ ७ ॥ लाल वस्त्र चुराने वाला पुरुष चकोर होकर उत्पन्न होता है, भिन्न २ रंगोंको तथा सुगंधित पदार्थोंको चुराने वाला हे राजन् ! छछूँदरकी जातिमें उत्पन्न होता है और पन्द्रह वर्ष तक छछूंदर की योनि भोग कर ॥ ६ ॥ पापकर्मका क्षय होने पर मनुष्य जातिमें उत्पन्न होता है, दूधकी चोरी करनेसे बगलीका जन्म मिलता है ॥ १० ॥ हे राजन् ! मोहवश होकर सुवर्णकी चोरी करने वाला पुरुष मरण होने पर तैलपायी कीड़ा होकर उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥ धनकी इच्छा करने वाला जो सशस्त्र अधम शत्रु पुरुष निःशस्त्र पुरुषको मार डालता है वह मरने पर गधा

वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते । स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥ १३ ॥ मृगो वध्यति शस्त्रेण गते संवत्सरे तु सः । हतो मृगस्ततो मीनः सोपि जालेन बध्यते ॥ १४ ॥ मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते । श्वापदो दशवर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च ॥ १५ ॥ ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः । अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ १६ ॥ स्त्रियं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्यमस्य विषयं गतः । बहून् क्लेशान् समासाद्य संसारांश्चैव विंशतिम् ॥१७॥ ततः पश्चान्महाराज कृमियोनौ प्रजायते । कृमिर्विंशतिवर्षाणि भूत्वा जायति मानुषः ॥१८॥ भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः । मक्षिकासंघवशगो बहून्

होता है ॥ १२ ॥ गधा होने पर दो वर्ष तक जीवित रहता है और फिर वह शस्त्रसे मारा जाता है, फिर वह मृगकी जातिमें उत्पन्न होता है और उस जन्ममें सदा उद्विग्न रहता है ॥१३॥ एक वर्ष पीछे शस्त्रसे उसका वध किया जाता है फिर वह मछली होकर उत्पन्न होता है और जालमें फँस कर फिर मरण पाता है ॥ १४ ॥ चार मास बाद वह फिर पशु होकर उत्पन्न होता है और दश वर्ष तक पशुकी योनिमें रह कर वह पाँच वर्ष तक व्याघ्र बन कर रहता है॥१५॥ तदनन्तर कालके फेरसे वह मर जाता है और पापक्षय होने पर मनुष्य होकर उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥ जो दुर्बुद्धि पुरुष स्त्रीकी हत्या करता है, वह मरणके पीछे यमलोकमें जाकर बहुतसे दुःख भोगता है और बीस बार उसका जन्म होता है ॥ १७ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त वह कृमियोनिमें उत्पन्न होता है, और वह बीस वर्ष तक कृमि रह कर फिर मनुष्य बन कर उत्पन्न होता है ॥१८॥ भोजनकी चोरी करने वाला मक्खी होकर उत्पन्न होता है, और वह बहुत समय तक मक्खियोंके मण्डलके वशमें रहता

मासान् भवत्युत ॥१६॥ ततः पापक्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुते ।
धान्यं हृत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते ॥२०॥ तथा पिण्या-
कसंमिश्रमशनं चोरयेन्नरः। स जायते बभ्रुसमो दारुणो मूषिको
नरः ॥ २१ ॥ दशन् वैः मानुषान्नित्यं पापात्मा स विशाम्पते ।
घृतं हृत्वा तु दुर्बुद्धिः काकमद्गुः प्रजायते ॥ २२ ॥ मत्स्य-
मांसमथो हृत्वा काको जायति दुर्मतिः । लवणं चोरयित्वा तु
चिरिकाकः प्रजायते ॥ २३ ॥ विश्वासेन तु निक्षिप्तं यो विनि-
ह्नोति मानवः । स गतायुर्नरस्तात मत्स्ययोनौ प्रजायते ॥२४॥
मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायति मानुषः । मानुषत्वमनुप्राप्य
क्षीणायुरुपपद्यते ॥ २५ ॥ पापानि तु नराः कृत्वा तिर्यग्जायंति
भारत । न चात्मनः प्रमाणं ते धर्मं जानन्ति किंचन ॥ २६ ॥

है ॥ १६ ॥ और अपने पापकर्मका क्षय कर मनुष्यत्वको पाता है, पुरुष चोरी करने पर लोमशयोनिमें उत्पन्न होता है, पिण्याक मिले हुए अन्नको चुराने वाला बभ्रुकी समान भयंकर चूहा बन कर उत्पन्न होता है ॥ १२०-१२१ ॥ और हे राजन् ! वह पापी मन वाला चूहा मनुष्योंको सदा काटा करता है, घृतकी चोरी करने वाला दुर्बुद्धि पुरुष एक सींग वाले जल पक्षीकी योनिमें उत्पन्न होता है २२ जो दुर्बुद्धि पुरुष मछलीके मांसकी चोरी करता है, वह पुरुष दूसरे जन्ममें कौआ होता है नमक, चुराने वाला जंगली कौआ होता है २३ जो पुरुष किसी विश्वासी पुरुषकी धरोहड़को गपच लेता है, वह पुरुष मरणके अनन्तर मछलीकी योनिमें उत्पन्न होता है २४ मछलीकी योनिमें उत्पन्न होकर पापकर्म भोग कर मरण पाने पर मनुष्यकी जातिमें उत्पन्न होता है और मनुष्ययोनिमें अल्पायु और क्षीणायु होता है २५ मनुष्य पापकर्म करके पशुयोनिमें उत्पन्न होता है उस योनिमें उसको अपनी आत्माके उद्धार करनेका

ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यंति व्रतैः सदा। सुखदुःखसमायुक्ता व्यथितास्ते भवंत्युत ॥२७॥ असंवासाः प्रजायन्ते म्लेच्छाश्चापि न संशयः। नराः पापसमाचारा लोभमोहसमन्विताः २८ वर्जयन्ति च पापानि जन्मप्रभृति ये नराः। अरोगा रूपवंतस्ते धनिनश्च भवंत्युत ॥ २९ ॥ स्त्रियोपेतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः। एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ३० ॥ परस्वहरणे दोषाः सर्वे एव प्रकीर्तिताः। एतद्धि लेशमात्रेण कथितं ते मयानघ ॥३१॥ अपरस्मिन् कथायोगे भूयः श्रोष्यसि भारत। एतन्मया महाराज ब्रह्मणो वदतः पुरा ॥ ३२ ॥ सुरर्षीणां श्रुतं मध्ये पृष्टश्चापि यथातथम्। मयापि तच्च कात्स्न्र्येन

कुछ भी ज्ञान नहीं होता है ॥ २६ ॥ जो पुरुष पाप करते हैं, परन्तु प्रायश्चित्त नहीं करते हैं उनको अनेक दुःख भोगने पडते हैं और वे जो सुख भोगते हैं, वे भी दुःखमिश्रित होते हैं ॥ २७ ॥ पापकर्म करने वाले, लोभी और संसारके मिथ्या पदार्थों पर प्रीति रखने वाले पुरुष घरवाररहित म्लेच्छ होकर उत्पन्न होते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥२८॥ परन्तु जो पुरुष जन्मसे ही पापकर्म नहीं करता है,उस पुरुषका शरीर नीरोगी रहता है सुन्दर रहता है और वह धनाढ्य होता है ॥ २९ ॥ स्त्रियें भी यदि उपरोक्त पापकर्म करती हैं, तो उपरोक्त पशुपक्षियोंकी स्त्रियें होकर उत्पन्न होती हैं ॥१३०॥ दूसरेकी वस्तु चुरानेका सब दोष मैंने तुझसे कहा, हे निर्दोष ! यह मैंने तुझसे लेशमात्र ही कहा है॥३१॥हे भरतवंशी राजन् ! दूसरी कथाके अवसर पर तू और सुन सकेगा। हे महाराज!पहिले ब्रह्माजीने यह कथा देवर्षियोंके मध्यमें कही थी तहाँ मैंने सुनी थी और तेरे पूछने करने पर यह कथा मैंने तुझे पूर्णरूपसे सुनादी, हे महाराज!इस कथाको

यथावदनुवर्णितम् । एतच्छ्रुत्वा महाराज धर्मे कुरु मनः सदा१३३
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे संसारचक्रं नाम एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

युधिष्ठिर उवाच । अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन् कथिता मे त्वयानघ । धर्मस्य तु गतिं श्रोतुमिच्छामि वदतां वर ॥ १ ॥ कृत्वा कर्माणि पापानि कथं यान्ति शुभां गतिम् । कर्मणा च कृतेनेह केन यांति शुभां गतिम् ॥ २ ॥ बृहस्पतिरुवाच । कृत्वा पापानि कर्माणि अधर्मवशमागतः । मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥ मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते । मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥४॥ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते । तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ५ ॥ यदि व्याहरते राजन् विप्राणां धर्मवादिनाम् । ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपवादात्

सुन कर धर्ममें मनको सदा लगाये रखे ॥१३२-१३३॥ एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे निर्दोष ब्राह्मण! आपने मुझसे अधर्मका परिणाम कहा, हे उत्तम वक्ता! अब मैं आपसे धर्मका परिणाम सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ पाप कर्म करनेसे मनुष्यको उत्तम गति किस प्रकार मिल सकती है? कभी नहीं मिल सकती,? तो फिर कौनसा कर्म करनेसे उसको शुभ गति मिलसकती है? २ बृहस्पतिने उत्तर दिया, कि-पुरुष पाप कर्म करके अधर्मके वशमें होजाता है और उसका मन भी धर्मसे हट जाता है तब वह नरकमें गिरता है ॥ ३ ॥ मोहवश अधर्म बन जानेपर जो पुरुष पीछेसे पछताता है, और मनको वशमें रखता है, उसको पाप का फल नहीं भुगतना पड़ता ॥ ४ ॥ पापकर्म करने वालेका मन जैसे२ पापकर्मकी निन्दा करता है, तैसे २ उसका शरीर अधर्ममेंसे मुक्त होता जाता है ॥ ५ ॥ और पापकर्म करनेवाला

प्रमुच्यते ॥६॥ यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते । समाहितेन मनसा विमुच्येत तथा तथा ॥ ७ ॥ भुजङ्ग इव निर्मोकात् पूर्व-भुक्ताज्जरान्वितात् । दत्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ८ मनःसमाधिसंयुक्तः सुगतिं प्रतिपद्यते । प्रदानानि तु वक्ष्यामि यानि दत्वा युधिष्ठिर ॥ ९ ॥ नरः कृत्वाप्यकार्याणि ततोऽधर्मेण मुच्यते । सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम् । पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता ॥१०॥ प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते । अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्नं प्रशस्यते ११ अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः । अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ॥ १२ ॥ न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजाति-

पुरुष धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे अपना पाप कह देता है तो वह तुरत ही अधर्मसे हुए अपवादसे मुक्त होजाता है ॥ ६ ॥ मनुष्य जैसे२ अपने मनको स्थिर करके अपना कहा हुआ अधर्म विद्वान् ब्राह्मणोंसे कहता है, तैसे२ वह अधर्मसे मुक्त होजाता है ॥ ७ ॥ जैसे सर्प पहिले भोगी हुई और जीर्ण हुई कैंचलीसे छूट जाता है इसी प्रकार जो पुरुष सावधान होकर अनेक प्रकारके दान देता है और मनको स्थिर रखता है ॥ ८ ॥ वह सद्गति पाता है, हे युधिष्ठिर ! अब मैं दानके सम्बन्धमें कहूँगा ॥ ९ ॥ उसके कारण पुरुष अकार्य करने पर भी धार्मिक होजाता है, सब दानोंमें अन्नदान श्रेष्ठ है, धर्मकी इच्छा करने वाला पुरुष प्रथम दयासे अन्नदान देय ॥ १० ॥ क्योंकि-मनुष्यके प्राण अन्न हैं इस अन्नमेंसे ही जन्तु उत्पन्न होते हैं, अन्न पर ही लोकोंकी स्थिति है, अतः अन्नकी प्रशंसा कीजाती है ॥ ११ ॥ देवता ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं, राजा रन्तिदेव अन्नका दान देकर स्वर्गमें गया था ॥ १२ ॥ मनुष्य न्यायसे अन्न पाकर शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको प्रसन्नतासे वह उत्तम

भ्योऽन्नमुत्तमम् । स्वाध्यायं समुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।१३।।
यस्य ह्यन्नमुपाश्नन्ति ब्राह्मणानां शतं दश । हृष्टेन मनसा दत्तं
न स तिर्यग्गतिर्भवेत् ।। १४ ।। ब्राह्मणानां सहस्राणि दश भोज्य
नरर्षभ । नरोऽधर्मात् प्रमुच्येत योगेष्वभिरतः सदा ।। १५ ।।
भैक्ष्येणान्नं समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृतः । स्वाध्यायनिरते विप्रे
दत्त्वेह सुखमेधते ।। १६ ।। अहिंसन् ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परि-
पाल्य च । क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्नं यो वै प्रयच्छति ।। १७ ।।
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यः प्रयतः सुसमाहितः । तेनापोहति धर्मात्मन्
दुष्कृतं कर्म पाण्डव ।। १८ ।। षड्भागपरिशुद्धं च कृषेर्भागमुपा-
र्जितम् । वैश्योऽददद् द्विजातिभ्यः पापेभ्यः परिमुच्यते ।। १९ ।।
अवाप्य प्राणसंदेहं कार्कश्येन समार्जितम् । अन्नं दत्त्वा द्विजा-

अन्न दे ।। १३ ।। जो प्रसन्न मनसे दश सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन जिमाता है वह पशुकी योनिमें उत्पन्न नहीं होता १४ हे राजन् ! जो पुरुष दश सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराता है तथा योगमें नित्य तत्पर रहता है वह पुरुष अधर्मसे मुक्त हो जाता है ।। १५ ।। वेदज्ञ ब्राह्मण अन्नकी भिक्षा माँगकर यदि वेदका स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मणको भोजन कराते हैं तो वे इस लोकमें सुख पाते हैं ।। १६ ।। हे पाण्डव ! जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करता है, न्यायसे ब्राह्मणोंका पालन करता है और अपनेको जो धन मिलता है, उसको वेदाध्ययन करने वाले उत्तम ब्राह्मणोंको देदेता है, स्वयं नियममें रहता है और भली प्रकार अपने मन को नियममें रखता है, वह पुरुष कर्म करके अपने पापोंका नाश कर डालता है ।।१८।। यदि वैश्य अपने क्षेत्रमें उत्पन्न हुए अन्न के छः विभाग करके उसमेंसे छठा भाग ब्राह्मणोंको देदेता है, तो वह पापोंसे पूर्ण रीतिसे मुक्त होजाता है ।। १९ ।। शूद्र भी

तिभ्यः शूद्रः पापात् प्रमुच्यते ॥ २० ॥ औरसेन बलेनान्नमर्ज यित्वाऽविहिंसकः। यः प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि पश्यति २१ न्यायेनैवाप्तमन्नं तु नरो हर्षसमन्वितः। द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्वा पापात् प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ अन्नमूर्जस्करं लोके दत्वोर्जस्वी भवेन्नरः। सतां पंथानमावृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३ ॥ दानवद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः। ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः ॥२४॥ सर्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम्। कार्यं पात्रागतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः २५ अन्नस्य हि प्रदानेन नरो रौद्रं न सेवते। तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् ॥ २६ ॥ यतेद्ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्नं गृही

अपने प्राणोंकी परवाह न कर बड़े परिश्रमसे पाये हुए अन्नको ब्राह्मणोंको अर्पण करनेसे पापमेंसे छूट जाता है ॥ २० ॥ जो पुरुष अपने शारीरिक बलसे अन्न पाता है और उस अन्नको प्राप्त करते समय किसीको पीड़ा नहीं पहुँचाता है, वह पुरुष यदि ऐसे अन्नका ब्राह्मणोंको दान देता है तो वह दुःखोंको नहीं देखता है ॥२१॥ जो पुरुष न्यायसे अन्न पाकर वेदज्ञ ब्राह्मणों को हर्षपूर्वक देता है तो पापोंमेंसे छूट जाता है ॥ २२ ॥ अन्न जगत्में तेजको बढ़ाने वाला है, ऐसे अन्नका दान देनेसे पुरुष तेजस्वी होजाता है और सत्पुरुषोंके मार्ग पर चलनेसे सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ २३ ॥ दान देने वाले पुरुषोंके बनाये हुए मार्ग पर विद्वान् भी चलते हैं, अन्नदाता ही प्राणदाता हैं और उनसे सनातनधर्म प्रकट हुआ है ॥२४॥ मनुष्य प्रत्येक स्थिति में न्यायसे मिला हुआ अन्न सदा सुपात्रको देय, क्योंकि-अन्न प्राणियोंका परम आधार और परम गति है ॥२५॥ अन्नदान देनेसे पुरुषको दुःख नहीं भोगने पड़ते, अतः न्यायसे मिले हुए अन्नका सदा दान देय ॥ २६ ॥ गृहस्थाश्रमी पुरुष पहिले सदा

सदा । अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः॥२७॥भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप । न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा ॥ २८ ॥ न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते । सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् ॥२९॥ एवं खलु समायुक्तो रमते विगतज्वरः । रूपवान् कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपजायते ॥३०॥ एतत्ते सर्वमाख्यानमन्नदानफलं महत् । मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भारत ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । अहिंसा वैदिकं कर्म ध्यानमिन्द्रियसंयमः । तपोऽथ गुरुशुश्रूषा किं श्रेयः पुरुषं प्रति ॥१॥ बृहस्पतिरुवाच । सर्वाण्येतानि धर्म्याणि पृथग्द्वाराणि सर्वशः । शृणु संकीर्त्यमानानि

ब्राह्मणोंको जिमानेका प्रयत्न करे और अन्नदान करके अपने दिनको सफल बनावे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष इतिहासवेत्ता, वेदवेत्ता, न्यायवेत्ता, तथा धर्मज्ञ एक सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराता है ॥ २८ ॥ वह पुरुष भयंकर नरकमें नहीं पड़ता है तथा जन्म मरणके चक्रमें नहीं पड़ता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वह मरणके पीछे भी सुख पाता है २९ इस प्रकार जो दान करता है वह रोगरहित होकर सुखपूर्वक क्रीड़ा करता है और रूप, कीर्ति तथा धनको पाता है ॥ ३० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! अन्नदान सब दानधर्मोंमें मूलरूप है इस प्रकार मैंने तुमसे अन्नदानका बड़ा भारी फल कहा ॥ ३१ ॥ एकसौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे बृहस्पते ! अहिंसा, वेदोक्तकर्म, ध्यान इन्द्रियसंयम, तप और गुरुसेवा इनमेंसे कौन कर्म पुरुषका कल्याण करता है ! ॥१॥ बृहस्पतिने कहा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष !

षडेव भरतर्षभ ॥२॥ हन्त निःश्रेयसं जन्तोरहं वक्ष्याम्यनुत्तमम् । अहिंसापाश्रयं धर्मं यः साधयति वै नरः ॥ ३ ॥ त्रीन दोषान् सर्वभूतेषु निधाय पुरुषः सदा । कामक्रोधौ च संयम्य ततः सिद्धिमवाप्नुते ॥ ४ ॥ अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः । आत्मनः सुखमन्विच्छन् स प्रेत्य न सुखी भवेत् ॥ ५ ॥ आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पूरुषः। न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते ॥६॥ सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः । देवापि मार्गे मुह्यंति अपदस्य पदैषिणः ७ न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः । एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ८ ॥ प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये । आत्मौपम्येन पुरुषः

ये छः कर्म धर्ममय हैं और वे भिन्न२ रीतिसे होसकते हैं, उन कर्मोंको मैं तुझसे कहता हूँ, तू सुन ॥ २ ॥ मैं प्राणियोंके उत्तमोत्तम कल्याणकी बात तुझसे कहूँगा जो पुरुष अहिंसा नहीं करता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष सदा सब प्राणियों पर काम, क्रोध और लोभ करना त्याग देता है और काम तथा क्रोधको अपने वशमें रखता है, वह पुरुष सिद्धि पाता है ॥४॥ जो पुरुष हिंसा न करने वाले प्राणियोंको दण्डसे मारता है और अपने आप सुख पाना चाहता है, उसको मरणके पीछे सुख नहीं मिल सकता ५ जो पुरुष सब प्राणियोंको अपने समान देखता है किसीको दण्ड नहीं देता है और क्रोधको जीत लेता है, वह मरणके पीछे सुख भोगता है ॥ ६ ॥ सब प्राणियोंको अपनी समान मानने वाले और उसी प्रकार उनके साथ व्यवहार करने वाले अपदके मार्ग जाननेमें देवता भी मोहमें पड़ जाते हैं ॥७॥ जो बात अपनेको अच्छी न लगती हो उसको दूसरोंके लिये भी न करे, यह धर्मका संक्षिप्त लक्षण है, मनुष्य कामनासे इसके विपरीत वर्ताव करता है ८ इस बातका सदा ध्यान रक्खे, कि-

प्रमाणमधिगच्छति ॥९॥ यथा परः प्रक्रमते परेषु तथापरे प्रक्रमन्ते परस्मिन्। तथैव तेऽस्तूपमा जीवलोके यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः॥१० वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा तं सुरगुरुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् । दिवमाचक्रमे धीमान् पश्यतामेव नस्तदा ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रसमाप्तौ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततो युधिष्ठिरो राजा शरतल्पे पितामहम्। पुनरेव महातेजाः पप्रच्छ वदतां वरः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच । ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते। अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ २ ॥ कर्मणा मनुजः कुर्वन् हिंसां पार्थिव-

---

दूसरेको भी दुःख देनेसे, सुख देनेसे, अपमान करनेसे, निषेध करनेसे, प्रिय अथवा अप्रिय वर्ताव करनेसे मेरी समान ही सुख अथवा दुःख होता है ९ पुरुष जिसप्रकार दूसरोंको दबाता है, (अवसर आने पर) दूसरे भी उसको दबाते हैं और जो मनुष्य दूसरेकी रक्षा करता है तो दूसरे भी उसकी रक्षा करते हैं, इसी प्रकार जगत्में यदि धर्म किया जाता है, तो सुख मिलता है, और अधर्म किया जाता है तो दुःख मिलता है, इस प्रकार तुझे उपमा समझ लेनी चाहिये, मैंने तुझे निपुणतासे धर्मोपदेश दिया है १० वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! देवगुरु बृहस्पति बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर उस समय हमारे देखते २ स्वर्गको चले गये ॥११॥ एकसौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनने कहा, कि–हे जनमेजय ! तदनन्तर बाणशय्यामें पौढ़े हुए भीष्मपितामहसे महातेजस्वी उत्तम वक्ता राजा युधिष्ठिर फिर बूझने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे महामति ! ऋषि, ब्राह्मण और देवता अहिंसा धर्मकी वेदोक्त प्रमाण देकर

सत्तम । वाचा च मनसा चैव कथं दुःखात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच । चतुर्विधेयं निर्दिष्टा ह्यहिंसा ब्रह्मवादिभिः ।
एकैकतोपि विभ्रष्टा न भवत्यरिसूदन ॥४॥ यथा सर्वश्चतुष्पाद्वै
त्रिभिः पादैर्न तिष्ठति । तथैवेयं महीपाल कारणैः प्रोच्यते त्रिभिः ५
यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् । सर्वाण्येवापिधीयंते
पदजातानि कौंजरे ॥ ६ ॥ एवं लोकष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः
पुरा । कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसापि च ॥ ७ ॥ पूर्वं
तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाथ कर्मणा । न भक्षयति यो मांसं
त्रिविधं स विमुच्यते ॥ ८ ॥ त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवा-

---

प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥ हे राजर्षभ ! मनुष्य मन, वाणी अथवा कर्मसे हिंसा करने पर दुःखसे किस प्रकार छूट सकता है ३ भीष्मजीने कहा, कि—हे शत्रुसूदन ! ब्रह्मवादियोंने चार प्रकारकी दया कही है, उनमेंसे यदि वह एक अंशमें भी कम हो जाय तो दयाधर्म ठहर नहीं सकता, किन्तु नष्ट होजाता है (मांस भक्षण मांसभक्षणका संकल्प, मैं मास खाऊँगा यह वाणीसे कहना तथा प्राणीकी हिंसा करना इन चारप्रकारकी हिंसाओंकोत्यागनेसे ही दयाधर्म पाला जासकता है)॥ ४ ॥ जैसे चार चरण वाला पशु तीन चरणोंसे खड़ा नहीं रह सकता, हे महीपाल ! इसी प्रकार दया धर्म भी तीन कारणोंसे नहीं टिक सकता ॥ ५ ॥ जैसे हाथीके पैरमें सब पादचारियोंके पाँव समा जाते हैं, इसी प्रकार अहिंसा धर्ममें और सब धर्मोंका समावेश होजाता है ६ इस प्रकार लोकोंमें अहिंसाका धर्मानुसार वर्णन किया गया है मनुष्य कायिक, वाचिक और मानसिक हिंसासे लिप्त होता है ७ परन्तु जो प्राणी, मन, वचन,और शरीरसे हिंसा त्याग देता है और मांस नहीं खाता है वह तीन प्रकारके दोषोंसे छूट जाता है ॥ ८ ॥ ब्रह्मवेत्ताओंने हिंसाके तीन कारण हे हैं,कमन, वाणी

द्रियैः । मनो वाचि तथा स्वादे दोषा ह्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ ९ ॥ न भक्षयंत्यतो मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः । दोषांस्तु भक्षणे राजन्मांसस्येह निबोध मे ॥ १० ॥ पुत्रमांसोपमं जानन् खादते यो विचक्षणः । मांसं मोहसमायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ११ पितृमातृसमायोगे पुत्रत्वं जायते यथा । हिंसां कृत्वावशः पापो भूयिष्ठं जायते तथा ॥ १२ ॥ रसं च प्रतिजिह्वाया ज्ञानं प्रज्ञायते यथा । तथा शास्त्रेषु नियतं रागो ह्यास्वादिताद्भवेत् ॥ १३ ॥ संस्कृतासंस्कृताः पक्वा लवणालवणास्तथा । प्रजायन्ते यथा भावास्तथा चित्तं निरुध्यते ॥ १४ ॥ भेरीमृदङ्गशब्दांश्च तंत्रीशब्दांश्च पुष्कलान् । निषेविष्यन्ति वै मन्दा मांसभक्षाः कथं

और आस्वादमें ये तीनों दोष समा रहे हैं ॥ ९ ॥ इस लिये तपस्वी महात्मा मांस नहीं खाते हैं, हे राजन् ! अब मैं तुझे मांसभक्षणके दोष सुनाता हूँ, सुन ॥ १० ॥ जो अविचक्षण मांसको अपने पुत्रके मांसकी समान जान कर भी मोहसे मांस खाता है, उसको अधम पुरुष समझना चाहिये ॥ ११ ॥ जैसे माता पिताका संयोग होने पर पुत्र अथवा पुत्रीकी उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार हिंसा करके अवश हुआ मनुष्य बहुतसे पापोंको उत्पन्न करता है अर्थात् एक हिंसा बनजाने पर उससे असत्य भाषण आदि अनेक पाप बनते हैं१२जिह्वासे रसका ज्ञान होता है तब उस पर आसक्ति होजाती है, शास्त्रोंमेंभी कहा है,कि–स्वाद लेनेसे पदार्थ पर प्रीति उत्पन्न होजाती है ॥१३॥ मसाले आदि डाल कर संस्कृत किया हो अथवा मसाले आदिके संस्कारसे रहित हो, पका हुआ हो, नमक पड़ा हुआ हो अथवा अलोना हो, किन्तु मांसके पदार्थोंको एक बार खालेने पर उस पर मन अधिक चलने लगता है और वह चित्तको अपने वशमें करलेता है ॥ १४ ॥ मांसभक्षण पर प्रीति करने वाला मूर्ख पुरुष भेरी,

नराः॥१५॥अचिंतितमनिर्दिष्टमसंकल्पितमेव च। रसगृद्ध्याभिभूता ये प्रशंसंति फलार्थिनः ॥ १६ ॥ प्रशंसा ह्येव मांसस्य दोषकर्मफलान्विता। जीवितं हि परित्यज्य बहवः साधवो जनाः १७ स्वमांसैः परमांसानि परिपाल्य दिवं गताः ॥१८॥ एवमेषा महाराज चतुर्भिः कारणैर्वृता । अहिंसा तव निर्दिष्टा सर्वधर्मानुसंहिता ॥ १९ ॥ छ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मांसवर्जनकथने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

युधिष्ठिर उवाच । अहिंसा परमो धर्म इत्युक्तं बहुशस्त्वया। श्राद्धेषु च भवानाह पितॄनामिषकांक्षिणः ॥ १ ॥ मांसैर्बहुविधैः प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा। अहत्वा च कुतो मांसमेवमेतद्वि-

---

मृदंग और वीणाओंके मधुर स्वरको क्यों अच्छा समझेगा १५ मांस खाना चाहने वाले मांसका रस खानेकी इच्छासे उसके अधीन होजाते हैं, और मांसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं, कि-"मांसभक्षण विचारके बाहर है, उसका वर्णन करना अशक्य है और उसका संकल्प भी नहीं किया जासकता"॥१६॥ मांसकी प्रशंसा करनेसे दोष लगता है,और उसका फल भोगना पड़ता है बहुतसे सत्पुरुष अपने प्राणोंको त्याग कर, तथा अपना मांस अर्पण कर दूसरेके मांसोंकी रक्षा कर स्वर्गमें गए हैं ॥ १८ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार चार कारणोंसे पाला जासकने वाला अहिंसाधर्म पाला जासकता है, वह तुमसे कहा, यह सर्वधर्ममय है ॥ १९ ॥ एकसौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११४ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-आपने बहुत बार कहा है, कि-"अहिंसा परमो धर्मः" अहिंसा (दया) परम धर्म है, और आप यह भी कहते हैं, कि-पितर श्राद्धमें मांस खाना चाहते हैं ॥ १ ॥ आपने पहिले श्राद्धमें अनेक प्रकारका मांस देना कहा है, परन्तु प्राणी

रुध्यते ॥ २ ॥ जातो नः संशयो धर्मे मांसस्य परिवर्जने । दोषो भक्षयतः कः स्यात् कश्चाभक्षयतो गुणः ॥ ३ ॥ हत्वा भक्षयतो वापि परेणोपहृतस्य वा । हन्याद्वा यः परस्यार्थे क्रीत्वा वा भक्षयेन्नरः ॥४॥ एतदिच्छामि तत्त्वेन कथ्यमानं त्वयाऽनघ । निश्चयेन चिकीर्षामि धर्ममेतं सनातनम् ॥ ५ ॥ कथमायुरवाप्नोति कथं भवति सत्त्ववान् । कथमव्यंगतामेति लक्षण्यो जायते कथम् ६ भीष्म उवाच । मांसस्याभक्षणाद्राजन् यो धर्मः कुरुनन्दन । तन्मे शृणु यथातत्त्वं यथास्य विधिरुत्तमः ॥७॥ रूपमव्यंगतामायुर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम् । प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः ८

की हिंसा किये बिना मांस किस प्रकार मिल सकता है ? इस प्रकार परस्पर विरोध पड़ता है ॥ २ ॥ हमें मांसत्यागके सम्बन्ध में सन्देह होगया है, कि–मांस खाने वालेको क्या दोष लगता है और न खाने वालेको कैसा पुण्य मिलता है ? ॥ ३ ॥ जो स्वयं मार कर खाता है उसको कैसा पाप लगता है और दूसरा लाकर दे जाय उसका भक्षण करने वालेको कितना पाप लगता है, जो दूसरोंके लिये मारता है उसको कैसा पाप लगता है और जो बिकता हुआ लेकर खाता है, उसको कैसा पाप लगता है ४ हे निर्दोष ! यह बात आप मुझसे यथार्थरीतिसे कहिये तब मैं इस सनातनधर्मका सत्कारपूर्वक पालन करूँगा ॥५॥ पुरुषकी आयु किस प्रकार बढ़ जाती है और पुरुष किस प्रकार सत्त्वसम्पन्न होता है, किस प्रकार सर्वाङ्गपूर्ण होसकता है और किस प्रकार उत्तम लक्षणों वाला होसकता है, यह कहिये ॥ ६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे कुरुनन्दन राजन् ! मांसका भक्षण न करनेसे जो धर्म होता है उस सबको और उसकी विधिको तू यथार्थरीतिसे सुन ॥७॥ जिन महात्मा पुरुषोंको रूपकी, शरीरके सम्पूर्ण अंगोंकी आयुकी, बुद्धिकी, सत्त्वकी, बलकी और स्मृति

ऋषीणामत्र सम्वादो बहुशः कुरुनन्दन । बभूव तेषां तु मतं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥९॥ यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः। वर्जयेन्मधु मांसं च सममेतद्युधिष्ठिर ॥ १० ॥ सप्तर्षयो वालखिल्यास्तथैव च मरीचिपाः । अमांसभक्षणं राजन् प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ११ ॥ न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत् । तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥१२॥ अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजंतुषु । साधूनां संमतो नित्यं भवेन्मांसं विवर्जयन् ॥ १३ ॥ स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति । नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥१४॥ ददाति यजते चापि तपस्वी च भवत्यपि । मधुमांसनिवृत्त्येति प्राह चैवं बृह-

पानेकी इच्छा थी, उन महात्माओंने हिंसाको त्याग दिया था ८ हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर ! इस विषयमें ऋषियोंमें अनेक प्रकारका सम्वाद हुआ है, अब उनका जो मत है उसको तू सुन ॥ ९ ॥ जो पुरुष व्रत धारण करके प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करता है और जो पुरुष मदिरा तथा मांसको त्याग देता है, हे युधिष्ठिर ! इन दोनोंको एकसा फल मिलता है ॥१०॥ महात्मा सप्तर्षि तथा सूर्यकी किरणोंका पान करने वाले ऋषि वालखिल्य तथा दूसरे भी बुद्धिमान् ऋषि मांसभक्षण न करनेकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥ जो पुरुष मांस नहीं खाता है, प्राणियोंकी हिंसा नहीं करता है दूसरेसे भी हिंसा नहीं कराता है, स्वायंभुव मनुने कहा है, कि वह सब प्राणियोंका मित्र है१२जो पुरुष मांसको त्याग देता है,उसका प्राणिमात्र तिरस्कार नहीं कर सकते वह सबप्राणियोंका विश्वासपात्र होजाताहै तथा सत्पुरुषोंमें मान्य होजाताहै१३ धर्मात्मा नारदजीने कहा है, कि-जो पुरुष दूसरेके मांससे अपने मांसको बढ़ाना चाहता है, वह पुरुष सदा दुःखी रहता है १४ बृहस्पतिजीने कहा, कि-मदिरा और मांसको त्यागनेसे पुरुषको

स्पतिः ॥ १५ ॥ मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । न खादति च यो मांसं सममेतन्मतं मम ॥१६॥ सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति । सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात् १७ सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत । यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते ॥ १८ ॥ दुष्करं च रसज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् । चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥ १९ ॥ सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम् । दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः ॥ २० ॥ एवं वै परमं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः । प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा ॥२१॥ आत्मौपम्येन मंतव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः । मृत्युतो भयमस्तीति

यज्ञ करनेका फल मिलता है और वह तपस्वी भी होता है॥१५॥ सौ वर्ष तक प्रतिमास यज्ञ करने वाले और मांसभक्षण न करने वाले इन दोनों पुरुषोंको मैं एक समान समझता हूँ ॥ १६ ॥ मधु और मांस त्यागने वाला पुरुष सदा यज्ञ करता है, सदा दान देता है तथा सदा तप करता है ॥ १७ ॥ हे भरतवंशी राजन्! जो पुरुष पहिले मांस खाता हो परन्तु पीछेसे मांस खाना छोड़ देय तो उसको जैसा फल मिलता है कि वैसा फल वेदपाठ करनेसे और सब यज्ञोंको करनेसे भी नहीं मिल सकता१८एक बार मांसके रस का ज्ञान हुआ, कि प्राणियोंको अभय देने वाला मांसत्यागरूपी व्रत पालना कठिन पड़ जाता है ॥ १९ ॥ जो ज्ञानी पुरुष सब प्राणियोंको अभयदक्षिणा देता है वह जगत्में निःसन्देह प्राणदाता है ॥ २० ॥ इस प्रकार विद्वान् अहिंसाधर्मको परमधर्मकी समान प्रशंसा करते हैं, जैसे अपने प्राण हमको प्रिय हैं, इसी प्रकार दूसरोंको भी अपने प्राण प्रिय लगते हैं ॥२१॥ पुण्यात्मा बुद्धिमान् पुरुषको सब प्राणियोंको अपनी समान समझना चाहिये, अपना कल्याण सम्पादन करने वालोंको भी मृत्युसे भय

विदुषां भूतिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम् । अरोगाणामपापानां पापैर्मांसोपजीविभिः २३ तस्माद्विद्धि महाराज मांसस्य परिवर्जनम् । धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्य च ॥ २४ ॥ अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः । अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ॥ २५ ॥ न हि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद्वापि जायते । हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥२६॥ स्वाहास्वधाऽमृतभुजो देवाः सत्यार्जवप्रियाः । क्रव्यादान् राक्षसान् विद्धि जिह्मानृतपरायणान् २७ कांतारेष्वथ घोरेषु दुर्गेषु गहनेषु च । रात्रावहनि संध्यासु चत्वरेषु सभासु च ॥ २८ ॥ उद्यतेषु च शस्त्रेषु मृगव्यालहतेषु च ।

लगता है । २२ । तो फिर जीवित रहना चाहने वाले रोगरहित निर्दोष प्राणियोंको कि-जिनको मांस पर आजीविका चलाने वाले पापी पुरुष मार डालते हैं, उनको मृत्युका भय क्यों न होता होगा ? २३ अत एव हे राजन् ! तुझे यह समझना चाहिये कि-मांसत्याग धर्मका श्रेष्ठस्थान, स्वर्गका श्रेष्ठ स्थान, और सुखका श्रेष्ठ स्थान है २४ अहिंसा परमधर्म है अहिंसा परमतप है और अहिंसा परमसत्य है उसमेंसे ही धर्मकी प्रवृत्ति होती है॥२५॥ मांस कोई तिनकेसे,काष्ठसे अथवा पत्थरसे उत्पन्न नहीं होता है परन्तु प्राणियोंकी हत्या करने पर ही मांस मिलता है,इस लिये उसके भक्षणमें दोष है ॥ २६ ॥ देवता यज्ञमें स्वाहाकारसे और पितर स्वधाकारसे अमृतका भोजन करते हैं, सत्य तथा सरलता पर प्रीति रखते हैं, अतः मांसाहार करके जिह्वाको संतुष्ट रखने वालोंको तो कपट और असत्यमें परायण रहने वाले राक्षस ही समझना चाहिये ॥२७॥ भयंकर दुर्ग और गहनवनोंमें, रात्रिमें दिनमें संध्यासमय, चौराहोंमें, सभामें, शस्त्र उठाने पर तथा मांसाहारी पशुओंको मारते समय हे राजन् ! मांस न खाने

अमांसभक्षणे राजन् भयमन्यैर्न गच्छति ॥ २९ ॥ शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु । अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा ॥३०॥ यदि चेत् खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत् । घातकः खादकार्थाय तद्घातयति वै नरः ॥ ३१ ॥ अभक्ष्यमेतदिति वै इति हिंसा निवर्तते । खादकार्थमतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्तते ॥३२॥यस्माद्ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते । तस्माद्विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ३३ ॥ त्रातारं नाधिगच्छन्ति रौद्राः प्राणिविहिंसकाः । उद्वेजनीया भूतानां यथा व्यालमृगास्तथा ॥३४॥ लोभाद्वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थमेव च । संसर्गादथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम् ॥ ३५ ॥ स्वमांसं परमांसेन यो

पुरुषको दूसरोंका भय नहीं लगता है ॥ २८॥२९ ॥ जो मांसाहार नहीं करता है वह पुरुष सब प्राणियोंका शरण्य और सब प्राणियोंका विश्वासपात्र होता है, जगत्में शान्तिप्रदान करने वाला होता है, स्वयं भी किसी समय उद्विग्न नहीं रहता है ३० यदि कोई मांसभक्षक न हो तो कोई प्राणियोंका वध भी न करे, क्यों कि-घातक खाने वालेके लिये ही प्राणियोंका वध करता है ३१मांस अभक्ष्य पदार्थ है, ऐसा विचार होने पर हिंसा बन्द होजाती हैअर्थात् खाने वालेके लिये ही मृग आदिकी हिंसाकी जाती है ३२ इस कारण हे महाकान्तिवान् राजन् ! प्राणिहिंसा करने वालोंकी आयु कम होजाती है, अतः अपना कल्याण चाहने वालोंको मांसभक्षण न करना चाहिये ३३ प्राणियोंकी हिंसा करने वाले भयंकर पुरुषोंको दूसरे जन्ममें अपना रक्षक नहीं मिलता है, जैसे हिंसा करनेमें पशुओंको दुःख दिया जाता है तथा उनको मारा जाता है, तैसे ही हिंसक पुरुषोंको भी दुःख देना चाहिये और मारना चाहिये ३४ लोभवश, बुद्धिमोहवश अथवा अपने वीर्यका उत्कर्ष बतानेके लिये अथवा पापियों

वर्धयितुमिच्छति। उद्विग्नवासो वसति यत्र यत्राभिजायते ३६
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत्। मांसस्याभक्षणं
प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥ ३७ ॥ इदं तु खलु कौन्तेय श्रुतमासीत्
पुरा मया। मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषा मांसभक्षणे ॥ ३८ ॥
यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम्। हतानां वा
मृतानां वा यथा हंता तथैव सः ॥ ३९ ॥ धनेन क्रयिको हन्ति
खादकश्चोपभोगतः। घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो
वधः ॥ ४० ॥ अखादन्ननुमोदंश्च भावदोषेण मानवः। योऽनु-
मोदति हन्यन्तं सोऽपि दोषेण लिप्यते ॥ ४१ ॥ अधृष्यः सर्व-
भूतानामायुष्मान्नीरुजः सदा। भवत्यभक्षयन् मांसं दयावान्

के सम्बन्धसे मनुष्योंकी अधर्म पर प्रीति होने लगती है ३५ जो पुरुष पराये मांससे अपने मांसको बढ़ाना चाहते हैं वे पुरुष इस जगत्‌में दुःखपूर्वक रहते हैं और मरण पाने पर जिस जातिमें उत्पन्न होते हैं तहाँ भी दुःस्थितिमें जीवन बिताते हैं ३६ नियम पालने वाले महर्षि कहते हैं कि-मांसत्याग धनधान्य देने वाला, यश देने वाला, आयु देने वाला स्वर्गप्रद तथा महाकल्याण करने वाला है ॥३७॥ हे कुन्तीपुत्र! मांस खानेके दोषोंको मैंने पहिले मार्कण्डेयजीसे सुना था, कि-॥३८॥ जो प्राणी जीवित रहना चाहने वाले प्राणियोंको मार कर अथवा जो स्वयं मर-जाते हैं उनके मांसको खाते हैं, उनको मारने वाला ही समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ मांसको बिकता हुआ खरीदने वाला धनसे प्राणीकी हिंसा करता है, खाने वाला उपभोगसे प्राणीकी हिंसा करता है और मारने वाला हनन करनेसे हिंसा करता है, इस प्रकारसे तीन तरहका वध होता है ॥ ४० ॥ जो पुरुष मांस नहीं खाता है, परन्तु मनके दूषित होनेसे मारनेवालेका अनुमोदन करता है, उसको भी हिंसाका दोष लगता है ॥ ४१ ॥ जो

माणिनामिह ॥ ४२ ॥ हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः । मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः ॥ ४३ ॥ अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् । भक्षयन्निरयं याति नरो नास्त्यत्र संशयः ४४ प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मणकाम्यया । अल्पदोषमिह ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ४५ खादकस्य कृते जन्तून् यो हन्यात् पुरुषाधमः । महादोषतरस्तत्र घातको न तु खादकः ४६ इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः। हन्याज्जन्तून् मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ्नरः ॥ ४७ ॥ भक्षयित्वापि यो मांसं पश्चादपि

पुरुष जीवों पर दयालु होकर मांसभक्षण नहीं करता है, उस पुरुषका कोई जीव अपमान नहीं कर सकता, वह आयुष्मान् होता है और सदा नीरोग रहता है ॥ ४२ ॥ सुवर्णका दान देनेसे, गोदान देनेसे और भूमिदान देनेसे जो धर्म होता है, मांसभक्षणका त्याग करनेसे उससे भी अधिक फल मिलता है, यह बात वेदमें कही है ॥४३॥ जिस मांसका यज्ञमें संस्कार न किया हो, जो देवार्पण न किया हो और जो मांस विधिरहित हो उसको न खाना चाहिये, जो पुरुष उपरोक्त मांसको खाता है, वह नरकमें पड़ता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ४४ ॥ जो मांस यज्ञमें प्रोक्षित होता है, तथा जो मांस श्राद्धमें अभ्युक्षित हो ऐसे मांसको खाने पर भी थोड़ा सा दोष लगता है, परन्तु उपरोक्तविधिसे प्रतिकूल मांस खाने वालेको विशेष दोष लगता है ॥ ४५ ॥ जो अधम पुरुष खाने वालोंके लिये जीवकी हिंसा करता है, उसको बहुत बड़ा दोष लगता है, खाने वालेको उतना दोष नहीं लगता है ॥ ४६ ॥ जो मूढ़ और अधम पुरुष यज्ञके मिषसे मांस खाना चाहकर देवपूजाके लिये यज्ञमें वेदोक्त उपायोंसे जीवोंकी हिंसा करता है, वह पुरुष नरकमें पड़ता है ४७ जो पुरुष एक वार मांस खानेके अनन्तर फिर पीछेसे मांस

निवर्त्तते । तस्यापि सुमहान धर्मो यः पापाद्विनिवर्त्तते ॥ ४८ ॥
आहर्त्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी । संस्कर्त्ता चोपभोक्ता
च खादकाः सर्व एव ते ॥ ४९ ॥ इदमन्यत्तु वक्ष्यामि प्रमाणं
विधिनिर्मितम् । पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठितम् ॥ ५० ॥
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः । यथोक्तं राजशार्दूल न
तु तन्मोक्षकांक्षिणाम् ॥ ५१ ॥ हविर्यत् संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षि-
ताभ्युक्षितं शुचि। वेदोक्तेन प्रमाणेन पितृणां प्रक्रियासु च५२अतो-
ऽन्यथा वृथा मांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत् । अस्वर्ग्यमयशस्यं च रक्षो-
वद्भरतर्षभ ॥ ५३ ॥ विधिहीनं नरः पूर्वं मांसं राजन्न भक्षयेत् ।

छोड़देता है उस पुरुषको भी महाधर्म होता है,क्योंकि वह पुरुष पापकर्मसे पीछेको हटता है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष मांस लाता है, जो उसका अनुमोदन करता है,जो हत्या करता है,जो बिकता हुआ खरीदता है, जो बेचता है, जो राँधता है और जो उपभोग करता है, ये सब मांस खाने वाले हैं ॥ ४९ ॥ अब मैं तुझे मांस न खानेका शास्त्रोक्त, ऋषियोंसे अनुमोदित, विधिमें कहा हुआ दूसरा प्रमाण सुनाता हूँ ॥ ५० ॥ हे राजसिंह ! वेदोंमें जो प्रवृत्तिधर्म कहा है, वह प्रजार्थी (गृहस्थाश्रमियों) के लिये कहा है, परन्तु वह धर्म मोक्षाभिलाषियोंके लिये नहीं कहा है ॥ ५१॥ वेदोक्त प्रमाणोंसे मन्त्र पढ़ कर जिस हविको संस्कार करके प्रोक्षित किया हो तथा पितरोंके कर्ममें अर्थात् श्राद्धमें जिसको अभ्युक्षित किया हो, वह हवि पवित्र माना जाता है ॥ ५२ ॥ इसके अतिरिक्त वृथा ही मांस भक्षण करनेका मनुजीने निषेध किया है तथा हे भरतवंशश्रेष्ठ ! ऐसा मांस खानेसे नरकमें पड़ना पड़ता है, जगत्में अपयश होता है तथा ऐसा मांस राक्षसोंके खाने योग्य माना जाता है ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! पुरुष यज्ञ और श्राद्धके अतिरिक्त और किसी समय मांस न खाय, अप्रोक्षित,

अप्रोक्षितं वृथा मांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ॥ ५४ ॥ य इच्छेत् पुरुषोऽत्यंतमात्मानं निरुपद्रवम् । स वर्जयेत मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ॥ ५५ ॥ श्रूयते हि पुरा कल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः । येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ॥ ५६ ॥ ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिः पुरा । अभक्ष्यमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥ ५७ ॥ आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः । एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ ५८ ॥ प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना । आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षितास्तपसा मृगाः ॥५९॥ क्रिया ह्येवं न हीयन्ते पितृदैवतसंश्रिताः । प्रीयन्ते पितरश्चैव न्यायतो मांसतर्पिताः ॥ ६० ॥ इदं तु शृणु

अनिवेदित और असंस्कृत मास न खाना चाहिये ॥ ५४ ॥ जो अपने आप परमसुखी होना चाहता हो वह जगत्में किसी प्राणी का मास न खाय ॥५५॥ हमने सुना है, कि–पूर्वकल्पमें मनुष्य व्रीहिमय पशु बनाते थे और पुण्यलोकके यत्नमें परायण रहने वाले वे पुरुष उससे ही यज्ञ करते थे ॥ ५६ ॥ पहिले चेदिदेशके राजा वसुसे ऋषियोंने बूझा, कि–" कैसा मास खाया जासकता है" हे प्रभो ! उस समय उसने अभक्ष्य मासको भी भक्ष्य बताया था ॥ ५७ ॥ इस कारण वह राजा स्वर्गसे पृथ्वी पर गिर पड़ा था और देवताओंके दुबारा बूझने पर भी जब उसने यही बात कही तब वह पातालमें गिर पड़ा था ॥ ५८ ॥ पहिले महात्मा अगस्त्यने प्रजाका हित करनेकी इच्छासे वनके सब पशुओंको देवार्पण करनेके लिये तपसे प्रोक्षण किया था अर्थात् यज्ञ करके भी उनका वध नहीं किया था उनके चारों ओर अग्नि फिरा कर ही उनको छोड़ दिया था ॥५९॥ इसी प्रकार पितृक्रिया श्राद्ध तथा देवयजन (यज्ञ) किया जाता है तो दोष नहीं लगता है ॥ ६० ॥ हे निर्दोष राजेन्द्र !

राजेन्द्र कीर्त्यमानं मयानघ । अभक्षणे सर्वसुखं मांसस्य मनुजाधिप ॥ ६१ ॥ यस्तु वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत् सुदारुणम् । यश्चैव वर्जयेन्मांसं सममेतन्मतं मम ॥ ६२ ॥ कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप । वर्जयेन्मधुमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते ६३ चतुरो वार्षिकान् मासान् यो मांसं परिवर्जयेत् । चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ ६४ ॥ अथवा मासमेकं वै सर्वमांसान्यभक्षयन् । अतीत्य सर्वदुःखानि सुखं जीवेन्निरामयः ६५ वर्जयन्ति हि मांसानि मासशः पक्षशोपि वा । तेषां हिंसानिवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते ॥ ६६ ॥ मांसं तु कौमुदं पक्षं वर्जितं पार्थ राजभिः । सर्वभूतात्मभूतस्थैर्विदितार्थपरावरैः ॥ ६७ ॥ नाभागेनांवरीषेण गयेन च महात्मना । आयुनाथानरण्येन दिलीप

मास न खानेसे सब प्रकारका सुख मिलता है, इस बातको मैं तुमसे कहता हूँ सुन ॥ ६१ ॥ सौ वर्ष तक दारुण तप करने वाले और मास भक्षण न करने वाले पुरुषोंको भी मैं एकसा ही समझता हूँ ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! शरद ऋतुके शुक्लपक्षमें मद्य और मासका त्याग करने वाले पुरुषको धर्म होता है ॥६३॥ जो पुरुष वर्षा ऋतुके चार महीनोंमें मासको त्याग देता है, उस पुरुषको कीर्त्ति, आयु, यश और बल ये चार उत्तम पदार्थ मिलते हैं॥ ६४ ॥ जो पुरुष एक मास तक सब प्रकारके मासोंको त्याग देता है वह पुरुष सब दुःखोंका उल्लंघन कर नीरोग होजाता है और सुखमें जीवन बिताता है॥ ६५ ॥ एक महीने तक अथवा पक्ष तक मासत्याग करने वाला पुरुष ब्रह्मलोकमें जाता है ॥ ६६ ॥ हे पृथापुत्र ! नाभाग, अम्बरीष, महात्मा गय, आयु,नाथ, अनरण्य, दिलीप, रघु, पुरु,कार्तवीर्य,अनिरुद्ध, नहुष, ययाति, नृग, विश्वगश्व तथा शशबिन्दु, युवनाश्व शिबि, औशीनर, मुचकुन्द, मान्धाता, हरिश्चन्द्र इन राजाओंको भूत-

रघुपूरुभिः ॥ ६८ ॥ कार्तवीर्यानिरुद्धाभ्यां नहुषेण ययातिना ।
नृगेण विष्वगश्वेन तथैव शशबिंदुना ॥ ६९ ॥ युवनाश्वेन च
तथा शिबिनौशीनरेण च । मुचुकुन्देन मान्धात्रा हरिश्चन्द्रेण वा
विभो ॥ ७० ॥ सत्यं वदत मा सत्यं सत्यं धर्मः सनातनः ।
हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत्॥७१॥ श्येनचित्रेण राजेंद्र
सोमकेन वृकेण च । रैवतेन रन्तिदेवेन वसुनासृञ्जयेन च॥७२॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृपेण भरतेन च । दुष्यन्तेन करूषेण
रामालर्कनरैस्तथा । विरूपाश्वेन निमिना जनकेन च धीमता७३
ऐलेन पृथुना चैव वीरसेनेन चैव ह । इक्ष्वाकुणा शम्भुना च
श्वेतेन सगरेण च ॥ ७४ ॥ अजेन धुंधुना चैव तथैव च सु
बाहुना । हर्यश्वेन च राजेन्द्र क्षुपेण भरतेन च ॥७५॥ एतैश्चा-
न्यैश्च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम् । शारदं कौमुदं मासं तत-

काल और भविष्यत् कालका ज्ञान था, ये सब जीवोंके आत्मा-
रूप थे और शुक्लपक्षमें मासभक्षण नहीं करते थे । ६७-७० ।
सत्य बोलो असत्य न बोलो राजा हरिश्चन्द्र सत्यके बलसे स्वर्ग
में चन्द्रमाकी समान विचरण करता है । ७१ । हे राजेन्द्र! श्येन-
चित्र, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, सृञ्जय, कृप, भरत,
दुष्यन्त, करूष, राम, अलर्क, विरूपाश्व, निमि, बुद्धिमान् जनक,
ऐल, पृथु, वीरसेन, इक्ष्वाकु शंभु, श्वेत और सगर, अज,
धुंधु, सुबाहु, हर्यश्व, क्षुप और भरत ये राजा तथा दूसरे राजे
भी पहिले ही हे राजेन्द्र! शरद ऋतुमें मासका भक्षण नहीं
करते थे, इससे वे स्वर्गमें गए थे (यहाँ जो राजा गिनाये हैं वे
क्षत्रिय थे और सदा मांसभक्षण करते थे, तो भी वे शरद्
ऋतुमें मास नहीं खाते थे, इससे वे स्वर्गमें गए थे फिर जो सदा
के लिये मास त्याग देते हैं वे स्वर्गमें क्यों न जावेंगे ?
यही इस श्लोकका तात्पर्य यह है) ॥ ७२ ॥ ७६ ॥

स्ते स्वर्गमाप्नुवन् ॥७६॥ ब्रह्मलोके च तिष्ठंति ज्वलमानाः श्रिया-न्विताः। उपास्यमाना गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसमन्विताः ॥ ७७ ॥ तदेतदुत्तमं धर्ममहिंसा धर्मलक्षणम्। ये चरन्ति महात्मानो नाक-पृष्ठे वसन्ति ते ॥७८॥ मधुमांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः। जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥ ७९ ॥ इमं धर्मम-मांसादं यश्चरेच्छ्रावयीत वा। अपि चेत् सुदुराचारो न जातु निरयं व्रजेत् ॥८०॥ पठेद्वा य इदं राजञ्छृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः। अमांसभक्षणविधिं पवित्रमृषिपूजितम् ॥ ८१ ॥ विमुक्तः सर्व-पापेभ्यः सर्वकामैर्महीयते। विशिष्टतां ज्ञातिषु च लभते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ आपन्नश्चापदो मुच्येद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। मुच्येत्तथातुरो रोगाद्दुःखान्मुच्येत दुःखितः ॥ ८३ ॥ तिर्य-

---

तथा वे दिव्य लक्ष्मीसे जाज्वल्यमान होकर सहस्रों स्त्रियोंके साथ ब्रह्मलोकमें रहते हैं और गंधर्व उनकी उपासना करते हैं ॥७७॥ इस प्रकार अहिंसा उत्तम धर्म है,जो महात्मा अहिंसारूपी धर्मका पालन करते हैं वे स्वर्गमें रहते हैं ॥ ७८ ॥ जो धार्मिक पुरुष जन्मसे ही मद्य और मांसको त्याग देते हैं वे सब पुरुष मुनि कहलाते हैं ॥७९॥ जो पुरुष मांसभक्षणत्यागरूप धर्मका आच-रण करते हैं और दूसरोंको सुनाते हैं वे दुराचारी होने पर भी नरकमें नहीं पड़ते हैं ॥ ८० ॥ जो पुरुष मांसभक्षणत्यागरूप पवित्र और ऋषिप्रशंसित इस विधिको सदा पढ़ता है, अथवा सुनता है तो वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है, उसकी सब काम-नाएँ पूर्ण होजाती हैं और वह जातिमें चौधरी होजाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ८२ ॥ (इस विधिको सुनने वाला और इसके अनुसार वर्ताव करने वाला)आपत्तिमें पड़ने पर आपत्तिसे छूट जाता है, कैदमें पड़ने पर कैदसे छूट जाता है, रोगी रोग-मुक्त होजाता है,दुःखी दुःखमुक्त होजाता है ८३ हे भरतवंशश्रेष्ठ !

ग्योनिं न गच्छेत रूपवांश्च भवेन्नरः। ऋद्धिमान् वै कुरुश्रेष्ठ प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ८४ ॥ एतत्ते कथितं राजन् मांसस्य परिवर्जने। प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मांसभक्षणनिषेधे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

युधिष्ठिर उवाच। इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांसगृद्धिनः। विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षोगणा इव ॥ १ ॥ अपूपान् विविधाकारान् शाकानि विविधानि च। खाण्डवान् रसयोगान्न तथेच्छंति यथामिषम् ॥२॥ तत्र मे बुद्धिरत्रैव विषये परिमुह्यते। न मन्ये रसतः किंचिन्मांसतोस्तीति किंचन ॥ ३ ॥ तदिच्छामि गुणान् श्रोतुं मांसस्याभक्षणे प्रभो। भक्षणे चैव ये दोषास्तांश्चैव

उस मनुष्यको पशुयोनिमें उत्पन्न होना नहीं पड़ता है वह रूपसम्पन्न होजाता है, सम्पत्तिमान् होजाता है तथा महायश पाता है ॥ ८४ ॥ हे राजन् ! ऋषियोंकी निर्मित यह मांसभक्षण त्यागविधि तथा ऋषिवर्णित प्रवृत्ति और निवृत्ति भी तुमसे कह दी ॥ ८५ ॥ एकसौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि–हे भीष्मपितामह ! शोक है कि–इस जगत्के क्रूर मनुष्य गुलगुले, नाना प्रकारके शाक, खाँड़की वस्तुएँ और नाना प्रकारके शरबतोंका स्वाद न लेकर मासका स्वाद लेना चाहते हैं, ऐसे उत्तम पदार्थोंको त्याग कर मासभक्षण करने वाले नृशंस मनुष्योंको घोर राक्षस समझना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ मासभक्षणके सम्बन्धमें मुझे भ्रम रहता है कि–इसको खाऊँ या न खाऊँ ? परन्तु मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता, मैं माससे बढ़ कर और किसी वस्तुको स्वादिष्ट नहीं समझता ॥३॥ हे विभो ! हे महापुरुष ! आप धर्मज्ञ हैं अतः मास न खानेसे जो लाभ (गुण) होता है और मास

पुरुषर्षभ ॥४॥ सर्वं तत्त्वेन धर्मज्ञ यथावदिह धर्मतः । किं चाभ-
क्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ ५ ॥ यथैतद्यादृशं चैव गुणा
ये चास्य वर्जने । दोषा भक्षयतो येपि तन्मे ब्रूहि पितामह ६
भीष्म उवाच । एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत । न मांसा-
त्परमं किंचिद्रसतो विद्यते भुवि ॥७॥ क्षतक्षीणाभितप्तानां ग्राम्य-
धर्मरतात्मनाम् । अध्वना कर्शितानां च न मांसाद्विद्यते परम् ८
सद्यो वर्धयति प्राणान् पुष्टिमग्र्यां ददाति च । न भक्ष्योभ्य-
धिकः कश्चिन्मांसादस्ति परंतप ॥९॥ विवर्जिते तु बहवो गुणाः
कौरवनन्दन । ये भवन्ति मनुष्याणां तान्मे निगदतः शृणु १०
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति । नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्

खानेसे जो दोष लगता है, उन सबको मैं यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ और कौन पदार्थ भक्ष्य है तथा कौन पदार्थ अभक्ष्य हैं, यह सब मैं यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे सब कहिये । ४ । ५ । हे पितामह ! मासका स्वरूप मासभक्षणके त्यागके गुण और मासभक्षणके दोष मुझसे कहिये ॥ ६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे महाभुज भरतवंशी राजन् ! तेरा कहना यथार्थ है पृथ्वीमें मासके रस (स्वाद) की समान और कोई रस उत्तम नहीं है । ७ । जो पुरुष उरःक्षतसे हुए क्षयरोगसे पीड़ा पाता हो, जिसका मन विषयसुखमें लिप्त रहता हो तथा जो मार्गमें चलनेसे दुर्बल होगया हो उसके लिये मांसकी समान पुष्टिप्रद और कोई पुष्टिप्रद उत्तम पदार्थ नहीं है ॥ ८ ॥ मांस तुरत ही प्राणोंकी वृद्धि करता है, उत्तम प्रकार की पुष्टि देता है, हे शत्रुतापन ! मांससे अधिक उत्तम और कोई भोजन नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु हे कुरुकुलके पुत्र ! इस मांसको त्यागनेसे मनुष्योंको नाना प्रकारके लाभ होते हैं, उनको मैं कहता हूँ सुन ॥ १० ॥ जो पुरुष दूसरेके मांससे अपने मांसको बढ़ाना

स नृशंसतरो नरः ॥ ११ ॥ नहि प्राणात् प्रियतरं लोके किंचन विद्यते । तस्माद्दयां नरः कुर्याद्यथात्मनि तथापरे ॥१२॥ शुक्राच्च तात सम्भूतिर्मांसस्येह न संशयः । भक्षणे तु महान् दोषो निवृत्त्या पुण्यमुच्यते ॥ १३ ॥ विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्त्वेह न दुष्यति । यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ १४ ॥ अतोन्यथा प्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते । क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ॥१५॥ वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा भुञ्जन्न दुष्यति आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः ॥ १६ ॥ अगस्त्येन पुरा राजन् मृगया येन पूज्यते । नात्मानमपरित्यज्य मृगया नाम विद्यते ॥ १७ ॥ समतामुपसंगम्य भूतं हन्यति हन्ति वा ।

चाहता है उसकी समान क्षुद्र और नीच और कोई नहीं हो सकता है ॥ ११ ॥ मनुष्योंको इस जगत्में प्राणोंकी समान और कोई वस्तु प्रिय नहीं है, इस लिये मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया करता है, इसी प्रकार दूसरों पर भी दया करे ॥ १२ ॥ हे तात ! मांसकी उत्पत्ति वीर्यसे ही होती है, अतः मांसभक्षणमें महादोष है और उसको त्यागनेसे महापुण्य होता है ॥ १३ ॥ वेदोक्त विधिके अनुसार मांसभक्षण करने वालेको दोष नहीं लगता है और श्रुतिमें भी कहा है, कि–"यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" पशु यज्ञके लिये रचे गए हैं ॥ १४ ॥ अतः जो यज्ञ किये विना और प्रसंगों पर मांसभक्षण करते हैं उनकी प्रवृत्ति राक्षसी विधि कहलाती है अब शास्त्रमें क्षत्रियोंके लिये जो मांसभक्षणकी विधि कही है, उसको भी तू सुन ॥ १५ ॥ पराक्रमसे पाये हुए मांसको खानेमें कोई दोष नहीं लगता है, पहिले अगस्त्यजीने सब पशुओंका प्रोक्षण करके उनको देवापंण और पितरोंके अर्पण कर दिया था, इससे मृगया करनेमें कोई दोष नहीं लगता है और अपने शरीरको आपत्तिमें डाले

अतो राजर्षयः सर्वे मृगयां यान्ति भारत ॥१८॥ न हि लिप्यन्ति पापेन न चैतत् पातकं विदुः । न ह्यतः सदृशं किंचिदिह लोके परत्र च ॥ १९ ॥ यत्सर्वेष्विह भूतेषु दया कौरवनन्दन । न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ॥२०॥ दयावतामिमे लोकाः परे

बिना मृगयाकी भी नहीं जासकती * ॥ १६ ॥ १७ ॥ और मृगया करतेमें मरने वाले और मारने वाले ये दोनों एकसी आशंकामें रहते है मृगयामें शिकार मारा जाता है अथवा शिकारी माराजाता है, इस लिये मृगयाको महत्त्वपूर्ण माना है हे भरत-वंशी राजन् ! उपरोक्त कारणोंसे सब राजर्षि मृगया करते हैं ॥ १८ ॥ मृगया खेलनेसे पाप नहीं लगता है तथा वे भी उसको पापकर्म नहीं समझते हैं, दोनों लोकोंमें कोई भी कर्म मृगयाकी समान नहीं है ॥ १९ ॥ हे कुरुकुलपुत्र ! सब जीवों पर दया करना उत्तम है, दयालु मनुष्यको इस लोकमें भी कभी भय नहीं लगता है ॥ २० ॥ दयालुको यह लोक सुख देता है

* यजमान यज्ञ करते समय पर्यग्निकरण करके पशुओंको आरण्यक (जंगली) बना कर छोड़ देता है (जलती हुई उल्काको पशुके चारों ओर घुमानेका नाम पर्यग्निकरण है) ऐसे पशुओंका शिकार करनेमें दोष नहीं लगता है, क्योंकि-देवार्पण कर छोड़े हुए (उत्सृष्ट) पशु जीवित ही रहते हैं इस कारण जिनके निमित्त छोड़े होते हैं वे देवता तृप्त नहीं होते हैं। यहाँ कपिञ्जलन्यायसे तीन ही पशुओंका ग्रहण न हो इस लिये उपरोक्त श्लोकमें कहा है कि-"पहिले अगस्त्यजीने वनके सब पशुओं को देवता और पितरोंके अर्पण कर दिया था और पर्यग्नि-करण कर उनको छोड़ दिया था, इसलिये मृगयामें किसी भी आरण्यक पशुका शिकार करनेमें दोष नहीं लगता है)

चापि तपस्विनाम् । अहिंसालक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः २१
यदहिंसात्मकं कर्म तत् कुर्यादात्मवान्नरः । पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ॥ २२ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः । अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥ २३ ॥ क्षतं च स्खलितं चैव पतितं कृष्टमाहतम् । सर्वभूतानि रक्षंति समेषु विषमेषु च २४
नैनं व्यालमृगा घ्नंति न पिशाचा न राक्षसाः। मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद्यो भयेऽशरान् ॥ २५ ॥ प्राणदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति । न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिदस्तीह निश्चितम् ॥२६॥ अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत । मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वेपथुः ॥२७॥ जातिजन्मजरादुःखैर्नित्यं संसार-

तथा तपस्वीको परलोक सुख देता है,धर्मज्ञ कहते हैं,कि-अहिंसा ही परमधर्म है ॥ २१ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष जिस कर्ममें हिंसा न हो वैसा कर्म करे, पितरोंके और देवताओंके कर्ममें हविको प्रोक्षण करना कहा है ॥ २२ ॥ जो पुरुष दयापरायण होकर सब जीवोंको अभयदान देता है, हमने सुना है,कि-उस पुरुषको सब अभयदान देते हैं ॥ २३ ॥ जीवों पर दया करने वाला मनुष्य घायल होगया हो, स्खलित होगया हो, गिर पड़ा हो अथवा पानीमें बहाजाता हो, और आहत होरहा हो, इत्यादि सब सम विषम प्रसंगोंमें सब जीव उसकी रक्षा करते हैं ॥२४॥ दयालु पुरुष हिंसक जीवोंको नहीं मारते हैं, पिशाचोंको नहीं मारते हैं और राक्षसोंको भी नहीं मारते हैं, जो पुरुष भयमेंसे दूसरोंको छुड़ाता है,वह स्वयं भी भयमें पड़नेपर भयसे छूट जाता है ॥२५॥ प्राणदानकी समान न कोई दान हुआ और न कोई होगा और अपनी आत्मासे अधिक प्रिय और कोई वस्तु नहीं है यह विद्वानोंका निश्चय है । २६॥ हे भारत ! मरण सब जीवोंको अनिष्ट है मरणके समय सब जीव काँप उठते हैं ॥२७॥ इस

सागरे । जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्विजन्ति च ॥ २८ ॥ गर्भ-
वासेषु पच्यन्ते क्षाराम्लकटुकै रसैः । मूत्रस्वेदपुरीषाणां परुषैर्भृश-
दारुणैः ॥ २९ ॥ जाताश्चाप्यवशास्तत्र च्छिद्यमानाः पुनः पुनः ।
पाच्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः ॥ ३० ॥ कुम्भीपाके
च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः । आक्रम्य मार्यमाणाश्च
भ्राम्यंते वै पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ नात्मनोऽस्ति प्रियतरः पृथिवी-
मनुसृत्य ह । तस्मात् प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान् भवेत् ३२
सर्वमांसानि यो राजन् यावज्जीवं न भक्षयेत् । स्वर्गे स विपुलं
स्थानं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ ये भक्षयन्ति मांसानि
भूतानां जीवितैषिणाम् । भक्ष्यन्ते तेपि भूतैस्तैरिति मे नास्ति

संसाररूपी सागरमें जीवोंको गर्भमें आना, जन्मना तथा वृद्धा-
वस्था ये दुःख सदा भोगने पड़ते हैं तथा मरणसे उनको भय
लगता है ॥ २८ ॥ जन्तु गर्भवासमें मूत्र, स्वेद और पुरीषके
अतितीक्ष्ण और अतिदारुण खारी, अम्ल और कटुक रसोंसे
पकता है ॥ २९ ॥ जन्मने पर भी जीव पराधीन होते हैं और
उनको वारंवार दूसरे शस्त्रोंसे काटते हैं, मांसभक्षी जीवोंकी वार-
वार यही गति होती है ॥ ३० ॥ मांसाहारी जीव अनेक योनि-
योंमें उत्पन्न होता हुआ अन्तमें कुंभीपाक नामक नरकमें राँधा
जाता है और उसको दूसरे बलात्कारसे दवा कर मार डालते हैं
और वह वारम्वार अनेक योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है ३१
इस भूमि पर जीवोंको अपनी आत्मासे अधिक और कोई नहीं
है, अतः सब बुद्धिमान् मनुष्योंको अपनी समान ही सब जीवों
पर दया करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जो जीवन भर
किसी जीवका मास नहीं खाता है उस पुरुषको स्वर्गमें बड़ा
स्थान मिलता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य
जीना चाहने वाले जीवोंका मास भक्षण करते हैं, वे जीव फिर

संशयः॥३४॥ मां स भक्षयते यस्माद्भक्षयिष्ये तमप्यहम्। एतन्-मांसस्य मांसत्वमनुबुद्ध्यस्व भारत ॥ ३५ ॥ घातको वध्यते नित्यं तथा वध्यति भक्षिता। आक्रोष्टा क्रुध्यते राजंस्तथा द्वेष्यत्वमाप्नुते ॥ ३६ ॥ येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः। तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३७ ॥ अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः। अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥ ३८ ॥ अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम्। अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥३९॥ सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वा प्लुतम्। सर्वदानफलं वापि नैतत्तुल्यमहिंसया॥४०॥ अहिंस्रस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्रो यजते सदा। अहिंस्रः सर्वभूतानां

उनके मांसका भक्षण करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥३४॥ हे भरतवंशी राजन्! जो मुझे खाता है, मैं उसे खाऊँगा, "माम् स भक्षयते यस्मात् भक्षयिष्ये तमप्यहम्" हे भारत! यह मांस शब्दका मांसत्व (व्युत्पत्ति) है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य दूसरोंकी हिंसा करता है, उसको दूसरे भी मारते हैं और खाने वाले भी मारते हैं, हे राजन्! निन्दा करने वाला पुरुष दूसरोंका निन्दापात्र होजाता है दूसरोंको क्रोध दिलाने वाला स्वयं भी क्रोधपात्र होजाता है और दूसरोंसे द्वेष करने वाला भी स्वयं दूसरोंका द्वेषपात्र होजाता है ॥ ३६ ॥ प्राणी जिस २ शरीरसे जो २ कर्म करता है, उस २ शरीरसे वैसा ही फल पाता है ॥ ३७ ॥ अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परमदम है, अहिंसा परमदान है, अहिंसा परम तप है ॥ ३८ ॥ अहिंसा ही परमयज्ञ है, अहिंसा ही परम फल है, अहिंसा ही परम मित्र है, अहिंसा ही परमसुख है ॥ ३९ ॥ सब तीर्थोंमें दान करनेका, सब तीर्थोंमें स्नान करनेका और सर्वस्वदान देनेका फल भी अहिंसाकी समान नहीं है ॥ ४० ॥ अहिंसक पुरुषका तप अक्षय

यथा माता यथा पिता ॥ ४१ ॥ एतत् फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुङ्गव । न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४२ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अहिंसाफलकथने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

युधिष्ठिर उवाच । अकामाश्च सकामाश्च ये हताः स्म महामृधे । कां गतिं प्रतिपन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ दुःखं प्राणपरित्यागः पुरुषाणां महामृधे । जानासि त्वं महाप्राज्ञ प्राणत्यागं सुदुष्करम् ॥ २ ॥ समृद्धौ वाऽसमृद्धौ वा शुभे वा यदि वाऽशुभे । कारणं तत्र मे ब्रूहि सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥३॥ भीष्म उवाच । समृद्धौ वासमृद्धौ वा शुभे वा यदि वाशुभे । संसारेऽस्मिन् समायाताः प्राणिनः पृथिवीपते ॥ ४ ॥ निरता ये न भावेन

रहता है अहिंसक पुरुषको यज्ञका फल नित्य मिलता है और अहिंसक पुरुष सब जीवोंके माता पिताकी समान हैं ॥ ४१ ॥ हे कुरुपुङ्गव ! अहिंसाका यह फल है तथा और भी फल है, अहिंसाके बहुतसे गुण हैं, सैंकड़ों वर्षोंमें भी उनका वर्णन नहीं किया जासकता ॥ ४२ ॥ एकसौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ११६

युधिष्ठिरने बूझा, कि हे भीष्मपितामह ! महासंग्राममें जो योधा सकाम वा अकाम मर जाते हैं उनको क्या गति मिलती है? यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे महाप्राज्ञ ! महासंग्राममें पुरुष अपने प्राणोंको कष्टसे त्यागते हैं, प्राणत्याग अतिदुष्कर है यह आप जानते ही हैं ॥ २ ॥ चाहें वह समृद्धिके समयमें हो अथवा आपत्तिके समय हो, शुभ समयमें हो अथवा अशुभ समयमें हो तो क्या ? प्राण छोड़ते समय जीवको दुःख क्यों होता है, इसका कारण आप मुझे बताइये, क्योंकि मैं आपको सर्वज्ञ समझता हूँ ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे भूपते ! इस संसारमें उत्पन्न हुए जीव समृद्धिके समयमें, आपत्कालमें, सुखके समय

तत्र मे शृणु कारणम् । सम्यक् चायमनुप्रश्नस्त्वयोक्तस्तु युधिष्ठिर ५ अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरा वृत्तमिदं नृप । द्वैपायनस्य सम्वादं कीटस्य च युधिष्ठिर ॥६॥ ब्रह्मभूतश्चरन्विप्रः कृष्णद्वैपायनः पुरा । ददर्श कीटं धावन्तं शीघ्रं शकटवर्त्मनि ॥७॥ गतिज्ञः सर्वभूतानां भाषाज्ञश्च शरीरिणाम् । सर्वज्ञः स तदा दृष्ट्वा कीटं वचनमब्रवीत् ८ व्यास उवाच । कीट संत्रस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे । क्व धावसि तदाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥ ९ ॥ कीट उवाच । शकटस्यास्य महतो घोषं श्रुत्वा भयं मम । आगतं वै महाबुद्धे स्वन एष हि दारुणः ॥१०॥ श्रूयते न च मां हन्यादिति ह्यस्मादपक्रमे । श्वसतां च शृणोम्येनं गोपुत्राणां प्रतोद्यताम् ॥ ११ ॥ वहतां

तथा दुःखके समय अपने धर्मानुसार वर्ताव किया करते हैं उसको तू सुन ले, युधिष्ठिर ! तूने यह ठीक प्रश्न किया है । ४ । ५ । हे राजा युधिष्ठिर ! इस विषयमें कृष्णद्वैपायन और कीड़ेका सम्वादरूप एक प्राचीन इतिहास मैं तुझसे कहूँगा ॥ ६ ॥ पहिले ब्रह्मस्वरूप कृष्णद्वैपायन नामक विप्रने घूमते २ गाड़ी चलनेके मार्गमेंसे एक कीडेको भागते हुए देखा॥७॥वेद व्यासजी सर्वज्ञ थे और सब प्राणियोंकी भाषाको जानते थे उन्होंने कीड़े को भागते हुए देख कर उससे कहा, ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा, कि-हे कीट ! तेरा रूप डरे हुएकासा दीख रहा है और तू शीघ्रतासे भाग रहा है, अतः बता तू कहाँ दौड़ा जारहा है और तेरे ऊपर क्या आपत्ति पड़ रही है ॥ ९ ॥ कीड़ेने कहा, कि-इस गाड़ीकी बड़ीभारी धड़धड़ाहटको सुन कर मुझे भय लग रहा है, हे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण ! इस गाड़ीके दारुण शब्दको सुन कर मुझे भय लग रहा है, यह जो शब्द होरहा है, यह बड़ा दारुण है,. लो यह और भी समीप आगया ॥ १० ॥ यह घोष सुनाई आरहा है, मैं कहीं (गाड़ीसे दब कर) मर न जाऊँ

सुमहाभारं सन्निकर्षे स्वनं प्रभो । नृणां च सम्वादयतां श्रूयते विविधः स्वनः ॥१२॥ श्रोतुमस्मद्विधेनैष न शक्यः कीटयोनिना। तस्मादतिक्रमाम्येष भयादस्मात् सुदारुणात् ॥ १३ ॥ दुःखं हि मृत्युर्भूतानां जीवितं च सुदुर्लभम् । अतो भीतः पलायामि गच्छेयं नासुखं सुखात् ॥ १४ ॥ भीष्म उवाच । इत्युक्तः स तु तं प्राह कुतः कीट सुखं तव । मरणं ते सुखं मन्ये तिर्यग्योनौ तु वर्तसे१५ शब्दं स्पर्शं रसं गन्धं भोगांश्चोच्चावचान् बहून् । नाभिजानासि कीट त्वं श्रेयो मरणमेव ते ॥१६॥ कीट उवाच । सर्वत्र निरतो जीव इतश्चापि सुखं मम । चिन्तयामि महाप्राज्ञ तस्मादिच्छामि

इस भयसे मैं गाड़ीके मार्गसे हटा जाता हूँ, गाड़ीवान् कोड़ा मार कर बैलोंको हाँक रहा है और और वह हाँफ रहे हैं, यह मुझे सुनाई आरहा है ॥ ११ ॥ तथा वे बहुत भारी बोझेको खैंच रहे हैं, उसका शब्द मुझे यहाँ तक सुनाई आरहा है तथा हाँकने वाले गाड़ीवानके भी अनेक प्रकारके शब्द सुनाई आरहे हैं ॥ १२ ॥ इस शब्दको हम सरीखे कीट सह नहीं सकते, इस लिये मैं इस अतिदारुण भयमेंसे भागा जाता हूँ ॥ १३ ॥ मृत्यु जीवोंको परमदुःखदायी है और जीवन परमदुर्लभ है अतः मैं सुखमेंसे दुःखमें न पड़ जाऊँ इस लिये भागा जाता हूँ ॥१४॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार कीड़ेके कहने पर व्यासजीने उससे कहा कि-हे कीट ! तुझे सुख कहाँसे आया, मैं तो तेरे मरणको ही तेरा सुख मानता हूँ, क्योंकि तू तिर्यक्-योनिमें है (और तिर्यक्योनिमें सुख कहाँसे आया ?) ॥१५॥ हे कीट ! तू न शब्दको जानता है,न स्पर्शको जानता है,न रसको जानता है, न गंधको जानता है और न छोटे बड़े भोगोंको जानता है, इस लिये तेरा मरना ही अच्छा है ॥ १६ ॥ कीड़ेने कहा,कि-जीव प्रत्येक योनिमें सुख मानता है अतः मुझे

जीवितुम् ॥ १७ ॥ इहापि विषयः सर्वो यथा देहं प्रवर्तितः । मानुषाः स्थावरगाश्चैव पृथग्भोगा विशेषतः ॥१८॥ अहमासं मनुष्यो वै शूद्रो बहुधनः प्रभो । अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो वृद्धिजीवनः ॥१९॥ वाक्तीक्ष्णो निकृतिप्रज्ञो द्वेष्टा विश्वस्य सर्वशः । मिथ्याकृतोपि विधिना परस्वहरणेरतः ॥ २० ॥ भृत्यातिथिजनश्चापि गृहे पर्यशितो मया । मात्सर्यात् स्वादुकामेन नृशंसेन बुभुक्षता॥ २१॥ देवार्थं पितृयज्ञार्थमन्नं श्रद्धाहृतं मया । न दत्तमर्थकामेन देयमन्नं पुरा किल ॥ २२ ॥ गुप्तं शरणमाश्रित्य भयेषु शरणागताः । अकस्मात्ते मयात्यक्ता न त्राता अभयैषिणः॥२३॥ धनं धान्यं प्रियान् दारान् यानं वासस्तथाद्भुतम् ।

इस कीटयोनिमें भी परमसुख प्रतीत होता है, हे महाप्राज्ञ ! इसलिये मैं जीवित रहना चाहता हूँ ॥१७॥ इस शरीरमें भी मुझे अपने शरीरके अनुसार विषय भोगनेको मिल रहा है मनुष्योंके स्थावरोंके अपने २ शरीरके अनुसार भिन्न २ भोग (कल्पित) होते हैं ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! मैं पहिले जन्ममें अतिधनी शूद्र था, ब्राह्मणोंका तिरस्कार करता था, क्रूर था, कदर्य था, ब्याजसे आजीविका चलाता था ॥ १९ ॥ मेरी वाणी तीक्ष्ण थी, मैं कपट करनेमें कुशल था, सम्पूर्ण जगत्से द्वेष करता था, मिथ्या व्यवहार करता था,पराये धनको छीन लेनेमें,मुझे आनन्द आता था ॥ २० ॥ घरमें नौकर चाकर पोष्यवर्ग और अतिथियोंको जिमाये विना ही मैं मत्सरतासे स्वादिष्ट पदार्थोंका भूख लगनेपर अकेला ही भोजन कर लेता था ॥२१॥ मुझे देवताओंके लिये और पितरोंके लिये श्रद्धपूर्वक अन्नका दान करना चाहिये था, परन्तु मैंने धनके लोभसे कुछ न किया ॥ २२ ॥ भयके समय प्राणी अभय पानेकी इच्छासे मेरे पास आते थे, तब भी मैं उनको शरण नहीं देता था और उन अभयाभिलाषियोंको मैं अक-

श्रियं दृष्ट्वा मनुष्याणामसूयामि निरर्थकम् ॥२४॥ ईर्ष्युः परसुखं दृष्ट्वा अन्यस्य न बुभूषकः । त्रिवर्णहन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्तकः ॥ २५ ॥ नृशंसगुणभूयिष्ठं पुरा कर्मकृतं मया । स्मृत्वा तदनुतप्येहं हित्वा प्रियमिवात्मजम् ॥ २६ ॥ शुभानां नाभिजानामि कृतानां कर्मणां फलम् । माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया ॥ २७ ॥ सकृज्जातिगुणोपेतः संगत्या गृहमागतः । अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात् स्मृतिः ॥ २८ ॥ कर्मणा पुनरेवाहं सुखमागामि लक्षये । तच्छ्रोतुमहमिच्छामि त्वत्तः श्रेयस्तपोधन ॥ २९ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

स्मात् त्याग देता था ॥ २३ ॥ मैं मनुष्योंके धन, धान्य, प्रियदारा, यान, अद्भुत वस्त्र और लक्ष्मीको देख कर उनसे निरर्थक द्वेष करता था ॥ २४ ॥ दूसरेके सुखको देखकर मैं ईर्षा करने लगता था, दूसरेको ऐश्वर्यको मैं देख नहीं सकता था, मैं दूसरोंके धर्म, अर्थ और कामोंको नाश कर डालता था और अपनी कामनाके अनुसार चलता था ॥२५॥ मैंने पहिले बहुतसे क्रूर कर्म किये थे उनका स्मरण आने पर मुझे प्रियपुत्रके त्यागनेकी समान दुःख होता है ॥ २६ ॥ पहिले किये हुए किन्हीं शुभ कर्मोंका फल मिल रहा हो, यह मैं नहीं जानता ? हाँ पहिले मैंने अपनी वृद्धा माताका पूजन किया था और एक ब्राह्मणकी मैंने पूजाकी थी ॥२७॥ और एक बार मेरे घर पर जाति और गुणसंपन्न एक अतिथि आगया था, उसकी मैंने पूजाकी थी (मेरा विचार है, कि–) इसी कारण पूर्वजन्मकी स्मृति मुझे विस्मृत नहीं हुई है ॥ २८ ॥ मैं फिर अब जिस कर्मको करनेसे सुखी होसकूँ, उस कर्मको आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ २९ ॥

व्यास उवाच । शुभेन कर्मणा यद्वै तिर्यग्योनौ न मुह्यसे । ममैव कीट तत्कर्म येन त्वं न प्रमुह्यसे ॥ १ ॥ अहं त्वां दर्शनादेव तारयामि तपोबलात् । तपोबलाद्धि बलवद्बलमन्यन्न विद्यते २ जानामि पापैः स्वकृतैर्गतं त्वां कीट कीटताम् । अवाप्स्यसि पुनर्धर्मं धर्मं तु यदि मन्यसे ॥३॥ कर्मभूमिकृतं देवा भुंजते तिर्यगाश्च ये । धर्मोपि हि मनुष्येषु कामार्थश्च तथा गुणाः ॥ ४ ॥ वाग्बुद्धिपाणिपादैश्च व्यपेतस्य विपश्चितः । किं हास्यति मनुष्यस्य मन्दस्यापि हि जीवतः ॥ ५ ॥ जीवन् हि कुरुते पूजां विप्राग्र्यः शशिसूर्ययोः । ब्रुवन्नपि कथां पुण्यां तत्र कीटत्वमेष्यसि ॥ ६ ॥ गुणभूतानि भूतानि तत्र त्वमुपभोक्ष्यसे । तत्र

व्यासजीने कहा, कि–हे कीट ! तू जिस शुभकर्मके कारण कीटयोनिमें मोह नहीं पाता है, वह मेरा ही कर्म (दर्शन) है जिससे तू मोहमें नहीं पड़ रहा है १ मैं तुझे अपने दर्शन देकर ही तपोबलसे तेरा उद्धार करूँगा, हे कीट ! कोई भी तपोबलसे अधिक बली नहीं है २ हे कीट ! जिन अपने पापोंसे तू कीडा बना है, उनको मैं जानता हूँ, यदि तू धर्म पर श्रद्धा रक्खेगा तो तुझे धर्मका फल मिलेगा ३ देवता और सिद्ध पुरुष इस कर्मभूमि पर किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं मनुष्य कामनाके लिये ही धर्मसम्पादन करते हैं और कामनासेही ही गुणसम्पादन करते हैं ४ वाणी, बुद्धि और हाथ पैरसे रहित (अर्थात् इनसे व्यवहार न करने वाले मुमुक्षु निष्काम) विद्वान् मनुष्यको विषय क्या त्यागेंगे अर्थात् वह तो इनसे शून्य होता है ५ उत्तम ब्राह्मण जीवनपर्यन्त सूर्य और चन्द्रमाकी पूजा करता है तथा पुण्यकी कथा कहता है, तू भी उस ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न होगा ६ और जातिमें रह कर तू भोगरूपसे परिणाम पाये हुए पञ्चभूतोंका उपभोग करेगा, और मैं तुझे ब्राह्मणजातिमें ब्रह्मविद्याका उपदेश

तदहं त्रिनेष्यामि अक्षत्वं यत्र वेष्यसि ॥ ७ ॥ स तथेति प्रतिश्रुत्य कीटो वर्त्मन्यतिष्ठत । शकटो ब्रजंश्च सुमहानागतश्च यदृच्छयात् चक्राक्रमेण भिन्नश्च कीटः प्राणान् मुमोच ह । संभूतः क्षत्रिय-कुले प्रसादादमितौजसः ॥ ६ ॥ तमृषिं द्रष्टुमगमत् सर्वास्त्वन्यासु योनिषु । श्वाविद्गोधावराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ॥ १० ॥ श्वपाकशूद्रवैश्यानां क्षत्रियाणां च योनिषु । स कीट एवमा-भाष्य ऋषिणा सत्यवादिना । प्रतिस्मृत्याथ जग्राह पादौ मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥ कीट उवाच । इदं तदतुलं स्थानमीप्सितं दशभिर्गुणैः । यदहं प्राप्य कीटत्वमागतो राजपुत्रताम् ॥ १२ ॥ वहन्ति मामतिबलाः कुंजरा हेममालिनः । स्यन्दनेषु च काम्बोजा

दूँगा और जहाँ तेरी इच्छा होगी तहाँ तुझको लेजाऊँगा ७ तब कीडा अच्छा ऐसा ही करूँगा कह कर मार्गमें जापडा उस समय यदृच्छासे आती हुई बडी भारी गाडी भी तहाँ आपहुँची और उसके पहियेके आक्रमणसे दब कर कीडेने प्राण त्यागदिये और अमित पराक्रमी व्यासजीके प्रसादसे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हो-गया ८-६ क्षत्रिययोनिमें उत्पन्न होनेसे पहिले वह कीडा सेई, गोह, वराह, पशु, पक्षी, श्वपाक, शूद्र और वैश्यकी योनिमें उत्पन्न हुआ था और अन्तमें क्षत्रियकी योनिमें उत्पन्न होकर ऋषिका दर्शन करनेके लिये (वनमें) गया था और सत्यवादी ऋषिसे बातचीत करनेके अनन्तर उसने पूर्वजन्मका स्मरण किया फिर दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका उन ऋषिके दोनों चरणोंका हाथोंसे स्पर्शकर उन ऋषिसे कहने लगा ॥ १०-११ ॥ कीडेने कहा, कि यह अतुल स्थान है, इसको मैं दश जन्मोंसे चाह रहा था, अब मैं कीडेकी योनिमेंसे मुक्त होकर राजपुत्र होगया हूँ ॥ १२ ॥ और मैं इस जन्ममें सुवर्णकी हमेलों वाले हाथियों पर बैठ कर भ्रमण करता हूँ, मेरे रथोंमें काम्बोज देशके उत्तम

युक्ताः परमवाजिनः ॥ १३ ॥ उष्ट्राश्वतरयुक्तानि यानानि च वहन्ति माम् । सबान्धवः सहामात्यश्चाश्नामि पिशितोदनम् १४ गृहेषु स्वनिवासेषु सुखेषु शयनेषु च । वरार्हेषु महाभाग स्वपामि च सुपूजितः ॥ १५ ॥ सर्वेष्वपररात्रेषु सूतमागधबन्दिनः । स्तुवन्ति मां यथा देवा महेन्द्रं प्रियवादिनः ॥ १६ ॥ प्रसादात् सत्यसन्धस्य भवतोऽमिततेजसः । यदहं कीटतां प्राप्य संप्राप्तो राजपुत्रताम् ॥ १७ ॥ नमस्तेऽस्तु महाप्राज्ञ किं करोमि प्रशाधि माम् । त्वत्तपोबलनिर्दिष्टमिदं ह्यधिगतं मया ॥ १८ ॥ व्यास उवाच । अर्चितोऽहं त्वया राजन् वाग्भिरद्य यदृच्छया । अद्य ते कीटतां प्राप्य स्मृतिर्जाता जुगुप्सिता ॥ १९ ॥ न तु नाशोऽस्ति

घोड़े जुते हुए हैं ॥१३॥ ऊँट और खच्चरोंसे जुते हुए वाहनोंमें बैठ कर मैं भ्रमण करता हूँ, मैं अपने भाई और मंत्रियोंके साथ मांस और भातका भोजन करता हूँ ॥१४॥ और हे महाभाग ! मैं सुन्दर भवनोंमें उत्तम शय्याओं पर मानके साथ शयन करता हूँ ॥ १५ ॥ जैसे देवता महेन्द्रकी स्तुति करते हैं, इसी प्रकार प्रियवाणीमें सूत, मागध और बन्दीजन पिछली रात्रिमें मेरी स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ अमिततेजस्वी सत्यप्रतिज्ञ आपके प्रसाद से ही ऐसा हुआ है, कि-मैं कीड़ेसे राजपुत्र बन गया हूँ ॥१७॥ हे महाबुद्धिमान् ! अब मैं आपको नमस्कार करता हूँ, अब मैं क्या करूँ उसकी आप आज्ञा दीजिये और आपके तपोबलके प्रभावसे ही मैंने क्षत्रियत्व पाया है ॥१८॥ व्यासजीने कहा, कि-हे राजन् ! आज तूने अपनी इच्छासे मेरी पूजा की है, परन्तु कीटत्वका स्मरण आनेसे प्रतीत होता है, कि-तेरी बुद्धि (पूर्व-जन्ममें कीट होनेके कारण) अब भी मलिन ही बनी हुई है ॥ १९ ॥ तू पहिले शूद्र था, धनको प्रधान मानता था, क्रूर था, और आततायी था, उस समय तूने जो पापकर्म किये थे,

पापस्य यस्त्वयोपचितः पुरा । शूद्रेणार्थप्रधानेन नृशंसेनाततायिना ॥ २० ॥ मम ते दर्शनं प्राप्तं तच्च वै सुकृतं त्वया । तिर्यग्योनौ स्म जातेन मम चाभ्यर्चनात्तथा ॥ २१ ॥ इतस्त्वं राजपुत्रत्वाद्ब्राह्मण्यं समवाप्स्यसि । गोब्राह्मणकृते प्राणान् हुत्वात्मानं रणाजिरे ॥ २२ ॥ राजपुत्र सुखं प्राप्य क्रतूंश्चैवाप्तदक्षिणान् । अथ मोदिष्यसे स्वर्गे ब्रह्मभूतोऽव्ययः सुखी ॥ २३ ॥ तिर्यग्योन्याः शूद्रतामभ्युपैति शूद्रो वैश्यं क्षत्रियत्वं च वैश्यः । वृत्तश्लाघी क्षत्रियो ब्राह्मणत्वं स्वर्गं पुण्यं ब्राह्मणः साधुवृत्तः २४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

भीष्म उवाच । क्षत्रधर्ममनुप्राप्तः स्मरन्नेव च वीर्यवान् ।

उन पापकर्मोंका अभी नाश नहीं हुआ है ॥ २० ॥ कीटयोनिमें उत्पन्न होने परभी तूने मेरा दर्शन पाया और मेरी पूजाकी, यह तेरा पुण्य था ॥ २१ ॥ अब तू इस राजपुत्रके शरीरको छोड़नेके अनन्तर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न होगा और गौ तथा ब्राह्मणोंके लिये आपने प्राणोंको होम देगा ॥ २२ ॥ और हे राजपुत्र ! तू सुख भोगेगा और पूर्णदक्षिणा वाले यज्ञ करेगा, मरणके पीछे स्वर्गमें जावेगा और अविनाशी ब्रह्मरूप सुखको भोगेगा ॥ २३ ॥ धर्माचरण करने वाला जीव पशुपक्षीकी योनिमेंसे शूद्रजातिमें उत्पन्न होता है, शूद्रमेंसे वैश्यकी औरवैश्यसे क्षत्रियकी जातिमें उत्पन्न होता है और श्रेष्ठ आचरणोंके कारण उसकी प्रशंसा होती है तदनन्तर वह ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न होता है और वह ब्राह्मण सदाचारसम्पन्न होकर पवित्र स्वर्गमें जाता है, (इस प्रकार धर्माचरण करनेसे उत्तरोत्तर जीवका उत्तम२जातिमें जन्म होता है) ॥ २४ ॥ एकसौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥

भीष्मजीने कहा, कि हे राजन् ! तदनन्तर वह कीटत्वको त्याग

त्यक्त्वा स कीटतां राजंश्चचार विपुलं तपः ॥१॥ तस्य धर्मार्थविदुषो दृष्ट्वा तद्विपुलं तपः । आजगाम द्विजश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २ ॥ व्यास उवाच । क्षात्रं देवव्रतं कीट भूतानां परिपालनम् । क्षात्रं देवव्रतं ध्यायंस्ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ३ ॥ पाहि सर्वाः प्रजाः सम्यक् शुभाशुभविदात्मवान् । शुभैः संविभजन् कामैरशुभानां च पावनैः ॥४॥ आत्मवान् भव सुप्रीतः स्वधर्माचरणे रतः । क्षात्रीं तनुं समुत्सृज्य ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ५ ॥ भीष्म उवाच । सोऽप्यरण्यमनुप्राप्य पुनरेव युधिष्ठिर । महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रजा धर्मेण पाल्य च ॥ ६ ॥ अचिरेणैव कालेन कीटः पार्थिवसत्तम । प्रजापालनधर्मेण प्रेत्य विप्रत्वमागतः ७

कर क्षत्रिय जातिमें उत्पन्न हुआ जीव क्षत्रियका आचरण करने लगा, उसको पूर्वजन्मका स्मरण था अतः वह महातप करने लगा ॥ १ ॥ धर्म और अर्थको जानने वाले उस क्षत्रियके महातपको देख कर द्विजश्रेष्ठ कृष्णद्वैपायन उसके पास आये और उससे कहने लगे ॥२॥ व्यासजीने कहा, कि हे कीट ! जीवोंकी रक्षा करनी क्षत्रियका धर्म है, तू क्षत्रियोंके धर्मका पालन करेगा तो तू ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न होगा ॥ ३ ॥ तू शुभ और अशुभ कर्मोंको पहिचान तदनन्तर अपनी आत्माको जान और फिर सब प्रजाका भली भाँति पालन कर अपनी प्रजाको उत्तम प्रकारका सुख दे और दुर्जनोंसे सत्कर्म करवा ॥ ४ ॥ तू आत्मज्ञान सम्पादन कर, उस पर प्रीति रख, स्वधर्माचरणमें तत्पर रह ऐसा करनेसे तू क्षत्रिय शरीरको त्यागनेके अनन्तर ब्राह्मणत्व को पावेगा ॥ ५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे युधिष्ठिर ! वह राजकुमार महर्षि वेदव्यासके वचनको सुन कर वनमेंसे लौटा और नगरमें आकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा ॥६॥ हे राजर्षभ ! उस प्रजापालनरूप धर्माचरणके कारण वह कीड़ा

ततस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा पुनरेव महायशाः। आजगाम महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥८॥ व्यास उवाच। भो भो ब्रह्मर्षभ श्रीमन् मा व्यथिष्ठाः कथंचन। शुभकृच्छुभयोनिषु पापकृत् पापयोनिषु॥ उपपद्यति धर्मज्ञ यथा पापफलोपगम्। तस्मान्मृत्युभयात् कीट मा व्यथिष्ठाः कथंचन ॥१०॥ धर्मलोपभयं ते स्यात्तस्माद्धर्मं चरोत्तमम्। कीट उवाच। सुखात् सुखतरं प्राप्तो भगवंस्त्वत्कृते ह्यम् ॥ ११ ॥ धर्ममूलां श्रियं प्राप्य पाप्मा नष्ट इहाद्य मे। भीष्म उवाच। भगवद्वचनात् कीटो ब्राह्मण्यं प्राप्य दुर्लभम् १२ अकरोत् पृथिवीं राजन् यज्ञयूपशतांकिताम्। ततः सालोक्यमगमद्ब्रह्मणो ब्रह्मवित्तमः॥ १३ ॥ अवाप च पदं कीटः पार्थ ब्रह्म

थोड़े ही समयमें मर कर ब्राह्मण होगया ॥७॥ उसको ब्राह्मण जातिमें उत्पन्न हुआ देख कर महायशस्वी और महाबुद्धिमान् व्यासजी उसके पास फिर आये ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा, कि हे उत्तम ब्राह्मण! हे श्रीमन्! तू अब व्यथित न होना, पुण्यकर्म करने वाला उत्तम जातिमें और पापकर्म करने वाला अधम जातिमें उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ हे धर्मज्ञ! मनुष्य जैसा पाप कर्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है, हे कीट! इस लिये अब तू मृत्युके भयसे न घबड़ा ॥१०॥ तुझको धर्मलोपका भय होसकता है, अतः तू उत्तम धर्मका आचरण कर, कीटने कहा, कि-हे भगवन्! आपही कृपासे मुझे उत्तरोत्तर सुख मिल रहा है ११ धर्ममूलक लक्ष्मीको पाकर आज मैं निष्पाप होगया हूँ, भीष्मजीने कहा, कि इस प्रकार उस कीटने भगवान् वेद व्यासजीके वचनसे दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर हे राजन्! यज्ञ करके पृथ्वीको सैंकड़ों यूपोंसे अंकित कर दिया, फिर वह ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें गया। १२-१३। और वह कीड़ा वेदव्यासजीके वचनसे धर्माचरण कर अपने

सनातनम् । स्वकर्मफलनिर्वृत्तं व्यासस्य वचनात्तदा ॥ १४ ॥
तेपि यस्मात् प्रभावेण हताः क्षत्रियपुङ्गवाः । सम्प्राप्तास्ते गतिं
पुण्यां तस्मान्मा शोच पुत्रक ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
कीटोपाख्याने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

युधिष्ठिर उवाच । विद्यातपोभ्यां दानाच्च किमेतेषां
विशिष्यते । पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । मैत्रेयस्य
च संवादं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २ ॥ कृष्णद्वैपायनो राजन्न-
ज्ञातचरितं चरन् । वाराणस्यामुपातिष्ठन्मैत्रेयं स्वैरिणीकुले ॥३॥
तमुपस्थितमासीनं ज्ञात्वा स मुनिसत्तमम् । अर्चित्वा भोजयामास
मैत्रेयोऽशनमुत्तमम् ॥ ४ ॥ तदन्नमुत्तमं भुक्त्वा गुणवत् सार्व-

कर्मसे सनातन ब्रह्ममें लीन होगया १४ अतः हे पुत्र ! जो
बड़े २ क्षत्रिय रणमें मारे गए हैं, वे भी अपने प्रभावसे पुण्या-
त्माओंके लोकोंमें गए हैं अतः तुझे उनका शोक न करना
चाहिये १५ एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ११९ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्मपितामह ! हे सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ !
विद्या, तप और दान इनमेंसे श्रेष्ठ कौन है, यह आप मुझसे
कहिये ॥१॥ भीष्मजीने कहा, कि-इस विषयमें भी मैत्रेय और
कृष्णद्वैपायनका सम्वादरूप प्राचीन इतिहास इसप्रकार प्रसिद्ध
है कि-॥ २ ॥ हे राजन् ! कृष्णद्वैपायन भ्रमण करतेर काशीमें
पहुँचे और जिनका चरित्र किसीको विदित नहीं होता था ऐसे
मुनिमण्डलीमें बैठे हुए मैत्रेयके पास गए ॥ ३ ॥ उन मुनिसत्तम
को पासमें आकर बैठा हुआ देखकर मैत्रेयने उनकी पूजाकर
उनको उत्तम भोजन जिमाया ॥ ४ ॥ उस पुष्टिदायक तथा सब
कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अन्नको जीमकर व्यासजी प्रसन्न

कामिकम् । प्रतिष्ठमानोऽस्मयत प्रीतः कृष्णो महामनाः ॥ ५ ॥ तमुत्स्मयन्तं सम्प्रेक्ष्य मैत्रेयः कृष्णमब्रवीत् । कारणं ब्रूहि धर्मात्मन् व्यस्मयिष्ठाः कुतश्च ते ॥ ६ ॥ तपस्विनो धृतिमतः प्रमोदः समुपागतः । एतत् पृच्छामि ते विद्वन्नभिवाद्य प्रणम्य च । आत्मनश्च तपो भाग्यं महाभाग्यं तवेह च ॥ ७ ॥ पृथगाचरतस्तात पृथगात्मसुखात्मनोः । अल्पान्तरमहं मन्ये विशिष्टमपि चान्वयात् ॥ ८ ॥ व्यास उवाच । अतिच्छेदातिवादाभ्यां स्मयोऽयं समुपागतः । असत्यं वेदवचनं कस्माद्वेदोऽनृतं वदेत् ॥९॥ त्रीण्येव तु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम् । न द्रुह्ये-

हुए और चलते समय (विस्मित हो) मुस्कुराये ॥ ५ ॥ उन को मुस्कुराते देख मैत्रेयने उनसे कहा, कि-हे धर्मात्मन् ! आप किस लिये विस्मित होरहे हैं, इसका कारण मुझे बताइये ॥६॥ हे विद्वन् ! तपस्वी और धैर्यधारी आपको आनन्द हुआ, इस कारण हे ब्रह्मन् ! मैं आपको अभिवन्दन और प्रणाम करके बूझना चाहता हूँ, कि मेरे तपका भाग कैसा है और आपके तपका महाभाग्य कैसा है ? ॥ ७ ॥ हे तात ! आप पृथगात्मा-उपाधि परिच्छन्न जीवात्मा और अनुपाधिक सुखात्मा-ब्रह्म इन दोनोंसे भिन्न जीवन्मुक्तकी समान आचरण करते हैं और मैं मित्रके वंशमें उत्पन्न होनेसे उत्तम हूँ, अतः मैं आपमें और अपनेमें थोड़ा ही भेद मानता हूँ ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा, कि-हे मैत्रेय ! तुममें अतिशय और अतिवादको देख कर मुझे विस्मय हुआ है कि-क्या वेद वचन असत्य है, परन्तु वेद असत्य क्यों कहेगा ? (तात्पर्य यह है कि-मच्छर समुद्रको पीगया, ऐसी बातें अतिशयोक्ति कहलाती हैं, ऐसी बातें दूसरेसे कहना अतिवाद कहलाता है और इन दोनोंसे जगत्में मनुष्यको आश्चर्य होता है, सो यज्ञ न करने पर कोई इन्द्रपद नहीं पासकता और

श्चैव दद्यान्च सत्यं चैव परं वदेत् ॥१०॥ इति वेदोक्तमृषिभिः पुरस्तात् परिकल्पितम्। इदानीं चैव नः कृत्यं पुरस्ताच्च परिश्रुतम् ॥ ११ ॥ अल्पोऽपि तादृशो दायो भवत्युत महाफलः। तृषिताय च ते दत्तं हृदयेनानसूयता ॥ १२ ॥ तृषितस्तृषिताय त्वं दत्त्वैतद्दर्शनं मम। अजैषीर्महतो लोकान्महायज्ञैरिव प्रभो १३ ततो दानपवित्रेण प्रीतोऽस्मि तपसैव च। पुण्यस्यैव हि ते सत्त्वं पुण्यस्यैव च दर्शनम् ॥ १४ ॥ पुण्यस्यैवाभिगन्धस्ते मन्ये कर्म-

तूने मुझे इन्द्रकी समान भोजन कराया है, तुझे तो जल पिलाने से ही यह पदवीसी मिल गई है इससे वेदका वचन मुझे मिथ्या प्रतीत हुआ, परन्तु पवित्र देशमें पर्व आदि कालमें सुपात्रको थोड़ा भी श्रद्धापूर्वक देनेसे जलमौक्तिकन्यायसे महाफल मिलता है अर्थात् स्वाति नक्षत्रमें मछलीके मुखमें जलविन्दु पड़नेसे उसमें से मोती उत्पन्न होता है,ऐसा होनेके कारण मुझे निश्चय हुआ कि-वेद असत्य नहीं कह रहा है) ॥ ६ ॥ परलोकमें जानेके तीन मार्ग बतलाये हैं और इन तीनोंको पुरुषोंका उत्तम व्रत कहा है, १ द्रोह न करे २ दान देय और ३ सत्य बोले ॥ १० ॥ वेदद्रष्टा ऋषि पहिले ही यह बात कह गए हैं और हमें भी इसी प्रकार करना चाहिये ॥ ११ ॥ शास्त्रोक्त विधिसे दिया हुआ थोड़ा सा भी दान महाफल देता है, तूने भी ईर्षारहित होकर पिपासे मनुष्यको अन्न और जलका दान दिया था १२ तूने स्वयं तृषित और बुभुक्षित होने पर भी तृषित पुरुषको जल और अन्न दिया था, इस कारण तूने महायज्ञ करके जीतनेमें आने वाले महालोक जीत लिये हैं ॥ १३ ॥ मैं तेरे पवित्र दानसे और पवित्र तपसे प्रसन्न हुआ हूँ, क्योंकि-तेरा बल मानों पुण्य का ही बल है और तेरा दर्शन पुण्यका ही दर्शन है॥ १४ ॥ तेरे शरीरकी सुगंध मानो पुण्यकी सुगंध है, मैं समझता हूँ, कि-तू

विधानजम् । अधिकं मार्जनाचात तथा चैवानुलेपनात् ॥ १५ ॥
शुभं सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं द्विज। नो चेत् सर्वपवित्रेभ्यो
दानमेव परं भवेत् ॥ १६ ॥ यानीमान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशं-
ससि । तेषां श्रेष्ठतरं दानमिति मे नात्र संशयः ॥१७॥ दानकृद्भिः
कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः । ते हि प्राणस्य दातारस्तेषु
धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥ यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियः
संयमः । सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
त्वं हि तात महाबुद्धे सुखमेष्यसि शोभनम् । सुखात् सुखतरप्राप्ति-
माप्नुते मतिमान्नरः ॥२०॥ तन्नः प्रत्यक्षमेवेदमुपलभ्यमसंशयम् ।
श्रीमन्तः प्राप्नुवंत्यर्थान् दानं यज्ञं तथा सुखम् ॥ २१ ॥ सुखा-

---

विधिपूर्वक कर्म करता है, हे तात ! तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी दान देना उत्तम है और वेदोक्त व्रतोंका पालन करनेसे भी दान देना उत्तम है ॥१५॥ हे द्विज ! दान सब पवित्र पदार्थोंमें उत्तम है,दानके अतिरिक्त और कौनसा पदार्थ उत्तम होसकता है१६ तू जिन वेदोक्त कर्मोंकी इस समय प्रशंसा कर रहा है उन सबमें दान परम श्रेष्ठ है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥१७॥दान देने वालोंने जो उत्तम दानमार्ग बना दिया है उस मार्गसे विद्वान् पुरुष चलते हैं,दान देने वाले ही प्राण देने वाले हैं और धर्म उनमें रहता है ॥१८॥ जैसे वेदका स्वाध्याय उत्तम माना जाता है, जैसे इन्द्रियोंका संयम उत्तम माना जाता है और जैसे सर्वत्याग श्रेष्ठ समझा जाता है, इसी प्रकार दान भी सबसे उत्तम माना जाता है १९ हे महाबुद्धिमान् तात ! तू उत्तम सुख पावेगा, बुद्धिमान् मनुष्य को दान देनेसे उत्तरोत्तर उत्तम सुख मिलता है ॥ २० ॥ यह बात हमने प्रत्यक्ष देखी है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, अभ्युदय वाला पुरुष दान पाता है और उससे दान तथा यज्ञ करता है और उससे सुख भोगता है ॥२१॥ हे महाबुद्धिमान् ! स्वाभाविक

देव परं दुःखं दुःखादप्यपरं सुखम् । दृश्यते हि महाप्राज्ञ नियतं वै स्वभावतः ॥२२॥ त्रिविधानीह वृत्तानि नरस्याहुर्मनीषिणः । पुण्यमन्यत् पापमन्यन्न पुण्यं न च पापकम् ॥ २३ ॥ न वृत्तं मन्यते तस्य मन्यते न च पातकम् । तथा स्वकर्मनिर्वृत्तं न पुण्यं न च पापकम् ॥२४॥ यज्ञदानतपःशीला नरा वै पुण्यकर्मिणः । योऽभिद्रुह्यति भूतानि ते वै पापकृतो जनाः ॥ २५ ॥ द्रव्याण्याददते चैव दुःखं यान्ति पतन्ति च । ततोऽन्यत् कर्म यत्किञ्चिन्न पुण्यं न च पातकम् ॥२६॥ रमस्वैधस्व मोदस्व देहि चैव यजस्व च । न त्वामभिभविष्यन्ति वैद्या न च तपस्विनः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

रीतिसे देखनेमें आता है, कि-जो शारीरिक सुख भोगते हैं वे उसके कारण अन्तमें दुःख ही भोगते हैं और जो तपश्चर्या आदि करके दुःख भोगते हैं, वे उस दुःखसे सुख पाते हैं ॥ २२ ॥ विद्वान् पुरुषोंने मनुष्योंकी तीन प्रकारकी वृत्ति कही है, एक पुण्यमयी, दूसरी पापमयी और तीसरी पुण्य तथा पापरहित २३ ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके न पुण्यको माना जाता है, न पापको माना जाता है, ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके आचरणसे न पातक होता है और न पुण्य होता है ॥ २४ ॥ जो पुरुष यज्ञ, दान और तप करता है, उसको पुण्यकर्मवाला समझना चाहिये और जो पुरुष प्राणियोंसे द्रोह करता है उस पुरुषको पापी समझना चाहिये २५ जो मनुष्य दूसरेके पदार्थोंको चुरा लेते हैं वे नरकमें पड़ते हैं तथा दुःखी रहते हैं, यज्ञ दान और तपके अतिरिक्त और कर्मोंसे न पुण्य होता है, न पाप होता है अर्थात् वे निष्फल हैं ॥ २६ ॥ तू रमण कर, बढ़, आनन्द मान, दान दे, और यज्ञ कर तो तपस्वी और वैद्य तेरा पराभव न कर सकेंगे॥२७॥एकसौ बीसवाँ

भीष्म उवाच । एवमुक्तः प्रत्युवाच मैत्रेयः कर्मपूजकः । अत्यंत-श्रीमति कुले जातः प्राज्ञो बहुश्रुतः ॥ १ ॥ मैत्रेय उवाच । असंशयं महाप्राज्ञ यथैवात्थ तथैव तत् । अनुज्ञातश्च भवता किंचिद्‌ब्रूयामहं विभो ॥ २ ॥ व्यास उवाच । यद्यदिच्छसि मैत्रेय यावद्यावद्यथा यथा । ब्रूहि तत्त्वं महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच । निर्दोषं निर्मलं चैवं वचनं दानसंहितम् । विद्यातपोभ्यां हि भवान् भावितात्मा न संशयः ॥ ४ ॥ भवतो भावितात्मत्वाल्लाभोयं सुमहान्मम । भूयो बुद्ध्यानुपश्यामि सुसमृद्धतपा इव ॥ ५ ॥ अपि नो दर्शनादेव भवतोऽभ्युदयो भवेत् । मन्ये भवत्प्रसादोऽयं तद्धि कर्म स्वभावतः ॥ ६ ॥ तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद्ब्राह्मण्यकारणम् । त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति

भीष्मजीने कहा, कि-कर्मकी पूजाकरने वाले (कर्मको माननेवाले) मैत्रयसे व्यासजीने इस प्रकार कहा तब अतिसमृद्ध कुलमें उत्पन्न हुए बुद्धिमान् और बहुश्रुत मैत्रेयने व्यासजीसे कहा १ मैत्रेयने कहा, कि हे महाप्राज्ञ ! आप जैसा कहते हैं, बात निःसन्देह ऐसी ही है, हे विभो ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं कुछ कहना चाहता हूँ ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा, कि-हे महाबुद्धिमान् मैत्रेय ! तुमको जिस प्रकार जो २ कहनेकी इच्छा हो उस प्रकार आप मुझसे कहिये, मैं तुम्हारा वचन सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ मैत्रेयने कहा, कि-दानके सम्बन्धमें आपका वचन निर्दोष और निर्मल है, आपकी आत्मा विद्या और तपसे पवित्र होरही है ॥ ४ ॥ आप भावितात्मा हैं और आपके समागमसे मुझे परमलाभ पहुँचा है,मैं अपनी बुद्धिसे विचारता हूँ,तो आप मुझे महासमृद्ध तपस्वी प्रतीत होते हैं ॥ ५ ॥ आपके दर्शनसे मेरा अभ्युदय होगा, इसको मैं आपका प्रसाद समझता हूँ तथा अपने कर्मको भी इसमें कारण मानता हूँ ॥ ६ ॥ तप,

वै द्विजः ॥ ७ ॥ अस्मिंस्तृप्ते च तुष्यन्ते पितरो दैवतानि च । न हि श्रुतवतां किञ्चिदधिकं ब्राह्मणादृते ॥ ८ ॥ अन्धं स्यात्तम एवेदं न प्रज्ञायेत किञ्चन । चातुर्वर्ण्यं न वर्तेत धर्माधर्मावृतानृते ॥ ९ ॥ यथा हि सुलभे क्षेत्रे फलं विन्दति मानवः । एवं दत्वा श्रुतवति फलं दाता समश्नुते ॥ १० ॥ ब्राह्मणश्चेन्न विन्देत श्रुतवृत्तोपसंहितः । प्रतिगृहीता दानस्य मोघं स्याद्धनिनां धनम् ॥ ११ ॥ अदन्नविद्वान् हन्त्यन्नमद्यमानं च हन्ति तम् । तं चान्नं पाति यश्चान्नं स हन्ता हन्यतेऽबुधः ॥ १२ ॥ प्रभुर्ह्यन्नमदन् विद्वान्

शास्त्राभ्यास तथा ब्राह्मण और ब्राह्मणीसे जन्म ये ब्राह्मणत्वके कारण हैं, जिसमें उपरोक्त तीनों गुण होते हैं, वह ब्राह्मण हो सकता है ॥ ७ ॥ ऐसे ब्राह्मणके तृप्त होने पर पितर और देवता तृप्त होते हैं, वेद शास्त्र पढ़ने वाले ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई श्रेष्ठ नहीं है ॥ ८ ॥ इस जगत्में यदि ब्राह्मण न हों तो यह जगत् अंधा होजाय, इसमें अंधकार ही अन्धकार फैल जाय कुछ भी जाननेमें न आवे चारों वर्णोंका नाश होजाय तथा धर्माधर्म की तथा सत्यासत्यकी भी कुछ मर्यादा न रहे ॥ ९ ॥ जैसे मनुष्य उत्तम खेतमें धान्य बोने पर फल पाता है, इसी प्रकार दाता भी वेद शास्त्र पढ़े हुए, ब्राह्मणको दान देनेसे उसके फलको पाता है ॥ १० ॥ शास्त्र पढ़ा हुआ सदाचारसम्पन्न दान लेने वाला ब्राह्मण न मिले तो धनवानोंका धन निरर्थक होजाय ॥ ११ ॥ मूर्ख ब्राह्मण जिस अन्नका भक्षण करता है उसको नष्ट कर डालता है इसी प्रकार खानेमें आया हुआ अन्न भी उसका नाश कर डालता है पात्रको दिया हुआ अन्न ही वास्तविक अन्न है, क्योंकि-उससे दाता और ग्रहीता इन दोनोंकी रक्षा होती है परंतु अपात्रको दियाहुआ अन्न तो निरर्थक जाता है, क्योंकि-उससे दाता को भी लाभ नहीं होता है और अपात्रका भी नाश होजाता है ॥ १२ ॥

पुनर्जनयतीश्वरः । स चान्नाज्जायते तस्मात् सूक्ष्म एष व्यतिक्रमः ॥ १३ ॥ यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्णतः । न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः ॥ १४ ॥ यत्र वै ब्राह्मणाः सन्ति श्रुतवृत्तोपसंहिताः । तत्र दानफलं पुण्यमिह चामुत्र चाश्नुते ॥१५॥ ये योनिशुद्धाः सततं तपस्यभिरता भृशम् । दानाध्ययनसंपन्नास्ते वै पूज्यतमाः सदा ॥ १६ ॥ तैर्हि सद्भिः कृतः पन्थास्तेन यातो न मुह्यते । ते हि स्वर्गस्य नेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

विद्वान् जिस अन्नका भक्षण करता है उसका स्वामी होजाता है और दाताको उसका फल देता है, परन्तु मूर्ख पुरुष जिस अन्नको खाता है और उस अन्नसे जिस प्रजाको उत्पन्न करता है, वह प्रजा उस अन्न देनेवालेकी गिनी जाती है, अतः जिसको अन्नदान करनेकी सामर्थ न हो, वह परान्नको ना खाय, क्योंकि-ऐसा करना गृहस्थका सूक्ष्म दोष माना जाता है॥१३॥ जो पुण्य दान देने वालेको मिलता है, वही पुण्य दान लेने वालेको भी मिलता है, इकलेसे कोई लोक-व्यवहार नहीं चलता है, यह ऋषि कहते हैं ॥ १४ ॥ जहाँ पर शास्त्रसम्पन्न ब्राह्मण रहते हैं तहाँ ही दान देनेका फल इस लोकमें तथा परलोकमें मिल सकता है ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मण शुद्धयोनि होते हैं, जो तपस्यामें सदा प्रीति रखते हैं उनको दान और अध्ययन-सम्पन्न तथा सदा पूज्य समझना चाहिये १६ ऐसे सत्पुरुषोंने जो मार्ग निर्माण किया है, उस पर चलनेवालों को मोह उत्पन्न नहीं होता है, वे स्वर्गमें लेजाने वाले, यज्ञका उपदेश देनेवाले सनातन पुरुष हैं॥ १७ ॥ एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥ छ छ छ छ

भीष्म उवाच । एवमुक्तः स भगवान् मैत्रेयं प्रत्यभाषत । दिष्ट्यैवं त्वं विजानासि दिष्ट्या ते बुद्धिरीदृशी ॥ १ ॥ लोको ह्यार्यगुणानेव भूयिष्ठं तु प्रशंसति । रूपमानवयोमानश्रीमानाश्चाप्यसंशयम् ।२॥दिष्ट्या नाभिभवन्ति त्वां दैवस्तेऽयमनुग्रहः । यत्ते भृशतरं दानाद्वर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ ३ ॥ यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित् प्रवृत्तयः । तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥ अहं दानं प्रशंसामि भवानपि तपःश्रुते । तपः पवित्रं वेदस्य तपः स्वर्गस्य साधनम् ॥ ५ ॥ तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् । तपसैव चापनुदेद्यच्चान्यदपि दुष्कृतम् ६ यद्यद्धि किंचित्संधाय पुरुषस्तप्यते तपः । सर्वमेतदवाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ॥ ७ ॥ दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरति-

भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार मैत्रेयजीने कहा,तब भगवान् व्यासजीने मैत्रेयसे कहा,कि-तुमको ऐसा ज्ञान है,यह बड़े आनन्दकी बात है तथा तुम्हारी बुद्धि ऐसी है यह भी बड़े आनन्दकी बात है१मनुष्य महापुरुषोंके गुणोंकी प्रशंसा विशेषतः करते हैं,रूपका अभिमान अवस्थाका अभिमान और लक्ष्मी का अभिमान तुम्हारा पराभव नहीं करेंगे;तुम अपने ऊपर देवताओंका यह अनुग्रह समझो, अब मैं तुमसे दानसे भी उत्तम धर्मका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ २ ॥ ३ ॥ इस जगत्के शास्त्र और सब प्रकारकी प्रवृत्तियें वेदका आधार लेकर ही प्रचलित की गई हैं ॥ ४ ॥ मैं दानकी प्रशंसा करता हूँ और आप तप और शास्त्रकी प्रशंसा करते हैं, तप पवित्र है और वेदाध्ययन तथा स्वर्गका साधन है ॥ ५ ॥ तप और विद्यासे पुरुष महान् पदार्थको पाता है, ऐसा हमने सुना है, इनमें भी मनुष्य तपसे ही पापोंका नाश करता है ॥ ६ ॥ हमने सुना है, कि-मनुष्य जिस २ पदार्थकी अभिलाषा करके तप करता है, उन

क्रमम् । सर्वं वै तपसाभ्येति तपो हि बलवत्तरम् ॥ ८ ॥ सुरापो संमतादायी भ्रूणहा गुरुतल्पगः । तपसा तरते सर्वमेनसश्च प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ सर्वविद्यस्तु चक्षुष्मानपि यादृशतादृशम् । तपस्विनं तथैवाहुस्ताभ्यां कार्यं सदा नमः ॥ १० ॥ सर्वे पूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः । दानप्रदाः सुखं प्रेत्य प्राप्नुवन्तीह च श्रियम् ॥ ११ ॥ इमं च ब्रह्मलोकं च लोकं च बलवत्तरम् । अन्नदानैः सुकृतिनः प्रतिपद्यन्ति लौकिकाः ॥ १२ ॥ पूजिताः पूजयन्त्येने मानिता मानयन्ति च । स दाता यत्र यत्रेति सर्वतः संप्रणूयते ॥ १३ ॥ अकर्ता चैव कर्ता च लभते यस्य यादृशम् ।

सब पदार्थोंको तप और विद्यासे पाता है ॥ ७ ॥ दुरन्वय, दुष्प्रधर्ष, कठिनतासे मिलनेवाली और दुरतिक्रम वस्तुयें भी तपसे मिल सकती हैं, क्योंकि-तपमें बड़ा बल है ॥ ८ ॥ मदिरापान करनेवाला, सम्मतिके बिना ग्रहण करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, ऐसे पातकी पुरुष भी तप करनेसे सब पापोंके पार होजाते हैं और पापोंसे छूट जाते हैं ॥९॥ सकल विद्या पढे हुएको नेत्रवाला समझना चाहिये और चाहे जैसा तपस्वी हो, उसको भी नेत्रवाला (ज्ञाता) समझना चाहिये, अतः इन दोनोंको सदा नमस्कार करे ॥ १० ॥ जिनके पास शास्त्राभ्यासरूपी धन हैं तथा जो तपस्वी हैं वे पूज्य हैं, वे और दान देनेवाले भी इस लोकमें लक्ष्मी पाते हैं और मरणके पीछे परलोकमें सुख पाते हैं ॥ ११ ॥ पुण्यात्मा मनुष्य इस लोकमें अन्नका दान देकर सुख भोगते हैं और ब्रह्मलोक तथा दूसरे उत्तम लोकोंको पाते हैं ॥ १२ ॥ जो ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं दूसरे उनकी पूजा करते हैं, जो ब्राह्मणोंको मान देते हैं, दूसरे उनको मान देते हैं और वह (मान अथवा पूजा अथवा अन्न) दाता जहाँ २ जाता है, तहाँ सर्वत्र उसकी पूजा होती है ॥ १३ ॥

यदि चोर्ध्वं प्रयान्तो वा स्वाँल्लोकानभियास्यति ॥ १४ ॥ प्राप्स्यसि त्वन्नपानानि यानि वाञ्छसि कानिचित् । मेधाव्यसि कुले जातः श्रुतवानानृशंस्यवान् ॥ १५ ॥ कौमारचारी व्रतवान् मैत्रेय निरतो भव । एतद्गृहाण प्रथमं प्रशस्तं गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ यो भर्ता वासिता तुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता । यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते ॥ १७ ॥ अद्भिर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा । दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति ॥ १८ ॥ स्वस्ति प्राप्नुहि मैत्रेय गृहान् साधु व्रजाम्यहम् । एतन्मनसि कर्तव्यं श्रेय एवं भविष्यति ॥ १९ ॥ तं प्रणम्याथ मैत्रेयः कृत्वा

कर्म करनेवाला और कर्म न करनेवाला इन दोनोंको अपने कर्मानुसार फल मिलता है, फिर चाहें वे ऊपरके लोकोंमें रहते हों अथवा नीचेके लोकोंमें रहते हों वे अपने कर्मानुसार प्राप्त हुए लोकोंमें जाते हैं ॥ १४ ॥ तुम जिस २ अन्न और जिस २ पेय वस्तुकी इच्छा करोगे उस २ को पाओगे, क्योंकि-तुम बुद्धिमान् उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, शास्त्रसम्पन्न और दयालु हो ॥ १५ ॥ हे मैत्रेय ! तुम तरुण हो और व्रतधारी हो अतः तुम धर्ममें परायण रहो, गृहस्थाश्रमियोंका जो उत्तम और प्रथम कर्तव्य है उसको आप मुझसे ग्रहण करिये १६ जिस कुलमें भर्ता अपनी स्त्रीसे सन्तुष्ट रहता है और स्त्री अपने स्वामीसे सन्तुष्ट रहती है, उस कुलमें सदा कल्याण रहता है ॥ १७ ॥ जलसे जैसे शरीरका मल दूर होजाता है, अग्निकी कान्तिसे जैसे अन्धकार दूर हो जाता है, इसी प्रकार दान देनेसे तथा तप करनेसे भी पातक दूर होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे मैत्रेय ! तुम्हारा कल्याण हो ! अब मैं अपने घरको जाता हूँ, मैंने तुमसे जो कहा है, उसको तुम अपने मनमें धरना, ऐसा करनेसे तेरा कल्याण होगा ॥ १९ ॥

चापि मद्क्षिणम् । स्वस्ति गामोतु भगवानित्युवाच कृतांजलिः २०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे मैत्रेयभिक्षायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२॥

युधिष्ठिर उवाच । सत्स्त्रीणां समुदाचारं सर्वधर्मविदां वर । श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । सर्वज्ञां सर्वतत्त्वज्ञां देवलोके मनस्विनीम् । कैकेयी सुमना नाम शांडिलीं पर्यपृच्छत ॥ २ ॥ केन वृत्तेन कल्याणि समाचारेण केन वा । विधूय सर्वपापानि देवलोकं त्वमागता ॥ ३ ॥ हुताशन-शिखेव त्वं ज्वलमाना स्वतेजसा । सुता ताराधिपस्येव प्रभया दिवमागता ॥ ४ ॥ अरजांसि च वस्त्राणि धारयन्ती गतक्लमा । विमानस्था शुभा भासि सहस्रगुणमोजसा ॥ ५ ॥ न त्वमल्पेन

तदनन्तर मैत्रेयने दोनों हाथ जोड़कर व्यासजीको प्रणाम किया फिर उनकी प्रदक्षिणा कर कहने लगे, कि-आपका कल्याण हो ॥ २० ॥ एकसौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२२ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे सकल धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पितामह ! मैं आपसे श्रेष्ठ स्त्रियोंके सदाचार सुनना चाहता हूँ, उनको आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! देवलोकमें केकयवंशमें उत्पन्न हुई सुमना नाम वाली स्त्रीने सब तत्त्वोंको जानने वाली सर्वज्ञ मनस्विनी शाण्डिलीसे बूझा, कि ।२॥ सुमनाने बूझा कि-हे कल्याणि ! तू किस आचारसे किस बर्तावसे सब पापोंका नाश करके इस देवलोकमें आई है ३ तू अपने तेजसे अग्निकी शिखाकी समान तेजस्वी दीख रही है और तू अपनी कान्तिसे स्वर्गमें आई हुई ताराधिपतिकी पुत्रीकी समान शोभा पारही है ४ तू स्वच्छ वस्त्र पहिर रही है, तेरे शरीरमें जरा भी आलस्य नहीं दीखता है और तू जिस समय विमानमें बैठी होती है, उस समय तू सहस्रगुणी शोभायमान

तपसा दानेन नियमेन वा । इमं लोकमनुप्राप्ता त्वं हि तत्त्वं वद-स्व मे ॥ ६ ॥ इति पृष्टा सुमनया मधुरं चारुहासिनी । शांडिली निभृतं वाक्यं सुमनामिदमब्रवीत् ॥७॥ नाहं काषायवसना नापि वल्कलधारिणी । न च मुण्डा च जटिला भूत्वा देवत्वमागता ॥८॥ अहितानि च वाक्यानि सर्वाणि परुषाणि च । अप्रमत्ता च भर्तारं कदाचिन्नाहमब्रुवम् ॥ ९ ॥ देवतानां पितॄणां च ब्राह्मणानां च पूजने । अप्रमत्ता सदायुक्ता श्वश्रूश्वशुरवर्तिनी ॥ १० ॥ पैशून्ये न प्रवर्तामि न ममैतन्मनोगतम् । अद्वारि न च तिष्ठामि चिरं न कथयामि च ॥ ११ ॥ असद्वा हसितं किंचिदहितं वापि कर्मणा ।

दी जाती है ॥ ५ ॥ तू किसी थोड़ेसे तपसे, मामूली दानसे अथवा छोटे मोटे नियमसे इस लोकमें नहीं आई होगी, अतः तू मुझे सच्ची बात बता दे ६ इस प्रकार सुमनाने चारुहासिनी शाण्डिलीसे बूझा,तब उसने धीरेसे मधुर वाणीमें सुमनासे कहा कि—॥ ७ ॥ मैं भगवाँ वस्त्र पहर (भिक्षुकी बनने) के कारण देवता नहीं बनी हूँ, तथा मैं वल्कल वस्त्र धारण करने (वन-वासिनी बनने) से भी देवता नहीं हुई हूँ, मैं मस्तक मुँडाने (संन्यासिनी बनने) से भी देवता नहीं हुई हूँतथा मैं जटा धरने (चोटी रखकर गृहस्थी बनने) से भी देवता नहीं बनी हूँ ।८। किन्तु मैं शान्त रहती थी और किसी दिन अपने स्वामीसे अहितकारी और कठोर वचन नहीं कहती थी ॥ ९ ॥ देवता, पितर और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेमें सदा तत्पर रहती थी,सास और ससुरकी सदा सेवा करती थी १० मेरा यह मुख्य नियम था, किसीकी चुगली न खाना चाहिये, मैं घरके दरवाजेको छोड़कर जहाँ तहाँ खडी नहीं रहती थी, बहुत समय तक किसी से बात चीत नहीं करती थी ११ खिलखिलाकर नहीं हँसती थी तथा किसीका अहित भी नहीं करती थी और किसीकी

रहस्यमरहस्यं वा न प्रवर्तामि सर्वथा ॥ १२ ॥ कार्यार्थे निर्गतं चापि भर्तारं गृहमागतम् । आसनेनोपसंगोज्य पूजयामि समाहिता ॥ १३ ॥ यदन्नं नाभिजानाति यद्भोज्यं नाभिनन्दति । भक्ष्यं वा यदि वा लेह्यं तत्सर्वं वर्जयाम्यहम् ॥ १४ ॥ कुटुम्बार्थे समानीतं यत्किञ्चित्कार्यमेव तु । प्रातरुत्थाय तत्सर्वं कारयामि करोमि च ॥१५॥ प्रवासं यदि मे याति भर्ता कार्येण केनचित् । मङ्गलैर्बहुभिर्युक्ता भवामि नियता तदा ॥१६॥ अञ्जनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम् । प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनंदामि भर्तरि ॥ १७ ॥ नोत्थापयामि भर्तारं सुखसुप्तमहं सदा । आन्त-

गुप्त अथवा प्रकट बातको भी किसीसे सर्वथा नहीं कहती थी १२ मेरे स्वामी कार्य करनेके लिये बाहर जाकर जब फिर घरमें लौट कर आते थे तब मैं उनको बैठनेके लिये आसन देती थी और सावधान होकर उनकी पूजा करती थी १३ मेरे पतिको जो अन्न अच्छा नहीं लगता था, उसको मैं भी अच्छा नहीं समझती थी और जिस भोजनको मेरे स्वामी पसन्द नहीं करते थे, उस भोजनको मैं भी पसन्द नहीं करती थी और जिस लेह्य को मेरे स्वामी नहीं चाटते थे, उसको मैं भी नहीं चाटती थी और मेरे स्वामीको जो अच्छा नहीं लगता था, उस सबको ही मैं त्याग देती थी ॥ १४ ॥ घरमें कुटुम्बके लिये जो वस्तु आती थी उसको मैं प्रातःकाल ही उठ कर साफ करती थी और घरके सब कार्योंको भी मैं अपने आप करती थी और दूसरोंसे करवाती थी १५ मेरे स्वामी किसी कामके लिये परदेश जाते थे तो मैं मांगलिक आभूषण ही पहिरती थी तथा नियमोंका पालन करती थी १६ अञ्जन, गोरोचन, तेल (तीर्थों पर) स्नान करनेको जाना, वेणीमें पुष्प गूँथना, चन्दन लगाना और शरीरको सजाना इन सब बातोंको पतिके

देश्वपि कार्येषु तेन तुष्यति मे मनः ॥ १८ ॥ नायासयामि भर्तारं कुटुंबार्थेऽपि सर्वदा । गुप्तगुह्या सदा चास्मि सुसंमृष्टनिवेशना १९ इमं धर्मपथं नारी पालयंती समाहिता । अरुन्धतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥ भीष्म उवाच । एतदाख्याय सा देवी सुमनायै तपस्विनी । पतिधर्मं महाभागा जगामादर्शनं तदा २१ यश्चेदं पाण्डवाख्यानं पठेत् पर्वणि पर्वणि । स देवलोकं संप्राप्य नन्दने स सुखी वसेत् ॥ २२ ॥ छ छ छ

इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शांडिलीसुमनासम्वादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२३

युधिष्ठिर उवाच । साम्नि चापि प्रदाने च ज्यायः किं भवतो मतम् । प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ यदत्र व्यतिरिच्यते ॥१॥ भीष्म उवाच ।

परदेश जाने पर मैं त्याग देती थी१७ मेरे पति जब सुखमें सोते थे, तब चाहे जितना आवश्यकीय कार्य होता था, परन्तु मैं उन को नहीं जगाती थी और ऐसा करने पर ही मेरा मन सन्तुष्ट रहता था १८ मैं कुटुंबके लिये भी अपने स्वामीको कभी दुःख नहीं देती थी, मैं गुप्त बातको सदा छिपाये रखती थी और घर को सदा साफ रखती थी ॥ १९ ॥ जो नारी सावधान होकर इस धर्ममार्गका अनुसरण करती है, उसकी स्वर्गलोकमें अरुन्धतीकी समान पूजा होती है ॥ २० ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! महाभाग्यशाली तपस्विनी शाण्डली सुमनासे इस प्रकार पतिधर्मका वर्णन करके अदृश्य होगई ॥ २१ ॥ जो इस आख्यानका प्रत्येक पर्वके समय पाठ करती है, वह देवलोकमें जाकर नन्दन वनमें सुखपूर्वक निवास करती है ॥ २२ ॥ एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने कहा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! आप साम और दानमें किसको श्रेष्ठ मानते हैं, इनमें जो विशेष उत्तम हो

साम्ना प्रसाद्यते कश्चिद्दानेन च तथा परः । पुरुषप्रकृतिं ज्ञात्वा तयोरेकतरं भजेत् ॥२॥ गुणांस्तु शृणु मे राजन् सान्त्वस्य भरतर्षभ । दारुणान्यपि भूतानि सान्त्वेनाराधयेद्यथा ॥ ३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । गृहीत्वा रक्षसा मुक्तो द्विजातिः कानने यथा ॥४॥ कश्चिद्वाग्बुद्धिसम्पन्नो ब्राह्मणो विजने वने । गृहीतः कृच्छ्रमापन्नो रक्षसा भक्षयिष्यता ॥ ५ ॥ स बुद्धिश्रुतिसंपन्नस्तं दृष्ट्वातीवभीषणम् । सामैवास्मिन् प्रयुयुजे न मुमोह न विव्यथे ॥ ६ ॥ रक्षस्तु वाचं संपूज्य प्रश्नं पप्रच्छ तं द्विजम् । मोक्ष्यसे ब्रूहि मे प्रश्नं केनास्मि हरिणः कृशः ॥ ७ ॥ मुहूर्तमथ

उसका आप वर्णन करिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि कोई सामसे प्रसन्न होता है और कोई दानसे प्रसन्न होता है अतः पुरुषकी प्रकृतिको समझकर इन दोनोंमेंसे एकका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥ हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! तू प्रथम मुझसे सामके गुणोंको सुन. भयंकर प्राणी भी सामसे वशमें होसकते हैं ॥३॥ पहिले एक वनमें किसी राक्षसने एक ब्राह्मणको कैद कर लिया था और फिर उसको छोडदिया था इस विषयके प्राचीन इतिहासका उदाहरण इसप्रकार कहते हैं ॥ ४ ॥ कि-एक राक्षसने निर्जन वनमें किसी बुद्धिमान् वाचाल ब्राह्मणको खानेकी इच्छासे पकड लिया था, तब वह कष्टमें पडगया ॥५॥ परन्तु वह बुद्धिमान् और शास्त्रसंपन्न ब्राह्मण उस अतिभयंकर राक्षसको देखकर भी नहीं घबडाया तथा उसको खेद भी नहीं हुआ, उसने राक्षससे भी सामसे ही काम लिया ॥६॥ राक्षसने ब्राह्मणके साम भरे वचनोंकी प्रशंसा की और उस ब्राह्मणसे कहा, कि-आप मेरे प्रश्नका उत्तर देंगे तो मैं आपको छोड़दूँगा यह बताइये, कि-मेरे शरीरका वर्ण उतरा हुआ क्यों रहता है और मैं दुर्बल क्यों रहता हूँ ॥ ७ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणने एक

संचिंत्य ब्राह्मणस्तस्य रक्षसः। आभिर्गाथाभिरव्यग्रः प्रश्नं प्रतिजगाद ह ॥८॥ ब्राह्मण उवाच। विदेशस्थो विलोकस्थो विना नूनं सुहृज्जनैः। विषयानतुलान् भुंक्ते तेनासि हरिणः कृशः ९ नूनं मित्राणि ते रक्षः साधूपचा रतान्यपि। स्वदोषादपरज्यंते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १० ॥ धनैश्वर्याधिकाः स्तब्धास्त्वद्गुणैः परमावराः। अवजानन्ति नूनं त्वां तेनासि हरिणः कृशः ११ गुणवान् विगुणानन्यान्नूनं पश्यसि सत्कृतान्। प्राज्ञोऽप्राज्ञान् विनीतात्मा तेनासि हरिणः कृशः ॥ १२ ॥ अवृत्त्या क्लिश्यमानोपि वृत्त्युपायान् विगर्हयन्। माहात्म्याद्व्यथसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ।१३॥ संपीड्यात्मानमार्यत्वात्त्वया कश्चिदुपस्कृतः।

मुहूर्त तक विचार किया फिर शान्तिपूर्वक निम्नलिखित गाथाओंमें राक्षसको उत्तर दिया; कि—तू अपने मनुष्योंको छोड़कर परदेश में और परदेशी मनुष्योंमें घूमता हुआ अतुलनीय विषयोंका उपभोग किया करता है, इससे दुर्बल और फीका होगया है ॥९॥ हे राक्षस! तू अपने मित्रोंकी भलीभाँति सेवा करता है तब भी वे अपने (राक्षस) स्वभावके कारण तेरे ऊपर प्रेम नहीं करते हैं, इससे तेरा शरीर दुर्बल और फीका रहता है ॥ १० ॥ मनुष्य धनमें और ऐश्वर्यमें तुझसे श्रेष्ठ हैं परन्तु गुणमें तुझसे न्यून हैं तथा अभिमानी हैं, इससे वह तेरा अपमान करते हैं, इसकारण तू दुबला और फीका रहता है ॥ ११ ॥ तू गुणी है बुद्धिमान् है तथा तेरा आत्मा विनीत है तब भी तू मूर्ख और उद्धत मनुष्योंका सत्कार होते देखता है, इससे तू दुबला और फीका रहता है ॥१२॥ तू आजीविका न मिलनेसे दुःखी रहता है, परन्तु अपने महत्त्वके (अभिमानवश) तू आजीविकाके उपायों का तिरस्कार करता है, इसकारण तू दुःखित रहता है और तेरा शरीर दुबला और फीका पड़रहा है ॥१३॥ हे सत्पुरुष! यदि

जितं त्वां मन्यते साधो तेनासि हरिणः कृशः ॥ १४ ॥ क्लिश्यमानान्विमार्गेषु कामक्रोधावृतात्मनः । मन्ये त्वं ध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥१५॥ प्राज्ञैः संभावितो नूनमप्राज्ञैरुपसंहितः। ह्रीयमाणोऽसि दुर्वृत्तैस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ १६ ॥ नूनं मित्रमुखः शत्रुः कश्चिदार्यवदाचरन् । वञ्चयित्वा गतस्त्वां वै तेनासि हरिणः कृशः ॥ १७ ॥ प्रकाशार्थगतिर्नूनं रहस्यकुशलः कृती । तज्ज्ञैर्न पूज्यसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १८ ॥ असत्स्वपि निविष्टेषु ब्रुवतो मुक्तसंशयम् । गुणास्ते न विराजन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १९ ॥ धनबुद्धिश्रुतैर्हीनः केवलं तेजसान्वितः ।

तू अपने महत्त्वके कारण अपने शरीरको कष्ट देकर भी किसी का उपकार करता है, तो वह मुझको जीता हुआ मानता है, इससे तेरा शरीर दुवला और फीका रहता है ॥१४॥ तू कुमार्ग में चलनेसे दुःखित होते हुए काम और क्रोधसे घिरीहुई आत्मा वाले मनुष्योंकी चिंता किया करता है, इससे तू दुवला और फीका पड़ रहा है ॥ १५ ॥ तू बुद्धिमान है तब भी मूर्ख पुरुष तेरी हँसी उड़ाते हैं और दुराचारी पुरुष तेरा अपमान करते हैं इससे तेरा शरीर दुवला और फीका पड़ रहा है ॥१६॥ कोईर शत्रु मुखसे मित्र और सत्पुरुषकी समान बातें कर तुझे ठगकर लेजाते हैं, इससे तू दुर्बल और फीका पड़ रहा है १७ तू प्रसिद्ध व्यवहारमें कुशल है, बातको गुप्त रखनेमें भी कुशल है, और कार्य करनेमें भी कुशल है, तब भी गुणोंको जाननेवाले तेरी प्रशंसा नहीं करते, इससे ही तू दुर्बल और फीका रहता है ॥ १८ ॥ नीच कृत्योंमें मग्न रहनेवाले पुरुषोंसे तू निःसंशय हो उनके दोषोंको कह देता है इसलिये तेरा शरीर दुवला और फीका होगया है १९ तू धन, बुद्धि और शास्त्रज्ञानशून्य है, तुझमें केवल प्रताप ही प्रताप है और उससे ही तू महत्त्व पाना चाहता है अतः

महत् प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २० ॥ ताः प्राणि-हितात्मानं मन्ये त्वारण्यकाङ्क्षिणम् । बान्धवा नाभिनन्दन्ति तेन.सि हरिणः कृशः ॥२१॥ इष्टभार्यस्य ते नूनं प्रातिवेश्यो महाधनः । युवा सुललितः कामी तेनासि हरिणः कृशः ॥ २२ ॥ नूनमर्थवतां मध्ये तव वाक्यमनुत्तमम् । न भाति कालेऽभिहितन्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २३ ॥ दृढपूर्वं श्रुतं मूर्खं कुपितं हृदयप्रियम् । अनुनेतुं न शक्रोषि तेनासि हरिणः कृशः ॥ २४ ॥ नूनमासंजयित्वा त्वां कृत्ये कस्मिंश्चिदीप्सिते । कश्चिदर्थयते नित्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥२५॥ नूनं त्वां सुगुणैर्युक्तं पूजयानं सुहृद्ब्रुवम् । ममार्थ इति जानीते तेनासि हरिणः कृशः ॥ २६ ॥ अन्तर्गत-

तेरा शरीर दुबला और फीका पड़ रहा है ॥ २० ॥ मैं समझता हूँ, कि तेरा मन तप करना चाहता है और तू तप करनेकी इच्छासे ही वनमें रहना चाहता है, परन्तु तेरे भाई इस बातको नहीं मानते हैं, इससे ही तू दुबला पड़ गया है और तेरे शरीरका वर्ण फीका पड़ गया है ॥ २१ ॥ तेरी भार्या तुझको प्रिय है परन्तु तेरा पड़ौसी परम धनी, तरुण, रूपवान् और कामी है, इससे तेरा शरीर फीका और दुबला पड़ गया है २२ तू धनवानोंमें अच्छी बात कहता है, परन्तु धनवानोंको तेरा कथन समयोचित तथा उत्तम नहीं मालूम होता है, इससे तू दुबला और फीका पड़ रहा है ॥ २३ ॥ अपने सम्बन्धियोंको तूने अच्छा ही उपदेश दिया है, परन्तु वह मूर्ख होनेसे तेरे ऊपर कुपित ही रहते हैं और तू उन्हें समझा नहीं सकता, इससे तू दुर्बल और फीका पड़ रहा है॥२४॥ आदमी तुझे अपने अभिलषित काममें लगा कर उसका फल स्वयं ही भोगना चाहते हैं, इससे तू दुर्बल और कृश होरहा है ॥२५॥ तेरे सद्गुणी होनेसे ही मनुष्य तेरी पूजा करते हैं, तब भी तेरे स्नेही यह समझते हैं,

मभिप्रायं नूनं नेच्छसि लज्जया। विवेक्तुं प्राप्तशैथिल्यस्तेनासि हरिणः कृशः॥२७॥ नानाबुद्धिरुचीं लोके मनुष्यान्नूनमिच्छसि। ग्रहीतुं स्वगुणैः सर्वांस्तेनासि हरिणः कृशः॥ २८॥ अविद्वान् भीरुरल्पार्थे विद्याविक्रमदानजम्। यशः प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः॥२९॥ चिराभिलषितं किञ्चित् फलमप्राप्तमेव ते। कृतमन्यैरपहृतं तेनासि हरिणः कृशः॥ ३०॥ नूनमात्मकृतं दोषमपश्यन् किंचिदात्मनः। अकारणेऽभिशप्तोऽसि तेनासि हरिणः कृशः॥३१॥ साधून् गृहस्थान् दृष्ट्वा च तथाऽसाधून् वनेचरान्।

कि-"इसको तो हमारे कारणसे पूजा होती है" इससे तेरा शरीर फीका पड़ गया है और तू दुर्बल होगया है॥ २६॥ तू लज्जासे शिथिल होकर अपने मनके अभिप्रायको दूसरोंसे प्रकट नहीं करता है, इससे तेरा शरीर दुर्बल और तेरे शरीरकी कान्ति फीकी रहती है॥ २७॥ इस विश्वमें मनुष्य अनेक प्रकारकी इच्छा वाले और अनेक प्रकारकी बुद्धि वाले होते हैं, उन सबको तू अपने गुणोंसे वशमें करना चाहता है, इससे तू दुबला और उदास रहता है तू विद्यावान् नहीं है तथापि विद्यासे मिलने वाले यशको पाना चाहता है,भीरु होने पर भी पराक्रमसे मिलने वाले यशको पाना चाहता है और तेरे पास थोड़ा धन है, तब भी तू दान देनेसे मिलने वाले यशको चाहता है, इससे तेरे शरीरकी कान्ति फीकी पड़ गई है और तू दुबला होगया है॥ २९॥ तू बहुत दिनोंसे एक फल पाना चाहता था, वह तुझे तो मिला नहीं और दूसरे उसको हर कर लेगए, इससे तू दुबला होगया है तेरी कान्ति फीकी पड गई है॥३०॥ तूने कोई पाप किया हो यह तू अपने आप कुछ नहीं जानता, परन्तु दूसरे तेरे ऊपर लाञ्छन लगाते हैं, इससे तू दुर्बल होरहा है और तेरी कान्ति नष्ट होगई है॥ ३१॥ सत्पुरुषोंको घरमें बसते देखकर

मुक्तांश्चावसथे सक्तांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३२ ॥ सुहृदां दुःखमार्तानां न प्रमोचयसि हानिजम् । अलमर्थगुणैर्हीनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३३ ॥ धर्म्यमर्थ्यं च काम्यं च काले चाभिहितं वचः । न प्रतीयन्ति ते नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥३४॥ दत्तानकुशलैरर्थान् मनीषी संजिजीविषुः । प्राप्य वर्तयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३५ ॥ पापान् प्रवर्धतो दृष्ट्वा कल्याणानवसीदतः । ध्रुवं गर्हयसे नित्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥३६॥ परस्परविरुद्धानां प्रियं नूनं चिकीर्षसि । सुहृदामुपरोधेन तेनासि हरिणः कृशः ॥३७॥ श्रोत्रियांश्च विकर्मस्थान् प्राज्ञांश्चाप्यजितेन्द्रियान् ।

और दुर्जनोंको वानप्रस्थ आश्रममें देखकर और मुक्त पुरुषोंको घरमें आसक्त देख कर तेरा शरीर दुर्बल और निस्तेज होगया है ॥ ३२ ॥ तेरे पास धन नहीं है, तुझमें गुण भी नहीं है, तब भी तू स्नेहियोंके और दुःखी पुरुषोंके दुःख दूर करना चाहता है, इससे तेरा शरीर दुर्बल और निस्तेज होरहा है ॥ ३३ ॥ तेरा धर्ममय और अर्थमय तथा कामनामय कर्म और समयानुसार कहा हुआ वचन तुझे फल नहीं देता है, इससे तू निस्तेज और दुर्बल होगया है॥३४॥मनीषी होने पर भी तुझे मूर्ख मनुष्योंके दियेहुए धन पर आजीविका चलानी पड़ती है,इससे तू दुर्बल और कृश होरहा है ३५ तू पापी मनुष्योंको सुखी और धर्मिष्ठ पुरुषोंको दुःखी देखकर उनकी अवश्य ही निन्दा करता होगा ? इससे तेरा शरीर दुबला होगया है और तेरी कान्ति फीकी पड़गई है ३६ तेरे सम्बन्धी परस्पर विरोध करते हैं और तू उनका प्रिय करना चाहता है इससे तेरा शरीर दुबला और फीका पड़गया है ३७ वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको नीच कर्म करते देखकर और बुद्धिमानोंको इन्द्रियोंके वशमें हुआ देखकर तू शोक करता है, मुझे प्रतीत होता है कि-इससे तेरा शरीर दुबला और निस्तेज

मन्येऽनुध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३८ ॥ एवं संपूजितं रक्षो विप्रं तं भरतर्षभ । सखायमकरोच्चैनं संयोज्यार्थैर्मुमोच ह ॥ ३९ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे हरिणकृशकाख्याने चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥

युधिष्ठिर उवाच । जन्म मानुष्यकं प्राप्य कर्मक्षेत्रं सुदुर्लभम् । श्रेयोर्थिना दरिद्रेण किंकर्तव्यं पितामह ॥ १ ॥ दानानामुत्तमं यच्च देयं यच्च यथा यथा । मान्यान् पूज्यांश्च गांगेय रहस्यं वक्तुमर्हसि ॥२॥ वैशम्पायन उवाच । एवं पृष्टो नरेन्द्रेण पाण्डवेन यशस्विना । धर्माणां परमं गुह्यं भीष्मः प्रोवाच पार्थिवम् ३ भीष्म उवाच । शृणुष्वावहितो राजन् धर्मगुह्यानि भारत । यथा हि भगवान् व्यासः पुरा कथितवान् मयि ॥ ४ ॥ देवगुह्यमिदं राजन् यमेनाक्लिष्टकर्मणा । नियमस्थेन युक्तेन तपसो महतः

होगया है ॥३८॥ इस प्रकार ब्राह्मणने वचन कहकर राक्षसका सत्कार किया तब उसने ब्राह्मणकी पूजाकर उसको धन दिया और मित्र बनाकर उसको छोड़ दिया ॥३९॥ एकसौ चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भीष्मपितामह ! महादुर्लभ कर्मके क्षेत्ररूप मनुष्य जन्मको पाने पर दरिद्र मनुष्यको कल्याणकी इच्छा हो, तब वह क्या करे ॥ १ ॥ हे गङ्गापुत्र ! दानोंमें उत्तम दान क्या है ? तथा माननीय और पूजनीय कौन है ? इसका रहस्य आप मुझे बताइये ॥२॥ वैशम्पायनने कहा, कि-नरेन्द्र यशस्वी पाण्डवने इसप्रकार बूझा, तब भीष्मजी राजासे परम गुह्य धर्म कहने लगे ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! पहिले भगवान् व्यासजीने मुझसे जिन गुप्त धर्मोंका वर्णन किया था उनको तू सावधान होकर सुन ॥४॥ हे राजन् !

फलम् ॥ ५ ॥ येन यः प्रीयते देवः प्रीयन्ते पितरस्तथा । ऋषयः प्रमथाः श्रीश्च चित्रगुप्तो दिशां गजाः ॥ ६ ॥ ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः । महादानफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ७ यश्चैतदेवं जानीयाज्ज्ञात्वा वा कुरुतेऽनघ । सदोषोऽदोषवांश्चेह तैर्गुणैः सह युज्यते ॥ ८॥ दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः । दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ९ ॥ अर्धेनैतानि सर्वाणि नृपतिः कथ्यतेऽधिकः । त्रिवर्गसहितं शास्त्रं पवित्रं पुण्य-लक्षणम् ॥ १० ॥ धर्मव्याकरणं पुण्यं रहस्यश्रवणं महत् ।

उत्तम कर्म करने वाले यमराजने नियम पालन कर महातप कर उसके फलरूपमें जिस धर्मको पाया था वह धर्म (देवताओंसे) भी गुप्त है ॥ ५ ॥ धर्मकर्मसे देवता, पितर, ऋषि, प्रमथ, लक्ष्मी, चित्रगुप्त तथा दिग्गज प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ और उसमें महा-फलवाला ऋषिधर्म रहस्यसहित समाया हुआ है और उसमें दानका तथा यज्ञका भी सब फल समाया हुआ है ॥ ७ ॥ हे निर्दोष राजन् ! जो पुरुष उपरोक्त धर्मको जानता है और उस को जान कर उसके अनुसार कार्य करता है, वह पुरुष पापी होता है तो पापमुक्त होजाता है और उत्तम प्रकारके गुणोंको प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ एक तेली दश कसाइयोंकी समान माना जाता है, और दश तेलियोंकी समान एक कलाल माना जाता है और वेश्या दश कलालोंकी समान मानी जाती है और (दुष्ट) राजा दश वेश्याओंकी समान माना जाता है ॥९॥ तोलने पर आधेमें राजा चढेगा और आधे पर यह सब वस्तुएँ चढ़ेंगी (अतः राजाके हाथसे दक्षिणा न लेनी चाहिये) जिस शास्त्रमें धर्म, अर्थ और कामका वर्णन किया है, जो शास्त्र पवित्र और पुण्यलक्षण है ॥१०॥ जिसमें धर्मका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है, जिसको सुनने पर महापुण्य होता है और जिसको देवताओंने स्वयं कहा

श्रोतव्यं धर्मसंयुक्तं विहितं त्रिदशैः स्वयम् ॥ ११ ॥ पितृणां यत्र गुह्यानि प्रोच्यन्ते श्राद्धकर्मणि । देवतानां च सर्वेषां रहस्यं कथ्यतेऽखिलम् ॥ १२ ॥ ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः । महायज्ञफलं चैव सर्वदानफलं तथा ॥ १३ ॥ ये पठन्ति सदा मर्त्या येषां चैवोपतिष्ठति । श्रुत्वा च फलमाचष्टे स्वयं नारायणः प्रभुः ॥ १४ ॥ गवां फलं तीर्थफलं यज्ञानां चैव यत्फलम् । एतत्फलमवाप्नोति यो नरोऽतिथिपूजकः ॥१५॥ श्रोतारः श्रद्दधानाश्च येषां शुद्धं च मानसम् । तेषां व्यक्तं जिता लोकाः श्रद्धधानेन साधुना ॥ १६ ॥ मुच्यते किल्विषाच्चैव न स पापेन लिप्यते । धर्मं च लभते नित्यं प्रेत्य लोकगतो नरः ॥१७॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य देवदूतो यदृच्छया । स्थितो ह्यंतर्हितो भूत्वा

है, उस शास्त्रको अवश्य सुनना चाहिये ॥११॥ जिसमें पितरोंका श्राद्धकर्म कहा है, सब देवताओंका सम्पूर्ण रहस्य भी कहा है ॥१२॥ और जिसमें महाफल देने वाला ऋषिधर्म भी रहस्यसहित कहा है, और जिसमें महायज्ञका फल और सब प्रकारके दानका फलभी कहा है ॥१३॥ जो मनुष्य नित्य उस शास्त्रका पाठ करता है तथा सदा उसका मनन करता है और सुन कर उसके कथनानुसार बर्ताव करता है वह स्वयं नारायणरूप होजाता है ॥ १४ ॥ अतिथिकी पूजा करने वाले मनुष्यको गोदानका फल और तीर्थोंका फल आदि सब फल मिलते हैं १५ जो पुरुष धर्मशास्त्रको सुनते हैं और सुन कर उस पर श्रद्धा रखते हैं तथा जिनका मन भी शुद्ध रहता है उन पुरुषोंने प्रकट रीतिसे श्रद्धालुतासे परलोकको जीत ही लिया है ॥ १६ ॥ श्रद्धापूर्वक शास्त्रको सुनने वाला पुरुष पापमेंसे छूट जाता है, उसको पाप नहीं लगता, वह इस लोकमें सदा धर्मसम्पादन करता है और मरण पाने पर परलोकमें जाता है ॥ १७ ॥ एक समय देवदूतने

गर्यभाषत वासवम् ॥१८॥ यौ तौ कामगुणोपेतावश्विनौ भिषजां
वरौ। आज्ञयाहं तयोः प्राप्तः सनरान् पितृदैवतान्॥१९॥कस्माद्धि
मैथुनं श्राद्धे दातुर्भोक्तुश्च वर्जितम्। किमर्थं च त्रयः पिण्डाः
प्रविभक्ताः पृथक् पृथक् ॥ २० ॥ प्रथमः कस्य दातव्यो मध्यमः
क्व च गच्छति। उत्तरश्च स्मृतः कस्य एतदिच्छामि वेदितुम् २१
श्रद्दधानेन दूतेन भाषितं धर्मसंहितम्। पूर्वस्थास्त्रिदशाः सर्वे
पितरः पूज्य खेचरम् ॥ २२ ॥ पितर ऊचुः। स्वागतं तेस्तु भद्रं
ते श्रूयतां खेचरोत्तम। गूढार्थः परमः प्रश्नो भवता समुदीरितः२३
श्राद्धं दत्वा च भुक्त्वा च पुरुषो यः स्त्रियं व्रजेत्। पितरस्तस्य
तं मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ॥ २४ ॥ प्रविभागं तु पिण्डानां

अपनी इच्छासे दृश्य रह कर इन्द्रसे कहा, कि-॥१८॥ जिनके
गुणोंकी मनुष्योंको अभिलाषा करनी चाहिये तथा जो देवता-
ओंके भिषग्वर (वैद्यराज)हैं उन दोनों अश्विनीकुमारोंकी
आज्ञासे मैं मनुष्य पितर और देवताओंके पास आया हूँ १९
(मेरी मारफत उन्होंने ये प्रश्न बूझे हैं,कि-)श्राद्धकर्ता और श्राद्ध
में भोजन करने वालेको किस लिये श्राद्धके दिन मैथुन न करना
चाहिये तथा तीन पिण्डोंका भिन्न २ विभाग क्यों किया गया
है ॥ २० ॥ प्रथम पिण्ड किसको देना चाहिये ? मध्यम पिण्ड
कहाँ जाता है ? तथा तीसरा पिण्ड किसको देना चाहिये ? यह
मैं जानना चाहता हूँ ॥ २१ ॥ देवदूतने श्रद्धासे धर्ममय प्रश्न
बूझा तब पूर्वदिशामें खड़े हुए सब देवताओंने और पितरोंने
आकाशमें फिरने वाले देवदूतकी पूजाकी ॥२२॥ पितरोंने कहा
कि हे उत्तम आकाशचारिन् ! तू भले आया,तेरा कल्याण हो !
सुन ! तूने परमगूढ अर्थ वाला प्रश्न बूझा है ॥ २३ ॥ जो
पुरुष श्राद्ध करके अथवा श्राद्धमें भोजन करके स्त्रीप्रसंग करता
है, उसके पितर उसके वीर्यमें एक मास तक शयन करते

गच्छत्यास्यनुपूर्वशः । पिण्डो ह्यधस्ताद्गच्छंस्तु अप आविश्य भावयेत् ॥ २५ ॥ पिण्डं तु मध्यमं तत्र पत्नी त्वेका समश्नुते । पिंडस्तृतीयो यस्तेषां तं दद्याज्जातवेदसि ॥२६॥ एष श्राद्धविधिः प्रोक्तो यथा धर्मो न लुप्यते । पितरस्तस्य तुष्यन्ति प्रहृष्टमनसः सदा ॥ २७ ॥ प्रजा विवर्धते चास्य अक्षयं चोपतिष्ठति । देवदूत उवाच । आनुपूर्व्येण पिण्डानां प्रविभागः पृथक् पृथक् ॥२८॥ पितॄणां त्रिषु सर्वेषां निरुक्तं कथितं त्वया । एकः समुद्धृतः पिंडो ह्यधस्तात् कस्य गच्छति ॥२९॥ कं वा प्रीणयते देवं कथं तारयते पितॄन् । मध्यमं तु तदा पत्नी भुंक्तेऽनुज्ञातमेव हि ॥३०॥ किमर्थं पितरस्तस्य कव्यमेव च भुंजते । अत्र यस्त्वंतिमः पिंडो गच्छते जातवेदसम् ॥३१॥ भवते का गतिस्तस्य कं वा समनुगच्छति ।

हैं ॥ २४ ॥ अब मैं पिण्डोंके विभागको क्रमशः करता हूँ प्रथम पिण्ड यह " जलमें प्रवेश करे " इस भावनासे देना चाहिये, मध्यमपिण्डको स्त्री अकेली ही खाय और तीसरे पिण्ड का अग्निमें होम करे ॥ २६ ॥ हमने तुमसे यह शास्त्रविधि कही, इस प्रकार वर्ताव करनेसे धर्मका नाश नहीं होता है और कर्ताके पितर मनमें प्रसन्न होकर सदा सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २७ ॥ उसकी प्रजाकी वृद्धि होती है और पितरोंको अक्षय तृप्ति मिलती है, देवदूतने कहा, कि-तुमने मुझे पिण्डोंका यथायोग्य विभाग सुना दिया ॥ २८ ॥ तथा सब पितरोंको तीन पिण्ड देनेका शास्त्रीयवचन भी सुना दिया अब मैं बूझता हूँ, कि-जो प्रथम पिण्ड जलके अर्पण किया जाता है वह पिण्ड निम्नभागमें किसको मिलता है ?॥ २९ ॥ वह किस देवताको प्रसन्न करता है और पितरोंको किस प्रकार तारता है, मध्यम पिण्डको तो पत्नी खाती है, क्योंकि-शास्त्रमें ऐसी ही आज्ञा दी है॥३०॥ परन्तु उस (स्त्रीके पतिके) पितर पिण्डका किस प्रकार भक्षण करते

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पिण्डेषु त्रिषु या गतिः ॥३२॥ फलं वृत्तिं च मार्गं च यथैनं प्रतिपद्यते । पितर ऊचुः । सुमहानेष प्रश्नो वै यस्त्वया समुदीरितः ॥ ३३ ॥ रहस्यमद्भुतं चापि पृष्टाः स्म गगनेचर । एतदेव प्रशंसन्ति देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ३४ ॥ तेऽप्येवं नाभिजानन्ति पितृकार्यविनिश्चयम् । वर्जयित्वा महात्मानं चिरंजीविनमुत्तमम्॥३५॥पितृभक्तस्तु यो विप्रो वरलब्धो महायशाः । त्रयाणामपि पिण्डानां श्रुत्वा भगवतो गतिम् ॥ ३६ ॥ देवदूतेन यः पृष्टः श्राद्धस्य विधिनिश्चयः । गतिं त्रयाणां पिण्डानां शृणुष्वावहितो मम ॥ ३७ ॥ अपो गच्छति यो ह्यत्र शशिनं ह्येष प्रीणयेत् । शशी प्रीणयते देवान् पितॄंश्चैव महामते ॥३८॥ भुंक्ते

हैं और जो अन्तिम पिण्ड अग्निमें होमा जाता है, उस पिण्ड की क्या स्थिति होती है और वह पिण्ड किसको पहुँचता है इसप्रकार इन तीनों पिण्डोंकी जो गति होती हो उसको मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पिण्डदानका फल और वृत्तिमार्ग अर्थात् पिण्ड किसको पहुँचा है यह मुझसे कहिये, पितरोंने कहा, कि-हे गगनचारी ! तूने बड़ा भारी प्रश्न किया है और अद्भुत रहस्य हमसे बूझा है, देवता और मुनि भी श्राद्धकर्मकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ चिरञ्जीवी महात्मा मार्कण्डेय के अतिरिक्त वे भी श्राद्धकर्मको नहीं जानते हैं ॥ ३५ ॥ वह विप्र पितृभक्त हैं, वरप्राप्त हैं, महायशस्वी हैं, उन्होंने भगवान्से तीन पिण्डोंकी गतिके सम्बन्धमें सुना है ॥३६॥ देवदूतने श्राद्ध-विधिका जो निर्णय बूझा है उसको वे जानते हैं (अब उनके कथनानुसार) तीनों पिण्डोंकी गतिको तू मुझसे सुन ॥ ३७ ॥ जिस पिण्डको जलमें पधराया जाता है वह पिण्ड चन्द्रमाको तृप्त करता है और हे महामति ! चन्द्रमा देवता और पितरोंको तृप्त करता है ॥ ३८ ॥ तथा पत्नी गुरुजनोंकी आज्ञासे जो

तु पत्नी यं चैषामनुज्ञाता तु मध्यमम् । पुत्रकामाय पुत्रं तु प्रयच्छंति
पितामहाः ॥ ३९ ॥ हव्यवाहे तु यः पिण्डो दीयते तन्निबोध मे ।
पितरस्तेन तृप्यन्ति प्रीताः कामान् दिशन्ति च ॥ ४० ॥ एतत्ते
कथितं सर्वं त्रिषु पिण्डेषु या गतिः । ऋत्विग्यो यजमानस्य
पितृत्वमनुगच्छति ॥ ४१ ॥ तस्मिन्नहनि मन्यन्ते परिहार्यं हि
मैथुनम् । शुचिना तु सदा श्राद्धं भोक्तव्यं खेचरोत्तम ॥ ४२ ॥
ये मया कथिता दोषास्ते तथा स्युर्न चान्यथा । तस्मात् स्नातः
शुचिः क्षान्तः श्राद्धं भुञ्जीत वै द्विजः ॥ ४३ ॥ प्रजा विवर्धते

मध्यम पिण्डका भक्षण करती है, उससे पितामह प्रसन्न होते हैं और वे पुत्रकी कामना वाले पुरुषको पुत्र देते हैं ॥ ३९ ॥ अब अग्निमें जो पिण्ड दिया जाता है, उसके सम्बन्धमें तू सुन, अग्निमें होमे हुए पिण्डसे पितर प्रसन्न होते हैं और पिण्ड देने वालेकी कामनाको पूर्ण करते हैं ॥ ४० ॥ तीन पिण्डोंकी जो गति होती है, वह सब तुमसे कही, श्राद्धके दिन ऋत्विज (श्राद्धमें जीमनेवाला ब्राह्मण) यजमानका पितर होता है४१ इसलिये श्राद्ध जीमनेवालेको उस दिन मैथुन न करना चाहिये, हे आकाशचारियोंमें उत्तम देवदूत ! श्राद्धमें भोजन करने वाले ब्राह्मणको श्राद्धमें पवित्र भोजन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ मैंने जो दोष बतलाये हैं, उससे विपरीत नहीं होसकता, परन्तु शास्त्रविधिके अनुसार वर्ताव करनेसे दोष नहीं लग सकता इस लिये ब्राह्मण स्नान करके पवित्र हो श्राद्धमें भोजन करे,श्राद्धमें भोजन करने वाला पुरुष यजमानका पितर होजाता है;इस प्रकार यजमानका पितर होनेके कारण उसको अपनी स्त्रीसे गमन न करना चाहिये, क्योंकि—उस दिन अपनी स्त्री परदारा मानी जाती है अतः उस दिन उसके साथ गमन करना परदारागमन की बराबर है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष उपरोक्त विधिसे श्राद्ध करके

चास्य यश्चैवं संप्रयच्छति। ततो विद्युत्प्रभो नाम ऋषिराह महातपाः ॥ ४४ ॥ आदित्यतेजसा तस्य तुल्यं रूपं प्रकाशते। स च धर्मरहस्यानि श्रुत्वा शक्रमथाब्रवीत् ॥४५॥ तिर्यग्योनिगतान् सत्त्वान् मर्त्या हिंसन्ति मोहिताः। कीटान् पिपीलिकान् सर्पान् मेषान् समृगपक्षिणः ॥ ४६ ॥ किल्बिषं सुबहुप्राप्ताः किंस्विदेषां प्रतिक्रिया। ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ४७ ॥ पितरश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म तं मुनिम्। शक्र उवाच। कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं पुष्कराणि च ॥४८॥ एतानि मनसा ध्यात्वा अवगाहेत्ततो जलम्। तथा मुच्यति पापेन राहुणा चंद्रमा यथा ॥४९॥ त्र्यहं स्नातः स भवति निराहारश्च वर्तते। स्पृशते यो गवां पृष्ठं वालधिं च नमस्यति ॥ ५० ॥ ततो विद्युत्प्रभो

पितरोंको पिण्ड देता है उसकी पूजाकी वृद्धि होती है, तदनन्तर विद्युत्प्रभ नामक तपस्वी बोले॥४४॥ उन ऋषिका तेज आदित्यके तेजकी समान झलझला रहा था, उन्होंने धर्मके रहस्योंको सुन कर इन्द्रसे कहा, कि ॥ ४५ ॥ मनुष्य मोहवश होकर तिर्यक् योनिके जीवोंकी, कीड़ोंकी, चीटियोंकी, सर्पोंकी, बकरोंकी पशुओंकी तथा पक्षियोंकी हिंसा करते हैं ॥ ४६ ॥ और उससे घोरपापके भागी होते हैं, ऐसे हिंसकोंका प्रायश्चित क्या है ? ऋषिके प्रश्नको सुन कर सब देवता, ऋषि, तपोधन और महाभाग्यशाली पितर उनकी प्रशंसा करने लगे इन्द्रने कहा, कि पापकर्म करनेवाला पुरुष अपने मनमें कुरुक्षेत्रका, गङ्गाका, गयाका, प्रभासका और पुष्कर तीर्थका ध्यान करके जलमें स्नान करे, तब वह चन्द्रमाके राहुके मुखमेंसे छूटनेकी समान पापसे छूट जाता है॥ ४७ ॥ ४८ ॥ और जो पुरुष (इन (तीर्थोंमें) निराहार रह कर तीन दिन तक स्नान करता है तथा गौकी पीठका स्पर्श करके गौकी पूँछको प्रणाम करता है,

वाक्यमभ्यभाषत वासवम् । अयं सूक्ष्मतरो धर्मस्तं निबोध शत-
क्रतो ॥ ५१ ॥ घृष्टो वटकषायेण अनुलिप्तः प्रियंगुणा । क्षीरेण
षष्टिकान् भुक्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५२ ॥ श्रूयतां चापरं
गुह्यं रहस्यमृषिचिंतितम् । श्रुतं मे भाषमाणस्य स्थाणोः स्थाने
बृहस्पतेः ॥ ५३ ॥ रुद्रेण सह देवेश तन्निबोध शचीपते । पर्वता-
रोहणं कृत्वा एकपादो विभावसुम् ॥ ५४ ॥ निरीक्षेत निराहार
ऊर्ध्वबाहुः कृतांजलिः । तपसा महता युक्त उपवासफलं लभेत्५५
रश्मिभिस्तापितोऽर्कस्य सर्वपापमपोहति । ग्रीष्मकालेऽथवा शीते
एवं पापमपोहति ॥ ५६ ॥ ततः पापात् प्रमुक्तस्य द्युतिर्भवति
शाश्वती । तेजसा सूर्यवद्दीप्तो भ्राजते सोमवत् पुनः ॥५७॥ मध्ये

वह भी पापयुक्त होजाता है ५० तदनन्तर विद्युत्प्रभने इन्द्रसे कहा, कि-हे शतक्रतो! मैं आपसे अतिसूक्ष्म धर्म कहता हूँ उसको तू सुन वटका कषाय शरीर पर चुपड़े, प्रियंगुका लेपन करे और दुग्धसे सट्टीके चावलोंको खाय, तब पुरुष सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ५२ ॥ मैंने शंकरके लोकमें शंकर और बृहस्पतिका सम्वाद होने पर धर्मका जो रहस्य सुना है,उसका ऋषियोंने भी विचार किया है, उसको तुम सुनो ॥ ५३ ॥ हे शचीपति देवेश ! तुम और रुद्र इस वातको सुनो, जो पुरुष पर्वत पर चढ़ कर आहार को त्याग सूर्यके सामने मुख करके एक पैरसे खड़ा हो दोनों हाथ ऊपरको कर सूर्यके सामने देखता हुआ महातप करता है उसको उपवासका फल मिलता है (और उसके सब पाप दूर होजाते हैं) ॥ ५४-५५ ॥ और जो पुरुष ग्रीष्म ऋतुमें अथवा शीतकालमें सूर्यकी किरणोंके तापको सह कर तप करता है उस के सब पाप नष्ट होजाते हैं ॥ ५६ ॥ और पापसे मुक्त होने पर उस पुरुषकी शाश्वती कान्ति (कीर्ति) होती है और वह अपनी कान्तिसे सूर्य और चन्द्रमाकी समान प्रकाशित होने लगता

त्रिदशवर्गस्य देवराजः शतक्रतुः । उवाच मधुरं वाक्यं बृहस्पतिमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥ धर्मगुह्यं तु भगवन्मानुषाणां सुखावहम् । सरहस्याश्च ये दोषास्तान् यथावदुदीरय ॥५९॥ बृहस्पतिरुवाच । प्रतिमेहन्ति ये सूर्यमनिलं द्विषते च ये । हव्यवाहे प्रदीप्ते च समिधं ये न जुह्वति ॥६०॥ बालवत्सां च ये धेनुं दुहन्ति क्षीरकारणात् । तेषां दोषान् प्रवक्ष्यामि तान्निबोध शचीपते ॥६१॥ भानुमाननिलश्चैव हव्यवाहश्च वासव । लोकानां मातरश्चैव गावः सृष्टाः स्वयंभुवा ॥ ६२ ॥ लोकांस्तारयितुं शक्ता मर्त्येष्वेतेषु देवताः । सर्वे भवन्तः शृण्वन्तु एकैकं धर्मनिश्चयम् ॥६३॥ वर्षाणि षडशीतिं तु दुर्वृत्ताः कुलपांसनाः । स्त्रियः सर्वाश्च दुर्वृत्ताः प्रतिमेहन्ति या रविम् ॥ ६४ ॥ अनिलद्वेषिणः शक्र गर्भस्था

हैं ॥ ५७ ॥ तदनन्तर देवराज शतक्रतुने देवताओंके मध्यमें सर्वश्रेष्ठ बृहस्पतिसे मधुर वचन कहा, कि-५८ हे भगवन् ! मनुष्यको सुख देने वाले गुप्त धर्मका आप मुझसे वर्णन करिये और जो गुप्त दोष हों उनका भी वर्णन करिये५९बृहस्पतिने कहा, कि-जो सूर्यके सामने मलमूत्रका त्याग करते हैं, जो द्वेष करते हैं, जो प्रदीप्त अग्निमें समाधिका होम नहीं करते हैं ॥ ६० ॥ और दुग्धके लिये छोटे बछड़े वाली गौको दुह लेते हैं, हे शचीपति ! उनको जो दोष लगते हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ सुनो ६१ हे वासव ! सूर्य, पवन अग्नि, तथा लोकोंकी माता गौएँ इन सबको ब्रह्माजीने रचा है ६२ ये देवता मनुष्यलोकमें मनुष्योंका तारण करनेमें समर्थ हैं, अब आप सब धर्मके एक २ निर्णयको सुनो ६३ जो स्त्रियें सूर्यके सामने मलमूत्रका त्याग करती हैं, वे स्त्रियें छियासी वर्ष तक दुराचारिणी रहती हैं और अपने कुलमें कलंक लगाती रहती हैं ६४ हे शक्र ! जो पुरुष पवनसे द्वेष करते हैं वे पुरुष गर्भमेंसे आधी महीनेमें पात होने

च्यवने प्रजा । हव्यवाहस्य दीप्तस्य समिधं ये न जुह्वति ॥ ६५ ॥
अग्निकार्येषु वै तेषां हव्यं नाश्नाति पावकः । क्षीरं तु बाल-
वत्सानां ये पिबन्तीह मानवाः ॥ ६६ ॥ न तेषां क्षीरपाः केचि-
ज्जायन्ते कुलवर्धनाः । प्रजाक्षयेण युज्यन्ते कुलवंशक्षयेण च ६७
एवमेतत् पुरा दृष्टं कुलवृद्धैर्द्विजातिभिः । तस्माद्वर्ज्यानि वर्ज्यानि
कार्यं कार्यं च नित्यशः ॥६८॥ भूतिकामेन मर्त्येन सत्यमेतद्ब्रवी-
मि ते । ततः सर्वा महाभाग देवताः समरुद्गणाः ॥६९॥ ऋषयश्च
महाभागाः पृच्छन्ति स्म पितॄंस्ततः । पितरः केन तुष्यन्ति
मर्त्यानामल्पचेतसाम् ॥ ७० ॥ अक्षयं च कथं दानं भवेच्चैवौर्ध्व-
देहिकम् । आनृण्यं वा कथं मर्त्या गच्छेयुः केन कर्मणा ॥७१॥
एतदिच्छामहे श्रोतुं परं कौतूहलं हि नः । पितर ऊचुः । न्याय्यतो

वाली प्रजाके रूपमें उत्पन्न होते हैं और जो प्रदीप्त अग्निमें समिधाओंका होम नहीं करते हैं ६५ अग्नि उनके हव्यको अग्निके कर्ममें ग्रहण नहीं करता है जो पुरुष छोटे बछड़े वाली गौका दूध पीते हैं उनके कुलमें दुग्ध पीने वाली और कुलकी वृद्धि करनेवाली सन्तान उत्पन्न नहीं होती है ऐसे पुरुषोंकी प्रजा नष्ट होजाती है और कुल तथा वंशका क्षय होजाता है ॥ ६६ ॥ ६७॥ पहिले कुलवृद्ध ब्राह्मणोंने यह कथा बूझी थी अतः कल्याण चाहने वाला पुरुष त्याज्य कर्मोंको त्यागदेय और करने योग्य कर्मोंको सदा करे, यह बातमें तुमसे सत्य कहता हूँ, इसके अनन्तर हे महाभाग्यशालिन् ! सब देवता, मरुद्गण और महाभाग्यशाली ऋषि पितरोंसे बूझने लगे, कि—अल्पबुद्धि मनुष्यों पर पितर किसप्रकार प्रसन्न होते हैं। ६८ ७० । मरणके अनन्तर उत्तर-क्रियामें दिया जाने वाला दान किस प्रकार अक्षय होता है ? मनुष्य कौनसे कर्मको करने पर पितरोंके ऋणसे छूट सकता है ? ७१ इस बातका हमें परम कौतूहल है, अतः हम इस बात

वै महाभागाः संशयः समुदाहृतः ॥ ७२ ॥ श्रूयतां येन तुष्यामो मर्त्यानां साधु कर्मणाम् । नीलषण्डप्रमोक्षेण अमावास्यां तिलोदकैः ॥ ७३ ॥ वर्षासु दीपकैश्चैव पितॄणामनृणो भवेत् । अक्षयं निर्व्यलीकं च दानमेतन्महाफलम् ॥ ७४ ॥ अस्माकं परितोषश्च अक्षयः परिकीर्त्यते । श्रद्दधानाश्च ये मर्त्या आहरिष्यन्ति संततिम् ॥ ७५ ॥ दुर्गात्ते तारयिष्यन्ति नरकात्प्रपितामहान् । पितॄणां भाषितं श्रुत्वा हृष्टरोमा तपोधनः ॥ ७६ ॥ वृद्धगार्ग्यो महातेजास्तानेवं वाक्यमब्रवीत् । के गुणा नीलषण्डस्य प्रमुक्तस्य तपोधनाः ॥ ७७ ॥ वर्षासु दीपदानेन तथैव च तिलोदकैः । पितर ऊचुः । नीलषण्डस्य लांगूलं तोयमभ्युद्धरेद्यदि ॥ ७८ ॥

को सुनना चाहते हैं, पितरोंने कहा, कि-हे महाभाग्यशाली देवताओं ! तुमने न्यायोचित प्रश्न किया है ७२ हम उत्तम कर्म करने वाले पुरुषों पर जिस कर्मसे प्रसन्न होते हैं, उसको तुम सुनो, नीलोत्सर्ग (आकाशी वर्णके बैलको छोड़ने) से तथा अमावस्याके दिन तिल और जलोंसे तर्पण करने पर हम तृप्त होते हैं ७३ वर्षाकालमें दीपदान करने पर मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होजाता है निष्कपट होकर किया हुआ दीपदान अक्षय और महाफल देता है ॥ ७४ ॥ और हमको भी उससे अक्षय परितोष होता है, यह बात प्रसिद्ध है, कि-जो पुरुष श्रद्धाके साथ सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ७५ ॥ वे अपने पितामहों को दुर्गम नरकोंसे छुड़ा देते हैं ॥ ७६ ॥ पितरोंके कथनको सुन कर तपको धन मानने वाले महातेजस्वी वृद्ध गार्ग्यके रोम खड़े होगए और उन्होंने पितरोंसे इस प्रकार कहा, कि-हे तपोधन ! नीलोत्सर्ग करनेसे क्या फल होता है ॥ ७७ ॥ तथा वर्षाकालमें दीपदान देनेसे तथा तिल और जलसे तर्पण करनेसे क्या फल होता है पितरोंने कहा, कि छोड़ा हुआ बैल अपनी पूँछसे यदि

षष्टिं वर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः । यस्तु शृङ्गगतं पंकं कूला-
दुद्धृत्य तिष्ठति ॥७९॥ पितरस्तेन गच्छन्ति सोमलोकमसंशयम् ।
वर्षासु दीपदानेन शशीवच्छोभते नरः ॥ ८० ॥ तमोरूपं न
तस्यास्ति दीपकं यः प्रयच्छति । अमावास्यां तु ये मर्त्याः प्रय-
च्छन्ति तिलोदकम् ॥८१॥ पात्रमौदुम्बरं गृह्य मधुमिश्रं तपोधन ।
कृतं भवति तैः श्राद्धं सरहस्यं यथार्थवत् ॥८२॥ हृष्टपुष्टमनास्तेषां
प्रजा भवति नित्यदा । कुलवंशस्य वृद्धिस्तु पिंडदस्य फलं भवेत् ।
श्रद्दधानस्तु यः कुर्यात् पितॄणामनृणो भवेत् ८३ एवमेव समुद्दिष्टः
श्राद्धकालक्रमस्तथा । विधिः पात्रं फलं चैव यथावदनुकीर्तितम् ८४

जल उड़ाता है तो बैल छोड़ने वालेके पितर साठ हजार वर्ष तक तृप्त रहते हैं और यदि वह नदीके किनारेको तोड़ कर अपने सींगोंमें मट्टी लगा कर खड़ा होता है तो दान करने वालेके पितर निःसन्देह सोमलोकको जाते हैं, मनुष्य वर्षाकालमें दीप-दान करने पर चन्द्रमाकी समान शोभा पाने लगता है ७८–८० जो पुरुष दीपदान करता है उसको नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता, जो मनुष्य अमावास्याके दिन तिल और कुशोंसे तर्पण करते हैं और जो मनुष्य गूलड़के पात्रमें मधु भर कर उसका दान देते हैं, हे भरतर्षभ ! उनको समझना चाहिये,कि उन्होंने रहस्यसहित श्राद्ध कर लिया ॥ ८१–८२ ॥ उपरोक्त विधिके अनुसार वर्तांव करने वाले मनुष्यकी प्रजा सदा हृष्ट पुष्ट और मनमें प्रसन्न रहती है, उसके कुलकी तथा वंशकी वृद्धि होती है और उसको पिंडदान करनेका फल मिलता है, जो पुरुष श्रद्धा-पूर्वक पितृकर्म करता है,वह पितरोंके ऋणसे मुक्त होजाता है ८३ इसप्रकार मैंने तुमसे श्राद्धका समय तथा क्रम कहा तथा विधिपूर्वक श्राद्धकी विधि, उसमें भोजन कराने योग्य ब्राह्मण और उसका फल यथार्थरीतिसे कहा ॥८४॥ एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त

भीष्म उवाच । केन ते च भवेत्प्रीतिः कथं तुष्टिं तु गच्छसि । इति पृष्टः सुरेन्द्रेण प्रोवाच हरिरीश्वरः ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच । ब्राह्मणानां परीवादो मम विद्वेषणं महत् । ब्राह्मणैः पूजितैर्नित्यं पूजितोऽहं न संशयः ॥२॥ नित्याभिवाद्या विप्रेन्द्रा भुक्त्वा पादौ तथात्मनः । तेषां तुष्यामि मर्त्यानां यश्चक्रे च बलिं हरेत् ॥३॥ वामनं ब्राह्मणं दृष्ट्वा वराहं च जलोत्थितम् । उद्धृतां धरणीं चैव मूर्ध्ना धारयते तु यः ॥ ४ ॥ न तेषामशुभं किंचित् कल्मषं चोपपद्यते । अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद्यो नरः सदा ॥ ५ ॥ पूजितं च जगत्तेन सदेवासुरमानुषम् । तेन रूपेण तेषां च पूजां

भीष्मजीने कहा, कि–हे युधिष्ठिर ! पहिले इन्द्रने श्रीहरिसे प्रश्न बूझा था, कि–आप किससे प्रसन्न होते हैं और आप किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ? ॥ १ ॥ विष्णुने कहा, कि–ब्राह्मणोंकी निन्दा करना मुझसे घोर द्वेष करना है और ब्राह्मणोंकी पूजा करने पर मेरी पूजा सदा होती है ॥२। मनुष्य भोजन करके सदा ब्राह्मणोंके दोनों चरणोंका स्पर्श करे और सायंकालके समय ब्राह्मणके दोनों चरणोंका स्पर्श करे, ऐसा करने वाले मनुष्योंसे मैं सदा सन्तुष्ट रहता हूँ, जो पुरुष पृथ्वीको गोवरसे लीप कर उस पर मण्डप बना ब्राह्मणकी सुदर्शन नामक मंत्रसे पूजा करता है और (तहाँ) मुझे बलि देता है ॥ ३ ॥ और जो पुरुष सदा ठिगने ब्राह्मणके दर्शन करता है, जलमेंसे बाहर निकले हुए वराहके दर्शन करता है, तथा वराहकी कुरेदी हुई मृत्तिकाको मस्तक पर धारण करता है ॥ ४ । उसका किसी प्रकारका अशुभ नहीं होता है तथा उसको किसी प्रकारका पाप भी नहीं लगता है, जो मनुष्य सदा पीपल, गोरोचन, और गौकी पूजा करता है ॥ ५ ॥ उसने मानो देवता, असुर और पुरुषोंसहित सम्पूर्ण जगत्की पूजा करली, मैं इन रूपोंमें रह

गृह्णामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥ पूजा ममैषा नास्त्यन्या यावल्लोकाः
प्रतिष्ठिताः । अन्यथा हि वृथा मर्त्याः पूजयन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ७ ॥
नाहं तत्प्रतिगृह्णामि न सा तुष्टिकरी मम ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ।
चक्रं पादौ वराहं च ब्राह्मणं चापि वामनम् । उद्धृतां धरणीं
चैव किमर्थं त्वं प्रशंससि ॥ ९ ॥ भवान् सृजति भूतानि भवान्
संहरति प्रजाः । प्रकृतिः सर्वभूतानां सा मर्त्यानां सनातनी ।१०।
भीष्म उवाच । संप्रहस्य ततो विष्णुरिदं वचनमब्रवीत् । चक्रेण
निहता दैत्याः पद्भ्यां क्रान्ता वसुन्धरा ॥ ११ ॥ वाराहं रूप-
मास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः । वामनं रूपमास्थाय जितो
राजा मया बलिः ॥ १२ ॥ परितुष्टो भवाम्येवं मानुषाणां महा-
त्मनाम् । तन्मां ये पूजयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ १३ ॥

कर पूजाको सदा ग्रहण करता हूँ ॥ ६ ॥ जब तक लोक प्रति-
ष्ठित रहेंगे, तक यह मेरी पूजा समझी जायगी मनुष्य और प्रकारसे
जो पूजा करते हैं, वह वृथा ही है ॥ ७ ॥ मैं उस पूजाको ग्रहण
नहीं करता हूँ और वह पूजा मुझे सन्तुष्ट भी नहीं कर सकती॥८॥
इन्द्रने प्रश्न किया, कि आप चक्रकी (ब्राह्मणके) चरणोंकी,
वराहकी, ठिगने ब्राह्मणकी तथा वराहकी खोदी हुई भूमिकी
क्यों प्रशंसा करते हैं ॥ ९ ॥ आप प्रजाको रचते हैं, आप प्रजा
का संहार करते हैं और आप पुरुषसहित सब प्रजाकी सनातन
प्रकृति हैं ॥ १० ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर
विष्णु भगवान् जोरसे हँस कर इस प्रकार कहने लगे, विष्णुने
कहा कि-मैंने अपने सुदर्शन चक्रसे दैत्योंका संहार किया है,
दोनों चरणोंसे सारी पृथ्वीको नाप लिया है ॥ ११ ॥ वराहका
रूप धारण करके हिरण्याक्षका नाश किया है वामनका अवतार
धारण कर बलिराजको जीत लिया है ॥१२॥ अतएव महात्मा
पुरुष मेरे इन शरीरोंकी पूजा करते हैं, और मैं उन पर प्रसन्न

अपि वा ब्राह्मणं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमागतम् । ब्राह्मणाग्र्याहुतिं दत्त्वा अमृतं तस्य भोजनम् ॥ १४ ॥ ऐन्द्रीं संध्यामुपासित्वा आदित्याभिमुखः स्थितः । सर्वतीर्थेषु स स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥१५॥ एतद्वः कथितं गुह्यमखिलेन तपोधनाः । संशयं पृच्छमानानां किं भूयः कथयाम्यहम् ॥ १६ ॥ बलदेव उवाच । श्रूयतां परमं गुह्यं मानुषाणां सुखावहम् । अजानन्तो यदबुधाः क्लिश्यन्ते भूतपीडिताः ॥१७॥ कल्य उत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां वै घृतं दधि । सर्षपं च प्रियंगुं च कल्मषात् प्रतिमुच्यते ॥ १८ ॥ भूतानि चैव सर्वाणि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा । उच्छिष्टं वापि छिद्रेषु वर्जयन्ति तपोधनाः ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः । गृह्यौदुम्बरं पात्रं तोयपूर्णं उदङ्मुखः । उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद्बु

होता हूँ, और जो मेरी पूजा करेंगे उनका पराभव नहीं होसकता १३ अपने घर ब्रह्मचारी ब्राह्मण आवे तो उसको प्रथम भोजन करावे फिर स्वयं भोजन करे तो वह अमृतभोजन माना जाता है ॥ १४ ॥ जो प्रातःकालके समय संध्या कर सूर्यके सन्मुख खड़ा रहता है उसको सब तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य मिलता है और वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥१५॥ हे तपोधनों ! तुम्हारे प्रश्न करने पर मैंने तुमसे सब गुप्त धर्म कह दिया अब मैं और क्या कहूँ ॥ १६ ॥ बलदेवजीने कहा, कि-अब मैं आपसे मनुष्योंको सुख देने वाला परम गुप्त (बात) कहता हूँ, उसको तुम सुनो, जो अज्ञान मनुष्य भूतोंसे पीड़ा पाता हो ॥१७॥ वह प्रभातमें उठे और गौ, घृत, दही, सरसों, और प्रियंगुका स्पर्श करे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है १८ तपोधन पुरुष आगे पीछे अथवा चारों ओर खड़े हुए भूतोंको और उच्छिष्टको सदा दूर रखते हैं ॥१९॥ देवताओंने कहा, कि-पुरुष उत्तरको मुख करके गूलड़के पात्रमें जलभर कर उपवास वा संकल्पित व्रतको करे २०

व्रतम् ॥ २० ॥ देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं चापि सिध्यति ।
अन्यथा हि वृथा मर्त्याः कुर्वते स्वल्पबुद्धयः ॥ २१ ॥ उपवासे
बलौ चापि ताम्रपात्रं विशिष्यते । बलिर्भिक्षा तथार्घ्यं च पितृणां
च तिलोदकम् ॥२२॥ ताम्रपात्रेण दातव्यमन्यथाल्पफलं भवेत् ।
गुह्यमेतत् समुद्दिष्टं यथा तुष्यन्ति देवताः ॥ २३ ॥ धर्म उवाच ।
राजपौरुषिके विप्रे घांटिके परिचारिके । गोरक्षके वाणिजके
तथा कारुकुशीलवे ॥२४॥ मित्रध्रुगनधीयाने यश्च स्याद् वृषली-
पतिः । एतेषु दैवं पित्र्यं वा न देयं स्यात्कथंचन ॥२५॥ पिण्ड-
दास्तस्य हीयन्ते न च प्रीणाति वै पितॄन् । अतिथिर्यस्य भग्नाशो
गृहात् प्रतिनिवर्तते ॥ २६ ॥ पितरस्तस्य देवाश्च अग्नयश्च

तब देवता उस पर सन्तुष्ट होजाते हैं, और उसका काम्य व्रत भी सफल होता है, अल्पबुद्धि मनुष्य जो विधिहीन व्रत करते हैं, उनका यह व्रत वृथा ही जाता है ॥ २१ ॥ उपवास और बलिदानके समय ताँबेका पात्र उत्तम माना जाता है, बलिदान, भिक्षा, अर्घ और पितृतर्पणमें ताम्बेके ही पात्रका उपयोग करना चाहिये, इन कर्मोंमें दूसरी धातुके पात्रोंका उपयोग करनेसे थोड़ा फल मिलता है, यह परमगुप्त बात मैंने तुमसे कही है, इस प्रकार करनेसे देवता सन्तुष्ट होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ राजाकी सेवा करने वाले, मन्दिर आदिमें घण्टे बजाने वाले देवताओंकी सेवा चाकरी करने वाले, गौओंकी रक्षा करने वाले (गौओंको चरानेवाले) व्यापार करनेवाले, नट, शिल्पजीवी मित्रोंसे द्रोह करनेवाले, वेद न पढ़नेवाले, वेश्या स्त्रीके पति, इतने विप्रोंको यज्ञमें तथा श्राद्धमें कभी न जिमाना चाहिये ।२४।२५। जिस पुरुषके घरसे अतिथि निराश होकर चला जाता है, उस पुरुषके पिण्ड देने वाले नष्ट होजाते हैं और उसके पितर भी प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ २६ ॥ जो पुरुष अतिथिसत्कार नहीं करता है, उस पुरुष

तथैव हि । निराशाः प्रतिगच्छन्ति अतिथेरप्रतिग्रहात् ॥ २७ ॥ स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः । तुल्यदोषो भवत्येभिर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥ २८ ॥ अग्निरुवाच । पादमुद्यम्य यो मर्त्यः स्पृशेद्गाश्च सुदुर्मतिः । ब्राह्मणं वा महाभागं दीप्यमानं तथानलम् ॥ २९ ॥ तस्य दोषान् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः । दिवं स्पृशत्यशब्दोस्य त्रस्यन्ति पितरश्च वै ॥ ३० ॥ वैमनस्यं च देवानां कृतं भवति पुष्कलम् । पावकश्च महातेजा हव्यं न प्रतिगृह्णति ॥ ३१ ॥ आजन्मनां शतं चैव नरके पच्यते तु सः । निष्कृतिं च न तस्यापि अनुमन्यन्ति कर्हिचित् ॥३२॥ तस्माद्गावो न पादेन स्प्रष्टव्या वै कदाचन । ब्राह्मणश्च महातेजा दीप्यमानस्तथानलः ॥ ३३ ॥ श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हित-

के पितर, देवता तथा अग्नि निराश होकर चले जाते हैं ॥२७॥ जो अतिथिकी पूजा नहीं करता है उस पुरुषको स्त्रीहत्यारे, गोहत्यारे, कृतघ्नी, ब्रह्महत्यारे और गुरुपत्नीगमन करने वाले पुरुषकी समान पाप लगता है ॥ २८ ॥ अग्निने कहा, कि-जो महादुर्बुद्धि पुरुष अपने पैरको उठा कर गौके मारता है अथवा महाभाग्यशाली ब्राह्मण और प्रज्वलित अग्निको पैर दिखाता है ॥ २९ ॥ इसके दोषोंको मैं तुमसे कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो, ऐसे पुरुषकी अपकीर्ति स्वर्ग तक फैल जाती है और उसके पितर भयभीत हो जाते हैं ॥ ३० ॥ और देवताओंके मनमें अत्यन्त दुःख उत्पन्न होता है और महातेजस्वी अग्नि उसके हव्यको ग्रहण नहीं करता है ॥ ३१ ॥ उपरोक्त अपराध करने वाला पुरुष सौ जन्म तक नरकमें रँधता रहता है और देवता किसी दिन उसके प्रायश्चित्तको स्वीकृत नहीं करते हैं ॥३२॥ अतः श्रद्धालु पुरुष अपना हित चाहता हो तो वह किसी दिन भी गौ, महातेजस्वी ब्राह्मण तथा प्रज्वलित

मिच्छता । एते दोषा मया प्रोक्तास्त्रिषु यः पादमुत्सृजेत् ॥३४॥
विश्वामित्र उवाच । श्रूयतां परमं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम् ।
परमान्नेन यो दद्यात् पितृणामौपहारिकम् ॥३५॥ गजच्छायायां
पूर्वस्यां कुतपे दक्षिणामुखः । यदा भाद्रपदे मासि भवते बहुले
मघा ॥३६॥श्रूयतां तस्य दानस्य यादृशो गुणविस्तरः । कृतं तेन
महच्छ्राद्धं वर्षाणीह त्रयोदश ॥३७॥ गाव ऊचुः। बहुले समंगे
ह्यकुतोभये च क्षेमे च सख्ये वहिभूयसी च। यथा पुरा ब्रह्मपुरे
सवत्सा शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे ॥ ३८ ॥ भूयश्च या

अग्निका पैरसे स्पर्श न करे, जो पुरुष इन तीनोंका पैरसे स्पर्श करता है, उसके लिये उपरोक्त दोष कहे हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ विश्वामित्रने कहा, कि—हे देवताओं ! मैं आपसे धर्मका परम-रहस्य कहता हूँ, उसको आप सुनिये ! जो पुरुष भाद्रपदमासमें, हस्तनक्षत्रमें अथवा हाथीकी छायाके नीचे मघा नक्षत्रमें, कुतपा कालमें अर्थात् अपरान्हकालमें दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पितरोंके निमित्त ब्राह्मणोंको दुग्धपाकका भोजन कराता है उसके दानका जो गुणविस्तार है उसको तुम सुनो, उस पुरुषको तेरह वर्ष तक महाश्राद्ध करने वाला समझना चाहिये ३५।३६गौओंने कहा, कि—जो मनुष्य निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर हमको प्रणाम करता है, वह पापकर्ममेंसे मुक्त होजाता है और इन्द्रलोकमें जाता है तथा गौओंके पुण्य और चन्द्रमाकी कान्तिको पाता है ॥ ३७ ॥ हमारी पूजाके समय पढ़नेके मन्त्र इस प्रकार हैं—"बहुले समंगे ह्यकुतो भये च क्षेमे च संख्येव हि भूयसी च। यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे ॥" अर्थात् हे बहुला ! हे समङ्गा ! हे अकुतोभया ! हे क्षेमा ! हे बहुतसी संख्या वाली ! तू पहिले ब्रह्माजीके नगरमें बछड़ेके साथ रहती थी, तथा तू वज्रधर शत-

विष्णुपदे स्थिता या विभावसोश्चापि पथे स्थिता या । देवाश्च सर्वे सह नारदेन प्रकुर्वते सर्वसहेति नाम ॥ ३९ ॥ मंत्रेणैतेनाभिवन्देत यो वै विमुच्यते पापकृतेन कर्मणा । लोकानवाप्नोति पुरन्दरस्य गवां फलं चन्द्रमसो द्युतिं च ॥ ४० ॥ एतं हि मन्त्रं त्रिदशाभिजुष्टं पठेत यः पर्वसु गोष्ठमध्ये । न तस्य पापं न भयं न शोकः सहस्रनेत्रस्य च याति लोकम् ४१ भीष्म उवाच । अथ सप्त महाभागा ऋषयो लोकविश्रुताः । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ब्रह्माणं पद्मसंभवम् ॥ ४२ ॥ प्रदक्षिणमभिक्रम्य सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः । उवाच वचनं तेषां वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४३ ॥ सर्वप्राणिहितं प्रश्नं ब्रह्मक्षत्रे विशेषतः । द्रव्यहीनाः कथं मर्त्या दरिद्राः साधुवर्तिनः ॥ ४४ ॥ प्राप्नुवन्तीह यज्ञस्य फलं केन च

क्रतुके यज्ञमें गौ बछड़ेके साथ उपस्थित थी ॥३८॥ "भूयश्च या विष्णुपदे स्थिता या विभावसोश्चापि पथे स्थिता या । देवाश्च सर्वे सह नारदेन प्रकुर्वते सर्वसहेति नाम" और तुम विष्णुपदमें रहती हो और सब देवताओंने तथा नारदजीने तुम्हारा सर्वसहा नाम रक्खा है ३९ जो पुरुष पर्वके समय इन देवमान्य मंत्रोंका गोष्ठमें पाठ करता है उसको पाप, भय अथवा शोक नहीं होता है और वह सहस्रनेत्र इन्द्रके लोकमें जाता है ४०-४१ भीष्मजी ने कहा, कि-तदनन्तर लोकोंमें प्रसिद्ध महाभाग्यशाली वसिष्ठ आदि सप्तर्षि कमलमें उत्पन्न हुए ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़ उनके सामने खड़े होगए तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ व सष्ठ कहने लगे ४२-४३ वसिष्ठजीने बूझा, कि-सब प्राणियोंका और विशेषत-ब्राह्मण और क्षत्रियोंका हित करने वाला एक प्रश्न बूझता हूँ, हे ब्रह्मन् ! इस जगत्में निर्धन परन्तु सदाचार सम्पन्न पुरुष कौनसे कर्मको करनेसे यज्ञके फल को पासकता है ? ऋषियोंके वचनको सुन कर ब्रह्माजीने

कर्मणा। एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मोवाच। अहो प्रश्नो महाभागा गूढार्थः परमः शुभः। सूक्ष्मः
श्रेयांश्च मर्त्यानां भवद्भिः समुदाहृतः ॥ ४६ ॥ श्रूयतां सर्व-
माख्यास्ये निखिलेन तपोधनाः। यथा यज्ञफलं मर्त्यो लभते नात्र
संशयः ॥ ४७ ॥ पौषमासस्य शुक्ले वै यदा युज्येत रोहिणी।
तेन नक्षत्रयोगेन आकाशशयनो भवेत् ॥ ४८ ॥ एकवस्त्रः शुचिः
स्नातः श्रद्दधानः समाहितः। सोमस्य रश्मयः पीत्वा महायज्ञफलं
लभेत् ॥ ४९ ॥ एतद्वः परमं गुह्यं कथितं द्विजसत्तमाः। यन्मां
भवन्तः पृच्छन्ति सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शिनः ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

विभावसुरुवाच। सलिलस्याञ्जलिं पूर्णमक्षताश्च घृतोत्तराः।

कहा, ४४-४५ ब्रह्माजी बोले कि-हे महाभाग्यशाली मुनियो! तुमने जो प्रश्न बूझा है, वह परम गूढ़ अर्थवाला उत्तम तथा सूक्ष्म है और मनुष्योंका कल्याण करने वाला है ४६ हे तपोधनो! पुरुषको जिस कर्मको करने पर यज्ञका फल अवश्य ही मिलता है, उस कर्मको मैं तुमसे पूर्णरीतिसे कहूँगा उसको तुम सुनो ॥ ४७ ॥ पौषमासके शुक्लपक्षमें रोहिणी नक्षत्रमें पुरुष स्नान करके पवित्र हो एक वस्त्र पहिरे और सावधान होकर खुले प्रदेशमें शयन करे और चन्द्रमाकी किरणोंका पान करे (निराहार रहे) ऐसा करनेसे महायज्ञका फल मिलता है।४८। हे उत्तम ब्राह्मणो! आप सूक्ष्मतत्त्वको जानने वाले हैं, आपने मुझसे जो प्रश्न बूझा था, उस परमगुह्य प्रश्नका मैंने तुमको उत्तर देदिया।४९।५०। एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त१२६

विभावसुने कहा, कि बलि दो प्रकारकी है, एक जलकी अञ्जली, और दूसरी घृत और अक्षतोंकी, पूर्णिमाके दिन

सोमस्योत्तिष्ठमानस्य तज्जलं चाक्षतांश्च तान् ॥ १ ॥ स्थितो ह्यभिमुखो मर्त्यः पौर्णमास्यां बलिं हरेत् । अग्निकार्यं कृतं तेन हुताश्चास्याग्नयस्त्रयः ॥ २ ॥ वनस्पतिं च यो हन्यादमावास्याम-बुद्धिमान् । अपि ह्येकेन पत्रेण लिप्यते ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥ दन्त-काष्ठं तु यः खादेदमावास्यामबुद्धिमान् । हिंसितश्चन्द्रमास्तेन पितरश्चोद्विजन्ति च ॥ ४ ॥ हव्यं न तस्य देवाश्च प्रति-गृह्णन्ति पर्वसु । कुप्यन्ते पितरश्चास्य कुले वंशोऽस्य हीयते ॥ ५ ॥ श्रीरुवाच । प्रकीर्णं भाजनं यत्र भिन्नभाण्डमथा-सनम् । योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे ॥ ६ ॥ देवताः पितरश्चैव उत्सवे पर्वणीषु वा । निराशाः प्रतिगच्छन्ति कश्मलो-पहताद्गृहात् ॥ ७ ॥ अङ्गिरा उवाच । यस्तु सम्वत्सरं पूर्णं

चन्द्रमाका उदय होने पर ये दो बलियें देनी चाहियें, जो पुरुष ऐसा कर लेता है, मानो उसने अग्निकार्य कर लिया और तीनों अग्नियोंमें होम भी कर लिया । १ । २ । जो मूर्ख मनुष्य अमावस्याके दिन वनस्पतिको काटता है अथवा एक पत्ता तोड़ता है उसको ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ ३ ॥ जो मूर्ख मनुष्य अमावस्याके दिन वनस्पतिकी दतौन करता है वह चन्द्रमाकी हिंसा करता है और उसके पितर उद्विग्न होजाते हैं॥४॥ देवता पर्वके दिन उसके हव्यको ग्रहण नहीं करते हैं, पितर उसके कुल पर कुपित रहते हैं और उसके वंशका नाश होजाता है ५ श्रीने कहा, कि–जिसके घरमें सब वस्तुएँ अस्तव्यस्त पड़ी रहती है, बरतन फूटे हुए रहते हैं, खाट पलंग और आसन टूटे फूटे रहते हैं उस घरमें स्त्रियोंका मरण होता है ॥ ६ ॥ जिसके घरमें कलह होता रहता है उसके घरमेंसे पर्व और उत्सवके दिन देवता और पितर निराश होकर चले जाते हैं ॥ ७ ॥ अङ्गिराने कहा, कि–जो पुरुष एक वर्ष तक करञ्जके वृक्षके नीचे

दद्याद्दीपं करञ्जके । सुवर्चलामूलहस्तः प्रजा तस्य विवर्धते ॥८॥
गार्ग्य उवाच । आतिथ्यं सततं कुर्याद्दीपं दद्यात् प्रतिश्रये ।
वर्जयानो दिवास्वापं न च मांसानि भक्षयेत् ॥ ९ ॥ गोब्राह्मणं
नं हिंस्याच्च पुष्कराणि च कीर्तयेत् । एष श्रेष्ठतमो धर्मः सरहस्यो
महाफलः ॥ १० ॥ अपि क्रतुशतैरिष्ट्वा क्षयं गच्छति तद्धविः ।
न तु क्षीयन्ति ते धर्माः श्रद्दधानैः प्रयोजिताः ॥ ११ ॥ इदं च
परमं गुह्यं सरहस्यं निबोधत । श्राद्धकल्पे च दैवे च तैर्थिके
पर्वणीषु च ॥ १२ ॥ रजस्वला च या नारी श्वित्रिकाऽपुत्रिका
च या । एताभिश्चक्षुषा दृष्टं हविर्नाश्नन्ति देवताः ॥ १३ ॥
पितरश्च न तुष्यन्ति वर्षाण्यपि त्रयोदश । शुक्लवासाः शुचि-
र्भूत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् । कीर्तयेद्भारतं चैव तथास्या-

दीपक प्रज्वलित करता है अथवा सुवर्चलाके मूलको अपने हाथ में रखता है उस पुरुषकी प्रजाकी वृद्धि होती है ॥८॥ गार्ग्यने कहा, कि-नित्य आये गए ब्राह्मणोंका सत्कार करे, अग्नि-शालामें दीपक प्रज्वलित करे, दिवसमें शयन न करे, मांसका भक्षण न करे ॥ ९ ॥ गौकी और ब्राह्मणकी हिंसा न करे, पुष्करतीर्थका कीर्तन करे यह रहस्यमय धर्म अति उत्तम है और महाफल देने वाला है॥१०॥ श्रद्धारहित पुरुष चाहे सौ यज्ञ करे तब भी उसका हवि देवताओंको नहीं पहुँचता है और जो धर्म श्रद्धापूर्वक किया जाता है, वह धर्म नष्ट नहीं होता है ॥ ११ ॥ यह रहस्यमय परम गुह्य वार्ता मैं तुमसे कहता हूँ उसको सुनो, श्राद्धमें यज्ञमें तीर्थमें तथा पर्वके दिन रजस्वला स्त्री कोढ़ी स्त्री तथा वन्ध्या स्त्री जिस हविको देख लेती है, उसको देवता नहीं खाते हैं ॥ १२-१३ ॥ और ऐसी स्त्रीको आने देने वालेके पितर भी तेरह वर्ष तक तृप्त नहीं होते हैं श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान करके शुद्ध होय, श्रेष्ठवस्त्र पहिरे, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे

दत्तयं हविः ॥ १४ ॥ धौम्य उवाच । भिन्नभाण्डं च खट्वां च कुक्कुटं शुनकं तथा । अप्रशस्तानि सर्वाणि यश्च वृक्षो गृहे रुहः ॥ १५ ॥ भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वायां तु धनक्षयः । कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाश्नन्ति देवताः । वृक्षमूले ध्रुवं सत्वं तस्माद्वृक्षं न रोपयेत् ॥ १६ ॥ जमदग्निरुवाच । यो यजेदश्वमेधेन वाजपेयशतेन ह । अवाक्शिरा वालंबेत सत्रं वा स्फीतमाहरेत् ॥ १७ ॥ न यस्य हृदयं शुद्धं नरकं स ध्रुवं व्रजेत् । तुल्यं यज्ञश्च सत्यं च हृदयस्य च शुद्धता॥१८॥ शुद्धेन मनसा दत्वा सक्तुप्रस्थं द्विजातये । ब्रह्मलोकमनुप्राप्तः पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥१९॥ इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

और महाभारतका कीर्तन करे ऐसा करनेसे श्राद्धका कव्य पितरोंको पूर्ण रीतिसे पहुँचता है ॥ १४ ॥ धौम्यने कहा, कि-टूटे बरतन,टूटी वा ढीली खाट, मुर्गा और कुत्ता तथा वृक्षोंका घरमें होना अप्रशस्त माना जाता है ॥ १५ ॥ टूटे फूटे बरतनों (पात्रों) में कलिका वास रहता है, यह प्रसिद्ध है, टूटी हुई खाटसे धनका नाश होजाता है और जहाँ कुत्ते और मुर्गे रहते हैं तिस घरकी बलिको देवता ग्रहण नहीं करते हैं और वृक्षकी मूलमें सर्प, बीछू आदि जीव प्रायः रहते हैं अतः वृक्षोंको घरके आँगनमें न लगावे ॥ १६ ॥ जमदग्निने कहा, कि-पुरुष अश्वमेध यज्ञ करे चाहे सौ वाजपेय यज्ञ करे,उलटा शिर करके लटके अथवा उत्तम यज्ञ करे, परन्तु उसका हृदय शुद्ध नहीं होता है तो वह अवश्य ही नरकमें पड़ता है, यज्ञ और तथा सत्य शुद्ध हृदय ये तीनों एक समान हैं॥१७-१८॥शुद्ध मनसे ब्राह्मणोंको सेर भर ही सत्तू देने पर ब्रह्मलोक मिल जाता है, अधिक कहने की क्या आवश्यकता है?॥१९॥एकसौसत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त

वायुरुवाच । किंचिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि मानुषाणां सुखावहम् । सरहस्याश्च ये दोषास्तान् शृणुध्वं समाहिताः ॥१॥ अग्निकार्यं च कर्तव्यं परमान्नेन भोजनम् । दीपकश्चापि कर्तव्यः पितॄणां सतिलोदकः ॥ २ ॥ एतेन विधिना मर्त्यः श्रद्दधानः समाहितः । चतुरो वार्षिकान् मासान् यो ददाति तिलोदकम् ॥ ३ ॥ भोजनं च यथाशक्त्या ब्राह्मणे वेदपारगे । पशुबन्धशतस्येह फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥४॥ इदं चैवापरं गुह्यमप्रशस्तं निबोध तत् । अग्नेस्तु वृषलो नेता हविर्मूढाश्च योषितः ॥ ५ ॥ मन्यते धर्म एवेति स चाधर्मेण लिप्यते । अग्नयस्तस्य कुप्यन्ति शूद्रयोनिं स गच्छति ६ पितरश्च न तुष्यन्ति सह देवैर्विशेषतः । प्रायश्चित्तं तु यत्तत्र

वायु बोले, कि-मैं मनुष्योंको सुख देने वाले धर्मका रहस्य और दोषों सहित कुछ वर्णन करता हूँ, उसको आप सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥ श्राद्ध करने वाला पुरुष अग्नौकरण करे, वेदशास्त्रसम्पन्न ब्राह्मणको श्रेष्ठ अन्नका भोजन जिमावे,दीपक प्रज्वलित करे तथा तिल और जौंसे पितरोंका तर्पण करे ॥२॥ जो मनुष्य इस विधिसे श्रद्धापूर्वक सावधान रह कर वर्षके चार महीने तिल और जौंसे पितरोंका तर्पण करता है,अपनी शक्ति के अनुसार वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसको सौ पशुबन्ध यज्ञोंका पुष्कल फल मिलता है ॥ ३-४ ॥ अब तुम अप्रशस्त (निन्दित) गुप्त बातको सुनो, जो मूढ़ शूद्र अथवा स्त्री (अरणिमें वर्तमान अथवा प्रकट वैदिक) अग्निको (एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें) लेजाती है अथवा मोहवश (यज्ञशेष) हविका भक्षण करती है,वह उसको चाहे धर्म मान कर ही करती हो परन्तु उसको अधर्म ही लगता है अग्नि उस पर कुपित हो जाता है और उसको शूद्रयोनिमें उत्पन्न होना पड़ता है ५-६ और पितर तथा देवता उस पर विशेषतः प्रसन्न नहीं होते हैं;

ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥७॥ यत्कृत्वा तु नरः सम्यक् सुखी भवति विज्वरः । गवां मूत्रपुरीषेण पयसा च घृतेन च ॥८॥ अग्निकार्यं त्र्यहं कुर्यान्निराहारः समाहितः । ततः सम्वत्सरे पूर्णे प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ ९ ॥ हृष्यन्ति पितरश्चास्य श्राद्धकाल उपस्थिते । एष ह्यधर्मो धर्मश्च सरहस्यः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥ मर्त्यानां स्वर्गकामानां प्रेत्य स्वर्गसुखावहः ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये अष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

लोमश उवाच । परदारेषु ये सक्ता अकृत्वा दारसंग्रहम् । निराशाः पितरस्तेषां श्राद्धकाले भवन्ति वै ॥१॥ परदाररतिर्यश्च यश्च वंध्यामुपासते । ब्रह्मस्वं हरते यश्च समदोषा भवन्ति ते २

अब मैं इसका प्रायश्चित्त कहता हूँ, उसको तुम सुनो ॥ ७ ॥ इस प्रायश्चित्तको करनेसे मनुष्य पापरहित तथा दुःखरहित हो जाता है, पुरुष तीन दिन तक गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध और गोदधिका प्राशन करे ॥८॥ फिर सावधान रह कर उपवास करता हुआ तीन दिन तक अग्निमें होम करे, इस प्रकार करते करते वर्ष भर व्यतीत होने पर उसकी हविको देवता ग्रहण करते हैं ९ और श्राद्धके समय इसके पितर भी प्रसन्न होते हैं, स्वर्गकी कामना वाले पुरुषोंको इस लोकमें और मरनेके पीछे परलोकमें स्वर्गका सुख देने वाला धर्म और अधर्म रहस्यसहित तुमको सुना दिया ॥ १०-११ ॥ एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२८॥

लोमशने कहा, कि-जो पुरुष विवाह नहीं करता है और परस्त्रियों पर आसक्ति रखता है, उसके पितर श्राद्धके समय निराश होजाते हैं ॥१॥ जो पुरुष दूसरेकी स्त्रीसे प्रेम करता है, जो वंन्ध्या स्त्रीका सेवन करता है और जो ब्राह्मणके धनको हर लेता है, इन सबको एकसा पाप लगता है वह पितरोंके साथ

असंभाष्या भवंत्येते पितृणां नात्र संशयः । देवताः पितरश्चैषां नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ३ ॥ तस्मात् परस्य वै दारांस्त्यजेद्वंध्यां च योषितम् । ब्रह्मस्वं हि न हर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता ॥ ४ ॥ श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम् । श्रद्दधानेन कर्तव्यं गुरूणां वचनं सदा॥५द्वादश्यां पौर्णमास्यां च मासि मासि घृताक्षतम् । ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छेत तस्य पुण्यं निबोधत ॥ ६ ॥ सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः । अश्वमेधचतुर्भागं फलं सृजति वासवः ॥ ७ ॥ दानेनैतेन तेजस्वी वीर्यवांश्च भवेन्नरः । प्रीतश्च भगवान् सोम इष्टान् कामान् प्रयच्छति ॥ ८ ॥ श्रूयतां चापरो धर्मः सरहस्यो महाफलः । इदं कलियुगं प्राप्य मनुष्याणां सुखावहः ॥ ९ ॥ कल्यमुत्थाय यो मर्त्यः स्नातः शुक्लेन वाससा ।

बात चीत करनेके अयोग्य होजाता है और पितर तथा देवता उसके हविको मान नहीं देते हैं ॥ ३ ॥ अतः अपना हित चाहने वाला पुरुष परस्त्रीका त्याग करे, वन्ध्या स्त्रीका भी सङ्ग न करे तथा ब्रह्मधनका हरण न करे ४ धर्मका दूसरा रहस्य मैं तुमसे कहता हूँ,उसको भी तुम सुनो,गुरुके वचनका श्रद्धापूर्वक पालन करे ॥५॥ यदि प्रतिमास द्वादशी और पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणों को घृत और अक्षतोंका दान किया जाय तो उसके पुण्यको तुम सुनो ॥ ६ ॥ उस पुण्यसे सोम बढ़ता है और समुद्र भी बढ़ने लगता है और इन्द्र उसको अश्वमेध यज्ञका चतुर्थांश पुण्य देता है ॥ ७ ॥ घृत और अक्षतोंका दान करनेसे मनुष्य तेजस्वी और वीर्यवान् होजाता है और भगवान् सोम प्रसन्न होकर दान देने वालेकी अभीप्सित कामनाको पूर्ण करते हैं॥८॥ इस कलियुगमें मनुष्योंको सुख देने वाले तथा महाफल देने वाले दूसरे धर्मको भी रहस्यसहित सुनो ॥ ९ ॥ जो मनुष्य प्रातःकालमें उठ स्नान कर और श्वेत वस्त्र धारण कर तथा मनको नियममें रख कर

तिलपात्रं प्रयच्छेत ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥ १० ॥ तिलोदकं च यो दद्यात् पितॄणां मधुना सह । दीपकं कृसरं चैव श्रूयतां तस्य यत् फलम् ॥ ११ ॥ तिलपात्रे फलं प्राह भगवान् पाकशासनः । गोप्रदानं च यः कुर्याद्भूमिदानं च शाश्वतम् ॥ १२ ॥ अग्निष्टोमं च यो यज्ञं यजेत बहुदक्षिणम् । तिलपात्रं सहैतेन समं मन्यन्ति देवताः ॥ १३ ॥ तिलोदकं सदा श्राद्धे मन्यन्ते पितरोऽक्षयम् । दीपे च कृसरे चैव तुष्यन्तेऽस्य पितामहाः ॥१४॥ स्वर्गे च पितृलोके च पितृदेवाभिपूजितम् । एवमेतन्मयोद्दिष्टमृषिदृष्टं पुरातनम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे लोमशरहस्ये ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

ब्राह्मणोंको तिलपात्रका ॥ १० ॥ पितरोंके निमित्त दीपदान करता है तथा मधुके साथ तिलोदक देता है तथा तिल उड़द आदिकी खिचड़ी पितरोंके अर्पण करता है, उसका फल तुम सुनो ११ भगवान् इन्द्रने तिलपात्रके दानका जो फल कहा है, उसको तुम सुनो जो पुरुष गोदान करता है, प्राचीनकालसे प्रचलित भूमिदान करता है १२ जो पुरुष बहुतसी दक्षिणावाले अग्निष्टोम यज्ञको करता है (उसको जो फल मिलता है) तिलपात्र (के दान) का फल भी उसकी ही समान होता है, यह देवता मानते हैं ॥ १३ ॥ श्राद्धमें तिलसे और जलसे पितरोंका तर्पण किया जाता है तो पितरोंको अक्षय तृप्ति होती है,दीपदान करनेसे तथा तिल और उड़दकी खिचड़ीका दान करनेसे पितामह सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ १४ ॥ स्वर्गमें तथा पितृलोकमें देवता और पितर भी इस धर्मरहस्यको मानते हैं । ऋषियोंने यह धर्मरहस्य कहा है,और यह प्राचीन धर्मरहस्य मैंने तुमसे कहा है१५

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२९ ॥

भीष्म उवाच । ततस्त्वृषिगणाः सर्वे पितरश्च सदेवताः ।
अरुन्धतीं तपोवृद्धामपृच्छन्त समाहिताः॥१॥ समानशीलां वीर्येण
वसिष्ठस्य महात्मनः । त्वत्तो धर्मरहस्यानि श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
यत्ते गुह्यतमं भद्रे तत् प्रभाषितुमर्हसि ॥ २ ॥ अरुन्धत्युवाच ।
तपोवृद्धिर्मया प्राप्ता भवतां स्मरणेन वै । भवतां च प्रसादेन
धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ३ ॥ सगुह्यान् सरहस्यांश्च तान्
शृणुध्वमशेषतः । श्रद्दधाने प्रयोक्तव्या यस्य शुद्धं तथा मनः॥४॥
अश्रद्दधानो मानी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । असंभाष्या हि चत्वारो
नैषां धर्मं प्रकाशयेत् ॥ ५ ॥ अहन्यहनि यो दद्यात् कपिलां
द्वादशीः समाः । मासि मासि च सत्रेण यो यजेत सदा नरः ६
गवां शतसहस्रं च यो दद्याज्ज्येष्ठपुष्करे । न तद्धर्मफलं तुल्यग-

भीष्मजीने कहा, कि-तदनन्तर सब ऋषि, पितर और देवता मनको नियममें रख कर तपोवृद्धा अरुन्धतीसे बूझने लगे कि-१ हे भद्रे ! हमारा शील और वीर्य महात्मा वसिष्ठजीकी समान है हम तुमसे धर्मके रहस्यको सुनना चाहते हैं, अतः तुमने धर्मका जो गुप्त रहस्य समझा हो उसका हमसे वर्णन करो ॥ २ ॥ अरुन्धतीने उत्तर दिया, कि-आपका स्मरण करनेसे मेरे तपमें वृद्धि हुई है और मैं आपकी कृपासे ही शाश्वत धर्मोंका वर्णन करती हूँ ३ अब तुम गुह्य और रहस्यसहित धर्मको पूर्णरीतिसे सुनो,श्रद्धालु पुरुषको धर्मका वर्णन सुनना चाहिये और जिसका मन शुद्ध हो उसको धर्मका वर्णन सुनना चाहिये ४ अश्रद्धालु मानी, ब्रह्महत्यारे और गुरुपत्नीगामी इन चारोंके साथ भाषण नहीं करना चाहिये और न इनसे धर्मकी बात भी करनी चाहिये ॥ ५ ॥ जो पुरुष बारह वर्ष तक प्रतिदिन कपिला गौका दान देय और जो मनुष्य प्रतिमास सत्रसे यजन करे ॥ ६ ॥ और जो महान् पुण्यमय पुष्कर तीर्थमें एक करोड़ गौओंका दान

निश्चिर्यस्य तुष्यति ॥ ७ ॥ श्रूयतां चापरो धर्मो मनुष्याणां सुखावहः । श्रद्दधानेन कर्त्तव्यः सरहस्यो महाफलः ॥८॥ कल्यमुत्थाय गोमध्ये गृह्य दर्भान् सहोदकान् । निषिंचेत गवां शृङ्गे मस्तकेन च तज्जलम् ॥ ९ ॥ प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य धर्मफलं शृणु । श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु कानिचित् ॥ १० ॥ सिद्धचारणजुष्टानि सेवितानि महर्षिभिः । अभिषेकः समस्तेषां गवां शृङ्गोदकस्य च ॥ ११ ॥ साधु साध्विति चोद्दिष्टं दैवतैः पितृभिस्तथा । भूतैश्चैव सुसंहृष्टैः पूजिता साप्यरुन्धती ॥ १२ ॥ पितामह उवाच । अहो धर्मो महाभागे सरहस्य उदाहृतः । वरं ददामि ते धन्ये तपस्ते वर्धतां सदा ॥ १३ ॥ यम उवाच । रम-

---

करे, इन सबके पुण्योंका फलभी जिसके यहाँ अतिथि सन्तुष्ट होता है, उसके पुण्यकी बराबर नहीं होसकता ॥ ७ ॥ अब तुम मनुष्यको सुख देने वाले एक और धर्मको सुनो, मनुष्य श्रद्धालु होकर इस महाफल देने वाले धर्मका रहस्यसहित पालन करे ॥ ८ ॥ मनुष्य प्रातःकाल उठ कर गौओंके झुण्डमें जाय और कुश पड़े हुए जलसे गौके सींगों पर जल डाले और उस जलको अपने शिर पर लेय तथा निराहार रहे, ऐसे पुरुषके धर्मके फलको तुम सुनो, तीनों लोकमें सिद्ध चारण और महर्षियोंके प्रिय और उनसे सेवित जितने तीर्थ सुननेमें आते हैं, उन सबमें स्नान करनेका और गोशृंगोदकसे स्नान करनेका फल भी एकसा ही है ॥ ९-१० ॥ यह सुन कर देवता और पितर तथा भूतोंने परमप्रसन्न होकर साधु २ कहा और अरुन्धती की पूजा भी की ॥ १२ ॥ पितामहने कहा, कि-हे महाभाग्यशालिनी अरुन्धती ! तूने रहस्यमय धर्म कहा है, हे धन्ये ! मैं तुझको वर देता हूँ, तेरे तपकी सदा वृद्धि होती रहे ॥ १३ ॥ यमने कहा, कि मैंने तुमसे दिव्य और रमणीय कथा सुनी है

णीया कथा दिव्या युष्मत्तो या मया श्रुता । श्रूयतां चित्रगुप्तस्य भाषितं मम च प्रियम् ॥ १४ ॥ रहस्यं धर्मसंयुक्तं शक्यं श्रोतुं महर्षिभिः । श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता ॥१५॥ न हि पुण्यं तथा पापं कृतं किंचिद्विनश्यति । पर्वकाले च यत्किंचिदादित्यं चाधितिष्ठति ॥१६॥ प्रेतलोकं गते मर्त्ये तत्तत्सर्वं विभावसुः । प्रतिजानाति पुण्यात्मा तच्च तत्रोपयुज्यते ॥१७॥ किंचिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि चित्रगुप्तमतं शुभम् । पानीयं चैव दीपं च दातव्यं सततं तथा ॥ १८ ॥ उपानहौ च छत्रं च कपिला च यथातथम् । पुष्करे कपिला देया ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ १९ ॥ अग्निहोत्रं च यत्नेन सर्वशः प्रतिपालयेत् । अयं चैवापरो धर्मश्चित्रगुप्तेन भाषितः ॥२० ॥ फलमस्य पृथक्त्वेन श्रोतुमर्हन्ति सत्तमाः ।

अब तुम चित्रगुप्तकी कही हुई और मेरी प्रिय बातको सुनो १४ इस धर्ममय रहस्यको महर्षि सुन सकते हैं, अपना हित चाहने वाला मनुष्य इसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करे ॥ १५ ॥ "मनुष्य जो पुण्य अथवा पाप करता है उसका नाश नहीं होता है, मनुष्य पर्व (पूर्णिमा अथवा अमावस्या) के दिन जो कुछ कर्म करता है, वे कर्म सूर्यको पहुँचते हैं ॥ १६ ॥ और जब मनुष्य प्रेतलोक में जाता है तहाँ सूर्य उसके कर्मका साक्षी होता है और पुण्यात्मा पुरुष अपने कर्मके फलको पाता है ॥१७॥ अब मैं तुमसे चित्रगुप्तके मतानुसार कुछ शुभ धर्मोंका वर्णन करता हूँ, कि-मनुष्य पिपासे मनुष्योंको जल पिलावे तथा देवमन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करे ॥ १८ ॥ और जूते तथा छत्री और कपिला गौका विधिपूर्वक दान देय, पुष्कर तीर्थमें वेदपारंगत ब्राह्मणको कपिला गौका दान देय ॥ १९ ॥ अग्निहोत्रमें नित्य यत्नपूर्वक होम करे, यह भी एक दूसरा धर्म चित्रगुप्तने कहा है ॥ २० ॥ हे सत्पुरुषो! पहिले जो दान कहे हैं उनका फल अब तुम सुनो, कि-समया-

मलयं सर्वभूतैस्तु गन्तव्यं कालपर्ययात् ॥ २१ ॥ तत्र दुर्गमनुप्राप्ताः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः । दह्यमाना विपच्यन्ते न तत्रास्ति पलायनम् ॥ २२ ॥ अन्धकारं तमो घोरं प्रविशंत्यल्पबुद्धयः । तत्र धर्मं प्रवक्ष्यामि येन दुर्गाणि सन्तरेत् ॥ २३ ॥ अल्पव्ययं महार्थं च प्रेत्य चैव सुखोदयम् । पानीयस्य गुणा दिव्याः प्रेतलोके विशेषतः ॥ २४ ॥ तत्र पुण्योदका नाम नदी,तेषां विधीयते । अक्षयं सलिलं तत्र शीतलं ह्यमृतोपमम् ॥ २५ ॥ स तत्र तोयं पिबति पानीयं यः प्रयच्छति । प्रदीपस्य प्रदानेन श्रूयतां गुणविस्तरः ॥ २६ ॥ तमोन्धकारं नियतं दीपदाने प्रपश्यति । प्रभां चास्य प्रयच्छन्ति सोमभास्करपावकाः ॥ २७ ॥ देवताश्चा-

---

नुसार सब प्राणियोंको मरना पड़ेगा ॥२१॥ पापीप्राणी (यमलोकमें) बहुत दुःख पाता है तहाँ वह क्षुधा और पिपासासे पीड़ित होता है, भस्म किया जाता है और पकाया जाता है और तहाँसे भाग नहीं सकता २२ अल्पबुद्धि अज्ञानी प्राणी भयंकर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं, अब मैं ऐसे धर्मका वर्णन करता हूँ जिससे प्राणी सब दुःखोंके पार होजाता है २३ उसमें थोड़ा खर्च होता है, महाफल मिलता है और मरणके पीछे परलोकमें परिणाममें सुख मिलता है, उसको तुम सुनो, कि-जलका दान करनेसे प्रेतलोकमें विशेषतः दिव्य फल मिलता है ॥ २४ ॥ जलदान देने वालेके लिये परलोकमें पुण्योदका नामक नदी निर्मित की जाती है उसमें अमृतकी समान शीतल अक्षय जल भरा रहता है ॥ २५ ॥ जो पुरुष जलदान करता है वह तहाँ जल पीता है, अब दीपदानके गुणोंका विस्तार सुनो ॥ २६ ॥ कि-दीपदान करने वाला (यमलोकके मार्गमें) अवश्य (पड़ने वाले) अंधकारको नहीं देखता है,दीपदान देने वालेको चन्द्र, सूर्य और अग्नि प्रकाश देते हैं ॥ २७ ॥ देवता

नुमन्यन्ते विमलाः सर्वतो दिशः। द्योतते च यथादित्यः प्रेतलोक-
गतो नरः ॥ २८ ॥ तस्माद्दीपः प्रदातव्यः पानीयं च विशेषतः।
कपिलां ये प्रयच्छन्ति ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २९ ॥ पुष्करे च
विशेषेण श्रूयतां तस्य यत्फलम्। गोशतं सवृषं तेन दत्तं भवति
शाश्वतम् ॥ ३० ॥ पापं कर्म च यत्किंचिद्ब्रह्महत्यासमं भवेत्।
शोधयेत् कपिला ह्येका प्रदत्तं गोशतं यथा ॥ ३१ ॥ तस्मात्तु
कपिला देया कौमुद्यां ज्येष्ठपुष्करे। न तेषां विषमं किंचिन्न दुःखं
न च कण्टकाः ॥ ३२ ॥ उपानहौ च यो दद्यात् पात्रभूते द्विजो-
त्तमे। छत्रदाने सुखां छायां लभते परलोकगः ॥ ३३ ॥ न हि
दत्तस्य दानस्य नाशोऽस्तीह कदाचन। चित्रगुप्तमतं श्रुत्वा हृष्ट-
रोमा विभावसुः ॥ ३४ ॥ उवाच देवताः सर्वाः पितॄंश्चैव महा-

उसके लिये सब दिशाओंको निर्मल बना देते हैं और वह पुरुष प्रेतलोकमें पहुँच कर आदित्यकी समान दिपता है ॥२८॥ अत एव दीपदान देना चाहिये और जलका दान तो विशेषतः देना चाहिये, जो पुरुष पुष्करतीर्थमें वेदपारंगत ब्राह्मणको कपिला गौका दान देता है, उस पुरुषको जो फल मिलता है, उसको तुम सुनों कि-उस पुरुषको सौ गौ बैलोंके दान करनेका फल मिलता है ॥ २९-३० ॥ कोई पातक ब्रह्महत्याकी समान हो वह भी सौ गौओंकी समान मानी जाने वाली कपिला गौके दान देनेसे दूर होजाता है ॥ ३१ ॥ इस लिये पुष्कर तीर्थमें पूर्णिमा के दिन कपिला गौका दान देय इस प्रकार दान देने वालोंको कुछ दुःख नहीं होता है और उनको दुःख देने वाले शत्रु भी उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष सुपात्र श्रेष्ठ ब्राह्मणको जूते और छत्रीका दान देता है, वह पुरुष जब परलोकमें जाता है तहाँ उसको सुखदायी छाया मिलती है ॥ ३३ ॥ दिया हुआ दान किसी दिन भी नष्ट नहीं होता है, इस प्रकार

श्रुतिः । श्रुतं हि चित्रगुप्तस्य धर्मगुह्यं महात्मनः॥३५॥अश्रद्दधानाश्च ये मर्त्या ब्राह्मणेषु महात्मसु । दानमेतत् प्रयच्छन्ति न तेषां विद्यते भयम् ३६धर्मदोषास्त्विमे पञ्च येषां नास्तीह निष्कृतिः। असंभाष्या अनाचारा वर्जनीया नराधमाः॥३७॥ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च परदाररतश्च यः । अश्रद्दधानश्च नरः स्त्रियं यश्चोपजीवति ।३८। प्रेतलोकगता ह्येते नरके पापकर्मिणः । पच्यन्ते वै यथा मीनाः पूयशोणितभोजनाः ॥ ३९ ॥ असंभाष्याः पितृणां च देवानां चैव पञ्च ते । स्नातकानां च विप्राणां ये चान्ये च तपोधनाः॥४०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अरुंधतीचित्रगुप्तरहस्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

यमके मुखसे चित्रगुप्तके मतको सुन कर सूर्यका शरीर रोमाञ्चित होगया ॥ ३४ ॥ तब महाकान्तिमान् सूर्यने सब देवता और पितरोंसे कहा, सूर्यने कहा, कि—महात्मा चित्रगुप्तका गुह्य धर्म तुमने सुना ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक महात्मा ब्राह्मणोंको ऊपर लिखा हुआ दान देता है, उस पर परलोकका भय नहीं पड़ता है ॥ ३६ ॥ ब्रह्महत्या करना, गोहत्या करना, परस्त्रीके साथ गमन करना, श्रद्धारहित होना और अपनी स्त्रीके शीलको वेच कर आजीविका चलाना,धर्मके इन पाँच दोषोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, इन पापोंको करनेवाले अनाचारी नराधमके साथ भाषण न करना चाहिये और इनको त्यागदेना चाहिये ३७-३८ इन पापकर्मोंको करने वाले मनुष्य यमलोकमें जाकर नरकमें पड़ते हैं, नरकमें राँधे जाते हैं, तथा मछलीकी समान रक्त और पीपका भोजन करते हैं ॥ ३९ ॥ इन पाँच पापियोंके साथ पितर, देवता, स्नातक ब्राह्मण और तपोधनोंको भाषण करना उचित नहीं है ४२ एकसौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३० ॥

भीष्म उवाच । ततः सर्वे महाभागा देवाश्च पितरश्च ह । ऋषयश्च महाभागाः प्रमथान् वाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥ भवन्तो वै महाभागा अपरोक्षनिशाचराः । उच्छिष्टानशुचीन् क्षुद्रान् कथं हिंसथ मानवान् ॥ २ ॥ के च स्मृताः प्रतीघाता येन मर्त्यान्न हिंसथ । रक्षोघ्नानि च कानि स्युर्यैर्गृहेषु प्रणश्यथ । श्रोतुमिच्छाम युष्माकं सर्वमेतन्निशाचराः ॥ ३ ॥ प्रमथा ऊचुः । मथुनेन सदोच्छिष्टाः कृते चैवाधरोत्तरे । मोहान्मांसानि खादेत वृक्षमूले च यः स्वपेत् ॥ ४ ॥ आमिषं शीर्षतो यस्य पादतो यश्च संविशेत् । तत उच्छिष्टकाः सर्वे बहुच्छिद्राश्च मानवाः ॥ ५ ॥ उदके चाप्यमेध्यानि श्लेष्माणं च प्रमुंचति । एते भक्ष्याश्च वध्याश्च मानुषा नात्र संशयः ॥ ६ ॥ एवं शीलसमाचारान् धर्षयामो हि

भीष्मजीने कहा, कि-तदनन्तर सब महाभाग्यशाली देवता पितर और महाभाग्यवान् ऋषियोंने प्रमथोंसे कहा, कि- ॥ १ ॥ आप महाभाग्यवान् हैं, अपरोक्ष निशाचर हैं, आप उच्छिष्ट और अपवित्र मनुष्योंको किस प्रकार मार डालते हैं ॥२॥ हे निशाचरों! तुम किन उपायोंको करने पर मनुष्योंकी हिंसा नहीं करते हो और कौनसे मन्त्र रक्षोघ्न हैं, कि-जिनका उच्चारण करनेसे आप घरमेंसे भागजाते हैं? यह सब हम आपसे सुनना चाहते हैं३ प्रमथोंने कहा, कि-जो पुरुष मैथुन करनेसे सदा अपवित्र रहते हैं (अर्थात् मैथुन करनेके अनन्तर स्नान नहीं करते हैं) तथा महात्मा पुरुषोंका अपमान करते हैं, मूर्खतासे मांसभक्षण करते हैं, वृक्षकी जड़में सोते हैं, मस्तकके नीचे प्राणीका मांस रखते हैं, शय्यामें पैर रखनेके स्थानमें शिर रख कर सोजाते हैं, ये सब मनुष्य उच्छिष्ट और अनेक छिद्र वाले कहाते हैं ॥ ५ ॥ और जो पुरुष जलमें मल मूत्र आदि अपवित्र वस्तु डाल देते हैं थूक देते हैं, ऐसे मनुष्य हमारे मारने योग्य तथा खाने योग्य समझे जाते हैं,

गानवान् । श्रूयतां च प्रतीघातान् यैर्न शक्नुम हिंसितुम् ॥ ७ ॥
गोरोचनासमालंभो वचाहस्तश्च यो भवेत् । घृताक्षतं च यो
दद्यान्मस्तके तत्परायणः ॥ ८ ॥ ये च मांसं न खादन्ति यान्न
शक्नुम हिंसितुम् । यस्य चाग्निर्गृहे नित्यं दिवारात्रौ च दीप्यते ९
तरक्षोश्चर्मदंष्ट्राश्च तथैव गिरिकच्छपः । आज्यधूमो बिडालश्च
च्छागः कृष्णोथ पिंगलः ॥ १० ॥ येषानेतानि तिष्ठन्ति गृहेषु
गृहमेधिनाम् । तान्यधृष्याण्यगाराणि पिशिताशैः सुदारुणैः ११
लोकानस्मद्विधा ये च विचरन्ति यथासुखम् । तस्मादेतानि गेहेषु
रक्षोघ्नानि विशांपते। एतद्वः कथितं सर्वं यत्र वः संशयो महान् १२

इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ ऐसे स्वभाव वाले और ऐसा आचरण करने वाले पुरुषोंका हम तिरस्कार करते हैं, अब जिन उपायोंके कारण हम मनुष्योंकी हिंसा नहीं कर सकते, उन उपायोंको तुम सुनो ॥ ७ ॥ जो पुरुष अपने हाथमें गोरोचन रखता है, वच रखता है तथा मस्तक पर घृत और अक्षत धारण करता है तथा घृत और अक्षत देता है ॥ ८ ॥ जो पुरुष मांसाहार नहीं करते हैं,हम उनकी हिंसा नहीं कर सकते और जिनके घरमें रात्रि और दिन अग्नि प्रज्वलित होती रहती है और जिन गृहस्थोंके घरमें व्याघ्रकी चर्म,व्याघ्रकी डाढ़ तथा गिरिकच्छप, घृतका धूम बिलाव अथवा काला या पीला बकरा रहता है उन के घरोंका मांसभोजी अतिदारुण प्रमथ पराभव नहीं कर सकते ॥११॥ और हे राजन् ! हमारी समान जो प्राणी संसार में विचरण किया करते हैं, वे भी इन घरोंका पराभव नहीं कर सकते, अतः मनुष्योंको उपरोक्त रक्षोघ्न पदार्थ अपने घरमें सदा रखने चाहियें, तुम्हें जिस बातमें बड़ाभारी सन्देह था, वह सब बात हमने तुमसे कह दी ॥ १२ ॥ एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३१ ॥

भीष्म उवाच । ततः पद्मप्रतीकाशः पद्मोद्भूतः पितामहः ।
उवाच वचनं देवान् वासवं च शचीपतिम् ॥ १ ॥ अयं महाबलो
नागो रसातलचरो बली । तेजस्वी रेणुको नाम महासत्वपरा-
क्रमः ॥ २ ॥ अतितेजस्विनः सर्वे महावीर्या महागजाः । धार-
यन्ति महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ॥३॥ भवद्भिः समनुज्ञातो
रेणुकस्तान् महागजान् । धर्मगुह्यानि सर्वाणि गत्वा पृच्छतु तत्र
वै ॥ ४ ॥ पितामहवचः श्रुत्वा ते देवा रेणुकं तदा । प्रेषयामा-
सुरव्यग्रा यत्र ते धरणीधराः ॥ ५ ॥ रेणु उवाच । अनुज्ञातोऽ-
स्मि देवैश्च पितृभिश्च महाबलाः । धर्मगुह्यानि युष्माकं श्रोतु-
मिच्छामि तत्त्वतः । कथयध्वं महाभागा यद्वस्तत्त्वं मनीषितम् ६
दिग्गजा ऊचुः । कार्तिके मासि चाश्लेषा बहुलस्याष्टमी शिवा ।

भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर कमलकी समान कान्तिवाले कमलमेंसे उत्पन्न हुए पितामहने देवताओंसे और शचीके स्वामी इन्द्रसे कहा, कि-॥ १ ॥ यह हाथी महाबलवान् है, रसातलमें फिरने वाला है, बलवान् है, तेजस्वी है, महाधैर्य-धारी है, तथा महापराक्रमी है और इसका नाम रेणुक है ॥२॥ तथा दूसरे भी सब महादिग्गज अति तेजस्वी और महावीर्यवान् हैं, वे पर्वत, वन और काननों वाली सारी पृथ्वीको धारण कर रहे हैं ॥ ३ ॥ आप आज्ञा दें तो यह रेणुक उन महा-दिग्गजोंके पास जाकर उनसे सब गुप्त धर्मोंके सम्बन्धमें प्रश्न करे ॥ ४ ॥ पितामहकी बातको सुन कर देवताओंने रेणुकको शान्तिसे खडे हुए दिग्गजोंके पास भेजा ॥ ५ ॥ रेणुक उनके पास जाकर कहने लगा, कि-हे महाबली दिग्गजों ! मैं देवता और पितरोंकी आज्ञासे तुम्हारे पास धर्मकी रहस्यमय बातें यथार्थ-रीतिसे सुननेके लिये आया हूँ, अतः हे महाभाग्यवानों ! जो धर्मका तत्त्व तुमको इष्ट हो, वह मुझसे कहो ६ दिग्गजोंने कहा,

तेन नक्षत्रयोगेन यो ददाति गुडौदनम् ॥७॥ इमं मन्त्रं जपञ्छ्राद्धे यताहारो ह्यकोपनः। बलदेवप्रभृतयो ये नागा बलवत्तराः ॥८॥ अनन्ता ह्यक्षया नित्यं भोगिनः सुमहाबलाः। तेषां कुलोद्भवा ये च महाभूता भुजंगमाः ॥ ९ ॥ ते मे बलिं प्रयच्छन्तु बलतेजोभिवृद्धये। यदा नारायणः श्रीमानुज्जहार वसुन्धराम् ॥ १० ॥ तद्बलं तस्य देवस्य धरामुद्धरतस्तथा। एवमुक्त्वा बलिं तत्र वल्मीके तु निवेदयत् ॥ ११ ॥ गजेन्द्रं कुसुमाकीर्णं नीलवस्त्रानुलेपनम्। निर्वपेत्तं तु वल्मीके अस्तं याते दिवाकरे ॥ १२ ॥ एवं तुष्टास्ततः सर्वे अधस्ताद्भारपीडिताः। अमन्तं नावबुध्यामो

कि-कार्त्तिकमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन यदि आश्लेषा नक्षत्र हो उस नक्षत्रयोगमें हमको गुड़ और भातका बलिदान देवे ७ बलिदान देनेवाला नियमानुसार भोजनकर क्रोधको त्याग निम्नलिखित मन्त्र पढ़े "बलदेवप्रभृतयो ये नागा बलवत्तराः॥ अनन्ता ह्यक्षया नित्यं भोगिनः सुमहाबलाः॥ तेषां कुलोद्भवा ये च महाभूता भुजंगमाः। ते मे बलिं प्रयच्छन्तु बलतेजोभिवृद्धये। यदा नारायणः श्रीमानुज्जहार वसुन्धराम् ॥ तद्बलं तस्य देवस्य धरामुद्धरतस्तदा।" बलदेव आदि जो हस्ती महाबली हैं और जो महाबली सर्प अक्षय और अनन्त हैं तथा उनके कुलमें उत्पन्न हुए दूसरे जो महान् भुजंगम हैं वे हमारे तेज और बलको बढ़ानेके के लिये हमको बलि दें, पृथ्वी जब जलमें डूब गई थी तब श्रीमान् नारायणने उसका उद्धार किया था ॥ १० ॥ धरा - पृथ्वीका उद्धार करने वाले विष्णुदेवका जो बल है, वह मुझे मिले इस प्रकार बमईके ऊपर बलिका नैवेद्य देवे ॥ ११ ॥ सूर्यास्तके समय बमई पर बलि देनेके अनन्तर बमई पर गजेन्द्र नामक पुष्पोंको चढ़ावे, उन पर काला वस्त्र उढ़ावे और चन्दन लगावे ॥ १२ ॥ इस प्रकार बलिदान देनेसे तथा पूजा करनेसे

धारयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३ ॥ एवं मन्यामहे सर्वे भारार्ता निर-
पेक्षिणः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा ह्युपोषितः । १४ ।
एवं संवत्सरं कृत्वा दानं बहुफलं लभेत् । वल्मीके बलिमादाय
तन्नो बहुफलं मतम् ॥ १५ ॥ ये च नागा महावीर्यास्त्रिषु लोकेषु
कृत्स्नशः । कृतातिथ्या भवेयुस्ते शतं वर्षाणि तत्त्वतः ॥ १६ ॥
दिग्गजानां च तच्छ्रुत्वा देवताः पितरस्तथा । ऋषयश्च महा-
भागाः पूजयन्ति स्म रेणुकम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
दिग्गजानां रहस्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

महेश्वर उवाच । सारमुद्धृत्य युष्माभिः साधुधर्म उदाहृतः ।
धर्मगुह्यमिदं मत्तः शृणुध्वं सर्व एव ह ॥ १ ॥ येषां धर्माश्रिता

भारसे पीड़ा पातेहुए हम सब प्रसन्न होजाते हैं और पृथिवीको धारण करने पर भी हमको कुछ परिश्रम प्रतीत नहीं होता है १३ भारसे पीड़ित होने पर भी किसीकी अपेक्षा न रखने वाले हम ऊपर कहे अनुसार मानते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र यदि उपवास करके इस प्रकार एक वर्ष तक दान देता है तो उसको बहुत फल मिलता है और हमारे बिल पर बलिदान देने पर तो उसको बड़ा भारी फल मिलता है ॥ १५ ॥ और तीनों लोकोंमें जो महाबली नाग हैं उन सबका सौ वर्ष तकका सत्कार किया हुआ माना जाता है ॥१६॥ इस प्रकार दिग्गजोंने रेणुकसे गुप्त धर्म कहा और रेणुकने लौट कर देवता, पितर और महाभाग्यशाली ऋषियोंसे कहा तब उन्होंने रेणुककी पूजा की ॥ १७ ॥ एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥

महेश्वरने कहा, कि—तुमने धर्मके सारका उद्धार करके भली भाँति धर्म कहा है अब तुम सब मुझसे धर्मके इस रहस्यको सुनो ॥ १ ॥ जिनकी बुद्धिने धर्मका आश्रय लेलिया है, जो

बुद्धिः श्रद्दधानाश्च ये नराः । तेषां स्यादुपदेष्टव्यः सरहस्यो महा-
फलः ॥ २ ॥ निरुद्विग्नस्तु यो दद्यान्मासमेकं गवाह्निकम् । एक-
भक्तं तथाश्नीयाच्छ्रुण्वतां तस्य यत्फलम् ॥ ३ ॥ इमा गावो महा-
भागाः पवित्रं परमं स्मृताः । त्रींल्लोकान् धारयन्ति स्म सदेवा-
सुरमानुषान् ॥ ४ ॥ तासु चैव महापुण्यं शुश्रूषा च महाफलम् ।
अहन्यहनि धर्मेण युज्यते वै गवाह्निकः ॥ ५ ॥ मया ह्येना ह्यनु-
ज्ञाताः पूर्वमासन् कृते युगे । ततोऽहमनुनीतो वै ब्रह्मणा पद्म-
योनिना ॥ ६ ॥ तस्माद् व्रज स्थानगमस्तिष्ठत्युपरि मे वृषः ।
रमेऽहं सह गोभिश्च तस्मात् पूज्याः सदैव ताः ॥ ७ ॥ महा-

मनुष्य श्रद्धालु हैं उनको महाफल देने वाले धर्मका रहस्यसहित
उपदेश देना चाहिये ॥ २ ॥ जो पुरुष उद्वेगको त्याग कर एक
मास तक गौको अन्न देता है तथा एक समय भोजन करता है
उसको जो फल मिलता है उसको तुम सुनो ॥ ३ ॥ यह गौएँ
महाभाग्यशालिनी हैं, इनको शास्त्रमें परमपवित्र कहा है ये देवता,
मनुष्य और असुरोंसहित तीनों लोकोंको धारण करती हैं ४
इन गौओंकी सेवासे महान पुण्य और महाफल मिलता है,
जो मनुष्य गौओंको सदा अन्न खिलाता है वह धर्मसम्पादन
करता है ५ मैंने पहिले सत्युगमें इन गौओं पर दयाकी थी
और कमलमेंसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीने भी इन गौओं पर दया
करनेके लिये मुझे समझाया था ६ अत एव मेरा वृष व्रजमें
रहता है और मैंने उसको अपने रथकी ध्वजामें चिन्हरूपसे
स्वीकार किया है और मैं गौओंमें क्रीड़ा करता हूँ इसलिये
गौएँ सदा पूज्य हैं ७ गौएँ महाप्रभावशालिनी तथा वरदान देने
वाली हैं अतः यदि उनकी उपासनाकी जाती है तो वे उपासना
करनेवालेको वर देती हैं, जो पुरुष एक दिन भी गौओंको अन्न
खिलाता है, तो उस पुरुषने सम्पूर्ण जन्ममें जितना पुण्य किया

प्रभावा वरदा वरं दद्युरुपासिताः । ता गावो स्यानुमन्यन्ते सर्व-
कर्मसु यत् फलम् ॥ तस्य तत्र चतुर्भागो यो ददाति गवाह्निकम् ९
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
महादेवरहस्ये त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३॥

स्कन्द उवाच । ममाप्यनुमतो धर्मस्तं शृणुध्वं समाहिताः ।
नीलषण्डस्य शृङ्गाभ्यां गृहीत्वा मृत्तिकां तु यः ॥ १ ॥ अभिषेकं
त्र्यहं कुर्यात्तस्य धर्मं निबोधत । शोधयेदशुभं सर्वमाधिपत्यं परत्र
च ॥ २ ॥ यावच्च जायते मर्त्यस्तावच्छूरो भविष्यति । इदं
चाप्यपरं गुह्यं सरहस्यं निबोधत ॥३॥ मधुऔदुंबरं पात्रं पक्वान्नं
मधुना सह । सोमस्योत्तिष्ठमानस्य पौर्णमास्यां बलिं हरेत् ॥४॥
तस्य धर्मफलं नित्यं श्रद्दधाना निबोधत । साध्या रुद्रास्तथादित्या
विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ॥ ५ ॥ मरुतो वसवश्चैव प्रतिगृह्णंति तं

होता है उसका चौथाई भाग उसको इस भोजन करानेके पुण्य-
फलरूपसे और मिलता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ एकसौ तैंतीसवाँ
अध्याय समाप्त १३३ ॥ ॥ ॥ ॥

स्कन्दने कहा, कि-तुम सावधान होकर मेरे मान्य धर्मको
सुनो, आकाशी वर्ण वाले बैलके दोनों सींगोंमें लगी हुई मृत्तिका
से जो पुरुष तीन दिन तक अभिषेक करता है उसका फल
सुनो ॥ १ ॥ (ऐसा करने वाला) अपने सकल अशुभोंका
नाश कर डालता है और दूसरे जन्ममें लोकोंका अधिपति
(राजा) होता है ॥ २ ॥ और जब फिर उत्पन्न होता है तब
दूसरे जन्ममें शूरवीर होकर उत्पन्न होता है अब धर्मके दूसरे
गुप्त रहस्यको सुनो ॥ ३ ॥ पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाका उदय होने
पर गूलड़के पात्रमें पकान्न भर उस पर मधु डाल उसका चन्द्रमा
को बलि देना चाहिये ४ इस प्रकार बर्ताव करने वालोंको जो
फल मिलता है, उसको तुम श्रद्धा रख कर सुनो, साध्य रुद्र

वलिम् । सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः ॥ ६ ॥ एष धर्मो मयोद्दिष्टः सरहस्यः सुखावहः ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच । धर्मगुह्यानि सर्वाणि देवतानां महात्मनाम् । ऋषीणां चैव गुह्यानि यः पठेदाह्निकं सदा ॥ ८ ॥ शृणुयाद्वानसूयुर्यः श्रद्दधानः समाहितः । नास्य विघ्नः प्रभवति भयं चास्य न विद्यते ॥ ९ ॥ ये च धर्माः शुभाः पुण्याः सरहस्या उदाहृताः । तेषां सर्वफलं तस्य यः पठेत जितेन्द्रियः ॥ १० ॥ नास्य पापं प्रभवति न च पापेन लिप्यते । पठेद्वा श्रावयेद्वापि श्रुत्वा वा लभते फलम् ॥११॥ भुञ्जते पितरो देवा हव्यं कव्यमथाक्षयम् । श्रावयंश्चापि विप्रेंद्रान् पर्वसु प्रयतो नरः ॥१२॥ ऋषीणां देवतानां च पितृणां चैव नित्यदा । भव-

आदित्य विश्वेदेवता अश्विनीकुमार मरुत और वसु उस बलि को ग्रहण करते हैं, उससे चन्द्रमाकी वृद्धि होती है तथा महासागरकी भी वृद्धि होती है ६ इस प्रकार मैंने तुमसे सुख देने वाला धर्मका रहस्य कह कर सुना दिया ७ विष्णुने कहा, कि-जो पुरुष ईर्षारहित होकर मनको वशमें रख श्रद्धासम्पन्न हो नित्य महात्माओंके देवताओंके तथा ऋषियोंके कहे हुए धर्मके सब रहस्योंका पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं उनको विघ्न पीडित नहीं करते तथा उनको भय भी भयभीत नहीं करता है ॥८॥९॥ जो पुरुष जितेन्द्रिय रहकर इस धर्मके रहस्यका पाठ करता है उसको जो शुभ फल देनेवाले पुण्यमय धर्मके रहस्य कहे हैं उन का फल मिलता है ॥ १० ॥ पाप भी उस पुरुषको दुःख नहीं देता है तथा उसको पाप लगता भी नहीं है जो पुरुष इन धर्मके रहस्योंका पाठ करता है,दूसरोंको सुनाता है अथवा स्वयं सुनता है तो उसका फल उसको मिलता है ॥ ११ ॥ तथा देवता और पितर उसके हव्य तथा कव्यका भोजन करके अक्षय तृप्ति पाते हैं,जो पुरुष सावधान होकर पर्वके दिनोंमें उत्तम ब्राह्मणोंको इन

त्यभिमतः श्रीमान् धर्मेषु प्रयतः सदा ॥ १३ ॥ कृत्वापि पापकं कर्म महापातकवर्जितम् । रहस्यधर्मं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते १४ भीष्म उवाच । एतद्धर्मरहस्यं वै देवतानां नराधिप । व्यासोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ १५ ॥ पृथिवी रत्नसंपूर्णा ज्ञानं चेदमनुत्तमम् । इदमेव ततः श्राव्यमिति मन्येत धर्मवित् ॥ १६ ॥ नाश्रद्दधानाय न नास्तिकाय न नष्टधर्माय न निर्घृणाय । न हेतुदुष्टाय गुरुद्विषे वा नानात्मभूताय निवेद्यमेतत् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे स्कन्ददेवरहस्ये चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

युधिष्ठिर उवाच । के भोज्या ब्राह्मणस्येह के भोज्याः क्षत्रियस्य ह । तथा वैश्यस्य के भोज्याः के शूद्रस्य च भारत ॥ १ ॥

धर्मके रहस्योंको सुनता है॥१२॥वह ऋषि देवता और पितरोंका सदाके लिये संमान्य होजाता है, श्रीमान् होजाता है तथा धर्ममें सदा सावधान रहता है ॥ १३ ॥ महापापके अतिरिक्त और सामान्य पापोंको करके यदि इन धर्मरहस्योंको सुनता है तो सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे नराधिप ! यह धर्मरहस्य देवताओंका कहा हुआ है इस सर्वदेवनमस्कृत धर्मरहस्यको व्यासजीने मुझसे कहा था, वह मैंने तुमसे कह दिया १५ रत्नपूर्ण पृथ्वीकी अपेक्षा भी ज्ञान उत्तम है, यह समझकर धर्मवेत्ता पुरुष समझते हैं, कि—यह देवताओंका धर्मरहस्य अवश्य सुनना चाहिये ॥ १६ ॥ यह देवताओंका धर्मरहस्य श्रद्धाहीनको नास्तिकको धर्मरहितको निर्दयको मिथ्या ही तर्कशास्त्र बाँचकर दुष्ट बने हुएको, गुरुसे द्वेष करनेवालेको और देहाभिमानी पुरुषको न सुनाना चाहिये १७ एकसौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त १३४

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! ब्राह्मण किसका अन्न खासकता है क्षत्रिय किसका अन्न खासकता है और वैश्य

भीष्म उवाच । ब्राह्मणा ब्राह्मणस्येह भोज्या ये चैव क्षत्रियाः । वैश्याश्चापि तथा भोज्याः शूद्राश्च परिवर्जिताः ॥२॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भोज्या वै क्षत्रियस्य ह । वर्जनीयास्तु वै शूद्राः सर्वभक्षा विकर्मिणः ॥ ३ ॥ वैश्यास्तु भोज्या विप्राणां क्षत्रियाणां तथैव च । नित्याग्नयो विविक्ताश्च चातुर्मास्यरताश्च ये४ शूद्राणामथ यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् । मलं नृणां स पिबति मलं भुंक्ते जनस्य च ॥ ५ ॥ शूद्राणां यस्तथा भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् । पृथिवीमलमश्नन्ति ये द्विजाः शूद्रभोजिनः ॥६॥ शूद्रस्य कर्मनिष्ठायां विकर्मस्थोऽपि पच्यते । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो विकर्मस्थश्च पच्यते ॥ ७ ॥ स्वाध्यायनिरता विप्रास्तथा

को किसका अन्न खाना चाहिये और शूद्रको किसका अन्न खाना चाहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-ब्राह्मण-ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यका अन्न खाय शूद्र आदिका अन्न कभी न खाय ॥२॥ क्षत्रिय-ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंका अन्न खाय, परन्तु शूद्र सर्वभक्षी और पापी मनुष्योंका अन्न न खाय ॥३॥ उसीप्रकार जो वैश्य सदा अग्निका पूजन करनेवाले हों, पवित्रता से रहते हों तथा चातुर्मास्य याग करते हों ऐसे वैश्योंका अन्न ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय खासकते हैं ॥४॥ परन्तु जो पुरुष शूद्रों का अन्न खाता है वह पुरुष पृथ्वीका मल खाता है वह मनुष्यों के मलका पान करता है और जगत्के मलका भोजन करता है५ जो पुरुष शूद्रके घरका अन्न खाते हैं, वे पुरुष पृथ्वीके मलका ही भोजन करते हैं, शूद्रभोजी ब्राह्मण पृथ्वीके मलको ही खाते हैं ६ संध्यावन्दन आदि करनेवाला द्विज भी यदि शूद्रकी सेवा करता है तो वह भी नरकमें पड़ता है, उत्तम कार्य करनेवाले भी ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्रकी सेवा करनेसे नरकमें पकाये जाते हैं ७ ब्राह्मण स्वाध्यायमें सदा परायण रहे और मनुष्योंके कल्याण

स्वस्त्ययने नृणाम् । रक्षणे क्षत्रियं प्राहुर्वैश्यं पुष्ट्यर्थमेव च ८
करोति कर्म यद्वैश्यस्तद्गत्वा ह्युपजीवति । कृषिगोरक्षवाणिज्यम-
कुत्सा वैश्यकर्मणि ॥ ९ ॥ शूद्रकर्म तु यः कुर्यादवहाय स्व-
कर्म च । स विज्ञेयो यथा शूद्रो न च भोज्यः कदाचन ॥१०॥
चिकित्सकः काण्डपृष्ठः पुराध्यक्षः पुरोहितः । सांवत्सरो वृथा-
ध्यायी सर्वे ते शूद्रसंमिताः ॥ ११ ॥ शूद्रकर्मस्वथैतेषु यो भुंक्ते
निरपत्रपः । अभोज्यभोजनं भुक्त्वा भयं प्राप्नोति दारुणम् १२
कुलं वीर्यं च तेजश्च तिर्यग्योनित्वमेव च । स प्रयाति यथा श्वा
वै निष्क्रियो धर्मवर्जितः ॥ १३ ॥ भुंक्ते चिकित्सकस्यान्नं

में भी सदा लगा रहे, क्षत्रिय प्रजाकी रक्षा करे और वैश्य प्रजाको पुष्ट करनेवाले कर्म करे, यह बात ऋषियोंने कही है ॥ ७ ॥ ८ ॥ वैश्यका जो कर्म है उसको वही कर्म करना चाहिये, क्योंकि—उस कर्मसे जगत्का पोषण होता है खेती तथा गोरक्षा व्यापार ये वैश्यके कर्म हैं और उसके लिये ये निन्दित नहीं है॥९॥और जो अपनी जातिके कर्मोंको छोड़कर शूद्रके कर्म करता है, उस पुरुषको शूद्रकी समान जानना चाहिये और उसका अन्न भी न खाना चाहिये ॥१०॥ वैद्य, काण्डपृष्ठ (शस्त्र बेचकर आजीविका चलाने वाला) वेतनिक सैनिक, शस्त्रधारी पुराध्यक्ष (कोतवाल) पुरोहित, ज्योतिषी और एक वर्ष तक वेद शास्त्रके अतिरिक्त दूसरे ग्रंथोंके पढनेवाले ये सब पुरुष शूद्रकी समान माने जाते हैं ११ जो पुरुष लज्जाको त्याग कर उपरोक्त पुरुषोंका और शूद्रके कर्म करनेवाले पुरुषोंका अन्न खाता है तथा जिन पुरुषोंका अन्न खाना अनुचित बताया है, उनका अन्न खाता है, वह दारुण पीड़ाको भोगता है१२उसका कुल वीर्य और तेज नष्ट होजाता है और उसका तिर्यक योनिमें जन्म होता है और वह कर्मधर्मरहित कुत्तेकी समान होजाता है ॥ १३ ॥ वैद्यका अन्न खानेवाला

च तदन्नं पुरीषवत्। पुंश्चल्यन्नं च मूत्रं स्यात् कारुकान्नं च शोणितम् १४ विद्योपजीविनोऽन्नं च यो भुंक्ते साधुसंमतः। तदप्यन्नं यथा शौद्रं तत् साधुः परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥ वचनीयस्य यो भुंक्ते तमाहुः शोणितं ह्रदम्। पिशुनं भोजनं भुंक्ते ब्रह्महत्यासमं विदुः ॥ १६ ॥ असत्कृतमवज्ञातं न भोक्तव्यं कदाचन ॥१७॥ व्याधिं कुलक्षयं चैव क्षिप्रं प्राप्नोति ब्राह्मणः। नगरीरक्षिणो भुंक्ते श्वपचप्रवणो भवेत् ॥ १८ ॥ गोघ्ने च ब्राह्मणघ्ने च सुरापे गुरुतल्पगे। भुक्त्वान्नं जायते विप्रो रक्षसां कुलवर्धनः ॥१९॥ न्यासापहारिणो भुक्त्वा कृतघ्ने क्लीववर्तिनि।

विष्टाका भक्षण करता है,वेश्याका अन्न खाने वाला मूत्रका पान करता है और कारीगर (शस्त्र बेचनेवाले अथवा वैतनिक सैनिक) का अन्न खानेवाला रुधिरका पान करता है ॥१४॥ साधुओंमें मान्य पुरुष विद्योपजीवीका अन्न न खाय,क्योंकि-उसका अन्न भी शूद्रकी अन्नकी समान है,अतःसत्पुरुषोंको ऐसे पुरुषका अन्न न खाना चाहिये ॥ १५ ॥ जो पुरुष निन्दित पुरुषका अन्न खाता है ऋषि उसको रक्त-सरोवरकी समान मानते हैं और चुगलखोरका अन्न खाने वालेको ऋषि ब्रह्महत्या(रे)की समान मानते हैं ॥ १६ ॥ जो अन्न सत्कारपूर्वक न दियागया हो, जिसमें तिरस्कारका भाव हो उस अन्नका कभी भक्षण न करना चाहिये ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण ऐसे अन्नको खाता है वह शीघ्रही व्याधिग्रस्त होजाता है और उसके कुलका भी नाश होने लगता है, नगररक्षक (कोतवाल) का अन्न खाने वाला चाण्डालकी जातिमें उत्पन्न होता है१८जो ब्राह्मण गोहत्यारेका, ब्रह्महत्यारेका, मद्यपका तथा गुरुपत्नी गामीका अन्न खाता है, वह ब्राह्मण राक्षसोंके कुलकी वृद्धि करता है ॥१९॥ जो ब्राह्मण धरोहड़ मारने वालेका, कृतघ्नीका तथा नपुंसकका अन्न

जायते शवरावासे मध्यदेशबहिष्कृते ॥ २० ॥ अभोज्याश्चैव भोज्याश्च मया भोक्ता यथाविधि । किमन्यदद्य कौंतेय मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥ २१ ॥

इतिश्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भोज्याभोज्यान्नकथनं नाम पंचत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३५

युधिष्ठिर उवाच । उक्तास्तु भवता भोज्यास्तथाऽभोज्याश्च सर्वशः । अत्र मे प्रश्नसन्देहस्तन्मे वद पितामह ॥१॥ ब्राह्मणानां विशेषेण हव्यकव्यप्रतिग्रहे । नानाविधेषु भोज्येषु प्रायश्चित्तानि शंस मे ॥२॥ भीष्म उवाच । हन्त वक्ष्यामि ते राजन् ब्राह्मणानां महात्मनाम् । प्रतिग्रहेषु भोज्ये च मुच्यते येन पाप्मनः ॥ ३ ॥ घृतप्रतिग्रहे चैव सावित्री समिदाहुतिः । तिलप्रतिग्रहे चैव

खाता है, वह मध्यदेशसे बहिष्कृत भीलोंके कुलमें उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ हे कौंतेय ! मैंने तुझसे किसका अन्न खाना चाहिये और किसका अन्न न खाना चाहिये, यह बात विधिविधानसे कही, अब तू मुझसे और क्या सुनना चाहता है ॥ २१ ॥ एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३५ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि–हे पितामह ! किसका अन्न नहीं खाया जासकता है और किसका अन्न नहीं खाया जासकता है, इस सबका आपने वर्णन किया, अब मुझे एक और सन्देह हुआ है उसको आप दूर करिये ॥ १ ॥ कि–ब्राह्मण ही यज्ञमें तथा श्राद्धोंमें प्रतिग्रह लेते हैं और नाना प्रकारका भोजन करते हैं, उनका प्रायश्चित्त आप कहिये २ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! महात्मा ब्राह्मण दान लेते हैं तथा भोजन करते हैं, इससे उनको पाप लगता है, जिस प्रायश्चित्तको करने पर मनुष्य उस पापसे छूट जाता है उस प्रायश्चित्तको मैं तुझसे कहूँगा ३ हे युधिष्ठिर ! यदि घृतका दान लिया हो तो गायत्रीमन्त्र पढ़कर अग्निमें

सममेतद् युधिष्ठिर ॥ ४ ॥ मांसप्रतिग्रहे चैव मधुनो लवणस्य च । आदित्योदयनं स्थित्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ ५ ॥ काञ्चनं प्रतिगृह्याथ जपमानो गुरुश्रुतिम् । कृष्णायसं च विवृतं धारयन् मुच्यते द्विजः ॥ ६ ॥ एवं प्रतिगृहीतेऽथ धने वस्त्रे तथा स्त्रियाम् । एवमेव नरश्रेष्ठ सुवर्णस्य प्रतिग्रहे ॥७॥ अन्नप्रतिग्रहे चैव पायसेक्षुरसे तथा । इक्षुतैलपवित्राणां त्रिसंध्येप्सु निमज्जनम् ॥ ८ ॥ व्रीहौ पुष्पे फले चैव जले पिष्टमये तथा । यावके दधिदुग्धे च सावित्रीं शतशोन्वितताम् ॥ ९ ॥ उपानहौ च छत्रं च प्रतिगृह्यौर्ध्वदेहिके । जपेच्छतं समायुक्तस्तेन मुच्येत पाप्मना १० क्षेत्रप्रतिग्रहे चैव ग्रहसूतकयोस्तथा । त्रीणि रात्राण्युपोषित्वा तेन

होम करना चाहिये,तिलदानका भी यही प्रायश्चित करना चाहिये४ मांस मधु अथवा लवणका प्रतिग्रह किया हो तो जब तक सूर्योदय हो तब तक ब्राह्मण वहाँ ही खड़ा रहे तो पवित्र होजाता है ॥ ५ ॥ ब्राह्मण सुवर्णका दान लेकर चुपचाप गायत्रीमंत्रका जप करे और प्रत्यक्ष रीतिसे सब देखें तिस प्रकार हाथमें काले लोहेके दण्डको धारण करे तो पापसे मुक्त होजाता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! धनका वस्त्रका तथा स्त्रीका दान लिया हो तब भी ऊपर कहा हुआ सुवर्णदानग्रहणका ही प्रायश्चित करना चाहिये७ अन्नका दान लिया हो, पायसका दान लिया हो, गन्ना तेल और कुशाका दान लिया हो तो त्रिकाल स्नान त्रिकाल सन्ध्या वन्दन करने पर मनुष्य शुद्ध होजाता है ॥ ८ ॥ व्रीहि पुष्प फल जल पिट्ठीकी वस्तु जौकी लहपसी, दही तथा दूधका दान लिया हो तो सौ वार गायत्रीका जप करे ॥ ९ ॥ मनुष्यकी उत्तरक्रियामें जूते और छत्रीका दान लिया होय तो सौ वार गायत्रीका जप करने पर मनुष्य पापसे छूट जाता है ॥ १० ॥ ग्रहणके समय क्षेत्रका दान लिया हो तो अथवा मृत्युसूतकी या

पापाद्विमुच्यते ॥ ११ ॥ कृष्णपक्षे तु यः श्राद्धं पितॄणामश्नुते द्विजः । अन्नमेतदहोरात्रात् पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १२ ॥ न च संध्यामुपासीत न च जाप्यं प्रवर्तयेत् । न संकिरेत्तदन्नं च ततः पूयेत ब्राह्मणः ॥ १३ ॥ इत्यर्थमपराह्णे तु पितॄणां श्राद्धमुच्यते । यथोक्तानां यदश्नीयुर्ब्राह्मणाः पूर्वकेतिताः ॥ १४ ॥ मृतकस्य तृतीयाहे ब्राह्मणो योन्नमश्नुते । त्रिवेलं समुन्मज्य द्वादशाहेन शुध्यति ॥ १५ ॥ द्वादशाहे व्यतीते तु कृतशौचो विशेषतः । ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्वा मुच्यते तेन पाप्मना ॥ १६ ॥ मृतस्य दशरात्रेण प्रायश्चित्तानि दापयेत् । सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्मांड-

---

वृद्धिमूनकीका दान लिया हो तो तीन रात्रि उपवास करने पर दान लेने वाला पापसे छूट जाता है । ११ । जो ब्राह्मण कृष्ण पक्षमें पितृश्राद्धमें भोजन करता है वह एक दिन और एक रात में शुद्ध होता है । १२ । श्राद्धमें भोजन करने वाले ब्राह्मणको विना स्नान किये संध्यावन्दन न करना चाहिये तथा गायत्रीका जप भी न करना चाहिये और उस दिन फिर भोजन भी न करना चाहिये, ऐसा करनेसे ब्राह्मण पवित्र होजाता है ॥ १३ ॥ इसीलिये अपराह्नसमयमें पितरोंका श्राद्ध करना कहा है और पहिले दिन जिनको निमन्त्रण दिया होता है, वह ब्राह्मण भी भोजन करने से।ग्य ब्राह्मण आदिके घर क्षुधा लगनेके कारण भलीपकार भोजन करते हैं ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण मरे हुए पुरुषके यहाँ तीसरे दिन भोजन करता है, वह ब्राह्मण बारह दिन तक तीन वार स्नान करने पर पवित्र होता है १५ बारह दिन बीतने पर ब्राह्मणको विशेषतः स्नान करना चाहिये और ब्राह्मण को घृतका दान देना चाहिये, तब वह पापमुक्त होजाता है १६ जो पुरुष मरे हुए पुरुषके घरमें दश रात्रिके भीतर भोजन करता है, वह पुरुष उपरोक्त सब प्रायश्चितोंका पालन करे तथा

मघमर्षणम् ॥ १७ ॥ मृतकस्य त्रिरात्रे यः समुद्दिष्टे समश्नुते ।
सप्त त्रिषवणं स्नात्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १८ ॥ सिद्धि-
माप्नोति विपुलामापदं चैव नाप्नुयात् ॥ १९ ॥ यस्तु शूद्रैः सम-
श्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने । अशौचं विधिवत्तस्य शौचमत्र
विधीयते ॥२०॥ यस्तु वैश्यैः सहाश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने ।
स वै त्रिरात्रं दीक्षित्वा मुच्यते तेन कर्मणा ॥ २१ ॥ क्षत्रियैः
सह योऽश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने । आप्लुतः सह वासोभिस्तेन
मुच्येत पाप्मना ॥ २२ ॥ शूद्रस्य तु कुलं हन्ति वैश्यस्य पशुबान्ध-
वान् । क्षत्रियस्य श्रियं हन्ति ब्राह्मणस्य सुवर्चसम् ॥ २३ ॥

गायत्रीका रैवत सामका पवित्रेष्टिका "यद्देवा देवहेडनम्" इन पाँच अनुवाकोंका तथा जलमें खड़े होकर ओंकारसहित दश गायत्रीका अथवा "ऋतं च सत्यं०" इस ऋचाका तीन वार पाठ करे १७ जो ब्राह्मण मृतकके घरमें तीन दिन तक भोजन करता है वह पुरुष सात रात्रि तक तीन समय स्नान करनेसे पवित्र होता है १८ उसको बड़ी भारी सिद्धि मिलती है और वह आपत्तिमें नहीं फँसता है १९ जो पुरुष ब्राह्मण होने पर भी शूद्रोंके साथ एक पंक्तिमें भोजन करता है, वह यहाँ पर लिखे हुए अशौचको पालनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ २० ॥ जो ब्राह्मण वैश्यके साथ एक पंक्तिमें भोजन करता है वह तीन रात तक भिक्षा माँगकर भोजन करने पर पवित्र होजाता है २१ जो ब्राह्मण क्षत्रियोंके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करता है वह सवस्त्र स्नान करने पर पापोंसे मुक्त होजाता है २२ शूद्र शूद्रके साथ एक पात्रमें भोजन करता है तो वह अपने उज्ज्वल कुल को नष्ट (कलंकित) करता है वैश्य वैश्यके साथ एक पात्रमें भोजन करता है तो उसके पशुओंका और कुटुम्बियोंका नाश होजाता है, क्षत्रिय क्षत्रियके साथ एक पात्रमें भोजन करता है

प्रायश्चित्तं च शान्तिं च जुहुयात्तेन मुच्यते । सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूष्माण्डमनघमर्षणम् ॥ २४ ॥ तथोच्छिष्टमथान्योन्यं संप्राशेन्नात्र संशयः । रोचना विरजा रात्रिर्मंगलालंभनानि च २५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे प्रायश्चित्तविधिर्नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३६॥

युधिष्ठिर उवाच । दानेन वर्ततेत्याह तपसा चैव भारत । तदेतन्मे मनो दुःखं व्यपोह त्वं पितामह । किंस्वित् पृथिव्यां ह्येतन्मे भवाञ्छंसितुमर्हति ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । शृणु यैर्धर्मनिरतैस्तपसा

तो उसकी लक्ष्मी नष्ट होजाती है और ब्राह्मण ब्राह्मणके साथ एक पात्रमें भोजन करने पर अपने ब्रह्मतेजको नष्ट करडालता है ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्त करनेसे तथा शान्तिहोम करनेसे पातकी पापमेंसे मुक्त होजाता है, प्रायश्चित्त करनेवाला गायत्रीका जप करे, रेवती सामका पाठ करे, पवित्रेष्टिका पाठ करे, यद्द देवा देवहेडनम् इन पाँच अनुवाकोंका पाठ करे, अघमर्षण करे अर्थात् जलमें बैठकर ऋतं च सत्यम् चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत० इस ऋचाका तीन बार पाठ करे ॥ २४ ॥ जैसे किसीका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिये, इसीप्रकार द्विजोंको दूसरोंके साथ एक पात्रमें भी भोजन न करना चाहिये, इस बातमें किसी प्रकारका सन्देह न करना चाहिये, प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर गोरोचन दूर्वा और हल्दी आदि मांगलिक पदार्थोंका स्पर्श करना चाहिये ॥ २५ ॥ एकसौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने कहा, कि–हे भरतवंशी पितामह ! आप कहते हैं, कि-दान करनेसे स्वर्ग मिलता है और तप करनेसे भी स्वर्ग मिलता है यह सुनकर मेरा मन सन्देहमें पड़गया है, कि-दान करना चाहिये या तप करना चाहिये ? अतः आपको इसका निर्णय करना चाहिये ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–धर्ममें परायण रहनेवाले,

भावितात्मभिः । लोका ह्यसंशयं प्राप्ता दानपुण्यपरैर्नृपैः ॥ २ ॥
सत्कृतश्च तथात्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्मनिर्गुणम् । उपदिश्य तदा
राजन् गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३ ॥ शिबिरौशीनरः प्राणान्
प्रियस्य तनयस्य च । ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ४
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय तनयं स्वकम् । ब्राह्मणायातुलां कीर्ति-
मिह चामुत्र चाश्नुते ॥ ५ ॥ रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय
महात्मने । अर्घ्यं प्रदाय विधिवल्लेभे लोकाननुत्तमान् ॥ ६ ॥
दिव्यं शतशलाकं च यज्ञार्थं काञ्चनं शुभम् । छत्रं देवावृधो दत्वा
ब्राह्मणायास्थितो दिवम् ॥७॥ भगवानंबरीषश्च ब्राह्मणाया-
मितौजसे । प्रदाय सकलं राष्ट्रं सुरलोकमवाप्तवान् ॥ ८ ॥ सावित्रः
कुण्डलं दिव्यं यानं च जनमेजयः । ब्राह्मणाय च गा दत्वा गतो
लोकाननुत्तमान् ॥ ९ ॥ वृषादर्भिश्च राजर्षी रत्नानि विविधानि

तपसे मनको शुद्ध करनेवाले जिन राजाओंने दानमें और पुण्य में परायण रहकर बहुतसे लोक निःसन्देह होकर पाये हैं, उनकी बात तू सुन ॥२॥(लोकोंमें) मान्य अत्रिके पुत्र शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मका उपदेश देकर सर्वश्रेष्ठ लोकमें गए थे ॥ ३ ॥ उशीनरका पुत्र शिबि ब्राह्मणके लिये अपने प्रियपुत्रके प्राण देकर इस लोक मेंसे स्वर्गलोकमें गया था ॥ ४ ॥ काशिराज प्रतर्दनने अपना प्रियपुत्र ब्राह्मणोंके अर्पण कर इस लोकमें तथा परलोकमें अनुपम कीर्ति पाई थी॥५॥संकृतिके पुत्र रन्तिदेवने महात्मा वशिष्ठ को विधिके अनुसार अर्घ देकर उत्तम लोक पाये थे ॥ ६ ॥ देवावृध नामक राजा ब्राह्मणको सोनेकी सौ काँपोंवाला सुवर्ण का उत्तम छत्र यज्ञमें देकर स्वर्गमें गया था॥७॥भगवान् अम्बरीष अपार शक्तिवाले ब्राह्मणको अपना देश अर्पण करके देवलोकमें गए थे ॥८॥ सूर्यपुत्र कर्ण दिव्य कुण्डलोंका दान देकर स्वर्गमें गया था और राजा जनमेजय ब्राह्मणोंको गोदान देकर

च। रम्यांश्चावसथान् दत्वा द्विजेभ्यो दिवमागतः ॥ १० ॥ निमी राष्ट्रं च वैदर्भिः कन्यां दत्वा महात्मने । अगस्त्याय गतः स्वर्गं सपुत्रपशुबान्धवः ॥ ११ ॥ जामदग्न्यश्च विप्राय भूमिं दत्वा महायशाः । रामोऽक्षयांस्तथा लोकान् जगाम मनसोधिकान् ॥ १२ ॥ अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतानि देवराट् । वसिष्ठो जीवयामास येन यातोऽक्षयां गतिम् ॥१३॥ रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु । स गतो ह्यक्षयान् लोकान् यस्य लोके महद्यशः ॥ १४ ॥ कक्षसेनश्च राजर्षिर्वसिष्ठाय महात्मने । न्यासं यथावत् संन्यस्य जगाम सुमहायशाः ॥१५॥ करंधमस्य पौत्रस्तु मरुत्तोऽविक्षितः सुतः । कन्यामांगिरसे दत्वा दिवमाशु जगाम सः ॥ १६ ॥ ब्रह्मदत्तश्च पांचाल्यो राजा धर्मभृतां वरः । निधिं

सर्वश्रेष्ठ लोकोंमें गया था ॥ ९ ॥ राजर्षि वृषादर्भि नाना प्रकार के रत्न और सुन्दर घर ब्राह्मणोंको देकर स्वर्गमें गया था १० विदर्भका पुत्र निमि महात्मा अगस्त्यको अपनी कन्याका दान देकर, पुत्र पशु और बान्धवोंसहित स्वर्गको गया था ॥ ११ ॥ महायशस्वी जमदग्निके पुत्र परशुराम ब्राह्मणोंको भूमिका दान देकर मनोऽभिलषित लोकोंसे भी श्रेष्ठ और अक्षय लोकोंमें गए थे ॥१२॥ वर्षा न होने पर ब्राह्मणराज वशिष्ठने सब प्राणियों को जीवित रक्खा था, इससे उनको अक्षय गति (स्थान) मिली थी ॥ १३ ॥ दशरथ पुत्र रामने यज्ञमें धनका होम किया था इसकारण वह अक्षय लोकोंमें गए थे और वह इस जगत्में अपने महायशको छोड़ गए हैं ॥ १४ ॥ महायशस्वी कक्षसेन नामक राजर्षि महात्मा वसिष्ठजीको अपना सर्वस्व अर्पण करके स्वर्गमें गए थे ॥१५॥ करन्धमका पौत्र और अविक्षितका पुत्र मरुत्त आङ्गिरसको अपनी पुत्री विवाह कर स्वर्गमें गया था ॥१६ धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ पञ्चाल देशका राजा धर्मदत्त शंखको धन-

शंखमनुज्ञाप्य जगाम परमां गतिम् ॥ १७ ॥ राजा मित्रसह
श्चैव वसिष्ठाय महात्मने । मदयन्तीं प्रियां भार्यां दत्वा च त्रिदिवं
गतः ॥ १८ ॥ मनोः पुत्रश्च सुद्युम्नो लिखिताय महात्मने ।
दण्डमुद्धृत्य धर्मेण गतो लोकाननुत्तमान् ॥ १९ ॥ सहस्रचित्यो
राजर्षिः प्राणानिष्टान् महायशाः । ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो
लोकाननुत्तमान् ॥२०॥ सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्वा वेश्म हिरण्म-
यम् । मौद्गल्याय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महीपतिः ॥२१॥ भक्ष्य-
भोज्यस्य च कृतान् राशयः पर्वतोपमान । शाण्डिल्याय पुरा
दत्वा सुमन्युर्दिवमास्थितः ॥ २२ ॥ नाम्ना च द्युतिमान्नाम
शाल्वराजो महाद्युतिः । दत्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकान-
नुत्तमान् ॥२३॥ मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्वा कन्यां सुमध्यमाम् ।
हिरण्यहस्ताय गतो लोकान् देवैरभिष्ठितान् ॥ २४ ॥ लोम-

भण्डार अर्पण कर परमगतिको प्राप्त हुआ था ॥१७॥ मित्रसह नामक राजा महात्मा वशिष्ठको मदयन्ती नाम वाली प्रियपत्नी का दान देकर स्वर्गमें गया था ॥ १८ ॥ मनुका पुत्र सुद्युम्न महात्मा लिखितको धर्मानुसार दण्ड देकर सर्वश्रेष्ठ लोकोंमें गया था ॥१९॥ महायशस्वी सहस्रचित्य नामक राजर्षि अपने प्रिय प्राणोंको ब्राह्मणके लिये त्यागकर सर्वश्रेष्ठ लोकोंमें गया था२० शतद्युम्न नामक राजा मौद्गल्य नामक ब्राह्मणको सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सुवर्णका घर दानमें देकर स्वर्गमें गया है ॥ २१ ॥ पहिले राजा सुमन्युने भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंके अन्नकी समान ढेर लगाकर शाण्डिल्यको दान दे स्वर्ग पाया था ॥ २२ ॥ द्युतिमान् नामक महाकान्तिमान् लोकोंका राजा शाल्व ऋचीकको राज्यका दान देकर उत्तम परलोकमें गया था ॥ २३ मदिराश्व नामक राजर्षि हिरण्यहस्तको सुन्दर कमर वाली कन्याका दान देकर देवोंके आवासस्थानरूप लोकोंमें गया

पादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः । ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वैः कामैरयुज्यत ॥ २५ ॥ कौत्साय दत्त्वा कन्यां तु हंसीं नाम यशस्विनीम् । गतोऽक्षयानतो लोकान् राजर्षिश्च भगीरथः २६ दत्त्वा शतसहस्रं तु गवां राजा भगीरथः । सवत्सानां कोहलाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥२७॥ एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा च ह । युधिष्ठिर गताः स्वर्गं निवर्तन्ते पुनः पुनः । २८ । तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत् स्थास्यति मेदिनी । गृहस्थैर्दानतपसा यैर्लोका वै विनिर्जिताः ॥ २९ ॥ शिष्टानां चरितं ह्येतत् कीर्तितं मे युधिष्ठिर । दानयज्ञप्रजासर्गैरेते हि दिवमास्थिताः ॥ ३० ॥ दत्त्वा तु सततं तेऽस्तु कौरवाणां धुरन्धर । दानयज्ञक्रियायुक्ता बुद्धिर्धर्मोपचायिनी ॥ ३१ ॥ यत्र ते नृपशार्दूल सन्देहो वै भवि-

था ॥ २४ ॥ लोमपाद नामक राजर्षिने ऋष्यशृङ्गको शान्ता नामक पुत्रीका दान देकर सब बड़ी २ कामनाएँ पाई थी ।२५। राजर्षि भगीरथ भी कुत्सके पुत्रको यशस्विनी हंसी नाम वाली कन्याका दान देकर अक्षय लोकोंमें गया था २६ राजा भगीरथ कोहलको एकलाख सवत्सा गौओंका दानदेकर उत्तमलोकोंमें गया था हे युधिष्ठिर ! ये राजे तथा और भी बहुतसे राजे दान देकर तथा तप करके स्वर्गमें गए हैं और यहाँ वारम्वार आते रहते हैं ॥२७॥२८॥ यह पृथ्वी जब तक रहेगी तब तक उनकी कीर्ति रहेगी, हे युधिष्ठिर ! गृहस्थोंने दान करके और तप करके जिन जिन लोकोंको जीता है उन सबका वर्णन मैंने तुझसे कहा तथा उन श्रेष्ठ पुरुषोंका चरित्र भी कहा, उपरोक्त राजे यज्ञ करके, दान देकर और प्रजाको उत्पन्न कर स्वर्गमें गए थे ॥ २९ ३० ॥ हे कौरवोंके धुरंधर ! तुझको भी दान करनेसे वही लोक मिलें तथा तेरी बुद्धि दान और यज्ञकी हो क्रियासे युक्त होकर धर्मकी वृद्धि करने वाली हो ॥ ३१ ॥ हे राजसिंह ! तुझको जिस

ष्यति । श्वः प्रभाते हि वक्ष्यामि संध्या हि समुपस्थिता ॥ ३२॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं मे भवतस्तात सत्यव्रतपराक्रम । दानधर्मेण महता ये प्राप्तास्त्रिदिवं नृपाः ॥१॥ इमांस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मान् धर्मभृतां वर । दानं कतिविधं देयं किं तस्य च फलं लभेत् ॥ २ ॥ कथं केभ्यश्च धर्म्यं च दानं दातव्यमिष्यते । कैः कारणैः कतिविधं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । शृणु तत्त्वेन कौन्तेय दानं प्रति ममानघ । यथादानं प्रदातव्यं सर्ववर्णेषु भारत ॥ ४ ॥ धर्मादर्थाद्भयात् कामात् कारुण्यादिति भारत । दानं पञ्चविधं ज्ञेयं कारणैर्यैर्निबोध तत् ॥ ५ ॥ इह

विषयमें सन्देह हो उस विषयको मैं कल प्रातःकाल कहूँगा, क्यों कि अब संध्यासमय होगया है ॥ ३२ ॥ एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे तात ! हे सत्यव्रत ! हे सत्यपराक्रम ! वडे भारी दानधर्मको करके जो राजे स्वर्गमें गए हैं, उनकी कथा मैंने तुमसे सुनी ॥१॥ हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! अब मैं इन धर्मोंको सुनना चाहता हूँ, कि-कितने प्रकारका दान देना चाहिये ? और उसका क्या फल होता है ? ॥२॥ दान किस प्रकार देना चाहिये ? किसको देना चाहिये ? और धर्मसहित फल मिले ऐसा दान क्यों देना चाहिये ? और वह दान किन २ कारणोंसे कितने २ प्रकारका माना जाता है ? उसको मैं यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥३॥ भीष्मजीने कहा कि-हे निर्दोष कौन्तेय भरतवंशी राजन् ! प्रत्येक वर्णके पुरुषको किस प्रकार दान देना चाहिये उसको मैं तुमसे यथार्थरीतिसे कहता हूँ, उसको तुम सुनो ॥ ४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! धर्मसे, अर्थसे, भयसे, कामसे

कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् । इति दानं प्रदातव्यं ब्राह्मणेभ्योऽनसूयता ॥६॥ ददाति वा दास्यति वा मह्यं दत्तमनेन वा । इत्यर्थिभ्यो निशम्यैव सर्वं दातव्यमर्थिने ॥ ७ ॥ मास्याहं न मदीयोऽयं पापं कुर्याद्विमानितः । इति दद्याद्भयादेव दृढं मूढाय पण्डितः ॥८॥ प्रियो मेऽयं प्रियो स्याहमिति संप्रेक्ष्य बुद्धिमान् । वयस्यायैवमक्लिष्टं दानं दद्यादतन्द्रितः ॥ ९ ॥ दीनश्च याचते चायमल्पेनापि हि तुष्यति । इति दद्याद्दरिद्राय कारुण्यादिति

तथा दयासे इन पाँच करणोंसे दानके पाँच भेद तुमको जानने चाहियें ? ॥ ५ ॥ दान देने वाला इस लोकमें कीर्ति पाता है तथा मरणके पीछे परलोकमें सर्वश्रेष्ठ सुख पाता है, विचार कर ईर्षारहित हो ब्राह्मणोंको जो दान दिया जाता है, वह दान धर्मार्थ दान है ॥ ६ ॥ (अब इस दानके स्वरूपको कहते हैं) अमुक मनुष्य दान देरहा है अथवा मुझको दान देगा अथवा इसने मुझे दान दिया है यह बात याचकोंसे सुन कर याचकोंको दान देना चाहिये यह दान कीर्तिदान कहलाता है ॥ ७ ॥ यह मेरा आश्रित नहीं है, तथा मैं इसका प्रीतिपात्र नहीं हूँ तब भी यदि मैं इसका अपमान करूँगा तो यह पाप करेगा अर्थात् मुझे हानि पहुँचावेगा, यह विचार कर विद्वान् पुरुष मूर्खको जो दान देते हैं वह दान भयदान कहलाता है ॥ ८ ॥ यह मुझे प्रिय है और मैं इसको प्रिय हूँ यह देख कर बुद्धिमान् पुरुष सावधान होकर अपने मित्रको स्नेहपूर्वक जो दान देते हैं, वह दान कामनादान कहलाता है ॥९॥ यह गरीब आदमी है, थोड़े से भी सन्तुष्ट होजायगा इस प्रकार करुणा करके दरिद्रको सर्वथा दान देना करुणादान कहलाता है ॥ १० ॥ इस प्रकार पाँच प्रकारका दान है यह पुण्य और कीर्तिको बढ़ाने वाला है, यह

सर्वथा ।१०॥ इति पञ्चविधं दानं पुण्यकीर्तिविवर्धनम् । यथा शक्त्या प्रदातव्यमेवमाह प्रजापतिः ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच । पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । आगमैर्बहुभिः स्फीतो भवान्नः प्रवरे कुले ॥ १ ॥ त्वत्तो धर्मार्थसंयुक्तमायत्यां च सुखोदयम् । आश्चर्यभूतं लोकस्य श्रोतुमिच्छाम्यरिन्दम ॥ २ ॥ अयं च कालः संप्राप्तो दुर्लभो ज्ञातिबान्धवैः । शास्ता च न हि नो कश्चित्त्वामृते पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥ यदि तेहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ । वक्तुमर्हसि नः प्रश्नं यत्त्वां पृच्छामि पार्थिव ॥ ४ ॥ अयं नारायणः श्रीमान् सर्वपार्थिवसम्मतः । भवन्तं बहुमानेन प्रश्रयेण च सेवते ॥ ५ ॥ अस्य चैव समक्षं

दान अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये, यह प्रजापतिका वचन है ॥ ११ ॥ एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३८॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—भीष्मपितामह ! हे महाबुद्धिमान् ! हे सर्वशास्त्रकुशल ! हमारे महाकुलमें आप बहुतसे शास्त्रोंका अभ्यास होनेसे महाज्ञानी होगए हैं ॥ १ ॥ हे शत्रुदमन ! मैं आपसे धर्म तथा अर्थयुक्त भविष्यमें सुख देनेवाला और लोकोंको आश्चर्यित करनेवाला एक वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ इस समय यह परम दुर्लभ अवसर हमें मिल रहा है हमारे ज्ञाति और बान्धव इस समयको फिर कठिनतासे पासकेंगे, हे पुरुषर्षभ ! आपके अतिरिक्त आपकी समान हमें उपदेश देनेवाला और कोई नहीं है३हे निर्दोष ! यदि आप मेरे ऊपर और मेरे भाइयों पर अनुग्रह करना चाहते हैं तो हे पार्थिव ! जो प्रश्न मैं आपसे बूझता हूँ, उसका आप उत्तर दीजिये, यह श्रीमान् नारायण (श्रीकृष्ण) जो सब राजाओंमें मान्य माने जाते हैं वह आपकी

स्वं पार्थिवानां च सर्वशः। भ्रातॄणां च प्रियार्थं मे स्नेहाद्भाषितु-
महसि ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहा-
दागतसंभ्रमः। भीष्मो भागीरथीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच। अहं ते कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम्। अस्य
विष्णोः पुरा राजन्प्रभावो यो मया श्रुतः ॥ ८ ॥ यश्च गोवृष-
भाङ्कस्य प्रभावस्तं च मे शृणु। रुद्राण्याः संशयो यश्च दंपत्योस्तं
च मे शृणु ॥ ९ ॥ व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम्।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ ॥ १० ॥ कृष्णद्वैपायनश्चैव
धौम्यश्च जपतां वरः। देवलः काश्यपश्चैव हस्तिकाश्यप एव
च ॥ ११ ॥ अपरे ऋषयः सन्तो दीक्षादमसमन्विताः। शिष्यै-

विनय और मानपूर्वक सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ अतः इन नारा-
यणके समक्षमें तथा सब राजाओंके समक्षमें मेरे भाइयोंका प्रिय
करनेके लिये तथा मेरा प्रिय करनेके लिये स्नेहपूर्वक मेरे प्रश्नों
का उत्तर देना आपको उचित है ॥ ६ ॥ वैशम्पायनने कहा,
कि-युधिष्ठिरकी बात सुनकर भागीरथीके पुत्र भीष्म स्नेहसे
संभ्रममें पड़ गए और बोले ॥ ७ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-मैं
तुमसे एक अतिमनोहर कथा कहूँगा ? हे राजन्! मैंने पहिले
विष्णुका जो प्रभाव सुना है ॥ ८ ॥ तथा वृषभध्वज शंकरका जो
प्रभाव मैंने सुना है, उसको तू सुन ! और रुद्राणीको संशय
होने पर रुद्र और रुद्राणीमें जो सम्वाद हुआ था, उसको भी
तू सुन ॥ ९ ॥ धर्मात्मा श्रीकृष्ण बारह वर्षके व्रतकी दीक्षा
लेकर व्रत करने लगे, उस समय नारद और पर्वत नाम वाले
दोनों ऋषि उनका दर्शन करनेके लिये आये ॥ १० ॥ इसी
प्रकार कृष्णद्वैपायन और जप करने वालोंमें श्रेष्ठ धौम्य देवल
और कश्यप तथा हस्तिकाश्यप तथा दीक्षा और दमसम्पन्न दूसरे
ऋषि भी सन्त शिष्योंके सिद्ध पुरुषोंके तथा देवताओंकी समान

रनुगताः सिद्धैर्देवकल्पैस्तपोधनैः ॥ १२ ॥ तेषामतिथिसत्कार-
मर्चनीयं कुलोचितम् । देवकीतनयः प्रीतो देवकल्पमकल्पयत् १३
हरितेषु सुवर्णेषु बर्हिष्केषु नवेषु च । उपोपविविशुः प्रीता विष्टरेषु
महर्षयः ॥ १४ ॥ कथाश्चक्रुस्ततस्ते तु मधुरा धर्मसंहिताः ।
राजर्षीणां सुराणां च ये वसन्ति तपोधनाः ॥१५॥ ततो नारायणं
तेजोव्रतचर्येन्धनोत्थितम् । वक्त्रान्निःसृत्य कृष्णस्य वह्निरद्भुत-
कर्मणः ॥ १६ ॥ सोऽग्निर्ददाह तं शैलं सद्रुमं सलतागुपम् ।
सपक्षिमृगसंघातं सश्वापदसरीसृपम् ॥ १७ ॥ मृगैश्च विविधा-
कारैर्हाहाभूतमचेतनम् । शिखरं तस्य शैलस्य मथितं दीनदर्शनम् १८
स तु वह्निर्महाज्वालो दग्ध्वा सर्वमशेषतः । विष्णोः समीप आगम्य
पादौ शिष्यवदस्पृशत् ॥ १९ ॥ ततो विष्णुर्गिरिं दृष्ट्वा निर्दग्ध-

---

तपोधनोंके साथ (श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये) आये थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तब देवकीपुत्र श्रीकृष्णने अपने कुलके अनुरूप उनका देवताकी समान अतिथिसत्कार और पूजन किया १३ उस समय वे महर्षि प्रसन्न होकर हरे कुशोंके, सुवर्णके तथा मोरपङ्खके नवीन और विशाल आसनों पर बैठ गये ॥ १४ ॥ और तहाँ पर बैठे हुए तपोधनोंके साथ धर्ममय मधुर कथायें कहने लगे ॥ १५ ॥ तदनन्तर अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके मुखमेंसे व्रतचर्यारूप ईंधनसे उत्पन्न हुआ नारायणका तेजरूप अग्नि बाहर निकला ॥ १६ ॥ और वह अग्नि वृक्ष लता पक्षी मृगसमुदाय शिकारी पशु तथा सर्पोंसहित उस पर्वतको भस्म करने लगा ॥ १७ ॥ तब अनेक प्रकारके पशुओंके हाहाकारसे प्रतिध्वनित होता हुआ वह पर्वतका शिखर चेतनपदार्थ रहित होगया उसका उजड़ा हुआ दृश्य दया उपजाता था १८ (श्रीकृष्णके मुखमेंसे निकला हुआ) महाज्वाला वाला वह अग्नि उन सब पदार्थोंको भस्म कर विष्णुचरणोंके पास जा

मरिकर्शनः । सौम्यैर्दृष्टिनिपातैस्तं पुनः प्रकृतिमानयत् ॥ २० ॥
तथैव स गिरिर्भूयः प्रपुष्पितलताद्रुमः । सपक्षिगणसंघुष्टः सश्वा-
पदसरीसृपः ॥ २१ ॥ तमद्भुतमचिंत्यं च दृष्ट्वा मुनिगणास्तदा ।
विस्मितो हृष्टरोमा च बभूवास्राविलेक्षणः ॥२२॥ ततो नारायणो
दृष्ट्वा तानृषीन् विस्मयान्वितान् । प्रश्रितं मधुरं स्निग्धं पप्रच्छ
वदतां वरः ॥ २३ ॥ किमर्थमृषिपूगस्यत्यक्तसंगस्य नित्यशः ।
निर्ममस्यागमवतो विस्मयः समुपागतः ॥ २४ ॥ एतन्मे संशयं
सर्वं याथातथ्यमनिन्दिताः । ऋषयो वक्तुमर्हन्ति निश्चितार्थं
तपोधनाः ॥ २५ ॥ ऋषय ऊचुः । भवान् विसृजते लोकान्
भवान् संहरते पुनः । भवान् शीतं भवानुष्णं भवानेव च
वर्षति ॥ २६ ॥ पृथिव्यां यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

शिष्यकी समान उनके दोनों चरणोंका स्पर्श करने लगा १९
तब शत्रुनाशक विष्णुने उस भस्म हुए पर्वतको देखकर उस पर सौम्य दृष्टि डालकर उसको फिर प्रकृतिस्थ (जैसा था वैसा ही) कर दिया ॥ २० ॥ वह पर्वत उसी प्रकार खिली हुई बेल और पुष्पों वाला होगया, पक्षियोंके शब्दसे गुँजारने लगा, शिकारी पशु और सर्प वहाँ फिर फिरने लगे ॥ २१ ॥ मुनियोंका समूह इस अद्भुत और अचिन्त्य बातको देखकर आश्चर्यमें होगया, हर्ष के कारण रोमाञ्चित होगया और सबके नेत्रोंमें हर्षके आँसू भर गये ।२२। ऋषियोंको आश्चर्य करते देखकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ नारायण मधुरता और स्नेहमें भराहुआ विवेकमय प्रश्न बूझने लगे २३ "आपका यह ऋषिमण्डल संसारके संगसे सदा रहित है, ममता रहित है, शास्त्रज्ञ है, तब भी आपको विस्मय क्यों हुआ २४ हे निन्दारहित तपोधन ऋषियो! तुम सब मेरे इस संशयका निर्णय करके मुझे यथार्थ बात बताइये" २५ ऋषियोंने कहा, कि-आप लोकों को उत्पन्न करते हैं और आप ही उसका संहार करते हैं आप ही

तेषां पिता त्वं माता त्वं प्रभुः प्रभव एव च ॥ २७ ॥ एतं नो विस्मयकरं संशयं मधुसूदन । त्वमेवार्हसि कल्याण वक्तुं वन्हेर्विनिर्गमम् ॥२८॥ ततो विगतसंत्रासा वयमप्यरिकर्शन । यच्छ्रुतं यच्च दृष्टं नस्तत् प्रवक्ष्यामहे हरे ॥२९॥ वासुदेव उवाच । एतद्वै वैष्णवं तेजो मम वक्त्राद्विनिःसृतम् । कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो येनायं मथितो गिरिः ॥ ३० ॥ ऋषयश्चार्तिमापन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः । भवन्तो व्यथिताश्चासन् देवकल्पास्तपोधनाः ।३१। व्रतचर्यापरीतस्य तपस्विव्रतसेवया । मम वह्निः समुद्भूतो न वै व्यथितुमर्हथ ॥३२॥ व्रतं चर्तुमिहायातस्त्वहं गिरिमिमं शुभम्। पुत्रं चात्मसमं वीर्ये तपसा लब्धुमागतः ॥ ३३ ॥ ततो ममात्मा

शीतरूप हैं, आप ही उष्णरूप हैं आप ही दृष्टि करते हैं२६आप पृथ्वीके चराचर प्राणियोंके पिता हैं, माता हैं प्रभु हैं और उत्पत्तिस्थान हैं ॥२७॥ हे प्रभो ! आपके मुखमेंसे जो अग्नि निकला उससे हमें विस्मयमें डालने वाला सन्देह होगया, हे कल्याण ! आप ही इस विषयका वर्णन करिये २८ हे शत्रुसंहारक ! उस को सुन कर हमारा भय दूर होजायगा फिर हे, हरे ! हमने जो सुना है और जो देखा है उसका हम वर्णन करेंगे २९ वासुदेवने कहा, कि मेरे मुखमेंसे जो तेज बाहर निकला था वह विष्णुका तेज था और वह युगका नाश करने वाला अग्नि था उसने इस पर्वतको भस्म करके काला कर दिया था ३० और क्रोधको जीतने वाले, इन्द्रियोंको जीतने वाले और तपको धन मानने वाले देवताकी समान आप ऋषि उसको देख कर दयालु और दुःखी होगए थे३१मैं अभी एक व्रतका पालन करनेमें लगाहुआ था उस तपस्वी व्रतकी सेवासे मेरे (मुखमेंसे) अग्नि उत्पन्न हुआ है, इसमें तुमको खेद न मानना चाहिये ३२ मैं इस उत्तम पर्वत पर व्रत करनेके लिये आया हूँ और तप करके अपनी

यो देहे सोऽग्निर्भूत्वा विनिःसृतः । गतश्च वरदं द्रष्टुं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४ ॥ तेन चात्मानुशिष्टो मे पुत्रत्वे मुनिसत्तमाः । तेजसोऽर्धेन पुत्रस्ते भवितेति वृषध्वजः ॥ ३५ ॥ सोऽयं वह्निरुपागम्य पादमूले ममान्तिकम् । शिष्यवत् परिचर्यार्थं शान्तः प्रकृतिमागतः ॥ ३६ ॥ एतदेव रहस्यं वः पद्मनाभस्य धीमतः । मया प्रोक्तं समासेन न भीः कार्या तपोधनाः ॥ ३७ ॥ सर्वत्र गतिरव्यग्रा भवतां दीर्घदर्शनात् । तपस्विव्रतसंदीप्ता ज्ञानविज्ञानशोभिताः ॥ ३८ ॥ यच्छ्रुतं यच्च वो दृष्टं दिवि वा यदि वा भुवि । आश्चर्यं परमं किंचित्तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ॥ ३९ ॥ तस्यामृतनिकाशस्य वाङ्मधोरस्ति मे स्पृहा । भवद्भिः कथितस्येह

समान वीर्यवान् पुत्र पानेके लिये आया हूँ ३३ इस लिये मेरे शरीरमें जो आत्मा है, वह अग्निरूप होकर शरीरमेंसे बाहर निकला और सब लोकोंको वर देने वाले ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये गया । ३४ ॥ हे उत्तम मुनियों ! उस समय पितामहने मेरी आत्माको आज्ञा दी कि तुम्हारे यहाँ वृषभध्वज शंकर आधे तेजसे पुत्र होकर उत्पन्न होंगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर यह अग्नि शिष्यकी समान परिचर्या करनेके लिये मेरे पास आकर मेरे चरणोंमें झुक गया था और फिर शान्त होकर अपने वास्तविक स्वरूपको प्राप्त होगया था ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान ब्रह्माजी का यह रहस्य मैंने तुमसे संक्षेपमें कहदिया, हे तपोधनों ! तुम्हें कुछ भय नहीं रखना चाहिये ॥३७॥ दीर्घदृष्टि होनेके कारण आपकी गति सर्वत्र अव्यग्र (अप्रतिहत) है आप तपस्वियोंके व्रतसे प्रदीप्त होरहे हैं, ज्ञान और विज्ञानसे शोभा पारहे हैं ३८ आपने स्वर्गलोकमें या भूलोकमें जो परम आश्चर्य देखा हो, उसका आप मुझसे वर्णन करिये ॥३९॥ तुम तपोवनके निवासी हो, तुम्हारी वाणी अमृत और शहदकी समान मीठी है, उस

तपोवननिवासिभिः ॥ ४० ॥ यद्यप्यहमदृष्टं वो दिव्यमद्भुतदर्शनम् । दिवि वा भुवि वा किंचित् पश्याम्यमरदर्शनाः ॥ ४१ ॥ प्रकृतिः सा मम परा न क्वचित् प्रतिहन्यते । न चात्मगतमैश्वर्यमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४२ ॥ श्रद्धेयः कथितो ह्यर्थः सज्जनश्रवणं गतः । चिरं तिष्ठति मेदिन्यां शैले लेख्यमिवार्पितम् ४३ तदहं सज्जनमुखान्निःसृतं तत्समागमे । कथयिष्याम्यहमहं बुद्धिदीपकरं नृणाम् ॥ ४४ ॥ ततो मुनिगणाः सर्वे विस्मिताः कृष्णसन्निधौ । नेत्रैः पद्मदलप्रख्यैरपश्यंस्तं जनार्दनम् ॥ ४५ ॥ वर्धयन्तस्तथैवान्ये पूजयन्तस्तथापरे । वाग्भिऋग्भूषितार्थाभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥ ४६ ॥ ततो मुनिगणाः सर्वे नारदं देव-

---

को मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ४० ॥ हे देवताकी समान आकार वाले तपोधनों ! मैं स्वर्गमें और पृथिवीमें तुम्हारी न देखी हुई जो दिव्य बात देख रहा हूँ, उसमें मेरी परामकृति कारण है; वह कहींसे भी पीछेको नहीं फिरती है, इसलिये मुझे अपनेमें विद्यमान ऐश्वर्यसे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता है॥४१॥ ४२॥ सज्जनोंका सुना हुआ अथवा सज्जनों का कहा हुआ विषय श्रद्धा करने योग्य होता है और सज्जनोंका कहा हुआ वचन पत्थर पर लिखे हुए वचनकी समान पृथ्वी पर बहुत समय तक अटल रहता है ॥४३॥ सत्पुरुषोंके समागमके समय सत्पुरुषोंके मुखमेंसे निकलेहुए जिन धर्मसम्बन्धी विषयोंका मैं तुमसे वर्णन करूँगा, वे विषय आश्चर्यजनक रीतिसे मनुष्योंकी बुद्धिको दीपककी समान प्रज्वलित कर देते हैं ॥४४॥ तब तो कृष्णके समीप बैठे हुए सब ऋषि विस्मित होकर पद्मकी समान नेत्रोंसे श्रीकृष्णको देखने लगे ॥४५॥ बहुतसे ऋषि ऋग्वेदकी ऋचाओंके अर्थोंसे शोभायमान वचनोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे, बहुतसे उनकी प्रशंसा कर उनको बढ़ावा देते हुए उनकी पूजा

दर्शनम् । तदा नियोजयामासुर्वचने वाक्यकोविदम् ॥ ४७ ॥ मुनय ऊचुः । यदाश्चर्यमचिंत्यं च गिरौ हिमवति प्रभो । अनुभूतं मुनिगणैस्तीर्थयात्रापरैर्मुने ॥ ४८ ॥ तद्भवानृषिसंघस्य हितार्थं सर्वमादितः । यथादृष्टं हृषीकेशे सर्वमाख्यातुमर्हसि ४९ एवमुक्तः स मुनिभिर्नारदो भगवान्मुनिः । कथयमास देवर्षिः पूर्ववृत्तामिमां कथाम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

भीष्म उवाच । ततो नारायणसुहृन्नारदो भगवानृषिः । शंकरस्योमया सार्धं संवादं मत्यभाषत १ नारद उवाच । तपश्चचार धर्मात्मा वृषभांकः सुरेश्वरः । पुण्ये गिरौ हिमवति

करने लगे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सब मुनियोंने देवताकी समान हृदय वाले और वचन कहनेमें चतुर नारदजीको शंकर और पार्वतीका सम्वाद कहनेके लिये प्रेरित किया ॥ ४७ ॥ मुनियोंने कहा, कि–हे प्रभो ! (नारद) हे मुने ! तीर्थयात्रा करते हुए मुनियोंने हिमाचल पर्वत पर जिस (आश्चर्यमय) अचिन्त्य वृत्तान्त का अनुभव किया है ॥ ४८ ॥ उस सबको जैसे देखा हो तिस प्रकार हम ऋषियोंके हितके लिये आपको ही श्रीकृष्णसे कहना उचित है और आप ही इसके पात्र हैं ॥४९॥ इस प्रकार मुनियोंने देवर्षि नारदजीसे कहा, तब देवर्षि नारद पहिले कही हुई इस कथाको कहने लगे ॥ ५० ॥ एकसौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३९ ॥ छ छ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि–तदनन्तर नारायणके मित्र भगवान् नारद ऋषि (श्रीकृष्णके सामने) शंकरका उमाके साथ हुआ संवाद कहने लगे १ नारदजीने कहा, कि–एक समय वृषभध्वज सुरेश्वर धर्मात्मा शिव सिद्ध और चारणोंसे सेवित, नाना प्रकारकी

सिद्धचारणसेविते २ नानौषधियुते रम्ये नानापुष्पसमाकुले।
अप्सरोगणसंकीर्णे भूतसंघनिषेविते ३ तत्र देवो मुदा युक्तो भूत-
संघशतैर्वृतः । नानारूपैर्विरूपैश्च दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ ४ ॥
सिंहव्याघ्रगजप्रख्यैः सर्वजातिसमन्वितैः । क्रोष्टुकद्वीपिवदनै-
र्ऋक्षर्षभमुखैस्तथा ५ उलूकवदनैर्भीमैर्वृकश्येनमुखैस्तथा । नाना-
वर्णैर्मृगमुखैः सर्वजातिसमन्वितैः ॥ ६ ॥ किन्नरैर्यक्षगंधर्वै-
रक्षोभूतगणैस्तथा । दिव्यपुष्पसमाकीर्णं दिव्यज्वालासमाकुलम् ७
दिव्यचन्दनसंयुक्तं दिव्यधूपेन धूपितम् । तत्सदो वृषभांकस्य
दिव्यवादित्रनादितम्॥८॥मृदङ्गपणवोद्घुष्टं शंखभेरीनिनादितम्।

औषधियोंसे युक्त और नानाप्रकारके पुष्पोंसे छाये हुए, अप्स-
राओंसे भरे हुए और भूतोंकी टोलियोंसे सेवित मनोहर और
पुण्यमय हिमाचल पर्वत पर तप कर रहे थे ॥ २ ॥ ३ ॥ भग-
वान् शंकर उस पर्वत पर सैंकडों भूतोंसे घिर कर निवास
करते थे, वे भूत अनेक रूपधारी थे, भयंकर दीखते थे, दिव्य
थे, उनका आकार अद्भुत था ॥ ४ ॥ बहुतसे सिंहकी समान
बहुतसे व्याघ्रकी समान और बहुतसे हाथीकी समान थे, तहाँ
पर सब प्रकारके (प्राणियोंकी समान) गण थे, बहुतसोंके मुख
गीदड़ की समान थे, बहुतसोंके मुख भेडियेकी समान थे और
बहुतसोंके मुख बैलकी समान थे ॥ ५॥ बहुतसोंका मुख उल्लू
की समान भयंकर था, कितनोंका मुख भेड़िये और बाजकी
समान था, वे सब अनेक वर्णोंके थे और सब प्रकारके पशुओं
की समान भी बहुतसोंका मुख था ।। ६ ॥ किन्नर राक्षस यक्ष
गन्धर्व और भूतोंके ऐसे भयङ्कर टोलोंसे शंकर घिरे हुए थे,
उस हिमाचल पर्वत पर शंकरकी सभा दिव्य पुष्पोंसे छारही
थी दिव्य अग्निकी ज्वालाओंसे भरपूरथी ॥७॥ दिव्य चन्दनसे
युक्त थी तथा दिव्य धूप गन्धसे सुगन्धित थी, दिव्य वाजोंकी

नृत्यद्भिर्भूतसंघैश्च बर्हिणैश्च समन्ततः ॥ ९ ॥ प्रनृत्ताप्सरसं
दिव्यं देवर्षिगणसेवितम् । दृष्टिकान्तमनिर्देश्यं दिव्यमद्भुतदर्श-
नम् ॥ १० ॥ स गिरिस्तपसा तस्य गिरिशस्य व्यरोचत । स्वा-
ध्यायपरमैर्विप्रैर्ब्रह्मघोषो निनादितः ॥ ११ ॥ षट्पदैरुपगीतैश्च
माधवाप्रतिमो गिरिः । तन्महोत्सवसंकाशं भीमरूपधरं ततः १२
दृष्ट्वा मुनिगणस्यासीत् परा प्रीतिर्जनार्दन । मुनयश्च महाभागाः
सिद्धाश्चैवोर्ध्वरेतसः ॥ १३ ॥ मरुतो वसवः साध्या विश्वेदेवाः
सवासवाः । यक्षा नागाः पिशाचाश्च लोकपाला हुताशनाः १४
वाताः सर्वे महाभूतास्तत्रैवासन् समागताः । ऋतवः सर्वपुष्पैश्च
व्यकिरन्त महाद्भुतैः ॥ १५ ॥ ओषध्यो ज्वलमानाश्च द्योतयन्ति
स्म तद्वनम् । विहङ्गाश्च मुदा युक्ताः प्रानृत्यन् व्यनदंश्च ह १६

ध्वनिसे गुञ्जार रही थी उसमें भूतोंके टोले और मयूर चारों ओर नाच रहे थे मृदङ्ग पणव शंख और भेरीका शब्द गूँज रहा था ८-९ अप्सरायें भी नाच रहीं थीं, देवर्षियोंके मण्डल तहाँ बैठे थे, वह सभा दिव्य प्रतीत होरही थी और वह सभा नेत्रोंको मनोहर लगती थी, अनिर्वचनीय दिव्य और अद्भुत दृश्यवाली थी १० शंकरके तपसे वह पर्वत दिप रहा था, ब्राह्मणोंके वेदाध्ययनकी ध्वनिसे वह पर्वत गुञ्जार रहा था ॥११॥ हे माधव ! भ्रमरोंके गुञ्जारनेसे वह पर्वत अनुपम प्रतीत होता था, हे जनार्दन ! भयं-कर रूपको धारण करनेवाले उस पर्वत पर महोत्सवसा होता देखकर मुनियोंको उस पर्वत पर प्रेम उत्पन्न होगया और महाभाग्यवान् मुनि तथा ऊर्ध्वरेता सिद्ध पुरुष मरुत देवता वसु साध्य विश्वेदेवता इन्द्र यक्ष नाग पिशाच लोकपाल अग्नि सब पवन तथा सब भूत उस पर्वत पर एकत्रित थे, तहाँ ऋतुएँ सब प्रकारके आश्चर्यजनक पुष्पोंकी वर्षा बरसा रहीं थीं ॥१२-१५॥ औषधियें अपनी कान्तिसे हिमालयके वनमें दीपककी समान प्रका-

गिरिपृष्ठेषु रम्येषु व्याहरन्तो जनप्रियाः । तत्र देवो गिरितटे दिव्यधातुविभूषिते ॥ १७ ॥ पर्यंक इव विभ्राजन्नुपविष्टो महामनाः । व्याघ्रचर्माम्बरधरः सिंहचर्मोत्तरच्छदः ॥ १८ ॥ व्यालयज्ञोपवीती च लोहितांगदभूषणः । हरिश्मश्रुर्जटी भीमो भयकर्ता सुरद्विषाम् ॥ १९ ॥ अभयः सर्वभूतानां भक्तानां वृषभध्वजः । दृष्ट्वा महर्षयः सर्वे शिरोभिरवनिं गताः ॥ २० ॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः क्षान्ता विगतकल्मषाः । तस्य भूतपतेः स्थानं भीमरूपधरं बभौ ॥२१॥ अप्रधृष्यतरं चैव महोरगसमाकुलम् । क्षणेनैवाभवत् सर्वमद्भुतं मधुसूदन ॥ २२ ॥ तत्सदो वृषभांकस्य भीमरूपधरं

शित होरहीं थीं और पक्षी हर्षमें भरकर नाच रहे थे ॥ १६ ॥ और मनोहर गिरिपृष्ठ पर मनुष्योंको प्रिय लगनेवाला शब्द कर रहे थे, महामनस्वी भगवान् शंकर दिव्य धातुओंसे शोभायमान हिमाचल पर पलँग पर बैठे हुएसे शोभा पारहे थे, भगवान् शंकर व्याघ्राम्बर पहिर रहे थे, सिंहके चर्मको उत्तरीय वस्त्रकी समान डाले हुए थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ सर्परूप यज्ञोपवीतको पहिर रहे थे, हाथमें रक्तवर्णके बाजूबन्दको पहिर रहे थे, उनकी डाढ़ी हरे रङ्गकी थी, उनके मस्तक पर जटा थी, उनका दृश्य भयंकर था और दैत्योंको भयभीत करनेवाला था ॥१९॥ वह सब भक्तोंको और सब प्राणियोंको अभय देनेवाले प्रतीत होते थे, उनकी ध्वजामें बैलका चिह्न था, सब महर्षियोंने ऐसे शंकरके दर्शन करके पृथ्वी पर झुककर मस्तक नमा उनको प्रणाम किया २० ये सब ऋषि पापरहित, क्षमावान् और निर्दोष थे, भूतपतिके रहनेका स्थान भयंकर होने पर भी एक प्रकारके सौंदर्यवाला था ॥ २१ ॥ और महासर्पोंसे गच्छ रहा था और उसमें एकदम कोई प्रवेश नहीं करसकता था, हे मधुसूदन ! एक क्षणमें ही वहाँका सब दृश्य अद्भुत होगया ॥२२॥ वृषभांककी वह सभा

वभौ । तमभ्ययाच्छैलसुता भूतस्त्रीगणसंवृता ॥ २३ ॥ हरतुल्याम्बरधरा समानव्रतधारिणी । बिभ्रती कलशं रौक्मं सर्वतीर्थजलोद्भवम् ॥ २४ ॥ गिरिस्रवाभिः सर्वाभिः पृष्ठतोनुगता शुभा । पुष्पवृष्ट्याभिवर्षंती गन्धैर्बहुविधैस्तथा । सेवन्ती हिमवत्पार्श्वं हरपार्श्वमुपागमत् ॥ २५ ॥ ततः स्मयन्ती पाणिभ्यां नर्मार्थं चारुहासिनी । हरनेत्रे शुभे देवी सहसा सा समावृणोत् ॥२६॥ संवृताभ्यां तु नेत्राभ्यां तमोभूतमचेतनम् । निर्होमं निर्वषट्कारं जगद्वै सहसाभवत् ॥ २७ ॥ जनश्च विमनाः सर्वो भवत्राससमन्वितः । निमीलिते भूतपतौ नष्टसूर्य इवाभवत् ॥ २८ ॥ ततो वितिमिरो लोकः क्षणेन समपद्यत । ज्वाला च महती दीप्ता

भयंकर सौंदर्यवाली होगई, शैलपुत्री पार्वती भूतोंकी स्त्रियोंको साथमें लेकर उनके पास आई ॥२३॥ वह शंकरकी समान वस्त्र पहिर रहीं थीं और शंकरकी समान ही व्रतोंका पालन कररहीं थीं, सब तीर्थोंके जलसे भरी हुई सुवर्णकी कलशी उनके हाथमें थीं ॥ २४ ॥ उस शुभदेवीके पीछे सब गिरिनदियें भी आई थीं, इस प्रकार पुष्पोंकी वृष्टि करती २ तथा अनेक प्रकारकी सुगंधिको फैलाती हुई हिमाचल पर वसने वाली देवी शंकरके पास आई ॥ २५ ॥ तदनन्तर मधुरता भरा हास्य करने वाली देवी पार्वतीने शंकरके पास आकर मन्द २ हँस कर विनोद करनेके लिये शंकरके दोनों शुभ नेत्रोंको अपने दोनों हाथोंसे ढक दिया ॥ २६ ॥ शंकरके दोनों नेत्रोंको ढकते ही सम्पूर्ण जगत्में एक दम अँधेरा छा गया, जगत् अचेतन होगया, होम हवन तथा वषट्कार बन्द पड़ गए ॥ २७ ॥ सब मनुष्य उदास होगए, भयभीत होगए, भूतपतिकी आँखें मिचीं, कि-सूर्यका नाश होगयासा मालूम होने लगा ॥ २८ ॥ एक क्षण पीछे सब लोक तिमिर रहित होगया क्योंकि-शिवके ललाटमेंसे महाप्रका-

ललाटात्तस्य निःसृता ॥ २९ ॥ तृतीयं चास्य संभूतं नेत्रमादित्य-सन्निभम्। युगांतसदृशं दीप्तं येनासौ मथितो गिरिः ॥ ३० ॥ ततो गिरिसुता दृष्ट्वा दीप्ताग्निसदृशेक्षणम्। हरं प्रणम्य शिरसा ददर्शायतलोचना ॥ ३१ ॥ दह्यमाने वने तस्मिन् ससालसरल-द्रुमे। सचन्दनवरे रम्ये दिव्यौषधिविदीपिते ॥ ३२ ॥ मृगयूथैर्द्रुतैर्भीतैर्हरपार्श्वमुपागतैः। शरणं चाप्यविन्दद्भिस्तत्सदः संकुलं बभौ ॥ ३३ ॥ ततो नभस्पृशज्ज्वालो विद्युल्लोलाग्निरुल्वणः। द्वादशादित्यसदृशो युगांताग्निरिवापरः ॥ ३४ ॥ क्षणेन तन निर्दग्धो हिमवानभवन्नगः। सधातुशिखराभोगो दीप्तदग्धलतौ-षधिः ॥ ३५ ॥ तं दृष्ट्वा मथितं शैलं शैलराजसुता ततः। भगवन्तं

शवान् अग्निकी ज्वाला निकली ॥२९॥ और शिवके ललाटमें सूर्यकी समान तीसरा नेत्र उत्पन्न होगया, वह नेत्र प्रलयकालकी अग्निकी समान प्रकाशवान् था, उस नेत्रने हिमाचलको भस्म करना आरंभ कर दिया ॥ ३० ॥ उस समय विशाल नेत्र वाली गिरिपुत्री पार्वतीने शिवके तीसरे नेत्रको देख कर शिवको मस्तक नमा कर प्रणाम किया और देखा तो ॥३१॥ दिव्य औषधियों से प्रकाशवान् हिमालयके बनमें आम सरल और चन्दन आदिके वृक्ष जल रहे थे ॥ ३२ ॥ वन जल रहा था उसमें पशुओंके झुण्ड भयभीत होकर भाग रहे थे परन्तु उन्हें कहीं ठिकाना न मिला, तब वह शिवके पास आये और उनसे शिवकी सभा भरगई ॥३३॥ " थोड़ी देरमें उस अग्निकी ज्वालाएँ आकाश तक पहुँच गईं और बिजलीकी समान इधर उधर दमकने लगी अग्नि भी प्रलयके समय बारह सूर्योंके समान उग्र होगया तथा दूसरे प्रलयकालकी समान भयंकर दीखने लगा ॥ ३४ ॥ एक क्षणमें ही उस अग्निने धातुओंसे भरपूर शिखर तथा प्रकाश-वान् दिव्य लता तथा औषधियों सहित हिमालय पर्वतको भस्म

प्रपन्ना वै साञ्जलिः प्रग्रहा स्थिता ॥ ३६ ॥ उमां शर्वस्तदा दृष्ट्वा स्त्रीभावगतमार्दवाम् । पितुर्दैन्यमनिच्छंती प्रीत्यापश्यत्तदा गिरिम् ॥ ३७ ॥ क्षणेन हिमवान् सर्वः प्रकृतिस्थः सुदर्शनः । प्रहृष्टविहगश्चैव सुपुष्पितवनद्रुमः ॥ ३८ ॥ प्रकृतिस्थं गिरिं दृष्ट्वा प्रीतो देवं महेश्वरम् । उवाच सर्वलोकानां पतिं शिवमनिंदिता ३९ उमोवाच । भगवन् सर्वभूतेश शूलपाणे महाव्रत । संशयो मे महान् जातस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४० ॥ किमर्थं ते ललाटे वै तृतीयं नेत्रमुत्थितम् । किमर्थं च गिरिर्दग्धः सपक्षिगणकाननः ४१ किमर्थं च पुनर्देव प्रकृतिस्थस्त्वया कृतः । तथैव द्रुमसंछन्नः

कर दिया ॥ ३५ ॥ हिमालय पर्वतको दुःखित देख कर शैलराजकी पुत्री दोनों हाथ जोड़कर भगवान् शिवकी शरणमें जाकर खड़ी होगई ॥ ३६ ॥ उस समय शंकरने स्त्री जातिमें स्वाभाविकरूपसे रहने वाली मृदुता युक्त और अपने पिताको दुःखित देखना न चाहने वाली उमाको देख कर प्रीतिसे हिमाचलकी ओर दृष्टि करी कि-॥ ३७ ॥ एकही क्षणमें सारा हिमाचल फिर पहिलेकी समान सुहावना हो गया, उसके ऊपर रहने वाले पक्षी हर्षमें भरगये वनके वृक्ष पुष्पोंसे लदगये ॥ ३८ ॥ हिमालय पर्वतको वास्तविक आकारमें देख कर पवित्र आचरण वाली पार्वती प्रसन्न होगई और सब लोकोंके स्वामी भगवान् शंकरसे कहने लगीं ॥ ३९ ॥ उमाने कहा, कि-हे, भगवन् ! हे सर्वभूतेश ! हे शूलपाणि ! हे महाव्रत ! मेरे मनमें एक बड़ा भारी संशय उत्पन्न होगया है, उसका आप निर्णय करिये ४०. आपके ललाटमें तीसरा नेत्र क्यों उत्पन्न होगया ? और आपने पक्षियों सहित तथा वनसहित हिमाचल पहाड़को किस लिये भस्म करडाला था ? ॥ ४१ ॥ और आपने फिर उसको पहिले की समान ही क्यों कर दिया ? मेरे पिता हिमालयको आपने

कृतोऽयं ते पितर्मम॥४२॥महेश्वर उवाच । नेत्रे मे संवृते देवि त्वया बाल्यादनिन्दिते । नष्टालोकस्तदा लोकः क्षणेन समपद्यत॥४३ नष्टादित्ये तथा लोके तमोभूते नगात्मजे । तृतीयं लोचनं दीप्तं सृष्टं मे रक्षता प्रजाः ॥ ४४ ॥ तस्य चाक्ष्णो महत्तेजो येनायं मथितो गिरिः । त्वत्प्रियार्थं च मे देवि प्रकृतिस्थः पुनः कृतः ४५ उमोवाच । भगवन् केन ते वक्त्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् । पूर्वं तथैव श्रीकान्तमुत्तरं पश्चिमं तथा ॥ ४६ ॥ दक्षिणं च मुखं रौद्रं केनोर्ध्वं कपिला जटाः । केन कण्ठश्च ते नीलो बर्हिबर्हनिभः कृतः ॥ ४७ ॥ हस्ते देव पिनाकं ते सततं केन तिष्ठति । जटिलो ब्रह्मचारी च किमर्थमसि नित्यदा ॥४८॥ एतन्मे संशयं

पृथमकी समान वृक्षोंसे आच्छन्न क्यों कर दिया ? ॥ ४२ ॥ महेश्वरने कहा, कि–हे पवित्र देवि ! तूने बालकपनसे अपने हाथोंसे मेरे नेत्रोंको ढक दिया था तब क्षण भरमें ही जगत्में आलोक (तेज) का नाश होगया था ॥ ४३ ॥ हे पर्वतकी पुत्री ! उस समय सूर्य अदृश्य होगया था इसलिये जगत्में अंधेरा छागया था,तब मैंने पूजाकी रक्षा करनेके लिये तीसरा प्रकाशवान् नेत्र उत्पन्न किया था ४४ उस नेत्रके बड़े भारी तेजसे पहाड़ भस्म होगया था, तब हे देवि ! मैंने तेरा मनचीता काम करनेके लिये पहाड़का फिर वास्तविक रूप कर दिया था ॥ ४५ ॥ उमाने कहा, कि–हे भगवन् ! आपका पूर्व दिशाका मुख चन्द्रमाकी समान सुन्दर क्यों है ? तथा उत्तर दिशाका और पश्चिम दिशाका मुख शोभासे भरपूर क्यों है ? ॥४६॥ और दक्षिण दिशाकी ओरका मुख भयंकर क्यों है ? आपकी जटाएँ खड़ी हुई और पीली क्यों हैं ? आपका कण्ठ मोरके पङ्खकी समान श्याम रंगका क्यों है ? ॥ ४७ ॥ हे देव ! तुम सदा अपने हाथमें पिनाक नामक धनुषको किस लिये धारण किये

सर्वं वक्तुमर्हसि वै प्रभो । स धर्मचारिणी चाहं भक्ता चेति नृष-ध्वज ॥ ४६ ॥ भीष्म उवाच । एवमुक्तः स भगवान् शैलपुत्र्या पिनाकधृत् । तस्या धृत्या च बुद्ध्या च प्रीतिमानभवत् प्रभुः ॥ ५० ॥ ततस्तामब्रवीद्देवः सुभगे श्रूयतामिति । हेतुभि-र्यैर्ममैतानि रूपाणि रुचिराननै ॥ ५१ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४०

श्रीभगवानुवाच । तिलोत्तमा नाम पुरा ब्रह्मणा योषिदुत्तमा । तिलं तिलं समुद्धृत्य रत्नानां निर्मिता शुभा ॥ १ ॥ साभ्य-गच्छत मां देवि रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ प्रदक्षिणं लोभयन्ती मां शुभे रुचिरानना ॥२॥ यतो यतः स सुदती मामुपाधावदन्तिके ।

रहते हो और आप जटाधारी ब्रह्मचारीके वेशमें क्यों रहते हैं ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! हे वृषभध्वज ! मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ और भक्त हूँ इसलिये आप मेरे सब सन्देहोंको दूर करिये ४६ भीष्मजीने कहा, कि-इस प्रकार शैलपुत्रीने पिनाकधारी भग-वान् शंकरसे कहा, उस समय भगवान् शंकर पार्वतीके धैर्य और बुद्धिको देखकर प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ और कहने लगे, हे सुभगे! हे सुन्दरवदनि ! मैंने जिन कारणोंसे यह रूप धारण किये हैं, उन कारणोंको तू सुन ॥ ५१ ॥ एकसौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४० ॥ छ छ

श्रीभगवान्ने कहा कि-पहिले ब्रह्माजीने रत्नरूप पदार्थोंमेंसे तिल २ भर अंश ग्रहण करके तिलोत्तमा नामकी एक उत्तम और शुभ स्त्री उत्पन्न की थी १ हे शुभ देवि ! पृथ्वीमें अनुपम रूप-वाली वह स्त्री मेरे पास आई थी, वह सुन्दर मुखवाली मेरी प्रदक्षिणा करके मुझे लुभाना चाह रही थी २ हे देवि ! वह सुन्दर दांत वाली स्त्री जिस २ ओर मेरे पास दौड़ रही थी

ततस्ततो मुखं चारु मम देवि विनिर्गतम् ॥ ३ ॥ तां दिदृक्षुरहं योगाच्चतुर्मूर्तित्वमागतः । चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन् योगमुत्तमम् ॥४॥ पूर्वेण वदनेनाहमिन्द्रत्वमनुशास्मि ह । उत्तरेण त्वया सार्धं रमाम्यहमनिंदिते ॥ ५ ॥ पश्चिमं मे मुखं सौम्यं सर्वप्राणिसुखावहम् । दक्षिणं भीमसंकाशं रौद्रं संहरति प्रजाः ॥६॥ जटिलो ब्रह्मचारी च लोकानां हितकाम्यया । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पिनाकं मे करे स्थितम् ॥ ७ ॥ इन्द्रेण च पुरा वज्रं क्षिप्तं श्रीकांक्षिणा मम । दग्ध्वा कण्ठन्तु तद्यातं तेन श्रीकण्ठता मम ॥८॥ उमोवाच । वाहनेस्वत्र सर्वेषु श्रीमत्स्वन्येषु सत्तम । कथं च वृषभो

उस २ ओर उसको देखनेके लिये मेरा सुन्दर मुख उत्पन्न हुआ था ३ मैंने भी उसको देखनेकी इच्छासे योगके प्रभावसे चार मूर्तियें धारण करलीं और चार मुख वाला बनकर उसको अपना उत्तम योग दिखाया ४ मैं पूर्वदिशाकी ओरके मुखसे इन्द्रपना भोगता हूँ, हे पवित्र देवि ! उत्तरकी तरफके मुखसे मैं तुम्हारे साथ रमण करता हूँ ॥५॥ मेरा पश्चिम दिशाकी ओरका मुख शान्त है और सब प्राणियोंको सुख देने वाला, तथा दक्षिण दिशाकी ओरका मुख भयंकर और रुद्र है और प्रजाका संहार करता है ॥ ६ ॥ मैं लोकोंका कल्याण करनेकी इच्छासे जटाधारी और ब्रह्मचारी रहता हूँ, और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने हाथमें पिनाक नामक धनुषको धारण किये रहता हूँ ॥ ७ ॥ पहिले इन्द्रने मेरी लक्ष्मी सम्पादन करने की इच्छासे (मेरे कण्ठके ऊपर) वज्र मारा था, वह मेरे कण्ठ को दग्ध करके लौट गया था, (उस दिनसे मेरा कण्ठ श्याम रङ्गका होगया है) और मैं श्रीकण्ठ (नीलकण्ठ) कहलाता हूँ ॥ ८ ॥ उमाने बूझा, कि-हे श्रेष्ठ पुरुष ! हे देव ! और सब श्रेष्ठ वाहनोंको छोड़कर आपने इस बैलको ही अपना वाहन क्यों

देव वाहनत्वमुपागतः ॥ ९ ॥ महेश्वर उवाच । सुरभीमसृजद्ब्रह्मा देवधेनुं पयोमुचम् । सा सृष्टा बहुधा जाता, क्षरमाणा पयोऽमृतम् ॥ १० ॥ तस्या वत्समुखोत्सृष्टः फेनो मद्गात्रमागतः । ततो दग्धा मया गावो नानावर्णत्वमागताः॥११॥ ततोहं लोकगुरुणा शमं नीतोर्थवेदिना । वृषं चैनं ध्वजार्थं मे ददौ वाहनमेव च १२ उमोवाच । निवासा बहुरूपास्ते दिवि सर्वगुणान्विताः । तांश्च

बनाया है ॥ ९ ॥ महेश्वरने उत्तर दिया, कि-ब्रह्माजीने पहिले दूध देने वाली सुरभि नाम वाली देवधेनुको रचा था, उसने अनेक सन्तानोंको उत्पन्न किया और वे सब दूधरूप अमृत देने लगीं ॥ १० ॥ सुरभिका एक बछड़ा दूध पीरहा था, उस समय उसके मुखमेंसे एक फेन उड़कर मेरे शरीर पड़ा तब मैंने गौओंको दग्ध करदिया और वे अनेक वर्णों व लीं होगई ११ तदनन्तर व्यवहारको जानने वाले लोकगुरु ब्रह्माजीने मुझे उपदेश देकर शान्त किया और मुझे ध्वजा तथा वाहनके लिये वृषभ दिया, इससे वृषभ मेरा वाहन होगया है ॥ १२ ॥ उमाने कहा, कि-हे भगवन् ! स्वर्गमें आपके बहुतसे स्थान हैं और उन सबके बहुतसे आकार हैं और वे सब प्रकारके गुणोंसे भरे हुए हैं, उन स्थानोंको त्याग कर आप श्मशानमें ही क्यों रमण करते हैं (पहिले मैत्रेयने भिक्षा माँग कर काशीमें अज्ञातवास किया था, इस कथाको कहकर व्यासजीने सूचित किया है, कि-मुमुक्षु पुरुषोंको काशीमें अज्ञातवास करना चाहिये, अब सम्वर्तकी कथा कही जावेगी, कि-काशीमें शवके दर्शनसे शिवके दर्शनका फल मिलता है "अल्प भिक्षा देनेसे मैत्रेयको अनन्त पुण्य हुआ था" यह कह कर काशीको पुण्यक्षेत्र सूचित किया है "काशीमें शवका दर्शन करनेसे शिवके दर्शनका पुण्य मिलता है" इस बातसे यह सूचित किया है, कि-काशीमें मरे हुए मनुष्योंका

संत्यज्य भगवन् श्मशाने रमसे कथम् ॥ १३ ॥ केशास्थिकलिले भीमे कपालघटसंकुले । गृध्रगोमायुबहुले चिताग्निशतसंकुले ॥ १४ ॥ अशुचौ मांसकलिले वसाशोणितकर्दमे । विकीर्णान्त्रास्थिनिचये शिवानादविनादिते ॥ १५ ॥ महेश्वर उवाच । मेध्यान्वेषी महीं कृत्स्नां विचराम्यनिशं सदा । न च मेध्यतरं किंचित् श्मशानादिह लक्ष्यते ॥ १६ ॥ तेन मे सर्ववासानां श्मशाने रमते मनः । न्यग्रोधशाखासंछन्ने निर्भुग्नस्रग्विभूषिते ॥१७॥ तत्र चैव रमन्ती-

---

शरीर शिवलिंगमय होजाता है । काशीका नाम रूढ़िसे महाश्मशान है और उसमें ही शंकर अपना आवास बनाकर रहते हैं, इससे वह रुद्रावकाश कहलाता है । यह बात शंकरने सोलहवें श्लोकमें मेध्यान्वेषी पदसे सूचित की है, "मेधायां धीवृत्तौ विदितं मेध्यम्" मेधा अर्थात् बुद्धिवृत्तिमें वास करनेवाला मेध्य कहलाता है । बुद्धिवृत्तिमें ब्रह्मका वास है और उस ब्रह्मकी खोज करनेवाले शिव महाश्मशान माने जाने वाले काशीके श्मशानमें रहते हैं ब्रह्मप्राप्तिकी कामना वाले पुरुष भी इस महाश्मशान स्वरूप काशीमें रहते हैं) ॥१३॥ श्मशान तो मुरदोंकी अस्थियोंसे और केशोंसे भरा रहता है उसमें बहुतसे गिद्ध और गीदड़ घूमते रहते हैं और उसमें सैंकड़ों चितायें अग्निसे जल रहीं होती हैं ॥१४॥ अत एव वह अपवित्र होता है, तहाँ मांसका कलिल होता है, वहाँ चरबी और रुधिरकी कीचड़ होती है, तहाँ पर आँतों और हड्डियोंके ढेर लगे होते हैं और वह गीदड़ोंकी ध्वनिसे गूँजता रहता है ॥ १५ ॥ महेश्वरने कहा, कि-मैं पवित्र स्थानोंको खोजनेके लिये रात दिन सारी पृथ्वीमें घूमा करता हूँ परन्तु मुझे इस पृथ्वीपर श्मशानकी समान और कोई पवित्र स्थान नहीं दीखता ॥ १६ ॥ अत एव और सब स्थानोंमें रहनेकी अपेक्षा श्मशानमें रहनेसे ही मेरा मन प्रसन्न रहता

मे भूतसंघाः शुचिस्मिते । न च भूतगणैर्देवि विनाहं वस्तुमुत्सहे ॥ १८ ॥ एष वासो हि मे मेध्यः स्वर्गीयश्च मतः शुभे । पुण्यः परमकश्चैव मेध्यकामैरुपास्यते ॥१९॥ उमोवाच । भगवन् सर्वभूतेश सर्वधर्मविदां वर । पिनाकपाणे वरद संशयो मे महानयम् ॥२०॥ अयं मुनिगणः सर्वस्तपस्तेप इति प्रभो । तपोवेषकरो लोके भ्रमते विविधाकृतिः ॥ २१ ॥ अस्य चैवर्षिसंघस्य मम च प्रियकाम्यया । एतं ममेह सन्देहं वक्तुमर्हस्यरिंदम ॥२२॥ धर्मः किंलक्षणः प्रोक्तः कथं वा चरितुं नरैः । शक्यो धर्ममविद्वद्भिर्धर्मज्ञ वद मे प्रभो ॥ २३ ॥ नारद उवाच । ततो मुनिगणः

है, श्मशान वटकी छायासे आच्छन्न होता है तथा शवकी टूटी हुई पुष्पमालाओंसे शोभायमान लगता है ॥१७॥ और हे पवित्र हास्यवाली ! ये भूत भी श्मशानमें ही विहार करते हैं, हे देवि ! मैं इन भूतोंके विना अकेला रहना नहीं चाहता ॥१८॥ हे शुभे ! मैं श्मशानके वासको पवित्र और स्वर्गकी समान मानता हूँ, श्मशानका वास महापवित्र है और पवित्रताकी कामना वाले पुरुष उसकी सेवा करते हैं ॥ १९ ॥ उमाने कहा, कि-हे भगवन् ! हे सब भूतोंके ईश ! हे सब धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! हे पिनाकपाणि! हे वरदायक ! मुझे एक बड़ा भारी सन्देह है कि - ॥ २० ॥ हे प्रभो ! ये सब मुनि तप करते हैं और अनेक प्रकारके तपस्वियोंका वेश धारण करके पृथ्वी पर विचरते हैं ॥२१॥ अतः इस ऋषिसंघका तथा मेरा हित करनेकी इच्छासे हे शत्रुदमन ! मेरे इस सन्देहका निर्णय करो कि-॥२२॥ धर्मका स्वरूप क्या है ? धर्मके न जाननेवाले पुरुषको धर्मका किस प्रकार आचरण करना चाहिये ? हे धर्मज्ञ प्रभो ! इस सबका आप मुझसे वर्णन करिये ॥ २३ ॥ नारदजीने कहा, कि-उस समय सब ऋषि इस देवीकी ऋग्वेदकी ऋचाओंसे शोभायमान तथा उत्तम अर्थों

सर्वस्तां देवीं मत्यपूजयत् । वाग्भिरग्र्यभूषितार्थाभिः स्तवैश्चार्थविशारदैः ॥ २४ ॥ महेश्वर उवाच । अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् । शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः २५ परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम् । अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम् ॥ २६ ॥ एष पंचविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः । देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसम्भवः ॥२७॥ उमोवाच । भगवन् संशयः पृष्टस्तन्मे शंसितुमर्हसि । चातुर्वर्ण्यस्य यो धर्मः स्वे स्वे वर्णे गुणावहः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणे कीदृशो धर्मः क्षत्रिये कीदृशो भवेत् । वैश्ये किंलक्षणो धर्मः शूद्रे किंलक्षणो भवेत् ॥ २९ ॥ महेश्वर उवाच । न्यायतस्ते महाभागे सर्वशः

से विभूषित स्तोत्रोंसे स्तुति कर पूजा करने लगे ॥ २४ ॥ महेश्वरने उत्तर दिया, कि-(मन वाणी और शरीरसे किसीकी हिंसा न करना) अहिंसा, सत्यभाषण, सब प्राणियों पर दया शम और यथाशक्ति दान देना यह गृहस्थका उत्तम धर्म माना जाता है ॥ २५ ॥ परस्त्रीसे संसर्ग न करना चाहिये, धरोहड और परस्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये, न दी हुई वस्तु न उठानी चाहिये, मद्य और मांसको त्याग देना चाहिये ॥ २६ ॥ यह पाँच प्रकारका धर्म है, इसके अनेक भेद हैं और वे सुख देने वाले हैं, धर्मको उत्तम माननेवाले मनुष्योंको इनका आचरण करना चाहिये, इनसे धर्म उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ उमाने कहा, कि-हे भगवन् ! मैं आपसे जो सन्देह बूझती हूँ, उसका उत्तर आपको देना उचित है "चारों वर्णोंके पुरुषोंको अपनी २ जातिका जो धर्म सुखकारक हो उसका आप मुझसे वर्णन करिये।२८॥ब्राह्मणोंमें कैसा धर्म होना चाहिये? क्षत्रियों में कैसा धर्म होना चाहिये ? वैश्यमें कैसा धर्म होना चाहिये ? और शूद्रमें कैसा धर्म होना चाहिये ? ॥ २९ ॥ महेश्वरने कहा

समुदीरितः । भूमिदेवा महाभागाः सदा लोके द्विजातयः ॥३०॥
उपवासः सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न संशयः। स हि धर्मार्थसम्पन्नो
ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३१ ॥ तस्य धर्मक्रिया देवि ब्रह्मचर्या च
न्यायतः। व्रतोपनयनं चैव द्विजो येनोपपद्यते॥३२॥गुरुदैवतपूजार्थं
स्वाध्यायाभ्यसनात्मकः। देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसंभवः३३
उमोवाच । भगवन् संशयो मेऽस्ति तन्मे व्याख्यातुमर्हसि । चातु-
र्वर्ण्यस्य धर्मं वै नैपुण्येन प्रकीर्तय ॥ ३४ ॥ महेश्वर उवाच ।
रहस्यं श्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् । अग्निकार्यं तथा धर्मो
गुरुकार्यप्रसाधनम् ॥३५॥ भैक्ष्यचर्यापरो धर्मो नित्ययज्ञोपवीतिता।
नित्यं स्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याश्रमस्तथा ॥ ३६ ॥ गुरुणा

कि हे महाभाग्यवति पार्वति ! तूने न्यायपूर्वक वर्णन करके सब कुछ बूझ डाला, जगत्में ब्राह्मण महाभाग्यशाली तथा पृथ्वीके देवता कहलाते हैं ॥३०॥ उपवास (इन्द्रियोंका निग्रह) करना ब्राह्मणोंका सदाका धर्म है, इसमें सन्देह नहीं है, जो ब्राह्मण धर्म-सम्पन्न होता है वह ब्रह्मरूप होसकता है ॥ ३१ ॥ हे देवि ! ब्राह्मण विधिपूर्वक धर्मकृत्य करे ब्रह्मचर्यका पालन करे तथा द्विज बनाने वाले उपनयन संस्कारसे संस्कृत होवे ॥ ३२ ॥ गुरु और देवताकी पूजा करनेके लिये स्वाध्यायके अभ्यास-रूपी धर्मको उत्पन्न करनेवाले धर्मका आचरण करना चाहिये ३३ उमाने कहा, कि-हे भगवन्! मुझे सन्देह है उसकी आपको व्याख्या करनी चाहिये, और चातुर्वर्ण्य (चारों वर्णों) के धर्मोंका कुशलतापूर्वक वर्णन करिये, ३४महेश्वरने कहा, कि-ब्रह्मचारी धर्मके रहस्यको सुने, वेदोक्त महानाम्नी आदि व्रत करे, अग्निमें होम करे, गुरुके घरका कार्य करे ३५ग्राममेंसे भिक्षा माँगकर लाय, सदा यज्ञोपवीत धारण करे, सदा स्वाध्यायका अध्ययन करे, यह ब्रह्मचर्याश्रमका धर्म है ॥ ३६ ॥ गुरुकी आज्ञा मिलने पर

चाभ्यनुज्ञातः समावर्तेत वै द्विजः । विन्देतानन्तरं भार्यामनुरूपां यथाविधि ॥ ३७ ॥ शूद्रान्नवर्जनं धर्मस्तथा सत्पथसेवनम् । धर्मो नित्योपवासित्वं ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥३८॥ आहिताग्निरधीयानो जुह्वानः संयतेन्द्रियः । विघसाशी यताहारो गृहस्थः सत्यवाक् शुचिः ॥३९॥ अतिथिव्रतता धर्मो धर्मस्त्रेताग्निधारणम् । इष्टीश्च पशुबन्धांश्च विधिपूर्वं समाचरेत् ॥ ४० ॥ यज्ञश्च परमो धर्मस्तथाऽहिंसा च देहिषु । अपूर्वभोजनं धर्मो विघसाशित्वमेव च ॥ ४१ ॥ भुंक्ते परिजने पश्चाद्भोजनं धर्म उच्यते । ब्राह्मणस्य गृहस्थस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः ॥ ४२ ॥ दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्याद्‌ गृहमेधिनः । गृह्याणां चैव देवानां नित्यपुष्पबलि-

---

ब्राह्मण समावर्तन नामक संस्कार करे फिर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अपने योग्य भार्याके साथ विवाह करे ॥३७॥ गृहस्थ ब्राह्मण शूद्रके घरका अन्न न खाय, राजमार्ग पर चले, इन्द्रियों का सदा निग्रह करे, ब्रह्मचर्यव्रत पाले ॥ ३८ ॥ अग्निका आधान लेय, वेदका अध्ययन करे, अग्निमें होम करे इन्द्रियों का निग्रह करे, ब्राह्मणोंको जिमानेके पीछे शेष अन्नका भोजन करे, नियमित आहार करे, सत्य बोले, पवित्र रहे ॥ ३९ ॥ अतिथि सत्कार करे आहवनीय आदि तीन अग्नियोंको अपने घरमें रक्खे, इष्टि और पशुबन्धेष्टियोंको विधिपूर्वक करे ४० यज्ञ करे यह भी परमधर्म है, किसी भी देहधारीकी हिंसा न करना भी धर्म है, माता पिता और अतिथिको जिमाये बिना भोजन न करे, यह भी परमधर्म है और अतिथि ब्राह्मण तथा देवता आदिको भोजन करानेके पीछे भोजन करे यह भी परम धर्म है ॥ ४१ ॥ जब अपने घरके सब मनुष्य भोजन करचुकें तब भोजन करे यह गृहस्थ ब्राह्मणका मुख्य धर्म है और वेद-वेत्ता ब्राह्मणोंका विशेषतः परम धर्म है ॥ ४२ ॥ स्त्री और

क्रिया ॥४३॥ नित्योपलेपनं धर्मस्तथा नित्योपवासिता । सुसंमृष्टोपलिप्ते च साज्यधूमो भवेद्गृहे ॥ ४४ ॥ एष द्विजजने धर्मो गार्हस्थो लोकधारणः । द्विजानां च सतां नित्यं सदैवैष प्रवर्तते ४५ यस्तु क्षत्रगतो देवि मया धर्म उदीरितः । तमहं ते प्रवक्ष्यामि तन्मे शृणु समाहिता ॥४६॥ क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः । निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥४७॥ प्रजाः पालयते यो हि धर्मेण मनुजाधिपः । तस्य धर्मार्जिता लोकाः प्रजापालनसंचिताः ॥ ४८ ॥ तस्य राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च । अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ४९ ॥ यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा । भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ५०

पुरुष समान रीतिसे धर्मका पालन करें यह गृहस्थका धर्म है तथा घरके देवताओंका सदा पुष्प चन्दन आदिसे पूजन करें और नित्य उनको बलि देंय, यह भी गृहस्थोंका परम धर्म है ॥४३॥ घरको लीपकर सदा साफ रक्खे,और उसमें देवताओंके उद्देश्य से घृतकी आहुति सदा देय ॥ ४४ ॥ यह गृहस्थ ब्राह्मणका धर्म है और वह संसारकी रक्षा करनेवाला है उत्तम ब्राह्मण इस धर्मका सदा पालन करते हैं ॥ ४५ ॥ हे देवि ! मैंने जो क्षत्रियोंका धर्म विचारा है मैं उसको कहूँगा, तू सावधान होकर सुन ॥ ४६ ॥ प्रजाका पालन करना क्षत्रियका मुख्य धर्म है, यह बात धर्मशास्त्रमें कही है, जो राजा प्रजासे छठा भाग कर लेता है, उस राजाको धर्म होता है ॥ ४७ ॥ जो राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता है, वह राजा प्रजापालनरूपी धर्मके आचरणसे परलोकको पाता है॥ ४८ ॥ इन्द्रियोंका दमन करना, स्वाध्याय-करना, अग्निमें होम करना, दान देना, पढना, यह क्षत्रियका परम धर्म है ॥ ४९ ॥ नित्य यज्ञोपवीत धारण करना यज्ञ करना, धर्मक्रिया करना सेवक आदि पोष्यवर्गका पोषण

सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः । व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥ ५१ ॥ आर्तहस्तप्रदो राजा प्रेत्य चेह महीयते । गोब्राह्मणार्थे विक्रान्तः संग्रामे निधनं गतः ॥ ५२ ॥ अश्वमेधजितांल्लोकानाप्नोति त्रिदिवालये ॥५३॥ वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा । अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥५४॥ वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः । विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः ॥ ५५ ॥ तिलान् गन्धान् रसांश्चैव विक्रीणीयान्न चैव हि । वणिक्पथमुपासीनो वैश्यः सत्पथमाश्रितः ॥ ५६ ॥ सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति यथा-

---

करना तथा आरम्भ कियेहुए कर्मको सफल करना यह सब क्षत्रियका धर्म है ॥ ५० ॥ और भली प्रकार शिक्षा देना भी क्षत्रियका धर्म है, वेदोक्त यज्ञ आदि क्रियाएँ करना भी उसका धर्म है, व्यवहारकी मर्यादाका पालन करना और सत्य वाक्य पर प्रीति रखना क्षत्रियका धर्म है ॥ ५१ ॥ जो क्षत्रिय आतुर मनुष्यको अवलम्बन देता है, उसकी इस लोकमें तथा परलोकमें पूजा होती है. और जो क्षत्रिय गौ और ब्राह्मणके लिये पराक्रम करके संग्राममें मर जाता है ॥५२॥ वह क्षत्रिय परलोकमें अश्वमेधयज्ञसे मिलने वाले लोकोंको पाता है ॥ ५३ ॥ पशुओंका पालन करना, कृषि करना, अग्निहोत्रमें होम करना, दान देना तथा वेदका अध्ययन करना, ये वैश्यका नित्य धर्म है ॥ ५४ ॥ व्यापार करना, सन्मार्ग पर चलना, अतिथिसत्कार करना, शान्ति रखना, इन्द्रियोंका दमन करना, ब्राह्मणोंका आदर सत्कार करना तथा उनको दान देना वैश्योंका सनातन धर्म है ५५ व्यापार करने वाला और सन्मार्गका आश्रय लेने वाला वैश्य तिल चन्दन आदि सुगंधित पदार्थोंको तथा नमक आदि रसोंको न बेचे ॥५६॥ सब प्रकारसे ब्राह्मण आदि त्रिवर्गका आतिथ्य

हेतः । शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ॥५७॥ स शूद्रः संशितत पाः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ शुश्रूषुरतिथिं प्राप्तं तपः संचिनुते महत् ॥५८॥ नित्यं स हि शुभाचारो देवताद्विजपूजकः शूद्रो धर्मफलैरिष्टैः संप्रयुज्येत बुद्धिमान् ॥५९॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं चातुर्वर्ण्यस्य शोभने । एकैकस्येह सुभगे किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ६० उमोवाच । उक्तस्त्वया पृथग्धर्मश्चातुर्वर्ण्यहितः शुभः । सर्वव्यापी तु यो धर्मो भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ॥६१॥ महेश्वर उवाच । ब्राह्मणा लोकसारेण सृष्टा धात्रा गुणार्थिना । लोकांस्तारयितुं कृत्स्नान् मर्त्येषु क्षितिदेवताः ॥ ६२ ॥ तेषामपि प्रवक्ष्यामि धर्मकर्मफलो-

(अथवा धर्म अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंका सेवन) यथाशक्ति और योग्यताके अनुसार करना यह वैश्यका धर्म है, द्विजातिकी सेवा यह शूद्रका नित्य परमधर्म है५७जो शूद्र प्राप्त हुए अतिथिकी सेवा करना चाहता है उस शूद्रको उत्तम तपस्वी सत्यवादी और जितेन्द्रिय मानना चाहिये, वह महातपका संग्रह करता है ॥५८॥ जो शूद्र सदा द्विजोंकी और देवताओंकी पूजा करता है उस शूद्रको सदा शुभ आचार वाला और बुद्धिमान् समझना चाहिये और उसको धर्माचरणका मनमाना फल मिलता है ५९ हे शोभने ! हे सद्भाग्यवति ! मैंने तुमसे चारों वर्णोंके एक साथ और भिन्न २ धर्म कहे अब तू क्या सुनना चाहती है? ६० उमाने कहा, कि-हे भगवन ! आपने चारों वर्णोंका हित करने वाले शुभ धर्म अलग २ कहे अब जो धर्म सर्वव्यापी हो उसका मुझसे वर्णन करिये ॥ ६१ ॥ महेश्वरने कहा, कि-जगत्में सारभूत ब्रह्माजीने जगत्का हित करनेकी इच्छासे मनुष्योंमें ब्राह्मणोंको सब लोकोंको तारनेके लिये उत्पन्न किया है, वे पृथ्वी पर मनुष्योंमें देवताकी समान हैं ॥ ६२ ॥ उन ब्राह्मणों के धर्म और कर्मके फलोंको मैं तुमसे कहता हूँ, ब्राह्मणोंमें जो-

दपम् । ब्राह्मणेषु हि यो धर्मः स धर्मः परमो मतः ॥ ६३ ॥ इमे ते लोकधर्मार्थे त्रयः सृष्टाः स्वयंभुवा । पृथिव्यां सर्जने नित्यं सृष्टांस्तानपि मे शृणु ॥६४॥ वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतो परः । शिष्टाचीर्णो परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः ॥ ६५ ॥ त्रैविद्यो ब्राह्मणो विद्वान्न चाध्ययनजीवकः । त्रिकर्मा त्रिपरिक्रांतो मैत्र एष स्मृतो द्विजः ॥ ६६ ॥ षडिमानि तु कर्माणि प्रोवाच भुवनेश्वरः । वृत्त्यर्थं ब्राह्मणानां वै शृणु धर्मान् सनातनान् ६७ यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ । अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥ ६८ ॥ नित्यः स्वाध्यायिता धर्मो धर्मो यज्ञः

धर्म रहता है वह परमधर्म माना जाता है ॥ ६३ ॥ ब्रह्माजीने लोकोंसे धर्माचरण करानेके लिये तीन धर्मोंको रचा है, जब पृथिवीकी उत्पत्ति होती है, तब इनकी भी उत्पत्ति होती है, उन तीन धर्मोंको भी तू सुन ॥ ६४ ॥ वेदवर्णित मुख्य धर्म दूसरे धर्मशास्त्रोंमें वर्णित धर्म और तीसरे शिष्ट पुरुषोंके आचरित धर्म (जिसको सदाचार कहते हैं) इस प्रकार तीन सनातन धर्मोंका ब्रह्माजीने वर्णन किया है ॥ ६३ ॥ (१) जो तीनों वेदोंको पढा हो (२) वेद तथा शास्त्रमें विद्वान् हो (३) वेद पढाकर अपनी आजीविका न चलाता हो (४) दान वेद शास्त्र का अध्ययन और याग इन तीन कर्मोंको करता हो (५) जिसने काम क्रोध और लोभको त्याग दिया हो और (६) सब प्राणियों पर दया रखता हो उसको ब्राह्मण समझना चाहिये ६६ भुवनेश्वरने ये छः धर्म ब्राह्मणोंके पालनेके लिये बताये हैं अब ब्राह्मणोंकी आजीविकाके जो सनातन धर्म हैं उनको तू सुन ६७ यज्ञ करना और यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना, वेद पढना और पढाना ये छः कर्म धर्मवेत्ता ब्राह्मणोंके हैं ॥६८ ॥ ब्राह्मण वेदका स्वाध्याय करे, सनातन यज्ञ करे यह धर्म है

सनातनः । दानं प्रशस्यते चास्य यथाशक्ति यथाविधि ॥ ६९ ॥
शमस्तु परमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः । गृहस्थानां विशुद्धानां
धर्मस्य निचयो महान् ॥ ७० ॥ पञ्चयज्ञविशुद्धात्मा सत्यवागन-
सूयकः । दाता ब्राह्मणसत्कर्ता सुसंमृष्टनिवेशनः ॥७१॥ अमानी
च सदा जिह्मः स्निग्धवाणीप्रदस्तथा । अतिथ्यभ्यागतरतिः
शेषान्नकृतभोजनः ॥ ७२ ॥ पाद्यमर्घ्यं यथान्यायमासनं शयनं
तथा । दीपं प्रतिश्रयं चैव यो ददाति स धार्मिकः ॥ ७३ ॥ प्रात-
रुत्थाय चाचम्य भोजनेनोपमंत्र्य च । सत्कृत्यानुव्रजेद्यस्तु तस्य
धर्मः सनातनः ॥ ७४ ॥ सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति निशा-
निशम् । शूद्रधर्मः समाख्यातस्त्रिवर्गपरिचारणम् ॥७५॥ प्रवृत्ति-

तथा यथाशक्ति और यथाविधि दान देना यशोदायक है ।६९।
शम (शान्ति) परमधर्म है यह सदा सत्पुरुषोंमें ही दीखता है
यह शुद्ध अन्तःकरणवाले गृहस्थोंके धर्मका महान् सार है ७०
गृहस्थ पञ्चमहायज्ञ करके अपने मनको शुद्ध रक्खे, सत्य बोले,
किसीसे ईर्षा न करे, दान देय, ब्राह्मणोंका सत्कार करे अपने
घरको झाड़ बुहारकर लीपकर और जलके छींटे देकर शुद्ध करे ७१
अभिमान न करे, सदा सरल रहे, स्नेहभरी वाणी बोले, अतिथि
और अभ्यागतों पर प्रीति रक्खे, देवता अतिथि तथा माता पिता
आदिके भोजन करनेके अनन्तर बचे हुए अन्नका भोजन करे ७२
जो पुरुष अपने घर आयेहुए अतिथिको पैर धोनेके लिये जल,
हाथ के लिये अर्घ, बैठनेके लिये आसन, सोनेके लिये शयनीय,
सुभसे बर्णनकरनेके लिये घर देता है उसको धार्मिक समझना
सारभूत ब्रह्माजीने न प्रातःकालमें उठ आचमन करके भोजनके
ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देता है और सत्कारपूर्वक उसके पीछे
पृथ्वी उसको सनातनधर्मका लाभ होता है ॥ ७४ ॥ (शूद्र
धर्मका) गृहस्थ पुरुष रात दिन सबसे पहिले शक्तिके अनु-

लक्षणो धर्मो गृहस्थेषु विधीयते । तमहं वर्तयिष्यामि सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ७६ ॥ दातव्यमसकृच्छक्त्या यष्टव्यमसकृत्तथा । पुष्टिकर्मविधानं च कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥७७॥ धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम् । कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः ॥७८॥ एकेनांशेन धर्मार्थौ कर्तव्यौ भूतिमिच्छता । एकेनांशेन कामार्थ एकमंशं विवर्धयेत् ॥ ७९ ॥ निवृत्तिलक्षणस्त्वन्य धर्मो मोक्षाय तिष्ठति । तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु मे देवि तत्त्वतः॥८०॥ सर्वभूतदयाधर्मो न चैकग्रामवासिता । आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ८१ ॥ न कुट्यां नोदके संगो न वाससि न

सार त्रिवर्णके अतिथियोंका सत्कार करे तथा तीनों वर्णोंकी यथाशक्ति सेवा करे यह शूद्रका धर्म धर्मशास्त्रमें कहा है ॥ ७५ ॥ अब मैं शास्त्रमें वर्णित गृहस्थ प्राणियोंके हित करने वाले शुभधर्मका तुमसे वर्णन करूँगा ॥ ७६ ॥ कल्याण चाहने वाला पुरुष सदा शक्तिके अनुसार दान दे सदा शक्तिके अनुसार यज्ञ करे और पुष्टिके भी कर्म करे ॥ ७७ ॥ धर्मसे धन सम्पादन करे और धर्मसे मिलेहुए धनके मनुष्य प्रयत्नपूर्वक तीन विभाग करके परमधर्म करे ॥ ७८ ॥ धनकी इच्छा रखने वाला पुरुष धनके एक भागमेंसे धर्म और अर्थको सिद्ध करे एक भागका अपने सुखके काममें उपयोग करे और एक भागको बढ़ानेके लिये रक्खे ॥ ७९ ॥ मोक्ष देने वाला एक निवृत्तिरूप धर्म और है, उसका मैं वर्णन करता हूँ उसके स्वरूपको हे देवि ! तू यथार्थरीतिसे सुन ॥ ८० ॥ मोक्ष चाहने वाले पुरुषोंको सब प्राणियों पर दया रखनी चाहिये एक ही ग्राममें वा नगरमें सदा नहीं रहना चाहिये और आशारूपी पाशको तोड़ डालना चाहिये, इनसे मुमुक्षुओंकी प्रशंसा होती है ॥ ८१ ॥ और मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाले) पुरुष झोंपड़ी पर आसक्ति न रक्खें त्रिदण्ड

वासने । न त्रिदण्डे न शयने नाग्नौ न शरणालये ॥ ८२ ॥ अध्यात्मगतिचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायणः। युक्तो योगं प्रति सदा प्रति संख्यानमेव च ॥ ८३ ॥ वृक्षमूलपरो नित्यं शून्यागारनिवेशनः । नदीपुलिनशायी च नदीतीररतिश्च यः॥८४॥ विमुक्तः सर्वसंगेषु स्नेहबन्धेषु च द्विजः । आत्मन्येवात्मनो भावं समासज्जेत वै द्विजः ॥ ८५ ॥ स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा । परिव्रजति यो युक्तस्तस्य धर्मः सनातनः ॥ ८६ ॥ न चैकत्रसमासक्तो न चैकग्रामगोचरः । मुक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः ॥ ८७ ॥ एष मोक्षविदां धर्मो वेदोक्तः सत्पथः सताम् । यो मार्गमनुयातीमं पदं तस्य च विद्यते ॥८८॥ चतुर्विधा

पर आसक्ति न रक्खें पलंग पर स्त्री पर अग्नि पर और घर पर भी आसक्ति न रक्खें ॥ ८२ ॥ आत्मज्ञान पर मन रक्खे उसमें ही मन लगावे उसमें ही परायण रहें, तथा योग और सांख्यका भी विचार करते रहें ॥ ८३ ॥ सदा वृक्षकी जडमें ही निवास करें, ऊजड घरमें रहें, नदीके तट पर शयन करें और नदीके तट पर रहनेकी इच्छा करें ८४ द्विज सब प्रकारके संगों को और स्नेहके बन्धनोंको त्याग कर आत्माके विषें आत्मस्वरूपसे ही आसक्त रहें ॥ ८५ ॥ स्तम्भकी समान स्थिर रहें, निराहार रहें मोक्ष पानेके लिए जिन कर्मोंको करना चाहिये उन कर्मोंको करके जो पुरुष संसारको त्याग देता है उसको सनातनधर्मका लाभ होता है ८६ संन्यासी एक स्थान पर आसक्ति न रक्खें तैसे ही एक ग्राममें ही न रहे तथा एक ही नदीके तटपर भी शयन न करे इस प्रकार वर्ताव करनेके कारण सब सङ्गोंसे मुक्त हुआ पुरुष शीघ्र ही संसारसे मुक्त होजाता है८७सत्पुरुषोंका सन्मार्गरूप मोक्षवेत्ताओंका वेदोक्तधर्म मैंने तुझ से कहा, जो पुरुष इस मार्गका अनुसरण करता है उसको मोक्ष

भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ। हंसः परहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः ॥८९॥ अतः परतरं नास्ति नावरं न तिरोग्रतः। अदुःखमसुखं सौम्यमजरामरमव्ययम् ॥ ९० ॥ उमोवाच । गार्हस्थ्यो मोक्षधर्मश्च सज्जनाचरितस्त्वया । भाषितो जीवलोकस्य मार्गः श्रेयस्करो महान् ॥ ९१ ॥ ऋषिधर्मं तु धर्मज्ञ श्रोतुमिच्छाम्यतः परम् । स्पृहा भवति मे नित्यं तपोवननिवासिषु ॥९२॥ आज्यधूमोद्भवो गन्धो रुणद्धीव तपोवनम् । तं दृष्ट्वा मे मनः प्रीतं महेश्वर सदा भवेत् ॥९३॥एतन्मे संशयं देव मुनिधर्मकृतं विभो । सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञ देवदेव वदस्व मे । निखिलेन मया पृष्टं महादेव

भिक्षुकी है८८कुटीचक बहूदक और दो प्रकारके त्रिदण्डी हंस और परमहंस इस प्रकार चार संन्यासी कहे हैं इनमें पहिले २ से अगला२ श्रेष्ठ है८९कोई भी धर्म परमहंसके धर्मसे उत्तम नहीं है,क्योंकि-उस आश्रममें आत्मज्ञान सम्पादन किया जासकता है,इसलिये परमहंस आश्रमसे कोई भी आश्रम श्रेष्ठ, नीच अथवा उसकी समान नहीं है अर्थात् सब आश्रमोंमें उसका समावेश होजाता है, यह दुःख और सुखसे रहित है, शान्तिमय है, अजर है और अमर है तथा विकारोंसे रहित है ॥ ९० ॥ उमाने कहा, कि-आपने मुझसे सज्जन पुरुषोंके वर्ते हुए गृहस्थके और मोक्षके धर्म कहे ये दोनों धर्म जीवलोकका महाकल्याण करने वाले हैं ९१ हे धर्मज्ञ ! अब मुझे ऋषियोंका धर्म सुननेकी इच्छा है, तपोवनमें रहने वाले मुनियों पर मुझे सदा भक्ति उत्पन्न होती है९२ हे महेश्वर ! ऋषि अग्निमें घृतका होम करते हैं उसमेंसे सुगंधित धूम निकलता है और वह तपोवनको घेर लेता है उसको देखकर मेरा मन सदा प्रसन्न रहता है ॥ ९३ ॥ हे देव ! हे विभो! हे धर्मके सब तत्त्वोंको जानने वाले देवदेव ! मुनियोंके धर्मके सम्बन्धमें मेरे मनमें एक सन्देह है अतः हे महादेव! आप यथार्थ

यथातथम् ॥९४॥ श्रीभगवानुवाच । हन्ततेहं प्रवक्ष्यामि मुनि-
धर्ममनुत्तमम् । यं कृत्वा मुनयो यान्ति सिद्धिं स्वतपसा शुभे ९५
फेनपानामृषीणां यो धर्मो धर्मविदां सताम् । तन्मे शृणु महाभागे
धर्मज्ञे धर्ममादितः ॥९६॥ उञ्छन्ति सततं ये ते ब्राह्मयं फेनोत्करं
शुभम् । अमृतं ब्रह्मणा पीतमध्वरे प्रसृतं दिवि ॥९७॥ एष तेषां
विशुद्धानां फेनपानां तपोधने । धर्मचर्याकृतो मार्गो बालखिल्य-
गणैः शृणु ॥ ९८ ॥ बालखिल्यास्तपःसिद्धा मुनयः सूर्यमंडले ।
उंछे निष्ठंति धर्मज्ञाः शाकुनीं वृत्तिमास्थिताः९९ मृगनिर्मोकवसना-
श्चीरवल्कलवाससः । निर्द्वंद्वाः सत्पथं प्राप्ता बालखिल्यास्तपोधनाः

रीतिसे मुनियोंके धर्मका वर्णन करिये ॥ ९४ ॥ श्रीभगवान्
शंकर कहते हैं, कि–हे कल्याणि ! मुनियोंके सर्वोत्तम धर्मका
मैं तुमसे वर्णन करता हूँ इस धर्मका आचरण कर अपने तपसे
वे सिद्ध होगए हैं । ९५ । हे धर्मको जानने वाली महाभाग्यवती
उमा ! फेनका पान करने वाले फेनप जातिके धर्मात्मा उत्तम
ऋषियोंका जो धर्म है उस धर्मको तू मुझसे आरम्भसे सुन ९६
पहिले ब्रह्माजीने यज्ञमें अमृतका पान किया था उस समय उस
अमृतके पीते २ जो अमृत बच रहा था वह स्वर्गमें फैल गया
था, ब्रह्माजीने अमृतको पिया था, इससे वह अमृत ब्राह्मय कह-
लाता है । ९७ । जो ऋषि उस ब्राह्मय नामक उत्तम अमृतका
पान करते हैं हे तपोधन ! वे विशुद्ध फेनप कहलाते हैं वे फेनका
पान करके धर्मका आचारण किया करते हैं अब बालखिल्य
नामक ऋषियोंके धर्मको तू सुन । ९८ । तप करके सिद्ध हुए
बालखिल्य नामक ऋषि सूर्यमण्डलमें रहते हैं, वे उञ्छवृत्तिका
पालन करते हैं, धर्मज्ञ भी हैं और पक्षीकी समान एक २ दाना
बीन कर उस पर आजीविका चलाते हैं । ९९ । मृगचर्मके और
वृक्षोंकी छालके वस्त्र पहिरते हैं, चीर और वल्कल पहिरते हैं,

अंगुष्ठपर्वमात्रा ये भूत्वा स्वे स्वे व्यवस्थिताः । तपश्चरणमीहन्ते तेषां धर्मफलं महत् ॥ १०१ ॥ ते सुरैः समतां यान्ति सुरकार्यार्थसिद्धये । द्योतयन्ति दिशः सर्वास्तपसा दग्धकिल्बिषाः १०२ ये त्वन्ये शुद्धमनसो दयाधर्मपरायणाः । सन्तश्चक्रचराः पुण्याः सोमलोकचराश्च ये ॥ १०३ ॥ पितृलोकसमीपस्थास्त उंच्छंति यथाविधि । संप्रक्षालाश्मकुट्टाश्च दन्तोलूखलिकाश्च ते ॥ १०४ ॥ सोमपानां च देवानामूष्मपाणां तथैव च । उंच्छन्ति ये समी-

---

वे सुख तथा दुःखसे रहित रहते हैं, तपको धन मानते हैं और सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करते हैं ॥ १०० ॥ उनमेंसे प्रत्येकका शरीर अंगुष्ठके पर्वकी समान है, वे अपने २ धर्मका आचरण करते हैं वे तप करना चाहते हैं और धर्मका महाफल पाते हैं १०१ वे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए देवताओंकी सहायता करते हैं और तप करके उन्होंने अपने पापका नाश करडाला है और वे तपसे सब दिशाओंको प्रकाशित रखते हैं १०२ इनके अतिरिक्त दूसरे चक्रचर नाम वाले (चक्रकी समान एक स्थान पर स्थित न रहकर घूमने वाले) महात्मा ऋषि हैं, वे भी शुद्ध मन वाले दयाधर्मपरायण पुण्यशाली और सोमलोकमें फिरनेवाले हैं १०३ वे पितृलोकके समीप रहते हैं और विधिपूर्वक सोमकी किरणोंका पान करते हैं, बहुतसे ऋषियोंका सम्प्रक्षालक नाम है (ये जितना खाना होता है उतना ही अन्न खालेते हैं और पात्रको धो डालते हैं अर्थात् दूसरे दिनकी कुछ चिन्ता नहीं रखते हैं) बहुतसे अश्मकुट्टनामक ऋषि हैं (वे फलोंको पत्थरोंसे पीस कर खाते हैं) और बहुतसे दन्तोलूखलिक नामक ऋषि हैं (वे दाँतोंका उलूखलकी समान उपयोग करते हैं अर्थात् फलोंको दाँतसे चबाकर खाते हैं) । १०४ । सोमपा अर्थात् चन्द्रमाकी किरणोंका पान करने

पस्थाः सदारा नियतेन्द्रियाः ॥ १०५ ॥ तेषामग्निपरिस्पन्दः पितॄणां चार्चनं तथा।यज्ञानां चैव पञ्चानां यजनं धर्म उच्यते१०६ एष चक्रचरैर्देवि देवलोकचरैर्द्विजैः। ऋषिधर्मः सदा चीर्णो योन्यस्तमपि मे शृणु ॥ ७ ॥ सर्वेष्वेवर्षिधर्मेषु ज्ञेयोत्मा संयतेन्द्रियैः। कामक्रोधौ ततः पश्चाज्जेतव्याविति मे मतिः ॥ १०८ ॥ अग्निहोत्रपरिस्पन्दो धर्मरात्रिसमासनम्। सोमयज्ञाभ्यनुज्ञानं पञ्चमी यज्ञदक्षिणा ॥ ९ ॥ नित्यं यज्ञक्रियाधर्मः पितृदेवार्चने रतिः। सर्वातिथ्यं च कर्तव्यमन्नेनोञ्छार्जितेन वै ॥ ११० ॥ निवृत्तिरुपभोगेषु गोरसानां शमे रतिः। स्थण्डिले शयने योगः

वाले तथा ऊष्मपा अर्थात् सूर्यकी किरणोंका पान करने वाले दूसरे ऋषि हैं, ये स्त्रियोंके साथ रहते हैं और इन्द्रियोंको नियम में रखते हैं, वे उञ्छवृत्तिसे आजीविका चलाते हैं। १०५। वे अग्निमें घृतकी आहुति देते हैं, पितरोंका श्राद्ध करते हैं, पञ्चमहायज्ञ करते हैं तथा यज्ञ आदि धर्म भी करते हैं १०६ चक्रकी समान घूमने वाले चक्रचर और देवलोकचर ब्राह्मण हे देवि! सदा ऋषियोंके धर्मका आचरण करते हैं, दूसरे ऋषियों के भी जो धर्म हैं, उनको तू मुझसे सुन ॥ १०७ ॥ सब ऋषिधर्मोंमें ऋषियोंको इन्द्रियोंको नियममें रखकर अपनी आत्माको जानना चाहिये तदनन्तर काम और क्रोधको जीतना चाहिये, यह मेरा मत है ॥ १०८ ॥ ऋषि अग्निहोत्रमें घृतका होम करे, धर्मार्थ यज्ञ करे, सोमयज्ञ करे,ज्ञानसम्पादन करे तथा यज्ञमें दक्षिणा देय, ये पाँच कर्म करे ॥ १०९ ॥ नित्य यज्ञकर्म करे;पितरोंका पूजन करनेमें तथा गृहदेवोंका पूजन करनेमें प्रीति रक्खे, उञ्छवृत्तिसे मिले हुए अन्नसे सब अतिथियोंका सत्कार करे ॥ ११० ॥ उपभोगोंसे विरत होजाय, गोदुग्धमें बने हुए पदार्थोंको खाकर शान्त रहे, खुले स्थानमें शयन करे, शाक

शाकपर्णनिषेवणम् ॥ १११ ॥ फलमूलाशनं वायुरापःशैवल-
भक्षणम् । ऋषीणां नियमा ह्येते यैर्जयन्त्यजितां गतिम् ।११२।
विधूमे सन्नमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने । अतीतपात्रसंचारे काले
विगतभिक्षुके ॥ ११३ ॥ अतिथिं कांक्षमाणो वै शेषान्नकृत-
भोजनः । सत्यधर्मरतः शान्तो मुनिर्धर्मेण युज्यते ॥ ११४ ॥ न
स्तंभी न च मानी स्यान्नाप्रसन्नो न विस्मितः । मित्रामित्रसमो
मैत्रो यः स धर्मविदुत्तमः ॥ ११५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दान-
धर्मे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

उमोवाच । देशेषु रमणीयेषु नदीनां निर्झरेषु च । स्रवन्तीनां
निकुञ्जेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १ ॥ देशेषु च पवित्रेषु फलवत्सु

और पत्तोंका भक्षण करे ॥ १११ ॥ फल और कन्दोंको खाय,
वायु जल और सिवारका भक्षण करे, ये सब ऋषियोंके नियम
हैं, इन नियमोंसे ऋषि अजित गतिको जीतते हैं ॥ ११२ ॥
घरमेंसे धूम शान्त होजाय, मूसल बन्द होजाय, अग्नि शान्त
होजाय, मनुष्य जीम चुकें, पात्र धोकर उलटे कर दिये जाँय
और संन्यासी भी भिक्षा लेकर चले जाँय उस समय ऋषि
अतिथिकी बाट देखें और जब कोई नहीं आवे तब अवशिष्ट अन्न
का भोजन करें,सत्यधर्ममें परायण रहें,शांत रहें इसप्रकार वर्ताव
करने वाले मुनियोंको धर्मलाभ होता है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ जो
अकड़ता न हो जो अभिमानी न हो जो अप्रसन्न न हो जो
गर्विष्ठ न हो जो शत्रु और मित्रको समान देखने वाला हो, जो
सब पर करुणा रखता हो, उसको उत्तम धर्मवेत्ता समझना
चाहिये ॥ ११५ ॥ एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त१४१

उमाने बूझा, कि-व्रत पालनेवाले नदीके झरनोंके रमणीय
देशोंमें,टपकतीहुई कुञ्जोंमें पर्वतोंमें,फल और कंद मूलवाले वनोंमें,

समाहिताः । मूलवत्सु च मेध्येषु वसन्ति नियतव्रताः ॥ २ ॥
तेषामपि विधिं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि शंकर । वानप्रस्थेषु देवेश
स्वशरीरोपजीविषु ॥३॥ महेश्वर उवाच । वानप्रस्थेषु यो धर्मस्तं
मे शृणु समाहिता । श्रुत्वा चैकमना देवि धर्मबुद्धिपरा भव ।४।
संसिद्धैर्नियमैः सद्भिर्वनवासमुपागतैः । वानप्रस्थैरिदं कर्म कर्तव्यं
शृणु यादृशम् ॥ ५ ॥ त्रिकालमभिषेकं च पितृदेवार्चनं तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्द इष्टिहोमविधिस्तथा ॥ ६ ॥ नीवारग्रहणं
चैव फलमूलनिषेवणम् । इंगुदैरंडतैलानां स्नेहार्थं च निषेवणम् ७
योगचर्याकृतैः सिद्धैः कामक्रोधविवर्जितैः । वीरशय्यामुपासद्भि-
र्वीरस्थानोपसेविभिः ॥ ८ ॥ युक्तैर्योगवहैः सद्भिर्ग्रीष्मे पञ्चतपै-
स्तथा । मंडूकयोगनियतैर्यथान्यायं निषेविभिः ॥ ९ ॥ वीरा-

पवित्र प्रदेशोंमें सावधान रहकर वास करते हैं।१॥२॥ हे शंकर !
मैं उनकी पुण्यदायक विधिको सुनना चाहती हूँ, हे देवेश ! ये
वानप्रस्थाश्रमी अपने शरीरको कष्ट पहुँचाकर अपनी आजी-
विका चलाते हैं ॥३॥ महेश्वरने कहा, कि—हे देवि ! तू मनको
स्थिर करके वानप्रस्थोंके धर्मको सुन, तथा शान्त चित्तसे सुन
कर अपनी बुद्धिको धर्ममें लगा ॥ ४ ॥ नियम पालन कर सिद्ध
हुए वनमें वसनेवाले साधु वानप्रस्थोंको क्या२कर्म करने चाहियें
उनको तू सुन ॥ ५ ॥ (वानप्रस्थाश्रमी) दिनमें तीन समय
स्नान करे, पितरोंका तर्पण करे, देवताओंका पूजन करे अग्नि-
होत्रमें होम करे, इष्टियें करे ॥ ६ ॥ श्यामाक आदि ऋषिधान्य
फल और मूलका आहार करे, इमली और अरण्डीके तेलका
उपयोग करे ॥७॥ योगका सेवन करे, काम और क्रोधको त्याग
देय,दिन भर वीरासन करे अथवा वीर पुरुष जिसमें प्रवेश कर
सकें ऐसे अरण्यमें वास करे ॥ ८ ॥ योगका सेवन करनेवाले
वानप्रस्थ ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्निका सेवन करें तथा मण्डूक नामक

सनरतैर्नित्यं स्थंडिले शयनं तथा। शीततोयाग्नियोगश्च चर्तव्यो धर्मबुद्धिभिः॥ १०॥ अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शैवलोत्तरभोजनैः। अश्मकुट्टैस्तथा दान्तैः संप्रक्षालैस्तथापरैः ॥ ११ ॥ चीरवल्कलसंवीतैर्मृगचर्मनिवासिभिः। कार्या यात्रा यथाकालं यथा धर्मं यथाविधि॥ १२॥ वननित्यैर्वनचरैर्वनस्थैर्वनगोचरैः। वनं गुरुमिवासाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः ॥ १३ ॥ तेषां होमक्रिया धर्मः पञ्चयज्ञनिषेवणम्। भागं च पञ्चयज्ञस्य वेदोक्तस्यानुपालनम् ॥ १४ ॥ अष्टमीयज्ञपरता चातुर्मास्यनिषेवणम्। पौर्णमासादयो यज्ञा नित्ययज्ञस्तथैव च ॥ १५ ॥ विमुक्ता दारसंयोगैर्विमुक्ताः सर्व-

---

योगका सेवन करें, इसप्रकार योग्यतानुसार वानप्रस्थका सेवन करें ॥ ६ ॥ और धर्मबुद्धि वानप्रस्थाश्रमी नित्य वीरासनसे बैठें, स्थण्डिल (कडी भूमि) पर शयन करें तथा शीतल जल में बैठें, वर्षाकालमें खुले स्थानमें जहाँ जल पड़ता हो तहाँ शयन करें और ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्निका सेवन करें ॥ १० ॥ जल और पवनका आहार करें, सिवारका आहार करें, पत्थरसे फल अथवा अन्नको कुचल कर उसका आहार करें; दाँतोंसे कच्चे पदार्थोंका ही भक्षण करें, इन्द्रियोंको नियममें रक्खे, जितना खाया जाय उतना खाकर पात्रको धोकर धरदें ॥ ११ ॥ चीथड़े और वल्कलवस्त्रोंको पहिरें, मृगचर्म ओढ़ें समयानुसार धर्मका अनुसरण कर विधिपूर्वक यात्रा करें ॥ १२ ॥ सदा वनमें ही रहें और विचरण करें, वनमें ही वसें और वनको ही देखें और उन वनजीवियोंको शिष्य जैसे गुरुके यहाँ रहता है, वैसे वनमें रहना चाहिये। १३। वानप्रस्थाश्रमी होम और पञ्चमहायज्ञ करें और वेदोक्त पञ्चमहायज्ञ करके उसके शेषभागका भक्षण करें ॥ १४॥ अष्टमीके दिन यज्ञ करें, चातुर्मास्य यज्ञ तथा पौर्णमास यज्ञ करें तथा अग्निमें सदा होम करें। १५।

संकरैः । विमुक्ताः सर्वपापैश्च चरन्ति मुनयो वने ॥ १६ ॥
स्रुग्भांडपरमा नित्यं त्रेताग्निशरणाः सदा । सन्तः सत्पथनित्या
ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकं महापुण्यं सोम-
लोकं च शाश्वतम् । गच्छन्ति मुनयः सिद्धाः सत्यधर्मव्यपा-
श्रयाः ॥ १८ ॥ एष धर्मो मया देवि वानप्रस्थाश्रितः शुभः ।
विस्तरेणाथ सम्पन्नो यथा स्थूलमुदाहृतः ॥ १९ ॥ उमोवाच ।
भगवन् सर्वभूतेश सर्वभूतनमस्कृत । यो धर्मो मुनिसंगस्य सिद्धि-
वादेषु तं वद ॥२०॥ सिद्धिवादेषु संसिद्धास्तथा वननिवासिनः।
स्वैरिणो दारसंयुक्तास्तेषां धर्मः कथं स्मृतः ॥ २१ ॥ महेश्वर
उवाच । स्वैरिणस्तपसा देवि सर्वे दारविहारिणः । तेषां मौंड्यं

मुनि स्त्रियोंको त्याग कर, सब विषयोंको त्याग कर तथा सब पापोंको त्याग कर वनमें रहते हैं, इसी प्रकार वानप्रस्थाश्रमियों को रहना चाहिये ॥ १६ ॥ जो मुनि (वानप्रस्थाश्रमी) नित्य स्रुक्रूपी पात्रको रखते हैं, आहवनीय आदि तीन अग्नियोंका यजन करते हैं और सन्मार्ग पर चलते हैं वे परमगति पाते हैं १७ सत्य धर्मका आश्रय लेने वाले सिद्ध और मुनि (वानप्रस्थाश्रमी) महापुण्यमद ब्रह्मलोकमें तथा सनातन रहने वाले सोमलोकमें जाते हैं ॥ १८ ॥ हे देवि ! मैंने तुमसे यह वानप्रस्थआश्रमका कल्याणकारक धर्म विस्तारपूर्वक स्थूलरीतिसे कहा ॥ १९ ॥ उमाने कहा, कि-हे भगवन् ! हे सब भूतोंके ईश्वर ! हे सब प्राणियोंसे नमस्कृत ! अब आप मुझसे ज्ञानी और मुनियोंके धर्मका वर्णन करिये ॥ २० ॥ ज्ञानसे सिद्ध हुए और वनमें रहने वाले कितने ही मुनि अपनी इच्छानुसार अकेले विहार किया करते हैं और बहुतसे स्त्रियोंके साथ निवास करते हैं, उनके धर्म किस प्रकारके हैं ? ॥ २१ ॥ महेश्वरने कहा, कि-हे देवि ! तपस्वी मुनि अपनी इच्छानुसार विहार किया करते

कषायश्च वासे रात्रिश्च कारणम् ॥ २२ ॥ त्रिकालमभिषेकश्च होत्रं त्वृषिकृतं महत् । समाधिसत्पथस्थानं यथोद्दिष्टनिषेवणम् ॥ २३ ॥ ये च ते पूर्वकथिता धर्मास्ते वनवासिनाम् । यदि सेवन्ति धर्मास्तानाप्नुवन्ति तपः फलम् ॥ २४ ॥ ये च दंपतिधर्माणः स्वदारनियतेन्द्रियाः । चरन्ति विधिदृष्टं तदनुकालाभिगामिनः ॥ २५ ॥ तेषामृषिकृतो धर्मो धर्मिणामुपपद्यते । न कामकारात् कामोन्यः संसेव्यो धर्मदर्शिभिः ॥ २६ ॥ सर्वभूतेषु यः सम्यग्ददात्यभयदक्षिणाम् । हिंसादोषविमुक्तात्मा स वै धर्मेण युज्यते ॥ २७ ॥

हैं, वे भगवाँ वस्त्र पहिरते हैं और मस्तक मुँडाते हैं और स्त्रियों के साथ वनमें रहने वाले रात्रिमें एक स्थान पर रहते हैं ।२२। (दिनमें) तीन समय तीर्थके जलमें स्नान करते हैं, अग्निमें होम करते हैं, ऋषियोंके कहे हुए महाधर्मको पालते हैं, समाधि चढ़ाते हैं, सत्पुरुषोंके मार्ग पर चलते हैं और वेद तथा शास्त्रानुसार धर्माचरण करते हैं ॥ २३ ॥ मैंने तुमसे जो वनवासियों के धर्म कहे हैं उन धर्मोंका जो पालन करते हैं वे तपके फलको पाते हैं ॥ २४ ॥ जो मुनि स्त्री वाले हैं अपनी स्त्रीके साथ रह कर धर्माचरण करते हैं, अपनी स्त्री पर प्रीति रखते हैं, इन्द्रियों का निग्रह करते हैं, शास्त्रोक्त धर्मका आचरण करते हैं, ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीसे समागम करते हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार धर्मका पालन करने वाले मुनियोंको ऋषियोंके कहे हुए धर्माचरणका फल मिलता है, धर्मको ही मुख्य मानने वाले ऋषियों को शास्त्रोक्त निष्काम धर्मका आचरण करना चाहिये, परन्तु अपनी कामनासे दूसरे काम्य धर्मोंका सेवन न करना चाहिये २६ जो पुरुष सब प्राणियोंको भली प्रकार अभयदक्षिणा देता है तथा जो मन वाणी और शरीरसे हिंसा नहीं करता है वह धर्म को पाता है ॥ २७ ॥ जो पुरुष सब प्राणियों पर दया करता

सर्वभूतानुकम्पी यः सर्वभूतार्जवव्रतः । सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते ॥ २८ ॥ सर्ववेदेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्। उभे एते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते।२९।आर्जवं धर्ममित्याहुरधर्मो जिह्म उच्यते । आर्जवेनेह संयुक्तो नरो धर्मेण युज्यते॥३० आर्जवे तु रतो नित्यं वसत्यमरसन्निधौ । तस्मादार्जवयुक्तः स्याद्य इच्छेद्धर्ममात्मनः ॥ ३१ ॥ क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतोऽविहिंसकः । धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते ॥३२॥ व्यपेततन्द्रिर्धर्मात्मा शक्त्या सत्पथमाश्रितः । चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३३॥ उमोवाच । आश्रमाभिरता देव तापसा ये तपोधनाः । दीप्तिमन्तः कया चैव चर्यया च भवन्ति ते ॥३४॥

है, सब प्राणियोंकी ओर दयाभावसे वर्ताव करता है, सब प्राणियोंको अपनी आत्मा रूप मानता है उसको धर्मकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ सब वेदोंका अध्ययन करके स्नान करने वाले तथा सब प्राणियोंसे दयाका वर्ताव करने वाले ये दोनों एकसे गिने जाते हैं अथवा वेदाध्ययन करनेसे दयाभाव बढ़ता है २९ ऋषि सरलताको धर्म कहते हैं और कुटिलताको अधर्म कहते हैं, सरलता रखने वाले पुरुषको धर्मका लाभ होता है ॥३०॥ जो पुरुष सरलतासे प्रीति रखता है वह देवताके समीप रहता है, इसलिये जो धर्म सम्पादन करना चाहता हो वह आर्जवको धारण करे ॥ ३१ ॥ जो पुरुष क्षमाशील इन्द्रियोंका निग्रहकर्ता क्रोधजित्, धर्माचरणकर्ता, हिंसारहित और धर्म पर सदा प्रीति रखनेवाला होता है वह धर्मको पाता है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष तन्द्रारहित होता है, धर्मात्मा होता है, शक्तिके अनुसार सत्मार्गका अनुसरण करने वाला होता है, सच्चरित्र होता है और ज्ञानी होता है, वह पुरुष ब्रह्मरूप होसकता है ॥ ३३ ॥ उमाने कहा, कि-हे देव ! आश्रम धर्म पर प्रीति रखने वाले और तप

राजानो राजपुत्राश्च निर्धना ये महाधनाः । धर्मणा केन भगवन् प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥३५॥ नित्यं स्थानमुपागम्य दिव्यचन्दन-भूषिताः । केन वा कर्मणा देव भवन्ति वनगोचराः ॥३६॥ एतन्मे संशयं देव तपश्चर्याश्रितं शुभम् । शंस सर्वमशेषेण त्र्यक्ष त्रिपुर-नाशन ॥ ३७ ॥ महेश्वर उवाच । उपवासव्रतैर्दान्ता ह्यहिंस्राः सत्यवादिनः । संसिद्धाः प्रेत्य गन्धर्वैः सह मोदन्त्यनामयाः ॥३८॥ मण्डूकयोगशयनो यथा न्यायं यथाविधि । दीक्षां चरति धर्मात्मा स नागैः सह मोदते ॥ ३९ ॥ शष्पं मृगमुखोच्छिष्टं यो मृगैः सह भक्षति । दीक्षितो वै मुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीम् ॥ ४० ॥ शैवालं शीर्णपर्णं वा तद्व्रती यो निषेवते । शीतयोगवहो नित्यं

को धन मानने वाले तपस्वी कैसे आचरणसे तेजस्वी होजाते हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! राजे राजपुत्र निर्धन और धनवान् कौनसे कर्मको करनेसे महाफल पाते हैं ॥ ३५ ॥ हे देव ! वनमें रहने वाले ऋषि किस कर्मको करके अक्षय लोकोंमें जाते हैं और तहाँ दिव्य चन्दनसे शरीरको चर्चित करके निवास करते हैं ॥ ३६ ॥ हे त्रिनेत्र त्रिपुरनाशक देव ! तपके सम्बन्धमें मुझे एक शुभ सन्देह है, उसको आप पूर्णरीतिसे दूर करिये ॥३७॥ महेश्वरने कहा, कि-ऋषि उपवास करके इन्द्रियोंको नियममें रखते हैं, हिंसा नहीं करते हैं, सत्यभाषण करते हैं, भली भाँति सिद्ध होजाते हैं वे नीरोग रहते हैं और मरण होनेके अनन्तर गन्धर्वोंके साथ आनन्द करते हैं ॥ ३८ ॥ जो धर्मात्मा पुरुष दीक्षा लेकर शास्त्रोक्तविधिसे न्यायानुसार मण्डूकयोगका सेवन करता है वह पुरुष नागोंके साथ आनन्द करता है ॥३९॥ जो पुरुष दीक्षा लेकर चरते हुए मृगोंके मुखमेंसे गिरते हुए तिनकों को मृगोंके साथ खाता है वह पुरुष अमरावतीमें जाता है ।४०। जो पुरुष योगकी दीक्षा लेकर शीतयोगका सेवन करता है और

स गच्छेत् परमां गतिम् ॥ ४१ ॥ वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा फल-
मूलाशनोऽपि वा । यक्षेष्वैश्वर्यमाधाय मोदतेऽप्सरसां गणैः ४२
अग्नियोगवहो ग्रीष्मे विधिदृष्टेन कर्मणा । चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि
राजा भवति पार्थिवः ॥ ४३ ॥ आहारनियमं कृत्वा मुनिर्द्वादश-
वार्षिकम् । मरुं संसाध्य यत्नेन राजा भवति पार्थिवः ॥ ४४ ॥
स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिगृह्य समन्ततः । प्रविश्य च मुदा युक्तो
दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ ४५ ॥ देहं चानशने त्यक्त्वा स स्वर्गे
सुखमेधते । स्थण्डिलस्य फलान्याहुर्यानानि शयनानि च ।४६।
गृहाणि च महार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि भामिनि । आत्मानमुपजी-
वन्यो नियतो नियताशनः ॥ ४७ ॥ देहं वानशने त्यक्त्वा स

सिवारका तथा स्वयं गिरे हुए पत्तोंका भोजन करता है वह पुरुष परमगतिको पाता है ॥४१॥ जो पुरुष योगकी दीक्षा लेकर वायुका जलका अथवा फलका या फलकी मूलका भक्षण करता है वह पुरुष यक्षोंका राजा होकर अप्सराओंके मण्डलोंके साथ आनन्द करता है ॥४२॥ जो पुरुष ग्रीष्मऋतुमें शास्त्रोक्तरीतिसे पञ्चाग्नि तपनेके व्रतको बारह वर्ष तक करता है वह राजा होता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष मौनव्रत धारण कर बारह वर्ष तक आहारका नियमानुसार भक्षण करता है अथवा आहारको त्याग देता है और प्रयत्न करके जलके आहारको भी त्याग देता है वह पुरुष राजा होता है ॥४४॥ जो पुरुष खुले स्थानमें बैठ शुद्ध आकाशको ही वस्त्रकी समान पहिर कर बारह वर्षकी दीक्षा ले आनन्दमें रहता है और अनशन व्रतसे अपने देहको त्याग देता है वह स्वर्गमें सुख भोगता है जो पुरुष वर्षाकालमें खुले स्थानमें बैठा रहता है, हे देवि ! उस पुरुषको दिव्य पालकी पलङ्ग और बहुमूल्य चन्द्रमाकी समान स्वेतवर्णके घर मिलते हैं, जो पुरुष किसीकी भी सहायता न लेकर अपने परिश्रमसे ही

स्वर्गं समुपाश्नुते ।आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ४८
त्यक्त्वा महार्णवे देहं वारुणं लोकमश्नुते । आत्मानमुपजीवन्यो
दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ ४६ ॥ अश्मना चरणौ भित्वा गुह्य-
केषु स मोदते । साधयित्वात्मनात्मानं निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः ॥५०॥
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम् । स्वर्गलोकमवाप्नोति
देवैश्च सह मोदते ॥ ५१ ॥ आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादश-
वार्षिकीम् । हुत्वाग्नौ देहमुत्सृज्य वन्हिलोके महीयते ॥ ५२ ॥
यस्तु देवि यथान्यायं दीक्षितो नियतो द्विजः । आत्मन्यात्मान-
माधाय निर्ममो धर्मलालसः ॥५३॥ चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षा-

अपना पोषण करता है नियमोंको पालता है नियमानुसार भोजन करता है और अनशन करता हुआ समय आने पर अपने देहको त्याग देता है वह स्वर्गमें जाता है, जो पुरुष बारह वर्षकी दीक्षा लेकर अपने आप ही परिश्रम करके अपने शरीर का निर्वाह करता है ॥ ४५-४८ ॥ तथा महासागरमें अपने देहको त्याग देता है वह वरुणलोकमें जाता है, जो पुरुष बारह वर्षकी अपने परिश्रमसे ही अपना निर्वाह करनेकी दीक्षा लेकर पत्थरके प्रहारसे अपने दोनों चरणोंको कुचल डालता है वह पुरुष गुह्यकोंमें आनन्द करता है, जो पुरुष योगके द्वारा अपनी आत्माको शुद्ध कर और सुख दुःख तथा स्त्री आदि परिग्रहको त्याग कर बारह वर्ष तक घूमता है वह स्वर्गलोकमें जाकर देवताओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४६-५१ ॥ जो पुरुष बारह वर्षकी दीक्षा ले किसीकी सहायता लिये विना स्वयं ही तप करता है और अग्निमें अपने शरीरका होम करता है,उसकी अग्निलोकमें पूजा होती है ॥ ५२ ॥ हे देवि ! जो ब्राह्मण व्रत की दीक्षा लेकर नियमोंका पालन करता है, अपने मनका आत्मामें लय करता है, ममताको त्याग देता है, धर्माचरणकी

मेतां मनोगताम् । अरणीसहितं स्कन्धे बध्वा गच्छत्यनावृतः ५४
वीराध्वानगतो नित्यं वीरासनरतस्तथा । वीरस्थायी च सततं
स वीरगतिमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ स शक्रलोकगो नित्यं सर्वकाम-
पुरस्कृतः । दिव्यपुष्पसमाकीर्णो दिव्यचन्दनभूषितः ॥ ५६ ॥
सुखं वसति धर्मात्मा दिवि देवगणैः सह । वीरलोकगतो नित्यं
वीरयोगसहः सदा ॥ ५७ ॥ सत्वस्थः सर्वमुत्सृज्य दीक्षितो
नियतः शुचिः । वीराध्वानं प्रपद्येद्यस्तस्य लोकाः सनातनाः ५८
कामगेन विमानेन स वै चरति च्छन्दतः । शक्रलोकगतः श्रीमान्
मोदते च निरामयः ॥५९॥ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

इच्छा रखता है ॥ ५३ ॥ और बारह वर्ष तककी दीक्षा लेकर अग्निको वृक्षकी शाखा पर स्थापित करके अथवा अपने स्कंध पर धर कर नंगे शरीरसे वनमें चला जाता है, वह पुरुष स्वर्गमें जाता है ॥ ५४ ॥ जो पुरुष सदा वीरमार्ग पर चलता है, जो पुरुष वीरासन पर प्रीति रखता है,जो पुरुष सदा वीरकी समान खड़ा रहता है, वह पुरुष वीरगति (स्वर्ग) को पाता है ।५५। वह इन्द्रलोकमें जाता है उसकी सब कामनायें सदा पूर्ण होती रहती हैं, उस पर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होती रहती है, वह दिव्य चन्दनसे अलंकृत रहता है ॥ ५६ ॥ वीरयोगका सेवन करने वाला पुरुष सदा वीरलोकमें जाता है और, तहाँ स्वर्गमें वह धर्मात्मा पुरुष देवताओंके साथ स्वर्गमें निवास करता है ।५७। जो पुरुष सत्त्वगुणमें स्थिति करता है, सबको त्यागकर दीक्षा ग्रहण करता है, नियममें रहता है, भीतर और बाहरसे पवित्र रहता है और वीरपुरुषके मार्गसे जाता है अर्थात् महाप्रस्थान करता है उसको सनातनलोक मिलते हैं ॥ ५८ ॥ वह पुरुष इच्छानुसार फिरने वाले विमानमें बैठकर इच्छानुसार विहार करता है, इन्द्रलोकमें जाता है और तहाँ दिव्य शोभासम्पन्न हो सर्वप्रकारके रोगोंसे रहित हो आनन्द करता है ॥ ५९ ॥

उमोवाच । भगवन् भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तनिपातन । दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥१॥ चातुर्वर्ण्यं भगवना पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा । केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥ २ ॥ वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् । प्रतिलोमः कथं देव शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥ ३ ॥ केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते । क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥४॥ एतन्मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ । त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥ ५ ॥ महेश्वर उवाच । ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे । क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥६॥ कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विजः । ज्येष्ठं

उमाने कहा, कि—हे भगवन् ! हे भगके नेत्रोंका नाश करनेवाले ! हे पूषाके दाँतोंको तोड डालनेवाले ! हे दक्षके यज्ञका ध्वंस करनेवाले ! हे त्रिनेत्र ! मुझे एक बडा भारी सन्देह है १ कि—भगवान् ब्रह्माजीने पहिले चारों वर्णोंको रचा था उनमें वैश्य कैसा कर्म करनेसे शूद्रयोनिमें उत्पन्न होता है ?॥ २ ॥ वैश्य कैसा कर्म करनेसे क्षत्रियकी जातिमें उत्पन्न होता है और क्षत्रिय कैसा कर्म करनेसे ब्राह्मण जातिमें उत्पन्न होता है और हे देव ! प्रतिलोम धर्मको किस प्रकार रोका जासकता है ॥३॥ ब्राह्मण कैसा कर्म करनेसे शूद्रकी जातिमें उत्पन्न होता है ? हे विभो ! क्षत्रिय कैसा कर्म करनेसे शूद्रत्वको पाता है ? ॥४॥ हे देव ! हे भूतपते ! हे निर्दोष ! आप मेरे इस सन्देहको दूर करिये कि—इस जगत्में क्षत्रिय आदि तीन वर्ण ब्राह्मणत्वको किस प्रकार पाते हैं ॥ ५ ॥ महेश्वरने कहा, कि हे कल्याणि देवि ! ब्राह्मणत्व दुर्लभ है ब्राह्मणजातिमें क्षत्रियजातिमें तथा वैश्यजातिमें तथा शूद्रजातिमें जो जन्म होता है वह स्वाभाविक रीतिसे ही होता है, यह मेरा मत है ॥ ६ ॥ द्विज पापकर्म करने

वर्णभ्रष्टो भवेत् तस्माद्रक्षेत वै द्विजः ॥ ७ ॥ स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ ८ ॥ यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते । ब्राह्मण्यात् स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥ ९ ॥ वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा
१०
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् । स्वधर्मात् प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ११ ॥ तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः । ब्रह्मलोकात् परिभ्रष्टः शूद्रः समुपजायते ॥ १२ ॥ क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि । स्वानि कर्माण्य-

से स्थानभ्रष्ट (जातिभ्रष्ट) होजाता है अतः द्विज उत्तम वर्णमें जन्म पाकर अधार्मिक कृत्योंसे अपनी रक्षा करे ॥ ७ ॥ क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणके धर्ममें स्थिति करके रहता है तो दूसरे जन्ममें ब्राह्मण बनकर उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मणजातिका पुरुष ब्राह्मणके धर्मको त्यागकर क्षत्रियधर्मका सेवन करता है वह ब्राह्मणकी जातिमेंसे भ्रष्ट होकर दूसरे जन्ममें क्षत्रियकी जातिमें उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण सदा अल्पबुद्धिवश लोभ तथा मोहका आश्रय लेकर दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाने पर भी सदा वैश्यके कर्म करता है ॥ १० ॥ वह ब्राह्मण वैश्यकी जातिमें उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जो वैश्य होने पर भी अल्पबुद्धिवश शूद्रजातिके कर्म करता है तो वह शूद्रपनेको पाता है, इसी प्रकार यदि अपने धर्मको त्याग देता है और शूद्रके धर्मका पालन करता है तो वह दूसरे जन्ममें शूद्र होजाता है ११ ब्राह्मण जातिका पुरुष शूद्रके कर्म करनेसे अपनी जातिमेंसे भ्रष्ट होजाता है, जातिमेंसे बहिष्कृत होजाता है, मरणके पीछे नरकमें पड़ता है, उसको ब्रह्मलोक नहीं मिलता है और वह मरणके पीछे शूद्रजातिमें उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ हे महाभाग्यवति धर्म-

प्राहाय शूद्रकर्म निषेवते ॥१३॥ स्वस्थानात् स परिभ्रष्टो वर्ण-
संकरतां गतः।ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः१४
यस्तु शुद्धः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवान् शुचिः। धर्मज्ञो धर्मनिरतः
स धर्मफलमश्नुते ॥ १५ ॥ इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदा-
हृतम् । अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥१६॥ उग्रान्नं
गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् । दुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं
नैव कर्हिचित् ॥१७॥ शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥ १८ ॥ शूद्रान्नेनाव-

चारिणी देवि ! यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य जातिका पुरुष अपने धर्म कर्मको त्याग कर शूद्रजातिके कर्म करता है१३ तो वह अपनी जातिमेंसे भ्रष्ट होजाता है, वर्णसंकर होजाता है और ऐसा ब्राह्मण क्षत्रिय अथवा वैश्य दूसरे जन्ममें शूद्र होकर उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥ परन्तु जिस पुरुषको अपने धर्मका ज्ञान होता है, जो ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न होता है, जो भीतर और बाहरसे पवित्र रहता है, धर्मको जानता है, धर्ममें परायण रहता है उस पुरुषको धर्माचरणका फल मिलता है१५ हे देवि ! ब्रह्माजीने एक और बात कही है, कि धर्म प्राप्त करनेकी इच्छा करने वाले सत्पुरुषोंको आत्मज्ञान सम्पादन करनेका और आत्मस्वरूपको जाननेका प्रयत्न करना चाहिये१६ हे देवि ! उग्रजातिके (क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न हुए) पुरुषका अन्न, श्राद्धका अन्न, किसी गण (मण्डली या कम्पनी) का अन्न, सूतकीका तथा दुष्ट पुरुषका अन्न तथा शूद्रका अन्न निन्दित है, अतः उनका अन्न किसी दिन न खाना चाहिये १७ हे देवि ! महात्मा देवताओंने शूद्रके अन्नकी सदा निन्दा की है, इस विषयमें पितामहने स्वयं अपने मुखसे जो कुछ कहा है, वह सत्य है, यह मेरा विचार है ॥ १८ ॥ यदि मरणके समय

शेषेण जठरे यो म्रियेद्द्विजः। आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्र-
गतिभाग्भवेत् ॥१९॥ तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥ २० ॥ यस्यान्ने-
नावशेषेण जठरे यो म्रियेद्द्विजः। तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्या-
न्नमुपजीवति ॥२१॥ ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।
अभोज्यान्नानि चाश्नाति स द्विजत्वात् पतेत वै ॥२२॥ सुरापो
ब्रह्महा क्षुद्रश्चोरो भग्नव्रतोऽशुचिः । स्वाध्यायवर्जितः पापो
लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥ २३ ॥ अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी

ब्राह्मणके पेटमें शूद्रका अन्न होता है तो वह ब्राह्मण चाहे अग्निहोत्री या यज्ञ करने वाला ही क्यों न हो तो भी दूसरे जन्ममें वह शूद्रकी जातिमें उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ (मरणके समय) शूद्रका अन्न भोजन करनेसे पेटमें अन्नका जो शेष भाग रहता है उसके कारण ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होजाता है और दूसरे जन्ममें शूद्रजातिमें उत्पन्न होता है, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ २० ॥ मरणके समय ब्राह्मणके उदरमें जिस जाति वालेका अन्न पचनेसे बाकी रह जाता है उस जातिमें वह उत्पन्न होता है अर्थात् वह जिस जातिका अन्न खाता है, उस जातिमें उत्पन्न होता है ॥ २१ ॥ जो पुरुष दुर्लभ और शुभ ब्राह्मणत्वको पाकर उसका तिरस्कार करता है और अभोज्य अन्नका भोजन करता है वह ब्राह्मण जातिमेंसे भ्रष्ट होजाता है (और अधम जातिमें उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मण जातिका पुरुष यदि सुरापान करता है, ब्रह्महत्या करता है, क्षुद्र कर्म करता है, चोरी करता है, व्रत भङ्ग करता है, अपवित्र रहता है, अपना स्वाध्याय नहीं करता है, पापकर्म करता है, लोभी रहता है, कपट करता है, शठता रखता है २३ शास्त्रोक्त व्रत नहीं करता है, शूद्रजातिकी स्त्रीसे विवाह करता

सोमविक्रयी । निहीनसेवी विप्रो हि पतति ब्रह्मयोनितः ॥२४॥ गुरुतल्पी गुरुद्रोही गुरुकुत्सारतिश्च यः। ब्रह्मविच्चापि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥ २५ ॥ एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा । शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥२६॥ शूद्रकर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि । शुश्रूषां परिचर्यां च ज्येष्ठे वर्णे प्रयत्नतः॥२७॥ कुर्यादविमनाः शूद्रः सततं सत्पथे स्थितः । देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः ॥ २८ ॥ ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः । चोक्षश्चोक्षजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः ॥ २९ ॥ वृथामांसं न भुंजीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ।

है कुण्ड जातिके पुरुषका भोजन करता है, सोमलताको बेचता है नीच जातिके पुरुषकी सेवा करता है ऐसा ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होजाता है ॥ २४ ॥ और ब्राह्मणजातिका जो पुरुष गुरुपत्नीसे गमन करता है गुरुसे द्रोह करता है गुरुकी निन्दामें प्रसन्न रहता है ऐसा ब्राह्मण वेदवेत्ता होने पर भी ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होजाता है ॥ २५ ॥ हे देवि ! इसी प्रकार शुभ कर्म करनेसे शूद्र ब्राह्मणत्वको पाता है और वैश्य क्षत्रियत्वको पाता है (और क्षत्रिय वैश्यत्वको पाता है) ॥ २६ ॥ शूद्र जातिका पुरुष शूद्रके सब कर्म शास्त्रानुसार विधिपूर्वक करे अपनेसे उत्तम वर्णके पुरुषोंकी प्रयत्नपूर्वक सेवा करे २७ और सेवा करता हुआ अपने मनमें खेद न माने, सदा सन्मार्गसे चलें, देवता और ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करे, सबका अतिथिसत्कार करे २८ ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीसे गमन करे सब नियमोंका पालन करे, भोजन भी नियमानुसार करे, स्वयं शुद्ध रहे, शुद्ध पुरुषों का सङ्ग करे, अतिथि आदिको भोजन करानेके पीछे शेष अन्नका भोजन करे ॥ २९ ॥ देवताओंको अर्पण किए बिना मांसका भोजन न करे ऐसा शूद्र दूसरे जन्ममें वैश्यके यहाँ

अगमागमदर्शी निर्द्वन्द्वः शमकोविदः ॥ ३० ॥ यजते नित्य-
यज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः । दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्ण-
बुभूषकः ॥३१॥ गृहस्थव्रतमातिष्ठन् द्विकालकृतभोजनः । शेषाशी
विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः ॥ ३२ ॥ अग्निहोत्रमुपासंश्च
जुह्वानश्च यथाविधि।सर्वातिथ्यमुपातिष्ठन् शेषान्नकृतभोजनः ३३
त्रेताग्निमन्त्रविहितो वैश्यो भवति वै द्विजः । स वैश्यः क्षत्रिय-
कुले शुचौ महति जायते ॥३४॥ स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्म-

उत्पन्न होता है, वैश्य जातिका पुरुष यदि सत्यभाषण करता है, अहंकारपूर्वक नहीं बोलता है सुख और दुःखकी परवाह न कर शान्तिमें रहता है ॥ ३० ॥ सदा पञ्चमहायज्ञ करता है, अपना स्वाध्याय करनेमें परायण रहता है, बाहरसे और भीतरसे पवित्र रहता है, इन्द्रियोंको सदा नियममें रखता है, ब्राह्मणोंका सत्कार करता है सब वर्णोंकी सेवा करता है ३१ गृहस्थोंके व्रतका आचरण करता है दो समय भोजन करता है, देवता अतिथि आदिको भोजन करानेके अनन्तर शेष बचे हुए अन्नका भोजन करता है, अपने आहारका विजय करता है, कामनाको त्याग देता है,अहंकारमें भरकर बातचीत नहीं करता है ३२अग्निहोत्रकी उपासना करता है, शास्त्रोक्त विधिसे होम करता है, सबका अतिथिसत्कार करता है और सबको भोजन करानेके पीछे बाकी बचे हुए अन्नका भोजन करता है ॥३३॥ गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवसथ्य इन तीन अग्नियोंकी वेदके मन्त्रोंसे उपासना करता है वह वैश्यजातिका पुरुष क्षत्रियके बड़े भारी कुलमें उत्पन्न होता है ३४ इसप्रकार वैश्यजातिका पुरुष क्षत्रिय जातिमें उत्पन्न होता है और उसके जन्मसे ही क्षत्रियके सब संस्कार किये जाते हैं और उपनयन संस्कारसे संस्कृत होने पर यदि वह वेदके व्रतोंका पालन करता है

प्रभृति संस्कृतः । उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सत्कृतः ।३५।
ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः । अधीत्य स्वर्गमन्विच्छं-
स्त्रेताग्निशरणः सदा ॥३६॥ आर्तहस्तगदो नित्यं प्रजा धर्मेण
पालयन् । सत्यः सत्यानि कुरुते नित्यं यः सुखदर्शनः ॥ ३७ ॥
धर्मदण्डो न निर्दंडो धर्मकार्यानुशासकः । यन्त्रितः कार्यकरणैः
षड्भागकृतलक्षणः ॥ ३८ ॥ ग्राम्यधर्मं न सेवेत स्वच्छंदेनार्थ-
कोविदः । ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपशयेत् सदा ॥ ३९ ॥
सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरतः शुचिः। बर्हिष्कांतरिते नित्यं
शयानोऽग्निगृहे सदा॥४०॥सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमनाः

तो वह दूसरे जन्ममें सत्कार करने योग्य ब्राह्मण के कुलमें उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥ जो क्षत्रिय दान देता है बहुतसी दक्षिणा वाले सर्वोत्तम यज्ञ करता है, वेदका अध्ययन करके स्वर्गकी इच्छा करता है, सदा आहवनीय आदि अग्निकी उपासना करता है ॥ ३६ ॥ सदा दुःखी पुरुषोंको दान देता है, प्रजाका सदा धर्मसे पालन करता है, सत्यभाषण करता है, सत्यकर्म करता है, जो लोकोंको सदा सुखदायक दर्शन देता है, जो दण्डका त्याग नहीं करता है, तथा जो दण्ड देता है वह धर्मपूर्वक देता है, धार्मिक कार्योंका उपदेश देता है, जो उत्तम कार्य करके अपनी प्रजाको नियममें रखता है, प्रजाका पालन करके उससे छठा भाग लेता है ३८ स्वच्छन्दतासे विषयोंका उपभोग नहीं करता है, अर्थसम्पादन करनेमें कुशल रहता है, धर्ममें मनको स्थिर रखता है, सदा ऋतुकालमें भी अपनी स्त्रीका ही सेवन करता है ॥ ३९ ॥ सदा उपवास करता है, नियमोंका पालन करता है, स्वाध्यायमें परायण रहता है, बाहरसे और भीतरसे पवित्र रहता है, अग्निशालामें सदा दर्भासन पर शयन करता है ॥ ४० ॥ सबका

सदा । शूद्राणां चान्नकामानां नित्यं सिद्धमितिब्रुवन् ॥ ४१ ॥
अर्थाद्वा यदि वा कामान्न किंचिदुपलक्षयेत् । पितृदेवातिथिकृते
साधनं कुरुते च यः ॥ ४२ ॥ स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्य-
मेव च । त्रिकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि ॥ ४३ ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः । त्रेताग्निमन्त्रपूतात्मा
समाविश्य द्विजो भवेत् ॥ ४४ ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नः संस्कृतो
वेदपारगः । विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा ॥४५॥
एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः । शूद्रोप्यागमसंपन्नो
द्विजो भवति संस्कृतः ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्व-

अतिथिसत्कार करता है, धर्मका, अर्थका तथा कामका सदा सेवन करता है, सदा प्रसन्नमन रहता है, अन्न चाहनेवाले शूद्रोंको "अन्न लो" कहकर सदा अन्न देता है ॥ ४१ ॥ धन की इच्छासे अथवा और किसी कामनासे कोई ओछा काम नहीं करता है जो पितर देवता और अतिथियोंका सदा सत्कार करता है ॥ ४२ ॥ जो अपने घरमें सदा विधिपूर्वक भोजन करता है तथा जो तीनों समय यथा विधि अग्निमें होम करता है ॥ ४३ ॥ जो गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेके लिये रण मचाकर मारा जाता है तीन अग्नियोंके मन्त्रोंसे जिसका शरीर पवित्र रहता है ऐसा क्षत्रिय (दूसरे जन्ममें) ब्राह्मण होजाता है ॥ ४४ ॥ वह धर्मात्मा क्षत्रिय अपना कर्म करनेसे ज्ञान तथा विज्ञानसे सम्पन्न उत्तम संस्कारोंमें संस्कृत वेदपारंगत धर्मात्मा ब्राह्मण होकर उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥ हे देवि ! ओछी जाति वा कुलमें जन्मा हुआ शूद्र भी उपरोक्त उत्तम प्रकारके कर्म करता है, तो वह वेदशास्त्रसम्पन्न और संस्कारों से संस्कृत हो दूसरे जन्ममें द्विज बनकर उत्पन्न होता है ४६ परन्तु ब्राह्मण भी यदि दुराचारी होता है सब संकर जातियोंके

संकरभोजनः । ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥४७॥
कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेंद्रियः । शूद्रोऽपि द्विजवत्
सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत् स्वयम् ॥ ४८ ॥ स्वभावः कर्म च शुभं
यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति। विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः ४९
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च संततिः । कारणानि द्विज-
त्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥ ५० ॥ सर्वोयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन
तु विधीयते। वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति ॥५१॥
ब्राह्मः स्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतिः । निर्गुणं निर्मलं
ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ॥ ५२ ॥ एते योनिफला देवि स्थान-
भागनिदर्शकाः । स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ५३

हाथका भोजन करलेता है तो वह ब्राह्मणत्वको त्याग कर उन
की समान (दूसरे जन्ममें) शूद्र ही होजाता है ॥ ४७ ॥ हे
देवि ! जो शूद्र इन्द्रियोंको वशमें रख पवित्र कर्म कर विशुद्धात्मा
होजाता है वह शूद्र भी द्विजवत् सेव्य है, यह बात ब्रह्माजीने
अपने आप कही है ॥४८॥ कि-यदि शूद्रमें भी उत्तम प्रकारका
स्वभाव तथा उत्तम प्रकारका कर्म हो तो उसको भी ब्राह्मणसे
उत्तम समझना चाहिये यह मेरा मत है ॥४९॥ योनि, संस्कार
शास्त्रोंका अभ्यास तथा सन्तति ये ब्राह्मणत्वमें कारण नहीं है,
किन्तु आचार ही कारण है ॥ ५० ॥ जगत्मेंके ये सब ब्राह्मण
इस जन्ममें सदाचारसे ब्राह्मण होते हैं, शूद्र भी यदि सदाचार
का वर्ताव करते हैं तो दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होजाते हैं ॥ ५१ ॥
हे सुश्रोणि ! ब्राह्मणस्वभाव सर्वत्र सम है, यह निर्गुण और
निर्मल ब्रह्म जिसमें वास करता है उसको ब्राह्मण (ब्रह्म-
वेत्ता) जानना चाहिये ॥ ५२ ॥ हे देवि ! ये जो चारों वर्णोंके
स्थान तथा विभाग दिखाये गये हैं इन सबको अपने उत्पत्ति-
स्थानके अनुसार जानना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण आदि जातिमेंसे

ब्राह्मणोऽपि महत् क्षेत्रं लोके चरति पादवत् । यत्तत्र बीजं वपति सा कृषिः प्रेत्य भाविनि ॥ ५४ ॥ विघसाशिना सदा भाव्यं सत्पथालंबिना तथा । ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता ॥ ५५ ॥ संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना । नित्यं स्वाध्यायिना भाव्यं न चाध्ययनजीविना ॥ ५६ ॥ एवंभूतो हि यो विप्रः सत्पथं सत्पथे स्थितः । आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना । योनिप्रतिग्रहदानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते ॥ ५८ ॥ एतत्ते गुह्य-

---

उत्पन्न हुएको ब्राह्मण आदि जानना चाहिये और वे कर्मानुसार दूसरे जन्ममें ब्राह्मण आदि जातिमें उत्पन्न होते हैं, यह बात प्रजाको रचते समय ब्रह्माजीने स्वयं कही है ॥५३॥ इस लोक में ब्राह्मण पादचारी क्षेत्रकी समान है जो उसमें बीज बोता है हे भाविनि ! वह मरने पर परलोकमें कृषि (फल) पाता है ५४ कल्याण चाहने वाला पुरुष सदा देवता अतिथि तथा पोष्य-वर्गको भोजन करानेके अनन्तर शेष अन्नको खावे सन्मार्ग पर चले, और परब्रह्मके मार्गका आश्रय लेय ॥ ५५ ॥ सदा संहिताका पाठ करे, गृहस्थाश्रम धारण करके घरमें रहे और सदा अपना स्वाध्याय करे परन्तु अध्यापन कर आजीविका न चलावे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार जो ब्राह्मण सन्मार्ग पर रहकर सन्मार्गका अनुसरण करता है, अग्निहोत्रमें होम करता है तथा वेदका अध्ययन करता है वह ब्रह्मरूप होसकता है ॥ ५७ ॥ हे शुचिस्मिते ! ब्राह्मणत्व पाने पर पुरुष सावधान होकर अधम पुरुषोंसे सम्बन्धको त्याग कर तथा कर्म करने वालोंसे दान लेकर अपनी रक्षा करे ॥ ५८ ॥ शूद्र धर्माचरण करनेसे किस प्रकार ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न होता है और ब्राह्मण अपने धर्मको त्यागनेसे किस प्रकार शूद्र जातिमें उत्पन्न होजाता है यह गुप्त

माख्यातं यथा शूद्रो भवेद्द्विजः । ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ५६ ॥

इति श्रीमाहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

उमोवाच । भगवन् सर्वभूतेश देवासुरनमस्कृत । धर्माधर्मौ नृणां देव ब्रूहि मे संशयं विभो ॥ १ ॥ कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधं हि नरः सदा । बध्यते बन्धनैः पाशैर्मुच्यतेऽप्यथवा पुनः २ केन शीलेन वृत्तेन कर्मणा कीदृशेन वा । समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥ ३ ॥ महेश्वर उवाच । देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्ये दमे रते । सर्वप्राणिहितः प्रश्नः श्रूयतां बुद्धिवर्धनः ४ सत्यधर्मरताः सन्तः सर्वलिंगविवर्जिताः । धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ५ ॥ नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते

बात मैंने तुझसे आज कही है ॥ ५६ ॥ एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥ छ छ छ छ

उमाने बूझा, कि-हे भगवन् ! हे सर्वभूतेश ! हे देवासुर-नमस्कृत! हे विभो! मनुष्योंको धर्मका तथा अधर्मका कैसा फल मिलता है, इस विषयके मेरे सन्देहको दूर करिये ॥ १ ॥ मनुष्य कर्म, मन और वाणी इन तीन प्रकारके बन्धनोंसे बँध जाता है और उन बन्धनोंसे छूट भी जाता है ॥ २ ॥ मनुष्य कैसे शीलसे कैसे वर्तावसे कैसे कर्मसे कैसे आचारोंसे और कैसे गुणोंसे स्वर्गमें जाता है ? ॥ ३ ॥ महेश्वरने कहा, कि-हे देवि ! तुम धर्मके तत्त्वको जानने वाली हो, सदा धर्माचरण करती रहती हो, दममें प्रीति रखती हो, तुम्हारा प्रश्न सब प्राणियोंका हित करने वाला और बुद्धिको बढ़ाने वाला है उसके उत्तरको तुम सुनो ॥ ४ ॥ सत्यधर्ममें प्रेम रखने वाले सन्त सब आश्रमोंके चिन्होंसे रहित और धर्मसे पाये हुए धनको भोगने वाले मनुष्य

छिन्नसंशयाः। प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ६ ॥
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः । कर्मणा मनसा वाचा
ये न हिंसन्ति किंचन ॥७॥ ये न संजनति कस्मिंश्चित्ते न बध्यंति
कर्मभिः । प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः ॥ ८ ॥
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः । सर्वभूतदयावन्तो
विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ॥ ९ ॥ त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः
स्वर्गगामिनः । परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः ॥ १० ॥
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः । मातृवत् स्वसृवच्चैव
नित्यं दुहितृवच्च ये ॥ ११ ॥ परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्ग-
गामिनः । स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेन च ॥ १२ ॥

स्वर्गमें जाते हैं ॥ ५ ॥ प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वको जानने वाले समदर्शी सर्वज्ञ पुरुषोंके सन्देह दूर होजाते हैं वे धर्म और अधर्मके बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥ ६ ॥ जो इच्छारहित होते हैं जो मन वाणी और कर्मसे किसीकी हिंसा नहीं करते हैं वे कर्मबन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ७ ॥ किसीका प्राण लेनेसे अलग रहने वाले, शीलवान् दयालु और किसीमें आसक्ति न रखने वाले पुरुष कर्मोंके बन्धनमें नहीं पडते हैं ॥ ८ ॥ सब प्राणियों पर दया करने वाले सब प्राणियोंके विश्वासपात्र, शत्रु और मित्रको समान मानने वाले दान्त पुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त होजाते हैं ॥९ ॥ पराये धनमें आसक्ति न रखनेवाले पराई स्त्रीको सदा त्यागने वाले और हिंसामय आचरणोंको त्यागने वाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ १० ॥ धर्मसे प्राप्त हुए अन्नको खाने वाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं, जो मनुष्य पराई स्त्रियोंसे सदा अपनी माता बहिन और पुत्रीकी समान वर्ताव करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं ॥ ११ ॥ और जो पुरुष कभी चोरी नहीं करते हैं और सदा अपने धनसे ही सन्तुष्ट रहते हैं और अपने भाग्य पर-

स्वभाग्यान्युपजीवंति ते नराः स्वर्गगामिनः । स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः ॥ १३ ॥ अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः । परदारेषु ये नित्यं चरित्रावृतलोचनाः ॥ १४ ॥ यतेंद्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः । एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः ॥ १५ ॥ अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः । दानधर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥ १६ ॥ वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा सेवितव्यः सदा नरैः । स्वर्गवासमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥ १७ ॥ उमोवाच । वाचा तु बध्यते येन मुच्यतेऽप्यथवा पुनः। तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ १८

आजीविका चलाते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं और जो पुरुष अपनी स्त्री पर ही प्रीति रखते हैं जो ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीसे गमन करते हैं और जो ग्राम्य सुखका उपभोग नहीं करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं जो पुरुष परस्त्रियोंके संबन्धमें अपने नेत्रोंको सदा बन्द कर लेते हैं जो पुरुष इन्द्रियोंका निग्रह करते हैं तथा जो शीलपरायण रहते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं, इस देवताओंके बनाये हुए मार्गका मनुष्योंको सदा सेवन करना चाहिये ॥ १२-१५ ॥ देवताओंने यह मार्ग राग और द्वेषरहित पुरुषोंके लिये निर्मित किया है, बुद्धिमान् मनुष्योंको इसका सदा सेवन करना चाहिये और स्वर्गमें बसना चाहने वाले मनुष्योंको दान धर्म और तपसे युक्त, शील शौच और दया वाले इस मार्गका जीविकाके लिये और धर्मके लिये सदा सेवन करना चाहिये, स्वर्गमें बसना चाहने वालोंको दूसरे मार्गका सेवन न करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥ उमाने बूझा; कि-हे निर्दोषदेव ! हे भूतपते ! कैसी वाणी बोलनेसे मनुष्य बन्धन (पाप) में फँस जाता है और कैसी वाणी बोलनेसे छूट जाता (पुण्य पाता) है ? उस वाणीका मुझसे वर्णन

महेश्वर उवाच । आत्महेतोः परार्थं वा नर्महास्याश्रयात्तथा । ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १९ ॥ वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च । अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २० ॥ श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम् । स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२१॥ परुषं ये न भाषंते कटुकं निष्ठुरं तथा । अपैशुन्यरताः संतस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २२ ॥ पिशुनां न प्रभाषंते मित्रभेदकरीं गिरम् । ऋतं मैत्रं तु भाषंते ते नराः स्वर्गगामिनः॥२३॥ये वर्जयंति परुषं परद्रोहं च मानवाः। सर्वभूतसमा दांतास्ते नराः स्वर्गगामिनः२४ शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः । सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते

करिये ॥ १८ ॥ महेश्वरने कहा, कि-जो पुरुष अपने लिये या दूसरेके लिये कटाक्ष करते समय और हास्य करते समय भी असत्य भाषण नहीं करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष आजीविकाके लिये अथवा धर्मके लिये अथवा कामनाके लिये असत्यभाषण नहीं करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥२०॥ जो पुरुष कोमलता भरी किसीको दुःखित न करने वाली और पापमय विचारोंसे रहित मधुरवाणीसे मनुष्योंका सत्कार करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष कठोर भाषण नहीं करते हैं, कटुभाषण नहीं करते हैं तथा निष्ठुर भाषण नहीं करते हैं और चुगली खानेके दोषमें मुक्त रहते हैं वे सत्पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥२२॥ जो पुरुष मित्रोंमें भेद डालने वाली चुगली भरी वाणी नहीं बोलते हैं परन्तु सत्यवाणी बोलते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ २३ ॥ जो पुरुष तीक्ष्णताको त्याग देते हैं, दूसरोंसे द्वेष नहीं करते हैं तथा सब प्राणियों पर समानभाव रखते हैं और इन्द्रियोंका निग्रह रखते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ २४ ॥ जो पुरुष शठता भरी वाणी नहीं बोलते हैं, जो

नराः स्वर्गगामिनः ॥ २५॥ न कोपा व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारणीम् । सांत्वं वदन्ति क्रुद्धापि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२६॥ एष वाणीकृते देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः । शुभः सत्यगुणो नित्यं वर्जनीयो मृषा बुधैः ॥ २७ ॥ उमोवाच । मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा । तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृत् ॥२८॥ महेश्वर उवाच । मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा । स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥ २९ ॥ दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीततरा कृतिः। मनो बध्यति येनेह शृणु वाक्यं शुभानने ॥ ३० ॥ अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा । मनसापि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३१ ॥

विरुद्ध वाणीको त्याग देते हैं तथा जो सौम्यवाणी बोलते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ २५ ॥ जो पुरुष क्रोधमें भरकर हृदयको विदीर्ण करने वाली वाणी नहीं बोलते हैं, क्रुद्ध पुरुषसे भी सामके वचन कहते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ २६ ॥ हे देवि! इस सत्यगुणसे भरी हुई वाणीके शुभ मार्गका विद्वानोंको सदा सेवन करना चाहिये और वाणीके दुरुपयोगरूपी असत्यमार्गका सदा त्याग करना चाहिये ॥ २७ ॥ उमाने बूझा, कि-हे पिनाक धनुषको धारण करने वाले महाभाग देवदेव! मनुष्य जिस मानसिक कर्मसे बन्धनमें पड़ जाता है उस मानसिक कर्मका मुझसे वर्णन करिये ॥ २८ ॥ महेश्वरने कहा, कि-हे कल्याणि! सदा मानसिक धर्मसे युक्त हुआ पुरुष अर्थात् विचार करनेकी शक्तिवाला पुरुष स्वर्गमें जाता है, उसको मैं कहता हूँ तू सुन ॥ २९ ॥ मनमें दुर्विचार करनेसे मनुष्यके कर्म भी दूषित होने लगते हैं, तब मनुष्यका मन बन्धनमें पड़ जाता है, इस विषयको तू सुन ॥३०॥ निर्जन वनमें अथवा एकान्तमें दूसरेका धन पड़ा हो तब भी जो उसके

ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम्। नाभिनन्दंति वै
नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३२ ॥ तथैव परदारान् ये काम-
वृत्तान् रहोगतान्।मनसापि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः३३
शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः । भजन्ति मैत्राः
संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३४॥ श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः
सत्यसंगराः । स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३५॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रीचित्तरताः सदा।सर्वभूतदयावंतस्ते नराः
स्वर्गगामिनः३६श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः। धर्मा-
धर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥३७॥ शुभानामशुभानां च
कर्मणां फलसंचये। विपाकज्ञाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः३८

ऊपर मन नहीं डुलाते हैं, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥३१॥ ग्राममें
घरमें अथवा निर्जन स्थानमें भी जो पुरुष किसीका धन नहीं
लेना चाहते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार
जो मनुष्य कामातुर और एकान्तमें प्रार्थना करती हुई परस्त्रियों
की मनसे भी इच्छा नहीं करते हैं, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ३३
जो पुरुष शत्रुसे और मित्रसे मिलते समय एकसे मनसे मिलते हैं
वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं॥३४॥जो पुरुष शास्त्रका अभ्यास करते
हैं, दयालु रहते हैं, पवित्र रहते हैं, सत्यप्रतिज्ञ रहते हैं और
अपने धनसे सन्तुष्ट रहते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं ॥ ३५ ॥
जो किसीसे वैर नहीं करते हैं, किसीको पीड़ित नहीं करते हैं,
जिनके मनमें मित्रताके गुणोंका सदा वास रहता है और जो
सदा सब प्राणियों पर दया रखते हैं, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं३६
जो पुरुष श्रद्धालु दयालु और स्वच्छ रहते हैं और स्वच्छ पुरुषोंसे
प्रेम करते हैं और धर्म तथा अधर्मको सदा पहिचानते रहते हैं, वे
स्वर्गमें जाते हैं३७हे देवि!जो पुरुष शुभ तथा अशुभ कर्मोंके परि-
पाकको जानते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं३८जो पुरुष न्यायवान् और

न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा । समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३६ ॥ शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः । स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥ ४० ॥ उमोवाच । महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान् प्रति महेश्वर । तस्मात्त्वं नैपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ केनायुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो । तपसा वापि देवेश केनायुर्लभते महत् ४२ क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः । विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिंदित४३अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथापरे । अकुलीनास्तथा चान्ये कुलीनाश्च तथा परे ॥ ४४ ॥ दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव । प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्श-

गुणी होते हैं,सदा देवता और ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं और श्रेष्ठ कर्म करनेमें तत्पर रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं३६हे देवि ! जो शुभ कर्म करते हैं वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं, यह बात मैंने तुम को कहकर सुनादी अब तुम और किस बातको सुनना चाहती हो ॥ ४० ॥ उमाने कहा, कि-हे महेश्वर ! मुझे मनुष्योंकी आयुके सम्बन्धमें बड़ा सन्देह है,अतः आज आपको कुशलता-पूर्वक इस विषयका विवेचन करना चाहिये ॥ ४१ ॥ पुरुष कैसे कर्मको करके दीर्घायु होजाता है और हे देवेश ! पुरुष कौनसे तपसे दीर्घायु पाता है ॥ ४२ ॥ पृथ्वी पर कौनसा कर्म करनेसे मनुष्योंकी आयु क्षीण होजाती है, हे पवित्र देव ! आप को कर्मोंके विपाकका वर्णन करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कितने पुरुष महाभाग्यवान् होते हैं तो कितने ही मन्दभाग्य होते हैं, कितने ही अकुलीन होते हैं कितने ही कुलीन होते हैं ॥ ४४ ॥ कितने ही मनुष्य कुरूप होते है और कितने ही काठकी समान जड़ दीखते हैं और कितने ही मनुष्योंको देखते ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है कितने ही पुरुष दुर्बुद्धि प्रतीत होते हैं,कितने ही पण्डित

नादेव मानवाः ॥ ४५ ॥ दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः । महाप्राज्ञास्तथैवान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥ ४६ ॥ अल्पाबाधास्तथा केचिन्महाबाधास्तथापरे । दृश्यन्ते पुरुषा देव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४७ ॥ महेश्वर उवाच । हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् । मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वफलमश्नुते ॥ ४८ ॥ प्राणातिपाते यो रौद्रो दंडहस्तोद्यतः सदा । नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥ ४९ ॥ निर्दयः सर्वभूतानां नित्यमुद्वेगकारकः । अपि कीटपिपीलानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥ ५० ॥ एवं भूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते । विपरीतस्तु धर्मात्मा रूपवानभिजायते ॥ ५१ ॥ पापेन कर्मणा देवि बध्यो हिंसारतिर्नरः । अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ५२

मालूम होते हैं, कितने ही महाविद्वान् दीखते हैं और कितने ही ज्ञानविज्ञानसम्पन्न प्रतीत होते हैं ॥४६॥ कितने ही अल्पदुःखी और कितने ही महापीड़ित प्रतीत होते हैं, हे देव ! इसका क्या कारण है ? यह आप मुझे बताइये ॥४७॥ महेश्वरने कहा, कि- हे देवि ! इस मर्त्यलोकमें सब मनुष्य अपने कर्मफलको किस प्रकार भोगते हैं यह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य दूसरेका प्राण लेनेके लिये भयंकर बन जाता है, हाथमें सदा शस्त्र उठाये रहता है, सदा दण्डा उठाये रहता है, प्राणियोंकी सदा हिंसा किया करता है ॥ ४९ ॥ दयासे रहित होता है, सब प्राणियोंको सदा उद्विग्न करता रहता है, अति निर्दयी होता है, कीड़े और चींटी आदिको भी शरण नहीं देता है ५० हे देवि ! जो पुरुष ऐसा होता है वह नरकमें पड़ता है, परन्तु इससे विपरीत गुणवाला पुरुष दूसरे जन्ममें धर्मात्मा और रूपवान् होता है ॥ ५१ ॥ हे देवि ! पापकर्म करने वाला पुरुष दूसरे जन्ममें वध करने योग्य और हिंसाप्रेमी होता है, सब

निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः । यातनां निरये रौद्रां स कृच्छ्रां लभते नरः ॥ ५३ ॥ यः कश्चिन्निरयात्तस्मात् समुत्तरति कर्हिचित् । मानुष्यं लभते चापि हीनायुस्तत्र जायते ५४ पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिंसारतिर्नरः । अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५५ ॥ यस्तु शुक्लाभिजातीयः प्राणिघातविवर्जकः । निक्षिप्तशस्त्रो निर्दंडो न हिंसति कदाचन ॥ ५६ ॥ न घातयति नो हन्ति घ्नंतं नैवानुमोदते । सर्वभूतेषु सस्नेहो यथात्मनि तथापरे ॥ ५७ ॥ ईदृशः पुरुषोत्कर्षो देवि देवत्वमश्नुते । उपपन्नान् सुखान् भोगानुपाश्नाति मुदा युतः ॥ ५८ ॥ अथ

प्राणियोंका अप्रीतिपात्र होजाता है तथा अल्पायु होता है ।५२। अहिंसा करने वाला पुरुष स्वर्गमें जाता है और हिंसा करने वाला पुरुष नरकमें पड़ता है और तहाँ नरकमें भयंकर और दुःखदायक नरककी पीड़ा भोगता है ॥ ५३ ॥ और जो पुरुष उस नरकमेंसे कदाचित् पार होजाता है और मनुष्यका अवतार धारण करता है तो वह उस जन्ममें अल्पायु होता है ॥ ५४ ॥ हे देवि ! जो पुरुष पापकर्म करता हो, जिसकी हिंसामें प्रीति हो वह पुरुष इस जगत्में सब प्राणियोंका अप्रिय होजाता है और उसकी आयु अल्प होती है ॥ ५५ ॥ परन्तु जो पुरुष शुद्ध कुल में उत्पन्न हुआ होता है, जो प्राणियोंकी हिंसा नहीं करता है, जो शास्त्र और दण्डोंको त्याग देता है, जो किसी दिन भी किसीकी हिंसा नहीं करता है ॥ ५६ ॥ और जो पुरुष किसी दिन दूसरेसेभी हिंसा नहीं कराता है, स्वयं भी हिंसा नहीं करता है तथा हिंसा करनेवालेका अनुमोदन भी नहीं करता है, अपनी आत्माकी समान सब प्राणियों पर प्रीति रखता है ॥ ५७ ॥ हे देवि ! ऐसा उत्तम पुरुष देवत्वको पाता है तथा सुख और भोगों को हर्षपूर्वक भोगता है५८ और उस प्राणीको कदाचित् मनुष्यका

चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते । तत्र दीर्घायुरुत्पन्नः स नरः सुखमेधते ॥५९॥ एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मिणाम् । प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

उमोवाच । किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः । स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥ १ ॥ महेश्वर उवाच । दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु । भक्ष्यभोज्यान्नपानानां वाससां च प्रदायकः ॥ २ ॥ प्रतिश्रयान्सभाः कूपान् प्रपाः पुष्करिणीस्तथा । नैत्यकानि च सर्वाणि किमिच्छकमतीव च ३ आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा । सस्यजातानि सर्वाणि गाः क्षेत्राण्यथ योषितः ॥ ४ ॥ सुप्रतीतमना नित्यं यः प्रयच्छति

जन्म मिलता है तब वह उस जन्ममें दीर्घायु और सुखी होता है५९ यह सदाचारी सुकर्म करनेवाले दीर्घायु मनुष्योंका मार्ग प्राणियोंको हिंसाके दोषसे छुड़ानेके लिये ब्रह्माजीने कहा है ॥६०॥ एकसौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४४ ॥ ॐ

उमाने कहा, कि-कैसे शीलवाला, कैसे आचार वाला तथा कैसा कर्म करने वाला पुरुष स्वर्गमें जाता है तथा कैसा दान देनेसे पुरुष स्वर्गमें जाता है ॥१॥ महेश्वरने कहा, कि-दान देने वाला, ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाला, गरीबोंको दुःखियोंको कृपणोंको भक्ष्य भोज्य अन्न तथा पान देनेवाला, वस्त्र देने वाला आश्रयस्थान, सभास्थान, कूप, बावड़ी और तालाब आदि बनवानेवाला, सदा सब प्रकारके दान देनेवाला, मनुष्यों को उनकी इच्छानुसार वरदान देनेवाला, अशन शयन स्थान घर रत्न धन सब प्रकारके धान्य ग्राम क्षेत्र स्त्री आदिका जो पुरुष मनमें अति प्रसन्न होकर सदा दान देता है हे देवि ! वह

मानवः । एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥ ५ ॥ तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् । सहाप्सरोभिर्मुदितो रमते नंदनादिषु ॥६॥ तस्मात् स्वर्गाच्च्युतो लोकान्मानुषेषु प्रजायते । महाभोगकुले देवि धनधान्यसमन्वितः ॥ ७ ॥ तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदा युतः । महाभोगो महाकोशो धनी भवति मानवः ॥ ८ ॥ एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशीलिनः । ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥९॥ अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजैः । याचिता न प्रयच्छंति विद्यमानेप्यबुद्धयः ॥१०॥दीनांधकृपणान् दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि । याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः॥११॥न धनानि न वासांसि

पुरुष देवलोकमें देवता होकर उत्पन्न होता है ॥ २–५ ॥ और वह तहाँ बहुत समय रहकर सर्वोत्तम भोगोंको भोगता हुआ अप्सराओंके साथ आनन्दपूर्वक नन्दन आदि वनोंमें विहार करता है ॥ ६ ॥ और हे देवि ! वह स्वर्गलोकमेंसे पुण्य फल भोगकर भ्रष्ट होने पर मनुष्यलोकमें महाभोग वाले कुलमें धन धान्य वाला होकर उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ और वह मनुष्य तहाँ अपने सब अभीप्सित गुणोंको पाकर हर्षसे बड़े२ भोगोंको भोगनेवाला और बड़ेभारी धनवाला होजाता है ॥८॥ हे महादेवि ! ये महाभाग्यवान् पुरुष दान देनेवाले होते हैं, यह बात ब्रह्माजीने पहिले कही है, ऐसे मनुष्योंको देखकर सब मनुष्य प्रसन्न होजाते हैं ॥ ९ ॥ परन्तु हे देवि ! जो पुरुष दान देनेमें कृपण होते हैं और जो अल्पबुद्धि अपनेपास धन होता है और ब्राह्मण मांगते हैं तब भी उनको धन नहीं देते हैं ॥ १० ॥ ये जिव्हाके लोभी दीन अन्ध कृपण और भिक्षुक मनुष्योंको देखकर (उनसे ही) याचना करके उनके समीपसे हट जाते हैं ११ कृपण पुरुष गरीबोंको धन वस्त्र और भोग सुवर्ण और नाना

न भोगान्न च काञ्चनम् । न गावो नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥१२॥ अप्रवृत्ताश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः । एवंभूता नरा देवि निरयं यांत्यबुद्धयः ॥१३॥ ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कायस्य पर्ययात् । धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः॥१४ क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः । निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवंत्यधर्मजीविकाम् ॥१५॥ अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः । अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥१६॥ अपरे स्तंभिनो नित्यं मानिनः पापतो रताः । आसनार्हस्य ये पीठं न प्रयच्छंत्यचेतसः ॥ १७ ॥ मार्गार्हस्य च ये मार्गं न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ॥ १८॥ पाद्यार्हस्य च ये पाद्यं न ददत्यल्पबुद्धयः ।

प्रकारके अन्न आदि किसी दिन नहीं देते हैं ॥ १२ ॥ हे देवि ! जो पुरुष किसी दिन दान नहीं देते हैं, लोभी नास्तिक और दानरहित होते हैं ऐसे बुद्धिहीन पुरुष मरणके पीछे नरकमें पड़ते हैं ॥ १३ ॥ वे अल्पबुद्धि पुरुष जब कालके फेरफारसे मनुष्य जातिमें उत्पन्न होते हैं तब निर्धन कुलमें उत्पन्न होते हैं ॥१४॥ उस जन्ममें वे क्षुधा और पिपासासे पीड़ा पाते हैं, सब मनुष्य उनको अपनी मण्डलीमेंसे बहिष्कृत करदेते हैं, वे सब प्रकार के भोग भोगनेमें निराश रहते हैं और अधर्माचरणसे अपनी आजीविका चलाते हैं ॥ १५ ॥ अथवा थोड़े वैभव वाले कुलमें उत्पन्न होते हैं और तहाँ अल्पभोग भोगते हैं, हे देवि ! ऐसा कर्म करनेसे मनुष्य निर्धन होजाते हैं॥ १६ ॥ अभिमानी मानी और पापकर्ममें परायण रहने वाले जो अल्पबुद्धि पुरुष आसन देने योग्य पुरुषोंको बैठनेके लिये आसन नहीं देते हैं ॥ १७ ॥ और जो अल्पबुद्धि पुरुष मार्ग देने योग्य पुरुषको मार्ग नहीं देते हैं और जो अल्पबुद्धि पुरुष पाद्य देने योग्य पुरुषको पाद्य नहीं देते हैं ॥१८॥ अर्घ देने योग्यका शास्त्रोक्त विधिसे सत्कार

अर्घार्हान्न च सत्कारैरर्चयन्ति यथाविधि । अर्घ्यमाचमनीयं वा न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ॥ १९ ॥ गुरुं चाभिगतं प्रेम्णा गुरुवन्न बुभूषते । अभिमानप्रवृत्तेन लोभेन समवस्थिताः २० संमान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान् परिभवन्ति च । एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः ॥ २१ ॥ ते वै यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति वै । वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले ॥ २२ ॥ श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् । कुलेषु तेषु जायन्ते गुरुवृद्धापचायिनः ॥ २३ ॥ न स्तंभी न च मानी यो देवताद्विजपूजकः । लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रश्रितो मधुरं वचः ॥ २४ ॥ सर्ववर्णप्रियकरः सर्वभूतहितः सदा ।

करके उनको अर्घ नहीं देते हैं और जो अल्पबुद्धि पुरुष आचमन कराने योग्य पुरुषको आचमन नहीं कराते हैं ॥ १९ ॥ गुरुके सामने आने पर जो प्रेममें भरकर पिताकी समान उनका सन्मान नहीं करते हैं, अभिमानके कारण लोभके वशमें रहते हैं २० भलीप्रकार सत्कार करने योग्य पुरुषका अपमान करते हैं, वृद्ध पुरुषोंका पराभव करते हैं, हे देवि ! ये सब पुरुष नरकमें पड़ते हैं ॥ २१ ॥ ऐसे पुरुष बहुत वर्षों बाद नरकमेंसे यदि छूट जाते हैं तो वे निन्दित कुलोंमें उत्पन्न होते हैं ॥२२॥ वृद्धोंका और गुरुओंका अपमान करने वाले पुरुष श्वपाक पुल्कस आदि नीच जातियोंके तथा बुद्धिहीन पुरुषोंके कुलोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ परन्तु जो पुरुष गर्विष्ठ और अभिमानी नहीं होते हैं, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, लोकोंमें पूज्य माने जाते हैं, सबको नमस्कार करते हैं, सबके विश्वासपात्र रहते हैं, मधुर वचन कहते हैं ॥२४॥ सब वर्णोंमें प्रिय होते हैं, सब प्राणियोंका सदा हित करने वाले होते हैं, किसीसे द्वेष नहीं करते हैं, प्रसन्नमुख रहते हैं, कोमल-स्वभाव वाले होते हैं,

अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा ॥२५॥ स्वागते-
नैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः । यथार्हसत्क्रिया पूर्वमर्चयन्नव-
तिष्ठति ॥ २६ ॥ मार्गार्हाय ददन् मार्गं गुरुं गुरुवदर्चयन् ।
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाभ्यागतपूजकः ॥ २७॥ एवम्भूतो नरो देवि
स्वर्गतिं प्रतिपद्यते । ततो मानुषतां प्राप्य विशिष्टकुलजो भवेत्२८
तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः । यथार्हदाता चार्हेषु धर्म-
चर्यापरो भवेत् ॥२९॥ सम्मतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा ॥ ३० ॥ उदात्तकुल-
जातीय उदात्ताभिजनः सदा । एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा
स्वयमीरितः ॥ ३१ ॥ यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः ।

सदा स्नेहभरी वाणीका उच्चारण करते हैं ॥ २५ ॥ सब मनुष्योंका स्वागत करके सत्कार करते हैं, यथोचित सत्कार-पूर्वक सबका पूजन करते हैं ॥ २६ ॥ मार्ग देने योग्य पुरुषोंको मार्ग देते हैं, गुरुका पिताकी समान पूजन करते हैं, अतिथियों का सत्कार करनेमें परायण रहते हैं, अभ्यागतोंकी पूजा करते हैं ॥ २७ ॥ हे देवि ! ऐसे गुण वाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं और तहाँसे जब मनुष्य जातिमें उत्पन्न होते हैं तो उत्तम कुलमें उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥ तहाँ पर बड़े भारी वैभवको भोगते हैं, सब प्रकारके रत्न उनको मिलते हैं, वे योग्य पुरुषोंको योग्यताके अनुसार दान देते हैं, धर्माचरणमें परायण रहते हैं ॥ २९ ॥ सब प्राणियोंके मान्य होजाते हैं, सब मनुष्य उनको नमस्कार करते हैं और वे पुरुष स्वयं ही अपने कर्मके फलोंको पाते रहते हैं ॥ ३० ॥ धर्माचरण करने वाला पुरुष सदा उत्तम कुल जाति और उत्तम कुटुम्बमें ही उत्पन्न होता है, धर्माचरण करने वाले पुरुषोंके ये धर्म मैंने तुमसे कहे, यह ब्रह्माने स्वयं ही कहे हैं ३१ जिस पुरुषका आचार भयंकर होता है, जो पुरुष सब प्राणियों

हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥ ३२ ॥ लोष्टैः स्तम्भैरायुधैर्वा जंतून्बाधति शोभने । हिंसार्थं निकृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव ह ॥ ३३ ॥ उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा । एवंशीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३४ ॥ स वै मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात् । बह्वाबाधपरिक्लिष्टे जायते सोऽधमे कुले ॥ ३५ ॥ लोकद्वेष्योऽधमः पुंसां स्वयं कर्मफलैः कृतैः । एव देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु ॥ ३६ ॥ अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति । मैत्रदृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः ॥ ३७ ॥ नोद्वेजयति भूतानि न विघातयते तथा । हस्तपादैः सुनियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ॥ ३८ ॥ न रज्ज्वा न च

के लिये भयंकर होजाता है, जो अपने हाथसे पैरसे रस्सीसे लकड़ीसे मट्टीके ढलेसे स्तम्भसे अथवा हथियारोंसे प्राणियोंको पीड़ा देता है और हे शोभने! कपट करनेमें कुशल होता है तथा हिंसा करनेके लिये प्राणियोंको उद्विग्न करता रहता है ॥ ३२॥३३ ॥ प्राणियों पर सदा आक्रमण करता रहता है, प्राणियोंको उद्विग्न करता है,ऐसे शीलवाला पुरुष मरणके पीछे नरकमें पड़ता है ॥ ३४ ॥ वह पुरुष यदि कालके फेरफारसे मनुष्यजातिमें उत्पन्न होजाता है तो अधम कुलमें उत्पन्न हो बहुत दुःख पाता है३५ऐसा पुरुष अपने किये हुए पापकर्मोंके कारण मनुष्योंका कुटुम्बियोंका तथा सम्बन्धियोंका भी द्वेषपात्र होजाता है और अधम माना जाता है॥३६॥ पुण्यात्मा पुरुष सब प्राणियोंकी ओर दयादृष्टि और मित्रदृष्टिसे देखता है,सबके साथ पिताकी समान बर्ताव करता है. किसीसे वैर नहीं रखता है, अपनी इन्द्रियोंको नियममें रखता है ॥३७॥ प्राणियोंको उद्विग्न नहीं करता है, उनका नाश नहीं करता है अपने हाथ और चरणोंको भलीभाँति नियममें रखता है सब प्राणियोंका विश्वास-

दण्डेन न लोष्टैर्नायुधेन च । उद्वेजयति भूतानि श्लक्ष्णकर्मा दयापरः ॥३९॥ एवंशीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते । तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥ ४० ॥ स चेद् कर्मक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते । अल्पाबाधो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते ॥४१॥ सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः । एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥ ४२ ॥ उमोवाच । इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः । ज्ञानविज्ञानसम्पन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥४३॥ दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः । केन कर्मविशेषेण प्रज्ञावान् पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥ अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानवः । एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वधर्मविदां वर ॥ ४५ ॥ जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा ।

पात्र होता है ॥ ३८ ॥ रस्सीसे, लकड़ीसे मट्टीके ढलेसे अथवा अस्त्रोंसे प्राणियोंको दुःखी नहीं करता है, मृदुकर्म करता है, दयापरायण रहता है ॥ ३९ ॥ ऐसे शील और आचार वाला पुरुष स्वर्गमें देवता होजाता है और तहाँ दिव्यभवनमें देवताकी समान हर्षपूर्वक निवास करता है ॥ ४० ॥ पुण्यकर्मका क्षय होने पर वह मनुष्यलोकमें मनुष्य होकर उत्पन्न होता है और तहाँ पीड़ारहित होकर नीरोग रह सुखपूर्वक आयु बिताता है ४१ सुख भोगता है, दुःखरहित होजाता है, हे देवि ! यह सत्पुरुषोंका मार्ग है और इस मार्गमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती है ॥४२॥ उमाने बूझा, कि-कितने ही मनुष्य ऊहापोहमें कुशल, ज्ञानविज्ञानसम्पन्न, बुद्धिमान् और व्यवहारकुशल प्रतीत होते हैं ॥ ४३ ॥ परन्तु दूसरे पुरुष दुर्बुद्धि और ज्ञानविज्ञानशून्य देखनेमें आते हैं वे पुरुष कैसे कर्म करनेसे बुद्धिमान् होजाते हैं ॥ ४४ ॥ हे विरूपाक्ष ! मनुष्यकी बुद्धि अल्प होनेका क्या कारण है ? मेरे इस संशयको आप दूर करिये, क्योंकि-आप

नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥ ४६ ॥ महेश्वर उवाच । ब्राह्मणान् वेदविदुषः सिद्धान् धर्मविदस्तथा । परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाः कुशलं तथा ॥ ४७ ॥ वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा । लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके तथा सुखम् ॥ ४८ ॥ स चेन्मानुषतां याति मेधावी तत्र जायते । श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य कल्याणमुपजायते ॥ ४९ ॥ परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते । तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति ह ५० मनसा तु प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम् । रोगार्त्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकर्मिणः ॥५१॥ ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः । पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥ ५२ ॥

सब धर्मोंको जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं ॥४५॥ हे देव ! कितने ही पुरुष जन्मसे ही अन्धे होते हैं, कितने ही पुरुष रोगातुर होते हैं और बहुतसे पुरुष नपुंसक दीखते हैं इसका कारण बताइये ४६ महेश्वरने कहा, कि–हे देवि ! कुशलपुरुष वेदवेत्ता सिद्ध और धर्मवेत्ता ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन कुशलसमाचार बूझा करते हैं ४७ और अशुभ कर्मको त्याग कर शुभ कर्म करते हैं वे इस लोकमें सुख भोगते हैं और मरणके पीछे परलोकमें जाते हैं ॥ ४८ ॥ और वे जब मनुष्यलोकमें उत्पन्न होते हैं तब विद्वान् होकर उत्पन्न होते हैं और वे शास्त्राध्ययन करके उसके अनुसार वर्ताव करते हैं इससे उनका कल्याण होता है ॥ ४९ ॥ परन्तु जो पुरुष परस्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं वे पुरुष इस दुःस्वभाव के कारण अन्धे होकर उत्पन्न होते हैं ॥५०॥ जो पुरुष कुत्सित मनसे स्त्रियोंको नग्नस्थितिमें देखते हैं वे दुष्कर्म करनेवाले पुरुष इस जगत्में रोगातुर होकर उत्पन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ जो पुरुष मूर्खतासे दुराचार करते हैं पशु आदिकी योनिमें मैथुन करते हैं तथा पुरुषोंके साथ मैथुन करते हैं वे अति दुर्बुद्धि पुरुष दूसरे

पशूंश्च ये घातयान्ति ये चैव गुरुतल्पगाः । प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति ते नराः ॥ ५३ ॥ उमोवाच । सावद्यं किंतु गौ कर्म निरवद्यं तथैव च। श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम५४ महेश्वर उवाच । श्रेयांसं मार्गमन्विच्छन् सदा यः पृच्छति द्विजान् । धर्मान्वेषी गुणाकांक्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥ ५५ ॥ यदि मानुषतां देवि कदाचित् स निगच्छति । मेधावी धारणा-युक्तः प्रायस्तत्राभिजायते ॥५६॥ एष देवि सतां धर्मो मन्तव्यो भूतिकारकः । नृणां हितार्थाय मया तव गौ समुदाहृतः ॥५७॥ उमोवाच । अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः । ब्राह्म-णान् वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥५८॥ व्रतवन्तो नराः

जन्ममें नपुंसक होकर उत्पन्न होते हैं । ५२ । जो पुरुष पशुकी हत्या करते हैं जो पुरुष गुरुपत्नीसे व्यभिचार करते हैं और जो वर्णसंकर जातिकी स्त्रीसे व्यभिचार करते हैं वे पुरुष दूसरे जन्ममें नपुंसक होकर उत्पन्न होते हैं ॥ ५३ ॥ उमाने बूझा, कि हे देवश्रेष्ठ ! इस जगत्में पापमय कर्म कौनसे हैं और पाप-रहित कर्म कौनसे हैं ? इनमेंसे कौनसे कर्मोंको करनेसे मनुष्य का कल्याण होता है ॥ ५४ ॥ महेश्वरने कहा, कि-हे देवि ! जो पुरुष सदा कल्याणमार्गकी इच्छा करता है, ब्राह्मणोंसे उसके सम्बन्धमें प्रश्न बूझा करता है, धर्मको खोजा करता है और उत्तम गुणमय कर्म करना चाहता है, वह मनुष्य स्वर्गमें जाता है ॥ ५५ ॥ हे देवि ! उपरोक्त गुणोंवाला मनुष्य कदाचित् मनुष्य होजाता है तो अधिकतर बुद्धिमान् और धारणावाला होता है ॥ ५६ ॥ हे देवि ! इस सत्पुरुषोंके धर्मको तू कल्याण-प्रद समझ, मैंने इसका लोकोंके कल्याणके लिये वर्णन किया है ॥ ५७ ॥ उमाने कहा, कि-बहुतसे अल्पबुद्धि पुरुष धर्मसे द्वेष करते हैं और वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पास जाना नहीं चाहते-५८

केचिच्छ्रद्धाधर्मपरायणाः । अव्रता भ्रष्टनियमास्तथान्ये राक्षसोपमाः ॥ ५९ ॥ यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथापरे । केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥ ६० ॥ महेश्वर उवाच । आगमा लोकधर्माणां मर्यादाः सर्वनिर्मिताः । प्रामाण्येनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते च दृढव्रताः ॥ ६१ ॥ अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः । अव्रता नष्टमर्यादास्ते प्रोक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ ६२ ॥ ते चेत्कालकृतोद्योगात् संभवंतीह मानुषाः । निर्होमा निर्वषट्काकारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥ ६३ ॥ एष देवि मया सर्वः संशयच्छेदनाय ते । कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ६४

बहुतसे पुरुष व्रतोंका पालन करते हैं, श्रद्धावान् होते हैं और धर्ममें परायण रहते हैं तब बहुतसे पुरुष वृत्तिरहित नियमभ्रष्ट और राक्षसोंकी समान होते हैं ॥५९॥ बहुतसे पुरुष यज्ञ करने वाले होते हैं तो बहुतसे पुरुष होम करते ही नहीं, ऐसे पुरुष कैसे कर्मविपाकसे उत्पन्न होते हैं यह मुझसे कहिये ॥ ६० ॥ महेश्वरने कहा, कि–धर्म और शास्त्र लोकोंको मर्यादामें बाँधने के लिये हैं और वह मर्यादा सबके लिये निर्मित कीगई है, दृढ़तासे व्रतको पालनेवाले पुरुषोंको शास्त्रोक्त प्रमाणोंके अनुसार बर्ताव करते हुए हम देखते हैं ॥ ६१ ॥ परन्तु मोहके वशमें पड़े हुए जो पुरुष अधर्मको धर्म कहते हैं, व्रतोंका पालन नहीं करते हैं, मर्यादाका उल्लंघन करते हैं, ऐसे पुरुषोंको ब्रह्मराक्षस कहा है ॥६२॥ ऐसे पुरुष कदाचित् कालके उद्योगसे मनुष्य जातिमें उत्पन्न होते हैं तो वे होम नहीं करते हैं तथा वषट्कार भी नहीं करते हैं परन्तु अधम जीवन बिताते हैं ॥ ६३ ॥ हे देवि ! मैंने तेरे संशयको दूर करनेके लिये धार्मिक पुरुषोंकी कुशल करने वाले तथा अधर्मियोंकी अकुशल करनेवाले धर्मरूपी सागरका तुझसे विस्तार पूर्वक वर्णन किया ६४ एकसौ पैंतालीसवाँ अध्याय

नारद उवाच । एवमुक्त्वा महादेवः श्रोतुकामः स्वयं प्रभुः । अनुकूलां प्रियां भार्यां पार्श्वस्थां समभाषत ॥ १ ॥ महेश्वर उवाच । परावरज्ञे धर्मज्ञे तपोवननिवासिनि । साध्वि सुभ्रु सुकेशान्ते हिमवत्पर्वतात्मजे ॥ २ ॥ दक्षे शमदमोपेते निर्ममे धर्मचारिणि । पृच्छामि त्वां वरारोहे पृष्टा वद ममेप्सितम् ॥ ३ ॥ सावित्री ब्रह्मणः साध्वी कौशिकस्य शची सती । मार्कंडेयस्य धूमोर्णा ऋद्धिर्वैश्रवणस्य च ॥४॥ वरुणस्य तथा गौरी सूर्यस्य च सुवर्चला । रोहिणी शशिनः साध्वी स्वाहा चैव विभावसोः५ अदितिः कश्यपस्याथ सर्वास्ताः पतिदेवताः । पृष्टाश्चोपासिताश्चैव तास्त्वया देवि नित्यशः ॥६॥ तेन त्वां परिपृच्छामि धर्मज्ञे धर्मवादिनि । स्त्रीधर्मं श्रोतुमिच्छामि त्वयोदाहृतमादितः ॥ ७ ॥

नारदजीने कहा, कि—इस प्रकार कहनेके अनन्तर प्रभु महादेवजीको ही स्त्रियोंका धर्म सुननेकी इच्छा हुई अतएव उन्होंने अपने पासमें बैठी हुई अपने अनुकूल रहनेवाली प्रिय भार्या उमासे कहा ॥१॥ महेश्वरने कहा, कि-हे भूत तथा भविष्यको जाननेवाली ! हे धर्मज्ञे ! हे तपोवनमें निवास करनेवाली ! हे साध्वी ! हे सुन्दर भृकुटी वाली स्त्री ! हे सुकेशान्ते ! हे हिमाचलकी पुत्री ! हे चतुरे ! हे शमदमसम्पन्ने ! हे ममतारहिते ! हे धर्मचारिणि ! हे वरारोहे ! मैं तुझसे कुछ बूझता हूँ, तू मेरी इष्ट बातका उत्तर दे ॥ २ ॥ ३ ॥ हे धर्मज्ञे ! ब्रह्माजीकी स्त्री सावित्री-इन्द्रकी साध्वी स्त्री शची, मार्कण्डेयकी सती धूमोर्णा, कुबेरकी ऋद्धि, वरुणकी स्त्री गौरी, सूर्यकी सुवर्चला, चन्द्रमाकी रोहिणी और अग्निकी साध्वी स्वाहा और कश्यपकी स्त्री अदिति ये सब अपने पतियोंको देवताकी समान मानती हैं, हे धर्मवादिनि देवि ! तूने इन सबकी सेवा करके इनसे प्रश्न भी बूझे हैं ॥ ४-६ ॥ इसलिये हे धर्मज्ञे ! हे धर्मवादिनि उमा ! मैं

सधर्मचारिणी मे त्वं समशीला समव्रता। समानसारवीर्या च तपस्तीव्रं कृतं च ते ॥ ८ ॥ त्वया ह्युक्तो विशेषेण गुणवान् स भविष्यति। लोके चैव त्वया देवि प्रमाणत्वमुपैष्यति ॥ ९ ॥ स्त्रियश्चैव विशेषेण स्त्रीजनस्य गतिः परा। गौर्यां गच्छति सुश्रोणि लोकेष्वेषा गतिः सदा ॥ १० ॥ मम चार्धं शरीरस्य तव चार्धेन निर्मितम्।सुरकार्यकरी च त्वं लोकसन्तानकारिणी ११ तव सर्वः सुविदितः स्त्रीधर्मः शाश्वतः शुभे। तस्मादशेषतो ब्रूहि स्वधर्मं विस्तरेण मे ॥१२॥ उमोवाच। भगवन् सर्वभूतेश भूतभव्यभवोत्तम। त्वत्प्रभावादियं देव वाक्चैव प्रतिभातु मे ॥१३॥ इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः। उपस्पर्शनहेतोस्त्वासुप-

---

तुमसे प्रश्न करता हूँ और तेरे मुखसे स्त्रीधर्मको आदिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥ तुम मेरे साथ धर्माचरण करने वाली हो, तुम्हारा शील भी मेरे समान है, तुम्हारे व्रत भी मेरे व्रतोंकी समान हैं तुम्हारा बल और पराक्रम भी मेरी समान है और तुमने प्रचण्ड तप किया है ॥ ८ ॥ हे देवि ! यदि तुम स्त्रीधर्म का वर्णन करोगी तो वह अधिक गुणी माना जायगा और तुम्हारा कहा हुआ होनेसे जगत्में प्रमाणित माना जायगा ९ क्योंकि-स्त्रियोंकी (पूर्ण) उत्तम गति(को जाननेका) आधार स्त्रियें ही हैं, पृथ्वी पर यह बात सदासे चली आती है ॥१०॥ मेरे शरीरका आधा भाग तुम्हारे शरीरके आधे भागसे बनाया गया है, तुम देवताओंका काम करने वाली हो और लोकोंको सन्तान देनेवाली हो ॥ ११ ॥ तुम सनातन कालसे प्रचलित स्त्रियोंके सब धर्मोंकी जानकार हो, अतः तुम विस्तारपूर्वक स्त्रियोंके धर्मका वर्णन करो ॥ १२ ॥ उमाने कहा, कि-हे भगवन् ! हे सर्वभूतेश्वर ! हे भूत भविष्यत् और वर्तमान कालमें उत्तम देव ! आपके प्रभावसे यह मेरी वाणी प्रतिभावाली हो

कुशलास्ता वै गंगाद्याः सरितां वराः ॥ २१ ॥ उमोवाच । अयं भगवता प्रोक्तः प्रश्नः स्त्रीधर्मसंश्रितः । तं तु संमन्त्र्य युष्माभिर्वक्तुमिच्छामि शंकरम् ॥ २२ ॥ न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित् । दिवि वा सागरगमास्तेन वो मानयाम्यहम् २३ एवं सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः पृष्टाः पुण्यतमाः शिवाः ततो देवनदी गङ्गा नियुक्ता प्रतिपूज्य च ॥२४॥ बह्वीभिर्बुद्धिभिः स्फीता स्त्रीधर्मज्ञा शुचिस्मिता । शैलराजसुतां देवीं पुण्या पापभयापहा ॥ २५ ॥ बुद्ध्या विनयसंपन्ना सर्वधर्मविशारदा । सस्मितं बहुबुद्ध्याढ्या गंगा वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ गंगोवाच । धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि देवि धर्मपरायणे । या त्वं सर्वजगन्मान्या नदीं मानयसेऽनघे २७

को प्रिय समझने वाली शंकरकी पटरानी उमादेवी स्त्रीधर्ममें कुशल गङ्गाजी आदि महानदियोंसे बूझने लगीं ॥२१॥ उमाने कहा, कि-मुझसे भगवान् शंकरने स्त्रियोंके धर्मके सम्बन्धमें प्रश्न किया है और मैं तुम्हारे साथ विचार करके शंकरसे इस बातको कहना चाहती हूँ ॥ २२ ॥ हे समुद्रगामिनी नदियों ! इस पृथ्वीमें ऐसी कोई बात नहीं है जो एकसे ही साध्य हो अतः मैं तुम्हारा विचार जानना चाहती हूँ ॥२३॥ उमाने इस प्रकार पुण्यमयी और कल्याण करने वाली सब नदियोंसे स्त्रीधर्मके सम्बन्धमें कहा, तब निर्मल बुद्धिवाली बहुतसी नदियोंने धर्म को जानने वाली पवित्र हास्य करनेवाली धर्मज्ञ देवनदी गङ्गाजीका सन्मान कर उनको उत्तर देनेके लिए नियुक्त किया तब सब धर्मोंमें चतुर बुद्धि और विनयसे संपन्न पुण्यमयी और पाप के भयको दूर करनेवाली बुद्धिकी धनी गङ्गाजी मुस्करा कर हिमाचलकी पुत्री उमासे कहने लगी ॥ २४-२६ ॥ गङ्गाजीने कहा, कि हे धर्मपरायणे हे निर्दोष देवि ! हम अपना धन्यभाग समझती हैं, कि-सब जगत्की मान्य उमादेवी नदियोंका सन्मान

यान्ति समीपतः ॥ १४ ॥ एताभिः सह संमन्त्र्य प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । प्रभवन् योऽनहंवादी स वै पुरुष उच्यते ॥ १५ ॥ स्त्री च भूतेश सततं स्त्रियमेवानुधावति । मया संमानिताश्चैव भविष्यन्ति सरिद्वराः ॥ १६ ॥ एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी । प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी ॥ १७ ॥ विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती । शतद्रुर्देविका सिंधुः कौशिकी गौतमी तथा ॥ १८ ॥ तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसंभृता । गगनाद्गां गता देवी गंगा सर्वसरिद्वरा ॥१९॥ इत्युक्त्वा देवदेवस्य पत्नी धर्मभृतां वर । स्मितपूर्वमथाभाष्य सर्वास्ताः सरितस्तथा ॥२०॥ अपृच्छद्देवमहिषी स्त्रीधर्मं धर्मवत्सला । स्त्रीधर्म-

---

जाय ॥ १३ ॥ हे देवेश ! सब तीर्थोंके जलसे भरी हुई ये सब नदियें आपके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये आपके पास आ रही हैं ॥ १४ ॥ मैं इन सब नदियोंके साथ क्रमशः बात चीत करूँगी, फिर स्त्रियोंके धर्मका वर्णन करूँगी, जो पुरुष समर्थ होने पर भी अभिमानी नहीं होता है वह पुरुष ही पुरुष कहलाता है ॥ १५ ॥ हे भूतपते ! स्त्रियें सदा ही स्त्रियोंका अनुसरण करती हैं, अतः मैं इन श्रेष्ठ नदियोंसे बातचीत कर इनका सन्मान करना चाहती हूँ ॥ १६ ॥ यह सरस्वती नदी पवित्र है और सब नदियोंमें उत्तम है इसका सब नदियोंमें पहिले नाम लिया जाता है और यह समुद्रगामिनी है ॥ १७ ॥ इसके अतिरिक्त विपाशा वितस्ता चन्द्रभागा इरावती शतद्रु देविका सिन्धु कौशिकी और गौतमी नामकी नदी और यह गङ्गाजी (आई) हैं इनमें सब तीर्थोंका वास है, यह आकाशमेंसे पृथ्वी पर उतरी हैं और सब नदियोंमें श्रेष्ठ मानी जाती है ।१८-१९। धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ देवदेवकी पत्नी उमाने इसप्रकार कह मुस्करा कर उन सब नदियोंको अपने पास बुलाया ॥ २० ॥ फिर धर्म

कुशलास्ता वै गंगाद्याः सरितां वराः ॥ २१ ॥ उमोवाच । अयं भगवता प्रोक्तः प्रश्नः स्त्रीधर्मसंश्रितः । तं तु संमन्त्र्य युष्माभि-र्वक्तुमिच्छामि शंकरम् ॥ २२ ॥ न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित् । दिवि वा सागरगमास्तेन वो मानयाम्यहम् २३ एवं सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः पृष्टाः पुण्यतमाः शिवाः।ततो देवनदी गङ्गा नियुक्ता प्रतिपूज्य च ॥२४॥ बह्वीभिर्बुद्धिभिः स्फीता स्त्रीधर्मज्ञा शुचिस्मिता । शैलराजसुतां देवीं पुण्या पापभयापहा ॥ २५ ॥ बुद्ध्या विनयसंपन्ना सर्वधर्मविशारदा। सस्मितं बहुबुद्ध्याढ्या गंगा वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ गंगोवाच । धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि देवि धर्मपरायणे। या त्वं सर्वजगन्मान्या नदीं मानयसेऽनघे २७

को प्रिय समझने वाली शंकरकी पटरानी उमादेवी स्त्रीधर्ममें कुशल गङ्गाजी आदि महानदियोंसे बूझने लगीं ॥२१॥ उमाने कहा, कि-मुझसे भगवान् शंकरने स्त्रियोंके धर्मके सम्बन्धमें प्रश्न किया है और मैं तुम्हारे साथ विचार करके शंकरसे इस बातको कहना चाहती हूँ ॥ २२ ॥ हे समुद्रगामिनी नदियों ! इस पृथ्वीमें ऐसी कोई बात नहीं है जो एकसे ही साध्य हो अतः मैं तुम्हारा विचार जानना चाहती हूँ ॥२३॥ उमाने इस प्रकार पुण्यमयी और कल्याण करने वाली सब नदियोंसे स्त्रीधर्मके सम्बन्धमें कहा, तब निर्मल बुद्धिशाली बहुतसी नदियोंने धर्म को जानने वाली पवित्र हास्य करनेवाली धर्मज्ञ देवनदी गङ्गा-जीका सन्मान कर उनको उत्तर देनेके लिए नियुक्त किया तब सब धर्मोंमें चतुर बुद्धि और विनयसे संपन्न पुण्यमयी और पाप के भयको दूर करनेवाली बुद्धिकी धनी गङ्गाजी मुस्करा कर हिमाचलकी पुत्री उमासे कहने लगी ॥ २४-२६ ॥ गङ्गाजीने कहा, कि हे धर्मपरायणे हे निर्दोष देवि ! हम अपना धन्यभाग समझती हैं, कि-सब जगत्की मान्य उमादेवी नदियोंका सन्मान

प्रभवन् पृच्छते यो हि संमानयति वा पुनः । नूनं जनमदुष्टात्मा पंडिताख्यां स गच्छति ॥ २८ ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नानूहापोह-विशारदान् । प्रवक्तॄन् पृच्छते योऽन्यान् स वै नापदमृच्छति २९ अन्यथा बहुबुद्ध्याढ्यो वाक्यं वदति संसदि । अन्यथैव ह्यहंवादी दुर्बलं वदते वचः ॥ ३० ॥ दिव्यज्ञाने दिवि श्रेष्ठे दिव्यपुण्यैः सहोत्थिते । त्वमेवार्हसि नो देवि स्त्रीधर्माननुभाषितुम् ॥ ३१ ॥ ततः साराधिता देवी गंगया बहुभिर्गुणैः । प्राह सर्वमशेषेण स्त्रीधर्मं सुरसुन्दरी ॥ ३२ ॥ उमोवाच । स्त्रीधर्मो मां प्रति यथा प्रतिभाति यथाविधि । तमहं कीर्त्तयिष्यामि तथैव प्रथिता भव ३३ स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः। सह धर्मचरी भर्त्तु-

करर‍ही है ॥२७॥ जो पुरुष सब बातें जान बूझकर भी दूसरों से बूझता है तथा उनका सत्कार करता है और स्वयं शुद्ध हृदय का होता है, वह पुरुष जगत्‌में पण्डित कहलाता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न होता है, तर्क वितर्क करने में कुशल होता है और प्रवचन (स्वाध्याय) करनेवाले पुरुषों की सम्मति लेता है उस पुरुष पर जगत्‌में आपत्तियें नहीं पड़ती हैं ॥ २९ ॥ और वह महाबुद्धिमान् पुरुष सभामें (उचित बात) कहता है, इसके विपरीत वर्त्ताव करनेवाला किसीकी सम्मति न लेनेवाला अति बुद्धिमान् भी अहंकारी पुरुष थोथी बात ही कहता है ॥ ३० ॥ हे दिव्य ज्ञानवाली ! हे स्वर्गमें श्रेष्ठ ! हे दिव्य पुण्योंके साथ उत्पन्न हुई ! हे देवि ! तुम ही हमें स्त्रीधर्म सुनानेकी पात्र हो ॥ ३१ ॥ इसप्रकार गङ्गाजीने बहुतसे गुण गाकर उमा देवीकी स्तुति की, तब सुरसुन्दरी उमा स्त्रियोंके सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन करने लगीं ॥ ३२ ॥ उमाने कहा, कि-मैं जिस प्रकार स्त्रियोंके धर्मको जानती हूँ उस प्रकार वर्णन करती हूँ, तुम भी सावधान होजाओ ॥ ३३ ॥ विवाहमें कन्या

भवत्यग्निसमीपतः ॥ ३४ ॥ सुखभावा सुवचना सुवृत्ता सुखदर्शना । अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ३५ ॥ सा भवेद्धर्मपरमा सा भवेद्धर्मभागिनी । देववत्सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति ॥ ३६ ॥ शुश्रूषां परिचारं च देववद्या करोति च । नान्यभावा ह्यविमनाः सुव्रता सुखदर्शना ॥३७॥ पुत्रवक्त्रमिवाभीक्ष्णं भर्तुर्वदनमीक्षते । या साध्वी नियताहारा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥३८॥ श्रुत्वा दंपतिधर्मं वै सह धर्मं कृतं शुभम् । या भवेद्धर्मपरमा नारी भर्तृसमव्रता ॥ ३९ ॥ देववत् सततं

के माता पिता और भाई आदि बन्धु पहिले ही स्त्रीको धर्म उपदेश देते हैं और स्त्री अग्निकी साक्षीमें स्वामीकी सहधर्मचारिणी होजाती है ॥ ३४ ॥ स्त्रीको अपना स्वभाव अच्छा रखना चाहिये, सुन्दर दिखावा रखना चाहिये, केवल पतिमें ही चित्त स्थिर रखना चाहिये, प्रसन्न मुख रहना चाहिये और पतिके साथ रहकर धर्माचरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देवताकी समान देखती है वह स्त्री धर्मपरायण रहती है और उस स्त्रीको धर्मका भाग मिलता है३६ जो स्त्री अपने पतिकी देवताकी समान परिचर्या और सेवा करती है, पतिके अतिरिक्त और किसी पर भाव नहीं रखती है, मनमें सदा प्रसन्न रहती है, उत्तम आचरण वाली होती है, जिसका दर्शन करनेसे ही सुख मिलता है, जो पुत्रके मुखकी समान स्वामीके मुखको सदा देखती रहती है और जो साध्वी नियमानुसार भोजन करती है उसको धर्मचारिणी समझना चाहिये ॥ ३७ ॥३८॥ जो स्त्री "स्त्री और पुरुषको एक साथ रहकर उत्तम धर्मका आचरण करना चाहिये" इसप्रकार दम्पति धर्मको सुनकर धर्ममें परायण रहती हैं उस स्त्रीको अपने पति की समान व्रत करने वाली जानना चाहिये ॥ ३९ ॥ अपने

साध्वी भर्तारमनुपश्यति.दंपत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः ४०
शुश्रूषां परिचारं च देवतुल्यं प्रकुर्वती । वश्याभावेन सुमनाः
सुव्रता सुखदर्शना । अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी
परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या
नारी सा पतिव्रता ॥ ४२ ॥ न चन्द्रसूर्यौ न तरुं पुन्नाम्ना या
निरीक्षते । भर्तृवर्जं वरारोहा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ४३ ॥
दरिद्रं व्याधितं दीनमध्वना परिकर्शितम् । पतिं पुत्रमिवोपास्ते
सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४४ ॥ या नारी प्रयता दक्षा या नारी
पुत्रिणी भवेत् । पतिप्रिया पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी ४५

स्वामीको देवताकी समान देखने वाली स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये, यह दम्पतिका उत्तम धर्म है ॥ ४० ॥ जो स्त्री अपने स्वामीकी देवताकी समान सेवा शुश्रूषा करती है वह स्त्री वशीकरण मन्त्रके बिना ही अपने पतिको वशमें करलेती है, जो स्त्री मनमें प्रसन्न रहती है, भली प्रकार बर्ताव करती है, सुखमय दृश्य रखती है, पतिके अतिरिक्त दूसरे पर मन नहीं डुलाती है, हँसमुख रहती है, उस स्त्रीको धर्मचारिणी समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ पतिके कठोर वचन कहने पर, क्रूर दृष्टिसे देखने पर भी जो स्त्री अपने मनको प्रसन्न रखती है उस स्त्री को पतिव्रता समझना चाहिये ॥ ४२ ॥ जो स्त्री अपने पतिके अतिरिक्त चन्द्रमा सूर्य और पुलिंग जातिके वृक्षको भी नहीं देखती है उस सुन्दर स्त्रीको धर्मचारिणी समझना चाहिये ४३ जो स्त्री अपने दरिद्री रोगी दीन अथवा मार्गमें थके हुए पति को पुत्रकी समान सेवा करती है उसको धर्मचारिणी समझना चाहिये ४४ जो स्त्री उत्तम नियमोंका पालन करती है, कार्य करनेमें कुशल होती है पुत्रवती होती है, पति पर प्रेम रखती है और अपने पति को प्राणकी समान मानती है उस स्त्रीको धर्मचारिणी

शुश्रूषां परिचर्यां च करोत्यविमनाः सदा । सुप्रतीता विनीता च सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४६ ॥ न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा । स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी ४७ कल्योत्थानरतिर्नित्यं गृहशुश्रूषणे रता । सुसंमृष्टक्षया चैव गोशकृत्कृतलेपना ॥४८॥ अग्निकार्यपरा नित्यं सदापुष्पबलिप्रदा । देवतातिथिभृत्यानां निर्वाप्य पतिना सह ॥ ४९ ॥ शेषान्नमुपभुञ्जाना यथान्यायं यथाविधि । तुष्टपुष्टजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते ॥ ५० ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ जोषयन्ती गुणान्विता ।

समझना चाहिये ॥४५॥ जो नारी प्रसन्नमनसे अपने पतिकी सेवा और परिचर्या करती है, अपने पति पर भली प्रकार विश्वास रखती है, पतिके साथ विनयपूर्वक बर्ताव करती है उस नारीको धार्मिका जानना चाहिये ॥ ४६ ॥ जिस नारीकी पति पर जैसी स्पृहा होती है वैसी स्पृहा कामना पर नहीं होती है, वैभवों पर नहीं होती है, ऐश्वर्य पर नहीं होती है तथा सुख पर भी नहीं होती है, उस नारीको धार्मिका जानना चाहिये ॥ ४७ ॥ जो स्त्री प्रातःकाल उठनेमें प्रीति रखती है, जो घरके काममें लगी रहती है, जो घरको सदा झाड़ बुहार कर स्वच्छ रखती है गौके गोबरसे घरको लीप कर साफ रखती है ॥ ४८ ॥ जो स्त्री अपने पतिके साथ अग्निहोत्रमें सदा होम करती है, देवताओंका पुष्पोंसे और बलिदानोंसे पूजन करती है, अपने पतिके साथ देवता अतिथि और अवश्य पोषण करने योग्य सास सुसर आदिको भोजन आदि करा कर पतिके साथ शेष रहे हुए अन्नका शास्त्रोक्त विधिसे आहार करती है तथा जो अपने मनुष्योंको सदा सन्तुष्ट और हृष्टपुष्ट रखती है उस नारीको धर्म होता है ॥४९॥५०॥ जो स्त्री अपने सास ससुरोंके चरणोंकी सेवा करती है और मातापिताकी सेवामें परायण रहती

मातापितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणान् दुर्बलानाथान् दीनान्धकृपणांस्तथा । बिभर्त्यन्नेन या नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५२ ॥ व्रतं चरति या नित्यं दुश्चरं लघुसत्त्वया । पतिचित्ता पतिहिता सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५३ ॥ पुण्यमेतत्तपश्चैतत् स्वर्गश्चैष सनातनः । या नारी भर्तृपरमा भवेद्भर्तृव्रता सती ॥ ५४ ॥ पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः । पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ॥५५॥ पतिप्रसादः स्वर्गो वा तुल्यो नार्या न वा भवेत् । अहं स्वर्गं न हीच्छेयं त्वय्यप्रीते महेश्वरे ॥ ५६ ॥ यद्यकार्यमधर्मं वा यदि वा प्राणनाशनम् । पतिर्ब्रूयाद्दरिद्रो वा व्याधितो वा कथञ्चन॥५७॥

है वह स्त्री तपोधन मानी जाती है ॥ ५१ ॥ जो स्त्री ब्राह्मणों का दुर्बलोंका अनाथोंका दीनोंका अन्धोंका कृपणोंका अन्न देकर पोषण करती है उस स्त्रीको पतिके व्रतका भाग मिलता है ॥ ५२ ॥ और जो स्त्री मर्यादाका शीघ्र ही ज्ञान कराने वाली बुद्धिसे सदा दुश्चर व्रतोंका पालन करती है चित्तको पतिमें आसक्त रखती है और पतिका हित किया करती है उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ जो स्त्री पतिपरायण होती है तथा जो स्त्री स्वामीके व्रतका पालन करती है उस नारीको पुण्यरूप मानना चाहिये तपोरूप मानना चाहिये तथा उसको सनातन स्वर्गस्वरूप मानना चाहिये ॥ ५४ ॥ पति ही स्त्रियोंका देवता है, पति ही स्त्रियोंकी गति है, पतिकी समान स्त्रियोंकी और कोई गति नहीं है और पति स्त्रियोंके लिये देवस्वरूप है ५५ अपने पतिकी कृपाको और स्वर्गको इन दोनोंको कोई स्त्री समान माने या न माने परन्तु यदि मेरे पति प्रसन्न न हों तो मैं स्वर्गको भी अच्छा नहीं समझती ॥ ५६ ॥ पति दरिद्र हो अथवा रोगी हो आपत्तिमें पड़ा हुआ हो शत्रुओंसे घिर गया हो अथवा ब्राह्मण

आपन्नो रिपुसंस्था वा ब्रह्मशापार्दितोऽपि वा । आपद्धर्माननुप्रेक्ष्य तत्कार्यमविशंकया ॥ ५८ ॥ एष देव मया प्रोक्तः स्त्रीधर्मो वचनात्तव । या त्वेवं भाविनी नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥५९॥ भीष्म उवाच । इत्युक्तः स तु देवेशः प्रतिपूज्य गिरेः सुताम् । लोकान् विसर्जयामास सर्वैरनुचरैर्वृतान् ॥ ६० ॥ ततो ययुर्भूतगणाः सरितश्च यथागतम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव प्रणम्य शिरसा भवम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४६।

ऋषय ऊचुः । पिनाकिन् भगनेत्रघ्न सर्वलोकनमस्कृत । माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामि शंकर ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ।

के शापसे पीड़ा पारहा हो, चाहे जैसी स्थितिमें हो, तब भी वह किसी अकार्यको करनेकी आज्ञा दे अथवा, अधर्म करनेको कहे अथवा किसीका वध करनेको कहे तो स्त्रीको आपत्कालका धर्म समझ कर निःशंक हो वह कार्य करना चाहिये ।५७।५८। हे महादेव ! तुम्हारे बूझनेसे वह स्त्रीधर्म मैंने तुमसे कहा जो नारी इस प्रकार वर्त्ताव करती है उसको पतिव्रता समझना चाहिये ॥ ५९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि इस प्रकार उमाने स्त्रियों के धर्मोंका महादेवजीसे वर्णन किया, तब महादेवजीने पार्वती की प्रशंसाकी और अनुचरोंके साथ आये हुए देवताओंको जाने की आज्ञा दी ॥६०॥ तब सब भूत,नदी, गन्धर्व और अप्सरायें शंकरको प्रणाम कर अपने २ घर चली गईं ॥ ६१ ॥ एकसौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४६ ॥ छ

ऋषियोंने बूझा, कि हे पिनाकिन् ! हे भगनेत्रहन् ! हे सर्वलोकनमस्कृत शंकर ! हम वासुदेव (श्रीकृष्ण) का माहात्म्य सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ ईश्वरने कहा, कि-भगवान् वासुदेव

पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः । कृष्णो जाम्बूनदा-
भासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः ॥ २ ॥ दशबाहुर्महातेजा देवतारि-
निषूदनः । श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥३॥ ब्रह्मा
तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः । शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि
रोमभ्यश्च सुरासुराः ॥ ४ ॥ ऋषयो देहसम्भूतास्तस्य लोकाश्च
शाश्वताः । पितामहगृहं साक्षात् सर्वदेवगृहं च सः ॥५॥ सोस्याः
पृथिव्याः कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः । संहर्ता चैव भूतानां
स्थावरस्य चरस्य च ॥ ६ ॥ स हि देववरः साक्षाद्देवनाथः पर-
न्तपः । सर्वज्ञः सर्वसंश्लिष्टः सर्वगः सर्वतोमुखः ॥ ७ ॥ पर-

ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं, सनातन पुरुष हैं, जगत्में पापका हरण करनेसे हरि कहलाते हैं, उनका नाम श्रीकृष्ण है, उनके शरीर की कान्ति सुवर्णकी कान्तिकी समान है और वह बादलरहित स्वच्छ आकाशमें भासने वाले सूर्यकी समान प्रकाशित रहते हैं ॥ २ ॥ उनकी दश भुजायें हैं, वे महातेजस्वी हैं, देवताओं के शत्रुओंका नाश करने वाले हैं, उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, वह इन्द्रियोंके अधिपति हैं और सब देवता उनकी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी उनके उदरमेंसे उत्पन्न हुए हैं और मैं उनके मस्तकमेंसे उत्पन्न हुआ हूँ, उनके मस्तकके केशों मेंसे नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं उनके शरीरके केशोंमेंसे देवता और असुर उत्पन्न हुए हैं ॥४॥ उनके शरीरमेंसे ऋषि और सनातन लोक उत्पन्न हुए हैं यह वासुदेव साक्षात् पितामहके और सब देवताओंके घर हैं ॥ ५ ॥ यह सब पृथ्वीके स्रष्टा हैं और तीनों भुवनोंके स्रष्टा अर्थात् रचने वाले हैं, स्थावर और जंगम प्राणियोंके संहारकर्ता हैं ॥ ६ ॥ यह देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, सब देवताओंके साक्षात् नाथ हैं, शत्रुके तपाने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सबमें व्याप्त होकर रहते हैं, सर्वत्र व्यापक हैं, सर्वतोमुख हैं॥७॥

मात्मा हृषीकेशः सर्वव्यापी महेश्वरः। न तस्मात् परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥ ८ ॥ सनातनो वै मधुहा गोविन्द इति विश्रुतः। स सर्वान् पार्थिवान् संख्ये घातयिष्यति मानदः ॥९॥ सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुषं वपुरास्थितः। न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविना कृताः ॥ १० ॥ भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जिताः। नायकः सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ११ ॥एतस्य देवनाथस्य देवकार्यपरस्य च। ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च ॥ १२ ॥ ब्रह्मा वसति गर्भस्थः शरीरे सुखसंस्थितः। शर्वः सुखं संश्रितश्च शरीरे सुखसंस्थित ॥१३॥ सर्वाः सुखसंश्रिताश्च शरीरे तस्य देवताः। स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहो-

परमात्मा हैं, इन्द्रियोंके अधिपति हैं, सर्व स्थानोंमें व्याप्त हैं, महेश्वर हैं, तीनों लोकोंमें उनकी समान कोई भी उत्तम प्राणी नहीं है ॥८॥ वह सनातन हैं, मधु दैत्यको मारने वाले हैं और गोविन्द नामसे प्रसिद्ध हैं, सत्पुरुषोंका सत्कार करने वाले वह वासुदेव राजाओंका संहार करेंगे ॥९॥ वह देवताओंका कार्य करनेके लिये मनुष्य शरीर धारण करके उत्पन्न होंगे क्यों कि-उन त्रिविक्रमके विना देवता भी (किसी कामको करनेमें) समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ इस जगत्में इन नायकके विना देवताओंके कार्य नहीं होते हैं, यह सब प्राणियोंके नायक हैं और सब देवता इनको नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ यह सब देवताओं के नाथ हैं, देवताओंका कार्य करनेमें परायण रहते हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं और नित्य ब्रह्मर्षियोंकी शरणरूप हैं ॥ १२ ॥ ब्रह्मा उनके शरीररूप गर्भमें रहने पर भी सुखमें रहता है और मैं शर्व भी उनके शरीरमें हूँ और सुखपूर्वक निवास करता हूँ १३ उनके शरीरमें सब देवता सुखपूर्वक निवास करते हैं उनके नेत्र कमलकी पंखड़ीकी समान हैं, उनमें लक्ष्मीका निवास है और

षितः ॥ १४ ॥ शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः । उत्त-
मेन स शीलेन दमेन च शमेन च ॥ १५ ॥ पराक्रमेण वीर्येण
वपुषा दर्शनेन च । आरोहेण प्रमाणेन धैर्येणार्जवसम्पदा ॥१६॥
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः । अस्त्रैः समुदितः सर्वै-
र्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ १७ ॥ योगमायः सहस्राक्षो निरपायो महा-
मनाः । वीरो मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥१८॥ क्षमा-
वांश्चानहंवादी ब्रह्मण्यो ब्रह्मनायकः । भयहर्ता भयार्तानां
मित्राणां नन्दिवर्धनः ॥ १९ ॥ शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां
पालने रतः । श्रुतवानर्थसम्पन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ २० ॥
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित् । नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो

वह लक्ष्मीके साथ सदा निवास करते हैं ॥ १४ ॥ शार्ङ्ग धनुष तथा चक्र उनके आयुध हैं, खड्ग भी उनका आयुध है, उनकी ध्वजामें सब सर्पोंके शत्रु गरुडका चिन्ह है और वह उत्तम प्रकार के शीलसे दमसे शमसे पराक्रमसे वीर्यसे शरीर (के गठन) से और (आनन्दायक अपने) दर्शनसे, आरोहसे, ऊँचाईरूप अपने प्रकाशसे, धैर्यसे, सरलतारूपी सम्पत्तिसे, दयासे, रूपसे और बलसे सम्पन्न हैं, वह सब प्रकारके अद्भुत दृश्योंसे और दिव्य अस्त्रोंसे युक्त हैं ॥ १५-१७ ॥ अमोघ मायासे युक्त हैं, उनके सहस्र नेत्र हैं, वे सकल दुःखोंसे रहित हैं, उदार मन वाले हैं, वीर हैं, मित्रोंमें उनकी प्रशंसा होती है तथा वह अपने नातेदार और कुटुम्बियोंको प्रिय हैं ॥ १८ ॥ क्षमावान् हैं, निरहंकार हैं, ब्राह्मणोंके रक्षक हैं, ब्रह्माके नायक हैं, भयातुर पुरुषोंके भयको दूर करने वाले हैं, मित्रोंको आनन्द देनेवाले हैं ॥ १९ ॥ सब प्राणियोंके शरणागतवत्सल हैं, दीन पुरुषोंका पालन करनेमें परायण रहते हैं, शास्त्रसम्पन्न हैं, अर्थसम्पन्न हैं, सब प्राणी उनको प्रणाम करते हैं ॥ २० ॥ वे आश्रितोंको

ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥२१॥ मन्त्रार्थमिह देवानां बुद्ध्वा परमयायुतः । प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥ २२ ॥ समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः । अङ्गो नाम मनोः पुत्रो अन्तर्धामा ततः परः ॥ २३ ॥ अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः । प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो महान् ॥२४॥ तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशात्मजाः । प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥ २५ ॥ दाक्षायण्यास्तथादित्यो मनुरादित्यतस्तथा । मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति २६ बुधात् पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति । नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चात्मजः ॥२७॥ यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा

और शत्रुओंको भी वर देते हैं, धर्मको जानने वाले हैं और नीतिको जानने वाले हैं, नीतिसम्पन्न हैं, ब्रह्मवादी हैं, जितेन्द्रिय हैं ॥२१॥ और देवताओंका कल्याण करनेके लिये परम बुद्धिसम्पन्न होकर महात्मा प्रजापति मनुके उत्तम धर्ममय वंशमें गोविन्दरूपसे वह अवतार लेंगे, मनुके यहाँ अङ्ग नाम वाला पुत्र होगा, उसके आन्तर्धा नामक पुत्र होगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ अन्तर्धामेंसे पवित्र चरित्र हविर्धामा नामक प्रजापति जन्म लेगा, हविर्धामाका पुत्र प्राचीन-बर्हिष नामक महाराजा होगा ॥ २४ ॥ उनके प्रचेता आदि दश पुत्र होंगे, प्रचेताका दक्ष नामक पुत्र होगा, जो प्रजापति कहावेगा ॥ २५ ॥ दक्षकी स्त्री दाक्षायणीसे आदित्य उत्पन्न होगा, आदित्यसे मनु उत्पन्न होगा, मनुका पुत्र इला और सुद्युम्न होगा ॥ २६ ॥ (इलाका जब पुरुषरूपमें बुध नाम था) उससे पुरूरवा उत्पन्न होगा, उसका पुत्र आयुष् होगा, उसका पुत्र नहुष होगा, और उसका पुत्र ययाति होगा ॥ २७ ॥ उसका पुत्र यदु होगा उसका महाबली क्रोष्टा नामक पुत्र होगा, क्रोष्टाका उदार पुत्र वृजिनी-

तस्माद्भविष्यति। क्रोष्टुश्चैव महान् पुत्रो वृजिनीवान् भविष्यति २८
वृजिनीवतश्च भविता उषंगुरपराजितः । उपंगोर्भविता पुत्रः
शूरश्चित्ररथस्तथा ॥ २९ ॥ तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम
भविष्यति । तेषां विख्यातवीर्याणां चरित्रगुणशालिनाम् ॥३०॥
यज्वनां सुविशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसम्मते । स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो
महावीर्यो महायशाः । स्ववंशविस्तरकरं जनयिष्यति मानदः ३१
वसुदेव इति ख्यातं पुत्रमानकदुन्दुभिम् । तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासु-
देवो भविष्यति ॥ ३२ ॥ दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विज-
प्रियः । राज्ञो मागधसंरुद्धान् मोक्षयिष्यति यादवः ॥ ३३ ॥
जरासन्धं तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे । सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो
भविष्यति स वीर्यवान् ॥ ३४ ॥ पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येण च

वान् होगा । २८ । वृजिनीवान्का अजित उपंगु नामक पुत्र होगा, उपंगुके चित्ररथ नामक शूरवीर पुत्र होगा । २९ । उसके छोटे पुत्रका नाम शूर होगा, प्रख्यात पराक्रमी उत्तम चरित्र और गुणों वाले तथा महायज्ञ करनेवाले भली प्रकारसे शुद्ध राजाओंके ब्राह्मणसम्मत वंशमें महापराक्रमी महायशस्वी सबको मान देने वाला क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ शूर नामक राजा अपने वंशका विस्तार करनेवाले एक पुत्रको उत्पन्न करेगा ।३०।३१ । वह शूर वसुदेव नामसे प्रसिद्ध आनकदुन्दुभि नामक पुत्रको जन्म देगा, उनके यहाँ चार भुजा वाला वासुदेव नामक पुत्र उत्पन्न होगा३२ वह दाता होगा, ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाला होगा ब्रह्मरूप होगा,ब्राह्मणोंका प्रीतिपात्र होगा और वह यदुवंशी यादव मगधराज जरासन्धकी कैदमें पड़ेहुए राजाओंको जेलखाने से छुडावेगा ३३ राजा जरासन्धका पराजय करेगा और पर्वत की गुफामें बन्द सब राजारूपी रत्नोंसे सम्पन्न होगा और पराक्रमी होगा ३४ पृथ्वीमें अनुपम पराक्रमी होगा, पराक्रमसे संपन्न

भविष्यति । विक्रमेण च सम्पन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः॥३५॥ शूर-
सेनेषु भूत्वा स द्वारकायां वसन्प्रभुः । पालयिष्यति गां देवीं
विजित्य नयवित् सदा॥३६॥ तं भवन्तः समासाद्य वाङ्माल्यै-
र्हणैर्वरैः । अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ३७
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् । द्रष्टव्यस्तेन भग-
वान् वासुदेवः प्रतापवान्॥३८॥दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति
विचारणा । पितामहो वा देवेश इति वित्त तपोधनाः ॥ ३९ ॥
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति । तस्य देवगणः
प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति ॥ ४० ॥ यश्च तं मानवे लोके संश्र-
यिष्यति केशवम् । तस्य कीर्तिर्जयश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति४१
धर्माणां देशिकः साक्षात् स भविष्यति धर्मभाक् । धर्मवद्भिः स
देवेशो नमस्कार्यः सदोद्यतैः ॥ ४२ ॥ धर्म एव परो हि स्यात्त-

होगा और सब राजाओंका राजा होगा ॥ ३५ ॥ वह शूरसेन
देशमें उत्पन्न होगा और वहाँसे द्वारिकामें जावेगा और वह
नीति जानने वाला पृथ्वीका विजय करके उसका पालन करेगा३६
अतः तुम सब उनके पास जाओ और शास्त्रोक्तविधिसे सना-
तन ब्रह्मकी समान उनका वाणीरूप पुष्पोंसे पूजन करो ॥३७॥
जिसको मेरा तथा पितामह ब्रह्माका दर्शन करनेकी इच्छा हो
उसको प्रतापी भगवान् वासुदेवके दर्शन करने चाहियें ॥ ३८ ॥
उनका दर्शन करनेसे मेरा दर्शन किया हुआ समझा जायगा,
इसमें मैं कुछ सन्देह नहीं करता, हे तपोधनो ! तुम वासुदेवको
पितामह और शंकरस्वरूप जानो ३९ वह पुण्डरीकाक्ष जिस पर
प्रसन्न होंगे उसके ऊपर ब्रह्मा आदि देवता भी प्रसन्न होजावेंगे४०
मनुष्यलोकमें इन केशवका आश्रय लेने वाले मनुष्यको कीर्ति
जय और स्वर्ग मिलेगा ॥ ४१ ॥ वह प्रत्यक्ष होकर धर्मका उप-
देश देंगे, धर्मके तेजवाले होंगे अतः धर्मनिष्ठ पुरुषोंको तत्परता

स्मिन्नभ्यर्चिते विभौ । स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकी-
र्षया ॥ ४३ ॥ धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज ह । ताः
सृष्टास्तेन विभुना पर्वते गन्धमादने ॥ ४४ ॥ सनत्कुमारप्रमुखा-
स्तिष्ठन्ति तपसान्विताः । तस्मात् स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विज-
पुङ्गवाः ॥ ४५ ॥ दिवि श्रेष्ठो हि भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः ।
वन्दितो हि स वंदेत मानितो मानयीत च । अर्हितश्चार्हयेन्नित्यं
पूजितः प्रतिपूजयेत् ॥ ४६ ॥ दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रति-
संश्रयेत् । अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥ ४७ ॥
एतत्तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं व्रतम् । आदिदेवस्य महतः

के साथ उन देवेश्वरको नमस्कार करना चाहिये ॥ ४२ ॥ उन व्यापक प्रभुकी पूजा करनेसे धर्मका परम लाभ होता है, वह देव महातेजस्वी हैं, उन पुरुषव्याघ्र व्यापक देवने प्रजाका हित करनेके लिये और धर्म(की रक्षा करने)के लिये गन्धमादन पर्वत पर करोड़ों ऋषियोंको उत्पन्न किया है और गन्धमादन पर्वत पर उन विभुके उत्पन्न किये हुए सनत्कुमार आदि तपस्वी तप करते हैं, हे उत्तम ब्राह्मणों ! इसलिये धर्मको जाननेवाले वाचाल वासुदेवको तुम्हें नमस्कार करना चाहिये ॥ ४३–४५ ॥ भगवान् श्रीहरि नारायण देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, वह वन्दना करने पर वन्दना करते हैं, मान करनेसे मान करते हैं, उनकी तुम पुष्प धूप आदिसे पूजा करोगे तो वे तुम्हारा पूजन करेंगे और उनकी तुम वाणीसे पूजा करोगे तो वे तुम्हारी वाणीसे पूजा करेंगे ४६ हे उत्तम ब्राह्मणों ! उनका दर्शन करने पर वे सदा देखते (देख भाल करते) रहते हैं, तुम उनका आश्रय लोगे तो वे सदा तुम्हारे आश्रयसे (आधीन) रहेंगे, तुम उनका अर्चन करोगे तो वे तुम्हारा भी अर्चन करेंगे ॥ ४७ ॥ उन निर्दोष विष्णुका यह एक प्रकारका परम व्रत है उन महान् आदिदेवका यह सज्जनो-

सज्जनाचरितं सदा ॥४८॥ भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः। अभयेनानुरूपेण युज्यन्ते तमनुव्रताः ॥ ४९ ॥ कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा। यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥५०॥ एष वोऽभिहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः। दृष्ट्वा तं सर्वशो देवं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥ ५१ ॥ महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम्। अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥५२॥ तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः। समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥ ५३ ॥ तस्य चैवाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभुः। हलीबल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥५४ त्रिशिरास्तस्य दिव्यश्च शातकुम्भमयो द्रुमः। ध्वजस्तृणेन्द्रो देवस्य

चित आचरण है ॥४८॥ देवता भी भुवनोंमें इन सनातन देवकी सदा पूजा करते हैं और उनका भजन करनेवालेको उनके (भजन के) अनुरूप अभय मिलता है ४९ द्विजवर्णके पुरुषोंको मन वाणी और कर्मसे उनको सदा नमस्कार करना चाहिये और उनकी यत्नपूर्वक उपासना करके उनका दर्शन करना चाहिये ॥५०॥ हे मुनिश्रेष्ठों ! मैंने तुमको यह मार्ग बतादिया, श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे तुमको सब देवताओंके दर्शन करनेका फल मिलेगा५१ सब लोकोंके पितामह और सब जगत्के पितामह महावराहको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ हम सब देवता उनके शरीर में वस रहे हैं, उनका दर्शन करनेसे तीनों देवताओंके दर्शन करनेका फल मिलता है ॥ ५३ ॥ उनके जो भाई बलदेव नाम से प्रसिद्ध होंगे उनका शरीर श्वेताचल पर्वतकी समान गौर होगा, वे हलको आयुधकी समान धारण करेंगे, वह पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषरूप हैं, वह बलदेव नामसे प्रसिद्ध होंगे ५४ उन बलदेवजीके रथमें तालवृक्षके चिन्हसे चिन्हित ध्वजा फहरावेगी, उस (तालवृक्ष) को तीन शाखायें होंगी और वह

भविष्यति रथाश्रितः ॥५५॥ शिरोनागैर्महाभोगैः परिकीर्णं महा-
त्मभिः। भविष्यति महाबाहो सर्वलोकेश्वरस्य च ॥५६॥ चिं त-
तानि सर्पेष्यन्ति शस्त्राण्यस्त्राणि चैव ह। अनन्तश्च स एवोक्तो
भगवान्हरिरव्ययः ॥ ५७ ॥ समादिष्टश्च विबुधैर्दर्शय त्वमिति
प्रभो। सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्यात्मजो बली। अन्तं नैवा-
शकद् द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः ॥ ५८ ॥ स च शेषो विचरते
परया वै मुदा युतः।अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसुन्धराम् ५९
य एव विष्णुः सोऽनन्तो भगवान् वसुधाधरः। यो रामः स
हृषीकेशो योऽच्युतः स धराधरः६० तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ
दिव्यपराक्रमौ। द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलांगलधारिणौ ६१

सुवर्णका बनाहुआ होगा ॥५५॥ सब लोकोंके ईश्वर महाभुज बलदेवजीके मस्तक पर (जन्मके समय) बड़े२ सर्प छाया करेंगे ५६ वे जब२ शस्त्र तथा अस्त्रोंका स्मरण करा करेंगे तब२ वे सब अस्त्र शस्त्र उनके पास उपस्थित होजाया करेंगे, वह अनन्त हैं श्रीहरिरूप हैं तथा अविनाशी हैं ॥ ५७ ॥ हे देवताओं! पहिले देवताओंने गरुड़को आज्ञा दी थी, कि-तुम हमें अनन्तके गुण सुनाओ, परन्तु कश्यपके पुत्र बलवान् गरुड़ परमात्मा भगवान् (के गुणों) का अन्त देखनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ५८ ॥ वह शेषावतार हैं और परम हर्षके साथ इस पृथिवी पर विचरण करते हैं और पातालमें अपने शरीर (फन) से इस पृथ्वीको आलिंगन देते हुए निवास कररहे हैं ॥ ५९ ॥ जो विष्णु हैं वही पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त हैं, जो बलराम हैं वही हृषीकेश हैं जो अच्युत हैं वही पृथ्वीको धारण करने वाले बलराम हैं ॥६०॥ ये दोनों पुरुषव्याघ्र हैं, दिव्य हैं, इनके पराक्रम भी दिव्य हैं ये दोनों दर्शन करने योग्य हैं, सत्कार करने योग्य हैं और चक्र तथा हलको धारण किये रहते हैं ६१

एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः। यद्भवंतो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः॥ ६२॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पुरुषमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४७॥

नारद उवाच। अथ व्योम्नि महाञ्छब्दः सविद्युत्स्तनयित्नुमान्। मेघैश्च गगनं नीलं संरुद्धमभवद्घनैः॥ १॥ प्रावृषीव च पर्जन्यो ववृषे निर्मलं पयः। तमश्चैवाभवद्घोरं दिशश्च न चकाशिरे॥ २॥ ततो देवगिरौ तस्मिन् रम्ये पुण्ये सनातने। न शर्वं भूतसंघं वा ददृशुर्मुनयस्तदा॥ ३॥ व्यभ्रं च गगनं सद्यः क्षणेन समपद्यत। तीर्थयात्रां ततो विप्रा जग्मुश्चान्ये यथागतम्॥ ४ तदद्भुतमचिंत्यं च दृष्ट्वा ते विस्मिताभवन्। शंकरस्योमया सार्धं संवादं त्वत्कथाश्रयम्॥ ५॥ स भवान् पुरुषव्याघ्र ब्रह्मभूतः

हे तपोधनों! मैंने जो तुम्हें यह पुण्यप्रद वार्ता सुनाई है, यह तुम पर अनुग्रह किया है अब तुम प्रयत्नपूर्वक यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण की पूजा करना॥६२॥ एकसौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त १४७

नारदजीने कहा, कि-तदनन्तर आकाशमें मेघ छागए और बिजली चमकने लगी और घोर घनघटाओंसे छाकर अकाश श्यामवर्णका होगया॥ १॥ चौमासेकी समान मेघ निर्मल जल बरसाने लगे चारों ओर घोर अन्धेरा छागया दिशायें भी दीखना बन्द होगई॥२॥ उस समय उस पवित्र रमणीय प्राचीन पर्वत पर मुनियोंको न शंकर दीखे और न भूत दीखे (क्योंकि-वह अदृश्य होगये थे)॥ ३॥ परन्तु एक क्षणमें ही आकाश बादलरहित होकर निर्मल होगया, तब मुनि तीर्थयात्रा करनेके लिये आगेको चले॥ ४॥ उस समय तहाँ पर जो मुनि थे वे उस अद्भुत दृश्यको देखकर तथा शंकर और उमाके आपसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्वादको सुनकर बड़े विस्मयमें पड़गये थे५

सनातनः । यदर्थमनुशिष्टाः स्मो गिरिपृष्ठे महात्मना ॥ ६ ॥ द्वितीयं त्वद्भुतमिदं त्वत्तेजःकृतमद्य वै । दृष्ट्वा च विस्मिताः कृष्ण सा च नः स्मृतिरागता ॥ ७ ॥एतत्ते देवदेवस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो । कपर्दिनो गिरीशस्य महाबाहो जनार्दन ॥ ८ ॥ इत्युक्तः स तदा कृष्ण तपोवननिवासिभिः ।मानयामास तान् सर्वानृषीन् देवकिनन्दनः ॥ ६ ॥ अथर्षयः संप्रहृष्टाः पुनस्ते कृष्णमब्रुवन् । पुनः पुनर्दर्शयास्मान् सदैव मधुसूदन॥१०॥ न हि नः सा रतिः स्वर्गे या चत्वद्दर्शने विभो । तदृतं च महाबाहो यदाह भगवान् भवः ॥११॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यमरिकर्शन । त्वमेव ह्यर्थ-तत्त्वज्ञः पृष्टोऽस्मान् पृच्छसे यदा ॥ १२ ॥ तदस्माभिरिदं गुह्यं

हे पुरुषव्याघ्र ! आप वही सनातन ब्रह्मस्वरूप हैं, महात्मा शंकर ने हिमाचल पर हमको यह उपदेश दिया है ॥ ६ ॥ और हे कृष्ण ! आपके तेजसे यह एक दूसरी आश्चर्यकी बात हुई कि-हम आपको देखकर विस्मित होगए और हमें पूर्वकालकी स्मृति आगई ॥ ७ ॥ हे महाभुज जनार्दन प्रभो ! देवदेव कपर्दी शंकर का यह महात्म्य आपसे कहा ॥८॥ तपोवननिवासी ऋषियोंने इस प्रकार श्रीकृष्णसे कहा तब देवकीनन्दनने उन सब ऋषियों का सत्कार किया तदनन्तर ऋषियोंने परमहर्षमें भरकर श्रीकृष्ण से फिर कहा, कि हे मधुसूदन ! आप हमको सदा बारम्बार दर्शन दीजिये ॥ १० ॥ हे विभो ! हे महाभुज ! आपका दर्शन करनेसे हमें जैसी प्रसन्नता होती है वैसी प्रसन्नता हमें स्वर्गमें भी नहीं मिल सकती,भगवान् शंकरने जो बात कही है वह सत्य ही है ॥११॥ हे अरिकर्षण ! आप (विस्मित होनेके) प्रयोजन के तत्त्वको जानते हैं तब भी आपने हमसे बूझा, अतः हमने आपसे सब रहस्य (गुप्त) बात कहदी ॥१२॥ आपका प्रिय करनेकी इच्छासे हमने यह गुप्त बात आपसे कहदी, वैसे तो

त्वत्प्रियार्थमुदाहृतम्।न च तेऽविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते१३
जन्म चैव प्रसूतिश्च यच्चान्यत् कारणं विभो ।वयन्तु बहु चाप-
ल्यादशक्ता गुह्यधारणे ॥ १४ ॥ ततः स्थिते त्वयि विभो लघु-
त्वात् प्रलपामहे । न हि किंचित्तदाश्चर्यं यन्न वेत्ति भवानिह१५
दिवि वा भुवि वा देव सर्वं हि विदितं तव । साधयाम वयं कृष्ण
बुद्धिं पुष्टिमवाप्नुहि ॥ १६ ॥ पुत्रस्ते सदृशस्तात विशिष्टो वा
भविष्यति । महाप्रभावसंयुक्तो दीप्तिकीर्तिकरः प्रभुः ॥ १७ ॥
भीष्म उवाच । ततः प्रणम्य देवेशं यादवं पुरुषोत्तमम् । प्रदक्षि-
णावृत्य प्रजग्मुस्ते महर्षयः ॥ १८ ॥सोऽयं नारायणः श्रीमान्
दीप्त्या परमया युतः।व्रतं यथावत्तच्चीर्त्वा द्वारकां पुनरागमत्१९

तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं होती है, जो आपको विदित न होती हो ॥ १३ ॥ हे विभो! आपकी जो उत्पत्ति और प्रसव हुआ है वह किसी और ही कारणसे हुआ है अर्थात् आपका जन्म लेना साधारण प्राणियोंके जन्म लेनेकी समान नहीं है, हम अतिचपल होनेके कारण गुप्त बातको छिपानेमें असमर्थ हैं १४ इस कारण हे प्रभो! आप यहाँ विराजमान हैं और हम आप की उपस्थितिमें ही तुच्छताके कारण प्रलाप कररहे हैं ॥ १५ ॥ हे देव! इस पृथ्वीमें तथा स्वर्गमें जो कुछ पदार्थ हैं उन सबको आप जानते हैं, हे कृष्ण! अब हम आज्ञा माँगते हैं (अब आप हमें जानेकी आज्ञा दीजिये) और आप वृद्धि तथा पुष्टिको प्राप्त करें ॥ १६ ॥ और हे तात! आपके आपकी समान अथवा आपसे भी श्रेष्ठ गुणों वाला एक पुत्र होगा, वह महा प्रभाव वाला तथा दीप्ति और कीर्तिको फैलानेमें समर्थ होगा ॥१७॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर! वे महर्षि देवेश्वर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे इसप्रकार कह करके और उनकी प्रदक्षिणा करके तपो वनमें चले गए ॥१८॥ तदनन्तर महाकान्तिमान् श्रीमान् नारा-

पूर्णे च दशमे मासि पुत्रोऽस्य परमाद्भुतः । रुक्मिण्यां संमतो
जज्ञे शूरो वंशधरः प्रभो ॥२०॥ स कामः सर्वभूतानां सर्वभाव-
गतो नृप । असुराणां सुराणां च चरत्यंतर्गतः सदा ॥ २१ ॥
सोऽयं पुरुषशार्दूलो मेघवर्णश्चतुर्भुजः । संश्रितः पांडवान् प्रेम्णा
भवन्तश्चैनमाश्रिताः ॥ २२ ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिश्चैव स्वर्गमा-
र्गस्तथैव च । यत्रैष संस्थितस्तत्र देवो विष्णुस्त्रिविक्रमः ॥२३॥
सेंद्रा देवास्त्रयस्त्रिंशदेष नात्र विचारणा। आदिदेवो महादेवः सर्व-
भूतप्रतिश्रयः ॥२४। अनादिनिधनो व्यक्तो महात्मा मधुसूदनः ।
अयं जातो महातेजाः सुराणामर्थसिद्धये ॥ २५ ॥ सुदुस्तरार्थ-
तत्त्वस्य वक्ता कर्ता च माधवः तव पार्थ जयः कृत्स्नस्तव कीर्ति-

यण यथार्थ रीतिसे व्रतको पूर्ण करके द्वारिकामें आये ॥१६॥
और दश मास पूर्ण होने पर उनके रुक्मिणीसे परम ऐश्वर्य-
शाली, सत्पुरुषोंमें मान्य और शूरवीर वंशधर पुत्र उत्पन्न
हुआ ॥ २० ॥ हे राजन् ! वह कृष्ण सब प्राणियोंके कामरूप
हैं, सबके हृदयमें विराजमान हैं वह देवता और दैत्योंके हृदय
में सदा विराजमान रहते हैं ॥२१॥ वह पुरुषोंमें सिंहकी समान
हैं, उनकी कान्ति मेघकी समान श्यामवर्णकी है, उनके चार
भुजायें हैं, उन्होंने प्रेमपूर्वक पाण्डवोंका आश्रय लिया है तुमने
भी प्रेमपूर्वक उनका आश्रय लिया है ॥ २२ ॥ जहाँ त्रिविक्रम
विष्णु भगवान् निवास करते हैं तहाँ कीर्ति लक्ष्मी धृति तथा
स्वर्गका मार्ग भी निवास करता है ॥२३ ॥ इन वासुदेवमें इन्द्र
सहित तैंतीस देवता निवास करते हैं, इसमें विचार करनेकी कुछ
बात नहीं है यह आदिदेव हैं, महादेव हैं, सब प्राणियोंके आश्रय
रूप हैं ॥ २४ ॥ आदि तथा अन्तरहित हैं, साकार हैं, महात्मा
हैं, मधु दैत्यका नाश करने वाले हैं, यह महातेजस्वी वासुदेव
देवताओंका कार्य करनेके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए हैं ॥२५॥

स्यातुला ॥२६॥ तवेयं पृथिवी देवी कृत्स्ना नारायणाश्रयात् ।
अयं नाथस्तवाचिंत्यो यस्य नारायणो गतिः॥ २७ ॥ स भर्वा-
स्त्वमुपाध्वर्यू रणाग्नौ हुतवान्नृपान् । कृष्णस्रुवेण महता युगां-
ताग्निसमेन वै ॥ २८ ॥ दुर्योधनश्च शोच्योऽसौ सपुत्रभ्रातृबां-
धवः । कृतवान् योऽबुधः क्रोधाद्धरिगांडीविविग्रहम् ॥ २९ ॥
दैतेया दानवेन्द्राश्च महाकाया महाबलाः । चक्राग्नौ क्षयमापन्ना
दावाग्नौ शलभा इव ॥ ३० ॥ प्रतियोद्धुं न शक्यो हि मानु-
षैरेष संयुगे । विहीनैः पुरुषव्याघ्र सत्त्वशक्तिबलादिभिः ॥३१॥
जयो योगी युगांताभः सव्यसाची रणाग्रगः । तेजसा हतवान्

यह माधव अतिदुस्तर अर्थ वाले तत्त्वके वक्ता तथा कर्ता हैं
हे पार्थ ! तेरी पूर्णरूपसे विजय हुई है तथा तेरी कीर्ति भी अतुल
है ॥ २६ ॥ नारायणका आश्रय लेनेसे तुझे यह सम्पूर्ण पृथ्वी
मिली है, जिनके गुण विचारमें नहीं आसकते ऐसे नारायण तेरे
नाथ और गतिरूप होगए हैं ॥२७॥ इससे तुमने उपाध्वर्यु बन
कर रणरूपी अग्निमें प्रलयकालकी अग्निकी समान श्रीकृष्ण-
रूपी स्रुवेसे राजाओंका होम करा था ॥ २८ ॥ यह दुर्योधन
पुत्र भ्राता और बान्धवों सहित शोक करने योग्य होगया है,
क्योंकि उस मूर्खने क्रोधसे श्रीहरि और गांडीवधनुषधारी अर्जुन
के साथ विग्रह (युद्ध) किया था ॥ २९ ॥ पतंगे जैसे दावानल
में पड़ कर भस्म होजाते हैं, ऐसे ही बड़े शरीर और बलवाले
बड़े २ दैत्य और दानवराज भी इस चक्ररूप अग्निमें पड़ कर
भस्म होगए हैं ॥ ३० ॥ हे पुरुषव्याघ्र राजन् ! सत्त्व शक्ति
और बलरहित मनुष्य युद्धमें इन श्रीकृष्णसे लड़ नहीं सकते३१
और यह अर्जुन योगी है, प्रलयाग्निकी समान है, दोनों हाथों
से धनुषको खेंच कर उसका प्रयोग करना जानता है और रण
के मुहाने पर चलता है, हे राजन् ! इसने पराक्रम कर सुयोधन

सर्वं सुयोधनबलं नृप ॥३२॥ यत्तु गोवृषभाङ्केन मुनिभ्यः समुदाहृतम् । पुराणं हिमवत्पृष्ठे तन्मे निगदतः शृणु ॥३३॥ यावत्तस्य भवेत्पुष्टिस्तेजो दीप्तिः पराक्रमः । प्रभावः सन्नतिर्जन्म कृष्णे तत्त्रिगुणं विभो ॥ ३४ ॥ कः शक्नोत्यन्यथा कर्तुं तद्यदि स्यात्तथा शृणु । यत्र कृष्णो हि भगवांस्तत्र पुष्टिरनुत्तमा ॥३५॥ वयं त्विहाल्पमतयः परतन्त्राः सुविक्लवाः । ज्ञानपूर्वं प्रपन्नाः स्मो मृत्योः पंथानमव्ययम् ॥ ३६ ॥ भवांश्चाप्यार्जवपरः पूर्वं कृत्वा प्रतिश्रयम् । राजवृत्तं न लभते प्रतिज्ञापालने रतः ॥ ३७ ॥ अप्यैवात्मवधं लोके राजस्त्वं बहु मन्यसे । न हि प्रतिज्ञा या दत्ता तां महातुमरिंदम ॥ ३८ ॥ कालेनायं जनः सर्वो निहतो रण-

---

की सारी सेनाका संहार कर डाला है ॥ ३२ ॥ जिनकी ध्वजा में वृषभका चिन्ह है उन भगवान् शंकरने हिमाचल पर मुनियोंसे जो पुराण कहा था, उस पुराणको मैं तुमसे कहता हूँ तुम सुनो ३३ अर्जुनमें जितना तेज जितनी पुष्टि, जितनी दीप्ति, जितना पराक्रम, जितना प्रभाव, जितनी नम्रता और जितनी जन्मकी उत्तमता है, श्रीकृष्णमें ये सब बातें तिगुनी हैं ॥ ३४ ॥ ऐसा कौन पुरुष है जो श्रीकृष्णके कामको लौट सके ? यदि ऐसा हो तो उसको सुन ले (अर्थात् उसको असत्य ही समझ) जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं तहाँ पर सर्वश्रेष्ठ पुष्टि रहती है ॥ ३५ ॥ हम तो अल्पबुद्धि हैं, दूसरेके अधीन रहने वाले जीव हैं, भाग्यहीन हैं, इसीसे जान बूझ कर कालके अविनाशी मार्गमें दौड़े जारहे हैं ॥ ३६ ॥ परन्तु आपने तो दयालु होकर राज्य न लेने की प्रतिज्ञाकी थी और आप उसका प्रेमपूर्वक पालन कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ और हे राजन ! तू ऐसा दुःख मान रहा है, कि अपने सम्बन्धियोंको तूने ही मार डाला है, हे अरिन्दम ! तूने जो पहिले प्रतिज्ञा की थी उसको त्यागना उचित नहीं है ३८

मूर्धनि । वयं च कालेन हताः कालो हि परमेश्वरः ॥ ३९ ॥ न हि कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हसि । कालो लोहितरक्ताक्षः कृष्णो दंडी सनातनः ॥४०॥ तस्मात् कुन्तीसुत ज्ञातीन्नेह शोचितुमर्हसि । व्यपेतमन्युर्नित्यं त्वं भव कौरवनन्दन ४१ माधवस्यास्य माहात्म्यं श्रुतं यत्कथितं मया । तदेव तावत् पर्याप्तं सज्जनस्य निदर्शनम् ॥ ४२ ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा नारदस्य च धीमतः । स्वयं चैव महाराज कृष्णस्यार्हतमस्य वै ॥ ४३ ॥ प्रभावश्चर्षिपूगस्य कथितः सुमहान् मया । महेश्वरस्य संवादं शैलपुत्र्याश्च भारत ॥ ४४ ॥ धारयिष्यति यश्चैनं महापुरुषसंभवम् । शृणुयात् कथयेद्वा यः स श्रेयो लभते परम् ॥ ४५ ॥

सब राजे रणमें कालके कारण मारेगए हैं और हम भी समयके मारे हुए हैं क्योंकि—काल ही परमेश्वर है ॥३९॥ तुझ सरीखे काल जानने वालेका काल स्पर्श करे तो तुझे शोक करना उचित नहीं है काल रक्त नेत्रोंवाला है, उसके शरीरका वर्ण श्याम वर्णका है वह हाथमें दण्ड धारण करता है और वह सनातन पुरुष है ॥ ४० ॥ अतः हे पुत्र ! तुझे अपने सम्बन्धियोंका शोक करना उचित नहीं है, हे कुरुकुलपुत्र ! तुझे सदा क्रोधको त्याग देना चाहिये ॥ ४१ ॥ मैंने तुझसे माधवका यह महात्म्य कहा, वह तूने सुना, सज्जनके लिये इतने महात्म्यका उदाहरण देना ही पर्याप्त (काफी) है ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! व्यासजी और बुद्धिमान् नारदजीकी बात सुनकर महापूज्य श्रीकृष्णजीका प्रभाव तथा ऋषिमण्डलीका अतिमहाप्रभाव मैंने तुझसे कहा, हे भरतवंशी राजन् !! जिसमें महापुरुषके जन्मकी कथा है ऐसा यह महेश्वर और शैलपुत्रीका सम्वाद है इसका जो पुरुष मुखसे पाठ करता है अथवा श्रवण करता है अथवा दूसरेसे कहता है उसका परम कल्याण होता है ॥ ४३-४५ ॥ उसकी-

भवितारश्च तस्याथ सर्वे कामा यथेप्सिताः । प्रेत्य स्वर्गं च लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४६ ॥ न्याय्यं श्रेयोभिकामेन प्रतिपत्तुं जनार्दनः । एष प्रवाच्यो विप्रैः स्तुतो राजन् जनार्दनः ॥ ४७ ॥ महेश्वरमुखोत्सृष्टा ये च धर्मगुणाः स्मृताः । ते त्वया मनसा धार्याः कुरुराज दिवानिशम् ॥ ४८ ॥ एवं ते वर्तमानस्य सम्यग्दण्डधरस्य च । प्रजापालनदक्षस्य स्वर्गलोको भविष्यति ॥ ४९ ॥ धर्मेणापि सदा राजन् प्रजा रक्षितुमर्हसि । यस्तस्य विपुलो दण्डः सम्यग्धर्मः स कीर्त्यते ॥ ५० ॥ य एष कथितो राजन् मया सज्जनसन्निधौ।शंकरस्योमया सार्धं संवादो धर्मसंहितः ॥ ५१ ॥ श्रुत्वा वा श्रोतुकामो वाप्यर्चयेद् वृषभध्वजम् । विशुद्धेनेह भावेन य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ५२ ॥ एष

सब कामनाएँ परिपूर्ण होजाती हैं और वह मरणके पीछे स्वर्गमें जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ कल्याणकी इच्छा हो तो जनार्दनकी शरणमें जाना उचित है, हे राजन् ! ब्राह्मण भी अक्षय गुण वाले जनार्दनकी स्तुति करते हैं ॥४७॥ तुमने महेश्वरके मुखमेंसे निकले हुए धर्मके जो २ गुण सुने हैं उनका तू रात दिन मनमें मनन करना ॥ ४८ ॥ तू इस प्रकार बर्ताव करेगा; राजदण्डको भली भाँति धारण करेगा, प्रजाका पालन करनेमें सावधानी रक्खेगा, तो तुझे स्वर्गलोक मिलेगा४९ हे राजन् ! तू सदा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करना जिस राजा का विपुल दण्ड होता है अर्थात् जो सबके साथ यथोचित न्याय कियाजाता है वह धर्म सम्यग्धर्म कहलाता है ॥५०॥ हे राजन् ! शंकरका उमाके साथ जो धर्मसम्बन्धी संवाद हुआ था वह मैंने सब सज्जनोंके सामने सुना दिया ॥ ५१ ॥ जिस पुरुषको अपना कल्याण करनेकी इच्छा हो उसको निर्मल अन्तःकरणसे शंकर और उमाके संवादको सुन कर अथवा सुननेकी इच्छासे वृषभध्वज

तस्यानवद्यस्य नारदस्य महात्मनः । संदेशो देवपूजार्थं तं तथा कुरु पांडव ॥ ५३ ॥ एतदस्यद्भुतं वृत्तं पुण्ये हिमवति प्रभो । वासुदेवस्य कौंतेय स्थाणोश्चैव स्वभावजम् ॥ ५४ ॥ दशवर्षसहस्राणि बदर्यामेष शाश्वतः । तपश्चचार विपुलं सह गांडीवधन्वना ॥५५॥ त्रियुगौ पुण्डरीकाक्षौ वासुदेवधनञ्जयौ । विदितौ नारदादेतौ मम व्यासाच्च पार्थिव ॥ ५६ ॥ बाल एव महाबाहुश्चकार कदनं महत् । कंसस्य पुण्डरीकाक्षो ज्ञातित्राणार्थकारणात् ॥५७॥ कर्मणामस्य कौंतेय नांतं संख्यातुमुत्सहे । शाश्वतस्य पुराणस्य पुरुषस्य युधिष्ठिर ॥ ५८ ॥ ध्रुवं श्रेयः परं तात भविष्यति तवोत्तमम् । यस्य ते पुरुषव्याघ्रः सखा चायं जनार्दनः ॥ ५९ ॥ दुर्योधनं तु शोचामि प्रेत्य लोकेऽपि दुर्मतिम् ।

की पूजा करनी चाहिये ॥ ५२ ॥ हे पाण्डव ! महात्मा निर्दोष नारदजीका (श्रीकृष्ण) देवकी पूजा करनेके लिये यह संदेश है, उसको तू इसी प्रकार कर ॥ ५३ ॥ हे कुन्तीपुत्र ! हे प्रभो ! पहिले यह वासुदेवका तथा शंकरका अति आश्चर्यजनक स्वाभाविक वृत्तान्त पवित्र हिमाचल पर्वत पर हुआ था ॥ ५४ ॥ और इन कृष्णने गाण्डीव धनुषको धारण करने वाले अर्जुनके साथ बदरिकाश्रममें दश सहस्र वर्ष तक महातप किया था ॥ ५५ ॥ कमलपत्रकी समान नेत्रों वाले वासुदेवने तथा धनञ्जयने तीन युग तक महातप किया है, हे पार्थिव ! मैंने व्यास जीसे और नारदजीसे इन दोनोंका चरित्र जाना है ॥ ५६ ॥ कमलनयन महाभुज श्रीकृष्णने बालकपनमें ही अपने संबन्धियों की रक्षा करनेके लिये कंसका घोर संहार किया था ॥ ५७ ॥ हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! मैं तो इन शाश्वत पुराण पुरुषके उत्तम गुणोंकी गिनती नहीं करसकता ॥ ५८ ॥ हे तात ! पुरुषव्याघ्र जनार्दन तेरे मित्र हैं अतः तेरा कल्याण अवश्य ही होगा ५९

यत्कृते पृथिवी सर्वा विनष्टा सहयद्विपा ॥ ६० ॥ दुर्योधनापराधेन कर्णस्य शकुनेस्तथा । दुःशासनचतुर्थानां कुरवो निधनं गताः ॥ ६१ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं संभाषमाणे तु गांगेये पुरुषर्षभे । तूष्णीं बभूव कौरव्यो मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥ ६२ ॥ तच्छ्रुत्वा विस्मयं जग्मुर्धृतराष्ट्रादयो नृपाः । संपूज्य मनसा कृष्णं सर्वे प्राञ्जलयोऽभवन् ॥ ६३ ॥ ऋषयश्चापि ते सर्वे नारदप्रमुखास्तदा । प्रतिगृह्याभ्यनंदंत तद्वाक्यं प्रतिपूज्य च ॥ ६४ ॥ इत्येतदखिलं सर्वैः पांडवो भ्रातृभिः सह । श्रुतवान् सुमहाश्चर्यं पुण्यं भीष्मानुशासनम् ॥ ६५ ॥ युधिष्ठिरस्तु गांगेयं विश्रांतं भूरिदक्षिणम् । पुनरेव महाबुद्धिः पर्यपृच्छन्महीपतिः ॥ ६६ ॥

मैं मरेहुए दुर्बुद्धि दुर्योधनका शोक करता हूँ, क्योंकि-उसके कारण हाथी और घोडोंसे भरीहुई इस सारी पृथ्वीका नाश होगया है ॥ ६० ॥ दुर्योधन कर्ण शकुनि और चौथा दुःशासन इन चारोंके अपराधसे कौरवोंका नाश हुआ है ॥ ६१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-पुरुषोंमें उत्तम गंगापुत्र भीष्म इस प्रकार भाषण कररहे थे, उस समय महात्माओंमें बैठेहुए युधिष्ठिर चुपचाप बैठे हुए थे ॥ ६२ ॥ और धृतराष्ट्र आदि राजे इस बातको सुनकर आश्चर्यमें पडगए और उन सबोंने मन२में श्रीकृष्णकी पूजा करके उनके दोनों हाथ जोडे ॥ ६३ ॥ और नारद आदि सब ऋषियोंने भी उस समय भीष्मजीके वचनोंको मानकर उनको अभिनन्दन दिया और उनका सत्कार किया ॥ ६४ ॥ ऐश्वर्य देनेवाले और पुण्य देने वाले भीष्मजीके इस उपदेशको युधिष्ठिरने और उनके भाइयोंने सुना ॥ ६५ ॥ तदनन्तर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर। बडी२ दक्षिणा देनेवाले गङ्गाजीके पुत्र भीष्मजीके विश्राम ले चुकने पर उनसे फिर प्रश्न करने लगे । ६६ । एकसौ अडतालीसवाँ अध्याय समाप्त १४८ ॥

वैशम्पायन उवाच। श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः। युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत॥ १॥ युधिष्ठिर उवाच। किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्। स्तुवंतः कं कमर्चंतः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥२। को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः। किं जपन् मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥ ३॥ भीष्म उवाच। जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्। स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥ ४॥ तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्। ध्यायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५॥ अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्। लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं

वैशम्पायनजी कहते हैं, कि-राजा युधिष्ठिर (वेदोक्त और कल्याण करने वाले) सब धर्मोंको तथा (मन वाणी और शरीरको पवित्र करने वाले) पवित्र कर्मोंको पूर्ण रीतिसे सुन कर (अल्पप्रयाससे ही सब पुरुषार्थके साधनभूत तथा महाफल देने वाले विषयको सुननेकी इच्छासे) शन्तनुके पुत्र भीष्म पितामहसे फिर इस प्रकार बूझने लगे॥ १॥ युधिष्ठिरने बूझा कि इस जगत्में एक अर्थात् अद्वितीय देवता कौन है? (प्राप्त करने योग्य) रक्षाका अद्वितीय स्थान कौन है? और मनुष्य किस देवताकी स्तुति करनेसे तथा किस देवताका पूजन करनेसे उत्तम सुखको पासकते हैं?२आप सब धर्मोंमें किस धर्मको परमश्रेष्ठ मानते हैं? और प्राणी किस मन्त्रका जप करने पर इस संसार-सागरसे छूट सकता है?॥ ३॥ भीष्मजीने कहा कि-पुरुष सदा सावधान रह विष्णुसहस्रनामसे जगत्के प्रभु देवदेव इन अनन्त पुरुषोत्तम श्रीविष्णुभगवान्‌की स्तुति करता है (तो वह सब दुःखोंसे मुक्त होजाता है)४और जो इन अविनाशी पुरुषकी भक्तिपूर्वक सदा पूजा ध्यान और स्तुति करता है, उनको नमस्कार करता है और उनका यजन करता है तो वह सब दुःखोंके पार

सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्ति-
वर्धनम् । लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥७॥ एष मे सर्व-
धर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः । यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चे-
न्नरः सदा ॥ ८ ॥ परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः । परमं
यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥ पवित्राणां पवित्रं यो
मङ्गलानां च मंगलम् । दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः
पिता ॥१०॥ यतः सर्वाणि भूतानि भवंत्यादियुगागमे । यस्मिंश्च
प्रलयं यांति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥ तस्य लोकप्रधानस्य जग-
न्नाथस्य भूपते । विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥१२॥

होजाता है॥५॥इसीप्रकार अनादि अनन्त सर्वलोकव्यापक सर्व-
लोकमहेश्वर सब लोकोंके अध्यक्ष और लोकोंको साक्षात् देखने
वालेकी सदा स्तुति करनेवाला सब दुःखोंको लांघ जाता है॥६॥
सदा ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, सब धर्मोंको जाननेवाले,
लोकोंकी कीर्तिमें वृद्धि करने वाले लोकनाथ, अति अद्भुत भूतों
की उत्पत्तिके स्थान (परमात्माकी स्तुति करनेसे भी मनुष्य सब
दुःखोंके पार होजाता है) ॥७॥ मेरा मत यह है कि-भक्तिपूर्वक
कमलनेत्र श्रीकृष्णकी स्तुति करना और उनका पूजन करना
सब धर्मोंमें (परमोत्तम) अधिक धर्म है ॥ ८ ॥ जो श्रीकृष्ण
तेजके परम और महान् पुञ्ज है, जो बड़ेसे बड़े तपोरूप हैं जो
परम महान् ब्रह्मरूप है और जो आश्रयके परम धाम हैं, जो
पवित्र वस्तुओंमें पवित्र हैं जो मंगलोंमें मंगलरूप हैं जो देवताओं
में परम दैवतरूप हैं और जो प्राणिमात्रके अविनाशी पिता हैं,
सत्ययुगके आरम्भमें जिनमेंसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और
प्रलयके समय सब प्राणी फिर जिनमें विलीन होजाते हैं, हे राजन्!
ऐसे सर्वलोकाधिपति और जगन्नाथ श्रीविष्णुके पाप और भय
का नाश करने वाले सहस्र नामोंको तू मुझसे सुन ९-१२

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः । ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥ओं विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः । भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥ पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः । अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥ योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः । नरसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरु-

महात्मा श्रीकृष्णके जो गौण नाम जगत्में प्रसिद्ध हैं और जिन नामोंका ऋषियोंने कीर्तन किया है उन नामोंको मैं (धर्म आदि चार पुरुषार्थोंके लाभके लिये) तुझसे कहूँगा ॥ १३ ॥ १ ॐ विश्व-विश्वरूप २ विष्णु-सर्वव्यापक ३ वषट्कार-यज्ञमें उच्चारण किये जानेवाले वषट्कार ४ भूतभव्यभवत्प्रभुः-भूत भविष्यत् और वर्तमान कालके स्वामी ५ भूतकृत्-(ब्रह्मारूपसे) सब भूतोंको उत्पन्न करनेवाले ६ भूतकृत्-(विष्णुमूर्तिसे) सब भूतोंका पोषण करनेवाले ७ भाव-अस्तित्व (सद्रूप) रूप ८ भूतात्मा-सब भूतोंके अन्तरात्मा ९ भूतभावन-सब भूतोंके उत्पत्तिस्थान ॥ १४ ॥ १० पूतात्मा-पवित्र आत्मावाले १ परमात्मा-परमेश्वर २ मुक्तानां परमा गतिः—मुक्त पुरुषोंके परम आश्रय ३ अव्यय-अविनाशी अथवा विकाररहित ४ पुरुष-नौ द्वारवाले देहनगरमें शयन करनेवाले अथवा प्रलयके समय सब भुवनोंका संहार करनेवाले ५ साक्षी-साक्षिस्वरूप ६ क्षेत्रज्ञ-अपने क्षेत्र अथवा निवासस्थानको जाननेवाले ७ अक्षर-अविनाशी ॥ १५ ॥ ८ योग-योगाभ्यास करते समय जिनका ध्यान कियाजाता है ऐसे योगमूर्त्ति ९ योगविदां नेता—योगको जानने वालोंके स्वामी २० प्रधानपुरुषेश्वर-प्रधान (प्रकृति-माया) और पुरुष (जीव) के ईश्वर १ नारसिंहवपुः-नर और सिंहके चिन्होंसे चिन्हित शरीरवाले २ श्रीमान्-(वक्षःस्थलमें) लक्ष्मीको धारण करने वाले ३ केशव-सुन्दर

षोत्तमः ॥१६॥ सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥स्वयंभुः शंभु-
रादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः । अनादिनिधनो धाता विधाता

केशोंवाले अथवा केशी दैत्यका नाश करने वाले ४ पुरुषोत्तम-पुरुषोंमें उत्तम॥१६॥ सर्व-सत् अथवा असत् वस्तुके नाश तथा उत्पत्तिको जाननेवाले ६शर्व-प्रलयके समय सबकी प्रजाका नाश करने वाले ७ शिव-सत्व रज और तमोगुणसे रहित अथवा कल्याणकर्ता ८ स्थाणु-स्थिर रहनेवाले ९ भूतादि-सबभूतोंके आदिकर्ता ३० निधि-प्रलयके समय सब जीवोंको अपनेमें लीन करनेवाले १ अव्यय-अविनाशी(निधि विशेष्य है और अव्यय उसका विशेषण है अतः निधिरव्ययः एक नाम है, इसीप्रकार और नामोंको भी समझना चाहिये) १ संभव-जिनकी स्वयं उत्पत्ति है ऐसे संभवस्वरूप २ भावन सब भोक्ताओंको फल देनेवाले ३ भर्ता-सब वस्तुओंको धारण करनेवाले ४ प्रभव—प्रकृष्टतया (अधिकतासे) महाभूतोंको उत्पन्न करनेवाले अथवा उत्तम जन्मधारी ५ प्रभु-सब कर्मोंको करनेमें अतिसमर्थ ६ईश्वर-उपाधिरहित ऐश्वर्यवाले अथवा उपाधिरहित सबके स्वामी।१७। ७ स्वयंभू-अपने आप उत्पन्न होनेवाले ८ शंभु भक्तजनोंका कल्याण करनेवाले ९ आदित्य-सूर्यमण्डलमें रहनेवाले हिरण्य-मय पुरुष ४० पुष्कराक्ष—कमलकी समान नेत्रोंवाले १ महास्वन-(ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका गान करनेमें) महान् स्वन (ध्वनि) करने वाले २ अनादिनिधन-आदि तथा अन्तरहित ३ धाता-शेष आदि रूपसे विश्वको धारण करनेवाले अथवा अपनी अनन्त मूर्तियोंके विस्तारसे विश्वका निर्वाह करनेवाले ४विधाता-कर्मोंके तथा उनके फलके व्ययस्थापक अर्थात् व्यवस्था करनेवाले ५ धातुरुत्तमः-ब्रह्माजीसे भी उत्तम अथवा पृथ्वी

धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥ अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः । विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९ ॥ अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः । प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥२०॥ ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः । हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥ ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः । अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः

आदिसे भी उत्तम ॥ १८ ॥६॥ अप्रमेय प्रमाण आदिसे जानने न आने वाले ७ हृषीकेश-इन्द्रियोंके स्वामी अर्थात् क्षेत्रज्ञमूर्ति अथवा घुँघराले केशोंवाले ८ पद्मनाभ—नाभिमें पद्मके धारक ९ अमरप्रभु-देवताओंके स्वामी १० विश्वकर्मा—विश्व आदिकी रचना करने वाले १ मनु-मननकर्ता २ त्वष्टा-संहारके समय सब प्राणियोंको सूक्ष्म बनाने वाले ३ स्थविष्ठ-अतिस्थूलमूर्ति अथवा अतिविशाल ४ स्थविर सनातन, ध्रुव—अचल ॥ १९ ॥ ५ अग्राह्य-मन तथा वाणीसे जाननेमें न आने वाले ६ शाश्वत-कालमें रहने वाले ७ कृष्ण-सच्चिदानन्दमूर्ति अथवा घनश्याम-मूर्ति ८ लोहिताक्ष—रक्त नेत्रों वाले ९ प्रतर्दन-प्रलयके समय प्राणियोंका संहार करने वाले १० प्रभूत— ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न १ त्रिककुब्धाम-ऊपर नीचे और मध्यभाग इस प्रकार तीनों ओर वास करने वाले २ पवित्र—पवित्र ३ मंगल-मंगलकारक परमश्रेष्ठ ॥२०॥ ४ ईशान-सब प्राणियोंके नियन्ता ५ प्राणद—प्राण (शक्ति) देने वाले ६ प्राण-मुख्यप्राणरूप अथवा सबको जीवित रखने वाले ७ ज्येष्ठ—सबसे बड़े ८ श्रेष्ठ-सबसे उत्तम ९ प्रजापति प्रजाके रक्षक ७० हिरण्यगर्भ-सुवर्णके गर्भ अर्थात् उदर वाले १ भूगर्भ पृथिवीरूप गर्भ (उदर) वाले २ माधव-मा अर्थात् लक्ष्मीके धव अर्थात् पति ३ मधुसूदन-मधु दैत्यके संहारक ॥२१॥ ४ ईश्वर-सर्वशक्तिमान् ५ विक्रमी-

कृतिरात्मवान् ॥२२॥ सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः । अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥ अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः। १००वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥ वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः

पराक्रमी ६ धन्वी-धनुर्धारी ७ मेधावी-बुद्धिमान् ८ क्रम-जगत्में भ्रमण करने वाले अथवा क्रमशः ग्रहण करके उपभोग करने वाले ८० अनुत्तम-जिनसे कोई उत्तम नहीं है १ दुराधर्ष किसीसे भी तिरस्कृत न होने वाले २ कृतज्ञ–मनुष्यके किये हुए पाप पुण्योंको जानने वाले ३ कृति-क्रियारूप अथवा पुरुषके प्रयत्नरूप ४ आत्मवान्-आत्मस्वरूप (शरीरवान् और इन्द्रियवान् आदिसे भिन्न) ॥२२॥ ५ सुरेश-देवताओंके स्वामी ६ शरण-प्राणियों की पीड़ाको हरने वाले आश्रयरूप ७ शर्म-परमानन्दमूर्त्ति अथवा कल्याणमूर्ति ८ विश्वरेताः–विश्वमय वीर्य वाले अर्थात् विश्वके कारणभूत ९ प्रजाभव--सब प्रजाके उत्पादक ९० अहः–दिवसमूर्ति (क्योंकि-जब वे जीवके पास जाते हैं तब अज्ञानान्धकार दूर होजाता है) १ सम्वत्सर-वर्षात्मक २ व्याल-सर्पकी समान किसीके न पकड़ने योग्य ३ प्रत्यय-उत्तम बुद्धिसे जाननेमें आने वाले निश्चयात्मक ४ सर्वदर्शन-सबके द्रष्टा ॥ २३ ॥ ५ अज-अजन्मा ६ सर्वेश्वर-सबके स्वामी ७ सिद्ध-पूर्णरूप होनेसे सिद्ध अथवा सब वस्तुओंको प्राप्त कर लेनेसे सिद्ध ८ सिद्धि-ज्ञानी अथवा फलकी मूर्त्ति ९ सर्वादि-सब प्राणियोंके आदिकारण १०० अच्युत- स्वस्वरूपकी सामर्थ्यसे स्वस्वरूपसे भ्रष्ट न होने वाले १ वृषाकपि-धर्मरक्षक २ अमेयात्मा-अपरिमेय आत्मा वाले ३ सर्वयोगविनिःसृत-सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे मुक्त ॥ २४ ॥ ४ वसु--जिनमें सब प्राणी वास करते हैं ऐसे ५ वसुमनाः-उदार मन वाले ६ सत्य-सत्यमूर्ति ७ समात्मा रागद्वेषरहित शुद्ध आत्मा

समः । अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥ रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः । अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥२६॥ सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः । वेदो वेदविदव्यंगो वेदांगो वेदवित् कविः ॥२७॥ लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः । चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्च-

वाले अथवा सब प्राणियोंमें एक आत्मारूपसे निवास करने वाले ८ असम्मित-सब पदार्थोंसे अपरिमेय ९ सम-सब समय सब प्रकार के विकारसे रहित ११० अमोघ-स्तुति अथवा पूजा करनेवालों को फल देने वाले १ पुण्डरीकाक्ष-कमलनेत्र २ वृषकर्मा-धार्मिक कर्म करने वाले ३ वृषाकृति–धर्मकर्मस्वरूप ॥ २५ ॥ ४ रुद्र—संहारके समय प्राणियोंको रुलानेवाले ५ बहुशिराः–अनेक मस्तकोंवाले ६ बभ्रु—लोकोंका पोषण करनेवाले ७ विश्वयोनि– विश्वके मूलरूप ८ शुचिश्रवाः-पवित्रकीर्त्ति ९ अमृत-अमर १२० शाश्वत-सनातन, चिरञ्जीव, चिरकाल जीवित रहनेवाले स्थाणु-अचल रहनेवाले १ वरारोह–सुन्दर अङ्गों वाले २ महातपाः–महातपस्वी, तपकी इतनी प्रबलतावाले कि-प्रकृतिको विश्व उत्पन्न करनेकी आवश्यकता होजाय अथवा इच्छाबलसे स्वयं ही विश्व उत्पन्न होजाय ॥ २६ ॥ ३ सर्वग-सर्वत्र गमन करनेवाले ४सर्वविद्भानु-सबको जाननेवाले सर्वत्र प्रकाश करने वाले ५ विश्वक्सेन-संपूर्ण विश्वमें जिनकी सेना फैली हुई है ऐसे ६ जनार्दन-पापी मनुष्योंको नरककी पीड़ा देनेवाले ७ वेद–सब वस्तुओंके ज्ञानस्वरूप ८ वेदवित्-चारों वेदों के ज्ञाता ९ अव्यंग-सब प्रकारके ज्ञानोंसे पूर्ण १३० वेदाङ्ग—वेदादि अङ्गात्मक १ वेदवित्–वेदोंका विचार करनेवाले२ कवि-सब वस्तुओंको हाथमें धरे हुए आमलेकी समान देखनेवाले अथवा जिनसे बुद्धिमें कोई श्रेष्ठ नहीं है ॥२७॥ ३ लोकाध्यक्ष-

तुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥ भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदा-
दिजः । अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९ ॥
उपेंद्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः । अतींद्रः संग्रहः सर्गो-

सब लोकोंके अध्यक्ष ४ सुराध्यक्ष-देवताओंके अध्यक्ष ५ धर्माध्यक्ष-धर्म और अधर्मके अध्यक्ष ६ कृताकृत-कार्य और कारणात्मक अथवा पूर्वके किसी कर्मसे उत्पन्न न हुए ७चतुरात्मा-अनिरुद्ध संकर्षण प्रद्युम्न और वासुदेव इन चार विभूतियोंवाले ८ चतुर्व्यूह- उत्पत्ति स्थिति नाश और रक्षा रूप चार व्यूह वाले ९ चतुर्दंष्ट्र -नाम आख्यान उपसर्ग और निपातरूप चार डाढ़ वाले १४० चतुर्भुज--चार भुजावाले और चारों भुजाओंमें शंख चक्र गदा और पद्मको धारण करने वाले ॥२८॥ १ भ्राजिष्णु-प्रकाशवान् २भोजन — मायारूप अथवा वैभवरूप अथवा भोजनरूप क्योंकि-अन्नसे जीवन रहता है ३ भोक्ता—सुख दुःख भोगने वाले जीवरूप अथवा पार्थिवोंका भोग करने वाले, नाश करने वाले अथवा भक्तोंके साथ विहार करने वाले ४ सहिष्णु-क्षमाशील ५ जगदादिज जगत्के आदि पुरुष ब्रह्माजीको उत्पन्न करने वाले ६ अनघ-दोषरहित ७ विजय-ज्ञान वैराग्य आदिसे जगत्को जीतने वाले-जेता-विजयी ९ विश्वयोनि विश्वके कारणरूप १५० पुनर्वसु-शरीरमें वारम्वार आत्मस्वरूपसे निवास करनेवाले ।२९। १ उपेन्द्र—इन्द्रके छोटे भाई अथवा इन्द्रसे श्रेष्ठ २ वामन-वामनावतार ३ प्रांशु-तीन चरणोंसे पृथ्वीको नापते समय उन्नत ४ अमोघ-सबको कर्मानुसार फलदेनेवाले ५ शुचि-स्तुति करने वाले अथवा मनुष्योंको पवित्र करनेवाले ६ ऊर्जित—अतिबली ७ अतीन्द्र-स्वाभाविक ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणोंसे इंद्रका पराजय करनेवाले अथवा इन्द्रियोंसे जिनका कोई पार नहीं पासकता ऐसे ८ संग्रह-संहार करते समय सबका संग्रह करनेवाले अथवा

धृतात्मा नियमो यमः ॥ ३० ॥ वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः । अतींद्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥३१॥ महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः । अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृत् ॥३२॥ महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां

पुण्यात्माओंका अथवा भक्तोंका संग्रह करनेवाले ६ सर्ग-उत्पत्तिके समय सबको उत्पन्न करनेवाले १६० धृतात्मा-आत्मस्वरूपको उत्पत्ति वृद्धि और लयके बिना धारण करनेवाले १ नियम—प्रजाको उनके अधिकार पर स्थापित करने वाले २ यम-सब प्राणियोंको अपनेमें लीन कर लेनेवाले अथवा सब को नियममें रखने वाले यमरूप ॥ ३० ॥ ३ वेद्य-मुमुक्षुओंके जानने योग्य ४ वैद्य-सब विद्याओंको जाननेवाले अथवा संसार रूप बन्धनका नाश करनेवाले वैद्य ५सदायोगी-सदा योगमें ही ध्यानस्थ रहनेवाले ६ वीरहा—धर्मकी रक्षा करनेके लिये असुर योधाओंका संहार करनेवाले ७ माधव—मायाके स्वामी ८ मधु-भक्तजनोंको मधुकी समान प्रसन्न करनेवाले ९ अतीन्द्रिय-इन्द्रियोंसे अगोचर १७० महामाय-महामायावी अर्थात् बड़े २ मायावियोंको भी मायाके जालमें फँसाने वाले १ महोत्साह-जगत्की स्थिति और लय करनेमें बड़ा उत्साह दिखाने वाले २ महाबल--बलवानोंके भी बलरूप होनेसे महाबलशाली ॥ ३१ ॥ ३ महाबुद्धि--अति बुद्धिमान् ४ महावीर्य-महापराक्रमी ५ महाशक्ति-बड़ी शक्ति वाले ६ महाद्युति-बड़ी भारी कान्ति वाले ७ अनिर्देश्यवपुः-जिनके शरीरका किसीसे निर्देश नहीं किया जासकता १८०महाद्रिधृक्-गोवर्धन आदि बड़े२ पर्वतोंको धारण करनेवाले॥३२॥१महेष्वास-महाधनुषधारी २मही-भर्ता-पृथ्वीको धारण करनेवाले३श्रीनिवासलक्ष्मीके आश्रयस्थान ४ सतां गतिः-सत्पुरुषोंके आश्रयरूप ५अनिरुद्ध-सच्ची भक्तिके

गतिः । अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ ३३ ॥
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः । हिरण्यनाभः सुतपाः
पद्मनाभः प्रजापतिः ॥३४॥ अमृत्युः सर्वदृक्सिंहः २०० संधाता
संधिमान् स्थिरः।अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ३५

विना जिनको कोई रोक या पकड़ नहीं सकता अथवा जो इंद्रियों से ग्रहण नहीं किये जासकते ६ सुरानन्द देवताओंको आनन्द देनेवाले ७ गोविन्द-वराहका रूप धारण करके गो अर्थात् पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले अथवा गो अर्थात् गायत्री जाननेवाले अथवा गो अर्थात् इन्द्रियोंको जाननेवाले अथवा गो अर्थात् भक्तिको जाननेवाले ८ गोविदां पतिः—वेद आदि शास्त्रोंको जानने वालोंके नायक ॥ ३३ ॥ मरीचि-तेजस्वियोंकी किरण रूप १९० दमन वैवस्वत आदि मनुरूपसे प्रजाको प्रसन्न करके नियममें रखनेवाले, भक्तोंके दुःखोंका अथवा पापियोंका दमन करनेवाले १ हंस-संसारभयनाशक, पितामह ब्रह्माको वेदका ज्ञान कराने के लिये हंसस्वरूपको धारण करनेवाले २ सुवर्ण-गरुडरूप ३ भुजगोत्तम-सर्पोंमें उत्तम शेषनागरूप ४ हिरण्यनाभ-सुवर्णकी समान शोभायमान नाभि वाले ५ सुतपाः—उत्तम तपस्या करने वाले ६ पद्मनाभ-कमलकी समान गोलाकार नाभि वाले ७ प्रजा-पति-प्रजाका पालन करने वाले पितारूप ॥ ३४ ॥ ८ अमृत्यु-मृत्युरहित ९ सर्वदृक्-प्राणियोंके सब कार्यको देखने वाले २०० सिंह-दुष्टोंका नाश करने वाले १ संधाता-कर्मोंकी सन्धि करानेवाले २ सन्धिमान्—कर्मोंके फलोंका भोग कराने वाले ३ स्थिर-स्वरूपमें अचल रहनेवाले ४ अज-जन्मरहित ५ दुर्मर्षण — दानव अथवा पापीसे सहे न जा सकनेवाले ६ शास्ता-सबको शिक्षा देनेवाले ७ विश्रुतात्मा- जिनका आत्मा सत्यज्ञानरूप ही सुननेमें आता है ८ सुरारिहा देवताओंका नाश

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः। निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥ अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः। सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥३७॥ आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः। अहः संवर्तको वह्नि-

करनेवाले ॥ ३५ ॥ ६ गुरु-वेद आदिका उपदेश देनेसे गुरुरूप २१०गुरूत्तम-ब्रह्मा आदि देवताओंके गुरु १धाम-सब कामनाओं के आश्रय अथवा तेजोमूर्ति २ सत्य-सत्यमूर्ति ३ सत्यपराक्रम-सत्यपराक्रमी ४ निमिष-योगनिद्रा लेते समय नेत्रके पलक मारने वाले अथवा शास्त्रोक्त कर्मों पर ही पलक मारने वाले ५ अनि-मिष- नित्य प्रबुद्धस्वरूप होनेसे शास्त्रनिषिद्ध कर्मों पर पलक न मारने वाले अथवा सदा जाग्रत ६ स्रग्वी-पुष्पोंकी वैजयन्ती मालाको धारण करने वाले ७ वाचस्पतिरुदारधी-उदारबुद्धि बृहस्पति स्वरूप ॥ ३६ ॥ ८ अग्रणीः—सब प्राणियोंके नेता अथवा मुमुक्षुओंको मोक्षपद देने वाले ९ ग्रामणीः-सब प्राणियोंके नायक २२० श्रीमान्-लक्ष्मीपति१न्याय-तर्कमूर्ति २ नेता-जगत के व्यवहारका निर्वाह करने वाले ३ समीरण-श्वासरूपसे सब प्राणियोंसे चेष्टा कराने वाले ४ सहस्रमूर्धा-सहस्र मस्तक वाले ५ विश्वात्मा-विश्व जिनका आत्मा है ६ सहस्राक्ष सहस्र नेत्रों वाले ७ सहस्रपात्-सहस्र चरणों वाले ॥ ३७ ॥ ८ आवर्तन-अपनी इच्छासे विश्वचक्रको चलानेके कारणरूप अथवा धर्मस्थापनाके लिये अवतार धारण करने वाले ९ निवृ-त्तात्मा-संसारबन्धनसे जिनका शरीर मुक्त होगया है ऐसे२३० संवृत्त-मायासे आवृत, अत एव संसारी मनुष्य उनको नहीं देख सकते १ सम्प्रमर्दन-अपनेसे दूर रहने वालोंका प्रबलतासे मर्दन करने वाले अथवा रुद्र काल आदि विभूतियोंसे जगत्का संहार करने वाले २ अहः-सूर्यरूपसे जगत्को भली भाँति प्रवृत्त करने

रनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥ सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग् विश्वभुग् विभुः । सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जन्हुर्नारायणो नरः॥३९
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः । सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ ४० ॥ वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः । वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ४१

वाले, संवर्तक—कालके भी कालरूप ३ वन्हि—बलिदानको ग्रहण करने वाले ४ अनिल—पवनमूर्ति ५ धरणीधर--शेष और दिग्गजरूपसे पृथिवीको धारण करने वाले अथवा वराहरूपसे पृथ्वीको धारण करने वाले ॥ ३८ ॥ ६ सुप्रसाद--शिशुपाल आदि अपराधियों पर भी कृपा करने वाले ७ प्रसन्नात्मा रज और तमसे अदूषित अंतःकरण वाले अर्थात् प्रसन्नहृदय ८ विश्वधृक्-जगत्को धारण करने वाले ९ विश्वभुक्-जगत्को भोगने वाले अथवा जगत्का पालन करने वाले २४० विभु-अनन्त शक्ति वाले १ सत्कर्ता-भक्तोंका सत्कार करने वाले २ सत्कृत-भक्तोंसे सत्कार पाये हुए ३ साधु-भक्तोंके कार्यको साधने वाले साधुस्वरूप ४ जन्हु-संहारकालमें मनुष्योंको अपनेमें लीन करने वाले ५ नारायण-जलमें शयन करने वाले ६ नर-मनुष्योंको मोक्ष देने वाले सनातन परमात्मा ॥ ३९ ॥ ७ असंख्येय—अनगिनती मूर्तियों वाले ८ अप्रमेयात्मा-किसीसे भी नापनेमें न आने वाले ९ विशिष्ट-सर्वश्रेष्ठ अथवा विशेष गुणों वाले २५० शिष्टकृत्-शिष्ट बनाने वाले १ शुचि-काम क्रोध आदि मलसे रहित २ सिद्धार्थ निवृत्ति रूप अर्थको सिद्ध कर चुकने वाले ३ सिद्धसंकल्प-सिद्ध संकल्पों वाले ४ सिद्धिद—सिद्धि देने वाले ५ सिद्धसाधन—सिद्धिके साधनरूप ॥ ४० ॥ ६ वृषाही—द्वादशाह आदि धर्ममूर्ति ७ वृषभ—भक्तोंकी कामनाको पूर्ण करने वाले ८ विष्णु- सर्वत्रव्यापक ९ वृषपर्वा—परलोकमें

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेंद्रो वसुदो वसुः।नैकरूपो बृहद्रूपः शिपि-
विष्टः प्रकाशनः ॥४२॥ ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रता-
पनः । ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥
अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिंदुः सुरेश्वरः । औषधं जगतः सेतुः

जाने वाले भक्तोंके लिये धर्मकी सीढ़ीरूप २६० वृषोदर-उदरमें धर्मको धारण करने वाले १ वर्धन-भक्तोंकी वृद्धि करने वाले २ वर्धमान- संसाररूपसे वृद्धि पाने वाले ३ विविक्त--संसारसे विरक्त रहने वाले ४ श्रुतिसागर-चारों वेदोंके सागररूप ॥४१॥ ५ सुभुज-सुन्दर भुजाओं वाले ६ दुर्धर-ध्यानके समय महाकष्टसे धारण किये जाने वाले ७ वाग्मी-वाचाल ८ महेन्द्र-महेन्द्रमूर्ति ६ वसुद धन देने वाले २७० वसु-धनमूर्ति अथवा आकाशमें बसने वाले वायुरूप १ नैकरूप-अनन्तरूपधारी २ बृहद्रूप विश्व-रूपधारी ३ शिपिविष्ट-यज्ञरूपसे पशुओंमें निवास करने वाले अथवा किरणोंमें रहने वाले ४ प्रकाशन सब वस्तुओंको प्रकाशित करने वाले ॥४२॥ ५ ओजस्तेजोद्युतिधर-प्राणबल ऐश्वर्य और कान्तिको धारण करने वाले ६ प्रकाशात्मा-प्रकाशस्वरूप या भक्तोंको अपनी आत्माका प्रकाश दिखाने वाले ७ प्रतापन-विश्वको तपाने वाले ८ ऋद्ध-धर्म ज्ञान तथा वैराग्यसे सम्पन्न ६ स्पष्टाक्षर- ॐकारसे स्पष्ट प्रतीत होने वाले २८० मंत्र-ऋक् यजु और सामवेदके मंत्ररूप १ चन्द्रांशु-चन्द्रमाकी किरणोंकी समान त्रितापतापित मनुष्योंको आनन्द देने वाले २ भास्करद्युति सूर्यकी समान कान्ति वाले ॥ ४३ ॥ ३ अमृतांशूद्भव-समुद्रमंथनके समय चन्द्रमाको उत्पन्न करने वाले समुद्रमूर्ति ४ भानु प्रकाश फैलाने वाले सूर्य ५ शशबिन्दु-शशाके चिन्हसे चिन्हित चन्द्रमूर्ति ६ सुरेश्वर-इन्द्र ७ औषध संसार-रूपी व्याधिको दूर करने वाली औषधरूप ८ जगतःसेतुः-जगत्की

सत्यधर्मपराक्रमः ॥४४॥ भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत् कांतः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ४५ ॥ युगादि-
कृत् ३०० युगावर्तो नैकमायो महाशनः । अदृश्योऽव्य-
क्तरूपश्च सहस्रजिदनंतजित् ॥ ४६ ॥ इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः
शिखण्डी नहुषो वृषः । क्रोधहा क्रोधकृत् कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः

रक्षा करनेके सेतुरूप ९सत्यधर्मपराक्रम-सत्य हैं धर्म ज्ञान आदि गुण जिनके ऐसे और सत्यपराक्रमी २९० भूतभव्यभवन्नाथ-भूत भविष्यत् और वर्तमानकालके प्राणियोंके स्वामी १ पवन-पवनरूप २ पावन-दृष्टिमात्रसे जगत्को पवित्र करने वाले ३ अनल-अग्निमूर्ति अथवा जीवमूर्ति ४ कामहा-भक्तोंकी तृष्णाको नष्ट करने वाले ५ कामकृत्-भक्तोंकी कामनाको पूर्ण करने वाले ६ कान्त—सुन्दर ७काम-धर्म आदि पुरुषार्थ करने वालोंकी कामनाओंके इच्छुक ८ कामप्रद-कामनावालोंकी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले ९ प्रभु सब कार्य करनेमें महासमर्थ ४४-४५ ३०० युगादिकृत् सत्य आदि युगोंका आरंभ करने वाले १ युगावर्त-युगोंको चक्रकी समान घुमाने वाले २ नैकमाय-अनंत माया फैलाने वाले ३ महाशन-बड़े २ पदार्थोंका भोजन करने वाले ४ अदृश्य-सबकी बुद्धि तथा इन्द्रियोंसे अदृश्य ५ अव्यक्तरूप-सूक्ष्मरूपधारी ६ सहस्रजित्-सहस्रोंको जीतने वाले ७ अनन्तजित् लीलासे सबको जीतने वाले ८ इष्ट-यज्ञोंसे पूजित ९ विशिष्ट सर्व श्रेष्ठ ३१० शिष्टेष्ट बड़े२विद्वानोंको प्रिय १ शिखण्डी मोरपंखके मुकुटको धारण करने वाले २ नहुष मायासे प्राणियों को बन्धनमें डालने वाले ३ वृष—कामनाको पूर्ण करने वाले धर्मरूप ४ क्रोधहा—क्रोधका नाश करने वाले ५ क्रोधकृत्-असाधु पर क्रोध करने वाले ६ विश्वबाहु जगद्बाहु ७ महीधर पृथ्वीको धारण करने वाले ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ८ अच्युत

धरः ॥ ४७ ॥ अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥४८॥ स्कन्दः स्कन्द-
धरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः । वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुर-
न्दरः ॥ ४९ ॥ अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥ पद्मनाभोऽरविं-

जन्म आदि छः विकारोंसे रहित ९ प्रथित-जगत्की उत्पत्ति आदि कर्मोंसे प्रसिद्ध ३२० प्राण-सूत्रात्मारूपसे जगत्को जीवित रखने वाले १ प्राणद-प्राणदाता २ वासवानुज-इन्द्रके छोटे भाई ३ अपां निधि-सागरमूर्ति ४ अधिष्ठान-प्राणियों के उपादानकारण ब्रह्म ५ अप्रमत्त-अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार फल देने वाले, कभी भूल न करनेसे प्रमादरहित ६ प्रतिष्ठित-अपनी महिमामें बिराजमान ॥४८॥ ७ स्कन्द-वायुरूप से सबका शोषण करने वाले या स्कन्दस्वरूप ८ स्कन्दधर-धर्ममार्गके रक्षक ९ धुर्य मनुष्यमात्रके जन्ममरणके बोझेको उठाने वाले ३३० वरद-बरदान देने वाले वायुबाहन-बायुकी समान वेगबान् गरुड़बाहन या वायुको चलाने वाले २ वासुदेव-वसुदेव के पुत्र ३ बृहद्भानु बड़ी २ किरणोंसे जगत्को प्रकाशित करने वाले ४ आदिदेव-मुख्यदेव, सब देवोंके मूलरूप ५ पुरन्दर-शत्रुओंके नगरोंको नष्ट करने वाले ॥४९॥ अशोक-शोक आदि छः ऊर्मियोंसे रहित ७ तारण संसार सागरसे भक्तोंका उद्धार करने वाले ८ तार ॐकारमूर्ति अथवा मनुष्योंको जन्म जरा और मरणके पापसे मुक्त करने वाले ९ शूर-वीर ३४० शौरि-शूरवंश में उत्पन्न हुए १ जनेश्वर-मनुष्योंके स्वामी २ अनुकूल-सबके आत्मारूपसे अनुकूल रहने वाले, सबको दयादृष्टिसे देखने वाले ३ शतावर्त्त-धर्मकी रक्षा करनेके लिये सैकड़ों वार जन्म लेने वाले ४ पद्मी श्वेतकमलको धारण करने वाले ५ पद्मनिभेक्षण-

दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् । महर्धिऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥५१॥ अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः । सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिंजयः ॥ ५२॥ विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः।महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ५३

श्वेतकमलकी समान नेत्रों वाले ॥ ५० ॥ ६ पद्मनाभ-नाभिमें कमलको धारण करने वाले ७अरविंदाक्ष-रक्त कमलकी समान नेत्रों वाले ८ पद्मगर्भ-हृदयकमलमें ध्यान करने योग्य ६ शरीरभृत्-जीव वाले शरीरोंका पोषण करने वाले ३५० महर्द्धि महासमृद्धि वाले ऋद्ध-पञ्चमहाभूतरूपसे वृद्धि पाने वाले २ वृद्धात्मा-सनातन आत्मा वाले महाक्ष विशाल नेत्रों वाले ४ गरुडध्वज–गरुडके चिन्हसे चिन्हित ध्वजा वाले ॥ ५१ ॥ ५ अतुल-उपमारहित, जिनके साथ किसीकी तुलना न की जासके ऐसे ६ शरभपूत्ये क शरीरमें प्रकाश करने वाले ७ भीम-पापियोंको भयभीत करने वाले ८ समयज्ञ समयको जानने वाले ६ हविर्हरि–यज्ञमें होमे हुए बलिदानका हरण करने वाले अथवा बलिरूप पापका हरण करने वाले३६०सर्वलक्षणलक्षण्य–सब प्रकारके लक्षणोंसे जानने योग्य १ लक्ष्मीवान्–लक्ष्मी वाले २ समितिञ्जय–रणमें जीतने वाले ॥ ५२ ॥ ३ विक्षर–अविनाशी ४ रोहित-मत्स्यावतार धारण करने वाले अथवा भक्तोंके शत्रुओंके सामने लाल लाल नेत्रोंसे देखने वाले ५ मार्गहेतु–धर्ममार्गके चलाने वाले अथवा शोधनके हेतुरूप ६ दामोदर–जिनके उदरमें साँकलकी सी रेखा हैं ७ सह–दैत्य आदिके सामने टक्कर झेलने वाले अथवा भक्तोंके दोषोंको सह जाने वाले ८ महीधर–पर्वतरूपसे पृथ्वीको धारण करने वाले ६ महाभाग–महाभाग्यशाली ३७० वेगवान् वेगवान १ अमिताशन–संहारके समय सब जगत्का भक्षण करने वाले ॥ ५३ ॥ २ उद्भव–जगत्के उपादानकारण

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः । करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४ ॥ व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः । परर्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥५५॥ रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः ४०० वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥ वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः

३ क्षोभण-सृष्टिके समय प्रकृति और पुरुषको क्षुब्ध करनेवाले ४ देव-अनन्त प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने वाले अथवा प्रकाशवान् ५ श्रीगर्भ-उदरमें विभूतिको धारण करने वाले ६ परमेश्वर-परमेश्वर ७ करण-विश्वके उत्तम कारणरूप ८ कारण-पृथ्वी की उत्पत्तिके उपादानकारण भूत ९ कर्ता-सब प्रकार स्वतंत्र ३८० विकर्म-विचित्र प्रकारकी सृष्टि रचने वाले १ गहन-जानने में न आने वाले २ गुह-मायासे स्वरूपको ढकने वाले ॥५४॥ ३ व्यवसाय-ज्ञानमात्रस्वरूप होनेसे व्यवसायरूप अथवा सब विशेषणोंसे रहित चिद्रूप ४ व्यवस्थान-वर्ण और आश्रमका विभाग करने वाले अथवा जिनमें वस्तुएँ रहती हैं ऐसे ५ संस्थान-प्रलयके समय सब प्राणियोंके लय होनेके स्थानरूप ६ स्थानद-ध्रुव आदि भक्तोंको उत्तम स्थान देने वाले ७ ध्रुव-अविनाशी ८ परर्धि-महासमृद्ध ९ परम-सर्वश्रेष्ठ ३९० स्पष्ट-स्पष्टस्वरूप वाले १ तुष्ट-प्रसन्न होने वाले २ पुष्ट-सब रूपोंसे परिपूर्ण ३ शुभेक्षण-सुन्दर नेत्रों वाले ॥ ५५ ॥ ४ राम-योगियोंके रमण करनेके स्थानरूप ५ विराम-प्रलयके लयके स्थान ६ विरज-रजोगुण और तमोगुणसे रहित ७ मार्ग-जीवरूपोंके लिये मोक्षमार्गरूप ८ नेय-उत्तम ज्ञानसे ग्रहण करने योग्य ९ नय-सबको नियममें रखने वाले ४०० अनय-स्वतन्त्र १ वीर-शूर वीर २ शक्तिमतां श्रेष्ठ-शक्तिमानोंमें श्रेष्ठ ३ धर्म--सबका उद्धार करने वाले ४ धर्मविदुत्तम धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ॥ ५६ ॥

प्राणदः प्रणवः पृथुः। हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥५७
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः। उग्रः संवत्सरो दक्षो
विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८ ॥ विस्तारः स्थावरः स्थाणुः
प्रमाणं बीजमव्ययम्। अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महा-

५ वैकुण्ठ-जगत्के आरंभमें पृथक् २ पञ्चभूतोंको एकत्रित करके उनकी स्थितिको नियममें रखने वाले ६ पुरुष-नौ द्वार वाली देह पुरीमें बसने वाले ७ प्राण-सब प्राणियोंमें प्राणरूपसे चेष्टा कराने वाले ८ प्राणद-प्राण देने वाले अथवा प्रलयके समय प्राणियोंके प्राणोंका नाश करने वाले ९ प्रणव ॐकारमूर्ति ४१० पृथु-जगत्रूपसे विस्तार पाने वाले १ हिरण्यगर्भ-सुवर्णके अण्डेमेंसे उत्पन्न हुए २ शत्रुघ्न-शत्रुरूप दैत्योंका नाश करने वाले ३ व्याप्त-कारणरूपसे सब कार्योंमें व्याप्त ४ वायु वायुरूप सुगन्धको फैलाने वाले ५ अधोक्षज ज्ञानेन्द्रियोंके ज्ञानसे भी पहिचानमें न आने वाले ६ ऋतु मूर्ति ७ सुदर्शन-निर्वाणफलरूप उत्तम ज्ञान वाले या उत्तम दर्शन वाले ८ काल-सबका संहार करने वाले ९ परमेष्ठी-अपनी उत्तम महिमामें निवास करने वाले ४२० परिग्रह-भक्तोंके अर्पण किये हुए पत्र पुष्प आदिको ग्रहण करने वाले या सर्वत्र प्रतीत होने वाले १ उग्र सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थोंको भी भय देने वाले २ सम्वत्सर-जिसमें प्राणी एक साथ निवास करते हैं ३ दक्ष-सब कार्योंको करनेमें कुशल ४ विश्राम-संसारकी छः ऊर्मियोंसे तथा महाक्लेशोंसे खिन्न हुए पुरुषोंको मुक्तिरूप विश्रान्ति देने वाले ५ विश्वदक्षिण-सम्पूर्ण जगत्में भी अधिक चतुर या विश्वसम्बन्धी कर्ममें कुशल ॥ ५८ ॥ ६ विस्तार-सब जगत्के विस्तारके स्थान ७ स्थावर-स्थिर रहने वाले ८ प्रमाण-प्रत्यय आदि प्रमाणरूप ९ बीजमव्ययः-बीज या कारण रूप या अविनाशी ४३० अर्थ-

धनः ॥ ५६ ॥ अनिर्विण्णः स्थविष्ठो भूर्धर्मयूपो महामखः । नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥ यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः । सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥ सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।

सुखरूप होनेसे सबसे प्रार्थित १ अनर्थ-सब कामनाओंसे परिपूर्ण होनेके कारण दूसरेसे प्रार्थना न करनेवाले २ महाकोश अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशोंसे ढकेहुए ३ महाभोग-सुखरूप महाभोग भोगनेवाले ४ महाधन-भोगके साधनरूप पुष्कल धन वाले ॥ ५६ ॥ ५ अनिर्विण्ण--निराशारहित ६ स्थविष्ठ-विराटरूपसे महास्थूल ७ अभूः जन्मरहित ८ धर्मयूप --धर्मके स्तंभरूप ९ महामख-महायज्ञमूर्ति ४४० नक्षत्रनेमि ग्रहमात्रके नेमिरूप अर्थात् आकाशमें सब तारामण्डल ध्रुवको केन्द्रस्थ रखकर घूमते हैं इससे ध्रुव तारामण्डलमें विष्णु शिशुमार रूपमें हैं और वह तारामण्डलके दण्डरूप हैं १ नक्षत्री-चन्द्ररूप २ क्षम सब कार्य करनेमें समर्थ ३ क्षाम-सब मनुष्योंमें स्वस्वरूपसे निवास करनेवाले ४ समीहन-सृष्टि आदि रचनेके लिये भली प्रकार चेष्टा करनेवाले ॥ ६० ॥ ५ यज्ञ यज्ञमूर्ति ६ ईज्य-पूजनीय ७ महेज्य—यजन करने योग्य सब देवताओंमें अवश्य यजन करने योग्य ८ क्रतु-जिसमें स्तंभ खड़ा किया जाता है ऐसी यज्ञमूर्ति ९ सत्र—सत्पुरुषोंकी रक्षा करने वाले अथवा भोजनसे पहिले आहुति देने योग्य ४५० सतां गतिः सज्जनोंकी गति (मोक्ष) अथवा उनके आश्रयरूप १ सर्वदर्शी सब प्राणियोंको और उनके कार्योंको देखनेवाले २ विमुक्तात्मा सब गुणोंसे मुक्त ३ सर्वज्ञ-सब वस्तुओंको जानने वाले ४ उत्तम ज्ञान-उत्तम ज्ञानमूर्ति ॥ ६१ ॥ ५ सुव्रत-सदाचारवान् अथवा भक्तोंको तुरत ही अभयदानदेनारूपी व्रत धारण करनेवाले ६ सुमुख

मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥६२॥ स्वापनः स्ववशो-
व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् । वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो
धनेश्वरः ॥ ६३ ॥ धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥ गभस्तिनेमिः

सुन्दर मुखवाले अथवा सब विद्याओंका उपदेश देनेवाले होनेसे सुन्दर मुखवाले ७ सूक्ष्म-शब्द आदि स्थूल कारण रहित होनेसे ८ सुघोष-वेद आदिका गायन करते समय सुन्दर शब्द करने वाले ९ सुखद-सुख देनेवाले ४६० सुहृद-सबके मित्ररूप १मनोहर-मनको हरनेवाले २ जितक्रोध-क्रोधको जीतनेवाले ३ वीरबाहु-पराक्रम करने वाली भुजाओं वाले ४ विदारण अधर्मियों को नष्ट करनेवाले ॥ ६२ ॥ ५ स्वापन-मायासे अथवा अज्ञान से सब प्राणियोंको निद्राधीन करनेवाले ६ स्ववश —अपने ही अधीन ७ व्यापी—सर्वत्र व्यापक ८ नैकात्मा—विभूतिसे अनेक रूप धारण करने वाले ९ नैककर्मकृत्—जगत्की उत्पत्ति स्थिति और संहार रूपी अनेक कर्म करनेवाले ४७० वत्सर—सबके निवास १ वत्सल-भक्तों पर प्रेम रखनेवाले २ वत्सी-व्रजमें बछड़ोंकी रक्षा करनेवाले अथवा सब प्रजा पर पुत्रकी समान प्रेम करने वाले ३ रत्नगर्भ-उदरमें रत्नोंको धारण करनेवाले अर्थात् समुद्रमूर्ति ४ धनेश्वर-धनके स्वामी कुबेररूप ॥ ६३ ॥ ५धर्मगुप्-धर्मकी रक्षा करने वाले६धर्मकृत्-धर्मकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये धर्म करने वाले ७ धर्मी—धर्मको धारण करनेवाले ८ सत्—कारणरूपसे सत्य ९ असत्-प्रपञ्चरूपसे असत्य ४८०क्षर-सम्पूर्ण विश्वरूपसे नाशवान् १ अक्षर--कूटस्थरूपसे अक्षर २ अविज्ञाता-आत्मामें कर्तृत्वादिकी वासनासे जीवरूप ३ सहस्रांशु-सहस्र किरणोंवाले सूर्य मूर्ति ४ विधाता-शेष दिग्गज पर्वत तथा सब प्राणियोंको उत्पन्न करने वाले ५

सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः । आदिदेवो महादेवो देवेशो देव-
भृद्गुरुः ॥ ६५ ॥ उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता ५०० कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥६६॥ सोमपो
मृतपः सोमः पुरुजित् पुरुसत्तमः॥विनयो जयः सत्यसन्धो दशार्हः

कृतलक्षण- वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह धारण करनेवाले अथवा सत्यज्ञानलक्षणरूप शास्त्रोंको रचने वाले ॥ ६४ ॥ ६ गभस्तिनेमि--किरणरूप हाथ वाले चन्द्रमा और सूर्यरूप ७सत्वस्थ प्राधान्यरूपसे सब प्राणियोंमें गुणरूपसे वर्तमान ८ सिंह-सिंह की समान पराक्रमी ९ भूतमहेश्वर--सत्यसे प्राणियोंके महेश्वर ४९० आदिदेव- आदिदेव १ महादेव -सब पदार्थोंका त्याग करके आत्मज्ञानरूपी योगैश्वर्यमें आनन्द करनेवाले महेश्वर २देवेश-- देवताओंके ईश्वर ३ देवभृद्गुरु--देवताओंका प्रधानतासे पोषण करनेवाले तथा देवदेव इन्द्रके भी गुरु अर्थात् बृहस्पति ॥६५॥ ४ उत्तर जन्मरूपी संसार सागरमेंसे तारनेवाले अथवा सर्व श्रेष्ठ ५ गोपति -गौओंकी रक्षा करनेवाले अथवा वाणीपति ६ गोप्ता--जगत्की रक्षा करनेवाले ७ ज्ञानगम्य--केवल ज्ञानसे ही जाननेमें आनेवाले ८ पुरातन- प्राचीनपुरुष९शरीरभूतभृत्- शरीरोत्पादक पंचभूतोंका पोषण करनेवाले ५०० भोक्ता--पवित्रकरने वाले अथवा जीवरूपसे सुख-दुःख भोगनेवाले १ कपीन्द्र-महावराह अथवा रामचन्द्र २ भूरिदक्षिण राम आदिरूपसे यज्ञमें बहुतसी दक्षिणा वाले ॥ ६६ ॥ ३ सोमप--यजमानरूपसे अथवा देवता रूपसे सोमरसका पान करने वाले ४अमृतप--समुद्रमंथनके समय निकला हुआ अमृत देवताओंको पिलाने वाले तथा स्वयं पीने वाले ५ सोम--ओषधियोंका पोषण करने वाले चन्द्रमा ६ पुरुजित्--बहुतसे दैत्योंका पराजय करने वाले७पुरुसत्तम--विश्वरूप तथा सर्वश्रेष्ठ ८ विनय--दुष्टोंको नियममें रखने वाले ९

सात्वतां पतिः ॥ ६७ ॥ जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमित-
विक्रमः । अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ६८ ॥
अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः। आनन्दो नन्दनो
नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ६९॥ महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो

जय सबका पराजय करने वाले ५१० सत्यसन्ध-प्रतिज्ञाको सत्य करने वाले १ दाशार्ह-दान योग्य अथवा दाशार्ह कुलमें उत्पन्न हुए २ सात्वतां पतिः-सात्वतकुलके स्वामी अथवा योगक्षेमका वहन करने वाले अथवा प्राणियोंके पास जो वस्तु न हो उसको देने वाले तथा दी हुई वस्तुकी रक्षा करने वाले ॥ ६७ ॥ ३ जीव-क्षेत्रज्ञरूपमें जीवरूप ४ विनयिता-सब प्राणियोंको नम्रतारीतिसे देखने वाले, साक्षी-स्वरूपके अतिरिक्त दूसरेको न जानने वाले ५ मुकुन्द-मोक्ष देने वाले ६ अमितविक्रम-अपार पराक्रमी, तीन पैरोंसे पृथ्वी आकाश और पातालको नाप लेने वाले ७ अम्भो-निधि-जलके संग्रहस्थान सागररूप ८ अनन्तात्मा-वास्तवमें अपरिच्छिन्न मूर्ति वाले ९ महोदधिशय-सब प्राणियोंका संहार करके एकाकार हुए महासागरमें शयन करने वाले ५२० अन्तक-प्राणियोंका संहार करने वाले कालमूर्ति ॥६८॥ १ अज-अजन्मा अथवा कालमूर्ति २ महार्ह-पूजा करने योग्य ३ स्वाभाव्य-स्वाभाविकरीतिसे स्वयं उत्पन्न होने वाले ४ जितामित्र-राग द्वेष आदि आन्तरिक और रावण आदि बाह्य शत्रुओंका पराजय करने वाले अथवा जितशत्रु ५ प्रमोदन-आत्मज्ञानरूपी अमृतका स्वाद लेने वाले और हर्ष देने वाले ६ आनन्द-आनन्दमूर्ति ७ नन्दन-प्रसन्न करने वाले ८ नन्द-आनन्द देने योग्य सम्पत्तियों से सम्पन्न ९ सत्यधर्म-ज्ञान आदि सत्य धर्मों वाले ५३० त्रिवि-क्रम-वामनावतार धारण करके तीन पैरसे तीनों लोकोंको नाप लेने वाले ॥ ६९ ॥ १ महर्षि महर्षि,कपिलाचार्य-कपिलाचार्य २

मेदिनीपतिः । त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥७०॥
महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकांगदी । गुह्यो गभीरो गहनो
गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥ वेधाः स्वांगो जितः कृष्णो दृढः संक-
र्षणोऽच्युतः । वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ।७२।

कृतज्ञ किये हुएको जानने वाले ३ मेदिनीपति पृथ्वीपति ४ त्रिपद तीन चरणों वाले, भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्गलोक इन तीन लोकों वाले ५ त्रिदशाध्यक्ष-देवताओंके अध्यक्ष ६ महाशृङ्ग-मत्स्यावतारमें मस्तक पर सींग धारण करने वाले ७ कृतान्तकृत्-कालको भी नष्ट करने वाले अथवा उसको उत्पन्न करने वाले महाकाल ॥७०॥ ८ महावराह महावराह ९ गोविन्द-देववाणीसे जाननेमें आने वाले ५४० सुषेण-सुन्दर सेना वाले १ कनकांगदी, सुवर्णके बाजूबन्द पहिरने वाले २ गुह्य-हृदयाकाशमें रहनेसे गुह्य ३ गम्भीर-ज्ञान ऐश्वर्य और बल आदिमें गम्भीर ४ गहन प्रवेश न कर सकनेसे अथवा तीनों अवस्थाओंके तथा भावाभाव के साक्षी होनेसे गहन ५ गुप्त मन तथा वाणीसे जाननेमें न आने वाले ६ चक्रगदाधर-लोकोंकी रक्षा करनेके लिये मनस्तत्त्वरूपी चक्रको और बुद्धितत्त्वरूपी गदाको धारण करने वाले ॥७१॥ ७ वेधाः-विधाता ८ स्वांग-कार्य करनेमें स्वयं सहकारी ९ अजित् अवतार होने पर किसीके जीतनेमें न आने वाले ५५० कृष्ण-वेदव्यासरूप अथवा श्यामवर्ण कृष्णस्वरूप १ दृढ़-दृढ़ भक्ति वाले स्वरूप सामर्थ्य आदिसे भ्रष्ट न होने वाले २ संकर्षण-संहारके समय प्राणियोंका संहार करने वाले ३ अच्युत-स्वधर्म से भ्रष्ट न होने वाले ४ वरुण-वरुणदेव-वरुणके पुत्र वशिष्ठ अथवा अगस्त्य ६ वृक्ष-वृक्षकी समान अचल रहने वाले ७ पुष्कराक्ष हृदयकमलमें ध्यान करने पर अपने स्वरूपमें प्रकाशित रहने वाले ८ महामनाः—उदार मन वाले ॥ ७२ ॥

भगवान् भगहा नन्दी वनमाली हलायुधः । आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥ ७३ ॥ सुधन्वा खंडपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः । दिवस्पृक् सर्वदृग् व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ७४ त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् । संन्यासकृच्छमः

९ भगवान्-ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और मोक्ष इन छः भग अर्थात् सम्पत्ति वाले ५६० भगहा-संहारके समय सब के ऐश्वर्यके नाशक १ नन्दी-सुखरूप २ वनमाली-वैजयन्ती मालाको धारण करनेवाले ३ हलायुध-हलरूपी आयुधको धारण करने वाले ४ आदित्य-अदितिके उदरमें कश्यपसे उत्पन्न हुए ५ ज्योतिरादित्य-सूर्यमण्डलमें ज्योतिर्मण्डलरूपसे विराजमान ६सहिष्णु-सुख दुःखकी समान द्वन्द्वोंको सहने वाले ७गतिसत्तम-उत्तम गति वाले, उत्तमोंकी गतिरूप, मोक्षके स्थानरूप ॥ ७३ ॥ ८ सुधन्वा—शार्ङ्ग नामक सुन्दर धनुषको धारण करने वाले ९ खण्डपरशु—शत्रुनाशक परशुको छोड़ने वाले ५७० दारुण-महाभयंकर १ द्रविणप्रद-धन देने वाले २ दिवस्पृक्-स्वर्गका स्पर्श करने वाले ३ सर्वदृक्-सब वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखनेवाले, व्यास-एक वेदके चार वेद करनेवाले ४ वाचस्पति-विद्याके पति ५ अयोनिज-स्वयम्भू ॥७४॥ ६ त्रिसामा-तीन सामोंसे स्तुत ७ सामग-सामका गान करनेवाले ८ साम—वेदोंमें सामवेदकी मूर्तिरूप ९ निर्वाण-परमानन्दरूप ५८० भिषक्—संसाररोग को दूर करनेके लिये महाविद्याका उपदेश देने वाले वैद्यरूप १ भेषज—संसाररोगकी औषध २ संन्यासकृत्-मोक्षके लिये संन्यासाश्रमकी स्थापना करने वाले ३ शम संन्यासियोंको मुख्य रूपसे शमका उपदेश देने वाले ४ शान्त-विषयसुखोंसे असक्त ५ निष्ठाशान्तिपरायण-प्रलयके समय लय होनेके स्थानरूप, सब अविद्याओंकी निवृत्तिरूप तथा पुनरावृत्तिकी शंकारहितके

शान्तो निष्ठा शांतिः परायणम् ॥७५॥ शुभांगः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः । गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ७६ अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ६०० श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥७७॥श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः । श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमांल्लोकत्र-

स्थानरूप ॥ ७५ ॥ ६ शुभांग-सुन्दर अङ्गों वाले ७ शान्ति-शान्ति देने वाले ८ स्रष्टा-सब प्राणियोंको रचनेवाले ९ क्षेमकृत्-अङ्गीकृतकी रक्षा करने वाले ५९० कुवलेशय-जलमें शेषके उदर पर शयन करने वाले १ गोहित-गौ (पृथ्वी) का हित करने वाले २ गोपति-पृथ्वी आदिके रक्षक ३ गोप्ता-मायासे अपने स्वरूपको ढकनेवाले अथवा जगत्की रक्षा करनेवाले ४ वृषभाक्ष-सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले नेत्रों वाले अथवा धर्मदृष्टि ५ वृषप्रिय-धर्मप्रिय ॥ ७६ ॥ ६ अनिवर्ती देवासुरसंग्रामके समय सामने चलकर लड़ने वाले, पीछेको न हटनेवाले ७ निवृत्तात्मा-विषयवासनारहित शुद्ध मन वाले ८ संक्षेप्ता संहारके समय जगत्का क्षण भरमें संहार करनेवाले ९ क्षेमकृत् अङ्गीकृतकी रक्षा करनेवाले ६०० शिव-कल्याणमूर्ति कल्याण करनेवाले १ श्रीवत्सवक्षाः-स्मरण करनेसे कल्याण करने वाले अथवा वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह धारण करनेवाले २ श्रीवास-लक्ष्मीके निवासस्थानरूप ३ श्रीपति-लक्ष्मीके स्वामी ४ श्रीमतां-वरः-ऋक् यजु साम आदिकी लक्ष्मीसे सम्पन्न ब्रह्मा आदिमें श्रेष्ठ ॥ ७७ ॥ ५ श्रीद-भक्तोंको लक्ष्मी देने वाले ६ श्रीश-लक्ष्मीके नाथ ७ श्रीनिवास-लक्ष्मीके निवासस्थान ८ श्रीनिधि-लक्ष्मीके भण्डार अथवा आधाररूप ९ श्रीविभावन-मनुष्योंको कर्मानुसार विविध प्रकारकी लक्ष्मी देने वाले ६१० श्रीधर-लक्ष्मीको धारण करनेवाले १ श्रीकर-स्तुति स्मरण और पूजन

याश्रयः ॥ ७८ ॥ स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ७९ ॥ उदीर्णः
सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः। भूशयो भूषणो भूतिर्वि-
शोकः शोकनाशनः ॥८०॥ अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा
विशोधनः। अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥

करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेवाले अथवा जिनके हाथसे सदा (श्रीः) श्रेय ही होता है २ श्रेय-कल्याणरूप ३ श्रीमान्-लक्ष्मीवान् ४ लोकत्रयाश्रय-तीनों लोकोंके आश्रयरूप ॥ ७८ ॥ ५ स्वक्ष-सुन्दर नेत्रोंवाले ६ स्वङ्ग-सुन्दर अङ्गोंवाले ७ शतधानन्द-एक ही परमानन्दरूप उपाधिसे शतधा भेद पानेवाले ८ नन्दि-परमानन्दस्वरूप ९ ज्योतिर्गणेश्वर-ग्रह नक्षत्र तारा आदि ज्योतिर्मण्डलके स्वामी ६२० विजितात्मा-आत्माका निग्रह करनेवाले १ विधेयात्मा-किसीकी आज्ञामें न रहने वाले, स्वतन्त्र आत्मा वाले २ सत्कीर्ति-उत्तम कीर्ति वाले ३ छिन्न-संशय-संदेह-शून्य ॥ ७९ ॥ ४ उदीर्ण-सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ ५ सर्वतश्चक्षु-सब वस्तुओंको स्वचैतन्यसे सब दिशाओंमें देखने वाले ६ अनीश—जिनका कोई भी स्वामी नहीं है ऐसे ७ शाश्वतः स्थिरः—कभी भी विकार न पानेवाले ८ भूशय—सीताजीको खोजते समय समुद्र तट पर शयन करने वाले ९ भूषण—नाना प्रकारके अवतारोंसे पृथ्वीको शोभित करने वाले ६३० भूति सब विभूतियोंके कारणभूत १ विशोक--शोकरहित २ शोक-नाशन—भक्तोंके शोकका नाश करने वाले ॥ ८० ॥ ३ अर्चिष्मान्—सूर्य चन्द्र आदि तेजस्वियोंमें मुख्य तेजस्वी ४ अर्चितः ब्रह्मा आदि सर्वपूजित ५ कुम्भ-कुम्भकी समान सब प्राणियोंके निवासस्थानरूप ६ विशुद्धात्मा-तीन गुणोंसे रहित शुद्ध आत्मा वाले ७ विशोधन—स्मरणमात्रसे पापोंका नाश करने वाले

कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जनेश्वरः । त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥ ८२ ॥ कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः । अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ८३ ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः । ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४ ॥ महाक्रमो महाकर्मा महा-

८अनिरुद्ध-चार व्यूहोंमें अनिरुद्ध मूर्त्ति, जिनको कोई रोक नहीं सकता ऐसे ६ अप्रतिरथ—शत्रु रहित ७४० प्रद्युम्न—चार व्यूहोंमें प्रद्युम्नरूप १ अमित विक्रम—अपार पराक्रमी ॥८१॥ २ कालनेमिनिहा—कालनेमि नामक असुरका नाश करनेवाले ३ वीर-शूर ४ शौरि शूरकुलमें उत्पन्न हुए ५ शूरजनेश्वर-इन्द्र आदि शूरवीरोंके ईश्वर ६ त्रिलोकात्मा—तीनों लोकोंके अन्तरात्मा ७ त्रिलोकेश—तीनों लोकोंके ईश्वर ८ केशव—चन्द्र सूर्य आदि तेजस्वी किरणों वाले ६ केशिहा केशि नामक दैत्य का संहार करने वाले ७५० हरि—संसारका नाश करनेवाले८२ कामदेव-धर्म अर्थ काम और मोक्ष चाहने वाले मनुष्योंसे अभिलषित परमेश्वर अथवा सब कामनाओंके अधिष्ठाता देव २ कामपाल-कामना वाले मनुष्योंकी रक्षा करने वाले कामदेव ३ कामी-पूर्ण कामना वाले ४ कान्त—दो परार्ध बीतने पर ब्रह्मा का नाश करने वाले अथवा सुन्दर रूप वाले ५ कृतागम-स्मृति और श्रुतिके रचयिता ६ अनिर्देश्यवपुः-गुणादि रहित होनेसे अनिर्देश्य शरीर वाले ७ विष्णु-सर्वत्र व्यापक ८ वीर-शूर ६ अनन्त-अन्तरहित ७६० धनञ्जय-दिग्विजयमें धनको जीतनेवाले अर्जुनरूप ॥ ८३ ॥ १ ब्रह्मण्य-ब्राह्मण, वेद और गायत्रीकी रक्षा करने वाले २ ब्रह्मकृत्-तपश्चर्या आदि कर्ममार्गके रचयिता ३ ब्रह्मा-सृष्टिकर्ता ४ ब्रह्म-सत्य ज्ञान और अनन्तमूर्ति ५ ब्रह्मविवर्धन-तपश्चर्या आदिकी वृद्धि करने वाले ६ ब्रह्मवित्-वेद

तेजा महोरगः । महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिस्तोता रणप्रियः । पूर्णः पूरयिता
पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः । मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७ ॥ सद्गतिः सत्कृतिः ७००
सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः । शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः

और उसके अर्थको यथार्थ रीतिसे जानने वाले ७ ब्राह्मण-सब वस्तुको ब्रह्मरूपमें प्रत्यक्ष देखने वाले ब्राह्मणरूप ब्रह्मी—ब्रह्म नामधारी ६ ब्रह्मज्ञ—ब्रह्मवेत्ता ६७० ब्राह्मण प्रिय-ब्राह्मणोंके प्रिय अथवा ब्राह्मणोंको प्रिय समझने वाले ॥ ८४ ॥ १ महाक्रम-बड़े२ पैर धरनेवाले २ महाकर्मा-बड़े२ कर्म करने वाले ३ महातेजाः-महातेजस्वी ४ महोरग-वासुकिस्वरूप ५ महाक्रतु महायज्ञस्वरूप यथा अश्वमेध ६ महायज्वा-बड़े२ यज्ञ करनेवाले ७ महायज्ञ-महायज्ञस्वरूप ८ महाहवि-सब जगत्‌रूपी महाबलिदान ब्रह्मात्मामें होमा जाता है इससे महाहविरूप ॥ ८५ ॥ ६ स्तव्य-सबोंके स्तुति करने योग्य ६८० स्तवप्रिय—स्तुति प्रिय १ स्तोत्र-स्वयं ही गुणकीर्तनरूप स्तोत्र २ स्तुति-स्वयं ही स्तुतिक्रियारूप ३ स्तोता-स्वयंही स्तुति करने वाले ४ रणप्रिय-रण पर प्रेम रखने वाले ५ पूर्ण-सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले ७ पुण्य-पुण्यमूर्ति ८ हवि बलिरूप ॥ ८७ ॥ ६ सद्गति-सत्पुरुषोंकी गतिरूप ७०० सत्कृति—जगत्‌की उत्पत्ति आदि सत्कार्य करने वाले १ सत्ता-स्वजातीय विजातीय और स्वगतभेदसे रहित, अनुभवमूर्ति अथवा सर्वत्र विद्यमान सत्तारूप २ सद्भूति—उत्तम विभूतिरूप अथवा सबकी आत्मारूप ३ सत्परायण सत्पदको जानने वाले पुरुषोंके उत्तम निवासस्थान ४ शूरसेन-शूरवीरोंकी सेना वाले ५ यदुश्रेष्ठ—यादववंशमें श्रेष्ठ ६ सन्निवास—विद्वानोंके अथवा सत्यके आश्रयरूप ७ सुयामुन—यमुनाके

सुयामुनः ॥ ८८ ॥ भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोनलः । दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥ विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् । अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥९०॥ एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् । लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥९१॥ सुवर्णवर्णो हेमांगो

विपको हर कर उसको निर्मल करने वाले ॥ ८८ ॥ ८ भूतावास-प्राणियोंके मुख्य निवासस्थानरूप ९ वासुदेव-मायासे जगत्का आच्छादान करने वाले७१०सर्वासुनिलय-सबप्राणियों के निवासस्थान १ अनल-अपार बल सम्पत्ति वाले २ दर्पहा-पाखण्डियोंके गर्वके नाशक ३ दर्पद-पापियोंके दर्पका दमन करने वाले ४ दृप्त-सदा हर्षमें मग्न रहने वाले ५ दुर्धर-महाकष्टसे हृदयमें धारण किये जाने वाले ६ अपराजित्-किसीसे न हारे हुए ॥ ८९ ॥ ७ विश्वमूर्ति-विश्वरूप विराटस्वरूप ८ महामूर्ति-बड़ी मूर्ति वाले ९ दीप्तमूर्ति-ज्ञान तेजसे प्रकाशित मूर्ति वाले७२० अमूर्तिमान्-निराकार १ अनेकमूर्ति-बहुमूर्ति २ अव्यक्त-अप्रकट ३ शतमूर्ति-सैंकड़ों मूर्ति वाले४शतानन-सैंकड़ों मुख वाले।९०। ५ एक-सजातीय विजातीय भेदसे रहित होनेके कारण श्रुत्युक्त ‘एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म’’६अनेक—मायाके कारण अनन्तरूप ७ सव—जिसमें सोम नामकी ओषधिका रस काढ़ा जाता है ऐसे यज्ञरूप, सम्पूर्ण सुखरूप ८ क-सुखरूप ९ किम्—सब पुरुषार्थरूप होनेसे ब्रह्मस्वरूप, जिसमेंसे यह सब उत्पन्न हुआ है ऐसे ७३० यत्-‘यतो वा इमानि जायन्ते’ इत्यादि श्रुतियोंमें स्वतः सिद्ध वस्तुको कहने वाले यत् शब्दसे जाननेमें आने वाले १ तत्—जगत्का विस्तार करने वाले परब्रह्मरूप जो केवल तत् नामसे पहिचाना जाता है २ अनुत्तम पद-मुमुक्षुओंके प्राप्तव्य सर्वोत्कृष्ट स्थान ३ लोकबन्धु—जगद्बन्धु ४ लोकनाथ लोक

वरांगश्चन्दनांगदी । वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ९२
अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृत् । सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३ ॥ तेजो वृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः । प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ९४
चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः । चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेद-

---

स्वामी ५ माधव-मधुकुलमें उत्पन्न हुए ६ भक्तवत्सल-भक्तोंसे प्रेम करनेवाले ॥ ९१ ॥ ७ सुवर्णवर्ण-सुवर्णकी समान पीले वर्णवाले ८ हेमांग-सुवर्णकी समान दमकते हुए अङ्गों वाले ९ वरांग-सुन्दर अङ्गों वाले ७४० चन्दनांगदी-चन्दन चर्चित बाजूबन्द वाले १ वीरहा-धर्मकी रक्षा करनेके लिये वीर पुरुषोंका नाश करने वाले २ विषम-सबसे विलक्षण ३ शून्य सब विशेषण रहित होनेसे शून्य ४ घृताशीः-भक्तोंकी प्रार्थना को ग्रहण करने वाले ५ अचल-स्थिर ६ चल -पवनरूपसे सर्वत्र विचरण करने वाले ॥ ९२ ॥ ७ अमानी-मानरहित ८ मानद-अभिमानियोंको मान देनेवाले ९ मान्य-सबके मान्य ७५० लोकस्वामी-तीनों लोकोंके स्वामी १ त्रिलोकधृक्-तीनों लोकोंको धारण करने वाले २ सुमेधाः-अच्छी बुद्धि वाले ३ मेधज-यज्ञमें उत्पन्न होने वाले ४ धन्य-भाग्यशाली ५ सत्यमेधा-सत्य बुद्धि वाले ६ धराधर-शेष आदिसे पृथ्वीको धारण करने वाले ॥ ९३ ॥ ७ तेजोवृष-सदा आदित्यरूपसे तेजकी वर्षा करने वाले ८ द्युतिधर-कान्तिमान् ९ सर्वशस्त्रभृतांवरः सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ७६० प्रग्रह-भक्तोंके अर्पण किये हुए पत्र पुष्प आदि ग्रहण करने वाले १ निग्रह-सब कामनाओंका और शत्रुओंका निग्रह करने वाले २ व्यग्र-अविनाशी ३ नैकशृङ्ग नाम आख्यात उपसर्ग और निपातरूपी चार सींगोंवाले ४ गदाग्रज-गदके बड़े भाई॥९४॥ ५ चतुर्मूर्ति-विराट सूत्रात्मा प्राकृत

विदेकपात् ॥ ६५ ॥ समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥६६॥ शुभांगो लोक-
सारङ्गः सुतंतुस्तंतुवर्धनः। इंद्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः६७
उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः । अर्को वाजसनः

और तुरीयात्मा इस प्रकार चार मूर्तियोंवाले ६ चतुर्बाहु-चतुर्भुजी ७ चतुर्व्यूह-पुरुषच्छन्द पुरुष वेदपुरुष और महापुरुषात्मक चार व्यूह वाले ८ चतुर्गति-चारों आश्रम और चारों वर्णोंकी गतिरूप ९ चतुरात्मा-मन बुद्धि अहंकार और चित्त इन चार रूपोंसे प्रकाशवान् ७७० चतुर्भाव-धर्म अर्थ काम और मोक्षरूप चार भावों वाले १ चतुर्वेदविद्-चार वेदोंको जानने वाले २ एक-पाद-एक चरण वाले, श्रुति कहती है कि-पादोऽस्य विश्वा भूतानि समस्त भूत इसके एक पादमात्र हैं ॥ ६५ ॥ ३ समा-वर्त-संसारचक्रको चलाने वाले ४ अनिवृत्तात्मा-सर्वत्र होनेसे निवृत्तिरहित आत्मा वाले ५ दुर्जय-किसीसे जीतनेमें न आने वाले ६ दुरतिक्रम-अनुल्लङ्घनीय आज्ञा वाले ७ दुर्लभ-भक्तिसे मिलने वाले दुर्लभ ८ दुर्गम-कष्टसे जिनका ज्ञान होता है ऐसे ९ दुर्ग-कठिनतासे मिलने वाले ७८० दुरावास समाधिद्वारा योगियोंकी समझमें आने वाले १ दुरारिहा-दुष्टदैत्योंका नाश करने वाले ॥ ६६ ॥ २ शुभांग-सुन्दर अंगों वाले ३ लोक-सारंग लोकके सारको ग्रहण करने वाले ४ सुतन्तु-संसार-तन्तुका भली प्रकार विस्तार करने वाले ५ तन्तुवर्धन-संसार-तन्तुको बढ़ाने वाले ६ इन्द्रकर्मा-इन्द्रकी समान कर्म करने वाले ७ महाकर्मा पंचभूतोंको तथा महाकर्मोंको करनेवाले ८ कृतकर्मा-काम करनेवाले ९ कृतागम-वेदशास्त्रको रचनेवाले ॥६७॥ ७९० उद्भव-जन्मरहित अथवा उत्कृष्ट जन्मवाले १ सुन्दर-सम्पूर्ण विश्वसे अधिक शोभा वाले २ सुन्द-करुणाशाली ३ रत्ननाभ

शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ९८ ॥ सुवर्णबिंदुर ८०० क्षोभ्यः
सर्ववागीश्वरेश्वरः । महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ९९
कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पवनोऽनिलः । अमृताशोऽमृतवपुः
सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ १०० ॥ सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छ-

रत्नकी समान सुन्दर नाभि वाले ४ सुलोचन-सुन्दर नेत्रों वाले ५ अर्क्य ब्रह्मा आदि पूज्य पुरुषोंके पूजने योग्य अथवा सूर्यमूर्त्ति ६ वाजसन-याचकोंको अन्न देने वाले ७ शृंगी-मत्स्यावतार में सींग धारण करने वाले ८ जयन्त-शत्रुओंका पराजय करने वाले ९ सर्वविज्ञ-सर्ववेत्ता तथा जयी सबका विजय करने वाले ॥ ९८ ॥ ८०० सुवर्णबिन्दु-सुन्दरवर्ण वाले, अनुस्वारमय मन्त्ररूप १ अक्षोभ्य-दैत्योंसे तिरस्कार न पाने वाले २ सर्ववागीश्वरेश्वर-सब वागीश्वरों (ब्रह्म आदि) के भी ईश्वर ३ महाहृद-आनन्दरूपी महाहृदमें मग्न रहने वाले ४ महागर्त—महागर्तकी समान दुस्तर माया वाले ५ महाभूत-त्रिकालमें जिसका स्वरूप प्रतीत न होसके ऐसे महाभूतरूप ६ महानिधि सब प्राणियोंका जिसमें लय होजाता है ऐसे महानिधिरूप ॥ ९९ ॥ ७ कुमुद-पृथ्वीका भार उतार कर उसको आनन्द देनेवाले ८ कुन्दर-कुन्दपुष्पकी समान सुन्दर फल देनेवाले ९ कुन्द-स्फटिक मणिकी समान निर्मल अथवा कश्यपको पृथ्वीका दान देने वाले ८१० पर्जन्य-मेघकी समान अध्यात्म अधिभूत और अधिदैव नामक त्रितापको टालने वाले १ पावन-स्मरणमात्रसे पवित्र करने वाले २ अनिल-सदा जागृत रहनेवाले ३ अमृताश-ज्ञानरूपी अमृतका भोजन करने वाले ४ अमृतवपु-अविनाशी शरीर वाले ५ सर्वज्ञ-सबको जानने वाले ६ सर्वतोमुख-सर्वत्र मुखवाले ।१००। ७ सुलभ सुखसे मिलने वाले ८ सुव्रत-सुन्दर व्रतका आचरण करने वाले ९ सिद्ध-सिद्धियोंका संपादन करने वाले ८२० शत्रु-

त्रुतापनः। न्यग्रोधोदुंबरोश्वत्थश्चाणूरांध्रनिषूदनः ॥ १०१ ॥ सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः । अमूर्तिरनघोऽचिंत्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ १०२ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् । अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥ १०३ ॥ भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः । आश्रमः श्रमणः

जित्-शत्रुओंको जीतने वाले १ शत्रुतापन-शत्रुओंको तपाने वाले २ न्यग्रोध—वटमूर्त्ति ३ उदुम्बर—गूलड़स्वरूप ४ अश्वत्थ-पीपलस्वरूप ५ चाणूरांध्रनिषूदन—चाणूर दैत्य और आंध्र देशवासी दैत्योंका संहार करने वाले ॥ १०१ ॥ ६ सहस्रार्चि-सहस्र किरणों वाले ७ सप्तजिह्व—काली कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि नामक सात जिह्वा वाले ८ सप्तैधा—सात जिह्वाओंसे सबका भक्षण करने वाले ९ सप्तवाहन-सात घोड़ों वाले ८३० अमूर्ति-निराकार १ अनघ—दोषरहित २ अचिन्त्य—विचारमें न आने वाले ३ भयकृत-दुष्टोंको भय देने वाले ४ भयनाशन-भक्तोंके भयका नाश करने वाले ॥ १०२ ॥ ५ अणु सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म ६ बृहत्-महान् ७ कृश—सूखे हुए ८ स्थूल—सकल ब्रह्माण्डमूर्ति ९ गुणभृत्-उत्पत्ति स्थिति और लयके लिये सत्त्व रज और तमोगुणको धारण करने वाले ८४० निर्गुण-गुण-रहित १ महान्-निर्गुण निरतिशय तथा सूक्ष्म होनेसे महत्त्वपूर्ण २ अधृत-आधारभूत पृथ्वी आदिको धारण करने वाले अथवा किसीसे धारण न किये जासकने वाले ३ स्वधृत—अपनी आत्मासे अपनेको धारण करने वाले ४ स्वास्य—सुन्दर मुख ५ प्राग्वंश यज्ञ करने वालोंकी पूर्वाभिमुखी विश्रामशालारूप ६ वंशवर्धन वंशोंको बढ़ाने वाले ॥१०३॥ ७ भारभृत्-पृथ्वीके भारको धारण करने वाले ८ कथित-वेदोंमें कीर्तित ९ योगी-

क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ १०४ ॥ धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः । अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः॥१०५
सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः । अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥ १०६ ॥ विहायसगतिर्ज्योतिः सुरु-

योग धारी ८५० योगीश –योगियोंके स्वामी १ सर्वकामद-सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले २ आश्रम—संसाररूपी अरण्यमें भटकने वाले प्राणियोंके और दुःखितोंके विश्रामरूप ३ श्रमण-अविवेकियोंको सन्तप्त करने वाले ४ क्षाम—सब पापियोंका क्षय करने वाले अथवा योगियोंको पुण्यकर्मका क्षय होने पर उनको शक्ति देने वाले ५ सुपर्ण—सुन्दर पंख वाले अथवा वेद-रूपी पंखों वाले ६ वायुवाहन–वायुको भी गतिशील बनाने वाले ७ धनुर्धर–धनुषधारी ८ धनुर्वेद–धनुर्विद्या जानने वाले९ दण्ड शिक्षामूर्ति ८६० दमयिता–वैवस्वत आदि राजा रूपसे दमन करने वाले १ दम-शिक्षा देने योग्योंको दण्ड देने वाले २ अपराजित्–शत्रुओंसे पराजय न पाने वाले समर्थ ३ सर्वसह–सबको सहने वाले, सब कार्य करने वाले ४ नियन्ता नियममें रखने वाले ५ नियम–योगके अङ्गरूप ६ यम-योगके अङ्गरूप अथवा सबको नियममें रखने वाले ॥ १०५ ॥ सत्त्ववान्–शूरता आदि सत्त्व वाले ८ सात्विक–सत्त्वगुणमें बसने वाले ९ सत्य-साधु पुरुषों पर कृपा करने वाले सत्यरूप ८७० सत्यधर्म परायण–सत्यधर्ममें परायण रहने वाले १ अभि-प्राय–पुरुषके अभिप्रायरूप अथवा मुमुक्षु पुरुषोंके इष्ट २ प्रियार्ह भक्तोंकी अर्पित कीहुई प्रिय वस्तुके योग्य ३ अर्ह–पूजनीय ४ प्रियकृत्–भक्तोंका प्रिय करने वाले ५ प्रीतिवर्धन–प्रीतिको बढाने वाले ॥ १०६ ॥ ६ विहायसगति–आकाशचारी ७ज्योति स्वयं प्रकाश ८ सुरुचि–सुन्दर कान्तिवाले ९ हुतभुक् यज्ञोंमें

चिर्हुतभुग् विभुः । रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ७
अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकदोग्रजः । अनिर्विण्णः सदा-
मर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ ८ ॥ सनात् सनातनतमः कपिलः
कपिरव्ययः । ९०० स्वस्तिदः स्वस्तिकृत् स्वस्ति स्वस्तिभुक्
स्वस्तिदक्षिणः ॥ १०९ ॥ अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जित-

देवताओंके निमित्त अर्पण कियेहुए बलिको अग्निरूपसे भक्षण करने वाले ८८० विभु-व्यापक सर्व शक्तिमान् १ रवि-पृथिवी की सरदीको सोखने वाले सूर्यरूप २ विरोचन-विविधप्रकारसे प्रकाश फैलाने वाले अथवा विविध प्रकारकी इच्छा वाले ३ शोभाको उत्पन्न करने वाले, सब पदार्थोंको बाहर निकालने वाले ४ सविता-सब जगत्के उत्पन्न करने वाले ५ रविलोचन सूर्यरूपी नेत्रवाले ॥ १०७ ॥ ६ अनन्त-अन्तरहित ७ हुतभुक् हुत द्रव्यको खाने वाले ८ भोक्ता-मनोरूप प्रकृति अथवा माया के भोक्ता ९ सुखद-भक्तोंको सुख देने वाले ८९० नैकज-धर्म रक्षाके लिये अनन्त बार जन्म लेने वाले १ अग्रज-हिरण्य गर्भ आदि मूर्तिरूप श्रुतिमें लिखा है, कि-'हिरण्यगर्भः समवर्त-ताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्२अनिर्विण्ण-पूर्णकाम होनेसे खेदरहित ३सदामर्षी-सत्पुरुषों पर सदा क्षमा करनेवाले४लोका-धिष्ठान-लोकोंके आधारभूत ब्रह्म ५ अद्भुत-सबसे विलक्षण आश्चर्यरूप, गीतामें कहा है कि-आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम् ॥ १०८ ॥ ६ सनात्-नित्य पुराण पुरुष ७ सनातनतम-ब्रह्मा आदि प्राचीन देवताओंसे भी अधिक प्राचीन और नित्य पुरुष ८ कपिल-सांख्य शास्त्र रचने वाले कपिल मूर्ति अथवा पिंगल वर्ण वाले ९ कपि-वराह रूप धारण करने वाले ९०० अव्यय-अविनाशी १ स्वस्तिद-भक्तोंका कल्याण करने वाले २ स्वस्ति-कृत्-सबके कल्याणकर्ता ३स्वस्ति-कल्याणात्मा ४ स्वस्तिदक्षिण-

शासनः । शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ११० ॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः । विद्वत्तमो वीतभयः
पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ११ ॥ उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वम-
नाशनः । वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ १२ ॥

कल्याण करनेवाले समर्थ अथवा शीघ्रतासे कल्याण करने वाले ॥ १०६ ॥ ६ अरौद्र-राग द्वेष रहित होनेसे शांतमूर्ति ७कुण्डली-कुण्डल धारण करने वाले ८ चक्री—चक्र धारण करने वाले ६ विक्रमी—महापराक्रमी ६१० ऊर्जितशासन-श्रेष्ठ आज्ञा वाले १ शब्दातिग—शब्दोंसे बुद्धिमें न आने वाले २ शब्दसह-सब वेद जिनकी महिमा गाते हैं ३ शिशिर-त्रिताप पीड़ितोंको शान्ति देने वाले ४ शर्वरीकर—आत्मज्ञान संसारियोंकी रात्रि हैं और संसार योगियोंकी रात्रि हैं, इन दोनों रात्रियोंको करने वाले अथवा अन्धकारमय शरीरियोंमें रहने वाले ॥ ११० ॥ ५ अक्रूर—क्रूरतारहित ६ पेशल-मन वाणी तथा कर्मसे सब कार्य करनेमें कुशल ७ दक्ष अल्प समयमें सब कार्य करनेकी शक्ति वाले ८ दक्षिण-कार्यकुशल अथवा शत्रुसंहारिक ६ क्षमिणां वर—क्षमावानोंमें श्रेष्ठ ६२० विद्वत्तम-महाविद्यावाले विद्वानोंमें उत्तम १ वीतभय—भयरहित २ पुण्यश्रवणकीर्तन-जिनके नामका श्रवण और कीर्तन पवित्र है १११ ३ उत्तारण—संसारसागरसे तारने वाले ४ दुष्कृतिहा—पापका नाश करने वाले ५ पुण्य श्रुति स्मृति आदिसे पुण्यका उपदेश देने वाले ६ दुःस्वमनाशन—दुःस्वप्नोंका नाश करने वाले ७ वीरहा—शूरवीरोंका नाश करने वाले अथवा मोक्षमार्गमें चलने वालोंके सब पापोंका नाश करने वाले ८ रक्षण—सत्त्वगुणमें रह कर सबकी रक्षा करने वाले ६ सन्त—सज्जन ६३० जीवन प्राण-रूपसे सबको जीवित रखने वाले १ पर्यवस्थित—विश्वमें

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः । चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः॥ १३॥ अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिरांगदः । जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १४ ॥ आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः । ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ १५ ॥प्रमाणं प्राणनिलयः प्राण-

---

सर्वत्र व्याप्त॥ ११२ ॥ २ अनन्तरूप--असंख्य रूप धारण करने वाले ३ अनन्तश्री—अपार शोभा वाले ४ जितमन्यु-क्रोधको जीतने वाले ५ भयापह--भक्तके भयका नाश करने वाले६ चतु-रस्र--चार वेदरूप चार कोणों वाले मङ्गलमूर्ति अथवा मन और कर्मसे काम करने वालोंको योग्य फल देने वाले ७ गंभीरात्मा-गंभीर स्वरूप वाले ८विदिश-अधिकारियोंको विशेषतः भिन्न२ फल देनेवाले ९ व्यादिश-इन्द्र आदि देवताओंको विविध आज्ञा देनेवाले१०दिश-दिङ्मूर्ति प्रत्येक कर्मका योग्यफलदेनेवाले११३ १ अनादि-जिनका आदि नहीं है ऐसे २ भू आधारभूत पृथ्वीरूप ३भुवो लक्ष्मीः--पृथ्वीकी शोभारूप४सुवीर—सुयोधा अथवा विविध प्रकारकी गति वाले ५ रुचिराङ्गद-सुन्दर बाजूबन्द वाले ६ जनन--प्राणिमात्रको उत्पन्न करने वाले, जन्मादि मनुष्योंकी उत्पत्तिके कारणरूप ८ भीम--पापियोंके लिये भयंकर ९ भीमपराक्रम--भयंकर पराक्रमी ॥ ११४ ॥ ९५० आधारनिलय-पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतोंके स्थान १ धाता—संहार के समय सबका पालन करने वाले अथवा धारण करने वाले २ पुष्पहास्य-पुष्पोंकी समान श्वेतहास्य करने वाले ३ प्रजागर निरन्तर जागृत रहने वाले ४ ऊर्ध्वग—सबके ऊपर रहने वाले सबसे उच्च गति वाले ६ प्राणद-परीक्षितकी समान पुरुषोंको प्राण दान देने वाले ७ प्रणव - ॐकाररूप ८ पण-धर्म कार्यका व्यवहार करने वाले ॥ ११५ ॥ ९ प्रमाण-प्रमाण

भृत् प्राणजीवनः। तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ११६
भूर्भुवः स्वस्तरुस्तारः स पिता प्रपितामहः । यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा
यज्ञांगो यज्ञवाहनः ॥११७॥ यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।
यज्ञांतकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ १८ ॥ आत्मयोनिः स्वयं-
जातो वैखानः सामगायनः । देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पाप-

मूर्ति ६६० प्राणनिलय—प्राणादिके आधारभूत १ प्राणभृत्-दश प्राणोंका पोषण करने वाले अन्नरूप २ प्राणजीवन-प्राणियोंको दश प्राणोंसे जिवाने वाले ३ तत्त्व--तत्त्वमूर्ति ४ तत्त्ववित्-तत्त्ववेत्ता ५ एकात्मा—एक आत्मारूप ६ जन्ममृत्यु-जरातिग-जन्म मृत्यु और वृद्धावस्थाका उल्लंघन करनेवाले ११६। ७ भूर्भुवः स्वस्तरु-भूः भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियोंसे होम आदि द्वारा त्रिजगत्का उद्धार करने वाले अथवा भूः भुवः स्वः इन तीनों लोकोंमें वृक्षकी समान व्याप्त ८ तार-संसार सागरमेंसे तारने वाले अथवा ॐकारमूर्ति ९ सविता-सब लोकोंके पितामह ९७० प्रपितामह-ब्रह्माके भी पितामह १ यज्ञ-यज्ञमूर्ति २ यज्ञपति—यज्ञके अधिपति ३ यज्वा—यजमान ४ यज्ञांग-यज्ञरूपी अङ्ग वाले ५ यज्ञवाहन-फल देने वाले यज्ञोंको ग्रहण करने वाले ॥ ११७ ॥ ६ यज्ञभृत्-यज्ञका पोषण करने वाले अथवा यज्ञकी रक्षा करने वाले ७ यज्ञकृत्—दक्षके यज्ञका नाश करने वाले अथवा युगके आरम्भमें यज्ञ करने वाले ८ यज्ञमूर्ति-यज्ञ करने वालोंमें यज्ञरूप ९ यज्ञभुक्-यज्ञके फलके भोक्ता ९८० यज्ञसाधन—यज्ञके साधनरूप १ यज्ञान्तकृत्—यज्ञके अन्तमें फल देने वाले अथवा पूर्णाहुतिको स्वीकार करके यज्ञको पूर्ण करने वाले २ यज्ञगुह्य—यज्ञमें गुप्त रहने वाले, ब्रह्मस्वरूप, निर्लेप यज्ञस्वरूप ३ अन्न—अन्नमूर्ति ४ अन्नाद्-अन्नका भक्षण करने वाले ॥११८॥ ५ आत्मयोनि-आत्माके उपादान कारण

नाशनः ॥ १६ ॥ शंखभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः। रथांगपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः। सर्वप्रहरणायुध ओं नम इति १००० ॥ १२० ॥ इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः। नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥२१॥ य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्। नाशुभं प्राप्नुयात् किंचित् सोऽमुत्रेह च मानवः ॥ २२ ॥ वेदांतगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्। वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् २३ धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्। कामानवाप्नुयात्

रूप ६ स्वयंजात-स्वयंभू ७ वैखान-पातालवासी हिरण्याक्षका नाश करनेके लिये पृथ्वीको खोदने वाले ८सामगायन-सामवेदका गायन करने वाले ६ देवकीनन्दन-देवकीको आनन्द देने वाले ६६० स्रष्टा-जगत्को रचने वाले १ क्षितीश-पृथ्वीके स्वामी २ पापनाशन—भक्तोंके पापका नाश करने वाले ॥ ११६ ॥ ३शंखभृत्-शंख धारण करने वाले ४ नन्दकी-ज्ञान और माया की नन्दक नामक तलवारको धारण करने वाले ५ चक्री-चक्र धारण करने वाले ६ शार्ङ्ग—धन्वा-शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले ७ गदाधर-ज्ञानरूप गदाको धारण करने वाले ८ रथांगपाणि-हाथमें चक्र धारण करने वाले ६ अक्षोभ्य-निडर १००० सर्वप्रहरणायुध-प्रसिद्ध अप्रसिद्ध सब प्रकारके आयुधों को धारण करने वाले ॐ तत् सत् नमः ॥ १२० ॥ उपरोक्त कीर्त्तन करने योग्य महात्मा केशवके दिव्य एक सहस्र नामोंका पूर्णरूपसे वर्णन करदिया ॥१२१॥ जो मनुष्य इस विष्णुसहस्र नामका सदा पाठ करता है अथवा इसका कीर्तन करता है इस लोकमें तथा परलोकमें उसका कुछ अशुभ नहीं होता है १२२ इस विष्णुसहस्रनामका पाठ करनेसे अथवा कीर्तन करनेसे ब्राह्मण वेदान्तपारगामी होजाता है, क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता

कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात् प्रजाम् ॥ २४ ॥ भक्तिमान्यः सदो-त्थाय शुचिस्तद्गतमानसः । सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत् प्रकी-र्तयेत् ॥२५॥ यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च । अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १२६ ॥ न भयं क्वचिदा-प्नोति वीर्यं तेजश्च विंदति । भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणा-न्वितः ॥ १२७ ॥ रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् । भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येदापन्न आपदः ॥ २८ ॥ दुर्गाण्य-तितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्। स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्ति-समन्वितः ॥ २९ ॥वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः । सर्व-पापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ३० ॥न वासुदेवभक्ता-

है, वैश्य व्यापारमें धन पाता है और शूद्र सुख पाता है १२३ धर्मकी इच्छा वाला धर्मको पाता है, अर्थकी इच्छा वाला अर्थ पाता है कामना वाला कामनाको पाता है और प्रजाकी इच्छा वाला प्रजा पाता है ॥ १२४ ॥ जो भक्तिमान् पुरुष सदा प्रातः कालमें उठकर स्नान करके पवित्र हो मनमें विष्णुका ध्यान करता हुआ इस वासुदेव-सहस्रनामका पाठ करता है ॥ १२५ ॥ वह महायश पाता है जातिमें महत्त्व पाता है, अचल सम्पत्ति पाता है और उत्तम सुख पाता है ॥ १२६ ॥ तथा उसको कहीं भय नहीं होता वह वीर्य और तेजको पाता है तथा आरोग्यवान् कान्तिवान् बलवान् रूपवान् और गुणी होजाता है ॥ १२७ ॥ रोगातुर पुरुष रोगसे छूट जाता है, बद्ध पुरुष बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत भयमेंसे छूट जाता है और दुःखीकी आपत्ति जाती रहती है ॥ १२८ ॥ जो पुरुष भक्तिसम्पन्न होकर इस विष्णुसहस्रनामसे पुरुषोत्तमकी स्तुति करता है वह पुरुष शीघ्र ही दुःखोंसे छूट जाता है ॥ १२९ ॥ जो मनुष्य वासुदेवका आश्रय लेलेता है और उनका ध्यान करनेमें परायण रहता है वह पापों

नापशुभं विद्यते क्वचित्। जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ३१
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। युज्येतात्मसुखक्षान्ति-
श्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥३२॥ न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो
नाशुभा मतिः। भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे १३३
द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः। वासुदेवस्य वीर्येण
विधृतानि महात्मनः ॥ १३४ ॥ ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्ष-
सम्। जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १३५ ॥ इंद्रिया-
णि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः। वासुदेवात्मकान्याहुः
क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १३६ ॥ सर्वागमानामाचारः प्रथमं परि-
कल्पते। आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १३७ ॥

से छूटकर शुद्ध अन्तःकरण वाला हो सनातन परब्रह्मको पाता है ॥ १३० ॥ वासुदेवके भक्तोंका कहीं अशुभ नहीं होता है तथा उनको जन्म मृत्यु जरा और व्याधिका भी भय नहीं रहता है ॥ १३१ ॥ जो पुरुष श्रद्धापूर्वक भक्तिभावसे इस विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है वह मनुष्य आत्मसुख क्षमा लक्ष्मी धैर्य स्तुति और कीर्तिको पाता है ॥ १३२ ॥ पुरुषोत्तमके पुण्यात्मा भक्तोंको किसी दिन क्रोध नहीं आता है, ईर्षा उत्पन्न नहीं होती है लोभ नहीं होता है और उनकी अशुभ बुद्धि भी नहीं होती है ॥ १३३ ॥ स्वर्ग सूर्य चन्द्रमा तथा नक्षत्रसहित आकाश दश दिशायें पृथ्वी और महासागर ये सब महात्मा वासुदेवके वीर्य (तप) से रुके हुए हैं ॥ १३४ ॥ देवता दैत्य गन्धर्व यक्ष सर्प और राक्षस सहित यह स्थावरजंगमरूप जगत् श्रीकृष्णके अधीन रहकर अपनी क्रिया करते रहते हैं ॥१३५॥ इन्द्रियें मन बुद्धि सत्त्व तेज बल धीरज क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ अर्थात् आत्मा ये सब श्रीवासुदेवके रूप हैं, ऐसा (वेद) कहते हैं ॥ १३६ ॥ सब शास्त्रोंमें आचारको प्रथम मानाजाता

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः । जंगमाजंगमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १३८ ॥ योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च । वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात् ॥ १३९ ॥ एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । त्रींल्लोकान् व्याप्य भूतात्मा भुंक्ते विश्वभुगव्ययः ॥ १४० ॥ इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् । पठेद्य इच्छेत् पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ १४१ ॥ विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् । भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यांति पराभवम् ॥ १४२ ॥ अर्जुन उवाच । पद्मपत्रविशालाक्ष पद्मनाभ सुरोत्तम । भक्तानामनुरक्तानां त्राता भव जनार्दन ॥ १४३ ॥ श्रीभगवानुवाच । यो

है, आचारसे धर्मकी उत्पत्ति होती है और धर्मके स्वामी प्रभु अच्युत हैं ॥ १३७ ॥ ऋषि पितर देवता पञ्चमहाभूत, धातुयें और स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् नारायणसे उत्पन्न हुआ है ॥ १३८ ॥ योग ज्ञान सांख्य विद्यायें शिल्प आदि कर्म वेद शास्त्र और विज्ञान ये सब विष्णुसे उत्पन्न हुए हैं १३९ विष्णु ही एक ऐसे हैं, कि–अनेक रूपोंमें विभक्त होकर भिन्न२ भूतविशेषोंके अनेकों रूपोंको धारण कर रहे हैं त्रिलोकीमें व्याप्त होकर वह सब भूतोंके आत्मा सबको भोगते हैं विश्वभोग करने वाले वह विष्णु अविनाशी है ॥ १४० ॥ जो पुरुष श्रेय और सुख पाना चाहे वह भगवान् व्यासजीके कहे हुए इस विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रका पाठ करे ॥ १४१ ॥ जो विश्वके ईश्वर देव जगत्की उत्पत्ति स्थिति और विनाश करनेवाले कमललोचन श्रीकृष्णका भजन करते हैं वे कभी पराभव नहीं पाते हैं १४२ अर्जुनने कहा, कि-हे कमलपत्रकी समान विशाल नेत्रों वाले ! हे कमलाकार नाभिवाले ! हे देवताओंमें उत्तम ! हे जनार्दन ! आप अपने अनुरक्त (प्रेमी) भक्तोंकी रक्षा करिये ॥ १४३ ॥

मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति पाण्डव । सोऽहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥ १४४ ॥ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे । सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥ १४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां अनुशासनपर्वणि अनुशासनिके दानधर्मे विष्णुसहस्रनामकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

युधिष्ठिर उवाच । पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । किं जप्यं जपतो नित्यं भवेद्धर्मफलं महत् ॥ १ ॥ प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रवृत्ते वापि कर्मणि । दैवे वा श्राद्धकाले वा किं जप्यं कर्मसाधनम् ॥ २ ॥ शान्तिकं पौष्टिकं रक्षा शत्रुघ्नं भयनाशनम् ।

श्रीभगवान् बोले, कि—हे पाण्डव ! जो पुरुष विष्णुसहस्रनामसे मेरी पूजा करना चाहता है, उसके एक श्लोक पढनेसे ही मैं स्तुत होजाता हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १४४ ॥ अनन्त सहस्र मूर्तियोंको धारण करनेवाले तथा सहस्रों चरण नेत्र शिर और अच्छी भुजा वाले परमात्माको नमस्कार है (हो) सहस्र नामवाले और सहस्रकोटि युगको धारण करनेवाले सनातन-परमात्माको नमस्कार हो (है) ॥ ॥१४५॥ एकसौ उड़चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४९ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि—हे सर्वशास्त्र विशारद महाप्राज्ञ पितामह ! ऐसा जप करने योग्य क्या है ? कि—जिसका सदा जप करनेसे धर्मका महाफल मिल सके ॥ १ ॥ यात्रा करते समय नवीन घरमें प्रवेश करते समय अथवा किसी कर्मका आरम्भ करते समय अथवा दैव कर्म (यज्ञ) का आरम्भ करते समय और श्राद्धके समय ऐसा जपने योग्य क्या है, जिसका जप करनेसे, कर्म सध जाय॥२॥ और जो शांति देनेवाला हो, पुष्टि देनेवाला हो,

जप्यं यद्ब्रह्मसमितं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । व्यासप्रोक्तमिमं मन्त्रं शृणुष्वैकमना नृप । सावित्र्या विहितं दिव्यं सद्यः पापविमोचनम् ॥ ४ ॥ शृणु मन्त्रविधिं कृत्स्नं प्रोच्यमानं मयाऽनघ । यं श्रुत्वा पांडवश्रेष्ठ सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ रात्राहनि धर्मज्ञ जपन् पापैर्न लिप्यते । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥ ६ ॥ आयुष्मान् भव ने चैव यं श्रुत्वा पार्थिवात्मज । पुरुषस्तु सुसिद्धार्थः प्रेत्य चेह च मोदते ॥ ७ ॥ सेवितं सततं राजन् पुरा राजर्षिसत्तमैः । क्षत्रधर्मपरैर्नित्यं सत्यव्रतपरायणैः ॥ ८ ॥ इदमान्हिकमव्यग्रं कुर्वद्भिर्नियतैः सदा । नृपैर्भरत-

रक्षा करनेवाला हो शत्रुके भयको दूर करनेवाला और जो वेदकी समान हो उस मंत्रका आप मुझसे वर्णन करिये ३ भीष्मजीने कहा कि—हे राजन् ! तत्काल ही पापमुक्त करने वाले सावित्रीके आचरण किये हुए और व्यासजीके कहे हुए इस दिव्य मन्त्र को तू एकाग्रचित्त होकर सुन ॥ ४ ॥ हे निर्दोष ! इस मन्त्रकी पूर्ण विधि मैं तुझसे कहता हूँ. उसको तू एकचित्त होकर सुन हे पाण्डव–श्रेष्ठ ! इसको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥ हे धर्मज्ञ राजन् ! जिस मन्त्रका जप करनेसे मनुष्यको रातमें और दिनमें पाप नहीं लगता है उस मन्त्रको मैं तुझसे कहता हूँ, तू एकाग्र होकर सुन ॥ ६ ॥ हे राजपुत्र ! इस मन्त्रका श्रवण करनेसे पुरुष आयुष्यमान् होजाता है और उसके सब प्रयोजन इस लोकमें सिद्ध होजाते हैं और मरणके पीछे परलोकमें आनन्द पाता है ॥ ७ ॥ पहिले क्षत्रिय धर्ममें परायण रहने वाले और सदा सत्य व्रतका आचरण करने वाले उत्तम राजर्षि जिस मंत्र (स्तोत्र) का सदा पाठ करते थे ॥ ८ ॥ हे भरतवंशसिंह ! राजे सदा नियममें रहकर शांति से इस स्तोत्रका सदा पाठ करते हैं और उनको सर्वोत्तम लक्ष्मी

शार्दूल भाष्यते श्रीरनुत्तमा ॥ ९ ॥ नमो वसिष्ठाय महाव्रताय पराशरं वेदनिधिं नमस्ये । नमोऽस्त्वनंताय महोरगाय नमोऽस्तु सिद्धेभ्य इहाक्षयेभ्यः ॥१०॥ नमोऽस्त्वृषिभ्यः परमं परेषां देवेषु देवं वरदं वराणाम् । सहस्रशीर्षाय नमः शिवाय सहस्रनामाय जनार्दनाय ॥ ११ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः। ऋतश्च पितृरूपश्च त्र्यम्बकश्च महेश्वरः ॥ १२ ॥ वृषाकपिश्च शंभुश्च हवनोथेश्वरस्तथा । एकादशैते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥१३॥ शतमेतत् समाम्नातं शतरुद्रे महात्मनाम् । अंशो भगश्च मित्रश्च वरुणश्च जलेश्वरः ॥ १४ ॥तथा धातार्यमा चैव जयन्तो भास्करस्तथा । त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥ १५ ॥ इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेया इति श्रुतिः । धरो ध्रुवश्च सोमश्च सावित्रोऽथानिलोऽनलः ॥ १६ ॥ प्रत्यू-

का लाभ होता है॥९॥ (वह स्तोत्र यह है) महाव्रतधारी वसिष्ठ जीको नमस्कार है, वेदके निधिरूप पराशरको मैं नमस्कार करता हूँ, महोरगरूप (शेषरूप) भगवान्‌को नमस्कार हो इस लोकके अविनाशी सिद्ध पुरुषोंको नमस्कार हो ॥ १० ॥ ऋषियोंको नमस्कार हो, परात्पर देवदेव वरदान देने वालोंको भी वरदान देनेवाले सहस्र मस्तकवाले शिवमूर्तिको तथा जिनके सहस्र नाम हैं ऐसे जनार्दनको नमस्कार है ॥ ११ ॥ अज एकपाद अहिर्बुध्न्य अपराजित पिनाकी ऋत पितृरूप महेश्वर त्र्यम्बक वृषाकपि शम्भु तथा हवन और ईश्वर यह ग्यारह रुद्र प्रख्यात हैं और तीनों भुवनोंके ईश्वर हैं ॥ १२ ॥ शतरुद्रमें इन महात्मा ग्यारह रुद्रोंके सैंकडों नाम पढ़े हैं, अंश भग मित्र जल के स्वामी वरुण धाता अर्यमा जयन्त भास्कर त्वष्टा पूषा तथा इन्द्र बारहवें विष्णु यह बारह आदित्य कहलाते हैं ॥१३–१५॥ और वे कश्यपके पुत्र हैं यह बात श्रुतिमें कही है, धर ध्रुव सोम

पश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः । नासत्यश्चापि दस्रश्च
स्मृतौ द्वावश्विनावपि ॥ १७ ॥ मार्तण्डस्यात्मजावेतौ संज्ञानासा-
विनिर्गतौ । अतः परं प्रवक्ष्यामि लोकानां कर्मसाक्षिणः ।१८।
अपि यज्ञस्य वेत्तारो दत्तस्य सुकृतस्य च । अदृश्याः सर्वभूतेषु
पश्यन्ति त्रिदशेश्वराः॥१९॥शुभाशुभानि कर्माणि मृत्युः कालश्च
सर्वशः । विश्वेदेवाः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तपोधनाः ॥ २० ॥
मुनयश्चैव सिद्धाश्च तपोमोक्षपरायणाः । शुचिस्मताः कीर्तयतां
प्रयच्छन्ति शुभं नृणाम्॥२१॥प्रजापतिकृतानेतांल्लोकान् दिव्येन
तेजसा । वसन्ति सर्वलोकेषु प्रयताः सर्वकर्मसु ॥ २२ ॥ प्राणा-
नामीश्वरानेतान् कीर्तयन् प्रयतो नरः । धर्मार्थकामैर्विपुलैर्युज्यते

सावित्र अनल अनिल प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहे हैं, नासत्य और दस्र ये दोनों अश्विनीकुमार कहे हैं ॥१६॥१७॥ ये दोनों सूर्यपुत्र हैं और संज्ञाकी नाकमेंसे उत्पन्न हुए हैं अब मैं इन लोकोंके कर्मसाक्षियोंको कहता हूँ ॥ १८ ॥ ये कर्मसाक्षी यज्ञवेत्ता हैं लोकोंके किये हुए दानको जानने वाले हैं, किये हुए पुण्यको जानने वाले हैं वे स्वयं ही अदृश्य हैं-तब भी वे देवदेव सब प्राणियोंके विषैं सब वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ १९ ॥ ये सब शुभ और अशुभ कर्मोंको देखते हैं, वे मृत्यु और कालस्वरूप हैं, वे विश्वे देवता हैं तथा मूर्तिमान् पितृगण हैं और तपोधन हैं ॥ २० ॥ वे मुनि हैं और सिद्ध हैं और तपःपरायण तथा मोक्षपरायण हैं,वे पवित्र हास्यवाले हैं, वे अपना कीर्तन करने वालोंका कल्याण करते हैं ॥ २१ ॥ प्रजापतिने दिव्यतेजसे जिन लोकोंको रचा है उन सब लोकोंमें वे बसते हैं,वे सब कर्मोंके साक्षी हैं और तेजःस्वरूप हैं ॥ २२ ॥ जो पुरुष सावधान होकर प्राणियोंके ईश्वर इन देवताओंका कीर्तन करता है उस पुरुषको सदा धर्म अर्थ और

सह नित्यशः ॥२३॥ लोकांश्च लभते पुण्यान् विश्वेश्वरकृता-
ञ्छुभान् । एते देवास्त्रयस्त्रिंशत् सर्वभूतगणेश्वराः ॥ २४ ॥ नंदी-
श्वरो महाकायो ग्रामणीर्वृषभध्वजः । ईश्वराः सर्वलोकानां गणे-
श्वरविनायकाः ॥ २५ ॥ सौम्या रौद्रागणाश्चैव योगभूतगणा-
स्तथा । ज्योतींपि सरितो व्योम सुपर्णः पतगेश्वरः ॥ २६ ॥
पृथिव्यां तपसा सिद्धाः स्थावराश्च चराश्च ह ।हिमवान् गिरयः
सर्वे चत्वारश्च महार्णवाः ॥ २७ ॥ भवस्यानुचराश्चैव हरतुल्य-
पराक्रमाः । विष्णुर्देवोथ जिष्णुश्च स्कन्दश्चाम्बिकया सह २८
कीर्तयन् प्रयतः सर्वान् सर्वपापैः प्रमुच्यते । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि
मानवानृषिसत्तमान् ॥ २९ ॥ यवक्रीतश्च रैभ्यश्च अर्वावसु-
परावसू । औशिजश्चैव कक्षीवान् बलश्चांगिरसः सुतः ॥३०॥
ऋषिर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा । ब्रह्मतेजोमयाः सर्वे

कामका लाभ होता है ॥ २३ ॥ और उसको विश्वेश्वरके रचे हुए पुण्यमय शुभ लोक मिलते हैं, ये तैंतीस देवता हैं और ये सब भूतगणोंके ईश्वर अधिपति हैं ॥ २४ ॥ इसी प्रकार महा-कायावाले नन्दीश्वर, सर्वश्रेष्ठ वृषभध्वज सब लोकोंके ईश्वर-रूप और गणोंके ईश्वररूप विनायक तथा सौम्यगण रुद्रगण सोमगण भूतगण नक्षत्र नदी आकाश पक्षिराज गरुड पृथिवी पर तपसे सिद्ध हुए स्थावर जङ्गमरूप हिमाचल सब पर्वत चार महासागर शंकरकी समान पराक्रमी भवके अनुचर दिव्य और विजेता विष्णु स्कन्द और अम्बिका ये सब महात्मा हैं जो पुरुष सावधान होकर इन सबके नाम लेता है वह सब पापोंसे छूट जाता है, अब मैं मानवोत्तम ऋषियोंके नाम कहूँगा॥२५–२९॥ यवक्रीत रैभ्य अर्वावसु परावसु उशीजके पुत्र कक्षीवान् अङ्गिरा के पुत्र बल मेधातिथिके पुत्र कण्व ऋषि और बर्हिषद ये सब ब्रह्मतेजसे भरपूर हैं और लोकोंको उत्पन्न

कीर्त्तिता लोकभावनाः ॥ ३१ ॥ लभन्ते हि शुभं सर्वे रुद्रानल-
वसुप्रभाः । भुवि कृत्वा शुभं कर्म मोदन्ते दिवि दैवतैः ॥ ३२ ॥
महेन्द्रगुरवः सप्त प्राचीं वै दिशमाश्रिताः । प्रयतः कीर्तयेदेतान्
शक्रलोके महीयते ॥ ३३ ॥ उन्मुचुः प्रमुचुश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च
वीर्यवान् । दृढव्यश्चोर्ध्वबाहुश्च तृणसोमांगिरास्तथा ॥ ३४ ॥
मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथागस्त्यः प्रतापवान् । धर्मराजर्त्विजः सप्त
दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥ ३५ ॥ दृढेयुश्च ऋतेयुश्च परिव्याध-
श्च कीर्तिमान् । एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभः ३६
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा ऋषिः सारस्वतस्तथा।वरुणस्यर्त्विजः सप्त
पश्चिमां दिशमाश्रिताः ॥ ३७ ॥ अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्य-
पश्च महानृषिः । गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ३८
ऋचीकतनयश्चोग्रो जमदग्निः प्रतापवान् । धनेश्वरस्य गुरवः

करनेवाले कहलाते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जो इन देवताओंके नामों
का कीर्तन करता है उसका शुभ होता है उसकी कान्ति रुद्र
अग्नि और वायुकी समान होजाती है और वह पृथ्वी पर शुभ
कर्म करके स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्द करता है ॥ ३२ ॥
महेन्द्रके सात ऋत्विज हैं और वे पूर्व दिशामें रहते हैं, जो पुरुष
सावधान होकर इन सातोंका कीर्तन करता है उसकी इन्द्रके लोक
में पूजा होती है ॥ ३३ ॥ उन्मुचु प्रमुचु वीर्यवान् स्वरूपात्रेय
दृढव्य ऊर्ध्वबाहु अङ्गिराके पुत्र तृणसोम और मित्रावरुणके
पुत्र प्रतापी अगस्त्य ये सात धर्म (यम) के गुरु हैं और दक्षिण
दिशामें रहते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ दृढेयु ऋतेयु कीर्तिमान्—परि-
व्याध एकत द्वित और त्रित ये सूर्यकी समान प्रकाशवान् हैं और
अत्रिके पुत्र धर्मात्मा सारस्वत ऋषि ये सात वरुणके ऋत्विज
हैं और पश्चिम दिशामें रहते हैं ॥ ३७ ॥ अत्रि भगवान् वसिष्ठ
महर्षि कश्यप गौतमगोत्री भरद्वाज कुशिकगोत्री विश्वामित्र

सप्तैते उत्तराश्रिताः ॥ ३६ ॥ अपरे मुनयः सप्त दिक्षु सर्वास्वधिष्ठिताः । कीर्तिस्वस्तिकरा नृणां कीर्तिता लोकभावनाः ॥४०॥ धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च । अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः ॥ ४१ ॥ रामो व्यासस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा च लोमशः । इत्येते मुनयो दिव्या एकैकः सप्तसप्तधा ॥ ४२ ॥ शान्तिस्वस्तिकरा लोके दिशां पालाः प्रकीर्तिताः। यस्यां यस्यां दिशि ह्येते तन्मुखः शरणं व्रजेत् ॥ ४३ ॥ स्रष्टारः सर्वभूतानां कीर्तिता लोकपावनाः।संवर्तो मेरुसावर्णो मार्कण्डेयश्च धार्मिकः॥४४ सांख्ययोगौ नारदश्च दुर्वासाश्च महानृषिः । अत्यन्ततपसो दांतास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ४५॥ अपरे रुद्रसंकाशाः कीर्तिता ब्रह्म

ऋचीकके पुत्र महा उग्र और प्रतापी जमदग्नि ये सात कुबेरके ऋत्विज हैं और वे उत्तर दिशामें रहते हैं ॥ ३८ ॥ ३६ ॥ दूसरे सात मुनि सब दिशाओंमें रहते हैं उन लोकोंको उत्पन्न करने वालोंका कीर्तन करनेसे वे मनुष्योंको कीर्ति देते हैं तथा उनका कल्याण करते हैं ॥ ४० ॥ धर्म काम काल वसु वासुकि अनन्त और कपिल ये सात ऋषि पृथ्वीको धारण करने वाले हैं ४१ (परशु) राम व्यास द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और लोमश ये चार दिव्य मुनि हैं, इनमेंसे प्रत्येक सप्तर्षियोंकी समान हैं ॥ ४२ ॥ ये इस जगत्में शान्ति फैलाने वाले कल्याण करने वाले और दिशाओंका पालन करने वाले कहलाते हैं ये दिव्य मुनि जिस जिस२ दिशामें हों उस दिशाकी ओर मुख करके उनकी शरण लेनी चाहिये ॥ ४३ ॥ ये सब भूतोंको उत्पन्न करने वाले हैं और लोकोंको पवित्र करने वाले हैं और सम्वत मेरुसावर्णि धर्मनिष्ठ मार्कण्डेय सांख्य योग नारद महर्षि दुर्वासा ये सब महातपस्वी हैं और इन्द्रियोंका निग्रह करने वाले हैं और तीनों लोकोंमें विख्यात हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ये और रुद्रकी

लौकिकाः । अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो लभते धनम् ॥४६॥ तथा धर्मार्थकामेषु सिद्धिं च लभते नरः । पृथुं वैन्यं नृपवरं पृथ्वी यस्याभवत् सुता ॥ ४७ ॥ प्रजापतिं सार्वभौमं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् । आदित्यवंशप्रभवं महेन्द्रसमविक्रमम् ॥ ४८ ॥ पुरूरवसमैलं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । बुधस्य दयितं पुत्रं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् ॥ ४९ ॥ त्रिलोकविश्रुतं वीरं भरतं च प्रकीर्तयेत् । गवामयेन यज्ञेन येनेष्टं वै कृते युगे ॥ ५० ॥ रन्तिदेवं महादेवं कीर्तयेत् परमद्युतिम् विश्वजित्तपसोपेतं लक्षण्यं लोकपूजितम् ५१ तथा श्वेतं च राजर्षिं कीर्तयेत् परमद्युतिम् । सगरस्यात्मजा येन प्लावितास्तारितास्तथा ॥ ५२ ॥ हुताशनसमानेतान् महारूपान् महौजसः । उग्रकायान् महासत्त्वान् कीर्तयेत् कीर्तिवर्धनान् ५३

समान पराक्रमी दूसरे ऋषि ब्रह्मलोकमें रहते हैं, यह बात प्रसिद्ध है, इन सबका कीर्तन करनेसे पुत्ररहितको पुत्र मिलता है, दरिद्रीको धन मिलता है और पुरुष धर्म अर्थ तथा काममें सिद्धि पाता है और पृथिवी जिसकी पुत्री थी उस वेनपुत्र सार्वभौम प्रजापति नृपवर वसुधाधिप पृथुका कीर्तन करना चाहिये और आदित्यवंशमें उत्पन्न हुए महेन्द्रकी समान पराक्रमी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध इला और बुधके प्रियपुत्र राजा पुरूरवाका कीर्तन करना चाहिये ॥४५-४९॥ और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वीर भरतका कीर्तन करना चाहिये और जिसने सत्ययुगमें गवामयन यज्ञ किया था और जिसने विश्वजित् यज्ञ किया था जो सर्वलक्षणसम्पन्न था, महाकान्तिमान् था उस लोकपूजित महातपस्वी महादेवकी समान राजा रन्तिदेवका कीर्तन करना चाहिये ॥ ४९-५१ ॥ तथा महातपस्वी राजर्षि श्वेतका कीर्तन करना चाहिये जिसने सगरके पुत्रोंको गङ्गाजल से प्लावित कर उनको तार दिया था ॥ ५२ ॥ और अग्निकी

देवानृषिगणांश्चैव नृपांश्च जगतीश्वरान् । सांख्यं योगं च परमं हव्यं कव्यं तथैव च ॥ ५४ ॥ कीर्तितं परमं ब्रह्म सर्वश्रुतिपरायणम् । मङ्गल्यं सर्वभूतानां पवित्रं बहु कीर्तितम्॥५५॥ व्याधिप्रशमनं श्रेष्ठं पौष्टिकं सर्वकर्मणाम् । प्रयतः कीर्तयेच्चैतान् कल्यं सायं च भारत ॥ ५६ ॥ एते वै यान्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च । एते विनायकाः श्रेष्ठा दक्षाः क्षांता जितेन्द्रियाः ५७ नराणामशुभं सर्वं व्यपोहन्ति प्रकीर्तिताः । साक्षिभूता महात्मानः पापस्य सुकृतस्य च ॥ ५८ ॥ एतान् वै कल्यमुत्थाय कीर्तयन् शुभमश्नुते । नाग्निचौरभयं तस्य न मार्गप्रतिरोधनम् ॥ ५९ ॥

समान कान्तिवाले महासत्त्व और कीर्तिको फैलाने वाले सगर के पुत्रोंका भी कीर्तन करना चाहिये ॥ ५३ ॥ तथा देवता ऋषि और पृथ्वीपति राजाओंका कीर्तन करना चाहिये सांख्य और परमयोग हव्य (यज्ञबलि) और कव्य (पितृबलि) और सब श्रुतियोंके आधार परब्रह्म इन सबका कीर्तन करना चाहिये, यह सब भूतमात्रका मङ्गल करने वाला है पवित्र है और बहुतोंका कीर्तन किया हुआ है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यह व्याधिकी शान्ति करता है श्रेष्ठ है और सब कर्मोंकी पुष्टि करने वाला है हे भरतवंशी राजन् ! पुरुष इस प्रकार सावधान होकर सायंकाल और प्रातःकाल कीर्तन करे ॥५६॥ जगत्में विहार करने वाले अथवा रक्षा करने वाले जलकी वृष्टि करने वाले प्रकाश फैलाने वाले पवनको प्रेरित करनेवाले और प्रजाको रचनेवाले जो देवता हैं वे यही हैं, ये सब देवताओंके विनायक हैं श्रेष्ठ हैं, धर्मकुशल हैं, क्षमाशील हैं, जितेन्द्रिय हैं ॥ ५७ ॥ यदि इनका कीर्तन किया जाता है तो यह मनुष्योंके अशुभोंका नाश कर डालते हैं, ये महात्मा मनुष्योंके पाप और पुण्योंके साक्षी हैं ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर इन देवताओंके नामका कीर्तन करता

एतान् कीर्तयतो नित्यं दुःस्वप्नो नश्यते नृणाम् । मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वस्तिमांश्च गृहान् व्रजेत् ॥ ६० ॥ दीक्षाकालेषु सर्वेषु यः पठेन्नियतो द्विजः । न्यायवानात्मनिरतः क्षान्तो दान्तोऽनसूयकः ॥ ६१ ॥ रोगार्तो व्याधियुक्तो वा पठन् पापात् प्रमुच्यते । वास्तुमध्ये तु पठतः कुले स्वस्त्ययनं भवेत् ॥ ६२ ॥ क्षेत्रमध्ये तु पठतः सर्वं सस्यं प्ररोहति । गच्छतः क्षेममध्वानं ग्रामांतरगतः पठन् ॥ ६३ ॥ आत्मनश्च सुतानां च दाराणां च धनस्य च । बीजानामोषधीनां च रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥ ६४ ॥ एतान् संग्रामकाले तु पठतः क्षत्रियस्य तु । व्रजन्ति रिपवो नाशं क्षेमं च परिवर्तते ॥६५॥ एतान् दैवे च पित्र्ये च पठतः पुरुषस्य

है उसका शुभ होता है और उसको अग्नि तथा चोरका भय नहीं रहता है और मार्गमें उसको कोई रोकता भी नहीं है ५६ जो मनुष्य इस प्रकार देवताओंका सदा कीर्तन करता है उसे दुःस्वप्न नहीं दीखते हैं, वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है और स्वस्तिमान् कुलमें उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥ जो कोई ब्राह्मण दीक्षाके समय इन्द्रियोंको नियममें रख कर पाठ करता है तो न्यायकर्ता आत्मासे प्रीति करने वाला क्षान्त दान्त और ईर्षारहित होजाता है ॥ ६१ ॥ रोग-पीड़ित और व्याधिग्रस्त पुरुष इसका पाठ करनेसे पाप (रोग) से मुक्त होजाता है जो पुरुष अपने घरमें इसका पाठ करता है उसके कुटुम्बका शुभ होता है ॥ ६२ ॥ यदि क्षेत्रमें इसका पाठ किया जाता है तो सब प्रकारका धान्य उत्पन्न होता है, जो पुरुष दूसरे ग्रामको जाते समय इसका पाठ करता है तो मार्गमें उसका क्षेम होता है ६३ (इस स्तोत्रका पाठ करनेसे) अपनी अपने पुत्रोंकी स्त्रियोंकी धनकी बीजोंकी और औषधियोंकी रक्षा होजाती है ॥ ६४ ॥ क्षत्रिय यदि संग्रामके समय इन देवताओंका स्मरण करता है

हि । भुञ्जते पितरः हव्यं कव्यं च त्रिदिवौकसः ॥ ६६ ॥ न व्याधिश्वापदभयन्न द्विपान्न हि तस्करात् । कश्मलं लघुतां याति पाप्मना च प्रमुच्यते ॥ ६७ ॥ यानपत्रे च याने च प्रवासे राजवेश्मनि । परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन् ॥ ६८ ॥ न च राजभयं तेषां न पिशाचान्न राक्षसात् । नाग्न्यंबुपवनव्यालाद्भयं तस्योपजायते ॥ ६९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः । करोति सततं शान्तिं सावित्रीमुत्तमां पठन् ॥ ७० ॥ नाग्निर्दहति काष्ठानि सावित्री यत्र पठ्यते । न तत्र बालो म्रियते न च तिष्ठन्ति पन्नगाः ॥ ७१ ॥ न तेषां विद्यते दुःखं गच्छन्ति

अर्थात् इस स्तोत्रका पाठ करता है तो उसके शत्रु नष्ट होजाते हैं ६५ देवकर्म यज्ञमें और पितृकर्म—श्राद्धमें इस स्तोत्रका पाठ करने वालेके हव्य तथा कव्यको देवता और पितर खाते हैं ॥ ६६ ॥ इस भारतसावित्रीका पाठ करनेसे व्याधिका भय नहीं रहता है पाप और चिंताका दुःख न्यून होजाता है और पापी मन वाला पुरुष पापसे मुक्त होजाता है ॥ ६७ ॥ जलप्रवासमें वाहनमें परदेशके प्रवासमें और राजमन्दिरमें इस उत्तम भारतसावित्रीका पाठ करने वाला उत्तम सिद्धि पाता है ६८ इस भारतसावित्रीका पाठ करने वालेको राजाका भय नहीं होता हैं पिशाचोंसे भय नहीं होता है, राक्षसोंसे भय नहीं होता है और उसको अग्नि जल पवन और हिंसक प्राणियोंसे भी भय नहीं लगता है ६९ इस उत्तम भारतीसावित्रीको पढ़ता हुआ पुरुष चारों वर्णोंका और चारों आश्रमोंका विशेषतः कल्याण करता है ॥ ७० ॥ जहाँ इस भारतसावित्रीका पाठ होता है तहाँ अग्नि काष्ठको भस्म नहीं करता है, तहाँ बालकोंका मरण नहीं होता है और तहाँ सर्प भी नहीं रहते हैं ॥७१॥ जो महद्ब्रह्मस्वरूप सावित्रीके गुणकीर्तनको सुनते हैं उनके दुःख नष्ट होजाते हैं और वे

परमाङ्गतिम् । ये शृण्वन्ति महद्ब्रह्म सावित्रीगुणकीर्तनम् ॥७२॥ गवां मध्ये तु पठतो गावोऽस्य बहुवत्सलाः । प्रस्थाने वा प्रवासे वा सर्वावस्थां गतः पठेत् ॥ ७३ ॥ जपतां जुह्वतां चैव नित्यं च प्रयतात्मनाम् । ऋषीणां परमं जप्यं गुह्यमेतन्नराधिप ॥ ७४ ॥ याथातथ्येन सिद्धस्य इतिहासं पुरातनम् । पराशरमतं दिव्यं शक्राय कथितं पुरा ॥७५॥ तदेतत्ते समाख्यातं तथ्यं ब्रह्म सनातनम् । हृदयं सर्वभूतानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ७६ ॥ सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा । पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं प्राणिनां गतिम् ॥ ७७ ॥ अभ्यासे नित्यं देवानां सप्तर्षीणां, ध्रुवस्य च । मोक्षणं सर्वकृच्छ्राणां मोचयत्यशुभात् सदा ॥ ७८ ॥ वृद्धैः काश्यपगौतमप्रभृतिभिर्भृग्वङ्गिरोऽत्र्यादिभिः

परमगतिको पाते हैं ॥ ७२ ॥ यदि गौओंके बीचमें इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है तो गौओंके बहुतसे बछड़े होते हैं, प्रस्थान करते समय प्रवासमें और भी सब अवस्थाओंमें इसका पाठ करना चाहिये ॥७३॥ हे नराधिप ! सदा जप करने वाले होम करने वाले और मनको नियममें रखने वाले ऋषियोंका यह परमगुह्य मन्त्र है ॥ ७४ ॥ यथार्थप्रकारसे सिद्ध हुए ऋषियोंका यह प्राचीन इतिहास है और पराशरने अपने इस दिव्य मतको पहिले इन्द्रसे कहा था ॥ ७५ ॥ तुमसे यह तथ्य सनातन ब्रह्म कह दिया यह सब प्राणियोंका हृदयरूप और सनातन श्रुतिरूप है ॥ ७६ ॥ सोमवंशी कुरुवंशी सूर्यवंशी और रघुवंशी राजे सदा पवित्रतापूर्वक इस प्राणियोंका कल्याण करने वाली सावित्रीका पाठ करते हैं ॥ ७७ ॥ यह भारतसावित्री स्तोत्र देवता सप्तर्षि और ध्रुवके नामोंका स्मरण करने वालेको सब दुःखोंसे मुक्त करने वाला है, इस स्तोत्रका सर्वदा पाठ करनेसे पुरुष अशुभसे छूट जाता है । ७८ । काश्यप गौतम भृगु अङ्गिरा अत्रि शुक्र

शुक्रागस्त्यबृहस्पतिप्रभृतिभिर्ब्रह्मर्षिभिः सेवितम् । भारद्वाजमतं ऋचीकतनयैः प्राप्तं वसिष्ठात् पुनः। सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभिः कृत्स्ना जिता दानवाः ॥७९॥ यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय । दिव्यां च भारतकथां कथयेच्च नित्यं तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥८०॥ धर्मो विवर्धति भृगोः परिकीर्तनेन वीर्यं विवर्धति वसिष्ठनमोनतेन । संग्रामजिद्भवति चैव रघुं नमस्यन्स्यादश्विनौ चपरिकीर्तयतो न रोगः८१ एषा ते कथिता राजन् सावित्री ब्रह्म शाश्वती । विविक्षुरसि यच्चान्यत्तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सावित्रीव्रतोपाख्याने पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

अगस्त्य और बृहस्पति आदि वृद्ध ब्रह्मर्षियोंने इस सावित्रीमंत्र का सेवन किया है, भारद्वाजके मान्य इस स्तोत्रको ऋचीकके पुत्रोंने पाया था और इन्द्र तथा वसुओंने वसिष्ठजीसे इस सावित्री-व्रतको पाकर सम्पूर्ण दानवोंको जीत लिया था । ७९ । वेदवेत्ता बहुश्रुत ब्राह्मणको सुवर्णसे मढ़े हुए सींगों वाली एकसौ गौओं का दान देने वाले और सदा इस भारतसावित्रीकी कथा कहने वाले-इन दोनोंको एकसा फल मिलता है ॥ ८० ॥ इस स्तोत्र में भृगुका कीर्त्तन करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है, वसिष्ठको नमस्कार करनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है, रघुको प्रणाम करनेसे संग्राममें विजय होती है और अश्विनीकुमारोंका कीर्त्तन करनेसे रोग नहीं होता है। ८१ । हे राजन् ! तुमसे यह सनातन वेदसमान सावित्रीकी कथा कही, हे भारत ! अब तू जिस बातको बूझना चाहता हो उस बातको मैं तुमसे कहूँगा ।८२।

एकसौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥ छ,

युधिष्ठिर उवाच । के पूज्याः के नमस्कार्याः कथं वर्तेत केषु च । किमाचारः कीदृशेषु पितामह न रिष्यते ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । ब्राह्मणानां परिभवः सादयेदपि देवताः । ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य युधिष्ठिर न रिष्यते ॥ २ ॥ ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेथास्तेषु पुत्रवत् । ते हि लोकानिमान् सर्वान् धारयन्ति मनीषिणः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणाः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः । धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ॥ ४ ॥ रमणीयाश्च भूतानां निधानं च धृतव्रताः । प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः ॥५॥ तपो येषां धनं नित्यं वाक् चैव विपुलं बलम् । प्रभवश्चैव धर्माणां धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ६ ॥ धर्मकामाः

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे पितामह ! कैसे ब्राह्मणोंकी पूजा होती है कैसे ब्राह्मणोंको प्रणाम करना चाहिये और कैसे ब्राह्मणोंके साथ किस प्रकारका वर्ताव करना चाहिये और कैसे ब्राह्मणोंके साथ किस प्रकारका वर्ताव करनेसे मनुष्यको हानि पहुँचती है ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे देवताओंको भी दुःखी होना पड़ता है, हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे मनुष्योंको हानि नहीं पहुँचती है ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये उनको प्रणाम करना चाहिये और उनके साथ पुत्रकी समान वर्ताव करना चाहिये, ये बुद्धिमान् ब्राह्मण सब लोकोंको धारण करते हैं ॥ ३ ॥ ये ब्राह्मण सब लोकोंके धर्मसेतु हैं, धनका त्याग करनेमें परायण रहते हैं और वाणीको नियममें रखनेमें परायण रहते हैं ॥४॥ प्राणिमात्रको रमणीय लगते हैं, सब जगत्के कारणरूप हैं, व्रतधारी हैं, सब लोकोंको और शास्त्रोंको रचने वाले हैं यशस्वी हैं ॥५॥ सदा तप करना ही उनका धन है, वाणी उनका महान् बल है, वे धर्मके उत्पत्तिस्थान हैं और धर्मको जानने वाले हैं,

स्थिता धर्मे सुकृतैर्धर्मसेतवः । यान् समाश्रित्य जीवन्ति प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥ ७ ॥ पन्थानः सर्वनेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः । पितृपैतामहीं गुर्वीमुद्वहन्ति धुरं सदा ॥ ८ ॥ धुरि ये नावसीदन्ति विषये सद्गवा इव । पितृदेवातिथिमुखा हव्यकव्याग्रभोजिनः ॥ ९ ॥ भोजनादेव लोकांस्त्रींस्त्रायन्ते महतो भयात् । दीपाः सर्वस्य लोकस्य चक्षुश्चक्षुष्मतामपि ॥१०॥ सर्वशिक्षाश्रुतिधना निपुणा मोक्षदर्शिनः। गतिज्ञाः सर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तकाः ॥११॥ आदिमध्यावसानानां ज्ञातारश्छिन्नसंशयाः । परावरविशेषज्ञा गन्तारः परमां गतिम् ॥ १२ ॥ विमुक्ता धूत-

सूक्ष्म-दृष्टिवाले हैं ॥६॥ धर्माचरण करना चाहते हैं, पुण्यकर्म करके धर्मको स्थिर करनेवाले हैं, धर्मके सेतुरूप हैं उनका आश्रय लेकर चार प्रकारकी (स्वेदज उद्भिज्ज जरायुज और अण्डज) सब प्रजा जीवित रहती है ।७। जो ब्राह्मण मार्गरूप हैं, सबके नेतारूप हैं, यज्ञ करनेवाले हैं, सनातनरूप हैं, पिता और पितामहसे चले आते हुए बड़े भारी भारको धारण करते हैं ॥ ८ ॥ जो विषम अवस्थामें ऊँचीनीची पृथ्वीमें चलनेवाले बैलोंकी समान दुःखी नहीं होते हैं, पितर देवता और अतिथियोंके मुखरूप होते हैं, यज्ञ और श्राद्धमें हव्य तथा कव्यका प्रथम भोजन करनेके पात्र हैं । ९ । क्योंकि-वे भोजन करते ही तीनों लोकों की महाभयसे रक्षा कर देते हैं और सब लोकोंके लिये दीपकों की समान हैं और नेत्रवालोंके भी नेत्ररूप हैं १० सबको उपदेश देने वाले हैं, वेदको धन मानते हैं, सब शास्त्रोंमें कुशल होते हैं, मोक्षको जानते हैं, सब प्रकारकी गतिको जानते हैं सब भूतोंकी आत्माकी गतिका विचार करते हैं ११ आदि मध्य और अन्त को जानते हैं, संशयरहित होते हैं, भूत और भविष्यत्को जानते हैं और परमगति मोक्षको जानते हैं १२ सब दुःखोंसे मुक्त हैं,

पाप्मानो निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः । मानार्हा मानिता नित्यं ज्ञानविद्भिर्महात्मभिः ॥ १३ ॥ चन्दने मलपंके च भोजनेऽभोजने समाः । समं येषां दुकूलञ्च तथा क्षौमाजिनानि च ॥ १४ ॥ तिष्ठेयुरप्यभुंजाना बहूनि दिवसान्यपि । शोषयेयुश्च गात्राणि स्वाध्यायैः संयतेन्द्रियाः ॥ १५ ॥ अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् । लोकानन्यान् सृजेयुस्ते लोकपालांश्च कोपिताः ॥१६॥ अपेयः सागरो येषामपि शापान्महात्मनाम् । येषां कोपाग्निरद्यापि दण्डकेनोपशाम्यति ॥ १७ ॥ देवानामपि ये देवाः कारणं कारणस्य च । प्रमाणस्य प्रमाणं च कस्तानभिभवेद्बुधः१८येषां वृद्धश्च बालश्च सर्वः संमानमर्हति । तपोविद्याविशेषात्तु मानयन्ति परस्परम् ॥ १९ ॥ अविद्वान् ब्राह्मणो देवः पात्रं वै पावनं महत्

पापरहित हैं, सुख और दुःखरहित हैं परिग्रहका त्याग करने वाले हैं, मान देने योग्य हैं उनको ज्ञानी महात्मा सदा मान देते हैं १३ चन्दनको मलकी कींचको तथा भोजनको और उपवासको एकसा समझते हैं, दुपट्टोंको रेशमी वस्त्रोंको और मृगचर्मको एकसा समझते हैं १४ बहुत दिनों तक भोजन नहीं करते हैं, स्वाध्याय करके अपने शरीरको सुखा डालते हैं और इन्द्रियोंको नियममें रखते हैं १५ जो देवता नहीं होता है उसको देवता बना देते हैं और देवताको देवत्वसे भ्रष्ट कर सकते हैं, वे यदि कोपायमान हो जाँय तो दूसरे देवताओंको और लोकपालोंको भी रच सकते हैं १६ जिन महात्माओंके शापसे सागर भी अपेय होगया है और जिन ब्राह्मणोंकी कोपाग्नि दण्डकारण्यमें अभी तक प्रज्वलित होरही है १७ जो ब्राह्मण देवताओंके भी देवता हैं और कारणोंके भी कारणरूप हैं और प्रमाणके भी प्रमाणरूप हैं उन विद्वान् ब्राह्मणोंका कौन पुरुष पराभव कर सकता है १८ जो बालक वृद्ध इन सबके सन्मानके पात्र हैं औरजो तप तथा विद्या

विद्वान् भूयस्तरो देवः पूर्णसागरसन्निभः ॥ २० ॥ अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् । प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्नि-दैवतं महत् ॥२१॥ श्मशाने ह्यपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति । हविर्यज्ञे च विधिवद्‌ गृह एवातिशोभते ॥ २२ ॥ एवं यद्यप्य-निष्टेषु वर्तते सर्वकर्मसु । सर्वथा ब्राह्मणो मान्यो दैवतं विद्धि तत् परम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्राह्मणप्रशंसायां एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

युधिष्ठिर उवाच । कां तु ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा जनाधिप । कं वा कर्मोदयं मत्वा तानर्चसि महामते ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पवनस्य च

की वृद्धिको देख कर सबका परस्पर मान करते हैं। १९। मूर्ख ब्राह्मण भी देवताकी समान माना जाता है तथा पवित्र करने वाला महान् पात्र माना जाता है तो फिर विद्वान् ब्राह्मण तो विशेष उत्तम देवता और पूर्ण समुद्रकी समान ही होगा ।२०। जैसे अग्नि होत्रका अग्नि और लौकिक (चूल्हेका) अग्नि भी महान् देवता माना जाता है, इसी प्रकार पढ़ा हुआ ब्राह्मण और मूर्ख ब्राह्मण ये दोनों उत्तम देवता हैं २१ तेजस्वी अग्नि श्मशानमें होता है, तब भी उसको दोष नहीं लगता है, परन्तु हविर्यज्ञमें तथा घरमें ही विधिपूर्वक पूजित अग्नि विशेष शोभा पाता है २२ इसी प्रकार जो ब्राह्मण हलका काम करता हो उसका भी सर्वथा सत्कार करना चाहिये और उसको भी तू उत्तम देवता जान ।२३। एक सौ इक्यानवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५१ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे महामति राजन् ! तुम ब्राह्मणपूजामें किस फलको देख कर अथवा किस कर्मका उदय मान कर ब्राह्मणोंकी पूजा करते हो ? ॥ १ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे

संवादमर्जुनस्य च भारत ॥२॥ सहस्रभुजभृच्छ्रीमान् कार्तवीर्यो-
ऽभवत् प्रभुः । अस्य लोकस्य सर्वस्य माहिष्मत्यां महाबलः ॥३॥
स तु रत्नाकरवतीं सद्वीपां सागराम्बराम् । शशास पृथिवीं सर्वां
हैहयः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥ स्ववित्तं तेन दत्तं तु दत्तात्रेयाय
कारणे । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य विनयं श्रुतमेव च ॥ ५ ॥ आराध-
यामास च तं कृतवीर्यात्मजो मुनिम् । न्यमन्त्रयत संतुष्टो द्विज-
श्चैनं वरैस्त्रिभिः ॥६॥ स वरैश्छन्दितस्तेन नृपो वचनमब्रवीत् ।
सहस्रबाहुर्भूयां वै चमूमध्ये गृहेऽन्यथा ॥ ७ ॥ मम बाहुसहस्रं
तु पश्यन्तां सैनिका रणे । विक्रमेण महीं कृत्स्नां जयेयं संशित-
व्रत ॥ ८ ॥ तां च धर्मेण संप्राप्य पालयेयमतंद्रितः । चतुर्थं तु
वरं याचे त्वामहं द्विजसत्तम ॥ ९ ॥ तं ममानुग्रहकृते दातुमर्हस्य-

भरतवंशी राजन् ! इस विषयमें पवन और अर्जुनके सम्बादरूप
इस प्राचीन इतिहासका इस प्रकार उदाहरण देते हैं, कि-सब
लोकोंका राजा श्रीमान् कार्तवीर्य सहस्र भुजाओं वाला था, वह
महाबलवान् था और माहिष्मती नगरीमें राज्य करता था २-३
हैहयवंशमें उत्पन्न हुआ वह राजा सत्यपराक्रमी था और सा-
गररूप वस्त्रसे आच्छादित और रत्नोंके समूह वाली द्वीपोंवाली
पृथ्वी पर राज्य करता था ॥ ४ ॥ कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्यने
क्षत्रियधर्म विनय और शास्त्राभ्यासका अनुसरण कर अपना
सब धन दत्तात्रेयके अर्पण कर दिया ॥ ५ ॥ और मुनि दत्ता-
त्रेयकी सेवा करने लगा, तब दत्तात्रेय उस पर प्रसन्न हुए और
उससे तीन वर माँगनेके लिये कहा तब राजा कार्तवीर्य बोला,
कि-मैं इस घरमें दो हाथ वाला रहूँ परन्तु सेनामें मेरे सहस्र
हाथ होजाँय ॥ ७ ॥ रणमें सैनिक मेरे सहस्र हाथोंको देखें
और हे प्रशंसितव्रत । मैं पराक्रम करके सम्पूर्ण पृथवीको जीत
लूँ ॥८॥ मैं धर्मपूर्वक पृथिवीको प्राप्त कर तन्द्रारहित हो पृथिवी

निंदित । अनुशासन्तु मां सन्तो मिथ्योद्वृत्तं त्वदाश्रयम् ॥ १० ॥
इत्युक्तः स द्विजः प्राह तथास्त्विति नराधिपम् । एवं समभवंस्तस्य
वरास्ते दीप्ततेजसः ॥ ११ ॥ ततः स रथमास्थाय ज्वलनार्कसम-
द्युतिम् । अब्रवीद्वीर्यसंमोहात् को वास्ति सदृशो मम ॥ १२ ॥
धैर्यैर्वीर्यैर्यशःशौर्यैर्विक्रमेणौजसापि वा । तद्वाक्यांते चान्त-
रिक्षे वागुवाचाऽशरीरिणी॥१३॥ न त्वं मूढ विजानीषे ब्राह्मणं
क्षत्रियाद्वरम् । सहितो ब्राह्मणेनेह क्षत्रियः शास्ति वै प्रजाः॥१४
अर्जुन उवाच । कुर्यां भूतानि तुष्टोऽहं क्रुद्धो नाशं तथा नये ।
कर्मणा मनसा वाचा न मत्तोऽस्ति वरो द्विजः ॥ १५ ॥ पूर्वो
ब्रह्मोत्तरो वादो द्वितीयः क्षत्रियोत्तरः । त्वयोक्तौ हेतुयुक्तौ तौ

का पालन करूँ, यह चौथा वर मैं आपसे माँगता हूँ ॥ ९ ॥
हे निर्दोष ! यह वर मेरे ऊपर कृपा करके आप मुझे दीजिये,
आपके आश्रयमें रहनेवाला मैं यदि उद्धततासे वर्ताव करूँ तो
सत्पुरुष मुझे दण्ड दें ॥ १० ॥ जब उसने इस प्रकार कहा तब
उस ब्राह्मणने नराधिपसे कहा, कि-'तथास्तु' और उस
प्रदीप्त तेजवाले राजाको ब्राह्मणने वर दिये ॥ ११ ॥ तब कार्त-
वीर्य अग्नि और सूर्यकी समान कान्तिमान् रथमें बैठकर अपने
पराक्रमके कारण मोहमें भर कर कहने लगा, कि-मेरी समान
कौन है ॥ १२ ॥ धैर्यमें वीरतामें यशमें और शूरतामें और
पराक्रममें मुझसे श्रेष्ठ कौन है ? यह कहने पर आकाशवाणी
हुई, कि-॥ १३ ॥ 'हे मूढ ! तुझे खबर नहीं है, कि-क्षत्रियों
से भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, क्षत्रिय ब्राह्मणकी सहायता लेकर इस
लोकमें प्रजाका पालन करते हैं ॥ १४ ॥ अर्जुनने कहा, कि-
मैं प्रसन्न होने पर प्राणियोंको उत्पन्न कर सकता हूँ और
कुपित होने पर प्राणियोंका नाश भी कर सकता हूँ, मैं मनसा
वाचा कर्मणा श्रेष्ठ हूँ, ब्राह्मण मुझसे श्रेष्ठ नहीं है ॥१५॥ एक

विशेषस्तत्र दृश्यते ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाः संश्रिताः क्षत्रं नक्षत्रं ब्राह्मणाश्रितम् । श्रिता ब्रह्मोपधा विप्राः खादन्ति क्षत्रियान् भुवि ॥१७॥ क्षत्रियेष्वाश्रितो धर्मः प्रजानां परिपालनम् । क्षत्राद् वृत्तिर्ब्राह्मणानां तैः कथं ब्राह्मणो वरः ॥ १८ ॥ सर्वभूतप्रधानांस्तान् भैक्षवृत्तीनहं सदा । आत्मसंभावितान् विप्रान् स्थापयाम्यात्मनो वशे ॥ १६ ॥ कथितं त्वनयाऽसत्यं गायत्र्या कन्यया दिवि । विजेष्याम्यवशान् सर्वान् ब्राह्मणांश्चर्मवाससः ॥ २० ॥ न च मां च्यावयेद्राष्ट्रात्त्रिषु लोकेषु कश्चन । देवो वा मानुषो वापि तस्माज्ज्येष्ठो द्विजादहम् ॥२१॥अद्य ब्रह्मोत्तरं लोकं करिष्ये

पक्ष है, कि-ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और दूसरा पक्ष है,कि क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं, दोनोंका जोड़ा श्रेष्ठ है, परन्तु कार्तवीर्य एक विशेष अपवाद है ॥ १६ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियोंका आश्रय करके रहते हैं, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मणोंका आश्रय करके नहीं रहते हैं, ब्राह्मण अध्ययनरूपी और यजनरूपी कपटसे इस पृथिवी पर क्षत्रियोंका आश्रय करके अपनी आजीविका चलाते हैं॥१७॥धर्म क्षत्रियोंके आश्रयसे वर्तमान है और क्षत्रिय प्रजाका पालन करते हैं ब्राह्मण क्षत्रियोंसे आजीविका चलाते हैं, तो फिर ब्राह्मण क्षत्रियोंसे उत्तम किस प्रकार होसकते हैं ॥ १८ ॥ सब प्राणियोंमें मुख्य माने जाने वाले भिक्षा माँगकर आजीविका चलाने वाले और स्वयं ही अपनेको उत्तम माननेवाले ब्राह्मणोंको मैं अपने अधीन रक्खूँगा ॥१६॥ आकाशमेंसे कन्या गायत्रीने (ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ हैं) यह असत्य बात कही है, मैं वशमें न चलने वाले और मृगचर्म ओढने वाले सब ब्राह्मणोंको वशमें करलूँगा २० तीनों लोकोंमें कोई भी देवता या कोई भी मनुष्य मुझे मेरे स्थानसे भ्रष्ट नहीं कर सकता, अतः मैं ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ हूँ २१ आज तक जगत्में ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते हैं, परन्तु अब मैं उस

क्षत्रियोत्तरम् । न हि मे संयुगे कश्चित् सोढुमुत्सहते बलम् ।२२।
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा वित्रस्ताभून्निशाचरी । अथैनमन्तरिक्षस्थ-
स्ततो वायुरभाषत ॥ २३ ॥ त्यजैनं कलुषं भावं ब्राह्मणेभ्यो
नमस्कुरु । एतेषां कुर्वतः पापं राष्ट्रक्षोभो भविष्यति ॥ २४ ॥
अथवा त्वां महीपाल शमयिष्यन्ति वै द्विजाः । निरसिष्यन्ति ते
राष्ट्राद्धतोत्साहा महाबलाः॥२५॥ तं राजा कस्त्वमित्याह ततस्तं
प्राह मारुतः । वायुर्वै देवदूतोऽस्मि हितं त्वां प्रब्रवीम्यहम् ।२६।
अर्जुन उवाच । अहो त्वयायं विप्रेषु भक्तिरागः प्रदर्शितः ।
यादृशं पृथिवीभूतं तादृशं ब्रूहि मे द्विजम् ॥ २७ ॥ वायोर्वा सदृशं

के बदले क्षत्रियोंको श्रेष्ठ करूँगा,कोई भी पुरुष युद्धमें मेरे बलको नहीं सह सकता ॥ २२ ॥ अर्जुनकी वाणीको सुनकर आकाश-वाणीको त्रास हुआ तब दूसरोंको त्रास हो तो आश्चर्य ही क्या है ? कार्तवीर्यकी बातको सुनकर अन्तरिक्षमें खड़े हुए वायुने कहा, कि--॥२३॥ तू इस दूषित भावको त्याग दे और ब्राह्मणों को नमस्कार कर, इनके साथ एव लाने पर तेरे राष्ट्रमें क्षोभ फैल जावेगा ॥ २४ ॥ अथवा हे महीपाल ! ब्राह्मण तुझे शांत (नष्ट) कर देंगे अथवा वे उत्साही और महाबली तुझे राज्यसे निकाल देंगे ॥ २५ ॥ राजाने उससे बूझा, कि–तू कौन है ? तब वायुने उससे कहा कि-मैं देवताओंका दूत वायु हूँ और तेरे हितकी बात कहरहा हूँ ॥ २६ ॥ अर्जुनने कहा, कि–ओ हो ! यह तुम ब्राह्मणोंमें भक्ति रखते हो, इसलिये तुमने ऐसा कहा है,परन्तु बताओ तो सही पृथिवी भूतकी समान कौनसा ब्राह्मण है ॥ २७ ॥ और वायुकी समान कोई उत्तम ब्राह्मण तुमको प्रतीत हो तो बताओ, अथवा जल, अग्नि, सूर्य वा आकाशकी

किंचिद्ब्रूहि त्वं ब्राह्मणोत्तमम् । अपां वै सदृशं वन्हेः सूर्यस्य नभसोऽपि वा ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे ब्राह्मणमाहात्म्ये द्विपञ्चशदधिकशततमोऽध्यायः

वायुरुवाच । शृणु मूढ गुणान् कांश्चिद्ब्राह्मणानां महात्मनाम् । ये त्वया कीर्तिता राजंस्तेभ्योऽथ ब्राह्मणो वरः ॥ १ ॥ त्यक्त्वा महीत्वं भूमिस्तु स्पर्धयांगनृपस्य ह । नाशं जगाम तां विप्रो व्यस्तंभयत कश्यपः ॥ २ ॥ अजेया ब्राह्मणा राजन् दिवि चेह च नित्यदा । अपिबत्तेजसा ह्यापः स्वयमेवांगिराः पुरा ॥ ३ ॥ स ताः पिबन् क्षीरमिव नातृप्यत महामनाः । अपूरयन्महौघेन महीं सर्वां च पार्थिव ॥४॥ तस्मिन्नहं च क्रुद्धे वै जगत् त्यक्त्वा

समान कोई ब्राह्मण हो तो मुझे बतलाओ ॥ २८ ॥ एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥

वायुने कहा, कि–ओ मूढ़ ! महात्मा ब्राह्मणोंके बहुतसे गुणोंका मैं तुझसे वर्णन करता हूँ, तू उनको सुन, हे राजन् ! तूने जिनका नाम लिया है ब्राह्मण उनसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥ राजा अंगसे स्पर्धा (वहस) होजानेके कारण पृथिवी पृथिवीत्व को त्याग कर भाग गई थी, उस समय कश्यप नामक ब्राह्मणने पृथिवी (का रूप धारण कर उस) को टिका कर उसको स्तंभित कर दिया था ॥ २ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मण पृथिवी पर और स्वर्गमें सदा अजित ही रहते हैं; पहिले अङ्गिरा ऋषिने अपने तेजसे जलको पीलिया था ॥ ३ ॥ महामनस्वी अङ्गिरा ऋषि दूधकी समान जलको पीकर भी तृप्त न हुए तब उन्होंने जलके महाप्रवाहसे सारी पृथिवीको भर दिया था ॥ ४ ॥ और एक समय अङ्गिरा मुझ पर कुपित हुए थे तब मैं इस जगत्को त्याग कर भाग गया था और मैं अङ्गिराके भयसे बहुत समय तक

ततो गतः । व्यतिष्ठमग्निहोत्रे च चिरमंगिरसो भयात् ॥ ५ ॥ अथ शप्तश्च भगवान् गौतमेन पुरन्दरः । अहल्यां कामयानो वै धर्मार्थं च न हिंसितः ॥ ६ ॥ तथा समुद्रो नृपते पूर्णो मृष्टस्य वारिणः । ब्राह्मणैरभिशप्तश्च बभूव लवणोदकः ॥७॥ सुवर्णवर्णो निर्धूमः संगतोर्ध्वशिखः कविः । क्रुद्धेनांगिरसा शप्तो गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ ८ ॥ महतश्चूर्णितान् पश्य येहारुंत महोदधिम् । सुवर्णधारिणा नित्यमवशप्ता द्विजातिना ॥ ९ ॥ समो न त्वं द्विजातिभ्यः श्रेयो विद्धि नराधिप । गर्भस्थान् ब्राह्मणान् सम्यङ् नमस्यति किल प्रभुः ॥ १० ॥ दण्डकानां महद्राज्यं ब्राह्मणेन विनाशितम् । तालजंघं महाक्षत्रमौर्वेणैकेन नाशितम् ॥ ११ ॥ त्वया च विपुलं राज्यं बलं धर्मं श्रुतं तथा । दत्तात्रेयप्रसादेन

(ब्राह्मणोंके) अग्निहोत्रमें निवास करके रहा था ॥५॥ और भगवान् गौतमने अहल्या पर आसक्त हुए इन्द्रको शाप दिया था, परन्तु धर्मके लिये उसकी हिंसा नहीं की थी ॥ ६ ॥ और हे राजन् ! पहिले समुद्र मीठे जलसे भरा हुआ था ब्राह्मणोंने शाप देकर उसको खारी बना दिया है । ७ । कवि (अग्नि) के शरीरका वर्ण सुनहरी रङ्गका था और धूमरहित था और उसकी शिखा ऊपरको प्रज्वलित होती थी, उसको एक समय अङ्गिराने कोपमें भरकर शाप दिया तब वह अपने गुणोंसे रहित होगया । ८ । सुवर्ण (अच्छे वर्ण अर्थात् ब्राह्मण वर्णवाले) महात्मा कपिलने समुद्रतट पर आये हुए सगरके पुत्रोंको शाप देदिया था तो वह जल कर भस्म होगए थे ॥ ९ ॥ हे राजन्! तू ब्राह्मणोंकी समान नहीं है, अतः तू अपना कल्याण कर ! राजा तो गर्भस्थ ब्राह्मणोंको भी प्रणाम करता है ॥ १० ॥ दण्डकोंके बड़े भारी राज्यको ब्राह्मणोंने नष्ट कर दिया था और नामक ब्राह्मणने तालजंघ नामवाले बडे भारी क्षत्रिय राजाको

प्राप्तं परमदुर्लभम् ॥ १२ ॥ अग्निं त्वं यजसे नित्यं कस्माद्ब्रा-
ह्मणमर्जुन । स हि सर्वस्य लोकस्य हव्यवाट् किं न वेत्सि तम् १३
अथवा ब्राह्मणश्रेष्ठमनुभूतानुपालकम् । कर्तारं जीवलोकस्य
कस्माज्जानन् विमुह्यसे ॥ १४ ॥ तथा प्रजापतिर्ब्रह्मा अव्यक्तः
प्रभुरव्ययः । येनेदं निखिलं विश्वं जनितं स्थावरं चरम् ॥१५॥
अण्डजातं तु ब्रह्माणं केचिदिच्छंत्यपण्डिताः। अण्डाद्भिन्नाद्बभुः
शैला दिशोंभः पृथिवी दिवम् ॥ १६ ॥ द्रष्टव्यं नैतदेवं हि कथं
जायेदजो हि सः। स्मृतमाकाशमण्डं तु तस्माज्जातः पितामहः १७

नष्ट कर डाला था ॥११॥ तूने भी यह बड़ा भारी राज्य सेना धर्म और शास्त्राध्ययन आदि परम दुर्लभ वस्तुएँ दत्तात्रेयकी कृपासे पाई हैं ॥ १२ ॥ और हे अर्जुन ! तू ब्राह्मण-अग्निकी पूजा क्यों करता है,सब जगत्के हव्यको ग्रहण करनेवाले (देव-ताओंमें ब्राह्मण) अग्निको क्या तू नहीं जानता है ॥ १३ ॥ विप्र सर्वश्रेष्ठ हैं और भूतमात्रका पोषण करते हैं और जीवलोक के कर्त्ता हैं,इस बातको जानने पर भी तू क्यों भूल कर रहा है१४ इसी प्रकार ये ब्राह्मण प्रजापति हैं, ब्रह्मा हैं, अव्यक्त हैं, प्रभु हैं, विकाररहित हैं, यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् इनका ही रचा हुआ है ॥ १५ ॥ कितने ही अपण्डित पुरुष कहते हैं, कि—ब्रह्माजी अण्डेमेंसे उत्पन्न हुए हैं और अण्डेके टुकड़े होने पर उसमेंसे पर्वत दिशाएँ जल पृथिवी और आकाश उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ परन्तु जगत्की उत्पत्तिके समय किसीने यह बात नहीं देखी है क्योंकि—ब्रह्मा तो अजन्मा हैं, वह अण्डेमेंसे किस प्रकार उत्पन्न होसकते हैं (यहाँ अंड शब्दका अर्थ किसीका उत्पन्न न किया हुआ महाकाश लेना चाहिये, उसमेंसे ही पितामहका जन्म हुआ था, इसी प्रकार अण्ड शब्दका अर्थ निर्गुण ब्रह्म लेना चाहिये, पिता-

तिष्ठेत् कथमिति ब्रूहि न किंचिद्धि तदा भवेत्। अहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोगतः प्रभुः ॥ १८ ॥ नास्त्यण्डमस्ति तु ब्रह्मा स राजा लोकभावनः। इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत्
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिकेपर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

वायुरुवाच। इमां भूमिं द्विजातिभ्यो दित्सुर्वै दक्षिणां पुरा। अङ्गो नाम नृपो राजंस्ततश्चिन्तां मही ययौ ॥ १ ॥ धारिणीं सर्वभूतानामयं प्राप्य वरो नृपः। कथमिच्छति मां दातुं द्विजेभ्यो ब्रह्मणः सुताम् ॥२॥ साहं त्यक्त्वा गमिष्यामि भूमित्वं ब्रह्मणः

मह उस निर्गुण ब्रह्ममेंसे उत्पन्न हुए हैं) ॥ १७ ॥ तू कहेगा, कि-आकाशमेंसे उत्पन्न हुए ब्रह्मा किसप्रकार रहे थे (अर्थात् पितामहके निरधिष्ठान होनेसे उनसे उत्पन्न हुआ यह सब जगत् भी शून्य होना चाहिये क्योंकि-उस समय तहाँ कुछ भी नहीं था, तो इसका उत्तर यह है,कि)-वह अहंकार नामक तत्त्वमें रहे थे,वह अहंकार नामक तत्त्व बलवान् है और सर्वतेजोरूप है।१८ अत एव अण्ड कुछ नहीं है (वह तो रज्जूरगकी कल्पनामात्र है) उसका रचयिता तो ब्रह्मा (ब्राह्मण) है, वायुकी इस बातको सुनकर राजा कार्तवीर्य मौन होगया तब वायु फिर कहने लगा ॥ १९ ॥ एकसौ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥

वायुने कहा, कि-हे राजन् ! पहिले अङ्ग नामक राजाने यह भूमि ब्राह्मणोंको दान देनी चाही थी तब पृथ्वीके मनमें चिन्ता होने लगी और वह अपने मनमें कहने लगी, कि-॥ १ ॥ यह श्रेष्ठ राजा मुझ सब प्राणियोंको धारण करनेवालीको पाकर भी मुझ ब्रह्माकी पुत्रीको ब्राह्मणोंको क्यों देना चाहता है ॥ २ ॥ (यदि वह ऐसा करेगा तो) मैं भूमित्वको त्यागकर (अपने पिताके लोक) ब्रह्मलोकमें चली जाऊँगी, तब यह राजा भले

पदम् । अयं सराष्ट्रो नृपतिर्मा भूदिति ततोऽगमत् ॥ ३॥ ततस्तां कश्यपो दृष्ट्वा व्रजन्तीं पृथिवीं तदा । प्रविवेश महीं सद्यो मुक्त्वात्मानं समाहितः ॥ ४ ॥ ऋद्धा सा सर्वतो जज्ञे तृणौषधिसमन्विता । धर्मोत्तरा नष्टभया भूमिरासीत्ततो नृप॥ ५ ॥ एवं वर्षसहस्राणि दिव्यानि विपुलव्रतः । त्रिंशतः कश्यपो राजन् भूमिरासीदतंद्रितः ॥ ६ ॥ अथागम्य महाराज नमस्कृत्य च कश्यपम् । पृथिवी काश्यपी जज्ञे सुता तस्य महात्मनः ॥ ७ ॥ एष राजन्नीदृशो वै ब्राह्मणः कश्यपोऽभवत् । अन्यं प्रब्रूहि वा त्वं च कश्यपात् क्षत्रियं वरम् ॥ ८ ॥ तूष्णीं बभूव नृपतिः पवनस्त्वब्रवीत् पुनः । शृणु राजन्नुतथ्यस्य जातस्यांगिरसे कुले ॥ ९ ॥ भद्रा सोमस्य दुहिता रूपेण परमा मता।तस्यास्तुल्यं पतिं सोम-

---

ही देशरहित होजाय, यह विचारकर चलने लगी ३ कश्यपने भूमिको जाती हुई देखकर समाधि लगा कर अपने शरीरको त्याग दिया और पृथ्वीके शरीरमें घुस गए ॥ ४ ॥ तब पृथ्वी पर तृण औषधि आदि उग निकले और सारी पृथिवी समृद्धिमयी होगई और हे राजन् ! अपने धर्मके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें गई हुई पृथिवीका भय भी नष्ट होगया हे राजन् ! महाव्रतधारी कश्यप इसप्रकार सावधान होकर देवताओंके तीस सहस्र वर्ष तक पृथिवीका रूप धारण करके रहे थे ॥६॥ तदनन्तर हे महाराज ! पृथिवी कश्यपजीके पास आई और उनको प्रणाम करके उन महात्माकी काश्यपी नामकी पुत्री होकर उत्पन्न होगई॥७॥ हे राजन् ! कश्यप ब्राह्मण ऐसे थे, यदि कोई क्षत्रिय कश्यपसे भी श्रेष्ठ हो तो तू मुझे बता ॥ ८ ॥ यह सुनकर कार्तवीर्य चुप होगया तब पवनने फिर कहा,कि हे राजन् ! तू अङ्गिराके कुलमें उत्पन्न हुए उतथ्यकी कथा सुन ॥९॥ सोमके एक भद्रा नामकी पुत्री थी, वह अतिरूपवती मानीजाती थीं, सोमने उस कन्याकी

उतथ्यं समपश्यत ॥१०॥ सा च तीव्रं तपस्तेपे महाभागा यशस्विनी । उतथ्यार्थे तु चार्वंगी परं नियममास्थिता ॥ ११ ॥ ततः आहूय सोतथ्यं ददावत्रिर्यशस्विनीम् । भार्यार्थे स च जग्राह विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२ ॥ तां त्वकामयत श्रीमान् वरुणः पूर्वमेव ह । स चागम्य वनप्रस्थं यमुनायां जहार ताम् ॥ १३ ॥ जलेश्वरस्तु हृत्वा तामनयत् स्वं पुरं प्रति । परमाद्भुतसंकाशं षट्सहस्रशतह्रदम् ॥ १४ ॥ न हि रम्यतरं किंचित्तस्मादन्यत् पुरोत्तमम् । प्रासादैरप्सरोभिश्च दिव्यैः कामैश्च शोभितम् ॥ १५ ॥ तत्र देवस्तया सार्धं रेमे राजन् जलेश्वरः । अथाख्यातमुतथ्याय ततः पत्न्यवमर्दनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदात् सर्वमुतथ्यो नारदं

समान ही रूपवान् और गुणवान् उतथ्यको वररूपसे स्वीकृत किया ॥१०॥ महाभाग्यशालिनी यशस्विनी सुन्दराङ्गी सोमकी पुत्रीने भी नियम धारण करके उतथ्यकी विवाहनेके लिये तीव्र तप आरम्भ किया था ॥ ११ ॥ कुछ समय पीछे सोमके पिता अत्रिने उतथ्यको घर बुलाया और अपनी यशस्विनी पुत्रीको उसके साथ विवाह दिया और बड़ी२ दक्षिणावाले उतथ्यने भी भार्या बनानेके लिये विधिविधानसे उसे ग्रहण करलिया ॥१२॥ परन्तु श्रीमान् वरुण प्रथमसे ही उस कन्या पर आसक्त था, एक समय वह मुनि वनमें गये थे उस समय वरुण आया और यमुनाके तट परसे भद्राको हरलिया ॥ १३ ॥ फिर जलेश्वर उसको अपने परम आश्चर्यजनक लोकमें लेगया, उस लोक(नगर) में छः लाख पानीके झरने शोभा पारहे थे ॥ १४ ॥ कोई भी नगर उस नगरकी अपेक्षा अधिक रमणीय नहीं है, वह नगर बड़ी२हवेलियोंसे अप्सराओंसे तथा दिव्य वैभवोंसे शोभा पारहा था ॥ १५ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर जलका राजा वरुण उस नगरमें उस स्त्रीके साथ रमण करने लगा, तदनन्तर अपनी

तदा । मोक्षाय गच्छ ब्रूहि त्वं वरुणं परुषं वचः ॥ १७ ॥ मद्वाक्यान्मुंच मे भार्यां कस्मात्तां हृतवानसि। लोकपालोऽसि लोकानां न लोकस्य विलोपकः ॥१८॥ सोमेन दत्ता भार्या मे त्वया चापहृताद्य वै । इत्युक्तो वचनात्तस्य नारदेन जलेश्वरः ॥१९॥ मुञ्च भार्यामुतथ्यस्य कस्मात्त्वं हृतवानसि । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सोऽथ तं वरुणोऽब्रवीत् ॥ २० ॥ ममैषा सुप्रिया भार्या नैनामुत्स्रष्टुमुत्सहे । इत्युक्तो वरुणेनाथ नारदः प्राप्य तं मुनिम् । उतथ्यमब्रवीद्वाक्यं नातिहृष्टमना इव ॥ २१ ॥ गले गृहीत्वा क्षिप्तोऽस्मि वरुणेन महामुने । न प्रयच्छति ते भार्यां यत्ते कार्यं कुरुष्व तत्२२

पत्नीके अपमर्दनकी बात उतथ्यको प्रतीत हुई ॥ १६ ॥ तब उतथ्य नारदजीके पास जा अपनी स्त्रीके शीलकी बात सुन नारदजीसे कहनेलगा, कि-तुम वरुणजीके पास जाओ और उससे तीक्ष्ण वचन कहो ॥ १७ ॥ मेरे कहनेसे आप उससे कहिये, कि-वह मेरी स्त्रीको छोड़ दे,तुम मेरी स्त्रीको हरकर क्यों लेगया है तू तो लोकोंका पालन करने वाला है,कोई उसका नाश करने वाला नहीं है ॥१८॥ जिस भद्राको तू हरकर लेगया है उसको सोमने मुझे भार्यारूपसे विवाह दिया है, उतथ्यके यह वचन नारदजीने वरुणसे कहे ॥ १९ ॥ और कहा, कि- तू उतथ्यकी भार्याको छोड़ दे; उसको तू क्यों हरलाया है, नारदजीकी बात सुनकर वरुणने उससे कहा, कि-॥२०॥ यह तो मेरी अतिप्रिय भार्या है मैं इस स्त्रीको त्यागना नहीं चाहता इसप्रकार वरुणने कहा, तब नारदजी उन ऋषिके पास आये और खिन्न मनसे उतथ्यसे वरुणकी बात कही ॥ २१ ॥ और कहा,कि हे महामुने ! वरुणने मेरी गर्दन पकड़कर मुझको निकाल दिया और और वह तेरी भार्याको लौटालना नहीं चाहता, अतः अब जो तू करना चाहता हो सो कर ॥ २२ ॥ नारदजीकी बात सुनकर

नारदस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धः प्राज्वलदङ्गिराः । अपिबत्तेजसा वारि विष्टभ्य सुमहातपाः ॥२३॥ पीयमाने तु सर्वस्मिंस्तोयेऽपि सलिलेश्वरः । सुहृद्भिर्भिद्यमानोऽपि नैवामुञ्चतता तदा ॥२४॥ ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्द भूमिमुतथ्यो ब्राह्मणोत्तमः । दर्शयस्व स्थलं भद्रे षट्सहस्रशतह्रदम् ॥२५॥ ततस्तदीरिणं जातं समुद्रस्यावसर्पतः । तस्माद्देशान्नदीं चैव प्रोवाचासौ द्विजोत्तमः । अदृश्यागच्छ भीरु त्वं सरस्वति मरून् प्रति । अपुण्य एष भवतु देशस्त्यक्तस्त्वया शुभे ॥ २७ ॥ तस्मिन् संशोषिते देशे भद्रामादाय वारिपः । अददाच्छरणं गत्वा भार्यामांगिरसाय वै ॥ २८ ॥ प्रतिगृह्य तु तां भार्यामुतथ्यः सुमनाभवत् । मुमोच च जगद्द दुःखाद्वरुणं चैव हैहय ॥ २९ ॥ ततः स लब्ध्वा तां भार्यां वरुणं प्राह धर्मवित् ।

अंगिराका पुत्र उतथ्य क्रोधसे तमतमा उठा और वह महातपस्वी अपने प्रभावसे समुद्रके जलको स्तम्भित करके उसको पीगया २३ उतथ्य इसप्रकार समुद्रका सब जल पीगया तब स्नेहियोंने जलेश्वर वरुणसे बारम्बार प्रार्थना की (तब भी उसने उतथ्यकी भार्या लौटाकर नहीं दी) ॥ २४॥ तब ब्राह्मणोत्तम उतथ्यने पृथिवीसे क्रोधपूर्वक कहा कि-तू मुझे छःलाख झरनेवाला वरुणका नगर दिखा ॥ २५ ॥ उतथ्यके कहते ही समुद्र तहाँसे दूरको हटगया और सपाट पृथिवी होगई, तब उस देशमें वर्तमान सरस्वती नदीसे द्विजोत्तम उतथ्यने कहा,कि-॥ २६ ॥ हे भीरु सरस्वती नदि ! तू इस स्थानमेंसे अदृश्य होकर मरुभूमिमें चली जा, हे कल्याणि !यह देश तेरे त्यागने पर अपुण्य होजाय ? ॥२७॥ उतथ्यने वरुणके देशमेंसे जलको सोख लिया तब वरुण भद्रा को लेकर उतथ्यकी शरणमें आया और उसको उसकी भार्या सौंप दी ॥ २८ ॥ उतथ्य अपनी स्त्रीसे मिलकर मनमें प्रसन्न हुआ और हे राजन् ! राजा वरुणको और जगत्को दुःखसे

उतथ्यः सुमहातेजा यत्तच्छृणु नराधिप॥ ३० ॥ मयैषा तपसा प्राप्ता क्रोशतस्ते जलाधिप । इत्युक्त्वा तामुपादाय स्वमेव भवनं ययौ ॥ ३१ ॥ एष राजन्नीदृशो वै उतथ्यो ब्राह्मणर्षभः । ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमुतथ्यात् क्षत्रियं वरम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादो नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४

भीष्म उवाच । इत्युक्तः स नृपस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् । शृणु राजन्नगस्त्यस्य माहात्म्यं ब्राह्मणस्य ह ॥ १ ॥ असुरैर्निर्जिता देवा निरुत्साहाश्च ते कृताः । यज्ञाश्चैषां हृताः सर्वे पितृणां च स्वधास्तथा ॥ २ ॥ कर्मेज्या मानवानां च दानवैर्हैहयर्षभ ।

छुटा दिया ॥ २६ ॥ हे नराधिप ! धर्मवेत्ता और महातेजस्वी उतथ्यने अपनी भार्याको प्राप्त करनेके अनन्तर वरुणसे जो बात कही थी उसको तू ध्यान देकर सुन ॥३०॥ हे जलके राजन् ! तू दुन्द मचाता रहा और मैंने इस स्त्रीको तपसे पालिया "यह कह वह अपनी स्त्रीको अपने घर लेगया ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उतथ्य नामक ब्राह्मण ऐसा प्रतापी था, यह बात मैं तुझसे कहता हूँ, तुझे कोई क्षत्रिय उतथ्यसे उत्तम मालूम हो तो मुझे बता (यह तपस्वी पुरुषोंके चरित्र हैं साधारण पुरुषोंको इनका अनुकरण न करना चाहिये)। ३२ ॥ एकसौ चौअनवाँ अध्याय समाप्त॥ १५४ ॥

भीष्मजीने कहा, कि-इसप्रकार वायुने कहा तब भी राजा कार्तवीर्य चुप रहा, तदनन्तर वायुने कहा, कि-हे राजन् ! अब तू अगस्त्य नामक ब्राह्मणके महात्म्यको सुन ॥ १ ॥ असुरोंने देवताओंको जीतकर उत्साहरहित कर दिया, देवताओं के सब यज्ञोंको नष्ट करदिया और पितरोंकी स्वधा (श्राद्धक्रिया) का नाश करडाला ॥ २ ॥ हे हैहयवंशके उत्तम पुरुष ! जब

भ्रष्टैश्वर्यास्ततो देवाश्चेरुः पृथ्वीमिति श्रुतिः ॥ ३ ॥ ततः कदाचित्ते राजन्दीप्तमादित्यवर्चसम् । ददृशुस्तेजसा युक्तमगस्त्यं विपुलव्रतम् ॥ ४ ॥ अभिवाद्य तु तं देवाः पृष्ट्वा कुशलमेव च । इदमूचुर्महात्मानं वाक्यं काले जनाधिप ॥ ५ ॥ दानवैर्युधि भग्नाः स्म तथैश्वर्याच्च भ्रंशिताः । तदस्मान्नोभयात्तीव्रात्त्राहि त्वं मुनिपुङ्गव ॥ ६ ॥ इत्युक्तः स तदा देवैरगस्त्यः कुपितोऽभवत् । प्रजज्वाल च तेजस्वी कालाग्निरिव संक्षये ॥७॥ तेन दीप्तांशुजालेन निर्दग्धा दानवास्तदा । अन्तरिक्षान्महाराज निपेतुस्ते सहस्रशः ८ दह्यमानास्तु ते दैत्यास्तस्यागस्त्यस्य तेजसा । उभौ लोकौ परित्यज्य गताः काष्ठां तु दक्षिणाम् ॥ ९ ॥ बलिस्तु यजते यज्ञम-

दानवोंने मनुष्योंके यज्ञोंको बन्द कर दिया तब देवता ऐश्वर्य रहित होगए और पृथिवी पर विचरने लगे, यह बात वेदमें कही है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! (देवताओंको) एक दिन महाव्रतधारी और सूर्यकी समान दमकती हुई कान्तिवाले और अति तेजस्वी अगस्त्यके दर्शन हुए ॥४॥ तब उन्होंने अगस्त्यको प्रणाम किया और हे जनाधिप ! कुशल समाचार बूझनेके अनन्तर उन महात्मासे इसप्रकार कहा ॥ ५ ॥ दैत्योंने हमें युद्धमें हरा दिया है तथा हमारा ऐश्वर्य (राज्य) भी हर लिया है, अतः हे मुनिश्रेष्ठ ! इस भयमेंसे आप हमारी रक्षा करिये ॥ ६ ॥ देवताओंके इसप्रकार कहने पर अगस्त्यको क्रोध चढ़ा उस समय वह तेजस्वी मुनि प्रलयके समय प्रज्वलित होने वाले अग्निकी समान प्रज्वलित होगए ॥७। और हे महाराज ! सहस्रों दानव उनकी क्रोधाग्निके किरणोंके जालसे जलकर अन्तरिक्षमेंसे नीचे गिरने लगे ॥ ८ ॥ उस समय अगस्त्यके तेजसे झुलसते हुए दानव दोनों लोकोंको त्यागकर दक्षिण दिशाकी ओर भाग गये ॥ ९ ॥ उस समय पृथिवी पर राजा बलि अश्वमेध यज्ञ

श्वमेधं महीगतः।येऽन्येऽत्रस्था महींस्थाश्च तेन दग्धा महासुराः१०
ततो लोकाः पुनः प्राप्ताः सुरैः शांतभयैर्नृप । अथैनमब्रुवन् देवा-
भूमिष्ठानसुरान् जहि ॥११॥इत्युक्तः प्राह देवान् स न शक्तोस्मि
महीगतान् । दग्धुं तपो हि क्षीयेन्मे न शक्ष्यामीति पार्थिव १२
एवं दग्धा भगवता दानवाः स्वेन तेजसा।अगस्त्येन तदा राजं-
स्तपसा भावितात्मना ॥ १३ ॥ ईदृशश्चाप्यगस्त्यो हि कथितस्ते
मयानघ । ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमगस्त्यात् क्षत्रियं वरम् । १४ ।
भीष्म उवाच ।इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् । शृणु
राजन्वसिष्ठस्य मुख्यं कर्म यशस्विनः ॥ १५ ॥ आदित्याः सत्र
मासंत सरो वै मानसं प्रति । वसिष्ठं मनसा गत्वा ज्ञात्वा तत्तस्य

कर रहा था, इससे उस समय जो दैत्य पातालमें और पृथिवी में थे वे जलनेसे बच गए ॥१०॥ हे राजन् ! (अगस्त्यके दैत्यों को भस्म करने पर) देवताओंका भय मिट गया और उन्होंने फिर अपने२ लोक पाये तदनन्तर देवताओंने अगस्त्यसे कहा, कि—आप पृथिवी पर रहने वाले असुरोंका नाश करिये ।११। हे राजन् ! यह सुनकर अगस्त्यने कहा, कि—पृथिवीमें रहने वाले असुरोंको भस्म करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ, ऐसा करनेसे मेरे तपका नाश होजायगा अतः मैं उनको भस्म नहीं करूँगा ।१२। हे राजन् ! इस प्रकार तेजस्वी और पवित्रात्मा भगवान् अगस्त्य ने दानवोंको अपने तेजसे भस्म करदिया था ॥१३॥ हे निष्पाप राजन् ! यह अगस्त्यकी कथा हैंने तुम्हे सुनाई अब तुम्हें अगस्त्यसे भी उत्तम किसी क्षत्रियकी कथा मालूम हो तो मुझे सुना ॥ १४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि—इस प्रकार वायुके कहने पर कार्तवीर्य मौन होगया तब फिर वायु बोला, वायुने कहा, कि—अब तू यशस्वी वशिष्ठके मुख्य कर्मको सुन ॥ १५ ॥ एक समय आदित्योंने वसिष्ठके गौरवको जानकर मनमें उनका ध्यान

गौरवम् ॥ १६ ॥ यजमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सर्वान् दीक्षानुकर्शितान् । हन्तुमैच्छन्त शैलाभाः खलिनो नाम दानवाः ॥ १७ ॥ अदूरात्तु ततस्तेषां ब्रह्मदत्तवरं सरः । हताहता वै तत्रैते जीवन्त्याप्लुत्य दानवाः ॥ १८ ॥ ते प्रगृह्य महाघोरान् पर्वतान् परिघान् द्रुमान् । विक्षोभयन्तः सलिलमुत्थितं शतयोजनम् ॥१९॥ अभ्यद्रवन्त देवांस्ते सहस्राणि दशैव हि । ततस्तैरर्दिता देवाः शरणं वासवं ययुः ॥२०॥ स च तैर्व्यथितः शक्रो वसिष्ठं शरणं ययौ । ततोऽभयं ददौ तेभ्यो वसिष्ठो भगवानृषिः॥ २१ ॥ तदा तान् दुःखितान् ज्ञात्वा आनृशंस्यपरो मुनिः । अयत्नेनादहत् सर्वान् खलिनः स्वेन तेजसा ॥२२॥ कैलासं प्रस्थितां चैव नदीं

किया और फिर मानसरोवर पर यज्ञ आरम्भ किया ॥ १६ ॥ आदित्य जिस समय यज्ञ कर रहे थे और यज्ञकी दीक्षा लेनेसे दुर्बल होरहे थे उस समय पर्वतकी समान आभा वाले खलिन नामक दानव उनको मारना चाहने लगे ॥१७॥ ब्रह्माजीने उनको वरदान दिया था, कि—जब तुमको तुम्हारे शत्रु मारें अथवा घायल करें तब तुम अमुक सरोवरके जलमें डुबकी देने या लगाने से जीवित होजाओगे यह सरोवर पास ही था, अतः जब देवता दानवोंको मारते थे तब वह उस सरोवरके जलमें स्नान करनेसे जीवित होजाते थे ॥ १८ ॥ वे दानव मानससरोवरके जलको आकाशमें सौ योजन ऊँचा उड़ाने लगे और महाभयङ्कर पर्वत परिघ और वृक्षोंको हाथमें लेकर दश सहस्र इकट्ठे होकर देवताओं पर टूट पड़े तब देवता दुःखी होकर इन्द्रकी शरणमें गए ॥ १९ ॥ २० ॥ उनके दुःखसे इन्द्रको भी दुःख हुआ और वह वशिष्ठजी की शरणमें गया तब भगवान् वशिष्ठने देवताओंको अभयदान दिया ॥ २१ ॥ उस समय देवताओंको दुःखित देख कर वशिष्ठको दया आगई थी और उन्होंने कुछ भी यत्न न करके

गङ्गां महातपाः । आनयत्तत्सरो दिव्यं तया भिन्नं च तत्सरः२३
सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत् । हताश्च खलिनो
यत्र स देशः खलिनोऽभवत् ॥ २४ ॥ एवं सेन्द्रा वसिष्ठेन रक्षि-
तास्त्रिदिवौकसः । ब्रह्मदत्तवराश्चैव हता दैत्या महात्मना ॥२५॥
एतत् कर्म वसिष्ठस्य कथितं हि मयाऽनघ । ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा
त्वं वसिष्ठात् क्षत्रियं वरम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
पवनार्जुनसंवादे पञ्चपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

भीष्म उवाच । इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्तमब्रवीत् ।
शृणु मे हैहयश्रेष्ठ कर्मात्रेः सुमहात्मनः ॥ १ ॥ घोरे तमस्ययुध्यन्त

अपने तेजसे सब खलिनोंको भस्म कर डाला ॥ २२ ॥ तदनन्तर महातेजस्वी वशिष्ठने कैलासकी ओर बहने वाली गङ्गाजीको उस दिव्य सरोवरमें मिला दिया, तब उनके जलके वेगसे वह सरोवर टूट गया ॥२३॥ और उसमेंसे जो प्रवाह निकला वह सरयू नामकी नदी होगई और जहाँ पर उन दानवोंका नाश किया था वह प्रदेश खलिन नामसे प्रसिद्ध होगया ॥ २४ ॥ इसप्रकार वशिष्ठजीने पहिले इन्द्रकी और देवताओंकी रक्षा की थीं और उन महात्माने इसप्रकार ब्रह्माजीसे वर पाये हुये दैत्योंका नाश किया था ॥ २५ ॥ हे राजन् ! मैंने तुमसे वशिष्ठजीका यह कर्म कहकर सुना दिया, तू कहे तो मैं और कुछ कहूँ अथवा वशिष्ठ से उत्तम कोई क्षत्रिय हो तो तू मुझे सुना ॥ २६ ॥ एकसौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥ छ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि—इसप्रकार पवनने अर्जुनसे कहा तब कार्तवीर्य अर्जुन शान्त पड़गया, तदनन्तर वायुने उससे फिर कहा वायुने कहा, कि हे हैहयकुलमें श्रेष्ठ राजन् ! महात्मा अत्रि मुनिके कर्मोंको तू सुन ॥ १ ॥ एक समय देवता और दानवोंने

सहिता देवदानवाः। अ विध्यते शरैस्तत्र स्वर्भानुः सोमभास्करौ २
अथ ते तमसा ग्रस्ता निहन्यन्ते स्म दानवैः। देवा नृपतिशार्दूल
सदैव वलिभिस्तदा ॥३॥ असुरैर्वध्यमानास्ते क्षीणप्राणा दिवौ-
कसः। अपश्यंत तपस्यन्तमत्रिं विप्रं तपोधनम् ॥ ४ ॥ अथैनम-
ब्रुवन् देवाः शान्तक्रोधं जितेन्द्रियम्। असुरैरिषुभिर्विद्धौ चन्द्रा-
दित्याविमावुभौ ॥ ५ ॥ वयं वध्यामहे चापि शत्रुभिस्तमसा वृते।
नाधिगच्छाम शान्तिं च भयात्त्रायस्व नः प्रभो ॥ ६ ॥ अत्रिरु-
वाच। कथं रक्षामि भवतस्तेऽब्रुवंश्चन्द्रमा भव। तिमिरघ्नश्च
सविता दस्युहन्ता च नो भव ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तदात्रिर्वै तमोनु-
दभवच्छशी। अपश्यत् सौम्यभावाच्च सोमवत् प्रियदर्शनः ।८।

अन्धेरेमें परस्पर युद्ध किया था, उस युद्धमें राहुने चन्द्रमा और सूर्यको बाण मारकर घायल कर दिया था ॥ २ ॥ तब देवता अन्धेरेमें अन्धेसे होकर दानवोंके हाथसे पिटने लगे, हे राजसिंह! जब देवता बली दानवोंसे पिटनेके कारण निर्बल होगये तब वे जहाँ तपोधन अत्रि ऋषि तप कररहे थे वहाँ पहुँचे॥ ३ ॥ ४ ॥ और उन्होंने जिन्होंने क्रोधको शान्त कर दिया था और जो जितेन्द्रिय थे उन अत्रिसे कहा, कि—इस चन्द्रमा और सूर्यको असुरोंने बाण मारकर बींध डाला है ॥५॥ और अन्धेरेमें शत्रु हमको भी मारते हैं और हमें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है, अतः हे प्रभो! आप भयमेंसे हमारी रक्षा करिये ॥६॥ अत्रिने कहा, कि—मैं तुम्हारी रक्षा किस प्रकार करूँ, तब देवताओंने कहा, कि—आप चन्द्रमा बन जाइये तथा अन्धकारका नाश करने वाले सूर्य और दस्युओंका नाश करने वाले बनिये ॥७॥ इस प्रकार देवताओंने कहा तब अत्रि चन्द्रमा बन गए और उन्होंने अन्धकारका नाश करडाला, उस समय अत्रि सौम्य-भावसे चन्द्रमाकी समान प्रियदर्शन दीखते थे ॥८॥ हे राजन्!

दृष्ट्वा नातिप्रभं सोमं तथा सूर्यं च पार्थिव । प्रकाशमकरोदत्रिस्त-
पसा स्वेन संयुगे ॥९॥ जगद्वितिमिरं चापि प्रदीप्तमकरोत्तदा१०
व्यजयच्छत्रुसंघांश्च देवानां स्वेन तेजसा । अत्रिणा दह्यमानां-
स्तान् दृष्ट्वा देवा महासुरान् ॥ ११ ॥ पराक्रमैस्तेऽपि तदा व्यघ्न-
न्नत्रिसुरक्षिताः । उद्भासितश्च सविता देवास्त्राता हता सुराः १२
अत्रिणा त्वथ सामर्थ्यं कृतमुत्तमतेजसा॥द्विजेनाग्निद्वितीयेन जपता
चर्मवाससा ॥ १३ ॥ फलभक्षेण राजर्षे पश्य कर्मात्रिणा कृतम्।
तस्यापि विस्तरेणोक्तं कर्मात्रेः सुमहात्मनः । ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा
त्वमत्रितः क्षत्रियं वरम् ॥ १४ ॥ इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायु-

उस समय अत्रि ऋषिने चन्द्रमा और सूर्यके तेजको मन्द देखा तब उन्होंने युद्धमें अपने तेजसे प्रकाश फैलाया ॥ ९ ॥ और उस समय जगत्मेंसे अन्धकारको दूर कर जगत्को प्रकाशित कर दिया ॥१०॥ और अपने तेजसे देवशत्रुओंके संघको हराने लगे, अत्रिको महान् असुरोंको भस्म करते देखकर ॥ ११ ॥ देवता भी अत्रिकी रक्षामें रहकर उस समय पराक्रम करके उनका संहार करने लगे, इस प्रकार अत्रिने सूर्यको प्रकाशित किया था, देवताओंकी रक्षा की थी और असुरोंका नाश किया था ॥१२॥ इसप्रकार उत्तम तेज वाले अत्रि मुनिने अपनी सामर्थ्य दिखाई थी, अत्रि एक ब्राह्मण थे, उनको अग्निके अतिरिक्त और किसीकी सहायता नहीं थी वे गायत्रीका जप करने वाले थे, चमड़ेके वस्त्र पहिरने वाले थे ॥ १३ ॥ और फलका आहार करते थे, हे राजर्षि ! उन्होंने जो कर्म किया था उसको तू देख, मैंने तुमसे महात्मा अत्रिका कर्म विस्तारपूर्वक कहा, अब मैं और कुछ कहूँ अथवा तुझे अत्रिसे उत्तम और किसी क्षत्रियका पता हो तो मुझे सुना ॥ १४ ॥ इस प्रकार पवनने कहा, तब अर्जुन मौन होगया, तदनन्तर पवन फिर कहने लगा,

स्ततोऽब्रवीत् । शृणु राजन्महत् कर्म च्यवनस्य महात्मनः ।१५। अश्विनोः प्रतिसंश्रुत्य च्यवनः पाकशासनम्। प्रोवाच सहितो देवैः सोमपावश्विनौ कुरु ॥ १६ ॥ इन्द्र उवाच । अस्माभिर्निंदिता-वेतौ भवेतां सोमपौ कथम् । देवैर्न संमितावेतौ तस्मान्मैवं वदस्व नः ॥ १७ ॥ अश्विभ्यां सह नेच्छामः सोमं पातुं महाव्रत । यद-न्यद्वक्ष्यसे विप्र तत् करिष्याम ते वचः ॥१८॥ च्यवन उवाच । पिबेतामश्विनौ सोमं भवद्भिः सहिताविमौ । उभावेतावपि सुरौ सूर्यपुत्रौ सुरेश्वर ॥ १९ ॥ क्रियतां मद्वचो देवा यथा वै समुदा-हृतम् । एतद्वः कुर्वतां श्रेयो भवेन्नैतदकुर्वताम् ॥२०॥इन्द्र उवाच । अश्विभ्यां सह सोमं वै न पास्यामि द्विजोत्तम ।पिबन्त्वन्ये यथा-

---

कि—महात्मा च्यवनके महान् कर्मको तू सुन ॥ १५ ॥ च्यवन ऋषिने अश्विनीकुमारोंसे प्रतिज्ञा की, कि-मैं तुमको देवताओं के साथ सोमपान कराऊँगा, तब उन्होंने इन्द्रसे कहा, कि—तू अश्विनीकुमारोंके साथ देवताओंको सोमपान करा ॥ १६ ॥ इन्द्रने उत्तर दिया कि—हम उनको निन्दित मानते हैं, उनको सोमपान किस प्रकार करा सकते हैं, देवता उनको मान नहीं देते हैं, अतः यह वात आप हमसे न कहिये ॥ १७ ॥ हे महा-व्रतधारी ऋषि ! अश्वीनीकुमारोंके साथ हम सोमपान करना नहीं चाहते, हे ब्राह्मण ! आप जो और कुछ कहेंगे, उस सब को हम मानेंगे ॥ १८ ॥ च्यवनने कहा, कि—हे देवराज ! मेरी इच्छा है कि—ये दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे साथ सोमपान करें, क्योंकि—ये दोनों सूर्यपुत्र होनेसे देवता हैं ॥ १९॥हे देवता ! आप मेरे कहनेको मान जाइये, यदि तुम मेरा कहना मानोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा, परन्तु तुम मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा कल्याण न होगा ॥ २० ॥ इन्द्रने कहा, कि हे ब्राह्मणर्षभ ! मैं अश्विनीकुमारोंके साथ बैठकर सोमपान नहीं

कामं नाहं पातुमिहोत्सहे ॥२१॥ च्यवन उवाच । न चेत्करिष्यसि वचो मयोक्तं बलसूदन । मया प्रमथितः सद्यः सोमं पास्यसि वै मखे ॥ २२ ॥ वायुरुवाच । ततः कर्म समारब्धं हिताय सहसाश्विनोः । च्यवनेन ततो मन्त्रैरभिभूताः सुराभवन् ॥ २३ ॥ तत्तु कर्म समारब्धं दृष्ट्वेन्द्रः क्रोधमूर्च्छितः । उद्यम्य विपुलं शैलं च्यवनं समुपाद्रवत् ॥ २४ ॥ तथा वज्रेण भगवानमर्षाकुललोचनः । तमापतन्तं दृष्ट्वैव च्यवनस्तपसान्वितः ॥ २५ ॥ अद्भिः सिक्त्वाऽस्तंभयत सवज्रं सह पर्वतम् । अथेन्द्रस्य महाघोरं सोऽसृजच्छत्रुमेव हि ॥२६॥ मदं नामाहुतिमयं व्यादितास्यं महामुनिः । तस्य दन्तसहस्रन्तु बभूव शतयोजनम् ॥ २७ ॥ द्वियोजनशता-

करूँगा दूसरे चाहें अपनी इच्छानुसार भले ही ऐसा करें, परन्तु मैं उनको सोम पिलानेका साहस नहीं कर सकता ॥ २१ ॥ च्यवनने कहा, कि-हे बलदैत्यको मारने वाले ! यदि तू मेरा कहना नहीं मानेगा तो मैं तुझे दबाकर आज अश्विनीकुमारोंके साथ यज्ञमें बलपूर्वक तुझे सोम पिलाऊँगा ।.२२॥ वायुने कहा, कि-तदनन्तर च्यवनने अश्विनीकुमारोंके हितके लिये उसी समय यज्ञका आरम्भ किया और मन्त्रोंसे देवताओंका पराजय किया ॥ २३ ॥ च्यवनको यज्ञका आरम्भ करते हुए देखकर इन्द्रको बड़ा क्रोध चढ़ा और वह महापर्वत और वज्रको हाथमें लेकर च्यवनके सामने वेगसे दौड़ा॥ २४॥ इन्द्रको वज्र लेकर आते हुए देख तपस्वी भगवान् च्यवनकी आँखें क्रोधसे लाल लाल होगई ॥२५॥ और उन्होंने जलका छींटा देकर वज्र और पर्वतके साथ इन्द्रके हाथको जड बना दिया फिर महामुनि च्यवन ने इन्द्रके लिये एक भयंकर शत्रुको उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ उसका नाम मद था, वह आहुतिरूप था, उसने अपने मुखको फैला दिया, उस मुखमें सौ सौ योजनके एक सहस्र दाँत थे २७

स्तस्य दंष्ट्राः परमदारुणाः। हनुस्तस्याभवद्भूमावास्यं चास्या-स्पृशद्दिवम्। ॥ २८ ॥ जिह्वामूले स्थितास्तस्य सर्वे देवाः सवा-सवाः। तिमेरास्यमनुप्राप्ता यथा मत्स्या महार्णवे ॥ २९ ॥ ते संमन्त्र्य ततो देवा मदस्यास्य समीपगाः। अब्रुवन् सहिताः शक्रं प्रणमास्मै द्विजातये ॥ ३० ॥ अश्विभ्यां सह सोमं च पिबाम विगतज्वराः। ततः स प्रणतः शक्रश्चकार च्यवनस्य तत् ।३१। च्यवनः कृतवानेतावश्विनौ सोमपायिनौ। ततः प्रत्याहरत् कर्म मदं च व्यभजन्मुनिः ॥ ३२ ॥ अक्षेषु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान्। एतैर्दोषैर्नरा राजन् क्षयं यान्ति न संशयः ।३३। तस्मादेतान्नरो नित्यं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३४ ॥ एतत्ते च्यवन-

उसकी महाभयंकर डाढें दोसौ योजन लम्बी थीं, उसका एक होठ पृथिवीमें लगा हुआ था और दूसरा होठ आकाशमें लगा हुआ था। २८। और महासागरमें तिमिके मुखमें जैसे मत्स्य रहते हैं तैसे ही उसकी जीभके मूलमें वासवसहित सब देवता रहते थे २९ तदनन्तर मदके मुखमें पडे हुए देवताओंने विचार करके एक साथ इन्द्रसे कहा, कि-तू इस ब्राह्मणको शीघ्रतासे प्रणाम कर ३० और हम सब संकोचरहित होकर अश्विनी कुमारके साथ सोमका पान करेंगे" यह सुनकर इन्द्रने च्यवन को प्रणाम किया और उनके कथनानुसार किया ३१ इस प्रकार च्यवन नामक ब्राह्मणने अश्विनीकुमारोंको सोमपान करनेका अधिकारी बनाया और अपना यज्ञकर्म पूर्ण किया, तद-नन्तर उन पराक्रमी मुनिने मदके विभाग करके ३२ उसको जुआ मृगया मदिरापान और स्त्रियोंमें बाँट दिया, अतः हे राजन्! इन दोषोंसे मनुष्य अवश्य ही नष्ट होजाते हैं ३३ अतः मनुष्य इन दोषोंसे सदा दूर रहे ३४ हे राजन्! मैंने तुमसे यह च्य-वनका कर्म कहकर सुना दिया, अब मैं आगेको और कहूँगा,

स्यापि कर्म राजन् प्रकीर्तितम् । ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं क्षत्रियं ब्राह्मणाद्वरम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भीष्म उवाच । तूष्णीमासीदर्जुनस्तु पवनस्त्वब्रवीत् पुनः । शृणु मे ब्राह्मणेष्वेव मुख्यं कर्म जनाधिप ॥ १ ॥ मदस्यास्यमनुप्राप्ता यदा सेन्द्रा दिवौकसः । तदैव च्यवनेनेह हृता तेषां वसुन्धरा ॥ २ ॥ उभौ लोकौ हृतौ मत्वा ते देवा दुःखिताभवन् । शोकार्ताश्च महात्मानं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥ देवा ऊचुः। मदास्यव्यतिषिक्तानामस्माकं लोकपूजित । च्यवनेन हृता भूमिः कपैश्चैव दिवं प्रभो ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच । गच्छध्वं शरणं विप्राणाशु सेन्द्रा दिवौकसः। प्रसाद्य तानुभौ लोकाववाप्स्यथ यथा पुरा ॥ ५ ॥ ते ययुः शरणं विप्रानूचुस्ते कान् जयामहे । इत्यु-

---

अथवा कोई क्षत्रिय ब्राह्मणसे श्रेष्ठ हो तो तू मुझे सुना ३५ एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त १५६ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि–जब अर्जुन चुप हो रहा तब पवनने फिर कहा वायुने कहा, कि हे राजन्! अब तू ब्राह्मणोंके मुख्य कर्म को मुझसे सुन १ देवता तथा इन्द्र जब मदके मुखमें पड़े, कि–तुरत ही च्यवनने उनकी पृथिवी छीनली २ देवता अपने दोनों लोकोंको छिने हुए देखकर शोकातुर होगए और ब्रह्माजीकी शरण लेकर कहने लगे ३ देवताओंने कहा, कि–हे लोकपूजित ब्रह्मदेव! हमारे मदके मुखमें पड़ जाने पर हमारी भूमि च्यवन ने छीनली है और कप नामक दैत्यने हमारा स्वर्गलोक छीन लिया है ४ ब्रह्माजीने कहा, कि–हे देवताओं! तुम इन्द्रको साथ में लेकर शीघ्र ही ब्राह्मणोंकी शरणमें जाओ और उनको प्रसन्न करो तब तुम प्रथमकी समान फिर दोनों लोकोंको पाओगे ५

क्तास्ते द्विजान् प्राहुर्जयतेह कपानिति ॥ ६ ॥ भूगतान् हि मिजेतारः वयमित्यब्रुवन् द्विजाः । ततः कर्म समारब्धं ब्राह्मणैः कपनाशनम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रेपितो दूतो ब्राह्मणेभ्यो धनी कपैः । स च तान् ब्राह्मणानाह धनी कपवचो यथा ॥ ८ ॥ भवद्भिः सदृशाः सर्वे कपाः किमिह वर्तते । सर्वे वेदविदः प्राज्ञाः सर्वे च क्रतुयाजिनः ॥ ९ ॥ सर्वे सत्यव्रताश्चैव सर्वे तुल्या महर्षिभिः ॥ श्रीश्चैव रमते तेषु धारयन्ति श्रियं च ते ॥ १० ॥ वृथा दारान्न गच्छन्ति वृथा मांसं न भुञ्जते । दीप्तमग्निं जुह्वते च गुरूणां वचने स्थिताः ॥ ११ ॥ सर्वे च नियतात्मानो बालानां संवि·

तब देवता ब्राह्मणोंकी शरणमें गए और कहा, कि–दैत्य हमको दुःख देते हैं, तब ब्राह्मणोंने कहा, कि– हम किन दैत्योंका पराजय करें, तब देवताओंने कहा, कि–आप कप नामक देवताओंका पराजय करिये ६ तब ब्राह्मणोंने कहा, कि–जो दैत्य पृथिवी पर रहते हैं, हम उनका पराजय करवाना चाहते हैं" यह कहकर ब्राह्मणोंने कप नामक दैत्योंका नाश करनेके लिये अभिचार कर्मका आरम्भ किया ७ यह बात कपोंने सुनी, तब उन्होंने ब्राह्मणोंके पास धनी नामक दूत भेजा, उसने ब्राह्मणोंसे कपों का सन्देशा कहना आरम्भ किया ८ दूतने कहा, कि–इस पृथिवी पर तुम्हारे समान ही बहुतसे कप हैं अतः यह तुम क्या कर रहे हो ? सब कप वेदज्ञ हैं, बुद्धिमान् हैं, यज्ञ करने वाले हैं ९ सब सत्यवादी हैं, महर्षिकी समान हैं उनके घरमें लक्ष्मी क्रीडा कर रही है और वे लक्ष्मीकी रक्षा करते हैं १० वे व्यर्थ ही स्त्रीगमन नहीं करते हैं, ऋतुमें स्त्रीके साथ गमन करते हैं, वृथा मांस का आहार नहीं करते हैं, सदा प्रदीप्त अग्निमें होम करते हैं, गुरुके वचनानुसार चलते हैं ११ सब अपने मनको नियममें रखने वाले हैं, प्रत्येक वस्तुओंका बालकोंको भी समान भाग ही देते हैं,

भागिनः । उपेत्य शनकैर्यान्ति न सेवन्ति रजस्वलाम् । स्वर्गतिं
चैव गच्छन्ति तथैव शुभकर्मिणः ॥ १२ ॥ अभुक्तवत्सु नाश्नन्ति
गर्भिणीवृद्धकादिषु । पूर्वाह्णेषु न दीव्यन्ति दिवा चैव न शेरते १३
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्गुणैर्युक्तान् कथं कपान् । विजेष्यथ निवर्तध्वं
निवृत्तानां सुखं हि वः ॥ १४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः । कपान् वयं
विजेष्यामो ये देवास्ते वयं स्मृताः । तस्मादवध्याः कपास्माकं
धनिन् याहि यथागतम् ॥१५॥ धनी गत्वा कपानाह न वो विप्राः
प्रियंकराः । गृहीत्वास्त्राण्यतो विप्रान् कपाः सर्वे समाद्रवन् १६
समुदग्रध्वजान् दृष्ट्वा कपान् सर्वे द्विजातयः । व्यसृजन् ज्वलि-
तानग्नीन् कपानां प्राणनाशनान् ॥ १७ ॥ ब्रह्मसृष्टा हव्यभुजः

वे सब साथ ही गाड़ीमें बैठते हैं,(कोई पैदल चलता हो तो गाड़ी
में नहीं बैठते हैं) रजस्वला स्त्रीसे गमन नहीं करते हैं स्वर्गमें
भी साथ ही जाते हैं और यज्ञ आदि शुभ कर्म करते हैं १२
जब तक गर्भवती वृद्ध बालक आदि भोजन नहीं करते हैं, तब
तक ये भोजन नहीं करते हैं, दिवसके पूर्वभागमें जुआ नहीं
खेलते हैं, दिनमें निद्रा नहीं लेते हैं ॥ १३ ॥ ये और दूसरे गुण
भी कपोंमें हैं, अतः तुम कपोंको किसप्रकार जीत सकोगे, अतः
आरब्ध कर्म करना बन्द करो, इस कर्मको बन्द करनेसे तुम
सुखी होओगे ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंने कहा, कि- हम कपोंका परा-
जय करेंगे, क्योंकि-देवताओंने हमारा स्मरण किया है, अतः
हम कपोंका नाश करेंगे, हे धनी ! तू पीछेको लौट जा ॥१५॥
धनी वहाँसे कपोंके पास गया और उसने कपोंसे कहा, कि-
हे कपों ! ब्राह्मण तुम्हारा हित नहीं करेंगे, यह सुनकर सब कप
आयुध लेकर ब्राह्मणोंके ऊपर चढ़ गए ॥ १६ ॥ कपोंको ध्वजो
उठाकर आते हुए देखकर उन सब ब्राह्मणोंका नाश करनेके
लिये प्रज्वलित अग्नियोंका प्रयोग किया ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंके

कपान् हन्त्रा सनातनाः । नभसीव यथाभ्राणि व्यराजंत नराधिप ॥ १८ ॥ हत्वा वै दानवान् देवाः सर्वे संभूय संयुगे । ते नाभ्यजानन् हि तदा ब्राह्मणैर्निहतान् कपान् ॥ १९ ॥ अथागम्य महातेजा नारदोऽकथयद्विभो । यथा हता महाभागैस्तेजसा ब्राह्मणैः कपाः ॥२०॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा भीताः सर्वे दिवौकसः । प्रशशंसुर्द्विजांश्चापि ब्राह्मणांश्च यशस्विनः ॥२१॥ तेषां तेजस्तथा वीर्यं देवानां ववृधे ततः । अवाप्नुवंश्चामरत्वं त्रिषु लोकेषु पूजितम् ॥ २२ ॥ इत्युक्तवचनं वायुमर्जुनः प्रत्युवाच ह। प्रतिपूज्य महाबाहो यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ २३ ॥ अर्जुन उवाच। जीवाम्यहं ब्राह्मणार्थं सर्वथा सततं प्रभो । ब्रह्मण्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रणमामि च नित्यशः ॥ २४ ॥ दत्तात्रेयप्रसादाच्च मया

प्रेरित सनातन अग्नियोंने कपोंका नाश करडाला, हे राजन् ! उस समय वे अग्नियें आकाशमें स्थित (रक्त) बादलोंकी समान शोभा पारहीं थीं ॥१८॥ सब देवताओंने एकत्रित होकर इस प्रकार दानवोंका नाश किया था, परन्तु वह यह नहीं जानते थे, कि—कप नामक दैत्योंको ब्राह्मणोंने मारडाला है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर महातेजस्वी नारदजीने आकर देवताओंसे कहा, कि—महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंने कप नामक दानवोंको मार डाला है ॥ २० ॥ नारदजीकी बातको सुनकर सब देवता प्रसन्न हुए और यशस्वी ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करने लगे ॥२१॥ फिर देवताओंका तेज और वीर्य बढ़ने लगा और वे त्रिलोकीमें पूज्य अमरपनको प्राप्त होगये ॥२२॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे महाभुज युधिष्ठिर ! वायुके इस प्रकार कहने पर अर्जुनने उसकी प्रशंसा कर जो बात कही थी उसको तू सुन ॥ २३ ॥ अर्जुनने कहा, कि हे प्रभो ! मैं तो सदा सब प्रकारसे ब्राह्मणोंके लिये ही जीवन विताता हूँ, मैं ब्राह्मणोंका रक्षक हूँ, उनको सदा

माप्तमिदं बलम् । लोके च परमा कीर्तिर्धर्मश्चाचरितो महान् २५
अहो ब्राह्मणकर्माणि मया मारुत तत्त्वतः । त्वया प्रोक्तानि
कार्त्स्न्येन श्रुतानि प्रयतेन च ॥ २६ ॥ वायुरुवाच । ब्राह्मणान्
क्षात्रधर्मेण पालयस्वेन्द्रियाणि च । भृगुभ्यस्ते भयं घोरं तत्तु काला-
द्भविष्यति ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । ब्राह्मणानर्चसे राजन् सततं संशितव्रतान् ।
कं तु कर्मोदयं दृष्ट्वा तानर्चसि जनाधिप ॥ १ ॥ कां वा ब्राह्मण-
पूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा महाव्रत । तानर्चसि महाबाहो सर्वमेतद्वदस्व
मे ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । एष ते केशवः सर्वमाख्यास्यति महा-

प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ दत्तात्रेयकी कृपासे मुझे यह बल मिला है, जगत्में मेरी परम कीर्ति छारही है, मैं बड़ाभारी धर्माचरण करता हूँ ॥ २५ ॥ हे पवन ! तुमने मुझसे ब्राह्मणोंके जो कर्म कहे उनको मैंने सावधान होकर यथार्थ रीतिसे सुना २६ वायुने कहा, कि-हे राजन् ! अब तू क्षत्रियधर्मसे ब्राह्मणोंकी रक्षा कर और इन्द्रियोंका निग्रह कर, तुझको भृगुकुलके ब्राह्मणों से भयंकर भय होगा, परन्तु वह कुछ समयके अनन्तर होगा २७

एकसौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे राजन् ! आप उत्तम आचरणवाले ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करते हैं, परन्तु आप क्या फल देख कर उनकी पूजा करते हैं ॥ १ ॥ हे महाव्रतधारी महाभुज ! आप ब्राह्मणोंकी पूजामें क्या फल देख कर उनकी पूजा करते हैं ? यह सब बात मुझसे कहिये ॥२॥ भीष्मजीने कहा, कि- ब्राह्मणों की पूजा करनेसे क्या फल मिलता है इस बातको यह माधव तुझसे भली भाँति कहेंगे, क्योंकि-इन महाव्रतधारी केशवने

मतिः । व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां दृष्ट्वा व्युष्टिर्महाव्रतः ॥ ३ ॥ बलं श्रोत्रे वाङ्मनश्चक्षुषी च ज्ञानं तथा सविशुद्धं ममाद्य । देहन्यासो नातिचिरान्मतो मे न चातितूर्णं सविताद्य याति ॥ ४ ॥ उक्ता धर्मा ये पुराणे महान्तो राजन् विप्राणां क्षत्रियाणां विशां च । तथा शूद्राणां धर्ममुपासते च शेषं कृष्णादुपशिक्षस्व पार्थ ॥ ५ ॥ अहं ह्येनं वेद्मि तत्त्वेन कृष्णं योऽयं हि यच्चास्य बलं पुराणम् । अमेयात्मा केशवः कौरवेन्द्र सोऽयं धर्मं वक्ष्यति संशयेषु ॥ ६ ॥ कृष्णः पृथ्वीमसृजत् खं दिवं च कृष्णस्य देहान्मेदिनी संबभूव । वराहोऽयं भीमबलः पुराणः सपर्वतान् व्यसृजद्वै दिशश्च ॥ ७ ॥ अस्य चाधोथान्तरिक्षं दिवं च दिशश्चतस्रो विदिशश्चतस्रः ।

ब्राह्मणपूजाका फल देखा है३आज मेरा बल दोनों कान वाणी मन दोनों नेत्र तथा विशुद्ध ज्ञान सब एकत्रित होगए हैं, अतः मैं समझता हूँ, कि—थोड़ेही समयमें मेरा शरीरपात होजायगा आज सूर्य भी धीरे २ चल रहा है (अर्थात् दुःखी मनुष्यको दिन बहुत बड़ा प्रतीत होता है) ॥ ४ ॥ हे राजन् ! पुराणोंमें जो ब्राह्मणोंके क्षत्रियोंके वैश्योंके और शूद्रोंके धर्म कहे हैं तथा ब्राह्मण आदि जिस धर्मका पालन करते हैं, वह सब मैंने तुझे कह कर सुना दिये हे पृथा-पुत्र ! अब जो और कुछ बाकी रह गए हों उनको तू श्रीकृष्णसे सीख ॥ ५ ॥ इन श्रीकृष्णका जो स्वरूप हैं, इनका जो प्राचीन बल है उसको मैं यथार्थरीतिसे जानता हूँ, हे कौरववंशी राजन् ! केशवका बल अप्रमेय है ऐसे केशव जब तुझे सन्देह उत्पन्न होगा तब उसको निवारण करेंगे ६ श्रीकृष्णने पृथ्वीको आकाशको और स्वर्गको रचा है, श्रीकृष्णके शरीरमेंसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है,यह श्रीकृष्ण भयंकर बलवाले प्राचीन वराह हैं इन्होंने पर्वतोंको और दिशाओंको उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥ इन श्रीकृष्णके नीचे अन्तरिक्ष स्वर्ग

सृष्टिस्तथैवेयमनुप्रसूता स निर्ममे विश्वमिदं पुराणम् ॥ ८ ॥
अस्य नाभ्यां पुष्करं संप्रसूतं यत्रोत्पन्नः स्वयमेवामितौजाः ।
येनाच्छिन्नं तत्तमः पार्थ घोरं यत्तत्तिष्ठत्यर्णवं तर्जयानम् ॥ ९ ॥
कृते युगे धर्म आसीत् समग्रस्त्रेताकाले ज्ञानमनुप्रपन्नः । बलं
त्वासीद् द्वापरे पार्थ कृष्णः कलौ त्वधर्मः क्षितिमेवाजगाम ।१०।
स एव पूर्वं निजघान दैत्यान् स पूर्वदेवश्च बभूव सम्राट् । स
भूतानां भावनो भूतभव्यः स विश्वस्यास्य जगतश्चाभिगोप्ता ११
यदा धर्मो ग्लाति वंशे सुराणां तदा कृष्णो जायते मानुषेषु ।
धर्मे स्थित्वा स तु वै भावितात्मा परांश्च लोकानपरांश्च पाति १२
त्याज्यं त्यक्त्वा चासुराणां वधाय कार्याकार्ये कारणं चैव पार्थ ।

चारों दिशाएँ और चारों कोने हैं अर्थात् वह इन सबके ऊपर विराजमान हैं उन्होंने इस सृष्टिको उत्पन्न किया है और प्राचीन विश्वको भी उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ इनकी नाभिमेंसे कमल उत्पन्न हुआ है उस कमलमेंसे अपार बली ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए हैं, हे पार्थ ! ब्रह्माजीने समुद्रका तिरस्कार करने वाले महाभयंकर अंधकारका नाश किया था, ॥ ९ ॥ हे पार्थ ! सत्ययुगमें श्रीकृष्ण पूर्ण धर्मरूपमें थे, त्रेतायुगमें पूर्णज्ञानरूप में थे, द्वापर युगमें बलरूपमें थे और कलियुगमें अधर्मरूपसे पृथ्वी पर अवतरे हैं अर्थात् कलियुगमें अधर्म बलवान् हैं ॥१०॥ इन अनादिदेवने पहिले दैत्योंको मार डाला था और यही पहिले बलिरूप चक्रवर्ती राजा हुए थे, प्राणियोंको उत्पन्न करने वाले यही हैं, भूत और भविष्यत् कालरूप यही हैं तथा ये सब भूतों की और जगत्की रक्षा करने वाले हैं ॥ ११ ॥ जब धर्मग्लानि होती है, तब श्रीकृष्ण देवताओंमें अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं और धर्म पर आधार रख कर यह पवित्रात्मा श्रीकृष्ण इस लोककी तथा परलोककी रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥ हे पृथा-

कृतं करिष्यत् क्रियते च देवो राहुं सोमं विद्धि च शक्रमेनम् ।१३।
स विश्वकर्मा स हि विश्वरूपः स विश्वभुग्विश्वसृग्विश्वजिच्च ।
स शूलभृच्छोणितभृत् करालस्तं कर्मभिर्विदितं वै स्तुवन्ति १४
तं गन्धर्वाणामप्सरसां च नित्यमुपतिष्ठन्ते विबुधानां शतानि । तं
राक्षसाश्च परिसंवदन्ति रायस्पोषः स विजिगीषुरेकः ॥ १५ ॥
तमध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरे सामगाश्च स्तुवन्ति । तं
ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैः स्तुवन्ति तस्मै हविरध्वर्यवः कल्पयन्ति १६
स पौराणीं ब्रह्मगुहां प्रविष्टो महीसत्रं भारताग्रे ददर्श । स चैव
गामुद्दधाराग्र्यकर्मा विक्षोभ्य दैत्यानुरगान् दानवांश्च ॥ १७ ॥

पुत्र ! यह श्रीकृष्ण त्याग (रक्षण) करने योग्य प्राणियोंको त्याग कर असुरोंका नाश करते हैं, यह कार्य और अकार्यरूप हैं कारण-रूप हैं किये हुए कार्यरूप हैं, करनेके कार्यरूप हैं और क्रियमाण-किये जाते हुए कार्यरूप हैं, तू इन्द्र, राहु और सोमरूप भी इनको ही जान ॥ १३ ॥ यही विश्वकर्मा हैं, यही विश्वरूप हैं, विश्वके सृष्टा भी यही हैं विश्वके भोक्ता भी यही हैं, विश्वके जेता भी यही हैं, यही शूलधारी हैं, यही शरीरधारी हैं और यही कराल हैं, कर्मोंसे जाननेमें आये हुए इन श्रीकृष्णकी सब स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ सैंकड़ों गन्धर्व सैंकड़ों अप्सरायें और सैंकड़ों देवता उनकी सदा सेवा करते हैं, राक्षस भी उनसे मंत्रणा करते हैं, वह धनका पोषण करने वाले और जीतने वालोंमें अद्वितीय हैं ॥ १५ ॥ यज्ञमें मंत्र जानने वाले उनकी स्तुति करते हैं, सामगान करने वाले रथंतर सामसे उनकी स्तुति करते हैं, ब्राह्मण वेदके मंत्रोंसे उनकी स्तुति करते हैं और अध्वर्यु यज्ञमें उनको हवि देते हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशीराजन् ! इन श्रीकृष्णने ब्रह्माकी प्राचीनगुहामें प्रवेश किया था और उन्होंने सृष्टिके आरम्भ में पृथ्वीके आवरणको देखा था, पृथ्वीके लिये दैत्य उरग और

तं घोषार्थे गीर्भिरिंद्राः स्तुवन्ति स चापीशो भारतैकः पशूनाम् ।
तस्य भक्षान् विविधान् वेदयन्ति तमेवाजौ वाहनं वेदयन्ति १८
तस्यांतरिक्षं पृथिवी दिवं च सर्वं वशेतिष्ठति शाश्वतस्य । स
कुम्भे रेतः ससृजे सुराणां यत्रोत्पन्नमृषिमाहुर्वसिष्ठम् १९ स
मातरिश्वा विभुरश्ववाजी स रश्मिवान् सविता चादिदेवः ।
तेनासुरा विजिताः सर्व एव तद्विक्रान्तैर्विजितानीह त्रीणि ।२०।
स देवानां मानुषाणां पितॄणां तमेवाहुर्यज्ञविदां वितानम् । स
एव कालं विभजन्नुदेति तस्योत्तरं दक्षिणं चायने द्वे ॥ २१ ॥
तस्यैवोर्ध्वं तिर्यगधश्चरन्ति गभस्तयो मेदिनीं भासयन्तः । तं

दानव युद्ध करते थे उनका पराभव करके उत्तम कर्म करने वाले श्रीकृष्णने पृथ्वीका उद्धार किया था ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णने जिस समय गोवर्धन पर्वतको उठाया था, उस समय इन्द्र आदि मेघों ने वाणीसे उनकी स्तुति की थी, हे भरतवंशी राजन् ! वह पशुओं (अज्ञानी जीवों) के ईश्वर हैं और मनुष्य उनको नाना प्रकारके भोजन अर्पण करते हैं और क्षत्रिय युद्धमें उनको वाहन भी अर्पण करते है ॥ १८ ॥ अंतरिक्ष पृथ्वी स्वर्ग ये सब शाश्वत श्रीकृष्णके वश (अंकुश) में रहते हैं, उन्होंने एक घड़ेमें (मित्रावरुण) देवताका वीर्य भरा था और उसमेंसे वशिष्ठ ऋषि उत्पन्न हुए थे, यह प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ वह मतारिश्वा रूप हैं व्यापक हैं, अश्ववाजी हैं, रश्मिवान् हैं, सविता हैं और आदि-देव हैं, सब असुरोंको जीतने वाले हैं और तीन पैर धर कर तीनों लोकोंको जीतने वाले भी यही हैं ॥ २० ॥ श्रीकृष्णको देवता मनुष्य और पितरोंका आत्मा कहा जाता है और वह यज्ञको जानने वाले वितानरूप हैं रात्रि और दिनका विभाग करके उदय होने वाले सूर्य भी वही हैं, उन्हींके उत्तरायण और दक्षिणायन ये दो अयन हैं ॥ २१ ॥ उनके शरीरमेंसे

ब्राह्मणा वेदविदो जुषन्ति तस्यादित्यो भामुपयुज्य भाति ।२२।
स मासि मास्यध्वरकृद्विधत्ते तमध्वरे वेदविदः पठन्ति । स एवो-
क्तश्चक्रमिदं त्रिनाभि सप्ताश्वयुक्तं वहते वै त्रिधाम ॥ २३ ॥
महातेजाः सर्वगः सर्वसिंहः कृष्णो लोकान् धारयते यथैकः। हंसं
तमोघ्नं च तमेव वीर कृष्णं सदा पार्थ कर्तारमेहि ॥ २४ ॥ स
एकदा कक्षगतो महात्मा तुष्टो विभुः खाण्डवे धूमकेतुः। स राक्ष-
सानुरगांश्चावजित्य सर्वत्रगः सर्वमग्नौ जुहोति ॥ २५ ॥ स एव

किरणें उत्पन्न होती हैं और वह किरणें पृथ्वीके ऊपरके भागमें, तिरछे भागमें और निम्नभागमें पड़ती हैं और पृथ्वीको प्रकाशित करती हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण उनकी सेवा करते हैं और आदित्य उनकी कान्तिको प्रकाशित करके प्रकाशवान् होते हैं २२ प्रत्येक मासमें यज्ञकर्ता पुरुष उनका यजन करते हैं, वेदवेत्ता पुरुष यज्ञमें उनकी स्तुति करते हैं उनको तीन नाभिवाला संवत्सररूपी चक्र कहते हैं, वह चक्र सातघोड़ोंसे जुता हुआ है और तीन धाम वाला है तथा रात दिन चला ही करता है (इस श्लोकमें वर्षका चक्ररूपसे वर्णन किया जैसे चक्रमें तीन नाभि होती हैं तैसे ही इस कालात्मक चक्रमें शीतकाल उष्णकाल और वर्षा-कालरूपी तीन नाभिये हैं तथा चक्रमें जैसे तीन धाम होते हैं,ऐसे ही इस कालचक्रमें बरसात वायु और उष्णता ये तीन धाम हैं)२३ और महातेजस्वी, सर्वत्र व्यापक, सब पशुओंमें सिंहरूप थे श्रीकृष्ण अकेले ही सब लोकोंको धारण करते हैं,हे वीर पार्थ! इन श्रीकृष्णको तू अंधकारका नाश करने वाले सूर्य जान और सदा जगत्का कर्ता समझ ॥२४॥ एक समय व्यापक महात्मा श्रीकृष्ण अग्निका रूप धारण करके खाण्डव वनमें दावाग्निके रूपमें रहे थे और खाण्डवनको भस्म करके सन्तुष्ट होगए थे इन सर्वत्र व्याप्त रहने वाले श्रीकृष्णने राक्षसोंका और उरगोंका

पार्थाय श्वेतमश्वं प्रायच्छत् स एवाश्वानथ सर्वांश्चकारास वन्धुरस्तस्य रथस्त्रिचक्रस्त्रिवच्छिराश्चतुरश्वस्त्रिनाभिः २६ स विहायो व्यदधात् पञ्चनाभिः स निर्ममे गां दिवमन्तरिक्षम् ।सोऽरण्यानि व्यसृजत् पर्वतांश्च हृषीकेशोऽमितदीप्ताग्नितेजाः ॥ २७ ॥ अलंघयद्वै सरितो जिघांसन् शक्रं वज्रं प्रहरन्तं निरास । स महेन्द्रः स्तूयते वै महाध्वरे विप्रै रेको ऋक्सहस्रैः पुराणैः॥२८॥ दुर्वासा वै तेन नान्येन शक्यो गृहे राजन् वासयितुं महौजाः । तमेवाहु-

पराजय करके उन सबका अग्निमें होम कर दिया था ॥ २५ ॥ उन्होंने अर्जुनको श्वेत घोड़े दिये थे, सब घोड़ोंके उत्पन्नकर्ता यही हैं यह विश्व उनका रथस्वरूप हैं वह रथके बंधुर रूप हैं इस संसाररथके तीन चक्र हैं वह तीन प्रकारकी गति वाला है उस में चार घोड़े जुते हुए हैं और उसमें तीन नाभि हैं (संसाररथ के तीन चक्र सत्त्व रज और तम रूप हैं, ऊपर नीचे और मध्यमें इस प्रकार तीन प्रकारकी उसकी गति है, काल अदृष्ट ईश्वरेच्छा तथा संकल्प ये चार उसके घोड़े हैं और संसाररथ के शुभकर्म अर्थात् पुण्यकर्म कृष्णकर्म अर्थात् पापकर्म और शुक्ल कृष्ण अर्थात् मिश्रित कर्म ये तीनप्रकारके कर्म उसकी नाभि है२६ और ये श्रीकृष्ण पञ्चमहाभूतोंके आश्रयरूप हैं और इन्होंने आकाश पृथिवी स्वर्ग और अन्तरिक्षको उत्पन्न किया है, अरण्योंको और पर्वतोंको उत्पन्न किया है, ये इन्द्रियोंके अधिपति हैं, अतिप्रदीप्त अग्निकी समान तेजस्वी हैं ॥ २७ ॥ यह वज्र मारनेको तयार हुए इन्द्रको मारनेकी इच्छासे नदियोंको लाँघ गए थे और इन्होंने इन्द्रका पराजय किया था, ये इन्द्ररूप हैं और ब्राह्मण महायज्ञमें सहस्रों प्राचीन ऋचाओंसे इनकी स्तुति करते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! महातेजस्वी दुर्वासाऋषिको इनके अतिरिक्त और कोई भी अपने घरमें नहीं रख सकता, इनको

ऋषिमेकं पुराणं स विश्वकृद्ध विदधात्यात्मभावान् ॥ २६ ॥
वेदांश्च यो वेदयतेऽधिदेवो विधींश्च यश्चाश्रयते पुराणान्। कामे
वेदो लौकिके यत्फलं च विष्वक्सेनः सर्वमेतत् प्रतीहि ॥ ३० ॥
ज्योतींषि शुक्लानि हि सर्वलोके त्रयो लोका लोकपालास्त्रयश्च।
त्रयोऽग्नयो व्याहृतयश्च तिस्रः सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥३१॥
संवत्सरः स ऋतुः सोर्धमासः सोऽहोरात्रः स कला वै स काष्ठा।
मात्रा मुहूर्ताश्च लवाः क्षणाश्च विश्वक्सेनः सर्वमेतत् प्रतीहि ३२
चन्द्रादित्यौ ग्रहनक्षत्रताराः सर्वाणि दर्शान्यथ पौर्णमासम्।
नक्षत्रयोगा ऋतवश्च पार्थ विष्वक्सेनात् सर्वमेतत् प्रसूतम् ॥३३॥
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च साध्याश्च विश्वे मरुतां गणाश्च।
प्रजापतिर्देवमाताऽदितिश्च सर्वे कृष्णादृषयश्चैव सप्त ॥ ३४ ॥

ही विद्वान् अद्वितीय प्राचीन ऋषि कहते हैं, यह विश्वके स्रष्टा हैं और अपने स्वरूपमेंसे अनेकों पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं२६ ये देवदेव स्वयं वेदाध्यन करते हैं और कराते हैं, अग्निहोत्र आदि प्राचीन विधियोंके आश्रयभूत ये विश्वक्सेन ही हैं और काम्य और लौकिक कर्मके फलरूप भी यही हैं ३० सब लोकोंमें विदित ज्योतिःस्वरूप भी यही हैं,यही त्रिलोकरूप हैं और तीनों लोकोंका पालन करनेवाले भी यही हैं, यज्ञकी तीन अग्निरूप भी यही हैं,यही तीन व्यहृतिरूप हैं,वास्तवमें देवकीपुत्र सर्वदेवरूपहैं३१ यह विश्वक्सेन सम्वत्सर ऋतु पक्ष दिवस रात्रि,कालविभाग कला काष्ठा मात्रा मुहूर्त लव और क्षण आदि सर्व स्वरूप हैं ॥ ३२ ॥ हे पार्थ ! चन्द्रमा, आदित्य ग्रह नक्षत्र तारा सब अमावस्या, सब पूर्णिमा नक्षत्र योग ऋतु ये सब विश्वक्सेनमेंसे उत्पन्न हुआ है ॥ ३३ ॥ रुद्र आदित्य वसु अश्विनीकुमार साध्यदेवता विश्वे देवता, मरुद्गण प्रजापति देवताओंकी माता दिति और सप्तर्षि ये सब श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुए हैं ॥३४॥ विश्वरूप कृष्ण वायु-

वायुर्भूत्वा विक्षिपते च विश्वमग्निर्भूत्वा दहते विश्वरूपः । आपो
भूत्वा मज्जयते च सर्वं ब्रह्मा भूत्वा सृजते विश्वसंघान् । ३५ ।
वेद्यं च यद्वदयते च वेद्यं विधिश्च यश्च श्रयते विधेयम् । धर्मे च
वेदे च बले च सर्वं चराचरं केशवं त्वं प्रतीहि ॥३६॥ ज्योति-
र्भूतः परमोऽसौ पुरस्तात् प्रकाशते यत्प्रभया विश्वरूपः । अपः
सृष्ट्वा सर्वभूतात्मयोनिः पुराऽकरोत् सर्वमेवाथ विश्वम् ॥३७॥
ऋतूनुत्पातान् विविधान्यद्भुतानि मेघान् विद्युत् सर्वमैरावतं च ।
सर्वं कृष्णात् स्थावरं जंगमं च विश्वात्मानं विष्णुमेनं प्रतीहि ३८
विश्वावासं निर्गुणं वासुदेवं संकर्षणं जीवभूतं वदन्ति । ततः

रूप होकर जगत्को विक्षिप्त करते हैं, अग्नि होकर जगत्को भस्म करते हैं, और जलरूप बन कर सब जगत्को डुबाते हैं और ब्रह्मा बन कर अनेक विश्वोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३५ ॥ ये स्वयं ही जानने योग्य हैं, स्वयं ही ज्ञानरूप हैं फिर भी उसके जाननेका प्रयत्न करते हैं यह स्वयं ही विधिरूप हैं तब भी अपने आप धर्मशास्त्रोंमें वेदमें और शक्तिमें कही हुई विधिका आश्रय लेते हैं तू केशवको स्थावरजंगमात्मकरूप जान ॥ ३६ ॥ ये श्रीकृष्ण ज्योतिःस्वरूप हैं और परमभूत हैं अथवा यह श्रीकृष्ण ज्योतिमेंसे उत्पन्न हुए परम अर्थात् श्रेष्ठ हैं कि–जिसकी प्रभासे यह विश्वरूप कृष्ण सबसे प्रथम प्रकाशित होरहे हैं सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाले इन श्रीकृष्णने पहिले जलको उत्पन्न करके फिर सब विश्वको उत्पन्न किया था ॥ ३७ ॥ और और ऋतुएँ. अनेक प्रकारके उत्पात, आश्चर्यजनक पदार्थ, मेघ, बिजली ऐरावत हाथी और स्थावरजंगमात्मक सब वस्तुएँ श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुई हैं और इन विष्णुको तू विश्वकी आत्मा जान ॥ ३८ ॥ इनको विश्वरूप आवास वाले विश्वावास और निर्गुण, वासुदेव जीवभूत संकर्षण और प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध

प्रद्युम्नमनिरुद्धं चतुर्थमाज्ञापयत्यात्मयोनिर्महात्मा ॥ ३६ ॥ स
पञ्चधा पञ्चजनोपपन्नं संचोदयन् विश्वमिदं सिसृक्षुः । ततश्च-
काराविनिमारुतौ च खं ज्योतिरम्भश्च तथैव पार्थ ॥ ४० ॥ स
स्थावरं जंगमं चैवमेतच्चतुर्विधं लोकमिमं च कृत्वा । ततो भूमिं
व्यदधात् पञ्चबीजां द्यौः पृथिव्यां धास्यति भूरि वारि ॥ ४१ ॥
तेन विश्वं कृतमेतद्धि राजन् स जीवयत्यात्मनैवात्मयोनिः । ततो
देवानसुरान् मानवांश्च लोकानृषींश्चापि पितॄन् प्रजाश्च । समा-
सेन विधिवत् प्राणिलोकान् सर्वान् सदा भूतपतिः सिसृक्षुः ४२
शुभाशुभं स्थावरं जङ्गमं च विष्वक्सेनात् सर्वमेतत् प्रतीहि । यद्व-
र्तते यच्च भविष्यतीह सर्वं ह्येतत् केशवं त्वं प्रतीहि ॥४३॥ मृत्यु-

---

भी कहते हैं ऐसे ये आत्मयोनि महात्मा अपनी आज्ञा चलाते हैं ॥ ३६ ॥ इस पञ्चमहाभूतमय विश्वको रचनेकी इच्छा वाले श्रीकृष्ण (देवता असुर मनुष्य पशु और पक्षी इस प्रकार) पाँच प्रकारके हैं, हे पार्थ ! यह पृथिवीको पवनको आकाशको और तेजको सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न करते हैं ॥ ४० ॥ यह श्रीकृष्ण स्थावर जंगमात्मक और (जरायुज स्वेदज अण्डज तथा उद्भिज्जरूप) चार प्रकारके जगत्को उत्पन्न करके पाँचवाँ कर्मरूप जिसमें बीज है ऐसी पृथ्वीको उत्पन्न करते हैं,तथा पृथ्वी पर बहुतसा जल बरसानेके लिये आकाशको भी रचते हैं ।४१॥ हे राजन् ! इन्होंने इस विश्वको भी रचा है यह आत्मयोनि हैं और यह स्वयं ही जगत्को सजीव करते हैं यह देवता असुर मनुष्य लोक ऋषि पितर और प्रजाओंको जीवित रखते हैं वह क्षणभरमें सब प्राणियोंको और लोकोंको रचनेकी इच्छासे सबको जीवित कर देते हैं ॥ ४२ ॥ पुण्यमय पापमय तथा स्थावर जङ्गमरूप संपूर्ण जगत् इन विश्वक्सेनसे ही उत्पन्न होता है तू वर्तमान और भविष्यत्कालको श्रीकृष्णरूप जान ॥ ४३ ॥

श्चैव प्राणिनामन्तकाले साक्षात् कृष्णः शाश्वतो धर्मवाहः ।
भूतं च यच्चेह न विद्म किंचिद्विष्वक्सेनात् सर्वमेतत् प्रतीहि ४४
यत् प्रशस्तं च लोकेषु पुण्यं यच्च शुभाशुभम् । तत्सर्वं केशा-
वोऽचिंत्यो विपरीतमतः परम् ॥ ४५ ॥ एतादृशः केशवोऽतश्च
भूयो नारायणः परमश्चाव्ययश्च । मध्याद्यन्तस्य जगतस्त-
स्थुषश्च बुभूषतां प्रभवश्चाव्ययश्च ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महापुरुषमाहात्म्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

युधिष्ठिर उवाच । ब्रूहि ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं त्वं मधुसूदन ।
वेत्तात्वमस्य चार्थस्य वेद त्वां हि पितामहः॥१॥वासुदेव उवाच ।
शृणुष्वावहितो राजन् द्विजानां भरतर्षभ । यथा तत्त्वेन वदतो

श्रीकृष्ण प्राणियोंके अन्त समयमें कालका रूप धारण करते हैं यह सनातन हैं और धर्मके कारण रूप हैं, जो बात भूतकालमें होगई है और जो होगी विश्वक्सेन ही इस सबके कारण हैं ४४ चौदह लोकोंमें जो उत्तम कर्म हैं, जो पुण्य है, जो शुभ तथा अशुभ है वह सब केशवरूप है, कोई वस्तु केशवसे भिन्न हैं यह विचारना ही असंगत है ॥ ४५ ॥ केशव भगवान् ऐसे हैं और इससे भी अधिक हैं, यह नारायण हैं और सर्वश्रेष्ठ हैं, विकारों से रहित हैं, स्थावर और जङ्गम जगत्के आदि मध्य और अन्त के कारणरूप हैं तथा इस जगत्में उत्पन्न होने वालेको उत्पन्न करने वाले और नाश करने वाले भी यही हैं ॥ ४६ ॥ एकसौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५८ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे मधुसूदन ! ब्राह्मणकी पूजा करनेसे क्या फल मिलता है, यह मुझसे कहिये, आप इस विषयको जानते हैं और पितामह भी आपको इस विषयके ज्ञाता समझते हैं ॥ १ ॥ वासुदेवने कहा, कि-हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! हे

गुणान् वै कुरुसत्तम ॥ २ ॥ द्वारवत्यां समासीनं पुरा मां कुरुनन्दन । प्रद्युम्नः परिपप्रच्छ ब्राह्मणैः परिकोपितः ॥ ३ ॥ किं फलं ब्राह्मणेष्वस्ति पूजायां मधुसूदन । ईश्वरत्वं कुतस्तेषामिहैव च परत्र च ॥४॥सदा द्विजातीन् संपूज्य किं फलं तत्र मानद । एतद्ब्रूहि स्फुटं सर्वं सुमहान् संशयोऽत्र मे । इत्युक्ते वचने तस्मिन् प्रद्युम्नेन तथा त्वहम् । प्रत्यब्रुवं महाराज यत्तच्छृणु समाहितः६ व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां रौक्मिणेय निबोध मे। एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ७ ॥ अस्मिन् लोके रौक्मिणेय तथामुष्मिंश्च पुत्रक । ब्राह्मणप्रमुखं सौम्यं न मेऽत्रास्ति विचारणा८ ब्राह्मणप्रतिपूजायामायुः कीर्तिर्यशो बलम् । लोका लोकेश्वरा-

---

कौरवोत्तम ! मैं तुझसे ब्राह्मणोंके गुण यथार्थरीतिसे कहता हूँ, तू सावधान होकर सुन ॥ २ ॥ हे कुरुनन्दन ! मैं पहिले द्वारिका में बैठा था तब ब्राह्मणोंने मेरे पुत्रको क्रुद्ध कर दिया था, तब उसने मुझसे बूझा था कि-॥ ३ ॥ हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है ? ब्राह्मण इस लोकमें तथा परलोकमें ईश्वर (बड़े) क्यों माने जाते हैं ? ॥ ४ ॥ हे मानद श्रीकृष्ण ! ब्राह्मणोंकी सर्वदा पूजा करनेसे क्या फल मिलता है, मुझे इस बातका बड़ा सन्देह है, अतः इन सब बातोंको साफ साफ कहिये ॥ ५ ॥ प्रद्युम्नके इस प्रकार प्रश्न करने पर मैंने उसको जो उत्तर दिया था उसको तू सावधान होकर सुन ॥६॥ हे रुक्मिणीपुत्र ! ब्राह्मणोंकी पूजाके फलको तू मुझसे सुन, ब्राह्मण सोमके राजा हैं,हे रौक्मिणेय पुत्र ! ब्राह्मण इस लोक में तथा परलोकमें सुख देनेमें ईश्वर (समर्थ) हैं, सब वर्णोंमें ब्राह्मण मुख्य हैं और सत्त्वगुणी हैं, इस बातमें तुझे कुछ विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे आयु कीर्ति यश और बल बढ़ता है, सब लोक और लोकेश्वर

श्चैव सर्वे ब्राह्मणपूजकाः ॥९॥ त्रिवर्गे चापवर्गे च यशः श्रीरोग-शान्तिषु । देवतापितृपूजासु सन्तोष्याश्चैव नो द्विजाः ॥ १०॥ तत्कथं वै नाद्रियेयमीश्वरोऽस्मीति पुत्रक । मा ते मन्युर्महाबाहो भवत्वत्र द्विजान् प्रति ॥ ११ ॥ ब्राह्मणा हि महद्भूतमस्मिल्लोके परत्र च । भस्मकुर्युर्जगदिदं क्रुद्धा प्रत्यक्षदर्शिनः ॥१२॥ अन्यानपि सृजेयुश्च लोकाँल्लोकेश्वरांस्तथा । कथं तेषु न वर्तेरन् सम्यग्ज्ञानात् सुतेजसः ॥ १३ ॥ अवसन्मद्गृहे तात ब्राह्मणो हरिपिंगलः । चीरवासा बिल्वदण्डी दीर्घश्मश्रुः कृशो महान् १४ दीर्घेभ्यश्च मनुष्येभ्यः प्रमाणादधिको भुवि । स स्वैरं चरते लोकान् ये दिव्या ये च मानुषाः ॥ १५ ॥ इमां गाथां गाय-

ब्राह्मणोंके पूजक हैं ॥ ९ ॥ धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गका सम्पादन करनेमें, मोक्ष पानेमें, यश लक्ष्मी और रोगशान्तिमें और देवता तथा पितरोंकी पूजा करनेमें ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना चाहिये ॥ १० ॥ अतः मैं ब्राह्मणोंका आदर क्यों न करूँ ? हे महाभुज पुत्र ! अपनेको राजा समझ कर तुझे ब्राह्मणों पर कोप न करना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि-ब्राह्मण इस लोकमेंतथा परलोकमें महान् प्राणी माने जाते हैं, वे सब जगत्को प्रत्यक्ष देखने वाले हैं वे यदि क्रोध करें तो जगत्को भस्म कर डालें ॥ १२ ॥ वे चाहें तो दूसरे लोकपालोंको भी रच सकते हैं अतः महातेजस्वी पुरुष ब्राह्मणोंको पहिचाननेके कारण ब्राह्मणोंके साथ सद्वर्ताव कैसे न करें ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! हमारे घरमें पहिले एक ब्राह्मण था, उसके शरीरका वर्ण श्याम और पीला था, वह वस्त्रोंके चीथड़े पहिरता था, बिल्व का दण्ड धारण करता था, उसके बड़ी भारी डाढ़ी थी और उसका शरीर दुर्बल था ॥ १४ ॥ पृथिवीके लम्बेसे लम्बे मनुष्यसे भी वह ऊँचा था और देवता तथा मनुष्योंके लोकोंमें

मानश्चत्वरेषु सभासु च । दुर्वाससं वासयेत् को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे ॥ १६ ॥ रोषणः सर्वभूतानां सूक्ष्मेऽप्यपकृते कृते । परिभाषां च मे श्रुत्वा को नु दद्यात् प्रतिश्रयम् ॥ १७ ॥ यो मां कश्चिद्वासयीत न स मां कोपयेदिति । यस्मान्नाद्रियते कश्चित्ततोऽहं समवासयम् ॥१८॥ स संभुंक्ते सहस्राणां बहूनामन्नमेकदा। एकदा सोल्पकं भुंक्ते न चैवेति पुनर्गृहान् ॥ १९ ॥ अकस्माच्च प्रहसति तथाकस्मात् प्ररोदिति । न चास्य वयसा तुल्यः पृथिव्यामभवत्तदा ॥ २० ॥ अथ स्वावसथं गत्वा सशय्यास्तरणानि च । कन्याश्चालंकृता दग्ध्वा ततो व्यपगतः पुनः२१अथ मामब्रवीद् भूयः स मुनिः शंसितव्रतः । कृष्ण पायसमिच्छामि

वह अपनी इच्छानुसार विचरण किया करता था ॥ १५ ॥ और सभाओंमें तथा चौराहोंमे निम्न लिखित गाथाओंको गाता फिरता था 'इस दुर्वासा ब्राह्मणको कौन पुरुष सत्कारपूर्वक अपने घरमें वसावेगा ? ॥ १६ ॥ मैं थोड़ासा अपराध करनेपर भी सब प्राणियोंपर रोष कर बैठता हूँ, मेरी परिभाषाको सुनकर मुझे कौन आश्रय देगा ?॥ १७ ॥ जो मुझे अपने घरमें ठहरावे, वह मुझ पर क्रोध न करे' उसकी इस बातको सुनकर किसी ने उसे अपने घरमें न टिकाया, तब मैंने उसे अपने घरमें ठहरा लिया ॥ १८ ॥ वह मुनि बहुतसे दिनमें सहस्रों मनुष्य जितना जीमें उतना जीमते थे और किसी दिन थोड़ा जीमते थे और किसी दिन बाहर जाकर घरमें आते ही नहीं थे ॥ १९ ॥ वह एकाएक हँस पड़ते थे और एकाएक रो पड़ते थे, उस समय उनकी बराबर अवस्थाका कोई पुरुष पृथ्वी पर नहीं था ॥ २० ॥ वे एक समय अपने रहनेके स्थानमें गए और बिछे हुए पलँग, गद्दे तथा सजी हुई कन्याओंको भस्म करके तहाँसे चले गए ॥२१॥ फिर आये और उन प्रशंसनीय मुनिने मुझसे शीघ्रतासे फिर कहा,

गोक्तुमित्येव सत्वरः ॥ २२ ॥ तदैव तु मया तस्य चित्तज्ञेन गृहे जनः । सर्वाण्यन्नानि पानानि भक्ष्याश्चोच्चावचास्तथा ॥ २३ ॥ भवन्तु सत्कृतानीह पूर्वमेव प्रचोदितः।ततोऽहं ज्वलमानं वै पायसं प्रत्यवेदयम् ॥२४॥ तं भुक्त्वैव स तु क्षिप्रं ततो वचनमब्रवीत् । क्षिप्रमङ्गानि लिम्पस्व पायसेनेति स स्म ह ॥ २५ ॥ अविमृश्यैव च ततः कृतवानस्मि तत्तथा । तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवा-भ्यमृक्षयम् ॥ २६ ॥ स ददर्श तदाभ्याशे मातरं ते शुभाननाम्। तामपि स्मयमानां स पायसेनाभ्यलेपयम् ॥ २७ ॥ मुनिः पायस-दिग्धांगीं रथे तूर्णमयोजयत् । तमारुह्य रथं चैव निर्ययौ स गृहा-न्मम ॥ २८ ॥अग्निवर्णो ज्वलन् धीमान् स द्विजो रथधुर्यवत् ।

कि–हे श्रीकृष्ण ! मुझे दुग्धपाक खानेकी इच्छा है अतः शीघ्रता कर ॥२२॥ मैं दुर्वासाकी बातको जानता था अत एव मैंने मनुष्यों को पहिले ही आज्ञा देरक्खी थी, कि–'सब प्रकारका अन्न, पेय तथा घटिया बढ़िया खानेके पदार्थ मुनिका सत्कार करनेके लिये तयार रखना' इसलिये उन ब्राह्मणकी आज्ञा होते ही मैंने गरमा-गरम दुग्धपाक उनके सामने उपस्थित किया ॥ २४ ॥ उसका भोजन करके उस ब्राह्मणने मुझसे तुरत ही कहा, कि–तू इस दुग्धपाकको अपने अङ्गों पर चुपड़ ले ॥ २५ ॥ मैंने भी उनके कहनेका कुछ विचार न कर अपने शरीर पर दुग्धपाक चुपड़ लिया, इस प्रकार ब्राह्मणका उच्छिष्ट दुग्धपाक मैंने अपने शरीर और मस्तक पर चुपड़ लिया ॥ २६ ॥ उस समय अपने सुन्दर मुखको मटकाती हुई तेरी माता मेरे सामने खड़ी थी उसको उस ब्राह्मणने देखा मैंने हँसती हुई तेरी माताके शरीर पर भी दुग्धपाक मल दिया ॥ २७ ॥ जिसके शरीर पर दुग्धपाक लग रहा था ऐसी तेरी माताको वह मुनि रथमें घोडेकी समान जोड़ कर उस रथमें बैठ कर अपने घरमेंसे बाहर निकले ॥ २८ ॥

प्रतोदेनातुदद्बालां रुक्मिणीं मम पश्यतः ॥२९॥ न च मे स्तोक-मप्यासीद् दुःखमीर्ष्याकृतं तदा । तथा स राजमार्गेण महता निर्ययौ बहिः ॥३०॥ तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं दाशार्हा जातमन्यवः । तत्राजल्पन्मिथः केचित् समाभाष्य परस्परम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणा एव जायेरन्नान्यो वर्णः कथंचन । को ह्येनं रथमास्थाय जीवे-दन्यः पुमानिह ३२आशीविषविषं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरो द्विजः । ब्रह्माशीविषदग्धस्य नास्ति कश्चिच्चिकित्सकः ३३ तस्मिन् व्रजति दुर्धर्षे प्रास्खलद्रुक्मिणी पथि । तन्नामर्षयत श्रीमांस्ततस्तूर्णमचो-दयत् ॥ ३४ ॥ ततः परमसंक्रुद्धो रथात् प्रस्कन्द्य स द्विजः ।

अग्निकी समान झलझलाती हुई कान्ति वाला वह बुद्धिमान् ब्राह्मण मेरे सामने तेरी बाल्यावस्था वाली माता रुक्मिणीको रथमें घोडेकी समान जोत कर उसके पैंने मारने लगा ॥२९॥ उस समय मेरे मनमें ईर्षासे कुछ भी दुःख नहीं हुआ था तब वह ब्राह्मण राजमार्गसे नगरके बाहर जानेको निकला ॥३०॥ इस महान् आश्चर्यको देख कर दाशार्होंको क्रोध चढ़ा और वे एक दूसरेको पुकार २ कर इकठ्ठा कर कहने लगे कि—॥ ३१ ॥ पृथ्वी पर और किसी वर्णकी आवश्यकता नहीं है, ब्राह्मण ही उत्पन्न हों तो अच्छा है, रुक्मिणीको रथमें जोत कर इसके अतिरिक्त और कौनसा मनुष्य जीवित रह सकता है ॥ ३२ ॥ सर्पका विष तीक्ष्ण होता है, परन्तु ब्राह्मण उससे भी अधिक तीक्ष्ण होता है, ब्राह्मणरूपी सर्पके विषसे जो पुरुष दग्ध हो-जाता है, उसकी चिकित्सा करने वाला कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ वह दुराधर्ष ब्राह्मण रथमें बैठ कर चले जारहे थे, इतनेमें मार्गमें रुक्मिणी ठोकर खाने लगी, यह बात उन श्रीमान्को सह्य न हुई और वह एक दम रुक्मिणीको हाँकने लगे ॥ ३४ ॥ तद-नन्तर वह ब्राह्मण बड़े भारी क्रोधमें भर कर रथमेंसे नीचे

पदातिरुत्पथेनैव प्राद्रवदक्षिणामुखः ॥ ३५ ॥ तमुत्पथेन धावंत-
मन्वधावं द्विजोत्तमम्। तथैव पयसा दिग्धः प्रसीद भगवन्निति ३६
ततो विलोक्य तेजस्वी ब्राह्मणो मामुवाच ह । जितः क्रोधस्त्वया
कृष्ण प्रकृत्यैव महाभुज ॥ ३७ ॥ न तेऽपराधमिह वै दृष्टवानस्मि
सुव्रत । प्रीतोऽस्मि तव गोविन्दं वृणु कामान् यथेप्सितान् ॥३८॥
प्रसन्नस्य च मे तात पश्य व्युष्टिं यथाविधि । यावदेव मनुष्या-
णामन्ने भावो भविष्यति ॥ ३९ ॥ यथैवान्ने तथा तेषां त्वयि
भावो भविष्यति। यावच्च पुण्यलोकेषु त्वयि कीर्तिर्भविष्यति ४०
त्रिषु लोकेषु तावच्च वैशिष्ट्यं प्रतिपत्स्यसे । सुप्रियः सर्वलोकस्य
भविष्यसि जनार्दन ॥४१॥ यत्ते भिन्नं च दग्धं च यच्च किंचि-

उतर पड़ा पैरों २ दक्षिण दिशाकी ओरको भागने लगा ।३५।
जब वह ब्राह्मण दक्षिण दिशाकी ओरको भागने लगा तब मैं
अपने दुग्धपाकसे सने हुए शरीरसे उसके पीछे दौड़ता हुआ
कहने लगा, कि—हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये ! ॥ ३६ ॥ तब
उन तेजस्वी ब्राह्मणने मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझसे कहा, कि-
हे महाभुज कृष्ण ! तुमने क्रोधको स्वभावतः जीतलिया है ३७
हे उत्तम व्रतधारी ! मैंने अब तुम्हारा कोई अपराध नहीं देखा है
हे गोविन्द ! मैं तुम पर प्रसन्न होगया हूँ, जो तुम्हारी इच्छा
हो वह वर माँग लो ॥ ३८ ॥ हे तात ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न
होगया हूँ और उसके फलको आप विधिपूर्वक देखिये । मनुष्यों
को अन्न पर जितना भाव (प्रेम) होता है उतना ही भाव तुम
पर होगा और तीनों लोकोंमें तुम्हारी कीर्ति फैल जायगी ३९-४०
तुम तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ होजाओगे तथा हे जनार्दन ! तुम तीनों
लोकोंमें प्रीतिपात्र होजाओगे ॥ ४१ ॥ हे कृष्ण ! मैंने तुम्हारे
घरमें जो वस्तु तोड़ डाली है, जो वस्तु भस्म कर डाली है और
जो वस्तु नष्ट कर दी है उन सब वस्तुओंको आप असली

द्विनाशिनम् । सर्वं तथैव द्रष्टासि विशिष्टं वा जनार्दन ॥ ४२ ॥ यावदेतत् प्रलिप्तं ते गात्रेषु मधुसूदन । अतो मृत्युभयं नास्ति यावदिच्छसि चाच्युत ४३ न तु पादतले लिप्ते कस्मात्ते पुत्रकाद्य वै । नैतन्मे प्रियमित्येवं स मां प्रीतोऽब्रवीत्तदा ॥ ४४ ॥ इत्युक्तोऽहं शरीरं स्वं ददर्श श्रीसमायुतम् । रुक्मिणीं चाब्रवीत् प्रीतः सर्वस्त्रीणां वरं यशः ॥ ४५ ॥ कीर्तिं चानुत्तमां लोके समवाप्स्यसि शोभने । न त्वां जरा वा रोगो वा वैवर्ण्यं चापि भाविनि स्प्रक्ष्यन्ति पुण्यगन्धा च कृष्णमाराधयिष्यसि । षोड़शानां सहस्राणां वधूनां केशवस्य ह ॥ ४७ ॥ वरिष्ठा च सलोक्या च केशवस्य भविष्यसितव मातरमित्युक्त्वा ततो मां पुनरब्रवीत्४८

रूपमें देखेंगे और कोई कोई उससे भी श्रेष्ठ होजावेंगी ॥ ४२ ॥ तथा हे मधुसूदन अच्युत ! तुम्हारे जितने शरीरमें दुग्धपाक चुपड़ा गया था तुम्हारे उतने शरीरमें जब तक तुम न चाहोगे तब तक तुम्हें मृत्युभय नहीं होगा ॥४३॥ परन्तु हे पुत्र ! तुमने अपने चरणोंके दोनों तलुओंमें दुग्धपाक क्यों नहीं चुपड़ा, यह बात मेरे मनको अच्छी नहीं लगती" इस प्रकार उस ब्राह्मणने उस समय मुझसे प्रसन्न होकर कहा था ॥ ४४ ॥ उनके इस प्रकार कहनेपर मैंने अपने शरीरको देखा तो वह शोभायमान दीखा, तदनन्तर उन ब्राह्मणने प्रसन्न होकर रुक्मिणीसे कहा, कि-तेरा यश सब स्त्रियोंसे अधिक होगा ॥ ४५ ॥ हे शोभने ! तुझे जगत्में सबसे अधिक कीर्त्ति मिलेगी, हे भाविनी! तुझ पर विवर्णता रोग और बुढ़ापा आक्रमण नहीं करेगा ॥४६॥ तुम्हारे शरीरकी गन्ध पवित्र होगी तुम श्रीकृष्णकी आराधना करोगी और श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र स्त्रियोंमें तुम पटरानी होओगी और केशवके साथ स्वर्गमें जाओगी इस प्रकार उसने तेरी माता से कहा, फिर उस अग्निकी समान तेजस्वी दुर्वासाने मुझसे

प्रस्थितः सुमहातेजा दुर्वासाग्निरिव ज्वलन् । एवैव ते बुद्धिरस्तु ब्राह्मणान् प्रति केशव ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा स तदा पुत्र तत्रैवांतरधीयत । तस्मिन्नंतर्हिते चाहमुपांशुव्रतमाचरम् ॥ ५० ॥ यत् किंचिद् ब्राह्मणो ब्रूयात् सर्वं कुर्यामिति प्रभो । एतद् व्रतमहं कृत्वा मात्रा ते सह पुत्रक ॥ ५१ ॥ ततः परमहृष्टात्मा प्राविशं गृहमेव च । प्रविष्टमात्रश्च गृहे सर्वं पश्यामि तन्नवम् ॥ ५२ ॥ यद्भिन्नं यच्च वै दग्धं तेन विप्रेण पुत्रक । ततोहं विस्मयं प्राप्तः सर्वं दृष्ट्वा नवं दृढम् ॥५३॥ अपूजयं च मनसा रौक्मिणेय सदा द्विजान् । इत्यहं रौक्मिणेयस्य पृच्छतो भरतर्षभ ॥ ५४ ॥ माहात्म्यं द्विजमुख्यस्य सर्वमाख्यातवांस्तदा । तथा त्वमपि कौन्तेय ब्राह्मणान् सततं प्रभो ॥५५॥ पूजयस्व महाभागान् वाग्भिर्दानैश्च नित्यदा ।

कहा कि ब्राह्मणोंपर तेरी ऐसी ही भक्ति रहे ४९ हे पुत्र! इस प्रकार कह कर वह वहाँ ही अन्तर्धान होगए,मैंने भी उस दिनसे यह गुप्त व्रत करलिया है,कि-५० "ब्राह्मण जो कुछ कहें उसको मैं अवश्य करूँगा" हे पुत्र ! मैं तेरी माताके साथ व्रत धारण कर प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया और मैंने घरमें घुसकर देखा तो मुझे सब नया ही नया दीखा ५२ हे पुत्र ! उन ब्राह्मणने जिन चीजोंको तोड़ डाला था और जिन चीजोंको नष्टकर डाला था,उन सब वस्तुओंको मैं नई और अतिदृढ़ देख कर आश्चर्यमें होगया५३ उस दिनसे हे रुक्मिणीपुत्र ! मैं सब ब्राह्मणोंका मनसे पूजन करनेलगा, हे कुन्तीपुत्र राजन् ! रुक्मिणीके पुत्रके बूझने पर मैंने उसको उत्तम ब्राह्मणमाहात्मय कहकर सुनाया था हे महाभाग्य कुन्तीपुत्र ! तुम भी इसीप्रकार महाभाग्यवान्-ब्राह्मणोंकी सदा वाणी और दानोंसे पूजन करना,मुझे ब्राह्मणोंके प्रसादसे ऐसा फल मिला है और हे भरतवंशी राजन् ! मेरे विषयमें जो

एवं व्युष्टिमहं प्राप्तो ब्राह्मणस्य प्रसादजम् । यच्च मामाह भीष्मोऽयं तत्सत्यं भरतर्षभ ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दुर्वासोभिक्षा नाम ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

युधिष्ठिर उवाच । दुर्वाससः प्रसादात्ते यत्तदा मधुसूदन । अवाप्तमिह विज्ञानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ महाभाग्यं च यत्तस्य नामानि च महात्मनः । तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सर्वं मतिमतां वर ॥ २ ॥ वासुदेव उवाच । हन्त ते कीर्तयिष्यामि नमस्कृत्य कपर्दिने । यदवाप्तं मया राजञ्छ्रेयो यच्चार्जितं यशः ३ प्रयतः प्रातरुत्थाय यदधीये विशाम्पते । प्राञ्जलिः शतरुद्रीयं तन्मे निगदतः शृणु ॥४॥ प्रजापतिस्तत् ससृजे तपसोऽन्ते महातपाः । शंकरस्त्वसृजत्तात प्रजाः स्थावरजंगमाः ॥५॥ नास्ति किंचित्

बात कही है, वह सत्य ही है ॥५५॥ एकसौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५९ ॥ छ छ छ छ छ

युधिष्ठिरने बूझा, कि-हे मधुसूदन ! दुर्वासाके प्रसादसे उस समय जो विज्ञान आपको प्राप्त हुआ हो उसका आप वर्णन करिये ॥ १ ॥ और उन महात्मासे आपने जो उत्तम कल्याण पाया हो उसको और उन महात्माके उत्तम नामोंका मुझसे वर्णन करिये, हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! मैं सब बातोंको यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ वासुदेवने कहा, कि-हे राजन् ! मैं दुर्वासा (शिव) को नमस्कार करके उनसे जो यश और सौभाग्य मैंने पाया है उसका मैं वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥ और हे राजन् ! मैं प्रभातमें उठ सावधान होकर दोनों हाथ जोड़कर शतरुद्रियका पाठ करता हूँ, उसको भी मैं तुमसे कहता हूँ तू सुन ॥ ४ ॥ महातपस्वी प्रजापतिने तप करनेके अनन्तर शतरुद्री रची थी; हे तात ! श्रीशंकरने इस स्थावर तथा जंगम प्रजा

परं भूतं महादेवाद्व विशाम्पते । इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः ॥६॥ न चैवोत्सहते स्थातुं कश्चिदग्रे महात्मनः । न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ७ ॥ गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः । विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ते च पतन्ति च ॥ ८ ॥ घोरं च निनदन्तस्य पर्जन्यनिनदोपमम् । श्रुत्वा विशीर्येद्धृदयं देवानामपि संयुगे ॥६॥यांश्च घोरेण रूपेण पश्येत् क्रुद्धः पिनाकधृत् । न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न पन्नगाः ॥१०॥ कुपिते सुखमेधन्ते तस्मिन्नपि गुहागताः । प्रजापतेश्च दक्षस्य यजतो वितते क्रतौ ॥ ११ ॥ विव्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा । धनुषा बाणमुत्सृज्य स घोषं विननाद च ॥ १२ ॥तेन शर्म कुतः शांतिं विषादं लेभिरे सुराः । विद्धे च

को उत्पन्न किया था ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कोई भी प्राणी महादेवसे श्रेष्ठ नहीं है, इस लोकमें तथा तीनों लोकोंमें महादेव प्राणियोंके प्रभु हैं ॥ ६ ॥ कोई भी प्राणी इन महात्माके सामने खड़ा नहीं रह सकता तथा तीनों लोकोंमें भी इनके समान और कोई नहीं है ॥ ७ ॥ महादेवजी जब संग्राममें कोपमें भर जाते हैं तब शत्रु उनकी गंधसे भी भानरहित होजाते हैं,बहुतसे मर जाते हैं, बहुतसे काँप उठते हैं और बहुतसे पृथिवी पर गिर जाते हैं ॥ ८ ॥ उनकी गर्जना भयंकर है और मेघकी गर्जनाकी समान है,युद्धमें उनकी गर्जनाको सुन कर देवताओंका हृदय फट जाता है६ पिनाक धनुषको धारण करने वाले शंकर क्रोधमें भर भयंकर दृष्टिसे देखें तो देवता असुर और सर्प भी नष्ट होजायँ१० और महादेवजी कोपमें भरजाँय तो गुफामें रहने वाले भी सुखी न रहें, दक्ष प्रजापतिने महायज्ञका आरम्भ किया था ॥ ११ ॥ उसको क्रोधायमान भवने निर्भय हो धनुषमेंसे बाण छोड़ कर नाश डाला था और बड़ी भारी गर्जनाकी थी ॥ १२ ॥ उस गर्जनाको

सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ १३ ॥ तेन ज्यातलघोषेण सर्वे
लोकाः समाकुलाः । बभूवुरवशाः पार्थ विषेदुश्च सुरासुराः १४
आपश्चुक्षुभिरे चैव चकम्पे च वसुन्धरा । व्यद्रवन् गिरयश्चापि
द्यौः पफाल च सर्वशः ॥१५॥ अन्धेन तमसा लोकाः प्रावृता
न चकाशिरे । प्रनष्टा ज्योतिषां भाश्च सह सूर्येण भारत १६
भृशं भीतास्ततः शान्तिं चक्रुः स्वस्त्ययनानि च । ऋषयः सर्व-
भूतानामात्मनश्च हितैषिणः ॥ १७ ॥ ततः सोऽभ्यद्रवद्द देवान्
रुद्रो रौद्रपराक्रमः । भगस्य नयने क्रुद्धः प्रहारेण व्यशातयत् १८
पूषणं चाभिदुद्राव पादेन च रुषान्वितः । पुरोडाशं भक्षयतो
दशनान्वै व्यशातयत् ॥ १९ ॥ ततः प्रणेमुर्देवास्ते वेपमानाः

सुनकर देवताओंको सुख और शांति कैसे मिलती, महेश्वरने कोपमें भर कर दक्ष प्रजापतिके यज्ञको नष्ट किया, कि-देवता खिन्न होगए ॥ १३ ॥ शंकरकी धनुषकी डोरीके टंकार शब्दको सुन कर सब लोक घबड़ा गए और बेभान होगए, तब हे पार्थ ! देवता और दैत्य खेद करने लगे ।१४। जलाशयका जल क्षुब्ध होगया, पृथिवी काँप उठी, पर्वत डगमगा गए, आकाश चारों ओरसे फटसा गया । १५ । सब लोक अन्धकारसे ढकगए और दीखना बन्द होगया हे भरतवंशी राजन् ! सूर्यकी और तथा दूसरे प्रकाशवान् ग्रहोंकी कान्ति क्षीण होगई ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंका और अपना हित चाहने वाले ऋषि अति भयभीत होगए और उन्होंने पुष्टिप्रद कर्म और स्वस्तिवाचन किया १७ भयंकर पराक्रम करने वाले रुद्रने दक्षप्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करके देवताओं पर चढ़ाईकी और क्रोधमें भर कर एक प्रहारमें ही भगके दोनों नेत्रोंको फोड़ डाला ॥ १८ ॥ तदनन्तर रोषमें भरे हुए शंकर पैदल ही पूषाकी ओर दौड़े और पुरोडाशका भक्षण करने वाले पूषाके दाँतोंको तोड़ डाला ॥ १९ ॥ यह

स्म शंकरं । पुनश्च संदधे रुद्रो दीप्तं सुनिशितं शरम् ॥ २० ॥ रुद्रस्य विक्रमं दृष्ट्वा भीता देवाः सहर्षिभिः । ततः प्रसादयामासुः शर्वं ते विबुधोत्तमाः ॥२१॥ जेपुश्च शतरुद्रीयं देवाः कृत्वांजलिं तदा । संस्तूयमानस्त्रिदशैः प्रससाद महेश्वरः २२ रुद्रस्य भागं यज्ञे च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् । भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ २३ ॥ तेन चैव हि तुष्टेन स यज्ञः सन्धितोऽभवत् । यद्यच्चापहृतं तत्र तत्तथैवान्वजीवयत् ॥ २४ ॥ असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि । आयसं राजतं चैव सौवर्णमपि चापरम् ॥ २५ ॥ नाशकत्तानि मघवा जेतुं सर्वायुधैरपि । अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः २६ तत ऊचुर्महात्मानो देवाः

देख कर देवता काँपने लगे और शंकरको प्रणाम करके खड़े होगए, तब शंकरने दुबारा अति प्रकाशवान् तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाया ॥ २० ॥ रुद्रके पराक्रमको देख कर देवता और ऋषि भयभीत होगए फिर ये उत्तमोत्तम देवता शर्व(रुद्र) को प्रसन्न करने लगे ॥ २१ ॥ उस समय देवता दोनों हाथों को जोड़ कर शतरुद्रियका पाठ करने लगे, देवताओंके स्तुति करने पर महेश्वर प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ और उन्होंने रुद्रके लिये भी यज्ञमें उत्तम भाग काढ़ा और भयके कारण शंकरकी शरणमें गए ॥ २३ ॥ इस प्रकार देवताओंने रुद्रका भाग रुद्रके अर्पण कर दिया तब शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने खण्डित यज्ञको पूर्ण किया और तहाँसे जिन जिन पदार्थोंका हरण किया था, उन सब पदार्थोंको फिर तहाँ पहुँचा दिया और तोड़े फोड़े पदार्थोंको फिर वैसा ही कर दिया ॥ २४ ॥ पहिले वीर्यवान् असुरोंके लोहेके चाँदीके सोनेके इस प्रकार तीन विमान आकाश में विचरा करते थे ॥ २५ ॥ इन्द्र प्रयत्न करने पर भी किसी आयुधसे उन विमानोंको न जीत सका और असुर देवताओंको

सर्वे समागताः । रुद्ररौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु । २७ ।
जहि दैत्यान् सह पुरैर्लोकांस्त्रायस्व मानद । स तथोक्तस्तथे-
त्युक्त्वा कृत्वा विष्णुं शरोत्तमम् ॥२८॥ शल्यमग्निं तथा कृत्वा
पुङ्खं वैवस्वतं यमम् । वेदान् कृत्वा धनुः सर्वान् ज्यां च सावि-
त्रिमुत्तमाम् ॥२९॥ ब्रह्माणं सारथिं कृत्वा विनियुज्य च सर्वशः।
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तेन तानि बिभेद सः ॥ ३० ॥ शरेणादित्य
वर्णेन कालाग्निसमतेजसा । ते सुराः सपुरास्तत्र दग्धा रुद्रेण
भारत ॥ ३१ ॥ तं चैवांकगतं दृष्ट्वा बालं पंचशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्तदा ॥ ३२ ॥ असूयतस्य
शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः । सवज्रं स्तम्भयामास तं बाहुं परि-

दुःख देने लगे, तब वे सब शंकरकी शरणमें गए॥ २६ ॥
और तहाँ पर एकत्रित हुए सब महात्मा देवताओंने शङ्करसे
कहा, कि-हे रुद्र ! सब कर्मोंमें पशु (असुर) रुद्र(क्रोधी)बन
गए हैं (और कर्म नहीं करने देते) ॥२७॥ अतः आप उनके
नगरोंके साथ उनका नाश करिये और हे मानद ! तीन लोकों
की रक्षा करिये, देवताओंके इस प्रकार कहने पर शंकरने तथा-
स्तु कह कर विष्णुको उत्तम बाण बनाया ॥ २८ ॥ अग्निको
शल्य बनाया, विवस्वान्के पुत्र यमको पुच्छ बनाया, सब वेदों
को धनुष बनाया, सावित्रीको उत्तम डोरी बनाया ॥ २९ ॥
ब्रह्माजीको सारथी बनाया फिर उन्होंने तीन पर्व वाले तीन
शल्य वाले बाणका सब ओरसे उपयोग करके असुरोंके नगरों
का नाश कर डाला ॥ ३० ॥ हे भरतवंशी राजन् !रुद्रने सूर्यकी
समान कान्ति वाले प्रलयकालकी समान तेजस्वी बाण मार कर
असुरोंको नगर सहित भस्म कर दिया ॥ ३१ ॥ उस समय
गोदमें एक पाँच शिखा वाले बालकको देख कर उसको जानने
की इच्छासे उमाने बूझा, कि-यह कौन है ? ॥३२॥ उस समय

घोषमम् ॥ ३३ ॥ न संबुबुधिरे चैव देवास्तं भुवनेश्वरम् ।
सप्रजापतयः सर्वे तस्मिन मुमुहुरीश्वरे ॥ ३४ ॥ ततो ध्यात्वा च
भगवान् ब्रह्मा तममितौजसम् । अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तमु-
मापतिम् ॥ ३५ ॥ ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
बभूव स तदा बाहुर्बलहन्तुर्यथा पुरा॥ ३६ ॥ स चापि ब्राह्मणो
भूत्वा दुर्वासा नाम वीर्यवान् ।द्वारवत्यां मम गृहे चिरं कालमुपा-
वसन् ॥ ३७ ॥ विप्रकारान् प्रयुंक्ते स्म सुबहून् मम वेश्मनि ।
तानुदारतया चाहं चक्षमे चाति दुःसहान् ॥ ३८ ॥ स वै रुद्रः
स च शिवः सोग्निः शर्वः स सर्वजित् । स चैवेन्द्रश्च वायुश्च
सोऽश्विनौ स च विद्युतः ॥ ३९ ॥ स चन्द्रमाः स चेशानः स

इन्द्रको बालक पर ईर्षा उत्पन्न होगई और उसने उसके वज्र मारना चाहा परन्तु उस बालकने उसके वज्रको और लोहदण्ड की समान भुजाको स्तंभित कर दिया ॥३३॥ देवता और सब प्रजापति भुवनेश्वर पहिचान न सके थे इससे वे सब मोहमें पड़ गए थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने ध्यान धर कर अपार बली शंकरको पहिचाना और यह शंकर सबसे श्रेष्ठ हैं, यह जान कर ब्रह्माजीने उमापति शंकरको प्रणाम किया ३५ और देवताओंने भी उनको और रुद्रको प्रसन्न किया तब बल दैत्यको मारने वाले इन्द्रका हाथ भी प्रथमकी समान होगया३६ यही शंकर वीर्यवान् दुर्वासा नामक ब्राह्मणका रूप धारण करके द्वारिकामें मेरे घर बहुत दिनों तक रहे थे ॥ ३७ ॥ और उन्होंने मेरे घरमें बहुतसे असह्य उपद्रव किये थे, परन्तु मैंने उदारतासे उन सबको सहा था ॥३८॥ वह रुद्र हैं, वह शिव हैं, वह अग्नि हैं, वह सर्वरूप हैं, वह सबको जीतने वाले हैं, वह इन्द्र हैं, वह वायु हैं वह अश्विनीकुमार हैं, वह विजयी हैं३९ वह चन्द्र हैं,वह ईशान हैं,वह वरुण हैं,वह सूर्य हैं, वह काल हैं,वह अन्तक हैं,वह

सूर्यो वरुणश्च सः । स कालः सोन्तकोमृत्युः स यमो राज्यहानि
च ॥ ४० ॥ मासर्धमासा ऋतवः सन्ध्ये सम्वत्सरश्च सः । स
धाता स विधाता च विश्वकर्मा स सर्ववित् ॥ ४१ ॥ नक्षत्राणि
ग्रहाश्चैव दिशोऽथ प्रदिशस्तथा । विश्वमूर्त्तिरमेयात्मा भगवान्
परमद्युतिः ॥ ४२ ॥ एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव हि ।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ ४३ ॥ ईदृशः स महा-
देवो भूयश्च भगवानतः । न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
ईश्वरप्रशंसा नाम षष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १६० ॥

वासुदेव उवाच । युधिष्ठिर महाबाहो महाभाग्यं महात्मनः ।
रुद्राय बहुरूपाय बहुनाम्ने निबोध मे ॥ १ ॥ वदन्त्यग्निं महा-
देवं तथा स्थाणुं महेश्वरम् । एकाक्षं त्र्यंबकं चैव विश्वरूपं
शिवं तथा ॥ २ ॥ द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ।

मृत्यु हैं, वह यम हैं, वह रात्रि हैं और दिन हैं ॥ ४० ॥ वह मास
हैं, वह पक्ष हैं, वही ऋतु प्रभात सायं संध्यारूप और सम्वत्सर-
रूप हैं, वह धाता हैं, विधाता हैं, विश्वकर्मा और सर्ववेत्ता हैं ४१
वह नक्षत्र ग्रह दिशा उपदिशा विश्वमूर्त्तिरूप अमेयात्मा षडैश्वर्य-
सम्पन्न और परम कान्तिमान् हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् शंकर एक
प्रकारके दो प्रकारके अनेक प्रकारके सैंकड़ों प्रकारके सहस्रों
प्रकारके और लाखों प्रकारके हैं ॥ ४३ ॥ भगवान् महादेव ऐसे
हैं, कि-सौ वर्षमें भी उनके गुणोंका वर्णन नहीं होसकता ॥ ४४ ॥
एकसौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६० ॥ छ छ

वासुदेवने कहा, कि-हे महाभुज युधिष्ठिर ! रुद्र अनेक रूप
धारण करने वाले हैं और अनेक नाम वाले हैं उनको प्रणाम कर
के मैं उन महात्माका महाभाग्य कहता हूँ, उसको तुम सुनो ॥ १ ॥
मनुष्य महादेवको अग्नि स्थाणु महेश्वर एकनेत्र त्र्यम्बक विश्वरूप

घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः ॥ ३ ॥ उग्रा घोरा तनुर्यास्य सोऽग्निर्विद्युत् स भास्करः । शिवा सौम्या च या त्वस्य धर्मस्त्वापोऽथ चन्द्रमाः ॥ ४ ॥ आत्मनोऽर्धं तु तस्याग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते । ब्रह्मचर्यं चरत्येका शिवा चास्य तनुस्तथा ॥५॥ यास्य घोरतमा मूर्तिर्जगत् संहरते तथा । ईश्वरत्वान्महत्त्वाच्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥ यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान् । मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ ७ ॥ देवानां सुमहान् यच्च यच्चास्य विषयो महान् । यच्च विश्वं महत् पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ८ ॥ धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटीत्यत उच्यते । समेधयति यन्नित्यं सर्वान्वै सर्वकर्मभिः ॥ ९ ॥

तथा शिव नामसे पुकारते हैं ॥ २ ॥ महादेवके दो स्वरूप हैं, उनको वेदको जानने वाले ब्राह्मण जानते हैं, उनका एक शरीर घोर है और दूसरा शिव (कल्याण) कारक है, इनके अतिरिक्त इनके और भी बहुतसे रूप हैं ॥ ३ ॥ इनकी जो उग्र तथा घोर मूर्त्ति है वह अग्नि बिजली और सूर्यरूप है तथा उनकी जो शिवमूर्त्ति है, वह धर्म जल और चन्द्ररूप है ॥ ४ ॥ अग्नि उनके शरीरका आधा भाग है और सोम भी उनके शरीरका आधा भाग है यह प्रसिद्ध है, इनमें भी जो इनकी 'शिवा नामकी मूर्त्ति है, वह ब्रह्मचर्यका पालन करती है ॥ ५ ॥ और उनकी जो महाघोर मूर्ति है, वह जगत्का संहार करती है, उसमें ईश्वरत्व और महत्त्व होनेसे वह महेश्वर नामसे पुकारी जाती है ॥६॥ जो सब को भस्म करते हैं, जो तीक्ष्ण हैं, जो उग्र हैं, जो प्रतापी हैं और जो मांस रुधिर तथा मज्जाका भक्षण करते हैं वह (इस कारण) रुद्र कहलाते हैं ॥७॥ जो देवताओंमें महान् हैं, जिनको (जानने का) विषय महान् है, जो महान् विश्वकी रक्षा करते हैं वह (इसी कारण) महादेव कहलाते हैं ॥ ८ ॥ उनका रूप धुएँकी समान

मनुष्यान् शिवमन्विच्छंस्तस्मादेष शिवः स्मृतः । दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणान्नृणां स्थिरश्च यत् ॥ १० ॥ स्थिरलिंगश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः । यदस्य बहुधारूपं रूपं भूतं भव्यं भव-त्तथा ॥ ११ ॥ स्थावरं जंगमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः । विश्वे-देवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः॥ १२॥ सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोक्षिमयोपि वा । चक्षुषः प्रभवेत्तेजो नास्त्यंतोऽथास्य चक्षुषाम् ॥ १३ ॥ सर्वथा यत्पशून् पाति तैश्च यद्रमते सह । तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात् पशुपतिः स्मृतः ॥ १४ ॥नित्येन ब्रह्म-चर्येण लिंगमस्य यदा स्थितम् । महयत्यस्य लोकश्च प्रियं ह्येत-न्महात्मनः ॥ १५ ॥ विग्रहं पूजयेद्यो वै लिंगं वापि महात्मनः ।

है, अत एव वह धूर्जटि कहलाते हैं और वह सब प्रकारके कर्म करके सब प्राणियोंको पवित्र करते हैं ॥ ९ ॥ और मनुष्योंका कल्याण चाहते हैं इसलिये वे शिव कहलाते हैं, और वह ऊपरके भागमें स्थित होकर प्राणियोंके प्राणोंका नाश करते हैं, स्वयं स्थिर हैं, उनका लिंग भी स्थिर है इससे उनको स्थाणु कहते हैं, भूतकाल भविष्यत्काल और वर्तमान कालमें उनके अनेक रूप हैं, इस प्रकार स्थावर तथा जंगमोंमें अनेक रूपधारी होनेसे वह बहुरूप कहलाते हैं, विश्वेदेवता उन में निवास करते हैं, इससे वह विश्वरूप कहलाते हैं १०—१२ उनके नेत्रोंका तेज प्रभावान् हैं और उनके नेत्रोंका पार नहीं है इस लिये वे सहस्राक्ष अयुताक्ष अथवा सर्वतोक्षिमय कहलाते हैं १३ वह पशुओं (जीवों) का सदा पालन करते हैं और पशुओं (जीवों) के साथ सदा विहार करते हैं और उनके अधिपति हैं इससे वह पशुपति कहलाते हैं १४ उनकी मूर्ति ब्रह्मचर्यका सर्वदा पालन करती है, इससे मनुष्य उनकी पूजा करते हैं और वह पूजा महात्मा शङ्करको प्रिय है १५ जो पुरुष महात्मा शङ्करके

लिंगं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १६ ॥ ऋषयश्चापि देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा। लिंगमेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थतम् ॥ १७ ॥ पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः। सुखं ददति प्रीतात्मा भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ १८ ॥ एष एव श्मशानेषु देवो वसति निर्दहन्। यजन्ते ये जनास्तत्र वीरस्थाननिषेविणः ॥ १९ ॥ विषयस्थः शरीरेषु स मृत्युः प्राणिनामिह। स च वायुः शरीरेषु प्राणापानशरीरिणाम्॥२०॥ तस्य घोराणि रूपाणि दीप्तानि च बहूनि च। लोके यान्यस्य पूज्यन्ते विप्रास्तानि विदुर्बुधाः ॥ २१ ॥ नामधेयानि देवेषु बहून्यस्य यथार्थवत्। निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात् कर्मभिस्तथा ॥ २२ ॥ वेदे चास्य विदुर्विप्राः शतरुद्रीयमुत्तमम्। व्यासेनोक्तं च यच्चापि

शरीरकी अथवा उनके लिंगकी पूजा करता है, उसके ऊपर शंकर प्रसन्न होजाते हैं, सदा उनके लिंगकी पूजा करने वाला बड़ी भारी लक्ष्मी पाता है १६ ऋषि देवता गंधर्व तथा अप्सराएँ आकाशगामी शंकरके लिंगकी पूजा करते हैं १७ और लिंगकी पूजा करनेसे महेश्वर भी प्रसन्न होते हैं और भक्तवत्सल शंकर मनमें प्रसन्न होकर भक्तोंको अविनाशी सुख देते हैं १८ यही शंकर सब विश्वका दाह करके श्मशानमें निवास करते हैं और मनुष्य भी वीरस्थानमें निवास कर इन शंकरका यजन करते हैं १९ ये शरीरमें रहने वाले विषयोंमें निवास करके रहते हैं, यह प्राणिमात्रके मृत्युरूप हैं तथा सब प्राणियोंके शरीरमें प्राण और अपानरूपसे वर्तमान हैं २० उनके भयंकर और प्रदीप्त बहुतसे रूप हैं मनुष्य जगत्में उन रूपोंकी पूजा करते हैं और विद्वान् ब्राह्मण उन रूपोंको जानते हैं २१ उनके महत्व और व्यापकत्व आदि कर्मोंके अर्थोंके अनुसार देवताओंमें उनके अनेकों नाम प्रसिद्ध हैं ॥ २२ ॥ वेदमें उत्तम शतरुद्रिय गाई गई

उपस्थानं महात्मनः ॥ २३ ॥ प्रदाता सर्वलोकानां विश्वं चाप्युच्यते महत् । ज्येष्ठभूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा ऋषयोऽपरे ॥ २४ ॥ प्रथमो ह्येष देवानां मुखादग्निमजीजनत् । ग्रहैर्बहुविधैः प्राणान् संरुद्धानुत्सृजत्यपि ॥ २५ ॥ विमुञ्चति न पुण्यात्मा शरण्यः शरणागतान् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् २६ स ददाति मनुष्येभ्यः स एवाक्षिपते पुनः । शक्रादिषु च देवेषु तस्यैश्वर्यमिहोच्यते ॥ २७ ॥ स एव व्यापृतो नित्यं त्रैलोक्यस्य शुभाशुभे । ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ॥ २८ ॥ महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः । बहुभिर्विविधै रूपै-

---

है, उसको ब्राह्मण जानते हैं और व्यासजीने भी महात्मा शंकर की स्तुति की है ॥ २३ ॥ वह सब लोकोंको सुख देने वाले हैं, उनको विश्व और महान् नामसे कहते हैं, ब्राह्मण और दूसरे ऋषि उनको ज्येष्ठभूत नामसे कहते हैं ॥ २४ ॥ वह देवताओंके अग्रणी हैं, उन्होंने अपने मुखमेंसे अग्निको उत्पन्न किया है, वे अनेक प्रकारके दुःखोंको सहन किया करते हैं और वे अपने भक्तोंके लिये अपने प्राणोंको त्यागने पर भी उद्यत रहते हैं ॥ २५ ॥ वह पुण्यात्मा तथा शरणागतकी रक्षा करने वाले हैं वह शरणागतोंका त्याग नहीं करते हैं, वह भक्त मनुष्योंको आयु आरोग्य ऐश्वर्य धन तथा सम्पूर्ण कामनाएँ देते हैं, तथा पीछे खेंच भी लेते हैं, इन्द्र आदि देवताओंमें उनका ही ऐश्वर्य विराजमान है यह प्रसिद्ध है । २६ । २७ । वह सदा तीनों लोकोंका शुभ और अशुभ करनेमें परायण रहते हैं तथा ईश्वरत्वके कारण वे सब कामनाओंके ईश्वर कहलाते हैं २८ वे लोकोंके महेश्वर हैं तथा महात्माओंके महेश्वर हैं उन्होंने अनेक प्रकारके बहुतसे रूपोंसे इस जगत्को व्याप्त कर रक्खा है, उन

विश्वं व्याप्तमिदं जगत् । तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम् ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
महेश्वरमाहात्म्यं नाम एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तवति वाक्ये तु कृष्णे देवकिनन्दने।
भीष्मं शान्तनवं भूयः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ निर्णये वा
महाबुद्धे सर्वधर्मविदाम्वर । प्रत्यक्षमागमो वेति किं तयोः कारणं
भवेत् ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । नास्त्यत्र संशयः कश्चिदिति मे
वर्तते मतिः । शृणु वक्ष्यामि ते प्राज्ञ सम्यक् त्वं मेऽनुपृच्छसि ३
संशयः सुगमस्तत्र दुर्गमस्तस्य निर्णयः । दृष्टं श्रुतमनन्तं हि यत्र
संशयदर्शनम् ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षं कारणं दृष्ट्वा हैतुकाः प्राज्ञमानिनः ।

का जो मुख है वह समुद्रमें वड़वानलरूपसे रहता है ॥ २९ ॥
एक सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-देवकीनन्दन श्रीकृष्णके इसप्रकार कहने पर युधिष्ठिरने शन्तनुके पुत्र भीष्मजीसे फिर बूझा, कि-॥१॥ हे महाबुद्धिमान् ! हे सब धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! निर्णय करनेमें प्रत्यक्ष प्रमाण प्रबल है अथवा शास्त्रप्रमाण प्रबल हैं, इन दोनोंमें प्रबल प्रमाण कौनसा है ॥२॥ भीष्मजीने कहा, कि-मुझे तो इस विषयमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है हे प्राज्ञ ! तूने मुझसे ठीक प्रश्न बूझा, मैं तुझे उसका उत्तर देता हूँ, तू सावधान होकर सुन ॥ ३ ॥ धार्मिक-विषयमें सन्देह करना तो सहज है, परन्तु उसका निर्णय करना बड़ा कठिन है, प्रत्यक्ष प्रमाण बहुतसे हैं और शास्त्रप्रमाण भी बहुतसे हैं, उनमें ही सन्देह होता है अर्थात् कहीं प्रत्यक्ष प्रमाणसे शास्त्रप्रमाण बलवान् होता है और कहीं शास्त्रप्रमाणकी अपेक्षा प्रत्यक्षप्रमाण बलवान् होता है ॥ ४ ॥ आपनेको ही बुद्धिमान् मानने वाले तर्कवादी प्रत्यक्षको ही प्रमाण कारण मानकर यह निश्चय कर

नास्तीत्येवं व्यवस्यन्ति सत्यं संशयमेव च ॥५॥ तदयुक्तं व्यवस्यन्ति बालाः पण्डितमानिनः । अथ चेन्मन्यसे चैकं कारणं किं भवेदिति ॥ ६ ॥ शक्यं दीर्घेण कालेन युक्तेनातंद्रितेन च । प्राणयात्रामनेकां च कल्पमानेन भारत ॥ ७ ॥ तत्परेणैव नान्येन शक्यं ह्येतस्य दर्शनम् । हेतूनामंतमासाद्य विपुलं ज्ञानमुत्तमम् ८ ज्योतिः सर्वस्य लोकस्य विपुलं प्रतिपद्यते । न त्वेव गमनं राजन् हेतुतो गमनं तथा । अग्राह्यमनिबद्धं च वाचा सम्परिवर्जयेत् ९ युधिष्ठिर उवाच । प्रत्यक्षं लोकतः सिद्धिर्लोकश्चागमपूर्वकः ।

बैठे हैं, "प्रत्यक्षके अतिरिक्त और कोई वस्तु सत्य ही नहीं है, वैदिकोंका उस पर आक्षेप करना और उस पर सन्देह करना वास्तवमें ठीक नहीं है" ऐसा कहकर अपनेको पण्डित मानने वाले बालमूर्ख हैं, कदाचित् तू यह कहे, कि-एक ब्रह्म जगत्का कारण कैसे होसकता है ? ॥५ ॥ ६॥ तो इसका उत्तर यह है कि-हे भरतर्षभ ! बहुत काल तक अभ्यास (अनुभव) करने से और तन्द्रारहित होनेपर (जागृत रहकर योगसाधना करने पर) अनेक प्रकारसे जीवन बितानेसे तुझे प्रतीत होगा (अर्थात् ब्रह्म प्रतीत होगा) ॥७॥ केवल योगपरायण होनेसे ही जगत् के कारणरूप ब्रह्मका दर्शन होसकता है और किसी प्रकार ब्रह्मका ज्ञान नहीं होसकता, जब सब संशयोंका नाश होजाता है तब विपुल और उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है ॥८॥ अर्थात् सब जगत्को प्रकाशित करने वाला उत्तम ज्ञान मिलता है, तर्कसे जिस ज्ञानकी प्राप्ति होती है, वह ज्ञानकी प्राप्ति नहीं मानी जाती है और जो ज्ञान अग्राह्य है तथा वेदमें जिसका प्रतिपादन नहीं किया है उसको सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि हे पितामह ! प्रत्यक्ष अनुमान आगम और शिष्टाचार इस प्रकार बहुतसे प्रमाण हैं, इनमेंसे जो प्रमाण उत्तम हो

शिष्टाचारो बहुविधस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १० ॥ भीष्म उवाच । धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः । संस्थायत्नैरपि कृता कालेन प्रतिभिद्यते ॥ ११ ॥ अधर्मो धर्मरूपेण तृणैः कूप इवावृतः । ततस्तैर्भिद्यते वृत्तं शृणु चैव युधिष्ठिर ॥१२॥ अवृत्ता ये तु भिन्दन्ति श्रुतित्यागपरायणाः । धर्मविद्वेषिणो मन्दा इत्युक्तस्तेषु संशयः ॥ १३ ॥ अतृप्यन्तस्तु साधूनां य एवागमबुद्धयः । परमित्येव सन्तुष्टास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १४ ॥ कामार्थौ पृष्ठतः कृत्वा लोभमोहानुसारिणौ । धर्म इत्येव सम्बुद्धस्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १५ ॥ न तेषां भिद्यते वृत्तं यज्ञाः स्वाध्यायकर्म च ।

उसका मुझसे वर्णन करिये ॥ १० ॥ बलवान् दुरात्माओंके धर्मका नाश कर डालते हैं तब धर्मनिष्ठ पुरुष उनकी रक्षा करते हैं ! तो भी समय आनेपर धर्मका नाश होजाता है ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर ! जैसे तृणोंसे कूप ढका हुआ होता है, इसी प्रकार धर्मरूपी ढकनसे अधर्म ढका हुआ है, अर्थात् इसप्रकार दुर्वृत्त पुरुष शिष्टाचारका नाश करते हैं, इस विषयको तू सुन १२ जो सदाचाररहित पुरुष शिष्टाचारका नाश करते हैं, जो श्रुतिको त्यागनेमें तत्पर रहते हैं और जो धर्मसे द्वेष करते हैं वे मन्द-बुद्धि पुरुष ही प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे धार्मिक विषयोंमे सन्देह करते हैं ॥१३॥ परन्तु जो पुरुष सत्पुरुषोंसे धर्मका तत्त्व जानने में उत्सुक रहते हैं, जिनकी बुद्धि वेदोंके ज्ञानसे संस्कृत (शुद्ध) होजाती है और जो सन्तुष्ट रहते हैं, वे उत्तम प्रमाणरूप हैं, उनकी तू उपासना कर और उनसे प्रश्न बूझ ॥ १४ ॥ तू लोभ तथा मोहका अनुसरण करनेवाले अर्थ और कामकी उपेक्षा कर, और एक धर्म ही जानने योग्य है अतः तू धर्मनिष्ठोंकी उपासना कर और उनसे प्रश्न बूझ ॥ १५ ॥ सत्पुरुषोंके शीलका नाश नहीं होता है वे यज्ञ स्वाध्याय तथा शौच आदि आचारका पालन

आचारः कारणं चैव धर्मश्चैकस्त्रयं पुनः॥१६॥युधिष्ठिर उवाच। पुनरेव हि मे बुद्धिः संशये परिमुह्यति। अपारे मार्गमाणस्य परं तीरमपश्यतः॥ १७ ॥ वेदः प्रत्यक्षमाचारः प्रमाणं तत् त्रयं यदि। पृथक्त्वं लभ्यते चैषां धर्मश्चैकस्त्रयं कथम् ॥१८॥ भीष्म उवाच। धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः। यद्येवं मन्यसे राजंस्त्रिधा धर्मविचारणा ॥ १६ ॥ एक एवेति जानीहि त्रिधा धर्मस्य दर्शनम्। पृथक्त्वे च न मे बुद्धिस्त्रयाणामपि वै तथा॥२०॥ उक्तो मार्गस्त्रयाणां च तत्तथैव समाचर॥ जिज्ञासा न तु कर्तव्या

किया करते हैं, शील-शौच आदि आचार तथा वेद इन तीनों को मिलाकर एक धर्म होता है (उस धर्मका तुझे साधन करना चाहिये) ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि-अपार समुद्रमें दूसरा किनारा खोजने वाले और किनारेको न देखने वाले मेरी बुद्धि फिर एक सन्देहवश मोहमें ,पड़ गई है ॥ १७ ॥ वेद प्रत्यक्ष (शील) और आचार (शौच आदि) यदि इन तीनों को प्रमाण माना जाय तो ये तीनों भिन्न२ हैं और धर्म तो एक ही है तो फिर उसके तीन विभाग कैसे होसकते हैं अर्थात् प्रमाण के भेदसे धर्म भी तीन होने चाहियें ? ॥ १८ ॥ भीष्मजीने कहा कि-महाबली दुरात्मा धर्मका नाश करते हुए दीखते हैं,हे राजन्! यदि तुम धर्मकी विचारणाको तीन प्रकारकी समझते हो तो तुम्हारा मत तर्कानुसार है ॥ १६ ॥ धर्म एक ही है और अविभाज्य है, परन्तु वह तीन प्रकारसे जाननेमें आता है, वे तीनों प्रमाण धर्मके भिन्न प्रमाण हैं यह मेरा मत नहीं है (परन्तु ये तीनों एकत्रित प्रमाण हैं अर्थात् ये तीनों अनुकूल हों तो धर्म-प्रमाण समझना चाहिये) ॥ २० ॥ मैंने तुझसे तीनों प्रमाणों का मार्ग कहकर सुना दिया, इसी प्रकार तू धर्मका आचरण कर, परन्तु तर्क वितर्क करके धर्मसम्बन्धी विचार करना उचित

धर्मस्य परितर्कणात् ॥२१॥ सदैव भरतश्रेष्ठ मा ते भूदत्र संशयः । अन्धो जड इवाशंकी यद्ब्रवीमि तदाचर ॥ २२ ॥ अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम् । अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेषु च वृत्तिर्या पितृपैतामहोचिता । तामन्वेहि महाबाहो धर्मस्यैते हि देशिकाः ॥ २४ ॥ प्रमाणमप्रमाणं वै यः कुर्यादबुधो जनः । न स प्रमाणतामर्हो विवादजननो हि सः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणानेव सेवस्व सत्कृत्य बहुमन्य च । एतेष्वेव त्विमे लोकाः कृत्स्ना इति निबोध तान् ॥२६॥ युधिष्ठिर उवाच ।

नहीं है (धर्म अतीन्द्रिय हैं— इन्द्रियोंके विषयोंसे पर है । वह प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाननेमें नहीं आता और आचार भी नाशवान् होता है अतः वह भी धर्ममें प्रमाण नहीं माना जासकता, अब वेद अवशिष्ट रहा अतएव उसमें जो कहा है उसको ही धर्म समझना चाहिये, तर्कसे धर्मका विचार न करना चाहिये, किन्तु वेदसे धर्मका विचार करना चाहिये) ॥२१॥ हे भरतर्षभ राजन् ! तू वेदके विषयमें कभी सन्देह न करना और मैं तुझसे जो धर्मकी बातें कहता हूँ उनका तू निःशंक होकर अन्धे और जड़की समान आचरण कर ॥ २२ ॥ अहिंसा सत्य अक्रोध और दान इन चारका हे अजातशत्रु ! तू सेवन कर, क्योंकि—यह सनातन धर्म है ॥२३॥ और तू अपने पिता पितामहके अनुरूप ब्राह्मणों पर वृत्ति रख और हे महाभुज ! ऐसी वृत्तिका तू आचरण भी कर, क्योंकि—ब्राह्मण धर्मके उपदेशक हैं ॥ २४ ॥ जो पुरुष अमुक प्रमाण है और अमुक प्रमाण नहीं है ऐसी बातें करते हैं वे अज्ञानी प्रमाण जाननेके पात्र नहीं हैं और उनको विवाद फैलाने वाले ही जानना चाहिये ॥ २५ ॥ तू ब्राह्मणोंका बडा भारी आदर सत्कार कर उनकी सेवा कर और तू इन सब लोकोंको ब्राह्मणोंके आधार पर ही स्थित जान ॥२६॥ युधिष्ठिरने बूझा

ये च धर्ममसूयन्ते ये चैनं पर्युपासते । ब्रवीतु मे भवानेतत् क्व ते गच्छन्ति तादृशाः ॥ २७ ॥ भीष्म उवाच । रजसा तमसा चैव समवस्तीर्णचेतसः । नरकं प्रतिपद्यन्ते धर्मविद्वेषिणो जनाः २८ ये तु धर्मं महाराज सततं पर्युपासते । सत्यार्जवपराः सन्तस्ते वै स्वर्गभुजो नराः ॥ २९॥ धर्म एव गतिस्तेषामाचार्योपासनाद्भवेत् । देवलोकं प्रपद्यन्ते ये धर्मं पर्युपासते ॥ ३० ॥ मनुष्या यदि वा देवाः शरीरमुपताप्य वै। धर्मिणः सुखमेधन्ते लोभद्वेषविवर्जिताः ३१ प्रथमं ब्रह्मणः पुत्रं धर्ममाहुर्मनीषिणः । धर्मिणः पर्युपासन्ते फलं पक्वामिवाशयः ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर उवाच । असतां कीदृशं रूपं साधवः किं च कुर्वते । ब्रवीतु मे भवानेतत् सन्तोऽसन्तश्च

कि-जो धर्मसे द्वेष करते हैं और जो धर्मका आचरण करते हैं, वे किन लोकोंमें जाते हैं ? यह आप मुझे बताइये ॥ २७ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-रजोगुण और तमोगुणसे मलिन चित्तवाले और धर्मद्वेषी पुरुष नरकमें पडते हैं । २८॥ और हे महाराज ! जो पुरुष धर्मका आचरण सदा करते हैं और सत्य तथा सरलता परायण रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं ॥ २९ ॥ आचार्यकी सेवा करनेसे वे धर्ममार्गमें तत्पर रहते हैं और वे धर्माचरण करने वाले देवलोकमें जाते हैं ॥ ३० ॥ जो मनुष्य और देवता शरीर पर कष्ट सहकर धर्माचरण करते है तथा लोभ और द्वेषको त्याग देते हैं वे सुख भोगते हैं ३१ मनको वशमें रखनेवाले विद्वान् कहते हैं, कि- धर्म ब्रह्माजीका प्रथम पुत्र है और लोकोंका मन जैसे पके हुए फलको खाने पर आसक्ति रखता है, इसीप्रकार धर्मनिष्ठ पुरुष धर्मकी उपासना करते हैं ३२ युधिष्ठिरने बूझा, कि-असत्पुरुषका स्वरूप कैसा होता है ? सत्पुरुष कैसा कर्म करते हैं तथा सत्पुरुष कैसे होते हैं और असत्पुरुष कैसे होते हैं, इसका आप मुझसे वर्णन

कीदृशाः ॥ ३३ ॥ भीष्म उवाच । दुराचाराश्च दुर्धर्षा दुर्मुखाश्चाप्यसाधवः॥ साधवः शीलसम्पन्नाः शिष्टाचारस्य लक्षणम् ३४ राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च धर्मिणः । नोपसेवन्ति राजेन्द्र सर्गं मूत्रपुरीषयोः ॥ ३५ ॥ पञ्चानामशनं दत्वा शेषमश्नन्ति साधवः । न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रांत्यार्द्रपाणयः ॥ ३६ ॥ चित्रभानुमनड्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् । ब्राह्मणं धार्मिकं वृद्धं ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ३७ ॥ वृद्धानां भारतप्तानां स्त्रीणां चक्रधरस्य च । ब्राह्मणानां गवां राज्ञां पन्थानं ददते च ये ॥ ३८ ॥ अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च । तथा शरणकामानां

करिये ३३ भीष्मजीने कहा, कि-जिनके आचार दूषित होते हैं, जो दुर्धर्ष (क्रूर) होते हैं और जो दुर्मुख होते हैं अर्थात् जो मनमें आवे सो कहदेते हैं, उनको दुर्जन समझना चाहिये और जो शीलसम्पन्न हों उनको सत्पुरुष समझना चाहिये और यही शिष्टाचारका लक्षण है ३४ हे राजेन्द्र ! जो राजमार्ग (आम सडक) पर गौओंके मध्यमें और धान्यके ढेरों पर मूत्र नहीं करते हैं और मलत्याग नहीं करते हैं उनको धर्मनिष्ठ समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ सत्पुरुष (देवता पितर भूत अतिथि और कुटुम्बी इन) पाँचको भोजन करानेके अनन्तर बाकी बचे हुए अन्नका भोजन करते हैं, भोजन करते समय वड़बड़ नहीं करते हैं, गीले हाथ शयन नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥ अग्नि वृषभ देवता गोठ चौराहा ब्राह्मण धर्मनिष्ठ पुरुष और वृद्धोंकी प्रदक्षिणा करते हैं उनको धर्मनिष्ठ सत्पुरुष समझना चाहिये ३७ जो पुरुष वृद्ध पुरुषोंको भारसे थके हुओंको स्त्रियोंको बहुतसे ग्रामोंके स्वामियोंको ब्राह्मणोंको गौओंको और राजाको जानेके लिये मार्ग देदेते हैं उनको धर्मनिष्ठ और सत्पुरुष समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ जो पुरुष सकल अतिथियोंका सेवकोंका अपने

मानां गोप्ता स्यात् स्वागतमदः ॥ ३९ ॥ सायं प्रातमनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् । नांतरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः ॥४०॥ होमकाले यथा वन्हिः कालमेव प्रतीक्षते । ऋतुकाले तथा नारी ऋतुमेव प्रतीक्षते ॥ ४१ ॥ नान्यदा गच्छते यस्तु ब्रह्मचर्यं च तत्स्मृतम् । अमृतं ब्राह्मणा गाव इत्येतत् त्रयमेकतः ॥ ४२ ॥ तस्माद्गोब्राह्मणं नित्यमर्चयेत यथविधि । यजुषा संस्कृतं मांसमुपभुंजन्न दुष्यति । पृष्ठमांसं वृथामांसं पुत्रमांसं च तत्समम् ४३ स्वदेशे परदेशे वाप्यतिथिं नोपवासयेत् । कर्म वै सफलं कृत्वा गुरूणां प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥ गुरुभ्यस्त्वासनं देयमभिवाद्याभि-

कुटुम्बियोंका और शरण चाहने वालोंका रक्षण करते हैं और उनकी आवभगत (स्वागत) करते हैं उनको सत्पुरुष और धर्मनिष्ठ समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ देवताओंने प्रातःकाल और सायंकाल इस प्रकार दो वार भोजन करनेका विधान किया है और बीच में भोजन करनेका विधान नहीं है, इस भोजनको उपवासकी विधिकी समान जानना चाहिये ॥ ४० ॥ अग्नि जैसे होमका समय होने पर होमकी बाट देखता है, तैसे ही नारी भी ऋतुका समय होने पर ऋतुकी बाट देखा करती है ॥ ४१ ॥ जो पुरुष ऋतुकालके अतिरिक्त और समय स्त्रीके पास नहीं जाता है, उस पुरुषको ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाला समझना चाहिये, अमृत ब्राह्मण और गौएँ ये तीनों एकसे हैं ॥ ४२ ॥ इस लिये गौओंका और ब्राह्मणोंका यथाविधि सदा पूजन करना चाहिये, जिस मांसका वेदके मंत्रोंसे संस्कार किया होता है, उस मांसको खानेसे खाने वालेको दोष नहीं लगता है, पशुकी पीठके मांसको और देवार्पण न किये हुए मांसको और पुत्रके मांसको (इन तीनोंको) एकसा समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ स्वदेशमें अथवा परदेशमें अतिथिको उपवास न करावे, कर्मको सफल

पूज्य च । गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ ४५ ॥
वृद्धान्नाभिभवेज्जातु न चैतान् प्रेषयेदिति । नासीनः स्यात्
स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते ॥ ४६ ॥ न नग्नामीक्षते नारीं न
नग्नान् पुरुषानपि । मैथुनं सततं गुप्तमाहारं च समाचरेत् ॥४७॥
तीर्थानां गुरवस्तीर्थं चोक्षाणां हृदयं शुचि । दर्शनानां परं ज्ञानं
सन्तोषः परमं सुखम् ॥ ४८ ॥ सायं प्रातश्च वृद्धानां शृणुयात्
पुष्कला गिरः । श्रुतमाप्नोति हि नरः सततं वृद्धसेवया ॥४९॥
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् । यच्छेद्वाङ्मनसी
नित्यमिन्द्रियाणि तथैव च ॥ ५० ॥ संस्कृतं पायसं नित्यं यवागूं

करके और अभ्यासको पूर्ण करके गुरुके सामने निवेदन करे ४४
गुरुको प्रणाम करके और उनकी पूजा करके उनको बैठनेके लिये
आसन देय, गुरुकी पूजा करनेसे पुरुषकी आयु कीर्ति और
लक्ष्मी बढ़ती है ॥ ४५ ॥ वृद्ध पुरुषोंका किसी दिन पराभव न
करे, तथा किसी दिन उनके ऊपर आज्ञा भी न चलावे और
जब वृद्ध पुरुष खड़े हों तब छोटी अवस्था वाला पुरुष स्वयं
न बैठे, ऐसा करनेसे उसकी आयु बढ़ जाती है ॥ ४६ ॥ नंगी
स्त्रीको न देखे, पुरुषोंको भी नग्नस्थितिमें न देखे, मैथुन और
आहार सदा गुप्त होकर करे ॥ ४७ ॥ गुरु सब तीर्थोंके तीर्थ-
रूप हैं, पवित्र वस्तुओंमें हृदय (विशेष) पवित्र है, ज्ञानोंमें
ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ है और सन्तोष परम सुख है ॥ ४८ ॥ सायंकाल
और प्रातःकाल सत्पुरुषोंकी हितभरी बातें सुने, वृद्ध पुरुषोंकी
सेवा करनेसे पुरुषोंको शास्त्रकी बातें मालूम होती रहती हैं ४९
स्वाध्याय करने समय तथा भोजन करने समय दाहिने हाथका
उपयोग करना चाहिये अर्थात् दाहिने हाथसे भोजन करना चाहिये
और दाहिने हाथमें पुस्तक रखनी चाहिये, मन वाणी और
इन्द्रियोंको नियममें रखना चाहिये ॥ ५० ॥ अष्टकाश्राद्धमें पितर

कृसरं हविः । अष्टकाः पितृदैवत्या ग्रहाणामभिपूजनम् ॥ ५१ ॥ श्मश्रुकर्मणि मङ्गल्यं क्षुतानामभिनन्दनम् । व्याधितानां च सर्वेषामायुषामभिनन्दनम् ॥ ५२ ॥ न जातु त्वमति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम् । त्वंकारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते ॥ ५३ ॥ अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत् । पापमाचक्षते नित्यं हृदयं पापकर्मिणः ॥ ५४ ॥ ज्ञानपूर्वकृतं कर्म च्छादयन्ते ह्यसाधवः । ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने ॥ ५५ ॥ न मां मनुष्याः पश्यन्ति न मां पश्यन्ति देवताः । पापेनाभिहितः पापः पापेनैवाभिजायते ॥ ५६ ॥ यथा वार्धुषिको वृद्धिं दिनभेदे प्रतीक्षते ।

देवता और ग्रहोंका दुग्धपाकसे जौकी लपसीसे तिल चावल आदि की खिचड़ीसे तथा हविसे सदा पूजन करना चाहिये ॥ ५१ ॥ डाढ़ी और मस्तकके केशोंको उतरवाते समय मंगलसूचक शब्दों का उच्चारण करना चाहिये, छींकके समय छींकने वालेको "शतं जीव" अर्थात् सौ वर्ष तक जीवित रह कह कर अभिनन्दन देना चाहिये और सब रोगियोंको भी इसी प्रकार अभिनन्दन देना चाहिये ॥ ५२ ॥ बड़ी भारी आपत्तिमें पड़ जाने पर भी गुरुओंसे तू कहके न बोलना चाहिये, तू कहना और उनका वध इन दोनों को विद्वान् एकसा समझते हैं ॥ ५३ ॥ जो अपनी समान हो, जो अपनेसे उतरता हो तथा जो अपना शिष्य हो उससे तू कह करके बोला जासकता है, जो पापकर्म करते हैं उनका हृदय सदा पापकी ही साक्षी देता रहता है ॥ ५४ ॥ असत्पुरुष ज्ञानपूर्वक कर्म करके उसको छिपाना चाहते हैं, और जो जान बूझकर किये हुए पापोंको महात्माओंसे छिपाते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥ पापी मनुष्य समझते हैं, कि-हमैं कोई नहीं देख रहा है और देवता भी हमैं नहीं देखते हैं, परन्तु इसमें उन की भूल है । पापकर्म करनेवाला पुरुष पापीके ही घर उत्पन्न

धर्मेण पिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत् ॥ ५७ ॥ यथा लवणमंभोभिराप्लुतं प्रविलीयते । प्रायश्चित्तहतं पापं तथा सद्यः प्रणश्यति तस्मात् पापं न गूहेत गूहमानं विवर्धयेत् । कृत्वा तत्साधुष्वाख्येयं ते तत् प्रशमयन्त्युत ॥ ५९ ॥ आशया संचितं द्रव्यं कालेनैवोपभुज्यते । अन्ये चैतत् प्रपद्यन्ते वियोगे तस्य देहिनः ।६०। मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः । तस्मात् सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते ॥६१॥ एक एव चरेद्धर्मं न धर्मध्वजिको भवेत् । धर्मवाणिजका ह्येते ये धर्ममुपभुंजते ॥ ६२ ॥ अर्चेद्देवानदम्भेन

होता है ॥ ५६ ॥ जैसे ब्याज लेने वाला पुरुष एक दिन बीत कर दूसरा दिन होजायगा तो मुझे ब्याज मिलेगा इस प्रकार ब्याजके बढ़नेकी बाट देखा करता है, इसीप्रकार पाप भी दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है, किन्तु उस पापको कम कर दिया जाय तो धर्मकी वृद्धि हुआ करती है ॥ ५७ ॥ जैसे नमककी डलीको जलमें डालनेसे,वह गल जाती है इसी प्रकार प्रायश्चित्तसे मारा हुआ पाप भी तुरत ही नष्ट होजाता है ॥५८॥ अतएव पापको छिपाना न चाहिये और उसको छुपाकर बढ़ाना न चाहिये, पाप कर्म बन जानेपर सत्पुरुषोंसे कहदे तब वे सत्पुरुष उस पापको नष्ट कर देते हैं ॥ ५९ ॥ बड़ी२ आशासे जिस धनका संग्रह करके रक्खा होता है, परन्तु समय पर उसका उपभोग न किया जाय तो संग्रह करने वाले मनुष्यके मरने पर दूसरे पुरुष उसका उपभोग करते हैं॥६०॥विद्वान् कहते हैं, कि—सब प्राणियोंका मन ही धर्मकी कसौटीरूप है, अतः सब प्राणी धर्मका आचरण करनेको ही दौड़ते हैं ॥ ६१ ॥ पुरुष अकेला ही धर्मका आचरण करे, धर्म कर्म करके उसको लोगोंसे न कहे, जो पुरुष धर्म पर आजीविका चलाते हैं और धर्मके फलको भोगते हैं उन पुरुषोंको धर्मका व्यापार करनेवाला समझना चाहिये ॥ ६२॥

सेवेतामायया गुरून् । निधिं निदध्यात् पारत्र्यं यात्रार्थं दान-
शब्दितम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रमाणकथने द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि ।
भागधेयान्वितस्त्वर्थान् कृशो बालश्च विन्दति १ नालाभकाले
लभते प्रयत्नेऽपि कृते सति । लाभकालेऽप्रयत्नेन लभते विपुलं
धनम् ॥ २ ॥ कृतयत्नाफलाश्चैव दृश्यन्ते शतशो नराः । अय-
त्नेनैधमानाश्च दृश्यन्ते बहवो जनाः ॥ ३ ॥ यदि यत्नो भवे-
न्मर्त्यः स सर्वं फलमाप्नुयात् । नालभ्यं चोपलभ्येत नृणां भरत-
सत्तम ॥ ४ ॥ प्रयत्नं कृतवन्तोपि दृश्यन्ते ह्यफला नराः । मार्ग-

---

दंभरहित होकर देवताओंका पूजन करना चाहिये, निष्कपट होकर गुरुकी सेवा करनी चाहिये तथा परलोककी यात्रामें हित-प्रद दान शब्दसे प्रसिद्ध धर्मनिधिका संग्रह करना चाहिये ६३

एकसौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥ छ छ

युधिष्ठिरने कहा, कि-भाग्यहीन मनुष्य अतिबली होने पर भी धन नहीं पासकता और भाग्यवान् पुरुष दुर्बल वा बालक हो तव भी धनवान् होजाता है ॥ १ ॥ मनुष्य प्रयत्न करने पर भी धनप्राप्तिका समय न आने पर धन नहीं पासकता और लाभ का समय आने पर विना प्रयत्नके भी पुरुषको बहुतसा धन (अनायास ही) मिल जाता है ॥ २ ॥ सैंकड़ों मनुष्य यत्न न करने पर भी कुछ फल नहीं पाते हैं और बहुतसे पुरुष यत्न करने पर भी बढते ही चले जाते हैं ॥ ३ ॥ मनुष्य यदि यत्न करने पर धन पासकता हो तो सबका यत्न सफल ही होजाय परन्तु हे भरतर्षभ राजन् ! मनुष्योंको जो वस्तु (प्रारब्धवश) अलभ्य होती है, वह वस्तु तो मिलती ही नहीं ॥ ४ ॥ और

त्यायशतैरर्थो न मार्गश्चापरः सुखी॥५॥ अकार्यमसकृत् कृत्वा दृश्यन्ते ह्यधना नराः।धनयुक्ताः स्वकर्मस्थाश्च दृश्यन्ते दृश्यंते चापरेऽधनाः॥६॥ अधीत्य नीतिशास्त्राणि नीतियुक्तो न दृश्यते । अनभिज्ञश्च साचिव्यं गमितः केन हेतुना ॥ ७ ॥ विद्यायुक्तो ह्यविद्यश्च धनवान् दुर्मतिस्तथा । यदि विद्यामुपाश्रित्य नरः सुखमवाप्नुयात्॥ न विद्वान् विद्यया हीनं वृत्त्यर्थमुपसंश्रयेत् । यथा पिपासां जयति पुरुषः प्राप्य वै जलम् ॥ ८ ॥ इष्टार्थो विद्यया ह्येव न विद्यां प्रजहेन्नरः । नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि । तृणाग्रे-

---

मनुष्य प्रयत्न करने पर भी निष्फल रहते हुए ही देखनेमें आते हैं, कोई पुरुष सैंकड़ों उपायों करके धन कमाना चाहता है, तब भी उसको धन नहीं मिलता दूसरी ओर धन पानेके लिए कुछ भी उपाय न करनेवाला पुरुष धन पाकर सुख भोगता है॥५॥ बहुत से मनुष्य वारम्वार धन पानेके लिये कुकर्म करने पर भी निर्धन ही रहते हैं और बहुतसे पुरुष कर्म करके धनवान् होजाते हैं और कितने ही (सु) कर्म करके भी निर्धन ही रहते (दीखते) हैं ६ बहुतसे पुरुष नीतिशास्त्र पढ़ने पर भी नीतिज्ञ नहीं होते हैं और जिनको नीतिशास्त्रका ज्ञान नहीं होता है वे राजाके मन्त्री हो जाते हैं इसका क्या कारण है ॥७॥ विद्यावान् भी धनी होजाते हैं और मूर्ख भी धनी होजाते हैं तथा विद्यावान् निर्धन और धनवान् दुर्बुद्धि होते हैं, यदि पुरुष विद्या पढ़नेसे धनी होसकते हों तो फिर विद्वान् पुरुष पैसेके लिये धनीका आश्रय ही क्यों लेय? जैसे जलको पीनेसे पुरुषकी तृषा शान्त होजाती है । ८ । ९ । यदि इस प्रकार विद्यासे इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती हो तो पुरुष विद्याको त्यागे ही नहीं, जिसका मरणसमय नहीं आया होता है, वह सैंकड़ों बाणोंसे बिंधने पर भी नहीं मरसकता और जिसका समय आजाता है वह तृणके अग्रभागसे छू जाने पर भी

णापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ १० ॥ भीष्म उवाच ।
ईहमानः समारम्भान् यदि नासादयेद्धनम् । उग्रं तपः समारो-
हेन्न ह्यनुप्तं प्ररोहति ॥ ११ ॥ दानेन भोगी भवति मेधावी
वृद्धसेवया । अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १२ ॥
तस्माद्द्यान्न याचेत पूजयेद्धार्मिकानापि । सभाषी प्रिय-
कृच्छान्तः सर्वसत्वाविहिंसकः ॥ १३ ॥ यदा प्रमाणं प्रसवः
स्वभावश्च सुखासुखे । दंशकीटपिपीलानां स्थिरो भव युधिष्ठिर १४
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे
धर्मप्रशंसायां त्रिषष्ट्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥
भीष्म उवाच कार्यते यच्च क्रियते सच्चासच्च कृताकृतम् ।
तत्राश्वसीत सत्कृत्वा असत् कृत्वा न विश्वसेत् ॥ १ ॥

मर जाता है ॥१०॥ भीष्मजीने कहा, कि-यदि पुरुषको अनेक कार्य करनेपर भी धन न मिले तो उसे उग्र तप करना चाहिये, क्यों कि-बोये विना कुछ उगता नहीं है ॥ ११॥ मनुष्य दान देनेसे भोगी [भोग भोगने वाला] होजाता है, वृद्धोंकी सेवा करनेसे पुरुष बुद्धिमान् होजाता है और अहिंसासे दीर्घायु पाता है १२ इस लिये पुरुष याचना न करे और दान देय, धर्मिष्ठ पुरुषोंकी पूजा करे, सुन्दर भाषण देय, दूसरेका प्रिय करे, शान्त रहे और सब प्राणियोंकी हिंसा न करे ॥ १३॥ हे युधिष्ठिर ! डाँस कीड़े और चीटियोंको सुख और दुःख मिलनेमें तथा उनकी उत्पत्ति में पूर्वजन्मके कर्म ही कारण हैं, अतः हे युधिष्ठिर ! तू भी स्थिर हो और चञ्चलताको त्यागकर सत्कर्म कर ॥ १४ ॥ एकसौ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६३ ॥ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि-जो पुरुष स्वयं धर्म करता है उसको उसका फल मिलता है और जो पुरुष दूसरोंसे धर्म कराता है उसका भी उसको फल मिलता है इसी प्रकार जो पुरुष स्वयं

काल एव सर्वकाले निग्रहानुग्रहौ ददत् । बुद्धिमाविश्य भूतानां धर्माधर्मौ प्रवर्तते ।२। यदा त्वस्य भवेद्बुद्धिर्धर्मार्थस्य प्रदर्शनात् तदाश्वसीत धर्मात्मा दृढबुद्धिर्न विश्वसेत् ॥ ३ ॥ एतावन्मात्र-मेतद्धि भूतानां प्राज्ञलक्षणम् । कालयुक्तोऽप्युभयविच्छेषं युक्तं समाचरेत् ॥ ४ ॥ यथा ह्युपस्थितैश्वर्याः प्रजायन्ते न राजसाः । एवमेवात्मनात्मानं पूजयन्तीह धार्मिकाः ॥५॥ न ह्यधर्मतयाऽधर्मं दद्यात् कालः कथञ्चन । तस्माद्विशुद्धमात्मानं जानीयाद्धर्मचारि-णम् ॥६॥ स्प्रष्टुमस्य समर्थो हि ज्वलंतमिव पावकम् । अधर्मः

अधर्म करता है तथा दूसरोंसे अधर्म कराता है, उसको भी उसका फल मिलता है, धर्मके कर्म करके उसके फलकी आशा रक्खे, परन्तु अधर्म करके उससे अच्छे फलकी आशा न रक्खे ॥ १ ॥ सब समय काल ही मनुष्यों की बुद्धिमें प्रवेश करके उनसे धर्म तथा अधर्म कराता है और उनको सुख दुःखरूप फल देता है२ मनुष्य धर्मके फलको देखकर धर्माचरण करनेका विचार करता है और जिसका मन धर्ममें लगता है उसको धर्म पर श्रद्धा होती है, परन्तु जिस पुरुषकी बुद्धि दृढ़ नहीं होती है उसको धर्मके फल पर विश्वास नहीं होता है ॥३॥ प्राणियोंकी बुद्धि-मत्ताका लक्षण यही है, कि-धर्मके सत्फल पर विश्वास रक्खे, कर्तव्य और अकर्तव्यको जानने वाला पुरुष कालयुक्त होनेपर भी सब कार्य योग्यतासे करे ॥ ४ ॥ जिनके पास धन होता है ऐसे धार्मिक पुरुष दूसरे जन्ममें रजोगुणी (मलिन) न हों इसलिये वे स्वयं ही अपनी आत्मासे ही (दान आदि देकर) अपना कल्याण करते हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि-काल किसी प्रकार भी अधर्मके फलको अधर्मसे नहीं देता है अर्थात् अधर्मका न्यायानुसार ही फल देता है अतः धर्मात्मा पुरुष अपनी आत्मा को विशुद्ध (रक्खे) जाने ॥ ६ ॥ कालने जिसकी रक्षा की है

सन्ततो धर्म कालेन परिरक्षितम् ॥७॥ कार्यावेतौ हि धर्मेण धर्मो हि विजयावहः । त्रयाणामपि लोकानामालोकः कारणं भवेत् ८ न तु कश्चिन्नयेत् प्राज्ञो गृहीत्वैव करे नरम् । उच्यमानस्तु धर्मेण धर्मलोकभयच्छले ॥ ९ ॥ शूद्रोऽहं नाधिकारो मे चातुराश्रम्यसेवने । इति विज्ञानमपरे नात्मन्युपदधत्युत ॥ १० ॥ विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिंगतः । पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ॥ ११ ॥ लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम् । यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः ॥ १२ ॥ अश्रुवो हि कथं लोकः स्मृतो धर्मः कथं ध्रुवः । यत्र कालो ध्रुवस्तात तत्र

ऐसे प्रज्वलित अग्निकी समान धर्मको अधर्म जरा भी नहीं छूसकता ७ विशुद्धता और अधर्मका अस्पर्श ये दो धर्मके कार्य हैं, धर्म विजय कराने वाला है और धर्म इन तीनों लोकोंका प्रकाश करने वाला है ८ बुद्धिमान् पुरुष अधर्मी पुरुषका हाथ पकड कर भी उससे धर्म नहीं करा सकता और बुद्धिमान् पुरुषके कहनेसे वह लोकभय अथवा धर्मभयसे छल करके मनुष्योंको छलता है ९ और दूसरा साधु पुरुष शूद्र जातिका होने पर सत्पुरुषोंको और अपनेको नहीं ठगता है और कहता है, कि-"मैं शूद्र हूँ और मुझे चारों आश्रमोंके धर्मको पालन करनेका अधिकार नहीं है" ॥ १० ॥ अब मैं तुझसे चारों वर्णोंके सम्बन्धमें कहता हूं उसको तू सुन, चारों वर्णोंके शरीर पञ्चभूतोंके बने हुए हैं और सबका आत्मा एक समान है ११ ॥ परन्तु लौकिक धर्मके और धर्मके सम्बन्धमें जो (अमुक उत्तम वर्ण है और अमुक अपकृष्ट वर्ण है और अमुक मनुष्य है और अमुक पशु है यह) व्यवस्था बाँधी गई है, वह इसलिये है, कि-सब फिर एकत्व (आत्मस्वरूप) को प्राप्त करें ॥ १२ ॥ अब यहाँ प्रश्न होता है, कि-लोक और धर्ममें कार्यकारणभाव

धर्मः सनातनः ॥ १३ ॥ सर्वेषां तुल्यदेहानां सर्वेषां सदृशात्मनाम् । कालो धर्मेण संयुक्तः शेष एव स्वयं गुरुः ॥ १४ ॥ एवं सति न दोषोस्ति भूतानां धर्मसेवने । तिर्यग्योनावपि सतां लोक एव मतो गुरुः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रशंसायां चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

है तो लोक अध्रुव (नाशवान्) क्यों कहलाता है और धर्म ध्रुव क्यों कहलाता है (अर्थात् तन्तुका नाश होनेसे जैसे पटका भी नाश होजाता है, इसीप्रकार धर्मके जाने पर लोकका नाश हो जाता है, परन्तु पटके वर्तमान रहने पर जैसे तन्तु वर्तमान रहते हैं, इसी प्रकार धर्मके रहने पर लोक भी रहने चाहियें, क्योंकि-जो ध्रुव होता है वह अविनाशी होता है और उस कारणके विरुद्ध कार्य विनाशी हो यह युक्त नहीं है) हे तात ! जहाँ काल ध्रुव-अविनाशी होता है, तहाँ ही धर्म सनातन है (सकाम धर्म विनाशी है उसका फल स्वर्ग है, निष्काम धर्म अविनाशी है और उसका फल ब्रह्मप्राप्ति है) ॥ १३ ॥ सबके शरीर समान हैं और उनकी आत्मा समान है धर्मसे युक्त काल (निष्काम संकल्प) रहता है (उस शरीरसे निष्कामभावसे किया हुआ धर्म अमर रहता है) और वह ही शेष (निष्काम धर्म) काल अपना गुरु है (दूसरे जन्ममें कर्मफलका नियामक गुरु है) १४ (प्राणीके पूर्वजन्मके कर्म ही उसको पुण्य और पापकर्ममें प्रेरित करते हैं) ऐसा होनेसे अपने २ कर्मका फल भोगनेमें प्राणियोंका दोष नहीं है, प्राणी पशु पक्षीकी योनिमें होते हैं तब भी वे पूर्वजन्मके शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही वर्ताव करते हैं, इस विषयमें जगत् गुरुरूप (दृष्टांतरूप) है ॥ १५ ॥ एकसौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥

वैशम्पायन उवाच । शरतल्पगतं भीष्मं पाण्डवोथ कुरूद्वहः । युधिष्ठिरो हितं प्रेप्सुरपृच्छत्कल्मषापहम् ॥१॥ युधिष्ठिर उवाच । किं श्रेयः पुरुषस्येह किं कुर्वन् सुखमेधते । विपाप्मा स भवेत् केन किं वा कल्मषनाशनम् ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्मै शुश्रूषमाणाय भूयः शान्तनवस्तदा । दैवं वंशं यथान्यायमाचष्ट पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥ भीष्म उवाच । अयं दैवतवंशो वै ऋषिवंश-समन्वितः । त्रिसन्ध्यं पठितः पुत्र कल्मषापहरः परः ॥ ४ ॥ यदन्हा कुरुते पापमिंद्रियैः पुरुषश्चरन् । बुद्धिपूर्वमबुद्धिर्वा रात्रौ यच्चापि सन्ध्ययोः॥५ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः कीर्तयन् वै शुचिः

वैशम्पायनने जनमेजयसे कहा, कि-तदनन्तर अपने पाप को नष्ट करना चाहनेवाले और अपना हित चाहनेवाले कुरुकुल के वंशज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने बाण-शय्यामें सोते हुए भीष्मजीसे बूझा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने बूझा, कि—इस जगत्में पुरुषका कल्याण किस प्रकार होसकता है ? मनुष्य किस कर्मको करनेसे सुख पाता है ? क्या कर्म करनेसे मनुष्य पापरहित होजाता है ? और कौनसा कर्म पापनाशक है ? ॥ २ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-हे पुरुषश्रेष्ठ जनमेजय ! तब शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने कल्याणका उपाय सुनना चाहने वाले युधिष्ठिरको शास्त्रानुसार दैववंश सुनाया था ॥ ३ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे पुत्र ! मैं तुमसे ऋषिवंशसहित देव-ताओंके वंशका वर्णन करता हूँ, यदि इसका तीनों संध्याओंके समय पाठ किया जाता है तो सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ॥४॥ जो पुरुष इसप्रकार देववंश और ऋषिवंशका पाठ करता है उस पुरुषके दिन रात प्रातःकाल और सायंकालके समय जानबूझ कर अथवा अनजानमें इन्द्रियोंसे किये हुए सब पाप नष्ट होजाते हैं और वह सदा पवित्र रहता है, नियम बाँध कर समयानुसार

सदा । नान्धो न बधिरः काले कुरुते स्वस्तिमान् सदा ॥ ६ ॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च नरकं संकराणि च । न च दुःखभयं
तस्य मरणे स न मुह्यति ॥ ७ ॥ देवासुरगुरुर्देवः सर्वभूतनम-
स्कृतः । अचिंत्योथाप्यनिर्देश्यः सर्वप्राणो ह्ययोनिजः ॥ ८ ॥
पितामहो जगन्नाथः सावित्री ब्रह्मणः सती । वेदभूरथ कर्ता च
विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥ ९ ॥ उमापतिर्विरूपाक्षः स्कन्दः सेना-
पतिस्तथा । विशाखो हुतभुग्वायुश्चन्द्रसूर्यौ प्रभाकरौ ॥ १० ॥
शक्रः शचीपतिर्देवो यमो धूमोर्णया सह । वरुणः सह गौर्या च
सह ऋद्ध्या धनेश्वरः ॥ ११ ॥ सौम्या गौः सुरभिर्देवी विश्र-
वाश्च महानृषिः । संकल्पः सागरो गंगा स्रवन्त्योऽथ मरुद्गणाः १२
वालखिल्यास्तपःसिद्धाः कृष्णद्वैपायनस्तथा । नारदः पर्वतश्चैव

देववंशावलीका पाठ करनेवाला अन्धा नहीं होता है बहरा नहीं होता है और सदा सुखी रहता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ और वह पुरुष पशु पक्षीकी योनिमें उत्पन्न नहीं होता है, उसको किसी प्रकार का दुःख या भय नहीं सहना पड़ता है और उसको मरणके समय मोह नहीं होता है ॥७॥ (वह देवताओंका और ऋषियों का वंश इस प्रकार है, कि-) देवता और असुरोंके गुरु प्रकाश-मान् सब प्राणियोंसे वन्दित विचारमें न आनेवाले अनिर्वचनीय सब प्राणियोंके आत्मारूप तथा अयोनिज पितामह जगत्के नाथ हैं, उनकी स्त्रीका नाम सावित्री है, जगत्कर्ता विष्णु वेदके उत्पत्ति-स्थान समर्थ नारायण हैं ॥८॥९॥ (ये दोनों और) त्रिनेत्र उमा-पति देवसेनापति-स्वामि कार्तिकेय विशाख हुतभुक्-अग्नि वायु प्रकाशक-चन्द्र और सूर्य शचीपति देवराट् इन्द्र यम उनकी स्त्री धूमोर्णा वरुण और उनकी स्त्री गौरी कुबेर और उनकी स्त्री ऋद्धि सौम्य गुणवाली सुरभि नामकी गौ महर्षि-विश्रवा संकल्प सागर गङ्गा आदि अनेक नदियें मरुद्गण तपःसिद्ध-

विश्वावसुर्हाहाहुहूः ॥ १३ ॥ तुम्बुरुश्चित्रसेनश्च देवदूतश्च विश्रुतः । देवकन्या महाभागा दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ १४ ॥ उर्वशी मेनका रम्भा मिश्रकेशी ह्यलम्बुषा । विश्वाची च घृताची च पञ्चचूडा तिलोत्तमा ॥ १५ ॥ आदित्या वसवो रुद्राः साश्विनः पितरोऽपि च । धर्मः श्रुतं तपोदीक्षा व्यवसायः पितामहः॥१६॥ शर्वर्यो दिवसाश्चैव मारीचः कश्यपस्तथा । शुक्रो बृहस्पतिर्भौमो बुधो राहुः शनैश्चरः ॥ १७ ॥ नक्षत्राण्यृतवश्चैव मासाः पक्षाः संवत्सराः । वैनतेयाः समुद्राश्च कद्रुजाः पन्नगास्तथा ॥ १८ ॥ शतद्रुश्च विपाशा च चन्द्रभागा सरस्वती । सिन्धुश्च देविका चैव प्रभासं पुष्कराणि च ॥ १६ ॥ गंगा महानदी वेणा कावेरी नर्मदा तथा । कुलंपुना विशल्या च करतोयांबुवाहिनी ॥ २० ॥ सरयूर्गण्डकी चैव लोहितश्च महानदः । ताम्रारुणा वेत्रवती पर्णाशा गौतमी तथा ॥ २१ ॥ गोदावरी च वेण्या च कृष्ण-

---

वालखिल्य ऋषि तथा कृष्णद्वैपायन नारद पर्वत विश्वावसु हाहा हूहू तुम्बुरु चित्रसेन प्रसिद्ध देवदूत महाभाग्यवती देवकन्यायें उर्वशी मेनका रम्भा मिश्रकेशी अलम्बुषा विश्वाची घृताची पञ्चचूडा और तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सराओंके मंडल बारह आदित्य आठ वसु ग्यारह रुद्र अश्विनीकुमार पितर धर्मशास्त्र वेद तप दीक्षा व्यवसाय पितामह रात्रि दिन मारीच कश्यप शुक्र बृहस्पति मङ्गल बुध राहु शनैश्चर सत्ताईस नक्षत्र छः ऋतु बारह मास पक्ष वर्ष विनताके पुत्र समुद्र कद्रूके पुत्र सर्प शतद्रु विपाशा चन्द्रभागा सरस्वती सिन्धु देविका आदि देव-नदियें प्रभास पुष्कर तीर्थ महानदी गङ्गा वेणा कावेरी नर्मदा कुलम्पुना विशल्या करतोया अम्बुवाहिनी गण्डकी सरयू महानद लोहित ताम्रा अरुणा वेत्रवती पर्णाशा गौतमी गोदावरी वेण्या कृष्णवेणा अद्रिजा दृषद्वती कावेरी चक्षुप मन्दाकिनी

वेणा तथाद्रिजा । दृषद्वती च कावेरी चक्षुर्मन्दाकिनी तथा ।२२। प्रयागं च प्रभासं च पुण्यं नैमिषमेव च । तच्च विश्वेश्वरस्थानं यत्र तद्विमलं सरः ॥ २३ ॥ पुण्यतीर्थं सुसलिलं कुरुक्षेत्रं प्रकीर्तितम् । सिंधूत्तमं तपोदानं जम्बूमार्गमथापि च॥२४॥ हिरण्वतीं वितस्ता च तथा प्लक्षवती नदी । वेदस्मृतिर्वेदवती मालवाथाश्ववत्यपि ॥ २५ ॥ भूमिभागास्तथा पुण्या गंगाद्वारमथापि च । ऋषिकुल्यास्तथामेध्या नद्यः सिन्धुवहास्तथा ॥ २६ ॥ चर्मण्वती नदी पुण्या कौशिकी यमुना तथा । नदी भीमरथी चैव वाहुदा च महानदी ॥ २७ ॥ माहेन्द्रवाणी त्रिदिवा नीलिका च सरस्वती । नन्दा चापरनन्दा च तथा तीर्थमहाह्रदाः॥२८॥ गयाथ फल्गुतीर्थं च धर्मारण्यं सुरैर्वृतम् । तथा देवनदी पुण्या सरश्च ब्रह्मनिर्मितम् ॥२९॥ पुण्यं त्रिलोकविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् । हिमवान् पर्वतश्चैव दिव्यौषधिसमन्वितः ॥३०॥ विन्ध्यो धातु-

प्रभास नैमिषारण्य विश्वेश्वरका स्थान (काशी) निर्मल जलसे भरा हुआ (मान) सरोवर सुंदर जलसे भरा हुआ पुण्यतीर्थ कुरुक्षेत्र उत्तम सिन्धु (क्षीरसागर) तप दान और जम्बुमार्ग हिरण्यवती वितस्ता और प्लक्षवती नदियें वेदस्मृति वेदवती मालवा अश्ववती पवित्र भूप्रदेश गङ्गाद्वार (हरद्वार) पवित्र ऋषिकुल्यायें सिन्धुमेंसे बहनेवाली पवित्र नदियें चर्मण्वती कौशिकी यमुना भीमरथी महानदी वाहुदा माहेन्द्रवाणी त्रिदिवा नीलिका सरस्वती नन्दा अपरनन्दा तीर्थरूप बड़े २ झरने गया फल्गुतीर्थ देवताओंसे घिरा हुआ धर्मारण्य तथा पवित्र देवनदी ब्रह्माका उत्पन्न किया हुआ सरोवर, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध सब पापोंको नष्ट करनेवाला कल्याणप्रद दिव्य औषधियोंसे भरा हुआ हिमाचल, अनेक प्रकारकी गेरू आदि धातुओंसे विचित्र शिखरों वाला तथा तीर्थोंसे और औषधियोंसे व्याप्त

विचित्रांगस्तीर्थवानौपधान्वितः। मेरुर्महेन्द्रो मलयः श्वेतश्च रजताद्वृतः॥ ३१॥ शृङ्गवान् मन्दरो नीलो निषधो दर्दुरस्तथा। चित्रकूटोजनाभश्च पर्वतो गन्धमादनः॥३२॥ पुण्यः सोमगिरिश्चैव तथैवान्ये महीधराः। दिशश्च विदिशश्चैव क्षितिः सर्वे महीरुहाः॥ ३३॥ विश्वेदेवा नभश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा। पांतु नः सततं देवाः कीर्तिताऽकीर्तिता मया॥ ३४॥ कीर्तयानो नरो ह्येतान्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः स्तुवंश्च प्रतिनन्दंश्च मुच्यते सर्वतो भयात्॥ ३५॥ सर्वसंकरपापेभ्यो देवतास्तवनन्दकः। देवतानन्तरं विप्रांस्तपसिद्धांस्तपोधिकान्॥ ३६॥ कीर्तितान् कीर्तयिष्यामि सर्वपापप्रमोचनान्। यवक्रीतोथ रैभ्यश्च कक्षीवानौशिजस्तथा॥ ३७॥ भृग्वंगिरास्तथा कण्वो मेधातिथिरथ

विन्ध्य पर्वत मेरुपर्वत महेन्द्रपर्वत मलयपर्वत चाँदीसे व्याप्त श्वेतपर्वत शृङ्गवान् पर्वत मन्दरपर्वत नीलपर्वत निषधपर्वत दर्दुरपर्वत चित्रकूट पर्वत अजनाभ पर्वत गन्धमादन पर्वत पवित्र सोमगिरि तथा दूसरे पर्वत दिशाएँ उपदिशाएँ पृथ्वी सब वृक्ष विश्वेदेवता आकाश नक्षत्र तथा ग्रह ये मेरे कहेहुए और न कहे हुए देवता सदा हमारी रक्षा करें॥१०-३४॥ यदि मनुष्य इन देवताओंका ऋषियोंका तथा तीर्थ आदिका नाम लेता है तो सब पापोंसे मुक्त होजाता है और सब देवताओंकी स्तुति करता है और उनको मान देता है तो सब प्रकारके भयमेंसे मुक्त होजाता है ३५ देवताओंकी स्तुति करने वाला तथा देवताओंका अभिनन्दन करनेवाला पुरुष सब प्रकारके संकर पापोंसे छूट जाता है, देवताओंकी गिनती करनेके अनन्तर तपःसिद्ध बड़ा भारी तप करनेवाले और सब प्रकारके पापोंसे मुक्त रहनेवाले ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें मैं तुझसे कहता हूँ, उसको तू सुन, यवक्रीत रैभ्य कक्षीवान् औशिज भृगु अङ्गिरा कण्व समर्थ मेधातिथि गुण-

प्रभुः । बर्हीं च गुणसंपन्नः प्राचीं दिशमुपाश्रिताः ॥ ३८ ॥ भद्रां दिशं महाभागा उन्मुचुः प्रमुचुस्तथा । मुमुचुश्च महाभागः स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ॥ ३९ ॥ मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान् । दृढायुश्चोर्ध्वबाहुश्च विश्रुतावृषिसत्तमौ ४० पश्चिमां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् । उषंगुः सह सोदर्यैः परिव्याधश्च वीर्यवान् ॥ ४१ ॥ ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव गौतमः काश्यपस्तथा । एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महानृषिः ॥४२॥ अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा तथा सारस्वतः प्रभुः । उत्तरां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ॥ ४३ ॥ अत्रिर्वशिष्ठः शक्तिश्च पाराशर्यश्च वीर्यवान् । विश्वामित्रो भरद्वाजो जमदग्निस्तथैव च ॥ ४४ ॥ ऋचीकपुत्रो रामश्च ऋषिरौद्दालकिस्तथा । श्वेतकेतुः कोहलश्च विपुलो देवलस्तथा ॥४५॥ देवशर्मा च धौम्यश्च हस्तिकाश्यप एव च । लोमशो नाचिकेतश्च लोमहर्षण एव च ४६

सम्पन्न बर्हि ये सब ब्राह्मण पूर्वदिशामें हैं रहते ॥३६-३८॥ महाभाग्यशाली उन्मुचु प्रमुचु महाभाग्यवान् मुमुचु वीर्यवान् स्वस्त्यात्रेय मित्रावरुणके पुत्र प्रतापी अगस्त्य दृढायु और ऊर्ध्वबाहु नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ ऋषि दक्षिण दिशामें रहते हैं३९॥४० अब जो ब्राह्मण पश्चिम दिशामें रहते हैं उनके नामको तू सुन, सगे भाइयों सहित उषंगु वीर्यवान् परिव्याध दीर्घतमा ऋषि गौतम काश्यप महर्षि एकत द्वित और त्रित अत्रिके पुत्र धर्मात्मा तथा समर्थ सारस्वत (ये सब पश्चिम दिशामें रहते हैं) अब जो ब्राह्मण उत्तर दिशामें रहते हैं उनके नामको तू सुन४१।४३अत्रि वशिष्ठ शक्ति पराशरके पुत्र वीर्यवान् (व्यास) विश्वामित्र भरद्वाज जमदग्नि ऋचीकके पुत्र राम उद्दालकके पुत्र औद्दालकि ऋषि श्वेतकेतु कोहल विपुल और देवल देवशर्मा धौम्य हस्तिकाश्यप लोमश नाचिकेत और लोमहर्षण उग्रश्रवा ऋषि भार्गव अर्थात्

ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्च्यवनस्तथा । एष वै समवायश्च ऋषिदेवसमन्वितः ॥ ४७ ॥ आद्यः प्रकीर्तितो राजन् सर्वपापप्रमोचनः । नृगो ययातिर्नहुषो यदुः पूरुश्च वीर्यवान् ॥ ४८ ॥ धुन्धुमारो दिलीपश्च सगरश्च प्रतापवान् । कृशाश्वो यौवनाश्वश्च चित्राश्वः सत्यवांस्तथा ॥ ४९ ॥ दुष्यन्तो भरतश्चैव चक्रवर्ती महायशाः । पवनो जनकश्चैव तथा दृष्टरथो नृपः ॥५०॥ रघुर्नरवरश्चैव तथा दशरथो नृपः । रामो राक्षसहा वीरः शशबिंदुर्भगीरथः ॥ ५१ ॥ हरिश्चन्द्रो मरुत्तश्च तथा दृढरथो नृपः । महोदर्यो ह्यलर्कश्च ऐलश्चैव नराधिपः ॥ ५२ ॥ करंधमो नरश्रेष्ठः कध्मोरश्च नराधिपः । दत्तोऽम्बरीषः कुकुरो रैवतश्च महायशाः ॥ ५३ ॥ कुरुः संवरणश्चैव मान्धाता सत्यविक्रमः । मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्जन्हुर्गन्हिविसेवितः ॥ ५४ ॥ आदिराजः पृथुर्वैन्यो मित्रभानुः प्रियंकरः । त्रसदस्युस्तथा राजा श्वेतो

भृगुपुत्र च्यवन । ये देवताओंका और ऋषियोंका मुख्य समुदाय है ॥४४-४७॥ हे राजन् ! इसका प्रथम कीर्तन करना चाहिये, यह सब पापोंका नाश करनेवाला है (अब मैं तुमसे राजाओं के नाम कहता हूँ, उनको तू सुन) नृग ययाति नहुष यदु वीर्यवान् पुरु धुन्धुमार दिलीप प्रतापी सगर कृशाश्व यौवनाश्व चित्राश्व और सत्यवान् दुष्यन्त महायशस्वी चक्रवर्ती भरत पवन जनक तथा अदृष्टरथ नरवर रघु तथा राजा दशरथ राक्षसों को मारनेवाले वीर राम शशबिन्दु भगीरथ हरिश्चन्द्र मरुत्त तथा राजा दृढरथ राजा महोदर्य राजा अलर्क ऐल नरश्रेष्ठ राजा करन्धम कल्मोदर दत्त अम्बरीष कुकुर और महायशस्वी रैवत कुरु सम्वरण सत्यपराक्रमी मांधाता राजर्षि मुचकुन्द गङ्गासे सेवित राजा जन्हु, वेनका पुत्र आदि राजा पृथु मित्रभानु प्रियंकर त्रसद्दस्यु राजर्षियोंमें श्रेष्ठ श्वेत प्रसिद्ध महाभिष राजा

राजर्षिसत्तमः ॥ ५५ ॥ महाभिषश्च विख्यातो निमी राजा तथा-ष्टकः । आयुः क्षुपश्च राजर्षिः कक्षेयुश्च नराधिपः ॥ ५६ ॥ प्रतर्दनो दिवोदासः सुदासः कोसलेश्वरः । ऐलो नलश्च राजर्षिर्मनुश्चैव प्रजापतिः ॥५७॥ हविध्रश्च पृषध्रश्च प्रतीपः शान्तनुस्तथा । अजः प्राचीनबर्हिश्च तथेक्ष्वाकुर्महायशाः ॥ ५८ ॥ अनरण्यो नरपतिर्जानुजंघस्तथैव च । कक्षसेनश्च राजर्षिर्ये चान्ये चानुकीर्तिताः ॥५९॥ कल्यमुत्थाय यो नित्यं संध्ये द्वेऽस्तमयोदये । पठेच्छुचिरनावृत्तः स धर्मफलभाग्भवेत् ॥ ६० ॥ देवा देवर्षयश्चैव स्तुता राजर्षयस्तथा । पुष्टिमायुर्यशः स्वर्गं विधास्यंति ममेश्वराः॥६१॥ मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपंथिनः । ध्रुवो जयो मे नित्यः स्यात् परत्र च शुभा गतिः ॥ ६२ ॥

निमि राजा अष्टक आयु राजर्षि क्षुप और राजा कक्षेयु प्रतर्दन दिवोदास सुदास कोसलेश्वर ऐल राजर्षि नल प्रजापति मनु हविध्र पृषध्र प्रतीप तथा शान्तनु अज प्राचीन बर्हिष तथा महायशस्वी इक्ष्वाकु अनरण्य जानुजंघ राजर्षि कक्षसेन तथा दूसरे राजे कि—जिनका वर्णन शास्त्रमें है उनके नामोंको प्रभातमें उठकर स्नान करके पवित्र हो रागद्वेष आदि रहित होकर जो पुरुष सदा सूर्यास्तके समय और सूर्योदयके समय इनका पाठ करता है अथवा प्रभातकालकी सन्धिके समय और सायंकालकी संधिके समय इन नामोंका सदा पाठ करता है तो उसको धर्मका फल मिलता है ॥ ४८—६० ॥ (पाठके अन्तमें इन श्लोकोंका पाठ करे) 'मैंने देवताओंकी देवर्षियोंकी तथा राजर्षियोंकी स्तुति की है वे समर्थ पुरुष मुझे पुष्टि आयु यश और स्वर्ग देंगे ॥ ६१ ॥ मेरे कार्यमें विघ्न न पड़ें, मुझे पाप न लगे, मेरे शत्रु उत्पन्न न हों, मेरी सदा अचल जय हो और परलोकमें मेरी शुभ गति हो ॥ ६२ ॥ एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त

जनमेजय उवाच । शरतल्पगते भीष्मे कौरवाणां धुरन्धरे । शयाने वीरशयने पाण्डवैः समुपस्थिते ॥ १ ॥ युधिष्ठिरो महाप्राज्ञो मम पूर्वपितामहः । धर्माणामागमं श्रुत्वा विदित्वा सर्वसंशयान् ॥ २ ॥ दानानां च विधिं श्रुत्वा च्छिन्नधर्मार्थसंशयः । यदन्यदकरोद्विप्र तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । अभूत्मुहूर्तं स्तिमितं सर्वं तद्राजमण्डलम् । तूष्णींभूते ततस्तस्मिन् पटे चित्रमिवार्पितम् ॥ ४ ॥ मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यसुतः । नृपं शयानं गांगेयमिदमाह वचस्तदा ॥ ५ ॥ राजन् प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः।सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः ॥ ६ ॥ उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता । तमिमं पुरयानाय समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तो

जनमेजयने बूझा, कि-कौरव राजाओंमें धुरन्धर भीष्म वीर पुरुषोंकी अभिलषित बाणशय्यामें शयन कर रहे थे, और उस समय पाण्डव उनकी सेवामें उपस्थित थे ॥ १ ॥ उस समय मेरे पूर्व पितामह बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने धर्मके साधनोंको सुनकर और सब संशयोंको जानकर और दानविधिको भी सुन कर और धर्मके अर्थसम्बन्धी संशयोंसे निवृत्त होकर हे ब्राह्मण! फिर क्या किया था, यह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर दो घड़ी तक सब राजमण्डल स्थिर रहा उस समय वह वस्त्र पर चिने हुए चित्तकी समान मालूम होरहा था ॥ ४ ॥ तदनन्तर सत्यवतीके पुत्र व्यासजी दो घड़ी तक ध्यान धरकर शरशय्यामें पौढे हुए गंगाजीके पुत्र भीष्मजीसे इसप्रकार कहने लगे ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा, कि-हे राजन् ! (आपके उपदेशसे) भाइयों अनुयायी राजाओं सहित कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर स्वस्थ होगए हैं।६। और हे नरव्याघ्र ! बुद्धिमान् श्रीकृष्णके साथ आपकी उपासना कर रहे हैं,अब आप पाण्डवों

भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः । युधिष्ठिरं सहामात्यमनुजज्ञे नदीसुतः ॥८॥ उवाच चैनं मधुरं नृपं शान्तनवो नृपः । प्रविशस्व पुरीं राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥९॥ यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बह्वन्नैः स्वाप्तदक्षिणैः । ययातिरिव राजेन्द्र श्रद्धादमपुरःसरः ॥ १० ॥ क्षत्रधर्मरतः पार्थ पितॄन् देवांश्च तर्पय । श्रेयसा योक्ष्यसे चैव व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥ रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसान्त्वय । सुहृदः फलसत्कारैरर्चयस्व यथार्हतः ॥ १२ ॥ अनु त्वां तात जीवन्तु मित्राणि सुहृदस्तथा । चैत्यस्थाने स्थितं वृक्षं फलवन्तमिव द्विजाः ॥ १३ ॥ आगंतव्यं च भवता समये मम पार्थिव । विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरा-

---

को नगरमें जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—इसप्रकार भगवान् व्यासजीने कहा तब गंगापुत्र पृथ्वीपति भीष्मजीने राजा युधिष्ठिरको और उनके मन्त्रियोंको (हस्तिनापुरको जानेकी) आज्ञा दी थी ॥ ८ ॥ शन्तनुके राजपुत्रने उस राजासे मधुर वाणीमें कहा, कि—हे राजन् ! तू हस्तिनापुरमें जा और तेरा मानसिक सन्ताप दूर हो ॥ ९ ॥ और हे राजन् ! कर तहाँ तू राजा ययातिकी समान श्रद्धा तथा दमसंपन्न हो अनेक प्रकारके यज्ञ कर और उनमें बहुतसा अन्न (ब्राह्मणों) को जिमा तथा (उनको) पूर्ण दक्षिणा दे ॥ १० ॥ और हे पार्थ ! तू क्षत्रियके धर्ममें परायण रहकर पितर और देवताओंको तृप्त कर, ऐसा करनेसे तेरा कल्याण होगा, तेरा मनका सन्ताप दूर हो ॥११॥ तू प्रजाओंको आनन्द दे, सब प्रकृतियोंको धीरज दे और अपने स्नेहियोंको योग्यताके अनुसार फल देकर तथा सत्कार करके उनका मान कर ॥ १२ ॥ जैसे पवित्र स्थानमें खड़े हुए फलवाले वृक्षसे पक्षी अपनी आजीविका चलाते हैं, तैसे ही तेरे मित्र और स्नेही तुमसे आजीविका चलावें १३

यणे ॥ १४ ॥ तथेत्युक्त्वा च कौंतेयः सोऽभिवाद्य पितामहम् । प्रययौ सपरीवारो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १५ ॥ धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च पतिव्रताम् । सह तैर्ऋषिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः केशवेन च ॥ १६ ॥ पौरजानपदैश्चैव मन्त्रिवृद्धैश्च पार्थिव । प्रविवेश कुरुश्रेष्ठः पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भीष्मानुज्ञायां षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

समाप्तमानुशासनिकं पर्व ।

अथ भीष्मस्वर्गारोहणपर्व ।

वैशम्पायन उवाच । ततः कुन्तीसुतो राजा पौरजानपदं जनम् । पूजयित्वा यथान्यायमनुजज्ञे गृहान् प्रति ॥ १ ॥ सांत्वयामास नारीश्च हतवीरा हतेश्वराः । विपुलैरर्थदानैः स तदा पांडुसुतो नृपः ॥ २ ॥ सोऽभिषिक्तो महाप्राज्ञः प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरः ।

हे राजन् ! जब सूर्य उत्तर दिशाकी ओर फिरें और उत्तरायण का आरम्भ हो तब तू मेरे पास आना ॥ १४ ॥ तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ऐसा ही करूँगा कहकर पितामहको प्रणाम किया और परिवारसहित नागपुर (हस्तिनापुर) नामसे प्रसिद्ध नगर ओर प्रयाण किया ॥ १५ ॥ कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र पतिव्रता गान्धारी ऋषि मुनि सब भाई केशव नगर और देशके मनुष्य तथा वृद्ध मन्त्रियोंको लेकर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ एकसौ छियासठवाँ अध्याय समाप्त १६६

भीष्मस्वर्गारोहणपर्व ।

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय ! तदनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने नगरकी और देशकी प्रजाका उचित रीति से सन्मान किया और उनको घर जानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने जिनके पति और पुत्र मारे गए थे उन

अवस्थाप्य नरश्रेष्ठः सर्वाः स्वप्रकृतीस्तथा ॥ ३ ॥ द्विजेभ्यो गुण-
मुख्येभ्यो नैगमेभ्यश्च सर्वशः । प्रतिगृह्याशिषो मुख्यास्तथा धर्म-
भृताम्वर ॥ ४ ॥ उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे ।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥५॥ स निर्ययौ गजपुरा-
द्याजकैः परिवारितः । दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम् ६
घृतं माल्यं च गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः । चन्दनागुरु-
मुख्यानि तथा कालीयकान्यपि ॥ ७ ॥ प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो
भीष्मसंस्करणाय वै । माल्यानि च वराहाणि रत्नानि विविधानि
च ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम् । मातरं
च पृथां धीमान् भ्रातॄंश्च पुरुषर्षभान् ॥ ९ ॥ जनार्दने नानु-

स्त्रियोंको बहुतसा धन देकर धीरज दिया ॥२॥ तदनन्तर महा बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरका राज्यासनके ऊपर अभिषेक किया गया, फिर उन्होंने सब मन्त्रिमण्डलको योग्यताके अनुसार नियुक्त किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने सब ब्राह्मणोंसे मुख्य २ सेनापतियोंसे और नागरिकोंसे मुख्य आशीर्वाद ग्रहण किया ॥४॥ जब श्रीमान् राजा युधिष्ठिरको हस्तिनापुरमें रहते हुए पचास रात्रियें व्यतीत होगईं तब उन्होंने भीष्मजीके कहे हुए समयका स्मरण किया ॥ ५ ॥ उस समय सूर्य उत्तर दिशाकी ओर घूम गया था और उत्तरायणका आरम्भ होगया था तब राजा युधिष्ठिर याजक ब्राह्मणोंको साथमें लेकर हस्तिनापुरमेंसे बाहर चलनेको उद्यत हुए ॥६॥ राजा युधिष्ठिरने चलनेसे पहिले भीष्मजीका सत्कार करनेके लिये घृत पुष्प सुगन्धित पदार्थ रेशमी वस्त्र चन्दन काष्ठ अगर कृष्णागुरु बढ़िया २ पुष्प नाना प्रकारके रत्न आदि भेज दिये थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ और धृतराष्ट्र यशस्विनी गान्धारी माता कुन्ती पुरुषश्रेष्ठ बुद्धिमान् भाइयोंको साथमें (लेकर वह हस्तिनापुरमेंसे बाहर निकले) ॥ ९ ॥

मतो विदुरेण च धीमता । युयुत्सुना च कौरव्यो युयुधानेन वा विभो ॥१०॥ महता राजभोगेन पारिबर्हेण संवृतः । स्तूयमानो महातेजा भीष्मस्याग्नीननुव्रजन् ॥११॥ निश्चक्राम पुरात्तस्मा-द्यथा देवपतिस्तथा । आससाद कुरुक्षेत्रे तथा शांतनवं नृपः १२ उपास्यमानं व्यासेन पाराशर्येण धीमता । नारदेन च राजर्षे देवलेनासितेन च ॥ १३ ॥ हतशिष्टैर्नृपैश्चान्यैर्नानादेशसमा-गतैः । रक्षिभिश्च महात्मानं रक्ष्यमाणं समन्ततः ॥ १४ ॥ शयानं वीरशयने ददर्श नृपतिस्ततः ।ततो रथादवातीर्य भ्रातृभिः सह धर्मराट् ॥ १५ ॥ अभिवाद्याथ कौन्तेयः पितामहमरिन्दमम् । द्वैपायनादीन् विप्रांश्च तैश्च प्रत्यभिनन्दितः ॥ १६ ॥ ऋत्विग्भि-

---

उनके पीछे हे विभो ! जनार्दन श्रीकृष्ण बुद्धिमान् विदुर ययुत्सु और युयुधान चले ॥ १० ॥ उनके साथ बड़े २ राजवैभव और दान देनेकी वस्तुएँ थीं, मार्गमें भाट चारण महातेजस्वी युधिष्ठिर की स्तुति करतेहुए चलेजाते थे और वे भीष्मजीके लिये अग्निको लेकर चल रहे थे ॥ ११ ॥ इस प्रकार राजा युधिष्ठिर देवपति इन्द्रकी समान नगरमेंसे बाहर निकल कर कुरुक्षेत्रमें शरशय्या पर पौढ़े हुए भीष्मजीके पास आपहुँचे ॥ १२ ॥ हे राजर्षि ! उस समय पराशरके पुत्र बुद्धिमान् व्यासजी नारद देवल और असित मरनेसे बचे हुए राजे तथा दूसरे अलग २ देशोंसे आये हुए राजे भीष्मजीकी उपासना कर रहे थे और रक्षा करने वाले सिपाही उन महात्माकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वीरशय्यामें शयन करते हुए भीष्मजीके दर्शन होते ही राजा युधिष्ठिर और उनके भाई रथमेंसे उतर पड़े ॥१५॥ और उन्हों ने शत्रुओंका दमन करने वाले पितामहको कृष्णद्वैपायन वेद-व्यास आदि ब्राह्मणोंको प्रणाम किया तब उन्होंने उनको अभि-नन्दन किया ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माकी समान ऋत्विजोंको और

ब्रह्मकल्पैश्च भ्रातृभिः सह धर्मजः। आसाद्य शरतल्पस्थमृषिभिः परिवारितम् ॥ १७ ॥ अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः। भ्रातृभिः सह कौरव्यः शयानं निम्नगासुतम् ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जान्हवीसुत। शृणोषि चेन्महाबाहो ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १९ ॥ प्राप्तोऽस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो ॥ २० ॥ पुत्रश्च ते महातेजा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः। उपस्थितः सहामात्यो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ २१ ॥ हतशिष्टाश्च राजानः सर्वे च कुरुजांगलाः। तान् पश्य नरशार्दूल समुन्मीलय लोचने ॥ २२ ॥ यच्चेह किंचित् कर्तव्यं तत्सर्वं प्रापितं मया। यथोक्तं भवता काले सर्वमेव च तत्कृतम्। वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तस्तु गांगेयः कुन्तीपुत्रेण धीमता। ददर्श भारतान् सर्वान्

भाइयोंको साथमें लेकर राजा युधिष्ठिर भीष्मजीके पास गए, फिर कुरुवंशमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने और उनके भाइयोंने बाणशय्यामें शयन करने वाले तथा ऋषयोंसे घिरे हुए गङ्गापुत्र भरतश्रेष्ठ भीष्मजीसे कहा। १७। १८। युधिष्ठिरने कहा, कि हे राजन्! हे गङ्गापुत्र! मैं युधिष्ठिर हूँ, हे महाभुज! यदि तुम सुनते हो तो बताओ मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ। १९। हे राजन्! मैं तुम्हारे कहे हुए समय पर तुम्हारी अग्नियोंको लेकर यहाँ आया हूँ मेरे साथ आचार्य ब्राह्मण ऋत्विज और मेरे भाई भी आये हैं २० आपके महातेजस्वी पुत्र राजा धृतराष्ट्र भी आये हैं वीर्यवान् वासुदेव और मेरे मंत्री भी आपके पास आये हैं २१ तथा मरनेसे बाकी बचे हुए सब कुरुवंशी राजे और जांगल देशके राजे भी आपकी सेवामें उपस्थित हैं हे नरशार्दूल! आप नेत्र खोल कर उनका दर्शन करिये २२ मुझे जो कुछ यहाँ पर लाना चाहिये था, उस सबको मैं ले आया हूँ और आपने जो कुछ कहा था, उस सबको मैंने समय पर करलिया है २३

स्थितान् संपरिवार्य ह ॥ २४ ॥ ततश्च तं बली भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजम् । उद्यन्मेघस्वरो वाग्मी काले वचनमब्रवीत् ।२५। दिष्ट्या प्राप्तोसि कौन्तेय सहामात्यो युधिष्ठिर । परिवृत्तो हि भगवान् सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥२६॥ अष्टपंचाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः । शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥२७॥ माघोयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर । त्रिभागशेषः पक्षोयं शुक्लो भवितुमर्हसि ॥२८॥ एवमुक्त्वा तु गांगेयो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । धृतराष्ट्रमथामन्त्र्य काले वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥ भीष्म उवाच । राजन् विदितधर्मोसि सुनिर्णीतार्थसंशयः । बहुश्रुता

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! बुद्धिमान् युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा तब गङ्गापुत्रने नेत्र खोलकर चारों ओर खड़ेहुए राजाओंको देखा २४ तदनन्तर बलवान् और वाचाल भीष्म युधिष्ठिरके बड़े भारी हाथको पकड़ कर आकाशमें घिरे हुए मेघकी समान गर्जना करके कहने लगे ॥ २५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! तू अपने मन्त्रियोंके साथ आया यह तूने बहुत अच्छा किया, सहस्रकिरणों वाले भगवान् सूर्य उत्तर दिशाकी ओर आगए हैं ॥ २६ ॥ आज तीक्ष्ण धार वाले बाणोंपर सोते हुए मुझे अट्ठावन रात्रियें बीत गई हैं परन्तु यह मुझे सौ वर्षकी समान प्रतीत हुई हैं ॥ २७ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस समय सौम्य (चान्द्र) माघमास चल रहा है और उसका एक भाग बीत गया है और तीन भाग बाकी रहे हैं और इस समय शुक्लपक्ष होगा (अर्थात् आज माघशुक्ला अष्टमी है) २८ इस प्रकार गङ्गापुत्रने धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहा फिर उन्होंने धृतराष्ट्रको बुला कर उनसे समयोचित बात कही ॥ २९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन् ! तू धर्मको जानता है तूने धर्मके सब सन्देहोंको बूझ लिया है और तूने बहुतसे शास्त्रोंको जानते

हि ते विप्रा बहवः पर्युपासिताः ॥ ३० ॥ वेदशास्त्राणि सर्वाणि धर्माश्च मनुजेश्वर । वेदांश्च चतुरः सर्वान्निखिलेनानुबुद्धयसे ३१ न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हि तत्तथा । श्रुतं देवरहस्यन्ते कृष्णद्वैपायनादपि ॥ ३२ ॥ यथा पाण्डोः सुता राजंस्तथैव तव धर्मतः । तान् पालय स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतान् ॥ ३३ ॥ धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव । आनृशंस्यपरं ह्येनं जानामि गुरुवत्सलम् ॥ ३४ ॥ तव पुत्रा दुरात्मानः क्रोधलोभपरायणाः । ईर्ष्याभिभूता दुर्वृत्तास्तान्न शोचितुमर्हसि ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतावदुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् । वासुदेवं महाबाहुमभ्यभाषत कौरव ॥ ३६ ॥ भीष्म उवाच । भगवन् देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत । त्रिविक्रम नमस्तुभ्यं शंख-

वाले ब्राह्मणोंकी सेवा भी की है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! तू सब वेदोंको और सब शास्त्रोंको जानता है, धर्मको भी जानता है और तू चारों वेदोंको भी पूर्णरीतिसे जानता है ॥ ३१ ॥ हे कुरुकुलके पुत्र ! तुझे शोक न करना चाहिये जो जैसा होना था, वह तैसे ही गया है, तूने कृष्णद्वैपायनसे देवताओंका रहस्य भी सुना है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! युधिष्ठिर आदि जैसे पाण्डुके पुत्र हैं तैसे ही तेरे भी पुत्र हैं अतः तू धर्मानुसार वर्ताव करके गुरुओंकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले इन पुत्रोंका पालन करना ३३ धर्मराजका मन शुद्ध है और वह तेरी आज्ञामें रहेंगे, मैं जानता हूँ, कि-वह दयालु और गुरुवत्सल हैं ॥ ३४ ॥ तेरे पुत्र दुरात्मा थे, क्रोध और लोभमें परायण रहते थे, ईर्षासे अभिभूत रहते थे और वे दुराचारी थे, तुझे उनका शोक करना उचित नहीं है ॥ ३५ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-कुरुवंशी भीष्मजीने मनको जीतने वाले धृतराष्ट्रसे इतनी बात कह कर महाभुज वासुदेवसे कहा ॥ ३६ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे भगवन् ! हे देव-

चक्रगदाधर ॥ ३७ ॥ वासुदेवो हिरण्यात्मा पुरुषः सविता विराट् । जीवभूतोनुरूपस्त्वं परमात्मा सनातनः ॥३८॥ त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम नित्यशः । अनुजानीहि मां कृष्ण वैकुंठ पुरुषोत्तम ॥३९॥ रक्ष्याश्च ते पाण्डवेया भवान् येषां परायणम् । उक्तवानस्मि दुर्बुद्धिं मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ ४० ॥ यतः कृष्ण-स्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः । वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ॥ ४१ ॥ संधानस्य परः कालस्तवेति च पुनः पुनः । न च मे तद्वचो मूढः कृतवान् स सुमन्दधीः । घातयित्वेह पृथिवीं ततः स निधनं गतः ॥४२॥ त्वां तु जानाम्यहं देवं पुराणमृषि-सत्तमम् । नरेण सहितं देव बदर्यां सुचिरोषितम् ॥ ४३ ॥ तथा

देवेश ! हे सुर और असुरोंसे वन्दित ! हे त्रिविक्रम ! हे शंख-चक्रगदाधारिन् मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३७ ॥ आप वासुदेव हैं, हिरण्यात्मा हैं, पुरुष हैं, सविता हैं, विराट स्वरूप हैं जीवरूप हैं, अनुरूप हैं, परमात्मा हैं और सनातन हैं ॥ ३८ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे पुरुषोत्तम ! आप मेरी रक्षा करिये और हे कृष्ण ! हे वैकुण्ठ ! और हे पुरुषोत्तम ! मुझे जानेके लिये आज्ञा दीजिये ॥ ३९ ॥ आप पाण्डवोंकी रक्षा करना, पाण्डव आपको अपना परम आधार मानते हैं, मैंने दुर्बुद्धि मूर्ख दुर्यो-धनसे युद्धके समय कहा था कि—॥ ४० ॥ "जहाँ कृष्ण हैं तहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है तहाँ जय है, तू वासुदेवको तीर्थरूप मान कर पांडवोंसे संधि करले ॥ ४१ ॥ तेरे लिये संधि करनेका यह उत्तम अवसर है," यह बात मैंने उससे वारम्वार कही थी; परन्तु उस मूढ़ और अतिमन्दबुद्धि दुर्योधनने मेरी बात मानी ही नहीं और वह पृथ्वीका नाश करके मर ही गया ४२ आपको तो मैं पहिचानता हूँ कि—आप पुराण पुरुष और महर्षि हैं, हे देव! आप नर भगवान्के साथ बहुत दिनों तक बदरिकाश्रममें रहे हैं ४३

मे नारदः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः । नरनारायणावेतौ संभूतौ मनुजेष्विति ॥ ४४ ॥ स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम् । त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम् ॥ ४५ ॥ वासुदेव उवाच । अनुजानामि भीष्म त्वां वसून् प्राप्नुहि पार्थिव । न तेऽस्ति वृजिनं किंचिदिह लोके महाद्युते ॥ ४६ ॥ पितृभक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः । तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भृत्य इवानतः ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु गांगेयः पाण्डवानिदमब्रवीत् । धृतराष्ट्रमुखांश्चापि सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ ४८ ॥ प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि तत्रानुज्ञातुमर्हथ । सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ॥ ४९ ॥ आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव निय-

---

महातपस्वी नारदजी और व्यासजीने भी मुझसे यही बात कही थी कि–" यह नारायण मनुष्यजातिमें उत्पन्न होगए हैं ॥४४॥ हे कृष्ण ! आप मुझे स्वर्गको जानेकी आज्ञा दीजिये, आपके आज्ञा देने पर मैं अपने शरीरको त्यागूँगा और आपकी आज्ञा से मैं परमगति पाऊँगा ॥४५॥ वासुदेवने कहा, कि–हे भीष्म ! मैं तुमको आज्ञा देता हूँ, कि–तुम वसुओंके शरीरको प्राप्त करो हे महाकान्तिमान ! इस लोकमें तुम्हारा अणुमात्र भी पाप नहीं है ॥ ४६ ॥ हे राजर्षि ! तुम दूसरे मार्कण्डेयकी समान पिताके भक्त हो; इस कारण मृत्यु सेवककी समान नम्र होकर तुम्हारे वशमें रहता है ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं,कि कृष्णके गङ्गापुत्र भीष्मजीसे इस प्रकार कहने पर भीष्मजीने पाण्डवोंसे और धृतराष्ट्र आदि सब स्नेहियोंसे इसप्रकार कहा ॥ ४८ ॥ भीष्मजीने कहा कि-मैं अब अपने प्राणोंको त्यागता हूँ, अतः अब तुम मुझे (ऐसा करनेकी) आज्ञा दो, तुम सब सत्य बोलनेका प्रयत्न करना, क्योंकि–सत्य ही परमबल है ॥ ४९ ॥ हे भरतवंशी राजाओ ! तुम सब अनृशंसताका वर्ताव करना, और

तात्मभिः । ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारत ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा सुहृदान् सर्वान् संपरिष्वज्य चैव ह । पुनरेवाब्रवीद्धीमान् युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः । आचार्या ऋत्विजश्चैव पूजनीया जनाधिप ५२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा कुरून् सर्वान् भीष्मः शान्तनवस्तदा । तूष्णीं बभूव कौरव्यः स मुहूर्तमरिन्दम ॥१॥ धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम् । तस्योर्ध्वमगमन् प्राणाः सन्निरुद्धा महात्मनः ॥ २ ॥ इदमाश्चर्यमासीच्च मध्ये तेषां महात्मनाम् । सहितैर्ऋषिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिः प्रभो ॥ ३ ॥

अपनी आत्माको सदा नियममें रखना, ब्राह्मणभक्त रहना, धर्मशील रहना और सदा तप करते रहना ॥ ५० ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-बुद्धिमान् भीष्मजी सब इस प्रकार कह कर अपने सब स्नेहियोंसे चिपट कर मिले फिर राजा युधिष्ठिरसे इसप्रकार कहने लगे कि-॥ ५१ ॥ हे राजन् ! तू ब्राह्मणोंकी विशेषतः बुद्धिमान् ब्राह्मणोंकी आचार्योंकी और ऋत्विजोंकी सदा पूजा करना ॥ ५२ ॥ एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे शत्रुदमन ! शन्तनु—पुत्र भीष्म सब कौरवोंसे इस प्रकार कह कर दो घड़ी तक शान्त रहे ॥ १ ॥ तदनन्तर उन महात्मा भीष्मने अपने प्राणवायुको आधारचक्र आदि स्थानोंमें अनुक्रमसे धारण किया तब उन महात्माके रुके हुए प्राण उनके शरीरके ऊपरके भागमें जाने लगे (अर्थात् मूलाधारमेंसे स्वाधिष्ठानमें तहाँसे मणिपूरमें अनाहतमें तहाँसे विशुद्धिचक्रमें और तहाँसे आज्ञाचक्रमें इसप्रकार अपने प्राणोंको वे उपरि २ ले जाने लगे) ॥ २ ॥ हे प्रभो !

यद्यन्मुंचति गात्रं हि शान्तनुसुतस्तदा । तत्तद्विशल्यं भवति योग-युक्तस्य तस्य वै ॥ ४ ॥ क्षणेन प्रेक्षतां तेषां विशल्यः सोऽभव-त्तदा । तद् दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ५ ॥ सह तैर्मुनिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिर्नृप । सन्निरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ६ ॥ जगाम भित्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात ह । देवदुन्दुभिनादश्च पुष्पवर्षैः सहाभवत् ॥ ७ ॥ सिद्धा ब्रह्म-र्षयश्चैव साधु साध्विति हर्षिताः । महोल्लोकेव च भीष्मस्य मूर्धदेशाज्जनाधिप ॥ ८ ॥ निःसृत्याकाशमाविश्य क्षणेनांतर-धीयत । एवं स राजशार्दूल नृपः शान्तनवस्तदा ॥ ९ ॥ सम-

उस समय तहाँ व्यास आदि सब ऋषियोंके और महात्माओंके सामने एक और आश्चर्य हुआ, कि-॥ ३ ॥ शन्तनुपुत्र भीष्म धारण करके अपने जिस अङ्गको त्यागते जाते थे, उनके उस २ अङ्गमेंसे बाण अपने आप ही निकल कर दूर पड़ने लगे ॥ ४ ॥ और उन महात्माओंके देखते २ भीष्मजी शल्य (बाण) रहित होगए यह देख कर वासुदेव आदि सब महात्मा अचरजमें होगए ॥ ५ ॥ और हे राजन् ! उनके साथमें व्यास आदि सब मुनियोंको भी अचरज हुआ, भीष्मजी अपनी आत्माको सब आयतन (चक्रों) में रोकने और चढ़ाते हुए उसको ऊपरको ले गए, अन्तमें उनका प्राणात्मा उनके कपालको फोड़ कर आकाशमेंको दौड़ा उस समय देवता दुन्दुभियें बजाने लगे और उस समय पुष्प-वृष्टि भी हुई ॥ ६—७ ॥ सिद्ध पुरुष और ब्रह्मर्षि प्रसन्न होकर कहने लगे, कि-बहुत अच्छा हुआ ! बहुत अच्छा हुआ ! हे जनाधिप ! भीष्मजीका प्राणात्मा उनके कपालको फोड़कर एक अग्निकी महाज्वालाकी समान बाहर निकला, और आकाशमें जाकर एक क्षणमें ही अन्तर्धान होगया हे राजसिंह ! इस शन्तनुके पुत्र भरतवंशी

युज्यत कालेन भरतानां कुरूद्वहः। ततस्त्वादाय दारूणि गंधांश्च विविधान् बहून् ॥ १० ॥ चितां चक्रुर्महात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा। युयुत्सुश्चापि कौरव्यं प्रेक्षकास्त्वितरेऽभवन् ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरश्च गांगेयं विदुरश्च महामतिः। छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवम् ॥ १२ ॥ धारयामास तस्याथ युयुत्सुश्छत्रमुत्तमम्। चामरव्यजने शुभ्रे भीमसेनार्जुनावुभौ ॥ १३ ॥ उष्णीषे परिगृह्णीतां माद्रीपुत्रावुभौ तथा। स्त्रियः कौरवनाथस्य भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १४ ॥ तालवृन्तान्युपादाय पर्यवीजन्त सर्वशः। ततोऽस्य विधिवच्चक्रुः पितृमेधं महात्मनः ॥ १५ ॥ यजनं बहुशश्चाग्नौ जगुः सामानि सामगाः। ततश्चन्दनकाष्ठैश्च तथा कालीयकैरपि ॥ १६ ॥ कालागुरुप्रभृतिभिर्गंधैश्चोच्चावचै-

---

भीष्मजी कालके अधीन होगए, तदनन्तर हे कुरुकुलोत्पन्न ! महात्मा पाण्डव विदुर और युयुत्सु अनेक प्रकारके काष्ठ और सुगन्धित द्रव्योंको इकट्ठा करके चिता चुनने लगे और दूसरे मनुष्योंको दर्शककी समान खड़े रहने दिया ॥८-११॥ तदनन्तर युधिष्ठिरने और महामति विदुरने गङ्गापुत्र भीष्मजी पर रेशमी वस्त्र डाले और उनको पुष्पमाला पहिराई ॥१२॥ उस समय युयुत्सुने उनके ऊपर छत्र लगाया, भीम और अर्जुन उनके ऊपर चँवर डुलाने लगे ॥१३॥ माद्रीके दोनों पुत्र भीष्मजीकी पगड़ीको लेकर खड़े होगए और कौरवराजकी स्त्रियें कुरुकुलमें उत्पन्न हुए भीष्मजीकी ताड़के पंखोंसे हवा करने लगीं, इसके अनन्तर पाण्डवोंने उन महात्माके पितृमेधका आरम्भ किया ॥ १४ ॥ उस समय प्रथम अग्निमें बहुतसा घृत होमा जाने लगा, अर्थात् भीष्मके शवका अग्निसंस्कार आरम्भ किया ॥ १५ ॥ सामवेद पढ़ने वाले सामका गान करने लगे तब चन्दनके काष्ठोंसे तथा कालीयकोंसे तथा तगर चन्दन आदि अनेक प्रकारके सुगन्धित

स्तथा । समवच्छाद्य गांगेयं संप्रज्वाल्य हुताशनम् ॥१७॥ अप-
सव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्रमुखाश्चिताम् ।संस्कृत्य च कुरुश्रेष्ठं गांगेयं
कुरुसत्तमाः ॥ १८ ॥ जग्मुर्भागीरथीं पुण्यामृषिजुष्टां कुरूद्वहाः ।
अनुगम्यमाना व्यासेन नारदेनासितेन च ॥ १९ ।कृष्णेन भर-
तस्त्रीभिर्ये च पौराः समागताः । उदकं चक्रिरे चैव गांगेयस्य
महात्मनः ॥२०॥ विधिवत् क्षत्रियश्रेष्ठाः स च सर्वो जनस्तदा।
ततो भागीरथी देवी तनयस्योदके कृते ॥ २१ ॥ उत्थाय सलि-
लात्तस्माद्रुदती शोकविह्वला । परिदेवयती तत्र कौरवानभ्यभा-
षत ॥ २२ ॥ निबोधत यथावृत्तमुच्यमानं मयानघाः । राज-
वृत्तेन सम्पन्नः प्रज्ञयाभिजनेन च ॥ २३ ॥ सत्कर्ता कुरुवृद्धानां

पदार्थोंसे भीष्मजीको भलीप्रकार ढक दिया फिर उनकी चितामें अग्नि लगा दी ॥ १६-१७ ॥ इसप्रकार गङ्गापुत्र भीष्मजीके सब संस्कार करके कुरुवंशमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र आदिने उनकी चिता की दाईं ओरसे प्रदक्षिणा की ॥१८॥ फिर सब कौरव ऋषियों से सेवित भागीरथी नदीके तट परको चले उस समय व्यास नारद असित कृष्ण और भरतवंशकी स्त्रियें भी उनके पीछे २ चल रही थीं और नगरनिवासी भी उनके साथ २ चल रहे थे, और गङ्गातट पर पहुँच कर उन सब क्षत्रियोंने साथ २ में आने वाले महात्माओंने और सब नगरनिवासियोंने भी उस समय गङ्गापुत्र महात्मा भीष्मजीको जलाञ्जलि दी ॥१९॥२१॥ उस समय देवी भागीरथी जलमेंसे बाहर निकलीं और शोकसे विह्वल हो रोती २ विलाप करती हुई कौरवोंसे कहने लगीं २२ "गङ्गाजीने कहा, कि-हे" निर्दोष कौरवो ! मैं तुमसे भीष्मजी का यथार्थचरित्र कहती हूँ, उसको तुम सुनो, भीष्म राजचरित्रसे सम्पन्न था, बुद्धिमान् था, कुलीन था ॥ २३ ॥ कुरुवंशके वृद्ध पुरुषोंका सत्कार करने वाला था, पितृभक्त था, महाव्रतधारी

पितृभक्तो महाव्रतः। जामदग्न्येन रामेण यः पुरा न पराजितः २४ दिव्यैरस्त्रैर्महावीर्यः स हतोऽद्य शिखण्डिना । अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम पार्थिवाः ॥२५॥ अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं यन्न दीर्यति मेऽद्य वै । समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां स्वयम्वरे ॥ २६ ॥ विजित्यैकरथेनैव कन्याश्चार्यो जहार ह। यस्य नास्ति बले तुल्यः पृथिव्यामपि कश्चन ॥ २७ ॥ हतं शिखण्डिना श्रुत्वा न विदीर्येत यन्मनः । जामदग्न्यः कुरुक्षेत्रे युधि येन महात्मनः ॥२८॥ पीडितो नातियत्नेन स हतोद्य शिखंडिना । एवं विधं बहु तदा विलपन्तीं महानदीम् ॥२९॥ आश्वासयामास तदा गंगां दामोदरो विभुः । समाश्वसिहि भद्रे त्वं मा शुचः शुभदर्शने ॥३०॥

था, (हा !) जमदग्निपुत्र परशुराम भी जिसकी पराजय न कर सके थे ॥ २४ ॥ उस महावीर्यवान् भीष्मको इस समय शिखण्डीने दिव्य अस्त्रोंसे मार डाला, हे राजाओं ! मेरा हृदय वास्तवमें पत्थरका है क्योंकि-अपने प्रियपुत्रको न देखने पर भी वह नहीं फटता, जब काशीपुरीके स्वयम्वरमें सब राजे एकत्रित हुए थे ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस समय इसने अपने एक रथकी ही सहायतासे उन सबका पराजय करके राजकन्याओंको जीत लिया था, इस पृथ्वी पर जिसकी समान कोई बली नहीं है उस मेरे पुत्रको शिखण्डीने मार डाला यह सुनकर भी मेरा हृदय नहीं फटता ! जिस महात्माने कुरुक्षेत्रके युद्धमें सामान्य प्रयत्नसे ही जमदग्निके पुत्र परशुरामको दुःखित किया था, उसको आज शिखण्डीने सहजमें ही मार डाला !" महानदी गङ्गाजीने इसप्रकार बहुत विलाप किया ॥२७-२९॥ तब व्यापक दामोदर उसको धैर्य देते हुए कहने लगे कि-हे कल्याणि ! हे शुभदर्शने ! तू धैर्य रख शोक न कर ॥३०॥ तेरा पुत्र परम-

लोकं गतः स परमं तव पुत्रो न संशयः । वसुरेष महातेजाः शापदोषेण शोभने ॥ ३१ ॥ मानुषत्वमनुप्राप्तो नैनं शोचितुमर्हसि । स एष क्षत्रधर्मेण अयुध्यत रणाजिरे ॥ ३२ ॥ धनञ्जयेन निहतो नैष देवि शिखण्डिना भीष्मं हि कुरुशार्दूलमुद्यतेषुं महारणे ॥ ३३ ॥ न शक्तः संयुगे हन्तुं साक्षादपि शतक्रतुः । स्वच्छन्दतस्तव सुतो गतः स्वर्गं शुभानने ॥ ३४ ॥ न शक्ता विनिहन्तुं हि रणे तं सर्वदेवताः । तस्मान्मा त्वं सरिच्छ्रेष्ठे शोचस्व कुरुनन्दनम् । वसूनेष गतो देवि पुत्रस्ते विज्वरा भव ३५ वैशम्पायन उवाच। इत्युक्ता सा तु कृष्णेन व्यासेन तु सरिद्वरा । त्यक्त्वा शोकं महाराज स्वं वार्यवततार ह ॥ ३६ ॥ सत्कृत्य ते

लोकमें गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, हे शोभने ! वह महातेजस्वी वसु था परन्तु शापके दोषके कारण वह मनुष्यजातिमें उत्पन्न होगया था, अतः उसका शोक करना उचित नहीं है, उसने रणाङ्गणमें क्षत्रिय धर्मानुसार युद्ध किया था ॥ ३१-३२ ॥ धनञ्जयने उसको मार डाला था, हे देवि ! महारणमें बाण उठा कर घूमते हुए कुरुकुलमें सिंहकी समान भीष्मजीको शिखण्डीने नहीं मारा है ॥ ३३ ॥ साक्षात् इन्द्र भी उसको युद्धमें नहीं मार सकता, हे शुभवदने ! तेरा पुत्र स्वेच्छासे स्वर्गमें गया है ॥ ३४ ॥ सब देवताओंकी भी यह सामर्थ्य नहीं है, कि-वे रणमें भीष्मको मार सकें, अतः हे श्रेष्ठ नदी गङ्गे ! तू कुरुवंशके पुत्र भीष्मका शोक न कर, हे देवि ! तेरा पुत्र वसुओंके स्वरूपको प्राप्त होगया है अतः तू शान्त हो ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसप्रकार श्रीकृष्णने और व्यासजीने नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीसे कहा, तब हे महाराज ! वह शोकको त्याग कर अपने जलमें उतर गईं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर कृष्ण आदि सब

तां सरितं ततः कृष्णमुखा नृप। अनुज्ञातास्तया सर्वे न्यवर्तन्त जनाधिपाः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे भीष्मभक्तिर्नाम अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

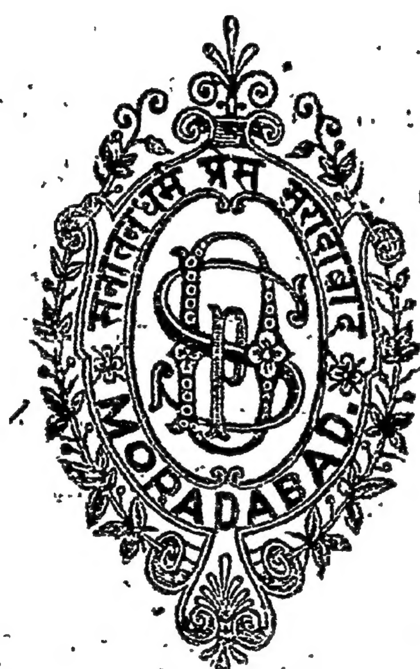
राजाओंने गङ्गाजीका सत्कार किया और गंगाजीने आज्ञा दी तब वे सब तहाँसे पीछेको लौटे ॥ ३७ ॥ एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारतका अनुशासनपर्व मुरादाबादनिवासि भारद्वाजगोत्र गौड़वंश्य ऋ० कु० प० रामस्वरूप-शर्मात्मज ऋषिकुमार प० रामचन्द्रशर्माकृत भाषानुवादसहित समाप्त.

—:*:—

॥ अनुशासनपर्व समाप्त ॥




सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद
SDP
MORADABAD.